प्रस्थापना
[PREFACE]

पुस्तक का पूर्णतया संशोधित दसवाँ संस्करण (tenth edition) पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। इस संस्करण में भी, पिछले संस्करण की भाँति, अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। कुछ नये अध्यायों के जोड़ने के अतिरिक्त कई अध्यायों में संशोधन करके नयी व आधुनिकतम विषय-सामग्री जोड़ी गयी है।

उदाहरणार्थ, 'अध्याय १ . अर्थशास्त्र की परिभाषा' के अन्तर्गत शुरू में 'आर्थिक समस्या अथवा अर्थशास्त्र क्या है ?' के सम्बन्ध में नयी विषय-सामग्री जोड़ी गयी है तथा इसी अध्याय १ की विषय सामग्री को कई जगह नये सिरे से लिखा गया है। 'अध्याय २ अर्थशास्त्र का क्षेत्र' के अन्तर्गत भी कुछ स्थानों पर विषय-सामग्री में परिवर्तन किया गया है। एक नया महत्त्वपूर्ण अध्याय अर्थात् 'अध्याय ५ आर्थिक सिद्धान्त, वास्तविकता तथा आर्थिक नीति' (Economic Theory, Reality and Economic Policy) जोड़ा गया है। 'अध्याय ६ अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीतियाँ' के अन्तर्गत एक नयी परिशिष्ट 'वैज्ञानिक रीति' जोड़ी गयी है। 'अध्याय ६ स्थैतिक तथा प्रावैगिक अर्थशास्त्र' की अधिकांश विषय-सामग्री को नये सिरे से लिखा गया है; 'अध्याय १० · साम्य या सन्तुलन का विचार' के अन्तर्गत विषय-सामग्री को कई स्थानों पर नये सिरे से लिखा गया है। 'अध्याय ११ ' कल्याणवादी अर्थशास्त्र अर्थ तथा स्वभाव' की लगभग सभी विषय-सामग्री को नये सिरे से लिखा गया है तथा इसके अन्तर्गत एक परिशिष्ट . 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र . पुराना तथा नया' को भी जोड़ा गया है। इसी प्रकार उपभोग के खण्ड में भी कई जगह नयी विषय-सामग्री जोड़ी गयी है, इत्यादि।

मुझे आशा है कि उपर्युक्त परिवर्तनों तथा संशोधनों के परिणामस्वरूप पुस्तक का दसवाँ संस्करण पाठकों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

मेरी इस पुस्तक की कुछ बाइंडिंगों (some bindings) में राजस्व (Public Finance) का हिस्सा डॉ० हरिश्चन्द्र शर्मा (जयपुर) द्वारा लिखा गया है। मेरी पुस्तक के प्रथम संस्करण से ही डॉ० शर्मा द्वारा लिखित राजस्व जोड़ा गया है। मैं इस सहयोग के लिए डॉ० शर्मा के प्रति आभारी हूँ।

मैं उन अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तक के सुधार के सुझाव प्रेषित किये हैं, उनके सुझावों को यथासम्भव इस संस्करण में शामिल किया है। व्यक्तिगत रूप से कुछ पाठकों को उत्तर नहीं दे सका इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि भविष्य में भी अध्यापक तथा विद्यार्थी पुस्तक की त्रुटियों की तरफ मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए रचनात्मक सुझाव देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

१७/२१८, सिटी स्टेशन रोड
आगरा

—के० पी० जैन

अर्थशास्त्र की परिभाषा
(DEFINITION OF ECONOMICS)

आर्थिक समस्या
(ECONOMIC PROBLEM)
अथवा
अर्थशास्त्र क्या है ?
(WHAT IS ECONOMICS ?)

अर्थशास्त्र के आधार (*Foundations of Economics*) निम्न दो तत्त्व हैं—आवश्यकताएं (*wants*) तथा साधन (*resources*), दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र का सम्बन्ध 'आवश्यकताओं' तथा 'साधनों' से होता है। आवश्यकताएं अनन्त होती हैं तथा साधन सीमित होते हैं, साधनों की सीमितता और भी बढ़ जाती है क्योंकि प्रत्येक साधन को कई प्रयोगों या विकल्पों (alternatives) में इस्तेमाल किया जा सकता है। साधनों के अन्तर्गत केवल भूमि, श्रम व पूंजी ही नहीं आते बल्कि 'समय' भी आता है, समय भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है और यह सीमित है। सीमित साधनों द्वारा उत्पादित वस्तुएं व सेवाएं भी सीमित होंगी, वस्तुओं व सेवाओं द्वारा मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। चूंकि साधन सीमित हैं इसलिए समाज या व्यक्ति साधनों (और वस्तुओं) का कुशलता से साथ प्रयोग करते अर्थात साधनों के प्रयोग में किफायत (*economising the resources*) करते हैं और इसलिए अर्थशास्त्र की समस्या 'किफायत की समस्या' (*economising problem*) है। शायद यह बात *Economics* (अर्थशास्त्र) के नाम के औचित्य (justification) को सिद्ध करती है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र या आर्थिक क्रिया[1] इस बात को बताती है कि सीमित साधनों का कुशलता या किफायत से साथ प्रयोग करके वस्तुओं का उत्पादन, विनिमय आदि करके आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। सीमित साधनों की सहायता से वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन किया जाता है, इन वस्तुओं का विनिमय व वितरण होता है, इसके बाद वस्तुओं का उपभोग किया जाता है,

[1] आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार जब 'आर्थिक क्रिया' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इसका अर्थ केवल धन या द्रव्य से सम्बन्धित क्रिया से ही नहीं होता (जैसा कि मार्शल ने बताया था) बल्कि मानवीय व्यवहार के उस पहलू से होता है जो साधनों के सीमितता से प्रभावित होता है। इस बात के अर्थ तथा अभिप्राय इस अध्याय में आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायेंगे। ध्यान रहे कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार सीमित साधनों के अन्तर्गत भूमि, श्रम तथा पूंजी और इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं (अर्थात् धन) के अतिरिक्त समय को भी शामिल किया जाता है।

उपभोग से आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है। अतः एक आर्थिक क्रिया के पाँच भाग होते हैं जो कि निम्न चार्ट द्वारा दिखाए गये है
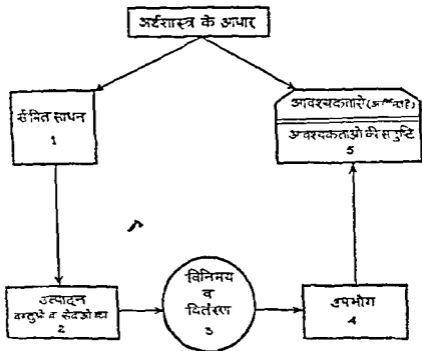
आर्थिक क्रिया
(ECONOMIC ACTIVITY)

अर्थशास्त्र के लिए साधनों की सीमितता अर्थात् 'सीमितता की समस्या' आधारभूत या मुख्य है। अर्थशास्त्र में उस मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो कि सीमितता से प्रभावित होता है। आगे हम देखेंगे कि सीमितता के प्रभाव के कारण मानव-व्यवहार का रूप 'चुनाव करने' (choice-making) का हो जाता है।

साधनों की सीमितता अथवा 'सीमितता' के कारण ही अर्थशास्त्र का अस्तित्व (existence) है। सीमितता के अभिप्राय (*implications of scarcity*) निम्नलिखित हैं

१ सीमितता सापेक्षिक (relative) होती है

आर्थिक दृष्टि से सीमितता का अर्थ है कि आवश्यकताओं की तुलना में वस्तुएं व सेवाएं सीमित होती हैं, अर्थात् सीमितता सापेक्षिक होती है।[1] आर्थिक वस्तुएं व सेवाएं सीमित हैं क्योंकि उनको उत्पादित करने वाले साधन (श्रम, भूमि व पूंजी) सीमित हैं, और अन्तिम सीमितता है साधन समय और प्रयत्नों की।

अतः उत्पादन में प्रयोग होने वाले साधनों तथा अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं, जिनमें ये साधन परिवर्तित हो जाते हैं, दोनों की सीमितता है। सीमितता की समस्या और प्रबल हो जाती है

[1] उदाहरणार्थ, निरपेक्ष रूप में (in the absolute sense) अच्छे अण्डों की मात्रा बहुत होती है और सड़े अण्डों की मात्रा बहुत कम। परन्तु अच्छे अण्डे आर्थिक दृष्टि से सीमित हैं क्योंकि आवश्यकता (या मांग) की तुलना में वे कम हैं और इसलिए उनकी कीमत ऊंची होती है, जबकि सड़े अण्डे, मात्रा में बहुत कम होते हुए भी, सीमित नहीं हैं क्योंकि उनकी आवश्यकता (या मांग) शून्य होती है।

क्योंकि प्रत्येक साधन को कई वैकल्पिक प्रयोगों[3] (alternative uses) में इस्तेमाल किया जा सकता है।

२ साधनों की सीमितता के कारण 'किफायत की समस्या' (Problem of economising) उत्पन्न होती है

साधनों की सीमितता के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि साधनों को कुशलता के साथ प्रयोग करके अधिकतम लाभ या सन्तुष्टि प्राप्त की जाये। दूसरे शब्दों में, इस बात की आवश्यकता है कि साधनों (और उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं) के प्रयोग में किफायत की जाये। अत अर्थशास्त्र किफायत का विज्ञान है (*Economics is the science of economising*)।

३ साधनों की सीमितता तथा उनके प्रयोग में किफायत करने के परिणामस्वरूप 'चुनाव की समस्या' (Problem of choice making) उत्पन्न होती है

आवश्यकताएँ अनन्त (unlimited) हैं तथा साधन सीमित (limited or scarce) हैं, इसलिए मनुष्य या समाज अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। सर्वप्रथम सबसे अधिक तीव्र या महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति की जायेगी, इसके पश्चात कम महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति की जायगी, और कुछ आवश्यकताएँ असन्तुष्ट रह जायेंगी। अत मनुष्य को आवश्यकताओं के बीच 'विवेकपूर्ण चुनाव' (*rational choice*) करना होगा। इस चुनाव करने की क्रिया के पीछे यह मान्यता मौजूद रहती है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को उनके महत्त्व या तीव्रता के अनुसार एक क्रम में रख सकता है, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी 'पसन्दों का एक क्रम' (*scale of preferences*) होगा तभी वह 'विवेकपूर्ण चुनाव' कर सकेगा।

आवश्यकताओं की पूर्ति वस्तुओं व सेवाओं से होती है, इसलिए 'आवश्यकताओं के बीच चुनाव करने' का अभिप्राय है वस्तुओं (व सेवाओं) के प्रयोग के सम्बन्ध में 'चुनाव करना', अर्थात वस्तुओं (व सेवाओं) के उत्पादन के सम्बन्ध में 'चुनाव करना' अर्थात इन वस्तुओं (व सेवाओं) को उत्पादित करने वाले सीमित साधनों (भूमि, श्रम, पूंजी तथा समय) के प्रयोग के सम्बन्ध में 'चुनाव करना' करना होगा या 'निर्णय लेना' होगा।

यह 'चुनाव करने की क्रिया' (*choice-making aspect*) या 'निर्णय करने की क्रिया' (*decision-taking aspect*) ही मुख्य या आधारभूत 'आर्थिक समस्या' (*economic problem*) है और इसका अध्ययन ही अर्थशास्त्र में किया जाता है।[4] 'चुनाव करने की क्रिया' को ही मानव-व्यवहार का 'आर्थिक पहलू' (*economic aspect* of human behaviour) कहते हैं। साधनों की सीमितता के कारण ही मानव-व्यवहार का रूप 'चुनाव करने' का हो जाता है। अत

अर्थशास्त्र में उस मानव-व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो कि सीमितता से प्रभावित होता है और यह रूप है चुनाव करने की क्रिया।

चुनाव करने का कोई भी तरीका हो तथा आर्थिक प्रणाली या संगठन का कोई भी रूप हो (चाहे पूंजीवाद हो या समाजवाद), विकल्पों (alternatives) के बीच चुनाव आधारभूत सिद्धान्त है जो कि सभी आर्थिक क्रियाओं के पीछे रहता है।

ध्यान रहे कि शब्द 'विवेकपूर्ण चुनाव' (rational choice) का नैतिकता (morality) से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति के पसन्द के क्रम में 'शराब' का स्थान पहला तथा 'अच्छे खाने' का स्थान दूसरा हो सकता है।[4]

---

[3] उदाहरणार्थ, श्रम, भूमि तथा पूंजी का प्रयोग कारखानों में, स्कूलों व कालेजों, अस्पतालों, सड़कों के बनाने में, इत्यादि अनेक वैकल्पिक प्रयोगों में हो सकता है। इसी प्रकार किसी भी वस्तु, जैसे लोहा, के अनेक प्रयोग हो सकते हैं। इसी प्रकार साधन समय को कई वैकल्पिक प्रयोगों में बाँटा जा सकता है, जैसे आराम करने तथा कार्य करने में, खेलने व गप्पें लगाने में और पढने में, इत्यादि।

[4] दूसरे शब्दों में, आर्थिक दृष्टि से 'चुनाव करने की बुद्धिमानी (*wisdom of choice*) महत्त्वपूर्ण नहीं होती। अर्थशास्त्री, एक वैज्ञानिक के रूप में, चुनाव करने की अच्छाई व बुराई से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, यद्यपि वह एक नागरिक के रूप में, या अन्य कारणों से, अच्छाई-बुराई से सम्बन्ध रख सकता है।

४ 'चुनाव' का अभिप्राय है 'अवसर लागत' (Choice means opportunity cost)

साधनो और वस्तुओ की सीमितता के कारण एक व्यक्ति को आवश्यकताओ के बीच चुनाव करना पड़ता है। एक आवश्यकता की पूर्ति का अर्थ है किसी दूसरी आवश्यकता की पूर्ति के अवसर का त्याग। उदाहरणार्थ, एक विद्यार्थी के पास सीमित द्रव्य है, यदि वह विद्यार्थी एक सिनेमा देखने का चुनाव या निर्णय करता है तो उसे दूसरी आवश्यकता का अर्थात् एक फाउण्टेन-पेन को खरीदने के अवसर का त्याग करना पड़ेगा। दूसरे शब्दो मे, एक आवश्यकता की सन्तुष्टि की 'वास्तविक लागत' (real cost) वह विकल्प है जिसका त्याग कर दिया गया हो।[5] इस प्रकार यदि एक समाज अधिक 'उपभोक्ता की वस्तुओ' (consumer's goods) का उत्पादन करना चाहता है तो उसे पूँजीगत वस्तुओ (capital goods) के उत्पादन के अवसर का त्याग करना पड़ेगा।

किसी वस्तु के उत्पादन की 'वास्तविक लागत' वह वस्तु या विकल्प (alternative) है जिसके उत्पादन के अवसर का त्याग कर दिया गया हो, इस प्रकार की वास्तविक लागत को आधुनिक अर्थशास्त्री अवसर लागत' (opportunity cost) कहते हैं। संक्षेप मे, चुनाव का अभिप्राय है 'वास्तविक लागत' या 'अवसर लागत'।

५ चुनाव का अभिप्राय है साधनों का वितरण या आवटन (Choice implies allocation of resources)

जब एक व्यक्ति कुछ वस्तुओ के खरीदने का चुनाव करता है तो वास्तव म वह सीमित साधन अर्थात् सीमित आय को विभिन्न वस्तुओ को खरीदने मे 'वितरण' या 'आवटन' (allocate) करता है। इसी प्रकार जब एक फर्म वस्तु या कुछ वस्तुओ के उत्पादन के सम्बन्ध म चुनाव (या निर्णय) करती है तो वास्तव मे वह अपने द्रव्य व पूँजी के साधनो को उन वस्तुओ के उत्पादन पर 'आवटन' करती है। इसी प्रकार से सम्पूर्ण समाज के लिए 'चुनावो' का अभिप्राय है साधनो का आवटन या वितरण। साधनो का वितरण या आवटन उन निर्णयो को बताता है जिनका सम्बन्ध होता है समाज की भूमि, श्रम, पूँजीगत वस्तुओ का किस प्रकार से प्रयोग किया जाय, किन वस्तुओ का उत्पादन किया जाय और कितनी मात्रा मे किया जाय तथा उत्पादन की किन रीतियों का प्रयोग किया जाय, इत्यादि।

स्पष्ट है कि जब यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्र मे 'चुनाव करने की क्रिया' का अध्ययन किया जाता है तो इसका अभिप्राय है कि अर्थशास्त्र मे 'साधनो के वितरण या आवटन' (*allocation of resources*) का अध्ययन किया जाता है।

६ चुनाव की क्रिया का सम्बन्ध 'आर्थिक विकास या वधन' से भी होता है (Choice making activity is also concerned with economic development or growth)

सीमितता तथा चुनाव के अभिप्राय केवल वर्तमान के लिए ही नहीं बल्कि भविष्य के लिए भी होते हैं। आवश्यकताओ म निरन्तर परिवर्तन व वृद्धि होती है, इसलिए यह आवश्यक है कि 'साधनो का विकास या वधन' भी निरन्तर होता रहे ताकि भविष्य मे बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके। इसका अभिप्राय है कि अर्थशास्त्र उन तत्त्वों का अध्ययन करता है जो कि भविष्य मे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (या समाज) के लिए साधनों के वर्धन (growth), आय के वर्धन तथा रोजगार के अवसरों के वर्धन को निर्धारित करते हैं। दूसरे शब्दो मे, साधनो के वितरण व प्रयोग के सम्बन्ध मे चुनाव करते समय अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास या साधनो के विकास को भी ध्यान मे रखना होगा।

संक्षेप मे, अर्थशास्त्र एक चुनाव का विज्ञान है (*Economics is the science of choice*)। हम देख चुके हैं कि 'चुनाव करने की क्रिया' के स्थान पर 'सीमित साधनों के वितरण या आवटन' शब्दो का प्रयोग भी किया जाता है। अत, उपर्युक्त समस्त विवरण के आधार पर, अर्थशास्त्र के आधुनिक विकास व आधुनिक दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए 'आर्थिक समस्या' या 'अर्थशास्त्र' को निम्न शब्दो मे परिभाषित कर सकते हैं

> अर्थशास्त्र सीमित साधनों के वितरण (या आवटन) का तथा रोजगार, आय व आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्वों का अध्ययन है।[6]

---

[5] उदाहरण म सिनेमा देखने की वास्तविक लागत' है फाउण्टेन पेन का त्याग, अथवा फाउण्टेन पेन को खरीदने की वास्तविक लागत है सिनेमा देखने का त्याग।

[6] Economics is the study of the allocation of scarce resources and of the determinants of employment, income and growth

'अर्थशास्त्र क्या है ?' अथवा 'आर्थिक समस्या' के सारांश (*Summar*) को हम निम्न चार्ट द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं ।

आर्थिक समस्या का सारांश

असीमित आवश्यकताओं के समक्ष होते हैं सीमित साधन

↓ इसका अभिप्राय है

अर्थशास्त्र के लिए साधनों की सीमितता आधारभूत है। → यह निर्देशित करती है → साधनों की किफायत करना

↓ यह निर्देशित करती है

विवेकपूर्ण 'चुनाव करना' या 'निर्णय लेना'; यह ही 'आर्थिक समस्या' है अथवा 'अर्थव्यवस्था का नियम' है। → इसका अभिप्राय है → वर्तमान में विभिन्न प्रयोगों में साधनों का बटन या वितरण।

↓

वास्तविक जगत सदैव परिवर्तनशील है, आवश्यकता एक बिना पेंदी की खाई है, अर्थात् आवश्यकताओं का निरन्तर विकास या वर्धन होता है, अत समयावधि म साधनों का भी विकास या वर्धन होना चाहिए । अत हम अर्थशास्त्र को प्रावैगिक बनाना (अर्थात् dynamise करना) होगा ।

↓ इसका अभिप्राय है

साधनों का विकास तथा समयावधि या भविष्य में साधनों का बटन । → इसका अभिप्राय है → अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास, रोजगार तथा आय ।

↓ अत हम निष्कर्ष निकालते हैं

अर्थशास्त्र सीमित साधनों के वितरण या बटन का तथा रोजगार, आय और आर्थिक विकास या आर्थिक वर्धन के निर्धारक तत्वों का अध्ययन है ।

Summary of the Economic Problem

'*Romantic forces*' of Wants are pitted against *Realistic forces*' of Scarcity

This implies

Scarcity of resources is basic to Economics

This leads to

Economising of Resources

leads to

Rational Choice making or Decision taking This is the Economic Problem or the '*Law of Economy*'

This implies

Allocation or Administration of Resources among different uses in the present

World is ever changing, 'want is a bottomless pit', that is, wants are ever-growing, and, therefore, resources are also to grow over time Hence, *we have to dynamise economics*

This implies

Growth of Resources and their allocation over-time or in future

This implies

Economic growth Employment and *Income* in the economy

Hence, we conclude

Economics in the study of allocation of scarce resources and of the determinants of employment, income and economic growth

आर्थिक विश्लेषण
(ECONOMIC ANALYSIS)

अथवा

आर्थिक सिद्धान्त
(ECONOMIC THEORY)

आधुनिक अर्थशास्त्र का जन्म १७७६ में हुआ जबकि एडम स्मिथ (Adam Smith) की पुस्तक An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के जन्म के समय इसका नाम 'राज्य अर्थ-व्यवस्था' (Political Economy) था और यह नाम लगभग एक शताब्दी तक प्रचलित रहा। १८९० में प्रो० मार्शल ने अर्थशास्त्र की अपनी विख्यात (famous) पुस्तक का नाम 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' (Principles of Economics) रखा। इस प्रकार इस शास्त्र का नाम राज्य अर्थ व्यवस्था से बदलकर 'अर्थशास्त्र' हो गया। अर्थशास्त्र के नाम बदलने का मुख्य कारण यह था कि १९वीं शताब्दी के अन्त तक, जबकि मार्शल की पुस्तक प्रकाशित हुई थी, अर्थशास्त्र के क्षेत्र का पर्याप्त विकास हो चुका था, इसलिए मार्शल ने अर्थशास्त्र का 'राज्य अर्थ व्यवस्था' जैसा नाम उचित नहीं समझा, और उसके स्थान पर 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' अर्थात् 'अर्थशास्त्र' नाम का प्रयोग किया।

मार्शल के बाद सभी अर्थशास्त्रियों ने इस नये शब्द 'अर्थशास्त्र' को स्वीकार किया और तब से यही नाम चला आ रहा है। परन्तु वर्तमान समय में 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' के स्थान पर 'आर्थिक विश्लेषण (Economic Analysis) नाम का प्रयोग भी किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, प्रो० बोल्डिंग (Prof K E Boulding) ने अर्थशास्त्र के सिद्धान्त पर लिखी अपनी पुस्तक का नाम 'आर्थिक विश्लेषण' रखा है। वास्तव में, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए 'आर्थिक यन्त्र' (economic tools) प्रस्तुत करते हैं। अब बहुत से आधुनिक अर्थशास्त्री 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' के अर्थ में 'आर्थिक विश्लेषण' के नाम को अधिक पसन्द करते है, अब इस नाम का प्रयोग बहुत होने लगा है।

परिभाषा की समस्या
(PROBLEM OF DEFINITION)

अर्थशास्त्र की परिभाषा बताने तथा इस पर विचार करने से पहले *इस सम्बन्ध में दो बातें* बताना आवश्यक है। प्रथम, अर्थशास्त्र के विद्वानों में बहुत मतभेद है, अतः इस शास्त्र की अनेक परिभाषाएँ दी गयी है। दूसरे, अर्थशास्त्रियों का एक समूह ऐसा भी है जिसका यह मत है कि *अर्थशास्त्र की परिभाषा देने की कोई आवश्यकता नहीं है।*

जहाँ तक अर्थशास्त्र की अनेक परिभाषाओं का प्रश्न है, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी भी शास्त्र की परिभाषा उस शास्त्र के क्षेत्र तथा विकास की स्थिति पर निर्भर करती है। चूँकि विगत २०० वर्षों में अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र में बहुत विस्तार हुआ है, अतः अर्थशास्त्र की परिभाषा में एक सीमा तक भिन्नता पाया जाना स्वाभाविक है।

दूसरे, जैसा कि पहले कहा गया है, अर्थशास्त्रियों का एक ऐसा समूह है जो अर्थशास्त्र की परिभाषा की आवश्यकता नहीं समझता। इस समूह में पुराने अर्थशास्त्रियों में रिचार्ड जोन्स (Richard Jones) और काम्टे (Comte) तथा नये अर्थशास्त्रियों में जैकब वाईनर (Jacob Viner), मोरिस डॉब (Maurice Dobb), वॉन माइसेज (Von Mises), गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal), आदि के नाम मुख्य हैं। इन अर्थशास्त्रियों का मत है कि एक परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि इसके क्षेत्र के विकास के कारण जो परिभाषा आज दी जाती है वह कल उचित नहीं रह जाती। पुन, चूँकि अर्थशास्त्र तथा अन्य शास्त्रों में गहरा सम्बन्ध है, इसलिए भी अर्थशास्त्र की एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र की

परिभाषा की बारीकियों (niceties) में पड़ने से कोई लाभ नहीं। जैकब वाईनर का कहना है कि "अर्थशास्त्र वह है जो कि अर्थशास्त्री करते हैं।"[1]

वास्तव में अर्थशास्त्र की परिभाषा देना आवश्यक है। प्रथम, यदि अर्थशास्त्र की परिभाषा देकर इसके क्षेत्र को सीमित नहीं किया जाता है तो अर्थशास्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्रता मिल जायगी, व इसका दुरुपयोग कर सकते हैं तथा ऐसी बातों को अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ला सकते हैं जिनका अर्थशास्त्र से कोई भी सम्बन्ध नहीं। दूसरे, यद्यपि अर्थशास्त्र की समस्याओं को भली प्रकार से समझने के लिए अन्य सामाजिक शास्त्रों (जैसे समाजशास्त्र, इतिहास, राजनीति, मनोविज्ञान) का अध्ययन आवश्यक है, तथापि इसके साथ ही अर्थशास्त्र के विद्यार्थी का अपने अध्ययन के आधार के लिए परिभाषा का होना आवश्यक है।

अर्थशास्त्र की परिभाषा
(DEFINITION OF ECONOMICS)

अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में बहुत मतभेद पाया जाता है। अतः प्रो० केंज (J N Keynes) को कहना पड़ा कि "राज्य अर्थ-व्यवस्था ने परिभाषाओं से अपना गला घोट लिया है।"[2] ज्यूथन ((Zuethen) के शब्दों में, "अर्थशास्त्र एक अपूर्ण विज्ञान (unfinished science है।"[3] उसकी सीमाएँ अभी पूर्णतया निश्चित नहीं हो पायी हैं, उनका बराबर विकास हो रहा है। अतः ऐसी स्थिति में अर्थशास्त्र की परिभाषा में एक सीमा तक अन्तर पाया जाना स्वाभाविक है, क्योंकि किसी भी शास्त्र की परिभाषा उसके क्षेत्र तथा उसकी विषय-सामग्री पर निर्भर करती है।

अर्थशास्त्र की बहुत अधिक परिभाषाओं की कठिनाई से बचने तथा अध्ययन की सुविधा के लिए अर्थशास्त्र की परिभाषाओं को निम्नलिखित चार वर्गों में बाँटा जा सकता है

(१) धन-केन्द्रित परिभाषाएँ (Wealth-centred Definitions)—एडम स्मिथ, ज बी से, वाकर, इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने ऐसी परिभाषाएँ दी जिनमें 'धन' पर बहुत जोर दिया गया।

(२) कल्याण-केन्द्रीय परिभाषाएँ (Welfare-centred Definitions)—मार्शल, पीगू, केनन, इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने ऐसी परिभाषाएँ दी जिनमें मनुष्य के 'भौतिक कल्याण' या 'आर्थिक कल्याण' पर बहुत जोर दिया गया।

(३) सीमितता-केन्द्रित परिभाषाएँ (Scarcity-centred Definitions)—रोबिन्स तथा कुछ अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने ऐसी परिभाषाएँ दी जिनमें साधनों की सीमितता से प्रभावित होने वाले मानव व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

(४) विकास-केन्द्रित परिभाषाएँ (Growth-centred Definitions)—प्रो० रोबिन्स की परिभाषा (१९३२) के बाद से अर्थशास्त्र के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ, अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार, कुल आय (अर्थात् राष्ट्रीय आय), तथा अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास से सम्बन्धित नयी विषय-सामग्री में बहुत वृद्धि हुई। ये बातें रोबिन्स की परिभाषा में शामिल नहीं हो पाती थीं, इसलिए कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों [जैसे प्रो० सेम्युलसन (Samuelson)] ने ऐसी परिभाषाएँ दी जिनमें आर्थिक विकास (अर्थात् अर्थव्यवस्था के साधनों में विकास) पर भी जोर दिया गया।

उपर्युक्त मुख्य परिभाषाओं के अतिरिक्त, भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त (retired) प्रो० जे के मेहता (J K Mehta) ने एक परिभाषा दी है। इसमें 'वास्तविक सुख' को प्राप्त करने के लिए आवश्यकताओं को न्यूनतम करके,

---

[1] "Economics is what economists do" —*Jacob Viner*

[2] "Political economy is said to have strangled itself with definitions" —J N Keynes *Scope and Method of Political Economy*, p 153

[3] "Economics is an unfinished science" —F Zuethen, *Economic Theory and Method*, p 3.

अन्त में उनको समाप्त करने के लिए बताया गया है, ऐसी परिभाषा को 'आवश्यकताविहीनता-केन्द्रित परिभाषा' (Wantlessness-centred Definition) कहा जा सकता है। प्रो० मेहता की परिभाषा की विवेचना इस अध्याय के अन्त में अलग से एक परिशिष्ट (appendix) में दी गयी है।

अब हम प्रत्येक वर्ग की परिभाषाओं की अलग-अलग विवेचना करते हैं।

'धन-केन्द्रित' परिभाषाएं
(WEALTH CENTRED DEFINITIONS)

'धन परिभाषाएं' तथा उनकी व्याख्या—प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान (Science of Wealth) कहकर परिभाषित किया। अर्थशास्त्र के जन्मदाता एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक का नाम 'राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज' (An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations) रखा। अतः एडम स्मिथ के अनुसार, 'अर्थशास्त्र राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज से सम्बन्धित है।'[10] इसी प्रकार फ्रांसीसी लेखक जे. बी. से (J B Say) के अनुसार, 'अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का अध्ययन करता है।'[11] अमरीकी अर्थशास्त्री वाकर (Walker) के अनुसार, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र या अर्थशास्त्र ज्ञान के उस भाग का नाम है जिसका सम्बन्ध धन से है।'[12] इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इस युग में धन पर विशेष बल दिया गया।

'धन-केन्द्रित' परिभाषाओं की आलोचनाएं (Criticism)

ये परिभाषाएं दोषपूर्ण थीं और इनकी तीव्र आलोचनाएं हुईं

(१) इन परिभाषाओं में धन पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया, यहां तक कि धन को एक साध्य (goal or end) मान लिया गया। परन्तु धन की प्राप्ति साध्य नहीं बल्कि साधन है जिसकी सहायता से मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। धन पर अत्यधिक जोर देने के कारण कारलाइल (Carlyle), रस्किन (Ruskin), आदि विद्वानों ने अर्थशास्त्र को 'कुबेर की विद्या' (Gospel of Mammon), 'घृणित विज्ञान' (Dismal Science), 'रोटी-मक्खन का शास्त्र' (Bread and Butter Science) कहकर कड़ी आलोचनाएं कीं।

(२) एडम स्मिथ ने एक 'आर्थिक मनुष्य' (Economic Man) की कल्पना कर डाली। उसके अनुसार मनुष्य धन की प्रेरणा व अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर ही कार्य करता है तथा उसकी स्वार्थसिद्धि से सामूहिक हित में भी वृद्धि होती है परन्तु ऐसा सोचना गलत है। 'वास्तविक मनुष्य' धन की प्रेरणा के अतिरिक्त अन्य भावनाओं (जैसे—दया, प्रेम, इत्यादि) से भी प्रेरित होता है तथा व्यावहारिक जीवन में व्यक्तिगत हितों तथा सामूहिक हितों में प्रायः विरोध पाया जाता है।

(३) ये परिभाषाएं अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत संकुचित कर देती हैं। प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने धन के अन्तर्गत केवल भौतिक पदार्थों (material goods) को ही शामिल किया, परन्तु सेवाओं (services), जैसे—डाक्टर, वकील, अध्यापक, इत्यादि की सेवाओं को धन के अन्तर्गत नहीं माना जो कि अनुचित था। इसके दो परिणाम हुए: प्रथम, अर्थशास्त्र को अच्छी निगाह से नहीं देखा गया, दूसरे, धन के संकुचित (narrow) अर्थ लेने के कारण अर्थशास्त्र का क्षेत्र भी संकुचित हो गया।

उपर्युक्त दोषों के कारण १९वीं शताब्दी के अन्त में इन परिभाषाओं का त्याग किया गया।

'कल्याण-केन्द्रित' परिभाषाएं
(WELFARE-CENTRED' DEFINITIONS)

मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने १९वीं शताब्दी के अन्त में अर्थशास्त्र को बदनामी से बचाकर एक आदर का स्थान दिया। उन्होंने बताया कि धन साध्य (end) नहीं है (जैसा कि

---

[10] "Economics is a subject concerned with an enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations."
—Adam Smith

[11] "Economics is the science which treats of wealth."
—J. B. Say

[12] "Political Economy or Economics is the name of that part of knowledge which relates to wealth."
—F. A. Walker, *Political Economy*, 1883.

प्राचीन अर्थशास्त्री सोचते थे), बल्कि वह साधनमात्र (means) है जिसकी सहायता से मानव कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार, मार्शल ने धन पर से जोर हटाकर *'मनुष्य के आर्थिक कल्याण'* (economic welfare) पर अधिक जोर दिया। वास्तव में, मार्शल अर्थशास्त्र को 'सामाजिक उन्नति का एक यन्त्र' (an engine of social betterment) बनाकर उसे एक आदर का स्थान देना चाहते थे। मार्शल द्वारा अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार है -

> *"अर्थशास्त्र मानव जीवन के सामान्य व्यवसाय का अध्ययन है। इसमें व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्रियाओं के उस भाग की जाँच की जाती है जिसका भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति और उपयोग से बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है।"*[13]

मार्शल की परिभाषा के बाद इससे मिलती-जुलती कई परिभाषाएँ दी गयीं। प्रो० केनन के अनुसार 'राजनीतिक अर्थशास्त्र का उद्देश्य उन सामान्य कारणों की व्याख्या करना है जिन पर मनुष्य का भौतिक कल्याण निर्भर है'।[14] प्रो० पीगू ने अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी है, "हमारी जाँच का क्षेत्र सामाजिक कल्याण के उस भाग तक सीमित हो जाता है जिसको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से द्रव्य-रूपी पैमाने के साथ सम्बन्धित किया जा सकता है।"[15]

संक्षेप में, मार्शल, पीगू, केनन, इत्यादि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र 'भौतिक कल्याण' (material welfare) का अध्ययन है।

मार्शल की परिभाषा की व्याख्या

मार्शल की परिभाषा का विश्लेषण करने पर निम्न विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं

(१) *मार्शल ने धन की अपेक्षा मनुष्य तथा मनुष्य के कल्याण पर अधिक जोर दिया।* मार्शल के शब्दों में, "इस प्रकार, यह (अर्थशास्त्र) एक ओर तो धन का अध्ययन है और दूसरी ओर, जोकि अधिक महत्त्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।"[16] (२) अर्थशास्त्र में सामाजिक (social), सामान्य (Normal) तथा वास्तविक (Real) मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः मार्शल ने अर्थशास्त्र के सामाजिक विज्ञान (*Social Science*) होने पर जोर दिया। (३) अर्थशास्त्र में मनुष्य-जीवन की साधारण व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इसका अर्थ उन क्रियाओं से लगाया जाता है जो धन के उत्पादन, विनिमय, उपभोग तथा वितरण से सम्बन्धित हैं।

मार्शल की परिभाषा (या 'कल्याण-केन्द्रित' परिभाषाओं) की आलोचना

मार्शल, पीगू, केनन, इत्यादि अर्थशास्त्रियों की 'कल्याण' परिभाषाओं की कड़ी आलोचनाएँ, मुख्यतः रोबिन्स द्वारा, की गयीं जो निम्नलिखित हैं

(१) ये परिभाषाएँ *'श्रेणी-विभाजक'* (*Classificatory*) हैं, *'विश्लेषणात्मक'* (*Analytical*) नहीं।

(अ) मार्शल ने अर्थशास्त्र के अध्ययन को केवल भौतिक साधनों (material resources) की प्राप्ति तथा उपभोग तक ही सीमित रखा। परन्तु साधन अभौतिक (non material) भी होते हैं, जैसे सेवाएँ (services)। वकील, डाक्टर, मजदूर, इत्यादि, अपनी सेवाओं द्वारा ही धन प्राप्त करते हैं और इन सेवाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। अतः रोबिन्स के अनुसार साधनों का भौतिक और अभौतिक वर्गीकरण (classification) अनुचित है।

---

[13] "Economics is a study of mankind in the ordinary business of life it examines that part of individual and social action which is most closely connected with the attainment and with the use of *material requisites of well being*"
— Marshall, *Principles of Economics*, p 1.

[14] "The aim of Political Economy is the explanation of *the general causes* on which the material welfare of human beings depends" — Cannan *Wealth*, p 17

[15] "The range of our enquiry becomes restricted to that part of social welfare which can be brought directly or indirectly into relationship with the measuring rod of money"

[16] Thus, it (*i e* Economics) is on the one side, a study of wealth, and on the other and more important side, a part of the study of man" — *Marshall, Economics of Industry*, p. 1.

(ब) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। परन्तु मनुष्य के कार्यों को आर्थिक तथा अनार्थिक क्रियाओं में बाँटना अनुचित तथा असम्भव है।[17] रोबिन्स के अनुसार केवल धन से सम्बन्धित होने या न होने से ही कोई क्रिया आर्थिक या अनार्थिक नहीं हो जाती है।[18]

(स) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र मनुष्य के साधारण व्यवसाय का अध्ययन है। परन्तु क्रियाओं को इस प्रकार 'साधारण व्यवसाय' तथा 'असाधारण व्यवसाय' में बाँटना अनुचित है। 'असाधारण व्यवसाय' में मनुष्य की कौन सी क्रियाएँ आती हैं और उनका अर्थशास्त्र में अध्ययन क्यों नहीं किया जाता ?

(२) रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र का कल्याण से सम्बन्ध स्थापित करना ठीक नहीं है। प्रथम, बहुत-सी क्रियाएँ, जैसे शराब तथा अन्य मादक वस्तुओं का उत्पादन तथा उपभोग, मानव कल्याण के लिए हितकर नहीं है परन्तु फिर भी इनका अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। दूसरे, मानव कल्याण एक मनोवैज्ञानिक (psychological) विचार है जो प्रत्येक व्यक्ति या एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध में समय समय पर परिवर्तित होता रहता है, उसे परिमाणात्मक (quantitatively) मापा नहीं जा सकता, कल्याण को मापने के लिए द्रव्य रूपी पैमाना अपर्याप्त है।

(३) अर्थशास्त्र उद्देश्यों (ends) के प्रति तटस्थ (neutral) है। अर्थशास्त्र का कल्याण के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ यह हो जाता है कि अर्थशास्त्र को कार्यों की अच्छाई तथा बुराई के सम्बन्ध में निर्णय (judgment) देना होगा, दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक विज्ञान (Normative Science) हो जाता है। परन्तु रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान है जो कि जैसी स्थिति है उसका वैसा ही अध्ययन करता है, वह अच्छाई या बुराई के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं दे सकता है, अच्छाई या बुराई बताने का कार्य तो नीतिशास्त्र का है। अतः रोबिन्स के अनुसार, "अर्थशास्त्र का सम्बन्ध चाहे किसी से भी हो, इतना निश्चय है कि इसका सम्बन्ध भौतिक कल्याण के कारणों से नहीं है।"*

(४) अर्थशास्त्र केवल एक सामाजिक विज्ञान (Social Science) ही नहीं, बल्कि मानव विज्ञान (Human Science) है। मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है एवं इसका क्षेत्र समाज के अन्दर रहने वाले मनुष्यों के आर्थिक कार्यों तक ही सीमित है। परन्तु रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र एक मानव विज्ञान है और इसमें सभी मनुष्यों का अध्ययन होता है, चाहे वे समाज के अन्दर रहते हों या बाहर। अर्थशास्त्र में कई नियम (जैसे उपयोगिता ह्रास नियम) सभी व्यक्तियों पर लागू होते हैं, चाहे वे समाज के बाहर रहते हों या अन्दर।

(५) अर्थशास्त्र का क्षेत्र अधिक संकुचित (narrow) हो जाता है। (अ) 'कल्याण' परिभाषाएँ वर्गकारिणी (classificatory) हैं, अर्थात् इनमें एक प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जबकि दूसरी प्रकार की क्रियाएँ (जैसे—अभौतिक साधनों की प्राप्ति तथा उपभोग, असाधारण क्रियाएँ, अनार्थिक क्रियाएँ) छोड़ दी जाती हैं। (ब) इसके अतिरिक्त आर्थिक क्रियाओं को द्रव्य-रूपी पैमाने से मापने के कारण 'वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था' (Barter Economy) की क्रियाएँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र से छूट जाती हैं। इस प्रकार 'कल्याण' परिभाषाएँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक सीमित कर देती हैं।

---

[17] एक व्यक्ति की एक ही क्रिया एक समय में आर्थिक तथा दूसरे समय में अनार्थिक हो सकती है। उदाहरणार्थ, कवि सम्मेलन में एक कवि की कविता पढ़ने की क्रिया आर्थिक हो जाती है क्योंकि उसको कविता-पाठ के लिए धन के रूप में पुरस्कार मिलता है। परन्तु, यदि वह वह कविता मित्रों के बीच सुनाता है तो उसकी क्रिया अनार्थिक हो जाती है।

[18] अर्थशास्त्र में सीमित साधनों (धन तथा समय) से प्रभावित होने वाले मानव व्यवहार (अर्थात् मानव व्यवहार के चुनाव सम्बन्धी पहलू) का अध्ययन किया जाता है।

* "Whatever Economics is concerned with, it is not concerned with the causes of material welfare as such."

निष्कर्ष (Conclusion)—यद्यपि मार्शल की परिभाषा सरल है परन्तु वह तार्किक दृष्टि से (logically) दोषपूर्ण है और अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार (scientific foundation) को कमजोर करती है।

'सीमितता-केन्द्रित' परिभाषाएँ
('SCARCITY-CENTRED' DEFINITIONS)

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा

प्रो० रोबिन्स[20] ने कल्याण परिभाषाओं के दोषों को बताते हुए न तो धन पर जोर दिया और न मनुष्य के कल्याण या हित पर, बल्कि उन्होंने मनुष्य की *असीमित आवश्यकताओं* का सीमित साधनों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अर्थशास्त्र के पुराने ढांचे को, जो कि धन तथा भौतिक कल्याण पर टिका हुआ था, तोड़कर अपनी परिभाषा एक नये दृष्टिकोण से दी जो इस प्रकार है "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें साध्यों (ends) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों से सम्बन्धित मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।[21]"

रोबिन्स की परिभाषा के बाद अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियों (जैसे फ्रीडमेन) ने रोबिन्स से मिलती-जुलती परिभाषाएँ दीं।

रोबिन्स की परिभाषा की व्याख्या

रोबिन्स की परिभाषा के निम्न चार मूल तत्त्व हैं :

(१) 'साध्य' (Ends) का तात्पर्य आवश्यकताओं से है। मनुष्य के साध्य अर्थात् आवश्यकताएं अनन्त और असीमित हैं। (२) **साधन सीमित हैं।** यद्यपि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं परन्तु उनकी पूर्ति के लिए मनुष्य के पास साधन (अर्थात् समय तथा धन) सीमित हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्यों को आवश्यकताओं के बीच चुनाव करना पड़ता है। ध्यान रहे कि साधनों के सीमित होने का अर्थ है कि वे मांग की तुलना में सीमित हैं, निरपेक्ष (absolute) रूप में नहीं।[22] (३) **साधनों के वैकल्पिक प्रयोग** (Alternative Uses)। हमारे साधन केवल सीमित ही नहीं हैं, बल्कि उनको कई प्रयोगों में उपयोग किया जा सकता है। अतः साधन या वस्तु के प्रयोग के सम्बन्ध में *चुनाव की आर्थिक समस्या सदा ही हमारे सामने बनी रहती है।* (४) **साध्यों या आवश्यकताओं का भिन्न-भिन्न महत्त्व होता है।** मनुष्य अपनी तीव्र आवश्यकताओं की पूर्ति पहले करने की चेष्टा करता है। अतः आवश्यकताओं की तीव्रता में भिन्नता होने के कारण उनके बीच चुनाव करने में सहायता मिलती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि

(1) असीमित आवश्यकताओं (या साध्यों) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों के बीच मानव व्यवहार (human behaviour) का रूप 'चुनाव करने' (choice-making) या 'निर्णय करने' (decision-taking) का होता है। इस 'चुनाव करने की क्रिया' (choice making) को रोबिन्स ने 'आर्थिक समस्या' (economic problem) कहा है और बताया है कि इसी 'आर्थिक-समस्या' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। दूसरे शब्दों में, *अर्थशास्त्र में उस मानव*

---

[20] प्रो० रोबिन्स ने १९३२ में अपनी पुस्तक 'An Essay on the Nature and Significance of Economic Science' में अर्थशास्त्र की परिभाषा एक नए दृष्टिकोण से दी।

[21] "Economics is the science which studies *human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses.*" —*L. Robbins*

[22] उदाहरणार्थ सड़े हुए अण्डों की संख्या बहुत कम होती है परन्तु वे सीमित नहीं होते क्योंकि उनकी मांग शून्य है, जबकि अच्छे अण्डों की संख्या बहुत अधिक होने पर भी वे सीमित होते हैं, क्योंकि उनकी मांग बहुत अधिक होती है।

व्यवहार का अध्ययन होता है जो कि 'सीमित साधनों के वितरण' (allocation of scarce resources) से सम्बन्धित है।

ध्यान रहे कि 'आर्थिक समस्या तब तक उत्पन्न नहीं हो सकती जब तक कि उपर्युक्त चारों बातें एकसाथ मौजूद न हों। रोबिन्स, फ्रीडमेन, इत्यादि अर्थशास्त्री 'आर्थिक समस्या' तथा 'टेक्नोलोजीकल समस्या' में अन्तर को स्पष्ट करते हैं। फ्रीडमेन के शब्दों में, "यदि साधन सीमित न हों तो कोई समस्या नहीं होगी, ऐसी स्थिति निर्वाण या मुक्ति की होगी। यदि साधन सीमित हों और साध्य केवल एक हो तो साधनों के प्रयोग की समस्या 'टेक्नोलोजीकल समस्या' होगी।"[23]

(ii) प्रभावपूर्ण तरीके से, 'चुनाव' करने के लिए किसी न किसी प्रकार की मूल्यांकन क्रिया (pricing process) का होना जरूरी है। प्राप्य साधनों (available resources) का मूल्यांकन (valuation) करना पड़ेगा ताकि उनका प्रयोग अत्यन्त आवश्यक उद्देश्यों के लिए ही सीमित किया जा सके। यह मूल्यांकन क्रिया (pricing process) ही अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री है।[24]

इस प्रकार एक अर्थशास्त्री साध्यों के बीच चुनाव के अभिप्रायों (implications of choice) का अध्ययन करता है। उसका विषय सीमितता (scarcity) है। अर्थशास्त्र की समस्या केवल 'किफायत' (economising) की समस्या है।[25]

सेम्युलसन, फ्रीडमेन[26] जैसे अनेक विख्यात आधुनिक अर्थशास्त्री रोबिन्स द्वारा स्पष्ट की गयी 'आर्थिक समस्या' अर्थात् 'चुनाव की समस्या' को ही मान्यता देते हैं।

रोबिन्स की परिभाषा की विशेषताएँ (Characteristics)

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र के विषय को स्पष्ट कर दिया और इनकी परिभाषा की सहायता से ज्ञान के भण्डार में से अर्थशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान को पहचानना आसान हो जाता है। इनकी परिभाषा की निम्न मुख्य विशेषताएँ हैं

(१) प्रो० रोबिन्स ने अर्थशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत कर दिया क्योंकि इनकी परिभाषा के अनुसार, 'मानव व्यवहार के चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन अर्थशास्त्र का क्षेत्र है। इस प्रकार रोबिन्स ने 'सामाजिक व्यवहार' (social behaviour) से 'बल' (emphasis) हटाकर 'मानव व्यवहार' (human behaviour) पर लगाया। (२) रोबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक (analytical) है, श्रेणी विभाजक (classificatory) नहीं। रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को 'आर्थिक' और 'अनार्थिक' क्रियाओं तथा 'भौतिकवादी' आधार से मुक्त कर दिया। उन्होंने बताया कि अर्थशास्त्र में मनुष्यों की विशेष क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जाता है बल्कि प्रत्येक क्रिया के 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन किया जाता है। (३) रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान (positive science) बनाया, अर्थात् अर्थशास्त्री उद्देश्यों के अच्छे या बुरे होने से

---

[23] "If the means are not scarce, there is no problem at all, there is Nirvana. If the means are scarce but there is only a single end, the problem of how to use the means is a technological problem." —Milton Friedman, *Price Theory A Provisional Text*, p 6

[24] "In order to enable us to choose effectively, there must be some kind of a pricing process. Values must be set upon the available resources so as to restrict their use to the most urgent purpoes. This pricing process alone forms the subject matter of economics."

[25] "The economist thus studies the implications of choice between different ends. His subject is scarcity. The problem of economics is simply the problem of 'economising'."

[26] फ्रीडमेन के शब्दों में, "अर्थशास्त्र इस बात का विज्ञान है कि एक विशेष समाज अपनी आर्थिक समस्याओं को कैसे हल करता है। एक आर्थिक समस्या उस समय मौजूद होती है जबकि सीमित साधन वैकल्पिक साध्यों (alternative ends) की सन्तुष्टि में लगाये जाते हैं।"

"Economics is the science of how a particular society solves its economic problems. An economic problem exists whenever *scarce* means are used to satisfy *alternative* ends."

कोई सम्बन्ध नहीं रखता। अतः कल्याण अर्थशास्त्र (Welfare Economics) रोबिन्स की परिभाषा के बाहर है। (४) चूँकि रोबिन्स अर्थशास्त्र को केवल 'वास्तविक विज्ञान' मानते हैं, इसलिए इनकी परिभाषा का सार्वभौमिक प्रयोग (universal application) किया जा सकता है। यह परिभाषा पूँजीवादी तथा साम्यवादी दोनों में सत्य है।

रोबिन्स की परिभाषा की आलोचना

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा भी त्रुटियों से रहित नहीं है। डरबिन (Durbin), वूटन (Wootton) फ्रेजर (Fraser) बेवरिज, इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने मार्शल के सिद्धान्तों की बड़ी रक्षा और रोबिन्स की परिभाषा की कड़ी आलोचना की है। रोबिन्स की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं

(१) अर्थशास्त्र का क्षेत्र एक साथ अधिक विस्तृत तथा अधिक संकीर्ण हो जाता है (The scope of Economics becomes at once too wide and too narrow)। यह आलोचना रोबर्टसन (Robertson) द्वारा की गयी है। एक ओर तो रोबिन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक व्यापक बना दिया है। रोबिन्स के अनुसार, सीमित साधनों में समय भी आ जाता है। अतः समय के बीच चुनाव की क्रिया भी अर्थशास्त्र में आ जाती है। उदाहरणार्थ, यदि एक विद्यार्थी यह सोचता है कि वह कक्षा में अध्ययन के लिए बैठे या फुटबाल का मैच देखे या कोई सन्त यह निश्चय करे कि वह कृष्ण की पूजा करे या राम की पूजा, तो ये क्रियाएँ भी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आ जाती हैं जबकि इनका सम्बन्ध अर्थशास्त्र से नहीं है। अतः मार्शल की परिभाषा के कारण द्रव्य रूपी पैमाने के द्वारा अर्थशास्त्र के अध्ययन में जो निश्चितता का लाभ है वह इस परिभाषा द्वारा नहीं हो सकता।

दूसरी ओर रोबिन्स की परिभाषा अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत सीमित भी कर देती है। बेरोजगारी की समस्या संगठन से सम्बन्धित दोषों (Organizational defects) के कारण तथा जनसंख्या के आधिक्य के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। रोबिन्स की परिभाषा के अनुसार बेरोजगारी की समस्या का अध्ययन अर्थशास्त्र में नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह समस्या साधन (मनुष्य) की सीमितता के कारण उत्पन्न नहीं होती, बल्कि बाहुल्यता का परिणाम है। इसी प्रकार 'धनी समाज' (affluent society like America) में कई आर्थिक समस्याएँ साधनों की प्रचुरता (abundance) के कारण उत्पन्न होती हैं, साधनों की सीमितता के कारण नहीं, जैसे 'बड़े पैमाने पर अत्यधिक उपभोग' (high mass consumption)। स्पष्ट है कि उपर्युक्त महत्वपूर्ण समस्याएँ अर्थशास्त्र के बाहर हो जायेंगी यदि रोबिन्स की परिभाषा को स्वीकार किया जाये।

(२) रोबिन्स ने अर्थशास्त्र के सामाजिक स्वभाव (social character) पर उचित बल (emphasis) नहीं दिया। रोबिन्स के अनुसार समाज से बाहर रहने वाले व्यक्तियों की क्रियाओं का भी अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र की आवश्यकता तभी होती है जबकि आर्थिक समस्याएँ सामाजिक महत्त्व धारण कर लेती हैं और व्यक्तियों के एक समूह की क्रियाएँ दूसरे समूह की क्रियाओं को प्रभावित करती हैं।

(३) अर्थशास्त्र उद्देश्यों के बीच तटस्थ नहीं है (Economics is not neutral between ends)। (अ) मार्शल के समर्थकों जैसे वूटन (Wootton), फ्रेजर (Fraser) इत्यादि का कहना है कि अर्थशास्त्र का कल्याण से सम्बन्ध काट देना उचित नहीं है क्योंकि 'मानवीय कल्याण' ही अन्तिम लक्ष्य है।

(ब) कुछ आलोचकों के अनुसार यद्यपि रोबिन्स अर्थशास्त्र का सम्बन्ध कल्याण के साथ स्थापित करने के एकदम विरुद्ध हैं परन्तु उनकी परिभाषा में कल्याण का विचार छिपा हुआ (implicit) है। सीमित साधनों का अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस प्रकार से प्रयोग किया जाता है कि 'अधिकतम उपयोगिता' अर्थात् 'अधिकतम सन्तुष्टि' मिले जिसका अभिप्राय है

कि 'अधिकतम कल्याण' मिले। इस प्रकार प्रो० रोबिन्स की परिभाषा में 'कल्याण का विचार' चोर दरवाजे (back door) से प्रवेश करता है।

(३) रोबिन्स की परिभाषा एक अर्थशास्त्री के व्यक्तित्व (personality) को दो भागों में बाँट देती है—'अर्थशास्त्री के रूप में' तथा 'नागरिक (citizen) के रूप में।' जब वह निर्णय (value judgment) देता है तब वह एक नागरिक के रूप में ऐसा करता है, परन्तु जब वह निर्णय नहीं देता तब वह एक अर्थशास्त्री के रूप में ऐसा करता है। परन्तु एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को इस प्रकार विभाजित (split) नहीं किया जा सकता।

(४) अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध विज्ञान (pure science) ही नहीं बल्कि कला (art) भी है। रोबिन्स के हाथों में अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध विज्ञान हो जाता है जिसका उद्देश्य केवल सिद्धान्त बनाना (tool-making) है। परन्तु अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान को केवल 'सिद्धान्त बनाने वाला' (tool maker) ही नहीं होना चाहिए, बल्कि आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए 'सिद्धान्तों का प्रयोग करने वाला' (tool-user) भी होना चाहिए।

(५) रोबिन्स की परिभाषा का स्थैतिक दृष्टिकोण (static approach) है और वह 'आर्थिक विकास' (economic growth) की समस्या को शामिल नहीं करती। रोबिन्स के अनुसार, 'आर्थिक समस्या' है दिये हुए सीमित साधनों का दिये हुए साध्यों (या आवश्यकताओं) के साथ समायोजन करना। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि सीमितता न हो तो कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न नहीं होगी। परन्तु सीमितता होने पर, मुख्य समस्या साध्यों के साथ दिये हुए साधनों का समायोजन ही नहीं बल्कि साधनों में वृद्धि या विकास करना है ताकि बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके, अर्थात 'आर्थिक विकास' की समस्या रोबिन्स की परिभाषा के अन्दर नहीं आती। स्पष्ट है कि रोबिन्स की परिभाषा का दृष्टिकोण स्थैतिक है, गत्यात्मक (dynamic) नहीं।

निष्कर्ष (Conclusion)—इसमें कोई सन्देह नहीं कि रोबिन्स की परिभाषा में भी दोष हैं परन्तु उनकी परिभाषा के सम्बन्ध में निम्न दो निष्कर्ष महत्वपूर्ण हैं

(१) रोबिन्स की परिभाषा तार्किक (logical) है और वह अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार (scientific foundation) को मजबूत करती है। वह 'आर्थिक समस्या' (अर्थात् 'मानव व्यवहार के चुनाव करने के पहलू') पर ध्यान केन्द्रित (focus) करती है।

(२) आधुनिक युग में रोबिन्स की परिभाषा अपर्याप्त (inadequate) मानी जाती है क्योंकि उनकी परिभाषा के बाद से अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री (subject matter) में बहुत परिवर्तन हो चुका है, आधुनिक अर्थशास्त्री रोजगार, आय तथा आर्थिक विकास पर अधिक जोर देते हैं। इस दृष्टि से रोबिन्स की परिभाषा को सुधारते हुए अर्थशास्त्र की एक आधुनिक परिभाषा निम्न शब्दों में दी जा सकती :

> अर्थशास्त्र सीमित साधनों के वितरण का तथा रोजगार, आय और आर्थिक विकास के निर्धारक तत्वों (determinants) का अध्ययन है।[11]

मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं की तुलना
(COMPARISON OF THE DEFINITIONS OF MARSHALL AND ROBBINS)

मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं में कई मुख्य अन्तर हैं, परन्तु दोनों की परिभाषाएँ कुछ दृष्टियों से मिलती-जुलती भी हैं। पहले हम 'समानता की बातों' को लेंगे और उसके बाद 'अन्तर की बातों' को लेंगे।

समानता की बातें (Points of Similarity)

(१) मार्शल तथा रोबिन्स दोनों अर्थशास्त्र को एक विज्ञान मानते हैं।

(२) मार्शल ने 'धन' शब्द का प्रयोग किया है जबकि रोबिन्स ने सीमित साधनों का। एक सीमा तक दोनों का अर्थ एक ही है क्योंकि सीमितता धन का मुख्य गुण है, परन्तु रोबिन्स सीमित साधन में 'समय' को भी शामिल करते हैं।

[11] Economics is the study of the allocation of scarce resources and of the determinants of employment, income and economic growth.

(३) रोबिन्स का कहना कि सीमित साधनों का प्रयोग किफायत (या मितव्ययता) से होना चाहिए ताकि अधिकतम उत्पादन व अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके, मार्शल ने इसको अधिकतम कल्याण कहा।

अन्तर की बातें (Points of Difference)

(१) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में धन से सम्बन्धित क्रियाओं (अर्थात, आर्थिक क्रियाओं) का अध्ययन किया जाता है। इसका अर्थ है उन क्रियाओं का अध्ययन जो 'धन कमाने' और 'धन व्यय करने' से सम्बन्धित होती हैं।

रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र में मानव-व्यवहार के चुनाव करने के पहलू का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य के साधन सीमित हैं तथा आवश्यकताएँ असीमित हैं, इसलिए वह अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता, उसे आवश्यकताओं के बीच चुनाव करना पड़ता है, अथवा उन आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से 'साधनों (धन तथा समय) के प्रयोग के बीच चुनाव करना' पड़ता है। इस 'चुनाव करने की क्रिया' को रोबिन्स ने 'आर्थिक पहलू' या 'आर्थिक समस्या' कहा और बताया कि इसी आर्थिक समस्या का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है।

रोबिन्स के अनुसार केवल धन से सम्बन्धित हो जाने से ही कोई क्रिया आर्थिक क्रिया नहीं हो जाती है। उनके अनुसार प्रत्येक क्रिया के चुनाव करने के पहलू का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है चाहे उस क्रिया का सम्बन्ध धन से हो या न हो।[२८]

(२) मार्शल की परिभाषा वर्गकारिणी (*classificatory*) है। मार्शल ने मनुष्य की क्रियाओं को भौतिक तथा अभौतिक, आर्थिक तथा अनार्थिक, साधारण जीवन व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाओं तथा असाधारण क्रियाओं में बाँटा और उनके अनुसार पहली प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है, जबकि दूसरी प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जाता है।

रोबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक (*analytical*) है। रोबिन्स ने, मार्शल की भाँति, क्रियाओं को विभिन्न वर्गों में नहीं बाँटा। रोबिन्स के अनुसार मानव व्यवहार के 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र में उस मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो सीमित साधनों से प्रभावित होता है, रोबिन्स ने सीमित साधनों में भूमि, श्रम व पूँजी और इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं (अर्थात धन) के अतिरिक्त 'समय' को भी शामिल किया।

(३) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान (*social science*) है। मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में केवल उन मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जो कि समाज में रहते हों।

रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र एक मानव विज्ञान (*human science*) है। रोबिन्स के अनुसार समाज के अन्दर या समाज के बाहर रहने वाले सभी व्यक्तियों की क्रियाओं के 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। रोबिन्स अर्थशास्त्र को 'सामाजिक विज्ञान' के स्थान पर 'मानव विज्ञान' कहते हैं।

(४) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान (positive science) ही नहीं बल्कि आदर्शात्मक विज्ञान (normative science) भी है, तथा वह एक कला (art) भी है। चूँकि मार्शल ने अर्थशास्त्र को एक आदर्शात्मक विज्ञान भी माना है इसलिए उन्होंने अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के भौतिक (या आर्थिक) कल्याण से स्थापित किया और बताया कि अर्थशास्त्र का उद्देश्य मानव कल्याण में वृद्धि करना है।

---

[२८] ऐसा इसलिए है कि रोबिन्स ने साधन के अन्तर्गत 'समय' को भी शामिल किया। अतः 'समय के बीच चुनाव की क्रिया' अर्थात् 'समय को विभिन्न प्रयोगों में बाँटने की क्रिया' (चाहे समय का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से धन कमाने के लिए किया जा रहा है या नहीं) भी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आयेगी।

रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान है, वह आदर्शात्मक विज्ञान नही है और एक कला भी नही है। चूंकि रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को केवल एक वास्तविक विज्ञान माना इसलिए उन्होंने बताया कि अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ (neutral towards ends or goals) है, और अर्थशास्त्र का मनुष्य के कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

निष्कर्ष : मार्शल की परिभाषा श्रेष्ठ है या रोबिन्स की ?

वास्तव मे दोनो मे से कोई भी परिभाषा पूर्ण नहीं है, दोनो के कुछ गुण और दोष हैं। दोनो परिभाषाओ की सापेक्षिक स्थिति निम्न विवरण मे स्पष्ट होगी

(i) यद्यपि मार्शल की परिभाषा सरल है परन्तु वह तार्किक दृष्टि से (logically) दोषपूर्ण है और अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को कमजोर करती है।

(ii) रोबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक तथा तार्किक (analytical and logical) है और अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को मजबूत करती है। इस दृष्टि से रोबिन्स की परिभाषा, मार्शल की परिभाषा से, श्रेष्ठ है।

(iii) रोबिन्स की परिभाषा, मार्शल की परिभाषा की तुलना मे, इस दृष्टि से भी श्रेष्ठ है कि रोबिन्स ने स्पष्ट रूप से 'आर्थिक समस्या' (economic problem) अर्थात् 'चुनाव करने के पहलू' को प्रस्तुत किया आधुनिक अर्थशास्त्री इसको मान्यता देते हैं।

अर्थशास्त्र की आधुनिक परिभाषा (Modern Definition of Economics)

'विकास-केन्द्रित' परिभाषा
('GROWTH CENTRED' DEFINITION)

१ प्राक्कथन (Introduction)

किसी भी शास्त्र की परिभाषा उसकी विषय-सामग्री पर निर्भर करती है। रोबिन्स के शब्दो मे, परिभाषा एक शहर की दीवार की भाँति है जो कि शहर के मौजूदा कुल योग (aggregate) को घेरती है।[29] शहर के विकास के साथ दीवार मे परिवर्तन करना पड़ेगा ताकि नयी परिस्थितियों मे शहर के कुल योग को दीवार घेर सके। इसी प्रकार अर्थशास्त्र मे विकास के साथ उसकी परिभाषा मे परिवर्तन होता रहता है ताकि परिभाषा नये विकास को घेर सके अर्थात् उसे शामिल कर सके। एडम स्मिथ की परिभाषा धन-केन्द्रित (*wealth-centred definition*) थी, अर्थशास्त्र मे विकास हुआ और मार्शल ने 'कल्याण केन्द्रित परिभाषा' (*welfare-centred definition*) दी; अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री मे और अधिक विकास हुआ और रोबिन्स ने 'सीमितता-केन्द्रित परिभाषा' (*scarcity-centred definition*) दी। रोबिन्स की परिभाषा (सन् १६३२) के पश्चात् से अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री म बहुत अधिक विकास हो चुका है, विशेषतया 'आर्थिक विकास' (economic growth) म सम्बन्धित विषय-सामग्री मे वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप अब, एक ऐसी परिभाषा की आवश्यकता है जो आर्थिक विकास पर जोर दे और ऐसी परिभाषा को 'विकास-केन्द्रित परिभाषा' (*growth-centred definition*) कहा जा सकता है।

२ रोबिन्स की परिभाषा की अपर्याप्तता तथा विकास-केन्द्रित परिभाषा की आवश्यकता (Inadequacy of Robbins' Definition and the need of growth-centred definition)

मार्शल के बाद रोबिन्स ने अर्थशास्त्र की एक ऐसी परिभाषा दी जिसने साधनो की सीमितता पर जोर दिया। दूसरे शब्दो म, रोबिन्स ने न तो धन पर जोर दिया और न मनुष्य के कल्याण पर, बल्कि उन्होंने सीमित साधनो के असीमित आवश्यकताओ (या साध्यों) के साथ सम्बन्ध पर जोर दिया। इस दृष्टि से रोबिन्स ने अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी

> अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें साध्यो (ends) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनो से सम्बन्धित मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।[30]

[29] "A definition is like the wall of a city "to circumscribe an aggregate already in existence"

[30] "Economics is the science which studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses"

रोबिन्स ने बताया कि साधन सीमित हैं (तथा उनकी सीमितता और बढ़ जाती है क्योंकि उनको कई प्रयोगों में इस्तेमाल किया जा सकता है) तथा आवश्यकताएँ (या साध्य) असीमित हैं, इसलिए मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है और उसे आवश्यकताओं के बीच (उनकी तीव्रता के अनुसार) 'चुनाव करना' (*choice-making* करना) पड़ेगा; अर्थात् आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से उसे अपने 'सीमित साधनों (धन व समय) का वितरण या आवंटन' (*allocation of scarce resources*) करना पड़ेगा। मानव-व्यवहार के इस 'चुनाव करने के पहलू' को अथवा 'सीमित साधनों के वितरण या आवंटन' को रोबिन्स ने 'आर्थिक समस्या' कहा और बताया कि इसी आर्थिक समस्या का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है।

परन्तु रोबिन्स ने केवल यह बताया कि दिये हुए साधनों का दी हुई आवश्यकताओं के साथ समायोजन (adjustment) करके चुनाव की क्रिया करनी पड़ती है। इस प्रकार रोबिन्स ने 'स्थैतिक दृष्टिकोण' (*static view*) लिया, जबकि आर्थिक समस्या का 'गत्यात्मक या प्रावैगिक दृष्टिकोण' (*dynamic view*) लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में, साधनों की सीमितता होने पर मुख्य आर्थिक समस्या केवल दिये हुए साधनों का दी हुई आवश्यकताओं के साथ समायोजन करना ही नहीं, बल्कि भविष्य के लिए 'साधनों का विकास' (*growth of resources*) करना है ताकि बदलती हुई और बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इस प्रकार,

> आर्थिक समस्या केवल दिये हुए 'सीमित साधनों के वितरण या आवंटन' की नहीं है बल्कि 'साधनों के विकास तथा वृद्धि' की है। अतः आधुनिक अर्थशास्त्री आर्थिक विकास, कुल रोजगार तथा कुल आय (या राष्ट्रीय आय) से सम्बन्धित समस्याओं पर अधिक बल देते हैं। रोबिन्स की परिभाषा इन बातों को शामिल नहीं करती है।

२ विकास-केन्द्रित परिभाषा (Growth-centred Definition)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आधुनिक युग में अर्थशास्त्र की एक ऐसी परिभाषा की आवश्यकता है जो न केवल 'सीमित साधनों के वितरण या आवंटन' पर ही ध्यान दे बल्कि 'साधनों के विकास या वर्धन' अर्थात् 'आर्थिक विकास'[11] पर भी ध्यान दे। ऐसी एक परिभाषा अपने शब्दों में[12] हम इस प्रकार दे सकते हैं

> अर्थशास्त्र सीमित साधनों के वितरण (या आवंटन) का तथा रोजगार, आय और आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्वों का अध्ययन है।[13]

विकास-केन्द्रित परिभाषा को दूसरे शब्दों में, के० जी० सेठ (K. G Seth) के अनुसार, इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं—

> "अर्थशास्त्र उस मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है जिसका सम्बन्ध साध्यों के सन्दर्भ में साधनों के परिवर्तनों व विकास से होता है।[14]

नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो० सेम्युलसन (Nobel prize winner *Prof. Samuelson*) ने भी एक विकास-केन्द्रित परिभाषा दी है जो इस प्रकार है

> "अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति और समाज अनेक प्रयोग में आ सकने वाले उत्पादन के सीमित साधनों का चुनाव, एक समयावधि

---

[11] ध्यान रहे कि 'आर्थिक विकास' के साथ प्रायः 'रोजगार' (अर्थात् साधनों का कुल रोजगार), तथा 'आय' (अर्थात् कुल आय या राष्ट्रीय आय) के प्रश्न भी जुड़े रहते हैं।

[12] इस परिभाषा को हम पृष्ठ १५ पर रोबिन्स की परिभाषा के सम्बन्ध में निष्कर्ष न० २ में पहले ही दे चुके हैं।

[13] Economics is the study of the allocation of scarce resources and of the determinants of employment, income and economic growth.

[14] "Economics studies human behaviour concerned with changes and growth in means in relation to ends."

में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में लगाने और उनको समाज में विभिन्न व्यक्तियों और समूहों में उपभोग हेतु, वर्तमान व भविष्य में, बाँटने के लिए किस प्रकार करते हैं, ऐसा वे चाहे द्रव्य का प्रयोग करके करें अथवा इसके बिना करें।[15]

प्रो० सेम्युलसन की परिभाषा के सार (*essence*) को सरल शब्दों में नीचे व्यक्त किया गया है

(i) प्रो० सेम्युलसन भी साधनों की सीमितता को अर्थात् 'मानव-व्यवहार के चुनाव करने के पहलू' को अर्थशास्त्र की केन्द्रीय समस्या मानते हैं।

(ii) उनकी परिभाषा वस्तु विनिमय प्रणाली (*barter system*) के अन्तर्गत, अर्थात् ऐसी प्रणाली जिसमें द्रव्य का प्रयोग नहीं होता, के अन्तर्गत, भी 'चुनाव की समस्या' अथवा 'साधनों के वितरण या आवंटन की समस्या' को शामिल करती है।

(iii) प्रो० सेम्युलसन अपनी परिभाषा में 'आर्थिक विकास' की बात को भी शामिल करते हैं।[16] इस प्रकार इनकी परिभाषा का 'प्रावैगिक' या 'गत्यात्मक' दृष्टिकोण (dynamic view) है जबकि रोबिन्स की परिभाषा का 'स्थैतिक दृष्टिकोण' (static view) है।

४ निष्कर्ष (Conclusion)

अर्थशास्त्र के आधुनिक विकास को देखते हुए विकास-केन्द्रित परिभाषाएँ, अन्य सभी परिभाषाओं की तुलना में, श्रेष्ठ (superior) हैं, तथा निस्सन्देह ये परिभाषाएँ आर्थिक समस्या को सही रूप (correct perspective) में प्रस्तुत करती हैं।

अध्याय १ की परिशिष्ट
[APPENDIX TO CHAPTER 1]

प्रो. जे. के. मेहता द्वारा अर्थशास्त्र की परिभाषा
(PROF J K MEHTA'S DEFINITION OF ECONOMICS)

प्राक्कथन (Introduction)

प्रो० मेहता ने अर्थशास्त्र को एक नया दृष्टिकोण देने का प्रयत्न किया है जो कि पाश्चात्य देशों के अर्थशास्त्रियों से भिन्न है। प्रो० मेहता के विचार भारतीय संस्कृति तथा परम्परा के अनुकूल हैं। प्राचीन काल से ही ऋषियों तथा महात्माओं ने 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्श को हमारे सामने रखा है और आवश्यकताओं को कम से कम करने पर जोर दिया है। प्रो० मेहता ने इसी विचार को आर्थिक शब्दों में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है और बताया है कि अर्थशास्त्र का

[15] "Economics is the study of how men and society *choose* with or without the use of money to employ *scarce* productive resources which could have alternative uses to produce various commodities over time and distribute them for consumption now and in the future among various people and groups in society —*Samuelson*

[16] यह बात उनकी परिभाषा में निम्न वाक्यांशों (phrases) द्वारा स्पष्ट होती है—'एक समयावधि में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन' (to produce various commodities over time) तथा 'उनका वर्तमान व भविष्य में वितरण' (and distribute them for consumption now and in the future)

सम्बन्ध इच्छाओ की सन्तुष्टि से नहीं, वरन् इच्छाओं के अन्त से है, जिससे कि 'इच्छारहित' (wantlessness) अथवा निर्वाण (*nirvan*) की स्थिति को प्राप्त किया जा सके।

प्रो० मेहता द्वारा अर्थशास्त्र की परिभाषा

"अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मानवीय आचरण का इच्छारहित अवस्था म पहुँचने के लिए साधन के रूप में अध्ययन करता है।"[37]

प्रो० मेहता की परिभाषा की व्याख्या

प्रो० मेहता के अनुसार 'अधिकतम सन्तुष्टि' के लक्ष्य की पूर्ति आवश्यकताएँ न्यूनतम रखने से की जा सकती है। प्रो० रोबिन्स की परिभाषा से यह अर्थ निकलता है कि अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है और मानव व्यवहार का लक्ष्य 'अधिकतम सन्तुष्टि' (maximum satisfaction) प्राप्त करना है। परन्तु प्रश्न यह है कि मानव व्यवहार के लक्ष्य को इच्छाएँ अधिक रखकर पूरा किया जा सकता है या कम रखकर। पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों की धारणा है कि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए अधिकतम इच्छाएँ होना आवश्यक है। उनके अनुसार आवश्यकताओं की वृद्धि ही सभ्यता का प्रतीक है। परन्तु प्रो० मेहता इस विचार से बिलकुल सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि अधिकतम आवश्यकताएँ या इच्छाएँ रखने से हमारे 'सुख' (happiness) में कोई वृद्धि नहीं हो सकती। उनके अनुसार अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य 'सन्तुष्टि को अधिकतम करना' (maximisation of satisfaction or utility) नहीं बल्कि 'वास्तविक सुख को अधिकतम करना' (maximisation of real happiness) है। वास्तविक सुख की वृद्धि इच्छाओं को अधिकतम रखने से नहीं, बल्कि कम से कम करने से ही हो सकती है। इसलिए 'इच्छाओं से मुक्ति पाने की समस्या ही आर्थिक समस्या है।'[38]

मेहता की 'सुख' धारणा एवं रोबिन्स की 'सन्तुष्टि' धारणा में भेद है। प्रो० मेहता के विचारों को ठीक प्रकार से समझने के लिए 'सन्तुष्टि' (satisfaction) तथा 'सुख' (happiness) के बीच अन्तर को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। 'सन्तुष्टि' वह अनुभव है जो कि किसी इच्छा या आवश्यकता की तृप्ति के पश्चात् मिलती है। जब तक इच्छा की पूर्ति नहीं होती तब तक कष्ट का अनुभव होता है और जितनी ही वह इच्छा तीव्र होती है उतनी ही अधिक तकलीफ पूर्ति न होने पर अनुभव होती है, किन्तु पूर्ति के पश्चात् उतनी ही अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है। प्रो० मेहता ने इस अनुभव को आनन्द (pleasure) शब्द द्वारा व्यक्त किया है। इसके विपरीत, सुख वह अनुभव है जो उस समय प्राप्त होता है जबकि कोई इच्छा ही न हो। इच्छाओं के बने रहने के कारण मस्तिष्क सन्तुलन की अवस्था में नहीं रहता है क्योंकि किसी इच्छा के उत्पन्न होने ही मनुष्य के मस्तिष्क का सन्तुलन भंग हो जाता है और वह अपने मस्तिष्क के सन्तुलन को पुनः स्थापित करने के लिए इस इच्छा की पूर्ति करने का प्रयत्न करेगा क्योंकि सन्तुलन के भंग होने से कष्ट का अनुभव होता है। इस इच्छा की तृप्ति पर सन्तुलन पुनः स्थापित हो जायेगा और उस कुछ आनन्द (pleasure) प्राप्त होगा। परन्तु यह स्थिति 'सुख' की नहीं होगी क्योंकि एक इच्छा की पूर्ति दूसरी इच्छा को जन्म दे सकती है या पहली इच्छा पुनः उत्पन्न हो सकती है। अतः प्रो० मेहता के अनुसार इच्छारहित अवस्था में, जबकि मस्तिष्क पूर्ण सन्तुलन (complete equilibrium) में होता है, जो अनुभव प्राप्त होता है उसे 'सुख' कहा जाता है। अर्थशास्त्र का लक्ष्य इसी सुख को अधिकतम करना होता है। प्रो० मेहता के शब्दों में, 'सुख' इस तथ्य का ज्ञान है कि मस्तिष्क सन्तुलन में है। 'कष्ट' (pain) इस बात का ज्ञान है कि मस्तिष्क असन्तुलन में है। 'आनन्द' इस बात का ज्ञान है कि असन्तुलन से युद्ध किया जा रहा है और वह कम हो रहा है।[39]

---

[37] "......Economics is a science that studies human behaviour as a means to the end of wantlessness" —Mehta, *Studies in Advanced Economic Theory*, p 11

[38] The problem of getting freedom from wants is regarded as an economic problem" —J K Metha *op cit*, p 14

[39] 'Happiness is then we might say, consciousness of the fact that our mental self is in equilibrium Pain is the consciousness that the self is in disequilibrium Pleasure is the consciousness that disequilibrium is being fought and reduced,' —*Ibid*, p 2

अतः स्पष्ट है कि 'अधिकतम सुख तथा 'अधिकतम इच्छाएँ' पूर्णतया असंगत है, वास्तविक सुख आवश्यकताओं की वृद्धि में नहीं बल्कि उन्हें कम करने में ही है।

प्रो० मेहता के अनुसार, मानव व्यवहार, जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय है, मस्तिष्क की असन्तुलित अवस्था का परिणाम है और मस्तिष्क के असन्तुलित रहने का कारण बाहरी शक्तियों का क्रियाशील होना है। *मानवीय मस्तिष्क का यह नियम है कि वह असन्तुलन को नापसन्द करता है और इसलिए सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है क्योंकि असन्तुलन कष्ट है और उसका निवारण आनन्द।*[40]

प्रो० मेहता ने सन्तुलन या सुख की इस अवस्था को प्राप्त करने के दो तरीके बताये हैं—प्रथम तरीका यह है कि बाहरी शक्तियों का, जो कि असन्तुलन की अवस्था उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है, इस प्रकार से सुधार या समन्वय किया जावे कि वे मस्तिष्क के साथ मेल खायें। यह वही बात है जिसे गोसिन्स ने 'साधनों का प्रयोग' (use of resources) कहा। परन्तु सन्तुलन को प्राप्त करने का यह तरीका निम्न दो बातों से अपूर्ण या सीमित रह जाता है—(i) कोई भी प्रयत्न *'जो किसी वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाता है' दूसरी आवश्यकता को* जन्म दे देता है। उदाहरण के लिए, भूख की तृप्ति आराम करने की इच्छा या आवश्यकता को जन्म दे देती है। (ii) एक ही समय में सारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जा सकती, क्योंकि आवश्यकताएँ असीमित होती हैं। अतः प्रो० मेहता का विचार है कि पूर्ण सन्तुलन केवल बाहरी परिस्थितियों को बदल देने से प्राप्त नहीं किया जा सकता, दूसरे शब्दों में, केवल साधनों के प्रयोग के द्वारा ही पूर्ण सन्तुलन नहीं मिल सकता। दूसरा तरीका इस सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त करने का यह है कि मस्तिष्क को ऐसी अवस्था में रखा जाय कि वह बाहरी *शक्तियों द्वारा प्रभावित न* हो। इस हेतु मस्तिष्क को दबाने (repression) की नहीं, बल्कि 'शिक्षित करने' (educating the mind) की जरूरत है।

अतः प्रो० मेहता के अनुसार 'सुख की स्थिति' अर्थात् 'इच्छारहित स्थिति' को प्राप्त करना ही अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। प्रश्न यह उठता है कि इस स्थिति को कैसे प्राप्त किया जाय? इस सम्बन्ध में प्रो० मेहता ने दो बातें बतायी हैं—प्रथम, मनुष्य को यह विश्वास होना चाहिए कि जीवन का उद्देश्य सुख प्राप्त करना है और यह इच्छाओं से मुक्ति या स्वतन्त्रता पाने से ही प्राप्त हो सकता है। दूसरे, इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें अपने शरीर तथा मस्तिष्क पर नियन्त्रण रखना ही होगा अर्थात् मस्तिष्क को इस अवस्था में रखना होगा कि उस पर बाहरी शक्तियों का प्रभाव न पड़े। प्रो० मेहता ने इस बात पर जोर दिया है कि सुख की स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें इच्छाओं को दबाना नहीं है, बल्कि मस्तिष्क को शिक्षित करना है। प्रो० मेहता के शब्दों में, *कुछ इच्छाओं को हटाने का प्रयत्न करना भले ही कुछ सफल हो परन्तु इसका अर्थ होगा और अधिक तथा शक्तिशाली इच्छाओं को जन्म देना। अतः हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त करने का सरल और सर्वश्रेष्ठ उपाय प्रत्येक इच्छा का दमन करना है।"*[41]

इच्छाओं के चुनाव की समस्या

चूँकि मनुष्य अपनी सब इच्छाएँ एकसाथ पूर्ण नहीं कर सकता इसलिए उसके सामने चुनाव की समस्या (choice-making) आती है कि इन इच्छाओं में से किन को पूर्ण किया जाय

---

[40] 'Human behaviour which is subject matter of the science of economics, is the result of a state of equilibrium of the mind. The reason why our mind is in such a state is that it is influenced by the forces acting upon it from without. It is the law of the human mind that it dislikes disequilibrium and strives therefore, to attain the state of equilibrium.' —*Ibid*, p. 1

[41] 'The effort to discard some wants even though successful is likely to give rise to more and stronger wants. We should not therefore, think that the best and the easiest way to reach the final end is to cure each desire as and when it is felt.'

और किन का सन्तुष्ट किया जाय। यह निर्णय कुछ नियमों द्वारा सचालित होता है जिनका पता लगाना अर्थशास्त्री का कर्तव्य है।[42]

प्रो० मेहता का सुझाव है कि मनुष्य का चाहिए कि अपनी आवश्यकताओं को धीरे धीरे कम करे। प्रथम तो उन आवश्यकताओं को त्याग देना चाहिए जिनकी पूर्ति करने में मनुष्य असमर्थ है। इसके पश्चात् व आवश्यकताएँ रह जायेंगी जिनकी पूर्ति करने में मनुष्य समर्थ है। चूंकि ये आवश्यकताएं पूर्ण हो जायेंगी, इसलिए उसे किसी कष्ट का अनुभव नहीं होगा। इस प्रकार आवश्यकताओं का साधना की सीमा तक घटाया जाना चाहिए और यह प्रयत्न हमारे अन्तिम लक्ष्य—इच्छारहित स्थिति—तक पहुचने की दिशा में प्रथम कदम हो जाता है। अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मनुष्य का धीरे धीरे प्रयत्न करते रहना पड़ेगा।

प्रो० मेहता की परिभाषा की आलोचना—मुख्य आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं

(१) प्रो० मेहता ने धर्म तथा दर्शनशास्त्र का अनावश्यक रूप से अर्थशास्त्र के साथ सम्बद्ध कर दिया है।

(२) उन्होंने इतना ऊँचा आदर्श हमारे समक्ष रखा है कि जिस व्यवहार म पालन नहीं किया जा सकता है, अत इनके विचार अव्यावहारिक हैं। इस सम्बन्ध में प्रो० मेहता का कथन है कि यदि कोई चीज असम्भव दिखायी दे तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी आवश्यकता ही न महसूस की जाय।[43]

जब मनुष्य की सभी आवश्यकताओं का अन्त हो जायगा तो अर्थशास्त्र के अध्ययन की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी। इस प्रकार से मेहता का अर्थशास्त्र अपनी बरबादी के बीज स्वय बोता है। [प्रो० मेहता के समर्थक इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं . यदि चिकित्सा विज्ञान (science of medicine) इतना पूर्ण हो जाय कि मनुष्य का कोई रोग न हो तो यह कहना कि चिकित्सा विज्ञान व्यर्थ है, ठीक नहीं। इसी प्रकार यह कहना भी कि यदि मनुष्य की कोई आवश्यकता न रहे तो अर्थशास्त्र व्यर्थ हो जायेगा, उचित नहीं होगा।]

निष्कर्ष—इसमे सन्देह नहीं कि प्रो० मेहता के विचार तर्कयुक्त हैं परन्तु उनकी परिभाषा माननीय नहीं है क्योंकि वह आदर्शवादी है, अव्यावहारिक है और आर्थिक प्रगति के सिद्धान्तो के विपरीत जाती है।

प्रो० मेहता तथा रोबिन्स की परिभाषाओं की तुलना

यद्यपि दोनो की परिभाषाओं में मानव व्यवहार के 'निर्णयात्मक' या 'चुनाव करने के पहलू' (choice-making aspect) का अध्ययन किया जाता है, परन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। यथा—(i) प्रो० रोबिन्स ने उद्देश्य या लक्ष्य (अधिकतम सन्तोष) को पूर्व निश्चित माना है और इसलिए उनके अनुसार अर्थशास्त्र एक तटस्थ विज्ञान (positive science or neutral science) है। किन्तु प्रो० मेहता के अनुसार उद्देश्य स्वय निर्धारित किया जाता है और इसलिए अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान (normative science) है। (ii) प्रो० रोबिन्स के अनुसार आवश्यकताओं की वृद्धि सभ्यता की प्रतीक है। अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति से मनुष्य को अधिकतम सन्तोष प्राप्त होता है, किन्तु प्रो० मेहता के अनुसार आवश्यकताओं का बिलकुल अन्त हो जाना ही अधिकतम सुख की स्थिति को प्राप्त करना है।

---

[42] प्रो० मेहता के शब्दों में, 'अर्थशास्त्री बाहरी दशाओं या उकसाव (stimuli) द्वारा मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभाव की प्रतिक्रिया का, इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के सम्बन्ध में, अध्ययन करता है। बाहरी दशाओं या उकसावों के प्रति मस्तिष्क की प्रक्रिया कुछ नियमों द्वारा सचालित होती है जिनकी खोज करना अर्थशास्त्री का कर्तव्य है।"

"The economist studies the reactions produced on man by external stimuli as a process of satisfying wants The reaction of the mind to various stimuli is governed by certain laws which it is the concern of the economist to discover"

[43] "For we refuse to think on these lines because there is the firm conviction that a state of wantlessness is an impossibility And for most of us it is an argument to be told that the fact that a thing appears impossible is no proof that it is not desirable" —*Ibid*, p. 12.

प्रश्न

१ 'अर्थशास्त्र सीमितता के अभिप्रायों का अध्ययन करता है।' विवेचना कीजिए।
'Economics studies the implications of scarcity.' Discuss

अथवा

'अर्थशास्त्र किफायत करने का विज्ञान है।' इस कथन के अभिप्रायों को पूर्णतया समझाइए।
'Economics is the science of economising' Discuss the implications of this statement fully.

अथवा

'अर्थशास्त्र चुनाव का विज्ञान है।' इस कथन की पूर्ण विवेचना कीजिए।
'Economics is the science of choice' Discuss this statement fully

अथवा

'आधारभूत आर्थिक समस्या चुनाव की समस्या है।' पूर्णतया विवेचना कीजिए।
'The fundamental economic problem is the problem of choice' Discuss fully.

अथवा

'आर्थिक समस्याएं इसलिए उत्पन्न होती हैं क्योंकि लोग चुनाव करने को बाध्य होते हैं।' पूर्णतया विवेचना कीजिए।
'Economic problems arise precisely because people are compelled to choose.' Discuss fully.

अथवा

चूंकि साधन सीमित हैं तथा आवश्यकताएँ असीमित हैं, इसलिए आर्थिक समस्याएँ आवश्यक रूप से चुनाव की समस्याएँ होती हैं। व्याख्या कीजिए।
Since means are limited and wants are unlimited economic problems are essentially problems of choice Explain *(Bhagalpur, B Com)*

[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर एकसमान हैं। इनके उत्तर के लिए इस अध्याय के प्रारम्भ में 'आर्थिक समस्या' (Economic Problem) अथवा 'अर्थशास्त्र क्या है ?' (What is Economics ?) नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत समस्त विषय-सामग्री को संक्षेप में लिखिए, यह विषय-सामग्री पृष्ठ ५ पर समाप्त होती है।]

२. अर्थशास्त्र क्या है ? इसको, बिना किसी अर्थशास्त्री की परिभाषा दिये हुए, अपने शब्दों में पूर्णतया समझाइए।
What is Economics ? Explain this fully in your own words without giving any definition of any economist

[संकेत—इस प्रश्न का उत्तर बिलकुल वही होगा जो कि प्रश्न न० १ का है।]

३ निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए .

(i) साधनों की सीमितता के कारण 'किफायत की समस्या' उत्पन्न होती है।
(ii) साधनों की सीमितता के कारण 'चुनाव की समस्या' उत्पन्न होती है।
(iii) 'चुनाव' का अभिप्राय है 'अवसर लागत'।
(iv) 'चुनाव' का अभिप्राय है 'साधनों का वितरण या आवंटन'।

Explain the following
(i) Scarcity of resources causes the problem of economising'
(ii) Scarcity of resources causes the problem of 'choice-making'.
(iii) 'Choice' implies 'opportunity cost'
(iv) 'Choice' implies allocation of resources'

[संकेत—देखिए पृष्ठ ३ से ४ तक]

४. 'अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें साध्यों (ends) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों से सम्बन्धित मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।" विवेचना कीजिए।

"Economics is a science wh ch studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses." Discuss (*Meerut*, 1973, *Kanpur*, 1972)

[संकेत—रोबिन्स की परिभाषा की पूर्ण विवेचना, आलोचना सहित, कीजिए।]

५. मूल आर्थिक समस्या क्या है ? रोबिन्स की परिभाषा इससे किस प्रकार सम्बन्धित है ? What is the fundamental economic problem ? How is Robbins' definition related to this ? (*Rajasthan, B Com*)

संकेत—मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं तथा साधन सीमित हैं, इसलिए मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं के बीच चुनाव करना पड़ता है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की सन्तुष्टि सबसे पहले करता है, इसके बाद कम महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है; साधनों की सीमितता के कारण उसकी कुछ आवश्यकताएँ असन्तुष्ट रह जाती हैं। अत: अर्थशास्त्र की आधारभूत या बुनियादी समस्या 'चुनाव की समस्या' है। रोबिन्स की परिभाषा इस 'चुनाव की समस्या' पर ही बल देती है।

इसके पश्चात् रोबिन्स की परिभाषा दीजिए और उसकी पूर्ण आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।]

६. आधुनिक युग में रोबिन्स की परिभाषा क्यों अपर्याप्त है ? इस कथन के सन्दर्भ में एक विकास-केन्द्रित परिभाषा को देने का प्रयत्न कीजिए।

Why has Robbins' definition become inadequate in modern time ? In the light of this remark attempt a growth-centred definition

[संकेत—पृष्ठ १७ पर 'विकास-केन्द्रित परिभाषा' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत समस्त विषय-सामग्री को लिखिए जो कि पृष्ठ १६ पर समाप्त होती है।]

७ 'अर्थशास्त्र मनुष्य का साधारण जीवन व्यवसाय के सम्बन्ध में अध्ययन है।' अर्थशास्त्र की इस परिभाषा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

"Economics is the study of man in the ordinary business of life" Examine this definition of economics critically

अथवा

"अर्थशास्त्र मनुष्य के साधारण जीवन व्यवसाय का अध्ययन है। यह व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्य के उस भाग की व्याख्या करता है जो कि भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति तथा उनके प्रयोग से सम्बन्धित है।" विवेचना कीजिए।

"Economics is the study of mankind in the ordinary business of life It explains that *part of individual and social action which is most closely* connected with the attainment and the use of the material requisites of well being" Discuss

अथवा

"अर्थशास्त्र-आर्थिक कल्याण का अध्ययन है।" इस कथन का परीक्षण कीजिए।

"Economics is a study of economic welfare." Explain this statement

[संकेत—इन सब प्रश्नों का उत्तर एक ही है। इनके उत्तर में 'कल्याण-केन्द्रित परिभाषाओं' (अर्थात् मार्शल, पीगू, इत्यादि की परिभाषाओं) की पूर्ण आलोचनात्मक व्याख्या दीजिए।]

८ 'अर्थशास्त्र धन का विज्ञान था, अब वह मानव कल्याण का विज्ञान है।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

Economics was the science of wealth but now it is the science of man's welfare' Discuss this statement

अथवा

'अर्थशास्त्र रोटी और मक्खन का स्वार्थमय विज्ञान है।' इस कथन का अर्थशास्त्र की आधुनिक धारणा को ध्यान में रखते हुए विवेचन कीजिए।

'Economics is a bread and butter science with a selfish touch about it' Discuss this statement in the light of modern concept of Economics

[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर बिलकुल एक ही हैं। प्रश्न का उत्तर बहुत लम्बा है इसलिए समस्त विषय-सामग्री को बहुत संक्षेप में लिखिए। प्रश्न के उत्तर को तीन भागों में बाँटिए।

प्रथम भाग में धन-केन्द्रित परिभाषाओं (अर्थात् एडम स्मिथ तथा जे बी से की परिभाषाओं) को दीजिए और संक्षेप में उनकी मुख्य आलोचनाएँ देकर बताइए कि इन परिभाषाओं को त्याग दिया गया है।

दूसरे भाग में कल्याण-केन्द्रित परिभाषाओं (अर्थात मार्शल तथा पीगू की परिभाषाओं) को दीजिए, संक्षेप में इनकी मुख्य आलोचनाएँ दीजिए।

तीसरे भाग में सीमितता-केन्द्रित परिभाषा (अर्थात रोबिन्स की परिभाषा) दीजिए, संक्षेप में इसकी मुख्य आलोचनाओं को देते हुए, अन्त में दो निष्कर्ष दीजिए, देखिए पृष्ठ १५ पर।]

६ "रोबिन्स द्वारा दी गयी परिभाषा प्राचीन अर्थशास्त्रियों के स्वार्थपूर्ण तथा घृणित धन दृष्टिकोण के ऊपर बहुत अधिक सुधार है और मार्शल के संकीर्ण भौतिकवादी आधार से भी मुक्त है।" विवेचना कीजिए।

"Definition of Economics by Robbins marks a considerable advance over the selfish-dismal-wealth approach and is also free from the narrow materialist basis of Alfred Marshall" Discuss

[संकेत—प्रश्न का उत्तर लम्बा है, इसलिए समस्त विषय-सामग्री संक्षेप में लिखना है। इस प्रश्न का उत्तर वही है जो कि प्रश्न न० ८ का है।]

१०. अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में मार्शल तथा रोबिन्स के विचारों की समता तथा विभिन्नता स्पष्ट कीजिए।

Compare and contrast Marshall's definition of Economics with that of Robbins

अथवा

अर्थशास्त्र की मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं का मूल्यांकन कीजिए। इन परिभाषाओं में आप किसे पसन्द करते हैं और क्यों ?

Evaluate the definitions of Economics as given by Marshall and Robbins Which of the two do you prefer and why ?

[संकेत—मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाएँ दीजिए, दोनों की व्याख्या बहुत संक्षेप में दीजिए, केवल मुख्य बातें ही लिखिए, बहुत संक्षेप में दोनों की मुख्य आलोचनाएँ दीजिए। अन्त में दोनों की तुलना कीजिए, इसके लिए देखिए पृष्ठ १५ पर।]

११ अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मानवीय आचरण का इच्छारहित अवस्था में पहुँचने के लिए साधन के रूप में अध्ययन करता है।" (मेहता) इस कथन की विवेचना कीजिए।

"Economics is a science that studies human behaviour as a means to the end of wantlessness" (*Metha*)—Discuss

[संकेत—प्रो मेहता की परिभाषा की आलोचनात्मक व्याख्या दीजिए, देखिए इस अध्याय की परिशिष्ट (appendix) को।]

2 आर्थिक समस्या तथा उत्पादन-सम्भावना रेखा
[ECONOMIC PROBLEM AND PRODUCTION POSSIBILITY CURVE]

१. आर्थिक समस्या (Economic Problem)

मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं तथा उनकी पूर्ति के साधन सीमित हैं। अतः मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है, आवश्यकताओं की तीव्रता के अनुसार उसे उनके बीच चुनाव करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक समाज को साधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुए इस बात का चुनाव करना पड़ेगा कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय और किनका उत्पादन त्याग दिया जाय, यह 'चुनाव की समस्या' (problem of choice) ही 'मुख्य या आधारभूत' (fundamental) 'आर्थिक समस्या' कही जाती है। इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक समाज को अपने 'साधनों का किफायत के साथ प्रयोग' (economizing the resources) करना पड़ता है। संक्षेप में, 'मितव्ययता या किफायत की समस्या' (economizing problem) अथवा 'चुनाव की समस्या' ही आर्थिक समस्या है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि सीमितता न हो तो कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न नहीं होगी। परन्तु साधनों की सीमितता होने पर, मुख्य समस्या साध्यों (या आवश्यकताओं) के साथ दिए हुए साधनों का समायोजन (adjustment of given resources with ends) करना ही नहीं है बल्कि 'साधनों का विकास' करना है ताकि परिवर्तनशील और बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके, अर्थात् 'आर्थिक विकास' की समस्या अर्थशास्त्र में मुख्य स्थान रखती है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक समस्या केवल 'वर्तमान में साधनों के वितरण या आबंटन (allocation of resources in the present) की समस्या' ही नहीं है बल्कि 'भविष्य में साधनों के विकास या वर्धन तथा उनके वितरण (growth of resources in the future and their distribution) की समस्या भी है।

आर्थिक समस्या (अर्थात् 'चुनाव की समस्या' या 'किफायत की समस्या अथवा 'साधनों के वितरण या आबंटन की समस्या') को उत्पादन-सम्भावना रेखाओं (production possibility curves) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

२. उत्पादन-सम्भावना रेखा की परिभाषा (Definition of a Production Possibility Curve)

यदि किसी समय विशेष में साधनों की मात्रा स्थिर है तथा उनका पूर्ण प्रयोग (full utilization or employment) हो रहा है और एक अर्थव्यवस्था केवल दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन कर रही है, तो वस्तु X की अधिक मात्रा के उत्पादन करने का अर्थ है कि वस्तु Y के उत्पादन से साधनों को हटाना पड़ेगा और Y की कम मात्रा का उत्पादन करना पड़ेगा; अथवा Y की अधिक मात्रा के उत्पादन का अर्थ है कि X की कम मात्रा का उत्पादन करना पड़ेगा।

X वस्तु की कितनी मात्रा तथा Y वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाय इसका अर्थ है कि समाज को 'चुनाव' करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में साधनों के पूर्ण रोजगार वाली अर्थव्यवस्था (full employment economy) में समाज को विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध में चुनावों की सूची (*menu of choices*) का निर्धारण करना पड़ेगा। संक्षेप में

'एक उत्पादन सम्भावना रेखा
चुनावों की सूची को बताती है।'[1]

चित्र—१

चित्र नं० १ में PP रेखा उत्पादन सम्भावना रेखा है। इस रेखा पर बिन्दु A बताता है कि समाज X वस्तु की OM मात्रा तथा Y वस्तु की OS मात्रा का उत्पादन कर सकता है, बिन्दु C वस्तु X की OL मात्रा तथा वस्तु Y की OR मात्रा के उत्पादन की सम्भावना को बताता है। दूसरे शब्दों में PP रेखा के विभिन्न बिन्दु A, B, C, दो वस्तुओं X तथा Y के उत्पादन की विभिन्न सम्भावनाओं या विकल्पों (alternatives) को बताते हैं और समाज इनमें से किसी विकल्प का 'चुनाव' कर सकता है।
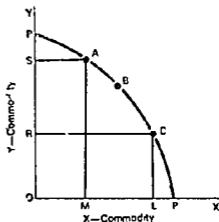
यदि हम उपर्युक्त विवरण को ध्यान में रखें तो उत्पादन सम्भावना रेखा की परिभाषा एक दूसरी प्रकार से दी जा सकती है जो कि निम्नलिखित है

एक उत्पादन सम्भावना रेखा दो वस्तुओं X तथा Y के उन सभी संयोगों को बताती है जिनका अधिकतम उत्पादन एक समाज के लिए सम्भव है, जबकि साधनों की मात्रा स्थिर है और उनका पूर्ण प्रयोग हो रहा है तथा उत्पादन की तकनीकी स्थिति दी हुई है।[2]

चित्र नं० १ में PP रेखा[3] पर बिन्दु A बताता है कि X वस्तु की अधिकतम मात्रा OM तथा Y वस्तु की अधिकतम मात्रा OS का उत्पादन किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्पादन सम्भावना रेखा के अन्य बिन्दु B तथा C दोनों वस्तुओं X तथा Y की अधिकतम मात्राओं को बताते हैं जिनका कि एक समाज उत्पादन कर सकता है।

उपर्युक्त परिभाषा को एक और प्रकार से दिया जाता है जो कि निम्नलिखित है

उत्पादन सम्भावना रेखा एक वस्तु (माना X) की अधिकतम मात्रा को बताती है जो कि दूसरी वस्तु (माना Y) के उत्पादन की प्रत्येक सम्भाव्य मात्रा के साथ उत्पादित की जा सकती है, जबकि साधनों की मात्रा स्थिर हो और उनका पूर्ण प्रयोग हो रहा हो तथा उत्पादन की तकनीकी स्थिति दी हुई हो।[4]

चित्र नं० १ में PP रेखा का बिन्दु A बताता है कि यदि Y वस्तु की OS मात्रा दी हुई है तो इसके साथ X वस्तु की अधिकतम मात्रा OM का उत्पादन किया जा सकता है, अथवा यदि

---

1 The production poss b lity curve depicts soc ety s menu of choices

2 A production possibil ty curve in l cates all he con binations of two goods X and Y whose maximum production is pos ible in a society when all the resources are fixed and fully employed and the technological state of product on is g ven

3 उत्पादन सम्भावना रेखा (Production Possibility Curve) को प्राय संक्षेप में 'PP-रेखा' लिखा जाता है।

4 The production possibil ty curve ind cates the maximum attainable output of one commodity (say X) for every p ss bl volume of output of the other commodity (say Y) when the resources are fixed and fully employed, and the technological art of production is given

वस्तु X की OM मात्रा दी हुई है तो वस्तु Y की अधिकतम मात्रा OS का उत्पादन किया जा सकता है। [इस प्रकार एक उत्पादन-सम्भावना रेखा एक वस्तु की अधिकतम मात्रा को बताती है जो उत्पादित की जा सकती है जबकि दूसरी वस्तु की मात्रा दी हुई हो।]

[उत्पादन-सम्भावना रेखा को कभी-कभी 'रूपान्तर रेखा' (*Transformation Line*) भी कहा जाता है। जब एक वस्तु X का उत्पादन बढ़ाया जाता है तो दूसरी वस्तु Y के उत्पादन से साधन हटाकर X के उत्पादन में लगाये जाते हैं, दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि Y वस्तु का X वस्तु में रूपान्तरण (transformation) किया जाता है, अतः उत्पादन-सम्भावना रेखा का दूसरा नाम 'रूपान्तरण रेखा' भी है। यदि X वस्तु का अभिप्राय अर्थव्यवस्था की समस्त सम्भाव्य उपभोक्ता की वस्तुओं से, तथा Y वस्तु का अभिप्राय समस्त सम्भाव्य पूँजीगत वस्तुओं से लिया जाये तो, कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उत्पादन-सम्भावना रेखा को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की **'बजट रेखा'** (*budget line' for the economy as a whole*) भी कहा जा सकता है।]

३. मान्यताएँ (Assumptions)

उत्पादन-सम्भावना रेखा की और अधिक व्याख्या करने से पहले उन मान्यताओं को समझ लेना आवश्यक है जिन पर कि विचार आधारित है। ऊपर दी गयी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि उत्पादन सम्भावना रेखा निम्न मान्यताओं पर आधारित है

(i) अर्थव्यवस्था में सभी साधनों का पूर्ण प्रयोग हो रहा है, अर्थात् अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार (full employment) के स्तर पर कार्य करके पूर्ण उत्पादन (full production) प्राप्त कर रही है। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था में कोई साधन बेरोजगार नहीं है।

(ii) अर्थ-व्यवस्था में उत्पत्ति **के साधनों की मात्रा स्थिर है**; परन्तु सीमित मात्रा में उनको एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(iii) **उत्पादन की तकनीकी** स्थिति (technological state of production) दी हुई है अर्थात् उसमें कोई परिवर्तन नहीं है।

दूसरी तथा तीसरी मान्यता का अभिप्राय है कि आर्थिक विश्लेषण की सुविधा के लिए हम अर्थ-व्यवस्था को किसी समय के एक निश्चित बिन्दु पर, या उसे अति अल्पकालीन समय के अन्तर्गत, देख रहे हैं।[5]

४. व्याख्या तथा अभिप्राय (Explanation and Implications)

उत्पादन-सम्भावना रेखा को समझने के लिए हम पहले 'उत्पादन की सम्भावनाओं की तालिका' (production possibilities table) पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। माना कि अर्थ-व्यवस्था में दो प्रकार की वस्तुओं—X वस्तुओं अर्थात् उपभोक्ता की वस्तुओं (consumers goods) तथा Y वस्तुओं अर्थात् पूँजीगत वस्तुओं (capital goods)—का उत्पादन हो रहा है। चूँकि कुल साधन सीमित है, इसलिए कुल उत्पादन भी सीमित ही होगा। चूँकि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर पर कार्य कर रही है, इसलिए X वस्तु की अधिक मात्रा के उत्पादन का अर्थ है कि Y वस्तु की कम मात्रा का उत्पादन हो सकेगा, इसी प्रकार इसकी विपरीत दशा भी ठीक होगी। 'उत्पादन-सम्भावनाओं' की अग्र तालिका में A, B, C, D तथा E दो वस्तुओं X तथा Y के संयोगों (combinations) की विभिन्न सम्भावनाओं या विकल्पों (alternatives) को बताते हैं

[5] The second and the third assumptions imply that for the purposes of economic analysis we are "looking at our economy at some specific point in time or over a very short period of time"

वस्तुएं (Products)	उत्पादन-सम्भावनाएं या विकल्प (Production possibilities or Alternatives)				
	A	B	C	D	E
X-वस्तुएं (अर्थात् उपभोक्ता की वस्तुएं) [Consumers goods]	०	१	२	३	४
Y-वस्तुएं (अर्थात् पूंजीगत वस्तुएं) [Capital goods]	१२	११	६	६	०

तालिका से स्पष्ट है कि A से E की ओर चलने का अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था 'उपभोक्ता की वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाती जाती है और ऐसा करने में उसे पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन से साधनों को हटाना पड़ता है तथा पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन कम होता जाता है। उपभोक्ता की वस्तुओं के अधिक उत्पादन का अर्थ है कि समाज वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति पर अधिक जोर देता है। ऐसी दशा में समाज को 'पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के त्याग की लागत' (cost of sacrificing the production of capital goods) उठानी पड़ती है और परिणामस्वरूप भविष्य में उत्पादन-क्षमता (productive efficiency) में कमी होती है। E से A की ओर चलने का अभिप्राय है कि समाज पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाता है और ऐसा करने में उसे उपभोक्ता की वस्तुओं के उत्पादन से साधनों को हटाना पड़ता है तथा उपभोक्ता की वस्तुओं का उत्पादन कम हो जाता है। वर्तमान में पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन पर बल देने का अभिप्राय है कि समाज को 'उपभोक्ता की वस्तुओं के उत्पादन के त्याग की लागत' (cost of sacrificing the production of consumers goods) उठानी पड़ती है, परन्तु भविष्य में समाज की उत्पादन क्षमता बढ़ेगी और भविष्य में अधिक उत्पादन सम्भव हो सकेगा।

विकल्प A बताता है कि उपभोक्ता की वस्तुओं का उत्पादन शून्य है और पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन १२ है, जबकि विकल्प E बताता है कि पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन शून्य है तथा उपभोक्ता की वस्तुओं का उत्पादन ४ इकाई है, ये दोनों स्थितियां एक सिरे की हैं। व्यवहार में अर्थ-व्यवस्था इन दोनों स्थितियों के बीच किसी स्थिति में रहेगी।

उपर्युक्त तालिका में दी गयी दो वस्तुओं X तथा Y की उत्पादन सम्भावनाओं को जब एक रेखा द्वारा व्यक्त कर दिया जाता है तो हम 'उत्पादन-सम्भावना रेखा या सीमा' (Production Possibility Curve or Frontier or Boundary) प्राप्त हो जाता है जैसा कि चित्र न० २ में दिखाया गया है।

निम्न बातें उत्पादन-सम्भावना रेखा की और अधिक व्याख्या करती हैं तथा इसके अभिप्रायों को स्पष्ट करती हैं

(1) उत्पादन-सम्भावना रेखा बताती है कि एक पूर्ण-रोजगार वाली अर्थ-व्यवस्था में यदि एक वस्तु X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो दूसरी वस्तु Y की मात्रा घटानी पड़ेगी। यही कारण है कि एक उत्पादन सम्भावना रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र २ में है।
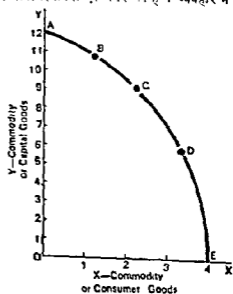
चित्र—२

(ii) सामान्यतया, एक उत्पादन सम्भावना रेखा मूल बिन्दु (origin) के प्रति नतोदर (concave) होती है (जैसा कि चित्र न० १ या २ मे है)। इसका अभिप्राय है कि यदि X वस्तु के उत्पादन को एक-एक इकाई करके बढाया जाता है तो Y वस्तु की अधिकाधिक मात्रा का त्याग करना पड़ेगा, और यदि Y वस्तु के उत्पादन को एक-एक इकाई करके बढाया जाता है तो X वस्तु की अधिकाधिक मात्रा का त्याग करना पड़ता है। इस बात को कभी-कभी 'बढ़ती हुई लागतों का नियम' (*Law of Increasing Cost*) कहा जाता है, लागत को यहाँ पर वस्तुओ के त्याग के रूप में व्यक्त किया जाता है न कि द्रव्य मे।[6]

चित्र न० ३ मे हम X वस्तु की मात्रा को एक-एक इकाई से बढ़ाते जाते हैं, तो Y वस्तु की अधिकाधिक मात्राओ अर्थात् ab, cd, ef, gh, ij, का त्याग करना पड़ता है। इसलिए इस बात को 'बढ़ती हुई लागतो का नियम' कहा जाता है। इसी प्रकार एक दूसरे चित्र द्वारा हम यह दिखा सकते हैं कि यदि Y वस्तु की मात्रा को एक-एक इकाई करके बढ़ाया जाता है तो X वस्तु की बढ़ती हुई मात्राओ का त्याग करना पड़ेगा अर्थात् 'बढ़ती हुई लागतों का नियम' कार्यशील होगा।
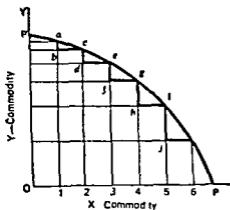
चित्र—३

(iii) यदि अर्थव्यवस्था उत्पादन-सम्भावना रेखा PP (चित्र न० ४) के किसी भी एक बिन्दु (A या B या C) पर है तो इसका अभिप्राय है कि साधनो का 'पूर्ण प्रयोग' (full employment) और 'पूर्ण उत्पादन' (full production) हो रहा है। दूसरे शब्दो मे, सम्भावना रेखा पर X तथा Y का कोई भी सयोग 'तकनीकी दृष्टि मे कुशल' (*technologically efficient*) है। PP-रेखा के अन्दर के सभी बिन्दु 'प्राप्त किये जा सकने वाले सयोगो (attainable combinations) को बताते है। परन्तु PP-रेखा के भीतर प्रत्येक बिन्दु (जैसे बिन्दु E) 'तकनीकी दृष्टि से अकुशल' (*technologically inefficient*) है जो कि यह बताता है कि साधनो का पूर्ण प्रयोग नही हो रहा है। PP-रेखा के बाहर प्रत्येक बिन्दु (जैसे चित्र न० ४ मे बिन्दु F) 'तकनीकी दृष्टि से अप्राप्य' (*technologically infeasible*) है।

सक्षेप मे, प्रत्येक अर्थव्यवस्था, जो कि अधिकतम कल्याण प्राप्त करने मे दिलचस्पी रखती है, का उद्देश्य उत्पादन-सम्भावना रेखा पर किसी एक बिन्दु (अर्थात् सयोग) का चुनाव करना होगा।

चित्र—४

(iv) एक उत्पादन-सम्भावना रेखा पर वस्तुओ के सभी सयोग 'तकनीकी दृष्टि से कुशल' होते हैं, 'पूर्ण रोजगार' तथा 'पूर्ण उत्पादन' को
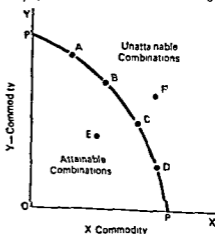
[6] A production possibility curve is generally concave to the origin This implies that if the output of one commodity X is increased every time by one unit (*i e*, by equal amounts) the sacrifice of Y becomes larger and larger and if the output of Y is increased every time by one unit (*i e*, by equal amounts) the sacrifice of X becomes larger and larger This fact is sometimes called as the 'Law of Increasing Costs', costs here are expressed in terms of goods and not in money

बताते हैं, तो प्रश्न यह उठता है कि एक समाज किस संयोग को पसन्द करेगा अथवा समाज के लिए कौन-सा संयोग वाञ्छनीय (desirable) होगा ? चित्र न० ५ में समाज A, B, C या D में से किस संयोग को चुनेगा ? यह एक नैतिक (ethical) प्रश्न है जो कि प्रत्येक समाज (पूँजीवादी, समाजवादी या साम्यवादी देश) अपने 'नैतिक मूल्यों' (ethical or moral values) के अनुसार निश्चित करेगा ।[7]

५. मान्यताओं के ढीला करने के अभिप्राय (Implications of relaxing the assumptions)

(i) यदि हम पहली मान्यता—कि अर्थव्यवस्था 'साधनों का पूर्ण प्रयोग' तथा 'पूर्ण उत्पादन' कर रही है—को हटा दें तो इसका क्या अभिप्राय होगा ? इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी मौजूद है क्योंकि साधनों का पूर्ण प्रयोग नहीं हो रहा है। दूसरे शब्दों में, अर्थ-व्यवस्था उत्पादन-सम्भावना रेखा के भीतर किसी भी बिन्दु पर हो सकती है, चित्र न० ५ में एक ऐसी स्थिति बिन्दु E बताता है। चित्र में EA, EB तथा EC उन तीन रास्तों को बताते हैं जिनसे अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार तथा पूर्ण उत्पादन की स्थिति प्राप्त कर सकती है। E से A बिन्दु पर पहुँचने का अर्थ है कि अर्थ-व्यवस्था केवल एक वस्तु Y के उत्पादन की मात्रा को बढ़ाकर पूर्ण रोजगार और पूर्ण उत्पादन की स्थिति में पहुँचती है, इसी प्रकार E से C बिन्दु पर जाने का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था केवल एक वस्तु X के उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करके पूर्ण रोजगार तथा पूर्ण उत्पादन की स्थिति में पहुँचती है। E से B बिन्दु तक पहुँचने का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था दोनों वस्तुओं X तथा Y के उत्पादन की मात्राओं को बढ़ाकर पूर्ण रोजगार पूर्ण व पूर्ण उत्पादन की अवस्था में पहुँचती है।

चित्र—५
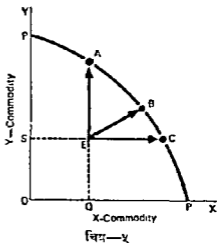
(ii) यदि शेष दो मान्यताओं—अर्थात् साधनों की मात्रा स्थिर है तथा उत्पादन की तकनीकी कला (technological art of production) भी स्थिर है—को हटा दिया जाये तो इसका क्या अभिप्राय होगा ? साधनों की मात्राओं तथा पूर्तियों में वृद्धि होने का अर्थ है कि अब समाज X तथा Y दोनों प्रकार की वस्तुओं (अर्थात् उपभोक्ता की वस्तुओं तथा पूँजीगत वस्तुओं दोनों) का अधिक उत्पादन करने की योग्यता रखता है। तकनीकी प्रगति का अर्थ है कि समाज की उत्पादन क्षमता (productive efficiency) में वृद्धि होगी। अत दोनों मान्यताओं को हटाने का

---

[7] यदि एक समाज संयोग C (चित्र न० ५) को चुनता है तो इसका अभिप्राय है कि वह उपभोक्ता की वस्तुओं का अधिक उत्पादन करना पसन्द करता है और पूँजीगत वस्तुओं का कम उत्पादन। यदि एक समाज संयोग A पसन्द करता है तो इसका अर्थ है कि वह पूँजीगत वस्तुओं का अधिक उत्पादन करके भविष्य में उत्पादन-क्षमता को बढ़ाना चाहता है तथा उपभोक्ता की वस्तुओं का कम उत्पादन करता है अर्थात् वर्तमान में आवश्यकताओं की सन्तुष्टि को अधिक महत्व नहीं देता है।

अनिवार्य है कि अब समाज दोनों प्रकार की वस्तुओं का अधिक उत्पादन कर सकेगा अर्थात् उसकी उत्पादन-क्षमता बढ़ जाने के कारण उत्पादन-सम्भावना रेखा PP (चित्र नं० ६ में) आगे को खिसक कर P_1P_1 की स्थिति में आ जायेगी और पहले जो संयोग PP रेखा के बाहर थे (जैसे संयोग F), अर्थात् जो संयोग प्राप्त नहीं किये जा सकते थे, अब प्राप्त किये जा सकेंगे।
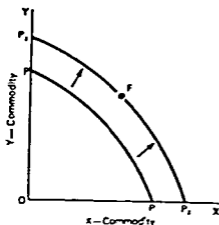
चित्र—६

निष्कर्ष (Conclusion)

उत्पादन-सम्भावना रेखा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'आर्थिक विश्लेषण-यन्त्र' (economic analytical tool) है, यह एक अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याओं तथा अर्थशास्त्र के अनेक आधारभूत विचारों (basic concepts) के समझने में सहायक है।

प्रश्न

१. "उत्पादन सम्भावना रेखा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आर्थिक विश्लेषण यन्त्र है।" इस कथन के सन्दर्भ में एक उत्पादन-सम्भावना रेखा के अर्थ तथा अभिप्रायों को बताइए।

"A production possibility curve is a significant economic analytical tool." In the light of this remark explain the concept and implications of a production possibility curve

२. किसी अर्थव्यवस्था के 'उत्पादन-सम्भावना वक्र' के स्वरूप पर प्रकाश डालिए। बताइए कि यह वक्र आर्थिक जीवन के कुछ मूल तथ्यों की किस प्रकार व्याख्या करता है?

Examine the nature of an economy's 'production-possibility curve'. How does the curve explain some of the basic facts of economic life?

३. अर्थव्यवस्था में निम्न समस्याओं को उत्पादन-सम्भावना वक्र की सहायता से समझाइए

(i) किसी अर्थव्यवस्था में उपभोग-वस्तुओं तथा उत्पादक-वस्तुओं के उत्पादन के बीच चुनाव।

(ii) बेरोजगार साधनों की समस्या।

(iii) आर्थिक वर्धन (economic growth) की समस्या।

Explain the following problems in economics with the help of production possibility curve:

(i) Choice between the production of consumer-goods and producers-goods in an economy.

(ii) The problem of unemployed resources.

(iii) The problem of economic growth.

3 आर्थिक प्रणाली के कार्य
[FUNCTIONS OF AN ECONOMIC SYSTEM]

आर्थिक प्रणाली का अर्थ
(THE CONCEPT OF AN ECONOMIC SYSTEM)

अर्थशास्त्र आर्थिक प्रणाली के सम्बन्ध में बताता है। अतः अर्थशास्त्र के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण कदम इस बात की स्पष्ट जानकारी प्राप्त करना है कि आर्थिक प्रणाली क्या है तथा वह क्या करती है।[1]

आर्थिक प्रणाली का अर्थ वैधानिक तथा संस्थात्मक ढांचे (legal and institutional framework) से है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाएँ सचालित होती हैं। आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, उपभोग, विनिमय तथा वितरण से सम्बन्धित क्रियाएं आती हैं। प्रत्येक देश में मनुष्य के आर्थिक जीवन में कम या अधिक राज्य का हस्तक्षेप भी पाया जाता है। इसलिए आर्थिक प्रणाली का रूप राज्य के हस्तक्षेप की मात्रा तथा सीमा पर निर्भर करता है। आर्थिक प्रणाली की एक परिभाषा इस प्रकार है :

"आर्थिक प्रणाली संस्थाओं का एक ढांचा है जिसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के प्रयोग पर सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है।"[2]

एक आर्थिक प्रणाली के कार्य अथवा उसकी केन्द्रीय समस्याएँ
(FUNCTIONS OR CENTRAL PROBLEMS OF AN ECONOMIC SYSTEM)

'आर्थिक समस्या' का अर्थ है 'साधनों का मितव्ययतापूर्ण प्रयोग' (economizing resources) अर्थात् समाज की भौतिक आवश्यकताओं की अधिकतम सन्तुष्टि करने में सीमित साधनों का प्रयोग। इस दृष्टि से प्रत्येक आर्थिक प्रणाली, चाहे वह पूँजीवाद हो या समाजवाद या मिश्रित अर्थव्यवस्था, को कुछ आधारभूत (fundamental) कार्य करने पड़ते हैं, यद्यपि इन कार्यों को करने का ढंग प्रत्येक प्रणाली में भिन्न होता है। इन आधारभूत कार्यों को 'एक आर्थिक प्रणाली की केन्द्रीय समस्याएँ' (central problems of an economic system) भी कहा जाता है।

---

[1] "Economics is about the economic system." Thus, an essential step in the study of economics is to get a clear understanding of what the economic system is and what it does

[2] "Economic system is the framework of institutions by which the use of the means of production and of their products is socially controlled."

प्रत्येक आर्थिक प्रणाली के पाँच[1] आधारभूत कार्य या पाँच केन्द्रीय समस्याएँ हैं जो कि निम्न-लिखित हैं

(१) क्या उत्पादन होगा ? (What is to be Produced ?)

एक अर्थव्यवस्था का सर्वप्रथम कार्य इस बात का निर्धारण है कि क्या उत्पादित किया जाये ताकि समाज म व्यक्तियो की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक अर्थव्यवस्था को 'उत्पादन की रचना' (composition of output) को निर्धारित करना पड़ता है। क्या उत्पादित करना है और क्या उत्पादित नही करना है प्रश्न का सम्बन्ध वैकल्पिक प्रयोगो (alternative uses) मे सीमित साधनों के वितरण (allocation of scarce resources) से है। स्पष्ट है कि यह कार्य या प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से साधनो की सीमितता से उत्पन्न होता है। मानवीय आवश्यकताओ की तुलना मे साधन सीमित होते है, इसलिए प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को किसी-न किसी रीति द्वारा यह निश्चय करना होगा कि किन वस्तुओ का उत्पादन किया जाय अर्थात् 'साधनो के वितरण' (allocation of resources) की समस्या के सम्बन्ध मे निर्णय लेना होगा। इस बात के निर्धारण की रीति विभिन्न आर्थिक प्रणालियो म भिन्न हो सकती है और प्राय भिन्न होती है, 'स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था' या 'पूंजीवाद' (Free-enterprise Economy or Capitalism) मे यह बात 'कीमत प्रणाली' तथा साम्यवाद (Communism) मे 'सरकारी आदेश' (government decree) निर्धारित करता है।

[पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत, अर्थशास्त्र की वह शाखा जो कि 'कीमत प्रणाली के कार्यो (workings of the price system) को शामिल करती है उसे 'कीमत का सिद्धान्त' (theory of price) कहते है।]

वास्तव मे 'क्या उत्पादित किया जाय' आधारभूत (fundamental) प्रश्न को दो उप प्रश्नो (sub questions) मे बाँटा जा सकता है—(१) किन वस्तुओं और सेवाओ का उत्पादन किया जाये ? तथा (२) इन वस्तुओ और सेवाओ की कितनी मात्राओ मे उत्पादित किया जाये ?

(i) पहले उप प्रश्न को लीजिए। एक अर्थव्यवस्था उन वस्तुओ तथा सेवाओ को उत्पादित करेगी जिनको समाज अधिक महत्वपूर्ण समझता है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था या समाज को किसी-न किसी तरह यह निर्धारित करना पड़ेगा कि वह किन वस्तुओं का उत्पादन करे और किनका उत्पादन न करे दूसरे शब्दो म, किन 'उपभोक्ता वस्तुओ (consumer goods) तथा किन पूंजीगत वस्तुओ' (capital goods) का उत्पादन करे।

(ii) जब एक अर्थव्यवस्था यह निर्धारित कर लेती है कि किन वस्तुओ का उत्पादन करना है तब उसे यह निश्चित करना पडता है कि उन वस्तुओ की कितनी मात्राओ का उत्पादन किया जाय। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक अर्थव्यवस्था को यह निश्चित करना होगा कि प्रत्येक प्रकार की पूंजीगत वस्तुओ तथा प्रत्येक प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन करना है ताकि समाज की आवश्यकताओ की बहुत अच्छी प्रकार से सन्तुष्टि हो सके।

[1] एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्यों की संख्या के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो मे थोडा मतभेद है। प्रो० सम्युलसन (Samuelson) के अनुसार आधारभूत कार्य तीन हैं, प्रो० हाम (Halm) के अनुसार सात प्रो० स्टिगलर (Stigler) के अनुसार चार, प्रो० ओक्सेनफेल्ट (Oxenfeldt) प्रो० नाईट (F H Knight), प्रो० लेफ्टविच (Leftwich) तथा प्रो० मैक्कोनेल (McConnel के अनुसार पाच हैं।)

चित्र न० १ मे यदि एक अर्थव्यवस्था या समाज PP 'उत्पादन सम्भावना' रेखा (Production Possibility Curve)[4] के बिन्दु 'A' पर है तो इसका अर्थ है कि वह अधिक पूंजीगत वस्तुओं OE तथा कम उपभोग वस्तुओं OQ का उत्पादन करती है, बिन्दु B तथा बिन्दु C बताते है कि समाज या अर्थव्यवस्था पूंजीगत वस्तुओं का कम उत्पादन तथा उपभोग वस्तुओं का अधिक उत्पादन करती है। दूसरे शब्दों मे किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा मे उत्पादन होगा इसके लिए समाज या अर्थव्यवस्था को अनेक विकल्पो (Several alternatives) जिनमे A B C इत्यादि, मे से ऐसे विकल्प का चुनाव करना पडेगा जिससे कि समाज को सबसे अधिक सन्तुष्टि मिलती है।
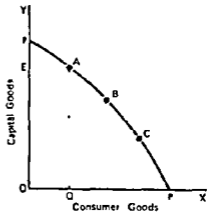
चित्र—१

[अत इस कार्य के आधार पर हम विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की तुलना और जांच कर सकते है कि जिन विशिष्ट वस्तुओं का उत्पादन होता है उनसे जनसंख्या तथा राष्ट्र को सन्तुष्टि का एक उच्च स्तर प्राप्त होता है या नही।[5]]

(२) वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जायेगा ? (How shall the goods be Produced ?)

एक अर्थव्यवस्था का दूसरा मुख्य कार्य है कि 'निर्धारित वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाये ? अर्थात् किन रीतियो द्वारा उत्पादन किया जाये ? (by what methods are the goods produced ?) दूसरे शब्दों मे 'उत्पादन का संगठन' (organisation of production) कैसे किया जाय ?

इस कार्य के अभिप्राय (implications) निम्नलिखित है

(i) साधनो को उन उद्योगो मे कैसे वितरित किया जाये जिनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ता या समाज सबसे अधिक चाहता है तथा साधनो को उन उद्योगो मे जाने से कैसे रोका जाय जो ऐसी वस्तुओ को उत्पन्न करते हैं जिन्हें समाज सबसे कम चाहता है।

(ii) विभिन्न उद्योगो मे भिन्न फर्मों को उत्पादन करना है तथा वे आवश्यक साधनो को कैसे प्राप्त करेंगी।

(iii) निर्धारित वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन सबसे अधिक कुशल रीतियो द्वारा किया जाय अर्थात् उत्पादन के एक निश्चित स्तर के लिए प्रत्येक फर्म किस प्रकार उत्पत्ति के साधनो को कुशलतम संयोग (most efficient combination of resources) मे प्रयोग करे।

---

[4] यदि साधनो के पूर्ण प्रयोग या रोजगार की स्थिति मान ली जाये तो इसका अभिप्राय है कि यदि समाज X वस्तुओं की अधिक मात्रा का उत्पादन करना चाहता है तो दूसरी वस्तु Y का उत्पादन कम करना पडेगा। जब तक समाज यह निर्णय करता है कि वह वस्तु X की कितनी मात्रा तथा Y की कितनी मात्रा उत्पादित करेगा तो इसका अभिप्राय है कि यह विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की सम्भावनाओ (possibilities) मे 'चुनावो की सूची' (menu of choices) का निर्धारण करता है और एक 'उत्पादन सम्भावना रेखा' इसको व्यक्त करती है। संक्षेप मे एक उत्पादन-सम्भावना रेखा एक समाज की उत्पादन सम्भावनाओ को बताती है।

उत्पादन-सम्भावना रेखा के विस्तृत विवरण के लिए अध्याय २ को देखिए।

[5] "Thus on the basis of this function we can compare and examine various economies to see if the particular goods produced provide a high level of satisfaction for the population and the nation."

दूसरे शब्दों मे, उत्पादन के लिए सर्वोत्तम टेक्नोलोजीकल रीतियाँ (best technological methods) कौन-सी हैं।[6]

उत्पादन की कोई भी योजना (scheme or plan) जो समाज के सब साधनों का तो प्रयोग करती है परन्तु अकुशलतापूर्वक उत्पादन करती है, तो वह एक ऐसे उत्पादन सयोग (output combination) की ओर ले जाती है जो कि 'उत्पादन-सम्भावना रेखा' (production possibility line or boundary) के भीतर होता है, जैसा कि चित्र न० २ में बिन्दु 'E' है। उत्पादन-सम्भावना रेखा PP के भीतर सभी बिन्दु 'वस्तुओं के प्राप्त किय जा सकने वाले सयोगो (attainable combinations) को बताते हैं, जबकि 'उत्पादन-सम्भावना-रेखा' के बाहर सभी बिन्दु (जैसे बिन्दु F) वस्तुओं के अप्राप्य सयोगों (unattainable combinations) को बनाते हैं। चित्र मे PP रेखा के भीतर बिन्दु E बताता है कि साधनो का कुशलतापूर्वक प्रयोग नही हो रहा है। उत्पादन की अधिक कुशल रीतियो का प्रयोग करके यह सम्भव है कि किसी भी एक प्रकार की वस्तु का अधिक उत्पादन किया जा सकता है जैसा कि बिन्दु 'A' या 'B' बताते हैं, या दोनो प्रकार की वस्तुओं का अधिक उत्पादन किया जा सकता है जैसा कि बिन्दु 'D' बताता है।

चित्र—२

[अत एक अर्थव्यवस्था के मूल्यांकन के लिए यह ज्ञात करना आवश्यक है कि उत्पादन की किन रीतियों का प्रयोग किया जा रहा है अथवा किस ढग से अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागो मे साधनो का वितरण हो रहा है।[7]]

[अर्थशास्त्र के उस भाग को जिसमे कि 'उत्पादन के सगठन' (organisation of production) से सम्बन्धित समस्याओ का अध्ययन किया जाता है उसे 'उत्पादन का सिद्धान्त' (*Theory of Production*) कहते हैं।]

(३) वस्तुओं का उत्पादन किसके लिए किया जायेगा ? (*For whom shall the Goods be Produced ?*)

अथवा

उत्पादित वस्तुओ का वितरण (Distribution of Output)

इस प्रश्न या कार्य के अभिप्राय (implications) अग्रलिखित है

[6] किसी वस्तु के उत्पादन की एक निश्चित मात्रा को विभिन्न रीतियो या टेक्नीकों (methods or techniques) द्वारा उत्पादित किया जा सकता है उसके उत्पादन म बहुत अधिक सख्या म *श्रम (labour) तथा केवल कुछ सरल मशीनो अर्थात् कम पूजी (a few simple machines, i e less capital)* के प्रयोग से लेकर बहुत कम सख्या में श्रम तथा बहुत अधिक महँगी और जटिल मशीनो अर्थात् बहुत अधिक पूँजी (costly and highly automated machines, *i e*, very large quantity of capital) के सयोग (combination) के टेक्नीकों का प्रयोग किया जा सकता है। अत एक अर्थव्यवस्था को सर्वोत्तम टेक्नोलोजीकल रीति का चुनाव करना पडेगा अर्थात् उस रीति का चुनना होगा जो आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक कुशल हो। इसका अर्थ है कि साधनो की सीमितता को ध्यान म रखते हुए उत्पादन की वह तकनीक चुननी होगी जो कम लागत पर अधिकतम उत्पादन दे।

[7] "Consequently to evaluate an economy requires a consideration of the manner in which resources are allocated among the segments of that system "

(i) एक आर्थिक प्रणाली कुल उत्पादन का समाज की विभिन्न आर्थिक इकाइयों में किस प्रकार वितरित या राशन करेगी ?[8] दूसरे शब्दों में, प्रत्येक अर्थव्यवस्था को किसी तरह से यह निर्धारित करना होगा कि कुल उत्पादन का उपभोक्ताओं तथा परिवारों, व्यापारियों तथा उत्पादकों एवं सरकार में किस प्रकार बाँटा जाय।

(ii) अर्थव्यवस्था को यह निर्धारित करना होगा कि उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का वितरण कुशल तथा न्याययुक्त (efficient and equitable) भी हो। परन्तु इस बात के निर्धारण में अर्थशास्त्र के तत्त्व ही नहीं बल्कि राजनीतिशास्त्र तथा नीतिशास्त्र (ethics) के तत्त्वों पर भी ध्यान देना पड़ सकता है।[9]

(iii) अति अल्पकाल में वस्तुओं की पूर्ति को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। अतः एक आर्थिक प्रणाली को अति अल्पकाल में वस्तुओं के वितरण अथवा राशन की व्यवस्था करनी चाहिए।[10] एक अर्थव्यवस्था को स्थिर पूर्ति का राशन दो प्रकार से करना होगा (अ) इसे अर्थव्यवस्था के विभिन्न उपभोक्ताओं के बीच पूर्ति का वितरण (allocation) करना होगा। (ब) इसे कुछ वस्तुओं (जैसे गेहूँ, चना, इत्यादि कृषि वस्तुओं) की दी हुई पूर्ति को एक फसल से दूसरी फसल की अवधि तक फैलाना होगा।[11]

[अतः एक अर्थव्यवस्था के मूल्यांकन की एक कसौटी यह है कि वह आय को किसी नैतिक या विवेकपूर्ण आधार पर बाँटती है, उत्पादन का इस प्रकार विभाजित करती है जिससे कि समस्त जनसंख्या को सन्तुष्टि का एक उच्च स्तर प्राप्त हो, एवं जो स्वस्थ व सुखी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समायोजन को ध्यान में रखते हुए व्यक्तियों का अधिकतम उत्पादन करने को प्रोत्साहित करती हो। परन्तु आय-वितरण के ये उद्देश्य एक-दूसरे से मेल नहीं खाते अर्थात् असंगत (inconsistent) दिखायी पड़ते हैं और इसलिए इस कसौटी के आधार पर मूल्यांकन कठिन हो जाता है और इसके सम्बन्ध में व्यक्तियों के अपने अलग-अलग निर्णय हो सकते हैं।[12]]

[हम दूसरे कार्य अर्थात् 'वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाय ?' के अन्तर्गत 'उत्पादन की कुशलता' (efficiency of production) की बात लिख चुके हैं, इसी प्रकार तीसरे कार्य अर्थात् 'उत्पादित वस्तुओं का वितरण' के अन्तर्गत 'वितरण की कुशलता' (efficiency of distribution) को बता चुके हैं। अर्थशास्त्र की वह शाखा जो कि 'उत्पादन तथा वितरण की कुशलता' (efficiency of production and distribution) के सम्बन्ध में अध्ययन करती है उसे 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (*Welfare Economics*) कहा जाता है। अतः कुछ अर्थशास्त्री, साधनों को कितनी कुशलता के साथ प्रयोग किया जा रहा है ? (How efficiently are the resources being used ?) के नाम से अर्थव्यवस्था का एक पृथक् कार्य बताते हैं जिसके अन्तर्गत उत्पादन तथा वितरण दोनों की कुशलता सम्बन्धी बातों को शामिल करते हैं।]

---

[8] "How an economic system shall distribute or allocate or ration its total output among the various economic units of the society ?"

[9] This may have to take into consideration not only economics but politics and ethics as well

[10] कुछ अर्थशास्त्री (जैसे, Prof Knight and Prof Leftwich) इस कार्य को एक पूर्ण तथा पृथक् कार्य मानते हैं अर्थात् इसे वे तीसरे कार्य के अन्तर्गत एक उप-कार्य (sub function) नहीं मानते।

[11] The economy must ration the fixed supply in two ways First it must allocate the supply among the different consumers of the economy Second it must stretch the given supply over the time period from one harvest to the next —*Leftwich*

[12] Thus a criterion for the evaluation of an economy is that it distributes income on some ethical or rational basis, shares output in a manner that affords a high level of satisfaction for the population as a whole and encourages individuals to make the maximum productive contribution consistent with health and a happy social and psychological adjustment As these objectives of income distribution appear to be inconsistent with one another, the judgment on the basis of this criterion becomes difficult and it may be different for different individuals

[अभी तक हमने एक अर्थव्यवस्था के तीन मुख्य कार्यों का विवेचन किया जो कि साधनों तथा वस्तुओं के वितरण (allocation of resources and output) से सम्बन्धित हैं। एक 'बाजार अर्थव्यवस्था' या 'स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था' (market economy or free-enterprise economy) में ये कार्य घनिष्ट रूप से 'कीमत प्रणाली' (price system) के कार्यकरण (operation) से सम्बन्धित होते हैं। इन तीनों कार्यों को प्रायः 'व्यष्टि (या सूक्ष्म) अर्थशास्त्र' (Micro Economics) नामक एक सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है। इसके आगे के दो कार्यों का अध्ययन-दृष्टिकोण (focus) कुछ भिन्न है और उनको 'समष्टि (या व्यापक) अर्थशास्त्र' (Macro Economics) नामक सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है।]

(४) साधनों का पूर्ण प्रयोग (Full Utilization or Employment of the Resources)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि इस बात का ध्यान रखे कि साधन बेकार (idle or unemployed) न रहें, सभी साधनों (विशेषतया मानव-साधन) का पूर्ण प्रयोग हो रहा हो। यद्यपि प्रत्येक समाज साधनों को पूर्णतया प्रयोग में लाना चाहता है, परन्तु फिर भी कुछ साधन अप्रयुक्त (unutilised) रह जाते हैं। ऐसी स्थिति को 'साधनों की अनैच्छिक बेरोजगारी' (involuntary unemployment of resources) या संक्षेप में, केवल 'बेरोजगारी' (unemployment) कहते हैं। अनुभव यह बताता है कि अनेक अर्थव्यवस्थाएं 'स्पष्ट' या 'अस्पष्ट बेरोजगार' ('open' or 'disguised' unemployment) का शिकार रही हैं और अभी भी हैं। आधुनिक युग में 'साधनों का पूर्ण प्रयोग' (full employment of resources) एक **महत्त्वपूर्ण समस्या** है जिस पर प्रत्येक आर्थिक प्रणाली को अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।

इस समस्या या प्रश्न के अभिप्राय निम्नलिखित हैं

(i) किस सीमा तक एक समाज अपने साधनों का प्रयोग करने को तत्पर (willing) है? यह बात मुख्यतया इन साधनों के अनुरक्षण (conservation) के दृष्टिकोण पर निर्भर करेगी। उदाहरणार्थ, खनिज पदार्थों (minerals), जैसे—पैट्रोल, कोयला इत्यादि का यदि वर्तमान में बहुत तीव्र गति से शोषण (exploitation) किया जाता है तो वर्तमान में इनका उत्पादन अधिक होगा परन्तु भविष्य में अर्थव्यवस्था के लिए इन वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता कम हो जायगी, इसके विपरीत, यदि इन साधनों के शोषण की गति वर्तमान में कम है तो इनके प्रयोग को भविष्य में दीर्घकाल तक उचित प्रकार से फैलाया जा सकेगा।

संक्षेप में, प्रत्येक अर्थव्यवस्था को 'साधनों के प्रयोग के स्तर (level of resource use) **को निर्धारित करना पड़ेगा।**

(ii) साधनों के प्रयोग के स्तर को निर्धारित करने के बाद समाज को उस स्तर को प्राप्त करना होगा। दूसरे शब्दों में, **समाज को मानवीय तथा भौतिक साधनों का पूर्ण प्रयोग** (full employment) **करना चाहिए,** इन साधनों की अनैच्छिक बेरोजगारी' (involuntary idleness) नहीं होनी चाहिए। अनैच्छिक बेरोजगारी आर्थिक *अकुशलता की उच्चतम सीमा है।"*[13] आर्थिक कुशलता के उच्च स्तर के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था 'आर्थिक स्थिरता (economic stability) प्रदान करे अर्थात् 'कीमतों के एक स्थायी स्तर के साथ पूर्ण रोजगार' (full employment with stable level of prices) की गारण्टी प्रदान करे।
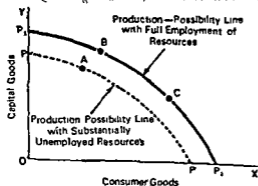
चित्र—३

[13] "Involuntary idleness is the height of economic inefficiency."

उत्पादन क्षमता में विकास या वर्द्धन (growth in productive capacity) को चित्र

चित्र—४

न० ४ द्वारा दिखाया जा सकता है। माना कि एक अर्थव्यवस्था के लिए 'उत्पादन-सम्भावना रेखा' PP है, इस रेखा PP के सन्दर्भ में बिन्दु 'F' 'वस्तुओं के अप्राप्य संयोग' (unattainable combination of commodities) को बताता है क्योंकि यह PP-रेखा के बाहर है। 'उत्पादन-क्षमता में वर्द्धन' का अर्थ है कि PP उत्पादन-सम्भावना रेखा आगे को खिसककर नयी स्थिति P_1P_1 में आ जाती है, और अब 'वस्तुओं के अप्राप्य संयोग' को बताने वाला बिन्दु 'F' नयी उत्पादन-सम्भावना रेखा P_1P_1 पर आ जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि एक अर्थव्यवस्था की वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन-क्षमता बढ़ रही है तो वस्तुओं और सेवाओं के जो 'संयोग' आज अप्राप्य (unattainable) हैं वे कल प्राप्य (attainable) हो जाते हैं।[17]

उत्पादन क्षमता में विकास या वर्द्धन (growth) का अभिप्राय (implication) है कि एक अर्थव्यवस्था लोचपूर्ण (flexible) होनी चाहिए। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं की एक मुख्य विशेषता 'परिवर्तन' (change) है। टेक्नोलोजी, उपभोक्ताओं की रुचियों तथा साधनों की पूर्तियों में परिवर्तनों का आशय है कि अर्थव्यवस्था को साधनों का महत्त्वपूर्ण पुनर्वितरण (significant reallocation) करना पड़ेगा ताकि उनके प्रयोग की कुशलता बनी रहे।[18] इसी प्रकार संकटकालीन अवस्था (emergency situation), जैसे युद्ध की दशा में या अन्य तीव्र आर्थिक परिवर्तनों की दशा में एक अर्थव्यवस्था को शीघ्रता तथा महत्त्वपूर्ण तरीके से साधनों का पुनर्वितरण करना पड़ेगा। अतः एक अर्थव्यवस्था लोचपूर्ण होनी चाहिए ताकि वह परिवर्तनों के साथ समायोजन कर सके और कुशलता के साथ अपना विकास या वर्द्धन कर सके।[19]

[अतः एक अर्थव्यवस्था के मूल्यांकन की एक कसौटी है उसकी अनुरक्षण की क्षमता, उसके विकास या वर्द्धन की दर तथा उसकी लोचपूर्णता।[20]]

[अर्थशास्त्र की वह शाखा जिसमें एक अर्थव्यवस्था के विकास की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है उसे 'आर्थिक विकास व वर्द्धन का सिद्धान्त' (*Theory of Economic Development and Growth*) कहते हैं। कार्य न० ४ तथा ५ को मिलाकर 'समष्टि (या व्यापक) अर्थशास्त्र' (Macro Economics) के सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है जैसा कि हम पहले बता चुके हैं।]

---

[17] If the economy is growing in its capacity to produce goods and services, combinations (of goods and services) that are unattainable toda become attainable tomorrow

[18] Changes in technology, consumers tastes and preferences, and resource supplies imply that an economy will have to make significant reallocations of the resources as to preserve efficiency in their use

[19] संक्षेप में, "एक कुशल अर्थव्यवस्था टेक्नोलोजीकल आविष्कारों में 'प्रगति' (progress) तथा नयी वस्तुओं के उत्पादन में 'वर्द्धन' (growth) के द्वारा ऊँचे जीवन-स्तरों की ओर अग्रसर होती है।"

An efficient economy moves forward toward higher living standards through 'progress' in technological innovations and 'growth' in output of new products"

[20] Thus *one criterion* by which an economy should be evaluated is its capacity of maintenance, rate of development or growth and flexibility.

निष्कर्ष (Conclusion)

(१) एक अर्थव्यवस्था की पाँचों केन्द्रीय समस्याओं (central problems) अथवा कार्यों (functions) के पीछे 'आर्थिक साधनों की सीमितता' की बात निहित (hidden) है। दूसरे शब्दों में उपर्युक्त पाँचों कार्य या प्रश्न 'मुख्य आर्थिक समस्या' (basic economic problem)[21] अथवा मितव्ययता की समस्या' (economizing problem)[22] के ही उप-विभाग या अंग (sub-divisions or breakdown) हैं।

(२) एक अर्थव्यवस्था के उपर्युक्त सभी पाँचों कार्य एक-दूसरे से सम्बन्धित (interrelated) होते हैं।

(३) उपर्युक्त पाँचों कार्यों की कुशलता के आधार पर ही किसी अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन (evaluation) किया जा सकता है। परन्तु एक सही और अच्छे मूल्यांकन के लिए यह भी आवश्यक है कि केवल कुशलता (efficiency) का अध्ययन ही न किया जाय बल्कि राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में उनके प्रभावों का भी आंका (assess or evaluate) किया जाये। आर्थिक प्रबन्धों (Economic arrangements) को आर्थिक कुशलता की कसौटी (test) से अधिक की सन्तुष्टि करनी चाहिए।[23]

अध्याय ३ की परिशिष्ट १ (APPENDIX 1 TO CHAPTER 3)

एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों का सम्पादन

(PERFORMANCE OF ECONOMIC FUNCTIONS UNDER A CAPITALIST ECONOMY)

एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्य (Fundamental Functions of an Economic System)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था को पाँच आधारभूत कार्यों को करना पड़ता है (१) क्या (What) उत्पादन होगा ? (२) वस्तुओं का उत्पादन कैसे (How) किया जायगा ? (३) वस्तुओं का उत्पादन किसके लिए (For Whom) किया जायेगा ? (४) साधनों का पूर्ण प्रयोग या पूर्ण रोजगार, (५) आर्थिक अनुरक्षण (maintenance), विकास तथा शोध। नीचे हम इस बात का विवेचन करते हैं कि एक पूँजीवादी स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था किस प्रकार इन पाँचों कार्यों का सम्पादन (perform) करती है।

---

[21] व [22] मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं तथा साधन सीमित हैं। अतः मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं और साधनों के बीच चुनाव (choose) करना पड़ता है अथवा 'साधनों का मितव्ययतापूर्वक प्रयोग' (economizing the resources) करना पड़ता है। 'चुनाव करने का पहलू' (choice-making aspect) या साधनों का मितव्ययतापूर्वक प्रयोग (economizing the resources) मुख्य आर्थिक समस्या है, इस मुख्य आर्थिक समस्या को संक्षेप में 'मितव्ययता की समस्या' (economizing problem) भी कह दिया जाता है।

[23] 'In judging an economic system one must not only study efficiency but also evaluate its effects in the political, social, moral and psychological spheres *Economic arrangements must meet more than the test of economic efficiency*

"An economic system that produces a large output of material things but fails to satisfy many basic desires of its population, or increases personal insecurity, supresses natural impulses, restricts movements or expression violates personal, moral and ethical codes or perpetuates and increases inequalities in opportunities and wealth cannot be considered good—unless all alternative arrangements are even worse !'

एक पूंजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था का ढांचा (Framework of a Capitalist or Free enterprise Economy)

पूंजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों पर निजी व्यक्तियों (private individuals) का स्वामित्व होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति रख सकता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतियोगिता की स्थिति के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने के दृष्टिकोण से अपने व्यवसाय का चुनने में स्वतन्त्र होता है इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की दृष्टि से वस्तुओं का चुनाव करने तथा उनका प्रयोग करने में स्वतन्त्र होता है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्यों का 'कीमत-यन्त्र' (Price *mechanism) या कीमतों की व्यवस्था (System of Prices) या 'बाजार व्यवस्था' (Market* System) के द्वारा करती है। ध्यान रहे कि यहाँ पर कीमतों का विस्तृत अर्थ लिया गया है, कीमतों का अर्थ है लाभ तथा हानि (Profit and Loss), वस्तुओं की कीमतें (Product Prices) तथा 'साधनों की कीमतें (Resource Prices)। चूंकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का सचालन तथा समन्वय (working and co-ordination) 'कीमत-यन्त्र' द्वारा होता है, इसलिए पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को कभी-कभी 'कीमत द्वारा शासन' (government by price) भी कहा जाता है।

नीचे दिया गया विवरण इस बात पर प्रकाश डालता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था किस प्रकार 'कीमत-यन्त्र' द्वारा एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्यों को पूरा करती है।

क्या उत्पादन होगा ? (*What to Produce ?*)

एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का मूल्यांकन (valuation) कीमतों द्वारा होता है और कीमतें उपभोक्ताओं की रुचि तथा आवश्यकताओं को व्यक्त (reflect) करती हैं। दूसरे शब्दों में उपभोक्ता अपनी आयों (incomes) को व्यय करके यह निर्धारित करते हैं कि किन वस्तुओं का उत्पादन होगा और किनका उत्पादन नहीं होगा।

(i) जब उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदते हैं तो हम कह सकते है कि वे उस वस्तु के उत्पादन के पक्ष में 'वोट' देते है। उपभोक्ता अपनी आयों को उन वस्तुओं पर व्यय करते हैं अर्थात् वे उन वस्तुओं के उत्पादन के पक्ष में अपने द्रव्य रूपी-वोट' (money votes) देते हैं, जिनको कि वे चाहते हैं और खरीदने की योग्यता रखते हैं। जिन वस्तुओं के लिए उपभोक्ताओं की मांग इतनी अधिक है अर्थात् जिनके लिए 'द्रव्य-रूपी वोट' इतने अधिक हैं कि उत्पादकों को सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त हो सकता है तो उत्पादक उन वस्तुओं का उत्पादन करेंगे। यदि इन वस्तुओं की माग और अधिक बढती है अर्थात् इन वस्तुओं के पक्ष में उपभोक्ता अधिक द्रव्य रूपी-वोट देते है तो वस्तुओं को उत्पन्न करने वाले उद्योग को 'सामान्य लाभ से अधिक लाभ' प्राप्त होगा ये लाभ उद्योग विशेष को बढाने के लिए सकेत या सिगनल' (signal) होंगे और इस उद्योग में वस्तु की मात्रा में वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि वस्तु विशेष की माग घटती है अर्थात् उसके पक्ष में द्रव्य रूपी-वोट बहुत कम दिए जाते है तो उस वस्तु को उत्पन्न करने वाले उत्पादकों को हानि होगी और यह हानि उद्योग विशेष के लिए उत्पादन में सकुचन (contraction) के लिए सिगनल होगी और उत्पादन कम होगा।

(ii) साधनों के पूर्तिकर्ता (*resource suppliers*) भी अपने साधनों के वितरण (allocation) के चुनाव या निर्णय के सम्बन्ध में वस्तुओं की कीमतों द्वारा निर्देशित (guide) होते हैं, और चूंकि वस्तुओं की कीमतें उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं या मांगों को व्यक्त करती है इसलिए साधनों के पूर्तिकर्ता उपभोक्ताओं की मांगों के अनुसार अपने साधनों के वितरण के सम्बन्ध में निर्णय करेंगे। जो फर्में उपभोक्ताओं द्वारा मांगी जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन करती हैं वे ही लाभ के साथ कार्य कर सकेंगी और ये फर्में ही साधनों की माग करेंगी। साधनों के पूर्तिकर्ता अपने साधनों को उन वस्तुओं के उत्पादन में वितरण करने को स्वतन्त्र नहीं होंगे जिनको कि उपभोक्ता अधिक महत्त्व नहीं देते।[14]

[14] Only those firms which produce goods wanted by consumers *can operate profitably*, only these firms will demand resources Resource suppliers will not be 'free' to allocate their resources to the production of goods consumers do not value very highly'

"इस प्रकार कीमत व्यवस्था उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को उद्योग तथा साधनपूर्तिकर्ताओं तक पहुँचाती है और उनसे उचित उत्तर (responses) निकलवाती है।"[25]

(iii) 'वस्तुओं की कीमतों' के कार्यकारण के सम्बन्ध में दो मुख्य सीमाओं (limitations) पर ध्यान देना आवश्यक है

(अ) वस्तुओं की कीमतें उपभोक्ताओं के मूल्यांकनों (consumers' valuations) को बताती है, परन्तु उपभोक्ता के मूल्यांकन अर्थव्यवस्था में अन्य परिवर्तनशील तत्वों (variables) से पूर्णतया स्वतन्त्र (independent) नहीं होते। उदाहरणार्थ, उत्पादकों या फर्मों द्वारा विज्ञापन तथा प्रसार पर बहुत अधिक व्यय प्रायः उपभोक्ताओं के मूल्यांकनों को प्रभावित करते हैं, अर्थात् उपभोक्ताओं की प्रभुता (consumers' sovereignty) की सीमाएं होती हैं। ऐसी स्थिति में वस्तुओं की कीमतें उपभोक्ताओं के मूल्यांकनों को सही रूप में व्यक्त नहीं करती। वास्तव में वस्तुओं का मूल्यांकन उत्पादकों (या फर्मों) तथा उपभोक्ताओं की पारस्परिक क्रियाओं (interactions) का परिणाम कहा जा सकता है।

(ब) उपर्युक्त विश्लेषण हमें यह बताता है कि कीमत-प्रणाली द्वारा वस्तुओं का मूल्यांकन किस प्रकार होता है? परन्तु यह हमें यह बात को नहीं बताता कि वस्तुओं का मूल्यांकन कैसा होना चाहिए? दूसरा प्रश्न नैतिक (ethical) है जो बहुत कुछ कीमत सिद्धान्त के क्षेत्र के परे कहा जा सकता है।[26] परन्तु इस नैतिक दृष्टिकोण की पूर्णतया उपेक्षा नहीं की जा सकती। थोड़ी आय वाले उपभोक्ताओं की अपेक्षा अधिक आय वाले उपभोक्ता मूल्य ढांचे (value structure) पर अधिक प्रभाव डालेंगे।[27] अतः यह सम्भव है कि कीमत प्रणाली के कार्यकरण द्वारा निर्धन व्यक्तियों की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन कम हो और धनी व्यक्तियों की विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन अधिक हो।[28] ऐसी दशा में पूर्णरूप से कार्य करते हुए भी कीमत प्रणाली ऐसे सामाजिक परिणाम ला सकती है जिन्हें हम अवांछनीय समझें और राजनीतिक प्रक्रिया के द्वारा सुधारने का प्रयत्न करें। सामाजिक सुरक्षा के माध्यम से आय का पुनर्वितरण तथा वर्द्धमान (progressive) आय-कर इसके उदाहरण है।[29]

(२) वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जायेगा? (How shall the goods be produced?)

एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत वस्तुओं के उत्पादन के संगठन (organisation of products) का कार्य 'कीमत प्रणाली' के द्वारा होता है। कीमतों के दो समूहों (sets)—वस्तुओं की कीमतों तथा साधनों की कीमतों—के द्वारा 'कीमत-प्रणाली' इस कार्य को पूरा करती है।[30]

---

[25] "The price system communicates the wants of consumers to business and resource suppliers and elicits appropriate responses"

[26] "The foregoing analysis tells us how goods actually are valued by means of a system of prices It does not tell us how goods *oughts* to be valued The latter problem is an ethical one and lies largely outside the scope of price theory"

[27] Cf "Notice that the economic election is not a democratic one, everyone does not have equal voice in the outcome The greater one's money income, the greater the number of votes he may cast"

[28] "इस बात की कल्पना की जा सकती है कि निर्धन व्यक्तियों के बच्चों के लिए दूध की अपेक्षा धनिक व्यक्तियों के कुत्तों के लिए बिस्कुटों को मूल्यों के पैमाने (scale of values) में अपेक्षाकृत ऊँचा स्थान दिया जाय बशर्ते कि काफी संख्या में धनी व्यक्ति इस दिशा में डालर (या रुपये) खर्च कराने को तैयार हों और दूध पर डालर (या रुपये) खर्च करने के लिए काफी संख्या में निर्धन व्यक्ति न हों।"

[29] The price system in such a situation, though working perfectly may lead to social consequences that we consider undesirable and attempt to rectify through the political process Income redistribution through social security and the progressive income-tax furnish examples'

[30] This is accomplished by the price system though the interaction of two sets of prices, prices of products and prices of resources"

(i) उत्पादन लागत के सन्दर्भ में वस्तुओं की कीमत विभिन्न उद्योगों में साधनों के वितरण को निर्धारित करती है,[31] जिन उद्योगों की वस्तुओं की माँग अधिक होगी उनकी वस्तुओं की कीमतें ऊँची होगी और उनमें साधनों के स्वामी अपने साधनों की अधिक पूर्ति करेंगे क्योंकि उनको साधनों की ऊँची कीमतें या प्रतिफल मिलेंगे। जिन उद्योगों की वस्तुओं की कीमतें कम होंगी उनमें साधनों की पूर्ति कम होगी। दूसरे शब्दों में, साधन निरन्तर कम प्रतिफल वाले उपयोगों (lower-paying uses) से अधिक प्रतिफल वाले उपयोगों (higher-paying uses) में अथवा कम महत्व के उपयोगों से अधिक महत्व के उपयोगों में गतिशील होते रहते हैं।[32]

(ii) साधनों की सापेक्षिक कीमतें उद्योगों में विभिन्न साधनों के समन्वय (coordination) का निर्धारित करेंगी।[33] दूसरे शब्दों में, एक उद्योग विशेष में, वास्तव में, कौनसी फर्में उत्पादन करेंगी यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वे उत्पादन के किन तरीकों का प्रयोग करती हैं तथा साधनों को किन अनुपातों में प्रयुक्त करती हैं। स्पर्द्धात्मक बाजार में उद्योग विशेष में केवल वे फर्में उत्पादन कर सकेंगी जो कि आर्थिक दृष्टि से उत्पादन की कुशलतम तकनीकों को प्रयोग करने को तत्पर हैं और उनका प्रयोग करती हैं।

(३) वस्तुओं का उत्पादन किसके लिए किया जायेगा (For whom shall the goods be produced ?)

अथवा

उत्पादित वस्तुओं का वितरण (Distribution of output)

स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं का वितरण भी कीमत प्रणाली द्वारा होता है। "वस्तु वितरण वैयक्तिक आय वितरण (personal income distribution) पर निर्भर करता है। थोड़ी आय वालों की अपेक्षा अधिक आय वाले व्यक्ति अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति में अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा प्राप्त करते हैं।"[34] व्यक्तियों की व्यक्तिगत आयें निर्भर करेंगी (i) उनके साधनों की कीमतों, तथा (ii) उनके पास साधनों की मात्राओं पर। पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्तियों का साधनों पर निजी स्वामित्व (ownership) होता है। साधनों को दी जाने वाली कीमतों तथा प्रयोग में आने वाले साधनों की मात्राओं का गुणा करने से जो राशि प्राप्त होती है वह साधनों की आयें होंगी।[35] जिन व्यक्तियों के पास साधनों की मात्राएँ अधिक हैं तथा उनके साधनों की कीमतें ऊँची हैं उनकी आयें अधिक होंगी और वे अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति में एक बड़ा हिस्सा प्राप्त कर सकेंगे अपेक्षाकृत अन्य व्यक्तियों के। व्यक्तियों द्वारा साधनों की मात्राओं का स्वामित्व समाज की संस्थात्मक व्यवस्था (institutional arrangement) द्वारा निर्धारित होगा। साधनों की कीमतें निर्भर करेंगी उनकी पूर्तियों तथा माँगों पर।

इस प्रकार साधनों की कीमतें तथा साधनों के स्वामित्व का वितरण समाज में कुल उत्पादन के वितरण को निर्धारित करता है।[36]

---

31 Prices of products in relation to the costs of producing them determine the distribution of resources among industries.

32 "Resources are moving constantly from lower paying to higher paying uses or out of less important into more important uses."

33 "The relative prices of factors determine the coordination of factors within industries"

34 "Product distribution depends upon personal income distribution Those with larger incomes obtain larger shares of the economy's output than do those with smaller incomes"

35 "When the prices paid for the factors are multiplied by the quantities of the factors which are used, the arithmetical products are the incomes of the given factors of production"

36 Thus, the factor pr ce and the distribution of ownership of resources determine the distribution of the total product among the individuals in the society

यह ध्यान में रखने की बात है कि उत्पादन के वितरण के सम्बन्ध में 'कीमत प्रणाली' का कोई नैतिक दृष्टिकोण नहीं होता। जो व्यक्ति उत्तराधिकारी (inheritance) के कारण अथवा व्यापार की अधिक योग्यता के कारण या बेईमानी के कारण सम्पत्ति के साधनों (property resources) को अधिक मात्रा में एकत्रित कर लेते हैं वे अधिक आय प्राप्त करेंगे और अर्थ व्यवस्था के कुल उत्पादन का अधिक हिस्सा लेंगे अपेक्षाकृत अन्य व्यक्तियों के।[14] इस प्रकार कीमत प्रणाली अवैयक्तिक (impersonal) होती है उसका अच्छाई बुराई से कोई सम्बन्ध नहीं होता और समाज के उत्पादन या प्राप्तिक भागों का वितरण बहुत विषम या अन्यायपूर्ण (very inequal or unjust) हो सकता है।

परन्तु उत्पादन या सम्पत्ति या द्रव्य का विषम और अन्यायपूर्ण वितरण सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता और ऐसी स्थिति में स्वतन्त्र उद्यम अर्थव्यवस्था में कुछ संशोधन (modifications) लागू करने की आवश्यकता होती है परन्तु ऐसा संशोधन कीमत प्रणाली के सञ्चालन को बहुत अधिक प्रभावित किये बिना ही किया जा सकता है। सरकार के द्वारा समाज वर्द्धमान आय कर (progressive income tax) लगा सकता है तथा कल्याणकारी कार्यों पर व्यय कर सकता है। कम आय वाले वर्गों को कई तरीकों से आर्थिक सहायता प्रदान कर सकता है।[15] इस प्रकार आय का पुनर्वितरण (redistribution) होगा और इससे समाज की सन्तुष्टि की जाने वाली आवश्यकताओं का स्वरूप (pattern) बदल जायेगा। जिन व्यक्तियों की ऊँची आयें घटेंगी वे बाजार में पहले की अपेक्षा कम प्रभावशाली हो जायेंगे तथा जिन व्यक्तियों की नीची आयें बढ़ेंगी वे बाजार में अधिक प्रभावशाली बन जायेंगे। इस प्रकार कीमत प्रणाली उत्पादन को तथा उसके वितरण को इस प्रकार पुनर्संगठित कर देगी जो कि कम विषम और कम अन्यायपूर्ण होगा।

अल्पकाल में जिन वस्तुओं की पूर्तियाँ स्थिर हैं उनको उपभोक्ताओं में वितरण या राशन का कार्य भी कीमत प्रणाली करती है। वस्तु के अभाव के कारण कीमत बढ़ जाती है जिससे प्रत्येक उपभोक्ता के द्वारा खरीदी जाने वाली मात्रा में कमी आ जाती है। कीमत उस समय तक बढ़ती रहेगी जब तक कि समस्त उपभोक्ता स्वतन्त्र स्थिर पूर्ति को लेने के लिए तैयार नहीं हो जाते। वस्तु के आधिक्य से कीमत घट जाती है जिससे उपभोक्ताओं के द्वारा खरीदी जाने वाली मात्रा उस समय तक बढ़ती जाती है जब तक कि वे बाजार से सम्पूर्ण पूर्ति नहीं उठा लेते।

कीमत के माध्यम से ही वस्तु का राशन एक समयावधि में (over a period of time) किया जाता है। इसमें सट्टे का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

(४) साधनों का प्रयोग (Full Utilisation or Employment of Resources)

पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखने के लिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था कीमत प्रणाली पर ही निर्भर करती है। रोजगार के लिए पूँजी का विनियोग महत्वपूर्ण है। बचतें पूँजी निर्माण तथा विनियोग के लिए आवश्यक हैं। बचत तथा विनियोग के बीच समायोजन (adjustment) के लिए स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था ब्याज की दर में परिवर्तनों पर निर्भर करती है। यदि समस्त विशेष में कुल बचतें अधिक हैं पूँजी की माँग (अर्थात् विनियोग) से, तो ब्याज की दर घटेगी और तब तक घटती जायेगी जब तक कि सभी प्राप्य बचतें (available savings) विनियोग में न लग जायें।

---

[14] It should be kept in mind that there is nothing particularly ethical about the price system as a mechanism for distributing the output of pure capitalism Those households which manage to accumulate large amounts of property resources by inheritance through their business acumen or by crook will receive large incomes and thus command large shares of the economy's total output Others which offer only labour resources valued low by the price system will receive meagre money incomes and small portions of total output

[15] Society through the government may levy progressive income taxes and make expenditures for welfare purposes It may subsidize low income groups in various ways

परन्तु यह दिखाया जा सकता है कि ब्याज दरों में कमी सदैव बचत और विनियोग में बराबरी स्थापित नही करती है। साधनों के 'पूर्ण रोजगार' या 'पूर्ण प्रयोग' की समस्या को हल करने की दृष्टि से स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। इसके लिए मौद्रिक तथा राजकोषीय (fiscal) नियन्त्रणों (controls) की आवश्यकता होगी जो कि अर्थव्यवस्था के सदस्यों के स्वतन्त्र निर्णयों को, बिना केन्द्रीय योजना के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के, अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करेंगे।[39]

(५) आर्थिक अनुरक्षण, विकास तथा लोच (Maintenance, Growth and Flexibility)

एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था मे उत्पादन यन्त्र (productivity apparatus) का अनुरक्षण तथा विकास करने का कार्य भी 'कीमत प्रणाली' करती है। प्रयोग में भुगत जाने वाले (used-up) पूँजीगत यन्त्रों को प्रतिस्थापित (replace) करने के लिए अन्तिम वस्तु (final product) की लागत मे घिसायी व्यय (depreciation charges) को शामिल कर लिया जाता है और इस प्रकार वस्तुओं की कीमत मे घिसायी बिल शामिल होता है। जब मशीन या पूँजीगत यन्त्र घिसकर बिलकुल बेकार हो जाते है तो घिसायी-कोष (depreciation fund) से धनराशि निकालकर उनको प्रतिस्थापित कर लिया जाता है। इस प्रकार स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था अपने उत्पादन-यन्त्र का अनुरक्षण (maintenance) करती है।

एक अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता (productivity capacity) में विकास तथा वर्द्धन (growth) के लिए तकनीकी सुधारों तथा पूँजी-सचय की आवश्यकता है और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे इनके लिए 'स्पर्द्धात्मक कीमत व्यवस्था' एक बहुत उपयुक्त तथा फलदायक वातावरण प्रदान करती है।

श्रम-शक्ति (labour force) एक अर्थव्यवस्था के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है, एक स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था में अधिक ऊँची दक्षता वाले व अधिक उत्पादक कार्यों के लिए श्रमिकों को ऊँचे प्रतिफल या कीमतें प्राप्त होगी। इन ऊँची कीमतों से प्रेरित होकर वे अपनी दक्षता मे विकास या सुधार प्रशिक्षण तथा शिक्षा की सुविधाओ के अनुसार, करने का प्रयत्न करेंगे और इस प्रकार अर्थव्यवस्था के विकास में अधिक सहयोग देंगे।

स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था में साहसी आर्थिक वर्द्धन या विकास का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन तथा सयोजक (coordinator) है। स्पर्द्धा (competition) साहसियों को नयी तकनीकों को प्रयोग करने के अवसर प्रदान करती है, जो साहसी लागत कम करने वाली तकनीकों के प्रयोग में सफल हो जाते है, व अपने प्रतियोगियों की तुलना मे अधिक लाभ प्राप्त करते हैं दूसरे शब्दों मे, अधिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा साहसियों को नयी तकनीकों को प्रयोग करने को प्रेरित करती है। दीर्घकाल में अन्य साहसियों (या फर्मों) को लागत कम करने वाली तकनीकों का प्रयोग करना पड़ेगा नही तो उन्हें हानि होगी और व प्रतियोगिता में नहीं टिक सकेंगे। इस प्रकार स्पर्द्धात्मक कीमत प्रणाली तकनीकी सुधारों को उद्योग में एक फर्म से अन्य सभी फर्मों तक ले जाती है।[40]

आर्थिक विकास और तकनीकी प्रगति (technological advance) के लिए अधिकाधिक मात्रा में पूँजी या पूँजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था में पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि दो प्रकार से की जाती है (1) साहसी जो कि लाभ के रूप

[39] It can be shown that reductions of interest rates do not always lead to the equalizing of saving and investment Therefore the free enterprise economy cannot be relied upon to solve the problem of full use or full employment' of resources It needs monetary and fiscal controls which influence the free decisions of its members indirectly, without direct interference through a central plan"

[40] It is in this way that the competitive price system communicates the technological improvement of one firm to all other firms in the industry.

से आय प्राप्त करता है, अपनी आय का एक भाग पूँजीगत वस्तुओं के संचय (accumulation) में लगा सकता है। ऐसा करने से उसको और अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है यदि उसका आविष्कार या नव-प्रवर्तन (innovation) सफल हो जाता है। (ii) इसके अतिरिक्त साहसी ब्याज पर अन्य लोगों से द्रव्य उधार लेकर पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में लगा सकता है। दूसरे शब्दों में, एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था में ब्याज की दर पूँजी के स्वामियों को अपनी पूँजी को बनाये रखने या इसमें वृद्धि करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है।[11]

वास्तव में आर्थिक अनुरक्षण (maintenance) तथा विकास के सम्बन्ध में कीमत यन्त्र का महत्व बहुत स्पष्ट नहीं है। लाभ की प्रेरणा के अतिरिक्त अन्य बातें भी उत्पादन की नयी रीतियों की खोज को प्रोत्साहित करके आर्थिक विकास में सहयोग देती हैं।[12] परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्पादन की तकनीकों के अधिकांश सुधार अधिक लाभ की खोज के प्रत्यक्ष परिणाम हैं।[13]

निष्कर्ष (Conclusion)

(१) एक आर्थिक प्रणाली के पाँचों आधारभूत कार्यों को एक पूँजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था में 'कीमत यन्त्र' पूरा करता है। इन पाँचों कार्यों को पूरा करने में कीमतें तीन बातें करती हैं। "वे सूचना (information) को प्रभावपूर्वक तथा कुशलतापूर्वक पहुँचाती हैं, इस सूचना से निर्देशित (guide) होने के लिए वे साधनों के प्रयोग करने वालों के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं, तथा साधनों के स्वामियों के लिए वे इस सूचना पर चलने के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं।"[14]

(२) कीमत प्रणाली एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया (complex process or device) है, व्यवहार में इसका कार्यकरण इतना सरल नहीं है जैसा कि उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है।

(३) कीमत प्रणाली का कार्यकरण 'पूर्ण प्रतियोगिता' पर आधारित है जबकि व्यवहार में पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है। अतः कीमत-प्रणाली के 'सैद्धान्तिक कार्यकरण' (theoretical working) तथा 'व्यावहारिक कार्यकरण' (practical working) में अन्तर रहता है, अर्थात् व्यवहार में कीमत प्रणाली के कार्यकरण में कुछ अपूर्णताएँ रह जाती हैं जिनके सुधार के लिए एक सीमित मात्रा में सरकार का हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है।

(४) कीमत-प्रणाली अवैयक्तिक (impersonal) होती है, इसका कोई नैतिक दृष्टिकोण नहीं होता है। अतः कीमत प्रणाली का कार्यकरण कुछ अनुचित परिणामों (जैसे धन व सम्पत्ति का असमान वितरण) को जन्म देता है। अतः सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से इसका सुधार तथा नियमन (regulation), एक सीमित मात्रा में तथा अप्रत्यक्ष रूप से, आवश्यक हो जाता है।

आर्थिक क्रिया का चक्राकार प्रवाह
(THE CIRCULAR FLOW OF ECONOMIC ACTIVITY)

एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्य एकसाथ (simultaneously) होते हैं तथा

---

[11] In a free enterprise economy the interest rate provides an incentive for owners of capital to maintain their capital or to add to it

[12] 'आविष्कारों और सुधारों की खोज के पीछे जो उद्देश्य होते हैं, उनको मालूम करना सदैव आसान नहीं होता है। आविष्कारक इसलिए भी आविष्कार कर सकता है कि उसे इस तरह की क्रिया रुचिप्रद होती है। बहुधा तकनीकों के सुधार ऐसी विद्वत्ता के परिणाम (by-product of scholarship) होते हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य ज्ञान को आगे बढ़ाना होता है।"

[13] "However, a large part of the improvements in productive techniques is a direct result of the quest for profit "

[14] Prices do three kinds of things in performing the five fundamental functions of an economic system They transmit information effectively and efficiently, they provide an incentive to users of resources to be guided by this information, and they provide an incentive to owners of resources to follow this information."

परस्पर निर्भर (Interdependent) होते हैं। एक स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था में इन कार्यों की पारस्परिक निर्भरता को 'चक्राकार प्रवाह' (Circular Flow) द्वारा स्पष्ट करते हैं। 'आर्थिक क्रिया के चक्राकार प्रवाह का अध्ययन हम तीन अवस्थाओं (phases) में करेंगे—(i) वास्तविक प्रवाह (Real Flows), (ii) मौद्रिक प्रवाह (Money Flows), तथा (iii) वास्तविक प्रवाह, द्राव्यिक प्रवाह और बाजार (Real Flows, Money Flows and Markets)।

वास्तविक प्रवाह (Real Flows)

एक अर्थव्यवस्था में दो मुख्य इकाइयाँ (units) या कार्यकर्ता (agents) होते हैं—(i) परिवार (households), तथा (ii) व्यावसायिक फर्में (businesses or business firms)। स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था में व्यक्तियों या परिवारों का साधनों (resources) पर स्वामित्व होता है और वे साधनों के पूर्तिकर्ता होते हैं। व्यावसायिक फर्में साधनों की माँग करती हैं क्योंकि उनकी सहायता से वे उन वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन करती हैं जिनकी परिवारों को आवश्यकता होती है।

माना कि अर्थव्यवस्था में द्रव्य का प्रयोग नहीं हो रहा है, अर्थात् हम 'वस्तु-विनिमय की अर्थव्यवस्था' (Barter Economy) की मान्यता लेकर चलते हैं। परिवार अपने साधनों की पूर्ति व्यावसायिक फर्मों को करते हैं जैसा कि चित्र न० ५ का ऊपर का भाग दिखाता है। परिवार अपने साधनों की पूर्ति के बदले में व्यावसायिक फर्मों से वास्तविक वस्तुओं तथा सेवाओं को प्राप्त करते हैं जैसा कि चित्र न० ५ का नीचे का भाग बताता है। मुद्रा के प्रयोग के अभाव में विनिमय
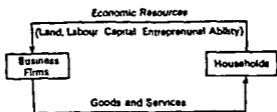
चित्र ५—वास्तविक प्रवाह (Real Flows)

(exchange) की समस्याएँ होती हैं परन्तु यह सरल चित्र 'मुख्य वास्तविक प्रवाहों' अर्थात् साधनों का प्रवाह तथा वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को स्पष्ट करता है।

मौद्रिक प्रवाह (Money Flows)

वस्तु विनिमय की कठिनाइयों से बचने के लिए आधुनिक युग में सभी अर्थव्यवस्थाएँ मुद्रा का प्रयोग करती हैं। मुद्रा विनिमय का माध्यम है और वह परिवारों तथा व्यावसायिक फर्मों के बीच लेन देन (transactions) को आसान बनाता है।

चित्र न० ६ में ऊपर के भाग में (i) दायें से बायें को जाने वाला तीर साधनों के 'वास्तविक प्रवाह' को बताता है। (ii) बायें से दायें को जाने वाला तीर मजदूरी, लगान, ब्याज और लाभ के रूप में आय के मौद्रिक भुगतानों को बताता है। ये मौद्रिक भुगतान व्यावसायिक फर्में साधनों के प्रयोग के बदले में परिवारों को देती हैं और फर्मों के लिए ये लागतें होती हैं।[45]

[45] यह ध्यान देने की बात है कि लाभ को भी फर्म की लागत में शामिल किया गया है, यहाँ लाभ का अर्थ सामान्य लाभ (normal profit) से है जो कि अर्थशास्त्रियों के अनुसार लागत का अंग होता है। अर्थशास्त्र में सामान्य लाभ का अर्थ लाभ के उस न्यूनतम स्तर से होता है जो कि एक साहसी को व्यवसाय विशेष में बनाये रखने के लिए आवश्यक है, यदि साहसी को लाभ का यह 'न्यूनतम स्तर' (अर्थात् सामान्य लाभ) प्राप्त नहीं होता है तो वह व्यवसाय विशेष में काम नहीं करेगा और वह किसी दूसरे व्यवसाय में चला जायेगा। अतः व्यवसाय विशेष में साहसी को बनाये रखने की लागत ही सामान्य लाभ है। सामान्य लाभ साहसी का न्यूनतम पूर्ति मूल्य या अवसर लागत है।

अपने साधनों के बदले में परिवारों को जो मौद्रिक आयें प्राप्त होती हैं उन्हें वे वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने में व्यय करते हैं। चित्र नं० ६ में नीचे के भाग में, (i) दायें से बायें को जाने वाला तीर परिवारों द्वारा उपभोग पर व्यय के प्रवाह (flow of consumption expenditure) को बताता है, तथा (ii) बायें से दायें को जाने वाला तीर व्यावसायिक फर्मों द्वारा उपभोक्ताओं या परिवारों को वस्तुओं और सेवाओं का प्रवाह (flow of goods and services) को बताता है। उपभोग पर व्यय का प्रवाह परिवारों के रहन-सहन की लागत (cost of living) है तथा फर्मों के लिए आय या आगम (receipts or revenue) है।
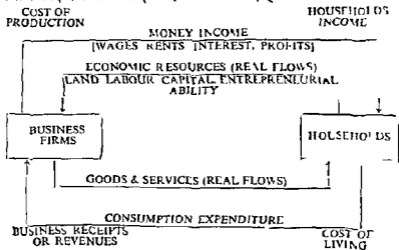
चित्र ६—मौद्रिक प्रवाह (Money Flows)

वास्तविक प्रवाह, मौद्रिक प्रवाह तथा बाजार (Real Flows, Money Flows and Markets)

पूंजीवादी या स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था में वास्तविक तथा मौद्रिक प्रवाह दो बाजारों—
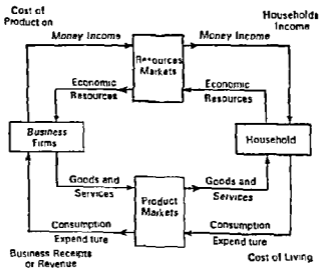
चित्र ७—वास्तविक प्रवाह, मौद्रिक प्रवाह तथा बाजार (Real Flows, Money Flows and Markets)

'साधन-बाजार' (resources markets) तथा 'वस्तु बाजार' (product markets)—के माध्यम से गुजरते हैं। चित्र न० ७ के ऊपर के भाग मे 'साधन' तथा 'मौद्रिक आय' साधन-बाजार से गुजरते हैं। साधन-बाजार मे परिवार निश्चित कीमतो पर अपने साधनों की पूर्ति करते हैं और इनके बदले मे वे व्यावसायिक फर्मों से मौद्रिक आय प्राप्त करते हैं क्योंकि फर्में साधनों की माँग करती है और उन्हें खरीदती है। स्पष्ट है कि साधन-बाजार से गुजरने वाली जो मौद्रिक आय परिवारो को प्राप्त होती है वह परिवारो द्वारा विभिन्न साधनो की पूर्ति की मात्राओं तथा उनकी कीमतो पर निर्भर करेगी। चित्र नं० ७ के नीचे के भाग म, 'उपभोक्ताओं के व्यय' तथा 'वस्तु और सेवाएँ' वस्तु-बाजारो से गुजरती है। 'उपभोग-व्यय के प्रवाह' (flows of consumption expenditure) निर्भर करेंगे खरीदी जाने वाली वस्तुओ और सेवाओ की मात्राओं तथा उनकी कीमतों पर।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक पूँजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था मे दो मुख्य बाजार होते हैं—'साधन बाजार' तथा 'वस्तु बाजार'। साधन बाजारो मे व्यावसायिक फर्में माँग पक्ष मे होगी और वे साधनो की माँग करती हैं, एव परिवार पूर्ति पक्ष मे होते हैं और वे अपने साधनो की पूर्ति करते हैं। वस्तु बाजारों म स्थिति उल्टी हो जाती है। वस्तु बाजारों मे परिवार माँग पक्ष मे होते हैं और वस्तुओ तथा सेवाओ की माँग करते है, एव व्यावसायिक फर्में पूर्ति पक्ष मे होती हैं और वे *वस्तुओ तथा सेवाओं की पूर्ति करती हैं।*

अध्याय ३ की परिशिष्ट २ (APPENDIX 2 TO CHAPTER 3)

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों का संचालन (PERFORMANCE OF ECONOMIC FUNCTIONS UNDER A SOCIALIST ECONOMY)

१ प्राक्कथन (Introduction)

प्रत्येक आर्थिक प्रणाली (चाहे वह पूँजीवाद हो या समाजवाद) को एक अर्थव्यवस्था के आधारभूत कार्यों का सम्पादन करना पडता है। एक अर्थव्यवस्था के मुख्य आर्थिक कार्य हैं: (i) 'क्या' (What) उत्पादन होगा ? दूसरे शब्दो म, किन वस्तुओ का (और उनका किन मात्राओं मे) उत्पादन किया जायेगा ? (ii) 'किस प्रकार से' (How) वस्तुओ का उत्पादन किया जायेगा ? दूसरे शब्दो मे, किन रीतियों द्वारा वस्तुओ का उत्पादन होगा ? (iii) किस के लिए' (For Whom) वस्तुओ का उत्पादन किया जायेगा ? दूसरे शब्दों म किस प्रकार से वस्तुओ (अथवा आयो) का वितरण किया जायगा ? (iv) साधनो का पूर्ण प्रयोग या पूर्ण रोजगार प्राप्त करना होगा। [दूसरे शब्दो म, *'किसके द्वारा'* (*By whom*) वस्तुओ का उत्पादन किया जायेगा ?] (v) आर्थिक अनुरक्षण (maintenance), विकास तथा लोच को प्राप्त करना होगा।

अब हम इस बात का विवेचन करेंगे कि एक समाजवादी अर्थव्यवस्था उपर्युक्त आधारभूत कार्यों का किस प्रकार सम्पादन करती है। इसका बताने म पहले यह उचित होगा कि हम एक समाजवादी अर्थव्यवस्था के ढाँचे (framework) अर्थात उसकी मुख्य विशेषताओ को संक्षेप में पुन स्मरण (brief review) कर लें।

२ एक समाजवादी अर्थव्यवस्था का ढाँचा (The Framework of a Socialist Economy)

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं (i) *अश्रम उत्पत्ति के* साधनो (non-labour means of production) जैसे—भूमि तथा पूँजी, पर सरकार या समाज का स्वामित्व होना है। (ii) उत्पादक उपक्रमों (productive enterprises) का सरकार द्वारा सचालन किया जाता है। (iii) उत्पादक उपक्रमो के लिए लाभ को अधिकतम करना मार्गप्रदर्शक-शक्ति (guiding motive) नहीं होती। (iv) सरकार या राज्य द्वारा केन्द्रीकृत नियोजन (centralised planning)।

उपर्युक्त विशेषताएँ पूँजीवाद की मुख्य विशेषताओं को समाप्त कर देती हैं। पहली विशेषता 'निजी सम्पत्ति' को समाप्त कर देती है। दूसरी विशेषता (और साथ मे तीसरी विशेषता भी) 'स्वतन्त्र उपक्रम' (free enterprise) तथा ठेके (contract) की स्वतन्त्रता को समाप्त कर देती है। दूसरी विशेषता (और साथ मे चौथी भी) उपभोक्ताओं के चुनाव की स्वतन्त्रता तथा प्रभुता (sovereignty) को खतम कर देती है। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में 'सरकार या राज्य नियोजन सत्ता' (State Planning Authority) लोगो को साधनो की पूर्ति करने, वस्तुओं के उत्पादन करने तथा कुछ प्रकार की वस्तुओं का उपभोग करने के लिए 'आदेश' (Orders or Commands) देती है, अत एक 'समाजवादी अर्थव्यवस्था' को 'आदेश अर्थव्यवस्था' (Command Economy) भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ, रूस की अर्थव्यवस्था एक 'आदेश अर्थव्यवस्था' या साम्यवादी (communist) अर्थव्यवस्था है।

३ एक समाजवादी या आदेश अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों का सम्पादन (Performance of Economic Functions Under a Socialist or a Command Economy)

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सरकार या 'केन्द्रीय नियोजन सत्ता' (Central Planning Authority) यह निर्धारित करती है कि किन वस्तुओं का उत्पादन करना है व कितनी मात्रा में करना है तथा किन रीतियों (methods) द्वारा करना है। विभिन्न व्यक्तियों में उत्पादन व आय के वितरण, तथा साधनो के रोजगार (या प्रयोग), अर्थव्यवस्था के विकास (growth) के सम्बन्ध मे निर्णय भी सरकार या नियोजन सत्ता द्वारा ही लिया जाता है। दूसरे शब्दो मे, केन्द्रीय नियोजन सत्ता विभिन्न प्रयोगो मे साधनो के बटन (allocation) का निर्धारण करती है।

अब हम एक समाजवादी या आदेश अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों के सम्पादन के बारे मे एक मोटी रूपरेखा (broad outline) प्रस्तुत करते है।

(i) वस्तुओं के उत्पादन का निर्धारण (Deciding Output of Commodities)—समाजवाद के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन व उनकी मात्राओं का निर्धारण सरकार या केन्द्रीय नियोजन बोर्ड द्वारा किया जाता है, वास्तव मे विभिन्न स्तरो पर कई नियोजन बोर्ड होते है, परन्तु ये सब केन्द्रीय नियोजन बोर्ड के अन्तर्गत कार्य करते है। यह विशेष रूप से ध्यान देने की बात है कि वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध मे निर्णय लेने की शक्ति सरकार या केन्द्रीय नियोजन सत्ता (जिसमे थोडे से व्यक्ति है) के हाथो मे होती है। केन्द्रीय सत्ता उत्पादन के ऐसे लक्ष्यो (goals) का निर्धारण कर सकती है जो समाज के व्यक्तिगत सदस्यों की इच्छाओ या पसन्दो के विपरीत हों, प्राय ऐसा होता है।

केन्द्रीय सत्ता यह भी निर्धारित करती है कि कुल उत्पादन मे से कितना उपभोग-वस्तुओं (consumption goods) तथा कितना पूँजीगत वस्तुओं (capital goods) का उत्पादन होगा, और इस प्रकार केन्द्रीय सत्ता भविष्य मे आर्थिक विकास की दर को निर्धारित करती है।

(ii) साधनो के प्रयोग व उनके बटन (allocation) का, तथा उत्पादन की रीतियो या तकनीको का निर्धारण (Deciding the Use and Allocation of Resources, and the Methods or Techniques of Production)—वस्तुओं के सामूहिक रूप से उत्पादन के निर्णय के बाद, केन्द्रीय नियोजन सत्ता उत्पादन क्रिया के समन्वय (coordination) की एक विस्तृत योजना बनाती है, केन्द्रीय सत्ता यह देखती है कि साधन अप्रयुक्त या बरोजगार न रह जायें, यह सत्ता पूर्व निर्धारित उत्पादन लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए, विभिन्न फर्मों तथा उद्योगो मे साधनो का बटन (allocation) करती है।

यह सब कैसे किया जाता है? समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत साधनो के बटन के लिए दो मुख्य रीतियाँ बतायी जाती है

(१) भूल और जांच की रीति (Trial and Error Method)

(२) इनपुट-आउटपुट नियोजन रीति (Input-Output Planning Method)

(iii) उत्पादन या आय के वितरण का निर्धारण (Deciding the Distribution of Output or Income)—अब हम इस प्रश्न को लेते हैं कि एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन (या आय) का वितरण कैसे होता है। इसका निर्धारण भी सरकार या केन्द्रीय नियोजन सत्ता करती है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में आय के वितरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें प्रभाव डालती हैं :

(अ) चूंकि उत्पादन साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है, इसलिए समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तियों द्वारा ब्याज, लगान तथा लाभ प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता; दूसरे शब्दों में, प्रत्यक्ष रूप से ब्याज, लगान तथा लाभ का अस्तित्व (existence) नहीं होता, और इसलिए, ये आय के वितरण को प्रभावित नहीं करते।

इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आय का वितरण, सरकार या केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा लिये गये निर्णयों के अनुसार, व्यक्तियों को केवल वेतन व मजदूरी के भुगतानों का रूप ले लेता है। समाजवादी (या सरकारी) उपक्रम (enterprises) वस्तुओं के विक्रय के द्वारा प्रान्तिक आय प्राप्त करते हैं। केन्द्रीय नियोजन सत्ता यह निर्धारित करती है कि इस प्रान्तिक आय में से कितना हिस्सा श्रमिकों तथा व्यक्तियों में बाँटा जाये। इस प्रान्तिक आय में से सरकार, पूंजीगत वस्तुओं की व्यवस्था (अर्थात् आर्थिक विकास), प्रतिरक्षा-उद्देश्यों तथा अन्य सामाजिक उद्देश्यों के लिए, जितना हिस्सा आवश्यक समझती है अपने पास रख सकती है। इसके अतिरिक्त, श्रमिकों को आय के रूप में जो भुगतान किया जाता है, उसमें से भी सरकार एक हिस्सा करों (अर्थात् विक्रय-करों turnover taxes) के रूप में वापस ले सकती है, [turnover taxes एक प्रकार के अप्रत्यक्ष कर होते हैं जो कि समाजवादी देश वस्तुओं की पूर्ति व माँग में सन्तुलन स्थापित करने तथा व्यक्तियों से आय का एक हिस्सा वापस लेने के लिए प्रयोग करते हैं।] अतः समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन साधनों पर स्वामित्व होने और उत्पादक उपक्रमों का संचालन करने के कारण, सरकार इस स्थिति में होती है कि राष्ट्रीय आय के उस हिस्से को जिसका कि व्यक्तियों में वितरण किया जाता है प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित (control) कर सकती है।

(ब) श्रमिकों को जो पुरस्कार (reward) या मजदूरी दी जाती है वह आवश्यक रूप से उनकी उत्पादकता के अंश (productivity contribution) पर निर्भर नहीं करती है (जैसा कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रायः होता है)। समाजवादी नियम है—'प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार लिया जाना चाहिए, तथा प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाना चाहिए' (From each according to his ability, to each according to his needs)। परन्तु व्यवहार में एक व्यक्ति या श्रमिक की मजदूरी थोड़े रूप में उसकी उत्पादकता या सामाजिक अंशदान (social contribution) के साथ परिवर्तित होती है।

(iv) आय का वितरण तथा प्रेरणाएँ (Distribution of Income and Incentives)—पूंजीवाद के अन्तर्गत साधनों को प्राप्त होने वाले पुरस्कार साधनों के लिए आर्थिक क्रिया करने हेतु प्रेरणा का कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में, पूंजीवाद के अन्तर्गत निजी स्वार्थ, ऊँचे पुरस्कार तथा लाभ उद्देश्य कड़ी मेहनत करने के लिए प्रेरणा देते हैं। संक्षेप में साधनों के पुरस्कार तथा आर्थिक क्रियाओं के लिए प्रेरणाओं के बीच घनिष्ट व सीधा सम्बन्ध होता है।

परन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत प्रेरणाओं के सम्बन्ध में स्थिति भिन्न होती है, क्योंकि उत्पत्ति के साधनों पर निजी स्वामित्व नहीं होता, निजी उपक्रम (private enterprise) बन्द ही कर या ना के बराबर होता है, और लगभग कोई बेरोजगारी नहीं होती है। अतः एक समाजवादी अर्थव्यवस्था प्रेरणाओं के लिए निजी-स्वार्थ तथा निजी लाभ उद्देश्य पर निर्भर नहीं करती है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में निम्न प्रकार की प्रेरणाओं की व्यवस्था होती है :

(अ) नैतिक प्रेरणाएँ (Moral Incentives)—ये प्रेरणाएँ निर्भर करती हैं : श्रमिकों के अपने कार्य में दिलचस्पी, अपने कार्य के करने में सन्तुष्टि व गौरव और उसके द्वारा सामाजिक कल्याण के प्रति अपने योगदान के सम्बन्ध में सामाजिक जागरूकता (social consciousness),

इत्यादि पर। इन नैतिक प्रेरणाओं को उभारने के लिए राजनीतिक अपीलों व नारों, फैक्ट्रियों में अच्छे श्रमिकों के लिए 'आदर की पुस्तकों' (books of honour) की व्यवस्था, मेडलों (medals) की व्यवस्था, इत्यादि का सहारा लिया जाता है। इन बातों से श्रमिकों को कड़ी मेहनत करने के लिए प्रेरणाएँ दी जाती हैं।

(ब) मौद्रिक प्रेरणाएँ (Monetary or Material Incentives)—ये प्रेरणाएं श्रमिकों की धन (या द्रव्य) सम्बन्धी इच्छाओं पर आधारित होती हैं। इनके अन्तर्गत श्रमिकों के कार्य की मात्रा व उसकी किस्म के अनुसार श्रमिकों को द्रव्य या वस्तुओं के रूप में पुरस्कार दिए जाते हैं। अच्छे व कुशल व्यक्तियों व श्रमिकों के वेतनों व मजदूरियों में अन्तर कर दिया जाता है। विशेष प्रेरणा फण्डों (special incentive funds) में से व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूहों को बोनस या आर्थिक लाभ प्रदान किये जाते हैं [उपक्रमों के लाभों में से एक हिस्सा को 'मौद्रिक प्रेरणाओं के फण्डों' (material incentive funds) में हस्तान्तरण (transfer) करके 'प्रेरणा-फण्डों' का निर्माण किया जाता है।]

मार्क्स (तथा लेनिन का भी) यह विश्वास था कि पूँजीवाद के नष्ट हो जाने के बाद धीरे-धीरे 'नैतिक प्रेरणाएँ' श्रमिकों को कड़ी मेहनत की ओर प्रेरित करने में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेंगी। मार्क्स के अनुसार, द्राव्यिक प्रेरणाएं असामाजिक (anti-social) होती हैं और वे पूँजीवाद की अवशेष (relics) हैं जो समय पाकर समाप्त हो जायेंगी। परन्तु रूस में समाजवाद के ५०-६० साल के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यवहार में यह विचारधारा कार्य नहीं कर सकती। वास्तव में रूस तथा अन्य समाजवादी देशों में आधुनिक सुधारों में से 'मौद्रिक प्रेरणाओं' की व्यवस्था एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सुधार है।

(स) ऋणात्मक प्रेरणाएँ (Negative Incentives)—कई दशाओं में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में श्रमिकों को कड़ी मेहनत करने के लिए विभिन्न प्रकार के दण्डों व डरों की व्यवस्था होती है तथा शक्ति का प्रयोग किया जाता है, श्रमिकों तथा व्यक्तियों को अधिक कार्य करने के लिए इस प्रकार की प्रेरणाओं को 'ऋणात्मक प्रेरणाएँ' कहा जाता है। कम कार्य करने पर श्रमिकों को जेल भेजा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ समाजवादी देशों में श्रमिक के पास एक 'श्रमिक-पुस्तक' (labour book) होती है जिसमें श्रमिक की निजी योग्यताएँ व उसके कार्यकरण का इतिहास होता है। फर्म या फैक्ट्री का सरकारी मैनेजर इस 'श्रमिक-पुस्तक' को अपने अधिकार में रखता है, और बिना इसके कोई भी श्रमिक किसी नये उद्योग, फर्म या व्यवसाय में नौकरी प्राप्त नहीं कर सकता है। इस प्रकार से एक श्रमिक अपने कार्य को स्वेच्छा से ठीक उसी प्रकार से नहीं छोड़ सकता है जिस प्रकार कि सैनिक अपनी नौकरी सेना या फौज से नहीं छोड़ सकता। यदि एक श्रमिक का कार्य कुशलता के बहुत नीचे स्तर पर है या समय पर वह अपना कार्य नहीं करता तो उसकी 'श्रमिक पुस्तक' जब्त की जा सकती है, उसको दण्डित किया जा सकता है, उसको जेल भी भेजा जा सकता है।

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों के सम्पादन की एक मोटी रूपरेखा उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होती है।

प्रश्न

1. एक आर्थिक प्रणाली क्या है ? एक आर्थिक प्रणाली के कार्यों की विवेचना कीजिए।
What is an economic system ? Discuss the functions of an economic system

अथवा

'चाहे प्रशासनिक या राजनीतिक प्रकृति कैसी भी हो, प्रत्येक समाज को कुछ मूलभूत आर्थिक प्रश्नों का समाधान ढूंढना पड़ता है।' उक्त वक्तव्य की उपयुक्त उदाहरण देते हुए समीक्षा कीजिए।
"Regardless of its political or administrative nature answers to certain basic economic questions are sought by every society" Discuss this statement by giving suitable examples
(Jodhpur, B A, 1975)

अथवा

'एक अर्थव्यवस्था को, चाहे वह पूंजीवादी हो या समाजवादी, कुछ आधारभूत आर्थिक कार्यों का सम्पादन करना होता है।' विवेचना कीजिए।

'An economic system, whether capitalist or socialist, has to perform certain basic economic functions.' Discuss

२ एक अर्थव्यवस्था के मुख्य कार्यों का वर्णन कीजिए। मुक्त उद्यम अर्थव्यवस्था (free enterprise economy) में मूल्य यान्त्रिक प्रणाली के महत्त्व को समझाइए।

Enumerate the main functions of an economic system. Explain the significance of price mechanism in free enterprise economy *(Rajasthan 1970)*

अथवा

एक स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था किस प्रकार से एक आर्थिक प्रणाली के कार्यों को पूरा करती है?

How a free enterprise economy performs the functions of an economic system?

३ एक अर्थव्यवस्था के मुख्य आर्थिक कार्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत इन आर्थिक कार्यों के सम्पादन का एक सामान्य विवेचन दीजिए।

Briefly enumerate the main economic functions of an economic system. Give a broad treatment of the performance of these economic functions under a socialist economy

4 अर्थशास्त्र का क्षेत्र
(SCOPE OF ECONOMICS)

अर्थशास्त्र की परिभाषा तथा उसका क्षेत्र परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री तथा उसका क्षेत्र अर्थशास्त्र की परिभाषा को निर्धारित करता है, तथा अर्थशास्त्र की परिभाषा उसके क्षेत्र पर प्रकाश डालती है। चूंकि अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में मतभेद रहा है इसलिए अर्थशास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में भी थोड़ा मतभेद रहा है।

अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत प्राय निम्न बातों पर विचार किया जाता है :

(१) अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री (subject matter),

(२) अर्थशास्त्र का स्वभाव (nature), इसके अन्तर्गत निम्न बातों पर विचार किया जाता है

(i) क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है ?

(ii) क्या अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान (positive science) है अथवा वह आदर्शात्मक विज्ञान (normative science) भी है ?

(iii) क्या अर्थशास्त्र एक कला (art) भी है ? अथवा क्या अर्थशास्त्र एक व्यावहारिक विज्ञान (applied science) भी है ?

अब हम उपर्युक्त बातों की अलग-अलग विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करते हैं।

अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री
(SUBJECT-MATTER OF ECONOMICS)

मनुष्य धन या द्रव्य कमाता है और धन या द्रव्य को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं पर व्यय करता है ताकि वह अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर सके। इन धन-सम्बन्धी क्रियाओं को मार्शल ने आर्थिक क्रियाएँ कहा। मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में सामान्य, वास्तविक और सामाजिक मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार, मार्शल के अनुसार, अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है।

परन्तु रोबिन्स ने इस बात को स्पष्ट किया कि केवल धन से सम्बन्धित हो जाने से ही कोई क्रिया आर्थिक क्रिया नहीं हो जाती। वास्तव में अर्थशास्त्र के आधार हैं—सीमित साधन[1] तथा आवश्यकताएँ (जो कि असीमित हैं)।

---

[1] साधनों का अर्थ है—श्रम, भूमि तथा पूंजी और इनके द्वारा उत्पादित वस्तुएँ व सेवाएँ (अर्थात् धन), परन्तु समय भी एक महत्वपूर्ण सीमित साधन है। इस प्रकार रोबिन्स ने साधनों के अन्तर्गत धन के अतिरिक्त समय को भी शामिल किया।

अर्थशास्त्र के अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि मनुष्य किस प्रकार से अपने सीमित साधनों (धन और समय) द्वारा अपनी असीमित आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने का प्रयत्न करता है। चूंकि साधन सीमित हैं तथा आवश्यकताएँ असीमित हैं, इसलिए मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता, उसे तीव्रता (intensity) की दृष्टि से, आवश्यकताओं के बीच 'चुनाव करना पड़ता है अथवा निर्णय लेना' पड़ता है। इस प्रकार, रोबिन्स के अनुसार, अर्थशास्त्र में मानव व्यवहार के 'चुनाव करने के पहलू' (*Choice making aspect*) या 'निर्णयात्मक पहलू' (*decision making aspect*) का अध्ययन किया जाता है, इन शब्दों के स्थान पर रोबिन्स ने 'आर्थिक पहलू' या 'आर्थिक समस्या' शब्दों का भी प्रयोग किया।

दूसरे शब्दों में, आवश्यकताओं के बीच चुनाव करने का अभिप्राय है कि मनुष्य उन चुनी हुई आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की दृष्टि से अपने सीमित साधनों (धन व समय) का आवटन करता है। अतः यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्र में 'सीमित साधनों के आवटन' (*allocation of resources*) का अध्ययन किया जाता है।

आवश्यकताओं के बीच चुनाव करने तथा उनकी सन्तुष्टि की दृष्टि से 'सीमित साधनों का आवटन करने' का अभिप्राय है कि मनुष्य अपने सीमित साधनों का कुशलता के साथ अर्थात् किफायत के साथ प्रयोग' करता है। अतः यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्र 'किफायत करने का विज्ञान' (*science of economising*) है।

साधनों की सीमितता के कारण ही आर्थिक समस्या' उत्पन्न होती है अर्थात् साधनों की सीमितता के कारण आवश्यकताओं के बीच 'चुनाव करने की समस्या' या 'साधनों के आवटन की समस्या' या 'साधनों को किफायत के साथ प्रयोग करने की समस्या' उत्पन्न होती है। इस प्रकार, अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री की जड़ में साधनों की सीमितता है। अतः रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को 'सीमितता का विज्ञान' (*science of scarcity*) कहा।

रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को 'सामाजिक विज्ञान' के स्थान पर 'मानवीय विज्ञान' (*human science*) कहा क्योंकि उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य के, चाहे वह समाज में रहता हो या समाज के बाहर, 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र मुख्यतया एक सामाजिक विज्ञान ही है क्योंकि मनुष्य के चुनाव करने के पहलू (या आर्थिक पहलू) का अध्ययन समाज के सदस्य के रूप में ही महत्त्वपूर्ण है।

अतः रोबिन्स के अनुसार सीमित साधनों के कुशल (या किफायत के साथ) प्रयोग द्वारा आवश्यकताओं की सन्तुष्टि को 'आर्थिक समस्या' कहा जाता है, इसको 'आर्थिक क्रिया' भी कहा जा सकता है। ध्यान रहे कि जब भी आधुनिक अर्थशास्त्री 'आर्थिक क्रिया' शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका अर्थ होता है—सीमित साधनों (धन व समय) के कुशल प्रयोग द्वारा आवश्यकताओं की सन्तुष्टि।[1]

---

[1] **पाठकों के लिए नोट**—ध्यान रहे कि यहाँ पर 'आर्थिक क्रिया' शब्द का प्रयोग, मार्शल के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण से किया गया है। मार्शल ने क्रियाओं को दो वर्गों में बाँटा—'आर्थिक क्रियाएँ' तथा 'अनार्थिक क्रियाएँ', परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री क्रियाओं का इस प्रकार वर्गीकरण नहीं करते। मार्शल के अनुसार आर्थिक क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती हैं जो कि केवल धन से सम्बन्धित हों। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार केवल धन से सम्बन्धित हो जाने से ही कोई क्रिया आर्थिक नहीं हो जाती क्योंकि उन्होंने साधन के अन्तर्गत धन के अतिरिक्त समय को भी शामिल किया। अतः सीमित साधनों (धन व समय) के कुशल या किफायत के साथ, प्रयोग द्वारा आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की क्रिया को आधुनिक अर्थशास्त्री आर्थिक क्रिया (या आर्थिक समस्या' या 'आर्थिक पहलू') कहते हैं। इसका अभिप्राय मानव व्यवहार के 'चुनाव करने के पहलू' से अथवा 'सीमित साधनों का किफायत के साथ प्रयोग' करने से, अथवा सीमित साधनों के वितरण या आवटन' से होता है, इस प्रकार सीमित साधन समय का विभिन्न प्रयोगों में आवटन आर्थिक क्रिया हो जाती है।

इस प्रकार मार्शल द्वारा बतायी गयी 'आर्थिक क्रिया तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा बताई गयी 'आर्थिक क्रिया' में अन्तर है। अब **'आर्थिक क्रिया' शब्द का प्रयोग आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण से किया जाता है।**

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री (अथवा आर्थिक क्रिया) को मुख्य चार भागों में बाँटा जाता है—उपभोग उत्पादन, विनिमय तथा वितरण। जब इन चारों भागों का सम्बन्ध व्यक्तिगत इकाइयों (Individual units) से होता है, अर्थात एक व्यक्ति द्वारा वस्तुओं का उपभोग, एक फर्म या एक उद्योग द्वारा वस्तुओं का उत्पादन, इत्यादि, तो इस प्रकार की विषय-सामग्री को व्यष्टि या सूक्ष्म अर्थशास्त्र (*Micro Economics*) कहा जाता है। इसके विपरीत जब आर्थिक क्रिया के चारों भागों का सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है, जैसे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में कुल उपभोग, कुल उत्पादन इत्यादि तो इस प्रकार की विषय-सामग्री को 'समष्टि या व्यापक अर्थशास्त्र'[3] (Macro Economics) कहा जाता है।

दूसरे शब्दों में एक अर्थशास्त्री इस बात का अध्ययन करता है कि वस्तुओं की कितनी मात्राओं (*quantities*) का उपभोग, कितनी मात्राओं का उत्पादन, कितनी मात्राओं का विनिमय, तथा कितनी मात्राओं का वितरण होता है। संक्षेप में, अर्थशास्त्र 'आर्थिक मात्राओं' (economic quantities) का अध्ययन कहा जाता है।

रोबिन्स की परिभाषा के बाद से (अर्थात १९३२ के बाद में) अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री में पर्याप्त विकास हो चुका है, मुख्यतया 'समष्टि या व्यापक अर्थशास्त्र' (Macro Economics) के क्षेत्र में बहुत विकास हुआ है। वास्तव में किसी समय विशेष में आर्थिक समस्या केवल दिए हुए सीमित साधनों के वितरण या आवंटन (allocation) की ही नहीं होती बल्कि साधनों के विकास या वृद्धि (*development or growth of resources*) की भी है ताकि भविष्य में बढ़ती हुई (व बदलती हुई) आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। अतः आधुनिक अर्थशास्त्री देश में कुल रोजगार, कुल आय तथा समस्त देश के आर्थिक विकास (या आर्थिक वर्धन) पर भी बहुत जोर देते हैं, अर्थात 'समष्टि या व्यापक अर्थशास्त्र' को अर्थशास्त्र की महत्त्वपूर्ण विषय-सामग्री मानते हैं।

अतः आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र की समस्त विषय सामग्री को, संक्षेप में, निम्न प्रकार में व्यक्त किया जा सकता है

> अर्थशास्त्र सीमित साधनों के आवंटन (या वितरण) का तथा रोजगार, आय और आर्थिक विकास (या आर्थिक वर्धन) को निर्धारित करने वाले तत्त्वों का अध्ययन करता है।[4]

क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है?
(IS ECONOMICS A SCIENCE?)

१ प्राक्कथन (Introduction)

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है या नहीं, इसकी विवेचना करने से पहले 'विज्ञान के अर्थ' को समझ लेना उचित है। विज्ञानों को प्रायः दो वर्गों में बाँटा जाता है (i) प्राकृतिक विज्ञान (*Natural Sciences*) ये जगत के अध्ययन से सम्बन्धित होते हैं [जैसे, भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र (Physics and Chemistry)]; (ii) मानसिक या सांस्कृतिक विज्ञान (*Mental or Cultural Sciences*) ये मनुष्य के मानसिक जीवन व परिवर्तनों के अध्ययन से सम्बन्धित होते हैं। सामाजिक विज्ञान वे मानसिक या सांस्कृतिक विज्ञान हैं जो व्यक्तियों की क्रियाओं को, समूह के सदस्यों के रूप में, अध्ययन करते हैं।[5]

---

[3] 'व्यष्टि या सूक्ष्म अर्थशास्त्र' (Micro Economics) तथा 'समष्टि या व्यापक अर्थशास्त्र' (Macro Economics) के विस्तृत विवरण के लिए देखिए अध्याय ८।

[4] Economics is the study of the allocation of scarce resources and of the determinants of employment, income and economic growth

[5] Social sciences are those mental or cultural sciences which deal with the activities of the individual as a member of a group

अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान कहा जाता है क्योंकि इसका उद्देश्य व्यक्तियों के 'सगठित व्यवहार' (organised behaviour) या व्यक्तियो के 'समूह व्यवहार' (group behaviour) के आर्थिक पहलुओं को समझना होता है।

अभी तक हमने विज्ञान की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी है, अब हम 'विज्ञान की परिभाषा' के सम्बन्ध में विवेचना करते हैं।

सामान्य या विस्तृत अर्थ में विज्ञान का अर्थ है एक 'व्यवस्थित या सगठित ज्ञान' अथवा 'विचारो का एक सगठित समूह'। परन्तु इस प्रकार की परिभाषा अपर्याप्त है। 'व्यवस्थित' या 'सगठित' का अर्थ है जो कि 'अव्यवस्थित न हो' या 'असगठित न हो'। यदि ऐसा है, तो ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र जो कि यह कहता है कि वह 'अव्यवस्थित नहीं' है, विज्ञान के दर्जे को प्राप्त करने का दावा करेगा।[6] विज्ञान को कुछ अच्छे तरीके से इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—

विज्ञान सिद्धान्तो या नियमों का एक समूह होता है; एक सिद्धान्त दो घटनाओं के बीच कारण व परिणाम का सम्बन्ध स्थापित करता है, ताकि यदि हम एक घटना (अर्थात्, कारण) को जानते हैं तो हम दूसरी घटना (अर्थात्, परिणाम) की भविष्यवाणी (prediction) कर सकते हैं।[7]

वास्तव मे, एक विज्ञान की एक सही व निश्चित परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है, विज्ञान की कोई भी परिभाषा स्पष्ट रूप से उसकी परिधियो (boundaries) को नही बता पाती है। अत **विज्ञान के अर्थ को समझने के लिए हमे एक विज्ञान की मुख्य विशेषताओं (main characteristics) की जानकारी प्राप्त कर लेना अधिक उचित होगा।**

जब यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या अर्थशास्त्र, एक विज्ञान है या नहीं, तो सामान्यतया इसका अर्थ होता है कि क्या अर्थशास्त्र, प्राकृतिक विज्ञानों [जैसे, भौतिकशास्त्र (Physics) या रसायनशास्त्र (Chemistry)] की विशेषताओं को ग्रहण कर सकता है या नहीं, क्योंकि एक प्राकृतिक विज्ञान अधिक निश्चित विज्ञान होता है। एक प्राकृतिक विज्ञान की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) एक *विज्ञान का दृष्टिकोण वस्तुगत (objective approach)* होता है, क्योंकि यह तथ्यो (facts) पर आधारित होता है, एक विज्ञान के अन्तर्गत व्यक्तिगत बातो (subjective elements), जैसे व्यक्तिगत मतों और भावनाओं का कोई स्थान नही होता है।

(२) यह *'व्याख्या करने की एक निश्चित शक्ति' (precise power to explain)* रखता है। विज्ञान तथ्यो पर आधारित होता है, परन्तु केवल तथ्यों को इकट्ठा करना ही विज्ञान नही है।[8] एक विज्ञान के लिए तथ्यो का क्रमबद्ध एकत्रण करना (systematic collection of facts), तथा

---

[6] In a general or broad sense science means a systematized or organised knowledge or 'systematized body of thought' But such a definition is quite inadequate 'Systematized' or 'organized implies something which is not unsystematic or not organised If so every field of knowledge stating that it is not unorganised would claim to the stature of science

[उदाहरणार्थ, हमारे विश्वविद्यालयो मे पढाये जाने वाले सभी विषय (कलाओ से लेकर जीवशास्त्र तक (from arts to zoology) विज्ञान के दर्जे को प्राप्त कर लेंगे क्योंकि उनके पाठ्यक्रम (courses) ज्ञान के एक व्यवस्थित रूप को प्रस्तुत करते हैं।]

[7] Science is a body of principles or laws a theory establishes a cause and effect relationship between two events so that if we know one event (that is the cause), we can 'predict' the behaviour of other event (that is, the effect)

[8] पोइनकेअर (Poincare) के शब्दों में "विज्ञान तथ्यो द्वारा निर्मित होना है, जिस प्रकार कि एक मकान ईंटो द्वारा निर्मित होता है। परन्तु तथ्यो को एकत्रित करना मात्र ही उसी प्रकार से विज्ञान नही है जिस प्रकार से एक ईंटो का ढेर मकान नही है।"

"Science is built up of facts as a house is built up of stones, but an accumulation of facts is no more a science than a heap of stones is a house."

—M. Poincare, quoted by Pigou, *Economics of Welfare*, p. 7.

उपर्युक्त तर्क का महत्त्व भी कम हो जाता है यदि हम निम्न बातों पर ध्यान दें

(अ) आर्थिक नियम कम निश्चित होते हैं अथवा आर्थिक भविष्यवाणियाँ कम निश्चित होती हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न होती है। अर्थशास्त्र में मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जिसके बारे में निश्चित भविष्यवाणी करना अत्यन्त कठिन है, मनुष्य स्वतन्त्र इच्छा (free will) रखता है और एक-सी परिस्थितियों में सदैव एक-सा व्यवहार नहीं करता है। परन्तु ध्यान रहे, यद्यपि एक व्यक्ति के व्यवहार की भविष्यवाणी करना कठिन है परन्तु मनुष्यों के समूह के व्यवहार (group behaviour) की भविष्यवाणी प्रायः ठीक प्रकार से और आसानी से की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक नियम प्रायः समूह व्यवहार के सम्बन्ध में ठीक उतरते हैं।

(ब) अर्थशास्त्री अनेक ऐसी सीमाओं (limitations) के अन्तर्गत कार्य करते हैं जिनसे प्राकृतिक विज्ञान (जैसे Chemistry, Physics, इत्यादि) स्वतन्त्र (free) होते हैं। इन सीमाओं के कारण ही आर्थिक नियम अथवा आर्थिक भविष्यवाणियाँ कम निश्चित या अविश्वसनीय (unreliable) होती हैं। ये सीमाएँ हैं (१) आर्थिक वास्तविकता (economic reality) अत्यन्त जटिल (complex) होती है और उसका आर्थिक विश्लेषण बहुत कठिन होता है। उदाहरणार्थ, किसी देश में करोड़ों आदमी होते हैं, हजारों तथा लाखों की मात्रा में वस्तुएँ तथा कीमतें होती हैं, इत्यादि। (२) प्राकृतिक विज्ञानों में नियन्त्रित प्रयोग (controlled experiments) किये जाते हैं, परन्तु अर्थशास्त्र में नियन्त्रित प्रयोग नहीं किये जा सकते या उनका करना अत्यन्त कठिन होता है। बाजारों का अध्ययन करके, गणित तथा सांख्यिकीय रीतियों की सहायता से, बहुत सीमित मात्रा में नियन्त्रित प्रयोग किये जा सकते हैं।

(स) इसमें सन्देह नहीं कि अर्थशास्त्र की भविष्यवाणी करने की शक्ति उतनी निश्चित और सही नहीं होती जितनी कि भौतिकशास्त्र (Physics) तथा रसायनशास्त्र (Chemistry) की होती है। मौसमशास्त्र (Meteorology) के नियम घटनाओं की भविष्यवाणी के सम्बन्ध में सदैव बिलकुल सही नहीं उतरते, परन्तु केवल इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह शास्त्र विज्ञान नहीं है। अतः अर्थशास्त्र के विज्ञान होने का अधिकार केवल इस कारण नहीं छीना जा सकता है कि उसमें निश्चितता या भविष्यवाणी की शक्ति कुछ कम है।

निष्कर्ष (Conclusion)

> उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र को विज्ञान स्वीकार करना ठीक है। वैज्ञानिक रीति के प्रयोग के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र एक विज्ञान होने के योग्य हो जाता है, अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र एक मुलायम विज्ञान (soft science) या कम निश्चित विज्ञान (inexact science) है।[11]

वास्तविक विज्ञान बनाम आदर्शात्मक विज्ञान
(POSITIVE VERSUS NORMATIVE SCIENCE)

१ प्राक्कथन (Introduction)

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, प्रश्न यह उठता है कि क्या यह केवल वास्तविक विज्ञान (positive science) ही है या यह एक आदर्शात्मक विज्ञान (normative science) भी है ? इस मत विभेद पर विचार करने से पहले यह आवश्यक है कि विज्ञान के वास्तविक पहलू तथा आदर्शवादी पहलू दोनों का अर्थ भली प्रकार से समझ लिया जाय।

वास्तविक विज्ञान 'क्या है' (what is ?) से सम्बन्ध रखता है, अर्थात् 'वास्तविक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र' आर्थिक कारणों और परिणामों के बीच सम्बन्ध को बताता है। यह आर्थिक कार्यों की अच्छाई व बुराई के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता है, केवल उनके कारणों और परिणामों पर प्रकाश डालता है। 'वास्तविक या सैद्धान्तिक कथनों (positive statements) के

[11] Economics qualifies as a science by virtue of its use of the scientific method, at the most we can say that it is a soft science or an inexact sciense

बारे में मतभेद उत्पन्न होने पर तथ्यों (facts) का प्रयोग या सहारा लेकर उन्हें दूर किया जा सकता है।

आदर्शात्मक विज्ञान 'क्या होना चाहिए ?' (what ought to be ?) से सम्बन्ध रखता है; अतः 'आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र' आर्थिक कार्यों या घटनाओं की अच्छाई तथा बुराई को बताता है, अर्थात् नैतिक निर्णय (value or moral judgments) देता है। नैतिक निर्णय मनुष्यों की भावनाओं तथा दृष्टिकोणों पर निर्भर करते हैं, इसलिए 'आदर्शात्मक कथनों' (normative statements) में मतभेद की अधिक सम्भावना रहती है और आदर्शात्मक कथनों के मतभेदों को तथ्यों (facts) का सहारा लेकर दूर नहीं किया जा सकता है।

२. आदर्शवादी पहलू पर विवाद (Controversy)

अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक विज्ञान होने के सम्बन्ध में मतभेद अर्थशास्त्र के जन्म के समय से ही है। प्राचीन आंग्ल क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मत था कि अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध वास्तविक विज्ञान है, इसके विपरीत, जर्मनी के ऐतिहासिक स्कूल (Historical School of Germany) का मत था कि अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक विज्ञान है। मार्शल तथा उनके साथियों ने भी अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू को स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में वाद विवाद २०वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में समाप्त सा हो गया था। परन्तु १९३२ में रोबिन्स ने पुनः इस विवाद को जगा दिया। प्रो० रोबिन्स अर्थशास्त्र को केवल एक वास्तविक विज्ञान मानते हैं, उसके आदर्शात्मक पहलू को स्वीकार नहीं करते हैं।

३. केवल वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में तर्क (अथवा, आदर्शवादी पहलू के विरोध में तर्क)

प्रो० रोबिन्स के *अनुसार अर्थशास्त्र का आदर्शवादी पहलू नहीं है क्योंकि ऐसा होने के* लिए हमें नीतिशास्त्र (Ethics) की सहायता लेनी होगी जबकि नीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र को मिलाया नहीं जा सकता। रोबिन्स के शब्दों में,

> दुर्भाग्यवश इन दोनों अध्ययनों को पास-पास रखने के अलावा इनसे और कोई तार्किक (logical) सम्बन्ध स्थापित करने की सम्भावना नहीं दिखायी देती। अर्थशास्त्र जांचने योग्य तथ्यों का अध्ययन करता है, जबकि नीतिशास्त्र मूल्यांकनों (valuations) तथा कर्तव्यों का। खोज के ये दोनों क्षेत्र वार्तालाप के एक ही स्तर पर नहीं हैं।[12]

रोबिन्स के लिए अर्थशास्त्र 'मूल्य सिद्धान्त' (Value Theory) है और मूल्य सिद्धान्त अर्थशास्त्र है, उसका आदर्शवादी पहलू नहीं है। रोबिन्स के शब्दों में

> "मूल्य सिद्धान्त के चारों तरफ स्वीकृति का कोई क्षेत्र नहीं है। साम्य केवल साम्य ही है।"[13]

आर्थिक साम्य की अच्छाई तथा बुराई के सम्बन्ध में एक अर्थशास्त्री कुछ भी नहीं कह सकता है, समय केवल साम्य है, अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है।

अर्थशास्त्र के केवल वास्तविक विज्ञान के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं

(1) अर्थशास्त्र की वैज्ञानिक नींव (scientific foundation) मजबूत करने के लिए उसे केवल वास्तविक विज्ञान मानना चाहिए। इस सम्बन्ध में दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं

(अ) आदर्शात्मक अर्थशास्त्र भावों पर आधारित होता है तर्क (logic) पर नहीं। अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, इसलिए इसका आधार भी, अन्य विज्ञानों की भांति,

---

[12] "Unfortunately it does not seem logically possible to associate these two studies in any form but mere juxtaposition. *Economics deals with ascertainable facts, ethics with valuation and obligations. The two fields of enquiry are not on the same plane of discourse.*" —L. Robbins

[13] "There is no penumbra of approbation around the theory of value. Equilibrium is just an equilibrium." —Robbins

तर्कशास्त्र (logic) है। अतः अर्थशास्त्र की वैज्ञानिक नींव तब ही मजबूत होगी जबकि उसे केवल वास्तविक विज्ञान ही माना जाये।

(ब) यदि अर्थशास्त्र को केवल विशुद्ध वास्तविक विज्ञान म रखा जाये तो इसकी प्रगति बहुत कुछ रुक जायेगी। 'क्या है ?' सम्बन्धित खोजों (enquiries) के बारे में मत विभेद होने की सम्भावना बहुत कम रहेगी जबकि 'क्या होना चाहिए ?' खोजें बहुत अधिक वाद विवाद तथा मत विभेद को जन्म देंगी और इसलिए अर्थशास्त्र की प्रगति म बडी रुकावट हो जायेगी।

(ii) अच्छे श्रम विभाजन (better division of labour) का तर्क, अर्थशास्त्रियों को सारे कार्य, अर्थात् किसी विषय में कारण और परिणाम में सम्बन्ध को स्थापित करना, उस विषय की अच्छाई तथा बुराई को बताना तथा सुझाव देना, स्वयं नहीं करने चाहिए। उन्हें तो केवल पहले कार्य अर्थात् किसी विषय में 'कारण' तथा 'परिणाम' के बीच सम्बन्ध स्थापित करने पर ही पूरा ध्यान देना चाहिए और अन्य कार्यों को राजनीतिज्ञों या दूसरे लोगों पर छोड देना चाहिए। यदि एक अर्थशास्त्री स्वयं ही सारे कार्य करेगा तो पहले कार्य में दक्ष नहीं हो सकेगा।

(iii) अर्थशास्त्री के गलत समझे जाने (misunderstanding) की, या भ्रम (confusion) पैदा होने की सम्भावना बनी रहेगी, यदि वास्तविक तथा आदर्शवादी दोनों पहलुओं को मिला दिया जाता है। दोनों पहलुओं के मिलाने से एक अर्थशास्त्री को अपनी प्रत्येक खोज के सम्बन्ध म अच्छाई या बुराई के रूप म मूल्यांकन (value judgment) देना होगा और इसी अवस्था म उसका कार्य-भार बहुत बढ जायेगा और यदि वह ऐसा नहीं करता है तथा चुप रहता है तो लोग यह सोचेंगे कि अर्थशास्त्री तत्सम्बन्धी खोजों से सहमत है, जबकि यह जरूरी नहीं है। अर्थशास्त्री के गलत समझे जाने की सम्भावनाएँ सदैव बनी रहेंगी।

४ अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू होने के पक्ष मे तर्क (अथवा वास्तविक विज्ञान के विपक्ष में तर्क)

अनेक अर्थशास्त्री (जैसे Fraser, Wolfe, Hawtrey, Hendersan and Quandt, इत्यादि) अर्थशास्त्र को आदर्शात्मक विज्ञान मानते हैं। 'अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू होने के सम्बन्ध में निम्न तर्क ध्यान देने योग्य है

(i) मनुष्य केवल तार्किक (logical) ही नहीं, वरन भावुक (sentimental) भी होता है। अर्थशास्त्र मे हम मनुष्य जैसा है उसका वैसा ही अध्ययन करते हैं, और चूँकि मनुष्य तार्किक तथा भावुक दोनों एकसाथ ही है इसलिए अर्थशास्त्र में मानव व्यवहार के दोनों दृष्टिकोणों का अध्ययन आवश्यक है, अर्थात् अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान के साथ-साथ आदर्शात्मक विज्ञान मानना जरूरी है।

(ii) दोनों पहलुओं को अलग-अलग करना गलत श्रम-विभाजन है। यह उचित नहीं है कि एक अर्थशास्त्री किसी विषय का अध्ययन करे, उसके 'कारण' तथा 'परिणाम' के सम्बन्ध को बताये और जब निर्णय देने की बात हो तो यह कार्य एक राजनीतिज्ञ या किसी अन्य व्यक्ति को दे दिया जाय। ऐसा करने से श्रम तथा शक्ति में बचत नहीं होगी क्योंकि जो अन्य व्यक्ति निर्णय देगा उसे दुबारा 'कारणों' तथा 'परिणामों' को समझना होगा। अर्थशास्त्री ही निर्णय देने के लिए योग्यतम (competent) व्यक्ति है।[14]

---

[14] प्रो० पी० सी० जैन का कथन इस सम्बन्ध मे उचित है एक गलत श्रम विभाजन हानिकारक हो सकता है। ऐसा श्रम विभाजन विचित्र तथा असगत (fantastic) होगा जिसमें कि एक व्यक्ति खाना खाये तथा दूसरा केवल पानी पीये। एक दौड म यह बात वास्तव में विचित्र होगी कि एक व्यक्ति सारी दूरी दौडे और जब वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने को हो तो कोई और उसका स्थान ले ले। इसी प्रकार, यदि अर्थशास्त्र 'कारण' तथा 'परिणाम' के सम्बन्ध का अध्ययन करता है तथा यह निर्णय कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए किसी दूसरे पर छोड देता है तो यह समय तथा शक्ति का मितव्ययतापूर्वक प्रयोग न होकर इनकी बर्बादी होगी।

(iii) अर्थशास्त्री पर भावनाओं और दृष्टिकोणों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता, अर्थात् 'वास्तविक अर्थशास्त्र' (positive economics) भी पूर्णतया वस्तुगत (objective) नहीं रह सकता। एक अर्थशास्त्री उतना वस्तुगत नहीं रह सकता जितना कि एक भौतिकशास्त्री (physicist) या एक रसायनशास्त्री (chemist), क्योंकि अर्थशास्त्र में हम निर्जीव वस्तुओं का नहीं बल्कि मानव तथा मानव-व्यवहार का अध्ययन करते हैं। इस सम्बन्ध में निम्न दो मुख्य बातें ध्यान देने योग्य हैं :

(अ) तथ्यों के अध्ययन तथा आँकड़ों के एकत्रण (computation) के चुनाव में कभी कभी पक्षपात किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, आय के वितरण में पूँजीवादी अर्थशास्त्री (bourgeois economists) राष्ट्रीय आय में श्रम के हिस्से पर ध्यान देते हैं जबकि मार्क्सवादी अर्थशास्त्री 'अतिरिक्त मूल्य की दर' (rate of surplus value) या 'शोषण' पर ध्यान देते हैं।'[15]

(ब) नीति सुझावों (policy recommendations) को प्रभावित करने की दृष्टि से 'वास्तविक अर्थशास्त्र' ऐसे शब्दों पर निर्भर करता है जो कि बहुत अधिक 'मूल्य से भरे हुए' (value loaded) होते हैं। पूँजीवादी पक्ष की ओर से 'कल्याण', 'दक्षता', 'उपयोगिता' तथा 'उत्पादकता' शब्दों का प्रायः प्रयोग किया जाता है। समाजवादियों और नियोजनकर्ताओं की ओर से 'प्रावैगिक' (dynamic), 'नियोजित' तथा 'संरचनात्मक' (structural) 'विशेषणों' (adjectives) का मुख्यतया प्रयोग किया जाता है। अमरीका में जिसे 'स्वतन्त्र उपक्रम' तथा 'आर्थिक स्वतन्त्रता' कहते हैं, उन्हें रूस में 'शोषण की स्वतन्त्रता' कहते हैं। वास्तविक अर्थशास्त्र में 'शोषण' शब्द ही केवल एक ऐसा शब्द नहीं है जो कि एक 'संज्ञा' (noun) नहीं रह गया बल्कि एक 'शोर' (noise) बन गया है।[16]

(iv) यदि अर्थशास्त्र को 'समाज के उत्थान के लिए एक यन्त्र' (an engine of social betterment) का कार्य करना है तो उसके आदर्शात्मक पहलू को भुलाया नहीं जा सकता है। अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान (social science) है, इसलिए उसका कोई महत्त्व नहीं रह जायेगा यदि वह सामाजिक कल्याण की वृद्धि के दृष्टिकोण से उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई पर निर्णय न दे तथा समाज की आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए नीति-सुझाव (policy recommendations) न दे। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान मानने से वह फीका और अरुचिकर (colourless or disgusting) हो जायेगा।

(v) आर्थिक नियोजन (economic planning) का बढ़ता हुआ प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू को छोड़ा नहीं जा सकता। वुल्फ (Wolfe) के अनुसार बिना आदर्शवादी पहलू के अर्थशास्त्र की स्थिति 'हेमलेट नाटक' में से उसके नायक हेमलेट को निकाल देने की भांति हो जायेगी।

---

15 "The very facts to be studied and statistics to be computed can sometimes be selected in a biased manner For example in dealing with distribution of income bourgeois economists concern themselves with the labour share in the national income and Marxist ones with the rate of surplus value or exploitation ..

16 Even in positive economics there is the reliance on terms which except to disinfected experts are heavily value loaded with a view to influencing policy recommendations. Welfare efficiency utility' and productivity' are frequent examples on the capitalist side. *Dynamics planned and structural'* are favourite adjectives of socialists and planners What is called free enterprise and economic freedom in the United States is freedom to exploit in the Soviet Union 'Exploitation is by no means the only term in positive economics which has ceased to be a noun and has become a noise"

निष्कर्ष (Conclusion)

अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक विज्ञान होने के पक्ष तथा विपक्ष में महत्वपूर्ण तर्कों का विवेचन किया जा चुका है। परन्तु आज भी आधुनिक अर्थशास्त्री इस सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। दो स्पष्ट स्कूल (या विचारधाराएँ) हैं

(i) *Samuelson Boulding* इत्यादि विख्यात अर्थशास्त्री **अर्थशास्त्र को एक वास्तविक विज्ञान मानते हैं।** अर्थशास्त्र एक विज्ञान है सेम्युलसन के शब्दों में, "सही या गलत उद्देश्यों से सम्बन्धित मूल प्रश्नों को विज्ञान द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता है।"[17] एक वैज्ञानिक या एक विशेषज्ञ के रूप में अर्थशास्त्री को आर्थिक कार्यों के परिणामों को बताना चाहिए। अर्थात् सलाह देनी चाहिए ताकि राजनीतिज्ञ या अन्य लोग नैतिक निर्णय का उचित चुनाव (selection) कर सकें। प्रो० बोल्डिंग के शब्दों में, **"अर्थशास्त्री चुनावों का अध्ययन करता है, उनका मूल्यांकन नहीं करता।"** (*'The economist studies the choices he does not judge them'*)

(ii) *Fraser, Henderson and Quandt, Liebhafsky*, इत्यादि आधुनिक अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को आदर्शात्मक विज्ञान भी मानते हैं। इनके अनुसार अर्थशास्त्रियों को सलाह देने वाले केवल एक विशेषज्ञ (expert or technician) के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि *Heilbroner* के शब्दों में, अर्थशास्त्री का एक **'सांसारिक दार्शनिक'** (worldly philosopher) की भांति होना चाहिए जो कि समाज को एक दिशा (direction) दे सके। आधुनिक युग में आर्थिक विकास की समस्याएँ अर्थशास्त्र का केन्द्र बिन्दु (focal point) बन गयी है और ऐसी अवस्था में अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू को नहीं छोड़ा जा सकता है। अतः "अर्थशास्त्री का कार्य केवल व्याख्या या खोज करना ही नहीं, बल्कि समर्थन और निन्दा करना भी है।"[18]

अर्थशास्त्र एक कला के रूप में
(ECONOMICS AS AN ART)
अथवा
आर्थिक नीति
(ECONOMIC POLICY)

१ प्राक्कथन कला का अर्थ (Introduction · Meaning of 'Art')

क्या अर्थशास्त्र एक कला है? अथवा, क्या अर्थशास्त्री आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए आर्थिक नीतियों का निर्माण कर सकता है? इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है, परन्तु मतभेद के स्वभाव (nature of controversy) को समझने से पहले यह आवश्यक है कि हम यह जान लें कि '[illegible] अभिप्राय [illegible] नीति' शब्द का क्या अर्थ है।

कला का अर्थ [illegible] नीतियाँ [illegible] ना चाहिए [illegible] निये से [illegible] ना चाहिए के सर्वोत्तम ढंग से है। दूसरे शब्दों में, जे० एन० केन्स [illegible]) के अनुसार, "कला एक दिये हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नि[illegible] प्रणाली है।"[19] **विज्ञान तथा कला एक दूसरे के पूरक** (complementary) हैं। किसी भी बात का क्रमबद्ध ज्ञान (systematic knowledge) तो विज्ञान है और व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के लिए उस ज्ञान का क्रमबद्ध प्रयोग (systematic application), अर्थात् आर्थिक नीतियों का निर्माण (formulation of economic policy), कला है।

'कला' अर्थात 'अर्थशास्त्र की कला' (*Art of Economics*) या *'अर्थशास्त्र कला के रूप में'* (Economics as an art)—इन शब्दों के स्थान पर आधुनिक अर्थशास्त्री **'व्यावहारिक अर्थशास्त्र'**

---

[17] 'Basic questions concerning right and wrong goals to be pursued cannot be settled by science as such

[18] 'The function of the economist is not only to explain and explore but also to advocate and condemn'

[19] "An art is a system of rules for the attainment of a given end"

(*Applied Economics*) या 'नीति अर्थशास्त्र' (*Policy Economics*) शब्दों का प्रयोग करते हैं।

जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र कला के रूप में' वाक्यांश का अर्थ है 'आर्थिक नीतियों' का निर्माण करना। वास्तव में 'अर्थशास्त्र की कला' अथवा 'आर्थिक नीति' एक विस्तृत शब्द है, आर्थिक नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन बातें शामिल होती हैं

(i) आर्थिक नीति को लागू करने वाले सगठन (organisation) का रूप सरकार हो सकती है, या एक संस्था या एक व्यक्ति, प्राय आर्थिक नीति का अर्थ राष्ट्र के लिए आर्थिक नीति से होता है और ऐसी स्थिति में आर्थिक नीति को लागू करने वाला सगठन होता है सरकार।

(ii) हम क्या (*what*) चाहते हैं ? अर्थात हमारे साध्य या उद्देश्य (ends or goals) क्या हैं ?

(iii) उनको कैसे (*how*) प्राप्त किया जाये ? अर्थात साध्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए साधनों व तरीकों (means) का प्रयोग।

२. 'अर्थशास्त्र के कला होने' अथवा 'आर्थिक नीति' के सम्बन्ध में विवाद का स्वरूप (Nature of controversy over 'Economics as an Art' or 'Economic Policy')

अधिकांश अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि अर्थशास्त्र एक कला है, अर्थात अर्थशास्त्रियों को आर्थिक नीतियों का निर्माण करना चाहिए (ताकि आर्थिक समस्याओं को हल किया जा सके)। परन्तु इस सम्बन्ध में 'आर्थिक नीति' के अन्तर्गत ऊपर बताये गये तीनों बिन्दुओं (points) में से दूसरे बिन्दु—अर्थात हमारे साध्य या उद्देश्य 'क्या' हैं ?—पर विवाद है, अर्थात, अर्थशास्त्रियों को इन उद्देश्यों को स्वय निर्धारित करना चाहिए अथवा उन्हें बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में, विवाद (controversy) का स्वरूप इस प्रकार है—

(i) क्या अर्थशास्त्रियों को, आर्थिक उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई बताते हुए (आर्थिक उद्देश्यों को स्वय निर्धारित करना चाहिए और उसके बाद), आर्थिक नीतियों का निर्माण करना चाहिए, अथवा 'आर्थिक नीति सिफारिशें' (economic policy recommendations) को प्रस्तुत करना चाहिए। इस विचारधारा के अन्तर्गत मार्शल, पीगू तथा उनके समर्थक हैं।

अथवा

(ii) क्या अर्थशास्त्रियों को उद्देश्यों को बाहर से (अर्थात राजनीतिज्ञों या सरकार द्वारा) दिया हुआ मानकर आर्थिक नीतियों का निर्माण करना चाहिए। अर्थशास्त्रियों को उद्देश्यों की अच्छाई बुराई से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। इस विचारधारा के अन्तर्गत रोबिन्स तथा उनके समर्थक हैं।

अब हम उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं के पक्ष तथा विपक्ष में तर्कों का विवेचन करते हैं।

३ उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई बताते हुए अर्थशास्त्री 'आर्थिक-नीति सिफारिशें' (economic policy recommendations) प्रस्तुत कर सकते हैं।

इस विचारधारा के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं

(१) अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, उसे उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई को बताते हुए आर्थिक समस्याओं के हल करने के उपाय बताने चाहिए। पीगू (Pigou) के अनुसार,

"हमारी मनोदशा एक दार्शनिक की-सी नहीं होती, अर्थात हम ज्ञान की खोज केवल ज्ञान के लिए नहीं करते, बल्कि हमारी मनोवृत्ति एक डाक्टर की-सी होती है जो कि ज्ञान को स्वस्थ करने के लिए प्रयोग करता है।"[20]

---

[20] our impulse is not the philosopher s impulse knowledge for the sake of knowledge but rather the physiologist s knowledge for the healing that knowledge may help to bring'
—Pigou, *The Economics of Welfare*, p 5

अर्थशास्त्र के ज्ञान का मूल्य इसलिए नहीं है कि वह प्रकाशदायक (light bearing) है, बल्कि इसलिए है कि वह फलदायक (fruit-bearing) है।

(२) अनेक आर्थिक समस्याएँ विशुद्ध आर्थिक (purely economic) होती हैं, जैसे बैंक-दर, विनिमय-दर, मुद्रा तथा साख सम्बन्धी समस्याएँ। यदि इनसे सम्बन्धित उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई बताते हुए इनका हल अर्थशास्त्री नहीं बतायेंगे तो और कौन बतायेगा? इनके हल के लिए नीति-निर्माण में अर्थशास्त्री ही सबसे अधिक योग्य (competent) हैं।

(३) आज लगभग प्रत्येक देश में आर्थिक नियोजन (economic planning) किसी न किसी रूप में अपनाया जा रहा है। किसी देश की सरकार का आर्थिक सलाहकार (economic adviser) या नियोजन आयोग (planning commission) उद्देश्यों को पूर्व निश्चित करता है, उनकी अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में देश के अर्थशास्त्री भाग लेते हैं और उनको हल करने के लिए व्यावहारिक आर्थिक नीतियाँ बताते हैं।

४. उद्देश्यों को दिया हुआ मानकर ही अर्थशास्त्री 'आर्थिक नीति-सुझाव' (economic policy suggestions) दे सकते हैं।

इस सम्बन्ध में निम्न तर्क दिये जाते हैं

(१) अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, इसलिए एक अर्थशास्त्री वैज्ञानिक के रूप में, उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं दे सकते। राजनीतिज्ञों या अन्य लोगों द्वारा निर्धारित किये गये उद्देश्यों को अर्थशास्त्रियों को दिया हुआ मान लेना चाहिए। अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि अर्थशास्त्री उद्देश्यों को दिया हुआ मानकर ही नीति-निर्माण में सहयोग दें।

[उदाहरणार्थ, एक अर्थशास्त्री का कार्य यह बताना नहीं है कि हमारे देश में राष्ट्रीय आय का वितरण उचित है या अनुचित तथा आय का वितरण किसी दूसरी प्रकार का होना चाहिए। इस बात का निर्धारण तो 'सामाजिक नीतिशास्त्र' (social ethics) के विचारक (thinkers) ही कर सकते हैं। प्रजातन्त्रीय देशों में समाज के लिए उद्देश्यों का निर्धारण राजनीतिक फोरमों (political forums) में तथा प्रजातन्त्रात्मक तरीकों (democratic processes) द्वारा जैसे सदन (parliament) में बहुमत द्वारा, होता है। यदि राष्ट्र धन के वितरण के एक प्रकार (pattern) को निर्धारित कर देता है, तो अर्थशास्त्री का कार्य इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधनों तथा तरीकों को बताना है। इसका अभिप्राय यह है कि अर्थशास्त्रियों को एक दिये हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न उपायों या नीतियों के परिणाम को सलाह के रूप में पेश करना चाहिए ताकि सरकार या राजनीतिज्ञ उनमें से किसी नीति को चुन (select) सकें। इस प्रकार अर्थशास्त्रियों की सलाह नीति-निर्धारण की प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है।][११]

(२) अधिकांश आर्थिक समस्याएँ विशुद्ध आर्थिक (pure economic) नहीं होती हैं। आर्थिक समस्याओं पर राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक बातों का भी प्रभाव पड़ता है। अत ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि केवल आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर ही एक अर्थशास्त्री आर्थिक समस्याओं का हल करने के लिए उचित नीति का निर्माण कर सके या निश्चित नीति के नुस्खे (definite policy prescriptions) दे सके। दूसरे शब्दों में, ऐसी स्थिति में अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी नीति या उपाय केवल सुझावों के रूप में' (suggestive type) हो सकती है।

(३) यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि यदि अर्थशास्त्र विज्ञान होने के नाते निश्चित नीति सिफारिशें (definite policy recommendations) नहीं दे सकता है तो फिर

---

[११] Thus the advice of economists can become crucial or significant in the process of a policy decision.

व्यवहार में हम अर्थशास्त्रियों (professional economists) को स्पष्ट रूप से (publicly) नीति-सिफारिशों को बनाते हुए क्यों पाते हैं ? इसका उत्तर निम्न दो भागों में पाया जायेगा

(i) किसी भी देश में कुछ उद्देश्य ऐसे होते हैं जिन्हें सामान्य रूप से सभी लोग स्वीकार (accept) करते हैं, जैसे—पूर्ण रोजगार, आर्थिक विकास, मूल्य स्थायित्व (price stability) इत्यादि । व्यवहार में जब अर्थशास्त्री नीति-सिफारिशें करते हैं, तो वे ऐसा इन 'सामान्यतया स्वीकृत उद्देश्यों' (generally accepted goals) के आधार पर करते हैं ।

[उदाहरणार्थ, जब एक अर्थशास्त्री मन्दी (recession) के समय में करों में कमी की सिफारिश करता है तो उसके पीछे वह इस सामान्यतया स्वीकृत नैतिक निर्णय (value judgment) को लेकर चलता है कि पूर्ण रोजगार, बेरोजगारी से अच्छा है ।]

(ii) कई बार अर्थशास्त्री, सामान्यतया स्वीकृत उद्देश्यों के आधार पर नहीं, बल्कि अपने स्वयं के मूल्यांकनों (his own value judgments) के आधार पर नीति-सिफारिशें पेश करते हैं । इस सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं

किसी भी अन्य वैज्ञानिक की भाँति, एक अर्थशास्त्री के भी दो रूप हो सकते हैं—'एक वैज्ञानिक के रूप में' तथा 'एक नागरिक के रूप में ।'[22] दूसरे शब्दों में,

> "एक अर्थशास्त्री, एक भौतिकशास्त्री की भाँति, दो टोप लगा सकता है । सभी नागरिकों की भाँति एक अर्थशास्त्री का यह अधिकार है कि वह राष्ट्र के उद्देश्यों की बहस में भाग ले । वह एक राजनीतिक प्रशासन (political administration) के लिए टैक्नीकल सलाहकार की तरह भी कार्य कर सकता है और इस स्थिति (capacity) में वह एक अर्थशास्त्री की भाँति ही नहीं बल्कि एक राजनीतिक व्यक्ति की तरह भी कार्य कर सकता है ।"[23]

निष्कर्ष (Conclusion)

(i) अर्थशास्त्री की विषय-सामग्री के स्वभाव के कारण अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णय से अलग करना वास्तव में कठिन है । यद्यपि आर्थिक समस्याओं के प्रति अपने दृष्टिकोण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री वस्तुगत (objective) होने का प्रयत्न कर सकते हैं, परन्तु उनके लिए, मनुष्य होने के नाते, आर्थिक बातों पर अपने नैतिक तथा राजनीतिक विश्वासों (ethical and political beliefs) के प्रभाव से बचना कठिन है । दूसरे शब्दों में, एक अर्थशास्त्री के व्यक्तित्व (*personality*) को 'एक वैज्ञानिक के रूप में' तथा 'एक नागरिक के रूप में' विभाजित (split) कर देना कठिन है ।

(ii) उपर्युक्त कठिनाइयों के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अर्थशास्त्रियों को वस्तुगत (objective) होने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए । अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि उद्देश्यों को दिया हुआ मानकर ही उन्हें आर्थिक नीति के निर्माण में सहयोग देना चाहिए, ऐसा करने से ही अर्थशास्त्र को 'विज्ञान का पूरा दर्जा' (full stature of science) प्राप्त होने में सहायता मिलेगी ।

---

[22] एक भौतिकशास्त्री (physicist) 'एक वैज्ञानिक के रूप में' (*as a scientist*) एटम-बाम्ब बना सकता है, परन्तु एटम-बाम्ब बनाया जाय या न बनाया जाय वह इसके बारे में नीति सिफारिश नहीं कर सकता । यदि वह एटम-बाम्ब की अच्छाई-बुराई को बताकर नीति-सिफारिश करता है तो वह ऐसा 'एक नागरिक के रूप में' (as a citizen) करता है । इस प्रकार एक भौतिकशास्त्री या एक रसायनशास्त्री (chemist) के, या किसी भी अन्य वैज्ञानिक के, दो रूप हो सकते हैं— एक वैज्ञानिक के रूप में' तथा 'एक नागरिक के रूप में ।'

[23] "An economist like a physicist can wear two hats. Like all citizens the economist has the right to engage in debate about our national goals. He can also serve as technical adviser to a political administration and act in this capacity not only as an economist but also as a political person."

प्रश्न

१. "अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री की जड़ में साधनों की सीमितता है।" इस कथन के सन्दर्भ में अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री की पूर्ण विवेचना कीजिए।

"Scarcity of resources lies at the root of the subject-matter of Economics." In the light of this statement discuss fully the subject matter of economics.

२. अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के दावे की जाँच कीजिए।

Examine the claim of Economics to be a Science.

३. "अर्थशास्त्र साधनों का अध्ययन करता है, उद्देश्यों का अध्ययन इसके क्षेत्र के बाहर है।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

"Economics deals with means, the study of ends lies outside its scope." Examine the statement critically. *(Rajasthan, 1969, Bihar, 1961)*

अथवा

"अर्थशास्त्री का कार्य केवल व्याख्या और खोज करना ही नहीं वरन् समर्थन तथा निन्दा करना भी है।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

"The function of the economist is not only to explain and explore but also to advocate and condemn." *Justify this statement.* *(Meerut & Agra)*

अथवा

"अर्थशास्त्र वास्तविक तथा नीति-प्रधान विज्ञान दोनों है।" इसकी विवेचना कीजिए।

"Economics is both a positive as well as a normative science." Discuss. *(Kanpur, B. A., 1974)*

अथवा

"अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है।" विवेचना कीजिए।

"Economics is neutral between ends as such." Discuss.

अथवा

"अर्थशास्त्र का सम्बन्ध चाहे जिससे हो, पर उसका सम्बन्ध भौतिक कल्याण के कारणों से नहीं है।"—रोबिन्स विवेचना कीजिए।

"Whatever economics is concerned with, it is not concerned with the causes of material welfare." —*Robbins* Discuss. *(Bihar and Indore)*

अथवा

"अर्थशास्त्र जाँचने योग्य तथ्यों का अध्ययन करता है, जबकि नीतिशास्त्र मूल्यांकनों (Valuations) तथा कर्तव्यों का। खोज के ये दोनों क्षेत्र वार्तालाप के एक ही स्तर पर नहीं हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

"Economics deals with ascertainable facts, ethics with valuations and obligations. The two fields of enquiry are not on the same plane of discourse." Discuss this statement fully.

अथवा

"मूल्य सिद्धान्त के चारों तरफ स्वीकृति का कोई क्षेत्र नहीं है। साम्य केवल साम्य ही है।" पूर्णतया विवेचना कीजिए।

"There is no penumbra of approbation around the theory of value. Equilibrium is just an equilibrium." Discuss fully.

[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर एक ही है। 'वास्तविक विज्ञान बनाम आदर्शात्मक विज्ञान' के सम्बन्ध में विवाद की पूर्ण विवेचना कीजिए]

४. "हमारी मनोदशा एक दार्शनिक की-सी नहीं होती अर्थात् हम ज्ञान की खोज केवल ज्ञान के लिए नहीं करते, बल्कि हमारी मनोवृति एक डाक्टर की होती है जो ज्ञान को स्वस्थ करने के लिए प्रयोग करता है।"—पीगू। विवेचना कीजिए।

"Our impulse is not the philosopher's impulse, knowledge for the sake of knowledge, but rather the physiologist's knowledge for the healing that knowledge may help to bring"—*Pigou*. Discuss (*Agra, B A I*, 1972)

[संकेत—इस प्रश्न के उत्तर में इस बात की विवेचना कीजिए कि अर्थशास्त्र एक कला है, देखिए पृष्ठ ६५]

५. आप आर्थिक नीति से क्या समझते हैं? आर्थिक नीति-निर्माण के बारे में अर्थशास्त्रियों की भूमिका के सम्बन्ध में विवाद की पूर्ण विवेचना कीजिए।

What do you understand by 'economic policy'? Discuss fully the nature of controversy on the role of economists in economic policy formulation

[संकेत—इस प्रश्न का उत्तर वही है जो कि प्रश्न न० ४ का है देखिए पृष्ठ ६५]

5 आर्थिक सिद्धान्त, वास्तविकता तथा आर्थिक नीति

[ECONOMIC THEORY, REALITY AND ECONOMIC POLICY]

[पाठकों के लिए नोट :—अर्थशास्त्र के सभी विद्यार्थी 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' (Principles of Economics) अथवा 'आर्थिक सिद्धान्त' (Economic Theory) पढ़ते हैं, परन्तु, प्राय वे आर्थिक सिद्धान्त के अर्थ तथा स्वभाव (Meaning and Nature of Economic Theory) को सही रूप मे नहीं समझते हैं और इस कारण उनके मस्तिष्क मे एक गलत धारणा रहती है कि 'आर्थिक सिद्धान्त' तो केवल 'सिद्धान्त' ही होता है, उसका वास्तविकता (reality) से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। परन्तु सही बात तो यह है कि 'सिद्धान्त' (theory) तथा 'वास्तविकता' (reality) म घनिष्ट सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार से 'आर्थिक सिद्धान्त' (Economic Theory) तथा 'आर्थिक नीति' (Economic Policy) मे भी सम्बन्ध होता है। इस अध्याय मे इन सब बातो का स्पष्टीकरण किया गया है।]

आर्थिक सिद्धान्त
(ECONOMIC THEORY)

१ प्राक्कथन (Introduction)

हम, अर्थशास्त्री के रूप मे, वास्तविक व जटिल ससार मे देखी जाने वाली आर्थिक समस्याओ या आर्थिक तथ्यो को समझना चाहते है ताकि उन पर नियन्त्रण करने के प्रयत्न किये जा सकें। इस सन्दर्भ मे असम्बन्धित तथ्य (unrelated facts) सहायक नही हो सकते। अत एक अर्थशास्त्री देखे गये तथ्यो (observed facts) को एक क्रम म व्यवस्थित (systematise) करता है ताकि आर्थिक समस्याओं के कारण और परिणाम के सम्बन्ध को जाना जा सके, इन व्यवस्थित तथ्यो (systematised facts) के आधार पर ही एक अर्थशास्त्री सामान्य आर्थिक नियम बनाता है। मोटे रूप म (in a broad sense), आर्थिक तथ्यो को इस प्रकार एक क्रम में व्यवस्थित करना (systematisation of facts) तथा उनका विश्लेषण करना ही आर्थिक सिद्धान्त (Economic Theory) है।

२ आर्थिक सिद्धान्त का अर्थ तथा स्वभाव (The Concept and Nature of Economic Theory)

आर्थिक सिद्धान्त देखे गये आर्थिक तथ्यों (observed economic facts) में सम्बन्धों के रूपो (patterns of relationship) को बताता है। आर्थिक सिद्धान्त को इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

"आर्थिक सिद्धान्त एक तार्किक तथा व्यवस्थित ढाँचा प्रदान करता है जो कि इस बात को व्याख्या करता है कि एक बात दूसरी से किस प्रकार सम्बन्धित है।

आर्थिक सिद्धान्त पारस्परिक निर्भरताओं तथा कारण और परिणाम के सम्बन्धों से रिश्ता रखता है।"[1]

आर्थिक सिद्धान्त में कुछ मान्यताएं (assumptions) होती हैं जिनके आधार पर 'बौद्धिक प्रयोग' (Intellectual experiments) किये जाते हैं, अर्थात् निगमन तर्क (Deductive reasoning) द्वारा कारण और परिणाम के बीच सामान्य सम्बन्धों के अभिप्रायों (implications) या निष्कर्षों (predictions) का अध्ययन किया जाता है और इसके बाद इन निष्कर्षों की वास्तविक तत्वों के साथ जाँच की जाती है। यदि आर्थिक सिद्धान्त की वास्तविक तथ्यों द्वारा पुष्टि होती है तो उसे स्वीकार कर लिया जाता है अन्यथा उसे त्याग दिया जाता है तथा उसमें या तो सुधार किया जाता है या उसके स्थान पर किसी दूसरे अच्छे व श्रेष्ठ सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है।

आर्थिक सिद्धान्त की दो मुख्य विशेषताएं या पक्ष (*features or aspects*) हैं—(i) वे 'सामान्य कथन' (Generalisations) होते हैं तथा (ii) उनमें अमूर्तताएं (Abstractions) होती हैं। अब हम इन दोनों पक्षों या विशेषताओं की नीचे थोड़े विस्तार के साथ विवेचना करते हैं।

(i) सामान्य कथन (*Generalisations*)—प्रायः आर्थिक तथ्यों में बहुत विभिन्नता होती है, कुछ व्यक्ति तथा संस्थाएं एक दिशा में कार्य करते हैं और कुछ दूसरी दिशा में। अतः ऐसी स्थिति में आर्थिक सिद्धान्त (Economic Theories or Principles) औसतों या सांख्यिकीय सम्भावनाओं (Averages or Statistical Probabilities) के शब्दों में व्यक्त किये जाते हैं। इस प्रकार आर्थिक सिद्धान्त सामान्य कथन होते हैं, उनके अपवाद (exceptions) हो सकते हैं और वे परिमाणात्मक रूप से अपूर्ण या कम निश्चित (Quantitatively Imperfect or Imprecise) हो सकते हैं।

(ii) अमूर्तताएं (*Abstractions*)—वास्तविक संसार अत्यन्त जटिल है, उसको एक अर्थशास्त्री एकदम नहीं समझ सकता जब तक कि 'अमूर्तता' या 'सरलीकरण' (simplification) का सहारा न लिया जाये। वास्तविक आर्थिक आँकड़ों से कोई भी अर्थ निकालने के लिए यह आवश्यक है कि उनका वर्गीकरण (classification) किया जाये तथा उन्हें एक ढाँचे (framework) में व्यवस्थित (systematise) किया जाये। दूसरे शब्दों में,

> जटिल संसार को समझने के लिए सरलीकरण (simplification) आवश्यक है, विस्तृत तथा अनावश्यक सूचना (detailed and irrelevant information) का छोड़ना ही सरलीकरण है और इस 'सरलीकरण' को ही 'अमूर्तता' (abstraction) कहते हैं। अमूर्तता की प्रक्रिया के अन्तर्गत जिन वास्तविक परन्तु अनावश्यक या अनुपयुक्त बातों को त्याग दिया जाता है उनकी क्षतिपूर्ति (compensation) इस बात से हो जाती है कि समझने की शक्ति में, जो कि आर्थिक सिद्धान्त प्रदान करता है, वृद्धि हो जाती है।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आर्थिक सिद्धान्त की दो विशेषताएं हैं—(i) सामान्य कथन (*generalisations*) तथा (ii) अमूर्तताएं (*abstractions*)। ये दोनों विशेषताएं आर्थिक सिद्धान्त के स्वभाव को बताती हैं। 'आर्थिक सिद्धान्त' (या 'आर्थिक विश्लेषण') का मुख्य स्वभाव है कि वह 'वास्तविकता के पूर्ण यौवन' (*full bloom of reality*) को नहीं बताता, वह वास्तविकता की केवल एक 'रूपरेखा' (outline), या 'माडल' (model) या 'नक्शा' (map) है। दूसरे शब्दों में,

> "आर्थिक विश्लेषण (या आर्थिक सिद्धान्त) आर्थिक जीवन का एक पूर्ण चित्र नहीं होता, वह उसका केवल एक नक्शा होता है। जिस प्रकार से हम एक नक्शे से यह

---

1 Economic theory provides a logical and organised framework which helps to explain how one thing relates to another Economic theory is concerned with interdependencies, with relationships of cause and effect.'

2 Under the process of abstraction what is omitted is compensated or outweighed by the increase in the power of understand ng that the theory provides

आशा नहीं करते कि वह प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक मकान और जमीन पर घास की प्रत्येक पत्ती बतायेगा, उसी प्रकार हमें आर्थिक विश्लेषण (या आर्थिक सिद्धान्त) से यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वह आर्थिक व्यवहार की प्रत्येक सूक्ष्म बात तथा प्रत्येक हेर-फेर या तोड़-मोड़ (quirk) को शामिल करेगा। एक नक्शा जो बहुत अधिक विस्तृत है और बहुत अधिक सूक्ष्म बातों को दिखाता है उसकी, नक्शे के रूप में, कोई उपयोगिता नहीं रह जाती है। *परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी आर्थिक* नक्शे (अर्थात आर्थिक सिद्धान्त) अच्छे नक्शे रहे हैं बल्कि उनमें से अनेक वास्तविकता की मोटी रूपरेखा को भी बनाने में गलत सिद्ध हुए हैं। परन्तु फिर भी हम एक नक्शे (अर्थात सिद्धान्त) की खोज करते हैं, न कि एक विस्तृत चित्र की।[3] संक्षेप में, आर्थिक सिद्धान्त केवल वास्तविकता के सार (essence) को पकड़ता है।[4]

३. आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य (Purpose of Economic Theory)

यद्यपि आर्थिक सिद्धान्त सरलीकरणों तथा अमूर्तताओं (simplifications and abstractions) से सम्बन्धित होते हैं, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि आर्थिक सिद्धान्तों का अध्ययन 'एक बेकार की कसरत' (an useless exercise) है। वास्तव में आर्थिक सिद्धान्त आर्थिक बातों को व्यवस्थित ढंग से देखने के लिए सैद्धान्तिक यन्त्र (tools) प्रदान करते हैं[5] और आर्थिक सिद्धान्त का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है :

"आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य व्याख्या करना, निष्कर्ष निकलना या भविष्यवाणी करना तथा नियन्त्रण करना है।"[6]

अब हम उपर्युक्त तीनों उद्देश्यों का थोड़ा विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

(i) **व्याख्या करना (Explanation)**—आर्थिक सिद्धान्त वास्तविक जगत में विशाल तथा गुथे हुए आँकड़ों में से उपयुक्त व सम्बन्धित तत्त्वों (relevant facts) के चुनाव तथा उनके वर्गीकरण व क्रमस्थापन (*classification and systematisation*) में सहायता करके आर्थिक घटनाओं के कारण और परिणाम के बीच सम्बन्ध का एक ढाँचा (a pattern of relationship) बताता है, और इस प्रकार उन शक्तियों की व्याख्या करता है जो कि आर्थिक घटनाओं को निर्धारित करती हैं। दूसरे शब्दों में,

आर्थिक सिद्धान्त एक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण (operation) के समझने में एक महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है।[7]

(ii) **निष्कर्ष निकालना या भविष्यवाणी करना (Prediction)**—आर्थिक सिद्धान्त की 'व्याख्या करने की शक्ति' (power of explanation) जन्म देती है 'भविष्यवाणी करने या निष्कर्ष निकालने की शक्ति' (power of prediction) को। चूँकि आर्थिक सिद्धान्त 'आर्थिक परिवर्तनशील तत्त्वों या आर्थिक चरों' (economic variables) के बीच सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त करता है, इसलिए आर्थिक सिद्धान्त यह बता सकता है या यह भविष्यवाणी कर सकता है कि यदि 'आर्थिक बातों' या 'आर्थिक चरों' में परिवर्तन होता है तो उसके क्या परिणाम होंगे।

---

[3] "Economic analysis is not a perfect picture of economic life, it is a *map* of it. Just as we do not expect a map to show every tree, every house, and every blade of grass in a landscape so we should not expect economic analysis (that is, economic theory) to take into account every detail and quirk of real economic behaviour. A map that is too detailed is not of much use as a map. This is not to say of course, that all the economic maps have been good maps, for many of them have falsified even the broad outlines of reality. But it is a map that we are looking for, and not a detailed portrait."

[4] *In short, an economic theory* captures the bare essence of reality

[5] In fact, economic theories provide theoretical tools for orderly ways of looking at economic things

[6] The purpose of economic theory is to explain, predict and control

[7] उदाहरणार्थ, आर्थिक सिद्धान्तों (economic theories or principles) की सहायता से हम यह समझ सकते हैं कि कीमतों में परिवर्तन क्यों होते हैं ? बेरोजगारी क्यों उत्पन्न होती है ? वस्तुओं की कमी तथा अधिकता क्यों होती है ? इत्यादि।

परन्तु आर्थिक नियमों या सिद्धान्तो की भविष्यवाणी करने की शक्ति उतनी सही व निश्चित नही होती जितनी प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानो की। आर्थिक सिद्धान्तों की भविष्यवाणी करने की शक्ति कई कारणों से सीमित (limited) होती है। मुख्य कारण हैं—(i) आर्थिक सिद्धान्त का रिश्ता उन सम्बन्धो से होता है जो कि मानवीय निर्णय लेने (human decision-taking) पर निर्भर करता है और मानवीय निर्णयो के बारे म पूर्ण निश्चितता के साथ नहीं बताया जा सकता है। (ii) अर्थशास्त्री आँकडो के विशाल समूह में से उपयुक्त तथ्यों (relevant facts) को अलग करने के लिए 'नियन्त्रित प्रयोग' (controlled experiments) नही कर सकते हैं क्योंकि अर्थशास्त्र मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित होता है। (iii) कई स्थितियों मे आर्थिक सिद्धान्तों को जाँचने के लिए सामग्री या आँकडे (data) पर्याप्त मात्रा म प्राप्य (*available*) नही होते हैं।

आर्थिक सिद्धान्त की भविष्यवाणी करने की शक्ति की स्थिति को हम निम्न शब्दों मे व्यक्त कर सकते हैं

> **आर्थिक सिद्धान्त एक निश्चित व सही भविष्यवाणी नहीं कर सकता, वह एक बुद्धिमानी का अनुमान (educated guess) प्रदान करता है। आर्थिक सिद्धान्त इस बात की भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि क्या निश्चित है, वह इस बात की भविष्यवाणी कर सकता है कि क्या सम्भाव्य (probable) है।**[*]

(iii) नियन्त्रण (Control)—आर्थिक चरों (economic variables) के 'सम्बन्धों की जानकारी' आर्थिक घटनाओ या परिणामो की 'भविष्यवाणी' सम्भव बनाती है, और भविष्यवाणी आर्थिक घटनाओ या परिणामों के 'नियन्त्रण' को सम्भव करती है। दूसरे शब्दो मे, 'नियन्त्रण' का अर्थ है 'आर्थिक नीति का निर्माण' (formulation of economic policy) ताकि सम्भावित परिणामो पर नियन्त्रण किया जा सके, और यदि किसी घटना का नियन्त्रण सम्भव न हो सके तो भविष्यवाणी के कारण कम से कम उस घटना के परिणामो के साथ समायोजन (adjustment) करने की तैयारी[9] के लिए उचित समय मिल जाता है।[10] दूसरे शब्दों म,

> **यदि हमे आर्थिक सिद्धान्त की ठोस व गहरी पकड (firm grasp) है तो हम यह बताने की स्थिति मे होते हैं कि दिये हुए उद्देश्यों को कितनी अच्छी प्रकार से या किस तरीके से प्राप्त किया जा सकता है। अत आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य आर्थिक नीति को समझने मे सहयोग प्रदान करना है।**[11]

४. आर्थिक सिद्धान्त तथा वास्तविकता (Economic theory and Realism)

यदि हम आर्थिक सिद्धान्त के अर्थ तथा उसके स्वभाव को ध्यान म रखें तो यह स्पष्ट होगा कि आर्थिक सिद्धान्त कोरा सिद्धान्त ही नहीं होता बल्कि उसका वास्तविकता म सम्बन्ध होना है। परन्तु फिर भी हम आर्थिक सिद्धान्त क अवास्तविक या अव्यावहारिक होने की कभी-कभी एक आलोचना इन शब्दो म सुनते हैं—

> "यह सिद्धान्त मे ठीक है परन्तु व्यवहार मे ठीक नहीं है।"
> (*'It is all right in theroy but not in practice'*)

---

* Economic theory cannot make an exact and positive prediction it can provide an educated guess Economic theory cannot predict what is certain it can predict what is probable

[9] हम एक अनार्थिक उदाहरण देते हैं वर्षा होने की भविष्यवाणी करने की शक्ति हमे मौसम पर नियन्त्रण प्रदान नही करती परन्तु हम बरसाती कोट व छाता ले जाने की तैयारी के लिए समय अवश्य देती है ताकि वर्षा के परिणामो के साथ समायोजन किया जा सके अर्थात् उनसे बचा जा सके।

[10] Or if we cannot control an event at least we gain from prediction invaluable time to prepare for adjusting to its consequences."

[11] If we have a firm grasp of economic theory, we are in a position to indicate how best, or in what manner the given goals may be achieved Thus, the purpose of economic theory is to permit an understanding of economic policy

इस प्रकार की आलोचना 'सिद्धान्त और वास्तविकता' (economic theory and reality) या 'सिद्धान्त तथा तथ्य' (theory and facts) के सही सम्बन्ध की अज्ञानता पर आधारित है; कोई भी सिद्धान्त ठीक नहीं हो सकता यदि उससे तथ्यों का समर्थन प्राप्त न हो (no theory can be all right if it does not hold up against the facts)।

यदि उपर्युक्त आलोचना का कहने वाला समझदारी की बात कर रहा है (if talking sense), तो आलोचना के निम्न अभिप्राय हो सकते हैं

(अ) वह एक अच्छा सिद्धान्त नहीं है क्योंकि वह वास्तविक संसार की व्याख्या करने में सहायक नहीं है।

अथवा

(ब) तथ्यों के अपर्याप्त आधार पर या प्राप्त तथ्यों के अपर्याप्त सर्वेक्षण (survey) पर आधारित जल्दबाजी के सामान्य कथनों के प्रति आलोचक एक महत्त्वपूर्ण विरोध (protest) प्रकट कर रहा है।[12]

अथवा

(स) यह एक अच्छा सिद्धान्त है परन्तु उसका अकुशलता के साथ (inexpertly) प्रयोग किया जा रहा है।

यदि आलोचक (critic) का अभिप्राय इन तीनों में से नहीं है तो वह मूर्खता (nonsense) की बात कर रहा है।

ऐसा सिद्धान्त जो व्यवहार (practice) में ठीक नहीं है वह एक खराब सिद्धान्त है और उसमें सुधार की आवश्यकता है या उसके स्थान पर नये सिरे से किसी दूसरे अच्छे सिद्धान्त के निर्माण की आवश्यकता है।

वास्तव में 'आर्थिक सिद्धान्त व वास्तविकता' (economic theory and realism) या 'आर्थिक सिद्धान्त व तथ्य' (economic theory and facts) के बीच विरोध झूठा है, सच तो यह है कि वे एक-दूसरे के पूरक (complementary) हैं :

> तथ्य व सिद्धान्त पारस्परिक निर्भर होते हैं। सिद्धान्त वास्तविक तथ्यों पर आधारित होता है। सिद्धान्त तथ्यों को उपयोगी व अर्थपूर्ण बनाता है, तथ्य स्वयं गूंगे (dumb) होते हैं, वे कुछ बता सकें तो इसके लिए उन्हें एक क्रम में रखना होगा, तथ्यों का क्रमस्थापन व विश्लेषण ही सिद्धान्त है। परन्तु सिद्धान्त के वास्तविकता या सत्यता (validity) की जाँच के लिए तथ्यों का प्रयोग किया जाता है। सिद्धान्त व्यवहार की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है, परन्तु आर्थिक व्यवहार समयावधि (overtime) में परिवर्तित होता रहता है, इसलिए यह आवश्यक है कि सिद्धान्त को वास्तविक तथ्यों के साथ निरन्तर जाँच या पुष्टि करते रहना चाहिए।[13]

५. आर्थिक सिद्धान्त की सीमाएँ या खतरे (Limitations or Dangers of Economic Theory)

आर्थिक सिद्धान्त वास्तविकता के सरलीकृत रूप (simplifications of reality) होते हैं, इसलिए उनकी कुछ सीमाएँ या खतरे हैं जिन्हें अर्थशास्त्री मानते हैं। मुख्य सीमाएँ या खतरे अग्रलिखित हैं।

---

[12] The critic is offering a "valuable protest against hasty generalisations on an insufficient basis of facts or an inadequate survey of available facts"

[13] Facts and theories are interrelated It is on actual facts that theory is based Theory makes facts useful and meaningful, facts by themselves are dumb, before they will tell us anything we have to arrange them the arrangement and interpretation of facts is theory But facts are used to judge the reality or validity of theory Theory attempts to explain behaviour, but economic behaviour changes overtime, and therefore, it is necessary to check and test constantly the theory against actual behaviour of facts

(i) एक अर्थशास्त्री उपयुक्त तथा अनुपयुक्त तथ्यों (relevant and irrelevant facts) के बीच सही अन्तर व चुनाव करने मे गलती कर सकता है। यदि अर्थशास्त्री कुछ उपयुक्त तथ्यों (relevant facts) को छोड देता है तो प्राप्त सिद्धान्त भ्रमकारी व अपूर्ण (misleading and incomplete) होगा। यदि अर्थशास्त्री अधिकांश उपयुक्त तथ्यों को छोड देता है और केवल थोडे से तथ्यों के आधार पर आर्थिक सिद्धान्त बना डालता है तो ऐसा सिद्धान्त 'अत्यधिक काल्पनिक' (hyperabstract) हो सकता है जिसका वास्तविकता से कोई भी सम्बन्ध न रह गया हो।

(ii) इस बात का डर हो सकता है कि कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक सिद्धान्त का प्रयोग करते समय उसकी मान्यताओं को ध्यान मे न रखें। उदाहरणार्थ, एक सिद्धान्त जिसमें यह मान लिया जाता है कि एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय को इस प्रकार से व्यय करेगा कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो, उस स्थिति मे ठीक नहीं उतरेगा जहाँ पर उपभोक्ता अपनी उपयोगिता को अधिकतम करने की बात से प्रभावित होकर व्यवहार नहीं करता है। हम यह नहीं भूलना चाहिए कि 'सरलीकृत (simplified) आर्थिक सिद्धान्त' और 'वास्तविकता' के बीच बहुत-सी बातें छोड दी जाती हैं, तथा आर्थिक सिद्धान्त वास्तविकता की केवल एक रूपरेखा या नक्शा ('outline' of 'map' of reality) है।

(iii) इस बात का डर हो सकता है कि हम आर्थिक सिद्धान्त से कुछ नैतिक गुणों (moral or ethical qualities) की आशा करने लग जायें। वास्तव मे आर्थिक सिद्धान्त तो केवल विश्लेषणात्मक यन्त्र (analytical tools) होते है जिनका नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, वे 'क्या है?' के सम्बन्ध मे सामान्य कथन (generalisations) होते हैं, उनका 'क्या होना चाहिए?' से कोई रिश्ता नहीं होता।

६. निष्कर्ष (Conclusion)

आर्थिक सिद्धान्त के अर्थ व स्वभाव उसके उद्देश्य तथा उसकी सीमाओ व खतरो का विवेचन करने के बाद दो निष्कर्ष हमारे समक्ष है

(i) अर्थशास्त्र का सिद्धान्त ऐसे सुनिश्चित निष्कर्ष प्रदान नहीं करता है जिनका कि नीति के रूप मे तत्काल ही प्रयोग हो सके। यह तो एक रीति (method) है, न कि एक विश्वास (doctrine), यह मस्तिष्क का एक यन्त्र तथा विचार करने की एक तकनीक (technique) है, जो इसके अधिकारी को सही निष्कर्ष प्राप्त करने मे सहायता करती है।[14]

(ii) आर्थिक सिद्धान्त एक काल्पनिक व बौद्धिक खिलौना (imaginary and intellectual toy) नहीं होता जिसका कि वास्तविकता (reality) से कोई सम्बन्ध न हो, वह सिद्धान्त जिसकी नींव वास्तविकता या तथ्यो मे नहीं होती वह एक अच्छा सिद्धान्त नहीं होता। परन्तु साथ ही आर्थिक सिद्धान्त 'वास्तविकता के पूर्ण यौवन' (full bloom of reality) को भी नहीं बनाता, वह तो वास्तविकता की मोटी रूपरेखा (rough outline) को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों मे,

> आर्थिक सिद्धान्त वास्तविकता का केवल एक 'नक्शा' होता है, वह वास्तविकता का एक 'फोटोग्राफिक चित्र' नहीं होता, वह वास्तविकता के केवल 'सार' (essence) को पकडता है।[15]

---

[14] "The theory of economics does not furnish a body of settled conclusions immediately applicable to policy It is a method rather than a doctrine an apparatus of the mind, a technique of thinking which helps its possessor to draw correct conclusions."

[15] Economic theory is only a 'map' of reality, it is not a 'photographic picture' of reality, it simply captures the 'essence' of reality

आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति में सम्बन्ध
(ECONOMIC THEORY AND ECONOMIC POLICY—THEIR INTERRELATIONSHIP)

१. प्रावकथन (Introduction)

वास्तव म 'आर्थिक सिद्धान्त' तथा 'आर्थिक नीति' एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं, आर्थिक सिद्धान्त आर्थिक नीति निर्माण म महत्वपूर्ण तरीके से सहयोग प्रदान करता है, तथा आर्थिक नीति भी आर्थिक सिद्धान्तों के निर्माण में सहायक होती है।

इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना करने से पहले यह उचित होगा कि 'आर्थिक सिद्धान्त' तथा आर्थिक नीति शब्दों के अर्थों को समझ लें।

'आर्थिक सिद्धान्त' को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

> "आर्थिक सिद्धान्त एक तार्किक तथा व्यवस्थित ढाँचा प्रदान करता है जो कि इस बात की व्याख्या करता है कि एक बात दूसरी से किस प्रकार सम्बन्धित है। आर्थिक सिद्धान्त पारस्परिक निर्भरताओं तथा कारण और परिणाम के सम्बन्धों से रिश्ता रखता है।"[16]

आर्थिक सिद्धान्त की दो मुख्य विशेषताएँ या पक्ष (features or aspects) हैं—(i) वे 'सामान्य कथन' (*generalisations*) होते हैं, तथा (ii) उनमें अमूर्तताएँ (abstractions) होती हैं।[17]

आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य व्याख्या करना तथा निष्कर्ष निकालना या भविष्यवाणी करना है, और इसलिए वह नियन्त्रण म सहयोग देता है।[18]

अब हम 'आर्थिक नीति' की धारणा को लेते हैं। 'आर्थिक नीति' या 'नीति' शब्द को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं

> नीति एक दिये हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नियमों की एक प्रणाली है।[19]

अथवा

> "शब्द 'नीति' सामान्यतया उन सिद्धान्तों को बताता है जो कि दिये हुए साध्यों की प्राप्ति के लिए क्रियाओं को नियमित या शासित करते हैं।"[20]

'आर्थिक नीति' एक विस्तृत शब्द है, आर्थिक नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन बातें शामिल होती हैं

(i) साध्य या उद्देश्य (ends or goals)—हम 'क्या चाहते' हैं? (*What we want?*), अर्थात हमारे साध्य या उद्देश्य क्या हैं?

(ii) साधन या रीतियाँ (*means or techniques or methods*)—साध्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए साधनों या तरीकों का प्रयोग।

(iii) संगठन या समूह का स्वभाव जो कि नीति को लागू करता है (the nature of the organisation or group which implements the policy)—'संगठन' का

---

[16] 'Economic theory provides a logical organised framework which helps to explain how one thing relates to another Economic theory is concerned with interdependencies with relationships of cause and effect"

[17] दूसरे शब्दों म, वास्तविक संसार को समझने के लिए कुछ मान्यताओं को लेकर चलना तथा 'सरलीकरण' (simplification) करना जरूरी है, विस्तृत और अनावश्यक सूचना का छोड़ना ही 'सरलीकरण' है और इस 'सरलीकरण' को ही 'अमूर्तता' कहते हैं।

[18] The purpose of economic theory is to explain and predict and hence to help towards control

[19] A Policy is a system of rules for the attainment of a given end

[20] 'The word policy' generally refers to the principles that govern actions directed towards given ends'

रूप सरकार हो सकती है या एक संस्था या एक व्यक्ति। प्रायः आर्थिक नीति का अर्थ 'राष्ट्रीय आर्थिक नीति' से लिया जाता है और इसी स्थिति में नीति को लागू करने वाला संगठन या समूह सरकार होती है।

अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक स्वभाव को बनाये रखने की दृष्टि से अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्रियों को साध्यों या उद्देश्यों को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए। इस प्रकार उद्देश्यों को दिया हुआ मानकर ही अर्थशास्त्री नीति-सुझाव (policy prescriptions) देता है या नीति-निर्माण करता है। अर्थशास्त्री एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कई वैकल्पिक नीतियां प्रस्तुत कर सकता है, परन्तु उनमें से कौन-सी उचित या सर्वोत्तम है इस बात का चुनाव वह नहीं करता। एक अर्थशास्त्री एक टेक्नीकल विशेषज्ञ या वैज्ञानिक (technical expert or scientist) के रूप में केवल वैकल्पिक नीतियों के परिणामों को प्रस्तुत करता है, सरकार इनमें से एक उचित या सर्वोत्तम नीति का चुनाव करके उसको लागू करती है।[11]

२ आर्थिक सिद्धान्त का आर्थिक नीति के प्रति योगदान (Contribution of Economic Theory to Economic Policy)

आर्थिक नीति की जड़ें आर्थिक सिद्धान्त में होनी चाहिए तभी आर्थिक नीति प्रभावपूर्ण हो सकेगी। दूसरे शब्दों में, आर्थिक सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण तरीके से आर्थिक नीति के प्रति योगदान देता है। मुख्य योगदान निम्नलिखित हैं

(i) आर्थिक सिद्धान्त भविष्य की घटनाओं के बताने (prediction) में महत्त्वपूर्ण होता है, और इसलिए यह प्रत्याशित (expected) स्थिति को नियन्त्रण करने के लिए, अथवा उस स्थिति के साथ समायोजन (adjustment) करने के लिए, नीति-निर्माण में सहयोग देता है।[12] सिद्धान्त घटनाओं के कारण और परिणाम के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है, और इस प्रकार घटनाओं या स्थितियों की व्याख्या (explanation) प्रदान करता है, कारणों की व्याख्या भविष्यवाणी (prediction) को सम्भव बनाती है, भविष्यवाणी के परिणामस्वरूप स्थिति का नियन्त्रण (control) हो सकता है। इस प्रकार से सिद्धान्त, नीति-निर्माण में, अथवा व्यवहार में या स्थिति के नियन्त्रण में, महत्त्वपूर्ण तरीके से सहायक होता है।

उदाहरणार्थ, आर्थिक सिद्धान्त बताता है कि व्यय तथा अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर में सीधा सम्बन्ध होता है। यह सिद्धान्त सरकार को आर्थिक नीति के निर्माण में सहयोग देता है। प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यदि सरकार यह देखती है कि अर्थव्यवस्था में कुल व्यय घट रहा है तो सरकार ऐसी नीतियों को लागू करेगी जिससे अर्थव्यवस्था में कुल व्यय बढ़े और भविष्य में बेरोजगारी उत्पन्न न हो।

(ii) आर्थिक सिद्धान्त वैकल्पिक (alternative) नीतियों के बीच, सरकार के लिए, एक विवेकपूर्ण चुनाव (rational choice) का आधार प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, एक देश में मुद्रा-स्फीति (inflation) की स्थिति पर नियन्त्रण पाने के लिए दो या तीन वैकल्पिक नीतियाँ हो सकती

---

[11] परन्तु वैकल्पिक नीतियों के परिणामों को स्पष्ट रूप से बताते हुए, निस्सन्देह अर्थशास्त्री सर्वोत्तम या उचित नीति के चुनाव में राजनीतिज्ञों या सरकार को महत्त्वपूर्ण टेक्नीकल सहयोग प्रदान करता है, अथवा, यह कहिए कि अर्थशास्त्री अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक नीतियों के मूल्यांकन व उनके बीच चुनाव या निर्णय को प्रभावित करता है।

[12] आर्थिक सिद्धान्त की सहायता से किसी घटना की भविष्यवाणी की जा सकती है, इस भविष्यवाणी के आधार पर यदि हम घटना या स्थिति के नियन्त्रण की नीति (policy of control) नहीं बना सकते तो कम से कम उस घटना के साथ 'समायोजन की नीति' (policy of adjustment) बना सकते हैं। उदाहरणार्थ, वर्षा आने की भविष्यवाणी की योग्यता हमें मौसम पर नियन्त्रण प्रदान नहीं कर सकती, परन्तु इस प्रकार की भविष्यवाणी हमें बरसाती कोट व छाता लेकर बरसात (या मौसम) के साथ समायोजन की तैयारी का अवसर अवश्य देती है।

है। आर्थिक सिद्धान्त मुद्रा स्फीति के कारणों पर पर्याप्त प्रकाश डालेगा तथा वैकल्पिक नीतियों के परिणामों को बतायेगा और इस प्रकार, मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण पाने के लिए, एक उचित नीति का चुनाव करने मे सहयोग देगा।

(iii) आर्थिक सिद्धान्त की सहायता से अर्थशास्त्री उद्देश्यों मे असामजस्यता (inconsistency of goals) को तथा आर्थिक नीतियों के बीच पारस्परिक विरोध (conflicts of policies) को बता सकता है। उदाहरणार्थ आर्थिक सिद्धान्त बताता है कि एक अल्प विकसित (undeveloped) देश मे प्रारम्भ मे यह सम्भव नही है कि 'भविष्य के लिए एक ऊँची विकास दर' को तथा 'वर्तमान मे एक ऊँचे उपयोग स्तर' को—इन दोनो को साथ-साथ प्राप्त किया जा सके, विकास के प्रारम्भिक चरण मे यह आवश्यक है कि वर्तमान मे उपभोग के स्तर को नीचा रखा जाय और तभी भविष्य मे एक ऊँची विकास दर को प्राप्त किया जा सकेगा। इस प्रकार से आर्थिक सिद्धान्त कुछ उद्देश्यो (और इसलिए कुछ नीतियो) के बीच पारस्परिक विरोध को बताकर सरकार की आर्थिक नीति के निर्माण मे योगदान देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक सिद्धान्त, आर्थिक नीति निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योगदान देता है, परन्तु इस सम्बन्ध में हमें आर्थिक सिद्धान्त की सीमाओं (limitations of economic theory) को नहीं भूल जाना चाहिए। अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है जिसके बारे में निश्चित भविष्यवाणी करना कठिन होता है, आर्थिक नियम बहुत निश्चित व सही नहीं होते जिन्हें कि किसी भी दी हुई स्थिति मे लागू किया जा सके। परन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं है कि आर्थिक सिद्धान्त ऐसे विश्लेषणात्मक यन्त्रों के समूह (a kit of analytical tools) को प्रदान करता है जो कि आर्थिक नीति निर्माण मे महत्त्वपूर्ण सहयोग देते हैं।

२. आर्थिक नीति का आर्थिक सिद्धान्त के प्रति योगदान (Contribution of Economic Policy to Economic Theory)

सिद्धान्त आवश्यक होता है अनुभवसिद्ध अध्ययनो (empirical studies) के लिए, क्योंकि तथ्यो के चुनाव के लिए एक सैद्धान्तिक ढाँचा जरूरी होता है, परन्तु आर्थिक सिद्धान्तो का निर्माण (या विश्लेषणात्मक अध्ययन) केवल 'तर्क मे कसरत' (exercise in logic) होंगे और जिनकी कोई उपयोगिता नही होगी यदि वे सिद्धान्त बिना अनुभवसिद्ध तथ्यो (empirical data or facts) के सन्दर्भ मे बनाये जाते हैं।

आर्थिक नीतियो तथा अनुभवसिद्ध तथ्यो के प्रयोग सही आर्थिक सिद्धान्तो के निर्माण मे सहयोग देते है। निम्नलिखित विवरण मे आर्थिक नीति का आर्थिक सिद्धान्त के प्रति योगदान स्पष्ट होता है

(i) अनुभवसिद्ध अध्ययन (empirical studies) उन समस्याओं को बताते है जिनको हल करने की आवश्यकता है, और इसलिए आर्थिक नीतियो की जरूरत को बताते हैं, तथा आर्थिक नीतियो की आवश्यकता आर्थिक सिद्धान्तो के निर्माण को जन्म देती है। उदाहरणार्थ, यदि अनुभवसिद्ध तथ्य यह बताते है कि श्रम-शक्ति का एक बड़ा भाग बेरोजगार है, तो ऐसी स्थिति को हल करने के लिए एक आर्थिक नीति की आवश्यकता होगी, और आर्थिक नीति की यह आवश्यकता 'सैद्धान्तिक यन्त्रो' (analytical tools) या सिद्धान्त (theory) के निर्माण की जरूरत उत्पन्न करेगी ताकि बेरोजगारी के कारणो को ज्ञात करके रोजगार का सिद्धान्त बनाया जा सके।

(ii) आर्थिक नीतियो के प्रयोगो से उन वास्तविक मान्यताओ (realistic assumptions) के निर्माण मे सहायता मिलती है जिन पर आर्थिक सिद्धान्त आधारित होने चाहिए।

(iii) अनुभवसिद्ध अध्ययन तथा आर्थिक नीतियों के प्रयोग आर्थिक सिद्धान्तों की सत्यता (validity) तथा उनकी व्यवहार्यता (applicability) की एक प्रकार से जाँच का आधार प्रदान करते हैं। यदि आर्थिक नीतियों के प्रयोग के परिणाम उन परिणामों से भिन्न निकलते हैं जिनकी कि सैद्धान्तिक विश्लेषण के आधार पर आशा थी, तो समस्त स्थिति के पुन परीक्षण (re-examination) की जरूरत होगी जिसमें कि सिद्धान्तों की सत्यता का परीक्षण शामिल होगा।

४. निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। आर्थिक सिद्धान्त आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायता देते हैं ताकि आर्थिक नीतियों के प्रयोग में व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके तथा आर्थिक समस्याओं को हल किया जा सके। दूसरी ओर अनुभवसिद्ध तथ्यों का अध्ययन तथा आर्थिक नीतियों के प्रयोग से वास्तविक व सही सिद्धान्तों के निर्माण में सहायता मिलती है।

प्रश्न

१ 'आर्थिक सिद्धान्त (या आर्थिक विश्लेषण) आर्थिक जीवन का एक पूर्ण चित्र नहीं होता, वह उसका केवल एक नक्शा होता है।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

Economic Theory (or Economic Analysis) is not a perfect picture of economic life; it is a map of it Discuss this statement

अथवा

'आर्थिक सिद्धान्त वास्तविकता का केवल एक नक्शा होता है, वह वास्तविकता का एक फोटोग्राफिक-चित्र नहीं होता, वह वास्तविकता के केवल सार को पकड़ता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

'Economic theory is only a map of reality; it is not a photographic picture of reality; it simply captures the essence of reality' Discuss this statement

[संकेत—प्रश्न के उत्तर में 'आर्थिक सिद्धान्त' नामक केन्द्रीय शीर्षक पृष्ठ ७१ के अन्तर्गत समस्त विषय-सामग्री को संक्षेप में लिखिए।]

२ (i) आर्थिक सिद्धान्त के अर्थ तथा स्वभाव को बताइए।

(ii) आर्थिक सिद्धान्त के अध्ययन का क्या उद्देश्य है ?

(iii) इस कथन पर टीका कीजिए—"यह सिद्धान्त में ठीक है परन्तु व्यवहार में ठीक नहीं है।"

(i) Explain the meaning and nature of Economic Theory.
(ii) What is the purpose of the study of Economic Theory ?
(iii) Comment on this statement—"It is all right in theory but not in practice"

[संकेत—प्रश्न के तीनों भागों का उत्तर 'आर्थिक सिद्धान्त' नामक केन्द्रीय शीर्षक पृष्ठ ७१ के अन्तर्गत विषय-सामग्री में मिलेगा।]

३ 'आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति दोनों एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं।' इस कथन की पूर्णतया व्याख्या कीजिए।

'Economic Theory and Economic Policy depend on each other' Explain this statement fully

अथवा

आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति के बीच सम्बन्ध की पूर्णतया व्याख्या कीजिए।
Explain fully the relation between Economic Theory and Economic Policy

अथवा

'आर्थिक सिद्धान्त' तथा 'आर्थिक नीति' से आप क्या समझते हैं ? इन दोनों के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
What do you understand by 'Economic Theory' and 'Economic Policy' ? Explain the relation between the two

[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर एक ही हैं, इनके उत्तर के लिए देखिए 'आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति में सम्बन्ध' नामक केन्द्रीय शीर्षक (पृष्ठ ७७) के अन्तर्गत समस्त विषय-सामग्री।]

6 अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीतियाँ
[METHODS OF ECONOMIC STUDY]

आर्थिक अध्ययन की रीतियों से आशय

कोसा (Cossa) के अनुसार, "रीति शब्द का अर्थ उस तर्कपूर्ण प्रणाली से होता है जिसका प्रयोग सच्चाई को खोजने या उसे व्यक्त करने के लिए किया जाता है।"[1] अन्य विज्ञानों की भाँति, अर्थशास्त्र भी नियमों या सिद्धान्तों (laws or theories) का निर्माण करता है। आर्थिक नियम या आर्थिक सिद्धान्त आर्थिक घटनाओं के 'कारण' और 'परिणाम' के बीच सम्बन्ध को बताते हैं। जिन रीतियों का प्रयोग आर्थिक सिद्धान्तों के निर्माण में किया जाता है, उन्हें अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीतियाँ कहते हैं।

आर्थिक सिद्धान्तों या नियमों के निर्माण में मुख्यतया दो रीतियों का प्रयोग किया जाता है

(१) निगमन रीति (Deductive Method)—इस रीति का प्रयोग प्राचीन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (old classical economists) ने बहुत किया था।

(२) आगमन रीति (Inductive Method)—इस रीति का प्रयोग जर्मनी में पुराने अर्थशास्त्रियों, लिस्ट (List), रोशर (Roscher) इत्यादि ने, निगमन रीति की प्रतिक्रिया (reaction) में, प्रारम्भ किया था। इन अर्थशास्त्रियों को 'ऐतिहासिक सम्प्रदाय' (Historical School) के नाम से पुकारा जाता है।

१. निगमन रीति
(DEDUCTIVE METHOD)

निगमन प्रणाली का अर्थ

इस प्रणाली के अन्तर्गत हम आर्थिक जगत की कुछ सामान्य मान्यताओं को लेकर चलते हैं और इन मान्यताओं के आधार पर तर्क (logic) का प्रयोग करके निष्कर्ष निकालते हैं; इसमें 'तर्क का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर' होता है। (The process of logic is from general to particular)।

उदाहरणार्थ, हम यह मानकर चलते हैं कि सभी मनुष्यों का व्यवहार विवेकपूर्ण (rational) होता है, इसका अर्थ है कि सभी उपभोक्ता अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करना चाहते हैं, या सभी साहसी अर्थात् सभी फर्में अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती हैं। लाभ को अधिकतम करने की सामान्य मान्यता के आधार पर तर्क का प्रयोग करके हम यह सिद्धान्त या निष्कर्ष निकालते हैं कि एक विशिष्ट फर्म भी अपने लाभ को अधिकतम करेगी और ऐसा करने के लिए वह उस सीमा

---

[1] "Method means the logical process used in discovering or in demonstrating the truth."

तक उत्पादन करेगी जहाँ पर सीमान्त लागत (MC) = सीमान्त आगम (MR) के हो।[1] यहाँ पर तर्क का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर है।

प्रो० बोल्डिंग (Boulding) निगमन रीति को 'मानसिक प्रयोग की रीति' (Method of Intellectual Experiment) कहते हैं।[2] चूँकि वास्तविक संसार जटिल है इसलिए उसका वास्तविक रूप म एकदम अध्ययन नहीं किया जा सकता। अत पहले सरल और कम वास्तविक दशाओं तथा मान्यताओं को लेकर चलते हैं फिर धीरे धीरे जटिल मान्यताओं का समावेश करते जाते हैं ताकि वास्तविकता तक पहुँच जायें।[4]

निगमन रीति दो प्रकार की होती है—गणितीय (Mathematical) तथा अगणितीय (Non mathematical)। अगणितीय रीति' का प्रयोग प्रतिष्ठित तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने किया। इस रीति के अन्तर्गत गणित या गणित के चिह्नों का प्रयोग नहीं किया जाता है। १६वीं शताब्दी मे एजवर्थ (Edgeworth) में 'गणितीय निगमन रीति का प्रयोग पर्याप्त मात्रा म किया। आज आर्थिक समस्याओं की व्याख्या म चित्रों तथा गणित का एक महत्वपूर्ण स्थान हो गया है।

निगमन प्रणाली के गुण (Merits of Deductive Method)

(१) सरलता (Simplicity)—इसके अन्तर्गत आँकड़ों का एकत्र करना तथा उनका विश्लेषण, इत्यादि कठिन और जटिल कार्य नहीं करने पड़ते, बल्कि इसमें तो सामान्य तथा स्वयंसिद्ध मान्यता के आधार पर तर्क की सहायता से विशिष्ट निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सरलता के कारण ही इस रीति का प्रयोग अर्थशास्त्र के विकास के प्रारम्भिक चरणों में किया गया।

(२) निश्चितता तथा स्पष्टता (Certainty and Clarity)—यदि स्वयंसिद्धियाँ (axioms) तथा मान्यताएँ ठीक हो, तो इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष सामान्यतया निश्चित, सही (precise) और स्पष्ट (well-defined) होते हैं क्योंकि (i) इसमें त्रुटियों को तर्क की सहायता से निकाला जा सकता है, और (ii) इसमें गणितशास्त्र का प्रयोग होने से निष्कर्ष स्पष्ट होते हैं।

(३) सर्वव्यापकता (Universality)—इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष तथा नियम हर समय तथा प्रत्येक देश म लागू होते हैं, क्योंकि वे मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति तथा स्वभाव पर

---

[1] सीमान्त लागत (Marginal Cost या MC) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई (an additional unit) की लागत, तथा सीमान्त आगम (Marginal Revenue या MR) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त द्रव्य। जब तक एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त धन (अर्थात् MR) अधिक है उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत (अर्थात् MC) से, तब तक फर्म अतिरिक्त इकाइयों का उत्पादन करके अपने लाभ को बढ़ाती जायेगी। परन्तु जब MR = MC के हो जायगी तो इसका अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई के बेचने से प्राप्त द्रव्य (अर्थात् MR) बराबर हो जायेगा उस अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात् MC) के और ऐसी दशा म उत्पादन को बढ़ाकर लाभ को बढ़ाने की सम्भावनाएँ फर्म के लिए समाप्त हो जायेंगी। अत एव फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा जबकि MR = MC के होती है। यदि हम किसी अन्य सामान्य मान्यता को लेकर चलते है और फिर तर्क का प्रयोग करते हैं तो किसी दूसरे निष्कर्ष पर पहुँचेंगे।

[2] इस रीति के अन्य नाम भी है। इसको काल्पनिक रीति' (Hypothetical Method), 'अमूर्त रीति' (Abstract Method), 'अनुभव-पूर्व रीति' (*a priori method*) तथा 'विश्लेषणात्मक रीति (Analytical Method) भी कहते हैं।

[4] The actual world is very complicated · Under these circumstances what we *do is to* postulate in our own minds economic systems which are simpler than reality but more easy to grasp We then work out the relationships involved in these simplified systems and by introducing more and more complete assumptions finally work up to the consideration of reality itself
—Boulding *Economic Analysis* p 11 (4th Edition, Vol I)

आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए, सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, जो कि निगमन प्रणाली पर आधारित है, प्रत्येक देश में लागू होता है।

(४) निष्पक्षता (Impartiality)—इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष निष्पक्ष होते हैं, क्योंकि वे सामान्य सत्य के आधार पर तर्क द्वारा निकाले जाते हैं। अत एक अन्वेषक (Investigator) निष्कर्षों को अपने विचारों तथा दृष्टिकोण से प्रभावित नहीं कर सकता। किन्तु आगमन प्रणाली में ऐसा करने की सम्भावना रहती है, क्योंकि इसके अन्तर्गत एक अन्वेषक निरीक्षण का ऐसा क्षेत्र चुन सकता है जहाँ पर उसके विचारों की पुष्टि हो।

(५) अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान के लिए यह रीति अधिक उपयोगी है—मानवीय व्यवहार के सम्बन्ध में नियन्त्रित प्रयोग (controlled experiment) करना प्राय असम्भव या अत्यन्त कठिन होता है। इसके अतिरिक्त बहुत-से ऐतिहासिक तथ्य प्राय अप्राप्य अथवा अपर्याप्त होते हैं। अत ऐसी परिस्थितियों में अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान के अध्ययन के लिए निगमन रीति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

(६) आगमन रीति की पूरक—निगमन रीति की सहायता से आगमन रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों की सत्यता की जाँच की जा सकती है।

निगमन प्रणाली के दोष (Demerits of Deductive Method)

(१) यह कहा जाता है कि इस प्रणाली द्वारा प्राप्त निष्कर्ष प्रायः वास्तविकता से दूर होते हैं—इस रीति के अन्तर्गत हम जिन सामान्य मान्यताओं को मानकर चलते हैं वे सदैव सत्य या वास्तविक नहीं होतीं या अशतया ही ठीक होती हैं और ऐसी मान्यताओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष या भविष्यवाणियाँ (conclusions or predictions) भी अवास्तविक तथा दोषपूर्ण होंगी, अथवा केवल 'बौद्धिक खिलौनों' (intellectual toys) का ही निर्माण होगा।

[उपर्युक्त विचारधारा के अनुसार एक सिद्धान्त की मान्यताओं को जाँचने से हम सम्पूर्ण सिद्धान्त की जाँच कर लेते हैं (In testing the assumptions of a theory, we are testing the whole theory)। इसके विपरीत दूसरी विचारधारा है जिसको फ्रीडमैन (Friedman) प्रस्तुत करते हैं। फ्रीडमैन के अनुसार, आर्थिक निष्कर्ष या सिद्धान्त की सत्यता को मान्यताओं की वास्तविकता के आधार पर नहीं जाँचना चाहिए बल्कि इन मान्यताओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष या भविष्यवाणियों (predictions) को ही जाँचना चाहिए, यदि निष्कर्ष वास्तविकता में मेल खाता है तो आर्थिक सिद्धान्त सही है चाहे मान्यताएँ अवास्तविक हों। फ्रीडमैन की विचारधारा को अधिक मान्यता दी जाती है।]

(२) कई परिस्थितियों में निगमन रीति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष या नियम सर्वव्यापक (universal) नहीं होते। "आर्थिक दशाएँ स्थान तथा समय के साथ-साथ निरन्तर बदलती रहती हैं और तर्क द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को दूसरे स्थान व समय में, जहाँ पर कि मूलभूत आधार ही सच नहीं होता, प्रयोग नहीं करना चाहिए।"[5] प्रो० ए० पी० लार्नर (A. P. Lerner) के शब्दों में, 'निगमन आरामकुर्सी विश्लेषण' (Deductive arm-chair analysis) को सार्वभौमिक (universal) नहीं माना जा सकता।

वास्तव में अर्थशास्त्र के पूर्ण विकास के लिए निगमन रीति के साथ आगमन रीति का सहयोग आवश्यक है।

---

[5] "Economic conditions are continually changing in place and time, and conclusions obtained by such reasoning must not be applied at another place or another time where the premise does not hold good"

२ आगमन रीति
(INDUCTIVE METHOD)

आगमन रीति[6] का अर्थ

यह रीति निगमन रीति के ठीक विपरीत है, आगमन रीति मे तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर होता है (The process of logic is from particular to general)। इसमे (i) बहुत-सी विशिष्ट घटनाओ या वास्तविक तथ्यो व अवलोकन और अध्ययन के आधार पर सामान्य सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है। (ii) इसके पश्चात् प्रयोग द्वारा इस सामान्य सिद्धान्त की जाँच की जाती है। अत इस प्रणाली मे अवलोकन (observation) तथा प्रयोग (experiment) के आधार पर सामान्य नियम या निष्कर्ष निकाले जाते है।

उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की कीमत गिर जाने पर हम यह अवलोकन करते हैं कि २५ ग्राहक उसकी अधिक मात्रा खरीद रहे हैं, तो यह सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वस्तुओ की कीमत कम होने पर उनकी माँग बढ जाती है। यहाँ पर तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर है।

आगमन रीति के सामान्यतया दो रूप हैं :

(i) **प्रायोगिक रूप** (Experimental Form)—इस रूप को प्रयोगात्मक रीति (Experimental Method) कहते हैं।

(ii) **सांख्यिक रूप** (Statistical form)—इस रूप को 'सांख्यिकीय रीति' (Statistical Method) कहते हैं। आगमन रीति के इस रूप का ही अर्थशास्त्र म प्रमुखतया प्रयोग किया जाता है। इन दोनो रूपो का थोड़े विस्तार के साथ नीचे विवेचन किया गया है।

प्रयोगात्मक रीति (Experimental Method)—इस रीति के अन्तर्गत नियन्त्रित प्रयोग (controlled experiments) किये जाते है। उदाहरणार्थ एक रसायनशास्त्री (Chemist) कुछ रसायनो (Chemicals) को एक नियन्त्रित वातावरण म मिलाकर उनकी प्रतिक्रियाओ (reactions) का अध्ययन कर सकता है। यह रीति प्राकृतिक विज्ञानों (natural or physical sciences) के लिए ही अधिक उपयुक्त है क्योकि इनम नियन्त्रित प्रयोग करना आसान है। अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान मे केवल कुछ ही दशाओ म नियन्त्रित प्रयोग हो सकते है,[7] परन्तु सामान्यतया इस प्रकार के प्रयोग सम्भव नही है, इसलिए अर्थशास्त्र मे इस रीति का प्रयोग अत्यन्त सीमित रह जाता है।[8]

सांख्यिकीय रीति (Statistical Method)—सांख्यिकीय रीति के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रो से आँकडो को इकट्ठा किया जाता है और इनका वर्गीकरण (classification) किया जाता है। इसके बाद सांख्यिकीय सिद्धान्तों (statistical tools) की सहायता से उनका विश्लेषण करके सामान्य निष्कर्ष या आर्थिक सिद्धान्त नि[illegible] जाते हैं। अर्थशास्त्र के लिए सांख्यिकीय रीति अधिक ऐतिहासिक अवश्य

---

[6] इस रीति को कभी-कभी 'ऐतिहासिक [illegible]' (Historical Method) या 'अनुभववादी रीति' (Empirical Method) इत्यादि नाम से भी पुकारा जाता है।

[7] प्रो० बोल्डिंग (Boulding) अर्थशास्त्र मे नियन्त्रित प्रयोग का एक उदाहरण देते है—स्कूल के बच्चो पर दूध की खुराक (diet) का प्रभाव जानने के लिए दो एक से स्कूल चुने जा सकते हैं, एक स्कूल के बच्चो को दूध दिया जाता है और दूसरे स्कूल के बच्चो को दूध नही दिया जाता है। इस प्रकार बच्चो पर दूध की खुराक के प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

[8] अर्थशास्त्र म नियन्त्रित प्रयोगो का सीमित महत्त्व होता है, इस बात को स्पष्ट करने के लिए प्रो० बोल्डिंग एक दूसरा उदाहरण देत है—व्यापारियो पर ऊँची ब्याज की दरो के प्रभाव को जानने के लिए यह सम्भव नही है कि उनको दो समूहो मे बाँट दिया जाय, और एक समूह पर ऊँची ब्याज की दर का प्रभाव देखा जाय और दूसरे समूह पर नीची ब्याज की दर का प्रभाव।

उपयुक्त है। अर्थशास्त्र में प्रयोगात्मक रीति का उचित मात्रा में प्रयोग न हो सकने की कमी को एक बड़ी सीमा तक सांख्यिकीय रीति का प्रयोग करके पूरा किया जाता है।

आगमन रीति के गुण (Merits of Inductive Method)

(१) इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष वास्तविकता (reality) के अधिक निकट होते हैं क्योंकि व वास्तविक घटनाओं और तथ्यों के अवलोकन (observation) पर आधारित होते हैं।

(२) इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को अन्य तत्त्वों (other facts) के द्वारा जाँचा जा सकता है।

(३) यह रीति आर्थिक समस्याओं की जटिलता (complexity) पर उचित ध्यान देती है, अर्थात् इस रीति का दृष्टिकोण प्रावैगिक (dynamic) है। आर्थिक परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं और इस रीति की सहायता से बदली हुई परिस्थितियों व नये तत्त्वों के आधार पर निष्कर्षों या सिद्धान्तों में सुधार किये जा सकते हैं।

(४) यह रीति 'व्यापक अर्थशास्त्र'[*] (Macro Economics) के लिए बहुत उपयोगी है। राष्ट्रीय आय, कुल रोजगार तथा आर्थिक विकास से सम्बन्धित आँकड़ों का एकत्रण (collection), वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके किसी देश की सरकार उचित आर्थिक नीतियों का निर्माण कर सकती है।

(५) यह रीति निगमन रीति की पूरक (complementary) है, अर्थात् निगमन रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को इस रीति द्वारा जाँचा जा सकता है।

आगमन रीति के दोष (Demerits of Inductive Method)

(१) इस रीति का प्रयोग कठिन है, (i) आँकड़ों का एकत्रण, वर्गीकरण तथा विश्लेषण करना प्रत्येक के लिए सम्भव नहीं है, इसका प्रयोग केवल वे ही लोग कर सकते हैं जिनको इस प्रकार के कार्य के लिए प्रशिक्षण (training) दिया गया हो। (ii) इस रीति के प्रयोग में लागत भी बहुत आती है।

(२) प्रो० बोल्डिंग के अनुसार, "सांख्यिक सूचना केवल ऐसी बातों या निष्कर्षों को प्रस्तुत कर सकती है जिनके होने की अधिक या कम सम्भावना (probability) हो सकती है, परन्तु वह पूर्णतया निश्चित निष्कर्ष नहीं दे सकती।"[10]

प्रो० बोल्डिंग उपर्युक्त बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

"यदि कुछ दशाओं में दो बातें एक साथ देखी जाती हैं तो यह मान लेना कि उनमें कारण और परिणाम का सम्बन्ध [illegible] है सांख्यिक खोज का सबसे अधिक खतरनाक भ्रम (fallacy) है।"[11]

* 'व्यापक अर्थशास्त्र' (Macro Economics) के अन्तर्गत हम राष्ट्रीय आय, कुल रोजगार व कुल उपभोग, कुल बचत, कुल विनियोग, आर्थिक विकास, इत्यादि का अध्ययन करते हैं। 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' (Micro Economics) के अन्तर्गत हम व्यक्तिगत इकाइयों, जैसे—एक फर्म, एक उद्योग, एक उपभोक्ता, इत्यादि का अध्ययन करते हैं।

10 "Statistical information can only give us propositions whose truth is more or less probable it can never give us certainty."

11 "The most dangerous fallacy in statistical investigation is that of assuming that if two things have been observed together in a few instances, they must of necessity be causally connected."

अध्याय ६ की परिशिष्ट — वैज्ञानिक रीति
(APPENDIX TO CHAPTER 6) (SCIENTIFIC METHOD)

१. प्राक्कथन (Introduction)

प्राचीन समय में अर्थशास्त्री दो रीतियों—निगमन रीति (deductive method) तथा आगमन रीति (inductive method) का प्रयोग करते थे। परन्तु इन रीतियों के प्रयोग के सम्बन्ध में प्राचीन अर्थशास्त्रियों में मतभेद था।

'निगमन रीति (*Deductive Method*) अथवा 'निगमन प्रक्रिया' (*Deductive Procedure*) के अन्तर्गत किसी सामान्य सत्य या सामान्य मान्यता को लेकर चलते हैं, तत्पश्चात् तर्क का प्रयोग करके एक विशिष्ट निष्कर्ष निकालते हैं। दूसरे शब्दों में, **इस रीति के अन्तर्गत तर्क का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है** (Under deductive method the process of logic is from general to particular)।[14]

'आगमन रीति' (*Inductive Method*) या 'आगमन प्रक्रिया' (*Inductive Procedure*) निगमन रीति की उल्टी होती है। **आगमन रीति के अन्तर्गत तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर होता है** (Under inductive method the process of logic is from particular to general)। इस रीति के अन्तर्गत कुछ विशेष घटनाओं का अवलोकन किया जाता है तथा आँकड़े या तथ्य इकट्ठे किये जाते हैं, और इन आँकड़ों के आधार पर, किसी एक किस्म के सांख्यिकीय विश्लेषण (some type of statistical analysis) का प्रयोग करके, सामान्य निष्कर्ष या सामान्य सिद्धान्त प्राप्त किये जाते हैं।[15]

प्राचीन समय में अर्थशास्त्रियों में इन रीतियों के प्रयोग के सम्बन्ध में मतभेद था। प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्री (old classical economists) का मत था कि अर्थशास्त्र के विकास के लिए केवल निगमन रीति ही उचित है। इसके विपरीत जर्मनी के ऐतिहासिक सम्प्रदाय (Historical School of Germany) का मत था कि केवल आगमन प्रनाली के द्वारा ही अर्थशास्त्र का विकास सम्भव है। दोनों विचारधाराओं में केवल आंशिक सत्यता थी। मार्शल ने इस मतभेद को समाप्त किया और बताया कि अर्थशास्त्र के उचित विकास के लिए, आवश्यकतानुसार, दोनों रीतियों का प्रयोग जरूरी है।

आधुनिक अर्थशास्त्री **'वैज्ञानिक रीति'** (*Scientific Method*) का प्रयोग करते हैं, यह रीति, निगमन तथा आगमन दोनों रीतियों का एक वैज्ञानिक समन्वय (scientific integration) है।

२. वैज्ञानिक रीति की मुख्य बातें (Essentials of Scientfic Method)

'वैज्ञानिक रीति' न तो पूर्णतया निगमन दृष्टिकोण (deductive approach) रखती है और न पूर्णतया 'आगमन दृष्टिकोण' (inductive approach) रखती है। 'वैज्ञानिक रीति' निगमन तथा आगमन दोनों का एक 'वैज्ञानिक समन्वित रूप' (a scientific integrated form) है।

---

[14] उदाहरणार्थ, हम यह एक सामान्य मान्यता लेकर चलते है कि व्यक्तियों का व्यवहार विवेक-पूर्ण (rational) होता है, अर्थात् उपभोक्ता के रूप में सभी व्यक्ति अपनी सीमित आय को इस प्रकार व्यय करते है कि उनको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। अतः एक विशेष व्यक्ति, जैसे अनिलकुमार, भी अपनी आय को इस प्रकार से व्यय करेगा कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि मिले।

[15] उदाहरणार्थ, हम यह देखते हैं कि किसी वस्तु की कीमत में कमी होने के परिणामस्वरूप २५ व्यक्ति उस वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने लगते हैं। इन विशिष्ट अवलोकनों के आधार पर हम यह सामान्य सिद्धान्त प्राप्त करते हैं कि किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से, साधारणतया, उस वस्तु की माँग बढ़ जाती है।

परन्तु ध्यान रहे कि वैज्ञानिक रीति कोई एक स्थिर रीति नहीं है। विज्ञान की रीतियाँ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदलती रहती हैं। एक ही क्षेत्र में वे एक खोजकर्ता (research worker) से दूसरे खोजकर्ता के साथ बदल जाती हैं, इतना ही नहीं बल्कि वे एक ही व्यक्ति के साथ एक खोज से दूसरी खोज में बदल जाती हैं।[16]

परन्तु सभी प्रकार की वैज्ञानिक खोज (all scientific research) में प्रायः एक सामान्य रूप (common pattern) पाया जाता है। एक वैज्ञानिक रीति के सामान्य रूप को निम्न पाँच चरणों (five steps) में बाँटा जा सकता है

१ समस्या का चुनाव (Selection of the Problem)
२ अवलोकन (Observation)
३ परिकल्पना का निर्माण (Building of Hypothesis)
४ निष्कर्ष या प्रेडिक्शन (*Prediction*)
५ जाँच (Verification or Testing)

नीचे हम वैज्ञानिक रीति के पाँचों चरणों का विस्तृत विवरण देते हैं।

१ समस्या का चुनाव (Selection of the Problem)

सर्वप्रथम एक अर्थशास्त्री को समस्या को परिभाषित (define) करना होगा अर्थात् यह निर्णय लेना होगा कि वह किस समस्या का अध्ययन करे। इस सम्बन्ध में कोई सामान्य नियम (general rule) नहीं दिया जा सकता है, केवल यह कहा जा सकता है कि समस्या ऐसी नहीं होनी चाहिए जो कि महत्त्वहीन या बहुत मामूली (trivial) हो। समस्या का चुनाव व्यक्तिगत पसन्द (individual preference) तथा 'अच्छे निर्णय' (good judgment) की बात है।

[एक अर्थशास्त्री ऐसी समस्या का चुनाव कर सकता है जिसका प्रत्यक्ष व्यावहारिक प्रयोग न हो, जबकि दूसरा अर्थशास्त्री ऐसी समस्या चुन सकता है जो कि अर्थव्यवस्था की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जैसे मुद्रा स्फीति (inflation) की समस्या, बेरोजगारी की समस्या या चीनी की माँग का अध्ययन। *अध्ययन की जाने वाली समस्या का क्षेत्र बहुत विस्तृत* (wide) हो सकता है या बहुत संकुचित (narrow) हो सकता है।]

२. अवलोकन (Observation)

जब समस्या का चुनाव हो जाता है तथा उसको ठीक प्रकार से परिभाषित (define) कर दिया जाता है, तब दूसरा कदम (step) है—**समस्या के सम्बन्ध में 'अवलोकन'** (observation) **अर्थात् सम्बन्धित तथ्यों व आँकड़ों को एकत्रित करना।**

उदाहरणार्थ, यदि चीनी की माँग का अध्ययन करना है तो अर्थशास्त्री उसकी कीमतें, उत्पादन, उपभोक्ताओं की आयों, इत्यादि पर आँकड़ों को एकत्रित करेंगे।

३. परिकल्पना का निर्माण (Building of Hypothesis)

अध्ययन का क्षेत्र कुछ भी हो उसमें सम्बन्धित आँकड़े अर्थात् लिखित अवलोकन (recorded observation) एक निश्चित व्यवहार या परिवर्तन (a certain behaviour or change) को बतायेंगे, मुख्य बात उस व्यवहार की [illegible] ख्या करना है।

---

[16] There is no such thing as the scien[illegible] present or f[illegible] The methods of science differ from one discipline to another They even [illegible]ction The s[illegible] research worker to another within any given discipline and from one pr[illegible]ng ' [illegible] in the hands of a single research worker " [illegible] propositio[illegible] [illegible]on of h[illegible]

[17] कुछ अर्थशास्त्री वैज्ञानिक रीति को ती[illegible]) में ही बाँटते हैं—१. परिकल्पना का निर्माण, २ निष्कर्ष या प्रे[illegible] । पर 'समस्या का चुनाव' तथा 'अवलोकन' को पहले चरण परिकल्पना [illegible] र्गत शामिल कर लिया जाता है। कुछ अर्थशास्त्री वैज्ञानिक रीति को चार चरणों में तोड़ते हैं।

दूसरे शब्दों में, वैज्ञानिक अवलोकन तथा आँकड़ों का इकट्ठे करने का उद्देश्य घटनाओं की व्याख्या करना होता है। अतः एकत्रित किये गये आँकड़ों या तथ्यों को एक समुचित ढंग (coherent way) से व्यवस्थित (organize) करना तथा तर्क (logic) का प्रयोग करना आवश्यक है ताकि विचाराधीन घटना के होने के कारणों का एक अन्दाज या अनुमान लगा सकें। इस प्रकार एक विशिष्ट घटना या एक प्रकार की कुछ घटनाओं की अनुमानित व्याख्या (tentative explanation) के आधार पर,

> एकसी घटनाओं को एक सामान्य अनुमानित व्याख्या (a general tentative explanation) दी जाती है, इस सामान्य अनुमानित व्याख्या को ही 'परिकल्पना' (hypothesis) कहते हैं। ध्यान रहे कि एक परिकल्पना बिना जाँच किया गया एक अनुमान है (A hyopthesis is an unverified hunch)।

'परिकल्पना के निर्माण' में कुछ मान्यताओं (assumptions) को लेकर चलना होता है, इन मान्यताओं का उद्देश्य सरलीकरण (simplification) करना होना है। वास्तविक जगत जटिल (complex) है। किसी घटना को प्रभावित करने वाली अनेक बातें या कारण हो सकते हैं, कुछ कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं तथा कुछ कम महत्त्वपूर्ण, सभी कारणों का एक साथ अध्ययन नहीं किया जा सकता है। अतः समस्या को समझने तथा कारण और परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यताओं को लेकर चलते है, अन्य अमहत्त्वपूर्ण मान्यताओं को छोड देते है।

[उदाहरणाथ, एक फर्म के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए हम यह मानकर चल सकते है कि फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है, यद्यपि फर्म का व्यवहार अन्य बातों से भी प्रभावित होता है परन्तु उनको हम कम महत्त्वपूर्ण मानकर छोड देते हैं। इस प्रकार स्थिति सरल हो जाती है तथा फर्म के व्यवहार को समझने में आसानी होती है।]

चूँकि परिकल्पना के निर्माण में 'मान्यताएँ' आवश्यक है, इसलिए 'परिकल्पनाओं' को कभी-कभी मान्यताएँ भी कहा जाता है। चूँकि एक 'परिकल्पना' दो प्रकार के तत्त्वों (जैसे—'द्रव्य की पूर्ति तथा कीमत) में सम्भावित सम्बन्ध को बताती है इसलिए 'परिकल्पना बनाने' (hypothesis building) को कभी-कभी 'सिद्धान्त निर्माण' ('theory building' or 'theorizing') भी कहा जाता है।

४. निष्कर्ष या प्रेडिक्शन (Prediction)

परिकल्पना के निर्माण के पश्चात् अगला कदम है परिकल्पना के आधार पर निगमन तर्क (deductive logic) द्वारा निष्कर्ष या प्रेडिक्शन (prediction) निकालना। प्रेडिक्शन के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान रखनी चाहिए

(i) परिकल्पना सामान्य (general) होती है अर्थात् वह एक ही प्रकार की सभी स्थितियों में लागू होती है। प्रेडिक्शन (या निष्कर्ष) ...धिक विशिष्ट (more specific) होते हैं, और वे परिकल्पनाओं से निगमन तर्क द्वारा निकाले जाते हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रेडिक्शन (या निष्कर्ष) वे परिकल्पनाएँ (hypothesis) हैं जो ...विशिष्ट स्थितियों में लागू की जाती हैं।[18]

(ii) प्रेडिक्शन' (या निष्कर्षों) शब्द ...र कभी कभी 'अभिप्राय' या परिणाम' (*implications*) शब्द का भी प्रयोग किया ...

(iii) 'प्रेडिक्शन' आवश्यक रूप से भ... घटनाओं से सम्बन्धित नहीं होता, परन्तु

---

[18] The hypothesis once formulated is gene... It applies to all cases of a given kind Predictions are more specific and are determined by deductive logic from the hypothesis. One might say they are the hypotheses when applied to particular cases

प्रेडिक्शन उन घटनाओं से अवश्य सम्बन्धित होता है जिनकी जानकारी पहले नहीं थी अथवा प्रेडिक्शन (या निष्कर्ष) निकालने के समय पर नहीं थी। दूसरे शब्दों में,

'प्रेडिक्शन (prediction) का सम्बन्ध भूतकाल (past), वर्तमान तथा भविष्य की घटनाओं से हो सकता है यदि इन घटनाओं की जानकारी पहले से या प्रेडिक्शन निकालने के समय पर न हो। उस विशिष्ट प्रकार के प्रेडिक्शन को, जो कि भविष्य से सम्बन्धित होता है कभी-कभी भविष्यवाणी (forecasting) कहा जाता है।'[19]

यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि वैज्ञानिक रीति के कदम (steps) नम्बर (३) तथा (४) को 'आर्थिक सिद्धान्त' या सिद्धान्त' ('economic theory' or 'theory') कहा जाता है। दूसरे शब्दों में,

'आर्थिक सिद्धान्त ऐसे कथनों (propositions) का एक समूह है जिनका प्रयोग आर्थिक व्यवहार के विश्लेषण और व्याख्या के लिए किया जाता है और आर्थिक सिद्धान्त में परिकल्पनाओं का निर्माण तथा परिकल्पनाओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष शामिल होते हैं।'[20]

५ सिद्धान्त की जाँच (Verification or Testing of the Theory)

जब एक आर्थिक सिद्धान्त का निर्माण हो जाता है तब यह आवश्यक है कि उस 'आर्थिक सिद्धान्त' (economic theory) या 'परिकल्पना' (hypothesis) की जाँच की जाये। सिद्धान्त या परिकल्पना की जाँच के लिए हम पुनः वास्तविक जगत में आते हैं और वास्तविक अनुभव व तथ्यों (real experience or facts) का सहारा लेते हैं। दूसरे शब्दों में,

'यदि सिद्धान्त कई बार (repeatedly) वास्तविक अनुभव व तथ्यों से मेल खाता है तो उसे स्वीकार (accept) कर लिया जाता है। जब हम एक सिद्धान्त या परिकल्पना को स्वीकार कर लेते हैं तो हम यह कहते हैं कि सिद्धान्त की जाँच हो गयी। परन्तु हम यह नहीं कह सकते है कि सिद्धान्त को सही या सच्चा सिद्ध (prove) कर दिया गया है। हम उसको केवल गलत सिद्ध करने में असफल रहे हैं यह सम्भव है कि भविष्य में कुछ बातें तथा तथ्य वर्तमान सिद्धान्त को गलत साबित कर दें।'[21]

यदि सिद्धान्त वास्तविक अनुभव तथा तथ्यों से मेल नहीं खाता है तो निम्नलिखित में से कोई एक बात की जाती है—(i) सिद्धान्त को रद्द (reject) कर दिया जाता है और उसके स्थान पर श्रेष्ठ (superior) सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है, अथवा (ii) नये तथ्यों के अनुसार सिद्धान्त में संशोधन कर दिया जाता है।

अब एक प्रश्न यह उठता है कि सिद्धान्त की जाँच किस आधार पर की जाय। इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ हैं। एक विचारधारा के अनुसार मान्यताओं, जिन पर कि एक सिद्धान्त आधारित होता है की जाँच करनी चाहिए और ऐसा करने में सम्पूर्ण सिद्धान्त की जाँच हो जाती है। (In testing the assumptions of a theory, we are testing the whole theory)

---

[19] Predictions can refer to past present or future events so long as they are not known previous to or at the time of prediction The special kind of prediction that refers to the future is sometimes called forecasting

[20] *Economic theory is such a set of propositions used to interpret and explain* economic behaviour including the formulation of hypothesis and the deduction of predictions from hypothesis '

[21] If the theory repeatedly conforms to the real experience or facts in life, we accept the theory *When we accept a theory (or a hypothesis) we say it is verified But we cannot say that the theory is proved to be true or correct* We have simply failed to disprove it, it is possible that some future events or facts may show it to be false

इसके विपरीत दूसरी विचारधारा है जिसको मिल्टन फ्रीडमेन (Milton Friedman) प्रस्तुत करते हैं। फ्रीडमेन के अनुसार आर्थिक सिद्धान्त की सत्यता को मान्यताओं की वास्तविकता के आधार पर नहीं जांचना चाहिए बल्कि इन मान्यताओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्षों या प्रेडिक्शन (prediction) को ही जांचना चाहिए, यदि निष्कर्ष वास्तविकता से मेल खाता है तो आर्थिक सिद्धान्त सही है चाहे मान्यताएं अवास्तविक हों। फ्रीडमेन की विचारधारा को अधिक मान्यता दी जाती है।

चूंकि अर्थशास्त्र में नियन्त्रित प्रयोग (controlled experiments) नहीं किये जा सकते हैं इसलिए आर्थिक सिद्धान्तों की जांच के लिए सांख्यिकीय रीतियों (statistical tools) का प्रयोग किया जाता है।

६ निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि एक व्यक्ति वैज्ञानिक खोजों में सदैव उपयुक्त पांच कदमों-के-क्रम (five-step-order) का प्रयोग करता है। पांच कदमों में निरन्तर क्रिया तथा प्रतिक्रिया (action and reaction) होती रहती है। 'परिकल्पनाएँ' तथ्यों की व्याख्या करने में सहायता करती हैं। परन्तु अतिरिक्त तथ्य या मौजूदा तथ्यों की नयी व्याख्याएँ वैज्ञानिकों को अपनी 'परिकल्पनाओं' में परिवर्तन व संशोधन करने के लिए बाध्य कर सकती हैं।"[२३]

(वैज्ञानिक रीति का एक दृष्टि में सारांश पृष्ठ ९३ पर देखिए।)

It should not be inferred that a person always follows a neat five-step-order in scientific investigations. There is a continuous action and reaction among the five steps. "Hypotheses help to explain facts. But additional facts or new interpretations of existing facts may cause scientist to revise their hypotheses."

वैज्ञानिक रीति का एक निगाह में सारांश
(Summary of Scientific Method at One Glance)
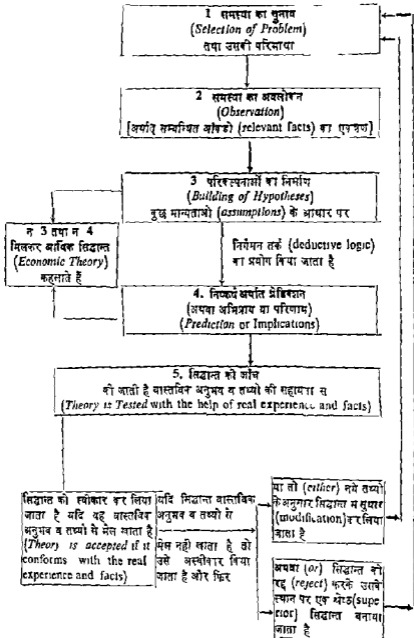
प्रश्न

१. "वास्तव मे निगमन तथा आगमन रीतियो में कोई विरोध नहीं है। दोनों आवश्यक हैं और एक दूसरे की पूरक हैं।" विवेचना कीजिए।

"There is really no opposition between deductive and inductive methods Both are necessary and complementary to each other" Discuss (*Agra, B A I*, 1975)

अथवा

"अन्वेषण की कोई भी ऐसी रीति नहीं है जिसे अर्थशास्त्र के अध्ययन की उचित रीति कहा जा सके बल्कि प्रत्येक का यथास्थान या तो अकेले या मिश्रित रूप मे प्रयोग किया जाना चाहिए"—मार्शल। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

"There is not any one method of investigation which can properly be called the method of Economics, but every method must be made serviceable at its proper place either singly or in combination with others"—*Marshall* Discuss.

अथवा

"जिस प्रकार चलने के लिए दायें और बायें पैरों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए निगमन तथा आगमन दोनों प्रणालियाँ आवश्यक हैं।" समझाइए।

"Induction and deduction are both needed for scientific thought as the right and left foot are both needed for walking" Explain

(*Meerut, B Com* 1976 *Jiwaji, B Com, II*, 1968, *Gorakhpur*, 1968)

अथवा

आर्थिक नियमों के निकालने की रीतियाँ बताइए। क्या ये रीतियाँ एक-दूसरे की सहायक होती हैं?

Discuss the methods for the derivation of economic laws Are these methods complementary? (*Rajasthan, B A*, 1964)

परिशिष्ट (Appendix) पर प्रश्न

१. वैज्ञानिक रीति की मुख्य बातों को स्पष्ट कीजिए।

Bring out the essentials of scientific method.

न्त मान्यताओ की सीमा के अन्दर ही यह सत्य सिद्ध होता है।
यम' (Law of Gravitation) को ही लीजिए। इस नियम के
गिरना चाहिए पर सदा ऐसा नही होता। वास्तव मे, यह नियम
, गति, इत्यादि पर निर्भर है। गुब्बारे मे भरी गैस वायु से हल्की होने
र उड़ा देती है। इसी प्रकार से दो हिस्सा हाइड्रोजन तथा एक हिस्सा
न तभी बनेगा जबकि एक निश्चित दबाव तथा तापक्रम मौजूद हो।
यम वैज्ञानिक नियमो की भाँति होते हैं। अर्थशास्त्र तथा प्राकृतिक
ल्पनिक होते हैं, अन्तर केवल इतना होता है कि अर्थशास्त्र के नियमो
ा काल्पनिकता का अधिक अंश होता है, इसका मुख्य कारण यह है
ाषय जड पदार्थ वस्तुएँ नही बल्कि मनुष्य है जो जीव है, बुद्धि रखता

7

ेक्ष होते हैं (Economic Laws are Relative)
ोक नियम समय, स्थान या देश से सम्बन्धित हैं। उदाहरणार्थ,
ा कसी के नियम सब समयो म सत्य नही हो सकते तथा
े लागू नही किये जा सकते हैं। दूसरे शब्दो मे, अर्थशास्त्र
rico-relative) या 'संस्थात्मक' (institutional) होते
रिवर्तन होने से परिवर्तित हो जाते हैं।

१ प्राक्कथन (Introduction)

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। इसमें हैं, अर्थात् अन्य विज्ञानो की भाँति, आर्थिक के सम्बन्ध को बताते हैं। अन्य विज्ञानो की है। इस सम्बन्ध मे निम्न दो बाते ध्यान मे या 'नियमो' (laws) का निर्माण करता है। मार्शल के

"एक विज्ञान अपने नियमों की संख्या तथा निश्चितता मे वृद्धि तथा विकास कर सकता है।"[1]

...पूर्ति इत्यादि के नियम, सार्व-
...स्थितियो मे लगभग सही
...नियम भी सार्वभौमिक

२ आर्थिक नियम का अर्थ (Meaning of an Economic Law)

अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान (social science) है, इसलिए आर्थिक नियम' (social laws) होते है। आर्थिक नियम बताते है कि यदि इस-इस प्रकार कारण) है तो इस इस प्रकार के परिणाम निकलेंगे। दूसरे शब्दो मे, ...ions) अर्थात् ...कहता एव ...के अनुसार

आर्थिक नियम आर्थिक घटनाओं के कारण और परिणाम के सम्बन्ध की सा व्याख्या (general explanation) प्रदान करते हैं। ...मान्यताओ

अन्य विज्ञानो की भाँति अर्थशास्त्र भी 'परिकल्पना' (hypothesis), 'सिद्धान्त' (... अपनी तथा नियम' (law) शब्दो का प्रयोग करता है। 'आर्थिक नियम' के अर्थ को अच्छी प्रकार समझने के लिए निम्न बातो की जानकारी आवश्यक है

(i) अर्थशास्त्री अवलोकन (observation) तथा आँकडे एकत्रित करके आर्थिक घटनाओ के कारणो का अनुमान लगाते हैं। दूसरे शब्दो म, अर्थशास्त्री एक प्रकार की आर्थिक घटनाओ की सामान्य अनुमानित व्याख्या (general tentative explanation) देते है जिसे 'परिकल्पना' (*hypothesis*) कहते हैं।

(ii) यदि परिकल्पना उसी प्रकार की नयी स्थितियो या तथ्यो (facts) के कारणो की व्याख्या कर सकती है तो उसे 'आर्थिक सिद्धान्त' (economic theory) का दर्जा (status) प्राप्त हो जाता है।

यदि एक सिद्धान्त बार-बार (repeatedly) वास्तविक अनुभव व तथ्यो से मेल खाता है तो उसे 'आर्थिक सिद्धान्त' को स्वीकार कर लिया जाता है और उसे 'आर्थिक नियम' (*economic law*) कहा जाता है।

[1] "A science progresses by increasing the number and exactness of its laws."
—Marshall, *Principles of Economics*, p 25

प्रश्न सिद्धान्त' (theory)

१. "वास्तव मे निगमन तथा आगमन रीतियो मे कोई विरोध नहीं ' 'नियम' शब्द स्थायी
एक दूसरे की पूरक हैं।" विवेचना कीजिए। गरा देता है। परन्तु
"There is really no opposition between deductive and ind (permanent) हो,
necessary and complementary to each other" Discuss
अथवा सकता है और नये

"अन्वेषण की कोई भी ऐसी रीति नही है जिसे अर्थशास्त्र के अध्य यम' (economic
जा सके बल्कि प्रत्येक का यथास्थान या तो अकेले या मिश्रित ıc theory) शब्द
चाहिए"—मार्शल। इस कथन की व्याख्या कीजिए। ब्द का प्रयोग किया
"There is not any one method of investigation which can prov लगाया जाता है।
of Economics but every method must be made serviceable cteristics or Nature of
singly or in combination with others."—*Marshall* Discuss.

अथवा

"जिस प्रकार चलने के लिए दायें और बायें पैरो की आवश्यकत ,रण तथा परिणाम मे सम्बन्ध
शास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए निगमन तथा आगमन ' रखते हैं। आर्थिक नियमो को
समझाइए।
'Induction and deduction are both needed for scient र हैं, अर्थात् वे कम निश्चित होते हैं
foot are both needed for walking" Explain Economic Tendencies, that is,
(*Meerut, B Com 1976, Jiwa*

अथवा .ो भाँति, निश्चित नही होते, और न ही ये
आर्थिक नियमो के निकालने की रीतियाँ संघटित होने का दावा करते है, वे घटना के होने
होनी है ? -, को , ते है। दूसरे शब्दो मे, अर्थशास्त्र के नियम कम निश्चित
Discuss the methods fo
plementary ?

लए, रसायनशास्त्र (chemistry) का नियम यह बताता है कि यदि एक
१. वैज्ञानिक रीति वा तापक्रम पर दो हिस्सा हाइड्रोजन तथा एक हिस्सा आक्सीजन मिलाया जाय,
Bring o t ायेगा। यदि हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन की मिलने वाली मात्रा दुगुनी कर दी जाये
ात्रा भी निश्चित रूप से दुगुनी हो जायेगी।

विपरीत अर्थशास्त्र के नियमो मे इस प्रकार की निश्चितता नही पायी जाती है।
लिए, अर्थशास्त्र के माँग के नियम के अनुसार हम यह नही कह सकते कि यदि किसी
्य बढ़कर दुगुना हो जाये, तो निश्चित रूप से उसकी माँग घटकर आधी रह जायेगी,
.ायम तो केवल परिवर्तन की दिशा बता सकता है कि माँग घट जायेगी परन्तु वह निश्चित
प से यह नही कह सकता है कि माँग कितनी घटेगी। दूसरे शब्दो मे,
आर्थिक नियम गुणात्मक (qualitative) होते हैं न कि परिमाणात्मक (quantitative), वे परिवर्तन की किस्म या दिशा बताते हैं न कि परिवर्तन की मात्रा।

(ii) आर्थिक नियम काल्पनिक होते हैं (Economic Laws are Hypothetical)

इसका अर्थ है कि आर्थिक नियम तभी ठीक उतरते हैं जबकि 'अन्य बातें समान रहें' (Other things being equal)। परन्तु व्यावहारिक जीवन मे ये अन्य बातें समान नहीं रहती बल्कि परिवर्तित होती रहती है और इसलिए अर्थशास्त्र के नियम व्यवहार मे प्राय लागू नही हो पाते है, और वे काल्पनिक कहे जाते हैं। [उदाहरण के लिए, माँग का नियम यह बताता है कि यदि अन्य बातें समान रहे, तो किसी वस्तु की कीमत मे वृद्धि होने से उसकी माँग मे कमी हो जायेगी। परन्तु यदि लोगो की आय मे वृद्धि हो जाती है तो सम्भव है कि वस्तु विशेष की कीमत की वृद्धि होने पर उसकी माँग मे कोई कमी न हो बल्कि यह भी हो सकता है कि माँग मे वृद्धि हो जाय।]

परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि आर्थिक नियम अवास्तविक है तथा वे वैज्ञानिक नियम नही हैं। एक नियम चाहे वह किसी भी विज्ञान का क्यो न हो, कुछ मान्यताओं तथा अनुमानों

पर आधारित होता है और उन मान्यताओं की सीमा के अन्दर ही वह सत्य सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ, 'गुरुत्वाकर्षण का नियम' (Law of Gravitation) को ही लीजिए। इस नियम के अनुसार, सभी चीजों को नीचे गिरना चाहिए पर सदा ऐसा नहीं होता। वास्तव में, यह नियम वायुमण्डल के दबाव, वस्तु की गति, इत्यादि पर निर्भर है। गुब्बारे में भरी गैस वायु से हल्की होने के कारण ही गुब्बारे को ऊपर उड़ा देती है। इसी प्रकार से दो हिस्सा हाइड्रोजन तथा एक हिस्सा ऑक्सीजन को मिलाने से जल तभी बनेगा जबकि एक निश्चित दबाव तथा तापक्रम मौजूद हो।

अत: अर्थशास्त्र के नियम वैज्ञानिक नियमों की भाँति होते हैं। अर्थशास्त्र तथा प्राकृतिक विज्ञान दोनों के ही नियम काल्पनिक होते हैं, अन्तर केवल इतना होता है कि अर्थशास्त्र के नियमों में, प्राकृतिक नियमों की अपेक्षा काल्पनिकता का अधिक अंश होता है, इसका मुख्य कारण यह है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय जड़ पदार्थ वस्तुएँ नहीं बल्कि मनुष्य है जो जीव है, बुद्धि रखता है और परिवर्तनशील है।

(iii) अर्थशास्त्र के नियम सापेक्षिक होते हैं (Economic Laws are Relative)

यह कहा जाता है कि आर्थिक नियम समय, स्थान या देश से सम्बन्धित हैं। उदाहरणार्थ, किसी देश के एक समय के बैंकिंग तथा करेंसी के नियम सब समयों में सत्य नहीं हो सकते तथा एक देश के बैंकिंग के नियम दूसरे देश में लागू नहीं किए जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र के नियम 'ऐतिहासिक-सापेक्षिक' (historico-relative) या 'संस्थात्मक' (institutional) होते हैं, वे ऐतिहासिक दशाओं या संस्थाओं में परिवर्तन होने से परिवर्तित हो जाते हैं।

परन्तु यह धारणा पूर्णतया सही नहीं है। इस सम्बन्ध में निम्न दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए

(अ) अर्थशास्त्र के अनेक नियम, जैसे—उपभोग, माँग तथा पूर्ति इत्यादि के नियम, सार्वभौमिक (universal) होते हैं, वे सभी देशों तथा परिस्थितियों में लगभग सही उतरते हैं। अत वे सापेक्षिक नहीं होते। कुछ स्वयंसिद्ध नियम भी सार्वभौमिक होते हैं, जैसे पूँजी का संचय बचत से होता है।

(ब) रोबिन्स के अनुसार, आर्थिक सामान्यताओं (economic generalisations) अर्थात् आर्थिक नियमों को 'ऐतिहासिक-सापेक्षिक' (historico-relative) कहना एक खतरनाक भ्रम (dangerous misapprehension) है। प्रो० रोबिन्स के अनुसार आर्थिक नियमों का प्रयोग करते समय हम उनकी ऐतिहासिक-सापेक्षिक मान्यताओं (historico relative assumptions) को ध्यान में रखना चाहिए, अपनी मान्यताओं के अन्तर्गत [illegible] नहीं उतरेंगे।

४. प्राकृतिक नियमों से अर्थशास्त्र के [illegible] अनिश्चित [illegible] यों होते हैं? अथवा आर्थिक

आर्थिक नियम प्राकृतिक [illegible] में [illegible] रण है? [illegible] नियमों तथा प्राकृतिक नियमों में [illegible] आधार पर [illegible] है। [illegible] का उत्तर इस प्रकार है :

(1) प्राकृतिक विज्ञानों [illegible] मनुष्य में [illegible] पदार्थों का अध्ययन नहीं करते बल्कि मनुष्य का अध्ययन करते हैं [illegible] जीव [illegible] नहीं [illegible] स्वतन्त्र इच्छा वाला है, और इसलिए समान दशाओं में सभी [illegible] समान नहीं होंगी। मार्शल के शब्दों में,

"एक रसायनशास्त्री जिस विषय (matter) का अध्ययन करता है वह सदा एकसा रहता है परन्तु अर्थशास्त्र, जीवशास्त्र (Biology) की भाँति, ऐसे विषय (matter) का अध्ययन करता है जिसका आन्तरिक स्वभाव और बनावट (constitution) तथा बाहरी रूप (form) बराबर बदलता रहता है।"[1]

[1] "The matter with which the chemist deals is the same always but economics, like biology, deals with a matter, of which the inner nature and constitution, as well as the outer form, are constantly changing." —Marshall, *Principles of Economics*, Appendix C, p 637.

तो वह अपने सीमित साधनों को इस प्रकार से प्रयोग में लायेगा जिससे उसको अधिकतम सन्तुष्टि (maximum satisfaction) प्राप्त हो। इसी प्रकार, यदि वह व्यक्ति एक उत्पादक या साहसी के रूप में है, तो वह अपनी आय या लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करेगा। इसी प्रकार से श्रमिक पूर्णतया गतिशील होंगे, वे उस स्थान पर काम करेंगे जहाँ पर कि उनको अधिकतम आय (द्राव्यिक तथा वास्तविक) प्राप्त होती है।

(२) आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं से सम्बन्धित मान्यताएँ—किसी भी देश-विदेश की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन वहाँ की प्रचलित आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक बातों से प्रभावित होता है। यदि देश विशेष में पूँजीवादी तथा लोकतान्त्रिक व्यवस्था है तो इनसे सम्बन्धित मान्यताओं को लेकर अर्थशास्त्रियों को चलना होगा, और यदि देश में साम्यवाद है तो इसके अनुसार मान्यताएँ बदल दी जायेंगी।

(३) आधारभूत मान्यताएँ जो कि विज्ञान, जीव विज्ञान, भूगोल, इत्यादि से सम्बन्धित हैं—उदाहरणार्थ, विज्ञान यह बताता है कि मैटर (matter) को नष्ट नहीं किया जा सकता। हाँ, उसका रूप बदल सकता है। अर्थशास्त्रियों को विज्ञान की इस आधारभूत बात को मानकर चलना होगा। इसी प्रकार, भूगोल, जीव-विज्ञान, इत्यादि से सम्बन्धित आधारभूत तत्वों को भी अर्थशास्त्री मानकर चलेगा।

प्रश्न

१. आर्थिक नियमों के अर्थ तथा उनकी विशेषताओं को बताइए। आर्थिक नियम कम निश्चित क्यों होते हैं?

Explain the meaning and characteristics of Economic Laws. Why are Economic Laws less exact? *(Agra, B A I, 1975)*

२. आर्थिक नियम शब्द को समझाइए और आर्थिक नियमों की प्रकृति बताइए।

Explain the term Economic law and discuss the nature of Economic laws. *(Raj., Hyr., Com., 1969, Jiwaji B A I., 1958, Sagar B A., Final, 1966)*

३. "अर्थशास्त्र के नियमों की तुलना गुरुत्वाकर्षण जैसे सरल तथा सही नियम की अपेक्षा ज्वार-भाटे के नियमों से करनी चाहिए।" विवेचना कीजिए।

"The Laws of Economics are to be compared with the laws of tide rather than with the simple and exact law of gravitation" Discuss. *(Magadh B A, 1968 A; Bihar, B Com, 1966 A; Sagar, B Com., I 1967, Agra, B A., I, 1965)*

[संकेत—आर्थिक नियमों के अर्थ को बताइए, तत्पश्चात् आर्थिक नियमों की विशेषताओं की विवेचना कीजिए, संक्षेप में यह भी बताइए कि आर्थिक नियम कम निश्चित क्यों होते हैं, अन्त में निष्कर्ष दीजिए।]

४. "आर्थिक नियम मूलतः काल्पनिक होते हैं।" व्याख्या कीजिए। इनकी अन्य विज्ञान के नियमों से तुलना कीजिए।

"Economic Laws are essentially hypothetical." Comment. How do you compare them with the laws of other sciences." *(Udaipur, Hyr., Arts 1967)*

[संकेत—सर्वप्रथम 'आर्थिक नियम' का अर्थ बताइए, आर्थिक नियमों के काल्पनिक होने की विवेचना के लिए उनकी विशेषताओं को लिखिए, दूसरे भाग में अन्य विज्ञानों के नियमों से आर्थिक नियमों की तुलना कीजिए, अन्त में निष्कर्ष दीजिए।]

५. आर्थिक नियमों के स्वभाव की व्याख्या कीजिए तथा उनकी अन्य विज्ञानों के नियमों से तुलना कीजिए।

Explain the nature of economic laws and compare them with the laws of other sciences. *(B H U, B Com., I, 1965)*

६. क्या अर्थशास्त्र के परिणाम अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की अपेक्षा काल्पनिक होते हैं?

Are the results in economic science more hypothetical than in the case of natural sciences?

[संकेत—यह जानने के लिए कि अर्थशास्त्र के परिणाम अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की अपेक्षा अधिक काल्पनिक होते हैं, आर्थिक नियमों के अर्थ तथा उनके स्वभाव को समझना आवश्यक है। अतः प्रश्न के उत्तर में आर्थिक नियमों का अर्थ दीजिए; उनकी विशेषतायें बताइए, उनके कम निश्चित होने के कारण दीजिए, और अन्त में निष्कर्ष दीजिए।]

७ आर्थिक नियमों के स्वभाव की स्पष्टतया विवेचना कीजिए। इस विवेचना के सन्दर्भ में यह बताइए कि अर्थशास्त्र को एक विज्ञान कहना कहाँ तक उचित है?

Discuss carefully the nature of economic laws. How far, in the light of your discussion, is it legitimate to call economics a science?

[संकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग में, आर्थिक नियमों का अर्थ तथा उनकी विशेषताओं को बताइए। दूसरे भाग में, बताइए कि यद्यपि आर्थिक नियमों में काल्पनिकता का अंश कुछ अधिक होता है, ये कम निश्चित होते हैं, परन्तु फिर भी अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, इसके लिए देखिए पृष्ठ ९९ पर केन्द्रीय शीर्षक को।]

8 सूक्ष्म (या व्यष्टि) अर्थशास्त्र तथा व्यापक (या समष्टि) अर्थशास्त्र

[MICRO ECONOMICS AND MACRO ECONOMICS]

१. प्राक्कथन
(INTRODUCTION)

अंग्रेजी के शब्द 'माइक्रो' (Micro) का अर्थ है 'छोटा' (small) तथा 'मैक्रो' (Macro) का अर्थ है 'बड़ा' (big)। माइक्रो अर्थशास्त्र या 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र'[1] छोटी इकाइयों अर्थात् व्यक्तिगत इकाइयाँ, जैसे—एक फर्म, एक उद्योग, किसी एक वस्तु का मूल्य, इत्यादि का अध्ययन करता है। 'मैक्रो अर्थशास्त्र' या 'व्यापक अर्थशास्त्र'[2] सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन करता है या उन बड़ी इकाइयों का अध्ययन करता है जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है, जैसे कुल राष्ट्रीय आय, कुल बचत, कुल विनियोग, इत्यादि।

आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन प्राय दो दृष्टिकोणों मे किया जाता है—(i) सूक्ष्म (या व्यष्टि) विश्लेषण (Micro analysis), तथा (ii) व्यापक (या समष्टि) विश्लेषण (Macro analysis)। विश्लेषण की इन दोनों रीतियों के आधार पर ही अर्थशास्त्र को अब दो भागों मे बाँटा जाने लगा है—(i) सूक्ष्म अर्थशास्त्र (Micro Economics), (ii) व्यापक अर्थशास्त्र (Macro Economics)। अर्थशास्त्र के विश्लेषण तथा अध्ययन की रीतियों मे सूक्ष्म तथा व्यापक दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

२ संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण
(A BRIEF HISTORICAL REVIEW)

प्रारम्भ से ही अर्थशास्त्रियों ने सूक्ष्म विश्लेषण (Micro analysis) का प्रयोग किया है तथा मार्शल ने इस पद्धति को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। यद्यपि 'व्यापक 'विश्लेषण' (Macro analysis) अपेक्षाकृत नया है परन्तु इसका अर्थ यह नही कि प्राचीन समय मे इसका बिलकुल प्रयोग नही होता था। यह सत्य है प्राचीन समय म आर्थिक विश्लेषण की एक पृथक तथा स्पष्ट शाखा के रूप म 'व्यापक अर्थशास्त्र' विद्यमान नहीं था, परन्तु प्राय 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' के साथ मिलाकर प्रयोग मे लाया जाता था। आर्थिक विचारो के इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' तथा 'व्यापक अर्थशास्त्र' दोनो का अध्ययन विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने किया है।

---

[1] Micro Economics के अन्य हिन्दी अनुवाद इस प्रकार हैं—व्यष्टि अर्थशास्त्र, व्यक्तिक पद्धति अर्थशास्त्र, आर्थिक व्यष्टिभाव।

[2] Macro Economics के अन्य हिन्दी अनुवाद इस प्रकार हैं—समष्टि अर्थशास्त्र, सामूहिक पद्धति अर्थशास्त्र, आर्थिक समष्टिभाव।

सन् १९३० की विश्वव्यापी मन्दी ने अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण में एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। कीन्ज (J. M. Keynes) ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि पूर्ण रोजगार की स्थिति का अध्ययन करने के लिए 'व्यापक विश्लेषण' अपनाना चाहिए। उन्होंने सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण को अनावश्यक नहीं बताया, बल्कि उसकी त्रुटियों पर उचित प्रकाश डाला। कीन्ज की पुस्तक 'General Theory of Employment, Interest and Money' 'व्यापक अर्थशास्त्र' के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। संक्षेप में, विश्वव्यापी मन्दी, द्वितीय विश्वयुद्ध, अविकसित देशों के शीघ्र विकास की आवश्यकता तथा व्यापार चक्र को हल करने की आवश्यकता, इत्यादि, 'व्यापक अर्थशास्त्र' के विकास में महत्त्वपूर्ण कारण रहे हैं। कीन्ज के अतिरिक्त अन्य अर्थशास्त्रियों—जैसे, वालरस (Walras), विकसैल (Wicksell), फिशर (Fisher), इत्यादि—ने व्यापक अर्थशास्त्र के विकास में बहुत सहयोग दिया है।

३ सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र में अन्तर

सूक्ष्म अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Micro Economics)

सूक्ष्म अर्थशास्त्र वैयक्तिक या विशिष्ट आर्थिक इकाइयों (*individual or particular* economic units) के व्यवहार का अध्ययन करता है, जैसे—विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट उपभोक्ताओं, विशिष्ट वस्तुओं या विशिष्ट साधनों की कीमतों का अध्ययन, इत्यादि। एक उद्योग या एक बाजार का अध्ययन भी सूक्ष्म अर्थशास्त्र में किया जाता है। वास्तव में एक उद्योग बहुत-सी फर्मों का योग (aggregate) है, परन्तु एक उद्योग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का एक छोटा भाग (small section) है। इसी प्रकार एक बाजार भी पूरी अर्थव्यवस्था का एक छोटा भाग है।[3] अतः सूक्ष्म अर्थशास्त्र को निम्न शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है:

> **सूक्ष्म अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो कि विशिष्ट आर्थिक इकाइयों तथा अर्थव्यवस्था के 'छोटे भागों' का, उनके व्यवहार तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है।**[4]

'विशिष्ट आर्थिक इकाइयों' तथा अर्थव्यवस्था के 'छोटे भागों' को अर्थशास्त्री 'सूक्ष्म चर' (micro variables) या 'सूक्ष्म मात्राएँ' (micro quantities) कहते हैं। अतः

> **सूक्ष्म अर्थशास्त्र सूक्ष्म मात्राओं (micro quantities) या सूक्ष्म चरों (micro variables) के व्यवहार का अध्ययन करता है।**[5]

[सूक्ष्म अर्थशास्त्र को 'कीमत सिद्धान्त' (*Price Theory*) के नाम से भी पुकारा जाता है। इसी बात को प्रो० शुल्ज (Schultz) दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं: 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र का मुख्य यन्त्र कीमत सिद्धान्त है' (Price Theory is the main tool of micro economics)। १८वीं व १९वीं शताब्दी (centuries) में इसको 'मूल्य का सिद्धान्त' (Theory of Value) कहा जाता था। कुछ अर्थशास्त्री सूक्ष्म अर्थशास्त्र को 'कीमत तथा उत्पादन का सिद्धान्त' (*Theory of Pricing and Production*) भी कहते हैं। कभी-कभी सूक्ष्म अर्थशास्त्र को 'सामान्य अर्थशास्त्र' (*General Economics*) भी कहा जाता है।]

व्यापक अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Macro Economics)

व्यापक अर्थशास्त्र समस्त अर्थव्यवस्था का या उससे सम्बन्धित बड़े योगों तथा औसतों (large aggregates and averages) का अध्ययन करता है। व्यापक अर्थशास्त्र कुल आय, कुल

---

[3] किसी एक वस्तु का बाजार भी सैकड़ों उपभोक्ताओं की माँगों के योग को बताता है। इस दृष्टि से एक बाजार को एक वैयक्तिक इकाई न कहकर अर्थव्यवस्था का एक छोटा भाग (small section of economy) कहा जा सकता है।

[4] Micro economics is that branch of economic analysis which studies 'particular economic units' and 'small sections' of the economy, their behaviour and their interrelationship.

[5] Micro economics studies the behaviour of micro quantities or micro variables.

रोजगार, कुल बचत, कुल विनियोग, कुल उपभोग, कीमत-स्तर, इत्यादि का अध्ययन करता है और इनके सम्बन्धो को समझने का प्रयत्न करता है ताकि समस्त अर्थव्यवस्था के कार्यकरण का एक सामान्य चित्र (general picture) प्राप्त हो सके। अत व्यापक अर्थशास्त्र को निम्न शब्दों मे परिभाषित किया जा सकता है

> व्यापक अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो कि समस्त अर्थव्यवस्था का तथा अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित बडे योगों व औसतों का, उनके व्यवहार का व उनके पारस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन करता है।[6]

अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित बडे योगो या समूहो व औसतो को 'व्यापक मात्राएँ' (*macro quantities*) या 'व्यापक चर' (*macro variables*) कहा जाता है। इनमे परिवर्तन होते रहते हैं। अत

> व्यापक अर्थशास्त्र 'व्यापक मात्राओं' (*macro quantities*) या 'व्यापक चरों' (*macro variables*) के व्यवहार का अध्ययन करता है।[7]

[व्यापक अर्थशास्त्र बडे योगो या बडे समूहा का अध्ययन करता है, इसलिए इसे 'योग सम्बन्धी अर्थशास्त्र' (*aggregative economics*) भी कहते हैं। कुल रोजगार व कुल (या राष्ट्रीय) आय का अध्ययन व्यापक अर्थशास्त्र म केन्द्रीय स्थान रखता है, इसलिए व्यापक अर्थशास्त्र को 'आय व रोजगार विश्लेषण' (*Income and Employment Analysis*) अथवा 'आय सिद्धान्त' (*Income Theory*) या राष्ट्रीय आय विश्लेषण (National Income Analysis) भी कहते हैं। प्रो० शूल्ज (Schultz) इसको दूसरे शब्दो में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—"व्यापक अर्थशास्त्र का मुख्य यन्त्र राष्ट्रीय आय विश्लेषण है।"[8]]

सूक्ष्म तथा व्यापक अर्थशास्त्र मे अन्तर (Distinction)

वास्तव मे 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' तथा 'व्यापक अर्थशास्त्र' के बीच एक निश्चित रेखा (precise or clear-cut line) खींचना कठिन है। दूसरे शब्दों म इन दोनो के बीच अन्तर को समझने के लिए निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए :

> १ सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र दोनों में विभिन्न मात्रा मे 'योग करने की क्रिया' (*aggregation*) तथा 'योग को टुकडों मे तोड़ने की क्रिया' (*disaggregation*) का प्रयोग किया जाता है।[9]

उदाहरणार्थ, सूक्ष्म अर्थशास्त्र म एक उद्योग या एक बाजार का अध्ययन किया जाता है। उद्योग बहुत-सी फर्मों का योग है तथा बाजार की माँग रेखा वैयक्तिक माँग रेखाओ का योग है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र के योग बहुत छोटे होते हैं, उनके अध्ययन से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को समझना कठिन है। एक उद्योग की समस्याओ को समझने के लिए उसको टुकडो मे तोडा (अर्थात् *disaggregation*) किया जा सकता है। उसके अन्तर्गत विभिन्न फर्मों का अध्ययन किया जा सकता है।

इसके विपरीत व्यापक अर्थशास्त्र के योग ऐसे बडे होते हैं (जैसे कुल विनियोग, कुल व्यय, इत्यादि) जो कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को समझने के लिए उपयोगी हैं। स्पष्ट है कि यहाँ पर 'योग का स्तर' (level of aggregation), सूक्ष्म अर्थशास्त्र की तुलना मे, भिन्न है। 'कुल व्यय' (*total expenditure*) के व्यवहार को समझने के लिए इस योग को 'कुल उपभोग व्यय' (total consumption expenditure) तथा 'कुल विनियोग व्यय' (total investment expenditure) मे तोडा जा सकता है। इस प्रकार व्यापक अर्थशास्त्र म भी, सुविधानुसार, एक सीमा तक, योगों को टुकडो मे तोडा जा सकता है (अर्थात् *disaggregation*) किया जा सकता है।

[6] Macro economics is that branch of economic analysis which studies the whole economy as well as the large aggregates and averages relating to the whole economy, their behaviour and their interrelationship

[7] Macro economics studies the behaviour of macro quantities or macro variables

[8] "The main tool of macro economics is national income analysis"

[9] Both micro and macro economics use various degrees of aggregation and disaggregation.

'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' अर्थव्यवस्था को बहुत छोटे टुकडो या भागो म बाँटकर अध्ययन करता है, इसलिए सूक्ष्म अर्थशास्त्र को कभी-कभी 'फाँके या कतले करने की रीति' अर्थात् 'स्लाइसिंग की रीति' (*Method of Slicing*) कहा जाता है। इसके विपरीत 'व्यापक अर्थशास्त्र' अर्थव्यवस्था का बहुत बडे या विशाल भागो अर्थात् बडे डलो (big lumps) म बाँटकर अध्ययन करता है, इसलिए व्यापक अर्थशास्त्र को कभी-कभी 'विशाल डले करने की रीति' अर्थात् 'लम्पिंग की रीति' (*Method of Lumping*) कहा जाता है।

२. सूक्ष्म तथा व्यापक अर्थशास्त्र मे अन्तर विषय सामग्री का इतना नही है जितना कि रीति का, विषय-सामग्री को इच्छानुसार या सुविधानुसार दोनों मे बाँट दिया जाता है।[10]

उदाहरणार्थ, द्रव्य तथा वित्त (money and finance) का अध्ययन, जिसके अन्तर्गत बैंको तथा अन्य वित्तीय सस्थाओ का अध्ययन भी आता है, सुविधा के लिए व्यापक अर्थशास्त्र म किया जाता है, जबकि बैंको तथा वित्तीय सस्थाओ का अध्ययन फर्मों के अध्ययन की भाँति, सूक्ष्म अर्थशास्त्र मे शामिल करना चाहिए था। परन्तु यह परम्परा (tradition) है तथा सुविधाजनक (convenient) है कि वित्तीय सस्थाओ को व्यापक अर्थशास्त्र म शामिल किया जाता है, इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि वित्तीय सस्थाएं अर्थव्यवस्था के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती हैं।

४. सूक्ष्म अर्थशास्त्र का क्षेत्र, उसके प्रयोग व उसकी आवश्यकता
(SCOPE, USE AND NEED OF MICRO ECONOMICS)

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण प्रयोग (जो कि उसके क्षेत्र तथा आवश्यकता को भी बताते हैं) नीचे दिये गये हैं

(१) सूक्ष्म अर्थशास्त्र देश के 'कुल उत्पादन' का नही बल्कि 'कुल उत्पादन की सरचना' (composition of total production) का तथा विभिन्न प्रयोगो मे 'साधनो के वितरण' (allocation of resources) का अध्ययन करता है। यह 'कुल आय' का नही बल्कि 'कुल आय के वितरण' (distribution of total income) का अध्ययन करता है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र कुल रोजगार तथा कुल आय को दिया हुआ मान लेता है।

(२) इसके अन्तर्गत सामान्य मूल्य स्तर (general price level) का नही बल्कि 'कीमतों के सापेक्षिक ढाँचे' (relative price structure) का अध्ययन किया जाता है, अर्थात् विशिष्ट वस्तुओ तथा विशिष्ट साधनो की कीमतो के निर्धारण व उनके पारस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है।

(३) यह विभिन्न विशिष्ट इकाइयों—जैसे एक व्यक्ति, एक परिवार, एक फर्म, एक उद्योग, इत्यादि—से सम्बन्धित व्यय, ...ल, विनियोग, आय के स्रोतो (sources), इत्यादि—का विश्लेषणात्मक अध्ययन (ana...y) करता है।

(४) यह विशिष्ट इकाइयों को अपने-अपने क्षेत्र मे आर्थिक व्यवहार (economic behaviour) या आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध मे निर्णय लेने मे मदद करता है। उदाहरणार्थ, एक फर्म माँग विश्लेषण, लागत विश्लेषण तथा रेखीय प्रोग्रामिंग (linear programming) इत्यादि की सहायता से अपनी वस्तु की कीमत तथा उत्पादन की मात्रा के सम्बन्ध म निर्णय लेती है ताकि उसकी लागत न्यूनतम की जा सके या उसका लाभ अधिकतम किया जा सके।

---

[10] The distinction between micro and macro economics "however, is more one of method that it is of subject matter, and indeed the subject matter is frequently parcelled out somewhat arbitrarily (or for convenience) between the two divisions."

(५) सूक्ष्म अर्थशास्त्र का प्रयोग आर्थिक कल्याण की दशाओं (conditions of economic welfare) की जाँच के लिए किया जाता है। इसका अर्थ है कि व्यक्तियों को वस्तुओं तथा सेवाओं से प्राप्त सन्तुष्टियों (satisfactions) का अध्ययन सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

(६) सूक्ष्म अर्थशास्त्र का प्रयोग आर्थिक नीति (economic policy) में किया जाता है। इसके अन्तर्गत सरकार की आर्थिक नीतियों का अध्ययन इस दृष्टि से किया जाता है कि उनका प्रभाव वैयक्तिक या विशिष्ट इकाइयों (individual or particular units) के कार्यकरण (working) पर क्या पड़ता है। उदाहरणार्थ, हम इस बात का अध्ययन कर सकते हैं कि सरकार की नीतियों का विशिष्ट वस्तुओं की कीमतों तथा मजदूरियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, तथा सरकार की नीतियाँ साधनों के वितरण (allocation of resources) को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। दूसरे शब्दों में, विशिष्ट आर्थिक इकाइयों—जैसे, कपड़ा उद्योग, मोटर-कार उद्योग, इत्यादि—के सम्बन्ध में सरकार को आर्थिक नीति के निर्माण में सूक्ष्म अर्थशास्त्र से सहायता मिलती है।

५ सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमाएँ (LIMITATIONS OF MICRO ECONOMICS)

यद्यपि सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण आवश्यक तथा उपयोगी है परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं। मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैं

(१) सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन का सही चित्र प्राप्त नहीं होता—सूक्ष्म अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर ध्यान न देकर उसके कुछ छोटे भागों के संचालन तथा संगठन पर ही ध्यान देता है। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन का सामूहिक रूप में उचित ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

(२) सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण के बहुत-से निष्कर्ष सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से ठीक नहीं होने—यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्तिगत निर्णयों का योग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए उचित हो। प्रायः वैयक्तिक इकाइयों का विशिष्ट व्यवहार उनके सामूहिक सामान्य व्यवहार तथा औसत व्यवहार से बिलकुल भिन्न होता है। उदाहरणार्थ, बचत (saving) करना एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से अच्छा है, यदि एक साथ सभी व्यक्ति बचत करने लगें तो यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक होगा क्योंकि ऐसा करने से उपभोग-वस्तुओं की माँग कम हो जायेगी, रोजगार कम होगा और राष्ट्रीय आय कम होने लगेगी।

(३) यह कई अवास्तविक मान्यताओं—जैसे, पूर्ण रोजगार, पूर्ण प्रतियोगिता इत्यादि—पर आधारित है। वास्तविक जीवन में ये मान्यताएँ नहीं पायी जाती हैं।

(४) कुछ आर्थिक समस्याओं का अध्ययन सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता। राजस्व के क्षेत्र की अनेक समस्याएँ, देश के लिए उचित मौद्रिक नीति, उचित प्रशुल्क नीति का निर्धारण, इत्यादि का अध्ययन तथा विश्लेषण सूक्ष्म आर्थिक प्रणाली द्वारा सम्भव नहीं है।

६ व्यापक अर्थशास्त्र का क्षेत्र, उसके प्रयोग तथा उसकी आवश्यकता (SCOPE, USES AND NEED OF MACRO ECONOMICS)

व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमाओं तथा कुछ अन्य बातों के परिणामस्वरूप प्रतीत होती है। निम्नलिखित विवरण व्यापक अर्थशास्त्र के क्षेत्र, प्रयोग तथा आवश्यकता को स्पष्ट करता है

(१) आधुनिक सिद्धान्त के बहुत से विषय, जैसे राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के सिद्धान्त, आर्थिक विकास के सिद्धान्त, सामान्य कीमत-स्तर, मुद्रा तथा वित्त (money and finance), अन्तरराष्ट्रीय व्यापार, विदेशी विनिमय, इत्यादि व्यापक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं। इन सब के अध्ययन के लिए व्यापक अर्थशास्त्र की आवश्यकता है, क्योंकि व्यापक अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था तथा इससे सम्बन्धित बड़े योगों व औसतों का अध्ययन करता है।

(२) आर्थिक नीतियों के निर्माण की दृष्टि से व्यापक अर्थशास्त्र बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसा इसलिए है कि सरकार की आर्थिक नीतियों का सम्बन्ध प्राय व्यक्तियों से न होकर व्यक्तियों के समूहों तथा योगों से होता है। यद्यपि समय-समय पर सरकार वैयक्तिक इकाइयों (जैसे विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट उद्योगों, विशिष्ट मूल्यों, इत्यादि) पर भी ध्यान देती है, परन्तु उसकी मुख्य जिम्मेदारी कुल आय, कुल रोजगार, सामान्य मूल्य-स्तर, व्यापार के सामान्य स्तर, इत्यादि के नियन्त्रण में ही होती है।

उपर्युक्त क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं को व्यापक आर्थिक विश्लेषण की सहायता से समझ कर अर्थशास्त्री सुझाव प्रस्तुत करके सरकार द्वारा आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायता करते हैं।

(३) एक ओर 'उपभोक्ता-वस्तुओं' (consumers' goods) तथा दूसरी ओर 'पूंजीगत-वस्तुओं' (capital goods) के बीच साधनों के वितरण (allocation of resources) से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन व्यापक अर्थशास्त्र में किया जाता है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अन्तर्गत भी 'साधनों के वितरण' की समस्या का अध्ययन किया जाता है। परन्तु सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र दोनों में 'साधनों के वितरण' की समस्या के सम्बन्ध में अन्तर 'योग के स्तर' (level of aggregation) का है। व्यापक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत साधनों के वितरण का अध्ययन दो बड़े भागों ('उपभोक्ता वस्तुओं का भाग' तथा 'पूंजीगत-वस्तुओं का भाग') के बीच किया जाता है और ये दो बड़े भाग मिलकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को बनाते हैं, इसके विपरीत सूक्ष्म अर्थशास्त्र से हम अर्थव्यवस्था को बहुत छोटे-छोटे फर्मों, उद्योगों, इत्यादि में बाँटकर साधनों के वितरण की समस्या का अध्ययन करते हैं।

(४) जटिल अर्थव्यवस्था के सामूहिक सचालन को समझने के लिए व्यापक अर्थशास्त्र आवश्यक है। आधुनिक अर्थव्यवस्था अत्यन्त जटिल है और आर्थिक तत्व परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन से समस्त अर्थव्यवस्था के आर्थिक सगठन और सचालन का सही ज्ञान प्राप्त होता है, जबकि सूक्ष्म अर्थशास्त्र केवल वैयक्तिक या विशिष्ट इकाइयों का ही ज्ञान कराता है।

(५) सूक्ष्म अर्थशास्त्र के विकास के लिए भी व्यापक अर्थशास्त्र आवश्यक है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र विभिन्न नियमों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है किन्तु ऐसा करने में उसे व्यापक अर्थशास्त्र की सहायता लेनी पडती है। उदाहरणार्थ, उपयोगिता ह्रास नियम तभी सम्भव हो सका है जबकि व्यक्तियों के समूहों के व्यवहार का अध्ययन किया गया। इसी प्रकार, एक फर्म का सिद्धान्त (*Theory of firm*) का निर्माण बहुत-सी फर्मों के व्यवहार को सामूहिक रूप से अध्ययन करने पर ही बनाया जा सका।

(६) 'व्यापक अर्थशास्त्र विरोधाभासों' (*macro economic paradoxes*) या 'संरचना का धोखा' (*fallacy of composition*) के कारण भी व्यापक अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। 'व्यापक अर्थशास्त्रीय विरोधाभास' या 'सरचना का धोखा' का आशय उन धारणाओं से है जो किसी एक व्यक्ति के लिए तो सही हो लेकिन उनका प्रयोग अर्थव्यवस्था के लिए किया जाय तो गलत सिद्ध हों। उदाहरणार्थ, बचत एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से लाभदायक है, परन्तु यदि सभी लोग आधिक्य बचत करने लग जायें, तो यह सम्पूर्ण देश के दृष्टिकोण से हानिकारक होगी। इन विरोधाभासों के कारण ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के पृथक अध्ययन की आवश्यकता है।"[11]

---

[11] "It is these paradoxes more than any other factor which justify the separate study of the system as a whole not merely as inventory or list of particular items, but as a complex of aggregates"

७ व्यापक आर्थिक विश्लेषण की सीमाएँ, कठिनाइयाँ या खतरे
(LIMITATIONS, DIFFICULTIES OR DANGERS OF MACRO ECONOMIC ANALYSIS)

यद्यपि व्यापक आर्थिक विश्लेषण महत्त्वपूर्ण है तथा पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका है परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ तथा खतरे (pitfalls) भी हैं जिनको ध्यान मे रखना आवश्यक है, ये निम्न-लिखित हैं

(१) वैयक्तिक इकाइयों के योग के आधार पर व्यापक अर्थशास्त्र के लिए निष्कर्ष निकालने मे बहुत-से खतरे होते हैं। यह जरूरी नही है कि जो व्यक्तियो तथा लघु-समूहो के सम्बन्ध मे सत्य हो वह सम्पूर्ण समाज या अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध मे भी सत्य हो। इस प्रकार के आर्थिक विरोधाभासो (economic paradoxes) के कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं -

(अ) यदि एक व्यक्ति जब चाहे तब अपनी जमा (deposit) बैंक से निकाल लेता है तो कोई नुकसान नहीं है। परन्तु यदि एक ही साथ सभी व्यक्ति बैंक मे अपनी जमाएँ (deposits) निकालने लग जायें, तो बैंक फेल हो जायेगा और इनका प्रभाव अन्य बैंको पर भी पडेगा।

(ब) इसी प्रकार, एक व्यक्ति द्राव्यिक रूप म बचत कर सकता है, परन्तु यदि सभी लोग एक साथ द्राव्यिक रूप मे बचत शुरू कर दें और उसका विनियोग न करें, तो देश के लिए हानि-कारक होगा क्योकि बचत करने से उपभोग वस्तुओ की मांग कम होगी, बेरोजगारी फैलेगी और अर्थव्यवस्था मे मन्दी छा जायेगी। अत कैंज (Keynes) ने ठीक कहा है कि "बचत जो कि एक व्यक्तिगत गुण है वह सार्वजनिक बुराई हो जाती है।" (Savings which is an individual virtue becomes a public vice)।

(२) वैयक्तिक इकाइयों से सम्बन्ध न रखकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या समाज का प्रत्यक्ष रूप से विश्लेषण किया जाता है तो ऐसा करने मे भी दोष रहते हैं क्योकि इसमे सम्पूर्ण समाज पर तो ध्यान दिया जाता है जबकि वैयक्तिक इकाइयो तथा छोटे समूहो, जिससे समाज या अर्थव्यवस्था बनती है, को छोड दिया जाता है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या समाज का प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन या विश्लेषण करने मे निम्न कठिनाइयाँ या खतरे उपस्थित होते हैं

(अ) **समूह (या योग) की अपेक्षा समूह की बनावट** (structure), **रचना** (compositions) **तथा अग** (components) **अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं**—उदाहरणार्थ, मान लीजिए १९७१ तथा १९७२ मे सामान्य मूल्य स्तर समान है, उसमे कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु यह सम्भव है कि कृषि की कीमतें बहुत गिर गयी हों तथा औद्योगिक वस्तुओ की कीमतें बहुत बढ गयी हो जिससे सामान्य मूल्य-स्तर मे कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नही होता। अत समूह या योग के आधार पर भविष्य-वाणी करना या सुझाव देना या विवेचना करना उचित नही होगा जब तक कि समूह की बनावट और उसके अगो के स्वभाव तथा आपसी सम्बन्ध की पूर्ण जानकारी न प्राप्त करली जाय।

(ब) दूसरी कठिनाई यह है कि **एक योग** (aggregate) **अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को समान रूप से प्रभावित नहीं करता**। उदाहरणार्थ, कुल मांग मे वृद्धि के परिणाम-स्वरूप कुल उत्पादन बढ़ेगा परन्तु कुछ फर्मों को उत्पादन बढाने मे बढती हुई लागतो का सामना करना पडेगा जबकि कुछ फर्मे गिरती हुई लागतो के अन्तर्गत उत्पादन में वृद्धि कर सकेंगी। इसी प्रकार, यदि सभी लोगो की आयो मे सामान्य वृद्धि हो जाती है, तो बहुत-से लोग साइकिलो के स्थान पर स्कूटरों का प्रयोग करने लग सकते हैं, ऐसी स्थिति मे साइकिल उद्योग पर बुरा प्रभाव पडेगा, क्योकि साइकिलो की मांग कम हो जायेगी जबकि स्कूटर उद्योग पर अच्छा प्रभाव पडेगा क्योंकि उसकी मांग बढ जायेगी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है,

"व्यापक अर्थशास्त्र की कठिनाइयाँ या तो वैयक्तिक इकाइयों के योग के आधार पर ही निष्कर्ष निकालने के कारण होती हैं या सीधे योग के अध्ययन करने से होती हैं क्योंकि ऐसा करने में प्रायः योग के विभिन्न अंगों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर ध्यान नहीं दिया जाता है।"

८. सूक्ष्म तथा व्यापक दोनों पद्धतियों की पारस्परिक निर्भरता (INTERDEPENDENCE OF THE TWO METHODS)

सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण तथा व्यापक आर्थिक विश्लेषण दोनों में आपस में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। ये एक-दूसरे की प्रतियोगी न होकर पूरक हैं। इनमें से कोई भी प्रणाली अपने में पूर्ण नहीं है, प्रत्येक की सीमाएँ तथा दोष हैं। वास्तव में एक प्रणाली की सीमाएँ तथा दोष दूसरी प्रणाली द्वारा दूर हो जाते हैं। अतः दोनों रीतियाँ एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं। दोनों रीतियों की पारस्परिक निर्भरता कुछ उदाहरणों द्वारा निम्न प्रकार व्यक्त की जा सकती है।

१. सूक्ष्म अर्थशास्त्र को व्यापक अर्थशास्त्र का सहारा आवश्यक है (Micro Economic Analysis needs the support of Macro Economic Analysis)

यह बात निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है :

(१) एक व्यक्तिगत फर्म या एक उद्योग श्रम, कच्चे माल, मशीनों, इत्यादि के लिए जो कीमतें देता है, वे उस फर्म या उद्योग की उन साधनों की स्वयं की माँग पर ही निर्भर नहीं करतीं, बल्कि इस बात पर निर्भर करती हैं कि इन साधनों की समस्त अर्थव्यवस्था में कुल माँग कितनी है।

(२) इसी प्रकार कोई फर्म अपना माल कितना बेच सकेगी यह बात केवल उस फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमतों पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि इस बात पर भी निर्भर करेगी कि समाज में कुल क्रय-शक्ति (*total purchasing power*) कितनी है।

(३) किसी एक वस्तु का मूल्य-निर्धारण केवल उस वस्तु की पूर्ति और माँग पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि अन्य वस्तुओं की कीमतों पर भी निर्भर करता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सूक्ष्म अर्थशास्त्र को विभिन्न वैयक्तिक समस्याओं का अध्ययन और विवेचन करने के लिए व्यापक अर्थशास्त्र पर निर्भर करना पड़ता है।

२. व्यापक अर्थशास्त्र को भी सूक्ष्म अर्थशास्त्र का सहारा आवश्यक है (Macro Economic Analysis needs the support of Micro Economic Analysis)

यह बात निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है :

(१) मान लीजिए सब वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। परन्तु जिन फर्मों का उत्पादन 'लागत वृद्धि नियम' के अन्तर्गत हो रहा होगा उनके लिए ऊँची कीमतें (माँग बढ़ने के परिणाम-स्वरूप) होने पर भी उत्पादन को बढ़ाना कठिन होगा।

(२) माना कि सभी लोगों की आय बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई आय को लोग विभिन्न प्रकार से व्यय करते हैं। यदि लोग लकड़ी फर्नीचर की अपेक्षा स्टील फर्नीचर अधिक खरीदने लग जाते हैं तो स्टील फर्नीचर उद्योग का विस्तार अधिक होगा।

(३) वास्तव में, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था विभिन्न प्रकार की वैयक्तिक इकाइयों (जैसे व्यक्तियों, परिवारों, फर्मों तथा उद्योगों) द्वारा निर्मित होती है। अतः सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्य-करण के उचित ज्ञान के लिए विभिन्न वैयक्तिक इकाइयों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर ध्यान देना आवश्यक है।

६ निष्कर्ष
(CONCLUSION)

१ यद्यपि 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' तथा 'व्यापक अर्थशास्त्र' आर्थिक विश्लेषण के दो अलग-अलग तरीकों को बताते हैं परन्तु उनकी पारस्परिक निर्भरता (mutual interdependence) को भुलाया नहीं जा सकता है।

> राष्ट्रीय आय, जो कि एक व्यापक चर (macro variable) है, में परिवर्तन (changes) किसी एक वस्तु (माना चीनी) के बाजार को प्रभावित कर सकते हैं। इसके विपरीत, किसी एक उद्योग (माना मोटरकार उद्योग), जो कि एक सूक्ष्म चर (micro variable) है, में विस्तार या संकुचन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को उत्तेजित (stimulate) या शिथिल (retard) कर सकती है।

२ दोनों रीतियाँ एक दूसरे की पूरक (complementary) हैं। अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को सही रूप में समझने के लिए दोनों की आवश्यकता है। प्रो० सेम्युलसन (Samuelson) के शब्दों में,

> "वास्तव में सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं है। दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि आप एक को समझते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं, तो आप केवल अर्द्ध-शिक्षित हैं।"[12]

प्रश्न

१ 'व्यष्टि अर्थशास्त्र' (Micro economics) की परिभाषा दीजिए तथा इसके महत्त्व एवं सीमाओं को बताइए।
Define Micro-economics and discuss its importance and limitations
(Agra B A I, 1976)

२ (अ) 'व्यापक या समष्टि अर्थशास्त्र' (*Macro-economies*) की परिभाषा दीजिए।
(ब) 'व्यापक या समष्टि अर्थशास्त्र' के महत्त्व तथा उसकी सीमाओं को बताइए।
(a) Define Macro-econom cs
(b) *Discuss the importance and limitations of Macro-economics*
(Agra, B A I, 1975)

३ सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए। आर्थिक विश्लेषण में 'व्यापक दृष्टिकोण' की आवश्यकता को बताइए।
Distinguish between micro-economics and macro-economics Point out the necessity of macro approach in economic analysis.

४. सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए तथा पारस्परिक निर्भरता को समझाइए।
Distinguish between micro-economics and macro-economics and show their inter-dependence

५. सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र के बीच भेद कीजिए। व्यापक आर्थिक विश्लेषण की कठिनाइयों को बताइए।
Distinguish between micro-economics and macro-economics. Indicate the difficulties in macro-economic analysis

६ 'वास्तव में सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं है। दोनों अत्यन्त आवश्यक

---

[11] "There is really no opposition between micro and macro-economics Both are absolutely vital And you are only half educated if you understand the one while being ignorant of the other "

है। यदि आप एक को समझते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं तो ... है जिसमें हमें व अर्थशास्त्र है।" (सेम्युलसन)। इस कथन की विवेचना कीजिए।

"There is really no opposition between micro and macro-econ ... absolutely vital. And you are only half-educated if you understand ... being ignorant of the other." (*Samuelson*) Discuss the above statement. करने में हमें व निष्कर्षों निकालें

अथवा

"अर्थशास्त्री को आर्थिक व्यष्टिवाद (micro-economics) तथा आर्थिक समष्टिवाद (macro-economics) दोनों प्रकार की समस्याओं का अध्ययन करना पड़ता है, आर्थिक व्यष्टिवाद तथा आर्थिक समष्टिवाद पद्धतियाँ एक-दूसरे की विकल्प नहीं बल्कि पूरक है। इस कथन की विवेचना कीजिए।

"The economist has to study micro as well as macro-economic problems. The two studies are complementary to each other rather than being the alternate methods of study." Discuss the above statement.

5. सूक्ष्म तथा व्यापक अर्थशास्त्र के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। निम्न की विवेचना कीजिए : (अ) व्यापक आर्थिक विश्लेषण की कठिनाइयाँ, तथा (ब) आर्थिक नीति निर्माण में व्यापक अर्थशास्त्र का महत्त्व।

Distinguish between micro and macro-economics. Discuss (a) the difficulties in macro economic analysis, (b) the importance of macro-economics in economic policy formulation.

तथा प्रावैगिक अर्थशास्त्र
DYNAMIC ECONOMICS]

आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण करते समय हमें प्रचलित परिस्थितियों के सम्बन्ध में कुछ मान्यताओं को लेकर चलना पड़ता है। ये मान्यताएँ आर्थिक निष्कर्षों को महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करती हैं। हम आर्थिक समस्याओं का अध्ययन स्थैतिक (static) या प्रावैगिक (dynamic) दशाओं में कर सकते हैं। स्थैतिक तथा प्रावैगिक के विचार आर्थिक विश्लेषण में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

स्थैतिक तथा प्रावैगिक अर्थशास्त्र में अन्तर
(DISTINCTION BETWEEN STATIC AND DYNAMIC ECONOMICS)

१. 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' अथवा 'स्थैतिक विश्लेषण' का अर्थ (Meaning of 'Static Economics' or 'Static Analysis')

भौतिकशास्त्र (Physics) में स्थैतिक शब्द विश्राम (state of rest) की अवस्था का प्रतीक होता है, जबकि अर्थशास्त्र में इसका सम्बन्ध किसी मृतक या गतिहीन अर्थव्यवस्था से नहीं होता, बल्कि ऐसी अर्थव्यवस्था से होता है जिसमें गति (*movement*) होती है परन्तु इस गति की दर (rate of movement) में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यह गति निश्चित और नियमित रूप से होती है, उसमें कोई उतार-चढ़ाव, झटके (jerks) या अनिश्चितता नहीं होती है। प्रो० हैरोड (Harrod) के अनुसार, "इस सक्रिय (active) परन्तु अपरिवर्तनशील प्रक्रिया (unchanging process) को ही स्थैतिक अर्थशास्त्र कहा जा सकता है।"[1]

'स्थैतिक अर्थशास्त्र' अथवा 'आर्थिक स्थैतिकी' शब्द के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में थोड़ा मतभेद रहा है। हम प्रो० हिक्स की परिभाषा से प्रारम्भ करेंगे, तथा उस पर टीका करते हुए 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' शब्द के उस अर्थ को स्पष्ट करेंगे जिससे कि अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री सहमत हैं। प्रो० हिक्स (J R Hicks) ने स्थैतिक तथा प्रावैगिक के विचारों (concepts) को अग्र प्रकार से परिभाषित किया है

[1] "Thus a static equilibrium by no means implies a state of idleness, but one in which work is steadily going forward day by day and year by year, but without increase or diminution —that it is to this *active but unchanging process that the expression static economics should be applied*" —Harrod, *Towards a Dynamic Economics*, pp 3-4.

आर्थिक सिद्धान्त के उन भागों को मैं स्थैतिक अर्थशास्त्र कहता हूँ जिनमे हमे तिथीकरण की आवश्यकता नहीं होती तथा उन भागो को प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहता हूँ जिनमे प्रत्येक मात्रा का तिथीकरण करना आवश्यक है।[1]

अब हम हिक्स की परिभाषा पर टीका (comment) करते है, ऐसा करने से हमे स्थैतिक के विचार को सही रूप मे समझने मे बहुत सहायता मिलेगी। हिक्स 'स्थिर स्थितियों' (stationary situations) के विश्लेषण को स्थैतिक मानना सुविधाजनक पाते हैं, स्थिर स्थितियो से अभिप्राय ऐसी स्थितियों से है जहाँ किसी चीज मे भी परिवर्तन नही होता है (अथवा जहाँ मुख्य या आधारभूत बातो मे कोई परिवर्तन नही होता है)[2], और जहाँ भूतकाल (past) तथा भविष्य-काल के सम्बन्ध पर कोई ध्यान देने की आवश्यकता नही होती क्योकि (परिवर्तन की अनुपस्थिति मे) वर्तमान से सम्बन्धित तथ्य तथा विश्लेषण (facts and analysis) किसी भी अन्य समय पर पूरी प्रकार से लागू किये जा सकेंगे। जब एक बार अर्थव्यवस्था मे परिवर्तन होना शुरू हो जाता है तो, हिक्स के अनुसार, विश्लेषण प्रावैगिक हो जाता है क्योकि विभिन्न तिथियो (different dates) पर चीजें भिन्न होगी।[3]

हैरोड (Harrod) के अनुसार स्थैतिक अर्थशास्त्र को केवल स्थिर अर्थव्यवस्था का, जिसमे परिवर्तनों की पूर्ण अनुपस्थिति मानी जाती है, अध्ययन समझना पूर्णतया सही नहीं है। उनके अनुसार कुछ प्रकार के परिवर्तन, जैसे 'एक बारगी परिवर्तन' (once-over changes), मौसमो तथा फसलो के परिवर्तन, इत्यादि स्थैतिक अर्थशास्त्र मे शामिल होते हैं, बशर्ते कि ये परिवर्तन साम्य या सन्तुलन के स्थापित होने की प्रवृत्ति को नष्ट न करते हो।[5] इसके अतिरिक्त, हैरोड के अनुसार तिथीकरण (dating) के होने से या न होने से आर्थिक विश्लेषण प्रावैगिक (*dynamic*) या स्थैतिक (*static*) नहीं हो जाता है।[6]

वास्तव मे 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' या 'आर्थिक स्थैतिक' के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए निम्न बातो को ध्यान मे रखना चाहिए

(i) स्थैतिक विश्लेषण के लिए सन्तुलन या साम्य (equilibrium) का विचार आधार (base) है। स्थैतिक विश्लेषण का सम्बन्ध, एक क्षण या एक समय विशेष पर, अर्थव्यवस्था अथवा किसी विशेष आर्थिक इकाई मे केवल साम्य की स्थिति के अध्ययन से होता है। दूसरे शब्दो मे, स्थैतिक का सम्बन्ध उस 'परिवर्तन की

---

[1] "I call economic static those parts of economic theory where we do not trouble about dating, economic dynamics those parts where every quantity must be dated."

[2] प्रो० स्टिगलर (Stigler) के अनुसार 'स्थिर अर्थव्यवस्था' (stationary economy) तब होगी जबकि तीन आधारभूत तथ्यो (three fundamental data)—(i) रुचि, (ii) साधनो और (iii) टेक्नोलोजी—मे कोई परिवर्तन न हो। प्रो० क्लार्क (Clark) ने 'स्थिर अर्थ-व्यवस्था' के लिए तथ्यो के अन्तर्गत पाँच बातो को स्थिर या समान माना है और वे पाँच तथ्य हैं—(i) जनसख्या, (ii) पूँजी, (iii) उत्पादन की रीतियाँ, (iv) वैयक्तिक कारखानो के रूप (forms of individual establishments), तथा (v) मानवीय आवश्यकताएँ।

[3] "Hicks finds it convenient to class as static only the analysis of stationary situations situations where nothing changes and where no attention need be paid to the past or to the future because the facts and analysis relating to the present will apply equally well at any other time Once the system begins to change then the analysis according to Hicks, becomes dynamic for at different dates things will be different."

[5] कुछ अर्थशास्त्री 'एक बारगी परिवर्तनो को 'तुलनात्मक स्थैतिक' (*comparative statics*) के अन्तर्गत रखना पसन्द करते हैं। 'तुलनात्मक स्थैतिक' के अन्तर्गत हम [illegible] our analysis को कई सन्तुलन स्थितियो मे बाँट लेते है और एक सन्तुलन स्थिति [illegible] every quantity must के साथ तुलना करते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन चाहे स्थैतिक तुलनात्मक स्थैतिक के, परन्तु वे प्रावैगिक (dynamics) के अन्तर्ग[illegible]inuing changes and with

—*Harrod*

[6] Dating or absence of dating does not make an economic ana[illegible] of time are involved in an

—*Ragnar Frisch*

स्थिति (*changing situation*) का अध्ययन स्थैतिक हो सकता है यदि 'परिवर्तन की प्रक्रिया' पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है और आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में केवल 'समय के एक क्षण पर स्थिर चित्र' (a still picture at a particular time) का, अथवा उसका 'समय की एक फाँक' पर (at a slice of time) पर, अध्ययन किया जाता है। अतः,

"स्थैतिक एक गतिशील अवस्थाधरा का, उसके विभिन्न भागों की स्थितियों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए एक फोटोग्राफ' या एक 'स्थिर चित्र' (*a still*) का अध्ययन करता है। 'स्थिर चित्र' का तिथीकरण होना आवश्यक है परन्तु हमारे द्वारा उसका विश्लेषण स्थैतिक हो सकता है।"[8]

२. प्रावैगिक अर्थशास्त्र अथवा प्रावैगिक विश्लेषण का अर्थ (Meaning of Dynamic Economics or Dynamic Analysis)

प्रावैगिक अर्थशास्त्र निरन्तर परिवर्तनों (continuous changes) तथा इन परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले तत्त्वों (determinants of change) या 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) का अध्ययन करता है। आर्थिक प्रावैगिक रीति स्थैतिक अर्थशास्त्र की भाँति, आर्थिक तत्त्वों (economic data) को स्थिर नहीं मानती।

स्थैतिक की भाँति प्रावैगिक अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में भी अर्थशास्त्री एकमत नहीं हैं। हम मुख्य अर्थशास्त्रियों की परिभाषाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित करते हुए तथा उनकी कमियों और गुणों को बताते हुए नीचे देते हैं

(i) हिक्स (J R Hicks) आर्थिक सिद्धान्त के उन भागों को प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहते हैं जिनमें प्रत्येक मात्रा का तिथीकरण (dating) करना आवश्यक है।[9] आलोचकों का कहना है

(a) हिक्स की परिभाषा प्रावैगिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र को अधिक विस्तृत कर देती है, तथा

(b) तिथीकरण करने से ही आर्थिक विश्लेषण प्रावैगिक नहीं हो जाता है।

(ii) हैरोड (Harrod) के अनुसार, "प्रावैगिक का सम्बन्ध विशेषतया निरन्तर परिवर्तनों के प्रभावों तथा निर्धारित किये जाने वाले मूल्यों (values) में परिवर्तनों की दरों से होना चाहिए।"[10]

(iii) रेगनर फ्रिश (Ragnar Frish) हैरोड की परिभाषा में परिवर्तन करते हुए कहते हैं कि प्रावैगिक के अध्ययन के लिए निरन्तर परिवर्तन (continuing changes) महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (*process of change*) अधिक महत्त्वपूर्ण है। फ्रिश प्रावैगिक को निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं

"एक प्रणाली (system) प्रावैगिक होगी यदि समय के विभिन्न बिन्दुओं पर चर (variables) एक महत्त्वपूर्ण तरीके से (*in an essential way*) सम्बन्धित हों।"[11]

प्रो० फ्रिश द्वारा दी गयी परिभाषा एक उचित और अच्छी परिभाषा मानी जाती है। अनेक विख्यात आधुनिक अर्थशास्त्री, जैसे—बोमोल (Baumol), सेम्युलसन (Samuelson), इत्यादि फ्रिश द्वारा दी गयी परिभाषा को ही मान्यता देते हैं। वास्तव में बोमोल तथा सेम्युलसन ने फ्रिश की परिभाषा के सार या अभिप्राय को ही अपने शब्दों में व्यक्त किया है।

---

[8] Statics studies a photograph or a 'still' of a system in motion considering the positions of its various parts and the way they fit together The still must be dated but our analysis of it can be static

[9] Hicks suggested that 'we call economic dynamics those parts where every quantity must be dated

[10] "Dynamics will specially be concerned with the effects of continuing changes and with rates of change in the values that have to be determined" —*Harrod*

[11] "A system is dynamical if variables at different points of time are involved in an essential way" —*Ragnar Frisch*

उपर्युक्त विवेचन से 'प्रावैगिक' का अर्थ स्पष्ट हो जाता है तथा हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं

(i) फ्रिश (तथा बोमोल व सेम्युलसन) की परिभाषाएँ उस 'दृष्टिकोण' (*'point of view' or approach'*) को बताती हैं जिससे प्रावैगिक पर विचार करना चाहिए। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार प्रावैगिक का अर्थ 'आर्थिक घटना' या 'आर्थिक चरों' (economic variables) का **'समय रास्ता'** (*time path*) अर्थात् **'परिवर्तन की प्रक्रिया'** (process of change) को ज्ञात करना होता है। 'समय-रास्ते' या 'परिवर्तन की प्रक्रिया' के अध्ययन का परिणाम एक 'स्थिर अवस्था' (stationary state) की स्थिति का मालूम होना हो सकता है अथवा एक 'प्रावैगिक प्रक्रिया' (dynamic process) का मालूम होना हो सकता है जिसमें यह पता लगता कि एक चीज दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित होती है अथवा एक चीज दूसरे में से किस प्रकार विकसित (grow) होती है।

(ii) फ्रिश (तथा बोमोल व सेम्युलसन) के द्वारा दी गयी परिभाषाएँ प्रावैगिक के अर्थ को सही रूप में प्रस्तुत करती हैं। प्रावैगिक के अन्तर्गत **'परिवर्तन की प्रक्रिया में समय की स्पष्ट मान्यता'** (*explicit recognition of time in the process of change*) दी जाती है। **'समय की स्पष्ट मान्यता'** के अभिप्राय (*implications*) हैं :

(a) **प्रावैगिक के अन्तर्गत समय के विभिन्न बिन्दुओं पर आर्थिक चर** (economic variables) **'एक महत्त्वपूर्ण तरीके से' सम्बन्धित होते हैं।**[12]

(b) प्रावैगिक, स्थैतिक की भाँति, अर्थव्यवस्था के फौरन समायोजन (instantaneous adjustments) की मान्यता को स्वीकार नहीं करता, प्रावैगिक आर्थिक चरों के बीच **'विलम्बित सम्बन्धों'** (*lagged relationships*)[13] का अध्ययन करता है।

(c) प्रावैगिक समय के विभिन्न बिन्दुओं पर परिवर्तन की प्रक्रिया को बताता है जिसका अभिप्राय है कि यह 'असन्तुलन' (disequilibrium) की स्थिति पर प्रकाश डालता है, अत, **प्रावैगिक असन्तुलन का अध्ययन है।**

(d) आर्थिक चर, समय के विभिन्न बिन्दुओं पर, एक महत्त्वपूर्ण तरीके से सम्बन्धित होते हैं, इसके आधार पर ही प्रावैगिक यह बताता है कि किस प्रकार

---

[12] दूसरे शब्दों में, जब हम यह कहते हैं कि—किसी वस्तु की एक समय विशेष (माना t) की मांग निर्भर करती है' उस वस्तु की पिछले समय (माना t—1) की कीमत पर—तो यह एक प्रावैगिक सम्बन्ध (dynamic relation) हुआ, और इसको हम सक्षेप में गणित की भाषा में इस प्रकार लिख सकते हैं

$$D_t = f(P_{t-1})$$

जबकि t एक समय को बताता है, t—1 इससे पिछली समय-अवधि को बताता है, D_t=वस्तु की समय अवधि t में मांग, P_{t-1}=वस्तु की पिछली समय अवधि t—1 की कीमत, तथा f चिह्न (symbol) है फलन (function) के लिए।

[विद्यार्थियों के लिए नोट—इस फुटनोट की दोनों पैराग्राफों की समस्त विषय सामग्री को विद्यार्थी ऊपर पाठ्य भाग (main text) में लिख सकते हैं।]

[13] 'समय विलम्ब' (*time-lag*) या **'विलम्बित सम्बन्धों'** (*lagged relationships*) का अर्थ होता है कि 'आर्थिक चरों' (economic variables) या 'आर्थिक तथ्यों' (economic data) में परिवर्तन के उत्तर में अर्थव्यवस्था को समायोजन में कुछ समय लगता है, एकदम या फौरन समायोजन नहीं हो जाता है।

से एक स्थिति का पिछली स्थिति में से विकास होता है (*how one situation grows out of the foregoing situation*)।

संक्षेप में हम कह सकते हैं—

प्रावैगिक विश्लेषण समय, परिवर्तन तथा विकास से सम्बन्धित होता है।
(*Dynamic analysis involves time, change and growth*)

३. स्थैतिक तथा प्रावैगिक की तुलना (Comparison between Statics and Dynamics)

स्थैतिक तथा प्रावैगिक की परिभाषाओं तथा उनकी मुख्य विशेषताओं की विवेचना करने के बाद हम इन दोनों की संक्षेप में तुलना करते हैं ताकि उनके बीच अन्तर और अच्छी तरह से समझा जा सके

(I) ऐसा सम्बन्ध, जिसमें कि आर्थिक चरों के मूल्य समय के एक ही बिन्दु या एक ही अवधि से रिश्ता रखते हैं, 'स्थैतिक सम्बन्ध' कहा जाता है, और इस प्रकार के स्थैतिक सम्बन्ध का अध्ययन ही स्थैतिक विश्लेषण है। दूसरे शब्दों में, स्थैतिक विश्लेषण एक 'समयरहित विचार' (timeless concept) है।[14]

ऐसा सम्बन्ध, जिसमें कि आर्थिक चरों के मूल्य समय के विभिन्न बिन्दुओं से रिश्ता रखते हैं, 'प्रावैगिक सम्बन्ध' कहा जाता है, तथा ऐसे 'प्रावैगिक सम्बन्ध' का अध्ययन ही प्रावैगिक विश्लेषण है। दूसरे शब्दों में, 'प्रावैगिक का सम्बन्ध समय, परिवर्तन तथा विकास से होता है।'"[15]

(II) स्थैतिक विश्लेषण 'सन्तुलन का अध्ययन' (study of equilibrium) है, यह समायोजन के समय, प्रक्रिया व रास्ते (time, process and path of adjustment) से कोई सम्बन्ध नहीं रखता।

प्रावैगिक विश्लेषण 'असन्तुलन का अध्ययन' (study of disequilibrium) है; इसका मुख्य कार्य समायोजन के समय, प्रक्रिया व रास्ते का पता लगाना (tracing out) है।

स्थैतिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता, उसका महत्व तथा क्षेत्र
(NEED IMPORTANCE AND SCOPE OF STATIC ECONOMICS)

यद्यपि स्थैतिक अर्थशास्त्र की सीमाएँ हैं, परन्तु फिर भी आर्थिक विश्लेषण में इनका महत्वपूर्ण सहयोग रहता है।[16] स्थैतिक का महत्व निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायेगा

(१) आर्थिक जगत का कार्यकरण (working) जटिल सम्बन्धों में उलझा हुआ है तथा आर्थिक तत्वों में निरन्तर परिवर्तन होते हैं। अतः परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था का अध्ययन करना बहुत कठिन है और इसके लिए हमें स्थैतिक रीति की सहायता लेनी पड़ती है। जैसा कि प्रो० मेहता ने बताया है कि आर्थिक जीवाणु (economic organism) की गति को सूक्ष्म मार्गों में विभाजित करना पड़ता है, प्रावैगिक अवस्थाओं को छोटी-छोटी स्थैतिक अवस्थाओं में तोड़ा जा सकता है, तभी अध्ययन में सुविधा होगी क्योंकि शुद्ध प्रावैगिक का अध्ययन बहुत कठिन कार्य है। इस प्रकार हम स्थैतिक को प्रावैगिक की ही एक अवस्था मान सकते हैं। प्रो० मेहता कहते हैं कि "प्रावैगिक अर्थशास्त्र को स्थैतिक अर्थशास्त्र के ऊपर एक लगातार टीका (running commen-

---

[14] A relationship in which the values of the economic variables belong to the same point of time or the same period is called *static relationship*, and *the study of such static relationship is static analysis* In other words, statics is a *timeless concept*

[15] A relationship in which the values of economic variables relate to different points of time, is called *dynamic relationship*, and *the study of such dynamic relationship is dynamic analysis* In other words *dynamic analysis involves time change and growth*

[16] "... that the scope of statics in my judgment has been too much narrowed of late I believe that this arises from a certain tendency to denigrate the work of older economists."
—Harrod, *op. cit.*, p 4.

tary) माना जा सकता है। अत स्थैतिक अर्थशास्त्र के नियम प्रावैगिक मे लागू किये जाने चाहिए।"[17]

(२) अर्थशास्त्र के कार्यकरण के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए आवश्यक है कि स्थैतिक का सहारा लिया जाय। एक उड़ते हुए वायुयान के कार्यकरण को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसकी मशीन तथा विभिन्न भागो का अध्ययन स्थिर अवस्था मे किया जाय। प्रो० स्टिगलर (Stigler) ने ठीक कहा है, "जहाँ पर आर्थिक समस्याएँ पूर्णतया समझी जा सकती हैं वहा भी यह उचित नही कि उनका विश्लेषण केवल एक कदम (single step) में ही किया जाये, चूंकि जटिल समस्याओ की व्याख्या भी प्राय जटिल होती है, अत. व्याख्या को कई भागो मे बाँटने के शैक्षिक लाभ हैं।'[18]

(३) स्थैतिक अर्थशास्त्र का महत्त्व उसके क्षेत्र (scope) या प्रयोगो (uses) से भी स्पष्ट होता है। प्रो० हैरोड के अनुसार स्वतन्त्र व्यापार (free trade) की समस्या, मूल्य निर्धारण या उत्पत्ति के साधनो का मूल्यांकन, एक व्यक्ति को अपने साधनों का मितव्ययिता के साथ प्रयोग करना, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त, इत्यादि स्थैतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। प्रो० हैरोड के अनुसार, यद्यपि प्रो० रोबिन्स की परिभाषा का कुछ सम्बन्ध प्रावैगिक से है परन्तु उनकी परिभाषा का अन्त करण या केन्द्रीय भाग (central core) स्थैतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत ही आता है।' इसी प्रकार हैरोड आगे कहते है कि केंज का सिद्धान्त भी मुख्यतया स्थैतिक ही है यद्यपि उनके सिद्धान्त म कुछ बातें प्रावैगिक से भी सम्बन्धित हैं—जैसे वास्तविक बचत (positive saving) का विचार। व्यापार चक्र का सिद्धान्त स्थैतिक तथा प्रावैगिक की मध्य-सीमा (border line) पर स्थित बताया जाता है।

सामान्यतया स्थैतिक विश्लेषण वहाँ पर अधिक उपयोगी हो सकता है जहाँ परिवर्तनों को उत्पन्न करने वाली बातें कम हो तथा समायोजन शीघ्रता से और आसानी से हो।

स्थैतिक अर्थशास्त्र की सीमाएँ तथा दोष
(LIMITATIONS AND WEAKNESSES OF STATIC ECONOMICS)

स्थैतिक अर्थशास्त्र, 'स्थिर अर्थ व्यवस्था' (Stationary Economy) का अध्ययन करता है। परन्तु वास्तविक जगत परिवर्तनशील है, इसलिए वास्तविक जगत के लिए स्थैतिक रीति का प्रयोग बहुत ही सीमित रह जाता है। प्रो० हिक्स के शब्दो म, 'स्थिर अवस्था अन्त मे, कुछ नहीं बल्कि केवल वास्तविकता से दूर भागना है।"[19] स्थैतिक रीति के बहुत सीमित प्रयोग के निम्नलिखित दो मुख्य कारण बताये जाते हैं

(१) यह अवास्तविक मान्यताओ (Unrealistic assumptions) पर आधारित है, जैसे—पूर्ण गतिशीलता, पूर्ण प्रतियोगिता, इत्यादि। परन्तु व्यावहारिक जीवन म ये मान्यताएँ नही पायी जाती हैं।

(२) यह रीति परिवर्तनशील तत्त्वो को स्थिर मान लेती है (It assumes variable data as constant)। यह आर्थिक व्यवहार को निर्धारित करने वाले तत्त्वो (determinants of economic behaviour)—रुचि, साधनो तथा टेक्नोलोजी—को स्थिर मान लेती है जबकि वास्तविक जीवन मे ये परिवर्तनशील होते हैं और निरन्तर बदलते हैं।

---

[17] Dynamic economics is as it [illegible] commentary on static economics. The laws of statics must therefore apply to dy[illegible] [illegible]ctures on Modern Economic Theory, p 149

[18] "Even when economic phenome[illegible] understood it is not desirable to analyse them in a single step the explanation of com[illegible] phenomena is usually also complicated and there are pedagogical advantages in [illegible] the explanation down into several parts" —S[illegible]igler, *Theory of Value* (1947), p. 25

[19] Stationary state is in the end nothing but an evasion " —[illegible]icks, *Value and Capital*, p 117.

प्रावैगिक अर्थशास्त्र का महत्व, आवश्यकता तथा क्षेत्र
(NEED IMPORTANCE AND SCOPE OF DYNAMIC ECONOMICS)

वास्तविक परिवर्तनशील जगत की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए प्रावैगिक विश्लेपण की परम आवश्यकता है जोकि निम्न से स्पष्ट है

(१) **प्रावैगिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता स्थैतिक अर्थशास्त्र की अवास्तविकताओं (unrealities) के कारण उत्पन्न होती है।** स्थैतिक अर्थशास्त्र अवास्तविक मान्यताओं (जैसे, पूर्ण गतिशीलता, पूर्ण ज्ञान, इत्यादि) पर आधारित है, यह आर्थिक व्यवहार के निर्धारकों (जैसे, रुचि, साधनो, टेक्नोलोजी) को स्थिर और अपरिवर्तनशील मान लेता है, जबकि वास्तविक जगत मे ऐसा नही होता। अत स्थैतिक की इन अवास्तविकताओ के कारण प्रावैगिक की आवश्यकता है। दूसरे शब्दो मे, प्रावैगिक का महत्त्व इस बात मे निहित है कि वह स्थैतिक की अपेक्षा वास्तविकता के अधिक निकट है।

(२) बहुत-सी समस्याएँ ऐसी हैं जिनका अध्ययन स्थैतिक नहीं कर सकता, उनके अध्ययन के लिए प्रावैगिक की आवश्यकता पडती है; जैसे—

(अ) निरन्तर परिवर्तनो (continuous change) के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याओ का अध्ययन प्रावैगिक अर्थशास्त्र ही कर सकता है।

(ब) प्रावैगिक अर्थशास्त्र परिवर्तन उत्पन्न करने वाली मूल शक्तियों का अध्ययन करता है जबकि स्थैतिक उन्हें दिया हुआ मान लेता है। स्थैतिक केवल अंतिम सन्तुलन (final equilibrium) का अध्ययन कर सकता है जबकि सन्तुलन की अपेक्षा 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) का अध्ययन अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसका अध्ययन प्रावैगिक ही कर सकता है।

(स) मानवीय मनोविज्ञान पर आधारित आर्थिक समस्याओं के अध्ययन के लिए प्रावैगिक की ही आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, व्यापार चक्र जैसी जटिल आर्थिक समस्याओं का अध्ययन तथा उचित विश्लेपण प्रावैगिक द्वारा ही सम्भव है।

(३) **प्रावैगिक विश्लेपण रीति की आवश्यकता इसलिए भी है कि यह लोचदार (flexible) होती है** जिसके परिणामस्वरूप सभी प्रकार की सम्भावनाओं की खोज की जा सकती है। इसी लोचदार गुण के परिणामस्वरूप यह विकासमान (developing) तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा नियोजन (planning) की समस्याओ के विश्लेपण के लिए अधिक उपयोगी है।

(४) **प्रावैगिक रीति का महत्त्व उसके क्षेत्र तथा प्रयोगो से भी स्पष्ट होता है।** मकड़ी के जाले का सिद्धान्त (*Cobweb Theorem*) तथा व्यापार चक्र (*Trade Cycles*), जनसख्या के विकास का सिद्धान्त, बचत तथा विनियोग के सिद्धान्त, ब्याज का सिद्धान्त, लाभ का सिद्धान्त, मूल्य निर्धारण पर समय का प्रभाव, इत्यादि प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं।

संक्षेप मे, आर्थिक जीवन की समस्याओ को वास्तविक रूप मे समझने तथा हल करने के लिए प्रावैगिक अर्थशास्त्र की परम आवश्यकता है।

प्रावैगिक की सीमाएँ
(LIMITATIONS OF DYNAMIC ECONOMICS)

यद्यपि 'प्रावैगिक' आर्थिक विश्लेपण के लिए बहुत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है परन्तु साथ ही यह बहुत जटिल भी है। इसकी मुख्य सीमाएँ इस प्रकार हैं

(१) यदि परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है, तो समस्या का अध्ययन केवल शुद्ध प्रावैगिक दृष्टिकोण से करना बहुत कठिन है, इसके लिए हमे समस्या को कोई स्थैतिक टुकडो मे बाँटकर ही अध्ययन करना पडेगा।

(२) प्रावैगिक अध्ययन के लिए इकोनोमेट्रिक्स (Econometrics) की सहायता लेनी पडती है जिसके कारण यह रीति कठिन हो जाती है।

(३) प्रावैगिक का अभी पूर्ण विकास नही हो पाया है जिसके कारण इसका प्रयोग कठिन हो जाता है।

निष्कर्ष
(CONCLUSION)

स्थैतिक तथा प्रावैगिक के विवेचन से स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्र के पूर्ण विकास के लिए दोनो की आवश्यकता है। कुछ आर्थिक समस्याएँ ऐसी हैं जिनका अध्ययन प्रावैगिक द्वारा ही हो सकता है जबकि कुछ का अध्ययन स्थैतिक द्वारा किया जा सकता है तथा कुछ समस्याओ के विवेचन के लिए दोनो की साथ-साथ आवश्यकता पड सकती है। अत अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए दोनों प्रणालियों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है।

प्रश्न

१ (अ) स्थैतिक अर्थशास्त्र तथा प्रावैगिक अर्थशास्त्र का अन्तर समझाइए।
(ब) प्रावैगिक अथशास्त्र की आवश्यकता व महत्त्व तथा सीमाओ को बताइए।
(a) Distinguish between Static and Dynamic Economics
(b) Explain the need and importance, as well as limitations of Dynamic Economics.

२ (अ) स्थैतिक अर्थशास्त्र तथा प्रावैगिक अर्थशास्त्र के बीच भेद को स्पष्ट कीजिए।
(ब) स्थैतिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता व महत्त्व तथा सीमाओ को बताइए।
(a) Distinguish between Static and Dynamic Economics
(b) Explain the need and importance, as well as the limitations of Static Economics

३ (अ) 'स्थैतिक एक समय रहित विचार (timeless concept) है जबकि प्रावैगिक का सम्बन्ध समय से होता है।' इस कथन की व्याख्या कीजिए ?
(ब) हम प्रावैगिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता क्यो पडती है।
(a) 'Statics is a timeless concept, whereas Dynamics involves time' Explain this statement
(b) Why we need Dynamics ?

[सकेत—प्रश्न के भाग (a) के उत्तर म स्थैतिक अर्थशास्त्र तथा प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अर्थ बताइए तथा उनके बीच भेद को स्पष्ट कीजिए। दूसरे भाग (b) क उत्तर म प्रावैगिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता व महत्त्व को बताइए।]

४ 'स्थैतिक तथा प्रावैगिक दोनो अर्थशास्त्र म वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए आवश्यक हैं।" विवेचना कीजिए।
"Statics and dynamics both are needed for scientific analysis in Economics " Discuss.

[सकेत—स्थैतिक तथा प्रावैगिक दोनो के अर्थों को बताइए, दोनो की आवश्यकता तथा प्रयोगो को सक्षेप मे बताइए, दोनो की सीमाओ को लिखिए, और अन्त में निष्कर्ष दीजिए कि अर्थशास्त्र मे वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए दोनो आवश्यक हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं, प्रश्न का उत्तर लम्बा है, इसलिए समस्त विवरण को बहुत सक्षेप मे लिखिए।]

10 साम्य या सन्तुलन का विचार
[THE CONCEPT OF EQUILIBRIUM]

साम्य या सन्तुलन का अर्थ
(MEANING OF EQUILIBRIUM)

साम्य[1] का अर्थ है शक्तियों में ऐसा सन्तुलन (balance) होना जिसके कारण प्रणाली (system) में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।[2] दूसरे शब्दों में, साम्य का विचार 'अधिकतम करने के विचार' (notion of maximization) से बहुत निकट रूप से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक आर्थिक इकाई (economic unit) में परिवर्तन की प्रवृत्ति तब नहीं होगी (अर्थात् एक आर्थिक इकाई साम्य की स्थिति में तब होगी) जबकि दी हुई परिस्थितियों के अनुसार, वह एक 'अधिकतम की स्थिति' (a '*position of maximization*') प्राप्त कर लेती है। उदाहरणार्थ, एक उपभोक्ता साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि वह अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि उसको 'अधिकतम सन्तुष्टि' मिलती है। इस प्रकार एक फर्म अपने कुल उत्पादन में परिवर्तन की प्रवृत्ति तब नहीं रखेगी (अर्थात् एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी) जबकि उसको अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा है।[3]

साम्य के विचार के सम्बन्ध में मुख्य बात है 'परिवर्तन की प्रवृत्ति का न होना'। प्रो. स्टिगलर (Stigler) ने साम्य की परिभाषा इन शब्दों में दी है

> "साम्य वह स्थिति है जिससे हटने की कोई वास्तविक प्रवृत्ति (net tendency) न हो। हम 'वास्तविक' (net) प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग इस बात पर जोर देने के लिए करते हैं कि यह एक निष्क्रिय स्थिति का द्योतक नहीं होता बल्कि शक्तिशाली शक्तियों द्वारा एक दूसरे के बल को नष्ट करने का द्योतक है।"[4]

---

[1] साम्य (equilibrium) शब्द दो लेटिन शब्दों—'*aequus*' (जिसका अर्थ है समान) तथा '*libra*' (जिसका अर्थ है सन्तुलन) से बना है, अतः साम्य का अर्थ है 'समान सन्तुलन'। इस शब्द का गणित तथा भौतिकशास्त्र में बहुत प्रयोग किया जाता है जहाँ कि साम्य विश्राम (rest) की स्थिति को बताता है।

[2] "The word equilibrium means such a balance of forces that *there is no tendency for the system to change*."

[3] निस्सन्देह यहाँ पर यह मान लिया गया है कि एक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है।

[4] "Equilibrium is "a position from which there is no net tendency to move. We say 'net' tendency, to emphasize the fact that it is not necessarily a state of sodden inertia, but may instead represent the cancellation of powerful forces."

साम्य (या सन्तुलन) के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान म रखना आवश्यक है

(i) वास्तव म अर्थशास्त्र मे साम्य का अर्थ एक निष्क्रिय स्थिति[5] (inert state) से नही होता, इसमे 'गति की अनुपस्थिति' (absence of movement) नहीं होती बल्कि 'गति की दर में परिवर्तन की अनुपस्थिति' (absence of change in the rate of movement) होती है।

(ii) अर्थशास्त्र मे हम मुख्यतया 'साम्य की ओर प्रवृत्ति' बताने में दिलचस्पी रखते हैं न कि सन्तुलन (या साम्य) की वास्तविक स्थिति बताने में, इसका कारण है साम्य की ओर ले जाने वाली शक्तियो म परिवर्तन हो सकता है और गति की दिशा (direction of movement) मे परिवर्तन हो सकता है,[6] प्राय वास्तविक साम्य प्राप्त नही हो पाता है।

(iii) साम्य तो केवल वस्तुगत स्थिति या ढाँचे (objective situation or framework) को बताता है, उसका कोई सम्बन्ध नैतिकता अथवा अच्छाई-बुराई से नहीं होता। उदाहरणार्थ, एक अर्थव्यवस्था साम्य की स्थिति म हो सकती है परन्तु अर्थव्यवस्था मे बडी मात्रा मे बेरोजगारी हो सकती है।

साम्य का महत्त्व
(SIGNIFICANCE OF EQUILIBRIUM)

साम्य का विचार अर्थशास्त्र मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि अधिकाश आर्थिक विश्लेषण साम्य विश्लेषण होता है। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत हम साम्य की उन दशाओं तथा शक्तियों का अध्ययन करते हैं जो साम्य को एक स्थिति से दूसरी स्थिति म परिवर्तित करती हैं। अर्थशास्त्र में साम्य का महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट होता है

(i) साम्य का विचार यात्रा का लक्ष्य (goal of journey) बताने मे सहायक होता है। साम्य के विचार का महत्त्व इस बात मे नहीं है कि व्यावहारिक जगत म इसे प्राप्त किया जा सकता है या नही, बल्कि इसका महत्त्व इस बात मे निहित है कि यह एक लक्ष्य या उद्देश्य (goal) को बताता है जिसे प्राप्त करने के लिए आर्थिक इकाइयाँ (जैसे एक फर्म, एक उद्योग या सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था) अथवा आर्थिक चर (economic variables) प्रयत्नशील रहते हैं। दूसरे शब्दो मे, साम्य का विचार आर्थिक परिवर्तनों की दिशा (direction of economic changes) को बताने मे सहायक होता है; अत साम्य के विचार को 'अर्थशास्त्री का कुतुबनुमा' (economist's compass) कहा जा सकता है।

(ii) कुछ आलोचकों का कहना है कि साम्य की स्थिति वास्तविक परिवर्तनशील जगत में नहीं पायी जाती। अत यह विचार अवास्तविक है और इसके अध्ययन का कोई व्यावहारिक महत्व नहीं रह जाता है। परन्तु यह आलोचना उचित नहीं है; इसके मुख्य कारण अग्रलिखित हैं :

---

[5] अर्थशास्त्र में साम्य का अर्थ, भौतिक विज्ञानों की भाँति, गतिहीन या निष्क्रिय स्थिति (inert state) से नहीं लिया जात. बल्कि सक्रिय साम्य की स्थिति (active state of equilibrium) से लिया जाता है। दूसरे शब्दो म, यह एक ऐसी स्थिति को नही बताता जिसमें कि सभी शक्तियो ने कार्य करना बन्द कर दिया हो बल्कि एक ऐसी स्थिति होती है जिसम कार्यशील शक्तियाँ एक-दूसरे के प्रभाव या बल को नष्ट कर देती हैं।

[6] "In economics we are primarily interested in suggesting a *tendency towards equilibrium* rather than an actual position of balance, because the forces that propel us toward equilibrium are subject to change and because the direction of movement may be interrupted, generally, actual equilibrium is not obtained "

(अ) यद्यपि वास्तविक जीवन में प्रायः साम्य की स्थिति नहीं पायी जाती, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वास्तविक जीवन की दशाएँ साम्य की ओर जाने की प्रवृत्ति अवश्य रखती हैं। यदि दीर्घकाल तक आर्थिक तथ्यों में परिवर्तन न हो तो साम्य की स्थिति अवश्य प्राप्त हो सकती है। यह तथ्य साम्य के विचार को व्यावहारिक बनाता है। साम्य का विचार एक अन्तिम लक्ष्य को बताता है जिस ओर आर्थिक शक्तियाँ जाने की प्रवृत्ति रखती है। अतः वास्तविक जीवन में साम्य की स्थिति न पाये जाने का अर्थ यह नहीं है कि साम्य का विचार बेकार है।

(ब) वास्तविक जीवन में कभी कभी साम्य इस अर्थ में प्राप्य हो जाता है कि एक निश्चित मूल्य पर कुल माँग और कुल पूर्ति बराबर हो जाती है। परन्तु कठिनाई यह है कि माँग और पूर्ति का यह साम्य बहुत थोड़े समय के लिए रहता है और फिर नष्ट हो जाता है क्योंकि वास्तविक जीवन में माँग और पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ यथास्थिर न रहकर शीघ्रता से परिवर्तित होती रहती हैं।

अर्थशास्त्र में साम्य के महत्त्व की सारी स्थिति को बहुत अच्छे ढंग से एक आधुनिक अर्थशास्त्री द्वारा इन शब्दों में व्यक्त किया गया है

"आर्थिक सिद्धान्त में साम्य एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करता है और यद्यपि अनेक आर्थिक समस्याओं का साम्य-सिद्धान्त के शब्दों में एक अच्छा विवेचन नहीं किया जा सकता है, परन्तु फिर भी साम्य का सिद्धान्त एक अति आवश्यक विश्लेषण-यन्त्र (tool) बना रहता है। प्रायः इसकी यह आलोचना की जाती है कि यह एक शुद्ध स्थैतिक विचार है जिसका कोई सम्बन्ध उस विकासमान (evolutionary) संसार से नहीं होता जिसमें कि हम रहते हैं। परन्तु यह आलोचना सही नहीं है। एक असन्तुलन विश्लेषण (disequilibrium analysis) में भी साम्य के विचार की आवश्यकता प्रायः सन्दर्भ के एक ढाँचे (a frame of reference) के रूप में पड़ती है तथा आधुनिक सिद्धान्त ने प्रावैगिक विश्लेषण (dynamic analysis) में इसकी उपयोगिता को सिद्ध कर दिया है। उदाहरणार्थ, आधुनिक विकास सिद्धान्त का निर्माण मुख्यतया साम्य विकास (equilibrium growth) के रूप में किया गया है और यहाँ तक कि मुद्रा-स्फीति सिद्धान्त (inflation theory) साम्य के विचार का लाभ के साथ प्रयोग कर सकता है।"[1]   ...ती है।

साम्य के प्रकार
(KINDS OF EQUILIBRIUM)

...भिन्न अंगों (जैसे ... और वे स्थिर रहते हैं।

आर्थिक साम्य को कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। साम्य...ते साम्य मूल्य, स्थैतिक साम्य

१. स्थिर, तटस्थ तथा अस्थिर साम्य (Stable, Neutral ...) ...इस प्रकार दिये हैं। एक गेंद यदि

(अ) एक आर्थिक प्रणाली स्थिर साम्य की स्थिति... एक जंगल जिसमें कि पेड़ उगते, छोटी हलचल (disturbance) उसके ... की बनावट (composition) अपरिवर्तित ... जाती हैं जो कि आर्थिक प्रणाली ... ।[2]

रखती हैं तथा इन पुराने साम्य का अर्थ कुछ भिन्न प्रकार से बताया है। उनके परिणामस्वरूप ... समय अवधि के बाद भी बना रहता है, यह स्थैतिक साम्य है। ... लेकर चलें और किसी वस्तु की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित ... उपरान्त भी बना रहता है, तो यह स्थैतिक साम्य कहा जायेगा।

[1] "Equilibrium plays an ... problems cannot re... indispensable tool ...

[2] "A mechanical analogy may be found in a ball rolling at a constant speed or better still of a forest in equilibrium, where trees sprout grow and die, but where the composition of the forest as a whole remains unchanged" —Boulding, *Economic Analysis*, p 541

(ब) एक आर्थिक प्रणाली तटस्थ साम्य की स्थिति मे तब कही जायेगी, यदि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हो, तो प्रारम्भिक स्थिति की ओर ले जाने वाली पुनर्स्थापन शक्तियाँ उत्पन्न नही होतीं, परन्तु साथ ही और आगे हलचल उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ भी प्रकट नहीं होतीं, परिणामस्वरूप आर्थिक प्रणाली पहली हलचल के बाद जिस स्थिति मे पहुँची थी उसी पर स्थिर टिकी रहती है।

(स) एक आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई अस्थिर साम्य की स्थिति मे तब कही जायेगी जबकि यदि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हो, तो परिणामस्वरूप और अधिक हलचल तथा विघ्न उत्पन्न करने वाली शक्तियां प्रकट हो जाती हैं और य सब मिलकर आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई को प्रारम्भिक स्थिति से बहुत दूर फेंक देती हैं।

प्रो० पीगू ने उपर्युक्त तीनों प्रकार के साम्यो के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्न उदाहरण दिये हैं। भारी पेंदी (heavy keel) वाला जहाज 'स्थिर साम्य' की स्थिति मे होगा, एक करवट से पडा हुआ अण्डा 'तटस्थ साम्य' की स्थिति मे होगा तथा एक सिरे पर टिकाया हुआ अण्डा 'अस्थिर साम्य' की स्थिति म होगा।

उपर्युक्त तीनो म से स्थिर साम्य का प्रयोग आर्थिक विश्लेषण मे बहुत होता है और यह वास्तविक जगत मे प्राय पाया जाता है। परन्तु अन्य दोनो प्रकार के साम्य व्यावहारिक जगत मे नहीं पाये जाते, जैसा कि प्रो० स्टिगलर ने बताया है, तटस्थ और अस्थिर साम्यो की काल्पनिक स्थितियो को सोचा जा सकता है। दूसरे शब्दो मे, इन दोना साम्यो का कोई व्यावहारिक महत्त्व नही है।

२ एकाकी तथा अनेक तत्त्वीय साम्य (Single or Unique and Multiple Equilibria)

'एकाकी साम्य' तब कहा जायगा जबकि उत्पादन की मात्रा तथा कीमत का केवल एक ही समूह साम्य की दशाओ को सन्तुष्ट करता है। उदाहरणार्थ, माना ५ रु० कीमत पर किसी वस्तु की माँग और पूर्ति दोनो ६० इकाई के बराबर हैं। अत '५ रु० तथा ६० इकाई'—यह कीमत और मात्रा का एकाकी (unique) समूह है जो कि साम्य की दशा को पूरा करता है, यह एकाकी साम्य की स्थिति है।

'अनेक तत्त्वीय साम्य' तब कहा जायेगा जबकि उत्पादन की मात्राओ और कीमतो के अनेक विभिन्न समूह साम्य की दशाओ को सन्तुष्टि
हैं

(ii) कुछ आल.
मे नहीं पायी ज.
कोई व्यावहारिक महत्
इसके मुख्य कारण अप्रलिख.

'अनेक तत्त्वीय साम्य' की स्थिति को चित्र १ द्वारा दिखाया गया है। जब पूर्ति रेखा का ढाल ऋणात्मक होता है अर्थात् वह नीचे को गिरती हुई होती है तो वह माँग रेखा को एक से अधिक बिन्दुओ पर काट सकती है और इस प्रकार एक से अधिक साम्य के बिन्दु हो सकते हैं, अर्थात् 'अनेक तत्त्वीय साम्य' (multiple equilibria) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चित्र १ मे एक ऐसी माँग रेखा DD को तीन ... तथा P_L पर काटती है.

[5] अर्थशास्त्र में साम्य का अर्थ, भौतिक विज्ञानों ... state) से नहीं लिया जाता, बल्कि सक्रिय साम्य ... brium) से लिया जाता है। दूसरे शब्दो मे, यह ... कि सभी शक्तियो ने कार्य करना बन्द कर दिया हो बल्कि ... कार्यशील शक्तियाँ एक-दूसरे के प्रभाव या बल को नष्ट कर देती हैं।

[6] "In economics we are primarily interested in suggesting a *tendency towards equilibrium* rather than an actual position of balance, because the forces that propel us toward equilibrium are subject to change and because the direction of movement may be interrupted, generally, actual equilibrium is not obtained"

उचित है जो कि नीची लागत व कम कीमत और अधिक उत्पादन को बताती है अपेक्षाकृत P_H के जो कि ऊँची लागत व ऊँची कीमत और कम उत्पादन को बताती है। यदि P_H एक स्थिर साम्य की स्थिति है तो बाजार की शक्तियाँ कीमत को P_H से हटाकर P_L पर नहीं ले जा सकेंगी, इसलिए सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ेगी ताकि सामाजिक दृष्टि से अच्छी स्थिति P_L को प्राप्त किया जा सके। सरकार उद्योग को आर्थिक सहायता (subsidy) देकर उसके उत्पादन को बढ़ाने में प्रोत्साहन (encouragement) दे सकती है ताकि उत्पादन बढ़कर N पर आ जाये अर्थात् P_L स्थिति प्राप्त हो जाये।

३. अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य (Short term and Long term Equilibria)

मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने मूल्य निर्धारण में समय तत्व के प्रभाव का अध्ययन किया। इसलिए अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य के जन्मदाता मार्शल कहे जा सकते हैं।

अल्पकालीन साम्य के अर्थ दो प्रकार से बता सकते हैं—(i) अल्पकाल से सम्बन्धित साम्य को अल्पकालीन साम्य कहते हैं। अल्पकाल में माँग में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पूर्ति में परिवर्तन केवल वर्तमान साधनों की सहायता से ही किया जा सकता है क्योंकि समय इतना नहीं होता है कि नये उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग में लाया जा सके। इस प्रकार की परिस्थितियों में जो साम्य माँग तथा पूर्ति में स्थापित होता है उसे अल्पकालीन साम्य कहते हैं। (ii) 'अल्पकालीन साम्य' को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जा सकता है। अल्पकालीन साम्य वह साम्य है जो कि एक निश्चित अल्पकालीन समय के अन्तर्गत या एक समय-बिन्दु (a point of time) पर बना रहता है और इस निश्चित अल्पकालीन समय या निश्चित समय-बिन्दु के बाहर भंग हो जाता है। यह साम्य क्षणिक होता है या बहुत कम समय के लिए रहता है।

दीर्घकालीन साम्य के अर्थ को भी दो प्रकार से बता सकते हैं—(i) दीर्घकाल से सम्बन्धित साम्य को 'दीर्घकालीन साम्य' कहते हैं। दीर्घकालीन समय में माँग में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पूर्ति में परिवर्तन वर्तमान उत्पत्ति के साधनों तथा नये उत्पत्ति के साधनों दोनों की मदद से किये जा सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में माँग तथा पूर्ति में जो साम्य स्थापित होता है उसे दीर्घकालीन साम्य कहा जाता है। (ii) 'दीर्घकालीन साम्य' को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जा सकता है। दीर्घकालीन साम्य वह साम्य है जो कि एक लम्बे समय तक बना रहता है। यह साम्य केवल थोड़े समय या एक समय बिन्दु पर ही नहीं बना रहता बल्कि अल्पकालों की एक लम्बी शृंखला तक बना रहता है।

४. स्थैतिक तथा प्रावैगिक साम्य (Static and Dynamic Equilibria)

स्थैतिक साम्य स्थिर अर्थव्यवस्था (stationary economy) से सम्बन्धित होता है। स्थिर अर्थव्यवस्था से अभिप्राय ऐसी अर्थव्यवस्था से होता है जिसमें कि विभिन्न अंगों (जैसे उपभोग, उत्पत्ति, जनसंख्या, इत्यादि) में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति न हो और वे स्थिर रहते हैं। उदाहरणार्थ, स्थिर माँग तथा स्थिर पूर्ति की सारणियों द्वारा निर्धारित साम्य मूल्य, स्थैतिक साम्य को बताता है। प्रो० बौल्डिंग ने स्थैतिक साम्य के उदाहरण इस प्रकार दिये हैं। एक गेंद यदि समान दर से लुढ़कती है तो यह स्थैतिक साम्य में कही जायेगी। एक जंगल जिसमें कि पेड़ उगते, बढ़ते तथा मृत्यु को प्राप्त होते हैं परन्तु सम्पूर्ण जंगल की बनावट (composition) अपरिवर्तित रहती है, ऐसा जंगल स्थैतिक साम्य में कहा जायेगा।[8]

प्रो० जे० के० मेहता ने स्थैतिक साम्य का अर्थ कुछ भिन्न प्रकार से बताया है। उनके अनुसार जो साम्य एक निश्चित समय अवधि के बाद भी बना रहता है, वह स्थैतिक साम्य है। यदि हम समय अवधि १० दिन लेकर चलें और किसी वस्तु की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित साम्य मूल्य १० दिन के उपरान्त भी बना रहता है, तो यह स्थैतिक साम्य कहा जायेगा।

[8] "A mechanical analogy may be found in a ball rolling at a constant speed or better still of a forest in equilibrium, where trees sprout, grow and die, but where the composition of the forest as a whole remains unchanged" —Boulding, *Economic Analysis*, p. 541.

प्रावैगिक साम्य का सम्बन्ध प्रावैगिक अर्थव्यवस्था से होता है। प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में हम स्थिर अर्थव्यवस्था की भाँति आर्थिक तत्वों (data) को स्थिर नहीं मानते, वे परिवर्तित होते रहते हैं। प्रावैगिक अर्थव्यवस्था को स्पष्ट रूप से समझने के लिए दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए (i) प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों या विभिन्न आर्थिक तत्वों में परिवर्तन अवश्य होता है उनमें विस्तार तथा संकुचन हो सकता है। (ii) परन्तु उन विभिन्न अंगों या आर्थिक तत्वों में परिवर्तन समान दर से होना चाहिए। यदि प्रावैगिक अर्थव्यवस्था, जिससे कि प्रावैगिक साम्य सम्बन्धित होता है, का अर्थ इस रूप में लिया जाये तो स्पष्ट है कि यह अवास्तविक प्रतीत होता है। आर्थिक तत्वों या आर्थिक अंगों में परिवर्तन होता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह परिवर्तन एक समान दर या गति से हो। उपर्युक्त अर्थ में ही प्रो० बोल्डिंग ने प्रावैगिक साम्य की परिभाषा इस प्रकार दी है

> "एक अर्थव्यवस्था प्रावैगिक साम्य की दशा में कही जा सकती है यदि समस्त स्टॉक (stock) में जिसमें वस्तुओं तथा मानव दोनों को शामिल किया जाता है, अर्थात् वस्तुएँ और मानव में धात्विक परिवर्तन समान दर पर हो और यदि स्टॉक की सभी मदों के उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि समान दर पर हो।"[9]

प्रो० जे० के० मेहता ने प्रावैगिक साम्य का अर्थ कुछ भिन्न रूप में लिया है। उनके अनुसार "जो साम्य एक निश्चित समयावधि के अन्दर ही रहता है और उस अवधि के उपरान्त भंग हो जाता है तो उसे प्रावैगिक साम्य कहा जाता है।" उदाहरणार्थ, यदि हम समयावधि १० दिन लेकर चलें और यदि किसी वस्तु की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित साम्य मूल्य १० दिन के उपरान्त भंग हो जाता है, तो यह प्रावैगिक साम्य होगा। यदि वह १० दिन के उपरान्त भी बना रहता है तो वह स्थैतिक साम्य कहा जायेगा।

५. आंशिक या विशिष्ट तथा सामान्य साम्य (Partial or Particular and General Equilibria)

आंशिक या विशिष्ट साम्य का अर्थ (Meaning of Partial or Particular Equilibrium)—आंशिक साम्य विश्लेषण की रीति प्रारम्भ में मार्शल तथा कैम्ब्रिज स्कूल (Cambridge School) द्वारा प्रतिपादित की गयी। आंशिक साम्य वह है जिसका सम्बन्ध किसी भी विशिष्ट इकाई से हो। एक व्यक्ति का साम्य, एक फर्म का साम्य, एक उद्योग का साम्य, इत्यादि आंशिक साम्य के उदाहरण है। प्रो० स्टिगलर (Stigler) के अनुसार,

> "आंशिक साम्य वह है जो कि सीमित आँकड़ों पर आधारित होता है, इसका एक अच्छा उदाहरण किसी एक वस्तु की कीमत है, जबकि विश्लेषण काल में अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें यथास्थिर मान ली जाती हैं।"[10]

आंशिक साम्य, जैसा कि इसका नाम बताता है, आंशिक होता है तथा समस्त अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण चित्र की जानकारी इसके द्वारा नहीं की जा सकती है।

आंशिक या विशिष्ट साम्य की मान्यताएँ तथा सीमाएँ (Assumptions and limitations of partial or particular equilibrium)—(i) आंशिक साम्य विश्लेषण रीति के अन्तर्गत विशिष्ट इकाइयों के सम्बन्ध में साम्य की दशाओं का विश्लेषण करते समय, हम अन्य

---

[9] "An economic system might be said to be in dynamic equilibrium if its total stock, including both things and people changed at a constant rate (per cent per annum) and if the rates of production and consumption of all items of the stock increased at the same rate."
—Boulding, *Economic Analysis*, p 64.

[10] "A partial equilibrium is one which is based only on restricted range of data, a standard example is the price of a single product the prices of all other products being held fixed during the analysis."
—Stigler, *Theory of Price* p. 27.

बातों को यथास्थिर मान लेते है। दूसरे शब्दों मे, हम स्थिर स्थिति (stationary state) की उपस्थिति मान लेते हैं।[11]

(ii) आंशिक विश्लेषण सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के केवल एक अंग को प्रस्तुत करता है, समस्त अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को इसके द्वारा नहीं समझा जा सकता।

आंशिक या विशिष्ट साम्य का महत्त्व तथा प्रयोग (Importance and uses of partial or particular equilibrium)—यद्यपि आंशिक साम्य विश्लेषण सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के चित्र को उसके पूर्ण रूप मे हमारे समक्ष प्रस्तुत नही करता, परन्तु आंशिक साम्य दो प्रकार की समस्याओं के अध्ययन मे सहायक है (i) कुछ आर्थिक समस्याएँ ऐसी होती हैं जो कि विशेष प्रकार के आर्थिक विघ्नों (disturbances) द्वारा उत्पन्न होती हैं और जिनका प्रभाव किसी विशेष उद्योग तक या अर्थव्यवस्था के किसी एक विशेष भाग तक सीमित रहता है, जबकि कुछ आर्थिक विघ्नों का प्रभाव समस्त अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। आंशिक साम्य विश्लेषण प्रथम प्रकार की समस्याओं के अध्ययन का एक उचित साधन है। (ii) किसी भी विघ्न के प्रभाव प्रथम स्तर (primary), द्वितीय स्तर (secondary), तृतीय स्तर (tertiary), इत्यादि पर अनुभव किये जाते हैं। आंशिक साम्य विश्लेषण रीति प्रथम स्तर के प्रभावों का या प्रत्यक्ष प्रभावों का ही अध्ययन करती है।

सामान्य साम्य का अर्थ (Meaning of general equilibrium)—'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' का प्रयोग प्रारम्भ मे वालरस (Walras) तथा लासेन स्कूल (Lausanne school) द्वारा किया गया।

> **सामान्य साम्य विश्लेषण रीति एक परिवर्तनशील तत्त्व (single variable) का अध्ययन नहीं करती बल्कि अनेक परिवर्तनशील तत्त्वों (*multiplicity of variables*) का एक साथ अध्ययन करती है, इसका सम्बन्ध समस्त अर्थव्यवस्था से होता है।**

(i) आंशिक साम्य विश्लेषण की भाँति इस रीति द्वारा किया गया अध्ययन सीमित तथ्यों (restricted range of data) पर आधारित नही होता, यह रीति बहुत अधिक विस्तृत होती है और इसके अन्तर्गत आंशिक साम्य सम्मिलित होता है।

'सामान्य साम्य विश्लेषण' अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों की पारस्परिक निर्भरता पर जोर देता है। इस सम्बन्ध मे प्रो० बोल्डिंग ने *एक प्याले मे पड़ी हुई तीन गेंदों का उदाहरण दिया है।* एक गेंद की साम्य स्थिति केवल प्याले के आकार और उस गेंद के आकार पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि अन्य दो गेंदों की स्थिति पर भी निर्भर करती है।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, सामान्य साम्य के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था की अन्य सभी इकाइयाँ भी समय विशेष मे एक ही साथ साम्य की स्थिति मे हों। लेफ्टविच (Leftwich) के अनुसार,

> **"सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था उसी समय सामान्य साम्य की स्थिति मे होगी जबकि अर्थव्यवस्था की सभी इकाइयाँ एक ही साथ अपना-अपना आंशिक साम्य प्राप्त कर ले। सामान्य साम्य की धारणा सभी आर्थिक इकाइयों तथा अर्थव्यवस्था के सभी अंगों की पारस्परिक निर्भरता पर बल देती है।"**[12]

[11] उदाहरणार्थ, आंशिक साम्य विश्लेषण रीति द्वारा एक उद्योग के साम्य की दशाओं का अध्ययन करने के लिए उस उद्योग विशेष को अन्य उद्योगों से अलग करके अध्ययन किया जायेगा। यह मान लिया जाता है कि उद्योग विशेष मे उत्पादन और माँग की दशाएँ अन्य उद्योगों मे माँग तथा पूर्ति की दशाओं से बिलकुल प्रभावित नही होतीं।

[12] "General equilibrium for the entire economy could exist only if all economic units were to achieve simultaneous particular equilibrium adjustments. The concept of general equilibrium stresses the *interdependence* of all economic units and of all segments of the economy on each other." —Leftwitch, *The Price System and Resource Allocation*, p 353.

इस प्रकार की सम्भावना को समझने के लिए अर्थव्यवस्था तथा उसके विभिन्न अंगों की तुलना क्रमशः मानव शरीर तथा उसके विभिन्न अंगों से की जाती है। मानव के सम्पूर्ण शरीर के साम्य अवस्था में रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसका कोई अंग असन्तुलित अवस्था में न हो अर्थात् किसी भी अंग में कष्ट न हो रहा हो। जिस प्रकार मानव के सम्पूर्ण शरीर का साम्य उसी अवस्था में सम्भव है जबकि शरीर के सभी अंगों में पृथक्-पृथक् साम्य हो, उसी प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के साम्य के लिए आवश्यक है कि सभी अलग अलग भागों में सन्तुलन हो।

सामान्य साम्य की कठिनाई या सीमा (Difficulty or Limitation of General Equilibrium)

प्रो० लेफ्टविच द्वारा दी हुई सामान्य साम्य की परिभाषा बहुत प्रभावशाली तथा आकर्षक प्रतीत होती है। परन्तु इस प्रकार के सामान्य साम्य की स्थिति के अध्ययन का कोई स्पष्ट और निश्चित निष्कर्ष नहीं निकल सकता। ऐसी अवस्था में प्रत्येक बात दूसरी बात पर निर्भर करती है और ऐसी स्थिति के दर्शन में उतने ही समीकरण (equations) होंगे जितने कि अज्ञात तत्त्व (unknown variables) हैं। अतः सामान्य साम्य विश्लेषण रीति एक बहुत कठिन और जटिल रीति है। अतः प्रो० स्टिगलर का कथन है

> "सामान्य साम्य एक मिथ्या नाम (misnomer) है, कोई भी आर्थिक विश्लेषण इस अर्थ में सामान्य नहीं है कि वह सभी सम्बन्धित तथ्यों पर एक साथ विचार कर सके। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि सामान्य साम्य अध्ययन आंशिक साम्य अध्ययनों की अपेक्षा अधिक विस्तृत होते हैं, परन्तु वे कभी पूर्ण नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त, विश्लेषण जितने ही अधिक सामान्य होंगे उतने ही अधिक उसके निष्कर्ष कम निश्चित होंगे।"[11]

सामान्य साम्य का महत्त्व तथा प्रयोग (Importance and Uses of General Equilibrium)

उपर्युक्त कठिनाई के होने पर भी सामान्य साम्य के कई महत्त्वपूर्ण प्रयोग हैं। प्रो० स्टिगलर (Stigler) ने सामान्य साम्य के निम्न तीन महत्त्वपूर्ण प्रयोग बताये हैं

(१) यह इस बात को स्पष्ट करता है कि अर्थव्यवस्था के एक भाग में साम्य, उसके अन्य भागों में साम्य के साथ-साथ रह सकता है।

(२) यह अर्थव्यवस्था के सामान्य ढाँचे तथा कार्यकरण की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

(३) यह इस बात को मालूम करने में अत्यन्त सहायक होता है कि किसी विशिष्ट समस्या के लिए कौन-से तथ्य उपयोगी (relevant) हैं, और यह अन्य उद्योगों को यथास्थिर मानकर केवल एक उद्योग पर विचार करने के अर्थ तथा सीमाओं को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

आंशिक साम्य तथा सामान्य साम्य की तुलना
(COMPARISON OF PARTIAL EQUILIBRIUM AND GENERAL EQUILIBRIUM)

दोनों रीतियाँ अर्थशास्त्रियों के लिए उपयोगी हैं, परन्तु दोनों में निम्न अन्तर पाये जाते हैं :

(१) 'आंशिक साम्य विश्लेषण रीति' अधिक व्यावहारिक है और इसकी सहायता से हम विभिन्न कीमतों पर वस्तु विशेष की मांगी जाने वाली मात्रा या पूर्ति की जाने वाली मात्रा के प्रभाव को ज्ञात कर सकते हैं।

परन्तु यह रीति अर्थव्यवस्था के विभिन्न आर्थिक तत्त्वों की पारस्परिक निर्भरता पर प्रकाश नहीं डालती, जबकि 'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' ऐसा करती है। अतः केवल आंशिक साम्य

[11] "...General equilibrium is a misnomer, no economic analysis has ever been general in the sense that it considered all relevant data. The most that can be said is that general equilibrium studies are more inclusive than partial equilibrium studies, never that they are complete. Moreover, the more general the analysis the less specific its content must necessarily be." —Stigler, *Theory of Price* (1947), p. 23.

रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को समस्त अर्थव्यवस्था में लागू करने से भीषण और गलत परिणाम प्राप्त होंगे। उदाहरणार्थ, एक विशेष उद्योग में मजदूरों की मजदूरी की दर को गिरा देने से अधिक मजदूरों को रोजगार दिया जा सकता है, परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं होगा कि सभी उद्योगों में मजदूरी-दर गिरा देने से अधिक मजदूरों को रोजगार प्राप्त हो जायेगा। सामान्य मजदूरी दर में गिरावट लोगों की क्रय-शक्ति बहुत कम कर देगी, परिणामस्वरूप वस्तुओं की माँग कम होगी और उद्योगों में मजदूरों के लिए रोजगार कम हो जायगा क्योंकि वस्तुओं की माँग कम होने पर उद्योगों में शिथिलता आ जायेगी और कुछ उद्योग बन्द भी हो जायेंगे।

(२) 'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' विशिष्ट समस्याओं के समाधान में व्यावहारिक रूप से उपयोगी नहीं है क्योंकि इसमें बहुत अधिक गणित का प्रयोग किया जाता है और एक साथ कई युगपत समीकरणों (simultaneous equations) पर विचार करना पड़ता है।

परन्तु सामान्य साम्य विश्लेषण रीति से हमें अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण चित्र का ज्ञान होता है क्योंकि यह रीति अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों की पारस्परिक निर्भरता पर ध्यान देती है। इस प्रकार इस रीति के प्रयोग से आंशिक साम्य विश्लेषण रीति की कमियों तथा गलतियों से बचा जा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

स्पष्ट है कि विश्लेषण की दोनों रीतियाँ प्रतियोगी न होकर एक-दूसरे की पूरक हैं। अर्थव्यवस्था के समस्त चित्र को जानने के लिए सामान्य साम्य विश्लेषण आवश्यक है तथा चित्र के एक अंग के कार्यकरण को समझने के लिए आंशिक साम्य विश्लेषण जरूरी है।

प्रश्न

१ अर्थशास्त्र में साम्य के विचार को समझाइए तथा आर्थिक सिद्धान्त में उसके महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

Explain the concept of 'Equilibrium' in Economics and bring out its importance in Economic Theory

२ अर्थशास्त्र में साम्य से आप क्या समझते हैं ? आंशिक तथा सामान्य साम्य की धारणाओं की व्याख्या कीजिए तथा आर्थिक विश्लेषण में उनके महत्त्व का निर्देश कीजिए।

What do you mean by equilibrium ? Explain the concepts of partial and general equilibria and indicate their importance in economic analysis

३. निम्नलिखित की विवेचना कीजिए

(i) अर्थशास्त्र में साम्य (या सन्तुलन) का अर्थ
(ii) स्थिर, तटस्थ तथा अस्थिर साम्य
(iii) एकाकी तथा अनेक तत्त्वीय साम्य

Discuss the following
(i) Meaning of Equilibrium in Economics
(ii) Stable, Neutral and Unstable *Equilibria*
(iii) Single or Unique and Multiple Equilibria

४. निम्नलिखित को स्पष्ट कीजिए :

(i) अर्थशास्त्र में साम्य का अर्थ
(ii) अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य
(iii) स्थैतिक तथा प्रावैगिक साम्य

Explain the following
(i) Meaning of Equilibrium in Economics
(ii) Short-term and Long term Equilibria.
(iii) Static and Dynamic Equilibria

11 कल्याणवादी अर्थशास्त्र : अर्थ तथा स्वभाव
[WELFARE ECONOMICS CONCEPT AND NATURE]

कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा वास्तविक अर्थशास्त्र मे अन्तर
(DISTINCTION BETWEEN WELFARE ECONOMICS AND POSITIVE ECONOMICS)

१ कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ (The Concept of Welfare Economics)

टाईबर साईटोवोस्की (Tibor Scitovsky) के अनुसार, "कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त का वह भाग है जिसका सम्बन्ध मुख्यतया नीति (Policy) से होता है।"[1] कल्याणवादी अर्थशास्त्र समाज के सदस्यो के समूह के रूप मे, हित (well-being) का अध्ययन करता है, हित को जानने के लिए यह 'उपयोगिता' (utility) या 'कल्याण' (welfare) के विचार का प्रयोग करता है। कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मुख्यतया 'सामाजिक कल्याण' (social welfare) मे होता है। *सामाजिक कल्याण मे वृद्धि की दृष्टि से आर्थिक नीतियो का निर्माण* कुछ लक्ष्यो (goals) अथवा आदर्शों (norms) के सन्दर्भ मे, किया जाता है, इसलिए **'कल्याणवादी अर्थशास्त्र'** (*Welfare Economics*) को **'आदर्शवादी अर्थशास्त्र'** (*Normative Economics*) भी कहते हैं।

आधुनिक दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए हम कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अर्थ को निम्न प्रकार से बता सकते हैं

> **कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त की वह शाखा है जो कि मुख्यतया वैकल्पिक नीतियों (alternative policies) की सामाजिक वांछनीयता (social desirability) के मूल्याकन (evaluation) से सम्बन्धित होती है। दूसरे शब्दों मे, यह कुछ कसौटियों या कथनों (criteria or propositions) को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर, सामाजिक कल्याण मे सुधार या वृद्धि की दृष्टि से, वैकल्पिक नीतियों को आंका जाता है। सामाजिक कल्याण मे वृद्धि या नुकसान को, कुछ 'सामाजिक लक्ष्यों' (social goals) के सन्दर्भ मे, आंका जाता है, ये सामाजिक लक्ष्य वे होते हैं जो कि या तो समाज द्वारा 'सामान्यतया स्वीकृत' (generally accepted) होते हैं अथवा वे होते हैं जो कि बाहर से (जैसे, सरकार या राजनीतिज्ञों द्वारा) दिये जाते हैं। विश्लेषणात्मक कल्याणवादी अर्थशास्त्र (analytical welfare economics) इन लक्ष्यों (या नैतिक निर्णयो या आदर्शों) को दिया हुआ मान लेता है और इसके बाद कल्याणवादी कसौटियो या कथनो को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर वैकल्पिक नीतियो को आंका जाता है या सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए नीति सुझाव (policy-prescriptions) दिये जाते हैं।**

---
[1] "Welfare economics is that part of economic theory which is concerned primarily with policy"

यद्यपि कल्याणवादी अर्थशास्त्र स्वभाव से आदर्शात्मक (normative) है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यह अवैज्ञानिक (unscientific) है। कल्याणवादी अर्थशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना होता है और इस प्रकार उसका स्वभाव आदर्शात्मक है, परन्तु लक्ष्यों (या आदर्शों या नैतिक निर्णयों) के दिये हुए होने पर, वाञ्छनीय लक्ष्यों (desired goals) को प्राप्त करने के लिए निर्माण की जाने वाली नीतियों का अध्ययन निश्चित ही विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक है। दूसरे शब्दों में,

"एक विशेष नीति के औचित्य (appropriateness) का एक अवतारणी मूल्यांकन नहीं कर सकता, और न ही वैकल्पिक नीतियों के बीच चुनाव कर सकता है, जब तक कि वह उन नीतियों के सम्भावित (probable) परिणामों तथा प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों दोनों पर ध्यान नहीं देता। विश्लेषणात्मक कल्याणवादी अर्थशास्त्र का इस प्रकार के मूल्यांकनों (assessments) की रीति-विधान (methodology) से सम्बन्ध होता है।"[1]

उपर्युक्त विवरण से कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ तथा उसके उद्देश्य[2] (objects) स्पष्ट हो जाते हैं।

२. वास्तविक अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Positive Economics)

वास्तविक अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं के कारण तथा परिणाम में सम्बन्ध (cause and effect relationship) का अध्ययन करता है। यह आर्थिक घटनाओं की अच्छाई तथा बुराई के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता, यह कारण परिणाम के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए आर्थिक घटनाओं की व्याख्या (explain) करता है और वे जैसी होती हैं उनका वैसा ही वर्णन (description) करता है, कारण-परिणाम के सम्बन्ध की व्याख्या के आधार पर आर्थिक घटनाओं की भविष्यवाणी (prediction) करता है। यदि वास्तविक कथनों के सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न होते हैं तो उनको तथ्यों या आंकड़ों का सहारा लेकर समाप्त किया जा सकता है।

३. वास्तविक अर्थशास्त्र तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र में अन्तर तथा सम्बन्ध (Distinction and Relation between Positive and Welfare Economics)

वास्तविक व कल्याणवादी अर्थशास्त्र में सम्बन्ध तथा अन्तर निम्न बातों से स्पष्ट होता है :

(1) 'वास्तविक अर्थशास्त्र' का सम्बन्ध किसी घटना या आर्थिक प्रणाली के कार्यकरण के समझने, व्याख्या करने तथा भविष्यवाणी करने (understanding, explaining and predicting) से होता है।

---

[1] "One cannot assess the appropriateness of a particular policy, nor choose among alternative policies unless one pays attention both to the probable consequences of these policies and the objectives that are sought. *Analytical welfare economics is concerned with the methodology of such assessments*."

[2] कल्याणवादी अर्थशास्त्र के उद्देश्यों को अलग से निम्न प्रकार भी बताया जा सकता है : (१) कल्याणवादी अर्थशास्त्र समस्त समाज के 'आर्थिक कल्याण' को अधिकतम करने के उपायों तथा साधनों का अध्ययन करता है। आर्थिक कल्याण का तात्पर्य सन्तुष्टि (satisfaction) से है जो कि समाज के सदस्य वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग से प्राप्त करते हैं। (२) यह उन दशाओं (indices) को बताता है जिनके आधार पर यह मालूम किया जा सकता है कि व्यक्ति एक वातावरण (environment) में दूसरे वातावरण की अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट (better-off) है अथवा असन्तुष्ट (worse-off) है या उसका आर्थिक कल्याण अपरिवर्तित रहता है। (३) यह उन दशाओं को भी बताता है जिनके आधार पर यह मालूम किया जा सकता है कि एक समयावधि (period) में दूसरे की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज का आर्थिक कल्याण बढ़ गया है अथवा घट गया है। व्यक्ति के कल्याण की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज का कल्याण अधिक महत्त्वपूर्ण है।

'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' कुछ दिये हुए लक्ष्यों या सामाजिक आदर्शों (social norms) के सन्दर्भ मे, आर्थिक नीतियो की अच्छाई या बुराई को आकता है, और यह दिये हुए तथा वांछित लक्ष्यो (desired objects) को प्राप्त करने के लिए नीति-सुझावों को बनाता है।

वास्तव मे 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' तथा 'वास्तविक अर्थशास्त्र' मे निकट का सम्बन्ध है जो कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट होता है

"भविष्यवाणी करने की योग्यता वास्तविक अर्थशास्त्र को नीति-निर्माण का एक अत्यन्त आवश्यक साधन (या यन्त्र) बनाती है। वास्तविक अर्थशास्त्र का समस्त ढांचा वैकल्पिक नीतियों से प्राप्त होने वाले परिणामों की भविष्यवाणी करने मे सहायक होता है, और कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे इसका प्रयोग किसी दिये हुए विशेष उद्देश्य को अधिकतम रूप मे प्राप्त करने के लिए उचित नीति को बनाने या निकालने मे सहायक होता है।"[4]

(ii) 'वास्तविक अर्थशास्त्र' में निष्कर्ष या कथन (conclusions or propositions) मान्यताओ के एक समूह के आधार पर निकाले जाते हैं। 'वास्तविक कथनों' को प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक जगत मे तथ्यो (facts) की सहायता से जाँचा जा सकता है। यदि कोई वास्तविक कथन वास्तविक तथ्यों से मेल खाता है, तो उसे स्वीकार कर लिया जाता है, अन्यथा उसे त्याग दिया जाता है।

कल्याणवादी कथन भी, वास्तविक कथनों की भाँति, मान्यताओं के एक समूह के आधार पर निकाले जाते हैं। इन मान्यताओ (या दशाओ) के आधार पर कल्याणवादी अर्थशास्त्र इस बात की जाँच करता है कि सामाजिक कल्याण मे वृद्धि हुई है या नहीं। इन मान्यताओं के पूरा होने पर भी यदि सामाजिक कल्याण मे वृद्धि नही होती है तो इन मान्यताओं को उचित नहीं समझा जाता है।

इन दोनो मे एक महत्वपूर्ण अन्तर इस प्रकार है। असल मे 'वास्तविक अर्थशास्त्र' में हम अपनी मान्यताओ को जितना सरल करना चाहें कर सकते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि उनकी सत्यता की जाँच उस समय हो जायेगी जब हम उन मान्यताओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्षों को वास्तविक जगत मे लागू करेंगे। परन्तु कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे हम अपनी मान्यताओं को जैसा चाहें वैसा सरल नहीं बना सकते, क्योंकि उनके आधार पर निकाले गये निष्कर्षों को वास्तविक जगत म तथ्यों (facts) की सहायता से नहीं जाँचा जा सकता है, कल्याण निष्कर्ष मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक (psychological and ethical) होते हैं और इसलिए उनका कोई एक निश्चित मापन नही हो सकता है। अत कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे मान्यताओं का सावधानी तथा विस्तृत रूप से परीक्षण (examine) करना चाहिए। अब हम वास्तविक अर्थशास्त्र तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण अन्तर को निम्न शब्दो मे व्यक्त कर सकते हैं·

"वास्तविक अर्थशास्त्र मे एक सिद्धान्त की जाँच करने का सामान्य तरीका उसके निष्कर्षों की जाँच करना है, जबकि कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे एक कल्याण कथन की जाँच करने का सामान्य तरीका उसकी मान्यताओं की जाँच करना है।"[5]

---

[4] "The ability to predict makes positive economics an indispensable tool of policy formation. The entire body of positive economics enables us to predict the outcome resulting from alternative policies and the use of this in welfare economics enables us to derive the appropriate policy for maximiz ng the achievement of any particular objective "

[5] "Whereas the normal way of testing a theory in positive economics is to test its conclu sions, the normal way of testing a welfare proposition is to test its assumptions."

कल्याणवादी अर्थशास्त्र में नैतिक निर्णयों का स्थान
(THE PLACE OF VALUE JUDGMENTS IN WELFARE ECONOMICS)

१. नैतिक निर्णय का अर्थ (Meaning of value judgments)

ऐसे नीतिशास्त्र सम्बन्धी (ethical) कथन जो कि 'प्रभावित करने, सुझाव देने तथा मनाने का कार्य करते हैं' उन्हें नैतिक निर्णय कहा जाता है।[1] उदाहरणार्थ, 'आय में असमानताओं को कम करना चाहिए', 'एक विशेष परिवर्तन आर्थिक कल्याण में वृद्धि करेगा', इत्यादि ऐसे कथन हैं जो नैतिक निर्णयों को बताते हैं। इस प्रकार

"एक नैतिक निर्णय वह है जो कि विश्वासों या दृष्टिकोणों में परिवर्तन करके व्यक्तियों को प्रभावित करने की प्रवृत्ति रखता है।"[2]

किसी देश या समाज में प्राय नैतिक निर्णय देश के संविधान, नीति-सुझावों या योजनाओं में व्यक्त किये जाते हैं और इनके सन्दर्भ में अर्थपूर्ण (meaningful) आर्थिक नीतियों का निर्माण किया जाता है।

२ नैतिक निर्णय तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र (Value Judgments and Welfare Economics)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध वैकल्पिक (alternative) नीतियों की सामाजिक वांछनीयता (social desirability) का मूल्यांकन करने से होता है। यह कुछ कसौटियों या कथनों को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर वैकल्पिक नीतियों को इस दृष्टि से आँका जाता है कि वे सामाजिक कल्याण में वृद्धि करेंगी या नहीं। 'कल्याण' एक 'नैतिक' शब्द (ethical term) है और इसलिए सभी कल्याण कथन (propositions) 'नैतिक' होते हैं और उनमें नैतिक निर्णय शामिल रहते हैं। अब अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि "कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र को अलग नहीं किया जा सकता। वे अलग नहीं किये जा सकते हैं क्योंकि कल्याणवादी शब्दावली एक मूल्य-भारित शब्दावली है।"[3] कल्याणवादी अर्थशास्त्र में नैतिक निर्णयों का स्पष्ट रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए अन्यथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र का कोई महत्त्व नहीं रह जायेगा।

३. क्या अर्थशास्त्रियों को स्वयं नैतिक निर्णयों को निर्धारित करना चाहिए? (Should economists themselves decide value judgments?)

इस बात को मानते हुए कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र में नैतिक निर्णयों का होना जरूरी है, एक मुख्य प्रश्न यह उठता है कि क्या अर्थशास्त्रियों को नैतिक निर्णयों को स्वयं निर्धारित करना चाहिए, या नैतिक निर्णयों को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए? अर्थशास्त्रियों में इस सम्बन्ध में मतभेद रहा है। अब हम नीचे दिये गये कुछ मुख्य अर्थशास्त्रियों के विचारों की व्याख्या करते हैं—(i) पीगू तथा नये क्लासीकल अर्थशास्त्री, (ii) पैरिटो, (iii) हिक्स, काल्डोर तथा साइटोवोस्की, (iv) बर्गसन, सेम्युलसन, लिटिल तथा ऐरो।

नये क्लासीकल अर्थशास्त्रियों, अर्थात् मार्शल तथा पीगू के अनुसार उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन किया जा सकता है और इसलिए उपयोगिता एक गणनावाचक विचार (cardinal concept) है। पीगू ने यह मान्यता मानी कि 'सभी व्यक्ति (धनी या निर्धन) सन्तुष्टि की समान क्षमता रखते हैं'[4] और इस मान्यता के आधार पर पीगू ने अपनी आय वितरण की नीति का निर्माण किया। उनकी आय-वितरण की नीति बताती है कि धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को

[1] Ethical statements which 'have the function of influencing suggesting and persuading' are known as value judgments

[2] Thus 'a value judgment is one which tends to influence people by altering their beliefs or attitudes'

[3] 'Welfare economics and ethics cannot be separated They are inseparable because the welfare terminology is a value terminology'

[4] 'All men (whether rich or poor) have equal capacity for satisfaction'

द्राव्यिक आय का हस्तान्तरण (transfer) सामाजिक कल्याण में वृद्धि करेगा। इसका अभिप्राय है कि उपयोगिताओं (या कल्याण) की अन्त वैयक्तिक तुलना करनी पड़ेगी। परन्तु यह अन्त वैयक्तिक तुलना इस नैतिक निर्णय या नैतिक मान्यता पर आधारित है कि 'सभी व्यक्ति सन्तुष्टि के लिए समान क्षमता रखते हैं'।

प्रो रोबिन्स ने पीगू की नैतिक मान्यता की कड़ी आलोचना की और बताया कि अन्त-वैयक्तिक तुलनाएँ वस्तुगत तथा वैज्ञानिक ढग (objective and scientific manner) से नहीं की जा सकती। स्पष्ट है कि पीगू द्वारा दी गयी कल्याणवादी अर्थशास्त्र की व्याख्या नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र (free) नहीं है।

प्रो रोबिन्स की आलोचना के परिणामस्वरूप अनेक अर्थशास्त्रियों ने गणनावाचक उपयोगिता के विचार के आधार पर अन्त वैयक्तिक तुलना को त्याग दिया, तथा उन्होंने पेरिटियन कल्याण के विचार को स्वीकार किया जो कि क्रमवाचक उपयोगिता[10] (ordinal utility) पर आधारित है। पेरिटियन कल्याण का विचार बहुत सीमित है क्योंकि यह सामाजिक कल्याण पर मिश्रित प्रभाव (mixed effect) के बारे मे कुछ नहीं कह सकता है, अर्थात्, यदि किसी आर्थिक परिवर्तन के *परिणामस्वरूप कुछ व्यक्तियों की स्थिति में सुधार होता है तथा कुछ की स्थितियों मे* गिरावट आती है तो पेरिटो के विचार या कसौटी के आधार पर यह नहीं बताया जा सकता है कि *इस प्रकार के मिश्रित प्रभाव से सामाजिक कल्याण म वृद्धि होगी या कमी।* इसके अतिरिक्त, पेरिटो का कल्याण-विचार भी नैतिक निर्णय से पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं है (जैसा कि पेरिटो सोचते थे), यह इस छिपे हुए नैतिक निर्णय पर आधारित है कि 'एक व्यक्ति को सदैव सबके साथ अच्छाई करनी चाहिए' (one should always do good to all)।

कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की (जो कि 'नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र' के बनाने वाले कहे जाते हैं) ने 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (compensation principle) का निर्माण किया और सोचा कि उनकी यह धारणा नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र है। वास्तव मे इन अर्थशास्त्रियो ने सामाजिक कल्याण मे परिवर्तन से सम्बन्धित पेरिटियन विचार का विस्तार किया और उन परिस्थितियो का भी मूल्याकन किया जिनमे कुछ व्यक्तियो की स्थिति मे सुधार होता है तथा कुछ की स्थिति मे गिरावट आती है। पेरिटो की भाँति, इन अर्थशास्त्रियो ने भी 'उत्पादन की समस्या' (अर्थात् 'आर्थिक कुशलता' economic efficiency) को 'वितरण की समस्या' से अलग रखा। आर्थिक कुशलता की जाँच यह है कि ऐसे व्यक्ति जिनको परिवर्तन से लाभ होता है वे नुकसान होने वाले व्यक्तियो की उचित ढग से क्षतिपूर्ति (compensation) कर सकते है। इस 'जाँच' (test) या 'सिद्धान्त' को 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (compensation principle) कहा जाता है। परन्तु 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' का विचार अपने मे नैतिक निर्णय को छिपाये हुए है क्योकि परिवर्तन के परिणामस्वरूप *लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्ति नुकसान होने वाले व्यक्तियो की क्षतिपूर्ति करने की स्थिति मे होते है।* इस प्रकार 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' या 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र नही है।

प्रो एब्राहम बर्गसन (Abraham Bergson) *प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने स्पष्ट रूप से* इस बात पर जोर दिया कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे नैतिक निर्णयो की आवश्यकता है। सेम्युलसन, लिटिल तथा एरो ने भी प्रो० बर्गसन के साथ सहमति व्यक्त की। इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र म स्पष्ट रूप से (explicitly) नैतिक निर्णयो या नैतिक मान्यताओ को शामिल किये बिना कोई भी अर्थपूर्ण (meaningful) 'कल्याण कथन' (welfare propositions) या 'नीति-सुझाव' (policy recommendations) नहीं दिये जा सकते है। ये नैतिक निर्णय

[10] गणनावाचक उपयोगिता (cardinal utility) तथा क्रमवाचक उपयोगिता (ordinal utility) के विचारो को अच्छी प्रकार से समझने के लिए देखिए अध्याय १४ म 'क्या उपयोगिता गणनावाचक विचार है या क्रमवाचक विचार ?' *नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को।*

बाहर से दिये जा सकते हैं। एक अर्थशास्त्री बाहर से दिये हुए इन नैतिक निर्णयों से सहमति रख सकता है या नहीं, परन्तु वह इन दिये हुए नैतिक निर्णयों या नैतिक मान्यताओं के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से नैतिक सुझावों के अभिप्रायों (implications) को निकाल (deduce कर) सकता है। इस प्रकार इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र' को 'नीतिशास्त्र' से अलग नहीं किया जा सकता, कल्याणवादी अर्थशास्त्र एक आदर्शवादी अध्ययन (normative study) हो जाता है, परन्तु साथ ही साथ इसका अर्थ यह नहीं है कि वह वैज्ञानिक (scientific) नहीं रह जाता है।

४. निष्कर्ष (Conclusion)

अब हम एक मोटे (broad) निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री बर्गसन, सेम्युलसन इत्यादि के विचारों से सहमत हैं, अर्थशास्त्रियों को नैतिक निर्णयों को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए और फिर वैकल्पिक नीतियों के अभिप्रायों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहिए। वास्तव में कल्याणवादी अर्थशास्त्र के लिए नैतिक निर्णय आधारभूत (basic) हैं क्योंकि (i) कल्याण' एक नैतिक शब्द (ethical term) है और इस शब्द 'कल्याण' से सम्बन्धित कोई भी कथन स्वाभाविक रूप से नैतिक निर्णयों, चाहे वे छिपे हुए हों या स्पष्ट, पर ही आधारित होगा। (ii) कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध नीतियों के लिए सुझावों या नुस्खों (prescriptions) के वैज्ञानिक अध्ययन से होता है। कोई भी सुझाव या नुस्खे बिना किसी सामाजिक उद्देश्य के सन्दर्भ के नहीं दिये जा सकते, और कोई भी सामाजिक उद्देश्य निर्धारित नहीं किया जा सकता जब तक कि 'स्पष्ट रूप से, या 'छिपे रूप से' (explicitly or implicitly) कुछ नैतिक निर्णयों को मानकर नहीं चला जाता है।

अध्याय ११ की परिशिष्ट (APPENDIX TO CHAPTER 11)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र: पुराना तथा नया (WELFARE ECONOMICS OLD AND NEW)

संक्षिप्त ऐतिहासिक निरूपण (A BRIEF HISTORICAL REVIEW)

आर्थिक विश्लेषण के एक पृथक शाखा (separate branch) के रूप में कल्याणवादी अर्थशास्त्र का विकास नवीन ही है, यद्यपि प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्रियों (Old classical economists) ने इसका प्रयोग वास्तविक अर्थशास्त्र (Positive Economics) के साथ मिश्रित रूप में किया था। वास्तव में, एक दृष्टि से उपयोगवादी विचारक (utilitarian thinker) बेन्थम (Benthem) कल्याणवादी अर्थशास्त्र के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। उनका प्रसिद्ध सिद्धान्त-वाक्य (dictum)—'अधिकतम संख्या को अधिकतम सुख' (The greatest happiness of the greatest number)—कल्याणवादी अर्थशास्त्र का आधार कहा जा सकता है। इसके पश्चात् अंग्रेज अर्थशास्त्री होबसन (J H Hobson) ने अपनी पुस्तक *Work and Wealth* (1914) में, उस समय की इंगलैण्ड की सोचनीय सामाजिक अवस्था से प्रभावित होकर, अर्थशास्त्र को सामाजिक सुधार का यन्त्र या साधन बनाने के लिए जोरदार शब्दों में समर्थन किया। लगभग इसी समय अमरीकन अर्थशास्त्री हेनरी क्ले (Henry Clay) ने अपनी पुस्तक *Economics for the General Reader* (1916) में कल्याणवादी विचारधारा का समर्थन किया।

सन् 1920 में प्रो पीगू की विख्यात पुस्तक *Economics of Welfare* के प्रकाशन के साथ कल्याणवादी अर्थशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। इस पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अध्ययन आर्थिक विश्लेषण की एक पृथक शाखा के रूप में किया

जाने लगा। नये क्लासीकल अर्थशास्त्रियों (New Classical Economists) मार्शल, पीगू, इत्यादि ने कल्याण पर मनोवैज्ञानिक शब्दों (psychological terms) में विचार किया तथा उसमे वृद्धि के लिए उपयोगिता को अधिकतम करने को बताया। इनके विरोध में प्रो० रोबिन्स (Robbins) तथा उनके अनुयायियों ने कहा कि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध कल्याण से जोडना ठीक नही है और उनके अनुसार, अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक अर्थशास्त्र ही मानना चाहिए। प्रो० रोबिन्स के इस विचार का कई प्रतिष्ठित आधुनिक अर्थशास्त्रियों जैसे, हिक्स (Hicks), कालडोर (Kaldor), साइटोवोस्की (Scitovosky), लिटिल (Little), बर्गसन (Bergson), सेम्युलसन (Samuelson) इत्यादि ने विरोध किया तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र का जोरदार समर्थन करते हुए अपने विचार प्रकट किये। निस्सन्देह अब कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण शाखा है।

हम कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अध्ययन को निम्न चार भागों में बाँटते हैं

१ पीगू का कल्याणवादी अर्थशास्त्र (Pigouvian Welfare Economics), अथवा 'पुराना कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (Old Welfare Economics)
२ पेरिटो का कल्याणवादी अर्थशास्त्र (Pareto's Welfare Economics)
३ नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र (New Wealfare Economics) अथवा 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (Compensation Principle); इसके निर्माता कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की हैं।
४. सामाजिक कल्याण फलन (Social Welfare Function); इसके निर्माता बर्गसन, सेम्युलसन, इत्यादि हैं।

अब हम इनमे से प्रत्येक का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

पीगू का कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(PIGOUVIAN WELFARE ECONOMICS)
अथवा
पुराना कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(OLD WELFARE ECONOMICS)

१. प्राक्कथन (Introduction)

विख्यात नये क्लासीकल अर्थशास्त्री पीगू (जो कि मार्शल के शिष्य थे) प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने पहली बार कल्याणवादी अर्थशास्त्र का एक व्यवस्थित (systematic) अध्ययन अपनी क्लासिक (classic) पुस्तक *Economics of Welfare* मे प्रस्तुत किया। वास्तव में पीगू कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पिता या जन्मदाता कहे जा सकते हैं। प्रो० लिटिल (Little) के शब्दों मे, "कल्याणवादी अर्थशास्त्र को प्रो० पीगू के नाम के साथ जोडना अधिक उचित होगा। इससे पहले 'आनन्द अर्थशास्त्र' (Happiness Economics) था और इससे भी पहले 'धन अर्थशास्त्र' (Wealth Economics) था।"[11]

पीगू द्वारा प्रतिपादित कल्याणवादी अर्थशास्त्र को '**पुराना कल्याणवादी अर्थशास्त्र**' भी कहा जाता है। पीगू ने निम्न बातों की विवेचना की (i) कल्याण का विचार (concept), (ii) कल्याण को *अधिकतम करने की दशाएँ, तथा (iii) कल्याण मे वृद्धि करने के लिए नीति-सुझाव या नीति-नुस्खे* (policy prescriptions)।

इस प्रकार पीगू ने कल्याणवादी अर्थशास्त्र की एक व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत की।

२ कल्याण का विचार (Concept of Welfare)

एक व्यक्ति के कल्याण का अर्थ उन उपयोगिताओं तथा सन्तुष्टियों (utilities and satisfactions) से है जो कि उसको वस्तुओं और सेवाओं के प्रयोग से प्राप्त होती हैं। इस प्रकार,

---

[11] "We would prefer to say that Welfare Economics began with Pigou. Before that we had Happiness Economics and before that, Wealth Economics."

कल्याण एक व्यक्तिगत चीज (subjective thing) है, यह मस्तिष्क में निवास करती है, अर्थात् यह मस्तिष्क की एक अवस्था (state) है। 'सामाजिक कल्याण' समाज के व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं या सन्तुष्टियों का योग है।

पीगू ने 'सामान्य कल्याण' (general welfare) तथा आर्थिक कल्याण' (economic welfare) में भेद किया। सामान्य कल्याण एक बहुत विस्तृत शब्द है और इसके अन्तर्गत एक व्यक्ति (या समाज) को सभी प्रकार की वस्तुओं आर्थिक तथा अनार्थिक वस्तुओं, के प्रयोग से प्राप्त होने वाला कल्याण शामिल होता है। प्रो० पीगू कल्याण के विचार को आर्थिक कल्याण' तक ही सीमित रखना चाहते हैं जो कि केवल आर्थिक तत्वों (economic factors) पर निर्भर करता है और सामान्य कल्याण का एक हिस्सा या भाग होता है। प्रो० पीगू के अनुसार आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा रूपी पैमाने के साथ सम्बन्धित किया जा सकता है।[11] अतः पीगू के अनुसार आर्थिक कल्याण का अर्थ उस सन्तुष्टि से है जो कि एक व्यक्ति आर्थिक वस्तुओं व सेवाओं अर्थात् विनिमय-योग्य (exchangeable) वस्तुओं व सेवाओं के प्रयोग से प्राप्त करता है।

३. पीगूवियन या पुराने कल्याणवादी अर्थशास्त्र की मान्यताएँ (Assumptions of Pigouvian or Old Welfare Economics)

सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने की दशाओं (*propositions or conditions*) की विवेचना करने से पहले यह आवश्यक है कि हम उन मान्यताओं को जान लें जिनके आधार पर कल्याणवादी दशाएँ (welfare propositions) निकाली जाती हैं। मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) 'प्रत्येक व्यक्ति अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है' जो कि उसको आर्थिक वस्तुओं व सेवाओं पर द्राव्यिक आय को व्यय करने से प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक उपभोक्ता विवेकपूर्ण ढंग (rational way) से कार्य करता है।

(ii) एक महत्वपूर्ण मान्यता है 'सन्तुष्टि के लिए समान क्षमता' (equal capacity for satisfaction), इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति की, चाहे वह धनी हो या निर्धन, एकसमान रुचियाँ (tastes) होती हैं और वस्तुओं के प्रयोग से सन्तुष्टि प्राप्त करने की क्षमता भी प्रत्येक के लिए समान होती है, दूसरे शब्दों में विभिन्न व्यक्ति एक बराबर वास्तविक आय से समान सन्तुष्टि प्राप्त करते हैं।

(iii) द्रव्य के सम्बन्ध में उपयोगिता ह्रास नियम लागू होता है। इसका अर्थ है कि द्राव्यिक आय में वृद्धि के साथ द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता घटती है, दूसरे शब्दों में, एक अतिरिक्त sion) ... का कम सन्तुष्टि देगा जिसके पास अधिक द्रव्य है अपेक्षाकृत उस व्यक्ति ... है।

(iv) यह माना ... अन्तर्वैयक्तिक तुलनाएँ (interpersonal comparison ... गी है, और इसलिए कल्याण में वृद्धि या कमी को मालूम ...

४. सामाजिक कल्याण को अधिकतम कर ... (Welfare conditions or propositions for social optimum)

पीगू ने 'कल्याण' के व्यक्तिगत विचार (subjective concept) को राष्ट्रीय आय (national dividend or national income) के वस्तुगत विचार (objective concept) से सम्बन्धित किया, राष्ट्रीय आय में परिवर्तन कल्याण में परिवर्तन को बतायेंगे।

---

[11] According to Pigou economic welfare is that part of general welfare which can "be brought directly or indirectly into relation with the measuring rod of money"

ऊपर दी गयी मान्यताओं के आधार पर सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए पीगू ने 'दो दशाएँ' या 'दुहरी कसौटी' ('two conditions' or 'double criterion') प्रस्तुत की, जो कि निम्नलिखित है

(i) वास्तविक (real) राष्ट्रीय आय (अर्थात् वस्तुओं व सेवाओं के कुल उत्पादन) को अधिकतम करने से सामाजिक कल्याण अधिकतम होगा, जबकि साधनों की पूर्ति दी हुई है। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ है सन्तुष्टि की अधिक मात्रा और जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी, और इसी प्रकार वास्तविक राष्ट्रीय आय में कमी का अर्थ है सन्तुष्टि में कमी और इसलिए सामाजिक कल्याण में कमी। इस प्रकार सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए वास्तविक राष्ट्रीय आय का अधिकतम करना होगा। वास्तविक राष्ट्रीय आय को अधिकतम करने के लिए साधनों का अनुकूलतम (optimum) तरीके से वितरण करना पड़ेगा, अर्थात् साधनों का कम उत्पादक प्रयोगों से अधिक उत्पादक प्रयोगों में हस्तान्तरण (transfer) करना पड़ेगा जब तक कि इस प्रकार का हस्तान्तरण असम्भव न हो जाय, ऐसी स्थिति में वस्तुओं व सेवाओं का कुल उत्पादन (अर्थात् वास्तविक राष्ट्रीय आय) अधिकतम हो जायेगा और इसलिए सामाजिक कल्याण भी अधिकतम हो जायेगा।

(ii) वास्तविक आय का धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को हस्तान्तरण समाज की कुल सन्तुष्टि में अर्थात कुल कल्याण में वृद्धि करेगा। द्राव्यिक आय पर उपयोगिता ह्रास नियम के लागू होने की मान्यता के आधार पर धनी व्यक्तियों के लिए द्रव्य की उपयोगिता कम होती है अपेक्षाकृत निर्धन व्यक्तियों के, तथा धनी और निर्धन सभी व्यक्तियों के लिए 'सन्तुष्टि के लिए समान क्षमता' (equal capacity for satisfaction) होती है, अतः द्रव्य या वास्तविक आय का धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को कोई भी हस्तान्तरण निर्धन व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि करेगा और इसलिए समाज के कल्याण में वृद्धि होगी। इस प्रकार का हस्तान्तरण उस सीमा तक होना चाहिए जिस सीमा तक कि 'उत्पादक प्रयत्न, उपक्रम तथा पूँजीगत यन्त्रों के विकास' (productive effort, enterprise and development of capital equipments) पर कोई खराब प्रभाव नहीं पड़े। दूसरे शब्दों में, पीगू के अनुसार सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए 'आय के वितरण में समानता' (equality of distribution of income) जरूरी है।

५. पीगूवियन (या पुराने) कल्याणवादी अर्थशास्त्र की आलोचना (Criticism of the Pigouvian (or old) Welfare Economics)

प्रो० रेडोमिस्लर (Redomysler) के अनुसार "और इससे भी ...नी पुस्तक *Economics of Welfare* में नुस्खे या नीति सुझाव नहीं देते, वे केवल ... व्याख्या करते हैं कि कौनसे कारण आर्थिक कल्याण में वृद्धि करेंगे, और अपने विवेचन 'पुराना कल्...' र छोड़ देते है। यह महत्त्वपूर्ण है। चूँकि *Economics of Welfare* का सम्बन्ध कल्याण का वि... कारणों की खोज में है इसका अभिप्राय है कि वह एक 'वास्तविक अध्ययन' (positive study) है और क्या किया जाना चाहिए' का एक 'आदर्शात्मक अध्ययन' (normative study) नहीं है।"[13]

परन्तु प्रो० रेडोमिस्लर के इस दृष्टिकोण को मान्यता नहीं दी जाती है कि प्रो० पीगू ने अपनी

[13] Professor Pigou in his *Economics of Welfare* does not prescribe he examines what would increase economic welfare and leaves it at that This is important As the Economics of Welfare is concerned with the cause of welfare it follows that it is a positive study, and not a normative study of what ought to be done"

पुस्तक मे केवल कल्याण के कारणो की व्याख्या की है। पीगू के कल्याणवादी अर्थशास्त्र के प्रति निम्नलिखित मुख्य आलोचनाएँ की जाती हैं

(i) परिमाणात्मक रूप से (quantitatively) सन्तुष्टियो का योग नहीं किया जा सकता है। इसलिए यह कहना कोई अर्थ नही रखता कि व्यक्तियो की सन्तुष्टियो का योग सामाजिक कल्याण है। हम यह नही कह सकते है कि व्यक्ति को वस्तुओ और सेवाओ के प्रयोग से कितनी सन्तुष्टि प्राप्त होती है, केवल यह कहा जा सकता है कि उसकी सतुष्टि पहले की तुलना मे कम है या अधिक, यह नही बता सकते कि कितनी कम या अधिक है। दूसरे शब्दो मे, सन्तुष्टि या कल्याण या उपयोगिता के लिए 'क्रमवाचक विचार' (ordinal concept) का प्रयोग किया जा सकता है, गणनावाचक विचार' (cardinal concept) का नही।

(ii) पीगू ने 'व्यक्तिगत' विचार कल्याण' को 'वस्तुगत' विचार राष्ट्रीय आय' से साथ सम्बद्ध (link) किया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री 'कल्याण' के व्यक्तिगत विचार को 'चुनाव' (choice) के वस्तुगत विचार के साथ सम्बद्ध करना अधिक उचित मानते हैं। यदि कोई व्यक्ति स्थिति A का चुनता है अपेक्षाकृत स्थिति B के, तो इसका अभिप्राय है कि वह व्यक्ति स्थिति A से अधिक सन्तुष्टि या उपयोगिता प्राप्त करता है अपेक्षाकृत स्थिति B के, निस्सन्देह यहाँ पर चुनाव का आधार 'उपयोगिता का क्रमवाचक विचार है। आधुनिक अर्थशास्त्री इस दृष्टिकोण को मान्यता देते हैं।

(iii) 'सन्तुष्टि की समान क्षमता को मान्यता उचित तथा वैज्ञानिक नहीं है, यह केवल एक नैतिक निर्णय की मान्यता (assumption of ethical judgment) है जो कि 'उपयोगिता की अन्तवैयक्तिक तुलना' के लिए एक वास्तविक या वैज्ञानिक आधार (positive and scientific basis) प्रदान नही करता है।

(iv) तीसरी आलोचना के विस्तार (extension) करने मे हम एक और आलोचना पर पहुंच जाते है जो कि निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त की गयी है—"कल्याणवादी अर्थशास्त्र आवश्यक रूप से एक आदर्शवादी अध्ययन है, क्योंकि कोई भी परिवर्तन बिना किसी न किसी को नुकसान पहुंचाये नही किया जा सकता, और चूंकि सन्तुष्टि की अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ नैतिक निर्णय है और ऐसी तुलनाएँ आवश्यक है समाज के कल्याण के मूल्याकन करने के लिए, इसलिए कल्याणवादी अर्थशास्त्र निश्चित रूप से नैतिक (ethical) है।" वास्तव मे यह आलोचना अपना ध्यान 'नीतिशास्त्र' और 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' के सम्बन्ध के समस्त प्रश्न पर केन्द्रित करती है। पीगूवियन कल्याणवादी अर्थशास्त्र इस बात पर अस्पष्ट है।[11]

६ निष्कर्ष (Conclusion)

पीगूवियन कल्याणवादी अर्थशास्त्र की उपर्युक्त आलोचनाओ के परिणामस्वरूप कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध मे दो विचारधाराओ (schools) का जन्म हुआ—(i) नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र (या 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त') जो कि पेरिटो के कल्याण-विचार का विस्तार मात्र है, नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र के निर्माता काल्डोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की हैं। यह विचारधारा (पेरिटो की भाँति) कल्याणवादी अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र रखना चाहती है, परन्तु यह अपने इस उद्देश्य मे सफल न हो सकी। (ii) दूसरी विचारधारा है 'सामाजिक कल्याण फलन' (social welfare function), इसके निर्माता बर्गसन, सेम्युलसन, इत्यादि अर्थशास्त्री है। इन

[11] "Welfare economics is inevitably a normative study, because no change could be made without harming someone and since interpersonal comparisons of satisfaction are value judgments and essential to judgments about the welfare of society, welfare economics is unavoidably ethical." This criticism focuses our attention to the whole question of the relation of ethics and economics *Pigouvian* welfare economics is not clear on this issue."

अर्थशास्त्रियो के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र एक 'आदर्शात्मक अध्ययन' है, कल्याणवादी अर्थशास्त्र अर्थपूर्ण (meaningful) तभी होगा जबकि कल्याण विश्लेषण मे स्पष्ट रूप से नैतिक निर्णयो को शामिल किया जाता है, नैतिक निर्णयो को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए और उसके बाद वैज्ञानिक ढग से नीतियो के कल्याण अभिप्रायो (welfare implications) को निकालना चाहिए।

पेरिटो का कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(PARETIAN WELFARE ECONOMICS)

अथवा

पेरिटो का सामाजिक अनुकूलतम
(PARETIAN SOCIAL OPTIMUM)

१ प्राक्कथन (Introduction)

पीगूवियन कल्याणवादी अर्थशास्त्र (या पुराना कल्याणवादी अर्थशास्त्र) दो मुख्य मान्यताओं पर आधारित था—(i) उपयोगिता की गणनावाचक (cardinal) माप, तथा (ii) उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ। इन दोनो मान्यताओ की आलोचनाएँ की गयीं, उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक (psychological) विचार है और इसलिए उसका गणनावाचक या परिमाणात्मक मापन नही हो सकता है, अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ न केवल कठिन ही हैं बल्कि वे नैतिक निर्णयो पर आधारित होती हैं।

२. मान्यताएँ (Assumptions)

एक इटेलियन अर्थशास्त्री विलफ्रेडो पेरिटो (Vilfredo Pareto) ने उपर्युक्त मान्यताओ को त्याग दिया। पेरिटो ने कल्याणवादी अर्थशास्त्र का निम्नलिखित मान्यताओ के आधार पर विवेचन किया—(i) पेरिटो ने अपने विश्लेषण को उपयोगिता के क्रमवाचक (ordinal) विचार पर आधारित किया, न कि उपयोगिता के गणनावाचक विचार पर। (ii) उन्होंने कल्याणवादी अर्थशास्त्र को नैतिक निणयो से स्वतन्त्र (free) करन के लिए उपयोगिता की अन्तवैयक्तिक तुलनाओ की सम्भावना को छोड दिया। (iii) उपयोगिता वस्तुओ और सेवाओ की मात्रा पर निर्भर करती है। (iv) पेरिटो ने अपने कल्याण विश्लेषण म वितरण अर्थात् वितरण की समस्याओ को शामिल नही किया क्योकि ऐसा करने से अन्त वैयक्तिक तुलनाओ और नैतिक निर्णयो की बात उत्पन्न हो जाती है, पेरिटो न केवल उत्पादन व विनिमय की कुशलता को ही अपने कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे शामिल किया।

३. पेरिटो की 'कल्याण-कसौटियाँ' तथा 'सामाजिक अनुकूलतम' (Pareto's 'Welfare Criteria' and 'Social Optimum')

पेरिटो ने सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने का एक वस्तुगत 'जाच सिद्धान्त' (test) या 'कसौटी' (criterion) देने का प्रयत्न किया। उनका 'जाँच सिद्धान्त' या 'कसौटी' विभिन्न नामो से पुकारी जाती है, जैसे—'पेरिटियन अनुकूलतम' (Paretian Optimum), अथवा 'पेरिटो का सर्वसम्मति नियम' (Pareto's Unanimity Rule), अथवा 'पेरिटो का सामाजिक अनुकूलतम' (Pareto's Social Optimum), अथवा 'पेरिटो की अनुकूलतमता' (Pareto Optimality), अथवा 'सामान्य अनुकूलतम' (General Optimum)।

कल्याण मे सुधार (या वृद्धि) को जांचने के लिए पेरिटो की कल्याण-कसौटी को आगे दिये गये शब्दों मे व्यक्त किया जा सकता है

आर्थिक कल्याण की दृष्टि से एक परिवर्तन को वांछनीय या सुधार लाने वाला तभी कहा जा सकता है जबकि यह परिवर्तन, बिना किसी को नुकसान पहुंचाये हुए, कम से कम एक व्यक्ति की स्थिति को अच्छा करता है।[11]

कल्याण की उपर्युक्त कसौटी की दशा के आधार पर 'समाज के लिए अधिकतम कल्याण की स्थिति' अर्थात् 'सामाजिक अनुकूलतम' (Social Optimum) को निकाला (अर्थात् deduce किया) जा सकता है, और इसको निम्न शब्दों में व्यक्त किया गया है

> वितरण के किसी एक रूप को दिया हुआ मानकर, एक सामाजिक अनुकूलतम वह स्थिति है जिससे हटकर उत्पादन तथा विनिमय में कोई भी पुनर्संगठन किसी एक व्यक्ति को, बिना दूसरों को हानि पहुँचाये, अच्छी स्थिति में नहीं ला सकता है।[12]

तटस्थता वक्र तकनीक के शब्दों में अनुकूलतम कल्याण की स्थिति वह है जहाँ से किसी भी व्यक्ति को एक ऊंची तटस्थता वक्र रेखा पर ले जाना सम्भव नहीं है जब तक कि किसी दूसरे व्यक्ति को एक नीची तटस्थता वक्र रेखा पर न पहुँचाया जाये।

४ पेरिटियन कसौटी की आलोचना (Criticism of Paretian Criterion)

मुख्य आलोचनाएँ नीचे दी गयी हैं

(i) पेरिटियन कसौटी नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र नहीं है जैसा कि पेरिटो का दावा था। पेरिटो ने अन्त वैयक्तिक तुलनाओं को छोड़ दिया और इस प्रकार उन्होंने नैतिक निर्णयों से भी छुटकारा पाने का प्रयत्न किया। परन्तु पेरिटियन कसौटी भी एक विस्तृत (broad) नैतिक मान्यता पर आधारित है और यह नैतिक मान्यता है 'एक व्यक्ति को सदैव सबके लिए अच्छा करना चाहिए' (One should always do good to all), अथवा 'यह एक अच्छी बात है कि किसी एक व्यक्ति की स्थिति में सुधार हो बिना किसी दूसरे को हानि पहुंचाये' (It is a good thing to make anyone better off without harming anyone else)। इस प्रकार पेरिटियन कसौटी भी नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र नहीं है। [अब अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री (जैसे—वर्गसन, सेम्युलसन, इत्यादि) अर्थपूर्ण (meaningful) कल्याणवादी अर्थशास्त्र के लिए नैतिक निर्णयों को शामिल करना आवश्यक समझते हैं।]

(ii) पेरिटो की यह मान्यता—कि एक व्यक्ति का कल्याण दूसरे व्यक्तियों के कल्याण से स्वतन्त्र (independent) होता है—उचित नहीं है। वास्तव में कल्याण या सन्तुष्टि एक सापेक्षिक (relative) शब्द है, एक व्यक्ति का कल्याण इस बात से प्रभावित होता है कि उसके पड़ोसी की कितनी आय है तथा पड़ोसी के पास कितनी वस्तुएँ है, व्यक्ति केवल 'धनवान' (rich) ही नहीं बल्कि 'अधिक धनवान' (richer) होना चाहते हैं।

(iii) 'पेरिटियन अनुकूलतम' (Paretian optimum) का कोई एक अकेला (unique or single) बिन्दु नहीं होता, बल्कि पेरिटियन अनुकूलतम' के अनेक बिन्दु हो सकते है और प्रत्येक बिन्दु कल्याण के एक भिन्न स्तर को बताता है। इस बात का चुनाव करना कठिन है कि कौनसा 'अनुकूलतम बिन्दु' सबसे अच्छा है, अर्थात् 'अनुकूलतम बिन्दुओं में से अनुकूलतम' (*Optimum Optimorum*, that is, the best of the best) को मालूम करना सम्भव नहीं है।

---

[11] A change may be considered as desirable or improvement in terms of economic welfare only if the change makes at least one person better off without harming anyone else

[12] Given some form of distribution a social optimum is that position from which no reorganization of *production* and exchange can make one person better off without harming others

(iv) पेरिटियन कसौटी प्रयोग की दृष्टि से बहुत अधिक सीमित (restricted) है, अर्थात अनेक नीति-सुझावो का इस कसौटी के आधार पर मूल्याकन नही किया जा सकता है। यह 'अस्पष्ट स्थितियो या मिश्रित स्थितियो' (ambiguous situations or mixed situations) का अध्ययन नही कर सकता है जहाँ पर कि कुछ व्यक्तियो की हालत मे सुधार होता है और कुछ की हालत मे गिरावट, यह केवल 'स्पष्ट स्थितियो (unambiguous situations) का ही अध्ययन कर सकता है जहाँ पर कि कुछ व्यक्तियो की हालत मे सुधार होता है बिना किसी भी अन्य व्यक्ति की हालत मे गिरावट हुए।

पेरिटियन कसौटी के बहुत सीमित प्रयोग को हम एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण द्वारा और स्पष्ट करते हैं। एक एकाधिकारी स्थिति को समाप्त करना अनेक व्यक्तियो के लिए लाभदायक होगा परन्तु एकाधिकार के मालिक या मालिको के लिए हानिकर होगा, अत एक एकाधिकार के सम्बन्ध मे नीति-कदम (policy measure) का पेरिटियन कसौटी के आधार पर मूल्याकन नहीं किया जा सकता है।

नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(NEW WELFARE ECONOMICS)
अथवा
क्षतिपूर्ति सिद्धान्त
(THE COMPENSATION PRINCIPLE)

१ प्राक्कथन (Introduction)

पेरिटो की कल्याण कसौटी प्रयाग म अत्यन्त सीमित है, यह केवल स्पष्ट स्थितियो (unambiguous cases) म लागू होती है, अर्थात् ऐसी स्थितियों का मूल्याकन करती है जिनमे कुछ व्यक्तियो की हालत म सुधार होता है बिना किसी भी अन्य व्यक्ति को हानि पहुँचाये, पेरिटो की कल्याण कसौटी मिश्रित स्थितियो या अस्पष्ट स्थितियो (ambiguous cases) मे लागू नहीं होती, अर्थात् एसी स्थितियो म लागू नही होती जिनम कुछ व्यक्तियो की हालत मे सुधार होता है और कुछ की हालत मे गिरावट या हानि।

पेरिटियन कसौटी के अत्यन्त सीमित प्रयोग के कारण कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण (reconstruction) के प्रयत्न किये गये। दो विचारधाराओ (schools) का जन्म हुआ (i) हिक्स, कालडोर तथा साइटोवोस्की न 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (compensation principle) प्रस्तुत किया, इसे 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' भी कहा जाता है। (ii) बर्गसन, सेम्युलसन, इत्यादि ने 'सामाजिक कल्याण फलन' (social welfare function) प्रस्तुत किया। यहाँ पर हम 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' की व्याख्या करेंगे।

कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की ने पेरिटो के 'क्रमवाचक उपयोगिता के विचार' तथा 'अन्त वैयक्तिक तुलनाओ की असम्भवता' को स्वीकार किया और तब पेरिटियन कसौटी को मिश्रित स्थितियो म अर्थात् उन स्थितियो म लागू करने का प्रयत्न किया जिनमे कुछ व्यक्तियो की हालत मे सुधार होता है तथा कुछ व्यक्तियों की हालत मे गिरावट। इस दृष्टि से कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की द्वारा निर्मित कल्याणवादी अर्थशास्त्र को 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' कहा जाता है। परन्तु नये कल्याणवादी अर्थशास्त्रियो ने बहुत कम नयी बात बतायी अथवा उन्होंने कोई ऐसी नयी बात नही बतायी जो कि वास्तव मे नयी हो क्योकि उन्होंने पेरिटो की सामान्य सरल मान्यताओ को स्वीकार किया।

२. नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र की मान्यताएँ (Assumptions of New Welfare Economics)
मुख्य मान्यताएँ अग्रलिखित है :

(i) प्रत्येक व्यक्ति की सन्तुष्टि दूसरे व्यक्तियों की सन्तुष्टि से स्वतन्त्र (independent) समझी जाती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण का सर्वोत्तम निर्णायक (best judge) होता है।

(ii) प्रत्येक व्यक्ति की रुचियाँ (tastes) को स्थिर (constant) मान लिया जाता है।

(iii) उत्पादन तथा उपभोग में कोई बाहरी प्रभाव (external effects) नहीं होते हैं।

(iv) यह 'उपयोगिता के क्रमवाचक विचार' तथा 'उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक *तुलनाओं की असम्भवता*' को मानता है।

(v) यद्यपि कल्याण वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा तथा वितरण के स्वभाव पर निर्भर करता है, परन्तु इन अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि 'उत्पादन और विनिमय की समस्याओं' को 'वितरण की समस्याओं' से अलग किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इन अर्थशास्त्रियों की कल्याण कसौटी उत्पादन की कुशलता (efficiency) की वस्तुगत (objective) बात पर आधारित है और यह सामाजिक कल्याण में उन परिवर्तनों का अध्ययन करता है जो कि उत्पादन के स्तर में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होते हैं, यह वितरण की समस्या या वितरण सम्बन्धी न्याय (distributive justice) की बात को छोड़ देता है।

३. हिक्स-कालडोर का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त (Hicks-Kaldor Compensation Principle)

हिक्स, कालडोर तथा साईटोवोस्की ने 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' को प्रस्तुत किया और सोचा कि उन्होंने आर्थिक कुशलता के एक ऐसे जाँच सिद्धान्त (test) को खोज लिया है जिसके आधार पर नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र होकर आर्थिक नीतियों तथा नुस्खों की वाछनीयता (desirability) का एक वैज्ञानिक मूल्यांकन किया जा सकता है। परन्तु उनका यह दावा सही सिद्ध नहीं हुआ जैसा कि उनके सिद्धान्त की कमियों के प्रकाश में आने से पता लगा। ...या गट।

कल्याण के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की दो भागों में विवेचन से सम्पत्ति

(i) कालडोर-हिक्स की कसौटी (Kaldor-Hicks C... के लिकहा जाता

(ii) साइटोवोस्की की दोहरी कसौटी (Scitovos' नहीं है। ...n)

पहले हम कालडोर-हिक्स की कसौटी (Kal... निर्णयों से। करने के ... को लेते हैं। कालडोर की कसौटी को निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सक... पर्यावरण

> यदि एक नीति-परिवर्तन (policy change) समाज को स्थिति ... 'स्थिति B में ले जाता है, तब स्थिति B उस हालत में पसन्द की जायेगी स्थिति A की तुलना में और अर्थशास्त्री नीति के सम्बन्ध में नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र होकर सिफारिश या सुझाव दे सकेंगे, यदि लाभ-प्राप्तकर्ता (gainers) इस योग्य हैं कि वे हानि-प्राप्तकर्ताओं (losers) की क्षतिपूर्ति (compensation) कर सकें और फिर भी स्थिति B में पहले से अच्छी हालत में रह सकें।[17]

हिक्स ने कालडोर के दृष्टिकोण को स्वीकार किया और उसको मान्यता दी। इस प्रकार हिक्स-कालडोर के अनुसार एक नीति वाछनीय मान ली जायेगी यदि लाभ प्राप्तकर्ता 'क्षतिपूर्ति' या 'अधिक क्षतिपूर्ति' (over compensation) कर सकें या 'घूँस' (bribe) दे सकें हानि-प्राप्तकर्ताओं को, ताकि हानि प्राप्तकर्ता उस नीति को स्वीकार कर लें। उदाहरणार्थ, एक नीति से यदि लाभ-प्राप्तकर्ता २०० रु० के बराबर लाभ प्राप्त करने की आशा करते हैं तथा हानि प्राप्तकर्ता १०० रु०

---

[17] If a policy change moves the society from state A to state B, *then the state B would be* preferred to state A and the economist can make a value-free recommendation of the policy, provided the gainers were 'able' to compensate the losers and *still be better off* themselves in state B

के बराबर हानि प्राप्त करने की आशा करते हैं, तो १०० रु० से कुछ अधिक की 'घूँस' (bribe) हानि-प्राप्तकर्ताओं की 'क्षतिपूर्ति' या 'अधिक क्षतिपूर्ति' कर सकेंगी और फिर भी लाभ-प्राप्तकर्ता अच्छी स्थिति मे (better off) रह सकेंगे।

एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान म रखने की है। एक स्थिति की दूसरी स्थिति की तुलना में श्रेष्ठता (superiority) को जानने के लिए कालडोर-हिक्स कसौटी यह नहीं कहती कि क्षतिपूर्ति भुगतान वास्तव मे दिये जाने चाहिए, यदि भुगतान वास्तव मे दिये जाते हैं तो ऐसा करने से आय के वितरण मे परिवर्तन उत्पन्न हो जायेगा और वितरण पक्ष विश्लेषण मे प्रवेश कर जायेगा जिसके कारण नीतियो के मूल्याकन के लिए अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ (interpersonal comparisons) करनी पड़ेंगी। कल्याणवादी अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र रखने के लिए इन अर्थशास्त्रियो ने बताया कि क्षतिपूर्ति भुगतान वास्तव मे दिया जाता है या नही, यह बात एक नैतिक या राजनीतिक निर्णय (ethical or political decision) है जो कि सरकार या राजनीतिज्ञों द्वारा लिया जाना चाहिए। कालडोर हिक्स कसौटी के अनुसार एक नीति-कदम (policy measure) वाञ्छनीय है, इसको जानने के लिए यह पर्याप्त है कि लाभ प्राप्तकर्ता क्षतिपूर्ति 'कर सकते' हैं हानि-प्राप्तकर्ताओ की, अर्थात् जोर कल्याण की 'सम्भावित वृद्धि' (*potential* increase in welfare) पर है। दूसरे शब्दों मे, लाभ-प्राप्तकर्ताओं की हानि-प्राप्तकर्ताओ को पर्याप्त मात्रा मे क्षतिपूर्ति कर सकने की सम्भावना एक नीति की 'सम्भावित श्रेष्ठता' (potential superiority) को स्थापित करती है।

अब हम साइटोवोस्की की दोहरी कसौटी (*Scitovosky's Double Criterion*) को लेते हैं। प्रो० साइटवोस्की ने कालडोर-हिक्स कसौटी पर सुधार किया। प्रो० साइटोवोस्की ने बताया कि कालडोर हिक्स की कसौटी विपरीत स्थिति या विरोधाभास (contradiction or paradox) को जन्म देती है। साइटोवोस्की ने बताया कि कालडोर हिक्स की कसौटी के आधार पर यदि एक परिवर्तन वाञ्छनीय है और क्षतिपूर्ति का वास्तव मे भुगतान नही दिया जाता है, तो परिवर्तन के बाद आय का एक ऐसा पुनर्वितरण (redistribution) हो सकता है कि पुरानी स्थिति को वापस चलन, कालडोर-हिक्स की कसौ[illegible] के आधार पर ही, वाञ्छनीय हो सकता है। कालडोर-हिक्स की कसौटी मे इस विपरीत [illegible] (contradiction) को 'साइटोवोस्की का विरोधाभास' (*Scitovosky's Paradox*) [illegible] हैं।

अत इस विरोधाभ[illegible] पन्न न होने देने तथा किसी नीति की वाञ्छनीयता (desirability) का मूल्याकन [illegible] सीमितए साइटोवोस्की ने एक कड़ी जाँच (rigorous test) बतायी जिसके दो भाग हैं, [illegible] साइटोवोस्की ने अपनी दोहरी कसौटी (*double criterion*) बतायी जो कि नीचे दी गयी है

(i) कालडोर हिक्स की कसौटी का इस बात की जाँच करने के लिए प्रयोग कीजिए कि प्रारम्भिक स्थिति से नयी स्थिति को चलन (movement) एक सुधार है या नही। [दूसरे शब्दो मे, लाभ प्राप्तकर्ता इस योग्य (able) होने चाहिए कि वे हानि-प्राप्तकर्ताओ की क्षतिपूर्ति कर सकें या हानि-प्राप्तकर्ताओ को 'घूँस' (bribe) दे सकें ताकि वे परिवर्तन को स्वीकार कर लें।]

(ii) कालडोर-हिक्स की कसौटी को दुबारा फिर इस बात की जाँच करने के लिए प्रयोग कीजिए कि नयी स्थिति से पुरानी स्थिति को वापस चलन एक सुधार है या नही। [दूसरे शब्दो मे, हानि-प्राप्तकर्ता इस योग्य नहीं (incapable) होने चाहिए कि वे लाभ प्राप्तकर्ताओ को 'घूँस' देकर इस बात के लिए राजी कर सकें कि लाभ-प्राप्तकर्ता प्रस्तावित (proposed) परिवर्तन को स्वीकार न करें।]

इस प्रकार से, साइटोवोस्की के अनुसार, यदि कोई परिवर्तन या चलन इस दोहरी कसौटी पर सही उतरता है, तब और केवल तब, वह परिवर्तन या चलन एक सुधार होगा।

७. कालडोर-हिक्स-साइटोवोस्की की कल्याण कसौटी (अर्थात् क्षतिपूर्ति सिद्धान्त) की आलोचना (Criticism of Kaldor-Hicks-Scitovosky Criterion, that is, Compensation Principle)

मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं

(i) कालडोर हिक्स कसौटी उत्पादन तथा वितरण को अलग करने का प्रयत्न करती है और वैकल्पिक नीतियों का मूल्यांकन केवल उत्पादन या उत्पादन-कुशलता के आधार पर करती है जो कि उचित नहीं है। दूसरे शब्दों म, यह कसौटी उत्पादन के स्तर म परिवर्तनों के परिणामस्वरूप कल्याण मे सम्भावित परिवर्तनों को मापती है और समाज मे किन्ही भी दो स्थितियों मे कुल उत्पादन की तुलना करती है। वास्तविक जगत म व्यक्तियों की रुचियो तथा पसन्दो म अन्तर होता है और इनका कल्याण उत्पादन तथा वितरण दोनो पर निर्भर करता है। अत

"हम यह विश्वास नहीं करते कि धन, कल्याण, कुशलता या वास्तविक सामाजिक आय मे वृद्धि की एक ऐसी परिभाषा, जो कि धन के वितरण को छोड देती है, स्वीकार की जा सकती है।" कुल उत्पादन का, बिना वितरण के, कोई अर्थ नहीं है।[5]

(ii) कालडोर-हिक्स कसौटी की कोई सार्वभौमिक सत्यता (universal validity) नहीं है। कालडोर के अनुसार अर्थशास्त्रियों को अपने सुझावों को केवल उत्पादन या आर्थिक कुशलता पर ही आधारित करना चाहिए क्योंकि वे वितरण की समस्याओं के लिए दूसरो, अर्थात् राजनीतिज्ञो तथा सरकार, पर निर्भर कर सकते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति समाजवादी अर्थव्यवस्था म ही सम्भव है जहाँ पर सभी प्रकार के आर्थिक मामलो का नियमन व नियन्त्रण सरकार द्वारा किया जाता है। परन्तु एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे, एक ओर उत्पादन या कुशलता पर और दूसरी ओर आय वितरण पर किसी आर्थिक नीति के प्रभावो को अलग नही किया जा सकता है क्योंकि ऐसी अर्थव्यवस्था मे क्षतिपूर्ति भुगतान राजनीतिक दृष्टि से सम्भव नही है। इस प्रकार कालडोर की कसौटी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओ के लिए लागू नही होती। दूसरे शब्दो म, इस कसौटी की सार्वभौमिक सत्यता नही है।

(iii) कालडोर-हिक्स साइटोवोस्की की कसौटी नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र (independent) होने का दावा करती है परन्तु ऐसा दावा गलत है क्योंकि इसके अन्तर्गत नैतिक निर्णय छिपे हुए हैं। इस कसौटी अथवा क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के अनुसार वे परिवर्तन वाछनीय हैं जो कि लाभ प्राप्तकर्ताओ को इस योग्य बनाते है कि वे हानि प्राप्त-कर्ताओ की क्षतिपूर्ति कर सकें, यह बात स्वय मे एक नैतिक निर्णय है और इसका अभिप्राय है कि इस तरह के परिवर्तन अच्छे परिवर्तन होते है। [दूसरे शब्दो मे, "सम्भावित द्राव्यिक क्षतिपूर्ति वाली कसौटी का प्रयोग करके ये अर्थशास्त्री छिपे रूप म द्राव्यिक आधार पर एक अन्त वैयक्तिक तुलना शामिल कर लेते हैं।"[6]]

वास्तव मे बिना नैतिक निर्णयो के अस्तित्व के कल्याणवादी अर्थशास्त्र का कोई अर्थ नही होगा।

(iv) क्षतिपूर्ति सिद्धान्त इस छिपी हुई मान्यता पर आधारित है कि सभी व्यक्तियो (धनी व निर्धन) के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान होती है, परन्तु यह उचित नहीं है।

[5] "We do not believe that any definition of increase of wealth, welfare efficiency, or real social income which excludes income distribution is *acceptable*" *Total output* has no meaning without distribution

[6] "By using a criterion involving potential money compensation they set up a concealed interpersonal comparison on a money basis"

एक परिवर्तन समाज के लिए केवल इसलिए वांछनीय है कि वह कुछ लाभ-प्राप्तकर्ताओं को इस योग्य बना देता है कि वे हानि प्राप्तकर्ताओं की क्षतिपूर्ति कर सकें, *इस बात के पीछे जो नैतिक निर्णय छिपा हुआ है वह सबको माननीय* (acceptable) नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक परिवर्तन व्यक्ति A के लिए ३०० रु० का लाभ उत्पन्न करता है और व्यक्ति B के लिए १०० रु० का *नुकसान उत्पन्न करता है तो हम इस निष्कर्ष पर एकदम नहीं पहुँच सकते कि समाज* के वास्तविक कल्याण (net welfare) में वृद्धि हो जायेगी। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हानि प्राप्तकर्ता तथा लाभ-प्राप्तकर्ता कौन हैं। यदि B एक निर्धन व्यक्ति है तो उसके लिए १०० रु० की हानि बहुत होगी क्योंकि निर्धन व्यक्ति के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बहुत ऊँची होती है, और यदि व्यक्ति A एक धनी व्यक्ति है तो उसके लिए ३०० रु० का लाभ बहुत मामूली होगा या कोई महत्त्व नहीं रखेगा क्योंकि धनी व्यक्तियों के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बहुत कम या नीची होती है। अतः ऐसी परिस्थिति में इस परिवर्तन को कालडोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर वांछनीय नहीं कहा जा सकता है।

(v) कालडोर हिक्स कसौटी की एक बड़ी कमजोरी है कि यह क्षतिपूर्ति के वास्तविक भुगतान (actual payment) को नहीं कहता है। ऊपर हम देख चुके हैं कि *'सम्भावित क्षतिपूर्ति'* (potential compensation) की दशा आवश्यक रूप से सामाजिक कल्याण में वृद्धि को नहीं बताती है। यदि वास्तविक भुगतान दिये जाते हैं तो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, जैसे—(अ) व्यवहार में यह निश्चित करना बहुत *कठिन है कि किन लोगों को हानि हुई है और उनको कितना भुगतान दिया जाये।* (ब) वास्तव में भुगतान देने से धन के वितरण में परिवर्तन होगा और ऐसी स्थिति में उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ करनी पड़ेंगी जिनकी यह कसौटी उपेक्षा करती है। *(स) वास्तविक भुगतान में प्रशासन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ आ* सकती हैं।

(vi) क्षतिपूर्ति सिद्धान्त 'बाहरी प्रभावों' (external effects) की उपेक्षा (ignore) करता है। यह सिद्धान्त यह मान लेता है कि एक व्यक्ति का कल्याण उसकी अपनी आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर करता है और दूसरे व्यक्तियों की आर्थिक स्थितियों से अप्रभावित या स्वतन्त्र (independent) रहता है। परन्तु ऐसा मान लेना उचित नहीं है। एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि दूसरे व्यक्तियों के कल्याण पर बुरे (adverse) 'बाहरी प्रभाव' डाल सकता है जबकि इन व्यक्तियों की आर्थिक स्थितियों में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ हो।

(vii) साइटोवोस्की की दुहरी कसौटी भी पर्याप्त नहीं है। इसका प्रयोग केवल उस दशा में विरोधाभास (contradiction) को दूर (avoid) कर सकता है जबकि केवल दो स्थितियों के बीच तुलना की जाती है, परन्तु जब दो से अधिक स्थितियों में से किसी एक का मूल्यांकन व चुनाव करना पड़ता है तो इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

५.[1] निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि 'क्षतिपूर्ति सिद्धांत' या 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' एक ऐसी कल्याण कसौटी नहीं दे सका जो कि सार्वभौमिक रूप से सत्य (universally valid) हो, तथा इसके निर्माता नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र कल्याण कसौटी (a value-free welfare criterion) देने में असफल रहे।

सामाजिक कल्याण फलन
(THE SOCIAL WELFARE FUNCTION)

१. प्राक्कथन (Introduction)

'नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र' अथवा 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' के निर्माताओं (अर्थात्, कालडार, हिक्स तथा साइटोवोस्की) ने सम्भावित क्षतिपूर्ति (potential compensation) के शब्दों में एक कल्याण कसौटी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जो कि नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र (free) हो परन्तु वे असफल रहे।

अतः बर्गसन, सेम्युलसन तथा अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण (reconstruct) करने के प्रयत्न किए गए। इन अर्थशास्त्रियों द्वारा जो कल्याण कसौटी प्रस्तुत की गयी उसे 'सामाजिक कल्याण फलन' (*Social Welfare Function*) कहा जाता है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र आवश्यक रूप से एक आदर्शात्मक अध्ययन (normative study) है और केवल कुछ नैतिक (*ethical*) *आदर्शों या मान्यताओं के सन्दर्भ में* ही अर्थशास्त्री अर्थपूर्ण तथा वस्तुगत कल्याण कथनों या दशाओं (meaningful and objective welfare propositions) को प्रस्तुत कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार नैतिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से (बाहर से) शामिल (introduce) कर लेना चाहिए तभी कल्याणवादी अर्थशास्त्र अर्थपूर्ण नीति-नुस्खे (meaningful policy prescriptions) या कल्याण दशाएँ (welfare propositions) प्रस्तुत कर सकता है और साथ ही साथ एक 'वैज्ञानिक आदर्शात्मक अध्ययन' (scientific normative study) बना रह सकता है।

२. मान्यताएँ (Assumptions)

सामाजिक कल्याण फलन निम्न मुख्य मान्यताओं पर आधारित है

(i) यह उपयोगिता के क्रमवाचक (ordinal) विचार को मानता है। [दूसरे शब्दों में, यह 'व्यक्ति के कल्याण को प्रभावित करने वाले तत्त्वों के संयोगों के क्रमवाचक व्यवस्था' (Ordinal ranking of combinations of factors which affect individual welfare) पर आधारित है।]

(ii) यह मान लिया जाता है कि सामाजिक कल्याण व्यक्तियों के कल्याण पर निर्भर करता है और व्यक्ति का कल्याण निर्भर करता है न केवल प्रत्येक व्यक्ति की आय और धन पर बल्कि समाज के अन्य सदस्यों के कल्याण या धन के वितरण पर भी।

(iii) यह मान लेता है कि नैतिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से शामिल कर लेना चाहिए तथा यह उपयोगिता के अन्त वैयक्तिक तुलनाओं की आज्ञा देता है।

(iv) यह मान लेता है कि बाहरी बचतों तथा अबचतों (external economies and diseconomies) के प्रभाव मौजूद होते हैं।

३. सामाजिक कल्याण फलन की परिभाषा तथा विशेषताएँ (Definition and Characteristics of the Social Welfare Function)

सामाजिक कल्याण फलन उन सब तत्त्वों या चरों (factors or variables) **को बताता है जिन पर कि समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है।**

समाज में व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है समाज के प्रत्येक सदस्य द्वारा वस्तुओं की मात्राओं के उपभोग पर तथा प्रत्येक सदस्य द्वारा की गयी सेवाओं पर, एक व्यक्ति का कल्याण केवल स्वयं के कल्याण पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि उसके दृष्टि में समाज के अन्य सदस्यों में कल्याण के वितरण पर भी निर्भर करता है। इस प्रकार से 'सामाजिक कल्याण फलन' उन सब तत्त्वों या चरों को बताता है जिन पर कि समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है।

यह समाज के कल्याण का एक 'क्रमवाचक सूचक' (ordinal indicator) है। यह स्पष्ट नैतिक निर्णयों के एक समूह (set) को प्रदान करता है जिसके आधार पर व्यक्तियों की उपयोगिताओं

एक परिवर्तन समाज के लिए केवल इसलिए वाञ्छनीय है कि वह कुछ लाभ-प्राप्तकर्ताओं को इस योग्य बना देता है कि वे हानि-प्राप्तकर्ताओं को क्षतिपूर्ति कर सकें, इस बात के पीछे जो नैतिक निर्णय छिपा हुआ है वह सबको मान्य (acceptable) नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक परिवर्तन व्यक्ति A के लिए ३०० रु० का लाभ उत्पन्न करता है और व्यक्ति B के लिए १०० रु० का नुकसान उत्पन्न करता है तो हम इस निष्कर्ष पर एकदम नहीं पहुंच सकते कि समाज के वास्तविक कल्याण (net welfare) में वृद्धि हो जायेगी। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हानि-प्राप्तकर्ता तथा लाभ-प्राप्तकर्ता कौन है। यदि B एक निर्धन व्यक्ति है तो उसके लिए १०० रु० की हानि बहुत होगी क्योंकि निर्धन व्यक्ति के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बहुत ऊँची होती है, और यदि व्यक्ति A एक धनी व्यक्ति है तो उसके लिए ३०० रु० का लाभ बहुत मामूली होगा या कोई महत्त्व नहीं रखेगा क्योंकि धनी व्यक्तियों के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बहुत कम या नीची होती है। अतः ऐसी परिस्थिति में इस परिवर्तन को काल्डोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर वाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता है।

(v) काल्डोर-हिक्स कसौटी की एक बड़ी कमजोरी है कि यह क्षतिपूर्ति के वास्तविक भुगतान (actual payment) को नहीं कहता है। ऊपर हम देख चुके हैं कि 'सम्भावित क्षतिपूर्ति' (potential compensation) की दशा आवश्यक रूप से सामाजिक कल्याण में वृद्धि को नहीं बताती है। यदि वास्तविक भुगतान किये जाते हैं तो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं; जैसे—(अ) व्यवहार में यह निश्चित करना बहुत कठिन है कि किन लोगों को हानि हुई है और उनको कितना भुगतान किया जाये। (ब) वास्तव में भुगतान देने से धन के वितरण में परिवर्तन होगा और ऐसी स्थिति में उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक तुलनाएँ करनी पड़ेंगी जिनकी यह कसौटी उपेक्षा करती है। (स) वास्तविक भुगतान में प्रशासन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ आ सकती हैं।

(vi) क्षतिपूर्ति सिद्धान्त 'बाहरी प्रभावों' (external effects) की उपेक्षा (ignore) करता है। यह सिद्धान्त यह मान लेता है कि एक व्यक्ति का कल्याण उसकी अपनी आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर करता है और दूसरे व्यक्तियों की आर्थिक स्थितियों से अप्रभावित या स्वतन्त्र (independent) रहता है। परन्तु ऐसा मान लेना उचित नहीं है। एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि दूसरे व्यक्तियों के कल्याण पर बुरे (adverse) 'बाहरी प्रभाव' डाल सकता है जबकि इन व्यक्तियों की आर्थिक स्थितियों में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ हो।

(vii) साइटोवस्की की दुहरी कसौटी भी पर्याप्त नहीं है। इसका प्रयोग केवल उस दशा में विरोधाभास (contradiction) को दूर (avoid) कर सकता है जबकि केवल दो स्थितियों के बीच तुलना की जाती है; परन्तु जब दो से अधिक स्थितियों में से किसी एक का मूल्यांकन व चुनाव करना पड़ता है तो इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

५. निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' या 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' एक ऐसी कल्याण कसौटी नहीं दे सका जो कि सार्वभौमिक रूप से सत्य (universally valid) हो, तथा इसके निर्माता नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र कल्याण कसौटी (a value-free welfare criterion) देने में असफल रहे।

सामाजिक कल्याण फलन
(THE SOCIAL WELFARE FUNCTION)

१. प्राक्कथन (Introduction)

'नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र' अथवा 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' के निर्माताओं (अर्थात् कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की) ने 'सम्भावित क्षतिपूर्ति' (potential compensation) के द्वारा एक कल्याण कसौटी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जो कि नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र (free) हो, परन्तु वे असफल रहे।

अतः बर्गसन, सेम्युलसन तथा अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण (reconstruct) करने के प्रयत्न किये गये। इन अर्थशास्त्रियों द्वारा जो कल्याण कसौटी प्रस्तुत की गयी उसे 'सामाजिक कल्याण फलन' (*Social Welfare Function*) कहा जाता है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र आवश्यक रूप से एक आदर्शात्मक अध्ययन (normative study) है और केवल कुछ नैतिक (ethical) आदर्शों या मान्यताओं के सन्दर्भ में ही अर्थशास्त्री अर्थपूर्ण तथा वस्तुगत कल्याण कथनों या दशाओं (meaningful and objective welfare propositions) को प्रस्तुत कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार नैतिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से (बाहर से) शामिल (introduce) कर लेना चाहिए तभी कल्याणवादी अर्थशास्त्र अर्थपूर्ण नीति नुस्खे (meaningful policy prescriptions) या कल्याण दशाएँ (welfare propositions) प्रस्तुत कर सकता है और साथ ही साथ एक 'वैज्ञानिक आदर्शात्मक अध्ययन' (scientific normative study) बना रह सकता है।

२. मान्यताएँ (Assumptions)

सामाजिक कल्याण फलन निम्न मुख्य मान्यताओं पर आधारित है :

(i) यह उपयोगिता के क्रमवाचक (ordinal) विचार को मानता है। [दूसरे शब्दों में, यह 'व्यक्ति के कल्याण को प्रभावित करने वाले तत्त्वों के संयोगों के क्रमवाचक व्यवस्था' (Ordinal ranking of combinations of factors which affect individual welfare) पर आधारित है।]

(ii) यह मान लिया जाता है कि सामाजिक कल्याण व्यक्तियों के कल्याण पर निर्भर करता है और व्यक्ति का कल्याण निर्भर करता है न केवल प्रत्येक व्यक्ति की आय और धन पर बल्कि समाज के अन्य सदस्यों के कल्याण या धन के वितरण पर भी।

(iii) यह मान लेता है कि नैतिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से शामिल कर लेना चाहिए तथा यह उपयोगिता के अन्तवैयक्तिक तुलनाओं की आज्ञा देता है।

(iv) यह मान लेता है कि बाहरी बचतों तथा अबचतों (external economies and diseconomies) के प्रभाव मौजूद होते हैं।

३. सामाजिक कल्याण फलन की परिभाषा तथा विशेषताएँ (Definition and Characteristics of the Social Welfare Function)

सामाजिक कल्याण फलन उन सब तत्त्वों या चरों (factors or variables) को बताता है जिन पर कि समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है।

समाज में व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है समाज के प्रत्येक सदस्य द्वारा वस्तुओं की मात्राओं के उपभोग पर तथा प्रत्येक सदस्य द्वारा की गयी सेवाओं पर, एक व्यक्ति का कल्याण केवल स्वयं के कल्याण पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि उसके दृष्टि में समाज के अन्य सदस्यों के कल्याण के वितरण पर भी निर्भर करता है। इस प्रकार से 'सामाजिक कल्याण फलन' उन सब तत्त्वों या चरों को बताता है जिन पर कि समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है।

यह समाज के कल्याण का एक 'क्रमवाचक सूचक' (ordinal indicator) है। यह स्पष्ट नैतिक निर्णयों के एक समूह (set) को प्रदान करता है जिसके आधार पर व्यक्तियों की उपयोगिताओं

(या कल्याणो) को जोडा जा सकता है ताकि सामाजिक कल्याण फलन प्राप्त किया जा सके। इस तरह सामाजिक कल्याण फलन एक प्रकार का 'सामूहिक उपयोगिता फलन' (collective utility function) है। इसको निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है

$$W = f(U_1, U_2, U_3, \ldots, U_n)$$

जबकि W सामाजिक कल्याण फलन है, $U_1, U_2, U_3, \ldots, U_n$ समाज मे 1 से लेकर n व्यक्तियो के उपयोगिता-स्तरो (levels of utilities) अर्थात् 'क्रमवाचक उपयोगिताओं' (ordinal utilities) को बताते हैं, और f फलन (function) के लिए प्रयोग किया जाने वाला चिह्न (symbol) है।

अब हम सक्षेप मे सामाजिक कल्याण फलन को निम्न प्रकार से दो भागो मे परिभाषित कर सकते हैं

१ 'सामाजिक कल्याण फलन प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन समझा जाता है और प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण निर्भर करता है न केवल अपने स्वय के कल्याण पर वल्कि उसकी दृष्टि मे समाज के सभी सदस्यो मे कल्याण के वितरण पर भी।'[10]

२ सामाजिक कल्याण फलन का रूप निर्भर करता है नैतिक निर्णयों पर (वितरण के सम्बन्ध मे नैतिक निर्णयों को शामिल करके) जो कि सामान्यतया अर्थशास्त्र के बाहर से दिये जाते हैं और जिनके आधार पर आर्थिक नीतियों की सामाजिक वाछनीयता का मूल्यांकन किया जाता है।[11]

अब हम सामाजिक कल्याण फलन की मुख्य विशेषताओं (*main characteristics*) के साराश को नीचे देते हैं

(i) सामाजिक कल्याण फलन स्पष्टतया नैतिक निर्णयो को शामिल करता है और उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक तुलनाओ को स्वीकार करता है। यह उपयोगिता के क्रमवाचक विचार (ordinal concept of utility) का प्रयोग करता है।

सामाजिक कल्याण फलन के निर्माण के लिए अर्थशास्त्रियो द्वारा नैतिक निर्णयो के किसी भी समूह (any set of value judgments) का प्रयोग किया जा सकता है, इसका अर्थ यह नही है कि यह नैतिक निर्णयो के एक अकेले (single), या एक अनूठे (unique) या एक विशिष्ट (a particular) समूह का प्रयोग करता है।

(ii) सामाजिक कल्याण फलन 'स्वभाव मे अत्यधिक सामान्य' (highly general in character) इस अर्थ मे है कि प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण वस्तुओ व सेवाओ के केवल अपने स्वय के उपभोग पर ही नही बल्कि अन्य व्यक्तियो के उपभोग पर भी निर्भर करता है, समाज के सदस्यो मे आय के वितरण के सम्बन्ध मे उसके अपने, दृष्टिकोण पर निर्भर करता है, और यह व्यक्तियो के कल्याण के अन्य सभी सम्भव निर्धारक-तत्त्वो (determinants) को शामिल करता है।[12]

---

[10] 'The social welfare function can be thought of as a function of each individual's welfare which in turn depends both on his personal well being and on his appraisal of welfare among all members of the community"

[11] The form of the social welfare function depends upon the value judgments (including judgments about distribution) generally given from outside economics on the basis of which the social desirability of economic policies are to be judged

[12] In the words of Bergson, the social welfare function 'is understood to depend on all the variables that might be considered as affecting welfare the amounts of each and every kind of goods consumed by and service performed by each and every household, the amount of each and every kind of capital investment undertaken, and so on"

४. सामाजिक कल्याण फलन की आलोचना (Criticism of Social Welfare Function)

प्रो बोमोल (Baumol) के शब्दों में, सामाजिक कल्याण फलन 'एक अत्यन्त उपयोगी सन्दर्भ का ढाँचा' (a highly useful frame of reference) प्रदान करता है, इसको एक 'महान सैद्धान्तिक तरीका' (a 'brilliant theoretical device') कहा गया है।

परन्तु सामाजिक कल्याण फलन में भी कुछ दोष या कमजोरियाँ बतायी जाती हैं, इनको मुख्यतया प्रो ऐरो (Prof. Arrow) ने अपनी पुस्तक *Social Choice and Individual Values* में बताया है। एक मुख्य आलोचना यह की जाती है कि व्यवहार में एक सामाजिक कल्याण फलन को बनाना बहुत कठिन है (मुख्यतया लोकतान्त्रिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत) और इसलिए इसका बहुत कम व्यावहारिक महत्व रह जाता है।

प्रश्न

१ कल्याणवादी अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए तथा वास्तविक अर्थशास्त्र से उसके अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
Define Welfare Economics and distinguish it from Positive Economics

अथवा

'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' के विचार को समझाइए। कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा वास्तविक अर्थशास्त्र के बीच अन्तर बताइए तथा दोनों की तुलना कीजिए।
Explain the concept of Welfare Economics Distinguish Welfare Economics from Positive Economics and compare the two

२ आप कल्याणवादी अर्थशास्त्र से क्या समझते हैं? कल्याणवादी अर्थशास्त्र में नैतिक निर्णयों के स्थान की विवेचना कीजिए।
What do you understand by Welfare Economics? Discuss the place of value Judgements in Welfare Economics

परिशिष्ट (Appendix) पर प्रश्न

१ पुरानी कल्याणवादी अर्थशास्त्र का एक आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
Give a critical estimate of Old Welfare Economics

२. नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र पर आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।
Discuss critically New Welfare Economics.

अथवा

'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त अपने उद्देश्य में असफल रहा है।' विवेचना कीजिए।
"The Compensation Principle has failed in its objectives" Discuss

३. 'सामाजिक कल्याण फलन' की एक आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Explain critically the Social Welfare Function

उपभोक्ता माँग का सिद्धान्त
(Theory of Consumer Demand)

12

उपभोग का अर्थ व महत्व तथा उपभोक्ता की प्रभुता
[MEANING AND IMPORTANCE OF CONSUMPTION AND CONSUMER'S SOVEREIGNTY]

उपभोग का अर्थ
(MEANING OF CONSUMPTION)

मानवीय आवश्यकताओ की प्रत्यक्ष सन्तुष्टि के लिए वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रयोग उपभोग कहलाता है। अत उपभोग अर्थशास्त्र का एक विभाग है जिसके अन्तर्गत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से सम्बन्धित नियमो व सिद्धान्तो का अध्ययन किया जाता है।

उपभोग के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझने के लिए निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए :

(i) उपभोग की क्रिया के अन्तर्गत वस्तु नष्ट नहीं होती बल्कि उपयोगिता नष्ट होती है (The process of consumption involves destruction of utility and not destruction of matter)। यह एक सर्वमान्य वैज्ञानिक सत्य है कि पदार्थ को न नष्ट किया जा सकता है और न बनाया जा सकता है। अत किसी वस्तु के प्रयोग या उपभोग से वस्तु या पदार्थ नष्ट नही होता, उसका केवल रूप बदल जाता है, परन्तु उसके प्रयोग से उपयोगिता नष्ट हो जाती है। कुछ वस्तुओ के प्रयोग म उपयोगिता एक बार ही नष्ट हो जाती है, जैसे—केले, अमरूद, रोटी, इत्यादि का प्रयोग। परन्तु कुछ वस्तुओ जैसे—मेज, कुर्सी, मकान, रेडियो, कोट, इत्यादि के प्रयोग से उपयोगिता धीरे धीरे नष्ट होती है। परन्तु ध्यान रहे कि केवल उपयोगिता का नष्ट होना ही उपभोग नहीं कहलाता, उपभोग के लिए आवश्यकता की सन्तुष्टि होनी जरूरी है।

उदाहरणार्थ, स्याही का फैल जाना, मकान मे आग लग जाना, अण्डे का सड जाना, इत्यादि, इन सबमे उपयोगिता नष्ट हो जाती है। परन्तु इसे उपभोग नही कहा जायेगा क्योंकि इनसे किसी मनुष्य की आवश्यकता की सन्तुष्टि नही हुई। आवश्यकता की सन्तुष्टि की प्रक्रिया मे जब उपयोगिता नष्ट होती है तभी उसे उपभोग कहते हैं।

(ii) उपभोग के लिए आवश्यकता का प्रत्यक्ष सन्तुष्ट होना या वस्तु का अन्तिम प्रयोग (final use) होना जरूरी है। उदाहरणार्थ, यदि कोयले का प्रयोग- उत्पादक मशीनो को चलाने के लिए किया जाता है तो ऐसे प्रयोग को उपभोग नही कहेंगे। परन्तु कोयले का प्रयोग अन्तिम उपभोक्ता (final consumer) प्रत्यक्ष रूप से जाडों मे तापने के लिए करता है तो यह उपभोग की क्रिया हुई।

अत उपभोग की परिभाषा मे उपर्युक्त बातों का होना आवश्यक है। एक ऐसी परिभाषा प्रो० मयर्स (A L Meyers) ने इन शब्दों म दी है :

" मनुष्य की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए वस्तुओं अथवा सेवाओं का प्रत्यक्ष या अन्तिम प्रयोग ही उपभोग कहलाता है।"[1]

उपभोग का महत्त्व
(IMPORTANCE OF CONSUMPTION)

प्राचीन अर्थशास्त्रियों, ज० बी० से (J B Say), रिकार्डो, मिल, इत्यादि ने उपभोग पर कोई ध्यान नहीं दिया था। परन्तु आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों (Austrian School of Economists), जेम—वीजर (Weiser), वालरस (Walras) इत्यादि न उपभोग के महत्त्व को समझा और अथशास्त्र का अध्ययन उपभोग स प्रारम्भ किया। मार्शल तथा उनके बाद सभी आधुनिक अथशास्त्रियों ने उपभोग के महत्त्व पर जोर दिया।

वास्तव म उपभोग आर्थिक क्रियाओं का मूल है। बिना उपभोग की इच्छा के उत्पादन, विनिमय तथा वितरण स सम्बन्धित कोई क्रियाएँ नहीं हो सकती। उपभोग का महत्त्व निम्न विवरण स स्पष्ट होता है :

(i) उपभोग मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का आदि (beginning) और अन्त (end) है। मनुष्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही आर्थिक प्रयत्न करता है, इस प्रकार उपभोग आर्थिक क्रियाओं को जन्म देता है। मनुष्य की सभी आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना अर्थात् उपभोग है, इस प्रकार उपभोग आर्थिक क्रियाओं का अन्त है। इस बात को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :
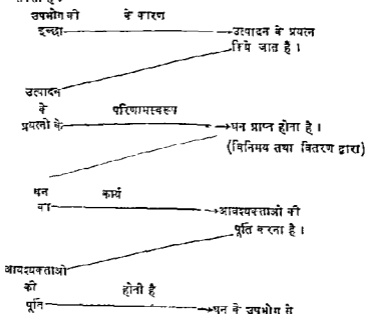
(ii) उपभोग की मात्रा तथा स्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन को निर्धारित करता है और इस प्रकार राष्ट्रीय आर्थिक कल्याण तथा प्रगति को बताता है। जिस देश में, अधिक वस्तुओं का उपभोग होता है तथा आरामदायक और विलासिता की वस्तुओं का भी पर्याप्त प्रयोग होता है तो यह कहा जा सकता है कि वह देश आर्थिक दृष्टि से उन्नत है।

[1] "Consumption is the direct and final use of goods or services in satisfying the wants of human beings."

(iii) विनिमय के पीछे भी उपभोग की क्रिया ही रहती है। एक व्यक्ति द्रव्य देकर किसी वस्तु का क्रय इसलिए करता है कि वह अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति कर सके।

(iv) वितरण के पीछे भी उपभोग ही प्रेरक शक्ति (motivating force) है। विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को यदि वितरण की क्रिया द्वारा पारितोषण (reward) प्राप्त न हो तो वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पायेंगे और उत्पादन बन्द कर देंगे।

(v) उपभोग ही राष्ट्र की आय तथा रोजगार की मात्रा को प्रभावित करता है। लोग जितना अधिक धन व्यय करेंगे और उपभोग करेंगे उतना ही अधिक उत्पादन होगा और रोजगार बढ़ेगा।

स्पष्ट है कि उपभोग अर्थशास्त्र की जड़ है, सभी आर्थिक प्रयत्न उपभोग के कारण ही किये जाते हैं।

उपभोक्ता की प्रभुता
(CONSUMER'S SOVEREIGNTY)

१. प्राक्कथन (Introduction)

सभी आर्थिक क्रियाओं का अन्तिम उद्देश्य वस्तुओं का उपभोग है ताकि आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इसलिए हम आर्थिक गतिविधि (economic process) में उपभोक्ता के स्थान या महत्त्व की उपेक्षा नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता वस्तुओं के खरीदने या न खरीदने की क्रिया द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं की किस्म तथा मात्रा निर्धारित करता है।

२. उपभोक्ता की प्रभुता का अर्थ (Meaning of Consumer's Sovereignty)

> पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं की रुचि तथा पसन्द उत्पादन की मात्रा तथा प्रकार को निर्धारित करते हैं। उत्पादक उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जो कि उपभोक्ताओं द्वारा पसन्द की जाती हैं, चाहे वे वस्तुएँ आवश्यक हों, या आरामदायक या विलासिता की हों, अच्छी हों या बुरी। इस स्थिति को 'उपभोक्ता की प्रभुता' कहा जाता है।

उत्पादक, उपभोक्ताओं की रुचि तथा पसन्द की उपेक्षा नहीं कर सकते, यदि वे ऐसा करते हैं तो उनकी वस्तुओं का विक्रय नहीं होगा और उन्हें हानि उठानी पड़ेगी। उत्पादक तथा साहसी, उपभोक्ता के नौकरों की भाँति होते हैं, उन्हें उपभोक्ता के पसन्द या रुचि रूपी आदेशों तथा संकेतों को मानना पड़ता है। अतः यह कहा जाता है कि उपभोक्ता सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सम्राट या शासक होता है।

३. स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की प्रभुता का महत्त्व (Significance of Consumer's Sovereignty in Free Enterprise Economy)

प्राचीन समय में, उपभोक्ता की शक्ति तथा सत्ता बहुत हद थी। वह अधिकांश वस्तुओं को प्रत्यक्ष आदेश (order) देकर प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ, वह जूता, कपड़ा, इत्यादि मोची तथा जुलाहे को आदेश देकर प्राप्त कर लेता था। यद्यपि आधुनिक काल में उत्पादक अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन भविष्य की माँग का अनुमान लगाकर करते हैं, परन्तु वे भविष्य की माँग का अनुमान भी उपभोक्ता की रुचि, पसन्द इत्यादि को ध्यान में रखकर ही लगाते हैं। यदि उत्पादकों के अनुमान ठीक निकलते हैं तो उन्हें अधिक लाभ होता है, यदि वे गलत सिद्ध होते हैं तो वे अपने उत्पादन की योजना को बदल लेते हैं ताकि वह उपभोक्ताओं की इच्छा तथा रुचि के अनुरूप हो सके। अतः पूँजीवादी व्यवस्था, जिसकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रतियोगिता है, के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था का नियन्त्रित करने वाली शक्ति उपभोक्ता की रुचि, क्रय-शक्ति तथा व्यय करने का ढंग है।

उपभोक्ता की तुलना प्रायः एक मतदाता (voter) से की जाती है। जिस प्रकार लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनता वोट देकर शासन को नियन्त्रित करती है उसी प्रकार से आर्थिक चुनाव (economic election) में उपभोक्ता अपने रुपयों के व्यय करने के ढंग से अर्थात् रुपयों-

रूपी वोटो (Rupee-votes) से, उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा तथा प्रकार पर नियन्त्रण रखता है। यदि आर्थिक वोट देने वाले (अर्थात् उपभोक्ता) अपने द्रव्य को आवश्यक, अच्छी तथा सुन्दर वस्तुओं के स्थान पर विलासिता की वस्तुओं, शराब या बनावटी वस्तुओं पर व्यय करते हैं तो उत्पादक ऐसी ही वस्तुओं का उत्पादन करेंगे। अतः उपभोक्ता का चुनाव (choice), चाहे वह समझदारी का हो या मूर्खतापूर्ण, समस्त औद्योगिक प्रणाली को नियन्त्रित करता है।

४. उपभोक्ता की प्रभुता की सीमाएँ (Limitations of Consumer's Sovereignty)

उपर्युक्त विवरण से यह अर्थ नहीं निकलना चाहिए कि उपभोक्ता एक निरंकुश सम्राट (absolute monarch) होता है। आधुनिक युग में परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं और उपभोक्ता की प्रभुता या सत्ता कई बातों से सीमित हो जाती है। उपभोक्ता निरंकुश सम्राट न होकर केवल वैधानिक सम्राट या सीमित सम्राट (Constitutional or Limited Monarch) रह जाता है। उपभोक्ता की प्रभुता की मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैं

(i) आय की मात्रा (Size of income)—एक उपभोक्ता की आय की मात्रा इस बात को निर्धारित करेगी कि वह किन वस्तुओं को और कितनी मात्राओं में खरीदे। यदि समाज में अधिकांश उपभोक्ता की आयें सीमित तथा कम हैं तो उपभोक्ता की सत्ता का प्रभाव वस्तुओं की उत्पादन की मात्रा तथा उनके प्रकार को निर्धारण करने में कम पड़ेगा।

(ii) आदतें तथा सामाजिक रीति-रिवाज (Habits and social customs)—प्रायः उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं (जैसे—खाने की वस्तुएँ, कपड़ा, मकान, सजाने की वस्तुएँ इत्यादि) के प्रयोग में आदतों तथा सामाजिक रीति रिवाजों से प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ताओं की विभिन्न वस्तुओं के बीच चुनाव करने की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। आदतें तथा सामाजिक रीति रिवाज उपभोक्ता की प्रभुता को बहुत सीमित कर देते हैं।

(iii) टेक्नीकल ज्ञान तथा वर्तमान में वस्तुओं की प्राप्यता (Technical knowledge and the availability of goods)—उपभोक्ता कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं की इच्छा कर सकते हैं परन्तु उनकी इच्छा के अनुसार, उन वस्तुओं का उत्पादन उत्पादकों द्वारा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उस प्रकार की वस्तुओं को बनाने के लिए विशेष प्रकार के टेक्नीकल ज्ञान की आवश्यकता हो सकती है जिसकी खोज वैज्ञानिकों द्वारा अभी तक न की जा सकी हो। उदाहरणार्थ, यदि हम शोर-रहित कार या ट्रेन में बैठना चाहें तो यह असम्भव है क्योंकि अभी तक इस प्रकार की कार या ट्रेन बनाने के लिए टेक्नीकल ज्ञान का विकास नहीं हो पाया है। अतः टेक्नीकल ज्ञान की स्थिति के अनुसार, उपभोक्ता की सत्ता सीमित हो जाती है और उसे बाजार में प्राप्य वस्तुओं का ही प्रयोग करना पड़ता है।

(iv) वातावरण तथा अत्यधिक उपभोग (Environment and conspicuous consumption)—धनी उपभोक्ता अपने धन को 'अत्यधिक उपभोग' (conspicuous consumption) पर व्यय करते हैं अर्थात् वे ऐसी वस्तुओं पर धन को व्यय करते हैं जिनके द्वारा वे धन का अधिकतम दिखावा कर सकें। समाज के धनी उपभोक्ता एक-दूसरे की देखा देखी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं और अपने अपने धन के दिखावे में होड़ लगाते हैं। चतुर उत्पादक (alert producers) धनी व्यक्तियों की इस 'दिखावे की इच्छा' का लाभ उठाते हैं और उनके द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं की कीमतें ऊँची कर देते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऊँची कीमतें धनी वर्ग में वस्तुओं की माँग बढ़ा देंगी। इस प्रकार उपभोक्ता समाज में प्रचलित परिस्थितियों तथा वातावरण से प्रभावित होकर बहुत-सी वस्तुओं का प्रयोग करने लगते हैं और इस कारण उपभोक्ता के चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं रह जाती, उसकी सत्ता सीमित हो जाती है।

(v) अज्ञानता या जानकारी की कमी (Ignorance or lack of knowledge)—बाजार में प्राप्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता को उचित ज्ञान या जानकारी नहीं होती, अतः उपभोक्ता के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बीच विवेकपूर्ण चुनाव (rational

choice) करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता वस्तु के गुण को आँकने में कीमत का सहारा लेता है।

> "जानकारी की कमी के कारण आर्थिक गतिविधि (economic process) एक प्रकार से उल्टी हो जाती है। वस्तु का गुण कीमत को नियन्त्रित करने के स्थान पर, वस्तु की कीमत उसके गुण को आँकने का आधार बन जाती है अर्थात् कीमत उपभोक्ता के मस्तिष्क में वस्तु की उपयोगिता को निर्धारित करती है।"[2]

(vi) एकाधिकार का प्रभाव (Effect of monopoly)—किसी वस्तु के उत्पादन में एक उत्पादक हो सकता है या प्रायः कुछ बड़े उत्पादक मिलकर एकाधिकारी की स्थिति बना लेते हैं। ऐसी स्थिति में वस्तु विशेष की अधिकांश पूर्ति एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती है और एकाधिकारी जिन वस्तुओं का उत्पादन करेगा तथा जिन कीमतों में उन्हें बेचना चाहेगा, बेच सकेगा। अतः एकाधिकारी उपभोक्ता के स्वतन्त्र चुनाव तथा उसकी सत्ता को सीमित कर देता है।

(vii) फैशन (Fashion)—फैशन या स्टाइल (style) उपभोक्ता के उपभोग को प्रभावित करते हैं। अतः उत्पादक वर्ग निरन्तर वस्तुओं का डिजायन, रूप, आकार, इत्यादि में परिवर्तन तथा नये फैशन को शामिल करते रहते हैं ताकि उनकी वस्तुओं की माँग बढ़े। इस प्रकार उत्पादक उपभोक्ताओं की सत्ता को सीमित कर देते हैं।

(viii) बिक्री की रीतियाँ (Marketing methods)—'बिक्री की रीतियों' के अन्तर्गत बिक्री को बढ़ाने तथा उपभोक्ताओं के चुनावों (choices) को प्रभावित करने वाली सभी रीतियाँ आ जाती हैं। इनमें से मुख्य रीतियों का वर्णन निम्न है—(अ) विज्ञापन तथा प्रचार: नयी वस्तुओं का विज्ञापन, या उत्पादक अपनी पुरानी वस्तुओं के नये प्रयोग तथा उनमें नये परिवर्तन के विज्ञापन (अखबार, सिनेमा, रेडियो, इत्यादि) के द्वारा उपभोक्ता के चुनाव को प्रभावित करते हैं। जिस उत्पादक का विज्ञापन अधिक प्रभावशाली होता है, उसकी वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। (ब) पैकिंग: वस्तुओं को अच्छे तथा सुन्दर रूपों में पैकिंग करके भी उत्पादक उपभोक्ताओं के चुनाव को प्रभावित करते हैं। (स) उधार तथा किस्तों की सुविधा: बहुत-से विक्रेता उपभोक्ताओं को उधार की सुविधा देकर अपनी वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने में सफल होते हैं। इसी प्रकार बहुत-से विक्रेता उपभोक्ताओं को वस्तुओं की कीमतों का भुगतान छोटी-छोटी किस्तों में देने की सुविधा देकर उपभोक्ताओं के चुनाव की स्वतन्त्रता को प्रभावित करते हैं।

(ix) प्रमापित वस्तुएँ (Standardised goods)—आज के युग में अधिकांश वस्तुओं का मशीनों की सहायता से बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है। उत्पादक उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत रुचि तथा पसन्द पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते बल्कि वे तो वस्तुओं का प्रमापीकरण (standardisation) करके उनका उत्पादन बड़ी मात्रा में करते हैं ताकि वस्तुएँ सस्ती पड़ें और उपभोक्ता उनको खरीदें।

> "इस प्रकार उपभोक्ता एकत्रित कर दिये जाते हैं और एक समूह के रूप में समझे जाते हैं, सम्राट की भाँति नहीं बल्कि भेड़ों के झुण्ड की भाँति।"[3]

(x) उपभोग पर सरकारी नियन्त्रण (Government control over consumption)—पूँजीवादी देशों में भी सरकार उपभोक्ताओं के उपभोग को विभिन्न प्रकार से नियन्त्रित कर सकती है। उदाहरणार्थ, वह कुछ दवाइयों की बिक्री को रोक सकती है, शराब जैसी नशीली वस्तुओं के उपभोग को बिलकुल बन्द कर सकती है या उस पर आंशिक रोक लगा सकती है, कुछ वस्तुओं, जैसे—तम्बाकू इत्यादि पर अधिक टैक्स लगा सकती है ताकि उनकी कीमतें बहुत ऊँची हो जायें और उपभोक्ता उनका कम प्रयोग करें। इसी भाँति सरकार जिन वस्तुओं का उत्पादन सामाजिक

---

[2] "The usual economic process is in a sense reversed when consumers lack knowledge. Instead of quality controlling price, price becomes the basis for judging quality, in other words, price determines utility in the mind of the purchaser."

[3] "The consumers are bulked together and treated *en mass*, not like a king but a herd of sheep."

तथा आर्थिक दृष्टि से अच्छा समझती है उनके उत्पादन को आर्थिक सहायता (subsidy) देकर प्रोत्साहित कर सकती है।

५ निष्कर्ष (Conclusion)

आधुनिक युग मे उपभोक्ता की प्रभुता या सत्ता कई कारणो से सीमित हो जाती है। उपभोक्ता एक सम्राट के समान नहीं रह जाता, उत्पादक तथा सरकार वस्तुओ के उत्पादन को कई प्रकार से प्रभावित करते हैं। वास्तव म, आज के युग म किसी देश के आर्थिक विकास के लिए उपभोक्ता, उत्पादक तथा सरकार तीनो का निकटतम सहयोग आवश्यक है।

प्रश्न

१ 'उपभोक्ता प्रभुता' की परिभाषा दीजिए। क्या किसी उपभोक्ता का व्यवहार वास्तविक रूप मे स्वतन्त्र हो सकता है ?

Define 'Consumer Sovereignty' Can the behaviour of consumer be really independent? *(Alld, B Com., 1972)*

अथवा

उपभोक्ता की प्रभुता से आप क्या समझते हैं ? क्या यह प्रभुता पूर्णतया निरपेक्ष होती है ?

What do you understand by Consumer's Sovereignty? Is this sovereignty absolute? *(Garwal, B Com, I, 1976)*

अथवा

'पूँजीवाद के अन्तर्गत उपभोक्ता एक सम्राट होता है।' इस कथन की सावधानीपूर्वक विवेचना कीजिए।

Under Capitalism the consumer is the ultimate king Examine this statement carefully

अथवा

"उपभोक्ता इतना निरकुश सम्राट नही होता जितना कि वह समझा जाता है। अधिक से अधिक वह वैधानिक सम्राट है जो राज्य करता है, शासन नहीं।' विवेचना कीजिए।

"The consumer is not so despotic a monarch as he is supposed to be At best he is a constitutional monarch who reigns but does not rule" Discuss

अथवा

आप उपभोक्ता की प्रभुता से क्या समझते हैं ? क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि आज के युग मे "उपभोक्ता एकत्रित कर दिये जाते है और एक समूह के रूप म समझे जाते हैं, सम्राट की भाँति नहीं बल्कि भेडो के झुण्ड की भाँति।"

What do you understand by Consumer s Sovereignty? Do you agree with the view that in modern times 'the consumers are bulked together and treated *en mass* not like a king but a herd of sheep"

[सकेत—उपर्युक्त सभी प्रश्नो का उत्तर एक ही होगा। सर्वप्रथम 'उपभोक्ता की प्रभुता' या 'उपभोक्ता के सम्राट' होने के अर्थ को बताइए, सक्षेप मे उपभोक्ता की प्रभुता के महत्व को भी बताइए। तत्पश्चात् उपभोक्ता की प्रभुता की सीमाओ की विवेचना कीजिए, और निष्कर्ष दीजिए कि आधुनिक युग मे उपभोक्ता की प्रभुता बहुत सीमित है।]

13 आवश्यकताए
[WANTS]

मनुष्य की आवश्यकताएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं और वह उनमे से अधिकतम आवश्यकताओ को पूरा करने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार आवश्यकताएँ ही आर्थिक क्रियाओ और ससार की वर्तमान आर्थिक प्रगति के पीछे प्रेरक शक्ति (motive force) हैं।

आवश्यकता का अर्थ
(MEANING OF WANT)

साधारण भाषा मे 'इच्छा' या 'चाह' (desire or need) तथा 'आवश्यकता' (want) को एक अर्थ मे ही प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र मे 'इच्छा' तथा 'आवश्यकता' मे अन्तर है और आवश्यकता का एक निश्चित अर्थ लिया जाता है।

अर्थशास्त्र मे 'प्रभावपूर्ण इच्छा' (effective desire) को आवश्यकता (want) कहते हैं। दूसरे शब्दो मे, आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा को कहते हैं जिसको पूरा करने के लिए मनुष्य आवश्यक प्रयत्न या त्याग करने को तैयार है। अत आवश्यकता के अन्तर्गत तीन बातें प्रमुख हैं (i) किसी वस्तु की इच्छा का होना, (ii) इच्छा को सन्तुष्ट करने के लिए सामर्थ्य या योग्यता (capacity) का होना अर्थात् पर्याप्त धन का होना, तथा (iii) धन को व्यय करने की तत्परता (willingness) होना। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति एक स्कूटर को प्राप्त करने की इच्छा करता है परन्तु यह इच्छा तभी आवश्यकता कहलायेगी जबकि स्कूटर को खरीदने के लिए उसके पास पर्याप्त धन है और जिसको वह व्यय करने के लिए तैयार है।

आवश्यकता तथा माँग मे अन्तर

'आवश्यकता' (want) तथा 'माँग' दोनो बहुत कुछ मिलते-जुलते शब्द हैं, परन्तु फिर भी इनमे अन्तर अवश्य है। दोनो ही 'प्रभावपूर्ण इच्छा' (effective desire) को बताते हैं अर्थात दोनों के लिए इच्छा का होना, उसको पूरा करने के लिए धन का होना, तथा धन को व्यय करने की तत्परता का होना, जरूरी है। इन दोनो मे मुख्य अन्तर इस प्रकार हैं (i) माँग का सम्बन्ध सदैव कीमत तथा समय से होता है जबकि आवश्यकता का इस प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता है। हम यह कह सकते है कि हमे 'अ' वस्तु की आवश्यकता ५० किलोग्राम की है, परन्तु यह कहना कि वस्तु 'अ' की माग ५० किलोग्राम की है ठीक नही है क्योकि माँग के साथ कीमत तथा समय का होना जरूरी है। अत हम कहेगे कि वस्तु 'अ' की माग ३ रुपये प्रति किलोग्राम कीमत पर तथा एक सप्ताह के लिए ५० किलोग्राम है। (ii) माँग उस आवश्यकता को कहते हैं जिसकी सन्तुष्टि की जाती है। मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं, वह उन सबको सामूहिक रूप से पूरा नहीं कर

सकता, उनमें कुछ को ही पूरा कर पाता है। जिन आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है उन्हें माँग कहा जाता है। अतः कोई आवश्यकता माँग तभी कही जायेगी जबकि उसकी सन्तुष्टि की जाती है। बेन्हम (Benham) के अनुसार, **"एक ही कीमत पर किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की वह मात्रा है जो कि वास्तव में उस कीमत पर खरीदी जायेगी।"**[1]

आवश्यकताओं के लक्षण अथवा विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF WANTS)

यद्यपि मनुष्यों की आवश्यकताओं में बहुत भिन्नता पायी जाती है परन्तु फिर भी उनमें कुछ समानताएँ या सामान्य लक्षण पाये जाते हैं। आवश्यकताओं के सामान्य लक्षणों या विशेषताओं का अर्थशास्त्र में बड़ा महत्त्व है क्योंकि इन विशेषताओं पर बहुत से आर्थिक नियम आधारित हैं।

आवश्यकताओं की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

(१) आवश्यकताएँ अनन्त अथवा असीमित होती हैं—मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त होती हैं, वह अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता है। एक के बाद दूसरी, दूसरी से तीसरी, इस प्रकार से आवश्यकताएँ उत्पन्न होती रहती हैं।

आवश्यकताओं के अनन्त तथा अनेक प्रकार के होने के कारण नयी खोजें तथा आविष्कार होते रहते हैं और इस प्रकार समाज की आर्थिक प्रगति (economic progress) होती रहती है। स्पष्ट है कि आवश्यकताओं की इस विशेषता पर 'प्रगति का नियम' (Law of Progress) आधारित है।

(२) आवश्यकता विशेष की पूर्ति की जा सकती है—यद्यपि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं, परन्तु एक समय में किसी एक आवश्यकता की पूर्ति अवश्य की जा सकती है। भूख लगने पर मनुष्य रोटियों का उपयोग करके उसकी सन्तुष्टि कर सकता है।

भूखे व्यक्ति के लिए पहली रोटी की उपयोगिता बहुत होगी, दूसरी रोटी की कम, तीसरी रोटी की और कम तथा इस प्रकार पाँचवीं रोटी खाने पर हो सकता है कि उसकी भूख पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाये। स्पष्ट है कि आवश्यकताओं के इस लक्षण पर *उपयोगिता ह्रास नियम'* (Law of Diminishing Utility) आधारित है।

(३) आवश्यकताएँ प्रतियोगी (competitive) होती हैं—मनुष्य के साधन सीमित हैं, विभिन्न आवश्यकताएँ सन्तुष्टि के लिए आपस में प्रतियोगिता करती हैं, ऐसी स्थिति में मनुष्य अधिक तीव्र आवश्यकताओं की पहले सन्तुष्टि करता है और कम तीव्र आवश्यकताओं को बाद में तथा शेष आवश्यकताओं को असन्तुष्ट छोड़ देता है।

इस प्रकार मनुष्य प्रतियोगी आवश्यकताओं को उनकी तीव्रता के अनुसार सन्तुष्ट करता है। आवश्यकताओं की इस विशेषता के आधार पर 'सम-सीमान्त उपयोगिता नियम' या 'प्रतिस्थापन नियम' (Law of Equi-marginal Utility or Law of Substitution) आधारित है।

(४) कुछ आवश्यकताएँ पूरक (complimentary) होती हैं—कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य आवश्यकताओं के साथ में की जाती है अर्थात् आवश्यकताएँ एक दूसरे की पूरक होती हैं। उदाहरणार्थ, फाउण्टेनपेन की आवश्यकता की पूर्ति बिना स्याही के नहीं हो सकती है, इसी प्रकार मोटर-कार तथा पेट्रोल दोनों का साथ-साथ प्रयोग होना है।

आवश्यकताओं की इस विशेषता पर 'संयुक्त माँग का सिद्धान्त' (Theory of Joint Demand) आधारित है।

(५) भविष्य की अपेक्षा वर्तमान की आवश्यकताएँ अधिक तीव्र प्रतीत होती हैं—भविष्य अनिश्चित होता है इसलिए मनुष्य भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को अधिक महत्त्व देता है। उसे

---

[1] "The demand for a thing at a given price is the amount of it which would in fact be bought at that price."
—Benham, *Economics*, p 36.

भविष्य की आवश्यकताओं की अपेक्षा वर्तमान आवश्यकताएँ अधिक तीव्र या अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं।

आवश्यकताओ के इस गुण के आधार पर फिशर ने, **ब्याज का समय अधिमान सिद्धान्त' (Time Preference Theory of Interest)** का निर्माण किया।

(६) कुछ आवश्यकताएँ वैकल्पिक (alternative) होती हैं—कुछ आवश्यकताओं को अनेक प्रकार से सन्तुष्ट किया जा सकता है अर्थात् आवश्यकताएँ वैकल्पिक होती हैं। उदाहरणार्थ, सर्दी को दूर करने की आवश्यकता को ऊनी कपडे पहनकर, रुई के कपडे पहनकर, चद्दर ओढ़कर, या गर्म पेय द्वारा पूरा किया जा सकता है।

आवश्यकता की इस विशेषता के आधार पर 'मिश्रित पूर्ति' (composite supply) या 'वैकल्पिक माँग' (Alternative Demand) के विचार आधारित हैं।

(७) कुछ आवश्यकताएँ आदत में परिवर्तित हो जाती हैं—एक वस्तु का हमेशा प्रयोग करते रहने से मनुष्य उस वस्तु के प्रयोग का आदी हो जाता है और उसके बिना उसे अत्यन्त कष्ट का अनुभव होने लगता है। उदाहरणार्थ, चाय या सिगरेट का निरन्तर प्रयोग करते रहने से मनुष्य की ये आवश्यकताएँ आदत म परिवर्तित हो जाती है।

अत अनेक आवश्यकताएँ मनुष्य के जीवन-स्तर का अग बन जाती हैं। **आवश्यकताओं की इस विशेषता के आधार पर मजदूरी सामान्यतया जीवन-स्तर के अनुसार निर्धारित होती हैं।**

(८) आवश्यकताओं की तीव्रता मे भिन्नता होती हैं—मनुष्य की सभी आवश्यकताएँ एक समान तीव्र नहीं होती है वह आवश्यकताओ को उनकी तीव्रता के क्रम मे रखता है और अधिक तीव्र आवश्यकताओ को पहले सन्तुष्ट करता है।

इसी विशेषता के आधार पर आवश्यकताओं को 'आवश्यक', 'आरामदायक' तथा 'विलासिता' की आवश्यकताओ मे बाँटा गया है।

(९) कुछ आवश्यकताएँ बार-बार अनुभव होती हैं—कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं कि उनकी पूर्ति करने के बाद वे पुन उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, सुबह भूख की तृप्ति करने के बाद दोपहर को भूख पुन अनुभव होने लगती है दोपहर के बाद शाम को फिर भूख लगने लगती है।

(१०) आवश्यकताएँ सामाजिक रीति-रिवाजो तथा फैशन से प्रभावित होती हैं—मनुष्य जिस समाज मे रहता है उसके रीति रिवाजों द्वारा उसकी बहुत-सी आवश्यकताओं का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ, हिन्दू समाज मे मुर्दे को जलाना आवश्यक है। इसी प्रकार समय विशेष पर प्रचलित फैशन भी मनुष्य की आवश्यकताओ को निर्धारित करता है। जैसे, बहुत से व्यक्ति टाई का प्रयोग फैशन के परिणामस्वरूप करने लगते हैं।

(११) आवश्यकताएँ ज्ञान वृद्धि तथा वैज्ञानिक उन्नति से प्रभावित होती हैं—शिक्षा तथा ज्ञान वृद्धि से मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ जाती हैं। उदाहरणार्थ, प्राय एक शहर मे रहने वाले व्यक्ति का सामान्य ज्ञान अधिक होता है और इसलिए उसकी आवश्यकताएँ अधिक होती हैं, जबकि एक ग्रामीण की आवश्यकताएँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं। इसी प्रकार वैज्ञानिक उन्नति के परिणामस्वरूप भी आवश्यकताएँ बढ जाती हैं। उदाहरणार्थ, वैज्ञानिक उन्नति के कारण ही रेडियो, टेलीविजन, इत्यादि का प्रयोग बढता जा रहा है।

(१२) प्रचार तथा विक्रय-कला (Publicity and Salesmanship) द्वारा आवश्यकताएँ उत्तेजित होती हैं—यदि किसी वस्तु के बारे में बहुत प्रचार किया जाता है तथा विक्रय के नये-नये तरीके प्रयोग किये जाते हैं तो मनुष्य उस वस्तु विशेष की आवश्यकता अनुभव करने लगता है। उदाहरणार्थ, बहुत समय पहले भारत मे लोगो को चाय की आदत ना के बराबर थी, परन्तु चाय की कम्पनियो ने चाय का बहुत जोरदार प्रचार किया, शुरू मे लोगो को नमूने के तौर पर मुफ्त चाय पिलाई, परिणामस्वरूप लोगो को चाय की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

(१३) आवश्यकताएं आविष्कारों को प्रोत्साहित करती हैं—वास्तव मे आवश्यकताएँ ही आविष्कारो को जन्म देती हैं। उदाहरणार्थ, बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के लिए विभिन्न प्रकार की रबड की वस्तुओ तथा अन्य अनेक उपायो का आविष्कार हो रहा है।

(१४) आवश्यकताएं बदलती रहती हैं—मनुष्य की आवश्यकताएँ समान नही रहती हैं, वे समय तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं।

आवश्यकताओ की विशेषताओ या लक्षणों के कुछ अपवाद
(EXCEPTIONS OF THE CHARACTERISTICS OF WANTS)

प्रो० मोरलैण्ड (Moreland) ने आवश्यकताओ की विशेषताओ के कुछ अपवाद बताये हैं, परन्तु यह अपवाद दिखावटी हैं न कि वास्तविक। उनके अनुसार मुख्य अपवाद निम्न प्रकार हैं:

(१) आवश्यकताओ की एक विशेषता यह है कि किसी एक आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। मोरलैण्ड ने बताया कि कुछ स्थितियाँ ऐसी हैं जहाँ कि विशेष आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो पाती है। किसी व्यक्ति के पास एक विशेष वस्तु जितनी अधिक होती है वह उसकी और अधिक आवश्यकता अनुभव करता है। इसके लिए उन्होंने निम्न उदाहरण दिए हैं:

(अ) दिखावे या प्रदर्शन की आवश्यकता—कुछ व्यक्तियो मे दिखावे की आवश्यकता बहुत प्रबल होती है, वे अपने सुन्दर तथा आलीशान मकान, मोटर कार, सुन्दर आभूषण, इत्यादि विभिन्न प्रकार की वस्तुओ तथा अपने रहन-सहन के ढग द्वारा अपना प्रदर्शन करते हैं। सदैव दिखावे के लिए नवीनतम वस्तुओ पर धन व्यय करते हैं और इस प्रकार वे कभी सन्तुष्ट नही हो पाते हैं।

परन्तु यह अपवाद दिखावटी है क्योंकि प्रदर्शन की आवश्यकता कोई एक आवश्यकता नही है। वह बहुत सी आवश्यकताओ का सामूहिक नाम है। *एक समय पर मनुष्य एक सुन्दर मकान* खरीदकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेता है, परन्तु इसके बाद उसे दूसरी आवश्यकता अर्थात् मोटरकार को खरीदने की आवश्यकता होने लगती है, इत्यादि।

(ब) शक्ति प्रदर्शन की आवश्यकता (Want of power)—कुछ व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहते हैं। जितनी अधिक शक्ति उनके पास रहती है उतनी ही अधिक शक्ति या सत्ता को वे *अर्जित करना चाहते हैं, शक्ति या सत्ता को प्राप्त करने की उनकी* आवश्यकता पूरी नही होती है। मोरलैण्ड कहते हैं कि यह अपवाद वास्तविक प्रतीत होता है, परन्तु ऐसे व्यक्ति साधारण व्यक्ति नही होते और एक अर्थशास्त्री तो साधारण व्यक्ति की आवश्यकताओ से सम्बन्ध रखता है।[1]

(स) एक कजूस व्यक्ति की धन एकत्र करने की आवश्यकता—एक कजूस व्यक्ति की धन एकत्र करने की आवश्यकता कभी पूरी नहीं होती। परन्तु यह अपवाद भी दिखावटी है क्योंकि एक कजूस व्यक्ति साधारण व्यक्ति नही है और अर्थशास्त्र मे कजूस व्यक्तियो की क्रियाओ का अध्ययन नहीं किया जाता है।

(द) द्रव्य की आवश्यकता—द्रव्य की आवश्यकता की पूर्ति नही की जा सकती। जितना अधिक द्रव्य होता है उतना ही और अधिक द्रव्य एकत्रित करने की इच्छा रहती है। परन्तु यह अपवाद भी दिखावटी है क्योंकि द्रव्य की आवश्यकता एक नही है बल्कि बहुत सी आवश्यकताओ का सामूहिक नाम है, द्रव्य से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीदी जाती हैं।

(२) आवश्यकताओ की एक विशेषता यह है कि वे अनन्त है अर्थात् मनुष्य की आवश्यकताएँ सख्या मे तथा विभिन्नता मे सीमित नही होती हैं। परन्तु कुछ (व्यक्ति, जैसे, साधु-सन्यासी, इत्यादि) ऐसे हैं जिनकी आवश्यकताएँ सख्या तथा विभिन्नता (number and variety) मे बढ़ती नहीं बल्कि कम होती हैं, उनकी आवश्यकताएँ बहुत सूक्ष्म तथा सीमित होती है। परन्तु

[1] This exception seems to be real, that is to say, the lust of such men for power cannot be satisfied But such men are not ordinary men and the economist is concerned with the wants of ordinary men." —Moreland, *An Introduction to Economics*, p 145

मनुष्यों की आवश्यकताएँ बहुत कम हैं तो देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ जायेगा। वास्तव में [illegible] दोनों विचारधाराओं के मध्य में प्रतीत होता है।

आवश्यकताओं का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF WANTS)

मनुष्य की सभी आवश्यकताएँ समान रूप से तीव्र नहीं होतीं। कुछ आवश्यकताएँ अधिक तीव्र होती हैं *जिनकी आवश्यकताओं की* पूर्ति मनुष्य की कार्यक्षमता को बनाये रखने तथा उसमें वृद्धि करने के लिए जरूरी है। कुछ आवश्यकताएँ कम तीव्र होती हैं, ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति मनुष्य की कार्यक्षमता में कोई वृद्धि नहीं करती। आवश्यकताओं की तीव्रता की भिन्नता (अर्थात् उनके कार्यक्षमता पर प्रभाव) के आधार पर अर्थशास्त्रियों ने आवश्यकताओं को तीन वर्गों में बाँटा है (१) अनिवार्य आवश्यकताएँ या आवश्यक वस्तुएँ (Necessaries) (२) आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ या आराम की वस्तुएँ (Comforts) तथा (३) विलासिताएँ या विलासिता की वस्तुएँ (Luxuries)।

(१) अनिवार्य आवश्यकताएँ या आवश्यक वस्तुएँ (Necessaries)

अनिवार्य आवश्यकताएँ वे आवश्यकताएँ हैं जो कि प्राथमिक (primary) तथा आधारभूत होती हैं और जिनका पूरा करना जीवन रक्षा के लिए, *कार्यक्षमता को बनाये रखने तथा समाज में* प्रतिष्ठा रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार अनिवार्य आवश्यकताओं को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है

(अ) जीवन रक्षक आवश्यकताएँ (Necessaries for life)—इनकी पूर्ति मनुष्य की जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक है, इनके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। उदाहरण के लिए न्यूनतम भोजन, साधारण वस्त्र तथा मकान के बिना मनुष्य का जीवित रहना कठिन है। जीवन रक्षक वस्तुओं की मात्रा व्यक्ति के स्वभाव, आयु तथा देश की जलवायु द्वारा प्रभावित होती है।

(ब) कार्यक्षमता रक्षक अनिवार्यताएँ (*Necessaries for efficiency*)—वे ऐसी आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति मनुष्य की कार्यक्षमता को बनाये रखने के लिए जरूरी है।[1]

इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने की है कि जितना धन कार्यक्षमता रक्षक *आवश्यकताओं* की पूर्ति पर व्यय किया जाता है उससे अधिक अनुपात में कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

(स) प्रतिष्ठा रक्षक अनिवार्यताएँ या परम्परागत अनिवार्यताएँ (Conventional necessaries)—ये वे अनिवार्यताएँ हैं जिनकी पूर्ति सामाजिक रीति रिवाजों या परम्पराओं का पालन करने के लिए जरूरी है ताकि व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा बनी रहे।

(२) आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ (Comforts)

इन आवश्यकताओं की पूर्ति मनुष्य को सुख देने, रहन सहन को अच्छा बनाने तथा कार्यक्षमता में वृद्धि के लिए जरूरी है। यदि इनकी पूर्ति नहीं की जाती है तो मनुष्य को थोड़े कष्ट का अनुभव होता है, उसका जीवन स्तर नीचे गिरता है तथा उसकी कार्यक्षमता में कमी आती है।

कार्यक्षमता रक्षक अनिवार्यताओं (*Necessaries for efficiency*) तथा 'आराम दायक आवश्यकताओं (Comforts) में मुख्य अन्तर यह है कि कार्यक्षमता रक्षक अनिवार्यताओं पर जिस अनुपात में धन व्यय किया जाता है उससे अधिक अनुपात में कार्यक्षमता बढ़ती है, जबकि

---

[1] प्रो॰ मोरलैण्ड ने भारत के सन्दर्भ में कार्यक्षमता रक्षक अनिवार्यताओं के अन्तर्गत निम्न वस्तुओं को बताया है (१) जीवन रक्षा के लिए जितने *भोजन की आवश्यकता है* उससे अधिक भोजन अर्थात् पौष्टिक भोजन, (२) एक निश्चित मात्रा में वस्त्र तथा फर्नीचर, (३) रहने के लिए अच्छा तथा हवादार मकान, (४) चिकित्सा की उचित सुविधाएँ तथा (५) बच्चों की शिक्षा की उचित सुविधाएँ।

आरामदायक आवश्यकताओ पर जिस अनुपात मे धन व्यय किया जाता है उससे कम अनुपात मे कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है।

गर्मी मे पखे की और जाडो मे हीटर की आवश्यकता इत्यादि कुछ आरामदायक वस्तुओं के उदाहरण हैं। वास्तव मे निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि कौन-सी वस्तु आरामदायक है। यह बात वस्तु के मूल्य तथा उपभोक्ता की परिस्थितियो पर निर्भर करेगी। भारत मे अधिकाश व्यक्ति आरामदायक आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर पाते हैं क्योकि यहाँ की अधिकाश जनता गरीब है।

(३) विलासिताएं (Luxuries)

विलासिताएं वे आवश्यकताएं हैं जिनके प्रयोग से मनुष्य को अत्यधिक सुख अनुभव होता है और वह विलासप्रिय हो जाता है। इनके प्रयोग से मनुष्य की कार्यक्षमता म कोई वृद्धि नही होती बल्कि कुछ दशाओ म कार्यक्षमता घट जाती है। यदि इन आवश्यकताओ की पूर्ति न की जाये तो इससे कार्यक्षमता मे कोई कमी नहीं आती है। प्रो० जीड (Gide) ने इन आवश्यकताओ को 'अनावश्यक आवश्यकताएं' (superfluous wants) कहा है तथा प्रो० एली (Ely) ने इन्हे 'अत्यधिक व्यक्तिगत उपभोग' (excessive personal consumption) का नाम दिया है।

विलासिताओ को दो भागो मे बाँटा जा सकता है (i) हानिरहित विलासिताएँ (harmless luxuries), तथा (ii) हानिकारक विलासिताएं (harmful luxuries)। हानिरहित विलासिताओं के अन्तर्गत अत्यन्त बढिया वस्त्र, बहुत शानदार मकान, कीमती हीरे-जवाहरात तथा अन्य कीमती आभूषण, बहुत महँगी तथा कीमती कारें, इत्यादि वस्तुएं शामिल की जा सकती हैं, इन वस्तुओ के प्रयोग से मनुष्य की कार्यक्षमता मे न कोई वृद्धि होती है और न कोई कमी। हानिकारक विलासिताओं के अन्तर्गत वे वस्तुएं आती हैं जिनके प्रयोग से मनुष्य की कार्यक्षमता घट जाती है, जैसे—शराब तथा अन्य मादक वस्तुओ का उपभोग, क्योंकि इनके प्रयोग से मनुष्य का स्वास्थ्य खराब होता है।

आवश्यकताओ का यह वर्गीकरण सापेक्षिक (relative) है

ध्यान रखने की बात है कि आवश्यकताओ का यह वर्गीकरण कठोर तथा बेलोच (rigid and inelastic) नही है। निश्चय रूप से यह कहना कठिन है कि अमुक वस्तु प्रत्येक समय प्रत्येक स्थान या देश तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक होगी या आरामदायक या विलासिता की होगी। समय, स्थान तथा व्यक्ति के साथ वस्तुओ का गुण बदलता रहता है, दूसरे शब्दो मे आवश्यकताओं का वर्गीकरण समय, स्थान तथा व्यक्ति के साथ सापेक्षिक (relative) है।

अत एक वस्तु एक समय म विलासिता की हो सकती है, परन्तु दूसरे समय म वही वस्तु आवश्यक हो सकती है। उदाहरण के लिए २५-३० वर्ष पहले भारत मे रेडियो विलासिता की वस्तु समझा जाता था परन्तु अब यह एक प्रकार से आवश्यक वस्तु है। इसी प्रकार एक छोटे गाँव मे टेलीफोन विलासिता की वस्तु कही जायेगी, जबकि वही टेलीफोन बडे शहरो मे आरामदायक या आवश्यक वस्तु कही जाती है। इसी प्रकार जाडे के दिनो म भारत मे हीटर का प्रयोग आरामदायक होगा जबकि ब्रिटेन मे हीटर आवश्यक वस्तु है।

वर्गीकरण केवल समय तथा स्थान के प्रति ही सापेक्षिक नही है बल्कि व्यक्ति के प्रति भी सापेक्षिक है। उदाहरणार्थ, कार एक व्यस्त डाक्टर या इन्जीनियर के लिए आवश्यक, अध्यापक के लिए आरामदायक तथा एक क्लर्क के लिए विलासिता की वस्तु है। इसी प्रकार डाक्टर के लिए एक कार आवश्यक परन्तु दूसरी कार उसके लिए विलासिता की वस्तु हो जायगी जबकि एक बहुत बडे उद्योगपति के लिए दो या तीन कारें आवश्यक हैं। इसी प्रकार एक फाउण्टेनपेन एक विद्यार्थी या अध्यापक के लिए आवश्यक है, साधारण पढ़े लिखे व्यक्ति के लिए आरामदायक जबकि एक अशिक्षित व्यक्ति के लिए विलासिता की वस्तु है।

इस प्रकार आवश्यकताओ का यह वर्गीकरण समय, स्थान, व्यक्ति तथा वस्तु की इकाइयो के प्रति सापेक्षिक है।

आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करने वाले तत्व

अध्ययन की सुविधा के लिए इन तत्वों को साधारणतया तीन भागों में बाँटा जाता है : (I) व्यक्ति से सम्बन्धित तत्व, (II) वस्तु से सम्बन्धित तत्व, तथा (III) वातावरण (environment) से सम्बन्धित तत्व ।

(I) व्यक्ति से सम्बन्धित तत्व

व्यक्ति से सम्बन्धित निम्न तत्व आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करते हैं :

(१) व्यक्ति विशेष की आय—व्यक्ति की आय के अनुसार, आवश्यकताओं के वर्गीकरण पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, एक धनी व्यक्ति के लिए प्रशीतक यन्त्र (refrigerator) आवश्यक हो सकता है जबकि एक कम आय वाले व्यक्ति के लिए यह विलासिता की वस्तु है। **(२) व्यक्ति विशेष का व्यवसाय**—एक व्यक्ति का व्यवसाय भी आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ, एक डाक्टर या इन्जीनियर के लिए कार आवश्यक है जबकि एक अध्यापक के लिए आरामदायक तथा एक क्लर्क के लिए विलासिता की वस्तु है। **(३) व्यक्ति की आदतें**—यदि एक व्यक्ति को चाय पीने की आदत पड़ी है तो उसके लिए चाय आवश्यक वस्तु है जबकि अन्य व्यक्तियों, जिनको चाय पीने की आदत नहीं है, के लिए चाय जाड़ों में आरामदायक तथा गर्मियों में विलासिता की वस्तु है। **(४) व्यक्ति का सामाजिक स्तर**—सामाजिक स्तर आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करता है। देश के प्रधानमन्त्री के लिए बहुत बड़ा तथा सुन्दर मकान आवश्यक है, क्योंकि उसका सामाजिक स्तर बहुत ऊँचा है जबकि उतना बड़ा मकान एक डाक्टर के लिए विलासिता की वस्तु होगी। **(५) व्यक्ति की धार्मिक परम्पराएँ**—एक धार्मिक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के लिए सादा मकान, सादा भोजन आरामदायक है जबकि धनी व्यक्ति के लिए शानदार मकान, बढ़िया भोजन आरामदायक होगा।

(II) वस्तु से सम्बन्धित तत्व

वस्तु से सम्बन्धित निम्न तत्व आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करते हैं :

(१) वस्तु का मूल्य—साधारणतया बहुत अधिक मूल्य वाली वस्तुएँ विलासिता की वस्तुएँ, ऊँचे मूल्य वाली वस्तुएँ आरामदायक वस्तुएँ तथा कम मूल्य वाली वस्तुएँ आवश्यक वस्तुएँ कही जाती हैं। **(२) वस्तु की मात्रा तथा इकाइयाँ**—एक डाक्टर के लिए एक कार आवश्यक परन्तु दूसरी या तीसरी कार विलासिता की वस्तु हो जाती है। अतः वस्तु की मात्रा या इकाइयाँ भी आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करती हैं।

(III) वातावरण (environment) से सम्बन्धित तत्व

समय, स्थान तथा आर्थिक, भौगोलिक और सामाजिक वातावरण भी आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार के तत्व निम्न हैं

(१) स्थान तथा समय से सम्बन्धित परिस्थितियाँ—भारत के बड़े शहरों में टेलीफोन एक आवश्यक वस्तु है जबकि वह छोटे गाँव में विलासिता की वस्तु है। इसी प्रकार भारत में २५-३० साल पहले रेडियो विलासिता की वस्तु कही जा सकती थी परन्तु अब समय के साथ वह कुछ व्यक्तियों के लिए आवश्यक तथा कुछ के लिए आरामदायक वस्तु हो गयी है। **(२) भौगोलिक परिस्थितियाँ**—ब्रिटेन जैसे ठण्डे देश में हीटर तथा ऊनी कपड़े आवश्यक हैं जबकि भारत जैसे गरम देश में वे आरामदायक वस्तुएँ हैं। **(३) आर्थिक प्रगति**—किसी देश का आर्थिक विकास भी आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करता है। कुछ समय पहले जो वस्तुएँ विलासिता की वस्तुएँ समझी जाती थीं वे देश के आर्थिक विकास के साथ आवश्यक या आरामदायक वस्तुएँ हो जाती है। उदाहरणार्थ, अमरीका में बहुत अधिक आर्थिक उन्नति हो चुकी है, अतः वहाँ पर रेडियो, टेलीविजन, कार, इत्यादि आवश्यक वस्तुएँ बन गयी हैं।

आवश्यकताओं के वर्गीकरण का आधार

आवश्यकताओं के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो ने तीन आधार बताये हैं : (१) कार्यक्षमता का आधार या सिद्धान्त, (२) सुख-दुख का आधार या सिद्धान्त, (३) मूल्य और माँग का आधार या सिद्धान्त ।

(१) कार्यक्षमता का आधार या सिद्धान्त

इस आधार या सिद्धान्त के अनुसार, किसी वस्तु को किस वर्ग मे रखा जाय यह बात उस वस्तु के उपभोग करने अथवा उपभोग न करने से उपभोक्ता की कार्यक्षमता पर प्रभाव को मालूम करके निश्चित की जायेगी । (i) यदि वस्तु विशेष के प्रयोग से व्यक्ति की कार्यक्षमता की रक्षा होती है या उसमे वृद्धि होती है तथा उस वस्तु के प्रयोग न करने से कार्यक्षमता अधिक घट जाती है, तो ऐसी वस्तु को 'अनिवार्य वस्तु' या 'अनिवार्यताओं' के अन्तर्गत रखा जायेगा । (ii) यदि वस्तु के प्रयोग से कार्यक्षमता मे थोडी वृद्धि होती है तथा उसका प्रयोग न करने से कार्यक्षमता थोडी घट जाती है तब ऐसी वस्तु को 'आरामदायक वस्तु' की श्रेणी मे रखा जायेगा । (iii) यदि वस्तु के प्रयोग से कार्यक्षमता न बढती है और न घटती है अर्थात् पहले जैसे बनी रहती है तो ऐसी वस्तु को 'हानिरहित विलासिताओं' के अन्तर्गत रखेंगे, परन्तु यदि वस्तु के प्रयोग से कार्यक्षमता घटती है तथा उसका प्रयोग बन्द कर देने पर कार्यक्षमता का घटना रुक जाता है तो ऐसी वस्तु को 'हानिकारक विलासिता' कहेंगे ।

कार्यक्षमता के आधार या सिद्धान्त के अनुसार आवश्यकताओं के वर्गीकरण को सक्षेप मे निम्न तालिका द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है

वस्तुएं		व्यक्ति की कार्यक्षमता पर प्रभाव	
		वस्तु का प्रयोग करने पर	वस्तु का प्रयोग न करने पर
(१) अनिवार्य वस्तुएं		कार्यक्षमता की रक्षा होती है या वह बढती है ।	कार्यक्षमता अनुचित कम हो जाती है ।
(२) आरामदायक वस्तुएं		कार्यक्षमता मे थोडी वृद्धि होती है ।	कार्यक्षमता थोडी घट जाती है ।
(३) विलासिताएं	हानिरहित	कार्यक्षमता मे वृद्धि नही होती है ।	कार्यक्षमता घटती नहीं है ।
	हानिकारक	कार्यक्षमता म कमी हो जाती है ।	कार्यक्षमता मे कमी होना बन्द हो जाता है ।

(२) सुख-दुख का आधार या सिद्धान्त

इस आधार या सिद्धान्त के अनुसार, किसी वस्तु या आवश्यकता को किस वर्ग मे रखा जाये इस बात को उस वस्तु के उपभोग करने अथवा न करने से उपभोक्ता के सुख या दुख पर प्रभाव को मालूम करके निश्चित किया जायेगा । (i) यदि वस्तु विशेष के प्रयोग से व्यक्ति को थोडा सुख मिलता है तथा प्रयोग न करने पर बहुत अधिक दुख होता है तो ऐसी वस्तु को 'अनिवार्य वस्तु' या 'अनिवार्यताओं' के अन्तर्गत रखा जायेगा । (ii) यदि वस्तु के प्रयोग से व्यक्ति को कुछ अधिक सुख (या पर्याप्त) सुख मिलता है तथा इसका प्रयोग न करने से थोडा ही दुख होता है तब ऐसी वस्तु को 'आरामदायक वस्तु' की श्रेणी मे रखा जायेगा । (iii) यदि वस्तु के प्रयोग से बहुत अधिक सुख का अनुभव होता है तथा उसका प्रयोग न करने पर दुख नहीं होता तब ऐसी वस्तु को 'हानिरहित विलासिता' के अन्तर्गत रखा जायेगा । यदि वस्तु के प्रयोग करने से केवल क्षणिक सुख या बहुत थोडे समय के लिए सुख मिलता है तथा प्रयोग न करने पर बहुत अधिक कष्ट या दुख

(वस्तु की आदत पड़ जाने के कारण) का अनुभव होता है तो इसे 'हानिकारक विलासिता' या 'फिजूल-खर्ची' (extravagance) कहेंगे।

इस वर्गीकरण को संक्षेप में निम्न तालिका द्वारा व्यक्त किया जा सकता है

वस्तुएँ	व्यक्ति के सुख-दुख पर प्रभाव	
	वस्तु का उपभोग करने पर	वस्तु का उपभोग न करने पर
(१) अनिवार्य वस्तुएँ	थोड़ा सुख प्राप्त होता है।	बहुत दुख अनुभव होता है।
(२) आरामदायक वस्तुएँ	कुछ और अधिक सुख (या पर्याप्त सुख) प्राप्त होता है।	थोड़ा ही दुख होता है।
(३) विलासिताएँ हानिरहित	बहुत अधिक सुख प्राप्त होता है।	दुख नहीं होता (यदि व्यक्ति आदी न हो गया हो)।
हानिकारक	अल्पकालीन या क्षणिक सुख प्राप्त होता है।	बहुत दुख या कष्ट (आदी हो जाने के कारण) होता है।

(३) मूल्य तथा माँग का आधार या सिद्धान्त

(i) यदि किसी वस्तु के मूल्य में वृद्धि या कमी होने पर उसकी माँग लगभग पहले जैसी ही रहती है तब ऐसी वस्तु को 'अनिवार्य वस्तु' के अन्तर्गत रखा जायेगा। (ii) यदि वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में परिवर्तन उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में कि मूल्य में परिवर्तन हुआ है तो ऐसी वस्तु को 'आरामदायक वस्तु' के अन्तर्गत रखा जायेगा। (iii) यदि वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन, कीमत में आनुपातिक परिवर्तन की अपेक्षा, अधिक होता है तब ऐसी वस्तु को विलासिता की वस्तु कहते है।

इस वर्गीकरण को निम्न तालिका द्वारा व्यक्त किया जा सकता है

वस्तुएँ	कीमत में वृद्धि होने पर	कीमत में कमी होने पर
(१) आवश्यक वस्तुएँ	माँग लगभग पहले जैसी ही रहती है।	माँग लगभग पहले जैसी ही रहती है।
(२) आरामदायक वस्तुएँ	माँग में आनुपातिक कमी कीमत में आनुपातिक वृद्धि के बराबर।	माँग में आनुपातिक वृद्धि कीमत में आनुपातिक कमी के बराबर।
(३) विलासिताएँ	माँग में आनुपातिक कमी कीमत में आनुपातिक वृद्धि से अधिक।	माँग में आनुपातिक वृद्धि कीमत में आनुपातिक कमी से अधिक।

क्या विलासिताओं का उपभोग उचित है?
(IS CONSUMPTION OF LUXURIES BENEFICIAL TO SOCIETY)

विलासिताओं के उपभोग से मनुष्य की कार्यक्षमता में कोई वृद्धि नहीं होती है बल्कि कुछ दशाओं में उसमें कमी हो जाती है। इसलिए एक प्रश्न यह उठता है कि क्या विलासिताओं का उपभोग उचित है या नहीं? इस सम्बन्ध में इस बात पर कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि 'हानिकारक विलासिताओं' का उपभोग नहीं होना चाहिए, क्योंकि इनके प्रयोग से मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और उसकी कार्यक्षमता घटती है। वास्तव में, मतभेद 'हानिरहित विलासिताओं' के सम्बन्ध में है, कुछ अर्थशास्त्री इनके उपभोग के पक्ष में हैं तथा कुछ इनका विरोध करते है। आगे हम पक्ष तथा विपक्ष के तर्कों का अध्ययन करके ही एक निष्कर्ष पर पहुँचेंगे।

(२) रोजगार मे कोई विशेष वृद्धि नहीं होती—विलासिता की वस्तुओ की माँग केवल थोड़े से धनी व्यक्तियो तक ही सीमित रहती है जबकि अनिवार्य तथा आरामदायक वस्तुओं की माँग समस्त समाज या देश द्वारा होती है। यदि विलासिता की वस्तुओ के उत्पादन के स्थान पर अनिवार्य तथा आरामदायक वस्तुओं का उत्पादन अधिक बढाया जाय तो रोजगार के अवसरो में कही अधिक वृद्धि होगी।

(३) उत्पादन कार्यों के लिए पूंजी की कमी—यदि लोग अपना धन सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, आदि जैसी विलासिता की वस्तुओ मे लगा देते है तो देश म विभिन्न प्रकार के उत्पादक कार्यों के लिए धन तथा पूंजी की कमी हो जाती है और देश का आर्थिक विकास रुक जाता है या उसकी गति बहुत कम हो जाती है। इसका एक अच्छा उदाहरण भारत है।

(४) धन के वितरण मे असमानता—वास्तव मे, विलासिता की वस्तुओ के उत्पादन से धन के वितरण मे समानता नही आती बल्कि असमानता उत्पन्न होती है। इसका कारण है कि आज के युग मे विलासिता की वस्तुओ का निर्माण छोटे या कुटीर उद्योगो मे बहुत कम होता है। अधिकाश उत्पादन बडे पैमाने पर बडे उद्योगो मे ही होता है।

(५) निर्धनो को कष्ट तथा उनकी कार्यक्षमता मे कमी—कभी-कभी निर्धन व्यक्ति धनी व्यक्तियो को देखकर कुछ विलासिता की वस्तुओ का प्रयोग करने लगते है। ऐसा करने म उन्हे अपनी कुछ अनिवार्य तथा आरामदायक वस्तुओ के उपभोग को बन्द करना पडता है क्योंकि उनकी आय कम होती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनको कष्ट होता है और उनकी कार्यक्षमता मे कमी हो जाती है।

(६) कला को प्रोत्साहन नहीं मिलता—आज के युग मे विलासिता की अधिकाश वस्तुओ का उत्पादन बडे पैमाने के उद्योगो द्वारा होता है। अतः इनके उत्पादन मे व्यक्तिगत कला को प्रोत्साहन नही मिलता।

निष्कर्ष—विलासिताओं के पक्ष तथा विपक्ष मे दिये जाने वाले तर्कों का अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि जब तक समाज या देश के प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य तथा आरामदायक वस्तुओ की प्राप्ति नही होती तब तक सामाजिक दृष्टि से विलासिताओं का प्रयोग उचित नही कहा जा सकता। हानिकारक विलासिताओं का प्रयोग तो सामाजिक दृष्टि से बिलकुल उचित नही है।

प्रश्न

१. "मनुष्यो की आवश्यकताओ की विभिन्न विशेषताएं होती है, जिनम से प्रत्येक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उनमें से प्रत्येक पर कोई न कोई बडा आर्थिक नियम निर्भर करता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
"Man's wants have various characteristics, each of which is of great importance, for on each depends some great economic law" Amplify this statement

२. आवश्यकता तथा माँग के अन्तर को स्पष्ट कीजिए। आवश्यकताओ की प्रमुख विशेषताओं को बताइए। आय मे परिवर्तन आवश्यकताओ को किस प्रकार प्रभावित करते है ?
Explain the difference between Want and Demand. Give the main characteristics of wants How do change in income affect our wants ?

[संकेत—तीसरे भाग के उत्तर मे बताइए कि सामान्यतया आय मे वृद्धि या कमी से मनुष्य की आवश्यकताओ म वृद्धि या कमी होगी।]

३. मानवीय आवश्यकताओ की क्या विशेषताएं है ? वे आर्थिक क्रियाओ को किस प्रकार प्रभावित करती है ?
What are the characteristics of human wants ? How do they affect economic activity ? *(Allahabad, B Com., 1972)*

[संकेत—प्रश्न के दूसरे भाग के उत्तर के लिए 'आवश्यकताओ की वृद्धि' नामक केन्द्रीय शीर्षक (central heading) के अन्तर्गत विषय-सामग्री को पढ़िए।]

४. मानवीय आवश्यकताओं का वर्गीकरण कीजिए और बताइए कि किस प्रकार यह वर्गीकरण स्थान, व्यक्ति, समय तथा इकाई के साथ परिवर्तित होता है।

Classify human wants and show how does this classification change according to place, person time and unit

५. 'अनिवार्यताओं आरामदायक वस्तुओं तथा विलासिताओं की श्रेणियों में किसी वस्तु का वर्गीकरण निम्न चार परिवर्तनशील तत्त्वों द्वारा निर्धारित होता है व्यक्तिगत उपभोक्ता, वस्तु की इकाई, समय तथा स्थान।' उपयुक्त कथन को भारतीय दशाओं के उदाहरण के साथ पूर्णतया स्पष्ट कीजिए।

"The category into which a particular article can be classified into Necessaries Comforts and Luxuries is determined by four variable items viz, the individual consumer, the particular unit of the article, the time and the place" Explain fully the above statement with special reference to Indian conditions

[संकेत—प्रारम्भ में बताइए कि आवश्यकताओं को तीन वर्गों—अनिवार्यताएँ, आराम की वस्तुओं और विलासिताओं—में बाँटा जाता है, इनका बहुत संक्षिप्त विवरण होना चाहिए। इसके पश्चात आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का विस्तृत रूप से विवेचन कीजिए।]

६. आवश्यकताओं का वर्गीकरण किन आधारों पर किया जाता जाता है? उनमें से कौन-सा आधार सबसे अधिक सन्तोषजनक है?

On what basis wants are classified? Which of them is the most satisfactory basis?

[संकेत—दूसरे भाग में बताइए कि 'कार्यक्षमता का आधार या सिद्धान्त' अधिक उपयुक्त समझा जाता है।]

७. "आवश्यकताओं की संख्या वृद्धि अधिक आर्थिक क्रियाओं को उत्पन्न करती है जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं तथा सेवाओं का अधिकतम उत्पादन होने लगता है। इससे अन्त में मानवीय सुख अधिकतम होता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

"Multiplicity of wants brings about intense economic activity which results in maximum production of goods and services This leads to maximisation of human happiness" Discuss

[संकेत—आवश्यकताओं की वृद्धि के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क दीजिए और अन्त में निष्कर्ष दीजिए कि आवश्यकताएँ न बहुत अधिक होनी चाहिए और न बहुत कम।]

८. आप विलासिता से क्या समझते हैं? क्या आर्थिक दृष्टि से विलासिताओं का उपयोग समाज के लिए लाभदायक है?

What do you understand by Luxuries? Is consumption of luxuries beneficial to society?

उपयोगिता तथा सीमान्त विश्लेषण
(UTILITY AND MARGINAL ANALYSIS)

साधारण भाषा में उपयोगिता का अर्थ 'लाभदायकता' (usefulness) से लिया जाता है। इस दृष्टि से पानी, हवा, सूर्य की रोशनी, इत्यादि बहुत अधिक उपयोगिता रखते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में उपयोगिता शब्द का अर्थ साधारण अर्थ से भिन्न तथा व्यापक है।

उपयोगिता का अर्थ
(MEANING OF UTILITY)

वस्तु की वह शक्ति, गुण या क्षमता (power, quality or capacity) जिससे किसी व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, की जा सकती है, उपयोगिता कहलाती है। संक्षेप में, अर्थशास्त्र में किसी वस्तु की 'आवश्यकता-पूर्ति की शक्ति' (want-satisfying power) को उपयोगिता कहते हैं।

उपयोगिता की उपर्युक्त परिभाषा का पूर्णरूप से समझने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है

(१) 'आवश्यकता-पूर्ति की शक्ति' के दो अभिप्राय (implications) हो सकते हैं— (i) 'सन्तुष्टि प्रदान करने की क्षमता' (capacity to give satisfaction) या 'अनुमानित सन्तुष्टि (expected satisfaction), (ii) वस्तु का प्रयोग कर लेने के बाद जो सन्तुष्टि प्राप्त होती है अर्थात् 'वास्तविक सन्तुष्टि' (realised satisfaction), इसे कुछ अर्थशास्त्री 'सन्तोषजनकता' (satisfyingness) भी कहते हैं। 'अनुमानित सन्तुष्टि', वास्तविक सन्तुष्टि से अधिक, कम या उसके बराबर हो सकती है। अतः प्रश्न यह उठता है कि इन दोनों में से किसको उपयोगिता की परिभाषा के अन्तर्गत माना जाय।

आधुनिक अर्थशास्त्री, सामान्यतया उपयोगिता का अर्थ अधिक विस्तृत विचार 'अनुमानित सन्तुष्टि' (expected satisfaction) से लेते हैं। 'अनुमानित सन्तुष्टि' इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करती है, वस्तु के लिए इच्छा जितनी तीव्र होगी उतनी ही अधिक उससे सन्तुष्टि मिलने का अनुमान या आशा होगी। इसलिए 'अनुमानित सन्तुष्टि' (expected satisfaction) के स्थान पर 'इच्छा की तीव्रता' (intensity of desire) या केवल 'इच्छा करना' (desiredness) के शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। अतः फ्रेजर (Fraser) के अनुसार, "उपयोगिता का अर्थ 'इच्छा करने' (desiredness) से लिया जाता है न कि 'सन्तोषजनकता' (satisfyingness) से।"[1]

(२) अर्थशास्त्र में उपयोगिता का अर्थ 'लाभदायकता' (usefulness) या नैतिक विचारों (moral and ethical considerations) से सम्बन्धित नहीं होता। वस्तु की 'आवश्यकता-पूर्ति

[1] On the whole, in recent years the wider definition is preferred and utility is identified with 'desiredness' rather than with satisfyingness." —Fraser

की शक्ति ही उपयोगिता है चाहे वस्तु लाभदायक हो या हानिकारक। शराब जैसी हानिकारक वस्तु या विष जैसी घातक वस्तुएँ भी उपयोगिता रखती है क्योंकि इनसे मनुष्य विशेष की आवश्यकता की पूर्ति होती है।[2]

(३) उपयोगिता केवल वस्तुगत (objective) ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत (subjective) तथा सापेक्षिक (relative) होती है। वस्तु विशेष के केवल आन्तरिक गुण को उपयोगिता कहना पर्याप्त नही है। उदाहरणार्थ, एक प्यासे व्यक्ति के लिए पानी उपयोगी है, दूसरे व्यक्ति के लिए जो प्यासा नही है, पानी उपयोगी नही है। दूसरे शब्दो मे, उपयोगिता व्यक्ति विशेष की इच्छा की तीव्रता पर, उसकी रुचि, आदत, फैशन तथा परिस्थितियो पर निर्भर करती है। उपयोगिता व्यक्तिगत व सापेक्षिक होने के कारण, व्यक्ति-व्यक्ति के साथ परिवर्तित होती रहती है। इतना ही नहीं, एक व्यक्ति के लिए उपयोगिता भिन्न भिन्न समय पर बदलती रहती है, उदाहरणार्थ, कम्बल एक व्यक्ति के लिए सर्दी मे उपयोगी है परन्तु उसी व्यक्ति के लिए गर्मी मे नही।

सक्षेप मे उपयोगिता का अर्थ इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

उपयोगिता न तो लाभदायकता को और न तृप्ति को बताती है बल्कि किसी वस्तु के लिए इच्छा की तीव्रता को बताती है। प्रो० फ्रेजर (Fraser) के शब्दों मे, यह केवल इच्छा करना (desiredness) है।[3]

क्या उपयोगिता एक गणनावाचक विचार है या क्रमवाचक विचार ?
(IS UTILITY A CARDINAL OR AN ORDINAL CONCEPT ?)

अथवा

क्या उपयोगिता को मापा जा सकता है ?
(CAN UTILITY BE MEASURED ?)

उपयोगिता के मापन (measurement) के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो के दो दृष्टिकोण हैं— (१) **गणनावाचक दृष्टिकोण** (Cardinal approach), तथा (२) **क्रमवाचक दृष्टिकोण** (Ordinal approach)। आगे इन दोनो दृष्टिकोणो का विवेचन करते है

गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach)—यद्यपि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है, परन्तु मार्शल तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियो के अनुसार उपयोगिता को मोटे रूप से द्रव्य रूपी पैमाने द्वारा मापा जा सकता है। एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए उतनी कीमत देना चाहेगा जितनी कि उससे उपयोगिता मिलती है। दूसरे शब्दो मे, **किसी वस्तु के लिए दी जाने वाली कीमत मोटे रूप से उस वस्तु की उपयोगिता का माप है।** उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति फाउण्टेन पैन के लिए ४ रुपय देने को तत्पर है, तो उसके लिए पैन की उपयोगिता ४ रुपये के बराबर है।

इस प्रकार उपयोगिता मापनीय (measurable) है। इस दृष्टिकोण को **'गणनावाचक दृष्टिकोण'** कहते है तथा इस दृष्टिकोण या विचारधारा के मानने वाले अर्थशास्त्रियो को **'गणनावाचक अर्थशास्त्री'** (Cardinalists) कहा जाता है। १, २, ३, ४, इत्यादि सख्याओ को 'गणनावाचक सख्याएँ' (Cardinal numbers) कहा जाता है। ये सख्याएँ बताती है कि ४ दुगना बडा है २ से, इन दोनों का निरपेक्ष अन्तर (absolute difference) २ है तथा इनका जोड ६ है। **'गणनावाचक दृष्टिकोण' के अनुसार उपयोगिताओ को गणनावाचक सख्याएँ** प्रदान (assign) की जा सकती हैं। जैसे, किसी वस्तु की पहली इकाई से ६ इकाई (अर्थात् ६ पैसे या ६ रुपये इत्यादि)[4] के

---

[2] किसी वस्तु की इच्छा (desire) की जाती है, केवल यही बात उस वस्तु को उपयोगिता से आभूषित (invest) करने के लिए पर्याप्त है, चाहे वह वस्तु अहितकर हो या लाभदायक।

[3] "Utility signifies neither usefulness, nor 'satisfaction', but the intensity of desire for a thing" In the words of Fraser, 'It is simply desiredness'"

[4] कुछ अर्थशास्त्री उपयोगिता की इकाई को Util के नाम से पुकारते है, उदाहरणार्थ, उपयोगिता की ६ इकाई को वे ६ Utils कहेंगे।

बराबर उपयोगिता प्राप्त होती है, दूसरी इकाई से ४ के बराबर तथा तीसरी इकाई से २ के बराबर, इस प्रकार वस्तु की तीन इकाइयों से १२ इकाई के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। अत वस्तु विशेष की तीन इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता को गणनावाचक संख्या १२ प्रदान की जा सकती है, दूसरे शब्दों में, उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) किया जा सकता है। चूँकि उपयोगिताओं को गणनावाचक संख्याएँ (Cardinal numbers) प्रदान की जाती हैं, इसलिए इस दृष्टिकोण को 'गणनावाचक दृष्टिकोण' (Cardinal Approach) या 'गणनावाचक उपयोगिता दृष्टिकोण' (Cardinal Utility Approach) या केवल 'गणनावाचक उपयोगिता' (Cardinal Utility) कहते हैं।

क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach)—परन्तु कुछ अर्थशास्त्री, जैसे—पैरिटो (Pareto), ऐलन (Allen), हिक्स (Hicks), इत्यादि, मार्शल के विचार से सहमत नहीं हैं, उनका कहना है कि उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता है। इसके वे निम्न कारण बताते हैं

(१) उपयोगिता का अर्थ चाहे सन्तुष्टि से लिया जाये या इच्छा की तीव्रता से, दोनों ही मनोवैज्ञानिक तथा व्यक्तिगत (subjective) विचार हैं जिन्हें किसी वस्तुगत पैमाने (objective standard) से नहीं मापा जा सकता है।

(२) उपयोगिता केवल भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ ही भिन्न-भिन्न नहीं होती, बल्कि यदि एक ही व्यक्ति लिया जाये तो भी भिन्न-भिन्न समयों पर एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उस व्यक्ति की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ (reactions) होंगी। अत उपयोगिता हर समय बदलती रहती है, और ऐसी वस्तु को, जो कि हर समय बदलती रहती है, कैसे मापा जा सकता है।

(३) उपयोगिता मापने के लिए कोई निश्चित तथा स्थिर (constant) पैमाना नहीं है यद्यपि मार्शल ने उपयोगिता मापने के लिए द्रव्य रूपी पैमाने का प्रयोग किया, परन्तु द्रव्य रूपी पैमाना निश्चित तथा स्थिर नहीं होता, वह बदलता रहता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण हिक्स का कहना है कि उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता और इसलिए उन्होंने उपयोगिता विश्लेषण (Utility analysis) के स्थान पर 'तटस्थता-वक्र विश्लेषण' (Indifference-curve analysis) की नवीन रीति निकाली जिसमें उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं है। (तटस्थता-वक्र विश्लेषण के लिए अध्याय १७ देखिए।)

इस दृष्टिकोण को 'क्रमवाचक दृष्टिकोण' (Ordinal approach) कहते हैं तथा इस दृष्टिकोण या विचारधारा के मानने वाले अर्थशास्त्रियों को 'क्रमवाचक अर्थशास्त्री' (Ordinalists) कहा जाता है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, इत्यादि (first, second, third, and so on) को 'क्रमवाचक संख्याएँ' (Ordinal numbers) कहा जाता है। ये संख्याएँ निरपेक्ष अन्तर (absolute difference) के सम्बन्ध में कुछ नहीं बताती और न इनको जोड़ा ही जा सकता है। ये केवल इस बात को बताती है कि द्वितीय प्रथम से अधिक है या तृतीय द्वितीय से अधिक है परन्तु उनमें कितना निरपेक्ष अन्तर है इसका नहीं जाना जा सकता। इसके विपरीत 'गणनावाचक संख्याएँ' निरपेक्ष अन्तर को बताती हैं।

"यह विचारधारा (view) गणनावाचक मात्राओं (Cardinal quantities) के विचार को ही अस्वीकार करती है। इसके अनुसार उपयोगिताओं को केवल 'क्रमवाचक संख्याएँ' (Ordinal numbers) ही प्रदान (assign) की जा सकती हैं। उपयोगिताओं को एक क्रम (order) में व्यवस्थित (arrange) किया जा सकता है, उदाहरणार्थ, प्रथम, द्वितीय, इत्यादि। परन्तु इनको सख्यात्मक मात्रा या परिमाण (Numerical magnitude) प्रदान नहीं किया जा सकता। एक कमीज की उपयोगिता सेब की तुलना में अधिक हो सकती है, परन्तु एक व्यक्ति यह नहीं कह

सकता कि कमीज की उपयोगिता कितनी अधिक होती है। क्रमवाचक दृष्टिकोण के लिए उपयोगिता की 'इकाई' (unit) का कोई अर्थ नहीं होता। जब व्यक्ति वस्तुओं का मूल्यांकन करते हैं, तो वे उनको मूल्य या महत्त्व के एक क्रम में व्यवस्थित करते हैं, वे उनको गणनावाचक संख्याएँ प्रदान नहीं करते।"[5] चूँकि उपयोगिताओं को क्रमवाचक संख्याएँ प्रदान की जाती हैं, इस दृष्टिकोण को **'क्रमवाचक दृष्टिकोण** (Ordinal Approach) या **'क्रमवाचक उपयोगिता दृष्टिकोण'** (Ordinal Utility Approach) या केवल **'क्रमवाचक उपयोगिता'** (Ordinal Utility) कहते हैं।

निष्कर्ष—यद्यपि 'गणनावाचक दृष्टिकोण' पुराना मत है, परन्तु इसका अभी बिल्कुल अन्त नहीं हुआ है। 'गणनावाचक अर्थशास्त्रियों' तथा 'क्रमवाचक अर्थशास्त्रियों' में अभी तक विवाद चल रहा है, परन्तु अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री 'क्रमवाचक दृष्टिकोण' को मान्यता देते हैं और इसके अनुसार उपयोगिता एक गणनावाचक विचार (Cardinal concept) नहीं बल्कि क्रमवाचक विचार (Ordinal concept) है।

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता
(MARGINAL UTILITY AND TOTAL UTILITY)

सीमान्त उपयोगिता का अर्थ—किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई (Additional unit) के प्रयोग से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में, **"वस्तु की किसी मात्रा की सीमान्त उपयोगिता कुल उपयोगिता में वृद्धि है जो कि उपभोग में एक और इकाई के परिणामस्वरूप होती है।"**[6]

सीमान्त उपयोगिता का निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है

रोटियों की संख्या	सीमान्त उपयोगिता		कुल उपयोगिता
१	४	Positive Utility	४
२	३		७
३	२		९
४	१		१०
५	०	Zero Utility	१०→पूर्ण तृप्ति का बिन्दु (Point of Satiety)
६	—२	Negative Utility	८

उपर्युक्त उदाहरण में माना कि उपभोक्ता ३ रोटियों का उपभोग करता है तो उसको ९

[5] The view (i e ordinal approach) denies the very notion of cardinal quantities of utility. The only numbers that can be assigned to utilities are ordinal numbers Utilities can be arranged in *order* for example, first, second, and so on They cannot however, be assigned numerical magnitude A shirt may be said to have greater utility than an apple, one may not say *how many times* the utility of the shirt is greater A 'Unit' of utility has no meaning for the ordinal approach When men value goods they arrange them in order of value, they do not attach cardinal numbers to them "

[6] "The marginal utility of any quantity of a commodity is the increase in total utility which results from a unit increase in consumption " —*Boulding*

जाता है तो सीमान्त उपयोगिता (MU)=३ इकाई के।* इसी प्रकार वस्तु की तीन इकाइयों का प्रयोग करने से 'कुल उपयोगिता में वृद्धि' अर्थात् 'सीमान्त उपयोगिता=PN अर्थात् २ इकाई के। वस्तु की दूसरी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता)=३ इकाइयों के तथा वस्तु की तीसरी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता)=२ इकाइयों के, स्पष्ट है कि यहाँ पर कुल उपयोगिता में घटती हुई दर (Diminishing rate) से वृद्धि हो रही है, दूसरे शब्दों में, सीमान्त उपयोगिता 'कुल उपयोगिता में परिवर्तन' को बताती है।[10]

* दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि दूसरी इकाई की सीमान्त उपयोगिता L तथा M के बीच कुल उपयोगिता वक्र के ढाल (Slope) के बराबर होती है। बिन्दुओं L तथा M के बीच रेखा वास्तव में एक सरल रेखा (Straight line) नहीं होती; परन्तु विश्लेषण की सुविधा के लिए उसे लगभग एक सरल रेखा मान लिया जाता है; और इस स्थिति में सरल रेखा LM का ढाल बतायेगा कोण (angle) KLM, अर्थात्

$$\text{सरल रेखा LM का ढाल} = \frac{\text{लम्ब (Perpendicular)}}{\text{आधार (Base)}} = \frac{MK}{LK} = \frac{3}{1}$$

अर्थात् वस्तु की दो इकाइयों का प्रयोग करने से सीमान्त उपयोगिता ३ के बराबर है जो कि बिन्दुओं L तथा M के बीच TU रेखा के औसत ढाल को बताती है।

वास्तव में, रेखागणित के शब्दों में, एक कुल उपयोगिता वक्र (TU-curve) के किसी भी बिन्दु पर (अर्थात् वस्तु की किसी भी मात्रा की) सीमान्त उपयोगिता उस बिन्दु पर कुल उपयोगिता वक्र के ढाल के बराबर होती है। इस बात को चित्र न० ४ द्वारा दिखाया गया है।
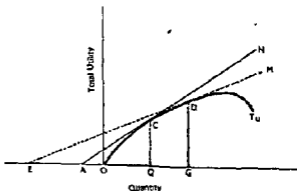
चित्र—४

चित्र ४ में TU रेखा के बिन्दु C को लेते हैं, इस बिन्दु पर एक स्पर्श रेखा (Tangent) खींचते हैं जो कि AN है। अब बिन्दु C पर TU रेखा का ढाल बतायेगा कोण QAC। दूसरे शब्दों में; TU रेखा के बिन्दु C पर (अर्थात् वस्तु की OQ मात्रा की) सीमान्त उपयोगिता=CQ/AQ। इसी प्रकार TU रेखा के किसी भी अन्य बिन्दु, जैसे, बिन्दु D पर (अर्थात् वस्तु की OG मात्रा की) सीमान्त उपयोगिता=DG/EG।

[10] यदि हम किसी वस्तु X की एक निश्चित मात्रा को Q द्वारा बतायें तथा उससे मिलने वाली कुल उपयोगिता को U द्वारा बतायें, और Δ (डेल्टा) का चिह्न 'थोड़े परिवर्तन' के लिए प्रयोग करें तो हम X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (MU_x) को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं:

$$MU_x = \frac{\Delta U}{\Delta Q}$$

अथवा चलन कलन (Differential calculus) के शब्दों में [illegible] उपयोगिता को इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$MU_x = \frac{dU}{dQ}$$

[जिन पाठकों को चलन-कलन का ज्ञान है वे इसको आसानी से समझ जायेंगे।]

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता मे सम्बन्ध (Relation between Marginal Utility and Total Utility)

रोटियो के उदाहरण से सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता मे सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। इस सम्बन्ध को निम्न प्रकार मे व्यक्त किया जाता है .

(१) प्रारम्भ मे, रोटियो की उत्तरोत्तर इकाइयो (successive units) के उपभोग से (अर्थात् ४ रोटियो तक) सीमान्त उपयोगिता धनात्मक रहती है तथा कम होती जाती है, और कुल उपयोगिता बढती जाती है परन्तु घटती हुई दर से बढती है।
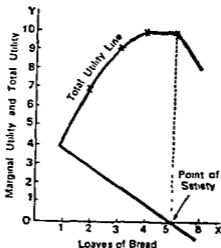
चित्र—५

(२) एक बिन्दु पर (अर्थात् ५वी रोटी पर) सीमान्त उपयोगिता घटकर शून्य हो जाती है इसलिए इस स्थान पर कुल उपयोगिता का बढना बन्द हो जाता है और वह अधिकतम हो जाती है। अत इस बिन्दु को 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' (Point of satiety) कहते हैं। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जाता है कि जहाँ पर सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है वहाँ पर कुल उपयोगिता अधिकतम होती है।

(३) यदि पूर्ण तृप्ति के बिन्दु के बाद (अर्थात् ५वी रोटी के बाद) और अधिक रोटियो का प्रयोग किया जाता है तो सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (negative) हो जाती है और इसलिए कुल उपयोगिता गिरने लगती है।

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता के उपर्युक्त सम्बन्ध को चित्र न० ५ द्वारा दिखाया जा सकता है। चित्र से स्पष्ट है कि ४ रोटियों तक सीमान्त उपयोगिता गिरती जाती है और कुल उपयोगिता मे वृद्धि होती है। ५वीं रोटी पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है तथा कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है। इसके बाद रोटियो के प्रयोग करने से सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है और कुल उपयोगिता गिरने लगती है।

सीमान्त के विचार का महत्त्व
(IMPORTANCE OF THE CONCEPT OF MARGIN)

सीमान्त का विचार या सीमान्त विश्लेषण (Marginal analysis) अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो की व्याख्या मे एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा करता है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रो अर्थात् उपभोग, विनिमय (मूल्य सिद्धान्त), उत्पादन, वितरण तथा राजस्व मे किया जाता है। अत प्रो० जे० के० मेहता के शब्दो मे, "यह कहा जा सकता है कि लगभग समस्त आर्थिक ढाँचा सीमान्त

दूसरे शब्दों में, 'उपभोक्ता की बचत, माँग रेखा तथा कीमत रेखा के बीच का क्षेत्रफल होता है। यदि कीमत गिरकर OP_2 हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत बढ़कर P_2BP हो जाती है। यदि कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत घटकर P_1AP हो जाती है। अतः सामान्यतया कीमत में कमी उपभोक्ता की बचत में वृद्धि करती है, और इसके विपरीत, कीमत में वृद्धि उपभोक्ता की बचत में कमी करती है।

मार्शल ने बताया कि किसी देश में उपभोक्ता की बचत वहाँ की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। उन्नतशील देशों में परिवहन तथा संवादवहन, समाचार-पत्र, इत्यादि की अधिक तथा सस्ती सुविधाएँ होती हैं जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को अधिक 'उपभोक्ता की बचत' प्राप्त होती है। इसके विपरीत पिछड़े तथा अविकसित देशों में ये सब सुविधाएँ कम तथा महँगी होती हैं, परिणामस्वरूप, ऐसे देशों के निवासियों को उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है।

उपभोक्ता की बचत की मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS OF CONSUMER'S SURPLUS)

मार्शल या उपभोक्ता की बचत का विचार निम्न मान्यताओं पर आधारित है :

(१) उपयोगिता मापनीय है तथा इसे मुद्रा रूपी पैमाने से मापा जा सकता है। (२) मार्शल ने प्रत्येक वस्तु को एक स्वतन्त्र (Independent) वस्तु माना है। दूसरे शब्दों में वस्तु विशेष की उपयोगिता उसकी स्वयं की पूर्ति पर निर्भर करती है और दूसरी वस्तुओं की पूर्ति से प्रभावित नहीं होती। (३) खरीदने की समस्त क्रिया में मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है। (४) मार्शल ने यह भी माना कि विचाराधीन वस्तु के कोई स्थानापन्न (substitutes) नहीं हैं और यदि उसकी स्थानापन्न वस्तुएँ हैं तो उन सबको एक वस्तु ही मान लेना चाहिए। (५) मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के विचार को सम्पूर्ण बाजार के सम्बन्ध में भी बताया। बाजार की उपभोक्ता की बचत को निकालने के लिए उन्होंने यह माना कि बाजार में उपभोक्ताओं की आय, रुचि, फैशन, इत्यादि में अन्तर तथा विभिन्नताएँ एक-दूसरे को नष्ट (neutralise or cancel out) कर देती हैं, इसलिए इन अन्तरों का कोई प्रभाव नहीं रह जाता।

उपभोक्ता की बचत को मापने की कठिनाइयाँ
(DIFFICULTIES IN THE MEASUREMENT OF CONSUMER'S SURPLUS)

अथवा

उपभोक्ता की बचत के विचार की आलोचना
(CRITICISM OF THE CONCEPT OF CONSUMER'S SURPLUS)

उपभोक्ता की बचत उपयोगिता के घटने की प्रवृत्ति पर आधारित है, परन्तु उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है जिसको मापना कठिन है और इसीलिए उपभोक्ता की बचत को भी ठीक प्रकार से नहीं मापा जा सकता। उपभोक्ता की बचत के विचार के सम्बन्ध में आलोचकों का कहना है कि (अ) यह विचार (concept) सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित नहीं है क्योंकि गलत मान्यताओं पर आधारित है, (ब) यदि इसे सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित भी मान लिया जाये तो इसको मुद्रा रूपी पैमाने से मापा नहीं जा सकता, और (स) इसलिए इसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं रह जाता। वास्तव में इस विचार की अधिकांश आलोचनाएँ अवास्तविक मान्यताओं तथा उपयोगिता को मापने की कठिनाइयों से सम्बन्धित हैं। इसकी मुख्य आलोचनाएँ या इसके मापने से सम्बन्धित मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित है

(१) उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता (Utility cannot be measured)—उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है जिसे निश्चित रूप से कीमत के रूप में अर्थात् मुद्रा रूपी पैमाने से मापा नहीं जा सकता। परन्तु मार्शल तथा उनके समर्थकों का कहना है कि निश्चित रूप से न सही परन्तु मोटे रूप से मुद्रा की सहायता से उपयोगिता को अवश्य मापा जा सकता है क्योंकि किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिताओं के अनुसार ही उपभोक्ता कीमत देता है या देने को तैयार होता है।

(२) द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान नहीं रहती (Marginal utility of money does not remain constant)—मार्शल ने यह माना कि किसी वस्तु को खरीदने की क्रिया मे उपभोक्ता के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है। परन्तु यह मान्यता उचित नहीं है। उपभोक्ता जैसे जैसे किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाइयाँ खरीदता जाता है, वैसे-वैसे उसके पास द्रव्य की मात्रा कम होती जाती है, परिणामस्वरूप द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है। अत ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता की बचत को मापना कठिन हो जाता है। द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहने की मान्यता में सत्यता का अश तब ही सकता है जबकि उपभोक्ता वस्तु विशेष पर अपनी आय का बहुत थोड़ा भाग व्यय करता है। प्रो० हिक्स (Hicks) ने इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से बताया कि उपभोक्ता की बचत का अर्थ द्राव्यिक आय (money income) मे वृद्धि से लिया जाना चाहिए जो कि वस्तु विशेष की कीमत मे कमी होने के कारण होती है।

(३) उपभोक्ता को पूरी माँग तालिका की जानकारी नहीं होती (Consumer does not know the full demand schedule)—यदि उपभोक्ता को किसी वस्तु के प्रयोग से वंचित करने का डर दिखाया जाये तो वह उस वस्तु के लिए कितना मूल्य देने को तैयार होगा, यह ठीक-ठीक जानना उपभोक्ता के लिए बहुत कठिन है। इसी प्रकार वस्तु की विभिन्न इकाइयो के लिए वह कितना कितना मूल्य देने को तैयार होगा यह जानना भी बहुत कठिन है, वह माँग मूल्यों का केवल एक साधारण अनुमान ही लगा सकता है। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता व्यावहारिक जीवन मे पहले बाजार म प्रचलित कीमत को मालूम करता है, तब वह यह निश्चित करता है कि वस्तु विशेष की कितनी इकाइयाँ खरीदी जायें। सक्षेप मे, कठिनाई यह है कि उपभोक्ता की माँग तालिका काल्पनिक होती है और केवल अनुमान पर आधारित होती है। इसलिए उपभोक्ता की बचत को ठीक-ठीक नही मापा जा सकता है।

(४) उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियो मे भिन्नता होती है (Consumers' economic conditions differ)—बाजार म सभी उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियाँ एक समान नही होती, कुछ धनी होते हैं तथा कुछ निर्धन, और धनी व्यक्तियो के लिए रुपये की उपयोगिता निर्धन व्यक्तियों की अपेक्षा कम होती है। एक धनी व्यक्ति एक वस्तु के लिए अधिक कीमत देने को तैयार हो सकता जबकि एक निर्धन व्यक्ति उस वस्तु के लिए कम कीमत देने को तैयार होता है परन्तु बाजार मे दोनो व्यक्ति उसी वस्तु के लिए एक ही कीमत देते हैं। अत धनी व्यक्ति को निर्धन की अपेक्षा, अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी। दूसरे शब्दो में, बाजार मे उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियो म अन्तर होने के कारण उपभोक्ता की बचत को ठीक प्रकार से नहीं मापा जा सकता।

परन्तु यह कठिनाई एक बड़ी बाधा (obstacle) नही है। जब बाजार मे बहुत व्यक्ति होते हैं तो 'औसत का नियम' (Law of Averages) लागू होने लगता है। कुछ धनी व्यक्तियो का धन (Wealth) दूसरे व्यक्तियों की गरीबी द्वारा सन्तुलित हो जाता है और इसलिए बाजार मे उपभोक्ताओं के आर्थिक अन्तरो पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता नही रह जाती है।

(५) उपभोक्ताओं की रुचियों तथा चेतन्यताओं में अन्तर (Consumers differ in tastes and sensibilities)—यदि यह मान लें कि बाजार में सभी उपभोक्ताओ की आर्थिक स्थितियाँ एकसमान हैं तो उनकी रुचियो तथा चेतन्यताओ मे अन्तर होता है। एक व्यक्ति की इच्छा वस्तु विशेष के लिए अधिक तीव्र हो सकती है अपेक्षाकृत दूसरे व्यक्ति के। ऐसी स्थिति मे पहला व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा उस वस्तु के लिए अधिक कीमत देने को तैयार होगा और इसलिए पहले व्यक्ति को अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी क्योंकि बाजार मे दोनो के लिए वस्तु की कीमत एक ही है।

परन्तु यह कठिनाई भी उपभोक्ता की बचत को मापने मे एक बड़ी बाधा नहीं है क्योंकि इस स्थिति मे भी 'औसत का नियम' लागू होता है। जब बाजार मे व्यक्तियों की अधिक सख्या

होती है तो उनकी रुचियों तथा चेतनताओं में अन्तर एक-दूसरे को नष्ट या सन्तुलित कर देता है और इस प्रकार अन्तरों पर ध्यान देने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है।

(६) **स्थानापन्न वस्तुओं के कारण कठिनाई** (Difficulties owing to the presence of substitutes)—उदाहरणार्थ, चाय तथा कॉफी एक-दूसरे की स्थानापन्न वस्तुएँ हैं। चाय तथा कॉफी दोनों की संयुक्त कुल उपयोगिता इन दोनों की अलग-अलग उपयोगिता के योग से अधिक होगी। माना कि दोनों के उपलब्ध न होने पर उपभोक्ता को ८० इकाइयों के बराबर 'सन्तुष्टि की हानि' या 'अनुपयोगिता' (loss of satisfiction or disutility) होती है और केवल चाय न मिलने पर उसे ३० इकाइयों के बराबर अनुपयोगिता मिलती है क्योंकि वह एक सीमा तक कॉफी का प्रयोग करके सन्तुष्टि की हानि को पूरा कर देता है। यदि उसे केवल कॉफी नहीं मिलती है तो उसे २० इकाइयों के बराबर अनुपयोगिता मिलती है क्योंकि एक सीमा तक चाय का प्रयोग करके वह अनुपयोगिता को कम कर देता है। इस प्रकार दोनों की अलग-अलग उपयोगिता का योग २०+३०=५० इकाइयों के बराबर होता है जबकि दोनों की संयुक्त कुल उपयोगिता ८० इकाइयों के बराबर है और यह अधिक है। ऐसी स्थिति में उपयोगिता की बचत को ठीक मापना बहुत कठिन है (इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए मार्शल ने यह सुझाव दिया कि स्थानापन्न वस्तुओं को एक ही वस्तु मान लेना चाहिए और तब इनसे प्राप्त होने वाली उपभोक्ता की बचत को मापना चाहिए।)

(७) **जीवनरक्षक परम्परागत आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत अनिश्चित होती है**—यदि जीवनरक्षक तथा आवश्यक वस्तुओं के प्रयोग से वंचित कर दिये जायें तो हम उनको प्राप्त करने के लिए सब कुछ देने को तैयार हो जाते हैं। एक प्यासा या भूखा व्यक्ति पानी या रोटी से वंचित कर देने की अवस्था में, एक गिलास पानी या रोटी के लिए कितना मूल्य देने को तैयार होगा यह कहना कठिन है और इस प्रकार उपभोक्ता की बचत को मापा नहीं जा सकता।

(८) **प्रतिष्ठात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी उपभोक्ता की बचत अनिश्चित होती है**—प्रतिष्ठात्मक वस्तुओं, जैसे—हीरे, जवाहरात इत्यादि—के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत को मालूम करना कठिन है। इन वस्तुओं की ऊँची कीमतों पर ही धनी व्यक्तियों को इनसे अधिक उपयोगिता मिलती है, इनकी कीमतों के कम हो जाने से उपयोगिता कम हो जाती है। अतः प्रतिष्ठात्मक वस्तुओं की कीमतों में कमी हो जाने से प्रायः उपभोक्ता की बचत में वृद्धि नहीं होती और इस प्रकार इन वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत अनिश्चित हो जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion)—उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जाता है कि उपभोक्ता की बचत का विचार काल्पनिक व अव्यावहारिक (imaginary and impractical) है। यद्यपि उपभोक्ता की बचत का विचार सैद्धान्तिक दृष्टि से पूर्ण रूप से सही नहीं है तथा इसकी पूर्ण सही माप नहीं हो सकती, परन्तु यह विचार कोरी कल्पना नहीं है और न बिल्कुल अव्यावहारिक है। व्यावहारिक जीवन में बहुत-सी वस्तुओं के प्रयोग से हम उपभोक्ता की बचत का अनुभव करते हैं। यद्यपि निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि कितनी उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है, इसका द्रव्य की सहायता से केवल मोटा अनुमान लगाया जा सकता है। **रोबर्टसन** (Robertson) का कथन ठीक है

> **यदि हम इस विचार से बहुत अधिक आशा न करें तो यह बौद्धिक रूप से आदरणीय है तथा व्यावहारिक कार्यों में मार्ग-प्रदर्शन करने की दृष्टि से लाभदायक है।**[1]

---

[1] Provided 'you do not except too much from it" the concept of consumer's surplus is "both intellectually respectable and useful as a guide to practical action"

उपभोक्ता की बचत का महत्व
(IMPORTANCE OF THE CONCEPT OF CONSUMER'S SURPLUS)

उपभोक्ता की बचत के महत्त्व को हम दो भागो मे अध्ययन कर सकते हैं: (I) सैद्धान्तिक महत्त्व, तथा (II) व्यावहारिक महत्त्व ।

(I) सैद्धान्तिक महत्त्व (Theoretical Importance)

उपभोक्ता की बचत का विचार किसी वस्तु के 'उपयोग-मूल्य' (value-in-use) तथा विनिमय-मूल्य (value-in-exchange) के अन्तर को स्पष्ट करता है। यह दैनिक जीवन का अनुभव है कि बहुत-सी वस्तुओ, जैसे—दियासलाई, समाचार-पत्र, पोस्टकार्ड, इत्यादि की उपयोगिता (अर्थात् उपयोग-मूल्य) अधिक होती है परन्तु उनके लिए दी जाने वाली कीमत (अर्थात् विनिमय-मूल्य) बहुत कम होती है । ऐसी वस्तुओं के प्रयोग से उपभोक्ता को 'उपभोक्ता की बचत' बहुत अधिक प्राप्त होती है । इस प्रकार यह विचार बताता है कि यह आवश्यक नही है कि किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर हो ।

(II) व्यावहारिक महत्त्व (Practical Importance)

(१) ***दो देशो या एक ही देश में भिन्न भिन्न समयों की आर्थिक स्थितियों की तुलना मे मदद***—जो देश अधिक उन्नतशील होगा वहाँ पर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तथा सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा मे तथा सस्ती होंगी और इसलिए उपभोक्ता की बचत अधिक प्राप्त होगी। दूसरे शब्दो मे, जिस देश मे लोगो को अधिक उपभोक्ता की बचत होती है वह देश आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नतशील माना जायेगा । इस प्रकार उपभोक्ता की बचत की सहायता से किसी समय दो देशो की आर्थिक स्थितियो की तुलना की जा सकती है । इसी प्रकार एक ही देश मे विभिन्न समयों पर उसकी आर्थिक स्थितियो की तुलना इस विचार की मदद से की जा सकती है ।

(२) **एकाधिकारी मूल्य निर्धारण मे सहायक**—यदि एकाधिकारी की वस्तु ऐसी है जिससे उपभोक्ताओ को बहुत अधिक उपभोक्ता की बचत होती है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य ऊँचा करके लाभ बढा सकता है । परन्तु मूल्य ऊँचा करने समय वह इस बात का ध्यान रखता है कि मूल्य इतना ऊँचा न हो कि वह सारी उपभोक्ता की बचत को समाप्त कर दे नहीं तो उपभोक्ताओ मे असन्तुष्टि फैलेगी और उसका अधिकार खतरे मे पड सकता है । वह मूल्य ऊँचा करते समय कुछ उपभोक्ता की बचत अवश्य छोड देता है ।

(३) **अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के लाभ की माप में सहायता**—प्राय एक देश दूसरे देश से ऐसी वस्तुओ का आयात करता है जो कि अपने देश मे कम हो तथा महँगी हो । ऐसी स्थिति मे देश मे वे वस्तुएँ सस्ती मिलने लगेंगी जिनका आयात किया जा रहा है, परिणामस्वरूप उपभोक्ता इन वस्तुओ के लिए पहले की अपेक्षा बाजार मे कम कीमत देंगे और इस प्रकार उन्हे सन्तुष्टि का अतिरेक (surplus) अनुभव होगा, दूसरे शब्दो मे, उन्हे उपभोक्ता की बचत प्राप्त होने लगेगी । इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का विचार अन्तरराष्ट्रीय व्यापार से उत्पन्न लाभ को मापता है ।

(४) **राजस्व तथा सार्वजनिक नीति मे महत्त्व**—किसी वस्तु पर टैक्स लगने से एक ओर तो उसकी कीमत बढ जाती है और इसलिए उससे प्राप्त उपभोक्ता की बचत घट जाती है, दूसरी ओर सरकार को कर के द्वारा अतिरिक्त आय (additional revenue) प्राप्त होती है । सरकार कर लगाने से जो अतिरिक्त आय प्राप्त करती है उसकी उपयोगिता को वह उपभोक्ता की बचत में कमी की पृष्ठभूमि मे देखती है । यदि कर ऐसा है कि जिससे उपभोक्ता की बचत मे कमी अधिक होती है अपेक्षाकृत अतिरिक्त आय की उपयोगिता के, तो ऐसा कर बुरा कर होगा जिसे सरकार लगाना पसन्द नहीं करेगी । इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का विचार राजस्व के क्षेत्र मे महत्त्व रखता है ।

राजस्व के क्षेत्र मे उपभोक्ता की बचत के महत्त्व को पूर्ण रूप से समझने के लिए इस बात पर भी ध्यान दिया जाता है कि वस्तु का उत्पादन कौन-से उत्पत्ति के नियम के अन्तर्गत हो रहा हैं । (1) **यदि वस्तु का उत्पादन 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो** वस्तु पर कर लगाने

से कीमत बढ़ेगी जिससे परिणामस्वरूप माँग घटेगी और उत्पादन कम किया जायेगा, उत्पादन कम होने से प्रति इकाई लागत बढ़ेगी जिसके कारण कीमत और बढ़ जायेगी, अतः ऐसी वस्तु पर कर लगाने से वस्तु की कीमत कर की मात्रा से अधिक बढ़ेगी। इसका परिणाम यह होगा कि सरकार को प्राप्त अतिरिक्त आय की अपेक्षा उपभोक्ताओं को 'उपभोक्ता की बचत' की हानि अधिक होगी, इसलिए सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर लगाना पसन्द नहीं करेगी। (ii) यदि वस्तु का उत्पादन 'लागत वृद्धि नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो वस्तु पर कर लगाने से कीमत बढ़ेगी, जिसके परिणामस्वरूप माँग घटेगी और उत्पादन कम किया जायेगा, उत्पादन कम होने से प्रति इकाई लागत घटेगी जिसके कारण कीमत कम होगी, अतः ऐसी वस्तु पर कर लगाने से वस्तु की कीमत कर की मात्रा से कम बढ़ेगी। इसका परिणाम यह होगा कि सरकार को प्राप्त अतिरिक्त आय की अपेक्षा उपभोक्ताओं को 'उपभोक्ता की बचत' की हानि कम होगी, इसलिए सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर लगायगी। (iii) यदि वस्तु का उत्पादन 'समान लागत नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तु पर कर लगाना उचित नहीं है क्योंकि इससे सरकार को लाभ कम होगा अपेक्षाकृत उपभोक्ताओं के नुकसान के।

इस प्रकार जब सरकार किसी उद्योग को आर्थिक सहायता (bounty) देती है तो उपभोक्ता की बचत को ध्यान में रखती है। यदि उद्योग ऐसा है जो कि लागत ह्रास के नियम के अन्तर्गत वस्तु का उत्पादन कर रहा है तो सरकार द्वारा आर्थिक सहायता देना उचित होगा। ऐसे उद्योग को आर्थिक सहायता देने से लागत कम होगी इसलिए मूल्य कम होगा और वस्तु की माँग बढ़ेगी, माँग बढ़ने से वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जायेगा, उत्पादन बढ़ने से प्रति इकाई लागत और कम होगी और मूल्य भी और कम होगा। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत में बहुत वृद्धि होगी। स्पष्ट है कि लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत कार्य करने वाले उद्योग को सरकारी आर्थिक सहायता देना हितकर है जबकि लागत-वृद्धि नियम के अन्तर्गत उद्योग को सरकार द्वारा आर्थिक सहायता देना उचित नहीं है।

निष्कर्ष – स्पष्ट है कि उपभोक्ता की बचत का विचार बेकार नहीं है। इसका महत्व केवल सैद्धान्तिक ही नहीं बल्कि व्यावहारिक भी है। यह मोटे रूप से व्यावहारिक कार्यों में मार्ग-प्रदर्शन करने की दृष्टि से लाभदायक है।

हिक्स द्वारा उपभोक्ता की बचत का पुनर्निर्माण
(REHABILITATION OF CONSUMER'S SURPLUS BY HICKS)

मार्शल उपभोक्ता की बचत के विचार का प्रतिपादन करते समय कुछ ऐसी मान्यताओं को लेकर चले जो अवास्तविक (unreal) थीं। हिक्स तथा अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने बताया कि मुख्य अवास्तविक मान्यताएँ निम्न हैं (१) उपयोगिता को निश्चित रूप में मुद्रा रूपी पैमाने से मापा जा सकता है। परन्तु उपयोगिता तो एक मनोवैज्ञानिक वस्तु है जिसको परिमाणात्मक रूप में (quantitatively) मापा नहीं जा सकता है। (२) विनिमय की क्रिया में मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है। परन्तु यह मान्यता भी अवास्तविक है क्योंकि मुद्रा के व्यय होने जाने के साथ उसकी सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है, स्थिर नहीं रहती। (३) एक वस्तु की माँग को दूसरी वस्तुओं से स्वतन्त्र (indepedent) माना, परन्तु स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं का प्रभाव उस वस्तु की माँग पर पड़ता है।

अवास्तविक मान्यताओं को दूर करने के लिए हिक्स ने उपभोक्ता की बचत के विचार का पुनर्निर्माण (re-establishment) तटस्थता-वक्र विश्लेषण के द्वारा किया—(१) तटस्थता-वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता की बचत की व्याख्या करने में उपयोगिता को परिमाणात्मक रूप में मापने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार हिक्स ने मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत के विचार की एक मुख्य आलोचना को दूर करने का प्रयत्न किया। (२) इस विश्लेषण-विधि में उन्होंने मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर नहीं माना तथा स्थानापन्न और पूरक वस्तुओं के प्रभाव को भी ध्यान में रखा। इस प्रकार प्रो० हिक्स ने अन्य दो अवास्तविक मान्यताओं को भी

दूर करने का प्रयत्न किया। (३) हिक्स ने उपभोक्ता की बचत के विचार को एक दूसरे प्रकार से इस प्रकार परिभाषित किया—जब किसी वस्तु की कीमत गिर जाती है तो इसके दो प्रभाव होते हैं (अ) उपभोक्ता वस्तु की कुछ अधिक मात्रा खरीद सकता है और उसको किसी अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयोग कर सकता है जिसकी कीमत कम नहीं हुई है। (ब) कीमत गिर जाने से वस्तु सस्ती हो जाती है इसलिए वस्तु पर उपभोक्ता का व्यय पहले की अपेक्षा कम हो जाता है। इन दोनों बातों का प्रभाव यह होता है कि उपभोक्ता की स्थिति पहले की अपेक्षा अच्छी हो जाती है। दूसरे शब्दों में यदि किसी वस्तु की कीमत गिर जाती है तो एक प्रकार से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है। अत **हिक्स ने बताया कि उपभोक्ता की बचत को, किसी वस्तु की कीमत में कमी होने के परिणामस्वरूप, द्राव्यिक आय में लाभ** *(gain in monetary income)* **की भाँति समझना चाहिए।**

तटस्थता वक्र रेखाओं[5] के द्वारा उपभोक्ता की बचत की व्याख्या चित्र न २ द्वारा की गयी है। माना कि उपभोक्ता की द्राव्यिक आय (money income) OA है। X-वस्तु को X-axis पर दिखाया गया है। AB 'कीमत रेखा' (Price line) है। P बिन्दु उपभोक्ता का 'सन्तुलन बिन्दु' (Equilibrium point) है जो कि X-वस्तु की OQ मात्रा+OM द्रव्य के संयोग को बताता है अर्थात् उपभोक्ता X-वस्तु की OQ मात्रा को खरीदने के लिए AM या LP द्रव्य देता है। S बिन्दु नीचे की तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर है, इसका अर्थ है कि X-वस्तु की उतनी ही मात्रा OQ को खरीदने के लिए उपभोक्ता LS या AN द्रव्य देने को तैयार है, परन्तु वह वास्तव में, LP या AM द्रव्य ही देता है, अत LS—LP =PS या MN उपभोक्ता की बचत हुई।
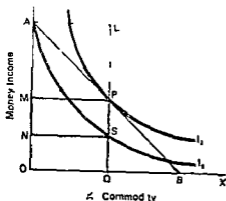
चित्र—२

प्रश्न

१ उपभोक्ता की बचत की सकल्पना (concept) की व्याख्या कीजिए तथा उसके व्यावहारिक महत्त्व को बताइए।

Explain the concept of consumer s surplus and give its practical importance

(Meerut, B A , 1976)

२ उपभोक्ता की बचत की परिभाषा दीजिए तथा विवेचना कीजिए। उत्तर मे उदाहरणो तथा रेखाचित्रो का प्रयोग कीजिए।

Define and discuss the concept of consumer s surplus *Illustrate your answer with examples and diagrams.* *(Allahabad, B Com , 1972)*

---

[5] तटस्थता-वक्र रेखा विश्लेषण (Indifference curve technique) को अच्छी प्रकार से समझने के लिए *'तटस्थता-वक्र रेखाओं' के अध्याय को देखिए।*

३ 'उपभोक्ता के बचत' के विचार की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
Discuss critically the doctrine of consume s surplus (M. r.t. 1971

४. उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। इसकी सीमाएँ क्या हैं ?
Explain the doctrine of consumer's surpl s What are its limitations ?

५ उपभोक्ता की बचत के मापने की क्या कठिनाइयाँ है ? इसके माप की हिक्स की रीति मार्शल की रीति से किस प्रकार श्रेष्ठ है ?

What are the difficulties in the measurement of consumer s surplus ? How is the technique of measurement suggested by Hicks an improvement over that of Marshall ?

६ उपभोक्ता की बचत के स्वभाव की विवेचना कीजिए और उपयोगिता ह्रास नियम के साथ इसके सम्बन्ध को बताइए।

Discuss the nature of consumer's surplus and its relationship with the la v of dim nishing utility *(Lucknow, B A I, 1967)*

17 प्रतिस्थापन का नियम
[THE LAW OF SUBSTITUTION]

प्रतिस्थापन का नियम
(THE LAW OF SUBSTITUTION)

प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (Principle of Substitution) या प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution) एक महत्त्वपूर्ण व्यापक (general) नियम है जो कि दैनिक जीवन के अनुभव पर आधारित है। मनुष्य अपने सीमित साधनो से असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। अत वह अपने सीमित साधनो को इस प्रकार से व्यय करना चाहता है कि उसे अधिकतम सन्तोष मिले। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह पहले अधिक जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा और बाद मे कम जरूरी आवश्यकताओ की। परन्तु एक ही आवश्यकता की पूर्ति करते जाने से, उपयोगिता ह्रास नियम के कारण, उसकी उपयोगिता कम होती जायेगी। अब उपभोक्ता के लिए दूसरी आवश्यकता अधिक जरूरी प्रतीत होने लगती है। ऐसा अनुभव करते ही वह अपने साधन को कम लाभदायक प्रयोग से अधिक लाभदायक प्रयोग मे हस्तान्तरित कर देता है, दूसरे शब्दो म, कम लाभदायक वस्तु के स्थान पर अधिक लाभदायक वस्तु का प्रतिस्थापन करने लगता है और ऐसा तब तक करता जायेगा जब तक कि दोनो वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर न हो जायें। इसी प्रकार उत्पत्ति के क्षेत्र मे, एक उत्पादक अधिक महँगे साधन के स्थान पर सस्ते साधन का प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनो की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivities) बराबर न हो जायें।

प्रतिस्थापन के नियम का सामान्य कथन (General Statement of the Law of Substitution)

कम-उपयोगी वस्तु (low-utility commodity) के स्थान पर अधिक-उपयोगी वस्तु (high-utility commodity) का या महँगे उत्पत्ति के साधन (high-cost factor of production) के स्थान पर कम महँगे साधन (low-cost factor) का प्रतिस्थापन करना ही प्रतिस्थापन का नियम या सिद्धान्त कहा जाता है। प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादक तथा व्यक्ति प्रतिस्थापन की सहायता से अपने सन्तोष या उपयोगिता या लाभ को अधिकतम करता है। अत प्रतिस्थापन का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रो मे लागू होता है।

समसीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-marginal Utility)

उपभोग में प्रतिस्थापन के सिद्धान्त को समसीमान्त उपयोगिता नियम[1] के नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने की दृष्टि से उपभोक्ता अपने सीमित द्रव्य

---

[1] 'उपभोग मे प्रतिस्थापन का सिद्धान्त' (Law of Substitution in Consumption) या 'सम-सीमान्त उपयोगिता नियम' के अतिरिक्त इसे कई अन्य नामो से पुकारा जाता है। इसे 'अधिकतम सन्तुष्टि का नियम' (Law of Maximum Satisfaction) भी कहते है क्योंकि *(Contd)*

या सीमित वस्तु को विभिन्न प्रयोगों में इस प्रकार बाँटता है कि प्रत्येक प्रयोग में सीमान्त उपयोगिता समान मिले। नियम की आधुनिक व्याख्या के परिणामस्वरूप इसे 'आनुपातिकता का नियम' (Law of Proportionality) भी कहते है, इसका विवरण आगे दिया गया है। यह नियम 'उपभोक्ता के सन्तुलन' (Equilibrium of Consumer) को बताता है। जब प्रत्येक दिशा में उपयोगिता बराबर होती है तो उपभोक्ता को अधिकतम सन्तोष प्राप्त होता है क्योंकि ऐसी स्थिति में वह द्रव्य या वस्तु को एक प्रयोग में दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित करके उपयोगिता या सन्तोष में कोई वृद्धि नहीं कर सकता। अतः अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने के कारण उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में रहता है।

समसीमान्त उपयोगिता नियम का कथन (Statement of the Law)

मार्शल ने इस नियम की परिभाषा इस प्रकार दी है, "यदि किसी व्यक्ति के पास एक ऐसी वस्तु है जो अनेक प्रयोगों में लायी जा सकती है तो वह उसको विभिन्न प्रयोगों में इस प्रकार बाँटेगा कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सभी प्रयोगों में समान रहे, क्योंकि यदि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एक प्रयोग में दूसरे की अपेक्षा अधिक है तो वह दूसरे प्रयोग से वस्तु की मात्रा हटाकर तथा उसका प्रयोग पहले में करके लाभ प्राप्त कर सकता है।"[1]

मार्शल की उपर्युक्त परिभाषा एक व्यापक परिभाषा है, यद्यपि यह परिभाषा वस्तु के सम्बन्ध में दी गयी है, परन्तु यदि वस्तु के स्थान पर द्रव्य का प्रयोग किया जाय तो यह द्रव्य के सम्बन्ध में भी लागू होती है। *द्रव्य एक ऐसी वस्तु है जिसका अनेक प्रयोगों में बाँटा जा सकता है* अर्थात् विभिन्न वस्तुओं पर व्यय किया जा सकता है। द्रव्य के सम्बन्ध में नियम का कथन, इस प्रकार दिया जा सकता है—एक व्यक्ति अपनी सीमित आय (अर्थात् द्रव्य) से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए द्रव्य को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करेगा कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय किये गये द्रव्य की अन्तिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता) समान हो।

नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Law)

अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भाँति यह नियम भी कुछ मान्यताओं पर आधारित है। मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं

(१) मनुष्य को विवेकशील प्राणी (rational person) मानकर चलते हैं। उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है और इसलिए अपनी सीमित आय को सोच-समझकर व्यय करता है। वह द्रव्य को विभिन्न वस्तुओं पर व्यय करते समय उनसे प्राप्त उपयोगिताओं की तुलना करता है। (२) उपभोक्ता की आय, रुचि, इत्यादि एक निश्चित समयावधि में समान रहते हैं और उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। (३) द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है अर्थात् द्रव्य के कम या अधिक होने से उसकी सीमान्त उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं होता। (४) उपभोक्ता अपने द्रव्य को बहुत थोड़ी थोड़ी मात्रा (very small amounts) में व्यय करता है। (५) उपयोगिता को द्रव्य रूपी पैमाने से मापा जा सकता है।

इसके प्रयोग से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इसे 'तटस्थता का नियम' (Law of Indifference) भी कहते हैं क्योंकि विभिन्न प्रयोगों से उपयोगिता समान मिलने के कारण उपभोक्ता उनके प्रति तटस्थ (Indifferent) हो जाता है। इसे 'उपभोग का नियम' (Law of Consumption) भी कहते हैं क्योंकि यह नियम बताता है कि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को किस प्रकार उपभोग करना चाहिए। इसे 'मितव्ययिता का नियम' (Law of Economy) भी कहते हैं क्योंकि यह नियम बताता है कि एक व्यक्ति को अपने सीमित साधनों को मितव्ययिता के साथ प्रयोग करना चाहिए तभी उसे अधिकतम सन्तोष मिलेगा। गोसेन (Gossen) के नाम पर इसे 'गोसेन का दूसरा नियम' (Second Law of Gossen) भी कहते हैं।

[1] If a person has a thing which he can put to several uses he will distribute it among these uses in such a way that it has the *same marginal utility in all*. For if it had a greater marginal utility in one use than another he would gain by taking some of it from second use and applying into the first."

उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा नियम का स्पष्टीकरण

माना एक व्यक्ति के पास ८ रुपये हैं जिन्हें दो वस्तुओं—गेहूँ और चीनी—पर व्यय करना चाहता है और वह प्रत्येक वस्तु पर एक-एक रुपये करके व्यय करता है। वस्तुओं पर प्रत्येक १ रुपये का व्यय करने से प्राप्त उपयोगिताएँ निम्न तालिका से स्पष्ट हैं

द्रव्य (रु०) की इकाइयाँ	गेहूँ से उपयोगिता	चीनी से उपयोगिता
१	१८ (१)	१४ (३)
२	१६ (२)	१२ (५)
३	१४ (४)	१० (७)
४	१२ (६)	८
५	१० (८)	६
६	८	४
७	६	२
८	४	०

उपभोक्ता सर्वप्रथम १ रुपये को उस वस्तु पर व्यय करेगा जिसमें उसको अधिकतम उपयोगिता मिलती है। तालिका से स्पष्ट है कि रुपये की पहली इकाई वह गेहूँ पर व्यय करेगा क्योंकि उसे १८ इकाइयों के बराबर उपयोगिता मिलती है। दूसरे रुपये को भी वह गेहूँ पर व्यय करेगा। तीसरे रुपये को वह गेहूँ या चीनी में से किसी पर व्यय कर सकता है क्योंकि दोनों दिशाओं से समान उपयोगिता अर्थात् १४ के बराबर उपयोगिता मिलती है, माना कि तीसरा रुपया वह चीनी पर व्यय करता है, चौथा रुपया गेहूँ पर, पाँचवाँ रुपया चीनी पर, छठा रुपया गेहूँ पर, सातवाँ रुपया चीनी पर तथा आठवाँ रुपया गेहूँ पर व्यय करता है। दोनों वस्तुओं पर द्रव्य की व्यय की जाने वाली इकाइयों को कोष्ठकों (brackets) में दिखाया गया है। इस प्रकार उपभोक्ता ८ रुपये में से ५ रुपये गेहूँ पर और ३ रुपये चीनी पर व्यय करता है। द्रव्य को इस प्रकार से व्यय करने से दोनों दिशाओं से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर हैं अर्थात् १० के बराबर हैं। अतः उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी। यह सिद्धान्त दो से अधिक वस्तुओं पर भी इसी प्रकार लागू होगा। इसको चित्र संख्या १ द्वारा स्पष्ट किया गया है।
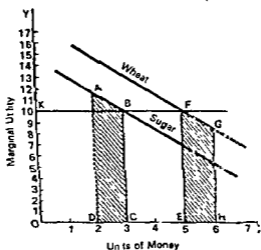
चित्र—१

चित्र में दो रेखाएँ खींची गयी हैं जो कि गेहूँ तथा चीनी पर द्रव्य को व्यय करने से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिताओं को बताती हैं। चित्र से स्पष्ट है कि गेहूँ पर ५ रुपये व्यय करने

से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता FE के बराबर तथा चीनी पर ३ रुपये व्यय करने से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता BC के बराबर है, ये दोनों सीमान्त उपयोगिताएँ (१० इकाई के) बराबर हैं। दोनों दिशाओं में सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर होने से ही उपभोक्ता को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। माना कि वह अपने व्यय करने के क्रम को बदल देता है। ५ रुपये के स्थान पर वह ६ रुपये गेहूँ पर और ३ रुपये के स्थान पर २ रुपये चीनी पर व्यय करता है। ऐसा करने से उसे EFGH के बराबर कुल उपयोगिता में वृद्धि होती है और DABC के बराबर कुल उपयोगिता में नुकसान होता है। स्पष्ट है कि नुकसान लाभ की अपेक्षा अधिक है। अतः उपभोक्ता को अधिकतम लाभ नहीं होगा जबकि द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ दोनों दिशाओं में बराबर हों।

नियम की आधुनिक व्याख्या—आनुपातिकता का नियम (Modern Interpretation of the Law—Law of Proportionality)

आधुनिक अर्थशास्त्री समसीमान्त उपयोगिता नियम को अधिक उचित तरीके से बताते हैं। नियम की नयी व्याख्या निम्न विवरण से स्पष्ट है। माना कि एक व्यक्ति के पास किसी वस्तु की ४ इकाइयाँ हैं और इस स्थिति में उसको वस्तु से ७ रुपये के बराबर सीमान्त उपयोगिता मिलती है। यदि वस्तु की कीमत ७ रुपये से कम है तो उसके लिए वस्तु की अधिक इकाइयाँ को खरीदना लाभदायक होगा क्योंकि कीमत की अपेक्षा म उसको उपयोगिता अधिक मिलती है। उपभोक्ता वस्तु की अधिक इकाइयाँ उस स्थान तक खरीदता जायगा जब तक वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर न हो जाय। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसकी कीमत में अनुपात इकाई के बराबर होना चाहिए (यदि यह अनुपात ठीक इकाई के बराबर नहीं हो पाता तो जहाँ तक सम्भव हो इकाई के निकट होना चाहिए)। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु A से प्राप्त होने वाली उपयोगिता ७ रुपये के बराबर है और उसकी कीमत ७ रुपये है तो उपयोगिता तथा कीमत में अनुपात ($\frac{७}{७}=१$) इकाई के बराबर होगा। इसी प्रकार उपभोक्ता दूसरी वस्तु B को उस सीमा तक खरीदेगा जहाँ पर कि वस्तु B से मिलने वाली उपयोगिता तथा उसकी कीमत का अनुपात इकाई के बराबर हो जाये। अतः एक वस्तु A की सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) तथा कीमत (Price) का अनुपात, दूसरी वस्तु B की सीमान्त उपयोगिता तथा कीमत के अनुपात के बराबर होना चाहिए क्योंकि दोनों अनुपात इकाई के बराबर हैं। यह तर्क दो से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी लागू होगा। माना कि एक व्यक्ति अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं A, B, C, इत्यादि पर व्यय करना चाहता है, तो अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने और सन्तुलन की स्थिति में रहने के लिए निम्न सम्बन्ध पूरा होना चाहिए :

$$\frac{\text{Marginal Utility of A}}{\text{Price of A}}=\frac{\text{M. U. of A}}{\text{Price of B}}=\frac{\text{M. U. of C}}{\text{Price of C}}=\text{etc.}$$

चूँकि एक वस्तु की उपयोगिता तथा कीमत का अनुपात दूसरी वस्तु की उपयोगिता तथा कीमत के अनुपात के बराबर होता है, इसलिए सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को 'आनुपातिकता का नियम' (Law of Proportionality) भी कहते हैं।

'प्रतिस्थापन का नियम' या 'समसीमान्त उपयोगिता नियम' का क्षेत्र, प्रयोग या महत्त्व
(SCOPE OR APPLICATION OR IMPORTANCE OF THE 'LAW OF SUBSTITUTION' OR THE 'LAW OF EQUI-MARGINAL UTILITY')

मार्शल के अनुसार, "प्रतिस्थापन के सिद्धान्त का प्रयोग आर्थिक खोज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है।"[1] सम-सीमान्त उपयोगिता नियम बताता है कि एक व्यक्ति अपने सीमित साधन (अर्थात् द्रव्य) को असीमित आवश्यकताओं के समक्ष किस प्रकार से व्यय करे कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। रोबिन्स की परिभाषा भी सीमित साधनों तथा असीमित आवश्यकताओं

[1] "The application of the principle of substitution extends over almost every field of economic enquiry." —Marshall, *Principles of Economics*, p. 341

के बीच मानव व्यवहार के सम्बन्ध पर प्रकाश डालती है। अतः इस नियम को 'अर्थशास्त्र का आधार' कहा जा सकता है। इस नियम का विभिन्न क्षेत्रो मे प्रयोग निम्न विवरण से स्पष्ट है.

(१) उपभोग के क्षेत्र मे प्रयोग

'उपभोग म प्रतिस्थापन के सिद्धान्त' को समसीमान्त उपयोगिता नियम कहा जाता है जिसका अध्ययन विस्तृत रूप से हम कर चुके हैं। यह नियम बताता है कि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधन (वस्तु या द्रव्य) को विभिन्न प्रयोगो में इस प्रकार बाँटता है कि प्रत्येक प्रयोग से सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर हो।

(२) उत्पादन के क्षेत्र मे प्रयोग

प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके लिए उत्पादक उत्पत्ति के विभिन्न साधनो को इस प्रकार मिलायगा कि कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त हो। इस सम्बन्ध म उत्पादक को प्रतिस्थापन के सिद्धान्त की सहायता लेनी पडती है। अधिकतम उत्पत्ति कम स कम लागत पर प्राप्त करने के लिए उत्पादक एक महँगे तथा कम उत्पादक साधन के स्थान पर सस्ते तथा अधिक उत्पादक साधन का प्रतिस्थापन करेगा और उस सीमा तक प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनों साधनो की सीमान्त उत्पादकताएं बराबर न हो जायें। इस बात को प्रो॰ बेन्हम[4] ने निम्न प्रकार से व्यक्त किया.

$$\text{यदि } \frac{\text{Marginal Product of Factor A}}{\text{Price of Factor A}} > \frac{\text{Marginal Product of Factor B}}{\text{Price of Factor B}}$$

तो उत्पादक साधन B के स्थान पर साधन A का प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनो अनुपात बराबर न हो जायें। यह बात दो से अधिक साधनो के सम्बन्ध म भी लागू होगी, अर्थात्

$$\frac{\text{M P of Factor A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{M P of Factor B}}{\text{Price of B}} = \frac{\text{M P of Factor C}}{\text{Price of C}} = \text{etc.}$$

इसी प्रकार उत्पत्ति के एक साधन के विभिन्न प्रयोगो के सम्बन्ध मे भी यह नियम लागू होता है। उदाहरणार्थ, भूमि का विभिन्न प्रयोगो (खेती करने, मकान निर्माण करने, इत्यादि) मे उत्पादक इस प्रकार बाटेगा कि प्रत्येक दिशा से सीमान्त उत्पादकताएँ समान हो।

(३) विनिमय के क्षेत्र मे प्रयोग

(अ) वास्तव मे विनिमय एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु के प्रतिस्थापन करने के अतिरिक्त और कुछ नही है। एक वस्तु की न्यूनता (scarcity) होने के कारण उसकी कीमत ऊँची हो जाती है तो हम अधिक न्यून वस्तु (more scarce good) के स्थान पर कम न्यून वस्तु (less scarce good) का प्रतिस्थापन करने लगते हैं और इस प्रकार से न्यून वस्तु की कमी समाप्त हो जाती है तथा उसकी कीमत गिर जाती है। (ब) मूल्य निर्धारण म सीमान्त उपयोगिता मदद करती है। एक उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर ही देना चाहेगा, सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नही देगा। (स) इसी प्रकार वस्तु-विनिमय के सम्बन्ध में व्यक्तियो के बीच दो वस्तुओ का विनिमय तब तक होगा जब तक कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए दोनों वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर न हो जायें, तभी वस्तु विनिमय से दोनों पक्षो को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

(४) वितरण के क्षेत्र मे प्रयोग

वितरण की समस्या है कि संयुक्त उत्पादन मे से विभिन्न उत्पत्ति के साधनो का हिस्सा कैसे निश्चित किया जाये? इसको हल करने के लिए हम प्रतिस्थापन या समसीमान्त उत्पादकता के नियम की मदद लेते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही मूल्य दिया जाता है।

---

[4] Benham, *Economics*, p 187

(२) राजस्व के क्षेत्र में प्रयोग

सरकार का उद्देश्य अपनी सीमित आय से अधिकतम सामाजिक कल्याण (Maximum Social Advantage) प्राप्त करना होता है। इसमें सम-सीमान्त उपयोगिता नियम सहायक होता है। सरकार अपनी सीमित आय को विभिन्न मदों (items) पर इस प्रकार व्यय करती है कि प्रत्येक दिशा से 'सीमान्त सामाजिक उपयोगिता' बराबर हो।

नियम की आलोचना या सीमाएँ
(CRITICISM OR LIMITATIONS OF THE LAW)

प्रतिस्थापन के नियम या सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की कई आलोचनाएँ की हैं जिनका निचोड़ यह है कि बहुत-सी सीमाओं तथा कठिनाइयों के परिणामस्वरूप यह नियम व्यावहारिक जीवन में लागू नहीं हो पाता है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ तथा सीमाएँ निम्न हैं :

(१) प्रायः उपभोक्ता हिसाबी स्वभाव के नहीं होते (Generally consumers do not go into details of calculations)—इस नियम की मान्यता है कि अधिकतम सन्तुष्टि को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं का हिसाब लगाकर ही उन पर द्रव्य व्यय करना चाहिए। परन्तु व्यवहार में अधिकांश व्यक्ति इस हिसाबी चक्कर में नहीं पड़ते, वे अपनी आय को आदत इत्यादि के वश होकर व्यय करते हैं।

(२) वस्तुओं की अविभाज्यता (Indivisibility of goods)—प्रो० बोल्डिंग ने इस सीमा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। नियम लागू होने के लिए एक मान्यता यह है कि प्रयोग की जाने वाली वस्तु को छोटी-छोटी इकाइयों (doses or units) में प्रयोग किया जाय। परन्तु बहुत-सी वस्तुएँ, जैसे रेडियो, पंखा, कार, मकान, इत्यादि ऐसी हैं जिनको छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित नहीं किया जा सकता और इसलिए इन वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं की तुलना करना सम्भव नहीं और न ही इनकी तुलना अन्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं से की जा सकती है। उदाहरणार्थ, कारों (cars) की सीमान्त उपयोगिता की तुलना कैमरे की सीमान्त उपयोगिता से नहीं की जा सकती क्योंकि कार को टुकड़े-टुकड़े करके या छोटी-छोटी इकाइयों में नहीं खरीदा जा सकता।

(३) अनिश्चित 'बजट-अवधि' या कुछ वस्तुओं का अधिक टिकाऊ होना (Indefinite 'Budget-period' or some goods are more durable)—प्रो० बोल्डिंग (Boulding) के अनुसार हमारी बजट-अवधि (Budget-period) निश्चित नहीं है जबकि यह नियम एक निश्चित बजट-अवधि में ही लागू होता है। समय की वह अवधि जिसमें कि हम यह विचार करते हैं कि अपनी आय का कितना भाग विभिन्न वस्तुओं पर व्यय किया जाये, उसे 'बजट-अवधि' कहते हैं, यह प्रायः एक साल होती है, इससे भी अधिक कोई भी अवधि हो सकती है। नियम के अनुसार, उपभोक्ता अपनी एक बजट अवधि की सीमित आय से उस अवधि में ही अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। परन्तु बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी हैं जो कि एक बजट-अवधि में खरीदी जाती हैं जबकि उनका प्रयोग दूसरी बजट-अवधि में भी किया जा सकता है. उदाहरणार्थ, कार, पंखा, फर्नीचर, इत्यादि टिकाऊ वस्तुएँ (durable goods) हैं जिनका वर्षों तक प्रयोग किया जाता है। ऐसी वस्तुओं को खरीदते समय हम उनकी उपयोगिताओं की तुलना केवल बजट-अवधि के लिए ही नहीं करते बल्कि आने वाले कई वर्षों तक प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं को भी ध्यान में रखते हैं। अतः ऐसी स्थिति में यह नियम लागू नहीं होता।

(४) आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन (Habit, customs and fashion)—व्यवहार में मनुष्य प्रायः आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन से प्रभावित होता है। वह सोच-समझकर विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं का ध्यान में रखकर व्यय नहीं करता। रीति-रिवाज, फैशन, इत्यादि के कारण वह उन वस्तुओं पर तथा उन प्रयोगों में अपनी आय को व्यय करता है जिनसे उसको कम उपयोगिता मिलती है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति पुत्र होने पर रीति-रिवाज के कारण समाज में अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों को पार्टी देता है जबकि इससे उसको उपयोगिता कम मिलती

है। इसी प्रकार फैशन के वश एक सामान्य आय का व्यक्ति एक बड़े होटल में ७५ पैसे या एक रुपये में चाय का एक प्याला पीता है जबकि उसकी उपयोगिता कम है, इसी प्रकार आदतवश मनुष्य सिगरेट, शराब इत्यादि पर अपनी आय का एक अच्छा भाग व्यय कर देता है। अतः आदत, रीति-रिवाज, फैशन, इत्यादि इस नियम के लागू होने में बाधक होते हैं।

(५) अज्ञानता, आलस्य तथा लापरवाही (Ignorance, laziness and carelessness)—बहुत-से उपभोक्ता बाजार में प्रचलित विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों तथा अन्य बातों से अनभिज्ञ होते हैं और इसलिए वे अपनी आय का व्यय करते समय विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं की ठीक प्रकार से तुलना न कर सकने के कारण अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त नहीं कर पाते। इसी प्रकार उपभोक्ता आलस्य या लापरवाही के कारण भी अपनी सीमित आय को ऐसी वस्तुओं पर या ऐसे प्रयोगों में व्यय करते हैं जिससे कम उपयोगिता मिलती है।

(६) अधिकतम कुल उपयोगिता आवश्यक रूप से अधिकतम सन्तुष्टि को नहीं बनाती (Maximum total utility does not necessarily mean maximum satisfaction)—कुछ आलोचकों के अनुसार इस नियम के द्वारा कुल उपयोगिता को अधिकतम किया जा सकता है परन्तु कुल सन्तुष्टि को नहीं क्योंकि उपयोगिता (utility) तथा सन्तुष्टि (satisfaction) एक ही बात नहीं है। उपयोगिता इच्छा की तीव्रता का माप है जबकि सन्तुष्टि वस्तु के प्रयोग कर लेने के बाद प्राप्त होती है। अतः कुल उपयोगिता का आवश्यक रूप से कुल सन्तुष्टि के बराबर होना जरूरी नहीं है।

(७) वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन (Change in the price of commodities)—वस्तुओं की कीमतें प्रायः बाजार में बदलती रहती हैं जिससे परिणामस्वरूप उनकी उपयोगिताएँ भी बदलती रहती हैं और इसलिए विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं की तुलना करना कठिन हो जाता है। अतः वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नियम के लागू होने में बाधक होता है।

(८) कुछ वस्तुओं का न मिलना (Non availability of some commodities)—कभी-कभी बाजार में अधिक उपयोगी वस्तुएँ नहीं मिलतीं और उनके स्थान पर हमें कम उपयोगी वस्तुएँ खरीदनी पड़ती हैं। उदाहरणार्थ (7'O-Clock) ब्लेड के न मिलने के कारण कोई अन्य कम अच्छा ब्लेड खरीदना पड़ता है। अतः ऐसी स्थिति में हम अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम नहीं कर पाते और यह नियम लागू नहीं होता।

(९) पूरक वस्तुएँ (Complementary goods)—कुछ वस्तुएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं और वे एक साथ एक निश्चित अनुपात में प्रयोग की जाती हैं, जैसे डबल रोटी व मक्खन, फाउण्टेनपेन तथा स्याही, दूध, चीनी व चाय, इत्यादि। इन वस्तुओं को एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग नहीं किया जा सकता है और इसलिए इन वस्तुओं के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होता।

(१०) नियम की कुछ अन्य मान्यताएँ भी गलत हैं (Some other assumptions of the law are also wrong)—नियम की कई मान्यताएँ गलत हैं जिनमें से कुछ के सम्बन्ध में हम ऊपर अध्ययन कर चुके हैं और कुछ अन्य का विवरण कर रहे हैं—(i) उपयोगिता को ठीक प्रकार मापा नहीं जा सकता जबकि यह नियम यह मानकर चलता है कि उसे मापा जा सकता है। (ii) यह नियम द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानकर चलता है जबकि यह गलत है क्योंकि द्रव्य के कम या अधिक होने से उसकी सीमान्त उपयोगिता में अन्तर पड़ता है। (iii) मनुष्य सदैव विवेकशील (rational) नहीं होता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

नियम की अधिकांश सीमाएँ तथा आलोचनाएँ उसकी मान्यताओं से सम्बन्धित हैं (अ) यद्यपि उपयोगिता को बिलकुल सही प्रकार से नहीं मापा जा सकता परन्तु मोटे रूप से द्रव्य रूपी पैमाने से इसे अवश्य मापा जा सकता है। (ब) यद्यपि उपयोगिता तथा सन्तुष्टि एक बात नहीं है परन्तु फिर भी दोनों में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है, इसलिए अधिकतम उपयोगिता तथा अधिकतम

B का प्रतिस्थापन किया जाने लगेगा और उस सीमा तक प्रतिस्थापन किया जायेगा जब तक कि $\frac{\text{Marginal Product of A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{Marginal Product of B}}{\text{Price of B}}$, अत स्पष्ट है कि उत्पत्ति ह्रास नियम के कारण ही उत्पादन के क्षेत्र म प्रतिस्थापन का नियम लागू होता है ।

प्रश्न

१. (अ) समसीमान्त उपयोगिता नियम का कथन दीजिए और उसकी व्याख्या कीजिए ।
(ब) इस नियम की मुख्य कठिनाइयों या सीमाओं की विवेचना कीजिए ।
(a) Sta e and explain the Law of Equimarginal Utility
(b) Discuss the main difficulties or limitations of this Law *(Agra B A I, 1975)*

२. कुल उपयोगिता अधिकतम होती है, जब

$$\frac{\text{वस्तु 'अ की सीमान्त उपयोगिता}}{\text{अ का मूल्य}} = \frac{\text{वस्तु 'ब की सीमान्त उपयोगिता}}{\text{'ब' का मूल्य}}$$

$$= \frac{\text{वस्तु स' की सीमान्त उपयोगिता}}{\text{'स' का मूल्य}}$$, इत्यादि । व्याख्या कीजिए ।

Total satisfaction is highest when

$$\frac{\text{Marginal Utility of good A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{Marginal Utility of good B}}{\text{Price of B}} = \frac{\text{Marginal Utility of good C}}{\text{Price of C}},$$

etc Explain *(Bhagalp ır, 1973 A)*

[सकेत—समसीमान्त उपयोगिता नियम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।]

३ 'प्रतिस्थापन क सिद्धान्त का प्रयोग आर्थिक खोज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र मे होता है ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए ।
'The application of the principle of substitution extends over almost every field of economic inquiry Explain this statement

४ प्रतिस्थापन के नियम को उपभोग तथा उत्पत्ति के क्षेत्रो मे समझाइए ।
Explain the Law of Substitution as applied to consumption and production

५ उपभोग के क्षेत्र में 'आनुपातिकता के नियम' की व्याख्या कीजिए । इसकी सीमाओं को बताइए ।
Explain the Law of Proportionality' in the field of consumption Discuss its limitations

[सकेत—समसीमान्त उपयोगिता नियम की आधुनिक व्याख्या को ही आनुपातिकता का नियम कहते हैं ।]

६ समसीमान्त उपयोगिता नियम को समझाइए । यह बताइए कि जीवन म रीति रिवाज और फैशन के प्रभाव मे इस नियम मे किस प्रकार का परिवर्तन हो जाता है ।
Explain the Law of Equi marginal Utility Show how it is modified in life by the influence of custom and fashion *(Meerut, B Com, 1971)*

७ सम सीमान्त उपयोगिता नियम की विवेचना कीजिए और एक चित्र की सहायता से यह सिद्ध कीजिए कि एक उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है यदि वह इस नियम के अनुसार काय करता है ।
Discuss the Law of Equi-Marginal Utility, and prove with the help of a diagram that a consumer obtains the greatest satisfaction if he acts according to this law

18 माँग तथा माँग का नियम

[DEMAND AND LAW OF DEMAND]

अर्थशास्त्र मे माँग तथा पूर्ति के विचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्राय यह कहा जाता है कि "यदि एक तोते को अर्थशास्त्र के प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में पूर्ति तथा माँग रटा दिया जाये तो वह एक अच्छा अर्थशास्त्री होगा।"[1] अर्थशास्त्र की समस्याओं के विवेचन में माँग तथा पूर्ति का अर्थ भलीभाँति समझना अत्यन्त आवश्यक है।

माँग की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF DEMAND)

प्रो० बेनहम के अनुसार, "किसी दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय में खरीदी जायेगी।"[2]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि माँग के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है :

(१) 'प्रभावपूर्ण इच्छा' अथवा आवश्यकता, अर्थात् (अ) इच्छा का होना, (ब) इच्छा को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन (अर्थात् द्रव्य) का होना, (स) साधन अर्थात् द्रव्य को व्यय करने की तत्परता का होना। (२) एक निश्चित कीमत, माँग सदैव एक निश्चित कीमत पर होती है, माँग शब्द का कोई अर्थ नहीं है, यदि यह न बताया जाये कि माँग किस कीमत पर है। वस्तु विशेष की माँग विभिन्न कीमतों पर भिन्न भिन्न होगी। (३) निश्चित समय या प्रति इकाई समय (per unit of time), माँग सदैव समय की प्रति इकाई (अर्थात् प्रतिदिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह या प्रति वर्ष) के साथ व्यक्त की जाती है।

उदाहरणार्थ, केवल यह कहना कि आगरा मे १,००० क्विण्टल गेहूँ की माँग है, ठीक नहीं है। माँग के सम्बन्ध मे पूर्ण कथन इस प्रकार होना चाहिए—आगरा मे १३० रुपये प्रति क्विण्टल की कीमत पर गेहूँ की माँग १,००० क्विण्टल प्रति माह है।

माँग तथा आवश्यकता मे अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN DEMAND AND WANT)

माँग तथा आवश्यकता एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं, परन्तु फिर भी उनमे थोड़ा अन्तर है। आवश्यकता 'प्रभावपूर्ण इच्छा' (effective desire) को कहते हैं अर्थात् आवश्यकता में तीन बातें होनी चाहिए (i) किसी वस्तु की इच्छा होना, (ii) इच्छा को पूरा करने के लिए साधन (द्रव्य) का होना, तथा (iii) साधन को व्यय करने की तत्परता का होना। परन्तु माँग को प्रभावपूर्ण इच्छा कहना पर्याप्त नहीं है क्योंकि माँग सदैव एक निश्चित मूल्य पर तथा एक निश्चित समय में होती है। इस प्रकार माँग के लिए निम्न पाँच बातो का होना जरूरी है (i) इच्छा, (ii) इच्छा को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन, (iii) साधनों को व्यय करने की तत्परता, (iv) निश्चित कीमत, तथा (v) निश्चित समयावधि।

[1] 'Teach a parrot to say 'supply and demand' in reply to every question, and he will be a good economist''

[2] "The demand for anyting at a given price, is the amount of it which will be brought per unit of time at that price" —Benham, *Economics*, p 36.

मांग के प्रकार
(KINDS OF DEMAND)

मूल्य-मांग, आय मांग तथा आडी-मांग (Price Demand, Income Demand and Cross Demand)

किसी वस्तु या सेवा की मांगी जाने वाली मात्रा मुख्यतया तीन बातो पर निर्भर करती है (अ) वस्तु या सेवा की कीमत, (ब) उपभोक्ताओ की आय, तथा (स) सम्बन्धित वस्तुओ की कीमतें। अत इन तीनो बातो को ध्यान म रखते हुए कुछ अर्थशास्त्रियों ने मांग के तीन प्रकार बताये है (१) मूल्य-मांग (Price Demand), (२) आय-मांग (Income Demand), तथा (३) आडी-माग (Cross Demand)।

(१) मूल्य मांग (Price Demand)

मूल्य-मांग किसी वस्तु की उन मात्राओं को बताती है जो कि एक उपभोक्ता एक निश्चित समय मे विभिन्न कल्पित मूल्यों पर खरीदने को तैयार है यदि अन्य बातें समान रहती हैं। अन्य बातो के समान रहने का अर्थ है कि उपभोक्ता की आय, रुचि, सम्बन्धित वस्तुओ (related goods) की कीमतो, इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता।

चित्र सख्या १ मे मूल्य-मांग रेखा (Price Demand Curve) को दिखाया गया है।

चित्र—१

यह रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है। अर्थात् इसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) है। इसका अर्थ है कि मूल्य तथा मांग मे उल्टा (inverse) सम्बन्ध है, यदि मूल्य बढता है तो मांग घटती है तथा मूल्य घटने पर मांग बढती है।

(२) आय मांग (Income Demand)
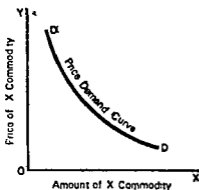
आय-मांग किसी वस्तु या सेवा की उन मात्राओ को बताती है जो कि एक उपभोक्ता एक निश्चित समय में आय के विभिन्न स्तरों पर खरीदने को तैयार है, यदि अन्य बातें समान रहती हैं। आय-मांग रेखा (Income Demand Curve) को जर्मनी के एक पुराने अर्थशास्त्री ऐंजिल के नाम पर 'ऐंजिल रेखा' (Engel Curve) भी कहते हैं। अन्य बातो के समान रहने का अर्थ है कि वस्तु या सेवा के मूल्य, सम्बन्धित वस्तुओ के मूल्यो तथा उपभोक्ता की रुचि स्वभाव, इत्यादि म कोई परिवर्तन नही होता।

जिस प्रकार मूल्य मांग मूल्यो तथा मात्राओ के सम्बन्ध को बताती है, उसी प्रकार आय-मांग, आयो तथा मांगी गयी मात्राओ के सम्बन्ध को व्यक्त करती है। आय मांग की तालिका (demand schedule) को लिखने के लिए हम एक ओर आयो को लिखते हैं और दूसरी ओर उन आयो पर मांगी गयी मात्राओं को लिखते हैं।

चित्र—२

कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी मांग, आय में वृद्धि के साथ
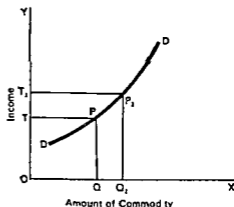
बढ़ती है। ऐसी वस्तुओं को आर्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ वस्तुएँ (economically superior goods) कहते हैं, इस प्रकार की वस्तुएँ विलासिता तथा आराम की वस्तुएँ होती हैं, इनकी माँग आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है। चित्र संख्या २ में श्रेष्ठ वस्तु की आय-माँग रेखा दिखायी गयी है। चित्र में स्पष्ट है कि OT आय पर X-वस्तु की माँगी गयी मात्रा OQ है, यदि आय बढ़कर OT_1 हो जाती है तो वस्तु की माँग भी बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी माँग आय वृद्धि के साथ घटती जाती है। ऐसी वस्तु (उदाहरणार्थ विभिन्न प्रकार के अनाज, कपड़ा, इत्यादि) को आर्थिक दृष्टि से निम्न कोटि की वस्तुएँ (economically inferior goods) कहते हैं। ऐसी वस्तुओं की आय-माँग रेखा चित्र संख्या ३ में दिखायी गयी है जो कि बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है। चित्र से स्पष्ट है कि PQ आय पर वस्तु की OQ मात्रा माँगी जाती है; यदि आय बढ़कर P_1Q_1 हो जाती है तो माँग घटकर OQ_1 हो जाती है।

चित्र—३

(३) आड़ी-माँग (Cross Demand)

किसी वस्तु X की आड़ी-माँग X वस्तु की उन मात्राओं को बताती है जो कि एक उपभोक्ता (X के विभिन्न मूल्यों पर नहीं बल्कि) X से सम्बन्धित किसी वस्तु Y के विभिन्न मूल्यों पर खरीदने को तैयार है, जबकि माँग को प्रभावित करने वाली अन्य बातें समान रहती हैं। घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं : एक तो, प्रतिस्थापन वस्तुएँ, (Substitute Goods) जो कि एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग की जा सकती हैं। दूसरे पूरक वस्तुएँ (Complementary Goods) जो कि एक-दूसरे के साथ पूरक के रूप में प्रयोग की जाती हैं।
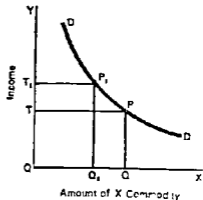
चित्र—४
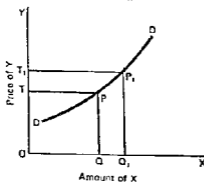
'प्रतिस्थापन वस्तुओं' का एक अच्छा उदाहरण चाय (X वस्तु) तथा कॉफी (Y वस्तु) का है। यदि कॉफी (Y वस्तु) का मूल्य बढ़ता है तो, अन्य बातों के समान रहने पर, चाय (X वस्तु) की माँग में वृद्धि हो जायेगी क्योंकि कॉफी महँगी हो जाने के कारण लोग चाय का प्रयोग अधिक करने लगेंगे। दूसरे शब्दों में, प्रतिस्थापन वस्तुओं के मूल्य तथा माँगी गयी मात्रा में सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है, एक वस्तु के मूल्य में वृद्धि या कमी दूसरी वस्तु की माँग में वृद्धि या कमी करती है। प्रतिस्थापन-वस्तुओं की आड़ी-माँग रेखा चित्र संख्या ४ में दिखायी गयी है। चित्र से स्पष्ट है कि यदि Y वस्तु का मूल्य PQ से बढ़कर P_1Q_1 हो जाता है तो X वस्तु की माँग भी बढ़कर OQ से OQ_1 हो जाती है।

पूरक वस्तुओं (Complementary Goods) का एक उदाहरण स्याही (X वस्तु) तथा पेन (Y वस्तु) का है। यदि पेन (Y वस्तु) का मूल्य बढ़ता है तो पेन की माँग में कमी होगी और परिणामस्वरूप स्याही (X वस्तु) की माँग में कमी हो जायेगी। इसके विपरीत यदि पेन (Y वस्तु) का मूल्य घटता है तो पेन की माँग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप स्याही (X वस्तु) की माँग में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में, पूरक वस्तुओं के मूल्य तथा माँगी गयी मात्रा में उल्टा सम्बन्ध (inverse relation) होता है। पूरक वस्तुओं की आड़ी-माँग की माँग रेखा चित्र संख्या ५ में दिखायी गयी है। चित्र से स्पष्ट है कि Y का मूल्य PQ से घटकर P_1Q_1 हो जाता है तो X की माँग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है अर्थात् दोनों में उल्टा सम्बन्ध है।
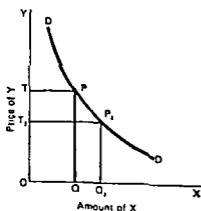
चित्र—५

संयुक्त माँग, व्युत्पन्न माँग तथा सामूहिक माँग (Joint Demand, Derived Demand and Composite Demand)

माँग के तीन और निम्न प्रकार हैं (i) संयुक्त माँग, (ii) उत्पन्न या व्युत्पन्न माँग (Derived Demand), तथा (iii) सामूहिक माँग।

(i) **संयुक्त माँग**—जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ किसी एक संयुक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए एकसाथ माँगी जाती हैं तो ऐसी माँग को 'संयुक्त-माँग' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, मोटर तथा पैट्रोल की माँग, पैन तथा स्याही की माँग, डबल-रोटी तथा मक्खन की माँग, इत्यादि संयुक्त माँग हैं।

(ii) **उत्पन्न माँग (Derived Demand)**—जब एक वस्तु की माँग इसीलिए की जाती है कि उसकी सहायता से किसी दूसरी वस्तु का उत्पादन किया जाता है अर्थात् वह दूसरी वस्तु के उत्पादन में उत्पादन-साधन की भाँति कार्य करता है, तो ऐसी माँग को 'उत्पन्न माँग' कहते हैं। उदाहरणार्थ, श्रम की माँग 'उत्पन्न माँग' है क्योंकि श्रम की माँग इसीलिए की जाती है (या इसलिए उत्पन्न होती है) कि इसकी सहायता से अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इसी प्रकार ईंट तथा चूने की माँग 'उत्पन्न माँग' है क्योंकि इनकी माँग मकान इत्यादि बनाने के लिए होती है।

(iii) **सामूहिक माँग (Composite Demand)**—सामूहिक माँग ऐसी वस्तु की माँग है जिसका प्रयोग अनेक प्रयोगों में किया जाता है, ऐसी वस्तु की माँग विभिन्न प्रयोगों की यौगिक माँग है, कोयला या बिजली की माँग सामूहिक माँग है, क्योंकि इनका प्रयोग विभिन्न प्रकार के प्रयोगों में किया जाता है।

माँग तालिका
(DEMAND SCHEDULE)

एक बाजार में किसी निश्चित समय में विभिन्न मूल्यों पर किसी वस्तु की विभिन्न मात्राएँ माँगी जाती हैं। इन विभिन्न मूल्यों तथा उन पर माँगी जाने वाली मात्राओं को एक तालिका के रूप में लिखा जाय तो इसे माँग की तालिका कहते हैं। दूसरे शब्दों में, माँग की तालिका 'मूल्य' तथा 'माँगी गयी मात्रा' में फलनक सम्बन्ध (functional relationship) को बताती है।

माँग की तालिका दो प्रकार की होती है (१) व्यक्तिगत माँग तालिका (Individual Demand Schedule), तथा (२) बाजार की माँग तालिका (Market Demand Schedule)।

व्यक्तिगत माँग तालिका—किसी निश्चित समय में एक व्यक्ति किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी विभिन्न मात्राओं को माँगता है। ये विभिन्न कीमतें तथा माँगी गयी मात्राएँ मिलकर व्यक्ति की माँग तालिका का निर्माण करती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अमुक-अमुक कीमतें वास्तव में प्रचलित हैं और तदनुसार अमुक-अमुक मात्राएँ खरीदी जाती हैं। एक व्यक्ति की माँग तालिका का निर्माण उस व्यक्ति की भूतकाल में प्रतिक्रियाओं (reactions) की जानकारी के आधार पर किया जाता है। परन्तु भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान में व्यक्ति की आय, रुचि इत्यादि में परिवर्तन हो सकता है और इसलिए व्यक्ति की वर्तमान माँग तालिका पहले की अपेक्षा भिन्न हो सकती है। माँग तालिका के निर्माण का यह महत्त्वपूर्ण दोष है।

एक व्यक्ति X की किसी वस्तु (माना चीनी) की माँग तालिका निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट है

मूल्य प्रति किलोग्राम	माँगी गयी मात्रा (किलोग्राम में)
४ ०० रु०	८
४ २५ रु०	७
४ ५० रु०	४
५ ०० रु०	२

बाजार माँग तालिका—किसी वस्तु की 'व्यक्तिगत माँग तालिकाओं' की सहायता से 'सम्पूर्ण बाजार की माँग तालिका' निकाली जा सकती है। वस्तु की प्रत्येक कीमत पर बाजार में एक निश्चित कुल माँग (aggregate demand) होगी जो बाजार में सभी क्रेताओं की माँगों को जोड़कर प्राप्त होती है। अतः विभिन्न कीमतें तथा उनसे सम्बन्धित कुल माँगें (aggregates of demand) मिलकर एक बाजार की माँग तालिका का निर्माण करती हैं। उदाहरणार्थ, माना कि एक बाजार में केवल तीन व्यक्ति X, Y तथा Z हैं और किसी वस्तु के लिए इन व्यक्तियों की माँग तालिकाएँ निम्न हैं

मूल्य प्रति किलोग्राम (रुपयों में)	माँगी गयी मात्राएँ (किलोग्राम में)			बाजार में तीनों व्यक्तियों (X, Y तथा Z) की कुल माँग (किलोग्राम में)
	X द्वारा	Y द्वारा	Z द्वारा	
३	८	१४	१०	३२
४	७	१२	८	२७
५	५	१०	५	२०
६	४	८	२	१४

तालिका से स्पष्ट है कि अन्तिम स्तम्भ (column) सम्पूर्ण बाजार की कुल माँगों को बताता है। अतः, प्रथम तथा अन्तिम स्तम्भ मिलकर 'बाजार की माँग तालिका' को बताते हैं।

'माँग तालिका' के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं :

(१) बाजार की माँग तालिका बनाते समय हम यह मान लेते हैं कि माँग की दशाएँ समान रहती हैं। अर्थात् उपभोक्ताओं की आय, रुचि, स्थानापन्न वस्तुओं (substitutes) की कीमतें, इत्यादि समान रहती हैं और केवल वस्तु विशेष की कीमत ही बदलती है परन्तु वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता है क्योंकि प्रायः अन्य बातें समान नहीं रहती हैं।

(२) वास्तव में, एक काल्पनिक माँग तालिका का बनाना आसान है, परन्तु एक व्यक्ति या बाजार की वास्तविक माँग तालिका का बनाना बहुत कठिन है।

विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों द्वारा एक बाजार का निर्माण होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि विभिन्न व्यक्तियों की माँग तालिकाओं का योग ही बाजार की माँग तालिका का

अन्य बातों के समान रहते हुए, किसी सेवा या वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी माँग घटती है, तथा कीमत में कमी होने पर उसकी माँग बढ़ती है। अतः माँग का नियम कीमत तथा माँगी गयी मात्रा मे विपरीत सम्बन्ध (inverse relationship) को बताता है।[4]

अर्थात् वस्तु की अधिक इकाइयाँ कम कीमत पर बेची जा सकेंगी तथा कम इकाइयाँ ऊँची कीमत पर बिकेंगी।[5]

माँग का नियम एक गुणात्मक कथन (qualitative Statement) है न कि परिमाणात्मक कथन (*quantitative statement*)। इसका अर्थ है कि यह केवल माँग मे परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है अर्थात् केवल यह बताता है कि माँग कम होगी या ज्यादा, यह माँग में परिवर्तन के परिमाण (quantity) को नहीं बताता अर्थात् यह नहीं बताता कि माँग कितनी मात्रा मे कम होगी या कितनी मात्रा मे अधिक। संक्षेप मे, माँग का नियम बताता है कि माँग कीमत की अपेक्षा विपरीत दिशा में परिवर्तित होती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि माँग में परिवर्तन आनुपातिक (proportionate) हो।[6]

२. नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Law)

माँग के नियम के कथन म 'अन्य बातें समान रहें' (Other things being equal) या 'माँग की दशाएँ समान रहें' (the conditions of demand remaining constant) महत्त्वपूर्ण वाक्यांश है, यह नियम की मान्यताओं या सीमाओं को बताता है। प्रो० मेयर्स (Meyers) के अनुसार, माग के नियम लागू रहने के लिए निम्न दशाएँ (conditions) या मान्यताएँ पूरी होनी चाहिए

(i) व्यक्तियों की आय समान रहनी चाहिए।
(ii) उनके स्वभाव तथा रुचि में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
(iii) आय तथा वस्तुओं की कीमतें समान रहनी चाहिए।
(iv) वस्तु की किसी नयी स्थानापन्न वस्तु (substitute) की खोज नहीं होनी चाहिए।

---

[4] Other things being equal, the increase in price of a service or a commodity leads to a fall in its demand and the fall in the price leads to an increase in its demand Thus, the law of demand reflects the inverse relationship between price and demand

[5] दूसरे शब्दों म, यदि अन्य बातें समान रहें तो, किसी वस्तु x की माँग 'निर्भर करती है' उस वस्तु की कीमत पर। इसको गणित की भाषा म इस प्रकार व्यक्त करेंगे : 'माँग फलन (या फंक्शन) होती है कीमत की' (demand is a function of price)। माँग और कीमत के इस फलनात्मक सम्बन्ध (functional relation) को हम निम्न प्रकार से लिख सकते हैं :

$$D_x \quad f(P_x)$$

जबकि D_x बताती है किसी वस्तु x की माँग को, P_x बताती है उसी वस्तु x की कीमत को, तथा f फलन (या function) का चिन्ह है।

[विद्यार्थियों के लिए व्याख्यात्मक (explanatory) नोट मोटे रूप से यह ध्यान रखने की बात है कि 'निर्भर करता है' (depends on) के स्थान पर गणित के शब्द फलन या फंक्शन शब्द का प्रयोग किया जाता है। अत सरलता से समझने के लिए समस्त स्थिति को इस प्रकार लिख सकते हैं

वस्तु x की माँग 'निर्भर करती है' उसकी कीमत पर
अथवा, वस्तु x की माँग 'फलन (या फंक्शन) है' उसकी कीमत
अथवा, D_x फलन (या फंक्शन) है P_x का
अथवा, $D_x = f(P_x)$

इस फुटनोट की प्रथम दो पैराग्राफ की विषय-सामग्री को विद्यार्थी ऊपर पाठ्य-भाग (main text) मे लिख सकते हैं।]

[6] "Thus, in short, the law of demand says that demand varies inversely with price, not necessarily proportionately"

(v) वस्तु ऐसी नहीं है जिसको रखने या प्रयोग करने से लोगों को समाज में अधिक प्रतिष्ठा (distinction or prestige) मिलती हो। (क्योंकि यदि प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली वस्तु है तो धनवान व्यक्ति उसकी ऊँची कीमत होने पर भी अधिक खरीदेंगे।)

३. माँग के नियम की व्याख्या (Explanation of the Law of Demand)

अथवा

माँग रेखाएँ दायें को नीचे की ओर क्यों झुकती हैं ? (Why Demand Curves Slope ards to the Right)

माँग का नियम कीमत तथा माँगी गयी मात्रा के बीच उल्टे सम्बन्ध को बताता है। इसलिए जब माँग के नियम को माँग रेखा द्वारा व्यक्त करते हैं तो माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है। ऐसा क्यों होता है ? अर्थात्, कीमत तथा माँग में उल्टा सम्बन्ध क्यों होता है ? इसकी व्याख्या निम्न कारणों द्वारा स्पष्ट हो जाती है

(i) **उपयोगिता ह्रास नियम** (Law of Diminishing Utility)—माँग का नियम उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। सामान्यतया एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता के अनुसार देता है। किसी वस्तु की अधिक इकाइयों (additional units) का प्रयोग करते जाने से, उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार, उसकी उपयोगिता घटती जाती है, अतः उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक इकाइयाँ तभी खरीदेगा जबकि उसकी कीमत कम हो। दूसरे शब्दों में, अन्य बातों के समान रहते हुए, उपभोक्ता वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी अधिक माँग करेगा। इसी प्रकार यदि उपभोक्ता को वस्तु की कम इकाइयां प्राप्त होती हैं तो उसके लिए वस्तु की उपयोगिता अधिक होगी और वह वस्तु के लिए ऊँची कीमत देने को तैयार होगा। दूसरे शब्दों में, अन्य बातों के समान रहते हुए, ऊँची कीमत पर वस्तु की कम इकाइयाँ खरीदेगा। इस प्रकार उपयोगिता ह्रास नियम, माँग के नियम की व्याख्या करता है, अर्थात् बताता है कि कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा तथा ऊँची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा क्यों खरीदी जाती है।

(ii) **प्रतिस्थापन प्रभाव** (Substitution Effect)—अन्य वस्तुओं की कीमतें अपरिवर्तित रहने पर जब किसी वस्तु की कीमत गिरती है तो यह वस्तु अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती प्रतीत होने लगती है या अन्य वस्तुएँ इस वस्तु की अपेक्षा महँगी प्रतीत होने लगती हैं। अतः वस्तु की कीमत गिरने पर लोग इस वस्तु का अन्य वस्तुओं, जिनकी कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं, के स्थान पर प्रतिस्थापन करने लगते हैं। इसे 'प्रतिस्थापन प्रभाव' कहते हैं। इस प्रकार वस्तु की कीमत गिर जाने से प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उसकी माँग बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ, यदि चाय की कीमत गिर जाती है, और कॉफी (Coffee) की कीमत पहले जैसी ही रहती है तो कुछ व्यक्ति चाय का प्रतिस्थापन (अर्थात् प्रयोग) कॉफी के स्थान पर करेंगे। इस प्रकार चाय की माँग बढ़ जायेगी। इसी प्रकार यदि किसी वस्तु की कीमतें बढ़ जाती हैं और अन्य वस्तुओं की कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं, तो लोग इस वस्तु के स्थान पर अन्य वस्तुओं का प्रयोग करने लगते हैं और इस वस्तु की माँग कम हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि प्रतिस्थापन प्रभाव के परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरने पर उसकी माँग बढ़ती है और कीमत बढ़ने पर उसकी माँग घटती है, अर्थात् माँग के नियम के लागू होने के कारण की व्याख्या हो जाती है। दूसरे शब्दों में, इस कारण माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है।

(iii) **आय प्रभाव** (Income Effect)—किसी वस्तु की कीमत में कमी वास्तव में उपभोक्ता की आय में वृद्धि के समान है क्योंकि अब उसे उतनी ही मात्रा खरीदने के लिए कम मुद्रा व्यय करनी पड़ती है। इसी प्रकार से आय में वृद्धि में से एक भाग वह वस्तु की और अधिक मात्रा खरीदने पर व्यय कर सकता है। उदाहरणार्थ, १ किलो चाय की कीमत १० रुपये से गिरकर

६ रुपये हो जाती है तो उपभोक्ता को २ किलो चाय खरीदने के लिए अब केवल १२ रुपये व्यय करने पड़ते हैं जबकि पहले वह उतनी ही मात्रा खरीदने के लिए २० रुपये व्यय करता था। अतः कीमत गिरने से वास्तव में उसकी आय (२०—१२)=८ रुपये से बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई आय में से वह कुछ रुपया और चाय खरीदने पर व्यय कर सकता है और इस प्रकार कीमत गिरने से चाय की माँग बढ़ जाती है। इसे 'आय प्रभाव' कहते हैं। इसी प्रकार किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि, वास्तव में, उपभोक्ता की आय में कमी के समान होती है और उपभोक्ता को वस्तु पर किये जाने वाले खर्च में कमी करनी पड़ती है, अर्थात् उसकी माँग घट जाती है। इस प्रकार 'आय प्रभाव' माँग के नियम की व्याख्या करता है। दूसरे शब्दों में, 'आय प्रभाव' बताता है कि माँग रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर क्यों गिरती है।

मार्शल का माँग नियम केवल कीमत के गिरने के 'प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect of a fall in price) पर ही ध्यान देता है और 'आय प्रभाव' को बिलकुल भुला देता है।

(iv) कुछ नये व्यक्तियों के प्रवेश या कुछ के बाजार छोड़कर जाने के प्रभाव (Effects of the entry of some new purchasers or some going out of the market)—जब किसी वस्तु की कीमत गिरती है तो कुछ और व्यक्ति जोकि पहले उसको नहीं खरीद सकते थे, खरीदने लगते हैं और इसलिए वस्तु की कुल माँग में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत, यदि वस्तु की कीमत बढ़ती है तो कुछ व्यक्ति अब उसे नहीं खरीद पायेंगे और वस्तु के बाजार के बाहर हो जायेंगे, अतः वस्तु की माँग घट जायेगी।

४. माँग के नियम के अपवाद (Exceptions to the Law of Demand)

अथवा

क्या कुछ माँग रेखाएँ ऊपर की ओर चढ़ती हुई हो सकती हैं? (Can some Demand Curves Slope Upwards?)

कुछ दशाएँ ऐसी हैं जिनमें माँग का नियम लागू नहीं होता है, अर्थात् कीमत तथा माँग में उल्टा सम्बन्ध नहीं बल्कि सीधा सम्बन्ध हो जाता है, अर्थात् कीमत बढ़ने पर माँग बढ़ती है तथा कीमत घटने पर माँग घटती है, दूसरे शब्दों में, कुछ दशाओं में माँग रेखाएँ ऊपर की ओर चढ़ती हुई हो सकती हैं। इन दशाओं को माँग के नियम के अपवाद कहते हैं। मुख्य अपवाद निम्न हैं :

गिफिन का विरोधाभास—कुछ निम्न कोटि की वस्तुएँ (Giffin's Paradox—Some inferior goods)

आधुनिक अर्थशास्त्री केवल इस स्थिति को ही माँग के नियम का वास्तविक अपवाद मानते हैं। गिफिन ने बताया कि कुछ निम्न कोटि की वस्तुओं की कीमत गिरने पर उनकी माँग प्रायः बढ़ती नहीं बल्कि कम हो जाती है, इसे गिफिन के नाम पर 'गिफिन का विरोधाभास' (Giffin's Paradox) कहते हैं। इस स्थिति में माँग का नियम लागू नहीं होता है।

माना कि निम्न कोटि की वस्तु (जैसे डालडा घी, शुद्ध घी की अपेक्षा, निम्न कोटि की वस्तु है) की कीमत गिरती है। कीमत गिरने के दो प्रभाव होंगे—एक तो 'प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect) तथा दूसरा 'आय प्रभाव' (income effect)। चूँकि निम्न कोटि की वस्तु (डालडा घी) की कीमत घटी है, जबकि श्रेष्ठ वस्तु (शुद्ध घी) की कीमत उतनी ही रहती है, तो सस्ती वस्तु (डालडा घी) का प्रतिस्थापन श्रेष्ठ वस्तु (शुद्ध घी) के स्थान पर होगा अर्थात् प्रतिस्थापन प्रभाव के परिणामस्वरूप निम्न कोटि की वस्तु (डालडा घी) की माँग बढ़ेगी। प्रतिस्थापन प्रभाव हमेशा इस अर्थ में धनात्मक (positive) होता है कि कीमत कम होने पर माँग में वृद्धि (extension) ही होती है, कमी नहीं। परन्तु इस प्रतिस्थापन प्रभाव के साथ-साथ 'आय प्रभाव' भी होगा अर्थात् निम्न कोटि की वस्तु (डालडा घी) की कीमत में कमी होना उपभोक्ता की आय में वृद्धि के समान है क्योंकि अब वह कम रुपयों में पहले के बराबर ही डालडा घी खरीद सकता है और इस प्रकार

उसके पास कुछ द्रव्य बढ़ेगा। इस बढ़े हुए समस्त द्रव्य को या उसके एक भाग को वह और अधिक निम्नकोटि की वस्तु (डालडा घी) के खरीदने में व्यय कर सकता है, यदि वह ऐसा करता है तो वस्तु की माँग बढ़ेगी तथा ऐसे आय प्रभाव को धनात्मक प्रभाव (positive income effect) कहा जाता है। ऐसी स्थिति में 'प्रतिस्थापन प्रभाव' तथा 'आय प्रभाव' दोनों के परिणामस्वरूप कीमत घटने पर माँग बढ़ेगी जैसा कि माँग का नियम बताता है। परन्तु चूँकि वस्तु निम्न कोटि की है इसलिए उपभोक्ता अपनी बढ़ी हुई आय को और अधिक निम्नकोटि की वस्तु (डालडा घी) पर व्यय न करके श्रेष्ठ वस्तु (शुद्ध घी) पर व्यय करना पसन्द करेगा। ऐसी स्थिति में डालडा की कीमत घटने पर भी उसकी माँग बढ़ती नहीं अर्थात् यह कहा जाता है कि एक प्रकार से उसकी माग घटती है, ऐसे 'आय प्रभाव' को ऋणात्मक आय-प्रभाव (negative income effect) कहते है। इस प्रकार 'आय प्रभाव' धनात्मक तथा ऋणात्मक (positive and negative) दोनों हो सकता है, जबकि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' केवल धनात्मक ही होता है। परन्तु जब 'आय प्रभाव' ऋणात्मक होता है अर्थात माँग में कमी (contraction) करता है तो माँग पर कुल प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' का अधिक जोर है या 'आय प्रभाव' का। निम्न कोटि की वस्तुएँ (inferior goods), जिन पर कि उपभोक्ता अपनी आय का एक बड़ा भाग व्यय करता है, ऐसी वस्तुएँ होती हैं जिनके सम्बन्ध में, 'ऋणात्मक आय प्रभाव' का जोर 'धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव' से अधिक होता है और इसलिए वस्तु की कीमत में कमी होने पर उसकी माँग, बढ़ने के बजाय, घटती है।]

अत, 'गिफिन वस्तुओं' के सम्बन्ध में कीमत में कमी, माँग में कमी उत्पन्न करती है और इस प्रकार यहाँ पर माँग का नियम लागू नहीं होता है।

[ध्यान रहे कि सभी निम्न कोटि की वस्तुओं को 'गिफिन वस्तुएँ' नहीं कहते हैं, केवल व ही निम्न कोटि की वस्तुएँ, जिन पर उपभोक्ता अपनी आय का एक अच्छा भाग व्यय करता है, 'गिफिन वस्तुएँ' कहलाती हैं।]

[जीवन की अनिवार्य वस्तुएँ, जैसे—गहूँ, चना, इत्यादि के सम्बन्ध में एक सीमा तक मूल्य बढ़न पर उनकी माग घटती नहीं, उपभोक्ता को अन्य वस्तुओं पर खर्च को कम करके इन अनिवार्यताओं को ऊँचे मूल्य पर भी खरीदना पड़ता है।]

माँग में परिवर्तन अर्थात् माँग में वृद्धि या कमी
(CHANGES IN DEMAND *i e* INCREASE OR DECREASE IN DEMAND)
तथा
माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन अर्थात् माँग में विस्तार तथा सकुचन में अन्तर
(CHANGES IN AMOUNT DEMANDED *i e*, EXPANSION AND CONTRACTION OF DEMBND)

साधारण बोलचाल में 'माँग में परिवर्तन' (Change in Demand) तथा 'माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन' (Change in Amount Demanded) दोनों एक ही अर्थ में प्रयोग होते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में इन दोनों में अन्तर है। 'माग में वृद्धि' (Increase in Demand) का अर्थ 'माँग में विस्तार' (Expansion of Demand) से भिन्न होता है और इसी प्रकार 'माँग में कमी' (Decrease in Demand) और 'माँग में सकुचन' (Contraction of Demand) में अन्तर है। माँग में विस्तार तथा सकुचन (Expansion and Contraction of Demand)।

माँग में विस्तार तथा सकुचन केवल कीमत में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होते हैं। ये एक ही माँग रेखा पर चलन (movement) को बताते हैं, नीचे की ओर चलन कीमत में कमी और माँग में विस्तार को बताता है तथा ऊपर की ओर चलन कीमत में वृद्धि तथा माँग में सकुचन बताता है।

चित्र सख्या ७ मे DD माँग रेखा है। जब कीमत PQ है तो माँगी गयी मात्रा (quantity demanded) OQ है। यदि इसी माँग रेखा DD पर नीचे की ओर चलन (movement) होता है अर्थात् P_1 बिन्दु पर पहुचा जाता है तो कीमत कम होकर P_1O_1 हो जाती है और माँग म विस्तार होता है तथा वह OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार यदि माँग रेखा DD पर ऊपर की ओर चलन होता है तथा P_2 बिन्दु पर पहुचा जाता है तो कीमत बढकर P_2O_2 हो जाती है और माँग म सकुचन होकर वह OQ_2 हो जाती है।

चित्र—७

इस प्रकार जब कीमत म परिवर्तन होता है तो 'माँगी गयी मात्रा' मे भी परिवतन होता है परन्तु माँग रेखा वही बनी रहती है। दूसरे शब्दो मे, कीमत मे परिवर्तन माँगी गयी मात्रा को परिवर्तित करता है परन्तु माग को नहीं। यहाँ पर उपभोक्ता केवल एक निष्क्रिय पार्ट (passive role) अदा करता है, वह केवल कीमत द्वारा निर्देशित होता है, उसकी माँग-तालिका (demand schedule) स्थिर रहती है, अर्थात् माँग रेखा वही रहती है और उसी माँग रेखा पर वह ऊपर या नीचे, कीमत मे परिवर्तन के अनुसार, चलता रहता है।

माँग मे वृद्धि या कमी (Increase or Decrease in Demand)

वस्तु की कीमत को छोडकर माँग को निर्धारित करने वाले अन्य तत्त्वो (determinants of demand) मे से किसी मे भी परिवर्तन के कारण माँग पर जो प्रभाव होता है उसे 'माँग मे परिवर्तन' कहते ह। कीमत के अतिरिक्त माँग को निर्धारित करने वाले कई अन्य तत्त्व होते है, जैसे—उपभोक्ताओ की आय उनकी रुचि तथा पसन्द, जनसख्या, स्थानापन्न वस्तुओं की प्राप्ति, इत्यादि, कीमत को छोडकर माग को निर्धारित करने वाले इन तत्त्वों मे से किसी भी एक मे परिवर्तन 'माँग मे परिवर्तन' उत्पन्न कर देता है। 'माँग मे परिवर्तन' अर्थात् 'माँग मे वृद्धि' या 'माँग मे कमी' का अर्थ स्वय माँग रेखा के क्रमश दाये को या बाये को हटने (shift) से है। दूसरे शब्दों मे, माँग मे परिवर्तन का अर्थ है कि उपभोक्ता की पहली माँग-तालिका नहीं रहती बल्कि उसके स्थान पर नयी माँग तालिका आ जाती है। यहाँ पर उपभोक्ता एक सक्रिय पार्ट (active role) अदा करता है। वह वस्तु की कीमत द्वारा निर्देशित नहीं होता बल्कि वह अपनी आय, आवश्यकताओं, इत्यादि को ध्यान मे रखते हुए, अपनी माँग कम या अधिक, स्वय निश्चित करता है। चित्र सख्या ८ म 'माँग मे वृद्धि' को दिखाया गया है। D_1D_1 प्रारम्भिक माँग रेखा है और OM_1 (अर्थात् P_1Q) कीमत पर OQ (या M_1P_1) माँग है। कीमत के अतिरिक्त, माँग के निर्धारित तत्त्वों म परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप 'माँग मे वृद्धि' होती है अर्थात् माँग रेखा दायें को खिसक जाती है और इस प्रकार नयी माँग रेखा D_2D_2 है। माँग की वृद्धि के दो अर्थ हैं—(1) वही मात्रा OQ ऊँची कीमत OM_2 (या P_2Q) पर माँगी जाती है, या (ii) उसी कीमत OM_1 पर अधिक मात्रा OL माँगी जाती है। P_2 तथा P_3 दोनो बिन्दु नयी माँग रेखा D_2D_2 पर हैं जो कि माँग म वृद्धि को बताती है।
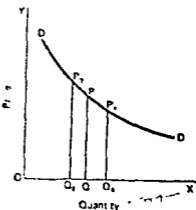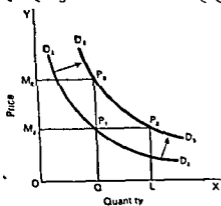
चित्र—८

चित्र संख्या ६ मे 'मांग मे कमी' को दिखाया गया है। प्रारम्भिक मांग रेखा D_1D_1 है। कीमत को छोड़कर मांग के निर्धारक तत्वों मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'मांग म कमी' होती है अर्थात् मांग रेखा बायें को खिसक जाती है और अब नयी मांग रेखा D_2D_2 है। परिवर्तन से पहले OM_1 (या P_1Q) कीमत पर मांग OQ के बराबर थी। परन्तु अब मांग में कमी हो गयी है जिसके दो अर्थ हैं (i) उसी कीमत OM_1 पर अब वस्तु की कम मात्रा OL खरीदी जाती है या (ii) कम कीमत OM_2 (या P_2Q) पर उतनी ही मात्रा OQ खरीदी जाती है।

चित्र—६

संक्षेप मे :

(१) 'मांग मे विस्तार' (Expansion of demand) का अर्थ है कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा, जबकि 'मांग मे वृद्धि' (increase in demand) का अर्थ है (अ) उसी कीमत (same price) पर अधिक मात्रा, या (ब) कम कीमत पर उतनी ही मात्रा।

(२) 'मांग में संकुचन' (Contraction of demand) का अर्थ है ऊँची कीमत पर कम मात्रा, जबकि 'मांग में कमी' (Decrease of demand) का अर्थ है (अ) उसी कीमत (same price) पर कम मात्रा, या (ब) कम कीमत पर उतनी ही मात्रा।

(३) एक बात यह ध्यान देने की है कि 'मांग मे वृद्धि या कमी' का महत्त्व दीर्घकालीन समय (long period) मे है क्योकि दीर्घकाल म मांग के निर्धारक तत्त्व, जैसे—उपभोक्ताओ की रुचि तथा पसन्द, आय, इत्यादि, स्थिर नही रहते बल्कि बदलते रहते हैं। 'मांग मे विस्तार या संकुचन' का महत्त्व अल्पकालीन समय (short period) मे है क्योकि अल्पकाल मे मांग के निर्धारक तत्त्व, जैसे—उपभोक्ताओ की आय, रुचि इत्यादि प्रायः लगभग स्थिर रहते हैं, उनम बदलने की सम्भावना (कम समय होने के कारण) कम रहती है, केवल कीमत मे परिवर्तन होते रहते हैं।

मांग को प्रभावित करने वाले तत्त्व या मांग के निर्धारक तत्त्व
(FACTORS INFLUENCING DEMAND OR DETERMINANTS OF DEMAND)

(१) आय (Income)—एक व्यक्ति कितनी वस्तुओ तथा सेवाओं का प्रयोग करता है यह बात उसकी आय पर निर्भर करती है। यदि उसकी आय अधिक है तो उसकी क्रय शक्ति अधिक होगी और उसके द्वारा वस्तु की मांग अधिक होगी, परन्तु आय कम होने पर मांग कम होगी।

आय मे परिवर्तनों का मांग पर प्रभाव पड़ने के सम्बन्ध मे निम्न तीन बातें ध्यान देने योग्य है—(अ) आय मे परिवर्तन का प्रभाव विभिन्न प्रकार की वस्तुओ पर भिन्न-भिन्न होता है, उदाहरणार्थ, आवश्यक वस्तुओ (necessaries) पर आय मे परिवर्तन का प्रभाव कम पड़ता है अपेक्षाकृत आरामदायक और विलासिता की वस्तुओं के। (ब) यह आवश्यक नहीं है कि आय मे परिवर्तन का प्रभाव मांग पर तुरन्त पड़े, प्रायः कुछ समय बाद ही मांग पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान मे मांग पर प्रभाव न केवल वर्तमान आय मे परिवर्तनो का, बल्कि भूतकाल म एकत्रित धन (accumulated wealth) का, प्रभाव भी पड़ता है। (स) आय म परिवर्तन का मांग पर प्रभाव उपभोक्ताओ की बचत करने की प्रवृत्ति (propensity to save) पर भी निर्भर करता है। यदि लोगो की बचत करने की प्रवृत्ति तीव्र है तो वढी आय मे से अधिक बचायेगे और थोड़ा व्यय करेंगे और इस प्रकार मांग मे अधिक वृद्धि न होगी। इसके विपरीत, यदि उनकी बचत करने की प्रवृत्ति कम है तो वे कम बचायेंगे और अधिक व्यय करेंगे और इस प्रकार मांग मे अधिक वृद्धि होगी।
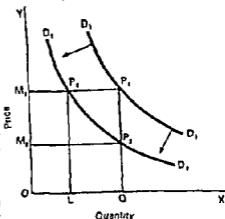
(२) धन का वितरण (Distribution of Wealth)—किसी समाज मे धन के वितरण का प्रभाव भी माँग पर पडता है। यदि धन का असमान वितरण है और धन थोडे-से धनी व्यक्तियों के हाथ मे केन्द्रित है तो विलासिता की वस्तुओ की अधिक माँग होगी। परन्तु यदि धनी व्यक्तियों पर कर लगाकर तथा गरीब व्यक्तियो को आर्थिक सहायता देकर या अन्य तरीकों से धन का वितरण अधिक न्याययुक्त तथा समान किया जाता है तो विलासिता की वस्तुओं की माँग घटेगी तथा अनिवार्य और आरामदायक वस्तुओं की माँग बढ जायेगी।

(३) उपभोक्ताओं की पसन्द (Consumers' Preferences)—उपभोक्ताओ की पसन्द उनकी रुचि, फैशन, आदत तथा प्रथाओ आदि पर निर्भर करती है, इन सब बातों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव माँग पर पडता है। जिस वस्तु के प्रति उपभोक्ताओ की रुचि बढ़ेगी तो उसकी माँग भी बढ जायेगी, उदाहरणार्थ, यदि लोग चाय की अपेक्षा कॉफी (coffee) को अधिक पसन्द करने लगते हैं तो कॉफी की माँग बढ जायेगी और चाय की माँग कम हो जायेगी। इसी प्रकार फैशन मे परिवर्तन होते रहने से पुराने डिजायन के वस्त्र, आभूषण, इत्यादि बाजार से हटते जाते हैं और नये प्रकार के वस्त्रों, आभूषणो, इत्यादि की माँग बाजार मे बढती जाती है।

(४) जलवायु तथा मौसम (Climate and Seasons)—जाडो के दिनो म ऊनी कपडो तथा पौष्टिक और गर्मी प्रदान करने वाली वस्तुओं की माँग बढ जाती है, जबकि गर्मी के मौसम मे सूती कपडे तथा शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुओ की माँग बढ जाती है। इस प्रकार जलवायु तथा मौसमों मे परिवर्तन से माँग के स्वभाव पर प्रभाव पडता है।

(५) व्यापार की दशा में परिवर्तन (Changes in the State of Trade)—(अ) पूँजीवादी देशो मे व्यापार मे चक्रीय चढाव-उतार (cyclical fluctuations) होते हैं अर्थात् नियमित समय से व्यावसायिक तेजी (boom) तथा व्यावसायिक मन्दी (slump) आती रहती है। तेजी के समय (boom period) म आर्थिक क्रियाओ, रोजगार तथा द्राव्यिक और वास्तविक आय मे वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप सभी वस्तुओ की माँग बढती है। इसके विपरीत, मन्दी काल (slump period) मे सभी वस्तुओ की माग घटती है। (ब) यदि आयात-निर्यात कर (custom duties) मे कमी कर दी जाती है तथा व्यापार मे कई प्रकार की बाधाएँ (trade barriers) हटा दी जाती हैं तो अधिक व्यापारी वस्तु विशेष के बाजार म प्रवेश करेंगे और इस प्रकार वस्तु की माँग बढ़ेगी।

(६) जनसख्या (Population)—यदि किसी देश मे जनसख्या मे वृद्धि होती है तो इसका अर्थ है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओ की माँग बढ़ेगी।

(७) वस्तु की कीमत (Price of a Commodity)—यदि किसी वस्तु की कीमत घटती है तो उसकी माँग बढ़ेगी तथा कीमत बढने पर माँग घटेगी।

(८) भविष्य मे मूल्य परिवर्तन की आशा (Expectation of Changes in Future Prices)—यदि भविष्य मे कुछ वस्तुओ की कीमत मे और अधिक वृद्धि होने की आशा होती है तो उनकी माँग बढती है। इसके विपरीत, यदि भविष्य म कीमत गिरने की आशा है तो माँग मे कमी होती है।

(९) द्रव्य की मात्रा मे परिवर्तन (Changes in the Quantity of Money)—यदि देश मे मुद्रा की मात्रा बढ जाती है अर्थात् साधारण मात्रा म मुद्रा-प्रसार (inflation) हो जाता है तो लोगो की क्रय शक्ति बढ जाती है और वस्तुओ के मूल्य भी बढ जाते हैं। बहुत-सी वस्तुओं के मूल्य बढने पर भी उनकी माँग उतनी ही बनी रहती है। ऐसी स्थिति को भी माँग मे वृद्धि कहते हैं।

(१०) सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन (Changes in the Prices of Related Goods)—सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं—स्थानापन्न वस्तुएँ (substitutes) तथा पूरक वस्तुएँ (complementary goods)। यदि किसी वस्तु 'X' की स्थानापन्न वस्तु की कीमत बढ़

जाती है तो वस्तु 'X' की माँग बढ़ जायेगी और यदि स्थानापन्न वस्तु की कीमत घट जाती है तो वस्तु 'X' की माँग घट जायेगी क्योंकि उपभोक्ता अब स्थानापन्न वस्तु का अधिक प्रयोग करेंगे क्योंकि वह सस्ती हो गयी है अपेक्षाकृत 'X' वस्तु के।

यदि वस्तु 'A' की पूरक वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो पूरक वस्तु की माँग कम होगी और चूंकि 'A' वस्तु अपनी पूरक वस्तु के साथ प्रयोग होती है इसलिए 'A' वस्तु की माँग भी घट जायेगी। इसी प्रकार यदि वस्तु A' की पूरक वस्तु की कीमत घट जाती है तो पूरक वस्तु की माँग बढ़ेगी और इसलिए वस्तु 'A' की माँग बढ़ेगी।

प्रो० रिचार्ड लिप्से (Richard Lipsey) माँग को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्त्वों में से चार तत्त्वों को मुख्य मानते हैं और ये चार तत्त्व हैं—(i) वस्तु की कीमत, (ii) अन्य वस्तुओं की कीमतें, (iii) उपभोक्ता की आय तथा, (iv) उपभोक्ता की रुचि (taste)।[7]

प्रश्न

१ माँग तालिका से आप क्या समझते हैं ? माँग तालिका तथा माँग वक्र में सम्बन्ध बताइए। माँग वक्र नीचे की ओर दायीं तरफ क्यों झुकता है ?
What is a demand schedule ? Show the relationship between demand schedule and demand curve Why do demand curves slope downward to the right ?
(Kanpur, B A I, 1976)

२ माँग अनुसूची तथा माँग वक्र समझाइए। माँग की दशाओं में परिवर्तनों से माँग वक्र किस प्रकार प्रभावित होता है ? उदाहरण व चित्रों द्वारा समझाइए।
Explain the demand schedule and the demand curve How is the demand curve affected by the changes in the conditions of demand ? Explain with the help of illustrations and diagrams
(Lucknow, B Com 1971)

३ माँग के नियम की व्याख्या कीजिए। माँग रेखाएँ दायें को नीचे की ओर क्यों झुकती है ? उन परिस्थितियों को बताइए जिनमें माँग रेखाएँ ऊपर की ओर चढ़ती है।
Explain the Law of Demand Why do demand curves slope downwards to the right ? Explain the circumstances in which demand curves slope upwards
(Agra, B A I, 1969, Garwal, B Com I, 1976)

[संकेत—प्रथम भाग में माँग के नियम का कथन दीजिए। दूसरे भाग में बताइए कि माँग का नियम बताता है कि माँग तथा कीमत में उल्टा सम्बन्ध होता है, इसलिए माँग रेखाएँ दायें को नीचे की ओर झुकती हुई होती है, इसके बाद बताइए कि माँग तथा कीमत में उल्टा सम्बन्ध क्यों होता है। तीसरे भाग में माँग के नियम के अपवाद बताइए अर्थात् उस स्थिति को बताइए जिसमें माँग का नियम लागू नहीं होता और इसलिए माँग रेखा ऊपर की ओर चढ़ती हुई होती है।]

४. अधिकांश माँग रेखाएँ दायें को नीचे की ओर क्यों गिरती हैं ?
Why do most demand curves slope downwards to the right ?

---

[7] इसलिए 'माँग-कीमत के सम्बन्ध' को अर्थात् 'माँग-फलन' (demand function) को गणित की भाषा में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$$D_x = f(P_x, P_1, P_2 \ldots P_{n-1}, Y, T)$$

जबकि D_x चिन्ह (symbol) का अर्थ है वस्तु X की माँग, P_x का अर्थ है उसी वस्तु X की कीमत, $P_1, P_2 \ldots P_{n-1}$ का अर्थ है अन्य वस्तुओं की कीमतें, Y का अर्थ है उपभोक्ता की आय, T का अर्थ है उपभोक्ता की रुचि।

[विद्यार्थियों के लिए नोट—इस फुटनोट की समस्त विषय-सामग्री को विद्यार्थी ऊपर पाठ्य-भाग (main text) में लिख सकते हैं।]

५. माँग के नियम को समझाइए और 'गिफिन के विरोधाभास' की व्याख्या कीजिए।
State the Law of Demand and explain 'Giffin's Paradox'.

६. 'माँग की वृद्धि और माँग मे विस्तार' और 'माँग मे कमी तथा माँग मे सकुचन' का अन्तर बताइए। उन परिस्थितियों को समझाइए जिनके अन्तर्गत मूल्यो मे वृद्धि के साथ-साथ माँग मे वृद्धि होती है।
Distinguish between 'Increase in demand and expansion of demand' and 'decrease in demand and contraction of demand'. Bring out those conditions under which demand increases with the increase in price *(Meerut, 1971)*

[सकेत—दूसरे भाग मे माँग के नियम के अपवादों को बताइए।]

७. 'माँग मे विस्तार' तथा 'माँग मे वृद्धि' के बीच अन्तर को समझाइए। इस सन्दर्भ मे, कीमत को छोडकर, उन सब तत्त्वो को समझाइए जो कि माँग मे परिवर्तन करते हैं।
Distinguish between 'Expansion of demand' and Increase of demand. In this connection *explain the factors which bring about changes in demand independently of price*

[सकेत—दूसरे भाग में, कीमत को छोडकर उन तत्त्वो को बताइए जो माँग को प्रभावित करते हैं।]

19 माँग की लोच
[ELASTICITY OF DEMAND]

माँग का नियम केवल गुणात्मक कथन (qualitative statement) है। यह मूल्य में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप माँग के परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है। माँग का नियम यह नहीं बताता कि कीमत में परिवर्तन के कारण माँग में कितना परिवर्तन होता है। इस बात को जानने के लिए अर्थशास्त्रियों ने माँग की लोच का टेक्नीकल विचार (technical concept) प्रस्तुत किया है।

माँग की लोच की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच, कीमत में थोड़े-से परिवर्तन के उत्तर में, माँग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन की माप है। इसका पूरा नाम 'माँग की कीमत-लोच' (price elasticity of demand) है, क्योंकि माँग में परिवर्तन, कीमत में परिवर्तन के उत्तर में होता है।

१. सेम्युलसन (Samuelson) के शब्दों में,

"माँग की लोच का विचार बाजार कीमत (मात्रा P) में परिवर्तन के उत्तर में माँग की मात्रा (मात्रा Q) में परिवर्तन के अंश अर्थात् माँग में प्रतिक्रियात्मकता के अंश (degree of responsiveness) को बताता है। यह मुख्यतया प्रतिशत परिवर्तनों (percentage changes) पर निर्भर करता है और P तथा Q को नापने में प्रयोग की जाने वाली इकाइयों से स्वतन्त्र होता है।[1]

२. श्रीमती जोन रोबिन्सन ने माँग की लोच की गणितात्मक परिभाषा इस प्रकार दी है :

"माँग की लोच, कीमत में थोड़े-से परिवर्तन के परिणामस्वरूप खरीदी गयी मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।"[2]

संक्षेप में, इसको निम्न सूत्र द्वारा बताया जाता है .

$$e_p = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}, \text{ जबकि } e_p = \text{माँग की कीमत लोच ।}$$

[1] "This (i.e. Elasticity of demand) is a concept devised to indicate the degree of responsiveness of Q demanded to changes in market P. It depends primarily on *percentage* changes and is independent of units used to measure Q and P." —*Samuelson*

[2] "The elasticity of demand at any price or any output is the proportional change of amount purchased in response to a small change in price divided by the proportional change of price." —*Mrs. Joan Robinson*

३ कीमत (अर्थात् P) में परिवर्तन होने पर मांग की मात्रा (अर्थात् Q) में परिवर्तन होगा; अर्थात् कुल आगम (total revenue), जो कि P×Q द्वारा व्यक्त किया जाता है, में परिवर्तन होगा। दूसरे शब्दों में,

> "मांग की लोच का विचार मुख्यतया इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह इस बात का सूचक है कि कुल आगम में किस प्रकार परिवर्तन होता है, जबकि कीमत में परिवर्तन मांग की मात्रा में परिवर्तन उत्पन्न करता है।"[1]

मांग की लोच के विचार को अच्छी प्रकार से समझने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए

(i) मांग की लोच का सम्बन्ध कीमत तथा मांग की मात्रा में सापेक्षिक परिवर्तनों (relative changes), अर्थात् आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तनों (Proportional or Percentage changes) से होता है।

(ii) (अ) इसके अन्तर्गत हम मांग के उस परिवर्तन पर विचार करते हैं जो कीमत में थोड़े-से परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता हो, तथा (ब) जो अल्प समय के लिए ही हो।[2]

(iii) मांग की लोच किसी दी हुई मांग रेखा की एक विशेषता है (Elasticity of demand is one characteristic of any given demand curve)

बिन्दु लोच तथा चाप लोच (Point Elasticity and Arc Elasticity)

मांग रेखा (DD) के किसी बिन्दु (P) पर मांग की लोच मालूम की जाये तो इसे 'मांग की बिन्दु लोच' (Point Elasticity of Demand) कहते हैं। वास्तव में, मांग की लोच मांग रेखा के किसी एक बिन्दु की स्थिति पर निर्भर करती है, इसलिए इसको ज्ञात करने के लिए हमको कीमतों और मात्राओं में बहुत सूक्ष्म परिवर्तनों को ध्यान में रखना चाहिए।[3] परन्तु प्रायः हम कुछ कीमतों तथा उनसे सम्बन्धित मात्राओं को लेकर ही चलते हैं और मांग रेखा के स्वभाव (nature) को उसके प्रत्येक बिन्दु पर ठीक प्रकार से नहीं जानते। दूसरे शब्दों में, व्यवहार में कीमतों तथा मात्राओं में सूक्ष्म परिवर्तन हमें मालूम नहीं होते इसलिए 'मांग की बिन्दु लोच' को ज्ञात करना कठिन होता है।

चित्र—१

अतः व्यावहारिक जीवन में हम 'बिन्दु लोच' न मालूम करके 'चाप लोच' (arc elasticity) मालूम करते हैं। चित्र सख्या १ से स्पष्ट है कि 'चाप लोच' किसी मांग रेखा (DD) के 'एक चाप' PQ (Arc PQ) पर निकाली जाती है अर्थात यह मूल्यों और मात्राओं के एक क्षेत्र (range) से सम्बन्धित होती है। जब हम किसी मांग रेखा (DD) पर दो बिन्दुओं 'P & Q) को लेकर चलते हैं तो इन बिन्दुओं से अनेक मांग रेखाएँ खींच सकते हैं—एक सीधी रेखा तथा बहुत-सी वक्र रेखाएँ जिनकी वक्रता (curvature) भिन्न-भिन्न होगी। जब हम इन दो बिन्दुओं के बीच मांग की लोच ज्ञात करते हैं तो वास्तव में हम इन दोनों बिन्दुओं के बीच चाप के
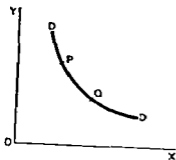
---

[1] "Elasticity of demand is primarily important *as an indicator* of how total revenue changes when a change in P induces a change in Q."

[2] 'कीमतों में अधिक उतार-चढ़ाव' के परिणामस्वरूप मांग में जो परिवर्तन होता है उसमें सटोरियों का प्रभाव अधिक रहता है, पर मांग के ऐसे परिवर्तनों को मांग की लोच नहीं मानना चाहिए। इसी प्रकार यदि आज की मांग की तुलना आज से १०-१५ वर्ष पूर्व की मांग से की जाय तो आज की मांग में जो परिवर्तन दिखायी पड़ेगा, वह केवल मूल्य के परिवर्तन का परिणाम न होकर बदलती हुई इच्छाओं, फैशन, रीति-रिवाजों, इत्यादि का परिणाम होगा।

[3] "Elasticity is a function of a point on the curve and should be calculated in terms of infinitesimal changes in price and quantity."

छोर पर मांग की लोचों का औसत (average of the elasticities over the arc between these two points) निकालते हैं। इसे 'बिन्दु लोच' से भेद प्रकट करने के लिए 'चाप लोच' कहते हैं।

'मांग की कीमत-लोच' की श्रेणियाँ या मात्राएँ
(DEGREES OF THE PRICE ELASTICITY OF DEMAND)

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की मांग पर एकसा प्रभाव नहीं होता अर्थात् कुछ वस्तुओं की मांग की लोच कम होती है तथा कुछ की अधिक। मांग की लोच की पांच श्रेणियाँ हैं (१) पूर्णतया लोचदार मांग (२) अत्यधिक लोचदार मांग, (३) लोचदार मांग, (४) बेलोच मांग तथा (५) पूर्णतया बेलोच मांग।

(१) **पूर्णतया लोचदार मांग** (*Perfectly elastic demand*)—जब वस्तु के मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर भी, *या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन* (infinitesimal change) होने पर, मांग में बहुत अधिक कमी या वृद्धि हो जाती है, तब वस्तु की मांग पूर्णतया लोचदार कही जाती है। यह चित्र संख्या २ से स्पष्ट है। पूर्णतया लोचदार मांग की दशा में मांग रेखा आधार रेखा (X-axis) के समानान्तर (parallel) होती है। चित्र में मूल्य PQ है तो मांग OQ है परन्तु मूल्य में बिना परिवर्तन हुए (अर्थात् मूल्य KL यानी PQ रहता है) मांग OQ से OL हो जाती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार की मांग केवल काल्पनिक होती है। वास्तविक जीवन

चित्र—२

में पूर्णतया लोचदार मांग का उदाहरण नहीं मिलता। चूंकि इस प्रकार की दशा में कीमत में शून्य परिवर्तन होने पर मांग में अनन्त (infinity) परिवर्तन होता है इसलिए गणित की भाषा में हम इसे $e = \infty$ द्वारा व्यक्त करते हैं। यद्यपि व्यावहारिक जीवन में पूर्णतया लोचदार मांग नहीं पायी जाती, फिर भी यह मांग की लोच की ऊपरी सीमा निर्धारित करती है।
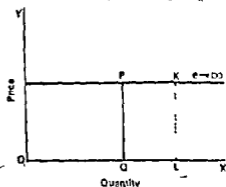
(२) **अत्यधिक लोचदार मांग** (Highly elastic demand)—जब किसी वस्तु की मांग में आनुपातिक परिवर्तन (Proportionate change), कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार मांग कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु के मूल्य में २० प्रतिशत कमी होती है, परन्तु उसकी मांग में ४० प्रतिशत वृद्धि हो जाती है तो ऐसी वस्तु की मांग अधिक लोचदार कही जायेगी। ऐसी वस्तु की मांग की लोच को 'इकाई से अधिक लोच' भी कहते हैं और गणित की भाषा में $e > 1$ द्वारा व्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, चित्र नं० ३ से स्पष्ट है कि कीमत में कमी होने के बाद कुल आगम (total revenue after the decrease in price) OLKS अधिक है पुराने कुल आगम OQPT से, इसलिए मांग की लोच इकाई से अधिक है।
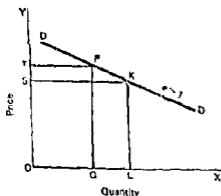
चित्र—३

[इसको समझने के लिए इसी अध्याय में आगे 'मांग की लोच को मापने की रीतियाँ' नामक केन्द्रीय शीर्षक (Central heading) के अन्तर्गत पहली रीति अर्थात् 'कुल आगम या व्यय रीति' (Total Revenue or Outlay Method) को पृष्ठ २३० पर देखिए।]

इस प्रकार की लोच प्राय विलासिता की वस्तुओ (जैसे टाई, मोटरकार, इत्यादि) मे होती है।

(३) लोचदार माँग (Elastic demand)—जब किसी वस्तु की माँग मे परिवर्तन ठीक उसी अनुपात मे होता है जिस अनुपात मे उसकी कीमत मे परिवर्तन हुआ है, तब ऐसी वस्तु की माँग को 'लोचदार माँग' कहते हैं। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की कीमत मे २०% की वृद्धि होती है और उसकी माँग मे ठीक २०% कमी हो जाती है, तो यह लोचदार माँग कहलायेगी। इस प्रकार की लोच को 'इकाई के बराबर लोच' भी कहते हैं, गणित की भाषा मे इसको $e=1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, चित्र न० ४ मे कीमत मे कमी के बाद नया कुल आगम OLKS बराबर है, पुराने कुल आगम OQPT के, इसलिए $e=1$ है। परन्तु ध्यान रहे कि इस रेखा के प्रत्येक बिन्दु पर $e=1$ नही होती, रेखा के केवल मध्य पर ही ऐसा है।[6] यदि माँग रेखा को सीधी रेखा द्वारा न बनाकर वक्र (curve) द्वारा बनाया जाये तो 'माँग की इकाई लोच' को rectangular hyperbola (ऐसी वक्र रेखा जिसको दोनो सिरो पर बढ़ाये जाने पर वह X-axis तथा Y-axis को काटती नही है) द्वारा दिखाया जाता है जैसा कि साथ के दूसरे चित्र संख्या ५ में दिखाया गया है। इस वक्र की समस्त लम्बाई पर $e=1$ होती है क्योंकि इस वक्र के सभी बिन्दुओं पर 'कुल आगम' बराबर रहता है।

चित्र—४

चित्र—५
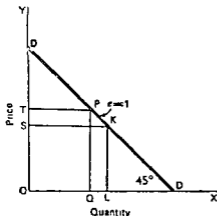
इस प्रकार की लोच आरामदायक वस्तुओ (जैसे—साइकिल, घड़ी, बिजली का पखा, इत्यादि) मे पायी जाती है।

(४) बेलोच माँग (Inelastic demand)—जब किसी वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को 'बेलोच माँग' कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत मे ५०% की वृद्धि होती है, परन्तु माँग मे केवल १०% कमी होती है, तो ऐसी माँग को बेलोच माँग कहा जाता है। इस प्रकार की लोच को 'इकाई से कम लोच' भी कहते हैं, गणित की भाषा मे इसको $e<1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरे शब्दो मे,
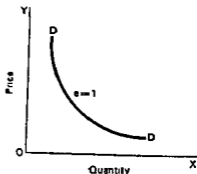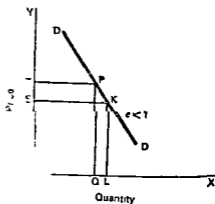
चित्र—६

[6] इसको समझने के लिए इस अध्याय मे आगे 'माँग की लोच को नापने की तीसरी रीति' अर्थात् 'बिन्दु रीति' या 'रेखागणित-रीति' को पृष्ठ २३२-२३३ पर पढ़िए।

चित्र नं० ६ से स्पष्ट है कि कीमत में कमी होने के बाद नया कुल आगम OLKS कम है पुराने कुल आगम OQPT से, इसलिए मांग की लोच इकाई से कम है।

ऐसी लोच प्राय अनिवार्य वस्तुओं (जैसे अनाज) में पायी जाती है।

चित्र—७

(५) पूर्णतया बेलोचदार मांग (Perfectly Inelastic Demand)—जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी मांग में बिलकुल परिवर्तन न हो तो ऐसी दशा को 'पूर्णतया बेलोच मांग' कहते हैं। मांग में बिलकुल परिवर्तन न होने के कारण ऐसी स्थिति को गणित की भाषा में e=0 द्वारा व्यक्त किया जाता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि पूर्णतया बेलोचदार मांग केवल एक काल्पनिक स्थिति को बताती है, वास्तविक जीवन में इस प्रकार की मांग की लोच का कोई उदाहरण नहीं मिलता है। इस प्रकार की दशा में मांग रेखा आधार-रेखा (X-axis) पर लम्ब (Perpendicular) होती है जैसा कि चित्र संख्या ७ में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जब मूल्य OQ है तो मांग OT या QP है, यदि मूल्य बढ़कर OL हो जाता है तो मांग उतनी ही (LK यानी QP) रहती है।
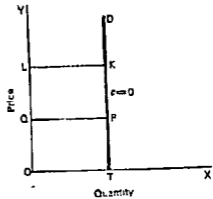
मांग की कीमत-लोच (Price Elasticity of Demand) की पांचों श्रेणियों या मात्राओं को हम एक ही चित्र नं० ८ द्वारा भी दिखा सकते हैं।[7]
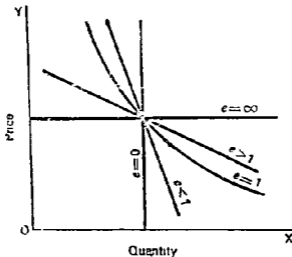
चित्र—८

मांग की लोच को मापने की रीतियाँ

(METHODS FOR MEASURING ELASTICITY OF DEMAND)

मांग की लोच मापने की मुख्य रीतियाँ तीन हैं (१) कुल व्यय रीति, (२) आनुपातिक रीति, तथा (३) बिन्दु रीति।

---

[7] इसको पूरी प्रकार से समझने के लिए इस अध्याय की परिशिष्ट में पृष्ठ २३६ के फुटनोट को पढ़िए।

(२) 'आनुपातिक रीति' या 'प्रतिशत-रीति' अथवा 'चाप लोच' को ज्ञात करने की रीति (proportional Method or Method for Measuring Arc Elasticity)

इस रीति के अन्तर्गत माँग मे आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) को कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) से भाग देते हैं। माँग की लोच निम्न सूत्र द्वारा निकालते हैं

$$e_p = \frac{\text{माँग मे आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{माँग मे परिवर्तन}}{\text{माँग की पूर्व (original) मात्रा}}}{\dfrac{\text{कीमत मे परिवर्तन}}{\text{पूर्व कीमत (Original price)}}}$$

$$= -\frac{\dfrac{\Delta q}{q}}{\dfrac{\Delta p}{p}}$$

$$= -\frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}$$

$$= -\frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

जबकि

Δ (डेल्टा) = सूक्ष्म परिवर्तन

Δq = माँग मे सूक्ष्म परिवर्तन

q = माँग की पूर्व मात्रा

Δp = कीमत मे सूक्ष्म परिवर्तन

p = पूर्व कीमत

[चूँकि कीमत तथा माँग मे उल्टा सम्बन्ध होता है, इसलिए सूत्र (*formula*) के शुरू मे (—) (minus) का चिह्न लगाते है। जब कभी minus का चिह्न स्पष्ट रूप से नहीं लगाते हैं तो इसका अर्थ है चिह्न छिपा हुआ (hidden या implied) है।]

इस सूत्र मे माँग की लोच निकालने मे एक कठिनाई सामने आती है. 'माँग की मात्रा मे आनुपातिक (या प्रतिशत) परिवर्तन, माँग की पूर्व (original) मात्रा पर या नयी मात्रा पर और कीमत मे आनुपातिक (या प्रतिशत) परिवर्तन पूर्व कीमत पर या नयी कीमत पर निकाला जा सकता है।'[8] अत. माँग की लोच की संख्या (*figure*) कितनी होगी यह इस बात पर निर्भर करेगी कि आनुपातिक परिवर्तन निकालने मे कौन-सी रीति का प्रयोग किया गया है। इस

---

[8] उदाहरण के लिए माना कि किसी वस्तु की कीमत ६ रुपये है तो उसकी माँग ३६ इकाइयो की है, यदि उसकी कीमत बढ़कर ८ रुपये हो जाती है तो उसकी माँग घटकर ३० इकाई के बराबर हो जाती है। इस उदाहरण मे, *माँग मे ६ का परिवर्तन ३६ पर निकाला जा सकता* है तो आनुपातिक परिवर्तन $\frac{६}{३६}$ होगा, या ३० पर निकाला जा सकता है तो माँग मे आनुपातिक परिवर्तन $\frac{६}{३०}$ होगा जो कि पहले से भिन्न है। इसी प्रकार कीमत मे २ का परिवर्तन ६ पर निकाला जा सकता है तो कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन $\frac{२}{६}$ होगा या ८ पर निकाला जा सकता है तो कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन $\frac{२}{८}$ होगा जो कि पहले से भिन्न है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियो का मत है कि कीमत मे परिवर्तन न तो छोटी संख्या (६) और न बड़ी संख्या (८) पर निकाला जाये बल्कि दोनो संख्याओ के मध्य $\frac{६+८}{२}$ पर अर्थात् दोनो संख्याओ की औसत दर निकाला जाये। इसी प्रकार माँग मे परिवर्तन न तो छोटी संख्या (३०) पर और न बड़ी संख्या (३६) पर निकाला जाये बल्कि दोनो के मध्य $\frac{३०+३६}{२}$ पर अर्थात् दोनो संख्याओ के औसत पर निकाला जाये।

कठिनाई को दूर करने का एक तरीका यह है कि माँग का आनुपातिक परिवर्तन न तो माँग की पूर्व मात्रा पर निकाला जाय और न नयी मात्रा पर, बल्कि दोनों मात्राओं के मध्य बिन्दु (अर्थात् औसत) पर निकाला जाय इसी प्रकार कीमत का आनुपातिक परिवर्तन न तो पूर्व कीमत पर निकाला जाये और न नयी कीमत पर, बल्कि दोनो कीमतों के मध्य बिन्दु (अर्थात् औसत) पर निकाला जाये। ऐसी स्थिति में सूत्र इस प्रकार हो जायेगा

$$e_p = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}} = \frac{\dfrac{\text{माँग की मात्रा में परिवर्तन}}{(\text{पूर्व मात्रा} + \text{नयी मात्रा})/_2}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{(\text{पूर्व कीमत} + \text{नयी कीमत})/_2}}$$

$$= \frac{\dfrac{q_1 \sim q_2}{\frac{q_1 + q_2}{2}}}{\dfrac{p_1 \sim p_2}{\frac{p_1 + p_2}{2}}} = \frac{\dfrac{q_1 \sim q_2}{q_1 + q_2}}{\dfrac{p_1 \sim p_2}{p_1 + p_2}}$$

जबकि, q_1 = माँग की पूर्व मात्रा
q_2 = माँग की नयी मात्रा
p_1 = पूर्व कीमत
p_2 = नयी कीमत
$\sim$ यह चिह्न दो संख्याओं के बीच 'अन्तर' को बताता है।

[उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत ६ रुपये है तो उसकी माँग ३६ इकाइयों की है। कीमत ८ रुपये हो जाने पर माँग ३० इकाइयों के बराबर हो जाती है। इस उदाहरण मे

$$e_p = \frac{\dfrac{36 \sim 30}{36 + 30}}{\dfrac{6 \sim 8}{6 + 8}} = \frac{\frac{6}{66}}{\frac{2}{14}} = \frac{\frac{1}{11}}{\frac{1}{7}} = \frac{1}{11} \times \frac{7}{1} = \frac{7}{11} = \cdot 63,$$ अर्थात् माँग की लोच इकाई से कम है।]

२) बिन्दु रीति या रेखागणित रीति (Point Method or Geometrical Method)

इस रीति द्वारा हम माँग रेखा P के किसी बिन्दु पर माँग की लोच निकाल सकते हैं। चित्र संख्या ११ मे DD माँग रेखा के बिन्दु P पर लोच मालूम करने के लिए P बिन्दु पर एक स्पर्श रेखा (tangent) RK खींची जाती है और उसे दोनो ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X-axis

को K बिन्दु पर तथा Y-axis को R बिन्दु पर काटती है। माँग की लोच का सूत्र* अब प्रकार है :

---

* इस सूत्र को इस प्रकार निकाला (या derive किया) जाता है। चित्र नं० १० में, माँग रेखा DD के बिन्दु P पर लोच मालूम करनी है। RK स्पर्श रेखा (tangent) है P बिन्दु पर। जब कीमत OS से घटकर OW हो जाती है तो माँग OL से बढ़कर ON हो जाती है। यदि कीमत में परिवर्तन बहुत कम है तो P_1 बहुत ही पास होगा P के तथा OM लगभग ON के बराबर होगी।

चित्र—१०

अब,

$$c_p = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{माँग में परिवर्तन}}{\text{पूर्व माँग}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{पूर्व कीमत}}}$$

$$= \frac{\dfrac{LM}{OL}}{\dfrac{SW}{OS}} = \frac{LM}{OL} \times \frac{OS}{SW} = \frac{LM}{SW} \times \frac{OS}{OL}$$

$$= \frac{TV}{PT} \times \frac{OS}{OL} \qquad (\because LM = TV \text{ तथा } SW = PT)$$

$$= \frac{LK}{PL} \times \frac{OS}{OL} \quad [\because \Delta s \; PTV \text{ तथा } KLP \text{ अनुरूप (similar) हैं।}]$$

$$= \frac{LK}{OL} \times \frac{OS}{PL}$$

$$= \frac{LK}{OL} \qquad (\because OS = PL)$$

$$= \frac{KP}{PR} \qquad (\because \Delta KOR \text{ एक rt. } \angle d \; \Delta \text{ है,} \quad \therefore \frac{LK}{OL} = \frac{KP}{PR})$$

$$= \frac{\text{Lower Sector}}{\text{Upper Sector}}$$

$$e_p = \frac{\text{नीचे का भाग (Lower sector)}}{\text{ऊपर का भाग (Upper sector)}}$$

$$= \frac{PK}{PR}$$

यदि Lower sector > Upper sector से, तो $e > १$

यदि Lower sector < Upper sector से, तो $e < १$

यदि Lower sector = Upper sector के, तो $e = १$

चित्र—११

मांग की लोच तथा उपयोगिता ह्रास नियम
(ELASTICITY OF DEMAND AND THE LAW OF DIMINISHING UTILITY)

मांग की लोच का उपयोगिता ह्रास नियम से घनिष्ट सम्बन्ध है। उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार किसी वस्तु की पूर्ति म वृद्धि के साथ सीमान्त उपयोगिता घटती है तथा पूर्ति मे कमी के साथ सीमान्त उपयोगिता बढती है। परन्तु सभी वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिता समान गति से नही घटती है। कुछ वस्तुओ (आवश्यकता की वस्तुएँ, जैसे नमक इत्यादि) के प्रयोग से हमे शीघ्र ही सन्तुष्टि प्राप्त हो जाती है अर्थात् सीमान्त उपयोगिता शीघ्र गिर जाती है ऐसी वस्तुओ के मूल्य म अधिक कमी होने पर भी इनकी मांग म वृद्धि नही होगी। दूसरे शब्दो मे, ऐसी वस्तुओ की मांग की लोच बेलोच होती है। परन्तु कुछ वस्तुएँ, जैसे आराम तथा विलासिता की वस्तुएँ, ऐसी होती है जिनकी पूर्ति म वृद्धि के साथ सीमान्त उपयोगिता धीरे धीरे गिरती है, अत ऐसी वस्तुओ के मूल्य म थोडी कमी होने पर उनकी मांग अधिक बढ जाती है और ऐसी वस्तुओं की मांग लोचदार होती है। अत स्पष्ट है कि जिन वस्तुओ की उपयोगिता शीघ्र गिरती है उनकी मांग बेलोच (inelastic) होती है तथा जिन वस्तुओं की उपयोगिता धीरे-धीरे गिरती है उनकी मांग लोचदार (elastic) होती है। इस प्रकार मांग की लोच, उपयोगिता ह्रास नियम से सम्बन्धित है।

मांग की लोच तथा उपभोक्ता की बचत
(ELASTICITY OF DEMAND AND CONSUMER S SURPLUS)

मांग की लोच का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव पडता है। आवश्यक वस्तुओ (Necessaries) तथा रस्मी आवश्यकता की वस्तुएँ (conventional necessaries) की मांग की लोच बेलोच होती है। इन वस्तुओ (जैसे नमक, अनाज, इत्यादि) का मूल्य प्राय नीचा होता है जबकि उपभोक्ता इनके लिए अधिक कीमत देने को तत्पर होते हैं, अत उपभोक्ता, जो देने को तत्पर हैं और जो वास्तव मे देते हैं—इन दानो का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत होती है और यह बेलोच वस्तुओ मे अधिक प्राप्त होती है। इसके विपरीत, विलासिता तथा आराम की वस्तुओ की मांग लोचदार होती है और इन वस्तुओ का मूल्य ऊँचा रहता है। परिणामस्वरूप इनसे उपभोक्ता को बचत कम प्राप्त होती है। इस प्रकार बेलोचदार मांग की वस्तुओं से उपभोक्ता को बचत अधिक और लोचदार मांग की वस्तुओ से उपभोक्ता को बचत कम प्राप्त होती है।

मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(FACTORS INFLUENCING ELASTICITY OF DEMAND)

मांग की लोच को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व अग्रलिखित है

(१) वस्तु का गुण (Nature of commodity)—(i) प्रायः आवश्यकता की वस्तुओं (necessaries) तथा रस्मी आवश्यकताओं (Conventional necessaries) की वस्तुओं की माँग की लोच बेलोचदार होती है। उदाहरणार्थ, नमक अनाज, इत्यादि वस्तुओं की कीमत बढ़ने या घटने पर इनकी माँग अधिक घटती या बढ़ती नहीं है क्योंकि ये जीवन के लिए आवश्यक हैं और कीमत में परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता आवश्यकतानुसार जितनी मात्रा जरूरी है, इनको खरीदेंगे ही। इसी प्रकार रस्मी आवश्यकताओं की माँग पर भी मूल्य परिवर्तन का प्रभाव बहुत कम होता है।

(ii) प्रायः आरामदायक वस्तुओं (comforts) की माँग की लोच औसत दर्जे की या साधारण लोचदार (moderately elastic) होती है। ऐसी वस्तुओं के उपभोग से हमारी कार्य-क्षमता बढ़ती है परन्तु इनकी अनुपस्थिति से कार्यशक्ति में कुछ कमी होती है। अतः ऐसी वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन होने पर उसकी माँग पर प्रभाव आवश्यक वस्तुओं की अपेक्षा तो अधिक पड़ता है, परन्तु वैसे प्रभाव साधारण (moderate) ही पड़ता है।

(iii) प्रायः विलासिता की वस्तुओं (Luxuries) की माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। ऐसी वस्तुओं के प्रयोग करने से हमारी कार्यक्षमता घटती है। अतः इन वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन होने पर इनकी माँग पर अनुपात से अधिक प्रभाव पड़ता है।

परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं है कि विलासिता की वस्तुओं की माँग सदैव अधिक लोचदार हो तथा आवश्यक वस्तुओं की माँग की लोच सदैव बेलोचदार हो क्योंकि आवश्यकताओं का यह वर्गीकरण सापेक्षिक है। कार जैसी विलासिता की वस्तु डाक्टरों के लिए आवश्यक है और उनके लिए कार की माँग बेलोचदार होगी।

(२) वस्तु के स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि (Range of Substitutes)—यदि किसी वस्तु की अनेक स्थानापन्न वस्तुएँ हैं तो उसकी माँग की लोच अधिक लोचदार होगी क्योंकि वस्तु की कीमत में वृद्धि हो जाने पर इसके स्थान पर दूसरी स्थानापन्न वस्तु का प्रयोग किया जाने लगेगा। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत में कमी हो जाती है तो अन्य वस्तुओं के स्थान पर इसका प्रयोग होने लगेगा और इसकी माँग बढ़ जायगी (उदाहरणार्थ, चीनी तथा गुड़ स्थानापन्न वस्तुएँ हैं; चीनी की कीमत में वृद्धि होने से चीनी की माँग कम हो जायेगी क्योंकि अब उपभोक्ता चीनी के स्थान पर गुड़ का प्रयोग करने लग जायेंगे); यदि किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुएँ नहीं हैं तो उसकी माँग बेलोचदार होगी।

(३) वस्तु के अनेक प्रयोग (Variety of uses)—ऐसी वस्तुएँ जिनको अनेक प्रयोगों में लाया जा सकता है, जैसे—बिजली, कोयला, इत्यादि, उनकी माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। यदि बिजली की दर बढ़ती है तो इसकी माँग घटेगी क्योंकि अब इसका प्रयोग कम महत्त्वपूर्ण प्रयोगों (जैसे कमरा गरम करने, पानी गरम करने, इत्यादि) से हटाकर केवल महत्त्वपूर्ण प्रयोगों (जैसे, रोशनी इत्यादि) में ही किया जायेगा।

(४) वस्तु के प्रयोग को स्थगित किया जा सकता है (Possibility of postponement of the use of a commodity)—यदि वस्तु ऐसी है कि इसके प्रयोग को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सके तो उसकी माँग की लोच अधिक लोचदार होगी। उदाहरणार्थ, यदि ऊनी कपड़े की कीमत बढ़ जाती है तो उसकी माँग अधिक गिर जायेगी क्योंकि लोग इसके प्रयोग को स्थगित कर देंगे और पुराने कोट-पेण्ट इत्यादि की मरम्मत कराके काम चलायेंगे।

(५) मूल्य-स्तर (Price level)—इस सम्बन्ध में मार्शल ने कहा है कि "माँग की लोच ऊँची कीमतों के लिए अधिक होती है, मध्यम कीमतों के लिए पर्याप्त होती है तथा जैसे-जैसे कीमत घटती जाती है वैसे-वैसे लोच भी घटती जाती है और यदि कीमतें इतनी गिरें कि तृप्ति की सीमा आ जाय तो लोच धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।"[10]

---

[10] "The elasticity of demand is great at high prices and great or at least considerable for medium prices but it declines as the prices fall, and gradually fades away if the fall goes so fast that satiety level is reached." —Marshall, *Principles of Economics*, p. 87.

परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य है कि समाज के एक वर्ग अर्थात धनी वर्ग के लिए कुछ वस्तुओं (जैसे, हीरे, कारें, इत्यादि) की माँग की लोच, ऊँची कीमतों पर भी लोचदार नहीं होती, बल्कि बेलोचदार होती है। हीरों या कारों की माँग केवल धनी वर्ग द्वारा ही की जाती है क्योंकि इनकी कीमतें पहले से ही काफी ऊँची होती हैं तथा इन वस्तुओं की कीमतों में और वृद्धि या कमी हो जाती है तो इनकी माँग पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(६) आय-वर्ग (Income group)—माँग की लोच का सम्बन्ध एक दिए हुए आय-वर्ग से होता है। धनी वर्ग के लिए वस्तुओं की माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है क्योंकि उनके लिए कीमतों में वृद्धि या कमी विशेष महत्व नहीं रखती। जबकि निर्धन वर्ग के लिए प्रायः वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है क्योंकि उनकी माँग पर कीमतों के परिवर्तन से अधिक प्रभाव होता है।

(७) समाज में धन के वितरण का लोच पर प्रभाव (Effect of the distribution of wealth)—प्रो० टाउसिग (Taussig) के अनुसार सामान्यतया समाज में धन के असमान वितरण होने से माँग की लोच बेलोच होती है तथा धन के समान वितरण से साथ लोचदार हो जाती है। असमान वितरण के परिणामस्वरूप समाज दो भागों में बँट जाता है—थोड़े व्यक्तियों का धनी वर्ग तथा अधिकांश व्यक्तियों का निर्धन वर्ग। कीमतों में थोड़ा वृद्धि या कमी धनी वर्ग के लोगों की माँग को अधिक प्रभावित नहीं करती, इसी प्रकार निर्धनों के लिए भी लोच सामान्यतया बेलोचदार ही रहती है क्योंकि वे केवल आवश्यकता की वस्तुएं ही खरीद पाते हैं। परन्तु धन के समान वितरण से लगभग सभी व्यक्तियों की क्रय-शक्ति ठीक होती है और कीमतों में वृद्धि या कमी का सब लोगों पर प्रभाव पड़ता है, अतः माँग लोचदार हो जाती है।

(८) उपभोक्ता की आय का व्यय किये जाने वाला भाग (Part of the consumer's income spent)—जिन वस्तुओं पर आय का बहुत थोड़ा भाग व्यय किया जाता है उनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है, इसके विपरीत जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी आय का एक बड़ा भाग व्यय करता है उनकी माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। उदाहरणार्थ, सुई, डोरा, बटन, इत्यादि पर उपभोक्ता आय का बहुत थोड़ा-सा भाग व्यय करता है अतः इनकी कीमतों में वृद्धि या कमी से माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और इनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है। इसके विपरीत कपड़ा, रेडियो, साइकिल, इत्यादि पर आय का बड़ा भाग व्यय किया जाता है इसलिए इनकी माँग की लोच लोचदार होती है।

(९) संयुक्त माँग (Joint demand)—कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो कि दूसरी वस्तु के साथ माँगी जाती हैं, जैसे—डबलरोटी तथा मक्खन, पेन तथा स्याही, दियासलाई तथा सिगरेट। ऐसी वस्तुएँ जो दूसरी वस्तुओं के साथ माँगी जाती हैं उनकी माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है। उदाहरणार्थ, यदि सिगरेट की माँग नहीं गिरती है और वह पहले जैसी ही बनी रहती है तो दियासलाई की कीमत बढ़ने पर भी दियासलाई की माँग नहीं घटेगी क्योंकि सिगरेट पीने वालों के लिए यह जरूरी है और इस प्रकार दियासलाई की माँग की लोच बेलोचदार हुई।

(१०) मनुष्य के स्वभाव तथा आदतों का प्रभाव (Effect of human nature and habits)—यदि किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु की आदत पड़ गयी है (जैसे, विशेष ब्राण्ड की चाय या विशेष ब्राण्ड की सिगरेट पीने की), तो उस वस्तु की कीमत बढ़ने पर भी वह उसका प्रयोग कम नहीं करेगा तथा वस्तु की माँग बेलोचदार रहेगी। इसी प्रकार सामाजिक रीति रिवाज (social customs) में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की माँग की लोच भी बेलोचदार रहती है।

(११) समय का प्रभाव (Influence of time)—प्रो० मार्शल ने इस बात पर बल दिया कि समय का माँग की लोच पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि या कमी होने पर उसकी माँग पर तत्काल ही प्रभाव नहीं पड़ता, उसमें कुछ समय लगता है। अतः साधारण रूप में यह कहा जा सकता है कि समय जितना कम होगा वस्तुओं की माँग की लोच कम लोचदार होगी और समय जितना अधिक होगा माँग की लोच अधिक लोचदार होगी क्योंकि उपभोक्ता दूसरी स्थानापन्न वस्तुओं को ज्ञात करके प्रयोग में लाने लगेगा।

माँग की लोच का व्यावहारिक महत्त्व
(PRACTICAL UTILITY OF ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच का केवल सैद्धान्तिक महत्त्व ही नहीं है, बल्कि वह बहुत-सी व्यावहारिक समस्याओं के सुलझाने में मदद करती है। कैंज (Keynes) के अनुसार, "मार्शल की सबसे बड़ी देन माँग की लोच का सिद्धान्त है तथा इसके अध्ययन के बिना मूल्य तथा वितरण के सिद्धान्तों की विवेचना सम्भव नहीं है।" माँग की लोच का व्यावहारिक महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट है :

१. मूल्य सिद्धान्त में (In the Theory of Value)

(i) माँग की लोच का सिद्धान्त किसी फर्म की साम्य की दशाओं के निर्धारण में सहायक होता है, एक फर्म साम्य की दशा में तब होती है जबकि सीमान्त आगम (Marginal Revenue) = सीमान्त लागत (Marginal Cost)। परन्तु सीमान्त आगम माँग की लोच पर निर्भर करती है।

(ii) एक एकाधिकारी उत्पादक (Monopolist) अपनी वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग की लोच के विचार की सहायता लेता है। एकाधिकारी का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है अर्थात् वह 'मूल्य प्रति इकाई × बिक्री की गयी मात्रा' के गुणनफल को अधिकतम करता है। यदि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग की लोच बेलोचदार है तो वह वस्तु की कीमत ऊँची निर्धारित करेगा और ऐसा करने से उसकी बिक्री की गयी मात्रा पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि उसकी वस्तु की माँग की लोच अधिक लोचदार है तो वस्तु का मूल्य नीचा रखकर अधिक बिक्री करेगा और लाभ को अधिकतम करेगा।

(iii) एकाधिकारी मूल्य-विभेदीकरण (Price discrimination) में भी लोच के विचार की सहायता लेता है। मूल्य-विभेद का अर्थ है कि विभिन्न ग्राहकों अथवा विभिन्न वर्गों या विभिन्न बाजारों से एक ही वस्तु के भिन्न मूल्य प्राप्त करना। मूल्य-विभेद उन्हीं दो बाजारों या वर्गों के बीच सम्भव हो सकेगा जिनमें वस्तु की माँग की लोच समान नहीं है। जिस बाजार या वर्ग में माँग की लोच लोचदार है वहाँ एकाधिकारी कम मूल्य रखेगा और जहाँ माँग की लोच बेलोचदार है वहाँ वस्तु की कीमत ऊँची रखेगा।

(iv) इसी प्रकार राशिपातन (Dumping) करते समय भी एकाधिकारी विभिन्न बाजारों की माँग की लोच ध्यान में रखता है।

(v) संयुक्त-पूर्ति (Joint-Supply) से सम्बन्धित मूल्य निर्धारण में माँग की लोच का विचार सहायक होता है। जब दो या दो से अधिक वस्तुओं का उत्पादन साथ-साथ होता है (जैसे, गेहूँ तथा भूसा) तो उत्पादित वस्तुओं की लागतों को अलग-अलग मालूम करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में उत्पादक माँग की लोच का सहारा लेता है, जिसकी माँग बेलोच होती है उसकी लागत अधिक मानी जाती है और उसका मूल्य ऊँचा रखा जाता है, जिस वस्तु की माँग लोचदार होती है उसकी लागत कम मानी जाती है और उसका मूल्य नीचा रखा जाता है।

२. वितरण सिद्धान्त में (In the Theory of Distribution)

माँग की लोच का विचार विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार (reward) निर्धारित करने में भी सहायक होता है। उत्पादक उन उत्पत्ति के साधनों को अधिक पुरस्कार देता है जिनकी माँग उसके लिए बेलोचदार है तथा उन साधनों को कम पुरस्कार देता है जिनकी माँग उसके लिए लोचदार होती है। उदाहरणार्थ, किसी मालिक को श्रमिकों को अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी यदि उनकी माँग बेलोचदार है और कम मजदूरी दी जायेगी, यदि मजदूरों की माँग लोचदार है।

३. सरकार के लिए महत्त्व (Significance for the Government)

(i) सरकार या वित्तमन्त्री अधिक आय (revenue) प्राप्त करने के लिए कर लगाता है परन्तु इस दृष्टि से कर लगाते समय वस्तुओं की माँग की लोच को ध्यान में रखना होता है।

वित्तमन्त्री बेलोचदार माँग वाली वस्तुओं पर कर लगाकर अधिक धन प्राप्त कर सकेगा क्योंकि कर के परिणामस्वरूप ऐसी वस्तुओं की कीमत बढने पर उनकी माँग मे कोई विशेष कमी नही आयेगी। इसके विपरीत लोचदार माँग वाली वस्तुओं पर कर लगाने से अधिक आय प्राप्त नही होगी क्योंकि कर के परिणामस्वरूप ऐसी वस्तुओं की कीमत बढने पर इनकी माँग बहुत गिर जायेगी।

(ii) कर लगाते समय सरकार को **कर-भार** (Incidence of taxation) का भी ध्यान रखना पडता है। सरकार का यह दृष्टिकोण होता है कि विभिन्न व्यक्तियो (उत्पादको तथा उपभोक्ताओ) पर कर का भार न्यायपूर्ण (equitable) हो। **सरकार को कर-भार को जानने के लिए माँग की लोच के विचार की मदद लेनी पडती है।** यदि वस्तु बेलोचदार माँग वाली है तो उत्पादक कर के भार (burden) का अधिकाश भाग उपभोक्ताओ पर हस्तान्तरित कर देंगे। इसके विपरीत, यदि वस्तु लोचदार माँग वाली है तो उत्पादक उसके मूल्य को अधिक बढाकर कर-भार का अधिक भाग उपभोक्ताओ पर हस्तान्तरित नही कर पायेंगे क्योंकि अधिक ऊँचा मूल्य करने पर वस्तु की माँग बहुत कम हो जायेगी।

(iii) **माँग की लोच की धारणा सरकार को यह निश्चित करने मे मदद करती है कि वह कौन से उद्योगों को सार्वजनिक सेवाएँ (public utilities) घोषित करके उनका स्वामित्व और प्रबन्ध अपने हाथ में ले।** ऐसे उद्योग जिनकी वस्तुओं की माँग बेलोचदार होती है तथा साथ ही जिनका स्वामित्व व्यक्तिगत (private) एकाधिकारियो के हाथ मे होता है, उन्हें सरकार जनता के हित मे सार्वजनिक सेवाएँ घोषित करके अपने हाथ मे ले लेती है।

(iv) माँग की लोच का विचार सरकार को कुछ अन्य आर्थिक नीतियो मे सहायता देता है। **सरकार व्यापार-चक्र, मुद्रा-स्फीति (inflation) तथा मुद्रा-विस्फीति (deflation) की दशाओं, इत्यादि के नियन्त्रण मे अन्य बातों के साथ, माँग की दशाओं तथा माँग की लोच को ध्यान मे रखती है।**

(v) किसी देश की **सरकार को अपनी मुद्रा-चलन (currency) की उचित विनिमय-दर निर्धारण मे माँग की लोच के विचार से सहायता मिलती है।** यदि सरकार देश की 'विपरीत भुगतान की बाकी' (adverse balance of payments) को सुधारने के लिए मुद्रा-चलन का अवमूल्यन (devaluation) करना चाहती है तो उसे देश के आयातो तथा निर्यातो के माँग का लोच को ध्यान मे रखना पडेगा। यदि उसके आयातो तथा निर्यातो दोनो की माँग बेलोचदार है तो सरकार को अवमूल्यन द्वारा 'विपरीत भुगतान की बाकी' को सुधारने मे सफलता प्राप्त नही हो सकती।

४. यातायात की भाडे की दर निश्चित करने मे माँग की लोच मदद करती है

यदि वस्तु ऐसी है कि जिसके यातायात की माँग लोचदार है तो रेलवे भाडे की दर कम रखेगी और यदि बेलोचदार है तो ऊँची दर निश्चित करेगी, अर्थात् रेलवे वस्तु के भाडे की दर उतनी तय करती है जितनी वस्तु सहन कर सके।

५. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त में महत्त्व (Significance in the Theory of International Trade)

"किन्ही दो देशो के बीच 'व्यापार की शर्तों' (terms of trade) के अध्ययन मे माँग की लोच की धारणा सहायक होती है।"[11] 'व्यापार की शर्तें' देश की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करती हैं जबकि सौदा करने की शक्ति वास्तव मे आयातो तथा निर्यातो की माँग तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर करती है। यदि देश के निर्यातो की माँग बेलोचदार है तो वे विदेशो में ऊँची कीमतो पर बिक सकेंगे, यदि हमारे आयातो की माँग हमारे लिये बेलोचदार है तो उन्हे हमे ऊँची कीमत पर भी खरीदना पडेगा। अत स्पष्ट है कि इस प्रकार 'व्यापार की शर्तें' माँग की लोच पर निर्भर करती हैं।

[11] यदि कोई देश अपनी निर्यात की वस्तुओं को महँगे दामो पर बेचता है या आयातो को नीचे दामो पर खरीदता है, तो 'व्यापार की शर्तें' उसके पक्ष मे कही जाती हैं। इसकी विपरीत दशाओं मे 'व्यापार की शर्तें' देश के विपक्ष मे होंगी।

६ 'सम्पन्नता के बीच गरीबी' के विरोधाभास की व्याख्या (Explanation of the Paradox of 'Poverty in Plenty')

उदाहरणार्थ, कृषि उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है और सम्पन्नता दिखायी देती है, परन्तु फिर भी इस सम्पन्नता के बीच किसान गरीब रह सकते हैं यदि उत्पादित वस्तु की माँग की लोच बेलोचदार है क्योंकि ऐसी स्थिति में मूल्य कम होने पर भी किसानों का अतिरिक्त उत्पादन नहीं बिक पायेगा और उन्हें लाभ के स्थान पर नुकसान होगा।

अध्याय १९ की परिशिष्ट (APPENDIX TO CHAPTER 19)

माँग की लोच तथा माँग-रेखा का ढाल; माँग की आय लोच; एवं माँग की आड़ी लोच

(ELASTICITY OF DEMAND AND SLOPE OF DEMAND CURVE, INCOME ELASTICITY OF DEMAND, AND CROSS-ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच तथा माँग-रेखा के ढाल में सम्बन्ध (RELATION BETWEEN ELASTICITY OF DEMAND AND THE SLOPE OF THE DEMAND CURVE)

साधारणतः यह कहा जाता है कि

(i) यदि माँग की रेखा समतल (flat)[12] है तो यह बतावेगी कि माँग की लोच अधिक लोचदार (highly elastic) है अर्थात् इकाई से अधिक है, जैसा कि चित्र १३ से स्पष्ट है।

(ii) यदि माँग की रेखा ढालू (steep) है तो यह यह बताती है कि माँग की लोच कम लोचदार (inelastic) है अर्थात् इकाई से कम है जैसा कि चित्र संख्या १४ से स्पष्ट है।

[12] यदि माँग रेखा पूर्ण समतल या पड़ी रेखा (horizontal) है जैसा कि सलग्न चित्र १२ में AB रेखा है, तो यह 'पूर्णतया लोचदार माँग' (Perfectly Elastic Demand) को बताती है। यदि माँग रेखा आधार रेखा (X-axis) पर खड़ी रेखा (Vertical line) है जैसा कि चित्र १२ में CD रेखा है, तो यह 'पूर्णतया बेलोच माँग' (Perfectly Inelastic Demand) को बताती है। पड़ी रेखा (PB) तथा खड़ी रेखा (PD) के बीच एक रेखा PK को खींचते हैं जो कि ∠DPB को bisect करती है।

यदि अब PK रेखा को उठाकर PB की ओर चलाया जाय और यदि वह PK_1 या PK_2 का स्थान ग्रहण कर लेती है तो स्पष्ट है कि माँग की लोच 'अधिक लोचदार' या 'लोच इकाई से अधिक' होगी, और यदि PK_1 रेखा को PK_2 के बाद और चलाया जाय ताकि वह PB रेखा से मिल जाय तो यह स्पष्ट है कि माँग की लोच पूर्णतया लोचदार हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे रेखा अधिक समतल (flat) होती जाती है वैसे-वैसे वह अधिक लोच

(Contd)

(iii) यदि सीधी माँग रेखा (straight line demand curve) है जो कि न बहुत समतल (flat) है और न बहुत ढालू (steep) बल्कि ऐसी है जो कि X-axis के साथ ४५° का कोण बनाती
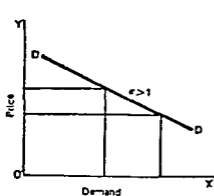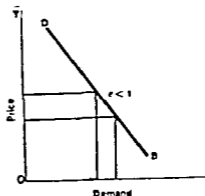
चित्र—१३   चित्र—१४

है तो यह मध्य बिन्दु पर 'लोचदार माँग' या 'इकाई के बराबर' लोच को बताती है जैसा कि चित्र संख्या १५ से स्पष्ट है; अथवा यदि माँग की रेखा Rectangular Hyperbola है, जैसा कि चित्र संख्या १६ में दिखाया गया है, तो माँग की लोच वक्र-रेखा की समस्त लम्बाई पर इकाई के बराबर होगी।

चित्र—१५   चित्र—१६
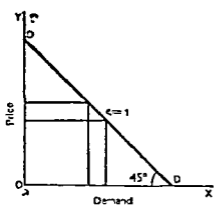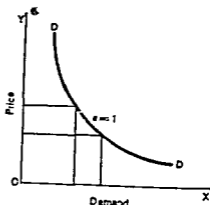
को बताती है और जब वह पूर्णतया समतल या पड़ी हुई रेखा (perfectly flat and horizontal) हो जाती है तो वह शक्ति वार लोचदार माँग (perfectly elastic demand) को बताती है। ६। यदि देश के निर्यातों -

यदि PKनि, यदि हमारे आयातों की माँग हल्साया जाय और यदि वह PK_2 या PK_3 का स्थान ग्रहण करना पड़ेगा। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकरेच कम लोचदार होगी या इकाई से कम होगी; और यदि   गा जाय ताकि वह PD रेखा में मिल जाय तो स्पष्ट है   relastic) हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे रेजरनी निर्यात की वस्तुओं को महँगे दामों वैसे-वैसे वह कम लोच को बतानी है और जब वह पुनः है तो 'व्यापार की शर्तें' उसके steep or vertical line) हो जाती है तब वह पूर्णतया बेलोच माँग (के विपक्ष में होंगी Demand) को बताती है।

परन्तु इस सम्बन्ध मे यह नही कहना चाहिए कि "मांग रेखा का समतल होना या ढालू होना 'मांग की लोच की श्रेणी' (degree) की पूर्ण तथा उचित जाँच नहीं है।" ("But 'flatness' and 'steepness' are not perfect tests for elasticity")

यह निम्न तथ्यो से स्पष्ट है

(i) यदि दो मांग रेखाएं भिन्न भिन्न माप (scale) पर खींची जाती है तो उनका आकार (अर्थात् समतल होना या ढालू होना) अलग-अलग होगा, यद्यपि यह हो सकता है कि वे दोनो मांग रेखाएँ एक ही प्रकार की मांग की दशाओ को बतायें। उदाहरणार्थ, चित्र सख्या १६ तथा चित्र सख्या १७ मे मांग रेखाएँ एक प्रकार की मांग की दशाओ को बताती हैं, परन्तु फिर भी चित्र
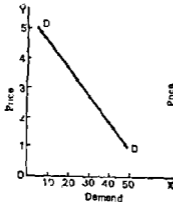
चित्र—१६ चित्र—१७
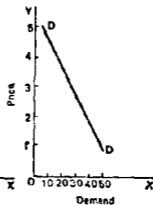
सख्या १६ मे मांग रेखा कुछ समतल (flat) है जबकि चित्र सख्या १७ मे मांग रेखा समतल (flat) न होकर ढालू (steep) है। यह अन्तर इसलिए है कि दोनो चित्रो मे X-axis पर भिन्न-भिन्न माप (scale) लिये गये है।

परन्तु यदि दोनो मांग रेखाएँ एक ही माप (scale) पर खींची जायें तो अवश्य ही समतल मांग रेखा ('Flat' Demand Curve) ढालू मांग रेखा ('Steep' Demand Curve) की अपेक्षा अधिक लोचदार होगी। इस बात को चित्र सख्या १८ मे दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि यदि मांग रेखा DD पर विचार किया जाय (जो कि ढालू है), तो मांग मे परिवर्तन LQ मूल्य मे परिवर्तन PK की अपेक्षा कम है अर्थात् मांग की लोच बेलोच है या इकाई से कम है। यदि मांग रेखा BB पर विचार किया जाये (जो कि समतल है), तो मांग मे परिवर्तन ST, मूल्य मे परिवर्तन PK की अपेक्षा अधिक है, अर्थात् मांग की लोच 'अधिक लोचदार' या 'इकाई से अधिक' है।

(ii) यद्यपि मांग रेखा का ढाल एक ही हो तो भी उस मांग रेखा की सम्पूर्ण लम्बाई पर एकसमान मांग की लोच नही होगी, उसके
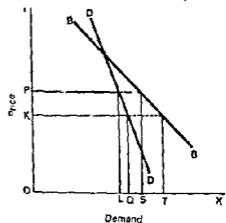
चित्र—१८
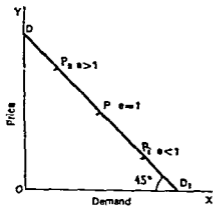
भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर मांग की लोच भिन्न-भिन्न होगी। चित्र संख्या १६ में DD मांग रेखा का एक ही ढाल है अर्थात् यह X axis के साथ ४५° का कोण बनाती है परन्तु फिर भी इसके विभिन्न बिन्दुओं पर मांग की लोच भिन्न-भिन्न है—P_2 बिन्दु[1] पर e>१, P बिन्दु (जो कि मध्य बिन्दु है) पर e=१ तथा P_1 बिन्दु पर e<१।

चित्र—१६

निष्कर्ष—मांग की लोच केवल मांग रेखा के ढाल (slope) पर ही निर्भर नहीं करती है। वास्तव में मांग की लोच दो बातों पर निर्भर करती है (i) मांग रेखा के ढाल (slope) पर, तथा (ii) X-axis और Y-axis से 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' (price and quantity point) की स्थिति पर। मांग रेखा पर प्रत्येक बिन्दु 'कीमत' तथा 'मांगी गयी मात्रा' में सम्बन्ध बताता है और उसके प्रत्येक बिन्दु को 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' कहा जाता है। चित्र संख्या १६ में P, P_1 तथा P_2 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' हैं। P_1 बिन्दु पर *मांग की लोच केवल मांग रेखा के ढाल पर ही निर्भर नहीं करती* बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि X-axis और Y-axis से P_1 की स्थिति क्या है। इसी प्रकार से P तथा P_2 पर मांग की लोच दोनों बातों पर निर्भर करती है।

मांग की लोच के प्रकार
(KINDS OF ELASTICITY OF DEMAND)

मांग की लोच तीन प्रकार की होती है (१) मांग की कीमत लोच (Price Elasticity of Demand), (२) मांग की आय लोच (Income Elasticity of Demand), तथा (३) मांग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)। इनमें से 'मांग की कीमत लोच' का अध्ययन हम पहले ही कर चुके हैं। अब यहां पर हम 'मांग की आय लोच' तथा 'मांग की आड़ी लोच' का अध्ययन करेंगे।

मांग की आय लोच
(INCOME ELASTICITY OF DEMAND)

मांग की आय लोच की परिभाषा

उपभोक्ता की आय मांग को प्रभावित करने वाले तत्वों में एक महत्वपूर्ण तत्व है। 'मांग की आय लोच' आय में परिवर्तन के उत्तर (response) में मांग में परिवर्तन की मात्रा का माप है। अधिक निश्चित रूप से इसकी परिभाषा इस प्रकार है—यदि कीमत तथा अन्य बातें यथास्थिर रहें, तो मांग में हुए आनुपातिक परिवर्तन को आय में हुए आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर 'मांग की आय लोच' प्राप्त की जाती है।

मांग की आय लोच को नापने की रीति

$$e_i = \frac{\text{मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{आय में आनुपातिक परिवर्तन}},$$

जबकि e_i=Income Elasticity of Demand (मांग की आय लोच)

---

[1] किसी बिन्दु पर मांग की लोच मालूम करने के लिए हमें 'बिन्दु रीति' (Point Method) ध्यान में रखना चाहिए। P_1 बिन्दु पर मांग की लोच$=\frac{\text{Lower Sector}}{\text{Upper Sector}}=\frac{P_1 D_1}{P_1 D}$, चूंकि P_1D_1 (Lower sector)<P_1D (Upper sector), इसलिए e<१, इसी प्रकार से P बिन्दु (जो कि मध्य बिन्दु है) पर e=१, P_2 बिन्दु पर e>१।

यह ध्यान रहे कि 'माँग की आय लोच' पर विचार करते समय हम यह मान लेते हैं कि उस वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता, वह पूर्ववत रहती है।

माँग की आय लोच के मापने के उपर्युक्त सूत्र की अपेक्षा और अधिक सही सूत्र निम्न प्रकार दिया जाता है

$$e_i = \frac{\frac{Q \sim Q_1}{Q+Q_1}}{\frac{I \sim I_1}{I+I_1}}$$

जबकि, Q = माँग की पूर्व मात्रा
Q_1 = माँग की नयी मात्रा
I = पूर्व आय
I_1 = नयी आय

माँग की आय लोच की श्रेणियाँ (Degrees)

सामान्यतया माँग की आय लोच धनात्मक (positive) होती है। अर्थात् आय में वृद्धि या कमी के साथ उपभोक्ता वस्तुओं की अधिक या कम मात्रा खरीदता है। दूसरे शब्दों में, आय में परिवर्तन तथा माँग में परिवर्तन एक ही दिशा में होते हैं। परन्तु कुछ दशाओं में 'माँग की आय लोच' ऋणात्मक (negative) भी होती है अर्थात् आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता कुछ वस्तुओं की कम माँग करता है या उन पर कम खर्च करता है। यह स्थिति निम्न कोटि की वस्तुओं (inferior goods) के सम्बन्ध में पायी जाती है।

(१) **माँग की शून्य आय लोच** (Zero income elasticity of demand)—जब आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग की मात्रा में या खरीद में कोई भी परिवर्तन नहीं होता तो माँग की आय लोच शून्य कही जाती है। माँग की शून्य आय लोच एक 'विभाजक रेखा' (dividing line) की भाँति कार्य करती है। इसके एक ओर तो माँग की आय लोच ऋणात्मक (negative) होती है अर्थात् आय में वृद्धि के साथ माँग की मात्रा में कमी होती है, जबकि 'माँग की शून्य आय लोच' की दूसरी ओर माँग की आय लोच धनात्मक (positive) होती है।

(२) **ऋणात्मक माँग की आय लोच** (Negative income elasticity of demand)—निम्न कोटि की वस्तुओं (जैसे डालडा घी, शुद्ध घी की अपेक्षा में) के सम्बन्ध में माँग की आय लोच ऋणात्मक होती है अर्थात् आय में वृद्धि के साथ इन वस्तुओं पर कम खर्च किया जाता है।

(३) **माँग की आय लोच इकाई के बराबर** (Unitary income elasticity of demand) इसका अर्थ है कि उपभोक्ता की आय का अनुपात जो कि वह वस्तु विशेष पर व्यय करता है, आय में वृद्धि के पहले तथा बाद में दोनों दशाओं में, एकसमान रहता है। यह एक विभाजक रेखा (dividing line) की भाँति कार्य करती है। इसके एक ओर 'माँग की आय लोच' इकाई से अधिक होती है और दूसरी ओर 'माँग की आय लोच' इकाई से कम होती है।

(४) **माँग की आय लोच 'इकाई से अधिक'** (Income elasticity of demand greater than unity)—इसका अर्थ है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तु विशेष पर अपनी आय का व्यय अधिक अनुपात में करता है। प्रायः विलासिता की वस्तुओं के सम्बन्ध में माँग की आय लोच इकाई से अधिक पायी जाती है।

(५) **माँग की आय लोच 'इकाई से कम'** (Income elasticity of demand less than unity)—इसका अर्थ है आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तु विशेष पर अपनी आय का व्यय कम अनुपात में करता है। ऐसी माँग की आय लोच प्रायः आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में पायी जाती है।

माँग की आड़ी लोच
(CROSS ELASTICITY OF DEMAND)

प्राक्कथन

माँग की आड़ी लोच के विचार का नियमित रूप से विकास मूर (More) द्वारा अपनी पुस्तक *Synthetic Economics* में किया गया है और इस विचार को अधिक विस्तृत रूप में

कीमत के सिद्धान्त (Theory of Value) मे प्रयोग राबर्ट टिफिन (Robert Tiffin) ने किया है।

दो वस्तुओ की मॉग परस्पर इस प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है कि एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन दूसरी वस्तु की मॉग मे परिवर्तन ला सकती है जबकि दूसरी वस्तु की कीमत पूर्ववत् रहती है। वस्तुएँ तीन प्रकार की हो सकती है प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएँ (competing goods or substitutes), पूरक वस्तुएँ (complementary goods), तथा अनाश्रित वस्तुएँ (independent goods)। मॉग की आडी लोच द्वारा हम प्रथम दो प्रकार की सम्बन्धित वस्तुओ के बीच सम्बन्ध की मात्रा' (degree of relationship) माप सकते हैं।

मॉग की आडी लोच की परिभाषा

एक वस्तु की मॉग मे जो परिवर्तन दूसरी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन के उत्तर (response) मे होता है उसे मॉग की आडी लोच कहते हैं। माना कि दो वस्तुएँ X तथा Y है। 'मॉग की कीमत लोच' मे हम X वस्तु की कीमत मे परिवर्तन करते हैं, और फिर देखते हैं कि X वस्तु की मॉग की मात्रा मे कितना परिवर्तन होता है। 'मॉग की आडी लोच' मे हम Y की कीमत मे परिवर्तन करते हैं और फिर देखते हैं कि X की मॉग मे कितना परिवर्तन होता है। अधिक निश्चित रूप मे, **मॉग की आडी लोच X वस्तु की मॉग मे आनुपातिक परिवर्तन को Y वस्तु की कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त किया जाता है।**

मॉग की आडी लोच के मापने की रीति

$$\text{मॉग की आडी लोच} = \frac{\text{X वस्तु की मॉग मे आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{Y वस्तु की कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन}}$$

मॉग की आडी लोच निकालने मे उपर्युक्त सूत्र को और अधिक सही रूप मे निम्न प्रकार बताते हैं

$$\text{मॉग की आडी लोच} = \frac{\dfrac{Qx \sim Q^1x}{Qx + Q^1x}}{\dfrac{Py \sim P^1y}{Py + P^1y}}$$

जबकि
Qx = X वस्तु की पूर्व मात्रा
Q^1x = X वस्तु की नयी मात्रा
Py = Y वस्तु की पूर्व कीमत
P^1y = Y वस्तु की नयी कीमत

मॉग की आडी लोच के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण बातें

(i) यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) हैं तो उनके बीच प्रतिस्थापन की दर समान रहेगी, और ऐसी स्थिति मे एक वस्तु का मूल्य कम होने पर, यदि दूसरी वस्तु का मूल्य यथास्थिर रहे, उपभोक्ता दूसरी वस्तु के स्थान पर पूर्ण रूप से पहली वस्तु को प्रयोग मे लाना चाहेगा। ऐसी स्थिति मे प्रतिस्थापन की दर असीमित या अनन्त (infinite) कही जाती है, परन्तु व्यावहारिक जीवन मे ऐसी दो वस्तुएँ जो कि पूर्ण स्थानापन्न हो नही पायी जाती, और यदि पायी जाती हैं तो इसका अर्थ है कि वे दो वस्तुएँ भिन्न-भिन्न दो वस्तुएँ नही बल्कि एक ही वस्तु की भिन्न इकाइयाँ है।

(ii) (अ) व्यावहारिक जीवन मे ऐसी वस्तुएँ पायी जाती हैं जो कि बहुत निकट या अच्छी स्थानापन्न (close or good substitutes) हों। ऐसी वस्तुओ की मॉग की आडी लोच बहुत अधिक होगी। अच्छी स्थानापन्न वस्तुओ के सम्बन्ध मे यदि एक वस्तु की कीमत मे वृद्धि होती है तो दूसरी वस्तु की मॉग मे वृद्धि होगी। उदाहरणार्थ, काफी की कीमत मे वृद्धि होती है, तो अन्य बातें यथावत रहने पर चाय की मॉग मे वृद्धि होगी। दूसरे शब्दो मे, **प्रतियोगी वस्तुओं में सम्बन्ध** सीधा या धनात्मक (direct or positive) होता है। ऐसी दशा मे हम मॉग की आडी लोच की प्राप्त सख्या (numerical value) के पहले धनात्मक चिह्न (sign of plus) लगाते हैं।

दूसरे शब्दो मे, **यदि मॉग की आडी लोच की धनात्मक सख्या** (positive numerical value) दी हुई है तो उसको देखकर हम यह कह सकते हैं कि सम्बन्धित दो वस्तुएँ प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएँ हैं।

(ब) वस्तुओं की तुलना करते समय, माँग की आड़ी लोच का अंक (Coefficient or numerical value) जितना अधिक होगा उतनी ही वे वस्तुएँ अधिक निकट की स्थानापन्न होंगी।

(iii) (अ) यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जिनकी संयुक्त माँग (joint demand) है अर्थात् पूरक वस्तुएँ (complementary goods) हैं, जैसे डबल रोटी तथा मक्खन, तो रोटी की कीमत में थोड़ी कमी मक्खन की माँग को बढ़ा देगी। अतः स्पष्ट है कि ऐसी वस्तुओं में सम्बन्ध उल्टा (inverse) या ऋणात्मक (negative) होता है। इसलिए ऐसी दशा में माँग की आड़ी लोच के अंक (numerical value) के पहले ऋण का चिह्न (sign of minus) लगाते हैं।

दूसरे शब्दों में, यदि माँग की आड़ी लोच का ऋणात्मक अंक (negative value) दिया हुआ है तो उसे देख कर हम यह कह सकते हैं कि दो वस्तुएँ पूरक वस्तुएँ हैं न कि प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएँ।

(ब) यहाँ पर आड़ी लोच का अंक जितना अधिक होगा उतनी ही वस्तुएँ अधिक निकट की पूरक वस्तुएँ होंगी।

(iv) यदि माँग की आड़ी लोच का अंक (Coefficient or numerical value) शून्य है, तो इसका अर्थ है कि दो वस्तुएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित नहीं हैं। न तो वे स्थानापन्न वस्तुएँ हैं और न पूरक वस्तुएँ बल्कि अनाश्रित वस्तुएँ (independent goods) हैं।

प्रश्न

१. माँग की लोच से आप क्या समझते हैं? इस बात को सिद्ध कीजिए कि यदि कोई माँग की वक्र रेखा दोनों अक्षों (axes) को काटती है तो वह हर स्थान पर माँग की समान लोच प्रदर्शित नहीं करती।

What do you mean by elasticity of demand? Prove that if a demand curve intersects both the axes it does not show the same degree of elasticity at every point
(Kumaun B A I, 1975)

[संकेत—दूसरे भाग के उत्तर में पहले बिन्दु लोच को नापने की रेखागणित की रीति बताइए, इसके बाद इसकी सहायता से बताइए कि दोनों अक्षों को काटने वाली माँग रेखा के प्रत्येक बिन्दु पर माँग की लोच समान नहीं होती है, इसके लिए देखिए पृष्ठ २४२ पर चित्र ११ की विषय-सामग्री।]

२. माँग की मूल्य लोच की परिभाषा दीजिए तथा बताइए कि इसे किस प्रकार मापा जाता है?

Define Price Elasticity of Demand and state how it is measured? *(Rajasthan, 1975)*

३. माँग की लोच का आप किस प्रकार मापन करेंगे? लोच की विभिन्न श्रेणियाँ क्या हैं?

How will you measure elasticity of demand? What are the various degrees of elasticity? *(Allahabad, B Com, 1971)*

अथवा

'माँग की कीमत लोच की श्रेणियों या मात्राओं की व्याख्या कीजिए। माँग की लोच को मापने की मुख्य विधियों की विवेचना कीजिए।

Explain the degrees of Price Elasticity of Demand Discuss the main methods adopted to measure the elasticity of demand *(Agra, B A I, 1968)*

४. (अ) माँग की लोच को परिभाषित कीजिए तथा 'बिन्दु-लोच' और 'चाप लोच' के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

(ब) 'बिन्दु लोच' तथा 'चाप लोच' को नापने की रीतियों को बताइए।

(a) Define elasticity of demand and distinguish between 'point elasticity' and arc elasticity

(b) Explain the methods of measuring point elasticity and arc elasticity
(Agra B A I 1975)

५. लोचदार माँग तथा बेलोचदार माँग में अन्तर बताइए। कुछ वस्तुओं की माँग अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक लोचदार क्यों होती है?

Distinguish between elastic and inelastic demand Why is the demand for some commodities more elastic than for others?

६. माँग की लोच से क्या तात्पर्य है ? इसको प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन कीजिए।

What do you mean by elasticity of demand ? Describe the factors upon which it depends ? *(Udaipur IIyr Arts, 1967)*

७. माँग की लोच से क्या तात्पर्य है ? माँग की लोच का एकाधिकार मूल्य-निर्धारण में क्या हाथ है ? स्पष्ट कीजिए।

What is meant by elasticity of demand ? Explain the role of elasticity of demand in the determination of monopoly price ? *(Agra, 1968)*

[संकेत—दूसरे भाग के लिए देखिए 'माँग की लोच का व्यावहारिक महत्व' नामक शीर्षक के अन्तर्गत point (i) का (ii), (iii) तथा (iv)।]

८. माँग की लोच से क्या तात्पर्य है ? माँग की लोच का कर लगाने तथा एकाधिकारी के लाभों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

What is elasticity of demand ? Discuss the effect of elasticity of demand on Taxation and Monopoly profits.

९. माँग की लोच के विचार को स्पष्ट रूप से समझाइए तथा किसी वस्तु के मूल्य-निर्धारण में इसका क्या प्रभाव पड़ता है, बताइए ?

Explain clearly the concept of elasticity of demand and show its effect on the determination of value of a commodity *(Sagar B Com I, 1967)*

१०. माँग की लोच कैसे मापी जाती है ? एकाधिकारी मूल्य निर्धारण में माँग की लोच का महत्व समझाइए।

How is elasticity of demand measured ? Explain the importance of elasticity of demand in the determination of monopoly price *(Indore, 1966)*

११. उन तत्वों की व्याख्या कीजिए जिन पर कि माँग की लोच निर्भर करती है। एक दी हुई कीमत पर आप माँग की लोच कैसे मापेंगे ?

Explain the factors on which elasticity of demand for a commodity depends How would you measure elasticity of demand at a given price ?

१२. किसी वस्तु की माँग की कीमत तथा आय लोचों में अन्तर बताइए। माँग की कीमत लोच को मापने की विभिन्न रीतियाँ क्या हैं ?

Distinguish between price and income elasticities of demand for a commodity What are the different ways of measuring price elasticity of demand ?

१३ माँग की लोच को परिभाषित कीजिए। किसी वस्तु की माँग की आय तथा आड़ी लोचों को कैसे निर्धारित किया जाता है ? अर्थशास्त्र में लोच के विचार के व्यावहारिक प्रयोग क्या हैं ?

Define elasticity of demand How are income and cross elasticities of demand for a commodity determined ? What are the practical uses of the concept of elasticity in Economics. *(Punjab, IIyr, Arts, 1964)*

१४. माँग की लोच की परिभाषा कीजिए। माँग की लोच तथा माँग रेखा के ढाल (slope) में क्या सम्बन्ध है ?

Define the term 'elasticity of demand'. What is the relation between elasticity of demand and the slope of the demand curve ?

[संकेत—प्रथम भाग में माँग की लोच की परिभाषा तथा अर्थ बताइए, दूसरे भाग में रेखाचित्रों की सहायता से 'माँग की लोच' तथा 'माँग रेखा के ढाल' में सम्बन्ध का स्पष्ट कीजिए, इसके लिए इस अध्याय की परिशिष्ट को देखिए।]

१५. माँग के नियम तथा माँग की लोच में अन्तर स्पष्ट कीजिए। माँग की लोच को कैसे मापा जा सकता है ?

Distinguish between Law of Demand and Elasticity of Demand. How can elasticity of demand be measured ? *(Magadh 1967 A)*

१६. माँग की लोच का क्या अर्थ होता है ? उपयोगिता ह्रास नियम तथा माँग की लोच के बीच सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

What is meant by elasticity of demand ? Explain the relationship between the law of diminishing utility and elasticity of demand. *(Agra)*

20 पूर्ति, पूर्ति का नियम तथा पूर्ति की लोच

[SUPPLY, LAW OF SUPPLY AND ELASTICITY OF SUPPLY]

पूर्ति का अर्थ
(MEANING OF SUPPLY)

किसी वस्तु की पूर्ति का अर्थ वस्तु की उस मात्रा से है जिसे विक्रेता एक निश्चित समय में तथा एक निश्चित कीमत पर बाजार में बेचने को तैयार है। जिस प्रकार माँग हमेशा समय तथा कीमत से जुड़ी रहती है, उसी प्रकार पूर्ति का अर्थ एक निश्चित समय तथा निश्चित मूल्य के बिना पूर्ण नहीं होता। उदाहरणार्थ, पूर्ति के सम्बन्ध में यह कथन सही नहीं है कि बाजार में गेहूँ की पूर्ति १,००० क्विण्टल है क्योंकि यहाँ समय और कीमत को नहीं बताया गया है। पूर्ण एवं सही कथन इस प्रकार होना चाहिए—११० रुपए प्रति क्विण्टल की दर पर एक हफ्ते में बाजार में गेहूँ की पूर्ति १,००० क्विण्टल है।

पूर्ति के अर्थ को भलीभाँति समझने के लिए यह भी आवश्यक है कि पूर्ति (supply) तथा स्टॉक (stock) के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझ लिया जाय। किसी वस्तु का स्टॉक (stock) वस्तु की कुल मात्रा को बताता है जो कि किसी विशेष समय पर बाजार में मौजूद है जबकि पूर्ति स्टॉक का वह भाग है जो विक्रेता एक निश्चित समय में तथा एक निश्चित कीमत पर बेचने को तत्पर है।

पूर्ति की तालिका
(SUPPLY SCHEDULE)

एक बाजार में किसी निश्चित समय में विभिन्न मूल्यों पर किसी वस्तु की विभिन्न मात्राएँ बेची जाती हैं। इन विभिन्न मूल्यों तथा उन मूल्यों पर बेची जाने वाली वस्तुओं की मात्राओं को एक तालिका के रूप में व्यक्त किया जाय तो इसे 'पूर्ति की तालिका' कहते हैं। दूसरे शब्दों में पूर्ति-तालिका 'मूल्य' तथा 'बेची जाने वाली मात्रा' में फलनात्मक सम्बन्ध (functional relationship) को बताती है।

पूर्ति की तालिका दो प्रकार की होती है (१) व्यक्तिगत पूर्ति तालिका (Individual Supply Schedule), तथा (२) बाजार की पूर्ति तालिका (Market Supply Schedule)।

व्यक्तिगत पूर्ति तालिका—किसी निश्चित समय में एक विक्रेता किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी विभिन्न मात्राओं को बेचने को तत्पर होता है। ये 'विभिन्न कीमतें' तथा 'बेची जाने वाली मात्राएँ' मिलकर व्यक्ति (विक्रेता) की पूर्ति तालिका का निर्माण करती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अमुक-अमुक कीमतें वास्तव में प्रचलित हैं और तदनुसार अमुक-अमुक मात्राएँ बेची जाती हैं। एक विक्रेता की तालिका का निर्माण उस विक्रेता की भूतकाल में प्रतिक्रियाओं (reactions) की जानकारी के आधार पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में, विक्रेता की पूर्ति तालिका अनुमानित कीमतों और बेची जाने वाली अनुमानित मात्राओं के आधार पर

बनायी जाती है। एक विक्रेता की किसी वस्तु (माना चीनी) की पूर्ति तालिका निम्न उदाहरण द्वारा बतायी गयी है, तालिका से स्पष्ट है कि मूल्य म वृद्धि के साथ बेची जाने वाली मात्रा मे वृद्धि होती जाती है।

मूल्य प्रति किलोग्राम (रुपये मे)	बेची जाने वाली मात्रा (किलोग्राम मे)
१	२
१ ५०	४
२	७
४	१०

बाजार पूर्ति तालिका—किसी वस्तु की 'व्यक्तिगत पूर्ति तालिकाओं' की सहायता से सम्पूर्ण 'बाजार की पूर्ति तालिका' निकाली जा सकती है। वस्तु की प्रत्येक कीमत पर बाजार मे एक निश्चित कुल पूर्ति (aggregate supply) होगी जोकि बाजार म सभी विक्रेताओ की पूर्तियो को जोडकर प्राप्त होती है। अत विभिन्न कीमतें तथा उनसे सम्बन्धित कुल पूर्तियाँ (aggregates of Supply) मिलकर एक बाजार पूर्ति तालिका का निर्माण करती हैं। उदाहरणार्थ, माना कि बाजार म केवल तीन विक्रेता X, Y तथा Z हैं और किसी वस्तु के लिए इन विक्रेताओ की पूर्ति तालिकाएँ निम्न हैं

मूल्य प्रति किलोग्राम (रुपये म)	बेची जाने वाली मात्राएँ *(किलोग्राम मे)*			बाजार मे तीनो व्यक्तियो *(X, Y तथा Z)* की कुल पूर्तियाँ (किलोग्राम मे)
	X व्यक्ति द्वारा	Y व्यक्ति द्वारा	Z व्यक्ति द्वारा	
१	४	६	५	१५
२	६	८	७	२१
३	१०	१२	११	३३
४	१५	१६	१४	४५

उपर्युक्त तालिका मे अन्तिम स्तम्भ (column) सम्पूर्ण बाजार की कुल पूर्तियाँ (aggregates of supply) को बताता है। अत प्रथम तथा अन्तिम स्तम्भ (columns) मिलकर 'बाजार की पूर्ति तालिका' को बताते हैं।

पूर्ति तालिका के सम्बन्ध मे निम्न बातें ध्यान मे रखने योग्य हैं :

(१) बाजार की पूर्ति तालिका बनाते समय हम यह मान लेते हैं कि पूर्ति की दशाएँ समान रहती हैं, अर्थात् उत्पत्ति के साधनो की कीमतें, अन्य वस्तुओ की कीमतें, टेक्नीकल ज्ञान, उत्पादको की रुचि (tastes), इत्यादि समान रहती हैं और केवल वस्तु विशेष की कीमत ही बदलती है। परन्तु वास्तविक जीवन मे ऐसा नही होता क्योंकि प्राय अन्य बातें समान नही रहती।

(२) वास्तव में, एक काल्पनिक पूर्ति तालिका का बनाना आसान है परन्तु एक व्यक्ति या बाजार की वास्तविक पूर्ति तालिका का बनाना बहुत कठिन है क्योंकि विभिन्न कीमतो पर वास्तव मे कितनी मात्राएँ बेची जायेंगी यह मालूम करना कठिन है, इसके अतिरिक्त पूर्ति की दशाएँ भी स्थिर नही रहती हैं।

(३) व्यक्तिगत पूर्ति तालिका की अपेक्षा बाजार की पूर्ति तालिका अधिक अभग तथा समतल (continuous and smooth) होती है। एक विक्रेता अनियमित रूप (erratic manner) मे व्यवहार कर सकता है, परन्तु ये अनियमितताएँ या बल (kinks) या कोने (angularities) बाजार की पूर्ति तालिका मे समतल (smooth) हो जाते हैं क्योंकि विक्रेताओ के अन्तर एक-दूसरे को नष्ट कर देते हैं और इस प्रकार हमे एक समतल चित्र प्राप्त हो जाता है।

(४) व्यक्तिगत तथा बाजार की पूर्ति तालिकाओ दोनो पर समय एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। जितना समय अधिक होगा उतना ही विक्रेता पूर्ति का, माँग मे परिवर्तनो के अनुसार,

समायोजन आसानी से कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त जितना अधिक समय विचाराधीन होगा उतना ही अधिक भविष्य में अनुमानित कीमतों का अधिक प्रभाव पूर्ति पर पड़ेगा।

(५) यद्यपि पूर्ति तालिका का बनाना कठिन है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि पूर्ति तालिका का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। मोटे रूप से कीमतों में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप बेची जाने वाली मात्राओं में परिवर्तनों का अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है।

पूर्ति रेखा
(SUPPLY CURVE)

पूर्ति रेखा का अर्थ (Meaning of Supply Curve)

एक पूर्ति तालिका को रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और ऐसी रेखा को पूर्ति रेखा कहा जाता है। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी कितनी मात्राएँ बेची जायेंगी इस सम्बन्ध को पूर्ति रेखा बताती है। माँग रेखा की भाँति, पूर्ति रेखा भी दो प्रकार की होती है– व्यक्तिगत पूर्ति रेखा (Individual supply curve) बाजार की पूर्ति रेखा (Market supply curve)। व्यक्तिगत पूर्ति तालिका के आधार पर खींची गयी पूर्ति रेखा 'व्यक्तिगत पूर्ति रेखा' कहलाती है जबकि बाजार पूर्ति तालिका के आधार पर खींची गयी पूर्ति रेखा 'बाजार की पूर्ति रेखा' कही जाती है।

चित्र संख्या १ में पूर्ति रेखा (SS) को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जब कीमत PQ है तो पूर्ति की जाने वाली मात्रा OQ है। यदि कीमत बढ़कर P_1Q_1 हो जाती है तो पूर्ति की जाने वाली मात्रा भी बढ़ जाती है और वह OQ_1 हो जाती है। पूर्ति रेखा बायें से ऊपर की ओर चढ़ती हुई होती है। इस प्रकार की रेखा बताती है कि कीमत तथा पूर्ति में सीधा सम्बन्ध होता है अर्थात् कीमत बढ़ने पर पूर्ति बढ़ती है और कीमत घटने पर पूर्ति घटती है।

पूर्ति रेखा की मान्यताएँ (*Assumptions behind the Supply Curve*)

पूर्ति रेखा पूर्ति तालिका को व्यक्त करती है। इसलिए पूर्ति रेखा के पीछे वे ही मान्यताएँ होती हैं जो कि पूर्ति तालिका के सम्बन्ध में होती हैं। मुख्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं

चित्र—१

(१) पूर्ति रेखा एक स्थिर स्थिति (*stationary state*) को बताती है तथा एक समयावधि के अन्तर्गत पूर्ति में परिवर्तनों को नहीं बताती। पूर्ति रेखा कुछ कीमतों को दिया हुआ तथा स्थिर मानकर चलती है। ये कीमतें, वास्तव में, बाजार में नहीं पायी जाती।

(२) यह मान लिया जाता है कि क्रेताओं तथा विक्रेताओं की आयों (*incomes*) में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(३) यह मान लिया जाता है कि क्रेताओं और विक्रेताओं की रुचि तथा पसन्द में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(४) उत्पत्ति के साधनों की कीमतें स्थिर मान ली जाती हैं।

(५) यह भी मान लिया जाता है कि उत्पादकों तथा विक्रेताओं के टेक्नीकल ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होती है।

(६) कीमत तथा पूर्ति के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में परिवर्तनों में निरन्तरता (continuity in variation) या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनों का होना मान लिया जाता है। परन्तु
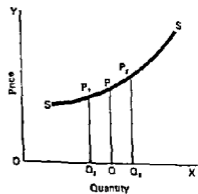
व्यावहारिक जीवन में ऐसा पाया जाना जरूरी नहीं है। यह सम्भव है कि प्राय पूर्तियों में तभी परिवर्तन हो जबकि कीमत में एक निश्चित मात्रा म परिवर्तन हो। दूसरे शब्दों में, व्यावहारिक जीवन में पूर्ति रेखा का समतल तथा अभग (smooth and continuous) होना आवश्यक नहीं है, उसमें बहुत-से बल (kinks) या कोने (angularities) पाये जा सकते हैं क्योंकि कीमत में प्रत्येक सूक्ष्म परिवर्तनों के उत्तर (response) में पूर्ति में परिवर्तन नहीं होना, कीमत में एक निश्चित परिवर्तन होने पर ही पूर्ति म परिवर्तन होता है।

(७) एक अभग (continuous) पूर्ति रेखा यह मान लेती है कि एक वस्तु की अत्यन्त छोटी-छोटी इकाइयां मौजूद होती हैं। परन्तु ऐसा मानना भी वास्तविक नहीं है। अविभाज्य वस्तुओं (indivisible commodities) के सम्बन्ध में पूर्ति रेखा अभग तथा समतल नहीं हो सकती, परन्तु हम मान लेते है कि वह समतल और अभग होती है।

पूर्ति का नियम
(LAW OF SUPPLY)

१ नियम का कथन (Statement of the Law)

पूर्ति का नियम कीमत तथा बेची जाने वाली मात्रा म सम्बन्ध को बताता है। पूर्ति के नियम का कथन इस प्रकार दिया जा सकता है अन्य बातों के यथावत रहते हुए, किसी सेवा या वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी पूर्ति में भी वृद्धि होती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी पूर्ति में भी कमी होती है। अत पूर्ति का नियम कीमत तथा बेची जाने वाली वस्तु में सीधे सम्बन्ध (direct relationship) को बताता है। स्पष्ट है कि पूर्ति का नियम, माँग के नियम के विपरीत है दूसरे शब्दों में, माँग का नियम कीमत तथा माँग म उल्टे सम्बन्ध (inverse relationship) को बताता है जबकि पूर्ति का नियम कीमत तथा पूर्ति में सीधे सम्बन्ध को बताता है।

पूर्ति का नियम, माँग के नियम की भाँति, एक गुणात्मक कथन (qualitative statement) है, न कि **परिमाणात्मक कथन** (quantitative statement), अर्थात् यह पूर्ति में केवल परिवर्तन की दिशा (direction of change) को बताता है न कि पूर्ति में परिवर्तन के परिमाण (quantity) को यह नहीं बताता कि पूर्ति कितनी मात्रा में कम अथवा अधिक होगी। सक्षेप में, **पूर्ति का नियम बताता है कि पूर्ति और कीमत एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ति का परिवर्तन आनुपातिक हो।**[1]

२ नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Law)

पूर्ति के नियम के कथन में 'अन्य बातें यथावत रहें' (other things remaining the same) महत्त्वपूर्ण वाक्यांश है यह नियम की मान्यताओं या सीमाओं को बताता है। पूर्ति के नियम के लागू होने के लिए निम्न मुख्य दशाएँ (conditions) या मान्यताएँ पूरी होनी चाहिए।

(i) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की आय म कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
(ii) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की रुचि तथा पसन्द में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
(iii) उत्पत्ति के साधनों की कीमतें स्थिर रहनी चाहिए।
(iv) उत्पादकों या विक्रेताओं की रुचि तथा पसन्द में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
(v) कीमत के सूक्ष्म परिवर्तन के परिणामस्वरूप भी पूर्ति में परिवर्तन होना चाहिए।
(vi) उत्पादक या विक्रेता यह मान कर चलते हैं कि वस्तु की कीमत में एक परिवर्तन और अधिक परिवर्तन उत्पन्न नहीं करेगा।

३. पूर्ति के नियम की व्याख्या अर्थात् पूर्ति के नियम के पीछे कारण (Explanation of the Law, i e., Reasons underlying the Law of Supply)

पूर्ति का नियम कीमत तथा बेची जाने वाली मात्रा के बीच सीधे सम्बन्ध को बताता है। इसलिए जब पूर्ति नियम को पूर्ति रेखा द्वारा व्यक्त करते हैं तो पूर्ति रेखा दायें को ऊपर की ओर

[1] Thus in short, the law of supply says that supply varies directly with price, not necessarily proportionately.

चढ़ती हुई होती है। ऐसा क्यों होता है ? अर्थात् कीमत बढ़ने पर पूर्ति क्यों घटती है या कीमत घटने पर पूर्ति क्यों घटती है ?

यह बात निम्न विवरण से पूर्णत स्पष्ट हो जाती है

(१) कीमत में वृद्धि होने से विक्रेताओं के लाभ में वृद्धि होती है और अधिक लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से वे अपनी वस्तु की पूर्ति बढ़ाते है। पूर्ति बढ़ाने की विधि में समय के अनुसार परिवर्तन होता जाता है।

(i) यदि अति अल्पकालीन समय (very short period) है तो विक्रेता या उत्पादक स्टॉक में से अधिक माल निकालकर बेचन लगते हैं, परन्तु स्टॉक में रखे हुए माल से अधिक वे पूर्ति को नहीं बढ़ा पाते है। (ii) यदि अल्पकाल (short period) है तो विक्रेता या उत्पादक वर्तमान उत्पत्ति के साधनों की मदद से पूर्ति बढ़ाते हैं परन्तु समय इतना नहीं होता कि नये साधनों की मदद से पूर्ति बढ़ा सकें। (iii) यदि दीर्घकालीन समय (long period) है तो वे वर्तमान उत्पत्ति के साधनों के अतिरिक्त नये उत्पत्ति के साधनों की सहायता से भी पूर्ति बढ़ाकर अधिक लाभ कमा सकते है।

(२) कीमत में कमी होने से विक्रेताओं या उत्पादकों को कम लाभ प्राप्त होगा या नुकसान होने लगेगा। अत लाभ कम होने के कारण या नुकसान से बचने के लिए वे पूर्ति को कम करेंगे। समय के अनुसार वे पूर्ति को निम्न प्रकार से कम कर सकते है

(i) यदि समय अति अल्पकालीन (very short period) है तो विक्रेता अपने स्टॉक से कम माल को बेचने को निकालेंगे तथा बाजार में से भी वस्तु की कुछ मात्रा खींचकर स्टॉक में रखेंगे, यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली नहीं है। (ii) यदि अल्पकालीन समय (short period) है तो कुछ उत्पादक उत्पादन को कम कर देंगे। (iii) यदि दीर्घकालीन समय (long period) है तो कुछ उत्पादक उत्पादन बिलकुल बन्द कर देंगे और किसी दूसरे उद्योग में चले जायेंगे।

स्पष्ट है कि कीमत में वृद्धि या कमी से लाभ में वृद्धि या कमी होती है और इसलिए विक्रेता पूर्ति में वृद्धि या कमी करते है।

४. नियम के अपवाद (Exceptions of the Law)

पूर्ति के नियम के मुख्य अपवाद निम्न हैं .

(i) भविष्य में कीमत में अधिक कमी या वृद्धि की दशाओं में पूर्ति का नियम लागू नहीं होता। माना किसी वस्तु की कीमत कम हो जाती है, परन्तु उत्पादकों का ध्यान है कि यह कमी निकट भविष्य में कीमत में और अधिक कमी की सूचक है तो वे कीमत कम होने पर भी वर्तमान में वस्तु की कम मात्रा नहीं बल्कि अधिक मात्रा बेचेंगे। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत में वर्तमान वृद्धि निकट भविष्य में और अधिक वृद्धि की सूचक है तो विक्रेता कीमत ऊँची होने पर भी वस्तु को अधिक मात्रा में नहीं बेचेंगे बल्कि उसको रोकेंगे और कम बेचेंगे ताकि भविष्य में अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

(ii) कुछ दशाओं में यह नियम कृषि-उत्पादित वस्तुओं पर लागू नहीं होता है। यदि कृषि की वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं तो कभी-कभी उनकी वृद्धि नहीं की जा सकती क्योंकि कृषि उत्पादन (विशेष तौर पर भारत जैसे अविकसित देश में) मुख्यत प्रकृति पर निर्भर करता है, यदि वर्षा ठीक नहीं हुई, या टिड्डी दल फसलों को नुकसान कर गया तो कीमतों के ऊँचे होने पर भी पूर्ति नहीं बढ़ायी जा सकेगी।

(iii) कुछ कलात्मक वस्तुओं (artistic goods) के सम्बन्ध में पूर्ति का नियम लागू नहीं होता। उदाहरणार्थ, यदि किसी विख्यात चित्रकार के चित्रों की कीमत बहुत बढ़ या घट जाती है तो चित्रों की पूर्ति को बढ़ाना या घटाना कठिन है।

(iv) इसी प्रकार नीलाम की वस्तुओं की पूर्ति सीमित होती है, इसलिए उसकी कीमतों में वृद्धि या कमी उसकी पूर्ति को प्रभावित नहीं कर पाती है। इस प्रकार पूर्ति का नियम लागू नहीं होता है।

(v) अविकसित तथा पिछड़े देशों में श्रम की पूर्ति के सम्बन्ध में कभी-कभी यह नियम लागू नहीं होता। अविकसित देशों में श्रमिकों का जीवन-स्तर बहुत नीचा होता है और उनकी आवश्यकताएं बहुत कम होती हैं। यदि इन श्रमिकों की मजदूरियाँ अधिक बढ़ा दी जाती हैं तो वे कम घण्टे कार्य करके अपनी थोड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं। इस प्रकार मजदूरी बढ़ जाने पर काम से गैरहाजिरी (absenteeism) भी बढ़ जाती है। दूसरे शब्दों में, श्रमिकों के कार्य की कीमत बढ़ने पर श्रमिक अपने श्रम को अधिक बेचने के स्थान पर कम बेचते हैं।

वास्तव में, पूर्ति के नियम के अपवाद बहुत कम हैं और पूर्ति का नियम प्रायः सब जगह लागू होता है।

'पूर्ति में परिवर्तन' तथा 'पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन' में अन्तर

साधारण बोलचाल की भाषा में 'पूर्ति में परिवर्तन' (change in supply) तथा पूर्ति की गयी मात्रा में परिवर्तन (change in quantity supplied) दोनों एक ही अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में इन दोनों वाक्यों में अन्तर है। 'पूर्ति में वृद्धि' (increase in supply) का अर्थ पूर्ति में विस्तार (expansion in supply) से भिन्न होता है, तथा 'पूर्ति में कमी' (decrease in supply) और 'पूर्ति में संकुचन' (contraction in supply) में अन्तर किया जाता है।

पूर्ति में विस्तार तथा संकुचन (Expansion and Contraction of Supply)

पूर्ति को प्रभावित करने वाले बहुत-से तत्त्वों में से एक कीमत है। पूर्ति में विस्तार तथा संकुचन केवल कीमत में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होते हैं। वे एक ही पूर्ति रेखा पर चलन (movement) को बताते हैं, पूर्ति रेखा पर नीचे की ओर चलन कीमत में कमी तथा पूर्ति में संकुचन को बताता है, और ऊपर की ओर चलन कीमत में वृद्धि तथा पूर्ति में विस्तार को बताता है।
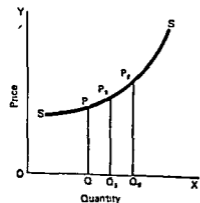
चित्र—२

चित्र संख्या २ में SS पूर्ति रेखा है। जब कीमत P_1Q_1 है तो 'पूर्ति की गयी मात्रा' (quantity supplied) OQ_1 है। यदि इस पूर्ति रेखा SS पर नीचे की ओर चलन (movement) होता है अर्थात् P बिन्दु पर पहुँचा जाता है तो कीमत में कमी होती है और वह PQ हो जाती है तथा पूर्ति में संकुचन होता है और वह OQ हो जाती है। इसी प्रकार यदि इसी पूर्ति रेखा SS पर ऊपर की ओर चलन होता है, अर्थात् P_2 बिन्दु पर पहुँचा जाता है तो कीमत में वृद्धि होकर वह P_2Q_2 हो जाती है और पूर्ति में विस्तार होकर वह OQ_2 हो जाती है।

इस प्रकार जब कीमत में परिवर्तन होता है तो 'पूर्ति की गयी मात्रा' (quantity supplied) में भी परिवर्तन होता है। परन्तु पूर्ति रेखा वही बनी रहती है। इस बात को हम इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि कीमत में परिवर्तन पूर्ति की गयी मात्रा को परिवर्तित करता है परन्तु पूर्ति को नहीं। यहाँ पर उत्पादक या विक्रेता केवल एक निष्क्रिय पार्ट (passive role) अदा करता है, वह केवल कीमत में परिवर्तनों द्वारा निर्देशित होता है, उसकी पूर्ति तालिका (supply schedule) स्थिर रहती है, अर्थात् पूर्ति रेखा वही रहती है और उसी रेखा पर वह ऊपर या नीचे, कीमत में परिवर्तन के अनुसार, चलता रहता है।

पूर्ति में वृद्धि या कमी (Increase or Decrease in Supply)

वस्तु की कीमत को छोड़कर पूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्त्वों (determinants of supply) में से किसी में भी परिवर्तन के कारण पूर्ति पर जो प्रभाव होता है उसे पूर्ति में परिवर्तन कहते हैं। कीमत के अतिरिक्त पूर्ति निर्धारित करने वाले कई अन्य तत्त्व होते हैं, जैसे—

उत्पादन विधि मे परिवर्तन, नयी खोजें, उत्पादकों की आयों मे परिवर्तन, उत्पत्ति के साधनों की कीमतों मे परिवर्तन, इत्यादि। कीमतों को छोड़कर पूर्ति के इन निर्धारक तत्वों मे से किसी भी एक मे परिवर्तन 'पूर्ति मे परिवर्तन' उत्पन्न कर देता है। पूर्ति मे परिवर्तन अर्थात् 'पूर्ति मे वृद्धि' या 'पूर्ति मे कमी' का अर्थ स्वय पूर्ति रेखा के दायें को या बायें को हटने (shift) से है। दूसरे शब्दो मे, 'पूर्ति मे परिवर्तन' का अर्थ है कि विक्रेता या उत्पादक की पहली वाली पूर्ति तालिका (supply schedule) नहीं रहती बल्कि उसके स्थान पर नयी पूर्ति तालिका आ जाती है। यहाँ पर विक्रेता या उत्पादक एक सक्रिय पार्ट (active role) अदा करता है, वह वस्तु की कीमत द्वारा निर्देशित नहीं होता बल्कि वह पूर्ति की दशाओं को ध्यान मे रखते हुए अपनी पूर्ति कम या अधिक, स्वय निश्चित करता है।

चित्र—३

चित्र न० ३ मे 'पूर्ति मे वृद्धि' को दिखाया गया है। S_1S_1 प्रारम्भिक पूर्ति रेखा है और OM_1 (या P_1Q) कीमत पर OQ (या M_1P_2) पूर्ति है। कीमत के अतिरिक्त पूर्ति के निर्धारक तत्वों मे परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप 'पूर्ति मे वृद्धि होती है अर्थात् पूर्ति रेखा दायें (right) को खिसक जाती है और इस प्रकार नयी पूर्ति रेखा S_2S_2 है। पूर्ति में वृद्धि के दो अर्थ हैं—(i) वही मात्रा OQ कम कीमत OM_2 (या P_2Q) पर बेची जाती है। (ii) उसी कीमत OM_1 (या P_3L) पर अधिक मात्रा OL बेची जाती है। P_2 तथा P_3 दोनो बिन्दु नयी पूर्ति रेखा S_2S_2 पर हैं जोकि पूर्ति की वृद्धि को बताती है।
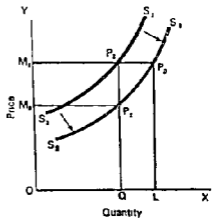
चित्र न० ४ मे 'पूर्ति की कमी' को दिखाया गया है। प्रारम्भिक पूर्ति रेखा S_1S_1 है। कीमत को छोड़कर पूर्ति के निर्धारक तत्वों मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'पूर्ति मे कमी' होती है अर्थात् पूर्ति रेखा बायें को खिसक जाती है और अब नयी पूर्ति रेखा S_2S_2 है। परिवर्तन के पहले OM_1 (या P_1Q) कीमत पर पूर्ति OQ के बराबर थी परन्तु अब 'पूर्ति मे कमी' हो गयी है। पूर्ति मे कमी के दो अर्थ हैं—(i) उसी कीमत OM_1 (या P_3L) पर अब वस्तु की कम मात्रा OL बेची जाती है, या (ii) अब ऊँची कीमत OM_2 (या P_2Q) पर उतनी ही मात्रा OQ बेची जाती है।

चित्र—४

सक्षेप मे,

(१) पूर्ति के विस्तार (Expansion of Supply) का अर्थ है अधिक कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा, जबकि पूर्ति में वृद्धि (Increase in Supply) का अर्थ है—(अ) उसी कीमत पर अधिक मात्रा बेची जायेगी, या (ब) कम कीमत पर उतनी ही मात्रा बेची जायेगी।

(२) 'पूर्ति में सकुचन' (Contraction of supply) का अर्थ है कम कीमत पर वस्तु की कम मात्रा, जबकि 'पूर्ति मे कमी' (Decrease in Supply) का अर्थ है—(अ) उसी कीमत पर कम मात्रा बेची जायेगी, या (ब) ऊँची कीमत पर उतनी ही मात्रा बेची जायेगी।
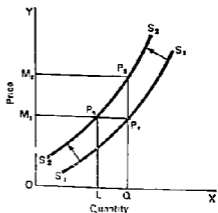
(२) 'पूर्ति में वृद्धि या कमी' का महत्त्व दीर्घकालीन समय में है क्योकि दीर्घकालीन पूर्ति के निर्धारक तत्त्व स्थिर नही रहते बल्कि बदलते रहते हैं। पूर्ति में विस्तार या संकुचन का महत्त्व अल्पकालीन समय में है क्योकि अल्पकाल में कीमत के अतिरिक्त अन्य निर्धारक तत्त्व प्राय लगभग स्थिर रहते हैं, उनमे बदलने की सम्भावना (समय कम होने के कारण) कम रहती है, केवल कीमत मे परिवर्तन होते हैं।

पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्व या पूर्ति के निर्धारक तत्त्व
(FACTORS INFLUENCING SUPPLY OR DETERMINANTS OF SUPPLY)

वास्तविक जीवन मे पूर्ति ब हुत से परिवर्तनशील तत्त्वो (dynamic factors) से प्रभावित होती है। पूर्ति को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :

(१) **वस्तु की कीमत** (Price of the commodity)—यदि अन्य बातें समान रहती हैं तो वस्तु की ऊँची कीमत पर अधिक पूर्ति होगी तथा नीची कीमत पर कम पूर्ति होगी।

(२) **अन्य वस्तुओं की कीमत** (Price of other commodities)—यदि अन्य वस्तुओं की कीमत म वृद्धि हो जाती है जबकि वस्तु विशेष की कीमत उतनी ही रहता है तो ऐसी स्थिति मे उत्पादकों को वस्तु विशेष के उत्पादन मे कम आकर्षण रह जायेगा क्योकि यह वस्तु अन्य वस्तुओ की अपेक्षा सस्ती रहती है। इस प्रकार वस्तु की पूर्ति कम हो जायेगी। इसके विपरीत, यदि अन्य वस्तुओं की कीमतो में कमी हो जाती है तो उत्पादक इस वस्तु की पूर्ति को बढाने के लिए आकर्षित होंगे।

(३) **उत्पादन के साधनो की कीमतें** (Price of the factors of production)—यदि उत्पादन के साधनो की कीमतें बढ जाती हैं तो वस्तु की उत्पादन लागत बढ़ेगी, परिणामस्वरूप उत्पादन कम किया जायेगा और पूर्ति मे कमी होगी। इसके विपरीत, यदि उत्पादन के साधनो की कीमत कम होती हैं तो वस्तु की लागत कम होगी और उसकी पूर्ति बढ़ेगी।

(४) **टैक्नीकल ज्ञान** (Technological know-how)—टैक्नीकल ज्ञान में विस्तार होने के परिणामस्वरूप किसी वस्तु के उत्पादन करने म कुशल रीति का प्रयोग होने लगता है इससे लागत घटती है और वस्तु की पूर्ति बढती है।

(५) **उत्पादकों की रुचि** (Tastes of producers)—यदि उत्पादक एक वस्तु की अपेक्षा दूसरी वस्तु का उत्पादन करना अधिक पसन्द करते है (यद्यपि दोनो मे समान लाभ प्राप्त होता है) तो इससे दूसरी वस्तु की पूर्ति अधिक होगी।

(६) **प्राकृतिक तत्त्व** (Natural factors)—कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओ की पूर्ति पर एक सीमा तक प्राकृतिक तत्त्वो का पर्याप्त प्रभाव पडता है। पर्याप्त वर्षा, सिचाई की उचित सुविधाएँ, अच्छी खाद, अच्छे बीज, इत्यादि कृषि वस्तुओ की पूर्ति को बढाते हैं। इसके विपरीत टिड्डी दल, अति वर्षा तथा सूखा, इत्यादि उनकी पूर्ति को कम करते है।

(७) **परिवहन व सम्वादवहन के साधन** (Means of transport and communication)—परिवहन तथा सम्वादवहन की अच्छी और विकसित सुविधाओ के मौजूद होने से विदेशों से किसी भी वस्तु के आयातो मे अधिक सुविधा के परिणामस्वरूप उसकी पूर्ति बढ़ेगी। इसके विपरीत, यदि इन साधनो का प्रयोग किसी वस्तु के अधिक निर्यात के लिए किया जाता है तो उसकी पूर्ति देश म कम रह जायेगी।

(८) **युद्ध तथा राजनीतिक बाधाएँ** (War and political disturbances)—युद्ध छिड ाने से या राजनीतिक उथल-पुथल होने से कुछ वस्तुओ की पूर्ति की कमी देश विदेश मे हो जात है।

(९) **कर नीति** (Taxation policy)—सरकार की कर नीति भी वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करती है। यदि सरकार किसी वस्तु पर अधिक कर लगाती है तो वह वस्तु महँगी पड़ेगी और उसकी पूर्ति कम होगी।

(१०) उत्पादकों में परस्पर समझौता (Agreement among the producers)—किसी वस्तु के बड़े उत्पादक आपस में मिलकर अधिक लाभ कमाने की दृष्टि से उस वस्तु की कुल पूर्ति कम कर सकते हैं।

पूर्ति की लोच
(ELASTICITY OF SUPPLY)

माँग की लोच की भाँति पूर्ति की लोच भी होती है। पूर्ति का नियम, माँग के नियम की भाँति, केवल गुणात्मक कथन है अर्थात् पूर्ति का नियम मूल्य में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पूर्ति में केवल परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है। पूर्ति का नियम यह नहीं बताता कि कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप पूर्ति में कितना परिवर्तन होता है। इस बात को जानने के लिए अर्थशास्त्रियों ने 'पूर्ति की लोच' का टेकनीकल विचार प्रस्तुत किया है। यह विचार बताता है कि कीमत में कमी या वृद्धि से पूर्ति की मात्रा में निश्चित रूप से कितनी कमी या वृद्धि होती है।

पूर्ति की लोच की परिभाषा (Definition of the Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच, कीमत में थोड़े से परिवर्तन के उत्तर (response) में, पूर्ति की मात्रा में होने वाले परिवर्तन की माप है। दूसरे शब्दों में, पूर्ति की लोच कीमत में परिवर्तन के उत्तरमें पूर्ति में होने वाले परिवर्तन की गति (rate) को बताती है।

पूर्ति की लोच की गणितात्मक परिभाषा (Numerical Definition) इस प्रकार दी जाती है। पूर्ति की लोच, कीमत में थोड़े परिवर्तन के परिणामस्वरूप पूर्ति की मात्रा में 'आनुपातिक परिवर्तन' (proportional change) को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है। इसको सूत्र (formula) द्वारा निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है -

$$e_s = \frac{\text{पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

जबकि e_s पूर्ति की लोच का चिह्न है।

पूर्ति की लोच के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए : (i) इसके अन्तर्गत हम पूर्ति के उस परिवर्तन पर विचार करते हैं जो कीमत में थोड़े-से परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता हो, तथा (ii) जो अल्प समय के लिए हो।[1]

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की पूर्ति पर एकसा प्रभाव नहीं होता, अर्थात् कुछ वस्तुओं की लोच कम होती है तथा कुछ वस्तुओं की अधिक। पूर्ति की लोच की निम्न पाँच श्रेणियाँ हैं :

(१) पूर्णतया लोचदार पूर्ति (Perfectly elastic supply)—जब मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर भी या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन (infinitesimal change) होने पर पूर्ति में बहुत अधिक परिवर्तन (कमी या वृद्धि) हो जाती है तब वस्तु की पूर्ति पूर्णतया लोचदार कही जाती है। ऐसी लोच को 'अपरिमित लोच' (infinite elasticity) कहते हैं तथा इसको इस प्रकार व्यक्त करते हैं : $e_s = \infty$। चित्र न० ५ से स्पष्ट है कि पूर्णतया लोचदार पूर्ति की दशा में पूर्ति रेखा आधार-रेखा X-axis के
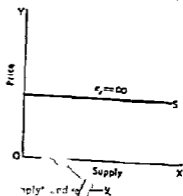
[1] कीमतों में अधिक उतार-चढ़ाव के परिणामस्वरूप जो पूर्ति में परिवर्तन होता है उसमें सटोरियों का प्रभाव अधिक रहता है, अतः पूर्ति के ऐसे परिवर्तनों को पूर्ति की लोच नहीं मानना चाहिए। इसी प्रकार यदि आज की पूर्ति की तुलना आज से १०-१५ वर्ष पूर्व की पूर्ति से की जाय तो आज की पूर्ति में जो परिवर्तन दिखायी पड़ेगा, वह केवल मूल्य में परिवर्तन का परिणाम न होकर पूर्ति को प्रभावित करने वाली अन्य बातों का परिणाम होगा।

समान्तर है। इस प्रकार की पूर्ति की लोच केवल काल्पनिक होती है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नहीं मिलता।

(२) अत्यधिक लोचदार पूर्ति (Highly elastic supply)—जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (proportional change) कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार पूर्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत में २० प्रतिशत कमी होती है परन्तु उसकी पूर्ति में ४० प्रतिशत की कमी हो जाती है तो ऐसी वस्तु की पूर्ति अधिक लोचदार पूर्ति कही जायेगी। ऐसी वस्तु की पूर्ति की लोच को 'इकाई से अधिक लोच' भी कहते हैं और गणित की भाषा में $e_s > 1$ द्वारा व्यक्त करते हैं। चित्र न० ६ द्वारा अधिक लोचदार पूर्ति को बताया गया है। चित्र में स्पष्ट है कि पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (PK) कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (P_1K) से अधिक है।

चित्र—६
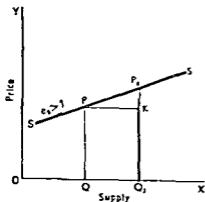
(३) लोचदार पूर्ति या कीमत दर्जे की लोचदार पूर्ति (*Elastic Supply*): जब किसी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है, तब ऐसी वस्तु की पूर्ति को लोचदार पूर्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की कीमत में २०% की वृद्धि होती है और उसकी पूर्ति में भी ठीक २०% की वृद्धि हो जाती है तो यह 'लोचदार पूर्ति' की दशा कहलायेगी। इस प्रकार की लोच को 'इकाई के बराबर लोच' भी कहते हैं। गणित की भाषा में इसको $e_s = 1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

एक सीधी पूर्ति रेखा (Straight line supply curve) जो कि मूल बिन्दु (origin) से गुजरती है 'पूर्ति की इकाई लोच' (unit elasticity of supply) को बताती है जैसा कि चित्र न० ७ में बताया गया है।
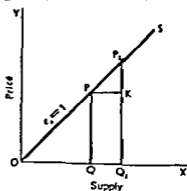
चित्र—७

(४) बेलोच पूर्ति (Inelastic supply)—जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को 'बेलोच पूर्ति' कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत में ५०% की वृद्धि होती व उसकी पूर्ति में केवल १०% की वृद्धि होती है तो ऐसी पूर्ति को बेलोचदार पूर्ति कहा जाता है। इस प्रकार की लोच को 'इकाई से कम लोच' भी कहते हैं, गणित की भाषा में इसको $e_s < 1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। चित्र न० ८ में बेलोच पूर्ति को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (PK) कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (P_1K) से कम है।
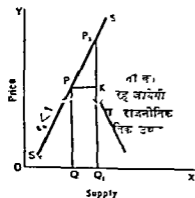
चित्र—८

(५) पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति (Perfectly inelastic supply)—जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी पूर्ति में बिलकुल

$$= \frac{\frac{q-q_1}{q+q_1}}{\frac{p-p_1}{p-p_1}}$$

(२) बिन्दु रीति या रेखागणित रीति (Point method or Geometrical method)—इस रीति द्वारा हम पूर्ति रेखा के किसी बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम कर सकते हैं। चित्र नं० १० में SS पूर्ति रेखा के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम करना है। पूर्ति रेखा SS को नीचे की ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X-axis को T बिन्दु पर मिलती है, और बिन्दु P से X-axis
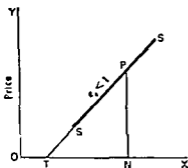
चित्र—१०
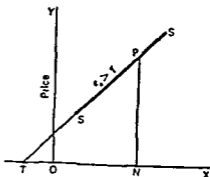
चित्र—११

पर लम्ब (perpendicular) डाला जाता है ताकि वह X-axis को N बिन्दु पर मिलता है। पूर्ति की लोच निम्न सूत्र द्वारा दी जाती है $e = \frac{TN}{ON}$

चूँकि यहाँ पर TN<ON, इसलिए e < १, चित्र नं० ११ में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच, $e_s = \frac{TN}{ON}$, चूँकि यहाँ पर TN>ON इसलिए $e_s >$ १, चित्र नं० १२ में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $e = \frac{TN}{ON}$, यहाँ पर O तथा T बिन्दु एक ही हैं इसलिए TN=ON, अत $e_s =$ १
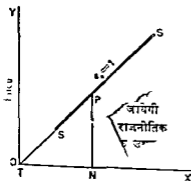
चित्र—१२
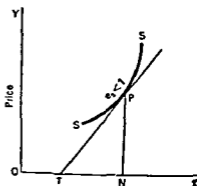
चित्र—१३

चित्र न० १३ मे यह दिखाया गया है कि पूर्ति रेखा सीधी रेखा (straight line) न ह. वक्र रेखा (curve) है, इस supply curve के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच को मालूम करना है P बिन्दु से होती हुई एक स्पर्श रेखा (Tangent) खींची जाती है ताकि वह X-axis को T बिन्दु पर मिले, अब $e_s = \frac{TN}{ON}$ चूंकि यहाँ पर TN<ON, इसलिए e_s<१ ।

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(FACTORS INFLUENCING ELASTICITY OF SUPPLY)

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :

(१) वस्तु की प्रकृति (Nature of the Commodity)—यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली (perishable) है तो ऐसी वस्तु की पूर्ति बेलोच होती है क्योंकि कीमत मे परिवर्तन होने पर इसकी पूर्ति को बढ़ाया या घटाया नही जा सकता है। इसके विपरीत यदि वस्तु टिकाऊ (durable) है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होगी क्योंकि कीमत मे परिवर्तन होने पर इनकी मात्रा को परिवर्तित किया जा सकता है।

(२) उत्पादन रीति तथा तकनीक (Method and Technique of Production)—यदि किसी वस्तु की उत्पादन रीति या प्रणाली सरल है तथा उसमे कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होती है क्योंकि पूर्ति को कीमत मे परिवर्तन पर, सुगमता से घटाया या बढ़ाया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि उत्पादन प्रणाली जटिल है तथा उसमे बहुत अधिक पूँजी का प्रयोग होता है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति बेलोचदार होती है क्योंकि इनकी पूर्ति को बढ़ाना या घटाना आसान नहीं होता है।

(३) उत्पादन लागत (Cost of Production)—किसी वस्तु की पूर्ति की लोच उत्पादन लागत से भी प्रभावित होती है। यदि वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम (अर्थात् लागत वृद्धि नियम) के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तु की पूर्ति बेलोच होती है क्योंकि कीमत बढ़ने पर भी इनकी पूर्ति को बढ़ाना कठिन है, पूर्ति बढ़ने से लागत बढ़ती है। इसके विपरीत, यदि वस्तु का उत्पादन लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होगी।

(४) समय (Time)—समय पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाला एक मुख्य तत्त्व है। जितना समय लम्बा होगा उतनी ही वस्तु की पूर्ति की लोच अधिक होगी तथा जितना समय कम होगा उतनी ही वस्तु की पूर्ति की लोच बेलोच होगी। समय अधिक होने से वस्तु की पूर्ति को आवश्यकतानुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है, परन्तु समय कम होने से ऐसा करना कठिन प्रतीत होता है।

प्रश्न

१. पूर्ति के नियम को बताइए तथा उसकी पूर्ण व्याख्या कीजिए।
State and explain fully the Law of Supply.

२. पूर्ति की परिभाषा कीजिए। निम्न के अन्तर को स्पष्ट कीजिए :
(अ) 'पूर्ति मे वृद्धि' तथा 'पूर्ति मे विस्तार'।
(ब) 'पूर्ति में कमी' तथा 'पूर्ति में संकुचन'।
Define Supply. Distinguish between (a) 'Increase in supply' and 'expansion of supply', (b) 'decrease in supply' and 'contraction of supply'.

३. पूर्ति के नियम का कथन दीजिए। वे कौन-से तत्त्व हैं जो पूर्ति को प्रभावित करते हैं?
State the Law of Supply. What are the factors which affect the supply?

४. पूर्ति की लोच को परिभाषित कीजिए। यह कैसे मापी जाती है?
Define Elasticity of supply. How is it measured?

र कुछ निर्माण किया जिसमे दिवस ने अकेले सत किया। लेपण' नामक अध्याय

21

तटस्थता-वक्र विश्लेषण
[INDIFFERENCE CURVE ANALYSIS]

उपयोगिता विश्लेषण के दोष
(DEFECTS OF UTILITY ANALYSIS)

मार्शल का मांग सिद्धान्त 'उपयोगिता-दृष्टिकोण' (utility approach) पर आधारित है अर्थात् उनके अनुसार, उपयोगिता को मापा जा सकता है। मार्शल ने मांग सिद्धान्त की व्याख्या उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) के आधार पर की है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता। मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण के निम्न दोष बताये गये हैं :

(१) किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता एक व्यक्तिगत (subjective) धारणा है जो कि व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क में निवास करती है। अत एक व्यक्तिगत भावना (subjective feeling) को किसी वस्तुगत पैमाने (objective standard) से मापने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

(२) उपयोगिता केवल भिन्न भिन्न व्यक्तियों के साथ ही भिन्न भिन्न नहीं होती, बल्कि यदि एक ही व्यक्ति लिया जाय तो भी भिन्न भिन्न समयों पर एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उस व्यक्ति की भिन्न भिन्न प्रतिक्रियाएँ (reactions) होंगी। अत उपयोगिता हर समय बदलती रहती है और ऐसी वस्तु को, जो कि परिवर्तनशील है या हर समय बदलती रहती है, मापा नहीं जा सकता है।

(३) उपयोगिता को मापने के लिए कोई निश्चित तथा स्थिर (constant) पैमाना नहीं है। यद्यपि मार्शल ने उपयोगिता को मापने के लिए द्रव्य रूपी पैमाने का प्रयोग किया, परन्तु द्रव्य रूपी पैमाना निश्चित तथा स्थिर नहीं है, वह बदलता रहता है। मार्शल ने द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मान लिया जो कि गलत है। जैसा कि हिक्स ने बताया है कि इस मान्यता के परिणामस्वरूप मार्शल 'आय प्रभाव' (income-effect) पर ध्यान न दे सके।

(४) मार्शल यह भी मान कर चले कि एक वस्तु की मांग अन्य वस्तुओं की मांग से बिलकुल स्वतन्त्र (independent) होती है, वह अन्य वस्तुओं की मांग से प्रभावित नहीं होती या उस पर ...र नहीं करती है। इस मान्यता के परिणामस्वरूप मार्शल के सिद्धान्त का प्रयोग एक-वस्तु (single commodity model) तक ही सीमित रह जाता है, उसको सम्बन्धित वस्तुओं ... goods) अर्थात् स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं (substitutes and complementary ... सम्बन्ध में प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है।

... कि मार्शल की 'उपयोगिता विश्लेषण' (utility analysis) अवास्तविक तथा ... पर आधारित है, परिणामस्वरूप इसका महत्त्व और प्रयोग सीमित रह ...

...स्पष्ट ... चित मान्यताओं ... ता है।

... मान दृष्टिकोण' (Preference Approach) या 'प्रतिस्थापन विश्लेषण' (Substitution Analy...

इसके अन्य नाम 'अधि... ...sis) भी हैं।

तटस्थता वक्र विश्लेषण का आधार : क्रमवाचक उपयोगिता
(BASIS OF INDIFFERENCE CURVE ANALYSIS ORDINAL UTILITY)

मार्शल की 'उपयोगिता विश्लेषण' के अन्तर्गत उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन से सम्बन्धित कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्रियों, एलन तथा हिक्स (Allen and Hicks), ने तटस्थता विश्लेषण' (indifference analysis) को जन्म दिया, इसे 'प्राथमिकता दृष्टिकोण' (preference approach) या 'प्रतिस्थापन विश्लेषण' (substitution analysis) भी कहते हैं। 'प्राथमिकता दृष्टिकोण' उपयोगिता के विचार को अस्वीकार (deny) नहीं करता, यह तो केवल उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन की आवश्यकता को दूर कर देता है। 'उपयोगिता-विश्लेषण' का दृष्टिकोण सख्यात्मक (cardinal approach) है, जबकि 'प्राथमिकता विचार' (preference approach) का दृष्टिकोण क्रमसूचक (ordinal approach) है। इस व्याख्या के अन्तर्गत यह जानने की आवश्यकता नहीं होती कि वस्तु विशेष से उपभोक्ता को कितनी उपयोगिता मिलती है या इसकी उपयोगिता दूसरी वस्तु की उपयोगिता से कितना अधिक है। इसके अन्तर्गत तो उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदते समय केवल 'प्राथमिकता-क्रम' (scale of preference) को ध्यान में रखता है अर्थात् वह वस्तुओं को उनके महत्व के अनुसार क्रम में रखता है। प्रत्येक क्रम (scale) सन्तुष्टि के एक निश्चित स्तर को बताता है और प्रत्येक क्रम को प्रथम, द्वितीय, तृतीय, इत्यादि क्रमसूचक या क्रमवाचक सख्याएँ (ordinal numbers) प्रदान की जाती हैं।[1] चूँकि इन क्रमवाचक सख्याओं का जोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए प्राथमिकता दृष्टिकोण को 'क्रमवाचक उपयोगिता का सिद्धान्त' (Theory of Ordinal Utility) भी कहा जाता है। इस 'प्राथमिकता-क्रम' की सहायता से उपभोक्ता, उपयोगिता के बिना सख्यात्मक मापन के, यह बता सकता है कि वस्तुओं का कोई एक संयोग वस्तुओं के किसी दूसरे संयोग से उस अधिक पसन्द है, कम पसन्द है या बराबर पसन्द है।

तटस्थता-विश्लेषण का संक्षिप्त ऐतिहासिक विकास
(BRIEF HISTORICAL EVOLUTION OF THE INDIFFERENCE CURVE ANALYSIS)

सर्वप्रथम एजवर्थ (Edgeworth) ने सन् १८८१ में प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा पूरक वस्तुओं (competitive and complementary goods) के अध्ययन के लिए तटस्थता वक्र-रेखाओं का प्रयोग किया। इसके पश्चात् सन् १९०६ में इटेलियन अर्थशास्त्री पेरिटो (Pareto) ने एजवर्थ की रीति को अपनाया।

वास्तव में, पेरिटो प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने स्पष्ट रूप से उपयोगिता की अमापनीयता (immeasurability) पर बल दिया। पेरिटो ने इस बात पर जोर दिया कि उपयोगिता की तुलना की जा सकती है परन्तु उसे निरपेक्ष रूप से (in the absolute sense) मापा नहीं जा सकता। इस तथ्य के आधार पर उसने बताया कि 'उपयोगिता के विचार' के स्थान पर 'प्राथमिकता क्रम' (scale of preference) के विचार का प्रयोग करना वाछनीय होगा।

पेरिटो का मुख्य दोष यह था कि वे अपने विश्लेषण में पूर्ण रूप से अनुरूप (consistent) नहीं थे। यद्यपि उन्होंने अपने नये सिद्धान्त की स्थापना की परन्तु वे उपयोगिता से सम्बन्धित विचारों का प्रयोग करते रहे। अत बाद में अन्य अर्थशास्त्रियों ने तटस्थता विश्लेषण में सुधार किये। सन् १९१३ में जोनसन (Johnson) तथा सन् १९१५ में स्लट्स्की (Slutsky) ने कुछ सुधार किये। सन् १९३४ में प्रो० हिक्स तथा प्रो० ऐलन ने 'मूल्य सिद्धान्त का पुनर्निर्माण' (A Reconstruction of the Theory of Value) के नाम से एक लेख प्रकाशित किया जिसमे तटस्थता विश्लेषण का अधिक वैज्ञानिक रूप से विकास किया। तत्पश्चात् प्रो० हिक्स ने अकेले अपनी पुस्तक *Value and Capital* में तटस्थता विश्लेषण को पूर्ण रूप से विकसित किया।

---

[1] इसके अधिक विस्तृत विवरण के लिए 'उपयोगिता तथा सीमान्त विश्लेषण' नामक अध्याय देखिए।

तटस्थता वक्र की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF INDIFFERENCE CURVE)

तटस्थता वक्र के अर्थ को जानने से पूर्व तटस्थता तालिका (indifference schedule) को समझना आवश्यक है। प्रो० मेयर्स (Meyers) के अनुसार,

> तटस्थता तालिका वह तालिका है जो कि दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे कि किसी व्यक्ति को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यदि इस तटस्थता तालिका को एक रेखा के रूप में दिखाया जावे तो हमें तटस्थता वक्र रेखा प्राप्त हो जाती है।[1]

जे० के० ईस्थम (J K Eastham) के शब्दों में, यह मात्राओं के उन संयोगों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं का मार्ग (locus) है जिनके बीच व्यक्ति तटस्थ (indifferent) रहता है। अतः इसे तटस्थता वक्र कहा जाता है। चूँकि तटस्थता रेखा पर प्रत्येक बिन्दु समान सन्तुष्टि को बताता है, इसलिए इसे समान सन्तुष्टि रेखा (Iso-utility curve) भी कहते हैं।

तटस्थता वक्र रेखा का एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। निम्न तालिका सन्तरों तथा अमरूदों के विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि मिलती है और जिनके चुनाव के प्रति वह तटस्थ रहता है

संयोग संख्या	सन्तरों (X) की संख्या		अमरूदों (Y) की संख्या
१	२	+	६
२	३	+	४
३	४	+	३

चित्र—१

उपर्युक्त तालिका को चित्र नं० १ द्वारा दिखा कर तटस्थता वक्र रेखा प्राप्त की जाती है। चित्र में X axis पर सन्तरे तथा Y-axis पर अमरूद दर्शाये गये हैं। I तटस्थता वक्र-रेखा है जिस पर कि सन्तरों तथा अमरूदों के विभिन्न संयोगों से समान सन्तुष्टि मिलती है।

तटस्थता मानचित्र (Indifference Map)
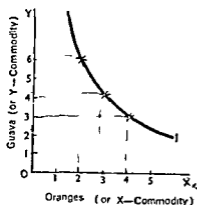
उपर्युक्त तालिका में सन्तरों (X) तथा अमरूदों (Y) के समान सन्तुष्टि या उपयोगिता वाले तमाम संयोगों को एक ही तटस्थता वक्र-रेखा द्वारा दिखाया गया है क्योंकि इन संयोगों के लिए अलग-अलग वक्र रेखाएँ नहीं बनायी जा सकती। परन्तु यदि सन्तरों (X) तथा अमरूदों (Y) के ऐसे संयोग लिये जायें जिनमें उपभोक्ता को भिन्न भिन्न सन्तोष या उपयोगिता प्राप्त होती है तब ये संयोग केवल एक वक्र रेखा द्वारा नहीं दिखाये जा सकते बल्कि इन संयोगों को अलग अलग वक्र रेखा द्वारा दिखाया जा सकता है। इस प्रकार जब बहुत से तटस्थता वक्रों को, जो कि उपभोक्ता विशेष के लिए सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को बताते हैं, एक ही चित्र में दिखाया जाता है तब इस चित्र को तटस्थता मानचित्र (Indifference map) कहते हैं। एक तटस्थता वक्र

---

[1] "An Indifference schedule may be defined as a schedule of various combination of goods that will be equally satisfactory to the individual concerned. If we depict this in the form of a curve we get an indifference curve." —A. L. Meyers

रेखा सन्तुष्टि के एक निश्चित स्तर को बताती है, जैसे-जैसे वक्र रेखाएँ दायें को ऊपर की ओर खिसकती जाती है वैसे वैसे सन्तुष्टि का स्तर बदलता जाता है और वे (अधिक सन्तुष्टि) का बताती हैं। इसके विपरीत, जैसे-जैसे ये रेखाएँ बायें की नीचे की ओर खिसकती जाती है वैसे-वैसे (कम) सन्तुष्टि को बताती है। चित्र न० २ 'तटस्थता मानचित्र' को बताता है।
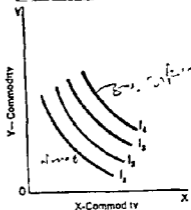
चित्र—२

'तटस्थता मानचित्र' की तुलना 'भौगोलिक परिधि-रेखा मानचित्र' (geographical contour map) से की जा सकती है। एक परिधि-रेखा (contour) समान ऊँचाई की जगहों को दिखाती है, इसी प्रकार एक तटस्थता वक्र रेखा समान सन्तुष्टि प्रदान करने वाली वस्तुओं के संयोग को बताती है। विभिन्न परिधि-रेखाएँ विभिन्न ऊँचाइयों को बताती है, इसी प्रकार विभिन्न तटस्थता वक्र रेखाएँ सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों (levels) को बताती हैं।

तटस्थता वक्र रेखाओं की मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS OF INDIFFERENCE CURVES)

तटस्थता वक्र रेखाओं की मुख्य मान्यताएँ निम्न हैं

(i) एक उपभोक्ता किसी वस्तु की कम मात्रा की तुलना में अधिक मात्रा को पसन्द करता है, यदि किसी अन्य वस्तु के उपभोग में कोई कमी नहीं होती।[4] दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु के उपभोग या उसकी मात्रा में वृद्धि से उपभोक्ता के सन्तुष्टि के स्तर में वृद्धि होती है, परन्तु उपभोक्ता यह नहीं बता सकता है कि कितनी वृद्धि होती है, अर्थात् उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं होती।

(ii) एक व्यक्ति यह बता सकता है कि वस्तुओं के एक संयोग (combination) की उपयोगिता दूसरे संयोग की अपेक्षा अधिक है, कम है या बराबर है। अतः वह विभिन्न संयोगों को प्राथमिकता के अनुसार एक क्रम में रख सकता है।

(iii) व्यक्ति विशेष यह जानता है कि वस्तुओं के एक संयोग से दूसरे संयोग को प्राप्त करने में 'उपयोगिता में परिवर्तन' अपेक्षाकृत इस दूसरे संयोग से तीसरे संयोग पर जाने में, अधिक है, कम है, या बराबर है।

(iv) उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण (rational) होता है। दूसरे शब्दों में, अपनी दी हुई आय में एक उपभोक्ता अपनी कुल सन्तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है।[5]

(v) वस्तुएँ एकरूप तथा विभाज्यनीय (divisible) होती हैं।

तटस्थता वक्र रेखाओं की विशेषताएँ अथवा गुण
(CHARACTERISTICS OR PROPERTIES OF INDIFFERENCE CURVES)

तटस्थता वक्र रेखाओं की (समः) ...नाएँ निम्नलिखित हैं

(१) एक तटस्थता रेखा 'Y are perfect ...की ओर गिरती है अर्थात् उसका ढाल (slope) ऋणात्मक (negative) होता है ...nstant and the ind... स्पष्ट कारण यह है कि यदि उपभोक्ता एक वस्तु (X) की इकाइयाँ बढ़ाता ...cates the slope ...ne slope thro... the same o... दूसरी वस्तु (Y) की इकाइयाँ कम करनी पड़ेगी

[4] The consumer prefers more of any ... dity to less of it given that the consumption of no other commodity decreases

[5] The consumer attempts to maximise ... total satisfaction obtainable from his given money income

साधारणतया तटस्थता रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है तथा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। परन्तु कुछ परिस्थितियों में इसका आकार भिन्न हो जाता है जैसा कि चित्र ६ तथा ६ म दिखाया गया है।

जब दो वस्तुएं X तथा Y पूर्ण स्थानापन्न होती हैं तो इन दोनों में सीमान्त प्रतिस्थापन की दर स्थिर (constant) होगी तथा तटस्थता वक्र-रेखा एक ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा होगी। इसको चित्र ५ में रेखा I द्वारा दिखाया गया है। मान लो कि हम तटस्थता रेखा I पर बिन्दु a से शुरू करते हैं। मान लो कि वस्तु X को एक-एक इकाई करके बढ़ाया जाता है जैसा कि चित्र ५ में वस्तु X का bg (या AB), cd तथा ef द्वारा बढ़ाते हैं, तो इसके प्रतिफल में उपभोक्ता Y की जो मात्रा क्रमशः त्याग करना तत्पर होता है वह समान या स्थिर रहेगी जैसा कि चित्र में वस्तु Y की क्रमशः ab (या JK), gc तथा de मात्राएँ बताती हैं। Y की ये मात्राएँ समान या बराबर हैं अर्थात् de=gc=ab. स्पष्ट है कि जब दो वस्तुएं X तथा Y पूर्ण स्थानापन्न होती हैं तो X का Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy})= स्थिर या समान (constant)।

चित्र—५
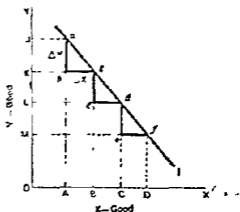
[इस बात को हम एक दूसरी प्रकार से भी बता सकते हैं। हम जानते हैं कि एक तटस्थता वक्र रेखा के किसी बिन्दु पर MRS_{xy} बताती है तटस्थता वक्र रेखा के ढाल (slope) को। यदि एक सीधी रेखा का ढाल उसकी सम्पूर्ण लम्बाई पर स्थिर या समान होता है, इसलिए एक सीधी रेखा के आकार वाली तटस्थता वक्र-रेखा दो वस्तुओं X तथा Y के बीच एक स्थिर या समान 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (MRS_{xy}) को बतायेगी।][1]

परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं की बात केवल सैद्धान्तिक (theoretical) है। वास्तविक जीवन में कोई भी दो वस्तुएं पूर्णरूप से स्थानापन्न नहीं होती हैं, और यदि वे पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे दो वस्तुएं केवल एक ही वस्तु की दो इकाइयां हैं।

जब दो वस्तुएं X तथा Y पूर्ण पूरक (perfect complementary) होती हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे सदैव एक निश्चित अनुपात में मांगी जाती हैं।[2]

दो वस्तुओं के पूर्ण पूरक होने की स्थिति में तटस्थता वक्र रेखा का आकार L-आकार का हो जाता है, अर्थात तटस्थता वक्र रेखा दो सीधी रेखाओं द्वारा निर्मित होगी, प्रत्येक सीधी रेखा एक अक्ष (one axis) के प्रति समान्तर (parallel) होगी तथा वे एक-दूसरे को समकोण (right angle) पर मिलेंगी तथा समकोण

When two goods X and Y are perfect substitutes, the marginal rate of substitution between the two will be constant and the indifference curve will be a negatively sloping straight line.

[1] We know that MRS_{xy} indicates the slope of an indifference curve at a point on it. As the straight line has the same slope throughout its length, therefore the straight line indifference curve will indicate the same or constant MRS_{xy} throughout.

[2] उदाहरणार्थ, दायें पैर का जूता तथा बायें पैर का जूता एक निश्चित अनुपात (अर्थात १ : १) में मांगे जाते हैं। इसी प्रकार दो अन्य पूर्ण पूरक वस्तुएं ऐसी हो सकती हैं जिनको सदैव १ : ३ के स्थिर अनुपात (fixed proportion) में मांगा जा सकता है; इत्यादि।

का मोड (या कोना) मूल बिन्दु (origin) के प्रति उन्नतोदर (convex) होगा। ऐसी तटस्थता रेखा बताती है कि दो वस्तुएँ सदैव एक साथ एक निश्चित अनुपात मे माँगी जाती हैं।[10]

ऐसी स्थिति को चित्र ६ मे I_1 तथा I_2 रेखाओ द्वारा दिखाया गया है, माना कि दो वस्तुएँ X तथा Y [illegible] अनुपात जैसे २ ३ के अनुपात म माँगी जाती है, अर्थात् वस्तु X की २ इकाइयाँ तथा वस्तु Y की ३ इकाइयाँ एक साथ माँगी जाती हैं, यह बात तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु A बताता है। चूँकि ये वस्तुएँ सदैव २ ३ के निश्चित अनुपात म माँगी जाती हैं इसलिए यदि हम X की मात्रा को २ इकाई से बढा कर ४ इकाई कर देते हैं तो Y की मात्रा को ३ से बढ़ाकर ६ इकाई करना पडेगा, यह सयोग दूसरी तटस्थता वक्र रेखा I_2 पर बिन्दु B बताता है।

चित्र—६
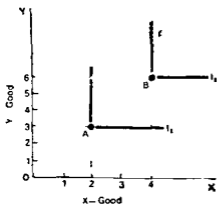
तटस्थता वक्र रेखा I_1 (या I_2) की पडी हुई भुजा (horizontal arm) यह बताती है कि वस्तु Y की मात्रा को स्थिर रखते हुए वस्तु X की मात्रा मे कोई भी वृद्धि सन्तुष्टि के स्तर को नही बढायगी, और वस्तु X की समस्त बढी हुई मात्रा बकार (useless) रहेगी। इसी प्रकार से तटस्थता वक्र रेखा I_1 (या I_2) की खडी हुई भुजा (vertical arm) यह बताती है कि वस्तु X की मात्रा को स्थिर रखते हुए वस्तु Y की मात्रा मे कोई भी वृद्धि सन्तुष्टि के स्तर को नही बढायगी और वस्तु Y की समस्त बढी हुई मात्रा बकार (useless) रहेगी। दोनों वस्तुओ X तथा Y को सदैव २ ३ के एक निश्चित अनुपात म ही माँगा जायगा।

उपर्युक्त समस्त विवरण से एक महत्त्वपूर्ण बात स्पष्ट होती है

तटस्थता वक्र-रेखा की वक्रता (curvature) दो वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता तथा पूरकता के अश को बताती है। तटस्थता वक्र रेखा जितनी ही कम वक्रता लिये हुए होगी उतना ही स्थानापन्नता का अश अधिक होगा। पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओ के लिए तटस्थता वक्र रेखाएँ नीचे को गिरती हुई सीधी या सरल रेखाएँ हो जाती हैं वास्तव मे व्यावहारिक दृष्टि से ऐसी दो वस्तुएँ भिन्न नहीं होतीं बल्कि एक ही वस्तु की दो इकाइयाँ होती हैं। इसके विपरीत जितनी ही तटस्थता रेखाओं मे वक्रता अधिक होगी उतना हो पूरकता का अश अधिक होगा, पूर्ण पूरकता की स्थिति में तटस्थता रेखाओ का आकार L-आकार का हो जायेगा।[11]

---

[10] In the case of two goods being perfect complementary the indifference curve becomes L-shaped in other words the indifference curve will consist of two straight lines each being parallel to one of the axis and they make a right angle and the right angle corner or bent will be convex to the origin Such an indifference curve indicates that the two goods will always be jointly demanded in a fixed proportion

[11] The curvature of indifference curve indicates the degree of substitutability and complementarity be ween two commodities The less curved the indifference curves the greater the deg ee of substitution For perfect substitutes the indifference curves become falling straight lines from the practical point of view this implies that the two goods are not different but they are simply the two units of the same good If on the other hand the goods are complementary the indifference curve becomes more curved The greater the curvature the greater the degree of complementarity, in the case of perfect complementarity the indifference curve becomes L-shaped.

(३) तटस्थता रेखाएँ कभी एक दूसरे को नहीं काटती हैं। एक रेखा सन्तुष्टि के किसी एक स्तर को बनाती है तथा विभिन्न रेखाएँ सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को बनाती है। यदि दो रेखाएँ एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटती है (चित्र न० ७) तो इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता को E बिन्दु पर समान सन्तुष्टि मिलती है चाहे वह I_1 पर हो या I पर परन्तु यह असम्भव है क्योंकि दो रेखाएँ सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को बताती है।

[इसी बात को गणितात्मक रूप में निम्न प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है

I_1 तटस्थता रेखा के लिए

$$OP_y + OM_x = OR_y + OL_x \quad (i)$$

I_2 की तटस्थता रेखा के लिए

$$OP_y + OM_x = OQ_y + OL_x \quad (ii)$$

(i) तथा (ii) से हम प्राप्त होता है

$$OR_y + OL_x = OQ_y + OL_x$$

अर्थात $OR_y = OQ_y$

X—Commodity
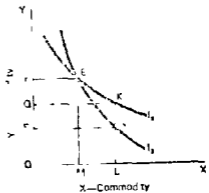
चित्र—७

परन्तु यह असम्भव है क्योंकि चित्र से स्पष्ट है कि OQ मात्रा अधिक है OR से। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि दो तटस्थता रेखाएं एक-दूसरे को नहीं काट सकती।

(४) यह आवश्यक नहीं कि तटस्थता वक्र रेखाएं अनिवार्य रूप से एक दूसरे के समान्तर (parallel) हो। समान्तर तटस्थता रेखाओं का अर्थ है कि सभी तटस्थता तालिकाओं में दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन दर (rate of substitution) समान है, परन्तु ऐसा होना अनिवार्य नहीं।

जब व्यय दो वस्तुओं से अधिक वस्तुओं पर बांटा जाता है तो तटस्थता वक्र-रेखा की सरलता समाप्त हो जाती है, तीन वस्तुओं के लिए हम तीन माप (dimensions) की आवश्यकता पड़ेगी तथा तीन से अधिक वस्तुओं के लिए रेखागणित (Geometry) हमारा साथ छोड़ देती है और हमे या तो बीजगणित (Algebra) की सहायता लेनी पड़ती है या हम शब्दो में व्यक्त करेंगे, परन्तु तटस्थता विश्लेषण के सिद्धान्त अप्रभावित (unaffected) रहते है।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर
(MARGINAL RATE OF SUBSTITUTION)

१ प्राक्कथन—प्रो० हिक्स तथा एलन ने मूल्य-सिद्धान्त (Theory of Value) का पुनर्निर्माण अधिमान के शब्दों में (in terms of preference) किया। इनके अनुसार उपयोगिता या सीमान्त उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता, इसलिए मूल्य सिद्धान्त को उपयोगिता के शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतः प्रो० हिक्स मूल्य-सिद्धान्त को 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' के शब्दो में व्यक्त करते है क्योंकि उनका कथन है कि सीमान्त उपयोगिता का कोई निश्चित अर्थ नही है, जबकि 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर' का निश्चित अर्थ है।

२ परिभाषा—दो वस्तुओं X तथा Y के संयोग में यदि एक वस्तु अर्थात X की मात्रा घटायी जाती है तो यह स्वाभाविक है कि दूसरी वस्तु Y की मात्रा घटायी जायेगी ताकि उपभोक्ता की सन्तुष्टि में कोई कमी न हो वह पहले के समान बनी रहे। अतः X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर Y की वह मात्रा है जो कि X को एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने की प्रतिक्रिया मे घटायी जाती है ताकि उपभोक्ता का पहले के समान ही सन्तोष का स्तर बना रहे।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर का अर्थ निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जाता है :

Y वस्तु	X वस्तु	X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (M.R.S. of X for Y)
६०	+ १	
४८	+ २	१२ : १
४०	+ ३	८ : १

तालिका से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में एक उपभोक्ता Y वस्तु की ६० इकाइयाँ तथा X वस्तु की एक इकाई के उपभोग से चलता है। अब वह X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करता तो उसे Y की १२ इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं ताकि उसका सन्तोष समान बना रहे, अतः X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर १२ : १ हुई। यदि वह X वस्तु की एक और अतिरिक्त इकाई बढ़ाता है तो उसे Y की ८ इकाइयाँ घटाना पड़ती हैं, दूसरे शब्दों में, X वस्तु की १ इकाई Y वस्तु की ८ इकाइयों की स्थानापन्न (substitute) है, अतः X का Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर ८ : १ हुई।

अतः मेयर्स (Meyers) का कथन है कि X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर Y की वे इकाइयाँ हैं जिनके लिए X की एक इकाई स्थानापन्न (substitute) है।[11] यह ध्यान रखने की बात है कि दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन दर, 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (diminishing marginal rate of substitution) होती है। उदाहरण से स्पष्ट है कि पहले X की एक इकाई Y की १२ इकाइयों के लिए स्थानापन्न है, बाद में X की एक इकाई Y की ८ इकाइयों की स्थानापन्न है, इस प्रकार दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई होती है।
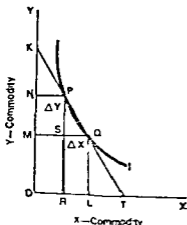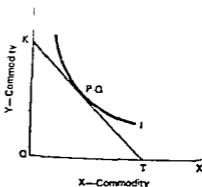
चित्र—८ चित्र—९

३. सीमान्त प्रतिस्थापन दर को एक दूसरे प्रकार से भी व्यक्त किया जाता है। तटस्थता वक्र रेखा का ढाल (slope) सीमान्त प्रतिस्थापन दर को बताता है। चित्र नं० ८-९ में हम तटस्थता रेखा I का ढाल P बिन्दु पर विचार करते हैं। यदि P तथा Q बिन्दु बहुत निकट हैं (जैसा कि चित्र नं० ९ में दिखाया गया है) तो मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि KT रेखा, तटस्थता रेखा के P बिन्दु पर स्पर्श रेखा (*tangent*) होगी और यह *XTK* तटस्थता रेखा के P बिन्दु पर ढाल (slope) को बतायेगा। चित्र नं० ८ में माना कि उपभोक्ता P बिन्दु से Q बिन्दु पर आता है अर्थात्

[11] Thus, the marginal rate of substitution of X for Y will be "the number of units of Y for which one unit of X is a substitute."

X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करता है तथा Y वस्तु की कुछ इकाइयाँ कम कर देता है। X वस्तु की मात्रा में वृद्धि को ΔX द्वारा बताते हैं तथा Y वस्तु की मात्रा में कमी को $-\Delta Y$ द्वारा बताया जाता है, अतः X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर $-\Delta Y : \Delta X$ हुई या $-\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ हुई।[12] अब हम नीचे यह सिद्ध करेंगे कि तटस्थता रेखा का ढाल सीमान्त प्रतिस्थापन दर $\left(\text{अर्थात् } -\frac{\Delta Y}{\Delta X}\right)$ को बताता है।

तटस्थता वक्र-रेखा का P बिन्दु पर ढाल

=Tangent KT का ढाल (यदि P तथा Q बहुत निकट हैं)

=Tan of ∠XTK

=Tan of (180°− ∠OTK)

=−Tan of ∠OTK

=−Tan of ∠PQS

[∠OTK = ∠PQS, चूँकि दोनों Corresponding Angles हैं]

$$= -\frac{PS}{SQ}$$

$$= -\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$=MRS_{xy}$ (अर्थात् Marginal R[illegible]e of Substitution of X for Y)

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तटस्थता वक्र-रेखा का ढाल सीमान्त प्रतिस्थापन दर को बताता है।

४. सीमान्त प्रतिस्थापन दर को एक और प्रकार से व्यक्त किया जाता है। चूँकि सीमान्त उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता इसलिए दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात का कोई अर्थ नहीं होता। अतः प्रो० हिक्स 'X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा Y वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के अनुपात' के स्थान पर 'X वस्तु की मात्रा में परिवर्तन' तथा 'Y वस्तु की मात्रा में परिवर्तन' के अनुपात को लेते हैं, और वे इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं। इस प्रकार प्रो० हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं में अनुपात को एक निश्चित अर्थ (precise meaning) प्रदान करते हैं जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई हैं।[13]

चित्र नं० ८ में उपभोक्ता P बिन्दु से Q बिन्दु पर पहुँचने में X वस्तु की SQ मात्रा प्राप्त करता है तथा Y वस्तु की PS मात्रा खोता है। उपयोगिता के शब्दों में, प्राप्त लाभ (gain) =SQ×वस्तु X की सीमान्त उपयोगिता, तथा नुकसान (loss)=PS×वस्तु Y की सीमान्त उपयोगिता जबकि हम यह मान लेते हैं कि SQ तथा PS बहुत थोड़ी (small) मात्राएँ हैं। चूँकि

---

[12] ΔY के पहले ऋणात्मक चिह्न (—) लगाया जाता है क्योंकि ΔY, Y में कमी को बताता है और ΔX, X में वृद्धि को बताता है। यदि $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ के पहले ऋणात्मक चिह्न (—) न भी लगा हो तो भी इसका अभिप्राय है कि उसके पहले (—) है जो कि छिपा हुआ (implicit) है।

[13] Since marginal utility cannot be measured so that the ratio of two marginal utilities can have no meaning. *In place of ratio of the marginal utility of X to the marginal utility of Y, Hicks takes the ratio of change in the quantity of X to that of Y. This he calls 'marginal rate of substitution'.* Thus he gives a precise meaning to the ratio of two marginal utilities when the quantities possessed of both commodities are given.

P तथा Q दोनो एक ही तटस्थता रेखा पर हैं इसलिए दोनो बिन्दुओ पर उपभोक्ता की कुल उपयोगिता या कुल सन्तोष समान रहता है, दूसरे शब्दो मे, उपयोगिता मे प्राप्त लाभ तथा उपयोगिता म नुकसान बराबर होंगे, अत

SQ × वस्तु X की सीमान्त उपयोगिता = PS × वस्तु Y की सीमान्त उपयोगिता

$$\text{अर्थात्}\quad \frac{X \text{ की सीमान्त उपयोगिता}}{Y \text{ की सीमान्त उपयोगिता}} = \frac{PS}{SQ} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$= MRS_{xy}$ (X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर)

अत स्पष्ट है कि प्रो० हिक्स दो वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिताओ के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते है, जबकि दोनो वस्तुओ की मात्राएं दी हुई होती हैं। इसमे सीमान्त उपयोगिताओ के माप की आवश्यकता नही पडती, दोनो वस्तुओ की मात्राओ म परिवर्तन, जो कि मापनीय है, को मालूम करके ही काम चलाया जाता है।

घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त
(THE PRINCIPLE OF DIMINISHING MARGINAL RATE OF SUBSTITUTION)

१. सिद्धान्त या नियम का कथन (Statement)

साधारणतया किन्हीं दो वस्तुओ से सम्बन्धित सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई (diminishing) होती है। जब उपभोक्ता X वस्तु की अधिक इकाइयो का प्रयोग करता है तो Y वस्तु की इकाइयो की सख्या जो कि वह X वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए परित्याग करने को तैयार है, मे कमी होती जाती है। इसे ही 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त' कहते हैं। प्रो० हिक्स ने इस सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त किया है

> "माना कि हम दो वस्तुओं की एक दी हुई मात्रा से प्रारम्भ करते हैं, और X की मात्रा मे वृद्धि व Y की मात्रा में कमी इस प्रकार से करते जाते हैं कि उपभोक्ता की स्थिति न तो पहले से अच्छी ही होती है और न बुरी ही, तब Y की मात्रा जो कि X की दूसरी अतिरिक्त इकाई की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है, वह Y की उस मात्रा मे कम होगी जो कि X की पहली अतिरिक्त इकाई की प्रतिक्रिया मे घटायी जाती है। अन्य शब्दो में, जितना ही अधिक X, Y के लिए प्रतिस्थापित की जाती है उतनी ही X को Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर कम होती जायेगी।"[15]

२. सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation)

चित्र न० १० मे, माना कि उपभोक्ता a बिन्दु से I बिन्दु की ओर चलता है अर्थात् वह X वस्तु की मात्रा बढाता जाता है और Y की मात्रा घटाता जाता है ताकि उसके कुल सन्तोष मे कोई अन्तर न पडे, यानी उसकी स्थिति पहले से न तो अच्छी ही हो और न बुरी ही हो। वह X वस्तु की एक इकाई bc (या AB) द्वारा बढाता है तब उसको Y वस्तु की ab (या FG) इकाइयाँ घटानी पडती हैं। यदि X को एक और इकाई de (या BC) द्वारा बढाया जाता है तो X की इस एक और इकाई de को Y की cd (या GH) इकाइयो द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी प्रकार X की एक और अतिरिक्त इकाई fg को Y की ef इकाइयो द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। अत चित्र से स्पष्ट है कि X की प्रत्येक इकाई को Y की घटती हुई मात्रा

[15] "Suppose we start with a given quantity of goods and then go on increasing the amount of X and diminishing that of Y in such a way that the consumer is left neither better off nor worse off on balance, then the amount of Y which has to be subtracted in order to set off a second unit of X will be less than that which has to be subtracted in order to set off the first unit In other words, the more X is substituted for Y, the less will be the marginal rate of substitution of X for Y." —Hicks, *Value and Capital*, p 20

(gh<ef<cd<ab अथवा JK<HJ<GH<FG) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी को X की Y के लिए घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर (*diminishing marginal rate of substitution of X for Y*) कहते है।

चित्र—१०

दो वस्तुओ के सयोग मे यदि एक वस्तु X की मात्रा बढायी जाती है तो दूसरी वस्तु Y की मात्रा घटानी पडेगी क्योकि तभी उपभोक्ता का सन्तोष समान रहेगा। यदि Y वस्तु की मात्रा को स्थिर रखा जाता है तथा X की मात्रा को बढाया जाता है तो स्पष्ट है कि उपभोक्ता का सन्तोष समान नही रहेगा बल्कि बढ जायेगा। अत कुल सन्तोष को समान बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि दो वस्तुओ के सयोग म यदि एक वस्तु की मात्रा बढायी जाती है तो दूसरे की मात्रा घटानी पडेगी।

यदि एक वस्तु X की मात्रा बढायी जाती है तो इसकी अतिरिक्त इकाइयो (additional units) से उपभोक्ता को घटती हुई उपयोगिता प्राप्त होगी अर्थात् उपभोक्ता इसको घटता हुआ महत्त्व (diminishing significance) प्रदान करेगा। यदि इस बात को दो वस्तुओ X तथा Y के सयोग के सन्दर्भ म सोचा जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि यदि X की मात्रा बढायी जाती है तो X का सीमान्त महत्त्व Y के शब्दो मे घटता जाता है (the marginal significance of X in terms of Y goes on decreasing)। यह बात इस उदाहरण से बिलकुल स्पष्ट हो जायेगी। यदि पहले X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई Y वस्तु की ६ इकाइयो के लिए प्रतिस्थापित की जाती थी तो X वस्तु की दूसरी अतिरिक्त इकाई Y वस्तु की ६ इकाइयो के लिए प्रतिस्थापित नही की जायेगी बल्कि Y की कम इकाइयो माना ३ इकाइयो के लिए प्रतिस्थापित की जायेगी क्योकि X की बढती हुई मात्रा के परिणामस्वरूप X का महत्त्व Y के शब्दो मे कम होता जाता है। अत यह बात घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर की व्याख्या करती है।

दो वस्तुओ के सयोग मे जिस वस्तु (अर्थात् Y) की मात्रा कम होती जाती है तो उसकी उपयोगिता या महत्त्व उपभोक्ता के लिए बढता जाता है। पहले यदि उपभोक्ता Y की ६ इकाइयो का प्रतिस्थापन X की एक इकाई के लिए करता था तो अब वह ऐसा नही करेगा क्योकि Y की मात्रा घटते जाने से Y का महत्त्व उसके लिए बढता जाता है, अत वह Y की कम इकाइयो अर्थात ३ इकाइयो का ही प्रतिस्थान X की एक और अतिरिक्त इकाई के लिए करेगा। इसका अर्थ भी यही हुआ कि सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती जाती है।

चित्र—११

३. सिद्धान्त के अपवाद (Exceptions)

साधारणतया दो वस्तुओ के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई होती है। परन्तु इसके दो मुख्य अपवाद भी है :

(1) यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes)
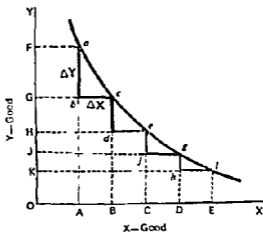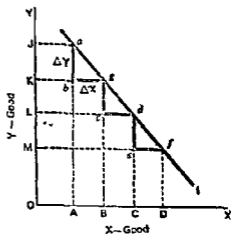
हैं तो उनके बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर समान या स्थिर (constant) होगी, घटती हुई नहीं। ऐसी स्थिति में तटस्थता वक्र रेखा एक सीधी रेखा होगी जो कि नीचे को गिरती हुई होगी। इसको चित्र ११ में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु X की प्रत्येक इकाई की वृद्धि की प्रतिक्रिया में वस्तु Y की घटायी जाने वाली मात्रा समान रहती है, अर्थात् $ab=gc=de$।

वास्तव में व्यावहारिक जीवन में कोई भी दो वस्तुएँ पूर्ण स्थानापन्न नहीं होती हैं, यदि दो वस्तुएँ पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे एक ही वस्तु की दो भिन्न इकाइयाँ हैं। दो वस्तुओं के पूर्ण स्थानापन्न होने की स्थिति केवल सैद्धान्तिक है।
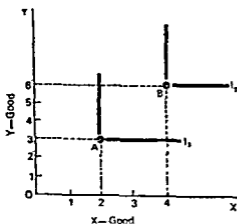
चित्र—१२

(ii) यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो एक दूसरे की पूर्ण पूरक है तो वे हमेशा एक निश्चित अनुपात में माँगी जायेंगी, उनके बीच सीमान्त प्रतिस्थापन की दर घटती हुई नहीं होगी। ऐसी स्थिति में तटस्थता वक्र-रेखा की शक्ल L-आकार की होगी, जैसा कि चित्र १२ में I_1 तथा I_2 रेखाएँ हैं। मानाकि X तथा Y एक निश्चित अनुपात २ : ३ में माँगी जाती है, दूसरे शब्दों में X की २ इकाइयाँ तथा Y की ३ इकाइयाँ एक साथ माँगी जायेंगी, यह बात तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु A बताता है। यदि X की इकाई २ से बढ़ाकर ४ कर दी जाय तो Y की इकाइयों को ३ से बढ़ाकर ६ करना होगा, यह स्थिति तटस्थता वक्र-रेखा I_2 पर बिन्दु B बताता है।

४. घटती हुई उपयोगिता का नियम तथा घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त (The Law of Diminishing Utility and the Principle of Diminishing Marginal Rate of Substitution)

प्रायः कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा यह कहा जाता है कि 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त' 'घटती हुई उपयोगिता के नियम' का केवल रूपान्तरण (translation) है। ऐसा दो कारणों से कहा जाता है। प्रथम, एक वस्तु से दूसरी वस्तु का प्रतिस्थापन सीमान्त उपयोगिता के आधार पर ही होता है। दूसरे, जिस प्रकार सीमान्त उपयोगिता घटती है उसी प्रकार सीमान्त प्रतिस्थापन दर भी घटती है।

परन्तु हिक्स के अनुसार, "घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त' 'घटती हुई उपयोगिता के नियम' का केवल रूपान्तरण (translation) नहीं है। प्रथम, घटती हुई उपयोगिता का नियम, उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) पर आधारित है जबकि 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम' के लिए उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे, उपयोगिता ह्रास नियम द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मान लेता है जबकि घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का नियम ऐसा नहीं मानता। तीसरे, उपयोगिता ह्रास नियम केवल एक वस्तु का अध्ययन करता है और यह बताता है कि एक वस्तु की उपयोगिता में कमी होती है, यह दूसरी सम्बन्धित वस्तुओं (related goods) के प्रभाव पर ध्यान नहीं देता। परन्तु घटती हुई प्रतिस्थापन दर का नियम दो सम्बन्धित वस्तुओं का अध्ययन करता है और बताता है कि एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटती हुई होती है तथा दूसरी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती हुई। चौथे, सीमान्त उपयोगिता के बिना परिमाणात्मक मापन के ही प्रो॰ हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान

करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं, जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई होती हैं। दूसरे शब्दों में,

$$\frac{X \text{ की सीमान्त उपयोगिता}}{Y \text{ की सीमान्त उपयोगिता}} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$= X$ और Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर

(जबकि ΔY, Y में परिवर्तन को तथा ΔX, X में परिवर्तन को बताता है)

अत उपर्युक्त बातों के आधार पर प्रो० हिक्स का कथन है कि 'घटती हुई प्रतिस्थापन दर का नियम', 'उपयोगिता ह्रास नियम' का केवल रूपान्तर नहीं है।

तटस्थता रेखाएँ तथा उपभोक्ता का सन्तुलन
(INDIFFERENCE CURVES AND CONSUMER'S EQUILIBRIUM)

प्रत्येक उपभोक्ता अपनी दी हुई आय तथा वस्तुओं की दी हुई कीमतों को ध्यान में रखते हुए अपने सन्तोष को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है। मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण के *अन्तर्गत सम-सीमान्त उपयोगिता नियम एक उपभोक्ता को अपनी दी हुई आय को विभिन्न वस्तुओं* पर वितरण करने में इस प्रकार मदद करता है ताकि उसको अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो। इसी प्रकार तटस्थता विश्लेषण भी एक उपभोक्ता को अपनी दी हुई आय से अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने में मदद करता है।

एक उपभोक्ता अधिकतम सन्तोष तब प्राप्त करेगा, अर्थात् वह सन्तुलन की अवस्था में तब होगा, जबकि निम्न तीन दशाएँ पूरी होती हैं :

(i) एक उपभोक्ता उस बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति में होगा जहाँ पर कि कीमत रेखा (price line) तटस्थता वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा (tangent) होती है।

(ii) सीमान्त प्रतिस्थापन दर (marginal rate of substitution) = कीमतों का अनुपात (price ratio)।

(iii) स्थायी (stable) सन्तुलन के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर सन्तुलन के बिन्दु पर घटती हुई (diminishing) होनी चाहिए अर्थात् तटस्थता वक्र-रेखा मूल बिन्दु (origin) के प्रति उन्नतोदर (convex) होनी चाहिए।

तटस्थता वक्र-रेखा दो वस्तुओं (माना कि नारंगी तथा केले) के विभिन्न प्रयोगों को *बताती है जिसके प्रति उपभोक्ता तटस्थ रहता है। अपनी दी हुई आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त* करने की दृष्टि से उपभोक्ता इन दोनों वस्तुओं के कौन-से संयोग को चुनेगा यह उन वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों पर निर्भर करेगा। माना कि उपभोक्ता १ रुपये को दो वस्तुओं—नारंगी तथा केलों—पर व्यय करना चाहता है। माना कि नारंगी की कीमत २० पैसे प्रति इकाई तथा केले की कीमत १० पैसे प्रति इकाई है।

उपभोक्ता अपनी १ रुपये की आय को नारंगी और केलों पर कई प्रकार से व्यय कर सकता है, एक वस्तु पर अधिक तथा दूसरी वस्तु पर कम व्यय कर सकता है। एक सिरे की स्थिति (extreme case) यह हो सकती है कि वह अपनी १ रुपये की समस्त आय को केवल नारंगी पर ही व्यय करे जिस दशा में वह ५ नारंगी (अर्थात् चित्र न० १३ में OM नारंगी) खरीदेगा तथा केले बिलकुल नहीं खरीदेगा, दूसरे सिरे की स्थिति यह हो सकती
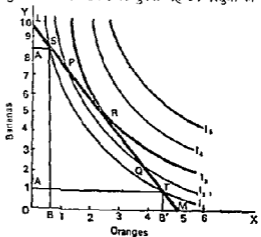
चित्र—१३

है कि वह अपनी १ रुपये की समस्त आय को केवल केलों पर ही व्यय करे जिस दशा में वह १० केले (चित्र न० १३ मे OL केले) खरीदेगा और नारंगी बिलकुल नहीं खरीदेगा। चित्र न० १३ मे यह स्थिति LM रेखा द्वारा दिखायी गयी है। LM रेखा, 'कीमत रेखा' (price line) या 'बजट-रेखा' (budget line) या 'व्यय रेखा' (outlay-line) कहलाती है। अत, कीमत रेखा दो वस्तुओं के उन विभिन्न सयोगों को बताती है जो कि उपभोक्ता वस्तुओं की कीमत के आधार पर अपनी दी हुई आय से खरीद सकता है। दूसरे शब्दों में, कीमत रेखा एक उपभोक्ता की दी हुई आय को दो वस्तुओं पर व्यय करने की सभी सम्भावनाओं को व्यक्त करती है। कीमत रेखा को 'उपभोग सम्भावना रेखा' (Consumption Possibility Line) भी कहते हैं, क्योंकि कीमत रेखा यह बताती है कि दी हुई आय तथा वस्तुओ की दी हुई कीमतों के आधार पर एक उपभोक्ता के लिए उन दोनों वस्तुओ की कितनी कितनी मात्रा का उपभोग सम्भव है।

चित्र न० १३ मे LM कीमत रेखा I_1 को S तथा T बिन्दुओं पर काटती है। उपभोक्ता या तो SA नारगी तथा BS केलो के सयोग या TA' नारगी तथा TB' केलों के सयोग का उपभोग कर सकता है उपभोक्ता को दोनों सयोगो मे समान सन्तोष मिलता है। LM कीमत रेखा I_2 को P तथा Q बिन्दुओ पर काटती है। P तथा Q नारगी तथा केलों के दो अन्य सयोगों को बताते हैं जिनमे से उपभोक्ता, अपनी दी हुई आय तथा दी हुई कीमतो के आधार पर, किसी को भी चुन सकता है। एक ओर S तथा T सयोगो और दूसरी ओर P तथा Q सयोगों के बीच उपभोक्ता बाद के (अर्थात् P तथा Q) सयोगो को चुनेगा क्योंकि वे एक ऊँची तटस्थता वक्र-रेखा पर है और इसलिए अधिक सन्तोष को बताते हैं। LM रेखा I_3 को R बिन्दु पर स्पर्श करती है। R बिन्दु, नारगी तथा केलो के एक अन्य सयोग को बताता है जिसको कि उपभोक्ता, दी हुई आय, तथा दी हुई कीमतो के आधार पर प्राप्त कर सकता है। एक ओर P तथा Q सयोगो और दूसरी ओर R सयोग के बीच उपभोक्ता बाद के (अथात R) सयोग को चुनेगा क्योंकि R बिन्दु एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा पर है और अधिक सन्तोष को बताता है। LM कीमत रेखा I_3 तटस्थता रेखा से ऊँची किसी तटस्थता रेखा को न काट सकती है और न स्पर्श कर सकती है। अत दी हुई आय तथा दी हुई कीमतो के आधार पर उपभोक्ता के लिए बिन्दु R द्वारा बताये गये नारगी तथा केलों के सयोग के अतिरिक्त किसी अन्य अधिक सन्तोष प्रदान करने वाले सयोग को चुनना सम्भव नहीं है क्योंकि वे सयोग उसकी आय से बाहर होंगे, अत वह R सयोग को चुन लेता है जिस पर उसे अधिकतम सन्तोष मिलता है इस प्रकार R बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति मे होगा। दूसरे शब्दो मे, उपभोक्ता का सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर कीमत-रेखा तटस्थता वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा (tangent) होती है।

उपभोक्ता R बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति मे है। इस सन्तुलन बिन्दु पर X वस्तु की Y वस्तु के लिए प्रतिस्थापन दर (Marginal Rate of Substitution) X तथा Y वस्तुओं के कीमत अनुपात (Price ratio) के बराबर है। यह बात निम्न विवरण से स्पष्ट है। हम यह पहले अध्ययन कर चुके हैं कि तटस्थता वक्र रेखा का ढाल (slope) दो वस्तुओ (X तथा Y) की प्रतिस्थापन दर को बताता है। चित्र से स्पष्ट है कि R बिन्दु (अर्थात् उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु) पर,

तटस्थता वक्र-रेखा का ढाल = कीमत रेखा LM के ढाल (Slope of Price Line LM)

अर्थात्

X वस्तु की Y वस्तु के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy})

= Slope of the Price Line LM

= Tan of ∠LMX

= Tan of (180 − ∠LMO)

= −Tan of ∠LMO

$$= -\frac{OL}{OM}$$

$$= -\frac{\dfrac{\text{Income}}{\text{Price of Y}}}{\dfrac{\text{Income}}{\text{Price of X}}}$$

$$= -\frac{\dfrac{1}{\text{Price of Y}}}{\dfrac{1}{\text{Price of X}}}$$

$$= -\frac{\text{Price of X}}{\text{Price of Y}}$$

$$= \text{Price Ratio of two Commodities}$$

अतः स्पष्ट है कि उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति में दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर, उन वस्तुओं के कीमत अनुपात (Price-ratio) के बराबर होती है।

उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए यह भी आवश्यक है कि सन्तुलन बिन्दु (R) पर, X वस्तु की Y वस्तु के लिए प्रतिस्थापन दर घटती हुई हो अर्थात् सन्तुलन बिन्दु पर तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) हो अन्यथा सन्तुलन की स्थिति एक स्थायी सन्तुलन (stable equilibrium) की स्थिति नहीं होगी।

माना कि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई नहीं है, तो यह स्थिर (constant) हो सकती है या बढ़ती हुई (increasing) हो सकती है। वह स्थिर नहीं हो सकती क्योंकि इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक अतिरिक्त (additional) इकाई से प्राप्त उपयोगिता समान होगी, परन्तु यह सम्भव नहीं है। यदि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बढ़ती हुई (increasing) है, अर्थात् सन्तुलन के बिन्दु पर यदि तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave) है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम एक वस्तु X की इकाइयां बढ़ाते जाते हैं तो X वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों की उपयोगिता (दूसरी वस्तु Y के शब्दों में) बढ़ती जाती है, परन्तु यह बात भी सम्भव नहीं है।

अतः उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु पर प्रतिस्थापन दर न स्थिर (constant) हो सकती है और न बढ़ती हुई (increasing), बल्कि वह घटती हुई होगी। इसी बात को चित्र नं० १४ के द्वारा बताया गया है। चित्र में यद्यपि R पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कीमत अनुपात के बराबर है, परन्तु R बिन्दु एक स्थायी (stable) सन्तुलन की स्थिति नहीं है क्योंकि यहाँ पर प्रतिस्थापन दर घटती हुई नहीं है बल्कि बढ़ती हुई है [अर्थात् तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave) है]। इसका अर्थ यह हुआ कि R बिन्दु से दायें की ओर हटने पर उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा I_1 के बिन्दु A पर पहुँच जायगा और दायें की ओर हटने पर एक ऊँची तटस्थता वक्र-रेखा I_2 के बिन्दु B पर पहुँच जायेगा। इस प्रकार वह
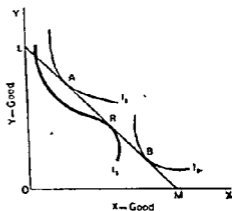
चित्र—१४

अपनी सन्तुष्टि (satisfaction) को बढा सकेगा। अत R बिन्दु एक स्थायी सन्तुलन का बिन्दु नही है।

स्पष्ट है कि उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति के लिए निम्न दशाओं का पूरा होना आवश्यक है

(i) कीमत रेखा तटस्थता-वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा हो।

(ii) प्रतिस्थापन की सीमान्त दर=कीमत अनुपात।

(iii) स्थायी सन्तुलन के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन-दर सन्तुलन बिन्दु पर घटती हुई होनी चाहिए अर्थात् तटस्थता-वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होनी चाहिए।

तटस्थता-वक्र विश्लेषण का महत्त्व तथा प्रयोग
(SIGNIFICANCE AND USES OF INDIFFERENCE CURVE TECHNIQUE)

मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण (utility analysis) दोषपूर्ण थी, इन दोषों को दूर करने की दृष्टि से हिक्स (Hicks) ने तटस्थता-वक्र विश्लेषण का प्रयोग किया। विश्लेषण का यह तरीका *बहुत विख्यात (popular) हो गया है और अर्थशास्त्र के विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्रयोग किया जाता है।* इसके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग निम्न हैं

(१) विनिमय के क्षेत्र मे (In the field of exchange)—यदि दो व्यक्तियों या दो वस्तुओं के सम्बन्ध मे अधिमान क्रम (scale of preference) दिया हुआ है तो तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से यह दिखाया जा सकता है कि वे दो व्यक्ति किस सीमा तक आपस मे उन दो वस्तुओं का विनिमय करेंगे।

(२) उपभोक्ता का सन्तुलन (Equilibrium of a consumer)—तटस्थता-वक्र रेखाओं की मदद से उपयोगिता के बिना परिमाणात्मक रूप से मापे ही, उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति को मालूम किया जा सकता है। जिस बिन्दु पर कीमत रेखा, तटस्थता-वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा होती है वह बिन्दु उपभोक्ता के सन्तुलन (अर्थात् अधिकतम सन्तोष) की स्थिति को बताता है।

(३) माँग पर तीन प्रभावों का अध्ययन (Study of the 'three effects' on demand)—तटस्थता वक्र रेखाओं की मदद से उपभोक्ताओं की माँग पर आय (income) प्रतिस्थापन (substitution) तथा मूल्य (price) के प्रभावों का स्पष्ट रूप से अध्ययन किया जाता है।

(४) किन्हीं दो विकल्पों के बीच किसी व्यक्ति के अधिमान-क्रम को बताने के लिए (To portray a person's scale of preference between any two alternatives)—प्रो० बेन्हम के अनुसार, *तटस्थता वक्र रेखाएँ किसी व्यक्ति के आय तथा अवकाश (leisure) के बीच अधिमान* क्रम को दिखा सकती हैं वे बता सकती हैं कि वह दिन मे २४ घण्टों को पुरस्कृत कार्य (remunerated work) तथा अवकाश के बीच कैसे बाँटेगा। इसी प्रकार वर्तमान तथा भविष्य के उपभोग के बीच, तथा तरल सम्पत्तियों (liquid assets) और अन्य आय प्रदान करने वाली सम्पत्तियों के बीच उसका अधिमान-क्रम बताने के लिए इनका प्रयोग किया जा सकता है।[16]

[16] Indifference curves can be used to portray a person's scale of preferences between any two alternatives provided there are only two Thus they can portray his scale of preferences as between income and leisure showing how he would divide his twenty four hours each day between leisure and remunerated work at any given rate per hour Again they can be used to show the scale of preferences between present and future consumption between liquid assets and income yielding assets and so on —*Benham*

(५) उपभोक्ता की बचत का अध्ययन (Study of consumer's surplus)—तटस्थता रेखाओं की सहायता से उपभोक्ता की बचत के विचार की व्याख्या की जाती है। यह बात चित्र न० १५ द्वारा स्पष्ट की जाती है। माना कि उपभोक्ता की द्रव्य-आय (money income) OA है। X वस्तु को X axis पर दिखाया गया है। AB कीमत रेखा (price line) है। P बिन्दु उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु है जो कि X वस्तु की OQ मात्रा + OM द्रव्य के संयोग को बताता है अर्थात् उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा को खरीदने के लिए AM या LP द्रव्य देता है। S बिन्दु नीचे की तटस्थता वक्र रेखा I_2 पर है, इसका अर्थ है कि X वस्तु की उतनी ही मात्रा OQ को खरीदने के लिए उपभोक्ता LS या AN द्रव्य देने को तैयार है, परन्तु वह वास्तव में LP या AM द्रव्य देता है, अतः LS—SP=PS या MN उपभोक्ता की बचत हुई।
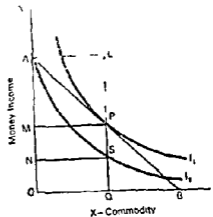
चित्र—१५

(६) राशनिंग का उपभोक्ता की सन्तुष्टि पर प्रभाव बताने के लिए (To show the effect of rationing on consumer's satisfaction)—राशनिंग शुरू होने से पहले उपभोक्ता वस्तु की OM_1 मात्रा खरीदता था [चित्र १६] तथा OL_1 द्रव्य की मात्रा अपने पास रखता था। यह संयोग P_1 बिन्दु द्वारा बताया गया है। राशनिंग लागू हो जाने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता अब वस्तु की केवल OM_2 मात्रा ही खरीद सकता है, यद्यपि अब उसके पास द्रव्य की अधिक मात्रा OL_2 रह जाती है—यह संयोग P_2 बिन्दु द्वारा बताया जाता है परन्तु P_2 बिन्दु एक नीची तटस्थता रेखा I_2 पर स्थित है। अतः राशनिंग लागू हो जाने के बाद उपभोक्ता का सन्तोष पहले की अपेक्षा कम हो जाता है, यद्यपि उसके पास पहले की अपेक्षा अधिक द्रव्य बच रहता है जिसे वह अन्य वस्तुओं पर व्यय कर सकता है।
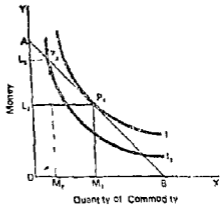
चित्र—१६

(७) *कर-निर्धारण में प्रयोग (Use in taxation)*—कर लगाते समय सरकार का दृष्टिकोण यह रहता है कि वह ऐसे कर लगाये जिससे करदाताओं पर कम भार पड़े। इस सम्बन्ध में तटस्थता वक्र रेखाएँ सहायक सिद्ध होती हैं। इन रेखाओं द्वारा यह दिखाया जा सकता है कि सामान्यतया उपभोक्ताओं पर आय-कर का बोझ अपेक्षाकृत बिक्री-कर या उत्पादन-करों के, कम होता है।

(८) सूचक अंकों की समस्या में प्रयोग (Use in index numbers)—प्रो० स्टिगलर (Stigler) ने बताया है कि तटस्थता वक्र रेखाओं का प्रयोग सूचक अंकों की समस्या के सम्बन्ध में किया जा सकता है। माना कि उपभोक्ता का दो वस्तुओं के सम्बन्ध में अधिमान क्रम (scale of preference) समान रहता है परन्तु वह दो वस्तुओं के संयोग को दो समयों में विभिन्न कीमत अनुपात (price ratio) पर प्रयोग करता है तो सूचक अंक सम्बन्धी समस्या यह है कि उपभोक्ता दूसरे समय में, पहले समय की अपेक्षा, अच्छी स्थिति में है या बुरी स्थिति में है। इसका उत्तर तटस्थता वक्र रेखाओं की मदद से दिया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, तटस्थता वक्र रेखाओं की

सहायता से ज्ञात किया जा सकता है कि उपभोक्ता का जीवन-स्तर दूसरे समय में, पहले समय की अपेक्षा, ऊंचा हो गया या नीचा।

उत्पादन के क्षेत्र में (In the field of Production)—उत्पादन के क्षेत्र में भी तटस्थता रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। इस क्षेत्र में इनको सम-उत्पाद रेखाएँ (Isoquant or Isoproduct or Equal-product curves) कहा जाता है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(CRITICAL ESTIMATE OF THE INDIFFERENCE CURVE TECHNIQUE)

यह कहा जाता है कि हिक्स के तटस्थता विश्लेषण ने मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के दोषों को दूर किया तथा पुराने निष्कर्षों का पुनर्निर्माण करते हुए उन्हें अधिक निश्चित तथा वैज्ञानिक रूप दिया। प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या तटस्थता-विश्लेषण उपयोगिता विश्लेषण के ऊपर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यह आवश्यक है कि हम तटस्थता विश्लेषण के गुण (merits) तथा दोष (demerits) दोनों का अध्ययन करें और तत्पश्चात् एक निष्कर्ष पर पहुंचें।

तटस्थता वक्र विश्लेषण के गुण तथा उसकी श्रेष्ठता (Merits and Superiority of Indifference Curve Technique)

(१) मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) पर आधारित है, जबकि तटस्थता विश्लेषण के अन्तर्गत उपयोगिता जैसे मनो-वैज्ञानिक विचार को मापने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह विश्लेषण तो केवल यह बताता है कि एक उपभोक्ता दो वस्तुओं के एक संयोग को, दूसरे संयोग की अपेक्षा कम, बराबर या अधिक पसन्द करता है, परन्तु उपभोक्ता यह नहीं कह सकता कि वह एक संयोग को दूसरे की अपेक्षा परिमाणात्मक रूप से कितना पसन्द करता है।

(२) प्रो० हिक्स ने दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक नया नाम दिया जिसे कि वे प्रतिस्थापन की सीमान्त-दर कहते हैं। यह विचार उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन से स्वतन्त्र (free) है। यह विचार मार्शल के अस्पष्ट विचार को अधिक निश्चित रूप में रखता है और इसलिए प्रो० हिक्स अपने विचार को अधिक श्रेष्ठ बताते हैं।

(३) मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण उपभोक्ता के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर (constant) मानकर चलती है, जबकि तटस्थता विश्लेषण ऐसी मान्यता पर आधारित नहीं है। दूसरे शब्दों में, तटस्थता विश्लेषण कम मान्यताओं पर आधारित है और उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है।

(४) तटस्थता विश्लेषण किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से उस वस्तु की मांग पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करने में 'आय प्रभाव' (जिसका अध्ययन मार्शल ने नहीं किया था) तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव' दोनों को ध्यान में रखता है। अतः यह उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है। वास्तव में, आर्थिक सिद्धान्त के विश्लेषण में 'प्रतिस्थापन' को प्रमुख स्थान देने का श्रेय हिक्स को है।

(५) तटस्थता विश्लेषण सम्बन्धित वस्तुओं (related goods), अर्थात् प्रतिस्पर्द्धात्मक (competitive) तथा पूरक (complementary) वस्तुओं का भी अध्ययन करता है, जबकि मार्शल ने ऐसा नहीं किया। अतः यह अधिक वास्तविक तथा श्रेष्ठ है। मार्शल ने केवल एक वस्तु का ही अध्ययन किया, जैसे कि एक वस्तु की उपयोगिता केवल उस वस्तु की पूर्ति पर ही निर्भर करती हो, वास्तव में, वस्तु विशेष की उपयोगिता अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की पूर्ति पर भी निर्भर करती है।

(६) तटस्थता विश्लेषण का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में भी किया जाता है। अतः प्रो० हिक्स ने तटस्थता विश्लेषण के रूप में सभी क्षेत्रों के लिए एक एकीकृत सिद्धान्त (unified theory) प्रस्तुत किया। यह सिद्धान्त की श्रेष्ठता को बताता है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण के दोष (Defects of Indifference Curve Technique)

(१) प्रो० हिक्स के अनुसार एक उपभोक्ता दो वस्तुओं पर अपनी आय को व्यय करते समय एक वस्तु में थोड़ी वृद्धियों (small increments) की सापेक्षिक तुलना दूसरी वस्तु में थोड़ी वृद्धियों से करता है। परन्तु प्रो० नाइट (Prof Knight) तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि व्यवहार में उपभोक्ता तो परिमाणात्मक उपयोगिता (cardinal utility) तथा कुल सन्तुष्टि की वृद्धि के शब्दों में सोचता है, इसलिए मांग-सिद्धान्त (theory of demand) को इन बातों पर आधारित न करके हिक्स न गलती की।

(२) आलोचकों द्वारा बताया गया है कि तटस्थता विश्लेषण भी उपयोगिता विश्लेषण की भाँति बहुत-सी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है, जैसे

(i) उपभोक्ता पूर्ण विवेकशीलता (Perfect rationality) से प्रभावित होता है तथा सोच-समझ कर व्यय करता है। परन्तु व्यवहार में उपभोक्ता व्यय करते समय प्राय आदतों, रीति रिवाजों, परिस्थितियों द्वारा भी प्रभावित होता है न कि केवल विवेकशीलता से।

(ii) उपभोक्ता को अपने तटस्थता मानचित्र (Indifference map) की पूर्ण जानकारी होती है। परन्तु ऐसा मानना भी गलत है। उपभोक्ता एक या दो संयोगों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी रख सकता है परन्तु उसके लिए बहुत-से संयोगों के बीच चुनाव करना बहुत कठिन तथा अव्यावहारिक है। प्रो० बोल्डिंग (Boulding) ने ठीक ही कहा है कि "हम कुछ निश्चित स्थितियों (situations) में चुनाव कर सकते हैं परन्तु हमारे लिए स्थितियों की बहुत अधिक संख्या के बीच चुनाव करना सम्भव नहीं है।"[17]

(iii) अन्य मान्यताएँ हैं वस्तु का प्रमापित (Standardised) होना, पूर्ण प्रतियोगिता का पाया जाना, बाजार में उपभोक्ता के चुनाव पर संस्थात्मक नियन्त्रण (institutional control) का न होना। परन्तु ये सब मान्यताएँ अवास्तविक हैं।

(३) तटस्थता विश्लेषण के बारे में एक मुख्य आलोचना यह की जाती है कि यह कोई आधारभूत नवीनता लिये हुए नहीं है, पुराने विचारों को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर दिया गया है, पुरानी शराब नयी बोतलों में भर दी गयी है। उदाहरणार्थ, 'परिमाणवाचक प्रणाली' (cardinal number system) के एक, दो, तीन, इत्यादि के स्थान पर 'क्रमवाचक प्रणाली' (ordinal number system) के पहला, दूसरा, तीसरा, इत्यादि का प्रयोग, 'उपयोगिता' के स्थान पर 'अधिमान क्रम' (preference scale), 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' तथा 'क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम' के स्थान पर 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' का प्रयोग किया गया है। उपयोगिता विश्लेषण रीति में उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति $\frac{M\ U\ of\ X}{\text{Price of } X}=\frac{M\ U\ of\ Y}{\text{Price of } Y}=\frac{M\ U\ of\ Z}{\text{Price of } Z}$ इत्यादि, समीकरण द्वारा बतायी जाती है, जबकि तटस्थता विश्लेषण के अनुसार, उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए, दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर=वस्तुओं का कीमत अनुपात (price ratio)—का यह समीकरण दिया जाता है। अत कहा जाता है कि तटस्थता विश्लेषण रीति पुरानी रीति को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर देती है।

परन्तु प्रो० हिक्स इस विचार से सहमत नहीं हैं। सीमान्त उपयोगिता के बिना परिमाणात्मक मापन के ही प्रो० हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं, जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई होती हैं।

(४) जब व्यय दो से अधिक वस्तुओं पर किया जाता है तो तटस्थता रेखाएँ अपनी सरलता को खो देती हैं। तीन वस्तुओं के लिए हमें तीन माप (three dimensions) चाहिए, तीन वस्तुओं

[17] "We make choice in particular situations we do not contemplate making choices in an indefinitely large number of situations" —Boulding *Reconstruction of Economics.*

से अधिक होने पर रेखागणित (geometry) विफल (fail) हो जाती है तथा हमें बीजगणित (algebra) का सहारा लेना पड़ता है।

(५) वास्तव में, तटस्थता वक्र विश्लेषण रीति बहुत जटिल होती है। इसका प्रयोग केवल वे ही अर्थशास्त्री कर सकते हैं जिनका गणित का ज्ञान तथा अध्ययन बहुत अधिक हो।

(६) शुम्पीटर (Schumpeter) तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि तटस्थता विश्लेषण रीति का प्रयोग व्यावहारिक अनुसन्धान (empirical research) में नहीं किया जा सकता है। यद्यपि काल्पनिक तटस्थता वक्र रेखाएँ खींची जा सकती हैं परन्तु वास्तविक तटस्थता रेखाओं को खींचना सम्भव नहीं है।

निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि तटस्थता विश्लेषण रीति, उपयोगिता विश्लेषण रीति से एकदम नयी या सर्वथा भिन्न नहीं है। यदि उपयोगिता विश्लेषण के अनेक दोष हैं तो तटस्थता विश्लेषण भी दोषों से मुक्त नहीं है। परन्तु फिर भी यह कहना ठीक ही होगा कि कई दृष्टियों से तटस्थता विश्लेषण, उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है।

अध्याय २१ की परिशिष्ट १
(APPENDIX 1 TO CHAPTER 21)

आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव तथा कीमत प्रभाव; एवं माँग रेखा का निकालना
(INCOME EFFECT, SUBSTITUTION EFFECT AND PRICE EFFECT AND DERIVATION OF DEMAND CURVE)

आय-प्रभाव
(INCOME EFFECT)

१. प्राक्कथन (Introduction)

मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण (utility analysis) का एक मुख्य दोष यह था कि इसने आय में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप माँग में होने वाले परिवर्तन पर उचित ध्यान नहीं दिया। परन्तु तटस्थता वक्र विश्लेषण इस बात पर भी ध्यान देता है कि आय में परिवर्तन होने से माँग में किस प्रकार परिवर्तन होता है, अर्थात् यह 'माँग पर आय के प्रभाव' का भी अध्ययन करता है।

२. 'आय प्रभाव' का अर्थ तथा आय उपभोग रेखा (The Concept of 'Income Effect' and Income Consumption Curve)

यदि वस्तुओं की कीमतें यथास्थिर (same) रहती हैं, परन्तु उपभोक्ता की आय में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होता है तो वह वस्तुओं की कम माँग या अधिक माँग कर सकता है और उसका सन्तोष पहले की अपेक्षा घट सकता है या बढ़ सकता है, हिक्स (Hicks) इसको 'आय प्रभाव' कहते हैं, संक्षेप में, आय प्रभाव को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :

> आय प्रभाव माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन है जो कि केवल आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है, जबकि वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।[18]

[18] Income effect is the change in the quantity demanded resulting solely from a change in income, when the prices of the commodities remain constant

आय प्रभाव को चित्र १७ द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है, ऐसी रेखा को जो कि आय प्रभाव को दिखाती है हिक्स 'आय उपभोग रेखा' (*Income Consumption Curve*) कहते हैं, संक्षेप में इसको ICC कहा जाता है। चित्र १७ में ICC रेखा को दिखाया गया है। (i) माना कि दो वस्तुएँ X तथा Y की कीमत दी हुई है तथा व स्थिर हैं, (ii) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय में परिवर्तन होता है। जैसे-जैसे उपभोक्ता की आय में वृद्धि होती है वैसे-वैसे कीमत रेखा (price line) LM अपने आपको समान्तर (parallel) रखते हुए दायें को खिसकती जाती है जैसे कि चित्र में LM रेखा की स्थिति L_1M_1 तथा L_2M_2 हो जाती है। कीमत रेखाएँ समान्तर रहती है क्योंकि X तथा Y वस्तुओं की कीमतों (माना P_x तथा P_y) में कोई परिवर्तन नहीं होता है, कीमत अनुपात $\frac{P_x}{P_y}$ समान (constant) रहता है, दूसरे शब्दों में, कीमत रेखाओं के ढाल (slopes) समान रहते हैं। कीमत रेखाओं LM, L_1M_1 तथा L_2M_2 के सन्दर्भ (reference) में उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थितियाँ क्रमशः P, P_1 तथा P_2 बिन्दु बताते हैं। उपभोक्ता सन्तुलन के इन बिन्दुओं को मिलाने से जो रेखा प्राप्त होती है उसे हिक्स (तथा अनेक अन्य अर्थशास्त्री) 'आय उपभोग रेखा' कहते हैं। हम आय उपभोग रेखा को इन शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं :
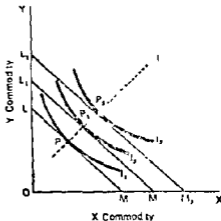
चित्र—१७

> **आय उपभोग रेखा उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दुओं का रास्ता (*locus*) है, जबकि केवल आय में परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में, यदि दो वस्तुओं X तथा Y की कीमतें स्थिर रहती हैं, तो 'आय उपभोग रेखा' उपभोग (या माँग) में परिवर्तनों को बताती है, जो कि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होते हैं। संक्षेप में, आय उपभोग रेखा वस्तुओं की उपभोग की मात्राओं पर आय प्रभाव को रेखा के रूप में व्यक्त (trace-out) करती हैं।**[19]

३ **आय प्रभाव का स्वभाव तथा आय उपभोग रेखा की शक्ल** (Nature of Income Effect and the Shape of Income Consumption Curve)

आय प्रभाव धनात्मक (*Positive*) हो सकता है या ऋणात्मक (*Negative*) आगे हम प्रत्येक स्थिति का विवेचन करते हैं।

एक वस्तु के लिए आय प्रभाव धनात्मक होगा जबकि उपभोक्ता की आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु के लिए उपभोग (या उसकी माँग) में वृद्धि होती है। यह सामान्य स्थिति (normal case) है और ऐसी स्थिति में वस्तु को 'सामान्य वस्तु' (*normal good*) अथवा 'श्रेष्ठ वस्तु' (*superior good*) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, एक वस्तु को सामान्य या श्रेष्ठ तब कहा जायेगा जबकि उपभोक्ता की आय में वृद्धि के साथ उपभोग की जाने वाली या माँगी जाने वाली मात्रा में भी वृद्धि होती है।[20]

---

[19] Income Consumption Curve is a locus of points of consumer equilibrium when only income is changed. In other words Income Consumption Curve indicates the change in consumption (or demand) as a result of changes in consumer's income prices of the commodities remaining the same. Briefly Income Consumption Curve traces out the income effect on the consumption of the quantities of the goods.

[20] A good is said to be normal or superior if the quantity consumed or demanded increases with the increase in income.

जब X तथा Y दोनो वस्तुओ का आय प्रभाव धनात्मक होता है तो आय उपभोग रेखा (ICC) का ढाल धनात्मक होगा अर्थात् वह ऊपर को चढती हुई होगी जैसा कि चित्र १८ मे दिखाया गया है। ऊपर को चढ़ती हुइ आय उपभोग रेखा बताती है कि आय मे वृद्धि के साथ दोनो वस्तुओ X तथा Y का उपभोग बढता है, अर्थात् दोनो वस्तुएँ X तथा Y 'सामान्य' या 'श्रेष्ठ' वस्तुएँ है। परन्तु विभिन्न वस्तुओ के लिए ऊपर को चढती हुई आय उपभोग रेखाओ का ढाल भिन्न होगा जैसा कि चित्र १८ मे ICC_1, ICC_2 तथा ICC_3 रेखाएँ दिखाती है। [इस चित्र मे सरलता के लिए हमने तटस्थता वक्र रेखाओ तथा कीमत रेखाओ को नही दिखाया है।]

चित्र—१८

एक वस्तु के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होगा जबकि उपभोक्ता की आय मे वृद्धि के साथ उसके उपभोग (या मांग) मे कमी होती है। दूसरे शब्दो में, ऐसी वस्तुएँ जिनका ऋणात्मक आय प्रभाव होता है उनको 'निम्न कोटि की वस्तुएँ' (inferior goods) कहा जाता है। निर्धन व्यक्तियो के लिए 'सामान्य' या 'श्रेष्ठ' वस्तुओ का खरीदना कठिन होता है क्योकि प्राय इन वस्तुओ की कीमतें ऊँची होती है। परन्तु जैसे उनकी आय बढती है वे निम्न कोटि की वस्तुओ के स्थान पर श्रेष्ठ वस्तुओ का प्रतिस्थापन (substitution) करने लगते हैं और इस प्रकार आय मे वृद्धि के साथ निम्नकोटि की वस्तुओ का उपभोग (या उनकी मांग) कम होने लगता है।

निम्न कोटि की वस्तुओ के सम्बन्ध मे, ICC या तो पीछे को बायें की ओर झुक सकती है या दायें को झुक सकती है (the ICC may turn back either to the left or the right), यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वस्तु X निम्न कोटि की है या वस्तु Y निम्न कोटि की है। इन दोनो स्थितियो को चित्र १९ मे दिखाया गया है। जब वस्तु X निम्न कोटि की है तो आय उपभोग रेखा की शक्ल ICC_1 होगी, यह बिन्दु M से पीछे को बायें की ओर झुक जाती है। जब वस्तु Y निम्न कोटि की है तो आय उपभोग रेखा की शक्ल ICC_2 होगी, यह बिन्दु K से पीछे को दायें की ओर झुक जाती है।
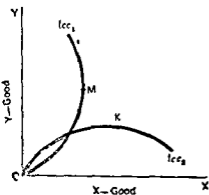
चित्र—१९

प्रतिस्थापन प्रभाव (SUBSTITUTION EFFECT)

१. प्राक्कथन (Introduction)

किसी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन (कमी या वृद्धि) के परिणामस्वरूप उस वस्तु के उपभोग (या माँग) पर दो प्रकार के प्रभाव पडते हैं (i) आय प्रभाव (income effect) तथा (ii) प्रतिस्थापन प्रभाव (substitution effect)। माना कि दो वस्तुओ X तथा Y मे से एक वस्तु X की कीमत घट जाती है, तो उपभोक्ता की वास्तविक आय (real income) बढ जायेगी,[21] यह 'कीमत मे

[21] माना कि वस्तु X की कीमत १० रु० थी और एक उपभोक्ता उसकी ३ इकाइयो का प्रयोग करने के लिए १०×३=३० रु० व्यय करता था, कीमत घटकर ६ रु० हो जाती है तो अब उपभोक्ता ३ इकाइयो के लिए ६×३=१८ रु० व्यय करेगा, अर्थात् उसकी वास्तविक आय (३०—१८)=१२ रु० से बढ जाती है, यह 'कीमत घटने का आय प्रभाव' है।

घटने का आय प्रभाव' (income effect of a price fall) है, इस आय प्रभाव के कारण उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता रेखा पर चला जाता है (अर्थात् उसकी सन्तुष्टि पहले से बढ़ जाती है)। पुन वस्तु X की कीमत घटने का अर्थ है कि X तथा Y की सापेक्षिक कीमतों (relative prices) में परिवर्तन हो जाता है तथा वस्तु X के सस्ती हो जाने से उपभोक्ता वस्तु X का अधिक प्रयोग करेंगे, अर्थात् वस्तु X का प्रतिस्थापन वस्तु Y के स्थान पर करेंगे, इसे 'प्रतिस्थापन प्रभाव' कहा जाता है। परन्तु ध्यान रहे कि **प्रतिस्थापन प्रभाव 'केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन' के परिणामस्वरूप होता है।** कीमत में कमी होने के कारण आय प्रभाव तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं प्रतिस्थापन प्रभाव को तभी मालूम किया जा सकता है जबकि आय प्रभाव को किसी तरह से समाप्त (neutralize) कर दिया जा सके (अर्थात उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर या समान रखा जा सके) क्योंकि प्रतिस्थापन प्रभाव 'केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन' का परिणाम होता है।

२ प्रतिस्थापन प्रभाव की परिभाषा (Definition of Substitution Effect)

प्रतिस्थापन प्रभाव को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं

केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप किसी वस्तु के उपभोग (या उसकी माग) में परिवर्तन को प्रतिस्थापन प्रभाव कहा जाता है, जबकि उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहती है।[32]

उदाहरणार्थ यदि वस्तु X की कीमत घट जाती है तो उपभोक्ता की 'वास्तविक आय' में वृद्धि होगी, यह आवश्यक है कि उपभोक्ता की 'द्राव्यिक आय (money income) को इतनी मात्रा से घटाया जाये जिससे कि 'वास्तविक आय' (real income) मे वृद्धि समाप्त (cancel or neutralize) हो जाए तब ही प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात किया जा सकेगा क्योंकि प्रतिस्थापन प्रभाव केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन का परिणाम होता है। आय प्रभाव को समाप्त करने के लिए उपभोक्ता की द्राव्यिक आय मे परिवर्तन के लिए अर्थशास्त्री **'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन'** (*compensating variation in income*) शब्द का प्रयोग करते हैं। दूसरे शब्दों में,

कीमतों में सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय मे परिवर्तन को समाप्त (neutralize) करने के लिए उसकी द्राव्यिक आय मे जो परिवर्तन किया जाता है उसे 'आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन' कहते हैं।[33]

३ प्रतिस्थापन प्रभाव की व्याख्या (Explanation of Substitution Effect)

हिक्स के अनुसार, प्रतिस्थापन प्रभाव तब उत्पन्न होता है जबकि सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप, उपभोक्ता पहले की तुलना में न तो अच्छी स्थिति में होता है और न ही खराब स्थिति मे, वह तो दो वस्तुओं की खरीदों (purchases) को केवल पुन व्यवस्थित (rearrange) कर लेता है अर्थात् वह सस्ती वस्तु को महँगी वस्तु के स्थान पर प्रतिस्थापित करता है। दूसरे शब्दों मे, **हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव के अनुसार सापेक्षिक कीमतों मे परिवर्तन के बाद उपभोक्ता एक ही तटस्थता रेखा पर चलता है।**[34]

एक महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है कि सैद्धांतिक दृष्टि से (theoretically) यह सम्भव है कि सापेक्षिक कीमतों मे परिवर्तन आवश्यक रूप से आय प्रभाव को उत्पन्न न करे। (यह

---

[32] The change in consumption (or demand) of a commodity caused by a change in the relative prices alone real income remaining constant, it called substitution effect

[33] The change in money income in order to neutralize or compensate the change in real income of the consumer as a result of a change in relative prices is called 'compensating variation in income

[34] According to Hicksian substitution effect the consumer moves on the *same indifference* curve after the change in relative prices

एक ही तटस्थता रेखा पर चलने का अर्थ है कि उपभोक्ता की सन्तुष्टि का स्तर एकसमान रहता है अर्थात् उपभोक्ता पहले की तुलना मे न तो अच्छी स्थिति में होता है और न ही खराब स्थिति में।

बात थोडा आगे दिये गये विवरण से स्पष्ट हो जायेगी।) इस प्रकार हम हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव की विवेचना निम्न दो स्थितियो म कर सकते हैं

(i) वह प्रतिस्थापन प्रभाव जिसम सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव नही होता।

(ii) वह प्रतिस्थापन प्रभाव जिसम सापेक्षिक कीमतो म परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव होता है और जिसको समाप्त करने के लिए 'आय म क्षतिपूरक परिवर्तन' (Compensating variation in income) करना पडता है, (अर्थात् 'प्रतिस्थापन प्रभाव आय मे क्षतिपूरक परिवतन के साथ')।

(i) अब हम पहले प्रकार के प्रतिस्थापन प्रभाव को लेते है। हम कुछ बातो को मानकर चलते है--(अ) दो वस्तुओ की सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन हो जाता है और एक वस्तु सस्ती तथा दूसरी वस्तु महँगी हो जाती है। (ब) माना कि वस्तु X की कीमत म कमी होती है, तो दोनो वस्तुओ की सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन हो जायेगा, परन्तु हम यह मान लेते हैं कि साथ ही साथ वस्तु Y की कीमत म इस प्रकार वृद्धि हो जाती है कि वह वस्तु X की कीमत मे कमी को पूर्णतया नष्ट (offset) कर देती है। परिणामस्वरूप उपभोक्ता का कुल सन्तोष पहले के समान ही बना रहता है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि यहाँ पर वस्तुओं की कीमतो मे सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव उत्पन्न नही होता। (स) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय स्थिर रहती है।

उपभोक्ता का सन्तोष पहले के समान बना रहता है इसका अर्थ है कि वह पुरानी ही तटस्थता-वक्र रेखा पर बना रहता है। परन्तु पुरानी तटस्थता रेखा पर रहते हुए भी उपभोक्ता अपनी खरीद को फिर से व्यवस्थित (rearrange) करेगा, अर्थात् वह सस्ती वस्तु X को महँगी वस्तु Y के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) करेगा, दूसरे शब्दो मे, वह उसी तटस्थता-वक्र रेखा पर नीचे की ओर किसी बिन्दु पर चला जायेगा।

समस्त स्थिति चित्र २० से स्पष्ट होती है। चित्र मे कीमत रेखा (price line) की प्रारम्भिक स्थिति LM है तथा उपभोक्ता बिन्दु E पर सन्तुलन का स्थिति मे है। वस्तु X की कीमत गिरती है और साथ ही साथ वस्तु Y की कीमत मे वृद्धि होती है जो कि X की कीमत मे कमी को पूणतया नष्ट कर देती है, परिणामस्वरूप कीमत रेखा की नयी स्थिति RS हो जाती है और अब (अर्थात् कीमतो मे सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप) उपभोक्ता उसी तटस्थता रेखा पर नीचे की ओर बिन्दु F पर सन्तुलन की स्थिति म पहुँच जाता है। इसका अभिप्राय है कि वह अपनी खरीद को फिर से व्यवस्थित (rearrange) करता है अर्थात् वह सस्ती वस्तु X की AB के बराबर अधिक मात्रा खरीदता है और वस्तु Y की मात्रा CD के बराबर घटा देता है, इस प्रकार वह X का Y के स्थान पर प्रतिस्थापन करता है। अत
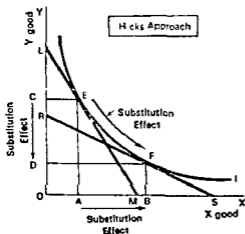
चित्र—२०

(अ) प्रतिस्थापन प्रभाव एक ही तटस्थता वक्र रेखा पर E से F तक चलन है।

(ब) दूसरे शब्दो मे, वस्तु X पर प्रतिस्थापन प्रभाव है AB के बराबर X की मात्रा मे वृद्धि।

(ii) दूसरे शब्दों में, वस्तु Y पर प्रतिस्थापन प्रभाव है CD के बराबर Y की मात्रा में कमी।

(ii) अब हम प्रतिस्थापन-प्रभाव की दूसरी स्थिति को लेते हैं, अर्थात् 'प्रतिस्थापन प्रभाव आय में क्षति पूरक परिवर्तन के साथ' (substitution effect with compensating variation in income) को लेते हैं। इस स्थिति को चित्र २१ द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र—२१

उपभोक्ता की द्राव्यिक आय दी हुई है तथा वस्तुओं की कीमतें भी दी हुई हैं, तथा (चित्र २१ में) कीमत रेखा LM है, उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति को बिन्दु R बताता है (अर्थात् इस बिन्दु पर उपभोक्ता के पास X वस्तु की OA मात्रा तथा Y वस्तु की OC मात्रा का संयोग है), यह शुरू की स्थिति है। माना—

(a) वस्तु X की कीमत घटती है।

(b) वस्तु Y की कीमत समान या स्थिर रहती है।

(c) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय स्थिर या समान है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार वस्तु पर X की कीमत घटने के तात्कालिक परिणाम (*immediate consequences*) होंगे—

(a) नयी कीमत-रेखा LM_1 होगी।

(b) वस्तु X की कीमत घटने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय (या क्रय-शक्ति) बढ़ेगी, और इसलिए *उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा I_2 के बिन्दु P* पर साम्य की स्थिति में होगा। (ध्यान रहे कि आय प्रभाव का अर्थ है ऊँची तटस्थता रेखा पर जाना।)

प्रतिस्थापन प्रभाव को मालूम करने के लिए वास्तविक आय (या क्रय शक्ति) में वृद्धि को नष्ट (neutralize) करना होगा और इसके लिए उपभोक्ता की द्राव्यिक आय में इतनी कमी करनी पड़ेगी जिससे कि वह पहली तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर ही बना रहे (और I_2 पर न जा सके), अर्थात् उपभोक्ता की 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' (compensating variation in income) या 'समतुल्य परिवर्तन' (equivalent variation) करना पड़ेगा। चित्र में 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' को ज्ञात करने के लिए हम एक काल्पनिक कीमत रेखा KT खींचते हैं जोकि नयी कीमत रेखा LM_1 के समान्तर होती है तथा पहली तटस्थता वक्र रेखा I_1 को किसी एक बिन्दु (S पर) स्पर्श करती है। काल्पनिक कीमत रेखा KT नयी कीमत रेखा LM_1 के समान्तर खींची जाती है, इसका अभिप्राय है कि KT रेखा का ढाल LM_1 रेखा के ढाल के बराबर होगा, और चूँकि LM_1 कीमत रेखा का ढाल नये कीमत अनुपात को बताता है, इसलिए काल्पनिक कीमत रेखा KT भी नये कीमत अनुपात को बताती है। इस काल्पनिक कीमत रेखा KT को खींचने से यह पता चल
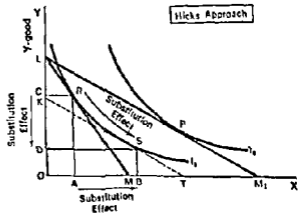
जाता है कि, कीमतों मे सापेक्षिक परिवर्तन के बाद, उपभोक्ता की द्राव्यिक आय को LK (वस्तु Y के शब्दो मे) के बराबर घटाना पड़ेगा तब ही उपभोक्ता पहली तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर रह सकेगा अर्थात् तब ही उसका सन्तोष पहले के समान रह सकेगा अथवा यह कहिए कि तब ही उपभोक्ता पहले की तुलना मे न अच्छी स्थिति मे होगा और न बुरी स्थिति मे। दूसरे शब्दो मे, हिक्स के अनुसार, प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए 'आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन' बराबर होगा LK के (Y के शब्दो मे)। स्पष्ट है कि हिक्स के अनुसार,

(a) प्रतिस्थापन प्रभाव प्रारम्भिक साम्य की स्थिति बिन्दु R से काल्पनिक साम्य की स्थिति बिन्दु S तक चलन है, दोनो बिन्दु एक ही तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर स्थित हैं, अर्थात् प्रतिस्थापन प्रभाव एक ही तटस्थता वक्र रेखा पर चलन (movement) है।

(b) अथवा, वस्तु X पर प्रतिस्थापन प्रभाव बराबर है X की मात्रा मे AB की वृद्धि।

(c) अथवा, वस्तु Y पर प्रतिस्थापन प्रभाव बराबर है Y की मात्रा मे CD की कमी।

कीमत प्रभाव
(PRICE EFFECT)

१. प्राक्कथन (Introduction)

परम्परागत माँग रेखा (traditional demand curve) मुख्यतया दो मान्यताओं पर आधारित है (i) एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होता है, जबकि अन्य वस्तुओ की कीमतें समान या स्थिर रहती हैं, तथा (ii) उपभोक्ता की आय स्थिर या समान रहती है।

यदि किसी वस्तु X की कीमत मे परिवर्तन होता है, माना उसकी कीमत घट जाती है, तो सामान्य स्थिति मे उसकी माँग मे वृद्धि होगी क्योकि उपभोक्ता सस्ती वस्तु X को, अन्य वस्तुओं (जो कि अपेक्षाकृत महँगी है) के स्थान पर प्रतिस्थापित करेगा। इसे 'कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप प्रतिस्थापन प्रभाव' (*substitution effect of a change in price*) कहा जाता है। पुन, आय के स्थिर रहने की मान्यता व्यावहारिक जीवन मे सही नही पायी जाती है। किसी एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय (real income) मे परिवर्तन हो जाता है। इसे 'कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव' (*income effect of a change in price*) कहा जाता है। मार्शल का माँग-विश्लेषण इस आय प्रभाव की उपेक्षा (neglect) करता है।

हिक्स तथा एलन (Hicks and Allen) ने बताया कि 'कीमत परिवर्तन का माँग पर कुल प्रभाव' ('*total effect*' of a price change on demand) के दो अंग होते हैं (i) प्रतिस्थापन प्रभाव, तथा (ii) आय प्रभाव।

२ कीमत-प्रभाव की परिभाषा (The Concept of Price-Effect)

कीमत-प्रभाव को हम निम्न शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं :

कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु की माँगी गयी मात्रा पर 'कुल प्रभाव' को कीमत-प्रभाव मापता है।[15]

कीमत प्रभाव के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि उन मान्यताओ को ध्यान मे रखा जाये जिन पर यह आधारित है। कीमत-प्रभाव अग्र मान्यताओ पर आधारित है -

---

[15] Price effect measures the '*total effect*' of a price change on the quantity demanded of a commodity by the consumer

(i) एक वस्तु (माना X) की कीमत में परिवर्तन होता है, (माना कि कीमत गिरती है)।

(ii) दूसरी वस्तु (माना Y) की कीमत समान या स्थिर रहती है।

(iii) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय (money income) स्थिर रहती है।

(iv) वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय (real income) बढ़ती है, वास्तविक आय में वृद्धि (या परिवर्तन) को नष्ट (neutralize) नहीं किया जाता या यह कहिए कि उसकी क्षतिपूर्ति (compensation) नहीं की जाती, दूसरे शब्दों में, 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' (compensating variation in income) नहीं होता है और उपभोक्ता की स्थिति को, पहले की तुलना में, अच्छी (या खराब, यदि वस्तु X की कीमत बढ़ती है) होने दिया जाता है।

३. कीमत-प्रभाव का रेखीय प्रस्तुतीकरण : 'कीमत उपभोग रेखा', सामान्य वस्तुओं की स्थिति (Graphic Representation of Price-Effect Price Consumption Curve, Case of 'Normal Goods')

कीमत-प्रभाव को हम चित्र २२ द्वारा समझाते हैं। द्राव्यिक आय दी हुई है, तथा वस्तु X और Y की कीमतें दी हुई हैं, इनके आधार पर कीमत रेखा की शुरू की स्थिति (*original position*) LM है, *तथा उपभोक्ता* बिन्दु A पर साम्य की स्थिति में है और इस शुरू की साम्य की स्थिति में बिन्दु A पर उपभोक्ता वस्तु X की OR मात्रा तथा वस्तु Y की OQ मात्रा खरीदता है। अब हम यह *मान लेते हैं कि उपभोक्ता की द्राव्यिक आय* तथा वस्तु Y की कीमत समान (या स्थिर) रहती है, परन्तु वस्तु X की कीमत घटती है। ऐसी स्थिति में उसी द्राव्यिक आय से वस्तु X की OM मात्रा के स्थान पर अधिक मात्रा OM_1 *खरीदी जा सकेगी*। चूंकि वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती है इसलिए उपभोक्ता सदैव Y की OL मात्रा ही खरीदेगा, अर्थात Y के शब्दों में उपभोक्ता की आय हमेशा OL रहेगी और कीमत-रेखा का बिन्दु L स्थिर

चित्र—२२

रहेगा। इस प्रकार नयी कीमत-रेखा LM_1 होगी तथा उपभोक्ता के साम्य की नयी स्थिति ऊँची तटस्थता वक्र रेखा I_2 के बिन्दु B पर होगी, और इस बिन्दु B पर उपभोक्ता X-वस्तु की OS मात्रा तथा Y-वस्तु की OT मात्रा खरीदेगा। माना कि वस्तु X की कीमत और अधिक गिरती है, नयी कीमत-रेखा की स्थिति LM_2 हो जाती है तथा उपभोक्ता ऊँची तटस्थता वक्र रेखा I_3 के बिन्दु C पर साम्य की स्थिति प्राप्त करता है। उपभोक्ता के इन साम्य बिन्दुओं A, B तथा C को मिलाने से एक रेखा प्राप्त होती है जिसे कीमत-उपभोग-रेखा (*Price Consumption Curve* या संक्षेप में PCC) कहते हैं। कीमत उपभोग रेखा को निम्न शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है
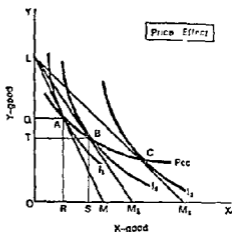
> **कीमत उपभोग रेखा यह बताती है कि एक वस्तु X की कीमत में परिवर्तन किस प्रकार से उपभोक्ता के लिए उस वस्तु X की मांग को प्रभावित (या परिवर्तित) करती है, जबकि दूसरी वस्तु Y की कीमत तथा उपभोक्ता की द्राव्यिक आय स्थिर (या**

समान) रहती हैं। दूसरे शब्दों में, कीमत उपभोग रेखा कीमत प्रभाव के रास्ते को बताती है।[16]

कीमत उपभोग रेखा वस्तु X की कीमतों तथा प्रत्येक कीमत पर उस वस्तु X की उपभोक्ता द्वारा माँगी जाने वाली मात्राओं के समूहों (sets) को बताती है। इस प्रकार से यह रेखा उस सूचना को बताती है जिसके आधार पर उपभोक्ता की माँग रेखा का निर्माण किया जा सकता है।[17]

चित्र २२ में PCC नीचे को गिरती हुई है। नीचे को गिरती हुई PCC बताती है कि यदि वस्तु X की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा तथा वस्तु Y की कम मात्रा खरीदता है। दूसरे शब्दों में, जिस वस्तु के लिए PCC नीचे को गिरती हुई होती है उसको 'सामान्य वस्तु' (Normal good) कहा जाता है क्योंकि ऐसी स्थिति एक 'सामान्य स्थिति' होती है। [PCC की अन्य शक्लें भी हो सकती हैं।]

४ कीमत-प्रभाव को 'प्रतिस्थापन प्रभाव' तथा आय-प्रभाव' में तोड़ना या अलग करना—'हिक्स की रीति' (Decomposing Price Effect into 'Substitution Effect' and 'Income Effect'—*Hicksian Method*)

कीमत प्रभाव दो प्रभावों का योग है प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव। दूसरे शब्दों में, कीमत उपभोक्ता रेखा इन दोनों प्रभावों को अपने में शामिल रखती है। अब हम माँग पर कीमत के कुल प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव में तोड़ेंगे। कीमत प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव में तोड़ने की हिक्स की रीति को चित्र २३ द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र—२३

उपभोक्ता की द्राव्यिक आय दी हुई है तथा वस्तु X और Y की कीमतें दी हुई हैं जिनके आधार पर कीमत रेखा की स्थिति LM है, उपभोक्ता P बिन्दु पर साम्य की स्थिति में है, यह प्रारम्भिक स्थिति है।
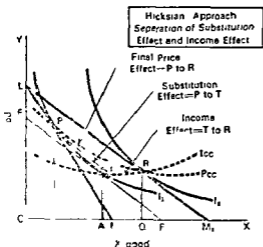
माना वस्तु X की कीमत घट जाती है (जबकि वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती है) तो उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदेगा, नयी कीमत रेखा LM_1 हो जाती है और अब उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता रेखा I_2 के बिन्दु R पर साम्य की स्थिति में होगा। तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु P से ऊँची तटस्थता रेखा I_2 पर बिन्दु R तक चलन 'कीमत प्रभाव' (Price Effect) या 'अन्तिम कीमत प्रभाव' (Final Price Effect) या 'कुल कीमत प्रभाव' (Total Price Effect) है। *अब हम इस कीमत प्रभाव के दोनों अंगों (प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव) को अलग-अलग* करते हैं।

---

[16] Price Consumption curve shows how the change in the price of one good X affects (or changes) the consumer's demand of X price of the other good Y and his money income remaining constant In other words, price consumption curve traces the path of price effect

[17] "The PCC represents sets of prices of X and the quantities of X the consumer buys at each price The curve therefore contains the information from which the consumer's demand curve can be constructed"

वस्तु X की कीमत में कमी होने से दोनों वस्तुओं X तथा Y की सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन हो जाता है परन्तु साथ ही साथ उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि भी हो जाती है। प्रतिस्थापन प्रभाव को मालूम करने के लिए वास्तविक आय में वृद्धि को नष्ट (neutralize) करना पड़ेगा अर्थात् द्राव्यिक आय में कमी करनी पड़ेगी। हिक्स के अनुसार द्राव्यिक आय को इस मात्रा से घटाना पड़ेगा जिससे कि उपभोक्ता का सन्तोष पहले के समान हो जाये अर्थात् उपभोक्ता पहली तटस्थता वक्र रेखा पर आ जाय। इसके लिए हम नयी कीमत रेखा LM_1 के समान्तर (parallel) एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खींचते हैं जो कि प्रारम्भिक (original) तटस्थता वक्र रेखा I_1 को बिन्दु T पर स्पर्श करती है। कीमत रेखा LM_1 वस्तु X तथा Y के नये कीमत अनुपात को बताती है और चूँकि काल्पनिक कीमत रेखा EF समान्तर है LM_1 के, इसलिए EF रेखा भी नये कीमत अनुपात को बतायगी। इस काल्पनिक कीमत रेखा EF के खींचने से हमें *'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' (compensating variation in income)* प्राप्त हो जाता है जो कि LE (Y के शब्दों में) है, अर्थात् द्राव्यिक आय में LE के बराबर कमी कर देने से उपभोक्ता पहली तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु T पर साम्य की स्थिति में आ जाता है और उसका सन्तोष पहले के समान हो जाता है। अतः एक ही तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर P से T तक चलन प्रतिस्थापन प्रभाव है। यदि अब द्राव्यिक आय में कमी (अर्थात् LE) को उपभोक्ता को वापस कर दिया जाये तो वह I_1 तटस्थता वक्र रेखा पर बिन्दु T से ऊँची तटस्थता वक्र रेखा I_2 पर बिन्दु R पर चला जायेगा, अर्थात् T से R तक चलन आय-प्रभाव होगा।

स्पष्ट है कि 'बिन्दु P से बिन्दु R तक का चलन' अर्थात् 'कीमत-प्रभाव' दो चरणों (steps) में होता है—(i) पहले तो एक ही तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु P से काल्पनिक बिन्दु T तक चलन, जो कि प्रतिस्थापन प्रभाव है, (ii) दूसरे, तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु T से ऊँची तटस्थता रेखा I_2 पर बिन्दु R तक चलन, जो कि आय प्रभाव है। संक्षेप में, समस्त स्थिति को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है
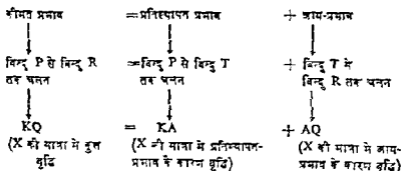
माँग रेखा का निकालना
(DERIVATION OF THE CONVENTIONAL DEMAND CURVE)

तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से साधारण माँग रेखा (Ordinary or conventional demand *curve*) को निकाल सकते हैं। ऐसा करने में हम 'कीमत उपभोग रेखा' (Price consumption curve) की सहायता लेते हैं। अतः माँग रेखा को निकालने से पूर्व 'कीमत उपभोग रेखा' तथा 'माँग रेखा' की समानता तथा अन्तर को समझना आवश्यक है।

चित्र न० २४ में ABC 'कीमत-उपभोग रेखा' (PCC) है। चित्र में उपभोक्ता जब साम्य स्थिति A पर है तो वह $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु की OR मात्रा खरीदता है, या उपभोग करता है।

जब उपभोक्ता साम्य स्थिति B पर है तदा कीमत गिरकर $\frac{OL}{OK_1}$ हो जाती है तो वह वस्तु की अधिक मात्रा OS उपभोग करता है। यदि कीमत और कम होकर $\frac{OL}{OK_2}$ हो जाती है तदा उपभोक्ता साम्य स्थिति C पर है तो वह वस्तु की और अधिक मात्रा OT खरीदता है। स्पष्ट है कि कीमत गिरने पर वस्तु की माँग बढ़ती है। दूसरे शब्दों में, 'कीमत उपभोग रेखा' (PCC) कीमत में परिवर्तन तथा उससे सम्बन्धित उपभोग की मात्रा में परिवर्तन के बीच सम्बन्ध को बताती है। यही बात सामान्य माँग रेखा बताती है कि विभिन्न कीमतों पर माँगी गयी मात्रा क्या होगी। इस प्रकार दोनों रेखाएँ एकसी प्रतीत होतीं क्योंकि वे एकसी बात बताती हैं।

चित्र—२४

परन्तु दोनों रेखाओं में समानता होते हुए भी निम्न अन्तर हैं :

(१) एक सामान्य माँग रेखा को खींचते समय माँगी जाने वाली वस्तु की मात्रा को X-axis पर तथा कीमत को Y-axis पर दिखाया जाता है।

कीमत-उपभोग रेखा (PCC) दो वस्तुओं के सम्बन्ध में खींची जाती है जिसमें से एक को X-axis पर तथा दूसरी को Y-axis पर दिखाया जाता है। एक वस्तु के स्थान पर द्रव्य या आय (money or income) को भी ले सकते हैं, ऐसी स्थिति में द्रव्य या आय को Y-axis पर तथा वस्तु को X-axis पर दिखाया जाता है।

(२) माँग रेखा के सम्बन्ध में कीमत को प्रत्यक्ष रूप से Y-axis पर दिखाया जाता है। अतः कीमतों में परिवर्तन तथा उनसे सम्बन्धित वस्तु की माँगी गयी मात्राओं को सीधे तथा आसानी से माँग रेखा से जाना जा सकता है।

परन्तु कीमत-उपभोग रेखा के सम्बन्ध में कीमत को प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाया जाता है, कीमत को मालूम करने के लिए कीमत-रेखा की सहायता लेनी पड़ती है। कीमत रेखा दो वस्तुओं की कीमत अनुपात को बताती है, यदि X-axis पर द्रव्य या आय तथा X-axis पर वस्तु को दिखाया गया है तो कीमत रेखा का ढाल वस्तु की प्रति इकाई कीमत को बतायेगा। जैसे, चित्र में सन्तुलन स्थिति A पर वस्तु की कीमत $\frac{OL}{OK}$ होगी, सन्तुलन की स्थिति B पर वस्तु की कीमत

$\frac{OL}{OK_1}$ होगी, इत्यादि। स्पष्ट है कि कीमत-उपभोग-रेखा से कीमतों में परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप से तथा आसानी से मालूम नहीं किया जा सकता है, जबकि सामान्य माँग रेखा से कीमतों में परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप से तथा आसानी से मालूम किया जा सकता है और इस दृष्टि से सामान्य माँग रेखा, कीमत-उपभोग रेखा की अपेक्षा, श्रेष्ठ प्रतीत होती है।

(३) सामान्य माँग रेखा आय को स्थिर (constant) मानकर चलती है। कीमतों में परिवर्तन वास्तविक आय को प्रभावित करते हैं, परन्तु माँग रेखा कीमत के 'आय प्रभाव' को छोड़ देती है।

कीमत-उपभोग रेखा आय को स्पष्ट रूप से Y axis पर दिखाती है और यह कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'आय प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव' पर ध्यान देती है। अतः कीमत उपभोग रेखा अधिक गहराई तक जाती है (it goes much deeper), यह माँग के पीछे क्या कारण है उन तक जाती है और इस दृष्टि से यह, सामान्य माँग रेखा की अपेक्षा, अधिक श्रेष्ठ है।

(४) मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में माँग रेखा को प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति रेखा के साथ रखकर मूल्य निर्धारण किया जा सकता है, जबकि कीमत उपभोग रेखा मूल्य निर्धारण में इस प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से सहायक नहीं होती।

कीमत-उपभोग रेखा से सामान्य माँग रेखा को निकाला जा सकता है। तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से माँग रेखा निकालने के कई तरीके हैं। उनमें से एक मुख्य तरीके का यहाँ पर विवेचन किया गया है। चित्र नं० २४ में Y-axis पर आय (income) तथा X-axis पर वस्तु X को दिखाया गया है। मान उपभोक्ता की आय स्थिर तथा दी हुई है, चित्र में यह OL द्वारा दिखायी गयी है। I_1, I_2 तथा I_3 तीन तटस्थता वक्र रेखाएँ हैं। वस्तु X की कीमत में कमी होने के कारण 'कीमत रेखा' (price line) की स्थितियाँ LK, LK_1 तथा LK_2 हैं। A, B तथा C उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु हैं। इनको मिलाने से 'कीमत-उपभोग रेखा' (PCC) प्राप्त होती है। सन्तुलन बिन्दु A से X-axis पर लम्ब (perpendicular) डालने पर यह X-axis को R बिन्दु पर मिलता है। सन्तुलन बिन्दु A बताता है कि उपभोक्ता OE द्रव्य + OR वस्तु की मात्रा अपने पास रखना पसन्द करता है, दूसरे शब्दों में, यह OR वस्तु की मात्रा के लिए EL द्रव्य व्यय करता है। वस्तु की कीमत, 'कीमत रेखा' LK का ढाल (slope) बताता है अर्थात् वस्तु की प्रति इकाई कीमत $\frac{OL}{OK}$ है, अतः सन्तुलन स्थिति A पर उपभोक्ता $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु की OR मात्रा खरीदता है। इसी प्रकार सन्तुलन स्थिति B पर वह $\frac{OL}{OK_1}$ कीमत पर वस्तु की OS मात्रा खरीदता है तथा सन्तुलन स्थिति C पर वह $\frac{OL}{OK_2}$ कीमत पर वस्तु की OT मात्रा खरीदता है।

यहाँ पर अब यह कठिनाई उठती है कि $\frac{OL}{OK}$, $\frac{OL}{OK_1}$ तथा $\frac{OL}{OK_2}$ कीमतों को चित्र में

कैसे दिखाया (अर्थात् plot किया) जाये ? इसके लिए निम्न तरीका अपनाया जाता है। R के दाहिने (right) को वस्तु की एक इकाई के बराबर निशान (mark) लगाते हैं, माना वस्तु X की एक इकाई RU के बराबर है। इसके बाद हम U से UP रेखा, LK कीमत रेखा के समान्तर खींचते हैं। LK कीमत रेखा का ढाल (slope) वस्तु की प्रति इकाई कीमत को बताता है, इसलिए LK रेखा के समान्तर खींची गयी रेखा UP का ढाल भी वस्तु की कीमत को बतायेगा। UP रेखा का ढाल (slope) $=\frac{PR}{RU}$ अर्थात् वस्तु की कीमत $\frac{PR}{RU}$ हुई, चूंकि RU=1 के, इसलिए वस्तु की कीमत PR के बराबर हुई। अतः PR कीमत पर वस्तु की OR मात्रा खरीदी जाती है, इस प्रकार माँग का एक विन्दु P मालूम (plot) कर लिया जाता है। इसी प्रकार S के दाहिने (right) को वस्तु की एक इकाई के बराबर SV दूरी काट ली, V से VP_1, कीमत रेखा LK_1 के समान्तर खींची। चूंकि LK_1 का ढाल (slope) वस्तु की प्रति इकाई कीमत को बताता है, इसलिए VP_1 का ढाल भी वस्तु की कीमत को बतायेगा। VP_1 का ढाल $=\frac{P_1S}{SV}$, चूंकि SV=1, इसलिए वस्तु की कीमत P_1S हुई। अतः P_1S कीमत पर वस्तु की OS मात्रा खरीदी जाती है। इस प्रकार माँग रेखा का एक दूसरा बिन्दु P_1 मालूम कर लिया जाता है। इसी प्रकार माँग रेखा का तीसरा विन्दु P_2 मालूम कर लिया जाता है अर्थात् P_2T कीमत पर OT मात्रा खरीदी जाती है। अतः P, P_1 तथा P_2 बिन्दुओं को मिला देने से सामान्य माँग रेखा (conventional demand curve) DD प्राप्त हो जाती है।

अध्याय २१ की परिशिष्ट २ (APPENDIX 2 OF CHAPTER 21)

तटस्थता वक्र रेखाएँ : निम्नकोटि की वस्तुएँ तथा गिफिन का विरोधाभास (INDIFFERENCE CURVES INFERIOR GOODS AND GIFFEN'S PARADOX)

कीमत प्रभाव तथा निम्न कोटि की वस्तुएँ (PRICE EFFECT AND INFERIOR GOODS)

अभी तक हमारा विश्लेषण 'सामान्य वस्तुओं' (normal goods) के सम्बन्ध में रहा है, परन्तु हमने स्पष्ट रूप से 'सामान्य वस्तु' की कोई परिभाषा नहीं दी है। अब हम 'सामान्य वस्तु' तथा 'निम्न कोटि की वस्तु' के बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिए उनकी परिभाषाएँ देंगे तथा 'निम्न कोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में कीमत प्रभाव' की विवेचना करेंगे। इसके पश्चात् हम 'गिफिन वस्तुओं' (Giffen goods) के सम्बन्ध में कीमत-प्रभाव का विश्लेषण करेंगे, गिफिन वस्तुएँ एक विशेष प्रकार की निम्नकोटि की वस्तुएँ होती हैं।[28]

---

[28] Giffen goods are a special type of inferior goods

यह ध्यान रखने की बात है कि प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव ऋणात्मक (negative) होता है; इसका अभिप्राय है कि किसी वस्तु की कीमत में कमी उस वस्तु की मांग में वृद्धि जरूर करेगी, और कीमत में वृद्धि उस वस्तु की मांग में कमी अवश्य करेगी। दूसरे शब्दों में, 'ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव' (negative substitution effect), 'कीमत में परिवर्तन' तथा वस्तु की 'मांगी जाने वाली मात्रा' में उलटे सम्बन्ध को बताता है।[29]

आय-प्रभाव धनात्मक (positive) हो सकता है या ऋणात्मक (negative)। सामान्य परिस्थितियों (normal situations) में आय-प्रभाव धनात्मक होता है, अर्थात् आय में वृद्धि होने से वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा में वृद्धि होती है और आय में कमी होने से वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा में कमी होती है। अब हम 'सामान्य वस्तु' (normal good) को निम्न शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं

> एक सामान्य वस्तु वह है जिसके लिए आय प्रभाव धनात्मक होता है। 'सामान्य वस्तुओं' को यह नाम इसलिए दिया जाता है क्योंकि लगभग सभी परिस्थितियों में आय प्रभाव धनात्मक होता है, यह एक सामान्य स्थिति होती है।[30]

सामान्य वस्तुओं के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त ध्यान में रखना चाहिए -

> "एक धनात्मक आय-प्रभाव ऋणात्मक प्रतिस्थापन को बलवान (reinforce) करता है। इस प्रकार एक सामान्य वस्तु के लिए कीमत में परिवर्तन के साथ मांगी गयी मात्रा सदैव विपरीत दिशा में चलती है। सभी सामान्य वस्तुओं के लिए मांग का नियम सदैव लागू होता है।[31]

सामान्य वस्तुओं के सम्बन्ध में आय प्रभाव धनात्मक होता है, परन्तु कुछ असामान्य स्थितियों (unusual cases) में आय-प्रभाव ऋणात्मक हो सकता है। ऋणात्मक आय प्रभाव का अर्थ है कि वास्तविक आय में वृद्धि एक वस्तु की मांग (या उसके उपभोग) में कमी करती है और वास्तविक आय में कमी उस वस्तु की मांग में वृद्धि करती है। ऐसी वस्तुओं को 'निम्न कोटि की वस्तुएँ' (*inferior goods*) कहा जाता है। एक *निम्नकोटि की वस्तु* को हम निम्न शब्दों में परिभाषित करते हैं :

> एक निम्न कोटि की वस्तु वह है जिसके लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है।[32]

---

[29] कुछ अर्थशास्त्री (जैसे Stonier and Hague) प्रतिस्थापन प्रभाव के लिए 'धनात्मक' (positive) शब्द का प्रयोग करते हैं न कि 'ऋणात्मक' (negative) शब्द का, यद्यपि धनात्मक' शब्द का प्रयोग वे 'उल्टे सम्बन्ध' (inverse relation) के लिए ही करते हैं। परन्तु यह अधिक तर्कपूर्ण व संगतिपूर्ण (logical and consistent) है कि प्रतिस्थापन प्रभाव के लिए 'ऋणात्मक' शब्द का प्रयोग किया जाये क्योंकि सामान्यतया हम अर्थशास्त्र में किन्हीं दो मात्राओं के बीच उलटे सम्बन्ध (inverse relationship between any two quantities) के लिए 'ऋणात्मक' शब्द का प्रयोग करते हैं, इसके विपरीत किन्हीं दो मात्राओं के बीच सीधे सम्बन्ध (direct relationship) के लिए 'धनात्मक' शब्द का प्रयोग करते हैं।

[30] A normal good is one for which the income effect is positive. Normal goods are given this name because in *almost all cases the income effect is* positive, this is the normal situation

[31] "A positive income effect reinforces the negative substitution effect Thus, for a normal good, the quantity demanded always varies inversely with price The law of demand applies to all normal goods

[32] An inferior good is one for which the income effect is negative

अब हम 'निम्न कोटि की वस्तुओं' के सम्बन्ध में कीमत-प्रभाव की विवेचना चित्र २५ की सहायता से करते हैं। चित्र मे प्रारम्भिक (original) कीमत रेखा LM है और बिन्दु R उपभोक्ता के प्रारम्भिक साम्य को बताता है। माना वस्तु X की कीमत मे कमी हो जाती है, परिणामस्वरूप नयी कीमत-रेखा LM_1 हो जाती है और उपभोक्ता नयी साम्य की स्थिति बिन्दु S पर पहुँच जाता है। अत तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु R से ऊँची तटस्थता रेखा I_2 पर बिन्दु S तक चलन कीमत प्रभाव है, अर्थात् वस्तु X के शब्दो मे कीमत-प्रभाव X की मात्रा में Q_1Q_2 के बराबर वृद्धि है।

चित्र—२५
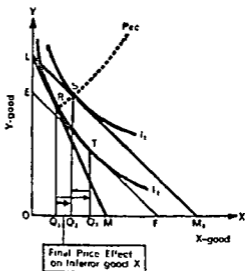
वस्तु X एक निम्न कोटि की वस्तु है, इसकी पुष्टि के लिए हमे यह देखना होगा कि आय प्रभाव ऋणात्मक है या नही। अब हम प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव को अलग करने के लिए एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खीचते हैं जो कि LM_1 के समान्तर (parallel) है। यह काल्पनिक कीमत रेखा EF तटस्थता-वक्र रेखा I_1 को बिन्दु T पर स्पर्श करती है। अतः एक ही तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु R से T तक चलन प्रतिस्थापन प्रभाव है अथवा वस्तु X की मात्रा मे Q_1Q_3 के बराबर वृद्धि प्रतिस्थापन-प्रभाव है। बिन्दु T से S तक चलन 'आय-प्रभाव' है अर्थात् X की मात्रा मे Q_3Q_2 के बराबर कमी आय प्रभाव है, चूंकि आय मे वृद्धि से X की माँगी जाने वाली मात्रा घटती है, इसलिए आय-प्रभाव ऋणात्मक है। ऋणात्मक प्रतिस्थापन-प्रभाव के कारण वस्तु X की मात्रा मे वृद्धि Q_1Q_3 के बराबर होती है, जबकि ऋणात्मक आय-प्रभाव के कारण X की मात्रा मे कमी Q_3Q_2 के बराबर होती है; परिणामस्वरूप, X की मात्रा मे वास्तविक (net or final) वृद्धि Q_1Q_2 के बराबर होती है और यह वस्तु X पर 'कीमत-प्रभाव' या 'अन्तिम कीमत-प्रभाव' (final price effect on X) है।

यहाँ पर ऋणात्मक आय-प्रभाव के होने पर भी वस्तु X पर मांग का नियम लागू होता है (अर्थात् वस्तु X की कीमत मे कमी होने पर उसकी माँग मे Q_1Q_2 के बराबर वृद्धि होती है); इसका कारण यह है कि ऋणात्मक आय-प्रभाव इतना बलवान (strong) नही है कि वह समस्त प्रतिस्थापन-प्रभाव को खतम कर दे, दूसरे शब्दो मे, यहाँ पर प्रतिस्थापन प्रभाव अधिक बलवान है और ऋणात्मक आय-प्रभाव कमजोर है।

कीमत-प्रभाव तथा गिफिन वस्तुएँ
(PRICE EFFECT AND GIFFEN GOODS)

अब हम एक विशेष प्रकार की निम्न कोटि की वस्तुओ, जिन्हें 'गिफिन वस्तुएँ' कहा जाता है, के सम्बन्ध मे कीमत प्रभाव की विवेचना करेंगे।

कुछ वस्तुएँ ऐसी हो सकती हैं जिनके लिए ऋणात्मक आय प्रभाव इतना बलवान हो सकता है कि समस्त प्रतिस्थापन प्रभाव को खतम करके उससे अधिक हो सकता है। ऐसी स्थिति का अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा खरीदेगा यदि उसकी कीमत गिर जाती है तथा अधिक मात्रा खरीदेगा यदि उसकी कीमत बढ़ जाती है, स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में माँग का नियम लागू नहीं होता। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जबकि उपभोक्ता 'सम्बन्धित निम्न कोटि की वस्तु' पर अपनी आय का एक काफी बड़ा भाग व्यय करता है ताकि वस्तु की कीमत में कमी उपभोक्ता की वास्तविक आय (real income) में पर्याप्त या महत्त्वपूर्ण वृद्धि कर देती है। ऐसी निम्न कोटि की वस्तु को 'गिफिन वस्तु'[13] कहा जाता है और ऐसी स्थिति को 'गिफिन का विरोधाभास' (Giffen's Paradox) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में,

> **एक गिफिन वस्तु (i) एक विशेष प्रकार की निम्न कोटि की वस्तु होती है तथा (ii) यह उपभोक्ता के बजट में इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है कि वह अपनी आय का एक बड़ा भाग इस वस्तु पर व्यय करता है। ऐसी वस्तु के सम्बन्ध में माँग का नियम लागू नहीं होता; अर्थात् ऐसी वस्तु की माँग कीमत में कमी के साथ घटती है तथा कीमत में वृद्धि के साथ बढ़ती है। ऐसी स्थिति को 'गिफिन का विरोधाभास' कहा जाता है। टेक्नीकल भाषा में, जब एक निम्न कोटि की वस्तु का 'कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप ऋणात्मक आय प्रभाव' (negative income effect of price fall) प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त करके उससे अधिक हो जाता है, तो ऐसी वस्तु को 'गिफिन वस्तु' कहा जाता है।[14]**

एक गिफिन वस्तु की कीमत में कमी के परिणाम को चित्र २६ में दिखाया गया है। उपभोक्ता की प्रारम्भिक (original) साम्य की स्थिति तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु R बताता है। माना वस्तु X की कीमत घटती है, परिणामस्वरूप नयी कीमत रेखा LM_1 हो जाती है और उपभोक्ता ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर बिन्दु S पर नयी साम्य की स्थितिप्राप्त कर लेता है। कीमत उपभोग रेखा PCC पीछे को झुकती हुई है। प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव को अलग करने के लिए LM_1 केसमान्तर एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खींचते हैं। रेखा EF तटस्थता वक्र रेखा I_1 को बिन्दु T पर स्पर्श करती है। अत,

प्रतिस्थापन प्रभाव =R से T तक चलन
=वस्तु X की मात्रा में Q_1Q_3 के बराबर वृद्धि

आय प्रभाव =T से S तक चलन
=वस्तु X की मात्रा में Q_3Q_2 के बराबर कमी

वस्तु X की मात्रा
में वास्तविक (net) कमी=Q_1Q_2

---

[13] "It owes this name to Sir Robert Giffen, who is said to have claimed during the nineteenth century that a rise in the price of bread often caused such a severe fall in the real incomes of the poorer labouring classes that they were forced to curtail their consumption of meat and other more expensive foods Bread being still the cheapest food, they consumed more of it and not less now that its price was higer Similarly, if the price of bread fell people would buy less of it For their real income would now have risen, and they would curtail their purchases of bread in order to obtain a more varied diet"

[14] "A Giffen good is (i) a special type of inferior good and (ii) it is quite important in the consumer's budget *in the sense that he spends a large* proportion of his income on it The Law of Demand does not apply in the case of such a good, that is, the demand for such a good decreases with the decrease in price and increases with the increase in price Such a situation is called *Giffen's Paradox* In technical language, when the 'negative income effect of price fall' of an inferior good is so strong as to outweigh the 'substitution effect', such a good is known as Giffen good

स्पष्ट है कि एक गिफिन वस्तु की कीमत मे कमी उस वस्तु की माँग मे कमी कर देती है, इसका कारण है कि ऋणात्मक आय प्रभाव कही अधिक बलवान होता है प्रतिस्थापन प्रभाव से, बलवान 'ऋणात्मक आय प्रभाव' प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त करके उससे अधिक हो जाता है।
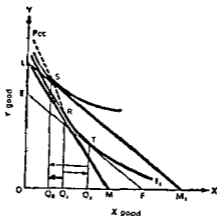
चित्र—२६

प्रश्न

१ (अ) तटस्थता वक्र रेखाओ को परिभाषित कीजिए।
(ब) तटस्थता वक्र रेखाओ की मुख्य विशेषताओ को बताइए।

(a) Define indifference curves
(b) Explain the main characteristics of indifference curves

(Agra, B A I, 1975, Kumaun B A, 1976)

अथवा

तटस्थता वक्र रेखाओ के स्वभाव तथा विशेषताओ को बताइए।

Explain the nature and properties of indifference curves *(Bihar, 1967 A)*

२ "सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर के घटने के नियम' द्वारा प्रतिस्थापन केवल अनुवाद-मात्र नही कहा जा सकता। वास्तव मे यह उपभोक्ता-माँग के सिद्धान्त म एक वास्तविक परिवर्तन है।"—हिक्स। उपर्युक्त कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।

"The replacement of the principle of diminishing marginal utility by the principle of diminishing marginal rate of substitution is not a mere translation It is a positive change in the theory of consumer's demand"—*Hicks* Examine the validity of this remark

अथवा

'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम' की व्याख्या कीजिए। क्या यह 'घटती हुई उपयोगिता के नियम' का केवल अनुवाद मात्र (translation) है?

State and explain the Law of Diminishing Marginl Rate of Substitution Is it merely a translation of the Law of Diminishing Marginal Utility?

[संकेत—सर्वप्रथम 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर' के अर्थ को संक्षेप में बताइए। इसके पश्चात् 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री दीजिए।]

३ उपभोक्ता साम्य क्या है ? तटस्थता वक्रों के प्रयोग से समझाइए कि उस पर ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त कहाँ तक प्रभाव डालता है ?

What is consumer's equilibrium ? Show using indifference curves, how is it affected by the law of diminishing marginal rate of substitution ?

४ तटस्थता वक्र क्या है ? एक उपभोक्ता के सन्तुलन को तटस्थता वक्रो द्वारा समझाइए।

What is an indifference curve ? Explain the equilibrium of a consumer with the help of indifference curves (*Sagar, B A*, 1967)

५ मार्शल तथा हिक्स के अनुसार उपभोक्ता के सन्तुलन की क्या दशाएँ हैं ?

What are the conditions of a consumer's equilibrium according to Marshall and Hicks ?

६ (अ) तटस्थता वक्र-रेखाओं की विशेषताएँ क्या हैं ?

(ब) उपभोक्ता के व्यवहार को स्पष्ट करने में तटस्थता वक्र विश्लेषण किस प्रकार उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है।

(a) What are the characteristics of Indifferance Curves ?
(b) How Indifference Curve Analysis is superior in explaining consumer behaviour.

[संकेत—दूसरे भाग के लिए देखिए 'तटस्थता वक्र विश्लेषण के गुण तथा श्रेष्ठता' नामक शीर्षक के अन्तर्गत (१) से (६) points तक।]

७ चित्रो की सहायता से तटस्थता वक्र रेखाओं के विचार की व्याख्या कीजिए। उपयोगिता विचार पर यह कहाँ तक सुधार है ?

Explain with diagrams the concept of indifference curves How far is it an improvement over the utility concept (*Kanpur, B A I*, 1976)

८ उपयोगिता-विश्लेषण के क्या दोष है ? तटस्थता-विश्लेषण उन्हे कहाँ तक दूर कर सकता है ?

What are the defects of *Utility Analysis ? How far can Indifference Curve Analysis* remove them ?

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर के लिए देखिए 'उपयोगिता विश्लेषण के दोष' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री। दूसरे भाग के लिए देखिए तटस्थता वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री।]

९ किसी वस्तु की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावो की विवेचना कीजिए।

Discuss the income and substitution effect of *a given fall in*

१०. Explain with the help of indifference curves, how changes in the price of any commodity affects its demand

[संकेत—सर्वप्रथम, संक्षेप में तटस्थता वक्र रेखा के अर्थ को स्पष्ट कीजिए। तत्पश्चात् 'कीमत-प्रभाव' (Price effect) की चित्रो की सहायता से पूर्ण विवेचना कीजिए।]

११ तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से उपभोग पर आय में परिवर्तनों के प्रभाव को बताइए।

Explain with the help of indifference curves the effect of changes in income on consumption

१२ तटस्थता वक्र रेखाओं से आप क्या समझते हैं ? इस विधि की सहायता से एक उपभोक्ता की माँग रेखा निकालिए।

What is meant by indifference curves ? Derive the demand curve of a consumer with the help of this technique. *(Raj., B A., 1975)*

22

प्रकट-अधिमान की धारणा

[THE CONCEPT OF REVEALED PREFERENCE]

१. प्राक्कथन (Introduction)

प्रकट-अधिमान सिद्धान्त का निर्माण प्रो० सेम्युलसन (Samuelson) ने किया।[1] इससे पहले माँग सिद्धान्त पर दो विचारधाराएँ (two views) थीं : एक, मार्शल का उपयोगिता-विश्लेषण तथा दूसरा, हिक्स-ऐलन (Hicks-Allen) का तटस्थता-वक्र विश्लेषण'। मार्शल का उपभोक्ता का माँग सिद्धान्त 'गणनावाचक उपयोगिता' (*cardinal utility*) पर आधारित है, अर्थात् इस बात पर आधारित है कि उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) किया जा सकता है हिक्स का माँग सिद्धान्त 'क्रमवाचक उपयोगिता' (*ordinal utility*) पर आधारित है, अर्थात् इस बात पर आधारित है कि उपयोगिता की केवल तुलना की जा सकती है, उसका परिमाणात्मक मापन नहीं हो सकता। परन्तु इन दोनों सिद्धान्तों ने 'अन्तर्निरीक्षणात्मक रीति' ('*Introspective*' method) का प्रयोग किया है, अर्थात् ये दोनों सिद्धान्त उपभोक्ता की माँग की मनोवैज्ञानिक व्याख्या (psychological explanation) करते हैं, अन्तर्निरीक्षणात्मक रीति' इस बात की व्याख्या करती है कि उपभोक्ता, कीमतों व आयों में काल्पनिक (imaginary) परिवर्तनों के उत्तर में, किस प्रकार व्यवहार करेगा। चूँकि हिक्स का तटस्थता-वक्रों के शब्दों में उपभोक्ता माँग सिद्धान्त 'क्रमवाचक उपयोगिता' और 'अन्तर्निरीक्षणात्मक रीति' पर आधारित है, इसलिए तटस्थता-वक्रों के हिक्स के सिद्धान्त को उपभोक्ता की माँग का 'अन्तर्निरीक्षणात्मक क्रमवाचक उपयोगिता सिद्धान्त' ('*Introspective ordinal utility theory*' of consumer's demand) भी कहा जाता है।

प्रो० सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त उपभोक्ता के व्यवहार की एक 'वैज्ञानिक व्याख्या' (*scientific explanation*) प्रदान करता है जिसे उपभोक्ता की माँग की 'आचरणात्मक व्याख्या' (*behaviouristic explanation*) कहा जाता है। विभिन्न कीमत-आय की स्थितियों के अन्तर्गत 'मार्किट बाजारों' में उपभोक्ता के देखे जाने वाले वास्तविक व्यवहार (observed actual behaviour) के आधार पर प्रो० सेम्युलसन ने उपभोक्ता की माँग की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। प्रो० सेम्युलसन की रीति में, विभिन्न वस्तुओं के संयोगों के सम्बन्ध में उपभोक्ता द्वारा अपनी पसन्दों या अपने अधिमानों (preferences) को बताने के लिए उपभोक्ता को किसी 'अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचना' (introspective information) की आवश्यकता नहीं होती। अतः,

---

[1] Prof Samuelson developed his theory of revealed preference in his article 'Consumption Theory in terms of Revealed Preference' *Economica*, 1948

'अन्तनिरीक्षणात्मक या मनोवैज्ञानिक व्याख्या' (*Introspective or psychological explanation*) की तुलना मे प्रो० सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त आचरणात्मक व्याख्या' (*behaviouristic* explanation) प्रदान करता है। चूंकि सम्युलसन का सिद्धान्त 'क्रमवाचक उपयोगिता' (ordinal utility) तथा आचरणात्मक व्याख्या' पर आधारित है, इसलिए इसको उपभोक्ता की माँग का 'आचरणवादी क्रमवाचक उपयोगिता सिद्धान्त' (*behaviourist ordinal utility theory*) भी कहा जा सकता है। प्रो० सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त को कभी-कभी 'माँग के तार्किक सिद्धान्त का तीसरा मूल' (the third root of the logical theory of demand)[2] भी कहा जाता है।

२ प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Revealed Preference Theory)

प्रकट-अधिमान सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित है

(i) उपभोक्ताओं की रुचियाँ (tastes) दी हुई (given) होती हैं और विश्लेषण की अवधि में उनमे कोई परिवर्तन नहीं होता।

(ii) 'चुनाव अधिमान को प्रकट या व्यक्त करता है' (*choice reveals preference*), अर्थात् वस्तुओं के एक संयोग के लिए उपभोक्ता का चुनाव उसके अधिमान को बताता या प्रकट करता है। दूसरे शब्दों में, सम्युलसन का प्रकट अधिमान सिद्धान्त 'अधिमान परिकल्पना' (Preference Hypothesis) पर आधारित है।

(iii) यह 'मजबूत क्रम' (strong ordering) या 'अधिमान परिकल्पना के मजबूत स्वरूप' (strong form of the preference hypothesis) पर आधारित है, अर्थात् यह विभिन्न वैकल्पिक स्थितियों के प्रति तटस्थता के दृष्टिकोण को त्याग देता है (it excludes the attitude of indifference between various alternative situations)। दूसरे शब्दों में, यह 'एक क्रिया प्रकट-अधिमान मान्यता' (the single-act revealed preference) पर आधारित है। सरल शब्दों में, उपर्युक्त विवरण का अर्थ है कि एक दी हुई कीमत-आय स्थिति (price income situation) के अन्तर्गत उपभोक्ता केवल एक ही संयोग (only one or single combination) का चुनता है।

(iv) यह 'सामजस्य (*consistency*) तथा 'सङ्क्रमकता' (transitivity) की मान्यताओं पर आधारित है। वास्तव में सामजस्य जाँच (consistency test) 'मजबूत-क्रम-परिकल्पना' ('strong ordering' hypothesis) में छिपी हुई (hidden) है। सामजस्य मान्यता (consistency assumption) का अर्थ है "चुनाव सम्बन्धी व्यवहार के कोई भी ऐसे दो अवलोकन (observations) नहीं होते जो कि एक व्यक्ति के अधिमान के बारे में परस्पर-विरोधी लक्षण (conflicting evidence) प्रदान करें।"[3] उदाहरणार्थ, यदि एक स्थिति में एक व्यक्ति वस्तु B की तुलना में वस्तु A को चुनता है तो किसी भी अन्य स्थिति में, जिसमें कि A और B दोनों मौजूद हैं, वह वस्तु A की तुलना में वस्तु B को नहीं चुन सकता, यदि उसके व्यवहार में 'सामजस्य' (consistency) है।[4] चूंकि यहाँ पर तुलना दो स्थितियों के बीच है, इसलिए इस 'सामजस्य' को हिक्स 'दो पदों का सामजस्य' (*two term consistency*) कहते हैं।

'सङ्क्रमकता' (*transitivity*) 'तीन पदों के सामजस्य' (*three term consistency*) से

---

[2] "The logical theory of demand derives from three bases marginal utility hypothesis indifference preference hypothesis, and revealed preference hypothesis" Thus, revealed-preference theory can be said as the third root of the logical theory of demand

[3] "No two observations of choice behaviour are made which provide conflicting evidence to the individual s preference"

[4] For example, if an individual chooses A rather than B in a particular instance, then he cannot (consistently) choose B rather than A in any other instance in which A and B both are present.

बिन्दु (जैसे C या B) A के बराबर ही महँगा (equally expensive) है। कीमत रेखा LM के नीचे प्रत्येक बिन्दु (जैसे E, F या G) वस्तुओं की कम मात्राओं (smaller amounts) को बताते हैं अपेक्षाकृत किसी भी बिन्दु के जो कि LM रेखा के ऊपर है, इसका अभिप्राय है कि ऐसे नीचे के बिन्दु (lower points) A की तुलना में कम महँगे (less expensive) हैं अर्थात् सस्ते हैं।

> चूँकि उपभोक्ता संयोग A को वास्तव में खरीदता है अपेक्षाकृत किसी भी अन्य संयोग के (जो कि चाहे 'कम महँगे' हैं, जैसे E, F तथा G, या 'एक समान महँगे' हैं, जैसे B और C), तो इसका अभिप्राय है कि LM रेखा के ऊपर या उसके नीचे कोई भी बिन्दु, बिन्दु A की तुलना में, प्रकट रूप से निम्नकोटि का (inferior) समझा जाता है, अथवा यह कहिए कि A को चुनने में उपभोक्ता, अन्य सभी सम्भव संयोगों के ऊपर, संयोग A के लिए अपने अधिमान (preference) को प्रकट (reveal) करता है, अर्थात् चुनाव अधिमान को प्रकट करता है' (choice reveals preference)। चूँकि LM रेखा के ऊपर प्रत्येक बिन्दु (जैसे, H या K), बिन्दु A की तुलना में अधिक महँगा है (अर्थात् दी हुई आय से उपभोक्ता उनको नहीं खरीद सकता है), तो हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये बिन्दु, बिन्दु A की तुलना में, प्रकट रूप से निम्नकोटि के नहीं समझे जा सकते।[1]

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'मजबूत क्रम' (strong ordering) या 'अधिमान परिकल्पना के मजबूत स्वरूप' (strong form of preference hypothesis) पर आधारित है। इसका अभिप्राय है कि अपने अधिमान के क्रम (scale of preference) में उपभोक्ता दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को एक निश्चित क्रम (definite ordering) प्रदान करता है। चित्र २ में अन्य सभी वैकल्पिक (alternative) संयोगों के ऊपर उपभोक्ता संयोग A को चुनता है, अर्थात् उपभोक्ता विभिन्न वैकल्पिक संयोगों के प्रति तटस्थ (indifferent) नहीं होता, बल्कि वह संयोग A के लिए, अन्य सभी संयोगों के ऊपर, एक निश्चित अधिमान को प्रकट करता है। अतः **"मजबूत क्रम विभिन्न वैकल्पिक स्थितियों के बीच तटस्थता के सम्बन्ध को छोड़ देता है।"**[2]

परन्तु जे० आर० हिक्स अपनी पुस्तक *Revision of Demand Theory* में 'मजबूत क्रम' (*strong ordering*) को स्वीकार नहीं करते हैं बल्कि 'कमजोर क्रम' (*weak ordering*) या 'अधिमान परिकल्पना के कमजोर स्वरूप' (*weak form of the preference hypothesis*) को अधिक सही मानते हैं। हिक्स एक और अतिरिक्त मान्यता (an additional assumption) को मानकर चलते हैं और वह है कि एक उपभोक्ता वस्तुओं की अधिक मात्रा के संयोग को, वस्तुओं की *कम मात्रा के संयोग की तुलना में, सदैव पसन्द करेगा।* हिक्स के 'कमजोर क्रम' के अन्तर्गत 'चुनाव के त्रिकोण' (choice of triangle) के अन्दर सभी वैकल्पिक संयोगों की तुलना में संयोग A को पसन्द किया जायेगा, परन्तु कीमत-रेखा पर विभिन्न बिन्दुओं (अर्थात् विभिन्न संयोगों) की तुलना में

---

[1] As the consumer actually purchased A rather than any of the other combinations (which are either less expensive such as E, F and G, or equally expensive, such as B and C), it means that any point on or below LM is *revealed inferior* to A, or in choosing A the consumer reveals his preference for A over all other possible combinations; that is, choice reveals preference. Further, since any point above LM (such as H or K) is more expensive than A (that is, the consumer cannot purchase them with the given income), we should note that none of these can be revealed inferior to A.

[2] Thus, "strong ordering excludes the relation of indifference between various alternative situations."

उपभोक्ता A को या तो पसन्द करेगा या A के प्रति तटस्थ (indifferent) रहेगा। 'मजबूत क्रम' तथा 'कमजोर क्रम' के बीच अन्तर को प्रो हिक्स के शब्दों में बताया जा सकता है :

> "मजबूत क्रम के अन्तर्गत चुनी हुई स्थिति, त्रिकोण के अन्दर और उसके ऊपर सभी अन्य स्थितियों की तुलना में, पसन्द की गयी दिखायी जाती है, जबकि कमजोर क्रम के अन्तर्गत चुनी हुई स्थिति, त्रिकोण के अन्दर सभी स्थितियों की तुलना में पसन्द की जाती है परन्तु उसी रेखा (same boundary) पर अन्य स्थितियों की तुलना में वह तटस्थ हो सकती है।"[9]

यह भी ध्यान देने की बात है कि सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान एक 'सांख्यिकीय विचार' (*statistical concept*) नहीं है। *सांख्यिकीय* विचार के लिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ता को किसी एक विशेष संयोग के प्रति चुनाव करने की क्रिया का कई बार प्रयोग करने का अवसर या आज्ञा दी जाती है, अर्थात्, उपभोक्ता इस विशेष संयोग को, वैकल्पिक (alternative) संयोग के मुकाबले में बार-बार (*more frequently*) चुनता है। *प्रकट-अधिमान के इस सांख्यिकीय विचार* की तुलना में सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान वैकल्पिक संयोगों के प्रति तटस्थता के सम्बन्ध (relation of indifference) को त्याग देता है और वह 'चुनाव की एक क्रिया' (single act of choice) पर आधारित होता है जिसमें कि उपभोक्ता केवल एक विशेष *संयोग (माना A)* को खरीदता है।[9] इस प्रकार "सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त में तटस्थता का त्याग केवल एक सुविधा की बात नहीं है बल्कि उनकी (अर्थात् सेम्युलसन की) रीति विधान (methodology) की जरूरतों की अनिवार्यता के कारण है।"[10]

४. प्रकट-अधिमान सिद्धान्त तथा सूचनांक (Revealed Preference Theory and Index Number)

प्रकट अधिमान सिद्धान्त को सूचनांक के रूप (index number form) में भी व्यक्त (express) किया जा सकता है। हम दो समय-अवधियों (two periods) को लेते हैं—समय-अवधि १ तथा समय-अवधि २। माना कि समय-अवधि १ तथा समय-अवधि २ में Q_1 तथा Q_2 क्रमशः दो वस्तुओं के संयोग को बताते हैं, इसी प्रकार दोनों अवधियों में क्रमशः P_1 और P_2 कीमत-समूहों (price sets) को बताते हैं।

माना कि उपभोक्ता Q_2 की तुलना में Q_1 को पसन्द करता है तो इस कथन को सूचनांक सूत्र (*index number formula*) द्वारा इस प्रकार बताया जाता है—$\Sigma P_1Q_1 \geqslant \Sigma P_1Q_2$, जबकि ΣP_1Q_1 वस्तुओं के संयोग Q_1 पर कुल व्यय को बताता है और ΣP_1Q_2 वस्तुओं के संयोग Q_2 पर कुल व्यय को बताता है जबकि कीमत P_1 होती है। $\Sigma P_1Q_1 > \Sigma P_1Q_2$, की दशा का अभिप्राय

---

[9] "Under strong ordering the chosen position is shown to be preferred to all other positions *in* and *on* the triangle while under weak ordering it is preferred to all positions within the triangle but may be indifferent to other positions on the same boundary as itself."

[9] It is to be further noted that Samuelson's revealed preference is *not a statistical* concept. To be a statistical concept it is necessary that the consumer is permitted to exercise his choice for a particular combination A several times *i.e.*, the consumer chooses a particular combination more frequently out of the alternatives open to him In contrast to this statistical concept of revealed preference, Samuelson's revealed preference rejects the indifference amongst the various combinations open to the consumer and it is based on a single act of choice in which the consumer buys a particular combination of good A

[10] Thus "the rejection of 'indifference' in Samuelson's theory is not a matter of convenience, but dictated by the requirements of his methodology."

है कि सयोग Q_1 पर किया गया कुल व्यय सयोग Q_2 को खरीदने के लिए भी पर्याप्त था, अर्थात् उपभोक्ता के लिए सयोग Q_2 एक सम्भावित विकल्प (possible alternative) था, परन्तु उपभोक्ता वास्तव मे Q_1 को खरीदता है Q_2 को नहीं, इस प्रकार Q_2 की तुलना मे Q_1 के प्रति अधिमान (preference) प्रकट (reveal) किया जाता है।

> 'परन्तु सूचनांक सूत्र केवल एक रूपान्तर मात्र (tautological) है और उसका कोई नया या भिन्न आर्थिक अर्थ नहीं है, यह केवल कुछ प्रकार की रचनाओ (constructions) के लिए अधिक सुविधाजनक हो सकता है।"[11]

प्रश्न

१ उपभोक्ता के व्यवहार के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
Explain the revealed preference theory of consumer behaviour

---

11 However, the index number formula is only tautological and has no additional economic meaning except that for some constructions it may be more convenient."

23

उत्पादन फंक्शन
[PRODUCTION FUNCTION]

(४) एक उत्पादन फलन एक दिये हुए समय (for a given period of a time) या प्रति इकाई समय (per unit of time) के सन्दर्भ मे रहता है।[7]

(५) एक फलन या फलन के अन्दर (within a function) साधनो को एक-दूसरे के स्थान पर कम मात्रा मे या अधिक मात्रा मे, प्रतिस्थापित (substitute) किया जा सकता है। अधिकांश उत्पादन प्रक्रियाओ म पूँजी को श्रम के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है, एक प्रकार की पूँजी के स्थान पर दूसरी प्रकार की पूजी का प्रतिस्थापन किया जा सकता है, और एक प्रकार के श्रम के स्थान पर दूसरे प्रकार के श्रम का प्रतिस्थापन किया जा सकता है।[8]

(६) एक उत्पादन फलन के स्वभाव को जानने के लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि उत्पादन (outputs) मे परिवर्तन करने के लिए साधनो (inputs) की मात्राओ मे किस प्रकार परिवर्तन किया जा सकता है।

एक साधन की मात्रा को उसके कार्य करने के समय की लम्बाई के शब्दों मे नापा जाता है, जैसे—श्रम-घन्टों मे (in man hours), मशीन घन्टों मे (in machine-hours), इत्यादि। यद्यपि एक फर्म एक पूरे व्यक्ति या पूरी मशीन से कम को प्रयोग मे नहीं ला सकती, परन्तु वह इन साधनों को लम्बे या कम समय के लिए प्रयोग मे ला सकती है, और इस प्रकार प्रयोग मे आने वाले इन साधनो की मात्राओ को परिवर्तित कर सकती हैं।[9]

किसी फर्म के उत्पादन फलन को निर्धारित करते समय, साधनों की परिवर्तनशीलता या स्थिरता[10] तथा उसकी पूर्ण विभाज्यता या अविभाज्यता[11] को ध्यान में रखना होगा। [साधनों की

---

[7] उदाहरणार्थ, माना कि पूँजी की २० इकाइयों + श्रम की ५ इकाइयो + भूमि की ४ इकाइयों के सयोग से ४ घण्टे में किसी वस्तु की १०० इकाइयो का उत्पादन होना है, तो साधन उत्पादन का यह सम्बन्ध (input-output relationship) उत्पादन फलन है जो कि एक दिये हुए समय अर्थात् २ घण्टे के सन्दर्भ मे है।

[8] Within the function inputs can be substituted for one another usually to some degree and frequently to a considerable degree In most production processes capital can be substituted for labour one kind of capital can be substitu ed for another, and one kind of labour can be substituted for another

[9] *The quantity of a factor has to be measured in terms of the length of time for which it is used e g, in man hours machine hours and so on.* While a firm cannot employ less than a *whole* man or machine it can employ them for longer or short periods of time, and in that way can vary the *quantities* of these factors used

[10] साधनों की मात्राओं मे परिवर्तन करके उत्पादन में परिवर्तन किया जाता है। उत्पादन मे परिवर्तन करने के लिए या तो सभी साधनों की मात्राओ को बढ़ाया जा सकता है या कुछ को स्थिर (fixed) रखकर केवल कुछ को परिवर्तित किया जा सकता है। यदि एक साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाता है और अन्य को परिवर्तित किया जाता है तो पहले साधन को 'स्थिर साधन' (fixed factor) तथा अन्य साधनो को परिवर्तनशील साधन (variable factors) कहा जाता है।

[11] प्रत्येक साधन के कार्य करने के समय की मात्रा (amount of time) को, एक बिन्दु के बाद, एक न्यूनतम (minimum) से घटाने मे कठिनाइयाँ हैं। 'आंशिक-समय' (part time) या 'अधिक-समय' (over-time) कार्य करने वाले श्रमिकों को छोड़कर, प्रत्येक श्रमिक को 'कार्य करने की एक न्यूनतम आकार की इकाई' (a minimum size of unit of work) के शब्दो मे रोजगार देना होगा, जैसे ८ घण्टे प्रतिदिन तथा एक सप्ताह या एक महीने के लिए। इसी प्रकार से एक फर्म किसी एक मशीन को एक न्यूनतम आकार से छोटे आकार म प्रयोग नहीं कर सकती, जैसे एक blast furnace के आकार को, टेक्नीकल कारणो के परिणामस्वरूप एक न्यूनतम आकार से नीचे नहीं घटाया जा सकता है। जब प्रयोग मे लाये जाने वाले किसी साधन की मात्रा को किसी एक न्यूनतम आकार से नीचे नहीं घटाया जा सकता है, तो यह कहा जाता है कि साधन 'अविभाज्य इकाइयों' (*indivisible units*) मे प्राप्य है। यदि साधन को छोटी से छोटी किसी मात्रा मे प्राप्त किया जा सकता, जैसे श्रम घण्टो (man hours) या श्रम-मिनटों (man minutes) अपेक्षाकृत श्रम सप्ताहों (man weeks) की तलना मे तो ऐसे साधनों को 'पूर्णतया विभाज्य' (perfectly divisible) कहा जाता है।

साधनों को १०% से बढ़ाया जाता है तो उत्पादन भी ?

ये विशेषताएँ एक उत्पादन फलन की सभी शर्तें समाप्त (exhaust) हो जाती हैं। ...हैं, और इसलिए ये विशेषताएँ इस बात ... विभिन्न स्तरों पर साधनों की भौतिक उत्पादकता ... प्रतिफल की अवस्था (Stage of decr... साधनों में वृद्धि के अनुपात ...

साधनों की स्थिरता (fixity) तथा परिवर्तनशीलता (variability) के आधार पर हो दो प्रकार के उत्पादन फलन होते है—प्रथम, वे उत्पादन फलन जिनमें कुछ साधनों की मात्राएँ स्थिर रहती है और कुछ की परिवर्तनशील, दूसरे, वे उत्पादन फलन जिनमे सभी साधन परिवर्तनशील रहते है। इनका विवरण संक्षेप में आगे दिया गया है।

(७) माना कि एक उत्पादन फलन म कुछ साधन स्थिर हैं तथा कुछ परिवर्तनशील। सुविधा के लिए हम मान लेते हैं कि फर्म एक साधन (माना श्रम) को परिवर्तनशील रखती है तथा अन्य सभी साधनों को स्थिर रखती है, दूसरे शब्दों मे हम 'एक परिवर्तनशील साधन वाले उत्पादन फलन' (production function with one variable input) की विवेचना करते हैं। ऐसे उत्पादन फलन को 'अल्पकालीन उत्पादन फलन' (short period production function) भी कहते है क्योंकि अल्पकाल मे ही कुछ साधन स्थिर रहते है, दीर्घकाल में तो सभी साधन परिवर्तनशील हो जाते हैं।

> जब एक फर्म, अन्य साधनो को स्थिर रखते हुए, एक साधन (माना श्रम) में वृद्धि करके उत्पादन को बढ़ाती है, तो वह स्थिर साधनो और परिवर्तनशील साधनो के बीच अनुपातो (proportion) को परिवर्तित करती है।[13]

परिवर्तनशील अनुपातो के नियम मे ऐसा ही होता है। अत 'उत्पत्ति ह्रास नियम' या 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' उत्पादन फलन की एक अवस्था (phase) है।[14]

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम को तीन अवस्थाओं (stages) मे विभाजित किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, अन्य साधनो को स्थिर रखते हुए, जब एक साधन को परिवर्तनशील रखा जाता है तो 'साधन-उत्पादन सम्बन्ध' अर्थात् उत्पादन फलन ('input-output relation', that is, production function) को तीन अवस्थाओ मे बाँटा जाता है ... ।)

अवस्था एक (stage I) मे कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढता है या सीमान्त उत्पादन (marginal product) बढ़ता है। दूसरे शब्दो मे, पहली अवस्था 'बढ़ते हुए उत्पादन' अर्थात् 'बढ़ते हुए औसत उत्पादन' (stage of increasing average product) की होती है।

अवस्था दो (stage II) मे कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढता है अर्थात सीमान्त उत्पादन घटने लगता है, और औसत उत्पादन भी गिरने लगता है। अत दूसरी अवस्था 'घटते हुए

---

[11] "Both the variability or fixity of factors, and their perfect divisibility or indivisibility, have to be taken into account in specifying the production fuction of a firm These features help to determine the nature of a production function, hence what the physical productivities of the factors will be at different levels of output."

[13] When a firm, keeping other factors constant, expands its output by increasing the amount of one factor (say labour) it changes the *proportions* between the fixed inputs and the variable input.

[14] The law of diminishing returns or variable proportions is a phase of production function.

औसत उत्
product) को है, उत्पादन फक्शन एक दिये हुए समय (for a given period of a time) या
r unit of time) के सन्दर्भ मे रहता है ।[?]

अवस्था तीन (stage फक्शन के अन्दर (within a फारमर्शन) साधनों को एक-दूसरे के इससे 'कुल उत्पादन घटने लगता है, मात्रा मे, तीसरी अवस्था 'घटते हुए ute) किया जा सकता है। diminishing total product) की होती है। किया जा सकता है

[नोट—'परिवर्तनशील अनुपातों के नियम' के उदाहरण तथा चित्र, तीनो अवस्थाओ के पूर्ण विवरण एव इनके लागू होने के कारण के लिए देखिए 'उत्पत्ति ह्रास नियम' के अध्याय को।][15]

(८) अब हम ऐसे उत्पादन फक्शन को लेते हैं जिसमे सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं और कोई भी साधन स्थिर नहीं होता। ऐसे उत्पादन फक्शन को 'दीर्घकालीन उत्पादन फक्शन' (*long term production function*) भी कहते हैं। दूसरे शब्दो मे अब हम 'सभी परिवर्तनशील साधनो के साथ उत्पादन फक्शन' (*Production function with all the variable inputs*) की संक्षिप्त विवेचना करते हैं।

> जब सभी साधनो मे एक साथ परिवर्तन होता है तो यह कहा जाता है कि फर्म के 'प्लान्ट का पैमाना' (scale of plant) बदल गया। ऐसी स्थिति मे उत्पादन या प्रतिफल (production or returns) मे जो परिवर्तन होता है उसके लिए 'पैमाने का प्रतिफल' (returns to scale) के वाक्यांश (phrase) का प्रयोग किया जाता है।

यहाँ यह मान लिया जाता है कि सभी साधनों को एक समान अनुपात (in the same proportion or in equal proportion) मे बढ़ाया जाता है। **जब साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने मे वृद्धि हो जाती है) तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा तीन अवस्थाएं** (*three stages*) **दिखाती है :**

(i) **पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था** (Stage of increasing returns to scale)—इस अवस्था मे कुल उत्पादन, साधनों मे वृद्धि के अनुपात से अधिक अनुपात मे बढ़ता है। उदाहरणार्थ ऐसी स्थिति मे यदि सभी साधनो को १०% से बढाया जाता है [अर्थात् पैमाने (scale) को १०% से बढ़ाया जाता है] तो उत्पादन (output) १५% से बढ़ जायेगा, अर्थात् १०% से अधिक बढ़ेगा। पैमाने से बढ़ते हुए प्रतिफल प्राप्त होने का मुख्य कारण बड़े पैमाने की विभिन्न प्रकार की बचतें (economies) हैं। [परन्तु ध्यान रहे कि टेक्नोलोजी मे सुधार के परिणामस्वरूप बचतो को शामिल नही किया जाता है क्योकि उत्पादन फक्शन एक दी हुई टेक्नोलोजी के सन्दर्भ मे परिभाषित किया जाता है।]

(ii) **पैमाने के समान या स्थिर प्रतिफल की अवस्था** (Stage of constant returns to scale)—इस अवस्था मे उत्पादन उसी अनुपात मे बढता है जिस अनुपात मे साधनो को बढ़ाया

---

[15] परीक्षा मे उत्पादन फक्शन पर प्रश्न के स्वभाव के अनुसार विद्यार्थी उदाहरण तथा चित्र को दे सकते हैं या छोड सकते हैं।

सभी साधनों को १०% से बढ़ाया जाता है तो उत्पादन भी १०%

ये विशेषताएं एक उत्पादन फलन ...ते पैमाने की सभी बचतें समाप्त (exhaust) हो जाती हैं।

इसलिए व विशेषताएँ इन बड़

साधनों की भौतिक उत्पादकता घटते हुए प्रतिफल की अवस्था (Stage of decreasing returns to

में कुल उत्पादन साधनों म वृद्धि के अनुपात से कम अनुपात में बढ़ता है।

सभी साधनों को १०% से बढ़ाया जाता है, तो उत्पादन केवल ८% से ही बढ़ता है, अर्थात् १०% से कम बढ़ता है।

(६) अभी तक हमने उत्पादन फलन के दो रूप देखे। पहले रूप म एक साधन को परिवर्तनशील रखा तथा अन्य सभी साधनों को स्थिर रखा। दूसरे रूप में सभी साधनों को परिवर्तनशील रखा। अब हम एक ऐसे उत्पादन फलन को लेते हैं जिसमें कुछ साधनों को स्थिर रखकर केवल दो साधनों को परिवर्तनशील रखते हैं और ये दो साधन एक-दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) भी किये जा सकते हैं।

इस प्रकार का उत्पादन फलन बताता है कि उत्पादन के एक निश्चित स्तर (माना ५०० इकाइयाँ) को दो परिवर्तनशील साधनों (माना, श्रम तथा पूँजी) के कई संयोगों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, इसी प्रकार उत्पादन के दूसरे स्तर (माना १,००० इकाइयाँ) की प्राप्ति के लिए दोनों परिवर्तनशील साधनों के कई संयोग हो सकते हैं। यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट होता है

	श्रम की इकाइयाँ	पूँजी की इकाइयाँ	उत्पादन की इकाइयाँ
स्थिति १ (Situation I)	१०	८	५००
	६	१२	५००
	२	२०	५००
स्थिति २ (Situation II)	२०	१०	१,०००
	१५	२०	१,०००
	१०	३५	१,०००

यदि हम स्थिति I को एक चित्र द्वारा दिखायें तो हमें बायें से दायें को गिरती हुई एक रेखा प्राप्त हो जायेगी, जिसे अर्थशास्त्री 'सम-उत्पाद रेखा' (Isoproduct curve) कहते हैं क्योंकि यह रेखा 'समान उत्पादन', जो दो साधनों (श्रम तथा पूँजी) के विभिन्न संयोगों द्वारा प्राप्त होता है, को बताती है। इसी प्रकार यदि स्थिति II को चित्र द्वारा व्यक्त किया जाये तो हमें एक दूसरी 'सम-उत्पाद रेखा' प्राप्त हो जायेगी जो कि उत्पादन के एक दूसरे 'समान स्तर' को बतायेगी, इत्यादि। अतः

> 'दो परिवर्तनशील साधनों वाले उत्पादन फलन' (Production function with two variable inputs) को सम-उत्पादन रेखाओं के एक परिवार (a family of isoproduct curve) के द्वारा दिखाया जा सकता है।

[नोट—सम-उत्पाद रेखाओं के पूर्ण विवरण के लिए आगे एक अलग अध्याय देखिए।]

परिशिष्ट (APPENDIX)
उत्पादन फंक्शन का ग्राफ द्वारा स्पष्टीकरण (GRAPHICAL DEPICTION OF PRODUCTION FUNCTION)

हम उत्पादन फंक्शन के विचार को, संक्षेप मे, निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं
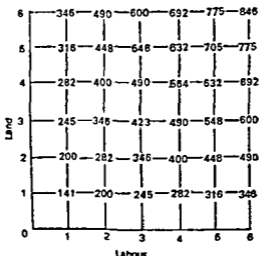
उपर्युक्त तालिका मे एक तरफ पड़ी रेखा पर श्रम (Labour) को तथा दूसरी तरफ खड़ी रेखा पर भूमि (Land) को दिखाया गया है, श्रम तथा भूमि दोनों की ६-६ इकाइयाँ ली गयी हैं। तालिका से अनेक बातें स्पष्ट होती हैं

(१) तालिका को देखकर हम श्रम तथा भूमि के विभिन्न सयोगों से प्राप्त उत्पादन की मात्राओं को ज्ञात कर सकते हैं। उदाहरणाथ,

श्रम की इकाइयाँ		भूमि की इकाइयाँ		उत्पादन की मात्रा
१	+	६	→	३४६
२	+	३	→	३४६
३	+	२	→	३४६
६	+	१	→	३४६

श्रम तथा भूमि के उपर्युक्त विभिन्न सयोग उत्पादन की एकसमान मात्रा अर्थात् ३४६ इकाइयाँ प्रदान करते हैं, दूसरे शब्दो म, उत्पादन की एक ही मात्रा को साधन के कई भिन्न सयोगों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार वस्तु की ४६० इकाइयों या ५४८ इकाइयो को उत्पादित करने के लिए, श्रम तथा भूमि के विभिन्न सयोगो को तालिका से ज्ञात किया जा सकता है।

(२) तालिका से यह ज्ञात किया जा सकता है कि किसी एक साधन को स्थिर (fix) रख कर तथा दूसरे साधन को परिवतनशील (variable) करके उत्पादन की मात्रा पर क्या प्रभाव

पड़ता है। दूसरे शब्दों में, 'उत्पत्ति ह्रास नियम' (Law of Diminishing Returns) का ज्ञान प्राप्त होता है क्योंकि उत्पत्ति के नियमों (Laws of Returns) में एक साधन को स्थिर रखकर दूसरे को परिवर्तनशील रखा जाता है।

उदाहरणार्थ, हम भूमि की मात्रा को स्थिर रखते हैं। भूमि की १ इकाई के साथ श्रम की बढ़ती हुई इकाइयों से उत्पादन की १४१, २००, २४५, २८२, ३१६ तथा ३४६ इकाइयाँ प्राप्त होती हैं। दूसरे शब्दों में, श्रम की अतिरिक्त (additional) इकाइयों से कुल उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होती है, अर्थात् श्रम की सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है।[16] यही बात उत्पत्ति ह्रास नियम बताता है।

इसी प्रकार हम श्रम को १ इकाई पर स्थिर रखकर और भूमि की इकाइयों को क्रमशः बढ़ाकर उत्पादन पर प्रभाव ज्ञात कर सकते हैं, अर्थात् परिवर्तनशील साधन भूमि के सन्दर्भ में उत्पत्ति ह्रास नियम की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

(३) अब हम किसी भी साधन को स्थिर नहीं रखते, बल्कि दोनों साधन परिवर्तनशील रखते हैं। तालिका से यह ज्ञात किया जा सकता है कि यदि दोनों साधनों को समान अनुपात में बढ़ाया जाय तो उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़ेगा, ऐसी स्थिति को 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (*Constant returns to scale*) कहते हैं। तालिका से स्पष्ट है—

श्रम की इकाइयाँ		भूमि की इकाइयाँ	उत्पादन की मात्रा
१	+	१	१४१
२	+	२	२८२
३	+	३	४२३
४	+	४	५६४
५	+	५	७०५
६	+	६	८४६

यहाँ पर हम देखते हैं कि श्रम तथा भूमि की इकाइयों को दुगुना कर देने से उत्पादन, पहले की तुलना में (अर्थात् १४१ का) दुगुना होकर २८२ हो जाता है। इसी प्रकार यदि श्रम तथा भूमि की मात्राओं को तिगुना कर दिया जाये (अर्थात् ३ इकाई श्रम + ३ इकाई भूमि को लिया जाये) तो उत्पादन, १४१ का, तिगुना होकर ४२३ हो जाता है, इत्यादि। अतः 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' लागू होते हैं।

(४) अब हम उत्पादन के साधनों (श्रम व भूमि) को समान अनुपात में नहीं बढ़ाते। दोनों साधनों को विभिन्न अनुपातों में बढ़ाते हैं, ऐसी स्थिति में उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे **'प्रतिस्थापन के प्रतिफल'** (Returns to Substitution) कहते हैं। यह बात तालिका से स्पष्ट है—

श्रम की इकाइयाँ		भूमि की इकाइयाँ	उत्पादन की मात्रा
१	+	१	१४१
२	+	३	३४६
(दुगुना श्रम)		(तिगुनी भूमि)	
३	+	४	४६०
....		....	....
इत्यादि		इत्यादि	इत्यादि

[16] श्रम की दूसरी इकाई से उत्पादन में वृद्धि = (२०० − १४१) = ५९, श्रम की तीसरी इकाई से उत्पादन में वृद्धि = (२४५ − २००) = ४५, चौथी इकाई से वृद्धि = (२८२ − २४५) = ३७, पाँचवीं इकाई से वृद्धि = (३१६ − २८२) = ३४, तथा छठी इकाई से वृद्धि = (३४६ − ३१६) = ३०, दूसरे शब्दों में, परिवर्तनशील साधन श्रम की सीमान्त उत्पादकताएँ (marginal productivities) हैं—५९, ४५, ३७, ३४ तथा ३०, सीमान्त उत्पादकता क्रमशः घटती जाती है (अथवा कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है)। इस प्रकार उत्पत्ति ह्रास नियम के कार्यकरण की जानकारी प्राप्त होती है।

इस प्रकार साधनो को विभिन्न अनुपातो मे मिलाने से उत्पादन पर प्रभाव को ज्ञात किया जा सकता है; अर्थात् 'प्रतिस्थापन के प्रतिफल' ज्ञात किये जा सकते हैं।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त तालिका से 'उत्पत्ति ह्रास नियम' (Law of Diminishing Returns), 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (Constant Returns to Scale), तथा 'प्रतिस्थापन के प्रतिफल' (Returns to Substitution) सभी का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रस्तुतीकरण महत्त्वपूर्ण है। निस्सन्देह एक उत्पादन फलन के अन्तर्गत एक फर्म उत्पादन के लिए प्राप्य अनेक तकनीकों मे से सबसे कुशल तकनीक का चुनाव करके अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

प्रश्न

१. उत्पादन फलन के अर्थ तथा स्वभाव को बताइए।
Explain the meaning and nature of Production Function

24 उत्पत्ति के नियम
[LAWS OF RETURNS]

उत्पत्ति ह्रास नियम
(LAW OF RETURNS)

विभिन्न उत्पत्ति के साधनो के सयोग (combination) से किसी वस्तु का उत्पादन होता है। कम लागत तथा कुशल उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पत्ति के साधनों को उचित अनुपातो मे मिलाया जाय।

उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि साधनो की मात्रा मे वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि होगी। उत्पत्ति के प्राय तीन नियम बताये जाते हैं—(१) यदि उत्पत्ति के साधनो मे वृद्धि करने के अनुपात से अधिक उत्पादन बढ़ता है तो इसे 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' (Law of increasing returns) कहते हैं। (२) उत्पादन के साधनो का अधिक प्रयोग करने तथा उत्पादन को बढ़ाते जाने से जब बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सब बचतें समाप्त हो जाती हैं और वस्तु की प्रति इकाई लागत निम्नतम हो जाती है तो कहा जाता है कि उत्पादन 'अनुकूलतम स्तर' (optimum scale) पर हो रहा है, यदि इसी स्थिति मे उत्पादन चलता रहता है तो 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' (Law of constant returns) लागू होता है। (३) यदि साधनों की वृद्धि की अपेक्षा उत्पादन कम अनुपात मे बढ़ता है तो इसे 'उत्पत्ति ह्रास नियम' (Law of diminishing returns) कहते हैं।

कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार, उत्पत्ति का मूलतया एक ही नियम है और वह है 'उत्पत्ति ह्रास नियम'। उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति स्थिरता नियम केवल थोड़े समय के लिए ही लागू होते है; अन्त मे, उत्पत्ति ह्रास नियम ही क्रियाशील होता है। दूसरे शब्दो मे, 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' तथा 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' उत्पत्ति ह्रास नियम की अस्थायी अवस्थाएँ (temporary phases) है।

मार्शल (तथा अन्य प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्रियो) के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम केवल कृषि या भूमि पर लागू होता है। मार्शल ने केवल भूमि को स्थिर माना तथा उत्पत्ति के अन्य साधनो को परिवर्तनशील रखा। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री मार्शल के मत से सहमत नहीं हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार यह नियम केवल कृषि या भूमि के सम्बन्ध मे ही लागू नहीं होता बल्कि उद्योगो तथा अन्य सभी क्षेत्रो मे लागू होता है।

आधुनिक मत—परिवर्तनशील अनुपातो का नियम
(MODERN VIEW—THE LAW OF VARIABLE PROPORTIONS)

१. प्राक्कथन (Introduction)

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार यदि किसी भी एक साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूंजी या प्रबन्ध) को स्थिर रखा जाये तथा अन्य साधनो को बढ़ाया जाय तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होगा। उत्पत्ति ह्रास नियम की इस व्यापक क्रियाशीलता (general applicability)

की बात पर जोर देने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति ह्रास नियम को 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' (Law of variable proportions) कहते हैं ।[1]

२. नियम का कथन (Statement of the Law)

'उत्पत्ति ह्रास नियम' या 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' एक टेक्नोलोजीकल सिद्धान्त (technological principle) है । यह प्रयोग मे लाये जाने वाले परिवर्तनशील उत्पत्ति के साधनो की भौतिक मात्राओ (physical quantities of inputs) तथा उत्पादन की भौतिक मात्राओ के बीच सम्बन्ध बताता है ।

श्रीमती जोन रोबिन्सन (Mrs Joan Robinson) के अनुसार,

> "उत्पत्ति ह्रास नियम बताता है कि किसी एक उत्पत्ति के साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाय तथा अन्य साधनो की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाय तो, एक बिन्दु के बाद, उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होगी ।"[2]

प्रो० बेनहम के अनुसार,

> "उत्पादन के साधनों के सयोग मे एक साधन का अनुपात ज्यो-ज्यों बढ़ाया जाता है त्यो-त्यो, एक बिन्दु के बाद, उस साधन का सीमान्त तथा औसत उत्पादन घटता जाता है ।"[3]

---

[1] 'परिवर्तनशील अनुपातो के नियम' के अतिरिक्त इस नियम को कुछ अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जिनका विवरण यहाँ दिया जाता है । इसको 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' इसलिए कहते हैं क्योकि उत्पादन की मात्रा उत्पत्ति के साधनो के परिवर्तनशील अनुपातो पर निर्भर करती है । इसे 'अनुपात का नियम' (Law of proportionality) भी कहा जाता है क्योकि उत्पादन उत्पत्ति के साधनो के मिलाने के अनुपात पर निर्भर करता है । इसे 'प्रतिफल का नियम' (Law or returns) भी कहते हैं क्योकि उत्पत्ति के साधनो के मिलाने के अनुपात मे परिवर्तन करने से उत्पादन या प्रतिफल मे परिवर्तन होता रहता है । इसे 'असमान-अनुपातीय प्रतिफल का नियम' (*Law of non-proportional returns or Law of non-*proportionate output) भी कहते हैं क्योकि उत्पत्ति के साधनो के मिलने के अनुपात मे परिवर्तन करने से उत्पादन या प्रतिफल मे असमान अनुपात म परिवर्तन होता है, जैसे कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ सकता है या घटती हुई गति से, इत्यादि । इसे 'सीमान्त उत्पादकता ह्रास नियम' या 'घटती हुई सीमान्त उत्पादकता का नियम' (Law of diminishing marginal productivity) भी कहते है क्योकि एक सीमा के बाद सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है । प्रो० बोल्डिंग (Boulding) इसे 'अन्तत: घटती हुई सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम' (Law of eventually diminishing marginal physical productivity) कहना अधिक पसन्द करते है क्योकि उनके अनुसार, 'घटता हुआ प्रतिफल (diminishing returns) एक ढीला (loose) शब्द है जिसके कई अर्थ निकाले जा सकते हैं । प्रो० सेम्युलसन (Samuelson) तथा श्रीमती जोन रोबिन्सन इसको पुराने नाम अर्थात् 'उत्पत्ति ह्रास नियम या ह्रासमान प्रतिफल नियम' (Law of diminishing returns) के नाम से ही पुकारते हैं ।

[2] "The Law of Diminishing Returns as it is usually formulated, states that with a fixed amount of any one factor of production successive increases in the amount of other factors will, after a point, yield a diminishing increment of the product"
—Mrs. Joan Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p. 330

[3] "As the proportion of one factor in a combination of factors is increased, after a point, the marginal and average product of that factor will diminish"
—Benham, *Economics*, p. 128.

अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भी इसी प्रकार की परिभाषाएँ दी हैं।[१]

३ नियम की व्याख्या (Explanation)

श्रीमती जान रोबिन्सन उत्पत्ति में एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों को परिवर्तनशील रखती हैं। प्रो० बेन्हम अन्य साधनों को स्थिर रखकर केवल एक साधन में वृद्धि करके सीमान्त उत्पादन मालूम करते हैं। कुछ अन्य आधुनिक अर्थशास्त्री, जैसे—स्टिगलर, बोल्डिंग, इत्यादि भी अन्य साधनों को स्थिर रखकर केवल एक साधन को परिवर्तनशील रखते हैं। परन्तु इन दोनों दृष्टिकोणों में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि मुख्य बात यह है कि कुछ साधन स्थिर होने चाहिए और कुछ परिवर्तनशील।

इस नियम को समझने के लिए तीन शब्दों का समझना आवश्यक है—कुल उत्पादन (Total Product) सीमान्त उत्पादन (Marginal Product) तथा औसत उत्पादन (Average Product)। किसी परिवर्तनशील साधन (variable factor) के एक निश्चित इकाइयों के प्रयोग से जो उत्पादन प्राप्त होता है उसे कुल उत्पादन' (TP) कहते हैं। साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे 'सीमान्त उत्पादन' (MP) कहते हैं। कुल उत्पादन में परिवर्तनशील साधन की प्रयोग की जाने वाली कुल इकाइयों का भाग देने से जो प्राप्त होता है उसे 'औसत उत्पादन' (AP) कहते हैं।[२]

इस नियम को सीमान्त उत्पादन (Marginal Product), कुल उत्पादन (Total Product) तथा औसत उत्पादन (Average Product), इन तीन शब्दों (terms) में व्यक्त किया जाता है। यह निम्न उदाहरणों से स्पष्ट होता है। माना कि श्रम परिवर्तनशील साधन है तथा भूमि और पूँजी स्थिर हैं। श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयों के प्रयोग करने से जो उत्पादन प्राप्त होता है वह अग्र तालिका में दिया गया है

---

[१] कुछ अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों (स्टिगलर, बोल्डिंग तथा सेम्युलसन) की परिभाषाएँ नीचे दी गयी हैं

"If the quantity of one productive service is increased by equal increments, the quantities of other productive services remaining fixed the resulting increments of product will decrease after a certain point." —Stigler, *Theory of Price*, p 116

"As we increase the quantity of any one input which is combined with a fixed quantity of the other inputs marginal physical productivity of the variable input must eventually decline" —Boulding *Economic Analysis* p 589

"An increase in some inputs relative to other comparatively fixed inputs will cause output to increase but after a point, the extra output resulting from the same additions of input will become less and less. This falling off of extra returns is a consequence of the fact that the new doses of the varying resources have less and less of the constant resources to work with —Samuelson, *Economics—An Introductory Analysis*, p 27)

[२] उदाहरणार्थ, माना कि परिवर्तनशील साधन श्रम है तथा अन्य साधन स्थिर हैं। माना कि ४ श्रमिकों का प्रयोग करने से वस्तु का उत्पादन २३ इकाइयों के बराबर होता है, तो यह 'कुल उत्पादन' (TP) हुआ। यदि श्रम की एक और इकाई बढ़ायी जाती है अर्थात् ५ श्रमिक हो जाते हैं तो कुल उत्पादन २६ इकाइयों के बराबर हो जाता है। केवल पाँचवें श्रमिक के प्रयोग से कुल उत्पादन में (२६—२३)=३ इकाइयों के बराबर वृद्धि होती है, इसे 'सीमान्त उत्पादन' (MP) कहते हैं। कुल उत्पादन अर्थात् २६ इकाइयों में साधन श्रम की कुल इकाइयों अर्थात् ५ इकाइयों का भाग देने से $\frac{२६}{५}$=५ २ इकाइयों के बराबर उत्पादन प्राप्त होता है, इसे 'औसत उत्पादन' (AP) कहते हैं।

श्रमिकों की संख्या	कुल उत्पादन (TP) (मैट्रिक टनों मे)	औसत उत्पादन (AP) (मैट्रिक टनों मे)	सीमान्त उत्पादन (MP) (मैट्रिक टनों मे)	विशेष कथन (Remarks)
१	४	४ ०	४	
२	११	५ ५	७	
३	१९	६ ३३	८	Stage I
४	२७	६ ७५	८	
५	३४	६ ८	७	
६	३९	६ ५	५	
७	४२	६ ०	३	
८	४४	५·५	२	Stage II
९	४५	५ ०	१	
१०	४५	४ ५	०	
११	४४	४·०	—१	Stage III

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयों के प्रयोग करने से प्राप्त उत्पादन को तीन अवस्थाओं (three stages) मे बाँट सकते हैं

प्रथम अवस्था (Stage I)—प्रारम्भ मे जब श्रम की इकाइयों को बढ़ाया जाता है तो स्थिर साधनों (भूमि तथा पूँजी) का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगता है और सीमान्त उत्पादन बढ़ता है अर्थात कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है, अत प्रारम्भ मे प्रथम अवस्था में कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन तीनो बढ़ते हैं।

इस अवस्था मे ही एक स्थान पर (उदाहरण मे ४ इकाई पर) सीमान्त उत्पादन (MP) अधिकतम होकर घटना शुरू हो जाता है[6] परन्तु फिर भी औसत उत्पादन (AP) बढ़ता है और एक स्थान पर (अर्थात् श्रम की ५वीं इकाई पर) AP बढ़कर अधिकतम हो जाती है। चूँकि इस अवस्था मे औसत उत्पादन (AP) निरन्तर बढ़ता है इसलिए इस अवस्था को 'बढ़ते हुए औसत उत्पादन की अवस्था (Stage of Increasing Average Returns) कहते हैं।[7]

---

[6] मार्शल के अनुसार जहाँ तक सीमान्त उत्पादन (MP) बढ़ता है वहाँ तक 'बढ़ते हुए उत्पादन की अवस्था (Increasing Returns) रहती है जहाँ से सीमान्त उत्पादन घटने लगता है वहाँ से घटते हुए उत्पादन की अवस्था (Diminishing Returns) लागू हो जाती है। परन्तु अधिकाश आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार जहाँ तक औसत उत्पादन (AP) बढ़ता है वहाँ तक 'बढ़ते हुए उत्पादन की अवस्था' रहती है तथा जहाँ से औसत उत्पादन (AP) घटने लगता है वहाँ से 'घटते हुए उत्पादन की अवस्था' लागू होने लगती है।

[7] इस अवस्था मे एक बात यह ध्यान रखने की है कि यद्यपि एक सीमा के बाद सीमान्त उत्पादन घटता है परन्तु फिर भी औसत उत्पादन बढ़ता है। ऐसा क्यों होता है ? जब तक प्रयोग मे लाया जाने वाला अन्तिम श्रमिक कुल उत्पादन मे पिछले सभी श्रमिकों के औसत उत्पादन से अधिक उत्पादन बढाता है तब तक औसत उत्पादन बढ़ेगा और यदि कम उत्पादन बढ़ाता है तो औसत घटेगा। यह बात एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट की जा सकती है—माना ९ श्रमिक लगे हुए हैं तो वस्तु का कुल उत्पादन ४५ टन है, इसलिए औसत उत्पादन (AP) ५ टन हुआ। यदि एक श्रमिक और लगाया जाता है और उसका सीमान्त उत्पादन ८ टन है तो अब कुल श्रमिक १० हुए कुल उत्पादन, (४५+८)=५३ टन हुआ, और औसत उत्पादन $\frac{५३}{१०}$=५ ३ टन हुआ, अर्थात् औसत उत्पादन, बढ़ जाता है क्योंकि विचाराधीन अन्तिम श्रमिक (अर्थात्
(Contd.)

दूसरी अवस्था (Stage II)—इस अवस्था में औसत उत्पादन गिरने लगता है। कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है क्योंकि सीमान्त उत्पादन (MP) भी गिर रहा है। चूँकि इस अवस्था से औसत उत्पादन गिरने लगता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस अवस्था से 'घटते हुए औसत उत्पादन का नियम' (Law of diminishing average returns) लागू हो जाता है।

तीसरी अवस्था (Stage III)—इस अवस्था में कुल उत्पादन गिरने लगता है क्योंकि सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक (negative) हो जाता है। चूँकि इस अवस्था से कुल उत्पादन गिरने लगता है इसलिए यह कहा जाता है कि इस अवस्था से 'घटते हुए कुल उत्पादन का नियम' (Law of diminishing total returns) लागू हो जाता है।

चित्र—१

नियम की संलग्न चित्र नं० १ द्वारा व्याख्या की जा सकती है।

चित्र में तीनों अवस्थाएँ स्पष्ट हैं जिनकी व्याख्या हम ऊपर कर चुके हैं।

(i) बिन्दु 'F' को मोड़ या मुकाव का बिन्दु (point of inflexion) कहते हैं। क्योंकि इस बिन्दु के पहले तक कुल उत्पादन (TP) तीव्र गति से बढ़ता है (क्योंकि सीमान्त उत्पादन तेजी से बढ़ता है) और इसलिए O से F तक TP रेखा OX के प्रति उन्नतोदर (convex) है; तथा इस बिन्दु के बाद से कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है (क्योंकि सीमान्त उत्पादन घटने लगता है) और इसलिए इस बिन्दु के बाद से TP रेखा OX के प्रति नतोदर (concave) हो जाती है। यह ध्यान रखने की बात है कि बिन्दु 'F', बिन्दु 'A' (जहाँ पर कि सीमान्त उत्पादन अधिकतम है) के ठीक ऊपर है।
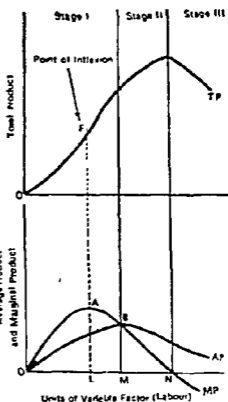
(ii) व्यवहार में एक उत्पादक प्रायः दूसरी अवस्था (stage II) में पाया जायेगा। तीसरी अवस्था में पाये जाने का प्रश्न ही नहीं है क्योंकि इस अवस्था में कुल उत्पादन (TP) घटने लगता है। पहली अवस्था में भी उत्पादक नहीं पाया जायेगा क्योंकि इस अवस्था में कुल उत्पादन (TP)

१०वें श्रमिक) का सीमान्त उत्पादन पिछले सब श्रमिकों के (अर्थात् ९ श्रमिकों) के औसत उत्पादन से अधिक है। इसके विपरीत, १०वें श्रमिक का सीमान्त उत्पादन ३ टन है तो औसत उत्पादन गिरेगा क्योंकि यह पिछले सब श्रमिकों के औसत उत्पादन से कम है। इसका अर्थ यह हुआ कि सीमान्त उत्पादन रेखा (MP curve) औसत उत्पादन रेखा (AP curve) को उसके सबसे [illegible] बिन्दु पर काटेगी, क्योंकि जब MP>AP, तो AP रेखा ऊपर बढ़ती हुई होगी, तथा [illegible] P<AP, तो AP रेखा गिरती हुई होगी, जैसा कि नियम के चित्र नं० १ से स्पष्ट [illegible]।

तथा औसत उत्पादन (AP) बढ़ते हैं। *उत्पादक केवल दूसरी अवस्था में ही पाया जायेगा क्योंकि* इसमे सीमान्त उत्पादन (MP), तथा औसत उत्पादन (AP) दोनों घटने लगते हैं और कुल उत्पादन (TP) घटती हुई दर से बढ़ते-बढ़ते बिन्दु C पर अधिकतम होता है (यहाँ पर सीमान्त उत्पादन शून्य हो जाता है)। दूसरे शब्दों मे, उत्पादक OM से कम और ON से अधिक श्रमिकों को नही लगायेगा इसलिए बिन्दु M तथा N दो टेक्नीकल सीमा की स्थितियों' (technical limiting positions) को बताते हैं।

(iii) बिन्दु A' पर सीमान्त उत्पादन अधिकतम हो जाता है और उसके बाद से घटने लगता है इसलिए इसको 'घटते हुए सीमान्त उत्पादन का बिन्दु' (Point of diminishing marginal returns) कहते हैं। बिन्दु 'B' के बाद से औसत उत्पादन घटने लगता है इसलिए इसे घटते हुए औसत उत्पादन का बिन्दु' (Point of diminishing average returns) कहते हैं। इसी प्रकार, बिन्दु 'C के बाद से कुल उत्पादन घटने लगता है इसलिए इसे 'घटते हुए कुल उत्पादन का बिन्दु (Point of diminishing total returns) कहते हैं।

संक्षेप मे उपयुक्त व्याख्या के सन्दर्भ म इस नियम का कथन इस प्रकार भी दिया जाता है। **'यदि हम अन्य साधनों को स्थिर मात्राओं के साथ परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयों का प्रयोग करते हैं तो, अन्य बातों के समान रहने पर, हम उन बिन्दुओं पर पहुँचेंगे जिनके बाद से सीमान्त उत्पादन तत्पश्चात् औसत उत्पादन और अन्त मे कुल उत्पादन घटने लगते हैं।'**[8]

४ उत्पत्ति ह्रास नियम तथा लागत (Law of Diminishing Returns and Cost)

यदि परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' या 'उत्पत्ति ह्रास नियम' को लागत की दृष्टि से देखा जाय तो इसे *परिवर्तनशील लागत का नियम' (Law of Variable Cost) या 'लागत वृद्धि* नियम' (Law of Increasing Cost) कहते हैं। प्रारम्भ म, अन्य साधनो को स्थिर रखते हुए जब परिवर्तनशील साधन की इकाइयों को बढाया जाता है तो अनुपात से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है, इसका अर्थ यह हुआ कि सीमान्त लागत (marginal cost) तथा औसत लागत (average cost) दोनो घटती हैं।[9] यदि परिवर्तनशील साधन की और अधिक इकाइयों का प्रयोग *किया जाता है तो पहले सीमान्त लागत* (MC) एक बिन्दु पर निम्नतम होकर बढ़ने लगती है, इसके पश्चात् औसत लागत एक बिन्दु पर निम्नतम होती है और फिर बढ़ने लगती है। सीमान्त लागत रेखा (MC) औसत लागत रेखा (AC) के निम्नतम बिन्दु से गुजरती है। इसको चित्र न० २ द्वारा दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि प्रारम्भ मे सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC) घटते हैं। K बिन्दु पर औसत लागत (AC) निम्नतम हो जाती है इसके बाद बढ़ती है, सीमान्त लागत (MC) भी K बिन्दु से गुजरती हुई बढती है। K बिन्दु के बाद से AC तथा MC दोनो बढ़ने लगते हैं और इस बिन्दु के बाद से लागत वृद्धि नियम' लागू हो जाता है।
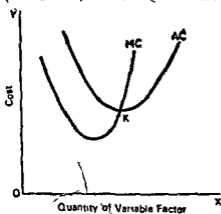
चित्र—२

[8] If we add more units of the variable factor to fixed quantities of other factors other conditions remaining the same we will reach points beyond which the marginal, then the average and finally the total output diminish

[9] एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) को उत्पादन करने से कुल ... परिवर्तन होता है उसे सीमान्त लागत (MC) कहते हैं। कुल लागत में ... श्रमिकों ने से जो प्राप्त होता है वह औसत लागत (AC) होगी।

५ उत्पत्ति ह्रास नियम की मान्यताएँ या सीमाएँ (Assumptions or Limitations of the Law of Diminishing Returns)

यह नियम कई मान्यताओं पर आधारित है। मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं

(i) यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के साधनों के मिश्रण के अनुपात में जैसा चाहे वैसा परिवर्तन किया जा सकता है। (ii) यह नियम तभी लागू होगा जबकि एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों को परिवर्तनशील रखा जाय या अन्य साधन स्थिर हो और एक साधन परिवर्तनशील रहे। (iii) परिवर्तनशील साधन की सब इकाइयाँ एकरूप (homogeneous) होनी चाहिए। (iv) यह सम्भव है कि प्रारम्भिक दशा (initial stage) में यह नियम लागू न हो जबकि परिवर्तनशील साधन थोड़ी थोड़ी मात्रा में बढ़ाया जाता है, ऐसी स्थिति में थोड़े समय के लिए 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' लागू होगा। उत्पत्ति ह्रास नियम तभी लागू होगा जबकि परिवर्तनशील साधन की पर्याप्त मात्रा का प्रयोग हो चुका हो। (v) यह मान लिया जाता है कि संगठन, उत्पादन के ढंगों, टेक्नोलोजी, इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यदि इनमें परिवर्तन होता है तो उत्पत्ति ह्रास प्रवृत्ति भविष्य के लिए स्थगित हो जाती है। (vi) नियम का सम्बन्ध वस्तु की भौतिक मात्रा (physical quantity) से है न कि उसके मूल्य (value) से। एक निश्चित बिन्दु के बाद वस्तु की मात्रा में ह्रास होता है। वस्तु की मात्रा का मूल्य तो बाजार की दशाओं पर निर्भर करता है जिनमें दिन प्रतिदिन परिवर्तन होते रहते हैं। (vii) यदि हम लागत की दृष्टि से देखें तो 'लागत वृद्धि नियम' तब लागू होगा जबकि परिवर्तनशील साधनों या साधन की कीमत तथा उत्पादित वस्तु की कीमत दी हुई हो।

६ उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने की दशाएँ या कारण (Conditions or Causes of the Operation of the Law of Diminishing Returns)

मार्शल के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम कृषि में लागू होता है और उनके अनुसार इसके लागू होने का मुख्य कारण यह है कि कृषि में प्रकृति का हाथ रहता है। यह विचारधारा उचित नहीं है। यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों में लागू होता है। इसके लागू होने का कारण प्रकृति की प्रधानता नहीं है वरन् अन्य कारण हैं, जैसे एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर रहना, उत्पादक साधनों का सीमित (scarce) होना, इत्यादि।

नियम के लागू होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं

(i) एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर होना (Fixity of one or more than one factors of production)—यदि अन्य साधनों (भूमि तथा पूँजी) को स्थिर रखा जाय तथा एक साधन (श्रम) को बढ़ाया जाय तो परिवर्तनशील साधन (श्रम) को स्थिर साधनों (भूमि तथा पूँजी) की कम और कम मात्रा के साथ कार्य करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में श्रम की उत्पादक शक्ति कम होती जायेगी और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में निम्न दो प्रकार से और व्यक्त कर सकते हैं

(अ) उत्पादक साधनों की सीमितता (Scarcity of productive resources)—यदि किसी उत्पत्ति के साधन की पूर्ति को अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता तो उत्पादक को उस साधन की सीमित मात्रा से (अर्थात् साधन की दी हुई स्थिर मात्रा से) ही कार्य चलाना पड़ेगा और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा।[10] (ब) 'अनुकूलतम संयोग' के आगे जाने से (Going

[10] उदाहरणार्थ, कृषि भूमि पर आधारित है, परन्तु भूमि लगभग स्थिर है। इसलिए कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए भूमि की सीमित मात्रा के साथ श्रम तथा पूँजी का अधिक प्रयोग किया जायेगा, परिणामस्वरूप, एक बिन्दु के बाद, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा। इसी प्रकार एक उद्योग में यदि किसी मशीन या कच्चे माल की कमी है तो इस सीमित उत्पादक साधन के साथ अन्य साधनों की अधिक मात्रा के प्रयोग से उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो सकेगा। किसी उत्पादक साधन की सीमितता (scarcity) उसकी पूर्ति में कमी के कारण हो सकती है या उस साधन को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित करने की बहुत ऊँची लागत के कारण हो सकती है।

beyond the optimum combination of factors of production)। जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन को परिवर्तनशील रखा जाता है तो एक बिन्दु पर उत्पत्ति के साधनों के संयोग का अनुकूलतम अनुपात प्राप्त हो जाता है। उत्पादन को बढ़ाने के लिए यदि अब अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगता। संक्षेप में अनुकूलतम संयोग के आगे जाने से उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।[11]

(ii) उत्पत्ति के साधन एक-दूसरे के अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं (Factors of Production are Imperfect Substitutes for one another)—श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, एक साधन का दूसरे के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। यदि यह बात सत्य नहीं होती तो एक साधन की मात्रा स्थिर होने पर और अन्य साधनों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होने पर यह सम्भव होता कि उत्पादन का एक भाग स्थिर साधन की सहायता से किया जाये और तत्पश्चात् जबकि स्थिर साधन तथा अन्य साधनों में अनुकूलतम संयोग स्थापित हो जाये, तो स्थिर साधन के स्थान पर अन्य साधनों को प्रतिस्थापित किया जाये तथा स्थिर लागत पर उत्पादन को बढ़ाया जावे।[12]

७. नियम का क्षेत्र (Scope of the Law)

मार्शल के अनुसार, यह नियम केवल कृषि तथा भूमि से निकालने वाले व्यवसायों (extractive industries), जैसे—खान खोदना, मछली पकड़ना, मकान बनाना, इत्यादि में ही लागू होता है, निर्माण उद्योगों (manufacturing industries) में नहीं। परन्तु यह विचारधारा उचित नहीं है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों में लागू होता है। जब भी एक या एक से अधिक उत्पत्ति के साधन स्थिर होते हैं और अन्य साधन परिवर्तनशील रहते हैं तो अनुकूलतम संयोग के बाद में यह नियम लागू होगा, चाहे वह कृषि हो या उद्योग या उत्पादन का कोई अन्य क्षेत्र।

८. उत्पत्ति ह्रास नियम के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion)

(i) यह नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

(ii) यद्यपि उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम दो भिन्न स्थितियों (situations) में लागू होते हैं, परन्तु ये एक-दूसरे से घनिष्ट रूप से जुड़े हुए हैं। उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति स्थिरता नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम की अस्थायी अवस्थाएँ (temporary phases) हैं।

---

[11] अनुकूलतम संयोग के आगे जाने का कारण यह हो सकता है कि उद्योग विशेष में नयी फर्मों का प्रवेश अधिक लागत (high cost) के कारण कठिन हो। जब नयी फर्मों का प्रवेश कठिन है तो उत्पादन में वृद्धि वर्तमान फर्मों द्वारा की जायगी। ऐसी स्थिति में वर्तमान फर्मों को अपने 'अनुकूलतम आकार' से आगे जाना पड़ेगा और इसलिए सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनों बढ़ेंगी अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायगा।

[12] "A moment's reflection will show that what the Law of Diminishing Returns really states is that there is a limit to the extent to which one factor of production can be substituted for another, or, in other words that the elasticity of substitution between the factors is not finite. If this were not true, it would be possible when one factor of production is fixed in amount and the rest are in *perfectly elastic supply*, to produce part of the output with the aid of the fixed factor and then, when the optimum proportion between this and other factors was attained, to substitute some other factor for it to increase output at constant cost."
—Mrs Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, p. 336.

(iii) यदि एक या एक से अधिक उत्पत्ति के साधन स्थिर रहते हैं और अन्य साधन परिवर्तनशील हैं तो यह नियम आवश्यक रूप से लागू होगा। श्रीमती जोन रोबिन्सन ने ठीक कहा है कि उत्पत्ति ह्रास नियम एक तार्किक अनिवार्यता (logical necessity) है और उत्पत्ति वृद्धि नियम एक 'अनुभवसिद्ध तथ्य' (empirical fact) है।[1] उत्पत्ति वृद्धि नियम अनुभवसिद्ध इसलिए है कि यह व्यवहार में बहुत-सी स्थितियों (cases) में क्रियाशील होता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह नियम आवश्यक रूप से प्रत्येक क्षेत्र में लागू हो। उत्पत्ति ह्रास नियम एक 'तार्किक अनिवार्यता' इसलिए है कि यह उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी अवस्था में आवश्यक रूप से लागू होगा क्योंकि उत्पत्ति के साधन सीमित हैं और वे एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं हैं।

उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को स्थगित किया जा सकता है
(THE WORKING OF THE LAW OF DIMINISHING RETURNS CAN BE POSTPONED)

कृषि, उद्योग, इत्यादि क्षेत्रों में इस नियम की क्रियाशीलता को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रयोग, कृषि कला में सुधार, यातायात तथा संवाद-वहन के साधनों में विकास, उन्नत बीज, अच्छी खाद, इत्यादि के प्रयोग से कृषि क्षेत्र में इस नियम की क्रियाशीलता को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सकता है। इसी प्रकार उद्योग में भी नये आविष्कारों के प्रयोग, उत्पादन की नयी रीतियों की खोज, इत्यादि से इस नियम की क्रियाशीलता को बहुत समय के लिए रोका जा सकता है। अमरीका, ब्रिटेन, यूरोप के उन्नतशील देशों तथा रूस में उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप ही उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति को रोका जा सका है। यह ध्यान रहे कि उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति को कुछ समय तक ही स्थगित किया जा सकता है, परन्तु उसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता।

उत्पत्ति ह्रास नियम का महत्त्व
(SIGNIFICANCE OF THE LAW OF DIMINISHING RETURNS)

(१) उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थशास्त्र का एक आधारभूत (fundamental) नियम है। कृषि, खान खोदना, मछली पकड़ना, मकान बनाना, उद्योग-धन्धे, इत्यादि सभी क्षेत्र उत्पत्ति ह्रास प्रवृत्ति से प्रभावित होते हैं।

(२) यह नियम ही एक देश से दूसरे में जनसंख्या के प्रवास (migration) के लिए उत्तरदायी है। एक ओर भूमि पर जनसंख्या का दबाव तथा दूसरी ओर उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण भूमि से अधिक उत्पादन न मिल सकने के कारण ही एक देश से दूसरे देश में जनसंख्या का प्रवास हुआ है।

(३) माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त इसी नियम पर आधारित है। माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त बताता है कि जनसंख्या खाद्यान्नों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ती है, खाद्यान्नों के धीमी गति से बढ़ने का कारण है कि खाद्यान्नों के उत्पादन पर उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

(४) रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है। गहरी खेती में जब भूमि के एक दिये हुए टुकड़े पर श्रम तथा पूंजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो पहले की इकाइयों की अपेक्षा बाद की इकाइयों की उत्पत्ति घटती है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त इकाइयों से पहले की इकाइयों को जो बचत प्राप्त होती है उसको रिकार्डो ने लगान कहा। स्पष्ट है, उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण ही यह लगान प्राप्त

[1] "The Law of Diminishing Returns ... is merely a matter of logical necessity, but the Law of Increasing Returns is a matter of empirical fact."

—Mrs. Joan Robinson, *op. cit.*, p. 333.

होता है। विस्तृत खेती म जो बचत श्रेष्ठ भूमियो को, निम्न कोटि की भूमियो के ऊपर प्राप्त होती है उसे रिकार्डो ने लगान कहा, परन्तु निम्न कोटि की भूमियो को जोत मे लाने का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता है।

(५) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (marginal productivity theory), जिसके अनुसार उत्पत्ति के साधनो का पुरस्कार दिया जाता है, भी उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता पर आधारित है।

(६) **किसी देश या क्षेत्र (region) मे लोगों का जीवन-स्तर इस नियम द्वारा प्रभावित होता है।** किसी देश मे, यदि जनसख्या अन्य साधनो (भूमि, पूंजी, टेक्नोलोजी) की अपेक्षा तीव्र गति से बढती है, तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होगा और लोगो का जीवन स्तर नीचा हो जायेगा। इसके विपरीत, यदि पूंजी तथा टेक्नोलोजी इत्यादि, जनसख्या की अपेक्षा, तीव्र गति से बढ़ते हैं तो उत्पत्ति वृद्धि नियम (जो कि उत्पत्ति ह्रास नियम की एक अवस्था है) लागू होगा और जीवन-स्तर ऊँचा होगा।

(७) **यह नियम बहुत-से आविष्कारो के लिए उत्तरदायी है।** बहुत-से आविष्कार तथा उत्पत्ति की नयी रीतियो की खोज इस नियम की क्रियाशीलता को स्थगित करने के लिए ही की गयी है। इस नियम की प्रवृत्ति को लम्बे समय तक रोकने के लिए आज भी मनुष्य नयी खोजो के लिए प्रयत्नशील है।

उत्पत्ति वृद्धि नियम या वर्द्धमान प्रतिफल नियम
(LAW OF INCREASING RETURNS)

१. प्राक्कथन (Introduction)

उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि उत्पत्ति के साधनो की मात्रा मे वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि होगी। एक या एक से अधिक साधनो को स्थिर रखकर अन्य साधनो की मात्रा को बढाया जाय, और यदि परिवर्तनशील साधनो की वृद्धि करने के अनुपात से अधिक उत्पादन बढ़े तो इसे उत्पत्ति वृद्धि नियम कहेंगे।

२. उत्पत्ति वृद्धि नियम का कथन (Statement of the Law of Increasing Returns)

मार्शल के अनुसार,

"श्रम तथा पूंजी मे वृद्धि सामान्यतया सगठन को अधिक श्रेष्ठ बनाती है जिसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूंजी की कार्यक्षमता मे वृद्धि हो जाती है।"[14]

मार्शल के अनुसार उत्पत्ति वृद्धि नियम केवल निर्माण उद्योगो मे ही लागू होता है। परन्तु यह विचार गलत है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार, यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रो मे लागू होता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो मे से श्रीमती जॉन रोबिन्सन द्वारा दी गयी परिभाषा को प्रस्तुत करते हैं। श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार,

"जब किसी प्रयोग मे किसी उत्पत्ति के साधन की अधिक मात्रा लगायी जाती है, तो प्राय सगठन मे सुधार हो जाता है जिसमे उत्पत्ति के साधनो की प्राकृतिक इकाइयां (मनुष्य, एकड और द्राव्यिक पूंजी) अधिक कुशल हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में उत्पादन को बढ़ाने के लिए साधनों की भौतिक मात्रा में आनुपातिक वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं होती।"[15]

---

[14] "An increase of labour and capital leads generally to improved organisation, which increases the efficiency of the work of labour and capital."
—Marshall, *Principles of Economics*, p 265.

[15] "When an increased amount of any factor of production is devoted to a certain use, it is often the case that improvements in organisation can be introduced which will make natural units of the factors (men, acres or money capital) more efficient, so that an increase in output does not require a proportionate increase in the physical amount of factors."

श्रीमती जॉन रोबिन्सन आगे लिखती हैं :

> यह नियम या प्रवृत्ति उत्पत्ति ह्रास नियम की भाँति, सभी उत्पत्ति के साधनों के सम्बन्ध में समान रूप से लागू हो सकती है, परन्तु उत्पत्ति ह्रास नियम के विपरीत, यह प्रत्येक दशा में लागू नहीं होती है। कभी साधनों की वृद्धि से कुशलता में सुधार होंगे और कभी नहीं भी होंगे।[16]

३ उत्पत्ति वृद्धि नियम की व्याख्या (Explanation of the Law of Increasing Returns)

उत्पत्ति वृद्धि नियम के पीछे मुख्य बात यह है कि साधनों की अधिक इकाइयों के प्रयोग से सगठन में सुधार होते हैं, साधनों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, बड़े पैमाने की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं, स्थिर तथा अविभाज्य साधनों (indivisible factors) का प्रयोग भलीभाँति होने लगता है। इन सबके परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादन बढ़ता है, अर्थात् कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है तथा औसत उत्पादन भी बढ़ता है, जब साधनों के मिलने का अनुपात अनुकूलतम हो जाता है तो उसके बाद से सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों गिरने लगते हैं अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।

इस नियम को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है :

परिवर्तनशील साधन (श्रम) की इकाइयाँ	कुल उत्पादन (Total Product)	सीमान्त उत्पादन (Marginal Product)	औसत उत्पादन (Average Product)
१	१०	१०	१०
२	२५	१५	१२.५
३	४७	२२	१५.६
४	७७	३०	१९.२
५	११२	३५	२२.४

उदाहरण से स्पष्ट है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाइयों को बढ़ाने से सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) बढ़ते हैं और कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है। नियम को चित्र न० ३ द्वारा बताया जाता है।

चित्र—३

४. उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा लागत (The Law of Increasing Returns and Cost)

लागत की दृष्टि से इस नियम को 'लागत ह्रास नियम' (Law of Decreasing Cost) कहा जाता है। चूँकि जिस अनुपात मे परिवर्तनशील साधन या साधनों को बढ़ाया जाता है उससे अधिक उत्पादन प्राप्त होता है, इसलिए सीमान्त लागत (marginal cost) तथा औसत लागत (average
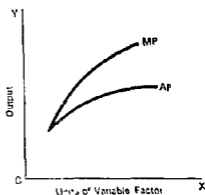
[16] Mrs Joan Robinson further adds "The law, or rather tendency, like the Law of Diminishing Returns, may apply equally to all the factors of production, but unlike the Law of Diminishing Returns, it does not apply in every case. Sometimes an increase of the factors will lead improvements in efficiency, and sometimes it will not."
—Mrs Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, pp. 333-34.

cost) घटती है। इन लागतों के घटने के कारण ही इस नियम को लागत ह्रास नियम कहते हैं। इसको चित्र नं० ४ द्वारा दिखाया गया है।
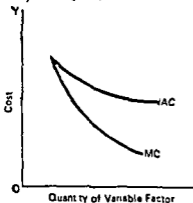
चित्र—४

५ उत्पत्ति वृद्धि नियम की सीमाएँ (Limitations of the Law)

(i) यह आवश्यक नहीं है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम प्रत्येक दशा मे आवश्यक रूप से लागू हो। यदि परिवर्तनशील साधन की इकाई, स्थिर साधन की अपेक्षा छोटी है, तो प्रारम्भ से ही उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा अन्यथा प्रारम्भ से ही उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक दशा मे यह आवश्यक नहीं है कि परिवर्तनशील साधन या साधनों की मात्रा मे वृद्धि करने से संगठन मे सुधार हो, साधनों की कार्यक्षमता मे वृद्धि हो और उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू हो।

(ii) यह प्रश्न उठता है कि क्या उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होने के बाद यह अनिश्चित समय तक क्रियाशील रहेगा? इसका उत्तर स्पष्ट 'ना' (No) है। जब जब साधनों के मिलने के अनुकूलतम अनुपात की ओर चला जाता है तब तक यह नियम लागू होगा। जब एक बार अनुकूलतम अनुपात स्थापित हो जाता है और इसके बाद यदि परिवर्तनशील साधन की मात्रा को और बढ़ाया जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा।

५ उत्पत्ति वृद्धि नियम के क्रियाशील होने की दशाएँ या कारण (Conditions or Causes of its Operation)

नियम के लागू होने के कारण निम्नलिखित हैं

(i) साधनों की अविभाजकता (Indivisibility of factors of production)—श्रीमती जान रोबिन्सन के अनुसार नियम के क्रियाशील होने का मुख्य कारण है उत्पत्ति के साधनों की अविभाजकता। अविभाजकता का अर्थ है कि साधनों को प्रायः हम छोटे-छोटे टुकड़ो मे नहीं बाँट सकते है। मैनेजर, भूमि मशीन औजारों के रूप मे पूंजी, इत्यादि साधन एक सीमा तक अविभाज्य हैं। किसी भी एक अविभाज्य साधन के साथ प्रारम्भ मे यदि परिवर्तनशील साधन या साधनों की कम मात्रा का प्रयोग किया जाता है तो अविभाज्य साधन का भलीभाँति प्रयोग नहीं होता है। परन्तु परिवर्तनशील साधन की मात्रा के एक सीमा तक बढ़ने से अविभाज्य साधन का प्रयोग अच्छी प्रकार से होने लगता है उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ता है और लागत घटती है, अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।[7]

(ii) पर्याप्त मात्रा मे साधनों की पूर्ति की प्राप्यता (Adequate availability of the supply of factors)—यदि सभी आवश्यक साधनों की पूर्ति आसानी से और पर्याप्त मात्रा में

[7] उदाहरणार्थ माना एक साहसी अपनी फर्म मे १,००० रुपये प्रति माह पर एक कुशल मैनेजर रखता है जो कि वस्तु विशेष की ५०० इकाई प्रति दिन के उत्पादन की व्यवस्था कुशलतापूर्वक कर सकता है। यदि फर्म प्रारम्भ मे केवल २५० इकाइयों का ही उत्पादन करती है तो भी साहसी को उस मैनेजर को रखना पड़ेगा। २५० इकाई के उत्पादन के लिए मैनेजर को काटकर दो टुकडो में विभक्त नहीं किया जा सकता ताकि आधा मैनेजर २५० इकाइयों का आधा उत्पादन कर सके। यदि अधिक श्रम इत्यादि लगाकर उत्पादन बढ़ाया जाता है तो अविभाज्य मैनेजर का अधिक अच्छा प्रयोग होगा प्रति इकाई लागत कम होगी क्योंकि अब मैनेजर के १००० रुपये वेतन की लागत अधिक इकाइयों (माना ५०० इकाइयों) पर फैलेगी। इस प्रकार साधनों की अविभाजकता के कारण उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

की जा सकती है तथा प्रत्येक साधन के अनुपात मे कमी या वृद्धि की जा सकती है तो परिवर्तनशील अनुपातो का नियम लागू होगा और एक सीमा तक अनुपात से अधिक उत्पादन बढेगा तथा लागत गिरेगी, अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा।

(iii) बड़े पैमाने की उत्पत्ति की बचतें (Economies of large scale production)—कुछ उद्योगो मे उत्पत्ति के साधनो को बढाने से बड़े पैमाने की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं जिसके कारण एक सीमा तक उत्पादन अनुपात से अधिक बढता है, लागत घटती है और उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

यद्यपि यह नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रो म लागू होता है परन्तु कृषि की अपेक्षा उद्योगो मे यह विशेष रूप से लागू होता है। इसका कारण है कि उद्योगो मे सभी साधनो को आसानी से घटाया-बढाया जा सकता है (जबकि कृषि म भूमि सीमित रहती है), श्रम विभाजन तथा बड़े पैमाने की बचतें आसानी से प्राप्त होती हैं तथा उद्योगो मे अनुसन्धान तथा परीक्षण की अधिक सुविधाएँ रहती हैं।

७ नियम का क्षेत्र (Scope of the Law)

मार्शल के अनुसार, यह नियम केवल निर्माण उद्योगो म ही लागू होता है क्योंकि उद्योगो में मनुष्य का हाथ (प्रकृति की अपेक्षा) अधिक होता है। परन्तु यह विचारधारा गलत है। नियम के लागू होने का कारण मनुष्य के हाथ की प्रधानता नही है बल्कि अन्य कारण हैं जिनका अध्ययन हम ऊपर कर चुके हैं। जब तक उत्पत्ति के साधनो के अनुकूलतम अनुपात की स्थापना की ओर अग्रसर (move) किया जाता है यह नियम उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र मे लागू होगा।

८ उत्पत्ति वृद्धि तथा उत्पत्ति ह्रास नियमो की तुलना (Comparison of the Law of Increasing and Diminishing Returns)

(i) यदि एक साधन के अधिक प्रयोग करने से कुशलता बढती है तब उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, यदि साधन के अधिक प्रयोग से कुशलता घटती है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

दूसरे शब्दो मे, उत्पत्ति ह्रास नियम तब क्रियाशील होता है जबकि उत्पत्ति के साधन गलत अनुपातो मे मिला दिये जाते हैं उत्पत्ति ह्रास नियम साधनो के गलत अनुपातो के परिणामो को बताता है। उत्पत्ति वृद्धि नियम तब लागू होता है जबकि एक साधन को बढाने से साधनो के अनुपातो मे सुधार होता है और पैमाने की बचतें (economies of scale) प्राप्त होती हैं।

(ii) उत्पत्ति वृद्धि नियम तब लागू होगा जबकि हम 'अनुकूलतम' की ओर अग्रसर होते हैं, उत्पत्ति ह्रास नियम तब लागू होता है जबकि हम अनुकूलतम के आगे (beyond) जाते हैं।

९ उत्पत्ति वृद्धि नियम के सम्बन्ध मे निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम एक ही प्रकार के तत्त्वो (same set of facts) से सम्बन्धित नही होते, वे भिन्न परिस्थितियो (different situations) मे लागू होते हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी ये घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हैं। प्रारम्भिक अवस्था मे एक सीमा तक उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, अनुकूलतम की अवस्था मे उत्पत्ति स्थिरता नियम लागू होता है, तत्पश्चात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। दूसरे शब्दो मे, उत्पत्ति वृद्धि नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम की एक अस्थायी अवस्था है, अन्त मे उत्पत्ति ह्रास नियम आवश्यक रूप से लागू होता है।

क्या उत्पत्ति वृद्धि नियम पूर्ण प्रतियोगिता के अनुरूप होता है ?
(IS INCREASING RETURNS COMPATIBLE WITH PERFECT COMPETITION ?)

वास्तव मे 'बढ़ते हुए प्रतिफल' (increasing returns) तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' आपस मे मेल नही खाते, बढते हुए प्रतिफल के क्रियाशील रहने से पूर्ण प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है।

इसका कारण इस प्रकार है किसी उद्योग में सभी फर्मों को बढ़ते हुए प्रतिफल एक साथ प्राप्त नहीं होते; पहले एक फर्म या कुछ फर्में बढ़ते हुए प्रतिफल को प्राप्त करने में सफल होती हैं, अर्थात् एक फर्म या कुछ फर्मों को, अपने विस्तार के साथ बचतें प्राप्त होती हैं तथा उस एक फर्म या उन कुछ फर्मों की उत्पादन लागत कम होती है। यह एक विकासमान फर्म या ये कुछ विकासमान फर्में, लागत में ह्रास के परिणामस्वरूप अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में नहीं टिकने देतीं, धीरे-धीरे फर्मों की संख्या कम हो जाती है और अल्पाधिकार (oligopoly) या एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार 'बढ़ते हुए प्रतिफल' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' दोनों का सह-अस्तित्व (co-existence) नहीं हो सकता।

[उपर्युक्त बात को प्रो० सेम्युलसन (Samuelson) इस प्रकार व्यक्त करते हैं—"फर्मों की *लगातार गिरती हुई लागतों के अन्तर्गत, उनमें से एक या कुछ फर्में अपनी उत्पादन मात्राओं को इस प्रकार बढ़ायेंगी ताकि बाजार में उद्योग की कुल उत्पादन मात्रा में से उनकी उत्पादन-मात्राएँ* एक महत्वपूर्ण भाग हो जायें। तब हम इस प्रकार की स्थितियाँ प्राप्त हो सकती हैं: (१) एक अकेला एकाधिकारी जो कि उद्योग पर प्रभुत्व रखेगा, (२) थोड़े बड़े विक्रेता जो कि संयुक्त रूप से उद्योग पर प्रभुत्व रखेंगे, इनको 'अल्पाधिकारी' (oligopolists) कहा जाता है, या (३) प्रतियोगिता में किसी प्रकार की अपूर्णता, जो कि स्थायी रीति में या अन्तर्विरामी (intermittent), कीमत-युद्धों की एक शृंखलाओं के सम्बन्ध में, अर्थशास्त्रियों के पूर्ण प्रतियोगिता के माडल (model), *जिसमें कि किसी भी फर्म का उद्योग-कीमत पर कोई नियन्त्रण नहीं होता,* से एक महत्वपूर्ण अन्तर या विचलन (departure) को बनाता है।[18]]

उत्पत्ति स्थिरता नियम
(LAW OF CONSTANT RETURNS)

१. प्राक्कथन

उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि साधनों की मात्रा में वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होगी। 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम के बीच अल्पकालीन स्थिति (transitional stage) में क्रियाशील होता है। चाहे यह नियम कितने ही थोड़े समय के लिए क्रियाशील रहे परन्तु यह उस स्थिति में लागू होता है जहाँ पर उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति समाप्त होती है और उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति आरम्भ नहीं हो पाती है। इस प्रकार से यह नियम उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम के बीच एक कड़ी का कार्य करता है।

२ उत्पत्ति स्थिरता नियम का कथन तथा व्याख्या (Statement and Explanation of the Law)

यदि एक या एक से अधिक साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों को बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भ में बढ़ती हुई उत्पत्ति प्राप्त होगी।

> उत्पादन के साधनों का अधिक प्रयोग करने तथा उत्पादन को बढ़ाते जाने से जब बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सब बचतें समाप्त हो जाती हैं और वस्तु की प्रति इकाई लागत निम्नतम हो जाती है तो कहा जाता है कि उत्पादन 'अनुकूलतम स्तर' (optimum scale) पर हो रहा है, यदि इसी स्थिति में उत्पादन चलता रहता है तो 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' (Law of Constant Returns) या '*स्थिर लागत नियम*' (Law *of Constant Costs*) लागू होता है।

---

[18] "Under persisting decreasing costs for the firms, one or a few of them will so expand their q's as to become a significant part of the market for the industry's total Q. We shall then end up (1) with a single monopolist who dominates the industry, (2) with a few large sellers who together dominate the industry and who will later be called 'oligopolist', or (3) with some kind of imperfection of competition that, in either a stable way or in connection with a series of intermittent price wars, represents an important departure from the economist's model of 'perfect' competition wherein no firm has *any control over industry price.*"

यदि इस अवस्था में, जैसे मशीन इत्यादि को स्थिर रखकर, परिवर्तनशील साधन (श्रम) की एक इकाई बढ़ायी जाती है तो 'अनुकूलतम स्तर' भंग हो जायेगा और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। यदि इस अवस्था में सब साधन स्थिर रखे जाते हैं और उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है तो उत्पादन स्थिर लागत (constant cost) पर जारी रहेगा।

माना कि इस अवस्था में ४ मशीन तथा ४०० श्रमिक मिलकर किसी वस्तु की १,००० इकाइयों का उत्पादन करते हैं और प्रति इकाई न्यूनतम लागत ५ रु० है। यदि इस स्थिति में उत्पादन चलता रहता है तो कहा जायेगा कि 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' लागू हो रहा है। हम वस्तु की १,००० इकाइयाँ और उत्पादित कर सकते हैं यदि ४ मशीन तथा ४०० श्रमिक और लगायें। दूसरे शब्दों में, स्थिर लागत पर उत्पादन को अनिश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है यदि साधनों के वर्तमान संयोग (present set-up) को कई गुना किया जाये। इस उदाहरण में यदि हम १,०२० इकाइयाँ उत्पन्न करना चाहें तो हमें किसी एक साधन की मात्रा को अधिक बढ़ाना होगा (क्योंकि वर्तमान संयोग को दुगुना करने से कोई मतलब नहीं निकलेगा) और ऐसी स्थिति में यह बढ़ा हुआ उत्पादन स्थिर लागत पर प्राप्त नहीं होगा।

साधारणतया उत्पत्ति के नियमों में प्राय. एक साधन को परिवर्तनशील रखकर अन्य सभी साधनों को स्थिर रखा जाता है। यदि हम 'अनुकूलतम स्तर' पर समान लागत पर अधिक उत्पादन करना चाहते हैं तो हमें सभी उत्पत्ति के साधनों को समान अनुपात (same proportion) में बढ़ाना होगा। इसलिए 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' को एक दूसरी प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। प्रो० स्टिगलर (Stigler) के शब्दों में,

> **"जब सभी उत्पादक सेवाओं को एक दिये हुए अनुपात में बढ़ाया जाता है, तो उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है।"[19]**

इस परिभाषा में यह ध्यान देने की बात है कि इसमें किसी भी साधन को स्थिर नहीं रखा गया है, सभी साधनों को बढ़ाकर उसी अनुपात में उत्पादन प्राप्त किया जाता है। वास्तव में, ऐसी स्थिति को **'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम'** (Law of Constant Returns to Scale) कहते हैं। अत. यह कहा जाता है कि अनुकूलतम बिन्दु पर उत्पादन 'स्थिरता प्रतिफल' (constant returns) तथा 'पैमाने का स्थिर प्रतिफल' (constant returns to scale) दोनों के अधीन होता है।"[20]

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, कोई 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' (Law of Constant Returns) नहीं होता बल्कि केवल 'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम' (Law of Constant Returns to Scale) होता है।

उपर्युक्त विवरण को स्पष्ट रूप से समझने के लिए **'पैमाने का उत्पादन'** या **'पैमाने का प्रतिफल'** (Returns to Scale) को ठीक प्रकार से समझ लेना आवश्यक है। दीर्घकाल में सभी उत्पत्ति के साधनों को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। जब किसी फर्म द्वारा प्रयोग किये जाने वाले सभी साधनों की मात्राओं (प्लाण्ट तथा मशीनरी को मिलाकर) में परिवर्तन होता है तो हम कहते हैं कि 'उत्पादन का पैमाना' (scale of production) बदल गया है। यदि उत्पत्ति के सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (माना कि सभी को दुगुना कर दिया जाता है), तो उत्पादन (output) तीन प्रकार से प्रभावित हो सकता है—उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ सकता है, अधिक अनुपात में बढ़ सकता है या कम अनुपात में बढ़ सकता है। यदि उत्पादन उसी अनुपात

[19] "When all the productive services are increased in a given proportion, the product is increased in the same proportion." —Stigler, *The Theory of Price*, p. 129.
[20] "Production at the optimum point is, therefore, subject to both constant returns and constant returns to scale."

में बढ़ता है जिसमे साधन बढ़ाये गये हैं, तो हम कहते हैं कि फर्म को 'पैमाने का स्थिर उत्पादन' (constant returns of scale) प्राप्त होता है, यदि उत्पादन, साधनों की अपेक्षा, कम अनुपात से बढ़ता है, तो हम कहते हैं कि फर्म को 'पैमाने का घटता हुआ उत्पादन' (Increasing returns to scale) प्राप्त होता है, और यदि उत्पादन, साधनों की अपेक्षा, अधिक अनुपात में बढ़ता, तो हम कहते हैं कि फर्म को 'पैमाने का बढ़ता हुआ उत्पादन' (Increasing returns of scale) प्राप्त होता है।
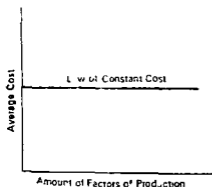
चित्र—५

'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम' अर्थात् 'स्थिर लागत नियम' (Law of constant cost) को चित्र न० ५ द्वारा व्यक्त किया गया है।

प्रश्न

१ परिवर्तनशील अनुपातो के नियम का कथन दीजिए और उसकी व्याख्या कीजिए।
State and explain the Law of Variable Proportions. *(Agra B. A. I, Suppl., 1975)*

२ 'उत्पत्ति के नियमों' का 'लागत के नियमों' से सम्बन्ध स्थापित कीजिए।
Establish the relationship of the Laws of Returns with the Laws of Costs *(Agra, 1973)*

[सकेत—उत्पत्ति ह्रास नियम की पूर्ण व्याख्या कीजिए और ऐसा करते समय उसको लागत के शब्दों में भी बताइए।]

३ परिवर्तनशील (या विचलनशील) अनुपातो के नियम का विवेचन कीजिए तथा परिवर्तनशील (या विचलनशील) लागतो की परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
Discuss the Law of Variable Proportions and throw light on the variable cost conditions *(Luck., B Com., 1970)*

[सकेत—इस प्रश्न का उत्तर वही होगा जो प्रश्न न० २ का है।]

४ उत्पत्ति ह्रास नियम समझाइए। उसकी सीमाएँ स्पष्ट कीजिए।
Explain the Law of Diminishing Returns Indicate its limitations. *(Lucknow, 1972)*

५ उत्पत्ति ह्रास नियम को रेखाकृति द्वारा समझाइए। इसकी क्रियाशीलता को कैसे रोका जा सकता है ?
Explain with the help of a diagram the Law of Diminishing Returns. How can its operation be checked ? *(Agra, Gorakhpur)*

[सकेत—दूसरे भाग के लिए देखिए 'उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को स्थगित किया जा सकता है' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को।]

६ "क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने का कारण उत्पादन के साधनो की सीमितता है।" विवेचना कीजिए।
"The operation of the Law of Diminishing Returns is due to the scarcity of the factors of production" Discuss *(Meerut, Indore)*

अथवा

"उत्पत्ति ह्रास नियम साधनो के बीच अपूर्ण स्थानापन्नता के कारण लागू होता है।" विवेचना कीजिए।

'The Law of Diminishing Returns is due to the imperfect substitutability between factors of production' Discuss

[संकेत—उत्पत्ति ह्रास नियम के आधुनिक मत अर्थात् 'परिवर्तनशील अनुपातो के नियम' की संक्षेप मे विवेचना कीजिए, तथा नियम को लागत के शब्दो म बताइए, तत्पश्चात् इस नियम के लागू होने के कारणो पर प्रकाश डालिए।]

७ "उत्पत्ति ह्रास नियम केवल कृषि मे ही लागू नही होता बल्कि यह सभी प्रकार के जटिल उत्पादन के लिए सत्य होता है।" इसकी विवेचना कीजिए और उत्पत्ति ह्रास नियम को बताइए।

The Law of Diminishing Returns is not applicable to agriculture alone, it is valid for all complex production' Discuss this and state the Law of Diminishing Returns

अथवा

उत्पत्ति ह्रास नियम की विवेचना कीजिए तथा चित्र की सहायता से बताइए कि यह प्रत्येक प्रकार की आर्थिक क्रिया मे किस प्रकार लागू होता है ?

Discuss the Law of Diminishing Returns and show with the help of a diagram how is it applicable to every type of economic activity ?

अथवा

उत्पत्ति ह्रास नियम की कार्यशीलता को रेखाचित्र के द्वारा स्पष्ट कीजिए। क्या यह केवल कृषि मे लागू होता है ?

Elucidate the working of the Law of Diminishing Returns with the help of a diagram Does it operate only in agriculture ? *(Agra, B A I, 1976, Raj Hyr Com, 1969)*

[संकेत—इन सब प्रश्नो का उत्तर एक ही होगा। 'उत्पत्ति ह्रास नियम' अर्थात् 'परिवर्तनशील अनुपातो' के नियम का कथन दीजिए, उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण कीजिए, नियम को लागत के शब्दो मे (चित्रसहित) भी व्यक्त कीजिए, तत्पश्चात् नियम के लागू होने के कारणो को बताइए, इसके बाद बताइए कि यह नियम कृषि तथा उद्योग दोनो मे लागू होता है (अर्थात् नियम के क्षेत्र को, संक्षेप मे बताइए) और अन्त मे निष्कर्ष दीजिए।]

८ 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम या उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थशास्त्र का एक आधारभूत सिद्धान्त है।" विवेचना कीजिए।

'The law of variable proportions or the law of diminishing returns is a fundamental principle of economics" Discuss *(Magadh, B A, 1968 A)*

[संकेत—परिवर्तनशील अनुपातो के नियम (अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम) की पूर्ण विवेचना कीजिए।]

९ असमान अनुपातीय प्रतिफल के नियम की व्याख्या कीजिए।

Explain the Law of Non proportional Outputs *(Vikram, B A I, 1962)*

अथवा

'प्रतिफल के नियम' का कथन दीजिए और उसकी व्याख्या कीजिए।

State and explain the Law of Returns' *(Lucknow, B A. I, 1956)*

[संकेत—इन प्रश्नो मे 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' के विभिन्न नामो का प्रयोग किया गया है। अत इनमे से प्रत्येक के उत्तर मे 'उत्पत्ति ह्रास नियम' या 'परिवर्तनशील अनुपातो के नियम' की पूर्ण परन्तु संक्षिप्त विवेचना कीजिए।]

१० "उत्पत्ति वृद्धि तथा स्थिरता नियम केवल उत्पत्ति ह्रास नियम के ही अस्थायी रूप हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

The law of increasing an constant returns are only the temporary phases of the Law of Diminishing Returned ' Analyse the statement

[संकेत—उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात् 'परिवर्तनशील अनुपातों के नियम' की उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा विवेचना करते हुए अन्त मे यह निष्कर्ष दीजिए कि उत्पत्ति वृद्धि तथा स्थिरता नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम के ही अस्थायी रूप हैं।]

११. क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का परीक्षण कीजिए तथा यह दिखाइए कि यह (i) माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त, तथा (ii) लगान के सिद्धान्तों से किस प्रकार सम्बन्धित है ?

Explain the Law of Diminishing Returns and indicate its bearing on (i) the Malthusian Theory of Population, and (ii) the Theory of Rent

[संकेत—प्रथम भाग मे 'उत्पत्ति ह्रास नियम' अर्थात् 'परिवर्तनशील अनुपातो के नियम' का कथन दीजिए, उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण कीजिए, तथा नियम को लागत के शब्दों मे (चित्र-सहित) भी व्यक्त कीजिए, दूसरे भाग मे 'उत्पत्ति ह्रास नियम का महत्त्व' नामक शीर्षक के अन्तर्गत point no (३) तथा (४) लिखिए।]

१२ क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम को समझाइए तथा बताइए कि यह किस प्रकार क्रमागत लागत ह्रास नियम है ?

Explain the Law of increasing returns and say how is it the Law of Decreasing Cost ?

[संकेत—उत्पत्ति वृद्धि नियम की पूर्ण विवेचना (उदाहरण, रेखाचित्र, लागू होने के कारण, आदि सहित) कीजिए और यह भी बताइए कि लागत के शब्दो म इस लागत ह्रास नियम कहते हैं।]

१३ उदाहरण की सहायता से उत्पत्ति वृद्धि नियम के स्वभाव तथा कारणो को समझाइए। क्या यह नियम असीमित रूप से लागू हो सकता है ?

Explain with an example the nature and cause of Increasing Returns Can it operate without limit ? *(Agra, Jodhpur)*

[संकेत—दूसरे भाग मे यह स्पष्ट कीजिए कि यह नियम असीमित रूप से लागू नहीं हो सकता, यह तो 'परिवर्तनशील अनुपातों के नियम' या 'उत्पत्ति ह्रास नियम' की एक अस्थायी अवस्था (phase) है।]

१४ उत्पत्ति वृद्धि नियम का कथन दीजिए और उसे समझाइए। स्पष्ट कीजिए कि उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा पूर्ण प्रतियोगिता का सहअस्तित्व नहीं हो सकता।

State and explain the law of increasing returns Explain how increasing returns and perfect competition cannot co-exist.

[संकेत—प्रथम भाग मे उत्पत्ति वृद्धि नियम की उदाहरण तथा रेखाचित्रो द्वारा व्याख्या कीजिए। दूसरे भाग के लिए 'क्या उत्पत्ति वृद्धि नियम पूर्ण प्रतियोगिता के अनुरूप होना है ?' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को लिखिए।]

१५ "प्रकृति द्वारा निभायी गयी भूमिका उत्पत्ति ह्रास नियम के अनुरूप होती है जबकि मनुष्य द्वारा निभायी गयी भूमिका उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुरूप होती है।" व्याख्या कीजिए।

"The part played by nature conforms to diminishing returns while the part which man plays conforms to increasing returns" Explain

(Agra, B A I, 1969, Jiwaji, B A I, 1967, Bihar, 1967)

[संकेत—उत्पत्ति ह्रास नियम तथा उत्पत्ति वृद्धि नियम दोनों की परिभाषाएँ दीजिए, उत्पत्ति ह्रास नियम की उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा बहुत संक्षेप मे व्याख्या कीजिए। उदाहरण तथा रेखाचित्र की प्रारम्भिक अवस्था में उत्पत्ति वृद्धि नियम का भी स्पष्टीकरण हो जायेगा। तत्पश्चात् दोनों नियमों के लागू होने के कारणों पर संक्षेप मे प्रकाश डालते हुए यह बताइए कि मार्शल का यह विचार गलत है कि प्रकृति की प्रधानता के कारण उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है और मनुष्य की प्रधानता के कारण उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।]

25 सम-उत्पाद रेखाएँ—१

[ISO-PRODUCT CURVES—1]

सम-उत्पाद रेखाओं का अर्थ तथा उनकी विशेषताएँ

(The Concept and Characteristics of Iso product Curves)

वस्तुओं के उपभोग में तथा साधनों के प्रयोग में कई दृष्टियों से समानता है। जिस प्रकार से उपभोग में कई वस्तुओं का संयुक्त रूप में प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार किसी वस्तु के उत्पादन में कई साधनों का संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है। पुनः वस्तुओं के विभिन्न संयोग समान सन्तुष्टि प्रदान कर सकते हैं। इसी प्रकार उत्पादन में भी, दी हुई टेकनीकल दशाओं के अन्तर्गत, उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के संयोग समान उत्पादन प्रदान कर सकते हैं, सरलता के लिए हम केवल दो उत्पत्ति के साधनों के संयोग को (जिस प्रकार कि उपभोग में दो वस्तुओं के संयोग को) लेते हैं जो कि समान उत्पादन प्रदान करते हैं, साधनों के ऐसे विभिन्न संयोगों को वक्र-रेखाओं में व्यक्त किया जाता है और ऐसी रेखाओं को 'सम-उत्पाद रेखाएँ' (Iso-product Curves) कहते हैं।

सम-उत्पाद रेखा की परिभाषा तथा उसका अर्थ (Definition and Meaning of an Iso-product Curve)

एक सम-उत्पाद रेखा तटस्थता-वक्र रेखा की भाँति होती है। एक तटस्थता-वक्र रेखा दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को बताती है जो कि उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। इसी प्रकार एक सम-उत्पाद रेखा दो साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे एक फर्म उत्पादन की समान मात्रा उत्पादित करती है। कीरस्टेड (Keirstead) के शब्दों में,

> "सम-उत्पाद रेखा दो साधनों के उन सब सम्भावित संयोगों को बताती है जो कि एकसमान कुल उत्पादन प्रदान करते हैं।"[1]

सम-उत्पाद रेखा (Iso-product curve or Isoquant or Equal product curve) को कभी-कभी 'उत्पादन तटस्थता रेखा' (*Production Indifference Curve*) भी कहते हैं क्योंकि यह 'उपभोग में तटस्थता-वक्र रेखा' की भाँति होती है। कभी-कभी इसे 'उत्पादन का तटस्थता-वक्र विश्लेषण' (*Indifference curve analysis of production*) भी कहा जाता है।

सम-उत्पाद रेखा को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना कि श्रम तथा पूँजी दो उत्पत्ति के साधन हैं। माना कि इन साधनों के विभिन्न संयोग ५०० इकाई के बराबर उत्पादन देते हैं।

---

[1] "Iso-product curve represents all possible combinations of the two factors that will give the same total product." —*Keirstead*

निम्नलिखित उदाहरण को चित्र १ द्वारा व्यक्त किया गया है। IP सम-उत्पाद रेखा है जो श्रम तथा पूँजी के उन विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे एक फर्म या उत्पादक को एकसमान उत्पादन (अर्थात् ५०० इकाई के बराबर उत्पादन) प्राप्त होता है।

पूँजी की इकाइयाँ (Units of Capital)	श्रम की इकाइयाँ (Units of Labour)	कुल उत्पादन (Total Production)
६	३	५००
४	६	५००
२	९	५००
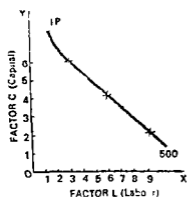
चित्र—१
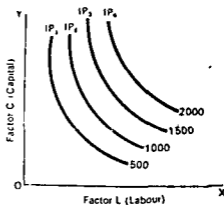
चित्र—२

सम-उत्पाद मानचित्र (Iso-product Map)

एक उत्पादक या फर्म के लिए एक नहीं बल्कि अनेक सम-उत्पाद रेखाएँ हो सकती हैं, प्रत्येक सम-उत्पाद रेखा उत्पादन की विभिन्न मात्रा को बताती है जैसे ५०० इकाई, १,००० इकाई, १,५०० इकाई, २,००० इकाई, इत्यादि। जब कई सम-उत्पाद रेखाओं को, जो कि एक उत्पादक या फर्म के लिए उत्पत्ति की विभिन्न 'समान मात्राओं' को बताती हैं, एक ही चित्र में दिखाया जाता है तब इस चित्र को 'सम-उत्पाद मानचित्र' (Iso-product Map) कहते हैं। नीची सम-उत्पाद रेखाएँ उत्पादन की कम मात्रा को तथा ऊँची सम-उत्पाद रेखाएँ उत्पादन की अधिक मात्रा को बताती हैं। एक सम-उत्पाद मानचित्र को चित्र २ में दिखाया गया है।

सम-उत्पाद रेखाओं की मान्यताएँ (Assumptions of Iso-product Curves)

सम-उत्पाद रेखाओं की मुख्य मान्यताएँ निम्न हैं

(१) सम-उत्पाद रेखाओं को खींचते समय सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के केवल दो साधन किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त किये जा रहे हैं।

[जब दो से अधिक साधन प्रयोगों में लाये जाते हैं तो सम-उत्पाद रेखा की सरलता समाप्त हो जाती है। तीन साधनों के लिए हमें तीन माप (three dimensions) की आवश्यकता पड़ेगी तथा तीन से अधिक साधनों के लिए रेखागणित (Geometry) हमारा साथ छोड़ देती है और हमें या तो बीजगणित (Algebra) की सहायता लेनी पड़ती है या हम शब्दों में व्यक्त करते हैं, परन्तु सम-उत्पाद विश्लेषण (Isò-product analysis) अप्रभावित रहता है।]

(२) यह मान लिया जाता है कि उत्पादन की टेकनीकल दशाएँ (technical production conditions) दी हुई हैं तथा स्थिर (constant) हैं।

(३) यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के साधन छोटी-छोटी इकाइयों में विभाज्यनीय (divisible) हैं। इस मान्यता के परिणामस्वरूप ही हम समतल सम-उत्पाद रेखाएँ (Smooth iso-product curves) खींच पाते हैं।

(४) यह मान लिया जाता है कि दी हुई 'उत्पादन की टेकनीकल दशाओं' के अन्तर्गत प्रयुक्त किये जाने वाले साधन पूरी कुशलता के साथ मिलाए जाते हैं जितना कि सम्भव है।[2]

तटस्थता-वक्र रेखाओं तथा सम-उत्पाद रेखाओं में अन्तर (Difference between Indifference Curves and Iso-product Curves)

दोनों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं

(१) तटस्थता-वक्र रेखाओं को केवल एक क्रम (order) में रखा जा सकता है, हम केवल यह कह सकते हैं कि एक तटस्थता-वक्र रेखा दूसरे की अपेक्षा सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर को बताती है परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि सन्तुष्टि कितनी अधिक है। दूसरे शब्दों में, एक तटस्थता-वक्र रेखा को परिमाणात्मक मूल्य (numerical value) प्रदान नहीं कर सकते क्योंकि सन्तुष्टियों को परिमाणात्मक रूप से मापने के लिए कोई भौतिक इकाई (physical unit) नहीं है, परन्तु सम-उत्पाद रेखाओं को परिमाणात्मक मूल्य प्रदान किये जा सकते हैं क्योंकि साधनों के संयोग द्वारा उत्पादित वस्तु को भौतिक इकाइयों में मापा जा सकता है।[3]

(२) एक दिये हुए समय के अन्तर्गत एक उपभोक्ता का व्यय लगभग उसकी द्राव्यिक आय द्वारा सीमित होता है, परन्तु एक उत्पादक या व्यापारी उत्पादन के साधनों पर अपने व्यय को, एक सीमा तक, परिवर्तित कर सकता है।[4]

सम-उत्पाद रेखाओं की विशेषताएँ या गुण

(CHARACTERISTICS OR PROPERTIES OF ISO-PRODUCT CURVES)

(१) तटस्थता वक्र रेखा की भाँति एक सम-उत्पाद रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुई होती है अर्थात् उसका ढाल ऋणात्मक होता है। एक सम-उत्पाद रेखा का बायें से दायें नीचे की ओर ढाल एक साधन का दूसरे साधन के लिए टेकनीकल स्थानापन्नता (technical substitutability) पर निर्भर करता है," अर्थात् उत्पादन प्रक्रिया में एक साधन को दूसरे से प्रतिस्थापित करने की योग्यता करने पर निर्भर करता है।[5] एक सम-उत्पाद रेखा के ऋणात्मक ढाल का कारण यह है कि यदि एक फर्म एक साधन 'L' की इकाइयाँ बढ़ाती है तो उसे दूसरे साधन 'C' की इकाइयाँ घटानी पड़ेंगी तथा सभी उसे इन दो साधनों के विभिन्न संयोगों से समान-उत्पादन मिलेगा। लेफ्टविच (Leftwich)' में शब्दों में, "जब तक साधन टकनीकल स्थानापन्न (technical substitutes) हैं, तब तक एक साधन की कम मात्रा प्रयुक्त करने पर हानि-पूर्ति के लिए दूसरे साधन की अधिक मात्रा प्रयुक्त करनी पड़ेगी यदि कुल उत्पादन समान रहता है।[6]

[यदि फर्म एक साधन की मात्रा स्थिर रखकर दूसरे की मात्रा बढ़ाती है तो उससे या तो बढ़ता हुआ प्रतिफल (increasing returns) या घटता हुआ प्रतिफल (decreasing returns)

---

[2] It is assumed that under given technical production [E]itions the factors used are being combined as efficiently as possible

[3] Indifference curves can only be put in an order; we can say [th]at one indifference curve represents a higher level of satisfaction than another but we [can]not say how much higher In other words, *we cannot assign a numerical value to indiffer[enc]e curves* because satisfaction cannot be quantitatively measured in physical units B[ut] *we can assign a numerical value to iso product curves* because the commodity produced b[y t]he combination of factors of production can be measured in physical units

[4] The expenditure of the consumer is almost limited by his money income during a given period of time, whereas the producer or businessman can change to a certain extent, his expenditure on factors of production hired to produce a commodity

[5] 'The downward slope of an isoquant from left to right depends upon the technical substitutability of one resource for the other that is upon the ability of one resource to substitute itself for the other in the productive process.'

[6] "When resources are technical substitutes if less of one is used more of the other must be used to compensate for its loss if total product is to remain constant."

प्राप्त होगा। इसी प्रकार यदि वह दोनो साधनो की मात्रा को बढाती है तो उसे उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त नहीं होगी। उत्पादन की समान मात्रा तभी प्राप्त होगी जबकि एक साधन को बढाने पर दूसरे को घटाया जाता है। सम-उत्पाद रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होनी चाहिए।]

(२) सम-उत्पाद रेखाएं कभी एक-दूसरे को काटती नहीं हैं या वे एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करती हैं अर्थात् वे एक-दूसरे के लिए स्पर्श-रेखाएं (tangents) नहीं होतीं। यदि एक सम-उत्पाद रेखा दूसरी को काटती है या दूसरी को स्पर्श करती है तो इसका अर्थ है कि कटाव का बिन्दु (point of intersection) या स्पर्श-बिन्दु (point of tangency) दो सम-उत्पाद रेखाओं पर होगा। जब इस बिन्दु को नीचे की सम-उत्पाद रेखा की दृष्टि से देखेंगे तो यह उत्पादन की कम मात्रा का बतायगा, यदि इसे दूसरी ऊँची सम-उत्पाद रेखा की दृष्टि से देखेंगे तो वही बिन्दु उत्पादन की अधिक मात्रा को बतायेगा। परन्तु एक ही बिन्दु दो साधनों के दो विभिन्न संयोगों को नहीं बता सकता और न ही वह उत्पत्ति की दो भिन्न मात्राओं को बता सकता है।[1]

(३) सम-उत्पाद रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex to the origin) होती है। सम-उत्पाद रेखा के मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होने का अर्थ है कि जब उत्पादक एक सम-उत्पाद रेखा पर बायें से दायें नीचे की ओर चलता है (अर्थात् उत्पादन की मात्रा समान रखी जाती है) तो वह साधन L की प्रत्येक इकाई का साधन C की घटती हुई मात्रा से प्रतिस्थापित करता है (देखिए चित्र ३)। दूसरे शब्दों में, सम-उत्पाद रेखा का उन्नतोदर आकार 'घटती हुई सीमान्त टेकनीकल प्रतिस्थापन दर' (diminishing marginal rate of technical substitution) को बताता है।

यह बात चित्र ३ से स्पष्ट होती है। उत्पादक IP रेखा के बिन्दु a से बिन्दु l की ओर चलता है अर्थात् वह बायें से दायें नीचे की ओर चलता है साधन L (अर्थात् श्रम) की एक इकाई AB या bc को साधन C (अर्थात् पूंजी) की FG या ab इकाइयो के स्थान पर प्रतिस्थापित
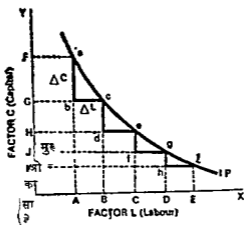
चित्र—३

(substitute) किया जाता है। यदि L को एक और इकाई BC (या de) द्वारा बढाया जाता है तो L की इस एक और इकाई BC (या de) को C की GH (या cd) इकाइयो के स्थान पर

[1] But one given point cannot indicate two different combinations of the two factors nor can the same point blow hot and cold and represent two different quantities of the product.

प्रतिस्थापित किया जाता है, इसी प्रकार L की एक और अतिरिक्त इकाई fg (या CD) को C की ef (या HJ) इकाइयों के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाता है, इत्यादि। चित्र से स्पष्ट है कि साधन L की प्रत्येक इकाई को साधन C की घटती हुई मात्रा (JK<HJ<GH<FG अथवा gh<ef<cd<ab) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी को L की C के लिए 'घटती हुई सीमान्त टेक्नीकल प्रतिस्थापन दर' (Marginal Rate of Technical Substitution of L for C is diminishing) कहते हैं।[8]

साधारणतया एक सम-उत्पाद रेखा मूल-बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है तथा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है, *परन्तु कुछ परिस्थितियों में इसका आकार भिन्न हो सकता* है जैसा कि चित्र ५ तथा ६ में दिखाया गया है।

> जब दो साधन L तथा C पूर्ण स्थानापन्न होते हैं तो इन दोनों के बीच टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर स्थिर (constant) होगी और सम-उत्पाद रेखा एक ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा होगी।[9]

इस बात को चित्र ५ में IP रेखा द्वारा दिखाया गया है। माना कि हम IP रेखा पर बिन्दु a से शुरू करते हैं। माना कि साधन L को एक एक इकाई करके बढ़ाया जाता है जैसा कि

[8] यदि सम-उत्पाद रेखा 'मूल बिन्दु के प्रति नतोदर' (concave to the origin) है तो ऐसी स्थिति में सम-उत्पाद रेखा 'बढ़ती हुई सीमान्त टेक्नीकल प्रतिस्थापन दर' (increasing marginal rate of technical substitution) को बनायेगी, जैसा कि चित्र ४ में दिखाया

चित्र—४
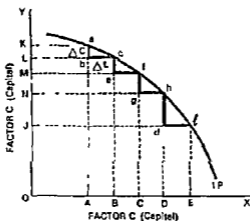
गया है। चित्र से स्पष्ट है कि साधन L की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को साधन C की बढ़ती हुई मात्रा (hd>fg>ce>ab) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। परन्तु सम उत्पाद रेखा का ऐसा आकार एक सामान्य (normal) बात नहीं होती, तथा दो साधनों L तथा C के बीच टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बढ़ती हुई नहीं हो सकती।

[9] When the two factors L and C are perfect substitutes the marginal rate of technical substitution between the two will be constant and the iso-product curve will be a negatively sloping straight line

चित्र ५ मे हम साधन L को bg (यानी AB), cd (यानी BC) तथा ef द्वारा बढाते हैं, तो इसकी प्रतिक्रिया में उत्पादक साधन C की जो मात्रा क्रमश घटाने को तत्पर होता है वह समान या स्थिर (constant) रहेगी जैसा कि चित्र ५ मे साधन C की ab (यानी JK), gc (यानी KL) तथा de मात्राएँ बताती हैं, साधन C की मात्राएँ बराबर या समान हैं [अर्थात् de=gc=ab] स्पष्ट है कि जब दो साधन L तथा C पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होते हैं तो L की C के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन सीमान्त दर ($MRTS_{LC}$)=स्थिर (constant)

चित्र—५
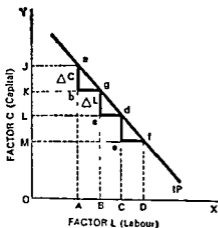
[इस बात को हम एक दूसरी प्रकार से भी बता सकते हैं। हम जानते हैं कि एक सम-उत्पाद वक्र-रेखा के किसी बिन्दु पर $MRTS_{LC}$ बताती है सम-उत्पाद वक्र रेखा के ढाल (slope) को। चूँकि एक ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा का ढाल उसकी सम्पूर्ण लम्बाई पर स्थिर या समान होता है, इसलिए एक सीधी रेखा के आकार वाली सम-उत्पाद रेखा दो साधनो, L तथा C, के बीच एक स्थिर या समान सीमान्त टेकनीकल प्रतिस्थान दर को बतायेगी।][10]

परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ण स्थानापन्न साधनों (perfectly substitutable factors) की बात केवल सैद्धान्तिक है। वास्तविक जीवन मे कोई भी दो साधन पूर्ण रूप से स्थानापन्न नही होते हैं और यदि वे पूर्ण स्थानापन्न है तो इसका अभिप्राय है कि वे दो साधन केवल एक ही साधन की दो इकाइयाँ हैं।

जब दो साधन L तथा C पूर्ण पूरक (perfect complementary) होते हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे सदैव एक निश्चित अनुपात मे मांगे जाते हैं—

> दो साधनों के पूर्ण पूरक होने की स्थिति मे सम-उत्पाद वक्र-रेखा का आकार L-आकार का हो जाता है, अर्थात् सम-उत्पाद वक्र-रेखा दो सीधी रेखाओं द्वारा निर्मित होगी, प्रत्येक सीधी रेखा एक अक्ष (one axis) के प्रति समान्तर (parallel) होगी तथा वे एक दूसरे को समकोण (right angle) पर मिलेंगी तया समकोण का मोड (या कोना) मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होगा। ऐसी सम-उत्पाद वक्र-रेखा बताती है कि दो साधन सदैव एक साथ एक निश्चित अनुपात मे माँगे जाते हैं।[11]

---

[10] We know the $MRTS_{LC}$ indicates the slope of an iso-product curve at a point on it. As the straight line has the same or constant slope throughout its length, therefore the straight line iso-product curve will indicate the same or constant $MRTS_{LC}$ throughout.

[11] In the case of two factors being perfect complementary, the iso product curve becomes L-shape; that is the iso product curve will consist of two straight lines each running parallel to one of the axes and meeting at right angle, and the right angle bent or corner will be convex to the origin Such an iso-product curve indicates that the two factors will always be jointly demanded in a fixed or constant ratio

ऐसी सम-उत्पाद रेखा को चित्र ६ में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि दो साधन L तथा साधन C, २ : ३ के एक निश्चित (या स्थिर) अनुपात में माँगे जाते हैं, अर्थात् साधन L की २ इकाइयाँ तथा साधन C की ३ इकाइयाँ एक साथ माँगी जाती हैं, यह बात सम-उत्पाद रेखा IP_1 पर बिन्दु A बताता है, चूँकि ये साधन २ : ३ के निश्चित अनुपात में माँगे जाते हैं, इसलिए यदि हम L की मात्रा को २ इकाई से बढ़ाकर ४ इकाई कर देते हैं तो C की मात्रा को ३ इकाई से बढ़ाकर ६ इकाई करना होगा, यह संयोग (combination) दूसरी सम-उत्पाद रेखा IP_2 पर बिन्दु B बताता है।
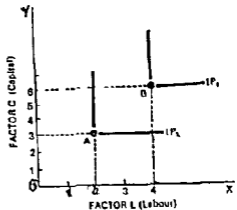
चित्र—६

सम-उत्पाद रेखा IP_1 (या IP_2) की पड़ी हुई भुजा (horizontal arm) यह बताती है कि, साधन C की मात्रा को स्थिर रखते हुए, साधन L की मात्रा में कोई भी वृद्धि उत्पादन के स्तर को नहीं बढ़ायेगी, और साधन L की समस्त बढ़ी हुई मात्रा बेकार रहेगी। इसी प्रकार से सम-उत्पाद रेखा IP_1 (या IP_2) की खड़ी भुजा (vertical arm) यह बताती है कि साधन L की मात्रा स्थिर रखते हुए, साधन C की मात्रा में कोई भी वृद्धि उत्पादन के स्तर को नहीं बढ़ायेगी और साधन C की समस्त बढ़ी हुई मात्रा बेकार रहेगी। दोनों साधनों को सदैव एक निश्चित अनुपात (यहाँ पर २ : ३ के अनुपात) में माँगा जायेगा।

उपर्युक्त समस्त विवरण से एक महत्त्वपूर्ण विशेषता (characteristic) स्पष्ट होती है :

> **सम-उत्पाद रेखा की वक्रता दो साधनों में बीच स्थानापन्नता तथा पूरकता के अंश को बताती है। सम-उत्पाद रेखा जितनी ही कम वक्रता लिये हुए होगी उतना ही स्थानापन्नता का अंश अधिक होगा। पूर्ण स्थानापन्न साधनों के लिए सम-उत्पाद रेखाएँ नीचे को गिरती हुई सीधी या सरल रेखाएँ हो जाती हैं, वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से ऐसे दो साधन भिन्न नहीं होते बल्कि एक ही साधन की दो इकाइयाँ होती हैं। इसके विपरीत जितनी ही सम-उत्पाद रेखाओं में वक्रता अधिक होगी उतना ही पूरकता का अंश अधिक होगा; पूर्ण पूरकता की स्थिति में सम-उत्पाद रेखाओं का आकार L-आकार का हो जायेगा।[12]**

(४) रिज रेखाएँ[13] उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमाएँ (Ridge Lines : Boundaries for the economic region of production)—सम-उत्पाद रेखाओं की एक विशेषता और है

[12] The curvature of an Iso product curve indicates the degree of substitutability and complementarity between two factors The less curved the iso product curves, the greater the degree of substitution For perfect substitutes the iso-product curves become falling straight lines, from the practical point of view this implies that the two factors are not different but they are simply the two units of the same factor If, on the other hand, the factors are complementary, the Iso product curves become more curved The greater the curvature the greater the degree of complementarity, for perfect complementarity iso product curves become L-shape

[13] Ridge lines के हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार हो सकते हैं—'मेंड़ रेखाएँ' या 'कूटक रे०

जो कि उत्पादन प्रक्रिया (production process) में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। सम-उत्पाद रेखाएं अपने पीछे की ओर झुकती हैं (bend back upon themselves) अथवा यह कहिए कि उनके 'ऊपर को चढ़ते हुए भाग' (positively sloped segments) होते हैं, जैसा कि चित्र ७ में दिखाया गया है। चित्र में IP_1 सम-उत्पाद रेखा D तथा A बिन्दुओं, IP_2 रेखा E तथा B बिन्दुओं और IP_3 रेखा F तथा C बिन्दुओं पर पीछे की ओर झुकती हैं। A, B तथा C बिन्दुओं को मिलाने से OR रेखा प्राप्त होती है तथा D, E और F को मिला देने से OL रेखा प्राप्त होती है, OR तथा OL रेखाएँ रिज-रेखाएँ (या मेड़ रेखाएं) हैं। ये रिज-रेखाएँ उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमाएँ हैं। सम-उत्पाद रेखाओं के केवल वे भाग जो कि रिज रेखाओं के बीच में हैं, उत्पादन के लिए उपयुक्त (relevant) हैं।[14]
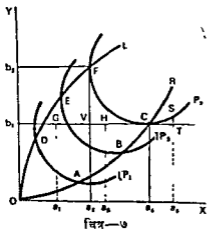
चित्र—७

रिज-रेखाओं पर एक व्याख्यात्मक नोट
(AN EXPLANATORY NOTE ON RIDGE LIENS)

चित्र ७ में X-axis पर साधन X (माना श्रम) की विभिन्न मात्राओं a_1, a_2, a_3, a_4, a_5 इत्यादि को दिखाया गया है तथा Y-axis पर साधन Y (माना पूंजी) की विभिन्न मात्राओं b_1, b_2, इत्यादि को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि साधन X की a_4 मात्रा तथा साधन Y की b_1 मात्रा का संयोग उत्पादन की IP_3 मात्रा की उत्पत्ति करता है। यदि सम-उत्पाद रेखा IP_3 पर बायें से दायें नीचे की ओर चलें तो हम साधन X का प्रतिस्थापन (substitution) करते जायेंगे अर्थात् साधन X की मात्रा को बढ़ाते जायेंगे और साधन Y का त्याग करते जायेंगे जब तक हम साधन Y की b_1 मात्रा पर न पहुँच जायें, और ऐसा करने में उत्पादन की मात्रा या उत्पादन-स्तर IP_3 में कोई कमी नहीं होगी। मात्रा b_1 साधन Y की न्यूनतम मात्रा है जो कि उत्पादन के IP_3 स्तर की उत्पत्ति के लिए प्रयोग की जा सकती है। साधन Y की b_1 मात्रा को स्थिर रखते हुए, यदि बिन्दु C पर हम साधन X की मात्रा को और अधिक बढ़ायें तो कुल उत्पादन गिरेगा, जैसे यदि साधन X की a_4 मात्रा को बढ़ाकर a_5 मात्रा कर दी जाये और जबकि साधन Y की b_1 मात्रा को स्थिर रखा जाता है तो हम चित्र में बिन्दु T पर होंगे जो कि उत्पादन स्तर IP_3 से नीचे है, स्पष्ट है कि पहले की अपेक्षा कुल उत्पादन गिर जाता है। इसका अभिप्राय है कि बिन्दु C के बाद साधन X की सीमान्त उत्पादकता (अर्थात् MP_X) ऋणात्मक (negative) है तभी साधन X की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करने से कुल उत्पादन घटता है। दूसरे शब्दों में, बिन्दु C पर $MP_X = 0$, बिन्दु C के बायें ओर यदि हम साधन X की मात्रा बढ़ाते हैं, जबकि साधन Y की मात्रा b_1 पर स्थिर रखते हैं, तो साधन X की वृद्धि हमें ऊँची तथा और ऊँची सम-उत्पाद रेखा पर ले जायगी और इस प्रकार MP_X धनात्मक (positive) होगी। चित्र से स्पष्ट है कि यदि

[14] पाठकों के लिए नोट—परीक्षा में, प्रश्न विशेष के स्वभाव को देखते हुए, यदि सम-उत्पाद रेखाओं की विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण देना है, तो विद्यार्थियों को यहाँ तक ही विषय-सामग्री लिखना पर्याप्त होगा। यदि प्रश्न में स्पष्ट रूप में 'रिज-रेखाओं' के बारे में पूछा गया है तो इसके आगे दिये गये व्याख्यात्मक विवरण को अवश्य लिखना चाहिए।

साधन X की मात्रा a_1 है तो हम G बिन्दु पर होंगे और G बिन्दु से एक सम-उत्पाद रेखा खींची जा सकती जो कि IP_1 से ऊँची होगी, इसी प्रकार यदि साधन X की मात्रा बढ़ाकर a_2, a_3 तथा a_4 तक कर दी जाती है तो हम क्रमश V, H तथा C बिन्दुओं पर पहुँच जायेंगे और बिन्दु C से होती हुई सम-उत्पाद रेखा ऊँची होगी बिन्दु H से गुजरने वाली सम-उत्पाद रेखा से और यह ऊँची होगी बिन्दु V से गुजरने वाली सम-उत्पाद रेखा से। संक्षेप में, बिन्दु C के बायें को साधन X की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् MP_x धनात्मक (positive) है, बिन्दु C पर $MP_x = 0$ है, तथा बिन्दु C के बाद MP_x ऋणात्मक (negative) है। यदि हम चाहते हैं कि बिन्दु C के बाद साधन X की मात्रा को बढ़ाने से कुल उत्पादन में कमी न हो तो हम साधन Y की मात्रा को b_1 से ऊपर बढ़ाना होगा तभी हम बिन्दु S पर पहुँचेंगे जो IP_3 सम-उत्पाद रेखा पर है, दूसरे शब्दों में, बिन्दु C के बाद पहले के समान उत्पादन स्तर IP_3 को प्राप्त करने के लिए हम दोनों साधनों X तथा Y की मात्रा में वृद्धि करनी होगी जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक रूप से उत्पादन लागत बढ़ जायगी और ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता' (economic nonsense) की होगी। अत, सम-उत्पाद रेखा IP_3 के सन्दर्भ में बिन्दु C उत्पत्ति के साधनों (X तथा Y) के विवेकपूर्ण संयोग (rational combination) की सीमा (boundary) होगी क्योंकि इस बिन्दु पर $MP_x = 0$ है और इसके आगे फर्म साधनों का कोई भी संयोग प्रयोग में नहीं लायगी अर्थात् बिन्दु C के बाद 'उत्पादन का अनार्थिक क्षेत्र' (uneconomic region of production) होगा। दूसरे शब्दों में बिन्दु C से बाद सम-उत्पाद रेखा का 'पीछे को झुकने वाला भाग' या 'ऊपर को चढ़ता हुआ भाग' यह बताता है कि उत्पादन के एक निश्चित स्तर को प्राप्त करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं को बढ़ाना होगा और ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता की या 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' को बतायेगी।

इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_3 के सन्दर्भ में बिन्दु F पर साधन Y की सीमान्त उत्पादकता शून्य होगी अर्थात् $MP_y = 0$, और फर्म बिन्दु F के आगे साधनों के किसी भी संयोग को प्रयोग में नहीं लायेगी क्योंकि ऐसा करने से उसे, उत्पादन का IP_3 स्तर प्राप्त करने के लिए, दोनों साधनों Y तथा X की मात्रा बढ़ानी होगी, जिससे उत्पादन-लागत बढ़ जायेगी तथा ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता की होगी और फर्म 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' में प्रवेश करेगी दूसरे शब्दों में बिन्दु F के बाद सम उत्पाद रेखा का 'पीछे को झुकता हुआ भाग' या 'ऊपर को चढ़ता हुआ भाग' दोनों साधनों की वृद्धि को या 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' को बताता है। स्पष्ट है कि बिन्दु F 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा' (boundary for economic region of production) को बताता है।

इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_2 बिन्दु E तथा B पर अपने ऊपर पीछे को झुकती है। बिन्दु B पर $MP_x = 0$, तथा बिन्दु E पर $MP_y = 0$ है। इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_1 बिन्दु D तथा A पर पीछे की ओर झुकती है, बिन्दु A पर $MP_x = 0$ तथा बिन्दु D पर $MP_y = 0$ है।

यदि बिन्दु A, B तथा C को मिला दिया जाये तो हम रिज रेखा OR प्राप्त हो जायेगी—

(i) रिज-रेखा OR साधन Y की न्यूनतम मात्राओं को बताती है जो कि उत्पादन की विभिन्न मात्राओं के लिए आवश्यक है।

(ii) रिज-रेखा OR 'उन बिन्दुओं का मार्ग (locus) है जहाँ पर कि $MP_x = 0$ है, क्योंकि बिन्दु A, B तथा C पर साधन X की सीमान्त उत्पादकता (MP_x) शून्य है।

(iii) रिज-रेखा OR 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा' (bounbary line for economic region of production) है, क्योंकि रिज-रेखा OR के एक तरफ साधन X तथा Y के वे संयोग हैं जो कि एक फर्म उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की उत्पत्ति के लिए प्रयोग में लायेगी तथा दूसरी ओर दोनों साधनों के वे संयोग हैं जो कि फर्म

प्रयोग में नहीं लायेगी। संक्षेप में, रिज-रेखा 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र' को 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' से पृथक करती है।

यदि बिन्दु D, E तथा F को मिला दिया जाय तो हम रिज-रेखा OL प्राप्त हो जायेगी—

(i) रिज-रेखा OL साधन X की न्यूनतम मात्राओं को बताती है जो कि उत्पादन की विभिन्न मात्राओं के लिए आवश्यक हैं।

(ii) रिज-रेखा OL उन बिन्दुओं का मार्ग (locus) है जहाँ पर कि $MR_y = 0$ है, क्योंकि बिन्दु D, E तथा F पर साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (MP_y) शून्य है।

(iii) रिज रेखा OL उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा' है क्योंकि रिज-रेखा OL के एक तरफ साधन X तथा Y के व संयोग है जो कि एक फर्म उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की उत्पत्ति के लिए प्रयोग में लायेगी तथा दूसरी ओर दोनों साधनों के वे संयोग हैं जो कि फर्म प्रयोग में नहीं लायगी। संक्षेप में, रिज रेखा OL 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र' को 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्रों से पृथक करती है।

समग्र रूप में,

साधन X तथा Y के सभी विवेकपूर्ण संयोग (rational combinations) रिज-रेखाओं के बीच में होंगे, दूसरे शब्दों में, सम-उत्पाद रेखाओं के केवल वे भाग जो कि दोनों रिज-रेखाओं के बीच में होते हैं वे ही उत्पादन के लिए उपयुक्त (relevant) होंगे।

प्रश्न

१ सम-उत्पाद रेखाएँ क्या है ? उनकी विशेषताओं को बताइए।

What are Iso-product curves ? Explain their characteristics

२ सम-उत्पाद रेखाओं की परिभाषा दीजिए। व तटस्थता वक्र रेखाओं से किस प्रकार भिन्न होती हैं ? रिज-रेखाएँ क्या हैं ?

Define Equal Product curves. How do they differ from Indifference curves ? What are 'ridge lines' ?

३. आप 'उत्पादन तटस्थता रेखा' से क्या समझते हो ? निम्न को समझाइए (अ) सम-उत्पाद रेखाएँ मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होती हैं। (ब) सम-उत्पाद रेखाओं की वक्रता उस सुगमता (ease) को बताती है जिससे कि साधन एक-दूसरे से प्रतिस्थापित किये जा सकते हैं।

What do you understand by 'Production Indifference Curves' ? Explain the following. (a) Iso product curves are convex to the origin (b) The curvature of the iso-product curve indicates the ease with which the two factors can be substituted for each other

४ सम-उत्पाद रेखाएँ क्या है ? रिज-रेखाओं से आप क्या समझते है ?

What are iso product curves ? What do you understand by Ridge Lines ?

26

सम-उत्पाद रेखाएँ—२

[ISO-PRODUCT CURVES—2]

टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

(Marginal Rate of Technical Substitution)

१. प्राक्कथन (Introduction)

दो साधनों X तथा Y के संयोग (combination) में यदि एक साधन X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो यह स्वाभाविक है कि दूसरे साधन Y की मात्रा घटायी जायेगी ताकि उत्पादन-स्तर समान बना रहे, अर्थात् कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो। टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर दो साधनों के बीच प्रतिस्थापन की दर को बताती है, जबकि उत्पादन स्तर में कोई परिवर्तन न हो। 'उत्पादन के क्षेत्र में टेकनीकल प्रतिस्थापन की दर' का विचार 'उपभोक्ता के माँग सिद्धान्त में तटस्थता-वक्र विश्लेषण के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' के विचार की भाँति है।

२. टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की परिभाषा (Definition of Margin l Rate of Technical Substitution)

उत्पत्ति के साधनों के विभिन्न संयोग उत्पादन के एक दिये हुए स्तर को उत्पादित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, एक साधन को दूसरे के स्थान पर इस प्रकार से प्रतिस्थापित (substitute) किया जा सकता है कि उत्पादन का एकसमान स्तर बना रहे। एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर प्रयोग करने की योग्यता को टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर द्वारा मापा जाता है।[1] टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की परिभाषा[2] नीचे दी गयी है :

> **एक साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y की वह मात्रा है जो X की एक अतिरिक्त इकाई बढ़ाने की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है ताकि उत्पादन का स्तर पहले के समान स्थिर बना रहे।**[3]
>
> अथवा
>
> **साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y की वह मात्रा है जिसके लिए X की एक इकाई स्थानापन्न (substitute) है, जबकि उत्पादन का स्तर पहले के समान बना रहे।**[4]

---

[1] The ability to use one factor (or input) in place of another is measured by the marginal rate of technical substitution (MRTS)

[2] **विद्यार्थियों के लिए नोट—दो परिभाषाओं** में से कोई भी एक परिभाषा, जो कि विद्यार्थियों को आसान लगती है, याद रखना पर्याप्त है।

[3] The Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y is the amount of Y which has to be subtracted in order to set off one additional unit of X, when the output is maintained at the constant level

[4] The MRTS of factor X for factor Y is the amount of Y for which one unit of X is a substitute if output is maintained at a constant level.

टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) का अर्थ निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जाता है

संयोग संख्या (Combination Numbers)	साधन Y की इकाइयाँ	साधन X की इकाइयाँ	उत्पादन का स्तर	साधन X को साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की दर [MRTS of X for Y i. e. $MRTS_{xy}$]
१	५०	१	५०० इकाइयाँ	—
२	४०	२	५०० इकाइयाँ	१० : १
३	३४	३	५०० इकाइयाँ	६ : १

तालिका से स्पष्ट है कि एक उत्पादक साधन Y की ५० इकाइयों तथा साधन X की १ इकाई के संयोग से ५०० इकाई के बराबर किसी वस्तु का उत्पादन करता है। अब वह साधन X को एक इकाई से बढ़ाता है तो उसे साधन Y की १० इकाइयाँ घटानी पड़ती है ताकि उत्पादन का वही स्तर बना रहे दूसरे शब्दों में साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y की १० इकाइयाँ हैं जो कि साधन X की १ इकाई बढ़ाने की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है[5] अतः MRTS of X for Y (संक्षेप में, $MRTS_{xy}$) = १० : १

१० इकाइयाँ साधन Y की मात्रा में परिवर्तन को बताती हैं, इसको हम गणित की भाषा में ΔY लिख सकते हैं तथा १ इकाई साधन X की मात्रा में परिवर्तन को बताती है इसको हम ΔX लिख सकते है। अतः,

$$MRTS_{xy} = १० : १ = \Delta Y : \Delta X$$
$$= \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

अतः टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को निम्न प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है

> साधन X की साधन Y के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y में परिवर्तन की मात्रा है जो कि X में एक इकाई के परिवर्तन की क्षतिपूर्ति (compensation) के लिए आवश्यक है यदि उत्पादन स्थिर रहता है।[6] इसको प्रायः इस प्रकार लिखते है
>
> $$MRTS_{xy} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

[5] यदि साधन X की १ इकाई और बढ़ायी जाती है तो तालिका से स्पष्ट है कि साधन Y की ६ इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं इस स्थिति में $MRTS_{xy}$ = ६ : १।

[6] Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y is the amount of change in Y that is required to compensate for a unit change in X if output remains constant

This is usually written as $MRTS_{xy} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$

$MRTS_{xy}$ को हम इस प्रकार पढ़ते है—*Marginal Rate of Technical Substitution* of X for Y [X की Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर]
यदि हम $MRTS_{yx}$ लिखते हैं तो इसका अभिप्राय है—Marginal Rate of Technical Substitution of Y for X [Y की X के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर]। यहाँ पर हम साधन Y का एक एक इकाई करके बढ़ाते है और तब यह देखते हैं कि इसकी प्रतिक्रिया में X की कितनी मात्रा घटानी पड़ती है। दूसरे शब्दों में,

$$MRTS_{yx} = \frac{\Delta X}{\Delta Y}$$

३. टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक सम-उत्पाद रेखा के ढाल को मापती है (Marginal Rate of Technical Substitution Measures the Slope of an Isoproduct Curve)

चित्र १ में हम सम-उत्पाद रेखा IP का ढाल P बिन्दु पर विचार करते हैं। यदि P तथा Q बिन्दु बहुत निकट हैं (जैसा कि चित्र २ में स्पष्ट है) तो मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि ST रेखा सम-उत्पाद रेखा के P बिन्दु पर स्पर्श-रेखा (tangent) होगी (चित्र २) तथा कोण (angle) OTS सम-उत्पाद रेखा के P बिन्दु पर ढाल (Slope) को बतायेगा। चित्र १ में माना कि उत्पादक P बिन्दु से Q बिन्दु पर आता है अर्थात् X-साधन की एक अतिरिक्त इकाई प्रयोग करता है तथा Y-साधन की कुछ इकाइयाँ कम कर देता है। X-साधन की मात्रा में वृद्धि को ΔX द्वारा बताते हैं तथा Y वस्तु की मात्रा में कमी को $-\Delta Y$ द्वारा
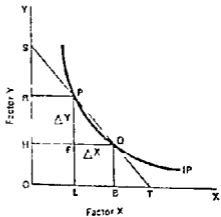
चित्र—१

बताया जाता है, अतः साधन X की साधन Y के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{xy}$)

$= -\Delta Y \quad \Delta X$ हुई या $-\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ हुई।

अब हम नीचे सिद्ध करेंगे कि सम-उत्पाद रेखा का ढाल 'टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' $\left(\text{अर्थात् } \frac{\Delta Y}{\Delta X}\right)$ को बताता है। चित्र १ में,

सम-उत्पाद रेखा का बिन्दु P पर ढाल (Slope of Iso-product Curve at Point P)

= Tangent ST का ढाल (यदि P तथा Q बहुत निकट हैं।)

चित्र—२

= Tan of angle OTS

= Tan of angle EQP   ($\because \angle OTS = \angle EQP$ दोनों corresponding angles हैं)

$$= \frac{\text{Perpendicular (लम्ब)}}{\text{Base (आधार)}}$$

$$= \frac{PE}{EQ}$$
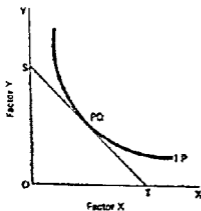
$$= -\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$= MRTS_{xy}$ (अर्थात् Marginal Rate of Technical Substitution of X for Y)

४ टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर दो साधनों X तथा Y की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात को बताती है (The MRTS indicates the ratio of the marginal productivities of two factors X and Y)

चित्र १ मे उत्पादक बिन्दु P से बिन्दु Q पर पहुँचने मे साधन Y की PE मात्रा घटाता है तथा साधन X की EQ मात्रा बढाता है (अर्थात् वह साधन X को साधन Y के स्थान पर प्रतिस्थापित करता है) । परन्तु ऐसा करने में कुल उत्पादन स[illegible]हता है क्योंकि चलन (movement) एक ही सम-उत्पाद रेखा पर है । दूसरे शब्दों मे, साधन Y की मात्रा में थोडी कमी (अर्थात् PE कमी) के कारण भौतिक उत्पादन (physical output) मे हानि (या कमी) होगी जो कि बराबर होगी साधन X की मात्रा मे थोडी वृद्धि (अर्थात् EQ वृद्धि) के कारण भौतिक उत्पादन म वृद्धि या लाभ के क्योंकि तभी कुल उत्पादन समान रहेगा ।

उत्पादन मे हानि (loss) = साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity of Factor Y, that is, MP_y) $\times$ PE

उत्पादन मे लाभ (gain) = साधन X की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity of Factor X, that is MP_x) $\times$ EQ

उत्पादन मे हानि = उत्पादन मे लाभ

$$MP_y \times PE = MP_x \times EQ$$

अथवा, $$\frac{PE}{EQ} = \frac{MP_x}{MP_y}$$

अथवा $$\frac{\Delta Y}{\Delta X} = \frac{MP_x}{MP_y}$$

अर्थात् $$MRTS_{xy} = \frac{MP_x}{MP_y}$$

स्पष्ट है कि साधन X की साधन Y के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर, X तथा Y की सीमान्त उत्पादकताओ के अनुपात को बताती है ।

५ साराश (Summary)

उपर्युक्त विवरण का साराश निम्नलिखित है

१ टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक साधन (माना Y) मे कमी को मापती है, जो कि दूसरे साधन (माना X) की एक इकाई की वृद्धि के परिणामस्वरूप करनी पडती है ताकि उत्पादन स्तर ठीक पहले के समान बना रहे ।[7]

---

[7] The Marginal Rate of Technical Substitution measures the reduction in one factor (say, Y) in reaction to per unit increase in the other factor (say, X) that is just sufficient to maintain a constant level of output

२ एक सम-उत्पाद रेखा के किसी एक बिन्दु पर साधन X की साधन Y के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर सम-उत्पाद रेखा के उस बिन्दु पर ढाल (slope) के बराबर होती है।[8]

३ साधन X की साधन Y के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर साधन X की सीमान्त उत्पादकता तथा साधन Y की सीमान्त उत्पादकता के अनुपात का भी बताती है।[9]

टेक्नीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त
(THE PRINCIPLE OF DIMINISHING MARGINAL RATE OF TECHNICAL SUBSTITUTION)

१ कथन (Statement)

सामान्यतया दो साधनों X तथा Y के बीच टेक्नीकल प्रनिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होती है। इस सिद्धान्त का कथन निम्न प्रकार से दिया जा सकता है

दो साधनों X तथा Y के सयोग मे यदि एक साधन X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो दूसरे साधन Y की मात्रा घटानी पड़ेगी ताकि कुल उत्पादन समान रहे, ऐसी स्थिति मे साधन X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को साधन Y की घटती हुई मात्रा द्वारा प्रतिस्थापित (substitute) किया जायेगा। इसको X की Y के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त कहा जाता है।[10]

२ सिद्धान्त का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagrammatic Presentation)

चित्र ३ मे माना कि उत्पादक IP रेखा पर बिन्दु a से बिन्दु I की ओर चलता है अर्थात् वह साधन X की मात्रा बढ़ाता जाता है और साधन Y की मात्रा घटाता जाता है ताकि उसके कुल उत्पादन मे अन्तर नही पड़ता कुल उत्पादन समान रहता है। साधन X की एक इकाई AB या bc को साधन Y की FG या ab इकाइयो के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) किया जाता है। यदि साधन X को एक और इकाई BC या de द्वारा बढ़ाया जाता है तो X की इस एक और इकाई BC या de को साधन Y की GH या cd इकाइयो के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी प्रकार साधन X की एक और अतिरिक्त इकाई fg को साधन Y को ef इकाइयो के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाता है, इत्यादि।

इस प्रकार,

चित्र ३ से स्पष्ट है कि साधन X की प्रत्येक इकाई को साधन Y की घटती हुई मात्रा ($JK < HJ < GH < FG$ अथवा $gh < ef < cd < ab$) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी को 'साधन X की साधन Y के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर' कहते हैं। दूसरे शब्दों मे एक सम-उत्पाद रेखा का मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होना टेक्नीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर बताता है।

चित्र—३

---
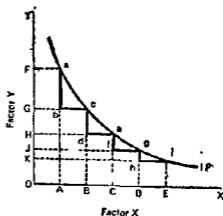
[8] The Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y at a point on an iso product curve is equal to the slope of the iso product curve at the point

[9] The Marginal Rate of Technical Substitution is also equal to the ratio of the marginal product of factor X to the marginal product of factor Y

[10] In the combination of two factors X and Y if one factor X is increased then the other factor Y has to be decreased so that the total product remains the same, under such a situation every additional unit of factor X will be substituted for decreasing amount of Y This is known as the *Principle of Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution of X for Y.*

४. टेक्नीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर तथा उत्पत्ति ह्रास नियम (Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution and the Law of Diminishing Returns)

टेक्नीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त वास्तव में उत्पत्ति ह्रास नियम का विस्तार मात्र (extension) है। हम जानते हैं

साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की

$$\text{सीमान्त दर } (MRTS_{xy}) = \frac{\text{साधन X की सीमान्त उत्पादकता } (MP_x)}{\text{साधन Y की सीमान्त उत्पादकता } (MP_y)}$$

जब एक सम-उत्पाद रेखा पर साधन X की मात्रा बढ़ाई जाती है तथा साधन Y की मात्रा घटायी जाती है ताकि कुल उत्पादन समान रहे, तो उत्पत्ति ह्रास नियम के अनुसार साधन X की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Product of X, अर्थात् MP_x) घटती जायेगी और साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (अर्थात् MP_y) बढ़ती जायेगी। इसलिए साधन Y की घटती हुई मात्रा का प्रतिस्थापन साधन X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए किया जायेगा ताकि कुल उत्पाद समान रहे, दूसरे शब्दों में, टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त लागू होगा।

प्रश्न

१ 'टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' के विचार को समझाइए तथा बताइए कि (अ) यह एक सम-उत्पाद रेखा के ढाल को मापता है, तथा (ब) यह दो साधनों की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात को बताता है।

Explain the concept of 'Marginal Rate of Technical Substitution' and show that (a) it measures the slope of an iso-product curve and (b) it indicates the ratio of the marginal productivities of two factors

२. टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर के सिद्धान्त का कथन दीजिए और उसकी व्याख्या कीजिए।

State and explain the Principle of Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution.

27

सम-उत्पाद रेखाएँ—३

[ISO-PRODUCT CURVES—3]

पैमाने के प्रतिफल

(Returns to Scale)

१. प्राक्कथन 'अनुपात' तथा 'पैमाने' के विचार (Introduction The Concepts of 'Proportion' and 'Scale')

'पैमाने के प्रतिफल' (*returns to scale*) के विचार को अच्छी प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम दो विचारों (concepts)—'अनुपात' तथा 'पैमाने'—को समझ लें।

अनुपात (Proportion)

> स्थिर साधन या साधनों के साथ एक परिवर्तनशील साधन के संयोग (combination) को 'एक अनुपात' कहा जाता है।[1]
>
> अथवा
>
> 'एक स्थिर साधन का सहायक परिवर्तनशील साधनों के साथ संयोग को 'एक अनुपात' कहा जाता है।'[2]

[एक प्लाण्ट (plant) अनुपातों का योग होता है, या प्लाण्ट को एक बहुत बड़ा अनुपात कहा जा सकता है।[3] एक प्लाण्ट के अन्तर्गत मशीनें होती हैं और इस स्थिर साधन के साथ अनेक परिवर्तनशील साधनों, जैसे—श्रम, कच्चा माल, यन्त्र, टाइपराइटर्स, टेलीफोन, फाइलें, मेजें, कुर्सियाँ, इत्यादि का संयोग किया जाता है। प्लाण्ट के अन्तर्गत कोई भी साधन या तो सहायक परिवर्तनशील साधन हो सकता है जो कि स्थिर साधन के साथ मिलकर कार्य करता है या कोई भी साधन एक स्थिर साधन हो सकता है जो कि परिवर्तनशील साधनों के साथ मिलकर कार्य करता है। कुछ दशाओं में एक साधन स्थिर तथा परिवर्तनशील दोनों की भाँति कार्य कर सकता है, परिवर्तनशील साधन एक स्थिर साधन के साथ मिल सकते हैं और यह स्थिर साधन स्वयं एक परिवर्तनशील साधन हो सकता है किसी दूसरे स्थिर साधन के साथ मिलकर कार्य करने के सन्दर्भ में।[4]]

अनुपात का विचार अल्पकालीन (short period) से सम्बन्ध रखता है क्योंकि अल्पकाल में हम स्थिर साधनों के साथ परिवर्तनशील साधन की अधिकाधिक मात्रा का प्रयोग करके ही उत्पादन को बढ़ा पाते हैं।

---

[1] "The comb nation of one variable factor with a fixed factor or factors is called *a proportion*

[2] "The combination of a fixed factor with a complement of variable resources is a *proportion*."

[3] The plant constitutes an aggregate of proportions ; or the plant as a whole may by said as one large proportion "

[4] "There may be 'wheels within wheels' variables co-operating with a fixed agent which in its turn is a variable in relation to another fixed agent."
For examp e. "The floor space in a given plant is fixed, and the number of rooms is variable in relation to this floor space In its turn, the room is fixed in relation to desks, the variable "

'उत्पत्ति ह्रास नियम' के पीछे 'अनुपात' का विचार है, इस नियम के अन्तर्गत अन्य साधन या साधनों को स्थिर रखते हैं और एक साधन को परिवर्तनशील रखकर 'परिवर्तनशील साधन' तथा 'स्थिर साधन या साधनों' के बीच मिलने के अनुपात में परिवर्तन होता है और इसके परिणामस्वरूप उत्पादन या प्रतिफल (returns) में परिवर्तन होता है।

पैमाना (Scale)

'अनुपात तथा पैमाने' में स्पष्ट अन्तर किया जाता है। 'पैमाने' को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

> "जितना गुना सभी अनुपातों को दोहराया जाता है, अर्थात् जितना गुना स्थिर, और इसलिए परिवर्तनशील साधनों को बढ़ाया जाता है, तो यह फर्म के पैमाने को स्थापित करता है।"[5]

सरल शब्दों में,

> पैमाने में वृद्धि का अर्थ है सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाना, अर्थात साधन अनुपातों को स्थिर रखते हुए सभी साधनों को बढ़ाया जाता है।[6]

पैमाने का विचार दीर्घकाल (long period) से सम्बन्ध रखता है क्योंकि इसमें स्थिर साधनों को परिवर्तित करके फर्म के आकार को बढ़ाया जाता है, कोई भी साधन स्थिर नहीं रह जाता है।

चित्र—१

'पैमाने' तथा 'अनुपात' के विचारों को सम-उत्पाद रेखाओं की सहायता से चित्र १ तथा २ द्वारा स्पष्ट किया गया है।
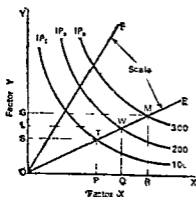
मूल बिन्दु (origin) से खींची गयी कोई भी रेखा (line or ray) पैमाने' (*Scale*) को बनाती है जैसा कि चित्र १ में OE तथा OF रेखाएँ हैं। OE रेखा पर आगे की ओर चलने पर दोनों साधनों X तथा Y की निरपेक्ष मात्राओं (absolute amounts) में वृद्धि होती है, और उत्पादन बढ़ता है अर्थात् १०० से २०० तथा ३०० इकाइयों के बराबर हो जाता है। OE रेखा की सम्पूर्ण लम्बाई पर दोनों साधनों X तथा Y का अनुपात समान रहेगा। इसका कारण है कि इस रेखा का ढाल (slope) दोनों साधनों Y तथा X के अनुपात (ratio or proportion) को बनाता है, OE रेखा के बिन्दुओं T, W तथा M पर दोनों साधनों की निरपेक्ष मात्राओं में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप इन बिन्दुओं पर उत्पादन बढ़ता है अर्थात् १००, २०० तथा ३०० इकाइयों के बराबर होता है, परन्तु इन सभी उत्पादन के स्तरों पर दोनों साधन Y तथा X का अनुपात समान रहता है, अर्थात्

---

[5] 'The number of times all proportions are reproduced that is the number of times the fixed and therefore also the variable resources are multiplied establishes the *scale* of the firm.

[6] An increase in *scale* implies that all factors are increased in the same proportion that is keeping factor proportions constant all the factors are increased

इसको हम एक दूसरी प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं

"Changing the *scale* of the firm implies changing all the fixed factors and in the same proportions."

$$\frac{\text{साधन } Y}{\text{साधन } X} = \frac{PT \text{ (or } OS)}{OP} = \frac{WQ \text{ (or } OL)}{OQ} = \frac{MR \text{ (or } OG)}{OR}$$[7]

स्पष्ट है कि रेखा OE 'पैमाने' को बताती है, अर्थात्, रेखा OE को पैमाना रेखा (*Scale line*) कहा जाता है क्योंकि यह साधनों के उन सब संयोगों को जोड़ती है जो कि साधनों की निरपेक्ष मात्राओं में परिवर्तनों को बताते हैं परन्तु साधनों का एक स्थिर या समान अनुपात बनाये रखते हैं।[8]

रेखा OF भी एक 'पैमाने' को बताती है, अर्थात् रेखा OF भी एक पैमाना रेखा है। यह OE से इस बात में भिन्न है कि इस पर साधन X तथा Y के मिलने का स्थिर अनुपात (constant porportion) वह नहीं है जो कि रेखा OE पर है।

अब हम 'अनुपात' के विचार को एक चित्र द्वारा स्पष्ट करते हैं। चित्र २ में Y-axis पर किसी एक बिन्दु A से एक पड़ी रेखा AB खींची जाती है जो कि X-axis के समान्तर (parallel) है। रेखा AB अनुपात को बताती है। उत्पादन को १००, २०० या ३०० तथा और अधिक इकाइयों तक बढ़ाने के लिए रेखा AB पर दायें (right) की ओर चला जाता है। इस रेखा पर दायें की ओर चलने का अर्थ है कि एक साधन Y को OA मात्रा पर स्थिर रखा जाता है और दूसरे साधन X को बढ़ाया जाता है तथा इस प्रकार स्थिर साधन Y का परिवर्तनशील साधन X के साथ अनुपात बदलता जाता है। इस प्रकार AB रेखा पर चलन साधनों के अनुपातों में परिवर्तन को बताता है।

चित्र—२

इसी प्रकार X-axis पर किसी भी बिन्दु C से एक खड़ी रेखा CD खींची जा सकती है, वह रेखा CD भी 'अनुपात' को बताती है परन्तु यहाँ पर साधन X की मात्रा को OC पर स्थिर रखकर साधन Y को परिवर्तनशील रखा जाता है, जबकि AB रेखा पर इसका उलटा था।

---

[7] OE रेखा का ढाल दोनों साधनों Y तथा X के मिलने के अनुपात को बताता है, अर्थात् OE रेखा का ढाल (slope) = Tan of angle EOP

$$= \frac{\text{Perpendicular (लम्ब)}}{\text{Base (आधार)}}$$

$$= \frac{TP}{OP}$$

$$= \frac{OS \text{ of Factor } Y}{OP \text{ of Factor } X} \quad ..(१)$$

इसी प्रकार,

$$\text{OE रेखा का Slope} = \frac{WQ}{OQ} = \frac{OL \text{ of Factor } Y}{OQ \text{ of Factor } X} \quad ....(२)$$

$$\text{OE रेखा का Slope} = \frac{MR}{OR} = \frac{OG \text{ of Factor } Y}{OR \text{ of Factor } X} \quad ....(३)$$

दूसरे शब्दों में (१), (२) तथा (३) से स्पष्ट है—

$$\frac{OS \text{ of Factor } Y}{OP \text{ of Factor } X} = \frac{OL \text{ of Factor } Y}{OQ \text{ of Factor } X} = \frac{OG \text{ of Factor } Y}{OR \text{ of Factor } X}$$

स्पष्ट है कि OE रेखा के किसी भी बिन्दु पर दोनों साधनों Y तथा X का अनुपात समान रहता है यद्यपि उनकी निरपेक्ष मात्राओं में वृद्धि होती है।

[8] Line OE is called a *scale line* because it connects all those combinations of factors, which show changes in absolute amount of factors but maintain a constant proportion

संक्षेप में,

> सम-उत्पाद रेखाओं के एक मानचित्र (map of iso product curves) में मूल बिन्दु (origin) से खींची गयी कोई भी रेखा 'पैमाने' (*scale*) को बताती है, जबकि X-axis के किसी बिन्दु से खींची गयी खड़ी रेखा (vertical line) या Y-axis के किसी बिन्दु से खींची गयी पड़ी रेखा (horizontal line) 'अनुपात' (proportion) को बताती है।

२. 'पैमाने के प्रतिफल' का विचार (The Concept of 'Returns to Scale')

'पैमाने के अर्थशास्त्र' में केन्द्रीय समस्या पैमाने के प्रतिफल' है। (The central problem in the economics of scale is 'returns to scale')

> पैमाने के प्रतिफल का विचार इस बात का अध्ययन करता है कि यदि सब साधनों मे आनुपातिक परिवर्तन कर दिया जाये ताकि साधनों के मिलने के अनुपातों मे कोई तबदीली न हो तो उत्पादन मे किस प्रकार से परिवर्तन होगा।[9]

साधनो की निरपेक्ष मात्राओ मे तो परिवर्तन हो परन्तु उनके मिलने के अनुपात में परिवर्तन न हो, यह बात एक 'पैमाना रेखा' (scale line) बताती है।[10] अत 'पैमाने के प्रतिफल के विचार' को दूसरे शब्दो मे निम्न प्रकार से भी व्यक्त किया जाता है

> "यदि एक विशिष्ट पैमाना रेखा पर साधनो की मात्राओं को परिवर्तित किया जाता है तो उत्पादन मे परिवर्तन होगा। साधनों मे इस प्रकार के परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उत्पादन की प्रतिक्रिया (responsiveness) को पैमाने के प्रतिफल कहा जाता है।"[11]

पैमाने के प्रतिफल की समस्या इस बात को मालूम करना है कि जब एक पैमाना रेखा पर साधनो मे कोई आनुपातिक वृद्धि (proportionate increase) की जाती है तो उत्पादन में किस अनुपात मे वृद्धि होगी।[12]

जब साधनों को एक ही अनुपात मे बढाया जाता है (और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने मे वृद्धि की जाती है) तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा या प्रतिफल (returns) तीन अवस्थाएँ (stages) दिखाते हैं—

(i) पैमाने के बढते हुए प्रतिफल की अवस्था (Stage of *Increasing Returns to Scale*)

(ii) पैमाने के समान या स्थिर प्रतिफल की अवस्था (Stage of *Constant Returns to Scale*)

(iii) पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था (Stage of *Decreasing Returns to Scale*)

इन तीनो अवस्थाओ का पूर्ण विवरण आगे दिया गया है।

---

[9] The concept of returns to scale studies how the output changes when all inputs (or factors) are changed proportionately so that the proportions among them do not change

[10] 'पैमाना रेखा' की पूर्ण व्याख्या हम पहले कर चुके हैं।

[11] "As the quantities of inputs are varied along a particular scale line, output will vary The responsiveness of output to such changes in inputs is called returns to scale"

[12] The problem of returns to scale is to find out in what proportion output increases when there is some proportionate increase in inputs (or factors) along a scale line

३. पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

यदि सभी साधनों को १०% से बढ़ाया जाता है। [अर्थात् पैमाने (scale) को १०% से बढ़ाया जाता है] और उत्पादन १५% से बढ़ जाता है अर्थात् १०% से अधिक बढ़ता है, तो ऐसी अवस्था 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' की अवस्था कही जायगी।

इसको निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

जब सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (अर्थात् एक पैमाना रेखा पर चला जाता है) और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो जाती है तथा इसके परिणामस्वरूप यदि उत्पादन में अधिक अनुपात में वृद्धि होती है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन प्रक्रिया (production process) पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल उत्पन्न करती है।[13]

दूसरे शब्दों में,

पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एकसमान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः कम और कम वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है।[14]

[यह कथन चित्र ३ से बिलकुल स्पष्ट हो जायगा।]

चित्र ३ में IP_1, IP_2, IP_3 तथा IP_4 सम-उत्पाद रेखाएँ हैं जो क्रमशः १०, २०, ३० तथा ४० इकाइयों के बराबर उत्पादन को बताती हैं। ये सम-उत्पाद रेखाएँ उत्पादन में एकसमान वृद्धि (equal addition to output) अर्थात् १० इकाइयों के बराबर एकसमान वृद्धि बताती हैं। ये सम-उत्पाद रेखाएँ पैमाना रेखा OE को टुकड़ों (segments) में (जैसे, AB, BC तथा CD में) बाँट देती हैं। पैमाना रेखा OE का प्रत्येक टुकड़ा दोनों साधनों X तथा Y की एक निश्चित मात्रा को बतायेगा। चित्र ३ में प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई कम होती जाती है अर्थात् CD < BC < AB। इन घटते हुए टुकड़ों (decreasing segments) का अभिप्राय है कि दो साधनों X तथा Y की क्रमशः कम मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन में एकसमान वृद्धि (चित्र ३ में १० इकाइयों के बराबर वृद्धि) प्राप्त की जाती है। ऐसी स्थिति को 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' की अवस्था कहते हैं।

चित्र—३

सामान्य शब्दों में (in general terms) इस स्थिति को नीचे व्यक्त किया गया है

सम उत्पाद रेखाएँ एक पैमाना रेखा (scale line) को टुकड़ों में बाँट देती हैं। यदि उत्पादन के किसी क्षेत्र (range) पर इन टुकड़ों की लम्बाई क्रमशः घटती जाती है जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु (origin) से दूर हटते जाते हैं (अर्थात् जैसे फर्म बड़ी होती जाती है), तो फर्म 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' के अन्तर्गत कार्य करती हुई कही जाती है क्योंकि दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः कम और कम वृद्धि की आवश्यकता होती है उत्पादन में क्रमशः समान वृद्धि करने के लिए।[15]

---
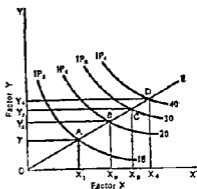
[13] When all inputs or factors are increased in the same proportion (that is when the movement is along a scale line) and the scale of production is thus enlarged and if it results in an output increase that is more than proportionate then the production process is said to yield *increasing returns to scale*

[14] Under increasing returns to scale, successively smaller and smaller increments in Inputs are required to obtain successively equal increases in output

[15] Successive isoproduct curves divide a scale line into segments. If, over any range of output the length of these segments decreases as we move away from the origin (that is, as the firm grows bigger) then the firm is said to be working under *'increasing returns to scale'* because successively smaller increases in the two factors employed are required to obtain equal successive addition to output.

४. पैमाने के समान या स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

यदि सभी साधनो को १०% से बढ़ाया जाता है (अर्थात् पैमाने को १०% से बढ़ाया जाता है) और उत्पादन भी १०% से बढ़ जाता है, तो ऐसी अवस्था 'पैमाने के समान प्रतिफल' की अवस्था कही जाती है। इसको निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है :

> जब सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (अर्थात् एक पैमाना-रेखा पर चला जाता है) और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो जाती है तथा इसके परिणामस्वरूप यदि उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन-प्रक्रिया (production process) 'पैमाने के समान प्रतिफल' उत्पन्न करती है।

दूसरे शब्दों में,

> पैमाने के स्थिर प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एकसमान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः एकसमान वृद्धि की ही आवश्यकता पड़ती है। [यह कथन चित्र ४ से बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा।]
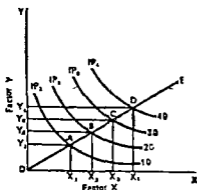
चित्र—४

चित्र ४ में सम-उत्पाद रेखायें पैमाना-रेखा OE को टुकड़ों (segments) में (जैसे AB, BC तथा CD में) बाँट देती हैं। पैमाना-रेखा OE का प्रत्येक टुकड़ा दोनों साधनों X तथा Y की एक निश्चित मात्रा को बतायेगा। चित्र ४ में प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई बराबर है अर्थात् AB=BC=CD। इन बराबर टुकड़ों का अभिप्राय है कि दो साधनों X तथा Y की क्रमशः बराबर मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन में एकसमान वृद्धि (चित्र ४ में १० इकाइयों के बराबर वृद्धि) प्राप्त की जाती है। ऐसी स्थिति को 'पैमाने के स्थिर या समान प्रतिफल' की अवस्था कहते हैं।

सामान्य शब्दों में इस स्थिति को नीचे व्यक्त किया गया है :

> सम-उत्पाद रेखाएँ एक पैमाना रेखा को टुकड़ों में बाँट देती हैं। यदि उत्पादन के किसी क्षेत्र पर इन टुकड़ों की लम्बाई क्रमशः बराबर रहती है जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु से दूर हटते जाते हैं (अर्थात् जैसे फर्म बड़ी होती जाती है), तो फर्म 'पैमाने के समान प्रतिफल' के अन्तर्गत कार्य करती हुई कही जाती है क्योंकि दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः समान वृद्धि की आवश्यकता होती है उत्पादन में क्रमशः समान वृद्धि करने के लिए।

५. पैमाने के घटते हुए प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

यदि सभी साधनों को १०% से बढ़ाया जाता है (अर्थात् पैमाने को १०% से बढ़ाया जाता है) और उत्पादन ७% से बढ़ता है अर्थात् १०% से कम बढ़ता है, तो ऐसी स्थिति 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' की अवस्था कही जायेगी। इसको निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है.

> जब सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (अर्थात् एक पैमाना रेखा पर चला जाता है) और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो जाती है तथा इसके परिणामस्वरूप यदि उत्पादन में कम अनुपात में वृद्धि होती है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन-प्रक्रिया (production process) पैमाने के घटते हुए प्रतिफल उत्पन्न करती है।

दूसरे शब्दों में,

> पैमाने के घटते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एकसमान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः अधिकाधिक वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है।

[यह कथन चित्र ५ से बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा।]

चित्र ५ में सम-उत्पाद रेखाएँ पैमाना-रेखा OE को टुकड़ों (जैसे AB, BC तथा CD में) बाँट देती हैं। पैमाना-रेखा OE का प्रत्येक टुकड़ा दोनों साधनों X तथा Y की एक निश्चित मात्रा को बतायेगा। चित्र ५ से प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई बढ़ती जाती है अर्थात् CD>BC>AB। इन बढ़ते हुए टुकड़ों (increasing segments) का अभिप्राय है दो साधनों X तथा Y की क्रमशः अधिक मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन में एकसमान वृद्धि प्राप्त की जाती है। ऐसी स्थिति को 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' की अवस्था कहते हैं।
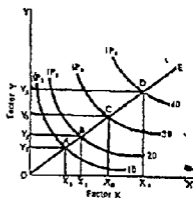
सामान्य शब्दों में (in general terms) इस स्थिति को नीचे व्यक्त किया गया है :

चित्र—५

> सम-उत्पाद रेखाएँ एक पैमाना-रेखा को टुकड़ों में बाँट देती हैं। यदि उत्पादन के किसी क्षेत्र (*range*) पर इन टुकड़ों की लम्बाई क्रमशः बढ़ती जाती है जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु (origin) से दूर हटते जाते हैं (अर्थात् जैसे फर्म बड़ी होती जाती है) तो फर्म पैमाने के घटते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत कार्य करती हुई कही जाती है क्योंकि दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः अधिकाधिक वृद्धि की आवश्यकता होती है उत्पादन में क्रमशः समान वृद्धि के लिए।

६. पैमाने के बदलते हुए प्रतिफल (Varying Returns to Scale)

उपर्युक्त विवरण से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अलग-अलग उत्पादन फलन (production function) पैमाने के प्रतिफल की अलग-अलग स्थितियों या अवस्थाओं को बताते
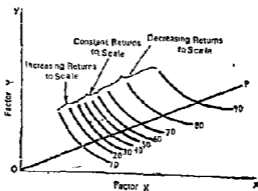
चित्र—६

हैं। वास्तव में प्रायः एक ही उत्पादन-फलन पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थाओं को बताता है; पहले 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था' प्राप्त होती है, तत्पश्चात् पैमाने के समान प्रतिफल

की अवस्था' और अन्त मे 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था' प्राप्त होती है। 'पैमाने के बदलते हुए प्रतिफल चित्र ६ से स्पष्ट होते हैं।

७ पैमाने के प्रतिफल के निर्धारक तत्व (Underlying Determinants of Returns to Scale)

वे कौन-से तत्त्व हैं जो पैमाने के प्रतिफल को निर्धारित करते हैं? दूसरे शब्दों मे, पैमाने के प्रतिफल वे लागू होने के क्या कारण हैं? अब हम पैमाने के प्रतिफल की तीनो अवस्थाओं के लागू होने के कारणो की विवेचना करते हैं।

'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' (Increasing Returns to Scale) लागू होने के निम्न कारण बताये जाते हैं

(i) अविभाज्यताएं (Indivisibilities)—उत्पत्ति के साधन अविभाज्य (indivisible) होते हैं। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की एक निम्नतम सीमा या उसका एक न्यूनतम आकार होता है जिसके नीचे हम उसको छोटे-छोटे टुकडो मे विभाजित नही कर सकते हैं। मशीन, प्रबन्धक (manager) विपणन (marketing), वित्त (finance) और अनुसन्धान तथा विज्ञान मे 'अविभाज्यता का तत्व' (element of indivisibility) होता है।

उत्पादन के पैमाने को बढाने से उन अविभाज्य साधनो ('indivisible' or 'lumpy' factors) का जो पहले से प्रयोग मे आ रहे हैं, अधिक अच्छा प्रयोग होने लगता है, या पैमाने के बढने के कारण नये अविभाज्य साधनो का प्रयोग सम्भव हो जाता है। इन सब बातो के कारण उत्पादन कुशलता (productive efficiency) बढती है, परिणामस्वरूप, प्रारम्भ मे जिस अनुपात मे साधनो को बढाया जाता है उससे अधिक अनुपात मे उत्पादन या प्रतिफल प्राप्त होता है।

परन्तु अविभाज्यता एक मात्रा (degree) की बात है। यद्यपि एक आधा मैनेजर, आधा एकाउण्टेण्ट या आधा श्रमिक नही हो सकता, परन्तु इनकी सेवाओ को आंशिक काल (part time) के लिए प्राप्त किया जा सकता है और इस प्रकार से अविभाज्य साधन समय-आधार (time-basis) पर विभाज्य हो जाते हैं। इसी प्रकार मशीनों तथा यन्त्रो, जैसे एक टाइपराइटर को आधा नही किया जा सकता परन्तु उसे थोडे समय (एक घण्टे या दो घण्टे) के लिए किराये (rent) पर दिया जा सकता है। इसी प्रकार अविभाज्य प्रबन्ध (management) अपने उत्तरदायित्व (responsibility) को दूसरे को वितरण (delegate) करके विभाज्य साधन हो सकता है।

अत कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों मुख्यतया प्रो० चेम्बरलिन (Prof Chamberlin), 'अविभाज्यता' (indivisibility) को पैमाने के बढते हुए प्रतिफल' का महत्त्वपूर्ण कारण नहीं मानते।

(ii) आकार की कुशलता (Dimensional efficiency)—पैमाने के बढते हुए प्रतिफल का एक मुख्य कारण केवल बडे आकार के परिणामस्वरूप प्राप्त कुशलता है। उदाहरणार्थ, यदि एक पाइप (pipe) की चौडाई (diameter) दुगुनी कर दी जाती है तो किसी भी तरल पदार्थ (liquid) की दुगुनी से अधिक मात्रा उसमे से गुजर सकेगी। एक लकडी का बक्स जो कि ३ फुट घन (3 foot cube) है १ फुट घन (1 foot cube) वाले लकडी के बक्स की तुलना मे, २७ गुना अधिक माल रख सकता है, जबकि बडे बक्स को बनाने मे छोटे बक्स की तुलना मे केवल ६ गुनी लकडी ही अधिक लगेगी।[10] परन्तु एक सीमा या बिन्दु के बाद इस प्रकार की बडे आकार की कुशलता समाप्त हो जायेगी।

(iii) श्रम का अधिक विशिष्टीकरण (Greater specialization of labour)—प्रो० चेम्बरलिन पैमाने के सिद्धान्त (theory of scale) मे श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण पर बहुत बल देते हैं। उत्पादन के पैमाने को बढाने से जटिल श्रम विभाजन तथा अधिक श्रम विशिष्टीकरण

[10] If the diameter of a pipe is doubled the flow through it is more than doubled A wooden box that is a 3 foot cube can contain 27 times as much as a box that is 1 foot cube but only 9 times as much wood is needed for the larger box'

सम्भव हो जाता है। जटिल श्रम-विभाजन के कारण श्रमिकों को अपनी योग्यतानुसार कार्य मिल जाता है तथा एक ही कार्य को बार-बार करने से वे अधिक कुशल हो जाते है।

अब हम 'पैमाने के स्थिर या समान प्रतिफल' के लागू होने के कारणों की विवेचना करेंगे। पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था सदैव नही रह सकती, कुछ समय बाद फर्म को पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होने लगते हैं, अर्थात् यदि साधनों को दुगुना या तिगुना कर दिया जाये तो उत्पादन भी दुगुना या तिगुना हो जायेगा।

'पैमाने के समान प्रतिफल' का अभिप्राय है कि फर्म के उत्पादन के पैमाने मे परिवर्तनों का साधनों के प्रयोग की कुशलता पर कोई प्रभाव नही पड़ता। अतः केवल उन फर्मों को ही, जो कि ऐसे उद्योगों मे कार्य करती हैं जिनमें साधनों के विशिष्टीकरण (अर्थात् जटिल श्रम-विभाजन) के लाभ या तो कम हैं या उन लाभों को उत्पादन के निम्न स्तरों पर ही प्राप्त किया जा सकता है, उत्पादन के बड़े फैलाव (ranges) तक 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' प्राप्त होते हैं।[11]

अब हम 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' के लागू होने के कारणों की विवेचना करते हैं। पैमाने के स्थिर प्रतिफल के पश्चात् एक फर्म को अन्त मे 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' प्राप्त होंगे। इसके लागू होने के कारणो पर अर्थशास्त्रियों म कोई एकमत (agreement) नहीं है। (अ) कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार एक साहसी एक स्थिर और अविभाज्य साधन है, दीर्घकाल मे यद्यपि सभी साधनों को बढ़ाया जा सकता है परन्तु साहसी को नहीं। साहसी और उसके निर्णय लेने की *क्रिया अविभाज्य हैं। इस मत के अनुसार, 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' परिवर्तनशील अनुपातों* (variable proportions) के केवल एक विशिष्ट रूप (special case) ही हैं। (ब) कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार पैमाने के घटते हुए प्रतिफल के लागू होने का कारण यह है कि फर्म के विकास के परिणामस्वरूप, एक सीमा के बाद, प्रबन्ध अत्यन्त जटिल हो जाता है। एक सीमा के बाद फर्म के विकास के साथ प्रबन्ध तथा समन्वय (organization and co-ordination) की कठिनाइयाँ इतनी बढ़ जाती हैं कि वे श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण के सभी लाभों को समाप्त कर देती है और पैमाने के घटते हुए प्रतिफल प्राप्त होने लगते हैं।

प्रश्न

१ पैमाने के प्रतिफलों को समझाइए। बढ़ते हुए पैमाने के प्रतिफलों के लागू होने के कारणों पर प्रकाश डालिए।

Explain returns to scale Give reasons for the operation of increasing returns to scale "
(Raj., IIyr. T. D C., Arts, 1975)

---

[11] "*Constant returns to scale* implies that changes in the scale of the firm's output will have no effect on the efficiency with which it utilizes inputs Presumably only firms operating in industries in which the benefits of input specialization (*i e*, a complex division of labour) are either small or can be fully realized at relatively modest levels of output would experience constant returns to scale over wide ranges of output,"

28 सम-उत्पाद रेखाएँ–४
[ISO-PRODUCT CURVES—4]

साधनों के संयोग का चुनाव
(Choice of Factor Combination)

साधनो का न्यूनतम-लागत सयोग
(LEAST-COST COMBINATION OF FACTORS)

अथवा

एक उत्पादक या फर्म का साधनो के संयोग के चुनाव के सम्बन्ध मे साम्य
(EQUILIBRIUM OF A PRODUCER OR A FIRM WITH REGARD TO THE CHOICE OF FACTOR COMBINATION)

१. प्राक्कथन (Introduction)

उत्पादन (output) साधनो (inputs) पर निर्भर करता है। साधनो के प्रयोग करने की दृष्टि से एक उत्पादक या फर्म साम्य (equilibrium) की दशा मे तब होगी जबकि वह उत्पादन की एक निश्चित मात्रा को न्यूनतम कुल लागत पर उत्पादित करती है, अर्थात् जबकि वह 'साधनो के न्यूनतम-लागत-सयोग' को चुनती है।

टेकनोलोजीकल दृष्टिकोण से एक सम-उत्पाद रेखा पर सभी बिन्दु एकसमान कुशलता (equal efficiency) को बताते है, अर्थात् एक ही उत्पादन-मात्रा (same output) को विभिन्न साधन-सयोगो द्वारा उत्पादित किया जा सकता है। चूंकि एक फर्म को प्रयोग मे लाये जाने वाले साधनो के लिए एक निश्चित कीमत देनी पडेगी, इसलिए एक सम-उत्पाद रेखा (iso-product curve) पर उत्पादन के एक निश्चित स्तर को उत्पादित करने की कुल लागत निर्भर करेगी 'साधन-सयोग' (factor-combination) पर तथा साधनो की कीमतो (factor-prices) पर।

> अत, यद्यपि एक सम-उत्पाद रेखा पर सभी साधन-सयोग 'एकसमान टेकनोलोजीकल कुशलता' को बताते है, परन्तु साधनो का वह सयोग, 'जिसके द्वारा उत्पादन के एक निश्चित स्तर को न्यूनतम कुल लागत' पर उत्पादित किया जा सकता है 'आर्थिक दृष्टि से अधिकतम कुशल सयोग' को बताता है।[1]

चूंकि प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है जो कि कुल आगम (total revenue) तथा कुल लागत (total cost) का अन्तर होता है, इसलिए—

[1] "Thus while all factor combinations along an isoquant represent equal *technological* efficiency the combination with which the particular output level can be produced at lowest total cost represent the *economically* most efficient combination."

एक फर्म साधनों के उस संयोग को चुनेगी जो कि उत्पादन के एक दिये हुए स्तर की कुल लागत को न्यूनतम करता है; दूसरे शब्दों में, एक फर्म साधनों के उस संयोग को चुनेगी जो कि एक दिये हुए व्यय के लिए उत्पादन को अधिकतम करता है।[1]

संक्षेप में, एक फर्म द्वारा साधनों के एक संयोग का चुनाव निर्भर करेगा—

(i) उत्पादन की टेक्नोलोजीकल कुशलता या उत्पादन की टेक्नोलोजीकल सम्भावनाओं पर जो कि सम-उत्पाद रेखाएँ (iso-product curves) बताती हैं।

(ii) साधनों की कीमतों पर, साधनों की कीमतें लागत को प्रभावित करके आर्थिक कुशलता को प्रभावित करती हैं। साधनों की कीमतें 'सम-लागत रेखा' (isocost line) बताती हैं।

अतः हमारा अगला कदम 'सम-लागत रेखा' के विचार को पूर्णतया समझना है।

२. सम-लागत रेखा (Iso-cost Line)

एक सम-लागत रेखा साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है जो कि एक फर्म दिये हुए लागत-व्यय (cost-outlay) द्वारा खरीद सकती है। [सम-लागत रेखा को कई अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जैसे—'साधन-कीमत रेखा' (factor price line) या केवल 'कीमत रेखा' (price line), 'साधन लागत रेखा' (factor-cost line), 'व्यय-रेखा' (outlay line), 'व्यय-परिधि रेखा' (outlay contour), 'फर्म की बजट-नियन्त्रण रेखा' (firm's budget constraint line)।]

चित्र—१

'सम-लागत रेखा' या 'साधन-कीमत रेखा' को चित्र १ में दिखाया गया है। साधन K को X-axis पर तथा साधन Y को Y-axis पर दिखाया गया है। यह मान लिया जाता है कि साधनों की कीमतें दी हुई हैं तथा वे फर्म के लिए स्थिर हैं। [इसका अभिप्राय यह है कि साधन-बाजार (factor-market) में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मान ली जाती है ताकि फर्म साधनों की जितनी ही मात्रा को दी हुई कीमत पर प्राप्त कर सकती है।] माना कि फर्म के पास साधनों पर कुल व्यय (total expenditure) करने के लिए १०० रु० हैं; अर्थात् फर्म का कुल लागत-व्यय (total cost-outlay) या कुल लागत (total cost) १०० रु० मान ली जाती है, माना कि इस कुल लागत के लिए हम C_1 का चिह्न (symbol) प्रयोग करते हैं। माना कि साधन X की कीमत ५ रु० है और इस कीमत के लिए हम P_x का चिह्न प्रयोग करते हैं; तथा साधन Y की कीमत १० रु० है और इस कीमत के लिए हम P_y चिह्न का प्रयोग करते हैं।

यदि फर्म समस्त लागत व्यय १०० रु० (अर्थात् C_1) को साधन X पर व्यय करती है तो वह $\frac{१०० \text{ रु०}}{५ \text{ रु०}}$ = २० इकाइयाँ साधन X की खरीद सकेगी, जो कि चित्र १ में बिन्दु B द्वारा दिखायी गयी है। इसको हम सामान्य चिह्नों (general symbols) में भी व्यक्त कर सकते
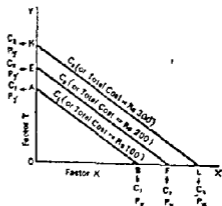
[1] A firm will choose that combination of factors which minimizes the total cost for any given level of output Or, what amounts to the same thing, for given outlay or expenditure, the firm will try to maximize output.

सम-लागत रेखा AB का ढाल (slope)

$$= \text{Tan of angle OBA}$$

$$= \frac{\text{Perpendicular (लम्ब)}}{\text{Base (आधार)}}$$

$$= \frac{OA}{OB} \qquad = \frac{\frac{C_1}{P_y}}{\frac{C_1}{P_x}}$$

$$= \frac{C_1}{P_y} \times \frac{P_x}{C_1} \quad = \frac{P_x}{P_y}$$

$$= \text{Price Ratio of X and Y}^{5}$$

चूँकि साधन X तथा Y की कीमतें समान रहती हैं, इसलिए चित्र १ में अन्य सम लागत रेखाओं EF तथा KL का ढाल भी एकसमान ही होगा और वह $\frac{P_x}{P_y}$ द्वारा बताया जायेगा; दूसरे शब्दों में, सभी सम-लागत रेखाओं का ढाल बराबर है, इसलिए ये सब रेखाएँ एक-दूसरे के समान्तर (parallel) होंगी।

एक सम-लागत रेखा साधनों की कीमतों को बताती है। दूसरे शब्दों में, एक सम-लागत रेखा का ढाल साधनों की कीमतों के अनुपात को बताता है।[6]

एक सम-लागत रेखा का ढाल ऋणात्मक (negative) होता है। इसका कारण स्पष्ट है कि यदि फर्म एक साधन (माना X) को अधिक खरीदना चाहती है बिना अधिक द्रव्य व्यय किये हुए (अर्थात् लागत-व्यय समान रहता है), तो उसे दूसरे साधन (अर्थात् Y) की कम मात्रा खरीदनी पड़ेगी।[7]

---

[5] हम साधन-बाजार (factor market) में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मानकर चले हैं। चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में साधन की कीमत साधन की सीमान्त लागत (marginal cost अर्थात् MC) के बराबर होती है, इसलिए साधन X की कीमत P_x के स्थान पर हम साधन X की सीमान्त लागत MC_x तथा साधन Y की कीमत P_y के स्थान पर साधन Y की सीमान्त लागत MC_y लिख सकते हैं, अत:

सम-लागत रेखा AB का ढाल $= \frac{P_x}{P_y} = \frac{MC_x}{MC_y}$

$= \text{Ratio of Marginal Costs of X and Y}$

[6] The prices of inputs are represented by an iso-cost line. In other words, the slope of an iso-cost line indicates the ratio of the prices of the inputs.

[7] हम यह बात इस प्रकार कह सकते हैं कि हम एक सम-लागत रेखा पर बायें से दायें नीचे की ओर चलते हैं तो लागत-व्यय को समान रखते हुए साधन X का साधन Y के लिए प्रतिस्थापन (substitution) करते जाते हैं। दूसरे शब्दों में—

> दो साधनों X तथा Y की कीमत का अनुपात $\frac{P_x}{P_y}$ जो कि सम-लागत रेखा के ढाल को मापता है, वित्तीय दशाओं (financial conditions) को बताता है जिनके अन्तर्गत फर्म के लिए एक साधन का दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापन करना सम्भव होता है।

The ratio of the prices of the two factors X and Y, *i. e.*, $\frac{Px}{Py}$, which measures the slope of an iso-cost curve, states the financial conditions under which it is possible for the firm to substitute one factor for another.

५०० रु० की लागत को); AB सम-लागत रेखा C लागत (५०० रु०) को तथा KL सम-लागत रेखा C_3 लागत (माना ६०० रु०) को बताती है।

वस्तु की १०० इकाई के उत्पादन के लिए न्यूनतम-लागत संयोग को मालूम करने का अर्थ है सम उत्पाद रेखा IP_2 पर एक ऐसे बिन्दु को ज्ञात करना जो कि इस सम-उत्पाद रेखा पर किसी भी अन्य बिन्दु (अर्थात् किसी भी अन्य साधन-संयोग) की तुलना मे कम लागत को बताये। उदाहरणार्थ, चित्र मे हम IP_2 रेखा पर बिन्दु R और T पर साधन-संयोग की तुलना करते हैं। बिन्दु R पर साधन X तथा साधन Y का संयोग C_3 लागत (अर्थात् ६०० रु०) को बताता है। बिन्दु T से एक सम-लागत रेखा खींची जा सकती है [जिसे कि चित्र मे बिन्दुकीय रेखा (dotted line) द्वारा दिखाया गया है] जो कि KL रेखा से नीची होगी, अर्थात् T बिन्दु पर साधन-संयोग की लागत C_3 से कम होगी।

चित्र—३
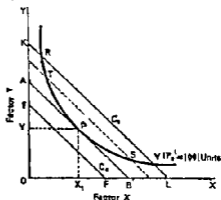
बिन्दु R तथा बिन्दु T की तुलना इस बात को बताती है कि 'न्यूनतम-लागत साधन-संयोग' को ज्ञात किया जा सकता है यदि सम-उत्पाद रेखा IP_2 पर 'ऊँची लागत सम-लागत रेखाओं' (high cost iso-costs) से 'नीची लागत सम-लागत रेखाओं' (low cost iso costs) की दिशा में चलते चलें जब तक कि 'सबसे नीची सम-लागत रेखा' (lowest iso-cost) पर न पहुँच जायें। चित्र में 'सबसे नीची सम-लागत रेखा' (अर्थात् C) बिन्दु P पर प्राप्त होती है। यह बिन्दु P सम-उत्पाद रेखा IP_2 तथा सम-लागत रेखा C का स्पर्श बिन्दु (point of tangency) है।

यदि हम सम-उत्पाद रेखा IP_2 पर बिन्दु P से और आगे को चलते हैं तो 'हम ऊँची लागत सम-लागत रेखाओं' (high cost iso-cost curves) पर पहुँच जायेंगे जैसा कि चित्र मे बिन्दु S तथा V बताते है। स्पष्ट है कि बिन्दु P 'साधनो के न्यूनतम लागत-संयोग' को बताता है; यह बिन्दु P साधन X की X_1 मात्रा तथा साधन Y की Y_1 मात्रा के संयोग को बताता है। संक्षेप मे,

> सम-उत्पाद रेखा तथा एक सम-लागत रेखा का स्पर्श बिन्दु साधनों के न्यूनतम लागत-संयोग को बताता है। दूसरे शब्दों में, स्पर्शता (tangency) का अर्थ है न्यूनतम लागत।*

(ii) उत्पादन का अधिकतम करना जबकि लागत-व्यय दिया हुआ हो (Maximizing output when the cost-outlay is given)

माना कि एक फर्म किसी वस्तु के उत्पादन मे C_2 लागत-व्यय, (माना C_2=५०० रु०) करना चाहती है। चित्र ४ मे C_2 लागत-व्यय को सम-लागत रेखा AB द्वारा दिखाया गया है। फर्म इस दिये हुए लागत-व्यय से अधिकतम उत्पादन करना चाहेगी, अर्थात् वह सबसे ऊँची सम-उत्पाद रेखा पर पहुँचना चाहेगी। अत उत्पादक दी हुई सम-लागत रेखा C_2 (अर्थात् AB) पर चलेगा जब तक कि वह उच्चतम (highest) सम-उत्पाद रेखा पर न पहुँच जाये। चित्र ४ मे ऐसा

* The point of tangency between an iso-product curve and an iso-cost line gives the least cost factor combination. In other words, tangency means minimum cost.

बिन्दु P पर होता है। बिन्दु P सम-लागत रेखा C_2 (या AB) तथा सम-उत्पाद रेखा IP_2 का स्पर्श बिन्दु है।

चित्र—४
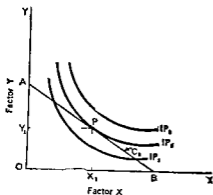
यद्यपि IP_2 से ऊँची भी सम-उत्पाद रेखाएं हैं (जैसे IP_3), परन्तु IP_2 से ऊँची सम-उत्पाद रेखाओं पर पहुँचने के लिए C_2 से अधिक लागत-व्यय की आवश्यकता होगी, और चूंकि लागत-व्यय C_2 दिया हुआ है इसलिए IP_2 से ऊँची सम-उत्पाद रेखाओं पर नहीं पहुंचा जा सकता। स्पष्ट है कि स्पर्श बिन्दु P पर दी हुई लागत C_2 द्वारा अधिकतम उत्पादन हो रहा है, अर्थात् फर्म साधन X की X_1 मात्रा तथा साधन Y की Y_1 मात्रा के सयोग का प्रयोग करेगी और बिन्दु P द्वारा बताया गया यह सयोग ही न्यूनतम लागत सयोग होगा। हम पुन: पहले के निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं, अर्थात् स्पर्शता का अर्थ है न्यूनतम लागत (Tangency means minimum cost)।

स्पर्श बिन्दु P (चित्र ३ तथा चित्र ४) पर एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान देने की है। बिन्दु P पर 'सम-उत्पाद रेखा का ढाल' तथा 'सम-लागत रेखा का ढाल' दोनो एक ही हैं। हम जानते हैं कि—

सम-उत्पाद रेखा का ढाल (slope) = साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापना की सीमान्त दर (Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y, that is, $MRTS_{xy}$)

$$\text{सम-लागत रेखा का ढाल (slope)} = \frac{\text{Price of factor X}}{\text{Price of factor Y}}$$

$$= \frac{P_x}{P_y}$$

चूंकि दोनों रेखाओं के ढाल स्पर्श बिन्दु P पर बराबर हैं, इसलिए

$$MRTS_{xy} = \frac{P_x}{P_y}$$

उपर्युक्त विवरण के आधार पर 'साधनो के न्यूनतम-लागत सयोग' या 'साधनो के प्रयोग की दृष्टि से एक फर्म के साम्य' की दशा निम्न सिद्धान्त द्वारा बतायी जाती है·

> एक दी हुई लागत के अन्तर्गत उत्पादन को अधिकतम करने के लिए या एक दिये हुए उत्पादन के लिए लागत को न्यूनतम करने की दृष्टि से एक साहसी (या फर्म) को साधनों को ऐसी मात्राओ में प्रयोग में लाना होगा ताकि टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर और साधनों का कीमत अनुपात बराबर हो।[9]

हम जानते हैं कि 'साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' बराबर होती है 'साधन X की सीमान्त उत्पादकता और साधन Y की सीमान्त उत्पादकता' अनुपात के,[10] अर्थात्

[9] "In order either to maximize output subject to a given cost or to minimize cost subject to a given output, the entrepreneur must employ inputs in such amounts as to equate the marginal rate of technical substitution and the input-price ratio."

[10] इसके पूर्ण विवरण के लिए देखिए 'टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' नामक अध्याय को।

$$\text{Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y} = \frac{\text{Marginal Productivity of Factor X}}{\text{Marginal Productivity of Factor Y}}$$

or
$$MRTS_{xy} = \frac{MP_x}{MP_y} \quad ....(१)$$

हम पहले देख चुके हैं कि स्पर्श बिन्दु P (point of tangency) पर,

$$MRTS_{xy} = \frac{P_x}{P_y} \quad ....(२)$$

(१) तथा (२) के आधार पर साधनों के न्यूनतम लागत संयोग के लिए निम्न दशा (condition) प्राप्त होती है :

$$\frac{MP_x}{MP_y} = \frac{P_x}{P_y} \quad \text{or} \quad \frac{MP_x}{P_x} = \frac{MP_y}{P_y}$$

अर्थात्

'साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग', या फर्म के साधनों के प्रयोग की दृष्टि से साम्य के लिए, साधन X की सीमान्त उत्पादकता (MP_x) और साधन X की कीमत (P_x) का अनुपात बराबर होना चाहिए साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (MP_y) और साधन Y की कीमत (P_y) के अनुपात के।

यह ध्यान देने की बात है कि मार्शल तथा अन्य प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'उत्पादन के क्षेत्र में प्रतिस्थापन का नियम' (Law of Substitution in the field of production) उपर्युक्त बात को ही बताता है। इस प्रकार साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग के सम्बन्ध में सम-उत्पाद रेखा तथा सम-लागत रेखा द्वारा प्राप्त परिणामों (isoproduct-isocost results) को परम्परावादी शब्दों (traditional terms) में भी व्यक्त किया जा सकता है।

सारांश (Summary)

'साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग' अथवा 'साधनों के प्रयोग की दृष्टि से एक उत्पादक (या साहसी या फर्म) के साम्य' के लिए निम्न दशा पूरी होनी चाहिए :

सम-उत्पाद रेखा तथा सम-लागत रेखा एक बिन्दु पर स्पर्श करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, स्पर्शता का अर्थ है न्यूनतम लागत।[11]

अर्थात्

टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बराबर होनी चाहिए साधनों की कीमत के अनुपात के।[12]

अर्थात्

एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता और उसकी कीमत के अनुपात के बराबर होना चाहिए।[13]

प्रश्न

१. समोत्पत्ति तथा सम-लागत रेखाओं को समझाइए और बताइए कि इन वक्रों की सहायता से उत्पत्ति के दो साधनों का सर्वोत्तम संयोग किस प्रकार निर्धारित किया जाता है ?
Explain isoproduct and isocost curves and show how optimum combination of two factors of production is determined with the help of these curves.
(Raj., IIyr T. D. C., Arts, 1975)

---

[11] The isoproduct curve and the iso-cost line would be tangent at a point. In other words, tangency means minimum cost.

[12] Marginal rate of technical substitution should equal input price ratio.

[13] The ratio of marginal productivity of one factor to its price should equal the ratio of marginal productivity of the other factor to its price.

29 उत्पत्ति का पैमाना
[SCALE OF PRODUCTION]

उत्पत्ति के पैमाने से तात्पर्य है उत्पत्ति करने वाली इकाई के आकार से तथा उत्पत्ति किस मात्रा मे की जाती है। अत आकार तथा मात्रा की दृष्टि से, मुख्यत आकार की दृष्टि से, उत्पादन दो प्रकार से किया जाता है—(i) छोटे पैमाने (small scale) पर, तथा (ii) बड़े पैमाने (large-scale) पर। प्राचीन समय मे उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाता था। परन्तु आज के युग मे उत्पादन की औसत इकाई का आकार बहुत बढ़ गया है और उत्पादन का एक बड़ा भाग बड़े पैमाने पर उत्पादित किया जाता है। उत्पादन किस पैमाने (छोटे पैमाने या बड़े पैमाने) पर किया जायेगा इसका निर्णय साहसी कई बातो को ध्यान मे रखकर करता है। उत्पादन की तकनीकी स्थिति पूँजी, कच्चा माल, कुशल श्रम तथा कुशल प्रबन्धकों की उपलब्धि, वस्तु की माँग का विस्तार, इत्यादि अनेक बातों को ध्यान मे रखकर उत्पत्ति का पैमाना निश्चित किया जाता है।

बड़े पैमाने का उत्पादन
(LARGE-SCALE PRODUCTION)

आज का युग बड़े पैमाने के उत्पादन का युग है। सभ्यता के विकास के साथ बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन को बड़े पैमाने पर करना आवश्यक हो गया है। श्रम विभाजन मशीनो का बढता हुआ प्रयोग, उद्योगो का विशिष्टीकरण, नये वैज्ञानिक आविष्कार, प्रमापीकरण (standardisation), इत्यादि तत्वो ने बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहित किया है। परन्तु यह भी ध्यान रखने की बात है कि ये सब तत्व बड़े पैमाने के उत्पादन के कारण ही नहीं हैं वरन् उसके परिणाम भी हैं।

बड़े पैमाने की उत्पत्ति का अर्थ (Meaning of Large scale Production)

जब किसी उद्योग मे सामान्यतया उत्पादन इकाइयाँ बड़े आकार की होती हैं तथा वे उत्पत्ति के विभिन्न साधनो (पूँजी, श्रम, कच्चा माल, इत्यादि) को बड़ी मात्रा मे प्रयोग करती हैं तब इसे 'बड़े पैमाने का उत्पादन' कहा जाता है। एक उद्योग का आकार दो प्रकार से बढता है—(i) उद्योग मे कार्य करने वाली इकाइयो के आकार मे वृद्धि होने से, तथा (ii) उद्योग मे इकाइयो की सख्या मे वृद्धि होने से।

'बड़े पैमाने का उत्पादन' तथा 'बड़ी मात्रा में उत्पादन' मे अन्तर (Distinction between 'Large-scale Production' and 'Mass Production')

'बड़े पैमाने का उत्पादन' तथा 'बड़ी मात्रा मे उत्पादन' की विशेषताएँ मिलती-जुलती हैं परन्तु वे दोनो पूर्णत एक नहीं हैं, दोनों मे अन्तर है।

'बड़े पैमाने का उत्पादन' का अर्थ है कि उत्पादन बड़ी इकाइयों द्वारा होता है चाहे ये इकाइयाँ अलग-अलग स्थानों पर स्थापित हों या एक ही स्थान पर केन्द्रित हों और इनको आन्तरिक तथा बाह्य बचतें (internal and external economies) प्राप्त होती हैं।

'बड़ी मात्रा में उत्पादन' उस व्यापार की विशेषताओं को बताता है जो बड़ी मात्रा में प्रमापित वस्तुओं (standardised products) का उत्पादन करता है, जिसकी सब इकाइयाँ रूप (form) में समान होती हैं और इनके भाग (component parts) किसी भी दूसरी इकाई के तत्सम्बन्धित भागों से विनिमयसाध्य (interchangeable) हैं। इस प्रकार की 'बड़ी मात्रा में उत्पादन' एक छोटे कारखाने में किया जा सकता है जबकि, प्रमापीकरण द्वारा, उत्पादक को केवल आन्तरिक बचतें ही प्राप्त हो रही हों। बाह्य बचतें 'बड़ी मात्रा में उत्पादन' की मुख्य विशेषता नहीं हैं यद्यपि वे प्राप्त हो सकती हैं।[1]

एक व्यापार या उत्पादन क्षेत्रफल, पूंजी तथा श्रम के प्रयोग के शब्दों में 'बड़े पैमाने' पर हो सकता है परन्तु यह सम्भव है कि उसकी वस्तु का 'बड़ी मात्रा में उत्पादन' न हो, जैसे जलयान बनाने की एक कम्पनी। इसके विपरीत, एक व्यापार ऐसा हो सकता है जो बड़ी मात्रा में उत्पादन करता है परन्तु वह बड़े आकार (अर्थात् बड़े पैमाने) का नहीं हो, जैसे एक फर्म द्वारा हाथ की घड़ी के कुछ प्रमापित पुर्जों को बनाना। वास्तव में, **'बड़ी मात्रा में उत्पादन' की मुख्य विशेषता (key note) है प्रमापीकरण** (standardisation), जबकि **'बड़े पैमाने के उत्पादन' की मुख्य विशेषता है आकार।**

बड़े पैमाने की उत्पत्ति की बचतें
(ECONOMIES OF LARGE-SCALE PRODUCTION)

बड़े पैमाने के उत्पादन से उपभोक्ताओं, श्रमिकों तथा समाज को लाभ इसलिए होता है कि बड़े उत्पादकों को वस्तु की प्रति इकाई लागत कम पड़ती है क्योंकि उन्हें आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। अतः **बड़े पैमाने के उत्पादन के आधारभूत** (basic) **लाभ आन्तरिक तथा बाह्य बचतों में निहित हैं।** इन दोनों प्रकार की बचतों का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है

आन्तरिक बचतें (*Internal Economies*)

अर्थ—आन्तरिक बचतें वे हैं जो कि किसी एक इकाई को आन्तरिक संगठन अच्छा होने के परिणामस्वरूप प्राप्त होती हैं, ये बचतें केवल इकाई विशेष को ही मिलती हैं, अन्य इकाइयाँ सामान्यतया इन बचतों से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकती हैं। ये बचतें प्रत्येक फर्म के लिए उसके आकार के अनुसार भिन्न होती हैं। प्रो० केयरनक्रास (Cairncross) के अनुसार,

> आन्तरिक बचतें वे हैं जो एक कारखाने या फर्म को प्राप्त होती हैं, ये अन्य फर्मों के कार्यों पर आश्रित नहीं होतीं। ये फर्म के उत्पादन के पैमाने में वृद्धि का परिणाम हैं और इनको तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि उत्पादन में वृद्धि न हो। ये किसी भी प्रकार के आविष्कारों का परिणाम नहीं हैं वरन ये उत्पादन की प्रचलित विधियों (known methods of production) का परिणाम हैं जिनको एक छोटी फर्म प्रयोग में लाकर लाभ नहीं उठा सकती।[2]

---

[1] The term mass production describes the characteristics of a business which turns out a large amount of a standardised product, all units of which are identical in form and the component parts of which are interchangeable with the corresponding parts of any other unit. Such mass production can be carried on in a *small factory* when by standardisation, the producer benefits mainly from internal economies. External Economies are not the characteristic feature of mass production though they may be present.

[2] "Internal economies are those which are open to a single factory or a single firm independently of the actions of other firms. They result from an increase in the scale of output of the firm and cannot be achieved unless output increases. They are not the result of inventions of any kind, but are due to the use of known methods of production which a small firm does not find worthwhile."

कारण—फर्मों को आन्तरिक बचतें प्राप्त होने के मुख्य कारण—(i) अविभाज्यताएँ (indivisibilities), तथा (ii) विशिष्टीकरण (specialisation) हैं।

(i) **अविभाज्यताएँ**—उत्पत्ति के साधन अविभाज्य (indivisible) होते हैं। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की एक निम्नतम सीमा या उसका एक निम्नतम आकार होता है जिसके नीचे हम उसको छोटे-छोटे टुकडो म विभक्त नही कर सकते हैं। मशीन, प्रबन्धक (manager), विपणन (marketing) वित्त (finance) और अनुसन्धान तथा विज्ञान म 'अविभाज्यता का तत्व' (element of indivisibility) होता है। फर्मों का आकार बडा होने से इन अविभाज्य साधनो का पूरा-पूरा प्रयोग होने लगता है और इसलिए बडी फर्मों को छोटी फर्मों की अपेक्षा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं।[2]

(ii) **विशिष्टीकरण** (क) जब फर्म का आकार बढता है तो एक व्यक्ति कार्य मे विशिष्टता प्राप्त कर लेता है। परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है, और वस्तु की लागत कम हो जाती है। (ख) इसी प्रकार फर्म के आकार म वृद्धि होन से 'अविशिष्ट यन्त्रो' (non-specialised equipments) के स्थान पर 'विशिष्ट यन्त्रो (specialised equipments) का प्रयोग करके उत्पादन कुशलता को बढाया जाता है। (ग) यदि उद्योग का पैमाना बहुत बढ जाता है तो उत्पादन की प्रत्येक उप क्रिया (sub-process) को अलग-अलग फर्म करने लगेंगी जिससे उत्पादन कुशलता म वृद्धि होगी और वस्तु की उत्पादन लागत कम होगी।

आन्तरिक बचतों को पांच वर्गों मे बाँटा जा सकता है। य पाँच वर्ग इस प्रकार हैं (१) तकनीकी बचतें (Technical economies), (२) प्रबन्धकीय बचतें (Managerial economies), (३) *बाजार या वाणिज्य सम्बन्धी बचत (Marketing or commercial economies)*, (४) वित्तीय बचतें (Financial economies), तथा (५) जोखिम उठाने की बचतें (Risk-bearing economies)।

---

[2] उदाहरणार्थ, माना कि फाउण्टनपेन के निबो को बनाने की सबसे छोटी मशीन की लागत १,००० रु० है और इसकी उत्पादन क्षमता (capacity) २०० निब प्रतिदिन की है। यदि मशीन प्रतिदिन १०० निब ही बनाती है तो मशीन की १,००० रु० की स्थिर लागत (fixed cost) १०० निबों पर फैलेगी अर्थात् १० रु० प्रति निब पड़ेगी। यदि मशीन पूरी क्षमता का प्रयोग करती है अर्थात् २०० निब प्रतिदिन बनाती है तो अब मशीन की स्थिर लागत २०० इकाइयो पर फैलेगी अर्थात् मशीन की लागत ५ रु० प्रति निब पडेगी, दूसरे शब्दो मे, उत्पादन को बढाने से प्रति इकाई लागत घट जाती है। इस प्रकार मशीन एक अविभाज्य साधन है। इसकी एक निम्न सीमा (अथात २०० निब प्रतिदिन बनाने की क्षमता) है जिसके नीचे हम उसके उपविभाग या टुकडे नही कर सकते। १०० निब प्रतिदिन बनाने के लिए हम मशीन को काटकर आधा नही कर सकते। १०० निब प्रतिदिन बनाने हो या २०० निब प्रतिदिन बनाने हो, उत्पादक को पूरी एक मशीन प्रयोग करनी पडेगी और उसकी पूर्ण क्षमता का प्रयोग करने से *उत्पादक को वस्तु की लागत कम पडेगी*। इसी प्रकार एक १,५०० रु० प्रतिमाह प्राप्त करने वाले मैनजर की देखरेख म किसी वस्तु की ५०, १००, १५० या ३०० इकाई तक प्रतिदिन उत्पादित की जा सकती है। स्पष्ट है कि ३०० इकाई से कम उत्पादन करने के लिए हम मैनेजर को ½ या ⅓ या ⅔ हिस्सो म नहीं बांट सकते, कम उत्पादन के लिए पूरा मैनेजर ही प्रयोग म लाना पड़ेगा। अत अविभाज्य मैनेजर के द्वारा अधिक उत्पादन करने से लागत सस्ती पडेगी क्योकि मैनेजर की वेतन रूपी लागत अधिक इकाइयो पर फैलेगी। स्पष्ट है कि छोटे पैमाने के उत्पादन म उत्पत्ति के 'अविभाज्य साधनो' का पूरा प्रयोग नहीं हो पाता, जबकि बडे पैमाने के उत्पादन मे इन अविभाज्य साधनो का पूरा-पूरा प्रयोग होता है और इसलिए उत्पादन की आन्तरिक बचत प्राप्त होती हैं।

(१) तकनीकी बचतें (Technical economies)—ये बचतें उत्पादन की श्रेष्ठ तकनीक तथा रीति से सम्बन्धित होती हैं। तकनीकी बचतों को निम्न चार भागों में बाँटा जाता है

(अ) श्रेष्ठ तकनीकी बचतें (Economies of superior technique)—बड़ी फर्में ही बड़ी मशीनों तथा तकनीकी दृष्टि से श्रेष्ठ मशीनों का प्रयोग कर सकती हैं क्योंकि इनकी ऊँची कीमतें बड़ी फर्में ही दे सकती हैं, छोटी फर्में नहीं। यद्यपि इन मशीनों की लागत अधिक होती है परन्तु इनके द्वारा बड़ी मात्रा में उत्पादन होने से इसकी लागत अधिक इकाइयों पर फैलती है और उत्पादन की वस्तु की औसत लागत कम पड़ती है। उदाहरणार्थ, इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटिंग मशीनें (electronic computing machines) केवल बड़ी फर्में ही प्रयोग करके लाभ उठा सकती हैं।

(ब) बड़े आयाम की बचतें (Economies of increased dimension)—कुछ दशाओं में केवल बड़ी मशीनों के प्रयोग से ही बचतें प्राप्त होती हैं। (i) बड़ी मशीन चलाने का खर्चा छोटी मशीन की अपेक्षा कम पड़ता है। उदाहरणार्थ, रेल के एक छोटे इंजन को चलाने में उतने ही व्यक्ति चाहिए जितने बड़े इंजन के लिए, जबकि बड़े इंजन द्वारा अधिक माल तथा यात्री ले जाये जा सकते हैं। (ii) बड़ी मशीनों को बनाना भी अपेक्षाकृत (relatively) सस्ता पड़ता है। उदाहरणार्थ, एक दो मंजिली बस को बनाना दो बसों की लागत से कम पड़ता है।[4]

(स) सम्बद्ध प्रक्रियाओं की बचतें (Economies of linked processes)—बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से सम्बद्ध प्रक्रियाओं को एक ही फर्म या कारखाने के अन्तर्गत किया जा सकता है और बचतें प्राप्त की जा सकती हैं। (i) जब दो प्रक्रियाओं को, जोकि पहले पृथक्-पृथक् दो कारखानों द्वारा की जाती थीं, एक ही कारखाने के अन्तर्गत दो विभागों में की जाने लगती हैं तो समय तथा यातायात की लागतों में बचतें प्राप्त होती हैं। (ii) कुछ दशाओं में ईंधन तथा शक्ति की भी बचत होती है। (iii) एक विशाल फर्म या कारखाना कच्चे माल के स्रोतों (sources) पर अपना स्वामित्व करके कच्चे माल की पूर्ति उचित लागत पर तथा नियमित रूप से प्राप्त कर सकता है। जैसे, चीनी का बड़ा कारखाना अपने निजी गन्ने के फार्म रख सकता है। (iv) एक विशाल फर्म या कारखाना अवशिष्ट पदार्थों (by-products) का पूरा प्रयोग कर सकता है, वह अपना दूसरा कारखाना खोलकर या बड़ी मात्रा में प्राप्त अवशिष्ट पदार्थ को बेचकर उचित मूल्य प्राप्त कर सकता है। (v) एक बड़ी फर्म अपना अलग पैकिंग विभाग (packing department) खोलकर पैकिंग की श्रेष्ठ मशीनों का प्रयोग करके लागत में बचत प्राप्त कर सकती है।

(द) विशिष्टीकरण में वृद्धि की बचतें (Economies of increased specialisation)—एक बड़ी फर्म में विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन का अधिक क्षेत्र (scope) रहता है। श्रमिक विभिन्न उप क्रियाओं में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेते हैं जिससे उत्पादन क्षमता (productive efficiency) बढ़ती है।[5]

(२) प्रबन्धकीय बचतें (Managerial economies)—ये बचतें एक कारखाने के आकार को बढ़ाकर या अनेक कारखानों को एक व्यवस्था के अन्तर्गत लाकर प्राप्त की जाती हैं। (अ) कार्य की सूक्ष्म बातों को सौंपना (Delegation of details)—एक बड़े व्यापार या बड़ी फर्म में एक योग्य प्रबन्धक नित्य क्रियाओं (routine work) तथा सूक्ष्म बातों (details) को

---

[4] परन्तु उपर्युक्त विवरण से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि आवश्यक रूप से (necessarily) बड़ी मशीनों का प्रयोग सस्ता पड़ता है। ऐसा कई बातों पर निर्भर करता है।

[5] ध्यान रहे कि फर्म के एक सीमा तक बढ़ने पर ही तकनीकी बचतें प्राप्त होती हैं। इस सीमा या बिन्दु के बाद फर्म में वृद्धि से कोई बचतें प्राप्त नहीं होतीं। इस बिन्दु पर फर्म के आकार को 'तकनीकी अनुकूलतम' (technical optimum) कहते हैं। यदि इसी आकार को दोहराया जाय अर्थात् इसी आकार की दूसरी या तीसरी फर्म स्थापित की जाय तो कुशलता में बिना किसी हानि के लाभ उठाया जा सकता है।

दफ्तर में अधीनस्थ पदाधिकारियों (subordinates) को सौंपकर अपना समय फर्म की आवश्यक बातों एवं समस्याओं के लिए दे सकता है। इससे फर्म की कुशलता बढ़ेगी। (ब) कार्यात्मक विशिष्टीकरण (Functional specialisation)—फर्म के कार्य को विभिन्न विभागों में बांट दिया जाता है, जैसे लेखांकन तथा लागत विभाग (Accounting and costing department), क्रय विभाग, विक्रय विभाग, यातायात विभाग, मशीन तथा बिल्डिंग रक्षा विभाग (Machine and building maintenance department), इत्यादि। प्रत्येक विभाग का एक विशेषज्ञ (expert) नियुक्त किया जाता है।*

(३) विपणन या वाणिज्य बचतें (Marketing or commercial economies)—ये बचतें कच्चे माल के क्रय तथा निर्मित माल के विक्रय से सम्बन्धित होती हैं। (i) बड़ी फर्में बहुत बड़ी मात्रा में कच्चे माल को खरीदती हैं, इसलिए उनको बाजार कीमत से कम कीमत पर श्रेष्ठ माल मिल जाता है, रेल तथा मोटर भाड़े में छूट (concession) मिल जाती है, माल की डिलीवरी शीघ्रता तथा नियमित रूप से होती है। कच्चे माल को खरीदने के लिए बड़ी फर्में विशेषज्ञ रख सकती हैं जिससे उन्हें श्रेष्ठ माल मिले। (ii) बड़ी फर्मों को अपना निर्मित माल बेचने में भी बचतें प्राप्त होती हैं। उन्हें रेल तथा मोटर भाड़ा सस्ती दर पर मिल जाता है या वे अपनी निजी यातायात व्यवस्था करके मितव्ययिता प्राप्त करती हैं। विज्ञापन तथा प्रसार पर किया गया व्यय अधिक इकाइयों पर फैल जाने के कारण सस्ता पड़ता है। ये अपने ग्राहकों को मरम्मत-सेवा तथा माल बदलने की सुविधाएँ प्रदान कर सकती हैं।

स्पष्ट है कि बड़ी फर्मों को श्रेष्ठ संगठन की कुशलता (efficiency of superior organisation) तथा श्रेष्ठ सौदा करने की शक्ति (superior bargaining power) के परिणामस्वरूप विपणन या वाणिज्य बचतें प्राप्त होती हैं।

(४) वित्तीय बचतें (Financial economies)—बड़ी फर्मों के पास अधिक सम्पत्ति (assets) होती है, इनकी ख्याति दूर तक फैली होती है, तथा इनका पर्याप्त प्रभाव ऋण देने वाली संस्थाओं पर भी होता है। इन सब बातों के कारण बड़ी फर्मों को बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से उचित ब्याज-दर पर तथा पर्याप्त मात्रा में आसानी के साथ द्रव्य मिल जाता है। इसके अतिरिक्त बड़ी फर्में अपने अंशों को बेचकर भी बाजार से द्रव्य आसानी से प्राप्त कर सकती हैं।

(५) जोखिम उठाने की बचतें (Risk-bearing economies)—एक बड़ी फर्म को छोटी फर्म की अपेक्षा, जोखिम कम होती है क्योंकि वह अपने जोखिम को फैला सकती है। 'जोखिम के फैलाने' के सिद्धान्त (spreading the risk) को एक बड़ी फर्म निम्न उपायों से क्रियाशील करती है—(अ) उत्पादन का विविधीकरण (Diversification of output)—बड़ी फर्म कई वस्तुओं का उत्पादन कर सकती है। यदि एक वस्तु पर हानि होती है तो वह अन्य वस्तुओं के लाभ द्वारा पूरी हो जाती है। (ब) बाजारों की विविधता (Diversification of markets)—उत्पादक का एक ही बाजार पर निर्भर करना जोखिमपूर्ण है क्योंकि वस्तु की माँग उस बाजार में कम हो जाने पर हानि हो सकती है। इसलिए बड़े उत्पादक अपनी निर्मित वस्तु को कई बाजारों में बेचते हैं ताकि मौका पड़ने पर एक बाजार के नुकसान को अन्य बाजारों के लाभ से पूरा किया जा सके।

* बड़े विभाग के अनेक उप-विभाग किये जा सकते हैं जिनको अनेक विशेषज्ञों में बाँटा जा सकता है। इस प्रकार का श्रम-विभाजन 'क्षैतिज श्रम विभाजन' (horizontal division of labour) कहा जाता है। इसमें फर्म को अधिक कुशलता प्राप्त होती है। इसी प्रकार सचालक मण्डल (Board of Directors) में भी सचालकों को पृथक्-पृथक् विभाग सौंपे जा सकते हैं।

ध्यान रहे कि प्रबन्धकीय बचतों की भी एक सीमा है। यदि फर्म का आकार आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है तो प्रबन्धकीय अवचतें (diseconomies) प्राप्त होने लगती हैं।

(स) कच्चे माल के स्रोतों का विविधीकरण (Diversification of raw materials)—बड़ी फर्म अपने कच्चे माल की पूर्ति विभिन्न स्रोतों (sources) से करती है। यदि कभी एक जगह से कच्चे माल की पूर्ति न मिल पाये तो अन्य जगहों से कच्चे माल की पूर्ति मिलते रहने से उसका कार्य चलता रहेगा।[7]

बाह्य बचतें (External Economies)

अर्थ—प्रो० केअरनक्रास के अनुसार,

"बाह्य बचतें वे बचतें हैं जो कई फर्मों को या उद्योगों को प्राप्त होती हैं जबकि एक उद्योग में या उद्योगों के एक समूह में उत्पादन का पैमाना बढ़ता है।"[8] ये बचतें किसी एक फर्म को प्राप्त नहीं होतीं वरन् इनका लाभ उद्योग की अनेक फर्में या समस्त फर्में उठाती हैं।

एक फर्म या कई फर्मों की आन्तरिक बचतें दूसरी फर्मों के लिए बाह्य बचतें हो सकती हैं।

कारण—बाह्य बचतों के प्राप्त होने के मुख्य कारण हैं (i) उद्योगों का एक स्थान पर केन्द्रित होना अर्थात् स्थानीयकरण; (ii) एक स्थान या क्षेत्र में केन्द्रित फर्मों द्वारा विशिष्टीकरण को अपनाना।

बाह्य बचतों को निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है

(१) केन्द्रीयकरण की बचतें (Economies of concentration)—जब बहुत-सी फर्में एक जगह केन्द्रित हो जाती हैं तो सभी फर्मों को केन्द्रीयकरण या स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप निम्न मुख्य लाभ प्राप्त होते हैं (i) प्रत्येक फर्म को कुशल श्रमिक आसानी से प्राप्त हो जाते हैं तथा श्रमिकों के प्रशिक्षण की सुविधाओं का भी विकास हो जाता है। (ii) क्षेत्र विशेष में परिवहन तथा संचार व्यवस्था का बहुत अच्छा विकास हो जाता है जिसका लाभ प्रत्येक फर्म उठाती है। ऐसे क्षेत्रों में सरकार भी यातायात व संचार साधनों के विकास में बहुत सहायता करती है। रेल तथा मोटर यातायात को बहुत माल मिलने के कारण उनके भाड़े की दर सस्ती हो जाती है जिसका लाभ प्रत्येक फर्म को प्राप्त होता है। (iii) विद्युत शक्ति का भी बहुत विकास हो जाता है और शक्ति की सस्ती दर का लाभ प्रत्येक फर्म को मिल जाता है। (iv) बैंक, बीमा कम्पनियाँ तथा अन्य वित्तीय संस्थाएँ अधिक संख्या में खुल जाती हैं जिससे फर्मों को उचित दर पर वित्तीय सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। (v) ऐसे क्षेत्र में बहुत-सी नयी फर्में तथा सहायक उद्योग खुल जाते हैं। कुछ फर्में मुख्य उद्योग को कच्चे माल की पूर्ति कर सकती हैं और कुछ फर्में बड़ी मात्रा में प्राप्त अवशिष्ट पदार्थों का प्रयोग करती हैं।

(२) ज्ञान की बचतें (Economies of information)—एक बड़े उद्योग में कार्य करने वाली फर्मों के लिए यह सम्भव हो जाता है कि वे संयुक्त रूप में व्यापारिक तथा तकनीकी पत्रिकाओं का प्रकाशन करें जिनका लाभ प्रत्येक को प्राप्त हो। इसी प्रकार से संयुक्त केन्द्रीय अनुसन्धान संस्थान भी स्थापित किए जा सकते हैं जिनकी खोजों तथा अनुसन्धान का लाभ प्रत्येक फर्म को प्राप्त हो सकता है। ये 'ज्ञान की बचतें' व्यक्तिगत फर्मों के साधनों के बाहर हैं।

(३) वियोजन की बचतें (Economies of disintegration)—किसी उद्योग के पर्याप्त विकास हो जाने पर यह सम्भव हो जाता है कि उसकी कुछ प्रक्रियाओं को तोड़ (disintegrate) कर एक फर्म या उद्योग उसमें विशिष्टीकरण प्राप्त कर ले और उसको अधिक कुशलता से चलाये।

---

[7] जोखिम को अधिक फैलाने में दो कठिनाइयाँ हैं प्रथम, जोखिम के अधिक फैलाव के कारण प्रबन्धकीय कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। दूसरे, जोखिम का अधिक फैलाव तकनीकी बचतों को कम कर सकता है क्योंकि तकनीकी बचतों के लिए यह आवश्यक है कि फर्म एक वस्तु के उत्पादन में बहुत अधिक पूँजी का प्रयोग मशीन तथा प्लाण्ट में करे।

[8] "External economies are those which are shared in by a number of firms or industries when the scale of production in any industry or group of indurstries increases."

आन्तरिक तथा बाह्य बचतों में सम्बन्ध (Relationship between Internal and External Economies)

आन्तरिक बचतें एक फर्म को प्राप्त होती हैं और वे फर्म के आकार पर निर्भर करती हैं अर्थात् फर्म के आकार में वृद्धि के परिणामस्वरूप मिलती है। बाह्य बचतें समस्त उद्योग को प्राप्त होती हैं और वे उद्योग के आकार पर निर्भर करती हैं अर्थात् वे उद्योग के आकार में वृद्धि तथा उद्योग-स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप मिलती हैं।

वास्तव में, इन दोनों प्रकार की बचतों के बीच अन्तर की एक स्पष्ट तथा निश्चित रेखा खींचना कठिन है। इसके मुख्य कारण है (1) श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार, 'बड़े पैमाने के उद्योग की बचतें फर्म के अनुकूलतम आकार (optimum size) को बदल सकती हैं और नये अनुकूलतम आकार की दृष्टि से फर्म के आन्तरिक पुनर्संगठन के लिए किये गये प्रयत्न और अधिक आन्तरिक बचतों को जन्म देते हैं। इनको रॉबर्टसन (Robertson) ने 'आन्तरिक-बाह्य बचतें (internal external economies) कहा है, ये आन्तरिक बचतें इसलिए हैं कि ये फर्म के आकार पर निर्भर करती हैं और बाह्य बचतें इसलिए हैं कि ये उद्योग के आकार पर निर्भर करती हैं।[6] यह सम्भव है कि एक स्थिति में जो बचतें आन्तरिक है, दूसरी स्थिति में बाह्य हो जायें। उदाहरणार्थ, किसी एक फर्म के आकार में बहुत विस्तार हो जाने के कारण बड़ी मात्रा में अवशिष्ट पदार्थ (by product) प्राप्त हो सकता है। जब इस अवशिष्ट पदार्थ का प्रयोग अन्य फर्म या फर्में करती हैं तो बाह्य बचत होगी। यदि कई फर्में, जिन्हें बाह्य बचतें प्राप्त हो रही हैं, आपस में मिल जाती हैं तो 'बाह्य बचतें 'आन्तरिक बचतें हो जायेंगी। प्रो० काह्न (R F Kahn) के अनुसार व्यक्तिगत फर्मों के लिए आन्तरिक तथा बाह्य बचतें हो सकती हैं परन्तु समस्त अर्थ-व्यवस्था के लिए केवल आन्तरिक बचतें ही हो सकती हैं।"

बड़े पैमाने की उत्पत्ति की हानियाँ
(DISADVANTAGES OF LARGE-SCALE PRODUCTION)

बड़े पैमाने के अनेक लाभ हैं, परन्तु इसकी अनेक हानियाँ भी हैं। मुख्य हानियाँ निम्नांकित है

(१) एकाधिकार की प्रवृत्ति (Tendency towards monopoly)—बड़े पैमाने के उत्पादन मे एकाधिकारी के उत्पन्न होने का डर बना रहता है। एक बड़ा उत्पादक आन्तरिक बचतों को प्राप्त करने तथा अपने लाभ को बढ़ाने की दृष्टि से उत्पादन के पैमाने को बढ़ाता जाता है। इस प्रकार बड़ा उत्पादक अपने क्षेत्र में अकेला रह जाता है या कुछ बड़े उत्पादक रह जाते हैं जो आपस में मिलकर ट्रस्ट, कारटेल, इत्यादि बना लेते हैं। इस प्रकार बड़े उत्पादक एकाधिकार की स्थिति में हो जाते हैं और ऊँची कीमतें लेकर उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं।

(२) धन का असमान वितरण (Unequal distribution of wealth)—बड़े पैमाने के उद्योग के कारण राष्ट्रीय धन थोड़े-से बड़े उद्योगपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जाता है। इस प्रकार धन के वितरण में विषमता उत्पन्न होती है। इससे देश में आर्थिक असन्तोष फैलता है जो किसी समय भी बढ़कर राजनीतिक क्रान्ति का रूप ले सकता है।

(३) कारखाना प्रणाली के दोष—*बड़े पैमाने का उत्पादन कारखाना प्रणाली के लगभग* सभी दोषों को जन्म देता है (1) गन्दी बस्तियाँ—बड़े-बड़े उद्योगों में बहुत बड़ी संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं, मकानों की कमी के कारण भीड़ भाड़ की समस्या उत्पन्न होती है तथा गन्दी

[6] "Economies of large scale industry are likely to have the effect of altering the optimum size of the firm and the reorganisation of the firm to adopt to the new optimum size may lead to further economies These have been described by Robertson as internal external economies They are internal economies because they depend upon the size of the firm and external economies because they depend upon the size of the industry" —Mrs Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, pp. 341-42

बस्तियाँ स्थापित होती हैं। सारा वातावरण गन्दा होता है जिसका प्रभाव श्रमिकों के मस्तिष्क, शरीर तथा चरित्र पर पड़ता है। (ii) श्रम तथा पूंजी का सघर्ष—मालिकों तथा श्रमिकों में निकट का सम्पर्क नहीं रह जाता है। परिणामस्वरूप श्रमिकों तथा मालिकों में मन मुटाव की सम्भावनाएँ अधिक हो जाती है। इससे औद्योगिक झगड़े, हड़तालें, तालाबन्दियाँ होती रहती हैं। (iii) अधिक उत्पादन का भय—बड़े पैमाने का उत्पादन भविष्य की माँग का अनुमान लगा कर किया जाता है। अनुमान गलत हो जाने पर अति-उत्पादन (over-production) हो जाता है जिससे उद्योग विशेष में मन्दी फैल जाती है, इस मन्दी का प्रभाव अन्य उद्योगों पर भी पड़ता है।

(४) मशीनों के प्रयोग की हानियाँ (Harmful effects of machines)—बड़े पैमाने के उद्योग म मशीनों का बहुत प्रयोग होता है। मशीनों के अत्यधिक प्रयोग के कारण बेकारी बढ़ सकती है, स्त्री-बच्चों का शोषण हो सकता है, इत्यादि।

(५) श्रम विभाजन की हानियाँ (Disadvantages of division of labour)—बड़े पैमाने की उत्पत्ति के साथ श्रम-विभाजन की हानियाँ भी जुड़ी रहती हैं, श्रमिकों की कुशलता का *एकांगी विकास, कार्य में नीरसता, इत्यादि।*

(६) लघु तथा कुटीर उद्योगों का ह्रास (Decline of small-scale and cottage industries)—बड़े उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुएँ सस्ती होती हैं। इन सस्ती वस्तुओं के मुकाबले में लघु तथा कुटीर उद्योगों की अपेक्षाकृत महँगी वस्तुएँ नहीं टिक पाती हैं। विवश होकर बहुत से उद्योग-धन्धे बन्द हो जाते हैं जिससे बहुत-से श्रमिकों में बेकारी फैल जाती है।

(७) व्यक्तिगत रुचियों की अवहेलना (Neglect of individual tastes and preferences)—बड़े उद्योगों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन होता है, इसलिए प्रायः वस्तुओं का प्रमापीकरण (standardisation) करना पड़ता है। इस प्रकार बड़े पैमाने के उद्योग व्यक्तिगत रुचियों पर कोई ध्यान नहीं दे पाते हैं, वे तो प्रमापित वस्तुओं (standardised goods) का ही उत्पादन करते हैं।

(८) अन्तरराष्ट्रीय तनाव (International tension)—बड़े उद्योगों को अपने अतिरिक्त माल (surplus product) को बेचने के लिए प्रायः विदेशी बाजारों पर निर्भर रहना पड़ता है। विदेशों में उन्हें अन्य बड़े उत्पादकों से प्रतियोगिता तथा सघर्ष करना पड़ता है। कभी-कभी यह सघर्ष राजनीतिक रूप धारण कर लेता है। सम्बन्धित देशों की सरकारें भी बीच में पड़ जाती हैं, तनाव बढ़ जाता है और युद्ध तक की स्थिति आ जाती है।

(९) राजनीतिक प्रभाव (Political influence)—बड़े उद्योगपतियों के हाथ में बड़ी आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है। प्रजातन्त्र तथा पूँजीवादी देशों में बड़े उद्योगपति सरकार की आर्थिक नीति को प्रभावित करते हैं। कुछ दशाओं में ये अफसरों को घूँस देकर भ्रष्टाचार फैलाते हैं।

निष्कर्ष—बड़े पैमाने के उत्पादन की अधिकांश हानियों को उन्नतशील देशों में बहुत सीमा तक दूर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त बड़े पैमाने के अनेक महत्वपूर्ण लाभ हैं। समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि बड़े पैमाने का उत्पादन देशों की आर्थिक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सीमाएँ
(LIMITATIONS OF LARGE-SCALE PRODUCTION)

उत्पत्ति को बढ़ाने की एक सीमा होती है। इस सीमा या बिन्दु के बाद यदि कोई फर्म उत्पत्ति का पैमाना बढ़ाती है तो उसे बचत के स्थान पर अबचतें (diseconomies) प्राप्त होने लगती हैं। अतः कुछ बाधाएँ (obstacles) है जो उत्पत्ति के पैमाने को सीमित करती हैं। उत्पत्ति के पैमाने को सीमित करने वाली मुख्य बातें अग्रलिखित है

(१) प्रबन्धकीय बाधाएँ या सीमाएँ (Managerial difficulties or limitations)—यदि किसी फर्म के पैमाने को एक सीमा के आगे बढाया जाता है तो उसकी समस्याएँ जटिल हो जाती हैं जिनका उचित प्रबन्ध करना कठिन हो जाता है। (i) मानव योग्यता की एक सीमा है। इसके अतिरिक्त असाधारण प्रबन्धकीय योग्यता के व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं। (ii) पैमाने के बहुत बढ जाने से निर्णय लेने वाले मुख्य अधिकारी वास्तविक कार्य-स्थल से दूर हो जाते हैं। दूसरो की सूचना (second hand information) के आधार पर निर्णय लेना पडता है जो गलत होता है। (iii) उत्पादन की जटिलता के कारण प्राय अधिकारी वर्ग शीघ्र निर्णय लेने से डरते हैं, निर्णय लेने म देर लगाते हैं, लालफीताशाही (redtapism) फैल जाती है। लालफीताशाही *को कम करने के लिए नीचे के स्तर के अधिकारियो को निर्णय लेने की शक्ति दी जा सकती है* परन्तु यह आवश्यक नही है कि अधिकारी बहुत कुशल हो और उनके निर्णय उचित जानकारी पर आधारित हों। वास्तव म, नीचे के अधिकारी भी पहले निर्णय लेने मे हिचकिचाते हैं। (iv) इन सब बातो के कारण कार्य के विभिन्न भागों म उचित समायोजन (propr co-ordination) नहीं होता। स्पष्ट है कि प्रबन्धकीय समस्याएँ, उत्पादन के पैमाने के एक सीमा से अधिक बढने मे, महत्त्वपूर्ण कठिनाइयाँ हैं।

(२) व्यापार का स्वभाव (Nature of the business)—कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमे उत्पत्ति का पैमाना बडा नहीं किया जा सकता। (i) कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनमे सूक्ष्म बातो (details) के निरन्तर निरीक्षण की आवश्यक्ता पडती है, एसे उद्योगो का पैमाना छोटा ही रहता है। उदाहरणार्थ, कृषि कार्य, खुदरा दुकानदारो का कार्य, इत्यादि ऐसे ही कार्य हैं। (ii) कुछ उद्योग ऐसे हैं जिनमे व्यक्तिगत रुचियो का ध्यान रखना पडता है, जैसे सुनार या दर्जी का कार्य, इत्यादि। ऐसे कार्यों का पैमाना भी बडा नही किया जा सकता है।

(३) तक्नीकी कठिनाइयाँ या सीमाएँ (Technical difficulties or limitations)—बडे पैमान के उत्पादन मे मशीनो तथा यन्त्रो का प्रयोग होता है। प्रत्येक मशीन या यन्त्र की एक अधिकतम क्षमता (maximum capacity) होती है, प्रत्येक मशीन पूरी क्षमता पर ही कुशलता तथा मितव्ययिता से कार्य करती है। उसकी पूरी क्षमता से आगे कार्य से उत्पादक को 'अबचतें' प्राप्त होती है। अत मशीनो, यन्त्रों तथा औजारो की तक्नीकी सीमाएँ होती हैं जिनसे आगे उत्पत्ति के पैमाने को बढाना लाभदायक नहीं होता।

(४) बाजार की कठिनाइयाँ या सीमाएँ (Marketing difficulties or limitations)—जिन वस्तुओ का बाजार छोटा या सीमित होता है उनका उत्पादन बडे पैमाने पर करना कठिन है और उनके उत्पादन का पैमाना छोटा रखना ही लाभदायक है। बाजार को सीमित करने वाले दो मुख्य तत्त्व हैं (i) भौगोलिक (Geographical), तथा (ii) मनोवैज्ञानिक (Psychological)।

(i) भौगोलिक—कुछ उद्योगो का एक स्थान पर बडे पैमाने का उत्पादन इसलिए कठिन होता है कि उपभोक्ता बहुत दूर-दूर तक फैले रहते हैं और उनके पास वस्तु को पहुँचाने की यातायात लागत बहुत अधिक पडती है, जैसे फर्नीचर बनाने का कार्य। कुछ दशाओ मे कच्चा माल बहुत दूर-दूर तक फैला होता है जिसको एक स्थान पर एकत्रित करना बहुत महँगा पडता है और इसलिए बडे पैमाने का उत्पादन कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति मे उत्पादक कच्चे माल के आस-पास छोटे पैमाने पर उत्पादन कर स्थानीय या क्षेत्रीय आवश्यकताओ की ही पूर्ति करते हैं, जैसे चावल की मिलें (rice mills)। इन उद्योगों मे उपभोक्ताओ या कच्चे माल की दूरी छोटी फर्मों को प्रतियोगिता की ठण्डी हवाओ से बचाती है।

(ii) मनोवैज्ञानिक—बाजार को सीमित करने वाली मनोवैज्ञानिक कठिनाई है 'उत्पाद-विभेद' (product differentiation)। एक उद्योग म विभिन्न फर्मों की वस्तुओ म थोडी बहुत भिन्नता अवश्य होती है। भिन्नता के लिए प्रत्येक उत्पादक अपना कोई 'ब्राण्ड' या 'ट्रेडमार्क' रखता

है। प्रत्येक उपभोक्ता अपनी रुचि के अनुसार, एक 'ब्राण्ड' की वस्तु को पसन्द कर लेता है। इस प्रकार व्यवहार मे एक वस्तु का बाजार उपभोक्ताओ की रुचि, आदतो तथा धारणाओ (prejudices) के अनुसार उपभोक्ताओ के समूहो (groups) मे बँट जाता है। उपभोक्ताओ का एक समूह उत्पादक विशेष की वस्तु की माँग करता है। इसलिए बडी फर्में छोटी फर्मों को बाजार से नहीं हटा पाती हैं और कुछ वस्तुओ का उत्पादन छोटे पैमाने पर होता रहता है।[10]

(५) उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति की कठिनाइयाँ (Difficulties in the supply of factors)—कुछ दशाओ म उत्पत्ति के पैमान को बडा करने मे विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का पर्याप्त मात्रा मे न मिलना होता है। श्रम, कच्चा माल, भूमि, इत्यादि की कमी या इनकी बहुत ऊँची कीमतें उत्पत्ति के पैमाने को बढाने मे बाधक होती हैं।

(६) वित्तीय कठिनाइयाँ तथा सीमाएँ (Financial difficulties or limitations)—पूँजी को पर्याप्त मात्रा म प्राप्त करने की कठिनाई उत्पत्ति क पैमाने को बढाने मे बाधक होती है। आज के युग मे पूँजी की कठिनाई को एक सीमा तक संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ खोलकर दूर कर लिया जाता है। कभी-कभी द्रव्य पूँजी (money capital) के स्थान पर पूँजीगत वस्तुओ (capital goods) की कमी अधिक बाधक सिद्ध होती है।

छोटे पैमाने का उत्पादन
(SMALL-SCALE PRODUCTION)

छोटे पैमाने के उत्पादन का अर्थ (Meaning of small scale production)—**जब किसी उद्योग मे कार्य करने वाली इकाइयों का आकार छोटा होता है और प्रत्येक इकाई उत्पत्ति के साधनों (श्रम, पूँजी, भूमि, इत्यादि) की थोडी मात्रा का प्रयोग करती है तो इसे छोटे पैमाने का उत्पादन कहते हैं।** एक छोटे पैमाने की इकाई मे पूँजी तथा श्रम का कितनी मात्रा तक प्रयोग किया जायेगा यह बात प्रत्येक देश म परिस्थितियो तथा स्वीकृत परिभाषा के अनुसार भिन्न होगी। परन्तु सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि किसी इकाई म यदि श्रमिकों की इतनी संख्या है कि *व्यवस्थापक तथा प्रत्येक श्रमिक के बीच सीधा सम्पर्क हो सकता है तो* वह छोटे पैमाने की इकाई कही जायेगी, इसके विपरीत, यदि श्रमिकों की संख्या इतनी अधिक है कि व्यवस्थापक तथा प्रत्येक श्रमिक म सीधा सम्पर्क सम्भव नहीं है तब यह बडे पैमाने की इकाई होगी।

छोटे पैमाने के उत्पादन के लाभ (Advantages of small-scale production)

छोटे पैमाने के उत्पत्ति के मुख्य लाभ निम्न हैं .

(१) व्यक्तिगत निरीक्षण (Personal supervision)—चूँकि उत्पादन का पैमाना छोटा होता है इसलिए उत्पादक अपने व्यवसाय की सभी सूक्ष्म बातो का निरीक्षण कर सकता है, वह देख सकता है कि श्रमिक ठीक कार्य करते हैं, कच्चे माल की कोई बर्बादी नहीं होती है, इत्यादि।

---

[10] उत्पादन के पैमाने के विस्तार मे बाजार की बाधाओ को दूर करने के लिए दो ढग अपनाये जा सकते हैं (i) विभिन्न स्थानो या क्षेत्रो मे केन्द्रीय बडे कारखाने की शाखाएँ खोल दी जायँ। यह पहली कठिनाई अर्थात् भौगोलिक कठिनाई (दूरी की कठिनाई तथा यातायात के अत्यधिक व्यय की कठिनाई) को दूर करने मे सहायक होगी, तथा (ii) केन्द्रीय कारखाना कई प्रकार की वस्तुओ का निर्माण करे, यह दूसरी कठिनाई अर्थात् मनोवैज्ञानिक कठिनाई (उत्पाद-विभेद की समस्या) को दूर करने मे सहायक होगी। परन्तु इन दोनो मे से कोई भी रीति पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं है। जहाँ तक पहली रीति का प्रश्न है, शाखाओ की वृद्धि प्रबन्धकीय कठिनाइयो को जटिल बनाती है। दूसरी रीति मे, यदि एक उत्पादक कई प्रकार की वस्तुओ का उत्पादन करता है तो वह एक प्रकार की वस्तु का बडा उत्पादक न रहकर सभी प्रकार की वस्तुओ का छोटा उत्पादक हो जायेगा।

व्यापार की प्रत्येक सूक्ष्म बात पर उत्पादक का व्यक्तिगत ध्यान हर प्रकार की बर्बादी (waste) को रोकता है। इसे 'मालिक की आँख की बचत' (economy of the master's eye) कहते हैं।

(२) **धन का उचित वितरण (Equitable distribution of wealth)**—बड़े पैमाने के उत्पादन में धन थोड़े-से लोगों के हाथ में केन्द्रित हो जाता है। परन्तु छोटे पैमाने का उत्पादन देश के विभिन्न भागों में होता है जिससे धन का वितरण न्यायसंगत होता है। इससे लोगों में मन-मुटाव की भावना दूर होती है और सहयोग तथा एकता की भावना जाग्रत होती है।

(३) **मालिकों तथा श्रमिकों में निकट सम्पर्क (Close contact between employers and workers)**—छोटे उद्योगों में श्रमिकों की संख्या कम होती है। इसलिए मालिकों तथा श्रमिकों में निकट सम्पर्क रहता है, मालिक श्रमिकों के दुख-सुख में भाग ले सकते हैं। मालिकों तथा श्रमिकों के इस निकट सम्पर्क के कारण हड़तालें तथा तालेबन्दी नहीं होती है और औद्योगिक शान्ति बनी रहती है। बड़े पैमाने के उत्पादन में स्थिति इसके विपरीत होती है।

(४) **ग्राहकों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान (Personal attention towards customers)**—एक छोटा उत्पादक अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं तथा रुचि की ओर व्यक्तिगत ध्यान दे सकता है और तदनुसार उनके लिए वस्तुओं का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार उसके अविक्रीत (unsold) स्टॉक की सम्भावना कम रहती है।

(५) **कार्य की स्वतन्त्रता तथा सुविधा (Freedom and ease of work)**—एक छोटे उत्पादक को अपने कार्य में पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वह अपने कार्य को घर पर भी कर सकता है तथा अपने परिवार के सदस्यों की सहायता ले सकता है। आवश्यकता पड़ने पर जब चाहे तब कुछ दिनों के लिए कार्य को बन्द भी कर सकता है। कार्य की इतनी स्वतन्त्रता तथा सुविधा एक बड़े उत्पादक को कभी भी नहीं हो सकती है।

(६) **प्रबन्ध में सरलता (Ease of management)**—चूँकि उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है इसलिए उत्पादक के लिए उसका प्रबन्ध करना आसान होता है। उसे बड़े उत्पादक की भाँति, लम्बे-चौड़े हिसाब रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सारा काम उत्पादक की निगाह में रहता है और अपव्यय की सम्भावनाएँ कम रहती हैं।

(७) **कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन (Production of artistic goods)**—छोटे पैमाने के उत्पादन के अन्तर्गत ही कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन हो सकता है क्योंकि ऐसी वस्तुओं में व्यक्तिगत ध्यान की आवश्यकता होती है। आगरा की विख्यात दरियाँ, संगमरमर का कार्य, पेपर मेशी के खिलौने, इत्यादि छोटे पैमाने पर बनाये जाते हैं।

(८) **कारखाना प्रणाली के दोषों का दूर होना (Removal of the defects of factory system)**—छोटे उद्योग किसी एक स्थान पर केन्द्रित न होकर देश भर में विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में फैले होते हैं तथा इनमें मशीनों का सीमित प्रयोग होता है। इसलिए छोटे उद्योगों में मशीन[illegible]था कारखाना प्रणाली के दोषों, जैसे—भीड़-भाड़, गन्दी बस्तियाँ, दूषित वातावरण, इत्यादि से मु[illegible] जाती है।

(९) [illegible]मिकों के व्यक्तित्व का विकास (Development of worker's personality)**—छोटे उद्यो[illegible] [illegible]मिकों में ईमानदारी, उत्तरदायित्व तथा स्वाभिमान की भावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है [illegible] पैमाने [illegible] श्रमिकों के व्यक्तित्व का विकास होता है।

(१०) [illegible]ने पर [illegible]xibility)—छोटे उद्योगों का एक महत्त्वपूर्ण गुण उनमें लोच का होना है, अर्थात् बाजार [illegible] परिस्थितियों के अनुसार वे स्वयं में परिवर्तन कर सकते हैं तथा नयी परिस्थितियों के साथ समायोजन कर सकते हैं। कुछ वस्तुओं की माँग सीमित तथा परिवर्तनशील हो सकती है, ऐसी वस्तुओं की माँग की पूर्ति केवल छोटे उद्योग ही कर सकते हैं।

छोटे पैमाने के उत्पादन की हानियाँ (Disadvantages of Small-scale Production)

(१) श्रम विभाजन तथा मशीनों का सीमित क्षेत्र (Scope for division of labour and machines is limited)—छोटे उद्योगों के साधन सीमित होते हैं, इसलिए ये न तो कुशल तथा नवीनतम मशीनों को खरीद सकते हैं और न अधिक संख्या में श्रमिकों को लगा सकते हैं। अतः छोटे उद्योगों को श्रम-विभाजन तथा मशीनों की बचतें प्राप्त नहीं होतीं।

(२) पूँजी की अपर्याप्त सुविधाएँ (Inadequate facilities of capital)—छोटे उद्योगों के पास सम्पत्ति (assets) कम होती है, उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है। ऐसी स्थिति में उनकी उधार लेने की क्षमता कम होती है, उन्हें पूँजी कठिनाई से तथा ऊँची ब्याज पर उधार मिलती है।

(३) प्रतियोगिता शक्ति की कमी (Weak competitive power)—छोटे उत्पादकों की वस्तु की औसत लागत अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसलिए बड़े उद्योगों के मुकाबले छोटे उत्पादकों की प्रतियोगिता शक्ति कमजोर रहती है।

(४) आर्थिक संकट को झेलने की कम शक्ति (Poor capacity to face economic crisis)—छोटे उद्योगों के पास रिजर्व फण्ड (reserve fund) बहुत कम होता है। वे आर्थिक मन्दी के झटके को नहीं झेल पाते हैं और प्रायः अत्यधिक हानियों के कारण बन्द हो जाते हैं।

(५) अवशिष्ट पदार्थों का बेकार जाना (Waste of by-products)—छोटे उद्योगों में अवशिष्ट पदार्थ की बहुत कम मात्रा प्राप्त होती है जिसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है और यह बेकार जाता है। इसके विपरीत, बड़े उद्योग में अवशिष्ट पदार्थ की पर्याप्त मात्रा प्राप्त होती है जिसका प्रयोग या तो उद्योग विशेष स्वयं कर सकता है या उसे दूसरे फर्म को बेचकर उचित दाम खड़े कर लेता है।

(६) निम्न कोटि का कच्चा माल (Inferior quality of raw material)—कच्चे माल के विक्रेता सर्वप्रथम अपने माल को बड़े उद्योगों को बेचते हैं क्योंकि उनकी खरीद बड़ी मात्रा में होती है। बचा हुआ निम्न कोटि का कच्चा माल छोटे उद्योग के लिए रह जाता है।

(७) बिक्री संगठन में कुशलता की कमी (Lack of efficiency in sales organisation)—छोटे उद्योगों का बिक्री संगठन, बड़े उद्योगों की अपेक्षा कम कुशल होता है। इसके मुख्य कारण हैं (i) प्रायः छोटे उद्योग की वस्तु की प्रत्येक इकाई एकसी तथा प्रमापित (uniform and standardised) नहीं होती। (ii) प्रायः उनकी वस्तु निम्न कोटि की होती है क्योंकि उन्हें बचा-खुचा निम्न कोटि का कच्चा माल मिलता है। (iii) वे विज्ञापन तथा प्रसार पर बहुत कम द्रव्य व्यय कर पाते हैं।

(८) अनुसन्धान की कमी (Absence of research)—छोटे उत्पादक के साधन बहुत सीमित होते है, इसलिए वे उद्योग से सम्बन्धित अनुसन्धान पर कुछ भी व्यय नहीं कर पाते हैं और इस प्रकार अनुसन्धान के लाभों से वंचित रह जाते हैं।

(९) कुछ उद्योगों में अनुपयुक्तता (Unsuitability in some industries)—कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनमें छोटे पैमाने पर कार्य हो ही नहीं सकता, जैसे लोहा तथा इस्पात उद्योग, हवाई जहाजों तथा जलयानों का निर्माण, इत्यादि।

छोटे पैमाने के उद्योगों का जीवित रहना
(SURVIVAL OF SMALL-SCALE INDUSTRIES)

आज का युग बड़े पैमाने के उत्पादन का है, परन्तु फिर भी छोटे पैमाने के उद्योग जीवित हैं। बड़े पैमाने के उद्योगों को आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं जिससे उनके द्वारा निर्मित वस्तु की प्रति इकाई लागत, छोटे उद्योगों की अपेक्षा, कम पड़ती है। छोटे उद्योगों की प्रतियोगिता शक्ति कम होती है, परन्तु फिर भी छोटे उद्योग जीवित हैं और भविष्य में भी जीवित रहने की

जाता है। अत: प्रश्न उठता है कि वे कौन-से कारण हैं जो छोटे उद्योगों को जीवित रखते हैं। इनके मुख्य कारण निम्न है

(१) प्रबन्धकीय कठिनाइयाँ (Managerial difficulties)—कई उद्योगो मे उत्पत्ति के पैमाने को बढाने से प्रबन्धकीय कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं और इसलिए ऐसे उद्योगो को छोटे पैमाने पर ही चलाना पडता है। उदाहरणार्थ, कृषि उद्योग मे सूक्ष्म निरीक्षण (detailed supervision) की आवश्यकता होती है, कुशलता की दृष्टि से ऐसे निरीक्षण को वेतन पाने वाले व्यक्तियो या श्रमिको पर नही छोडा जा सकता।

(२) व्यवसाय का स्वभाव (Nature of business)—कुछ उद्योगो मे शीघ्र निर्णय लेने (rapid decision taking) की आवश्यकता पडती है, तथा ग्राहको की व्यक्तिगत रुचियो को ध्यान मे रखना पडता है, जैसे दर्जी या सुनार का कार्य, ऐसे कार्यों को छोटे पैमाने पर ही करना पडता है। इसी प्रकार कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनमे बडी मशीनो के प्रयोग के लिए क्षेत्र (scope) नही होता, जैसे—बढई का कार्य, घडियाँ बनाने कार्य, इत्यादि। अत ऐसे उद्योगो को छोटे पैमाने पर चलाना ही लाभदायक रहता है।

(३) लोच तथा व्यक्तिगत ध्यान (Flexibility and personal attention)—एक छोटा उत्पादक अपने ग्राहको की आवश्यकताओ तथा रुचियो पर व्यक्तिगत ध्यान देता है जिससे ग्राहको को अधिक सन्तोष मिलता है। इतना ही नही छोटा उत्पादक बाजार तथा ग्राहको की आवश्यकतानुसार अपनी वस्तु मे शीघ्रता से परिवर्तन कर सकता है, बडे पैमाने के उत्पादन मे यह लोच नही होती। छोटे उत्पादक वस्तु की मात्रा के स्थान पर वस्तु के गुण पर अधिक ध्यान देते हैं, इसलिए कलात्मक वस्तुएँ ये ही बना सकते हैं न कि बडे उद्योग।

(४) छोटी तथा कुशल मशीनो के आविष्कार (Invention of small and efficient machines)—आज के युग म विज्ञान की बहुत प्रगति के कारण छोटी और साथ ही साथ कुशल मशीनो का आविष्कार हो चुका है। इन मशीनो का प्रयोग करके छोटा उत्पादक अपनी वस्तु को बडी मात्रा (mass production) मे उत्पादित करता है और उसकी प्रतियोगिता शक्ति बढ गयी है।

(५) सस्ती विद्युत-शक्ति की उपलब्धता (Availability of cheap hydro-electricity)—बहुत-से देशो मे नदियो मे पानी द्वारा बिजली पैदा की जा रही है जो बहुत सस्ती पडती है और देश मे दूर-दूर स्थानो तक ले जायी जा सकती है। इसम छोटे उद्योगो को सस्ती विद्युत शक्ति प्राप्त हो जाती है, यह बात आधुनिक छोटे उद्योगो को प्रोत्साहित करने मे महत्त्वपूर्ण है।

(६) शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ (Perishable goods)—दूध, शाक-सब्जी, डबल रोटी, इत्यादि शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओ का उत्पादन प्राय छोटे पैमाने पर ही किया जाता है क्योकि इनको आसानी से बहुत दूर क्षेत्रो तक नही ले जाया जा सकता है।

(७) यातायात लागत (Cost of transportation)—प्रथम, कुछ वस्तुओ का कच्चा माल बहुत दूर-दूर तक फैला होता है जिनको एक स्थान पर एकत्रित करने मे बहुत अधिक यातायात लागत पडती है। जब कच्चे माल को बडी मात्रा मे एकत्रित नही किया जा सकता है तो बडे पैमाने का उत्पादन भी नही हो सकता है और उत्पादन को छोटे पैमाने पर ही करना पडता है। ऐसा एक उदाहरण चावल की मिलो का है। दूसरे, कुछ वस्तुओ के उपभोक्ता बहुत दूर-दूर तक फैले होते है, इन वस्तुओ को उपभोक्ता तक पहुँचाने मे बहुत यातायात लागत बैठती है। अत ऐसी वस्तुओं का उत्पादन भी छोटे पैमाने पर ही होता है। ऐसी वस्तुओ के उदाहरण है फर्नीचर, बेकरी (bakery) का कार्य, इत्यादि। तीसरे, जब निर्मित वस्तु वजन मे बहुत भारी होती है तो भी उसकी यातायात लागत अधिक होती है और छोटे पैमाने पर ही चलाना पडता है, उदाहरणार्थ, ईंटों का उद्योग।

(८) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological reasons)—बहुत-से योग्य व्यक्ति बड़े पैमाने के उद्योगो मे दूसरे के अधीन बेतन पर कार्य करना पसन्द नही करते। वे स्वय अपना कोई छोटा उद्योग चलाकर स्वतन्त्रता तथा स्वाभिमान के साथ रहना अधिक पसन्द करते हैं।

(९) छोटे उद्योग 'श्रम-गहन' होते हैं (Small scale industries are labour intensive)—छोटे उद्योगों मे श्रम की अधिक आवश्यकता है और पूँजी की कम। बड़े उद्योग पूंजी-गहन (capital intensive) होते हैं जबकि छोटे उद्योग 'श्रम-गहन' (labour intensive)। छोटे उद्योग अविकसित देशो के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होते हैं क्योकि इन देशो मे मनुष्य-शक्ति (manpower) अधिक होती है और पूँजी कम। इन उद्योगो मे अधिक मनुष्यो को रोजगार मिलता है।

(१०) सरकार का प्रोत्साहन (Government encouragement)—प्रत्येक देश मे विशेषतया अविकसित देशो मे, सरकार छोटे उद्योगो को आर्थिक सहायता तथा अन्य कई प्रकार की सहायता देकर प्रोत्साहित करती है। इसके मुख्य कारण हैं. (i) इनसे अधिक रोजगार मिलता है, (ii) देश मे आय के उचित वितरण मे सहायता मिलती है, तथा (iii) देश का सन्तुलित आर्थिक विकास होता है जिससे देश के विभिन्न क्षेत्रो के लोगो मे एकता तथा सहयोग की भावना रहती है।

प्रश्न

१ बड़े पैमाने की उत्पत्ति से आप क्या समझते है? बड़े पैमाने की उत्पत्ति मे कौन-सी बचतें होती हैं?

What is meant by large scale production? What are the economies of large scale production? *(Jodhpur, IIyr Com, 1976)*

२ आन्तरिक तथा बाह्य बचतो मे अन्तर बताइए तथा यह बताइए कि उत्पत्ति के पैमाने मे विस्तार इन दोनो प्रकार की बचतो को किस प्रकार प्राप्त करता है?

Distinguish between internal and external economies and show how the expansion of the scale of production secures both types of economies?

[संकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग मे आन्तरिक तथा बाह्य बचतो के अर्थ बताइए, इसके बाद मे संक्षेप मे यह बताइए कि दोनो के बीच अन्तर की एक स्पष्ट रेखा खींचना कठिन है। दूसरे भाग मे इन बचतो के कारणो को बताते हुए संक्षेप मे उनका विवरण दीजिए।]

३ उत्पादन के पैमाने मे परिवर्तन किस प्रकार भीतरी व बाहरी बचतो (या किफायतो) को प्रभावित करते है?

How are internal and external economies influenced with the variations in the scale of production? *(Agra, B A I 1973)*

[संकेत—इस प्रश्न का उत्तर वही होगा जो कि प्रश्न न० २ का है।]

४ (अ) बड़े पैमाने की आन्तरिक तथा बाह्य बचतो के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
(ब) विभिन्न प्रकार की आन्तरिक बचतो को बताइए।

(a) Distinguish between internal and external economies of large scale production
(b) Explain the various kinds of internal economies *(Agra, B A I, Suppl 1975)*

५ क्या आप 'बड़े पैमाने के उत्पादन' तथा 'बड़ी मात्रा मे उत्पादन' के बीच कोई अन्तर पाते हैं? विभिन्न प्रकार की आन्तरिक बचतें बताइए जो बड़े पैमाने के उत्पादन मे प्राप्त होती हैं।

Do you find any difference between 'Large scale production' and 'Mass production'? Discuss the various kinds of internal economies associated with large scale production,

६. आन्तरिक तथा बाह्य बचतों के अर्थ तथा महत्त्व को बताइए और फर्म तथा उद्योग के आकार के साथ इनके सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

[संकेत—प्रश्न के प्रथम भाग में पहले आन्तरिक और बाह्य बचतों के अर्थ को बताइए, तत्पश्चात् विभिन्न प्रकार की आन्तरिक बचतो और विभिन्न प्रकार की बाह्य बचतो की संक्षिप्त विवेचना कीजिए। दूसरे भाग में फर्म तथा उद्योग के आकार के साथ आन्तरिक तथा बाह्य बचतो के सम्बन्ध के लिए देखिए 'आन्तरिक तथा बाह्य बचतों में सम्बन्ध' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

७. उत्पादन की बाह्य तथा आन्तरिक बचतो से आप क्या समझते हैं ? उत्पादन में अबचतों के विचार को भी उदाहरण देकर समझाइए।

What do you understand by external and internal economies of production? Also explain and illustrate the concept of diseconomies in production. (*Alld., B Com.*, 1970)

८. आधुनिक उद्योग बड़े पैमाने पर क्यो संगठित किये जाते हैं ? बड़े पैमाने की उत्पादन की सीमाएँ बताइए।

Why are the modern industries organised on a large-scale ? Indicate the limitations of large scale production. (*Sagar, I*, 1969)

[संकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग मे बताइए कि बड़े पैमाने के उत्पादन से आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं जिनसे प्रति इकाई लागत कम होती है। इन बचतो के प्राप्त होने के कारण ही आधुनिक उद्योग बड़े पैमाने पर संगठित किए जाते हैं। इसके पश्चात् संक्षेप में विभिन्न प्रकार की आन्तरिक तथा बाह्य बचतो को बताइए, इस विवरण में आन्तरिक तथा बाह्य बचतों के लागू होने के कारणों को छोड़ दीजिए। दूसरे भाग में संक्षेप में बड़े पैमाने के उत्पादन की सीमाओं की विवेचना कीजिए।]

९. बड़े पैमाने के उत्पादन की बचतों की व्याख्या कीजिए। क्या आप समझते हैं कि प्रत्येक उद्योग को बड़े पैमाने पर चलाया जा सकता है ?

Explain the economies of large-scale production Do you think that every industry can be carried on a large-scale ? (*B H U., B Com.*, 1966)

[संकेत—प्रथम भाग में बड़े पैमाने के उत्पादन की आन्तरिक तथा बाह्य बचतो को संक्षेप में बताइए। दूसरे भाग में 'बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सीमाएँ' संक्षेप में बताइए।]

१०. वे शक्तियाँ बताइए जो छोटे पैमाने के उद्योग को जीवित रखती हैं।

Discuss the forces which perpetuate the existance of small-scale production. (*Ravi*, *B A.*, 1962)

अथवा,

आज भी बहुत-से उद्योगों में छोटे पैमाने के उत्पादक क्यो जीवित हैं ?

Why does the small-scale producer still persist in many industries ?

30 जनसंख्या के सिद्धान्त
[THEORIES OF POPULATION]

प्राचीन समय से ही जनसंख्या की समस्या म अर्थशास्त्रियों ने रुचि दिखायी है। वाणिज्य-वादी अर्थशास्त्री (mercantilists) देश की आर्थिक प्रगति तथा शक्ति के लिए घनी या अधिक जनसंख्या का होना अच्छा समझते थे। प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री (physiocrats) जनसंख्या की वृद्धि के विरुद्ध नहीं थे वे 'प्राकृतिक व्यवस्था' (natural order) में विश्वास रखते थे। इसलिए प्राकृतिक रूप से यदि जनसंख्या घटती है या बढ़ती है तो वे उसे बुरा नहीं समझते थे। एडम स्मिथ (Adam Smith) जनसंख्या के एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं समझते थे क्योंकि उनके अनुसार जनसंख्या माँग तथा पूर्ति के अनुसार अपने आप को समायोजित (adjust) कर लेती है। माल्थस (Malthus) से पहले इन प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने जनसंख्या के सम्बन्ध में किसी पूर्ण तथा निश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। माल्थस प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने जन-संख्या के सिद्धान्त को एक निश्चित रूप दिया। माल्थस के सिद्धान्त के बाद जनसंख्या के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए। जनसंख्या के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं

१. माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त (Malthusian Theory of Population)
२. अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त (Optimum Theory of Population)
३. जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त (Theory of Demographic Transition)
४. जनसंख्या का जैवकीय सिद्धान्त—लोजिस्टिक वक्र रेखा (The Biological Theory of Population—The Logistic Curve)
५ शुद्ध पुनरुत्पादन दर का सिद्धान्त (Theory of Net Reproduction Rate)

अब हम इनमें से प्रत्येक सिद्धान्त का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त
(MALTHUSIAN THEORY OF POPULATION)

प्राक्कथन (Introduction)

यद्यपि जनसंख्या की समस्या ने विद्वानों तथा अर्थशास्त्रियों का ध्यान बहुत पहले से आकर्षित किया है, परन्तु माल्थस प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने जनसंख्या के सिद्धान्त को एक निश्चित तथा पूर्ण रूप दिया। इस दृष्टि से माल्थस का नाम जनसंख्या के सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। माल्थस एक निराशावादी पादरी थे जिन्होंने कई वर्षों के अध्ययन के पश्चात् अपने विचारों को १७९८ में एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया, इस पुस्तक पर उनका नाम नहीं दिया गया था। सन् १८०३ में इसका दूसरा संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ जिसका नाम *'An Essay on the Principle of Population'*[1] रखा गया। इस दूसरे संस्करण को ही माल्थस के विचारों का आधार माना जाता है।

---

[1] पूरा नाम इस प्रकार है "*An Essay on the Principle of Population as it Affects the Future Improvement of Society*"

माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त की पृष्ठभूमि (Background of the Malthusian Population)

प्रथम, जिस समय माल्थस ने जनसख्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उस स यूरोप नेपोलियन की लडाइयो की आग मे जल रहा था, चारो तरफ मुसीबतें और गर हुई थी। इन लडाइयो ने खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुओं की बहुत कमी कर दी थी। एक वस्तुओ की कमी के कारण 'आर्थिक असन्तुष्टि' (economic discontent) बहुत प्रब थी और दूसरी ओर बेकारी तीव्र गति से बढ़ रही थी। दूसरे, औद्योगिक क्रान्ति अभी से आरम्भ ही हुई थी, जीवन निर्वाह के साधनो मे कोई विशेष परिवर्तन नही दिखा था, परन्तु जनसख्या मे वृद्धि बडी तीव्र गति से हो रही थी। उपर्युक्त सब बातो ने 'जनसख्या सिद्धान्त' के प्रतिपादन को प्रभावित किया। तीसरे, माल्थस की पुस्तक के प्र तात्कालिक कारण गोडविन (Godwin) की पुस्तक '*An Enquiry into Political Ju* प्रकाशन था। गोडविन आशावादी होने के कारण मानव समाज का भविष्य बहुत उज्ज्वल थे परन्तु माल्थस निराशावादी थे, अत वे गोडविन के विचारो से सहमत नही थे। परिण माल्थस ने गोडविन की पुस्तक के उत्तर मे अपनी पुस्तक लिखी, इसके कारण उन्होंने अपन की भाषा प्रभावशील तथा कठोर रखी।

माल्थस के सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Malthusian Theory)

माल्थस अपने जनसख्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय निम्न मान्यताओ चले (१) मनुष्य की प्रजनन शक्ति (fecundity) स्थिर रहती है। (२) जीवन-स्तर सख्या मे सीधा सम्बन्ध होता है, अर्थात् जीवन-स्तर बढने पर जनसख्या मे वृद्धि होगी अधिक बच्चो का पालन-पोषण किया जा सकेगा। इसके विपरीत जीवन-स्तर मे कमी जनसख्या मे कमी होगी।

माल्थस का जनसख्या का नियम (Malthusian Law of Population)

माल्थस के जनसख्या के नियम को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है
"उत्पादन कलाओं की एक दी हुई स्थिति के अन्तर्गत, जनसख्या जीवन-निर्वाह के साधनों से अधिक तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाती है।" ('In a given state of the arts of production, population tends to outrun subsistence")

माल्थस के जनसख्या के नियम या सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Malthus of Population or Theory of Population)

इस नियम की पूर्ण तथा विस्तृत व्याख्या के लिए माल्थस के सिद्धान्त की मु (main features) का विवरण नीचे दिया गया है

(१) खाद्यान्न तथा जनसख्या की वृद्धि मे सम्बन्ध—(अ) खाद्यान्न की अपेक्षा जनस तीव्र गति से बढने की प्रवृत्ति होती है। (ब) माल्थस ने इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए का रूप दिया। उन्होने बताया कि जनसख्या 'ज्यामितिक वृद्धि' (Geometrical Progres तथा खाद्यान्न 'अकगणितीय वृद्धि' (Arithmetical Progression) के अनुसार बढती है। ज्या वृद्धि का अर्थ है १, २, ४, ८, १६, ३२ इत्यादि तथा अकगणितीय वृद्धि का अर्थ है १, २, ५, ६, ७, ८, इत्यादि। परन्तु माल्थस के सिद्धान्त को शाब्दिक अर्थ मे नही लेना चा उन्होंने गणितात्मक रूप केवल इस बात को समझने के लिए दिया था कि जनसख्या को प्र खाद्यान्न की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ने की होती है। (स) मनुष्य की प्रजनन शक्ति तीव्र होती है और यदि बाधाएँ न हों तो किसी देश की जनसख्या प्रत्येक २५ वर्ष मे दुग जायेगी, जबकि खाद्यान्नो मे वृद्धि इस अनुपात मे नही होगी क्योंकि कृषि मे शीघ्र ही उत्पत्ति नियम लागू हो जाता है (द) स्पष्ट है कि माल्थस के सिद्धान्त का आधार उत्पत्ति ह्रास (Law of Diminishing Returns) है। भूमि सीमित है, उसकी पूर्ति (supply) को न

सकता। यदि कृषि कला में कोई उन्नति नहीं होती तो भूमि पर अधिक पूंजी तथा श्रम का प्रयोग करने से सीमान्त उत्पादन में ह्रास होता जायेगा।

(२) नैसर्गिक प्रतिबन्ध तथा माल्थूसियन चक्र (Positive Checks and Malthusian Cycle)—जनसंख्या खाद्यान्न की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ती है, इसलिए प्रत्येक देश में कुछ समय बाद एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब खाद्यान्न की कमी हो जाती है। यह अति-जनसंख्या (over-population) की स्थिति है। ऐसी स्थिति में प्रकृति बढ़ती हुई जनसंख्या पर रोक लगाती है अर्थात् अकाल, भयंकर बीमारियाँ, बाढ़, भूकम्प, युद्ध, इत्यादि लागू होने लगते हैं और इनसे देश में बड़ी विपत्ति फैलती है तथा लाखों व्यक्तियों की असामयिक मृत्यु हो जाती है। प्रकृति द्वारा लगाये गये इन प्रतिबन्धों को माल्थस ने 'नैसर्गिक प्रतिबन्ध' (positive checks) कहा। इन नैसर्गिक प्रतिबन्धों द्वारा जनसंख्या में कमी होती है और जनसंख्या का खाद्यान्न के साथ सन्तुलन (balance) पुनः स्थापित हो जाता है। परन्तु यह सन्तुलन बहुत थोड़े समय तक ही रहता है। मानव के बढ़ने की स्वाभाविक इच्छा (inherent urge) शीघ्र कार्य करने लगती है, जनसंख्या पुनः बढ़कर खाद्यान्न की पूर्ति से अधिक हो जाती है, प्रकृति पुनः नैसर्गिक प्रतिबन्धों द्वारा बढ़ी जनसंख्या को कम करके उसका सन्तुलन खाद्यान्न के साथ स्थापित कर देती है।

Positive Checks

Balanced Population

Over Population
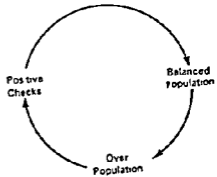
चित्र—१

घटनाओं का यह चक्र (cycle) चलता रहेगा, इसे 'माल्थूसियन चक्र' (Malthusian Cycle) कहते हैं। इस 'माल्थूसियन चक्र' को चित्र नं० १ द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

(३) निष्कर्ष निवारक प्रतिबन्ध (Conclusion Preventive Checks)—घटनाओं के चक्र तथा नैसर्गिक प्रतिबन्धों के कष्टों से बचने के लिए माल्थस ने सुझाव दिया कि मनुष्य स्वयं जनसंख्या पर रोक लगानी चाहिए। इसके लिए उन्होंने देर से शादी करने, संयम से रहने तथा अविवाहित या ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करने का सुझाव दिया। इन प्रतिबन्धों को माल्थस ने 'निवारक प्रतिबन्ध' (preventive checks) कहा। [ध्यान रहे कि माल्थस ने सन्तान निरोध के आधुनिक कृत्रिम साधनों के बारे में कुछ नहीं कहा, उनका निवारक प्रतिबन्धों से अर्थ नैतिक संयम (moral restraints) से ही था, कृत्रिम साधनों के प्रयोग पर माल्थस के अनुयायियों, जो कि नव माल्थसवादी (New Malthusians) कहलाते हैं, ने ही अधिक जोर दिया है।]

माल्थस के सम्पूर्ण सिद्धान्त को हम संक्षेप में निम्न चार्ट (chart) द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं:
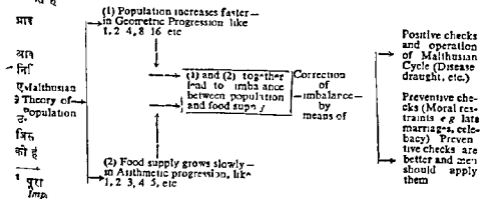
माल्थस के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Malthusian Theory of Population)

माल्थस के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं :

(१) मनुष्य की सन्तान-उत्पादन शक्ति (fecundity) स्थिर नहीं रहती—माल्थस ने इस जीवशास्त्रीय सिद्धान्त (biological theory) की उपेक्षा की कि सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य की सन्तान उत्पादन शक्ति कम होती है, स्थिर नहीं रहती।

(२) जीवन-स्तर ऊँचा होने के साथ जनसंख्या घटती है, बढ़ती नहीं—यूरोपीय देशों तथा अन्य उन्नतशील देशों का अनुभव यह सिद्ध करता है कि आर्थिक सम्पन्नता तथा जीवन-स्तर में वृद्धि के साथ जनसंख्या में कमी होने की प्रवृत्ति क्रियाशील होने लगती है।

[जीवन-स्तर ऊँचा होने से पुरुष तथा स्त्रियाँ देर से शादी करते हैं तथा कम सन्तान चाहते हैं ताकि वे अपने बच्चों के उचित पालन-पोषण तथा उच्च शिक्षा पर धन व्यय कर सकें और उनका भावी जीवन सुखी बना सकें। शिक्षित स्त्रियाँ कम सन्तान चाहती हैं। इसी प्रकार शिक्षा प्रसार तथा उच्च जीवन-स्तर के परिणामस्वरूप जनसंख्या में कमी होती है न कि वृद्धि, जैसा कि माल्थस का विचार था।]

(३) सिद्धान्त का गणितात्मक रूप उचित नहीं है—इतिहास साक्षी है कि जनसंख्या में वृद्धि ज्यामितिक गति तथा खाद्यान्न में वृद्धि अकगणित गति से नहीं होती; वास्तव में, जनसंख्या *या खाद्यान्न की वृद्धि को कोई निश्चित गणितात्मक रूप नहीं दिया जा सकता।*

परन्तु यह आलोचना सही नहीं है। माल्थस का आशय जनसंख्या की प्रवृत्ति का खाद्यान्न की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ने से था, इस बात को समझाने के लिए ही उन्होंने ज्यामितिक वृद्धि तथा अंकगणित वृद्धि के शब्दों का प्रयोग किया। अपनी पुस्तक के बाद के संशोधित संस्करणों में उन्होंने इन शब्दों को भी हटा दिया था।

(४) माल्थस भावी वैज्ञानिक आविष्कारों का ठीक अनुमान नहीं लगा सके—माल्थस का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण खाद्यान्न में कमी हो जाती है। परन्तु कृषि में वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप नयी रीतियों, उन्नत बीज, खादों, इत्यादि के प्रयोग से उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृत्ति को बहुत समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। माल्थस कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रगति का अनुमान नहीं लगा सके। इसी प्रकार यातायात व संवादवहन के साधनों में बहुत अधिक प्रगति हुई है, परिणामस्वरूप खाद्यान्नों को एक जगह या देश से दूसरी जगह या देश को आसानी से ले जाया जा सकता है और इस प्रकार देश विशेष में खाद्यान्न की कमी को दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में भी वैज्ञानिक प्रगति तथा बड़े पैमाने के उत्पादन के परिणामस्वरूप जीवन-निर्वाह की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकी हैं। अतः माल्थस विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक उन्नति का ठीक अनुमान नहीं लगा सके।

(५) जनसंख्या की तुलना कुल राष्ट्रीय आय से करनी चाहिए—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, एक देश की जनसंख्या की तुलना उस देश की कुल राष्ट्रीय आय से करनी चाहिए, न कि केवल खाद्यान्नों से। अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त (Optimum Theory of Population) का यही आधार है। एक देश में खाद्यान्न का उत्पादन कम हो सकता है, परन्तु यदि वह देश औद्योगिक दृष्टि से उन्नतशील है तो वह अपने यहाँ के बने हुए माल के बदले में दूसरे कृषि प्रधान देशों से खाद्यान्न मँगा सकता है और अधिक जनसंख्या का पालन-पोषण कर सकता है। सेलिगमैन (Seligmen) ने ठीक कहा है कि जनसंख्या की समस्या केवल एक संख्या (या मात्रा) की समस्या नहीं है बल्कि कुशल उत्पादन तथा समान वितरण की समस्या भी है।[1] [दूसरे शब्दों

---

[1] "The problem of population is not of mere size but of efficient production and equitable distribution."

मे, यदि जनसख्या मे वृद्धि के साथ देश का कुल उत्पादन भी बढता है तथा धन का उचित वितरण होता है तो जनसख्या की वृद्धि से कोई हानि नही ।]

(६) जनसख्या वृद्धि के साथ श्रम-शक्ति मे भी वृद्धि—प्रो० केनन (Cannan) के अनुसार प्रत्येक अतिरिक्त श्रमिक ससार मे केवल खाने के लिए मुँह लेकर ही नही आता बल्कि वह दो हाथ लेकर भी आता है जिससे उत्पादन किया जा सकता है। वास्तव मे प्रो० केनन का कथन भी प्रो० सेलिगमेन के कथन की पुष्टि करता है, अर्थात् जनसख्या की समस्या केवल सख्या की समस्या ही नही बल्कि कुशल उत्पादन तथा उचित वितरण की भी समस्या है।

(७) प्राकृतिक विपत्तियों (या नैसर्गिक प्रतिबन्धों) का होना अति-जनसख्या का सूचक नहीं—माल्थस के अनुसार यदि किसी देश म अति-जनसख्या है तो वहाँ पर नैसर्गिक प्रतिबन्ध कार्यशील हो जायेंगे, दूसरे शब्दो मे, नैसर्गिक प्रतिबन्धों का पाया जाना अति-जनसख्या का सूचक है। परन्तु यह विचारधारा गलत है। जिन देशो मे न्यून-जनसख्या है वहाँ भी नैसर्गिक प्रतिबन्ध अर्थात् प्राकृतिक विपत्तियाँ पायी जाती हैं। वास्तव मे, प्राकृतिक विपत्तियाँ तो प्राकृतिक हैं। वे उत्पादन की कुशलता, धन का असमान वितरण, चिकित्सा-विज्ञान का अपर्याप्त विकास, इत्यादि के परिणाम है न कि अति-जनसख्या के।

(८) जनसंख्या की वृद्धि सदैव हानिकारक नहीं होती—जनसख्या मे प्रत्येक वृद्धि को माल्थस हानिकारक समझते थे, परन्तु यह विचार गलत था। यदि किसी देश की जनसख्या, उस देश के प्राकृतिक साधनो की अपेक्षा कम है (अर्थात् देश मे न्यून-जनसख्या है) तो जनसख्या मे वृद्धि लाभदायक होगी क्योंकि तभी प्राकृतिक साधनो का भलीभाँति प्रयोग करके उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय को बढाया जा सकेगा। यदि देश मे अति-जनसख्या है तो जनसख्या मे वृद्धि हानिकारक होगी।

(९) माल्थस का जनसख्या का नियम असत्य सिद्ध हुआ—माल्थस का जनसख्या का नियम है कि जनसख्या, खाद्यान्न की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढती है। परन्तु इतिहास ने इसको गलत सिद्ध किया। यूरोपीय देशो मे एक ओर तो कृत्रिम साधनो के प्रयोग से जनसख्या तीव्र गति से नही बढी, दूसरी ओर कृषि मे वैज्ञानिक रीतियों के प्रयोग से खाद्यान्न मे बहुत वृद्धि हुई है। आज तो कुछ यूरोपीय देशो (जैसे फ्रास) मे तो जनसख्या के कम होने की समस्या उत्पन्न हो रही है।

(१०) स्थैतिक दृष्टिकोण (Static approach)—माल्थस का नियम उत्पत्ति ह्रास नियम तथा प्राकृतिक साधनो (भूमि) की सीमितता पर आधारित है। इस अर्थ मे माल्थस का सिद्धान्त स्थैतिक है क्योंकि किसी एक निश्चित समय पर साधनो की मात्रा स्थिर हो सकती है, परन्तु सदैव के लिए नहीं। समय के साथ पश्चिमी देशो मे ज्ञान तथा टेकनोलोजी (technology) मे बहुत विकास हुआ है। प्राप्त भूमि तथा अन्य साधनो मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि कृषि योग्य भूमि की मात्रा मे वृद्धि महत्त्वपूर्ण नही है वरन् अतिरिक्त भूमि का महत्त्व इस बात से मापा जा सकता है कि उससे कितना अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया जाता है।[3]

कुछ अर्थशास्त्री माल्थस के सिद्धान्त को प्रावैगिक (dynamic) बताते हैं क्योंकि माल्थस का सिद्धान्त एक समयावधि के भीतर (over a period of time) जनसख्या के विकास (growth) की प्रक्रिया (course) का अध्ययन करता है।

---

[3] 'Malthus' argument was based on the law of diminishing returns and the assumption that the supply of natural resources (land) was fixed It is in this sense the Malthus' analysis was static for it is true that at any *point in time* the volume of resources available to people is indeed fixed but *not through time* With passing of time we, in the western world have seen the tremendous growth of knowledge and technology, and a significant increase in the amount of available land and other resources We should note that it is not the increase in tillable land that is important, rather the value of the additional land is to be measured by the amount of additional output that it produces."

माल्थस के सिद्धान्त की सत्यता (Validity of the Malthusian Theory)

माल्थस के सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की गयी। प्रश्न यह उठता है कि क्या माल्थस का सिद्धान्त बिलकुल बेकार है तथा उसमें कोई सत्यता नहीं है? क्या आधुनिक समाज के लिए माल्थस के सिद्धान्त का भय (terror) समाप्त हो गया है?

वास्तव में माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की आलोचना होने पर भी उसमें सत्यता का पर्याप्त अंश है। यह कहा जा सकता है कि विकसित तथा उन्नतशील देशों के लिए माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त-सा प्रतीत होता है या बहुत कम हो गया है परन्तु अविकसित देशों के लिए उनके सिद्धान्त का भय आज भी उपस्थित है अर्थात् उनका सिद्धान्त अविकसित देशों में लागू होता है। निम्न विवरण इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डालता है :

(१) इगलैण्ड, अमरीका तथा यूरोप के उन्नतशील देशों में माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त-सा प्रतीत होता है अर्थात् माल्थस का सिद्धान्त लागू नहीं होता। इन देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर कम हो गयी है, वैज्ञानिक खोजों तथा आविष्कारों के परिणामस्वरूप औद्योगिक तथा कृषि उत्पादकता में बहुत वृद्धि हुई है, तथा इनमें खाद्यान्न की कमी की समस्या नहीं है। इन देशों में *माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या खाद्यान्नों की अपेक्षा तीव्र गति से नहीं बढ़ी।* इतना ही नहीं कुछ देशों, जैसे फ्रांस, इगलैण्ड, अमरीका, इत्यादि में न्यून-जनसंख्या की समस्या उत्पन्न होने की सम्भावना अनुभव की जाने लगी है।

(२) परन्तु विकसित तथा उन्नत देशों में कृत्रिम साधनों के प्रयोग द्वारा जनसंख्या को कम किया गया है। यह बात परोक्ष रूप से माल्थस के सिद्धान्त की पुष्टि करती है और इस दृष्टि से ये देश भी माल्थस के सिद्धान्त से अप्रभावित नहीं रहे हैं।[4]

(३) माल्थस के नियम की इस सत्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि यदि किसी प्रकार के प्रतिबन्ध न हों तो जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ेगी।

(४) सेम्युल्सन (Samuelson) के अनुसार, माल्थस का सिद्धान्त आज भी एक जीवित प्रभाव है। माल्थस के विचार प्रत्यक्ष रूप से उत्पत्ति ह्रास नियम पर निर्भर करते हैं और उनमें आज भी सत्यता है।[5]

(५) माल्थस का सिद्धान्त भारत, चीन, इत्यादि अल्पविकसित देशों में पूरी तरह से क्रियाशील है। इन देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, और खाद्यान्न धीमी गति से, दूसरे शब्दों में, इन देशों में खाद्यान्न-पूर्ति तथा जनसंख्या में बहुत असन्तुलन है। सेम्युल्सन के शब्दों में, "भारत, चीन तथा संसार के अन्य भागों में, जहाँ जनसंख्या और खाद्य पूर्ति में सन्तुलन एक

[4] "प्रो० टोमस के अनुसार यह तथ्य कि एक उच्च जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए परिवार को सीमित किया जाता है माल्थस के सिद्धान्त की पुष्टि करता है क्योंकि इसके अनुसार जीवन निर्वाह के साधन इतने पर्याप्त नहीं होते कि जनसंख्या में वृद्धि तथा जीवन-स्तर में वृद्धि या एक निश्चित जीवन-स्तर को बनाये रखने—इन दोनों के लिए पूरे पड़ जायें। यदि लोग स्वयं अपने परिवारों को सीमित करते हैं ताकि जीवन-स्तर को बनाये रख सकें या इसी दृष्टि से शादी को स्थगित करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि माल्थस का सिद्धान्त (अर्थात् जनसंख्या जीवन-निर्वाह के साधनों द्वारा सीमित है) क्रियाशील होता है।

"The fact that family limitation is practised in order to maintain a high standard of living may be considered a substantiation of the Malthusian doctrine for it indicates that the means of subsistence are not sufficient to allow both an increase in population and a rise in, or the maintenance of the standard of living Wherever people deliberately choose to limit their families in order to maintain their standard, or even where marriage is postponed for the same reason, it can be contended that the Malthusian principle that population is limited by the means of subsistence is in operation."

[5] "It (i.e. Malthus' Theory) is still a living influence today. Malthus' views depend directly on the law of diminishing returns, and they continue to have relevance."

महत्वपूर्ण समस्या है, जनसंख्या का व्यवहार (behaviour) समझने के लिए माल्थस के सिद्धान्त मे आज भी सत्यता के तत्त्व (germs) महत्वपूर्ण हैं।"*

माल्थस के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे निष्कर्ष (Conclusion regarding the Malthusian Theory)

पश्चिमी उन्नत देशों म माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त-सा हो गया है या कम हो गया है अर्थात् यह सिद्धान्त इन देशों म लागू नहीं होता, परन्तु अल्पविकसित देशों मे माल्थस के सिद्धान्त का भय अब भी है और यह सिद्धान्त इन देशों मे भलीभांति लागू होता है।

माल्थस का जनसख्या सिद्धान्त तथा भारत
(MALTHUSIAN THEORY OF POPULATION AND INDIA)

भारत म माल्थस का सिद्धान्त लागू होता है, यह निम्न विवरण से स्पष्ट है

(१) भारत मे जनसख्या बहुत तीव्र गति से (लगभग २.५ प्रतिशत प्रतिवर्ष) बढ रही है, जबकि खाद्यान्न की पूर्ति इस दर से नहीं हो रही है। देश को लाखो टन खाद्यान्न प्रतिवर्ष विदेशो से मँगाना पड़ता है। (२) देश मे सामाजिक तथा धार्मिक दशाएँ आज भी जन्म-दर को बढाने म सहायक है। भारत मे अब भी छोटी आयु मे विवाह करने की प्रथा अधिकाश लोगो म प्रचलित है। देश मे जन्म-दर ही नही बल्कि मृत्यु-दर भी बहुत ऊँची है। (३) यद्यपि कृषि के ढगो मे पहले की अपेक्षा थोडा परिवर्तन हुआ है, परन्तु अभी भी कृषि अधिकतर पुराने ढगों से की जाती है। अत. कृषि मे उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृत्ति को नहीं रोका जा सका है। (४) देश की अधिकाश जनता अशिक्षित है इसलिए जन्म-दर को रोकने के लिए निवारक प्रतिबन्धो या कृत्रिम साधनो का प्रयोग बहुत कम मात्रा मे किया जा रहा है। (५) देश मे अभी उद्योग-धन्धो का भी पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाया है। देशवासियो का जीवन-स्तर बहुत नीचा है। देश म जनसख्या को रोकने के लिए नैसर्गिक प्रतिबन्ध, जैसे अकाल, बीमारियाँ, बाढ, इत्यादि क्रियाशील है।

अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त
(OPTIMUM THEORY OF POPULATION)

प्राक्कथन (Introduction)

माल्थस ने देश विशेष की जनसख्या की तुलना उस देश मे उत्पादित खाद्यान्नो से की तथा सामान्यतया जनसख्या की प्रत्येक वृद्धि को हानिकारक समझा। उनका यह दृष्टिकोण उचित नहीं था। सैलिगमैन (Seligman) का यह कथन उचित है कि जनसंख्या की समस्या केवल सख्या या आकार (number or size) की समस्या नहीं है बरन् यह कुशल उत्पादन तथा न्यायसंगत वितरण की समस्या है। दूसरे शब्दो मे, जनसख्या मे वृद्धि या कमी अर्थात् जनसख्या के आकार को देश के कुल उत्पादन (या धन के उत्पादन) तथा उसके न्यायपूर्ण वितरण की तुलना मे देखना चाहिए। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने इस दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए जनसख्या का एक नया सिद्धान्त बनाया जो 'अनुकूलतम जनसख्या सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। केनन (Cannan), कार-सॉण्डर्स (Carr-Saunders), डाल्टन, रोबिन्स, आदि अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं।

---

* "Nevertheless, the germs of truth in his doctrine are still important for understanding the population behaviour of India, China, and other parts of the globe where the balance of number and food supply is a vital factor."

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का उद्देश्य (Object of the Optimum Theory of Population)

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त यह बताने का प्रयत्न करता है कि किसी देश के लिए आर्थिक दृष्टि से जनसंख्या का कौन सा आकार आदर्श (ideal) या अनुकूलतम है। यह जनसंख्या में परिवर्तन तथा प्रति व्यक्ति आय में परिवर्तन के बीच सम्बन्ध का अध्ययन करता है और बताता है कि जनसंख्या का वह आकार आदर्श या अनुकूलतम होगा जिस पर प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी।

'अनुकूलतम के विचार' का प्रयोग (Application of the 'Concept of Optimum')

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त यह नहीं बताता कि जनसंख्या में क्यों और किस प्रकार से वृद्धि होती है इस दृष्टि से इसको जनसंख्या का सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में, यह सिद्धान्त तो जनसंख्या के क्षेत्र में केवल 'अनुकूलतम' के विचार का प्रयोग करता है अर्थात् उत्पत्ति के साधनों के मिलाने के अनुकूलतम अनुपात के विचार की सहायता लेता है। एक उत्पादक विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को अनुकूलतम अनुपात में मिलाता है ताकि उसको अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो। इसी प्रकार से यदि देश के अन्य दिये हुए साधनों के साथ जनसंख्या को अनुकूलतम अनुपात में मिलाया जाता है तो देश का उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी। दूसरे शब्दों में, देश के साधनों को देखते हुए जनसंख्या न कम होनी चाहिए और न अधिक वरन् ठीक (just right) या अनुकूलतम होनी चाहिए तभी प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी। स्पष्ट है कि जनसंख्या के क्षेत्र में अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विचार 'अनुकूलतम' का प्रयोग (application) ही अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त है।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Optimum Theory of Population)

यह सिद्धान्त दो मान्यताओं पर आधारित है

(१) यह मान लिया जाता है कि जनसंख्या में वृद्धि के साथ कुल जनसंख्या में कार्यवाहक जनसंख्या (working population) का अनुपात स्थिर रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रमिक के औसत उत्पादन (average product) तथा प्रति व्यक्ति आय (per capita income) में सीधा सम्बन्ध रहता है। श्रमिक के औसत उत्पादन के घटने-बढ़ने से प्रति व्यक्ति आय भी घटेगी-बढ़ेगी और जब प्रति श्रमिक औसत उत्पादन अधिकतम होगा तो प्रति व्यक्ति आय भी अधिकतम होगी।

(२) यह भी मान लिया जाता है कि एक समय विशेष पर जनसंख्या में वृद्धि के साथ प्राकृतिक साधनों, तकनीकी ज्ञान पूँजी, इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि एक बिन्दु के बाद उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जायेगा।

अनुकूलतम जनसंख्या की परिभाषा (Definition of Optimum Population)

साधनों तथा पूँजी की एक दी हुई मात्रा और तकनीकी ज्ञान की एक दी हुई स्थिति में अनुकूलतम जनसंख्या से अर्थ, सामान्यतया, जनसंख्या के उस आकार से लिया जाता है जिस पर प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो तथा जिसमें थोड़ी-सी वृद्धि या कमी होने पर प्रति व्यक्ति आय में कमी हो जाय।

अर्थशास्त्रियों द्वारा अनुकूलतम जनसंख्या की दी गयी परिभाषाओं में थोड़ी भिन्नता पायी जाती है। यह बात निम्न परिभाषाओं से स्पष्ट होती है

(१) डाल्टन (Dalton) के अनुसार, 'अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो प्रति व्यक्ति

अधिकतम आय प्रदान करती है।"[7] रोबिन्स (Robbins) के अनुसार, "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जिससे अधिकतम उत्पादन सम्भव होता है।"[8]

(२) प्रो॰ बोल्डिंग के अनुसार वह जनसंख्या जिस पर जीवन-प्रमाप (standard of life) अधिकतम होता है, अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है।"[9] प्रो॰ बोल्डिंग 'रहन-सहन का स्तर (standard of living) के स्थान पर 'जीवन-प्रमाप' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'अधिकतम जीवन प्रमाप' एक विस्तृत शब्द है जिसके अन्तर्गत 'अधिकतम आय से प्राप्त भौतिक सुख के अतिरिक्त 'अभौतिक पक्ष' (non-material side) या 'गुणात्मक पक्ष' (qualitative aspect) भी आ जाता है अर्थात् इसके अन्तर्गत मनुष्य के चरित्र, अच्छा स्वास्थ्य, इत्यादि, पर भी ध्यान दिया जाता है।

कैनन (Cannan)[10], हिक्स (Hicks)[11] इत्यादि, प्रति व्यक्ति वास्तविक आय को ही अनुकूलतम जनसंख्या का सूचक मानते हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of the Optimum Theory of Population)

जनसंख्या में वृद्धि या कमी के साथ कार्यवाहक जनसंख्या (working population or labour force) में वृद्धि या कमी होगी। यदि किसी देश में जनसंख्या कम है तो कार्यवाहक जनसंख्या भी कम होगी, इसलिए देश के अधिकांश उत्पादन साधनों का प्रयोग सर्वोत्तम नहीं हो पायेगा और प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन अर्थात् प्रति व्यक्ति आय कम होगी। जैसे जनसंख्या बढ़ेगी, श्रम विभाजन बढ़ेगा, बड़े पैमाने पर उत्पादन होगा, देश के साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगेगा और प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। दूसरे शब्दों में, प्रारम्भ में जनसंख्या की वृद्धि के

---

[7] "Optimum population is that which gives the maximum income per head." —Dalton

[8] Optimum population is "the population which just makes the maximum returns possible." —Robbins

डाल्टन तथा रोबिन्स की परिभाषाओं में थोड़ा अन्तर है। डाल्टन के अनुसार, अनुकूलतम जनसंख्या का मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना है, अर्थात् वह न केवल उत्पत्ति को ही ध्यान में रखते हैं बल्कि धन के उचित वितरण पर भी बल देते हैं। इस प्रकार डाल्टन का दृष्टिकोण सरल है तथा व्यावहारिक है। रोबिन्स के अनुसार, अनुकूलतम जनसंख्या का मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना नहीं है वरन् कुल उत्पादन का अधिकतम होना है। यदि जनसंख्या बढ़ने से कुल उत्पादन में वृद्धि, जनसंख्या पर होने वाले व्यय (अर्थात् जनसंख्या के उपभोग) से अधिक होती है, तो जनसंख्या का बढ़ाना ठीक होगा। अतः रोबिन्स के अनुसार, जिस जनसंख्या पर देश का कुल उत्पादन अधिकतम हो जाय, वह अनुकूलतम जनसंख्या होगी। यद्यपि रोबिन्स, डाल्टन की भाँति, धन या कुल उत्पादन के वितरण पर बल नहीं देते हैं, परन्तु उन्होंने अनुकूलतम जनसंख्या के विचार में उपभोग के विचार को सम्मिलित करके उसे विस्तृत कर दिया है। रोबिन्स के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु, डाल्टन के अनुकूलतम बिन्दु से, बहुत आगे होगा क्योंकि रोबिन्स के अनुसार जनसंख्या का वह स्तर अनुकूलतम है जहाँ पर उनका उत्पादन तथा उपभोग दोनों बराबर हों। यद्यपि रोबिन्स का दृष्टिकोण अधिक विस्तृत है, परन्तु डाल्टन का दृष्टिकोण अधिक सरल तथा व्यावहारिक है।

[9] "The population at which the standard of life is a maximum is called the optimum population." —Boulding, *Economic Analysis* p. 658.

[10] कैनन के अनुसार, "एक दिये हुए समय पर, अथवा ज्ञान तथा परिस्थितियाँ समान रहने पर, एक बिन्दु ऐसा होता है जहाँ पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है, तथा इस स्थिति में श्रम की मात्रा ऐसी होती है कि उसमें वृद्धि तथा कमी दोनों ही उत्पत्ति में कमी लाती हैं।"

"At any given time or, what comes to the same thing, knowledge and circumstances remaining the same, there is what may be called maximum return, when the amount of labour is such that both an increase and a decrease in it would diminish proportionate returns." —Cannan, Quoted by J. K. Mehta

[11] हिक्स के अनुसार, "अनुकूलतम जनसंख्या, जनसंख्या का वह स्तर है जिस पर प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिकतम होगा।"

Hicks defines, "the optimum population as that level of population which would make output per head a maximum." —Hicks, *The Social Framework*, p. 271.

साथ श्रम की सीमान्त उत्पादकता (marginal product) तथा औसत उत्पादकता (average product) बढ़ेगी अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns) लागू होगा। एक बिन्दु ऐसा आयेगा जबकि जनसंख्या का अन्य उत्पत्ति के साधनों के साथ बिलकुल ठीक (just right) या अनुकूलतम अनुपात स्थापित हो जायेगा, इस स्थान पर प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन (AP) अर्थात् प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी और यह अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु होगा। इस स्थान पर उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns) क्रियाशील होगा। यदि जनसंख्या में इस बिन्दु के बाद और अधिक वृद्धि होती है तो जनसंख्या का अन्य साधनों के साथ आदर्श या अनुकूलतम अनुपात टूट जायगा और जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि के साथ श्रम का सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) गिरता जायगा, अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होने लगेगा।

उपर्युक्त विवरण से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं

(१) अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त उत्पत्ति के नियमों (Laws of returns) से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है यह परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Law of variable proportions) या 'उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of diminishing returns) पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, अनुकूलतम जनसंख्या वह जनसंख्या है जहाँ पर उत्पत्ति की वृद्धि (increasing returns) समाप्त होती है तथा उत्पत्ति का ह्रास (decreasing returns) क्रियाशील होना प्रारम्भ होता है। इसी बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिस बिन्दु से औसत उत्पादन (AP) गिरना प्रारम्भ होता है, उस बिन्दु पर प्रति व्यक्ति औसत आय अधिकतम होगी और जनसंख्या का यह स्तर अनुकूलतम होगा।

(२) अनुकूलतम जनसंख्या से कम जनसंख्या को (अर्थात् जब तक उत्पत्ति वृद्धि नियम क्रियाशील है) न्यून-जनसंख्या (under population) कहते हैं, तथा अनुकूलतम से अधिक जनसंख्या (अर्थात् जब उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है) को 'अति-जनसंख्या' (over-population) कहते हैं।
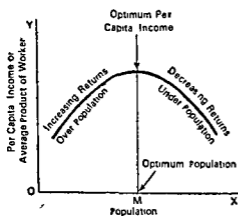
चित्र—२

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की उपर्युक्त व्याख्या को हम चित्र न० २ द्वारा स्पष्ट करते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि OM अनुकूलतम जनसंख्या है, अनुकूलतम बिन्दु से पहले उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है और 'न्यून-जनसंख्या' रहती है, अनुकूलतम बिन्दु के बाद उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है और 'अति-जनसंख्या' होती है। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि अनुकूलतम जनसंख्या OM वह जनसंख्या है जहाँ पर 'उत्पत्ति की वृद्धि' समाप्त होती है और 'उत्पत्ति का ह्रास' आरम्भ होता है।

समायोजन-अभाव' की मात्रा (Degree of *Maladjustment*) को मापने का प्रो० डाल्टन का सूत्र

यदि हम किसी देश के लिए अनुकूलतम जनसंख्या ज्ञात कर लें तो 'समायोजन-अभाव की मात्रा' (Degree of maladjustment) को ज्ञात किया जा सकता है। समायोजन-अभाव का अर्थ है कि वास्तविक जनसंख्या अनुकूलतम जनसंख्या से कितनी कम या अधिक है अर्थात् किस सीमा तक 'न्यून-जनसंख्या' या 'अति-जनसंख्या' है। इस 'समायोजन अभाव' को मापने के लिए प्रो० डाल्टन ने निम्न सूत्र दिया है

$M=\frac{A-O}{O}$ जबकि, M='समायोजन अभाव' की मात्रा (Maladjustment), A= वास्तविक जनसंख्या (Actual population), O=अनुकूलतम जनसंख्या (Optimum population)

यदि M धनात्मक (positive) है तो यह अति-जनसंख्या को बताता है; यदि M ऋणात्मक (negative) है तो यह न्यून-जनसंख्या का द्योतक है, जब M शून्य (zero) होता है तो वास्तविक जनसंख्या और अनुकूलतम जनसंख्या बराबर होगी।

अनुकूलतम जनसंख्या के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें (Some Important Points Regarding the Optimum Population)

चित्र—३

(१) अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु स्थिर (fixed) नहीं होता—यह बिन्दु विज्ञान की उन्नति, नये प्राकृतिक साधनों की खोज तथा उत्पादन की नयी रीतियों के अनुसन्धान, आदि के साथ बदलता रहता है। अनुकूलतम जनसंख्या के परिवर्तनशील स्वभाव (dynamic nature) को चित्र नं० ३ द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। किसी देश के लिए विज्ञान तथा उत्पादन कला के दिये हुए ज्ञान की स्थिति में अनुकूलतम जनसंख्या OM है। विज्ञान तथा उत्पादन कला में उन्नति हो जाने के परिणाम-स्वरूप 'प्रति व्यक्ति आय रेखा' या 'औसत उत्पादन रेखा' (AP_1) ऊपर को खिसक जाती है और अब उसकी नयी स्थिति AP_2 हो जाती है। परिवर्तित स्थिति में अनुकूलतम जनसंख्या ON हो जाती है। OM जनसंख्या जो कि पहले अनुकूलतम थी अब न्यून जनसंख्या हो जाती है।
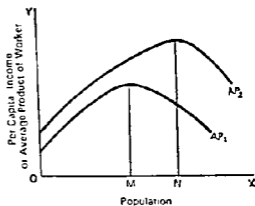
(२) बोल्डिंग, बाई (Bye), इत्यादि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या एक परिमाणात्मक (quantitative) विचार ही नहीं बल्कि गुणात्मक (qualitative) विचार भी है अर्थात् इसके अन्तर्गत मनुष्य के चरित्र, स्वास्थ्य, इत्यादि पर भी ध्यान दिया जाता है परन्तु इन गुणात्मक बातों को शामिल करने से, किसी समय पर एक देश के लिए सही रूप से अनुकूलतम जनसंख्या को मालूम करना अत्यन्त कठिन या असम्भव हो जाता है।

(३) अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त एक 'वस्तुगत आधार' (objective basis) प्रदान करता है जिसके आधार पर जनसंख्या अनुकूलतम से अधिक है तभी उसकी वृद्धि को रोकना चाहिए अन्यथा नहीं।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Optimum Theory of Population)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं

(१) सही अर्थ में यह सिद्धान्त जनसंख्या का सिद्धान्त नहीं है—यह सिद्धान्त तो केवल अर्थशास्त्र के विख्यात विचार 'अनुकूलतम' का प्रयोग जनसंख्या के क्षेत्र में करता है। यह जनसंख्या के विकास से सम्बन्धित नियमों के बारे में कुछ नहीं कहता है। इस दृष्टि से यह कहा जाता है कि सही अर्थ में यह जनसंख्या का सिद्धान्त नहीं है।

(२) यह स्थैतिक (Static) विचार है—यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि किसी समय विशेष पर, अनुकूलतम जनसंख्या मालूम करने के लिए, प्राकृतिक साधन, तकनीकी ज्ञान, इत्यादि अर्थात् वातावरण (environment) स्थिर समझ लिया जाता है। परन्तु ये दोनों मान्यताएँ त्रुटिपूर्ण हैं, वास्तविक संसार गत्यात्मक (dynamic) है, वातावरण तथा परिस्थितियाँ निरन्तर परिवर्तित होती रहती है, इनको स्थिर मानने का अर्थ है कि यह सिद्धान्त स्थैतिक है।

परन्तु यह सिद्धान्त यह मानता है कि समय के साथ मनुष्य के स्वभाव, वातावरण तथा परिस्थितियों, तकनीकी प्रगति में परिवर्तन होता है और इसलिए अनुकूलतम बिन्दु में परिवर्तन

होता है। इस दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त को प्रावैगिक (dynamic) विचार बताते हैं।

(३) **यह राष्ट्रीय आय के वितरण पर ध्यान नहीं देता**—प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना ही पर्याप्त नही है। यह सम्भव है कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि का उचित वितरण न हो और वह थोडे-से लोगो के हाथो म ही केन्द्रित हो जाय, ऐसा होना समाज के लिए हानिकारक होगा।

परन्तु यह आलोचना महत्त्वपूर्ण नही रह जाती क्योकि कुछ अर्थशास्त्री, जैसे प्रो० बाई (Bye) अनुकूलतम जनसंख्या के विचार के अन्तर्गत धन के उचित और न्यायसगत वितरण को सम्मिलित करते हैं। परन्तु इसमे सन्देह नही कि ऐसा करने से अनुकूलतम जनसंख्या के आकार को *मालूम करना अधिक कठिन हो जाता है।*

(४) **यह सिद्धान्त जनसंख्या पर केवल आर्थिक दृष्टि से विचार करता है**—किसी देश के लिए अनुकूलतम जनसंख्या के आकार को मालूम करने के लिए आर्थिक परिस्थितियों को ही ध्यान मे नही रखना चाहिए, वरन् देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा सैनिक परिस्थितियो को भी दृष्टि मे रखना चाहिए। जनसंख्या का एक आकार आर्थिक दृष्टि से अनुकूलतम हो सकता है, परन्तु देश की सैनिक तथा प्रतिरक्षा (Defence) की दृष्टि से वह अपर्याप्त हो सकता है।

(५) **यह सिद्धान्त सामाजिक उद्देश्यों (social goals) के प्रति सकीर्ण (narrow) दृष्टिकोण रखता है**—केवल प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना ही पर्याप्त नही है। किसी देश की प्रगति के लिए स्वस्थ, शिक्षित, बुद्धिमान (intelligent) तथा उच्च नैतिक स्तर की जनसंख्या का होना भी अति आवश्यक है। अत यह कहा जाता है कि इस सिद्धान्त का दृष्टिकोण सकुचित है।

इस आलोचना का महत्त्व कम रह जाता है क्योकि कुछ अर्थशास्त्री, जैसे बोल्डिग, बाई, इत्यादि इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अधिकतम प्रति व्यक्ति आय के अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य सब बातो का समावेश करते हैं, परन्तु इन सब गुणात्मक बातो को सम्मिलित करने से जनसंख्या के अनुकूलतम आकार का ठीक-ठीक ज्ञान करना और भी कठिन हो जाता है, वरन् लगभग असम्भव ही हो जाता है।

(६) **इस सिद्धान्त का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है**—परिस्थितियों मे परिवर्तन के साथ अनुकूलतम का बिन्दु निरन्तर बदलता रहता है, इसलिए इसको ठीक-ठीक मापना बहुत कठिन है, गुणात्मक बातो को सम्मिलित करने से इसे सही रूप से मालूम करने की कठिनाई और भी अधिक बढ जाती है। चूंकि अनुकूलतम जनसंख्या को ठीक प्रकार से मालूम करना असम्भव है, इसलिए इसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नही रह जाता तथा यह आर्थिक नीति (economic policy) के मार्ग प्रदर्शन की दृष्टि से बेकार हो जाता है।

अनुकूलतम जनसंख्या के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion regarding Opitmum Theory of Population)

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का महत्त्व इस बात मे निहित है कि इससे 'माल्थूसियन भूत' (Malthusian Devil) के डर को कम करके जनसंख्या को सही रूप मे समझाने का दृष्टिकोण दिया। इस *सिद्धान्त ने स्पष्टतया बताया कि जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि से डरने की* आवश्यकता नही है, यदि जनसंख्या की वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय बढती है तो उसका बढना हितकर है। इस सिद्धान्त की सबसे बडी कठिनाई यह है कि किसी समय पर अनुकूलतम जनसंख्या को निश्चित रूप से ज्ञात करना बहुत कठिन या लगभग असम्भव है। इसलिए प्रो० हिक्स (Hicks) के शब्दो मे, "यह बहुत ही कम व्यावहारिक महत्त्व का विचार है।"[1]

[1] It is "a notion of extremely little practical interest"

(1) अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की माल्यस के सिद्धान्त से तुलना
(COMPARISON OF OPTIMUM THEORY OF POPULATION WITH MALTHUSIAN THEORY)

जनसख्या के दोनो सिद्धान्तो मे बहुत अन्तर है। प्रश्न उठता है कि क्या अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त के ऊपर सुधार है ? निम्न आधारो पर अनुकूलतम सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त से श्रेष्ठ कहा जा सकता है

(१) माल्थस ने जनसख्या की तुलना केवल देश मे उत्पादित खाद्यान्नो से की। उनके अनुसार, जनसख्या के खाद्य सामग्री से अधिक हो जाने पर देश विशेष को बहुत सकट का सामना करना पड़ेगा।

अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त जनसख्या की तुलना, खाद्य पूर्ति से न करके, देश मे कुल उत्पादन से करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जनसख्या के खाद्य पूर्ति से अधिक हो जाने पर कोई चिन्ता या सकट की बात नही होगी यदि देश औद्योगिक दृष्टि से उन्नतशील है, क्योंकि वह औद्योगिक वस्तुओ का निर्यात करके अन्य देशो से खाद्य सामग्री मँगा सकेगा।

(२) माल्थस के अनुसार, जनसख्या की प्रत्येक वृद्धि हानिकारक है। उसके अनुसार, जनसख्या सदैव खाद्यान्नो की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ती है। वे जनसख्या को केवल आकार या सख्या (size or number) की समस्या समझते है।

अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त के अनुसार यदि जनसख्या की वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती है तो जनसख्या की वृद्धि लाभदायक होगी। जनसख्या की वृद्धि तभी हानिकारक होगी जबकि वह अनुकूलतम बिन्दु से अधिक हो जाती है। अर्थात् जब प्रति व्यक्ति आय गिरने लगती है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जनसख्या की समस्या केवल आकार या सख्या की समस्या नही है वरन् कुशल उत्पादन तथा उचित वितरण की भी समस्या है।

(३) माल्थस का सिद्धान्त, वास्तव मे, जनसख्या का सिद्धान्त है क्योंकि यह जनसख्या के विकास (growth) से सम्बन्धित नियमो तथा उसका समाज पर प्रभाव का अध्ययन करता है।

अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त सही अर्थ मे जनसख्या का सिद्धान्त नही है क्योंकि यह तो केवल 'अनुकूलतम के विचार' का प्रयोग जनसख्या के क्षेत्र मे करता है, यह तो केवल जनसख्या तथा उत्पादक साधनो (productive resources) के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। परन्तु अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त की श्रेष्ठता इस बात मे निहित है कि यह जनसख्या मे वृद्धि या कमी को ठीक व सन्तुलित दृष्टि से समझने मे सहायक है।

(४) माल्थस का सिद्धान्त उत्पत्ति ह्रास नियम तथा प्राकृतिक साधनो (भूमि) की सीमितता पर आधारित है। इस अर्थ मे माल्थस का सिद्धान्त स्थैतिक (static) है क्योंकि किसी एक निश्चित समय पर साधनो की मात्रा स्थिर हो सकती है, परन्तु सदैव के लिए नहीं। यद्यपि भूमि के कुल क्षेत्रफल को नही बढाया जा सकता है, परन्तु गहरी खेती तथा वैज्ञानिक रीतियो का प्रयोग करके भूमि की उपज बहुत अधिक बढायी जा सकती है अर्थात् 'भूमि की प्रभावोत्पादक पूर्ति' (effective supply of land) को बढ़ाया जा सकता है। एक दूसरी दृष्टि से माल्थस का सिद्धान्त प्रावैगिक (dynamic) बताया जाता है। माल्थस का सिद्धान्त एक समयावधि के भीतर (over a period of time) जनसख्या के विकास की प्रक्रिया (course) का अध्ययन करता है। अत इस दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्री इसे प्रावैगिक सिद्धान्त कहते है।

अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त किसी समय विशेष पर जनसख्या के अनुकूलतम आकार को मालूम करने के लिए वातावरण (environment) तथा परिस्थितियो को स्थिर मान लेता है, जबकि वास्तविक जीवन मे यह स्थिर नही रहते। इस दृष्टि से अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त भी स्थैतिक है। परन्तु यह सिद्धान्त यह मानता है कि समय के साथ मनुष्य के स्वभाव, वातावरण तथा परिस्थितियो मे परिवर्तन होता है और अनुकूलतम बिन्दु मे परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त को प्रावैगिक सिद्धान्त बताते हैं।

(५) माल्थस का सिद्धान्त जनसंख्या को केवल परिमाणात्मक (quantitative) दृष्टि से ही देखता है। यह जनसंख्या के गुणात्मक (qualitative) पक्ष अर्थात् जनसंख्या के स्वास्थ्य, बौद्धिक स्तर, ईमानदारी, इत्यादि गुणों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता है।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के अन्तर्गत कुछ अर्थशास्त्री (जैसे प्रो० बाई बोल्डिंग, इत्यादि) परिमाणात्मक पक्ष के साथ-साथ गुणात्मक पक्ष का भी समावेश करते हैं। इन सिद्धान्त के अनुसार जनसंख्या के ऐसे आकार को मालूम करने की समस्या होती है जिस पर न केवल प्रति व्यक्ति आय ही अधिकतम हो बल्कि जनसंख्या का स्वास्थ्य बौद्धिक स्तर, ईमानदारी, इत्यादि भी उच्चतम स्तर पर हो। परन्तु इन सब बातों को शामिल करने से अनुकूलतम जनसंख्या को ठीक-ठीक मालूम करना लगभग असम्भव हो जाता है।

(६) माल्थस ने 'अति जनसंख्या' को खाद्य सामग्री के शब्दों में परिभाषित किया। यदि किसी देश में जनसंख्या खाद्यान्नों से अधिक है तो वहाँ 'अति-जनसंख्या' होगी और उस देश में प्राकृतिक सकटों जैसे—अकाल बीमारियाँ, बाढ़, सूखा, इत्यादि लागू होंगे। दूसरे शब्दों में माल्थस के अनुसार ये प्राकृतिक संकट अति-जनसंख्या के सूचक हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त 'अति-जनसंख्या' को उत्पादकता (productivity) के शब्दों में परिभाषित करता है। जितनी जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण प्रयोग के लिए आवश्यक है, इस संख्या से यदि जनसंख्या अधिक है तो वह स्थिति 'अति-जनसंख्या' की होगी। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी देश में प्राकृतिक संकटों का पाया जाना 'अति-जनसंख्या' का सूचक नहीं है। प्राकृतिक संकटों की अनुपस्थिति में भी 'अति-जनसंख्या' हो सकती है यदि प्रति व्यक्ति वास्तविक आय गिर रही है।

(७) माल्थस का सिद्धान्त निराशावादी (pessimistic) है। माल्थस के अनुसार जनसंख्या, खाद्यान्नों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ेगी। इसका परिणाम होगा—अति जनसंख्या, कष्ट (misery) मृत्यु, थोड़े समय के लिए जनसंख्या तथा खाद्य पूर्ति में सन्तुलन और फिर तत्पश्चात् पुनः अति-जनसंख्या होगी। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक देश को 'माल्थूसियन चक्र' (Malthusian cycle) से निकलना होगा। (माल्थूसियन चक्र के लिए चित्र न० १ देखिए।) इस प्रकार माल्थस ने संसार का बड़ा अन्धकारमय (gloomy) चित्र प्रस्तुत किया।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त आशावादी (optimistic) है। इसके अनुसार जनसंख्या की वृद्धि से डरने की आवश्यकता नहीं जब तक कि वह देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण की दृष्टि से अधिक न हो। "माल्थस को आने वाले नरक का डर था, अनुकूलतम सिद्धान्त के प्रतिपादकों को आने वाले स्वर्ग का गर्व है।"[13] अतः अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त, माल्थूसियन निराशावादी दृष्टिकोण के स्थान पर आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष—सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त, माल्थस के सिद्धान्त के ऊपर कई दृष्टियों से सुधार है। माल्थस का सिद्धान्त निराशावादी है तथा जनसंख्या की समस्या के सम्बन्ध में एक संकुचित दृष्टिकोण रखता है। अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त आशावादी है और जनसंख्या के सम्बन्ध में एक सन्तुलित तथा विवेकपूर्ण दृष्टि रखता है। परन्तु अनुकूलतम जनसंख्या के आकार को मालूम करना बहुत कठिन है, इसलिए इस सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्त्व बहुत कम रह जाता है। वास्तव में, माल्थस तथा अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त, दोनों ही अपूर्ण तथा अपर्याप्त हैं।

न्यून-जनसंख्या तथा अति-जनसंख्या
(UNDER-POPULATION AND OVER POPULATION)

न्यून-जनसंख्या (Under population)—माल्थस के अनुसार, यदि देश में उपस्थित खाद्यान्नों की अपेक्षा जनसंख्या कम है तो इसे न्यून-जनसंख्या कहा जा सकता है। परन्तु यह

[13] "Malthus was obsessed by the fear of an impending economic Hell, the propounders of the optimum theory are elated with the hopes of a coming paradise."

(५) शिक्षा तथा सामाजिक सुधार—अधिक स्कूल तथा कालेज खोलकर शिक्षा का प्रसार किया जाय ताकि अधिकाधिक व्यक्ति साक्षर एवं शिक्षित होकर परिवार नियोजन के महत्व को समझ सकें। अविकसित देशों में प्राय विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ (जैसे छोटी उम्र में शादी करना, जातिवाद इत्यादि) पायी जाती हैं जो जनसंख्या वृद्धि में सहायक होती हैं। शिक्षा द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जा सकेगा।

(६) जनसंख्या से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करना—किसी देश की उचित जनसंख्या नीति बनाने के लिए आवश्यक है कि वह जनसंख्या के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में तथा विश्वसनीय आँकड़े एकत्रित करे। इस सम्बन्ध में एक दक्ष जनगणना विभाग होना चाहिए। जनगणना विभाग का स्थायी होना अधिक अच्छा है ताकि अनुभवप्राप्त कार्यकर्ता उसमें बने रहें।

(७) आर्थिक विकास—वास्तव में, जनसंख्या की समस्या आर्थिक विकास की समस्या है। इसलिए सरकार को देश के बहुमुखी आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित प्रयत्न करने चाहिए। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप रोजगार बढ़ेगा, लोगों की आय बढ़ेगी तथा उनका जीवन-स्तर ऊँचा होगा।

निष्कर्ष—अति जनसंख्या की समस्या को केवल संख्या की समस्या नहीं समझना चाहिए यह सामाजिक सुधार, कानूनी परिवर्तन शिक्षा प्रसार तथा आर्थिक उन्नति की समस्या है।

क्या बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव अवांछनीय है ?
(IS INCREASING POPULATION ALWAYS UNDESIRABLE ?)

माल्थस समझते थे कि जनसंख्या की वृद्धि अथवा बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव हानिकारक है। यह दृष्टिकोण उचित नहीं है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव अवांछनीय हो। वास्तव में, अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त इस बात पर उचित प्रकाश डालता है। यदि देश की जनसंख्या अनुकूलतम से कम हो तो जनसंख्या का बढ़ना देश के लिए हितकर है। जनसंख्या का अनुकूलतम से कम होने का अर्थ है कि वह देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण के लिए कम है। ऐसी स्थिति में जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादक साधनों का भलीभाँति प्रयोग होगा, उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा, विशिष्टीकरण सम्भव होगा, बड़े पैमाने पर उत्पादन होगा, प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होगी तथा लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होगा। दूसरे शब्दों में, यदि देश में न्यून-जनसंख्या है तो जनसंख्या में वृद्धि होना लाभदायक है।

इसके अतिरिक्त यह ध्यान रखने की बात है कि जिन उन्नतशील देशों में आर्थिक उन्नति का स्तर बहुत ऊँचा हो जाता है, उनमें अति-जनसंख्या का डर बहुत दूर (remote) हो जाता है। अत ऐसे देशों में एक सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि देश के बाजार (home market) को विस्तृत करती है, विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है, बेरोजगारी समाप्त होती है तथा रोजगार का एक ऊँचा स्तर बनाये रखने में सुविधा होती है।

स्पष्ट है कि जनसंख्या की वृद्धि सदैव अवांछनीय नहीं होती, जनसंख्या की वृद्धि हानिकारक तभी होती है जबकि वह अनुकूलतम बिन्दु से अधिक हो।

जनांकिकीय (या जनसंख्या) संक्रमण सिद्धान्त
(THEORY OF DEMOGRAPHIC TRANSITION)

१ प्राक्कथन (Introduction)

कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों, जैसे थोमसन, नोटेस्टीन, ब्लेकर (W. S Thomson, F. W Notestein, C P. Blacker) इत्यादि ने 'जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त' या 'जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त' (Theory of Demographic Transition) को प्रतिपादित (formulate) किया।

यह सिद्धान्त इस बात पर प्रकाश डालता है कि दीर्घकाल में जनसंख्या का विकास किस प्रकार होता है। यह सिद्धान्त आर्थिक विकास तथा जनसंख्या विकास में सम्बन्ध स्थापित करता है और औद्योगिक व उन्नत देशों (industrialised and advanced countries) के वास्तविक अनुभव पर आधारित है। आर्थिक विकास के साथ जनसंख्या विकास में परिवर्तन होते हैं तथा आर्थिक विकास की ऊँची अवस्थाओं में जनसंख्या विकास में कमी हो जाती है और अन्त में स्थायित्व (stability) आ जाती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, आर्थिक विकास के प्रभाव के अन्तर्गत, जनसंख्या विकास कई अवस्थाओं (stages) से गुजरता है। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार जनसंख्या विकास तीन अवस्थाओं (*three stages*) कुछ के अनुसार चार अवस्थाओं (*four stages*) तथा कुछ के अनुसार पाँच अवस्थाओं (*five stages*) से गुजरता है। वास्तव में जनसंख्या विकास की अवस्थाओं में अन्तर कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है क्योंकि सिद्धान्त का आधारभूत दृष्टिकोण (basic approach) एक ही है।

२. जनसंख्या विस्फोट का विचार (The Concept of Population Explosion)

'जनसंख्या विस्फोट' का विचार जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त (theory of demographic transition) से सम्बन्धित है। साधारण बोलचाल की भाषा में या एक सामान्य व्यक्ति के लिए 'जनसंख्या विस्फोट' का अर्थ है जनसंख्या विकास में बहुत तीव्र गति से वृद्धि, सामान्य दृष्टि से यह अर्थ गलत नहीं है।

> **वास्तव में, जनसंख्या विस्फोट केवल एक 'सामान्य विचार' या एक 'फैशनेबिल शब्द' नहीं है, बल्कि आर्थिक साहित्य में इसका एक विशिष्ट अर्थ है। यह विचार जनसंख्या विकास की दूसरी अवस्था को बताता है, दूसरे शब्दों में, उस अवस्था को बताता है जिसमें कि जन्म-दर लगभग स्थिर रहती है परन्तु मृत्यु दर में तीव्र कमी हो जाती है और इस प्रकार जन्म दर और मृत्यु-दर में बहुत अधिक अन्तर हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या विस्फोटक तरीके से बढ़ती है। इस प्रकार अर्थशास्त्र में 'जनसंख्या विस्फोट' का एक विशिष्ट या टेक्नीकल अर्थ होता है।[14]**

अब हम, संक्षेप में, जनसंख्या विकास की चारों अवस्थाओं को बताते हैं जिससे 'जनसंख्या विस्फोट' का अर्थ और अधिक स्पष्ट हो जायेगा

(i) पहली अवस्था में जन्म-दर तथा मृत्यु-दर दोनों ही ऊँची होती हैं और दोनों में अन्तर बहुत थोड़ा होता है, इसलिए जनसंख्या में वृद्धि बहुत धीमी या ना के बराबर होती है। ध्यान रहे कि यहाँ पर जनसंख्या में स्थायित्व (stability) आर्थिक विकास के निम्नतर स्तर पर होता है, अथवा यह कहिए कि इस अवस्था में आर्थिक विकास ना के बराबर होता है।

(ii) दूसरी अवस्था में मृत्यु दर में तीव्र कमी हो जाती है, परन्तु जन्म दर ऊँची बनी रहती है और उसमें लगभग कोई कमी नहीं होती है, जन्म दर तथा मृत्यु-दर में अन्तर बहुत अधिक हो जाता है, परिणामस्वरूप जनसंख्या में विस्फोटक विस्तार (*explosive expansion in population*) होता है। अतः जनसंख्या विकास की दूसरी अवस्था को 'जनसंख्या विस्फोट' (*population explosion*) कहा जाता है।

(iii) तीसरी अवस्था में जन्म दर में भी बहुत कमी हो जाती है (और मृत्यु-दर काफी नीची बनी रहती है जो कि पहले से ही गिर चुकी थी), अतः जनसंख्या विकास धीमा हो जाता है।

---

[14] As a matter of fact the concept of population explosion' is not a general concept or a fashionable word but it has a specific or particular meaning in economic literature It indicates the second stage of population growth, in other words it indicates that stage of population growth in which birth rate remains almost stationary but a sharp decline in death rate occurs and thus the gap between birth rate and death rate becomes very large and consequently, population expands explosively Thus 'population explosion' has a particular or technical meaning

(iv) चौथी अवस्था में मृत्यु-दर तथा जन्म-दर दोनों में थोड़ी और कमी आ सकती है, ये दोनों दरें बहुत नीचे स्तर पर बनी रहती हैं, उनमें स्थायित्व आ जाता है। परिणामस्वरूप जनसंख्या विकास अत्यन्त धीमा हो जाता है और उसमें भी स्थायित्व आ जाता है अथवा जनसंख्या म ना के बराबर विकास होता है।[15]

३. जनसंख्या विकास की अवस्थाओं की व्याख्या (Exposition of the stages of population growth)

जनसंख्या विस्फोट के विचार को समझने की दृष्टि से हम जनसंख्या विकास की चारो अवस्थाओं का बहुत संक्षिप्त विवरण दे चुके हैं। अब हम 'जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त' (Theory of Demographic Transition) को अच्छी प्रकार से समझने के लिए जनसंख्या विकास की चारो अवस्थाओं का एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम अवस्था (*First Stage*) इस अवस्था में जन्म-दर तथा मृत्यु-दर दोनों ऊँची होती हैं, उनमें स्थायित्व (stability) होता है और वे एक-दूसरे के बहुत निकट होती हैं; परिणामस्वरूप दोनों म अन्तर (gap) बहुत कम होता है और इसलिए जनसंख्या विकास बहुत धीमा होता है अथवा वह स्थिर (stable or static) रहती है। यह अवस्था एक कृषि-सम्बन्धी व पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था (agrarian and backward economy) में कार्यशील होती है, ऐसी अर्थव्यवस्था म औद्योगिक तथा व्यावसायिक क्रियाएँ बहुत कम होती हैं, अल्पविकास की मात्रा (degree of under-development) बहुत ऊँची होती है, तथा अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय उत्पादन व उपभोग के एक बहुत नीचे स्तर पर कार्य करती है और व्यक्तियों का जीवन स्तर बहुत नीचा होता है।

ऊँची जन्म दर या प्रजनन दर (fertility rate) के ऊँचे होने के कारण सामाजिक तथा आर्थिक दोनों होते हैं। मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—(i) कम आयु म शादियाँ, निरक्षरता (illiteracy) का होना, एम सामाजिक विश्वासों व परम्पराओं तथा धार्मिक दृष्टिकोणों का होना जिससे ऊँची जन्म दर प्रोत्साहित होती है। (ii) बड़े आकार मे परिवार के आर्थिक लाभ होते हैं, बच्चे छोटी उम्र में ही काय करना शुरू कर देते हैं, वे कृषि कार्यों में तथा परम्परागत पारिवारिक व्यवसायों (traditional family occupations) म मदद करते हैं, सामान्यतया बच्चों की शिक्षा पर बहुत ही कम व्यय हो..। है या कुछ भी व्यय नहीं होता, तथा रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा होता है। बच्चे एक दायित्व (liability) नहीं समझे जाते बल्कि वे एक निश्चित सम्पत्ति (positive asset) समझे जाते हैं क्योंकि वे परिवार की आय मे वृद्धि करते हैं, इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था म वे अपने माता-पिता के लिए सामाजिक बीमा (social insurance) की भाँति समझे जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामाजिक व आर्थिक तत्त्व ऊँची जन्म दर या प्रजनन दर को प्रोत्साहित करते हैं और उसे बनाये रखते हैं।

ऊँची मृत्यु दर के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—कम मात्रा में तथा निम्न कोटि की खुराक का मिलना, खराब सफाई की दशाओं का होना, बीमारियों को रोकने व उनका उपचार करने के लिए चिकित्सा-सुविधाओं की अनुपस्थिति, ये सब बातें ऊँची मृत्यु-दर को प्रोत्साहित करती हैं और उसे ऊँचा बनाये रखती हैं। बीमारियों के प्रचलन (prevalence) तथा खाद्यान्नों की प्राप्ति के आधार पर प्रति वर्ष मृत्यु दर में थोड़ी कमी या वृद्धि हो सकती है।

---

[15] The stage of stable population growth may be disturbed and population may again start rising rapidly as a result of some new developments, such as change in ideas or values, or the need of building up large reserves of army

But as pointed out by Kingsley Davis, we should also not forget that in the modern world of today "national strength does not rest solely on population size, particularly as science and economic efficiency take precedence over sheer manpower However, when other things are equal, shear numbers count heavily"

[सन १६२१ से पहले भारत को जनसंख्या विकास की पहली अवस्था में रखा जा सकता है।]

दूसरी अवस्था (*Second Stage*) इस अवस्था में मृत्यु दर (death rate or mortality rate) में तीव्र कमी हो जाती है क्योंकि जन्म दर (या प्रजनन दर) ऊँची बनी रहती है, इस प्रकार दोनों दरों में एक बड़ा अन्तर हो जाता है और जनसंख्या बहुत तीव्र गति से बढ़ती है, अर्थात् जनसंख्या 'विस्फोटक तरीके से' (explosively) बढ़ती है और यह अवस्था 'जनसंख्या विस्फोट' की अवस्था कही जाती है।

दूसरी अवस्था में देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया (process) शुरू हो जाती है और जनसंख्या की सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं में सामान्य सुधार (general improvement) हो जाता है। दूसरे शब्दों में, मृत्यु दर में तीव्र कमी निम्न कारणों से होती है—(i) खाद्यान्नों की पूर्ति अधिक व नियमित हो जाती है, यह कृषि क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि तथा यातायात व सन्देशवहन के साधनों में विकास का परिणाम होता है। (ii) बीमारियों तथा महामारियों (epidemics) पर अच्छा नियन्त्रण हो जाता है क्योंकि महत्वपूर्ण व जीवन-रक्षक दवाइयाँ (जैसे antibiotics, germicides, vaccines etc) प्राप्य होने लगती हैं। (iii) कृषि और औद्योगिक विकास के कारण व्यक्तियों की आय बढ़ जाती है और उनका रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाता है, मकानों और पहनने के कपड़ों की अच्छी व्यवस्था हो जाती है, नगरों के विकास और नगरीकरण (urbanisation) के कारण सरकार को अधिक अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं व उपायों का प्रबन्ध करना पड़ता है, सफाई (sanitation) की दशाओं में काफी सुधार हो जाता है।

उपर्युक्त सभी बातें मृत्यु दर पर सचयी प्रभाव (cumulative effect) डालती हैं और मृत्यु-दर में तीव्र कमी हो जाती है।

वास्तव में, मृत्यु दर को प्रभावित करने वाले तत्त्व 'बाह्यजात' (*exogenous* or outside the system) होते हैं और मृत्यु दर में सुगमता से कमी कर देते हैं, जबकि जन्म दर को प्रभावित करने वाले तत्त्व 'अन्तरजात' (*endogenous* or within the system) होते हैं तथा वे जन्म दर को धीमी गति से कम कर पाते हैं।

उपर्युक्त बात का परिणाम यह होता है कि इस अवस्था (stage) में,

> जन्म दर या प्रजनन दर में कमी में 'समय-विलम्ब' या 'विलम्ब' (*time lag or lag*) होता है अपेक्षाकृत मृत्यु दर में कमी के, यह 'विलम्ब' जनसंख्या में तीव्र वृद्धि को अर्थात् 'जनसंख्या विस्फोट' को उत्पन्न करता है।[1]

तीसरी अवस्था (*Third Stage*) इस अवस्था में जन्म दर में तीव्र कमी होती है जबकि पहले से घटी हुई मृत्यु दर एक नीचे स्तर पर बनी रहती है। इस प्रकार जन्म-दर तथा मृत्यु-दर में अन्तर कम हो जाता है और जनसंख्या विकास धीमा हो जाता है।

जब आर्थिक विकास की एक ऊँची अवस्था पहुंच जाती है तो जन्म-दर में कमी हो जाती है, लोग परिवार के छोटे आकार को पसन्द करने लगते हैं। मुख्य सामाजिक व आर्थिक कारण जो कि जन्म दर में तीव्र कमी करते हैं निम्नलिखित हैं—(i) अधिक आर्थिक विकास तथा औद्योगी-

[1] There remains a time-lag (or lag) in the reduction of fertility in comparison to the reduction in mortality lag' causes a rapid rise in population or 'population explosion

करण के साथ जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों या नगरों की ओर जाने लगती है [अर्थात् नगरीकरण (urbanisation) की प्रवृत्ति जोर पकड़ती है], सामाजिक गतिशीलता (social mobility) बढ़ती है और इसलिए लोग परिवार को छोटा रखना पसन्द करते हैं। (ii) अपने तथा अपने बच्चों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाने की इच्छा, (iii) शिक्षा का बहुत अधिक विस्तार, सामाजिक विश्वासों, रीति-रिवाजों व परम्पराओं के बुरे प्रभावों को शिक्षा कम करती है, धार्मिक दृष्टिकोणों में कड़ाई कम हो जाती है। इस प्रकार बड़े पैमाने पर शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया (process) में मदद करती है और लोग यह अनुभव करते हैं कि कम बच्चों का होना व उनका भरण-पोषण (maintenance) एक ऊँचे जीवन स्तर पर बनाये रखना अधिक अच्छा है। (iv) समाज में औरतों के स्तर तथा उनकी भूमिका (status and role) में परिवर्तन, औरतों की शिक्षा में विस्तार के साथ औरतों को समाज में एक ऊँचा स्तर या स्थान प्राप्त होता है, अधिक संख्या में औरतें विभिन्न प्रकार के रोजगारों (jobs) में कार्य करने लगती हैं, परिणामस्वरूप वे कम बच्चों चाहती हैं। इस सम्बन्ध में गर्भ निरोध के कृत्रिम साधनों (contraceptives) से बहुत सहायता मिलती है। ये परिवर्तन पहले ऊँचे आय वर्गों और शहरों में होते हैं तथा इसके बाद नीचे आय-वर्गों व गाँवों में भी होने लगते हैं। (v) जीवन-स्तर के ऊँचे उठ जाने के कारण बच्चों के पालन-पोषण के खर्चे बहुत बढ़ जाते हैं, ऐसी स्थिति में परिवार का बड़ा आकार एक सम्पत्ति (asset) के रूप में नहीं समझा जाता बल्कि वह एक बोझ या देयता (liability) हो जाता है। (vi) वृद्धावस्था में माँ-बाप की बच्चों पर निर्भरता कम हो जाती है क्योंकि, आर्थिक विकास के एक ऊँचे स्तर के साथ, सरकार सामाजिक सुरक्षा (social security) की व्यवस्था करती है, निःशुल्क या सस्ती चिकित्सा की सुविधाओं को बढ़ाती है, वृद्धावस्था में पेन्शन की व्यवस्था के क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न करती है। अतः व्यक्तियों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन होता है और वे छोटे आकार के परिवार पसन्द करते हैं।

उपर्युक्त सभी कारणों का जन्म दर पर सचयी प्रभाव (cumulative effect) पड़ता है और जन्म-दर में तीव्र कमी हो जाती है। दूसरे शब्दों में, अधिक विकास की ऊँची अवस्थाओं और आधुनीकरण के साथ, प्रो० रोसटोव के वाक्यांश में (in the phrase of Prof Rostow), 'बच्चों को उत्पन्न करने की प्रवृत्ति' (the propensity to have children) में तीव्र कमी हो जाती है।

मृत्यु-दर, जिसमें कि दूसरी अवस्था में कमी हो चुकी होती है, में कुछ और कमी हो जाती है क्योंकि मकानों की सुविधाओं, सफाई, चिकित्सा सुविधाओं, बीमारियों व महामारियों पर नियन्त्रण, इत्यादि में और अधिक सुधार हो जाते हैं।

इस प्रकार, तीसरी अवस्था में नीची जन्म-दर तथा नीची मृत्यु-दर होती है और दोनों के बीच अन्तर थोड़ा होता है, परिणामस्वरूप जनसंख्या विकास बहुत धीमा हो जाता है।

चौथी अवस्था (*Fourth stage*) इस अवस्था में, आर्थिक विकास की बहुत ऊँची स्थिति प्राप्त हो जाने के साथ जन्म-दर में कुछ और कमी हो जाती है, जीवन-स्तर का बहुत ऊँचा हो जाना, शिक्षा का और अधिक विस्तार होना, जन्म दर को नियन्त्रित करने के लिए बड़े पैमाने पर कृत्रिम साधनों का प्रयोग होने लगना, इत्यादि बातें जन्म दर में और कमी ला देती हैं।

इस अवस्था में नीची जन्म दर तथा नीची मृत्यु दर दोनों लगभग स्थायी (stabilise) हो जाती हैं और इसलिए जनसंख्या विकास भी, एक बहुत नीची दर पर, स्थायी हो जाता है, अथवा जनसंख्या स्थिर हो सकती है और कुछ स्थितियों में घट भी सकती है।

जनसंख्या विकास की उपर्युक्त चारों अवस्थाओं को चित्र ४ द्वारा दिखाया जा सकता है।
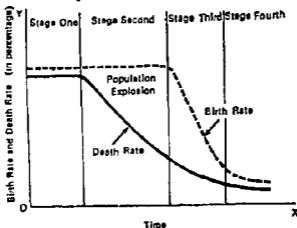
चित्र—४

चित्र ४ स्वयं-व्याख्यात्मक (self-explanatory) है, चित्र में जनसंख्या विकास की चारों अवस्थाएँ स्पष्ट हैं तथा चित्र से यह बात भी स्पष्ट है कि जनसंख्या विकास की दूसरी अवस्था 'जनसंख्या विस्फोट' की अवस्था है।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार जनसंख्या विकास की तीन अवस्थाएँ होती हैं। अवस्था तीन तथा अवस्था चार को मिलाकर एक अवस्था की जा सकती है, और इस प्रकार जनसंख्या विकास की तीन अवस्थाएँ होंगी। कुछ अर्थशास्त्री, जैसे सी० पी० ब्लेकर (C. P. Blacker) जनसंख्या विकास को पाँच अवस्थाओं में बाँटते हैं। परन्तु जनसंख्या विकास की अवस्थाओं की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद एक महत्त्वपूर्ण बात नहीं है।

वास्तव में 'जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त' निम्न तीन पक्षों (aspects) की विवेचना व व्याख्या प्रस्तुत करता है।

(१) मृत्यु दर (death rate or mortality rate) में कमी होने की व्याख्या।

(२) मृत्यु दर में कमी की तुलना में जन्म दर या प्रजनन दर में कमी के सम्बन्ध में समय विलम्ब रहता है। (There remains a time-lag of fertility decline behind mortality decline)

(३) जन्म दर या प्रजनन दर में कमी होने की व्याख्या।

निष्कर्ष (Conclusion)

जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त सरल है और यह औद्योगिक व उन्नत देशों (industrialised and developed countries) के वास्तविक अनुभव पर आधारित है।

यह सिद्धान्त कड़े रूप (strict sense) में एक 'सिद्धान्त' (*theory*) नहीं है। यह केवल जनांकिकीय घटनाओं (demographic events) का एक सामान्य या मोटा विवरण (broad description) प्रस्तुत करता है।

जनसंख्या का जैविकीय सिद्धान्त—लौजिस्टिक रेखा
(THE BIOLOGICAL THEORY OF POPULATION—THE LOGISTIC CURVE)

प्राक्कथन (Introduction)

आधुनिक काल में जीवधारियों (Biologists) तथा अंकशास्त्रियों (Statisticians) ने जनसंख्या के विकास के सम्बन्ध में गहन अध्ययन किये हैं। एक ऐसा अध्ययन अमरीका के प्रसिद्ध

जीवशास्त्री रैमोण्ड पर्ल (Raymond Pearl) ने किया है जो 'लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त' (Logistic curve theory) के नाम से प्रसिद्ध है। यह लोजिस्टिक वक्र रेखा का सिद्धान्त जनसख्या के विकास के स्वरूप (nature) पर प्रकाश डालता है। प्रो० पर्ल ने फल की मक्खियो की सख्या की वृद्धि के स्वरूप का अध्ययन किया, तत्पश्चात् इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त का कथन

प्रो० पर्ल ने बताया कि जनसख्या सदैव तीव्र गति से नही बढती है। यदि जनसख्या के विकास को ग्राफ द्वारा दिखाया जाय तो अँग्रेजी के अक्षर 'एस' (S) की भाँति एक वक्र रेखा प्राप्त होगी जिसे गणित मे 'लोजिस्टिक वक्र रेखा' कहते है। इसलिए इस सिद्धान्त का नाम 'लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त पडा। यह रेखा बताती है कि जनसख्या पहले बहुत धीमी गति से बढती है, उसके बाद तीव्र गति से बढती है और अन्त मे या तो स्थिर हो जाती है या गिरने लगती है, परन्तु कम होने पर भी यह पहले से अधिक रहती है। यह क्रम चलता रहता है। कुल मिलाकर जनसख्या की प्रवृत्ति बढने की ही रहती है।

सिद्धान्त की व्याख्या

जनसख्या के विकास के क्रम को चित्र न० ५ से स्पष्ट किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जनसख्या प्रारम्भ मे, अर्थात् A बिन्दु से धीमी गति से बढती है, इसके बाद B बिन्दु से तीव्र गति से बढने लगती है, तत्पश्चात् C बिन्दु से स्थिर रहती है या गिरने लगती है, परन्तु गिरने पर भी वह पहले से अधिक ही रहती है। जनसख्या विकास के इस क्रम को निम्न विवरण से स्पष्ट किया जा सकता है। किसी देश के विकास की प्रारम्भिक चरणो मे जनसख्या की वृद्धि मे बाधाएँ होती हैं, जैसे—खाद्यान्नो की कमी, सुरक्षा की कमी, इत्यादि। इन बाधाओ के कारण देश मे, प्रारम्भ मे जनसख्या बहुत धीमी गति से बढती है। जैसे-जैसे देश का विकास होता जाता है, ये बाधाएँ घटती जाती हैं और जनसख्या तीव्र गति से बढती है। परन्तु जब देश सभ्यता के उच्चतर चरण (advance stage) मे पहुँच जाता है तो जनसख्या या तो स्थिर हो जाती है अथवा गिरने लगती है, यह स्थिति अमरीका, इगलण्ड फ्रास तथा अन्य यूरोपीय देशो में पायी जाती है।
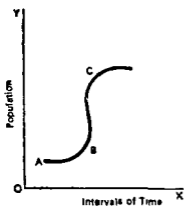
चित्र—५

सिद्धान्त के गुण (Merits of the Theory)

इस सिद्धान्त के अनुसार जनसख्या घटती-बढती है, परन्तु कुल मिलाकर इसकी प्रवृत्ति बढने की होती है। इस दृष्टि से यह माल्थस के सिद्धान्त का समर्थन करती है, क्योकि माल्थस के अनुसार भी जनसख्या की प्रवृत्ति बढने की होती है। परन्तु एक दूसरी दृष्टि से यह सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त को खण्डित (contradict) करता है जो निम्न विवरण से स्पष्ट हो जाता है। यह विवरण इस सिद्धान्त के गुणो पर भी प्रकाश डालता है।

(१) माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार, जनसख्या सदैव तीव्र गति से बढती है, परन्तु यह सिद्धान्त ऐसा नही कहता। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रारम्भ में जनसख्या धीमी गति से बढती है, फिर तीव्र गति से बढती है, तत्पश्चात स्थिर हो जाती है या गिरने लगती है।

(२) माल्थस के अनुसार जनसख्या तथा सभ्यता के विकास मे सीधा सम्बन्ध होता है, परन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार इन दोनो मे उल्टा सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दो मे, इस सिद्धान्त के अनुसार किसी देश के सभ्यता के उच्चतर स्तर पर पहुँच जाने पर उसकी जनसख्या कम होने लगती है जबकि माल्थस का विचार था कि सभ्यता के विकास अथवा आर्थिक सम्पन्नता के साथ

उपर्युक्त विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि एक सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि आवश्यक है ताकि विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों को कार्यान्वित किया जा सके, विशिष्टीकरण तथा बड़े पैमाने के उद्योग सम्भव हो सकें तथा देश में वस्तुओं के लिए एक अच्छा बाजार मिल सके। स्पष्ट है कि जनसंख्या की वृद्धि सदैव हानिकारक नहीं होती, यदि जनसंख्या अनुकूलतम से अधिक हो जाती है तब उसका बढ़ना उचित नहीं होगा।

अति-जनसंख्या तथा आर्थिक विकास (Over-population and Economic Development)

अति-जनसंख्या की कई हानियाँ हैं जो एक देश के आर्थिक विकास में बाधक होती हैं। ये निम्न हैं

(१) उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होना (Law of diminishing returns starts operating)—विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के संयोग से उत्पादन किया जाता है। यदि देश में जनसंख्या बढ़ती जाती है तो श्रम अन्य उत्पत्ति के साधनों अर्थात् भूमि तथा पूंजी की अपेक्षा, बहुत अधिक हो जाता है, परिणामस्वरूप कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है अर्थात् सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन घटने लगते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है। यदि श्रम के साथ-साथ भूमि तथा पूंजी में भी वृद्धि होती है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू नहीं होगा। पूंजी में वृद्धि हो सकती है परन्तु भूमि में वृद्धि नहीं की जा सकती है क्योंकि वह सीमित है। केवल एक सीमा तक ही गहरी खेती द्वारा भूमि की 'प्रभावोत्पादक पूर्ति' (effective supply) को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार अति-जनसंख्या हानिकारक सिद्ध होती है, क्योंकि उसकी वृद्धि के साथ अन्य उत्पत्ति के साधनों, विशेषतया भूमि, को उसी अनुपात में नहीं बढ़ाया जा सकता जिस अनुपात में जनसंख्या बढ़ती है।

(२) जीवन-स्तर में गिरावट (Fall in the standard of living)—जनसंख्या में वृद्धि के साथ खाद्य पदार्थों, वस्त्रों, मकानों, इत्यादि की मांग में बहुत अधिक वृद्धि होती है। परन्तु इन वस्तुओं की पूर्ति को उसी अनुपात में नहीं बढ़ाया जा पाता है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील रहता है। परिणामस्वरूप जीवन-स्तर गिरने लगता है तथा लोगों को गरीबी तथा कष्टों का सामना करना पड़ता है।

(३) पूंजी निर्माण में बाधा (Hinderance in Capital Formation)—अविकसित देशों (जैसे भारत) में अधिक जनसंख्या पूंजी निर्माण में एक बड़ी बाधा होती है। आर्थिक विकास के लिए कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य, शिक्षा, इत्यादि क्षेत्रों में विनियोग (investment) की आवश्यकता होती है, अधिक विनियोग के लिए आवश्यक है कि देश में अधिक बचत (savings) हो। परन्तु उच्च जन्म-दर (high birth rate) तथा अति जनसंख्या बचतों को कम करती है, परिणामस्वरूप पूंजी निर्माण की दर निम्न हो जाती है। अतः अति-जनसंख्या देश के आर्थिक विकास में बहुत बड़ी बाधा है।

परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि जब एक देश इतना अधिक धनवान हो जाता है कि वह अपने साधनों से ही पूंजी यन्त्र (capital equipmpent) को तीव्र गति से बढ़ा सकता है तो ऐसे देश में अति-जनसंख्या का डर बहुत दूर (remote) हो जाता है। अतः उन्नतशील देशों (advanced countries) में जनसंख्या वृद्धि लाभदायक सिद्ध होती है। ऐसे देशों में जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होंगी, विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि नये मकानों नयी मशीनों, इत्यादि की मांग बढ़ेगी, बेकारी दूर होगी और रोजगार को बनाये रखना आसान होगा। परन्तु अविकसित देशों में परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं, इसलिए इनमें उच्च जन्म-दर तथा तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास को रोकती है।

प्रश्न

१ माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।
Examine critically the Malthusian Theory of Population
(Agra, B A I, 1975, Luck, 1972)

२ "वर्तमान समाज के लिए माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त का आतंक नष्ट हो गया है।" क्या आप इस विचार से सहमत हैं ? कारण बताइए।
The Malthusian Theory of Population has lost its terror for modern society " Do you agree with this view ? Give reasons (*Agra B A*, 1970)

[संकेत—प्रश्न के उत्तर को तीन भागों में बाँटिए। प्रथम भाग में माल्थस के जनसंख्या के नियम का कथन दीजिए तथा संक्षेप में उसकी व्याख्या कीजिए। दूसरे भाग में सिद्धान्त की संक्षेप में आलोचना दीजिए। तीसरे भाग में बताइए कि सिद्धान्त की आलोचना के आधार पर ही कुछ लोगों द्वारा यह कहा जाता है कि वर्तमान समाज के लिए इस सिद्धान्त का आतंक समाप्त हो गया है। परन्तु यह पूर्णतया सही नहीं है, सिद्धान्त में आज भी सत्यता का अंश है, अतः सिद्धान्त की सत्यता पर प्रकाश डालिए, अन्त में निष्कर्ष दीजिए। ध्यान रहे कि समस्त विवरण संक्षिप्त होना चाहिए, क्योंकि उत्तर लम्बा है।]

३ माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त को बताइए। क्या भारत में यह लागू होता है ? भारत में जनसंख्या को आप कैसे रोकेंगे ?
State the Malthusian theory of population Is it applicable to India ? How will you check the increasing population in India ? (*Meerut*, 1971)

४ जनसंख्या तथा श्रम-शक्ति में, आदर्श जनसंख्या सिद्धान्त की सहायता से, सम्बन्ध स्थापित कीजिए।
Establish an association and relation between population and labour force supply with the help of Optimum Population Theory (*Agra, B A I*, 1973)

[संकेत—अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की पूर्ण व्याख्या कीजिए, शुरू में सिद्धान्त की मान्यताएँ दीजिए, पहली मान्यता 'जनसंख्या' तथा 'कार्यवाहक जनसंख्या या श्रम-शक्ति' (Working Population or Labour force supply) के बीच सम्बन्ध की मान्यता है।]

५ जनसंख्या के अनुकूलतम सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Critically examine the Optimum Theory of Population (*Agra, B. A I* 1976)

अथवा

जनसंख्या के अनुकूलतम सिद्धान्त को बताइए। क्या जनसंख्या के अनुकूलतम स्तर को प्राप्त करना सम्भव है ?
Examine Optimum Theory of Population Is it possible to attain Optimum Level of Population ? (*Luck, B Com*, 1971)

६. 'अति-जनसंख्या' से आप क्या समझते हैं ? अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
What is 'over population' ? Explain the Theory of Optimum Population (*Garwal, B Com, I*, 1976)

७ अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त केवल अर्थशास्त्र के विख्यात 'अनुकूलतम के विचार' का प्रयोग जनसंख्या के क्षेत्र में करता है। इस कथन को ध्यान में रखते हुए अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
The Optimum Theory of Population is merely an application of the famous concept of Optimum in the field of population In the light of the above remark give critical estimate of Optimum Theory of Population

[संकेत—प्रथम भाग में 'अनुकूलतम के विचार' को समझाइए तथा बताइए कि 'अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त' अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विचार अनुकूलतम का प्रयोग ही जनसंख्या के क्षेत्र में करता है, देखिए 'अनुकूलतम के विचार का प्रयोग' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री।]

८. "जनसख्या की समस्या केवल आकार की समस्या नही है बल्कि यह तो कुशल उत्पादन तथा न्याययुक्त वितरण की समस्या है।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
"The problem of population is not one of mere size but of efficient production and equitable distribution *(Rajasthan, Agra)*

[सकेत—प्राक्कथन म बताइए कि अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त के अनुसार जनसख्या की समस्या केवल आकार या सख्या की समस्या नहीं है बल्कि कुशल उत्पादन तथा उचित वितरण की भी समस्या है, इस प्राक्कथन के पश्चात् अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।]

९. अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धात की व्याख्या कीजिए। माल्थस के सिद्धान्त से यह किन बातो मे भिन्न है ?
Explain the Optimum Theory of Population In what respect does it differ from the Malthusian Theory? *(Agra Jodhpur)*

अथवा

अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। किस सीमा तक यह माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त के ऊपर सुधार है ?
Examine critically the Optimum Theory of Population How far is it an improvement over the Malthusian Theory of Population?

१० माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए और इस सम्बन्ध म सर्वोत्तम जनसख्या सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
Critically examine the Malthusian Theory of Population and in this connection explain the concept of Optimum Population"
(Meerut IIyr, Com, 1959, 1961, Agra B Com I 1964)

अथवा

माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। इस सिद्धान्त की तुलना अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त से कीजिए।
Discuss the Malthusian Theory of Population Distinguish it from the Optimum Theory of Population

११ 'माल्थस का जनसख्या सिद्धान्त निराशावादी है तथा अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त आशावादी है। परन्तु उनमे से कोई भी जनसख्या का एक पूर्ण सिद्धान्त नही है।" विवेचना कीजिए।
"The Malthusian Theory of Population is Pessimistic and Optimum Theory of Population is optimistic, but none of them is an adequate theory of population' Discuss

[सकेत—प्रश्न को तीन भागो मे बाँटिए। प्रथम भाग मे माल्थस के जनसख्या के नियम का कथन दीजिए तथा सक्षेप मे उसकी व्याख्या कीजिए, दूसरे भाग मे अनुकूलतम जनसख्या की परिभाषा दीजिए तथा अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त को चित्र की सहायता से बहुत सक्षेप मे व्याख्या कीजिए। तीसरे भाग मे दोनो सिद्धान्तो की तुलना कीजिए और अन्त मे निष्कर्ष दीजिए कि माल्थस का सिद्धान्त निराशावादी है जबकि अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त आशावादी है, परन्तु दोनो अपूर्ण हैं।]

१२ आप 'अति-जनसख्या' से क्या समझते हैं ? क्या बढती हुई जनसख्या सदैव अवाछनीय है ?
What do you understand by over population? Is increasing population always undesirable? *(Udaipur T D C Com, 1967)*

[सकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग मे माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त तथा अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त, दोनो की दृष्टियो से अति-जनसख्या के विचार को स्पष्ट कीजिए और बताइए कि यह विचार अधिक उचित है कि जब जनसख्या अनुकूलतम जनसख्या से अधिक हो जाती है तो अति-जनसख्या की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके पश्चात् बहुत

संक्षेप में अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की चित्र की सहायता से व्याख्या कीजिए। दूसरे भाग में स्पष्ट कीजिए कि जनसंख्या का बढ़ना तभी हानिकारक होगा जबकि वह 'अनुकूलतम' से बढ़ जाय।]

१३. जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
Explain the Theory of Demographic Transition

अथवा

आप 'जनसंख्या विस्फोट' से क्या समझते हैं? जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त को समझाइए।
What do you understand by 'population explosion'? Explain the Theory of Demographic Transition

१४. एक देश में जनसंख्या के विकास तथा उसके आर्थिक विकास के बीच सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।
Examine the relation between the growth of population of a country and its economic development

[संकेत—देखिए 'जनसंख्या की वृद्धि तथा आर्थिक विकास' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

१५. जनसंख्या के 'लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त' की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Explain critically the Logistic Theory Curve of Population'.

१६. "जिस दर से स्त्री जाति अपने आपको प्रतिस्थापित करती है वह शुद्ध पुनरुत्पादन दर कहलाती है।" जनसंख्या के शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
"The rate at which the female population is replacing itself is the net *reproduction rate*" Discuss critically the 'Net Reproduction Rate' theory of population

31 पूँजी निर्माण
[CAPITAL FORMATION]

पूंजी का अर्थ
(THE CONCEPT OF CAPITAL)

साधारण बोलचाल मे पूँजी का अर्थ द्रव्य तथा धन-सम्पत्ति से लिया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र मे पूँजी का प्रयोग एक विशेष अर्थ म किया जाता है। सामान्यतया मनुष्य द्वारा उत्पादित धन का वह भाग जो और अधिक धन के उत्पादन मे प्रयोग किया जाता है, पूंजी कहलाता है।

पूँजी के विचार का सार है 'आय प्रदान करने वाली' (income yielding), वह 'आय उत्पादन करने वाली' (income creating) भी हो सकती है, परन्तु यह आवश्यक नही है कि वह आवश्यक रूप से आय-उत्पादन भी करे।[1] पूँजी के अन्तर्गत केवल मनुष्यकृत धन सम्मिलित होता है, भूमि तथा प्राकृतिक उपहार नही।

पूँजी निर्माण
(CAPITAL FORMATION)

पूँजी निर्माण के विचार का अर्थ (The Concept of Capital Formation)

आज की उत्पादन प्रणाली की मुख्य विशेषता है पूँजी का बडे पैमाने पर प्रयोग। पूँजी का निर्माण (capital formation) या पूँजी का सचय (captial accumulation) धीरे धीरे होता है।

> 'पूँजी निर्माण' देश के अन्दर होता है, इसके लिए समाज तथा व्यक्ति वर्तमान उपभोग को कम करके धन बचाते हैं और बचत को उत्पादक प्रयोगो मे लगाते हैं ताकि और अधिक धन प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार पूँजी निर्माण एक सामाजिक प्रक्रिया (social process) है।

पूँजी निर्माण देश के अन्दर पहले की अपेक्षा कही अधिक मात्रा मे होना चाहिए यदि एक अविकसित अर्थव्यवस्था को उन्नतशील तथा विकासमान अर्थव्यवस्था म बदलना है। पूँजी की पूर्ति, एक सीमा तक देश के बाहर से अर्थात् उन्नतशील देशो से प्राप्त की जा सकती है और इस प्रकार देश के अन्दर पूँजी की पूर्ति को एक सीमा तक बढाया जा सकता है। बाहर से पूँजी की पूर्ति उचित परिस्थितियो म, देश के पूँजी निर्माण के लिए एक शक्तिशाली 'प्रेरक एजेण्ट' (powerful catalytic agent) हो सकती है और पूँजी निर्माण की प्रक्रिया (process) को उत्तेजित (stimulate) कर सकती है।

पूँजी निर्माण की अवस्थाएँ (Stages of Capital Formation)

पूँजी निर्माण के लिए तीन स्वतन्त्र परिवर्तनशील तत्त्व (three independent variables)

[1] The essence of the concept of capital is that it is income yielding, if not also income-creating

आवश्यक है अर्थात् पूंजी निर्माण की प्रक्रिया (process) में तीन अवस्थाएं (three stages) होनी हैं जिनका विवरण हम नीचे देते हैं

(१) वास्तविक बचत (Real savings) का निर्माण करना—साधनों का उपभोग वस्तुओं पर कम व्यय करके वास्तविक बचत में वृद्धि करना। इस अवस्था के लिए यह आवश्यक है कि लोगों में, 'बचत करने की इच्छा' (will to save) तथा 'बचत करने की शक्ति' (power to save) होनी चाहिए। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि बचत को अनुत्पादक प्रयोजनों (जैसे, जेवर इत्यादि को खरीदना) में बर्बाद न किया जाय।

(२) दूसरी अवस्था है बचतों को एकत्रित (Mobilize) करना—इसके लिए यह आवश्यक है कि देश विशेष में बैंकों, बीमा कम्पनियों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का जाल-सा बिछा हो जो कि एक ओर तो कुशलता के साथ लोगों की बचतों को एकत्रित कर सकें, और दूसरी ओर उन बचतों को विनियोगकर्ताओं तक आसानी से पहुँचाया जा सके।

(३) द्राव्यिक बचतों (Money Savings) को वास्तविक पूंजीगत सम्पत्ति (Real Capital Assets) में बदलना—केवल वास्तविक बचतों को एकत्रित करने से पूंजी निर्माण नहीं होगा, इसके लिए यह आवश्यक है कि देश में जोखिम उठाने वाले कुशल तथा योग्य साहसी मौजूद हों जो कि द्राव्यिक बचतों को लेकर उत्पादक कार्यों में विनियोग करके उत्पादक वस्तुओं (producer goods) अर्थात् नयी पूंजीगत सम्पत्ति (new capital assets) का निर्माण कर सकें।

यद्यपि उपर्युक्त 'तीन स्वतन्त्र परिवर्तनशील तत्त्व' (three independent variables) या 'तीन अवस्थाएं (three stages) एक-दूसरे से स्वतन्त्र (independent) हैं परन्तु पूंजी निर्माण के लिए तीनों आवश्यक है। लोगों को बचत करनी चाहिए, इन बचतों को एकत्रित करने के लिए उचित तथा कुशल यन्त्र-व्यवस्था (machinery) होनी चाहिए तथा अन्त में इन बचतों को साहसियों द्वारा नयी पूंजीगत वस्तुओं में बदल देना चाहिए।

पूंजी निर्माण तथा आर्थिक विकास (Capital Formation and Economic Development)

पूंजी तथा पूंजी निर्माण किसी देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। (i) पूंजी बुनियादी तथा भारी उद्योगों का निर्माण करके एक आधुनिक औद्योगिक समाज की जड़ों को स्थापित करती है। पूंजी 'आधार ढांचे (infra structure) के अन्य अंगों, जैसे—यातायात, शक्ति (power) इत्यादि के निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। (ii) अविकसित देशों में पूंजी की कमी कृषि क्षेत्र को भी प्रभावित करती है क्योंकि किसान पुराने तथा अकुशल औजारों और यन्त्रों को हटाकर नये और अधिक कुशल औजार तथा यन्त्र प्रयोग में नहीं ला सकते और इसलिए कृषि उत्पादन कम रहता है। कार्यशील पूंजी (working capital), स्टॉक रखने की जगह, यातायात व संवादवहन के साधनों इत्यादि की कमी, कृषि विपणन (marketing) तथा बाजार मूल्य के ढांचे को प्रभावित करती है। इस प्रकार से पूंजी 'आर्थिक विकास' (economic development) में एक महत्त्वपूर्ण योग प्रदान करती है और 'आर्थिक वर्द्धन' (economic growth) 'प्रति व्यक्ति पूंजी में वृद्धि' से सम्बन्धित होता है।

परन्तु अधिक नवीन घटनाओं तथा परिणामों ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि आर्थिक विकास के लिए पूंजी आवश्यक है पर वह आर्थिक विकास की एक पर्याप्त दशा (sufficient condition) नहीं है। एक अविकसित तथा पिछड़े हुए देश में केवल पूंजी के स्टॉक या नवीनतम औजारों तथा यन्त्रों की अधिक मात्रा में पूर्ति कर देने से ही उसका आर्थिक विकास नहीं होगा। प्रो० लेविस (Prof. Lewis) के अनुसार, "आर्थिक विकास पूंजी के अतिरिक्त, अन्य बातों से भी सम्बन्धित है, आर्थिक विकास उन संस्थाओं (institutions) से सम्बन्धित है जो प्रयत्न (effort) को प्रेरणा प्रदान करती हैं, उन दृष्टिकोणों (attitudes) से सम्बन्धित है जो आर्थिक कुशलता को महत्त्व (value) देते हैं, बढ़ते हुए टेक्नीकल ज्ञान से सम्बन्धित है, इत्यादि। वर्द्धन (growth) के लिए केवल पूंजी ही आवश्यक तत्त्व (requirement) नहीं है, क्योंकि यदि

(iv) **धन का वितरण** (Distribution of Wealth)—यदि देश मे धन का वितरण असमान है तो अधिक बचत होगी, यह बात विशेषतया अविकसित तथा कम आय वाले देशो मे लागू होती है। कम आय वाले देशो मे केवल बहुत अधिक आय वाले व्यक्ति ही बचत कर सकते हैं, यदि इन देशो मे धन का समान वितरण होता है तो अधिकाश लोग अपनी थोडी तथा सीमित आय को उपभोग की वस्तुओ पर व्यय करेंगे और बचत कम या बिलकुल नही कर पायेंगे।

परन्तु धन का असमान वितरण सामाजिक दृष्टि से अवाछनीय (undesirable) है। अत देश मे छोटी-छोटी बचतो को एकत्र करने के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय सस्थाएँ (financial institutions) पर्याप्त सख्या मे होनी चाहिए।

भारत मे बचत की शक्ति—भारत में लोगो की बचत करने की शक्ति बहुत कम है। इसके कई कारण है (i) भारत मे बहुत निर्धनता है, व्यक्ति-आय तथा राष्ट्रीय-आय बहुत कम है। इसलिए लोगो की बचत करने की शक्ति बहुत कम है। (ii) यद्यपि भारत मे नियोजित आर्थिक विकास हो रहा है, परन्तु इससे लोगों की बचत करने की शक्ति में आशानुकूल वृद्धि नहीं हुई है, इसके मुख्य दो कारण हैं—प्रथम, भारत मे मुद्रा-स्फीति (money inflation) के कारण वस्तुओ की कीमतें बहुत बढ गयी है, परिणामस्वरूप जीवन-निर्वाह की लागत बहुत बढ गयी है और बचत क्षमता कम हो गयी है। दूसरे, भारत मे जनसख्या बडी तीव्र गति (लगभग २.५ प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब) से बढ रही है जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय मे अधिक वृद्धि नही होती है। (iii) यद्यपि देश मे धन का असमान वितरण है, इससे बचतो मे कुछ सहायता प्राप्त होती है, परन्तु यह सामाजिक दृष्टि से वाछनीय नहीं है और भारत सरकार धन के असमान वितरण को रोकने के लिए कई कदम (जैसे, मृत्यु-कर, सम्पत्ति-कर, इत्यादि) उठा चुकी है और इस दिशा मे बराबर प्रयत्नशील है। कुल मिलाकर भारत मे उन्नतशील देशो की अपेक्षा बचत की शक्ति बहुत कम है।

III. बचत की सुविधाएँ (Facilities for Saving)—बचत की इच्छा तथा शक्ति के साथ-साथ यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि देश की छोटी तथा बडी बचतो को एकत्रित करने तथा उत्पादन कार्यो मे लगाने की उचित सुविधाएँ हो। बचत की सुविधाएँ निम्न बातो पर निर्भर करती हैं

(i) **देश मे शान्ति तथा सुरक्षा** (Peace and Security)—यदि देश मे शान्ति नही है, प्राय झगडे होते रहते हैं, बाह्य आक्रमण का डर बना रहता है, लोगो की सम्पत्ति सुरक्षित नही रहती है तो स्पष्ट है कि देश मे बचत बहुत कम होगी। बचत के लिए देश मे शान्ति तथा सुरक्षा का वातावरण रहना अत्यावश्यक है।

(ii) **विनियोग की सुविधाएँ** (Facilities for Investment)—यदि देश मे विभिन्न प्रकार के उद्योग, व्यापार व्यवसाय, इत्यादि हैं जिनमे लोग अपने बचाये हुए धन को सुरक्षित रूप से विनिमय कर सकते हैं तो बचत को अधिक प्रोत्साहन मिलेगा। इसके विपरीत, यदि देश मे सुरक्षित विनियोग के अवसर बहुत कम है तो निश्चय ही लोग कम बचत करेंगे। देश मे उचित तथा पर्याप्त बैंकिंग सुविधाओ का होना आवश्यक है ताकि छोटी और बडी बचतो को सुरक्षित विनियोग के लिए एकत्रित किया जा सके। इसके अतिरिक्त सहकारी समितियाँ तथा बीमा कम्पनियाँ भी बचतो को प्रोत्साहित करने मे महत्त्वपूर्ण होती है।

(iii) **मुद्रा प्रणाली मे स्थायित्व** (Stability of the Monetary System)—किसी देश मे बचत के लिए यह आवश्यक है कि कीमतो मे बहुत अधिक परिवर्तन न हो अर्थात् मुद्रा के मूल्य मे स्थायित्व रहे। यदि वस्तुओ के मूल्य मे बहुत अधिक वृद्धि होती है और देश मे मुद्रा-स्फीति (inflation) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो लोगो को द्रव्य रूप मे बचतो का वास्तविक मूल्य बहुत कम रह जायेगा, ऐसी स्थिति मे लोग बचत नही करेंगे।

(iv) योग्य तथा ईमानदार उद्योगपति (Capable and Honest Industrialists)—प्रत्येक देश में लोग अपने बचाये हुए धन को उद्योगपतियों, व्यापारियों, इत्यादि को उधार देकर ब्याज का लाभ कमाना चाहते हैं। यदि देश में योग्य तथा ईमानदार साहसी, उद्योगपति तथा व्यापारी अधिक संख्या में पाये जाते हैं तो लोग अधिक बचत करेंगे क्योंकि उनका द्रव्य तथा धन सुरक्षित रहेगा।

भारत में बचत करने की सुविधाएं—स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में बचत करने की सुविधाओं में विस्तार हुआ है। भारत में नियोजन के परिणामस्वरूप बैंकों के विस्तार तथा बीमा सुविधाओं में बहुत वृद्धि हुई है। छोटी छोटी जगहों पर बैंकों की शाखाएं स्थापित की जा रही हैं जिससे छोटी छोटी बचतों को एकत्रित किया जा सके। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के उद्योगों का विकास किया जा रहा है तथा योग्य व कुशल साहसियों की संख्या में वृद्धि हो रही है, इस प्रकार विनियोग के अवसरों में पहले की अपेक्षा पर्याप्त वृद्धि हुई है। अन्य उन्नतशील देशों की तुलना में भारत में आज भी बैंकिंग, बीमा, इत्यादि की सुविधाएं बहुत कम हैं, औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों में भी भारत अभी पिछड़ा हुआ है। भारत में बचतों को आशातीत प्रोत्साहन नहीं मिला है। भारत में बढ़ती हुई कीमतें तथा मुद्रा स्फीति बचतों को निरुत्साहित करती हैं।

IV. सरकार का सहयोग (Role of Government)—पूँजी निर्माण में सरकार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। (अ) वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कर लगाकर प्राप्त धन को पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण में लगा सकती है। (ब) वह नये उद्योगों पर कर क्षमा करके या करों में रियायत करके या उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करके नये उद्योगों के विस्तार में सहायता देकर पूँजी निर्माण में सहयोग देती है। (स) छोटे छोटे शहरों तथा गाँवों में बैंकों की नयी शाखाएँ खुलवाकर या अन्य रीतियों द्वारा, लोगों की बचतों को एकत्रित करा सकती है। (द) वह यातायात व संवादवहन के साधनों तथा विद्युत शक्ति के उत्पादन में विकास करके 'निजी पूँजी निर्माण' (private capital formation) में सहयोग देती है तथा स्वयं अपने उद्योग भी स्थापित करती है।

पूंजी निर्माण में सरकार की भूमिका
(ROLE OF GOVERNMENT IN CAPITAL FORMATION)

पूँजी निर्माण के कार्य में सरकार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सरकार अपनी नीतियों से बचाने की इच्छा, शक्ति तथा सुविधाओं को भी प्रभावित करती है। पूंजी निर्माण में सरकार की भूमिका (part) का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है।

(अ) विकसित तथा उन्नतशील देशों (developed and advanced countries) में पूँजी निर्माण मुख्यतया व्यक्तिगत लोगों (private individuals) द्वारा किया जाता है। इन देशों में बचतों की कमी नहीं होती बैंकिंग तथा वित्तीय सुविधाओं की बहुत अच्छी सुविधाएँ होती हैं, कुशल तथा ईमानदार उद्योगपतियों की भी कोई कमी नहीं होती है। सरकार विशेषतया व्यापार-मन्दी (business depression) के समय में सहयोग प्रदान करती है। मन्दी के समय में देश में बेरोजगारी फैल जाती है, लोगों की आय कम हो जाती है तथा पूँजी निर्माण की दर बहुत गिर जाती है। ऐसे समय में सरकार सार्वजनिक निर्माण कार्यों (public works), जैसे—सड़क बनवाना, मकान बनवाना, रेल की नयी लाइनें डालना सिंचाई के साधनों का निर्माण, इत्यादि, में विनियोग करती है। इससे बेरोजगार लोगों को रोजगार मिलता है, लोगों की आय में वृद्धि होती है लोगों की प्रभावोत्पादक मांग (effective demand) बढ़ती है, उद्योग तथा व्यापार में विस्तार होता है, इस प्रकार पूँजी निर्माण की दर, जो गिर गयी थी, अब फिर बढ़ जाती है।

(ब) समाजवादी देशों में, जिनमें कि उत्पादन तथा वितरण के समस्त साधनों पर सरकार का स्वामित्व तथा नियन्त्रण होता है, सरकार पूँजी निर्माण के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी होती है सरकार ही उत्पत्ति के साधनों का विभिन्न प्रयोगों में वितरण करती है, वह कर नीति, राशन, इत्यादि द्वारा उपभोग को कम करके पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिए बचतों को लगाती है।

(स) अल्प-विकसित देशों (underdeveloped countries) में पूँजी निर्माण में सरकार का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, इन देशों म पूँजी निर्माण के लिए सरकार एक बडी सीमा तक उत्तरदायी होती है। (इसके कारण हैं—इन देशो में बहुत गरीबी होती है, आय बहुत कम होती है और लोगों की ऐच्छिक बचत की दर बहुत निम्न होती है, लोगो की छोटी-छोटी बचतों को एकत्रित करने के लिए बैंकिंग व्यवस्था तथा अन्य वित्तीय सस्थाओं की कमी होती है, इत्यादि।) अल्प-विकसित देशो म सरकार निम्न रीतियो स पूँजी निर्माण म सहयोग प्रदान करती है :

(i) सरकार राजकोषीय नीति (fiscal policy) द्वारा पूँजी निर्माण म सहयोग प्रदान कर सकती है। वह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर लगाकर प्राप्त धन को पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण मे लगा सकती है, वह नये उद्योगो पर कर क्षमा करके या करो मे रियायत करके या उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करके नये उद्योगो के विस्तार म सहायता देकर पूँजी निर्माण मे सहयोग देती है। सरकार 'अनिवार्य बचत योजना' (compulsory savings scheme) लगाकर लोगों को बचत करने के लिए बाध्य कर सकती है।

(ii) सरकार बैंकिंग व्यवस्था को अधिक सुव्यवस्थित तथा दृढ बना सकती है और उसका विस्तार कर सकती है, छोटे-छोटे शहरो तथा गाँवो मे बैंको की नयी शाखाएँ खुलवाकर लोगो की छोटी बचतों को एकत्रित करा सकती है। वह अन्य वित्तीय सस्थाएँ, जैसे औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation), विनियोग ट्रस्ट (Investment Trust), इत्यादि खोल कर उद्योगों तथा कृषि के क्षेत्रों के विकास म सहयोग दे सकती है। इन रीतियो द्वारा सरकार पूँजी निर्माण मे सहायता करती है।

(iii) सरकार 'सामाजिक पूँजी' (social capital), जैसे—सडको, पुलों, रेलो, सिंचाई के साधनो, विद्युत शक्ति का उत्पादन, शिक्षा तथा चिकित्सा की अच्छी सेवाओ, यातायात व सवादवहन के साधनों इत्यादि मे विनियोग करके 'निजी पूँजी निर्माण' (private capital formation) म महत्त्वपूर्ण सहयोग देती है।

(iv) सरकार स्वय अपने उद्योग (जैसे—लोहा तथा इस्पात उद्योग, रासायनिक खाद उद्योग, बडे-बडे इजीनियरिंग उद्योग, इत्यादि) स्थापित करके बचत तथा पूँजी निर्माण मे सहयोग देती है।

(v) सरकार 'घाटे की अर्थ-व्यवस्था' (deficit financing) या मुद्रा स्फीति (inflation) द्वारा भी देश मे पूँजी निर्माण कर सकती है। परन्तु 'घाटे की अर्थ-व्यवस्था' या 'मुद्रा-स्फीति' एक खतरनाक यन्त्र है जिसका प्रयोग बहुत सीमित रूप मे सोच-समझकर करना चाहिए। भारत में 'घाटे की अर्थव्यवस्था' की बहुत अधिक मात्रा मे प्रयोग से बचतों को धक्का पहुँचा है।

(vi) सरकार विदेशी सहायता (foreign aid) द्वारा भी देश के पूँजी निर्माण की गति को बढा सकती है। परन्तु विदेशी सहायता का प्रचार इस प्रकार किया जाना चाहिए कि भविष्य मे देश की अर्थ-व्यवस्था, 'स्वचालित' (self generating) हो सके और विदेशी सहायता से छुटकारा मिल सके।

(vii) अविकसित देशो म तीव्र गति से बढती हुई जनसख्या पूँजी निर्माण मे एक बहुत बडी बाधा होती है। अत सरकार राष्ट्रीय स्तर पर एक उचित जनसंख्या नीति को बनाकर तथा उसको दृढता के साथ कार्यान्वित करके देश के पूँजी निर्माण मे बहुत बडा योगदान दे सकती है।

(viii) अल्पविकसित देशों मे बिना द्रव्य के रूप मे बचत किये हुए भी पूँजी का निर्माण किया जा सकता है। इस सम्बन्ध मे प्रो० नर्क्से (Prof Nurkse) ने इस बात पर बल दिया है कि निर्धन तथा अविकसित देशों मे बेकार तथा अर्द्ध-बेकार विशाल श्रम-शक्ति की सहायता से बड़े पैमाने पर पूँजी निर्माण किया जा सकता है। सरकार बेकार श्रम-शक्ति को सडक निर्माण, छोटी छोटी सिंचाई योजनाओ, इत्यादि म लगा सकती है। सरकार खेतिहर श्रमिकों तथा कृषकों को बेरोजगारी के समय म खेतो पर मेड बनाने, भूमि समतल करने, भूमि को खेती योग्य बनाने, गाँवो

के लिए स्कूल, डिस्पेन्सरी की बिल्डिंग बनाने, कुएँ खोदने, सफाई की व्यवस्था करने, इत्यादि कार्यों के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। भारत में इस दृष्टि से सामुदायिक विकास योजनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

(ix) सरकार सामान्य शिक्षा की बहुत अधिक सुविधाएँ प्रदान करके लोगों के दृष्टिकोणों (attitudes) मे परिवर्तन कर सकती है। शिक्षा के प्रसार के कारण लोग उन सामाजिक रीति-रिवाजो को छोड सकेंगे जिनसे पूंजी के निर्माण म बाधा पडती है। दृष्टिकोण मे परिवर्तन के साथ लोग आभूषणो, प्रीतिभोजो, इत्यादि अनुत्पादक कार्यों मे अपनी बचत नहीं लगायेंगे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अल्पविकसित देशो मे पूँजी निर्माण में सरकार का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। भारत मे पूँजी निर्माण के लिए सरकार ने लगभग सभी उपर्युक्त कदम उठाये है जिसका प्रभाव धीरे धीरे होने लगा है।

भारत (या एक अल्पविकसित देश) मे पूंजी निर्माण की धीमी गति के कारण (REASONS FOR THE SLOW RATE OF CAPITAL FORMATION IN INDIA OR IN AN UNDER-DEVELOPED COUNTRY)

भारत जैसे अल्पविकसित देशो मे श्रम-शक्ति की बाहुल्यता होती है तथा पूंजी का अभाव। इन देशो मे पूंजी निर्माण की गति बहुत धीमी होती है और यह बात आर्थिक विकास मे एक बहुत बडी बाधा होती है। अल्पविकसित देशो मे पूंजी निर्माण की धीमी गति के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं

(i) इन देशो मे अधिकांश लोगो की आय बहुत कम होती है। उनका जीवन-स्तर निम्नतम होता है। वे कठिनाई के साथ केवल जीवन की अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं का ही उपयोग कर पाते हैं। स्पष्ट है कि इनकी बचत की क्षमता बहुत कम होती है। छोटी बचतो को एकत्र करने के लिए बैंकिंग सुविधाएँ कम होती हैं, छोटे शहरो तथा गाँवो मे बैंको की शाखाएँ प्राय नहीं होती हैं।

(ii) अविकसित देशो (जैसे, भारत) मे केवल धनवान लोगो द्वारा ही बचत की जा सकती है क्योंकि इन लोगो की बचत की क्षमता अधिक होती है। परन्तु ये अमीर लोग भी अधिक बचत नहीं कर पाते हैं, ये लोग उपभोग वस्तुओं पर अत्यधिक व्यय करते हैं। दूसरे, ये लोग अपनी बचत का एक बडा भाग अनुत्पादक कार्यों, जैसे—आभूषणों, रहने के मकानों, भूमियो, इत्यादि मे लगाते हैं।

(iii) इन देशो मे जनसख्या बहुत तीव्र गति से बढ़ती है। भारत मे जनसख्या लगभग २.५% प्रतिवर्ष बढ़ रही है। इस कारण अधिकाश बचत बढ़ती हुई जनसख्या के भरण-पोषण पर व्यय हो जाती है और पूंजी निर्माण कार्य के लिए बचाये हुए धन का प्रयोग नहीं हो पाता।

(iv) वास्तव मे भारत या अन्य अल्पविकसित देशो मे पूंजी निर्माण की धीमी गति का मुख्य कारण है कि देश 'दुश्चक्रों' (vicious circle) मे फँसे होते हैं, ये 'दुश्चक्र' इस प्रकार हैं

(१) मुख्य दुश्चक्र (basic vicious circle) इस प्रकार से 'कार्य करता है—'अविकसित साधनो, पिछडेपन तथा पूंजी की कमी (under developed resources, backwardness and capital deficiency) के कारण 'निम्न उत्पादकता' (low productivity) होती है इसके कारण 'कम वास्तविक आय' (low real income) होती है, इसके कारण, 'कम बचत' (low saving) होती है, इसके कारण 'पूंजी की कमी (capital deficiency) रहती है या पूंजी निर्माण की गति धीमी रहती है। (२) दूसरा दुश्चक्र इस प्रकार कार्य करता है—'अविकसित साधनो, पिछडेपन तथा पूंजी की कमी' के कारण 'निम्न उत्पादकता' होती है, इसके कारण 'कम वास्तविक आय'

होती है, इसके कारण 'कम माँग' (low demand) होती है, इसके कारण 'कम विनियोग' होता है, इसके कारण 'पूंजी की कमी' रहती है। (३) तीसरा दुष्चक्र इस प्रकार कार्य करता है— 'अविकसित साधनो के कारण 'पिछड़े व्यक्ति' (backward people) रहते हैं और इन पिछड़े व्यक्तियों के कारण 'अविकसित साधन' रहते हैं।

इन तीनो दुष्चक्रो को हम चित्र न० १ द्वारा दिखा सकते हैं।
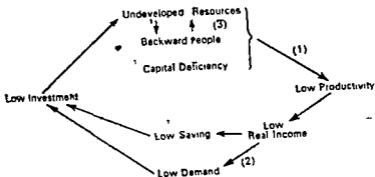
चित्र—१

अविकसित देशों मे पूंजी निर्माण की गति को तीव्र करने मे सरकार का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। राजकोषीय नीति (fiscal policy), बैंकिंग सुविधाओ मे पर्याप्त वृद्धि, सामाजिक पूंजी (social capital) मे विनियोग, सरकार स्वय अपने उद्योगो को स्थापित करके, आवश्यकतानुसार घाटे की अर्थव्यवस्था द्वारा, विदेशी सहायता, राष्ट्रीय स्तर पर उचित जनसंख्या नीति, बेकार विशाल श्रम शक्ति का प्रयोग करके, शिक्षा की सुविधाओ मे विस्तार, इत्यादि इन सब बातो को क्रियाशील करके अविकसित देशो मे पूंजी निर्माण द्रुत गति से किया जा सकता है। (इन सब बातो का विस्तृत वर्णन हम पहले कर चुके हैं)।

प्रश्न

१. पूंजी को परिभाषित कीजिए तथा उन तत्त्वो को बताइए जो किसी देश मे पूंजी निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

Define capital and enumerate the factors that are essential to capital formation in a country

२. वे कौन-से तत्त्व हैं जिन पर पूंजी सचय निर्भर करता है? भारतीय दशाओ के सन्दर्भ में विवेचना कीजिए।

What are the factors on which accumulation of capital depends? Discuss with reference to Indian conditions *(Garwal, B Com I, 1976)*

३. *पूंजी निर्माण को प्रभावित करने वाले तत्त्व क्या हैं? अर्द्ध-विकसित देशो में पूंजी निर्माण की* गति धीमी क्यों होती है?

What are the factors affecting capital formation? Why is the rate of capital formation slow in underdeveloped economies? *(Agra B A, 1969)*

४. किसी देश मे पूंजी निर्माण किन-किन बातो से प्रभावित होता है? भारत मे पूंजी निर्माण की रुचि धीमी क्यो है?

What factors influence Capital formation in a country? Why is the rate of capital formation slow in India? *(Agra B A, 1964, B Com 1966)*

५. पूँजी के सचय को बढ़ावा देने वाली दशाओं का परीक्षण कीजिए। इस सम्बन्ध में कौन-कौन-सी सीमाएँ हैं ?

Examine the conditions which favour the accumulation of capital. What are the limitations in this regard ? *(Meerut 1968)*

[संकेत—पूँजी निर्माण की सीमाएँ क्या हैं ? यह अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण की धीमी गति के कारणों में स्पष्ट होती है, अतः दूसरे भाग के उत्तर में इन कारणों का विविध जो कि अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण की धीमी गति को बताते हैं।]

६. आप पूँजी निर्माण से क्या समझते हैं ? अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण की दर धीमी क्यों होती है ? अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण में सरकार के योगदान की विवेचना कीजिए।

What do you understand by capital formation ? Why is the rate of capital formation slow in underdeveloped countries ? Discuss the role of government in capital formation in underdeveloped countries.

७. (अ) आप पूँजी निर्माण से क्या समझते हैं ?

(ब) एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में सरकार किस प्रकार से पूँजी निर्माण में मदद कर सकती है ?

(a) What do you understand by capital formation ?
(b) How can the Government help in capital formation in an underdeveloped economy ?
(Agra B. A. I 1975)

32 उद्योगों का स्थानीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण
[LOCALISATION AND DECENTRALISATION OF INDUSTRIES]

उद्योगों का स्थानीयकरण
(LOCALISATION OF INDUSTRIES)

स्थानीयकरण का अर्थ (Meaning of Localisation)

जब कोई उद्योग विशेष सुविधाओं के कारण, देश के किसी एक क्षेत्र मे या एक स्थान पर केन्द्रित हो जाता है तो इसे 'स्थानीयकरण' (Localisation) या केन्द्रीयकरण (Centralisation) कहते हैं। इसे 'प्रादेशिक श्रम विभाजन' (territorial division of labour) या 'भौगोलिक विशिष्टीकरण' (geographical specialisation) भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ—जूट उद्योग बगाल म, कपडा उद्योग बम्बई मे, चूडी उद्योग उत्तर प्रदेश के शहर फिरोजाबाद मे केन्द्रित हैं।

स्थानीयकरण के कारण (Causes of Localisation)

उद्योगों के स्थानीयकरण पर किसी एक तत्त्व का प्रभाव नहीं पडता वरन् वह प्राकृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक तत्त्वों, सरकारी नीति तथा अन्य बातों पर निर्भर करता है। स्थानीयकरण के कारणों को चार प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है (I) प्राकृतिक कारण (Natural factors), (II) आर्थिक कारण (Economic factors), (III) राजनीतिक कारण तथा सरकारी सहायता (Political factors and State's help), (IV) अन्य तत्त्व (Other factors)।

I प्राकृतिक कारण (Natural Factors)

स्थानीयकरण के प्राकृतिक कारण निम्न हैं

(१) **उपयुक्त जलवायु (Suitable climate)**—एक स्थान या क्षेत्र मे कुछ उद्योग इसलिए केन्द्रित हो गये हैं क्योंकि वहाँ उपयुक्त जलवायु पायी जाती है। उदाहरणार्थ, सूती कपडा उद्योग के लिए नम जलवायु उपयुक्त होती है क्योंकि नम जलवायु में सूती धागा जल्दी-जल्दी टूटता नहीं है, भारत मे सूती कपडा उद्योग के बम्बई तथा बगाल मे केन्द्रित होने का कारण यह है कि इन क्षेत्रों की जलवायु मे नमी है।

(२) **उपयुक्त भूमि (Suitable soil)**—दक्षिणी भारत की काली भूमि कपास के उत्पादन के लिए विशेषतया उपयुक्त है, यही कारण है कि बम्बई मे सूती कपडा उद्योग केन्द्रित है।

(३) **शक्ति की प्राप्यता (Availability of power)**—उद्योगो के चलाने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है, अत उद्योग मे शक्ति के स्रोतों के पास केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है। प्राचीन समय मे उद्योग जल शक्ति या कोयले की खानों के पास ही केन्द्रित होते थे। लोहा तथा इस्पात उद्योग का भारत मे जमशेदपुर मे, जर्मनी मे एसन (Essen) नामक क्षेत्र मे तथा अमरीका म पेन्सिलवेनिया में केन्द्रित होने का एक मुख्य कारण इन क्षेत्रों में कोयले का पाया जाना है। आधुनिक युग मे उद्योग प्राय उन क्षेत्रों म केन्द्रित होते जा रहे हैं जहाँ पर सस्ती विद्युत शक्ति प्राप्य है।

(४) कच्चे माल की निकटता (Proximity to raw materials)—कच्चे माल के यातायात व्यय में बचत की दृष्टि से प्राय: उद्योग कच्चे माल के पास के स्थानों में केन्द्रित होते हैं। इसी कारण जूट उद्योग बंगाल में केन्द्रित है चीनी उद्योग उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर क्षेत्र में केन्द्रित है।

II. आर्थिक कारण (Economic Factors)

स्थानीयकरण के प्रमुख आर्थिक कारण निम्नलिखित हैं

(१) बाजारों की निकटता (Proximity of markets)—प्राय: उद्योगों में बाजारों के निकट केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है क्योंकि उनको अपने निर्मित माल को मण्डी या बाजार तक ले जाने में यातायात व्यय में बहुत बचत होती है। *कलकत्ता के आस-पास जूट उद्योग केन्द्रित होने* का कारण यह भी है कि कलकत्ता, जो कि एक बन्दरगाह है, से विदेशी क्रेताओं को जूट का माल आसानी से बेचा जा सकता है।

केन्द्रीयकरण की दृष्टि से बाजार तथा कच्चा माल उद्योगों को विपरीत दशाओं में खींचते हैं। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि यदि कच्चा माल बहुत भारी होता है और उसके द्वारा निर्मित वस्तु वजन में बहुत कम बैठती है तो उद्योग कच्चे माल के स्रोत के पास स्थापित होगा, जैसे चीनी उद्योग, क्योंकि गन्ने में से १०-१५% चीनी ही निकलती है। इसके विपरीत, यदि कच्चे माल तथा निर्मित माल में कोई अन्तर नहीं होता तो उद्योग बाजार के निकट स्थापित होगा, जैसे ईंटों का उद्योग।

(२) श्रम की उपलब्धि (Availability of labour)—जिन क्षेत्रों या स्थानों में सस्ते तथा कुशल श्रम पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं वहाँ उद्योग केन्द्रित होते हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई नया उद्योगपति चूड़ी या तालों का कार्य करना चाहता है तो वह फिरोजाबाद या अलीगढ़ न जाये करेगा क्योंकि इन स्थानों में उद्योग से सम्बन्धित कुशल श्रम मिलेगा।

(३) पूँजी प्राप्ति की पर्याप्त सुविधाएँ (Adequate facilities of capital)—बड़े पैमाने के उद्योगों में बहुत पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। अत: उद्योग उन स्थानों या क्षेत्रों में केन्द्रित होने की प्रवृत्ति रखते हैं जहाँ पर उचित ब्याज दर पर पर्याप्त मात्रा में पूँजी प्राप्य हो अर्थात् जहाँ बैंकों, बीमा कम्पनियों इत्यादि की अच्छी सुविधाएँ हों। यही कारण है कि बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद, इत्यादि स्थानों में विभिन्न प्रकार के उद्योग केन्द्रित हैं।

(४) यातायात व संवादवहन की अच्छी सुविधाएँ (Good facilities of transport and communication)—यातायात की सस्ती तथा शीघ्रगामी सुविधाओं की सहायता से कच्चा माल, श्रम, निर्मित माल, औजार, मशीनें, इत्यादि एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से भेजा जा सकता है। संवादवहन की सहायता से निर्मित माल को बेचने या कच्चे माल को खरीदने में, तथा बाजारों के भावों को शीघ्रता से ज्ञात करने में सुविधा मिलती है। स्पष्ट है जिन स्थानों में ये सब सुविधाएँ अच्छी मात्रा में प्राप्त हैं वहाँ उद्योग केन्द्रित होंगे। यातायात तथा संवादवहन की अच्छी सुविधाओं के कारण ही बम्बई, कलकत्ता, कानपुर तथा अहमदाबाद में विभिन्न प्रकार के उद्योग केन्द्रित हैं।

III राजनैतिक कारण तथा सरकारी सहायता (Political factors and State's help)

प्राय: एक देश की सरकार अपने पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ देती है, जैसे—करों में छूट, कम ब्याज पर ऋण की व्यवस्था, सस्ते यातायात की सुविधाएँ, इत्यादि। जिन क्षेत्रों या स्थानों में सरकार इस प्रकार का प्रोत्साहन देती है वहाँ उद्योगों के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति होती है।

IV. अन्य कारण (Other Factors)

प्राकृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणो के अतिरिक्त कुछ अन्य विविध कारण भी स्थानीयकरण को प्रोत्साहित करते हैं जो निम्नलिखित है

(१) धार्मिक तथा सामाजिक कारण (Religious and social factors)—कुछ उद्योग-धन्धे तीर्थ-स्थानो तथा सामाजिक क्रियाओ के केन्द्रो मे स्थापित हो जाते हैं। मूर्तियाँ तथा मालाएँ बनाने के उद्योगो का केन्द्रीयकरण बनारस तथा मथुरा मे इसी कारण है। (२) सैनिक कारण (Defence factor)—युद्ध से सम्बन्धित सामान बनाने वाले उद्योगो को उन स्थानों पर केंद्रित किया जाता है जहाँ पर आक्रमण से सुरक्षा हो। (३) 'पूर्व आरम्भ का बल' (Momentum of an early start)—किसी स्थान पर जब एक उद्योग पहले से स्थापित हो जाता है तो वहाँ पर समय के साथ अन्य सुविधाएँ भी विकसित हो जाती हैं और वह स्थान उद्योग विशेष के लिए ख्याति प्राप्त कर लेता है। इन सब बातो के कारण वस्तु विशेष को निर्मित करने वाली अन्य फर्में भी वहा केन्द्रित हो जाती है। अलीगढ म ताला उद्योग तथा मेरठ म कैंची उद्योग इनके उदाहरण हैं।

उद्योगो के स्थानीयकरण क कारणों के सम्बन्ध म यह बात ध्यान म रखनी चाहिए कि किसी स्थान पर किसी उद्योग का स्थानीयकरण केवल एक कारण से नही वरन अनेक कारणो के परिणामस्वरूप होता है।

स्थानीयकरण से लाभ (Advantages of Localisation)

(१) स्थान तथा वस्तु की प्रसिद्धि (Reputation of the place and the commodity)—जब कोई उद्योग एक स्थान पर केंद्रित हो जाता है तो वह स्थान उस उद्योग के लिए प्रसिद्ध हो जाता है तथा उद्योग की वस्तु सुगमता से देश-विदेशो मे बिक जाती है। उदाहरणार्थ, अलीगढ के ताले देश के किसी भी कोने म आसानी से बिक जाते हैं। स्विट्जरलैण्ड की हाथ की घडिया ससार के प्रत्येक देश म सुगमता से बिकती है।

(२) श्रमिको की क्षमता मे वृद्धि (Increase in workers' efficiency)—एक स्थान पर एक ही प्रकार का कार्य बराबर करते रहने से श्रमिक की कुशलता बढ जाती है। बच्चे भी बिना अधिक प्रयत्न के कार्य को अपने माता पिता से सीख लेते हैं। इस प्रकार श्रमिको की कुशलता पीढी-दर-पीढी बढती जाती है।

(३) कुशल श्रमिको की नियमित पूर्ति (Regular supply of skilled workers)—स्थानीयकरण के स्थान पर कार्य करने वाले श्रमिक तो सम्बन्धित उद्योग म दक्ष होते ही हैं, इसके अतिरिक्त इस स्थान पर कार्य की तलाश मे चारों तरफ से वे ही श्रमिक आते हैं, जो उस कार्य को जानते हैं। अत स्थान विशेष सम्बन्धित उद्योग के कुशल श्रमिक का एक अच्छा बाजार बन जाता है। इस प्रकार उद्योग के लिए कुशल श्रमिको की पूर्ति सदैव नियमित रूप से बनी रहती है।

(४) पूँजी की पर्याप्त सुविधाएँ (Adequate facilities of capital)—जब किसी स्थान पर किसी उद्योग या उद्योगो का स्थानीयकरण हो जाता है तो वहाँ पर्याप्त सख्या मे बैंक, बीमा कम्पनिया तथा अन्य आर्थिक सस्थाएँ स्थापित हो जाती है। अत ऐसे स्थान पर उद्योगो को पर्याप्त मात्रा मे तथा उचित दर पर पूँजी प्राप्त होती है।

(५) आधुनिक तथा नवीनतम मशीनों का प्रयोग (Use of modern and latest machinery)—किसी स्थान पर उद्योग विशेष का केन्द्रीयकरण हो जाने से उद्योग की विभिन्न इकाइयो मे स्वस्थ प्रतियोगिता होने लगती है। परिणामस्वरूप प्रत्येक इकाई आधुनिक तथा नवीनतम मशीनो का प्रयोग करके अपनी लागत को कम करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार नवीनतम मशीनो के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलता है।

केन्द्रीयकरण हो जाता है जबकि अन्य भाग या क्षेत्र पिछड़े हुए तथा अविकसित रह जाते हैं। इस प्रकार देश का आर्थिक विकास असन्तुलित होता है तथा धन का क्षेत्रीय वितरण असमान हो जाता है। असन्तुलित आर्थिक विकास देश की एकता में बाधक सिद्ध हो सकता है क्योंकि देश के पिछड़े क्षेत्रों के लोग विकसित क्षेत्रों के प्रति ईर्ष्या-भावना रख सकते हैं।

(३) श्रमिकों की गतिशीलता में कमी (Lack of mobility of workers)—स्थानीयकरण के कारण श्रमिक एक ही प्रकार के कार्य में निपुण हो जाते हैं, जबकि अन्य प्रकार के कार्यों का सामान्य ज्ञान भी उन्हें नहीं हो पाता है। अतः उद्योग विशेष को छोड़कर दूसरे उद्योगों में जाना उनके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है और उनकी गतिशीलता में कमी हो जाती है।

(४) आर्थिक सकट तथा बेरोजगारी का डर (Danger of economic crisis and unemployment)—स्थानीयकरण के कारण जब एक क्षेत्र या स्थान एक विशेष उद्योग पर ही निर्भर करने लगता है तो वह आर्थिक दृष्टि से असुरक्षित हो जाता है। किसी कारणवश यदि उद्योग में मन्दी आ जाती है तो श्रमिक बेकार हो जाते हैं और उन्हें आर्थिक सकट का सामना करना पड़ता है। श्रमिकों में बेरोजगारी फैल जाने के कारण उनकी आवश्यकता की पूर्ति करने वाले दुकानदारों की बिक्री बहुत कम हो जाती है और परिणामस्वरूप समस्त क्षेत्र में मन्दी तथा आर्थिक सकट छा जाता है।

(५) सामरिक दृष्टि से अनुचित (Undesirable from the military point of view)—युद्ध तथा सुरक्षा की दृष्टि से उद्योगों को कुछ स्थानों में केन्द्रित करना ठीक नहीं है। युद्ध के समय शत्रु ऐसे स्थानों को ही सर्वप्रथम नष्ट करने का प्रयत्न करता है। अतः यह कहना ठीक है कि 'सभी अण्डों को एक टोकरी में रखना बुद्धिमानी नहीं है।'

(६) औद्योगिक केन्द्रों के सभी दोष (All the defects of industrial centres)—स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो जाते हैं जिनमें कारखाना प्रणाली के सभी दोष उत्पन्न हो जाते हैं। श्रमिकों की सख्या अधिक हो जाने से मकानों की कमी हो जाती है, भीड़-भाड़ (over-crowding) हो जाती है, सभी श्रमिक अपने परिवारों को नहीं रख पाते हैं जिसके कारण नैतिक पतन के शिकार की सम्भावना बनी रहती है, अनेक कारखानों के कारण वातावरण दूषित हो जाता है जिसका श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(७) कुछ दशाओं में श्रम महँगा तथा कुछ में सस्ता हो सकता है (Labour may be costlier in some cases while cheap in others)—स्थानीयकरण के स्थान पर कुछ दशाओं में विशेष प्रकार का कुशल मनुष्य-श्रम (male workers) ही कार्य कर सकता है। उदाहरणार्थ, लोहा तथा इस्पात उद्योग में कार्य करने वाला अधिकांश श्रम पुरुष ही होता है और उन्हें ऊँची मजदूरियाँ देनी पड़ती हैं क्योंकि स्त्रियों तथा बच्चों के लिए रोजगार के अवसर बहुत कम होते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों में श्रम महँगा होता है।

इसके विपरीत स्थानीयकरण के कारण कुछ क्षेत्रों में श्रमिकों की अत्यधिक पूर्ति हो सकती है क्योंकि अन्य क्षेत्रों से श्रमिक बड़ी संख्या में आ सकते हैं। ऐसी दशा में श्रमिकों की अत्यधिक पूर्ति के कारण मजदूरियाँ सस्ती हो सकती हैं।

(८) बाह्य अबचतें (External diseconomies)—अत्यधिक स्थानीयकरण बाह्य अबचतों को जन्म देकर उत्पादन-लागत को बढ़ा सकता है। यदि किसी स्थान पर एक सीमा से अधिक उद्योगों का केन्द्रीयकरण हो जाता है तो वहाँ पर 'बाह्य बचतों' के स्थान पर बाह्य अबचतें प्राप्त होने लगती हैं, जैसे यातायात के साधन क्षेत्र की आवश्यकता की दृष्टि से कम पड़ने लगते हैं और उनकी भाड़े की दर बढ़ जाती है। भूमि की कमी होने लगती है और भूमियों के किराये तथा कीमतें अत्यधिक बढ़ जाती हैं। क्षेत्र के सभी बैंक मिलकर भी पूँजी की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। इसी प्रकार मुख्य उद्योग की किसी भी कठिनाई का प्रभाव सहायक तथा पूरक उद्योगों पर बुरा पड़ता है।

(६) रहन सहन की लागत का ऊँचा हो जाना (Living cost rise) —अत्यधिक स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप 'वाह्य अवचनों' के कारण वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाता है, मकानों के किराये बहुत ऊँचे हो जाते हैं और इस प्रकार लोगों के रहन सहन की लागत ऊँची हो जाती है। इससे सामान्य तथा मध्य वर्ग के लोगों को बड़ी कठिनाई होती है।

स्थानीयकरण के दोषों तथा हानियों को कैसे दूर किया जा सकता है? (How to Avoid Evils and Dangers of Localisation?)

स्थानीयकरण के दोषों को दूर करने का मुख्य उपाय उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण या विस्थानीयकरण (decentralisation or delocalisation) है। इसका अर्थ है कि उद्योगों को देश के विभिन्न भागों तथा स्थानों में स्थापित करना। यदि उद्योगों को पुराने औद्योगिक केन्द्रों में या नए औद्योगिक केन्द्रों में केन्द्रित न किया जाय बल्कि उन्हें एक न्यायसंगत तथा सुनिश्चित योजना के अनुसार देश के विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में फैला दिया जाय तो—

(i) औद्योगिक केन्द्रों में मकानों, भीड़भाड़, गन्दगी, इत्यादि की समस्याओं को दूर किया जा सकेगा। (ii) अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा, अधिक आर्थिक संकट से बचाव होगा तथा उन्हें आर्थिक सुरक्षा मिलेगी। (iii) युद्ध के समय में उद्योग अधिक सुरक्षित रहेंगे। (iv) उत्पादन लागत में भी कमी होगी तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होंगी। (v) देश का सन्तुलित आर्थिक विकास होगा। इससे लोगों को न केवल आर्थिक सुरक्षा ही प्राप्त होगी वरन् देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों में एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या भाव कम होगा और उनमें एकता तथा सहयोग की भावना बढ़ेगी।

इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखने की है कि जो उद्योग पुराने केन्द्रों में स्थापित हो चुके हैं उन्हें उठाकर दूसरे स्थानों या क्षेत्रों में ले जाना कठिन है। ऐसी स्थिति में पुराने औद्योगिक केन्द्रों में स्थानीयकरण के दोषों को श्रमिकों की स्वच्छ बस्तियों का निर्माण, कारखाना कानूनों का उचित पालन, श्रमिक हितकारी कार्यों तथा सामाजिक सुरक्षा की अच्छी व्यवस्था इत्यादि द्वारा बहुत कुछ दूर किया जा सकता है।

औद्योगिक विकेन्द्रीयकरण या विस्थानीयकरण
(INDUSTRIAL DECENTRALISATION OR DELOCALISATION)

उद्योगों का स्थानीयकरण जोखिमपूर्ण होता है तथा उसकी अनेक हानियाँ हैं। इन हानियों को दूर करने की दृष्टि से औद्योगीकरण की आधुनिक प्रवृत्ति उद्योगों को समस्त देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा स्थानों पर फैलाने की होती है ताकि देश का सन्तुलित औद्योगिक विकास हो सके। ऐसी नीति देश के हित में होती है।

विकेन्द्रीयकरण का अर्थ (Meaning of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण स्थानीयकरण की विपरीत दशा को बताता है। स्थानीयकरण में उद्योगों की एक स्थान पर केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है, जबकि विकेन्द्रीयकरण में उद्योग एक जगह पर केन्द्रित न करके देश के विभिन्न भागों में दूर-दूर तक स्थापित किए जाते हैं। उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण का अर्थ है उद्योगों का एक स्थान या क्षेत्र में केन्द्रित न होना, बल्कि देश में दूर-दूर तक तथा पृथक्-पृथक् स्थानों पर स्थापित होना।

विकेन्द्रीयकरण के कारण (Causes of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण का मुख्य कारण स्थानीयकरण के दोषों को दूर करना तथा देश के सन्तुलित आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना है। इन कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्त्व भी बढ़ती हुई विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी हैं। मुख्य कारण अग्र लिखित हैं:

(१) देश का सन्तुलित आर्थिक विकास (Balanced economic development of the country)—लगभग प्रत्येक देश की आधुनिक औद्योगिक नीति उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण की है। स्थानीयकरण के अनेक दोष हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि उद्योगों को देश के विभिन्न भागों तथा स्थानों में फैला दिया जाय। ऐसा करने से देश का सन्तुलित आर्थिक विकास होगा तथा लोगों में एकता और सहयोग की भावना जाग्रत होगी।

(२) यातायात व संवादवहन के साधनों का विकास (Development of means of transport and communications)—आज के युग में यातायात तथा संवादवहन के साधनों का इतना विकास हो चुका है कि उद्योगों को आवश्यक रूप से कच्चे माल के स्थानों तथा बाजारों के निकट स्थापित करना आवश्यक नहीं रह गया है। अब कच्चे माल, निर्मित माल, मशीनों तथा औजारों को देश-विदेश के अन्दर दूर-दूर तक लाया ले जाया जा सकता है। श्रमिकों की गतिशीलता में अत्यन्त सुविधा हो गयी है। परिवहन तथा संचार में विकास के परिणामस्वरूप ही बहुत से विदेशी उद्योगपति भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार के उद्योग खोल सके हैं।

(३) विद्युत शक्ति का विकास (Development of electric power)—जब तक बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक उद्योग धन्धे प्रायः कोयले के क्षेत्रों के आस-पास ही स्थापित होते थे। परन्तु बिजली के उत्पादन से विकेन्द्रीयकरण को बहुत प्रोत्साहन मिला है। बिजली को सस्ती लागत पर देश के अन्दर दूर-दूर तक ले जाया जा सकता है। अतः उद्योगों को विद्युत शक्ति देश के किसी भाग में भी आसानी से प्राप्त हो सकती है जिससे उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण में सहायता मिलती है।

(४) सामरिक कारण (Strategic and military reasons)—आज की युद्ध प्रणाली में बमबारी द्वारा थोड़े समय में ही बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों को शत्रु द्वारा नष्ट किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक देश की सरकार यह ध्यान रखती है कि उद्योगों को थोड़े स्थानों पर केन्द्रित न होने दिया जाय। उन्हें देश के विभिन्न भागों में फैला दिया जाय जिससे युद्ध के समय उनके सुरक्षित रहने की सम्भावनाएँ अधिक हो जाती हैं।

(५) पुराने औद्योगिक केन्द्रों की असुविधाएँ (Inconveniences of old industrial centres)—पुराने औद्योगिक केन्द्रों में भूमि की कमी के कारण उनके किराये बहुत बढ़ जाते हैं, स्थानीय कर ऊँचे हो जाते हैं, गन्दे तथा तंग घरों में रहने से श्रमिकों की कार्यक्षमता कम हो जाती है। इन सब कारणों से उद्योगपति के लिए उत्पादन-लागत बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में जहाँ तक सम्भव होता है उद्योगपति पुराने औद्योगिक केन्द्रों में नये उद्योग स्थापित नहीं करते हैं, वे इन केन्द्रों से दूर नए कारखानों को स्थापित करते हैं। स्पष्ट है कि विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बल मिलता है।

(६) मशीनों का बढ़ता हुआ प्रयोग (Increasing use of machines)—विभिन्न प्रकार की मशीनों तथा यन्त्रों के बढ़ते हुए प्रयोग ने भी विकेन्द्रीयकरण को बल दिया है। मशीनों के प्रयोग से कई उद्योगों में कुशल श्रमिकों पर अत्यधिक निर्भरता कम हो गयी है और ऐसी स्थिति में यह आवश्यक नहीं रहा गया है कि उद्योगों को उन स्थानों पर स्थापित किया जाय जहाँ पर कुशल श्रमिकों की पर्याप्त पूर्ति हो। परन्तु अभी यह मानना पड़ेगा कि श्रमिकों की पर्याप्त पूर्ति विकेन्द्रीयकरण के मार्ग में एक महत्वपूर्ण रुकावट है।

(७) आर्थिक सुरक्षा (Economic security)—बड़े उद्योगों, छोटे तथा कुटीर उद्योगों को देश के विभिन्न भागों में फैलाने से अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा और लोगों को आर्थिक सुरक्षा मिलेगी। अतः आर्थिक सुरक्षा की भावना ने भी विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन दिया है।

अध्याय ३२ को परिशिष्ट
(APPENDIX TO CHAPTER 32)

वेबर का स्थान-निर्धारण सिद्धान्त
(WEBER'S THEORY OF LOCATION)

प्राक्कथन (Introduction)

किसी उद्योग को प्रारम्भ करने के लिए उसके स्थापित करने का स्थान-निर्धारण (location) महत्वपूर्ण है क्योंकि यह बात वस्तु की उत्पादन लागत को प्रभावित करती है। एक उत्पादक या साहसी ऐसे स्थान को चुनने का प्रयत्न करेगा जहाँ पर वस्तु की उत्पादन लागत न्यूनतम हो।

'स्थान-निर्धारण सिद्धान्त' (theory of location) उन तत्वों की विवेचना करता है जोकि किसी उद्योग को स्थान विशेष की स्थापना के लिए अनुकूलतम स्थान या स्थानों (optimum place or places) को बताता है।

जर्मनी के अर्थशास्त्री अलफ्रेड वबर (Alfred Weber) प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने १६०६ में जर्मन भाषा में अपनी लिखी पुस्तक 'Theory of the Location of Industries' में स्थान निर्धारण का यथाक्रम (systematic) सिद्धान्त प्रतिपादित किया। १६२६ में उनकी पुस्तक के अँग्रेजी भाषा में अनुवाद होने के पश्चात् से ही स्थान निर्धारण सिद्धान्त के आधुनिक विवेचन का श्रीगणेश हुआ। यद्यपि वेबर का सिद्धान्त सबसे पुराना है, परन्तु आज भी इसका महत्व है।

वेबर का स्थान-निर्धारण का सिद्धान्त (Weber's Theory of Location)

वेबर का 'विशुद्ध सिद्धान्त' (pure theory) उन सामान्य आर्थिक तत्वों पर प्रकाश डालता है जो कि किसी उद्योग को विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों (different geographical regions) की ओर खींचते हैं और अन्त में उद्योग विशेष की स्थापना को क्षेत्र विशेष में निर्धारित करते हैं। वेबर का सिद्धान्त निगमन तर्क (deductive logic) पर आधारित है।

वेबर स्थान-निर्धारण के कारणों को दो मोटे वर्गों में बाँटते हैं— I. प्रमुख कारण : क्षेत्रिक तत्व (*Primary Causes Regional Factors*), तथा II सहायक या गौण कारण : 'समूहीकरण' और 'असमूहीकरण' के तत्व (*Secondary Causes · 'Agglomerating' and 'Deglomerating' factors*)। उपर्युक्त दोनों कारणों का विवेचन नीचे किया गया है।

I. प्रमुख कारण क्षेत्रिक तत्व (Primary Causes : Regional Factors)

वेबर ने उद्योगों के स्थान-निर्धारण के सम्बन्ध में दो प्रमुख सामान्य कारण बताये— (i) परिवहन लागतें (transport costs) तथा (ii) श्रम लागतें (labour costs)। विश्लेषण की सुविधा के लिए प्रारम्भ में सभी क्षेत्रों में श्रम-लागतों को समान मान लिया जाता है; इस मान्यता के आधार पर किसी उद्योग का स्थान-निर्धारण 'परिवहन लागतों' पर निर्भर करेगा; उद्योग विशेष उस स्थान पर स्थापित किया जायेगा जहाँ पर कि 'परिवहन लागतें' न्यूनतम हों। परिवहन लागत का अर्थ है—कच्चे माल को उनके स्रोत (source) से फैक्ट्री तक ले जाने की लागत तथा अन्तिम निर्मित वस्तु (finished product) को फैक्ट्री से बाजार तक ले जाने की लागत। परिवहन लागत 'स्थान की दूरी' तथा 'कच्चे माल या निर्मित माल के वजन' पर निर्भर करेगी। वेबर ने परिवहन लागत को द्रव्य में न बताकर टन मील' (*ton-miles*) में बताया, 'टन' वजन का प्रतीक है और 'मील' दूरी का।[1] एक उद्योग को स्थापित करने का सर्वोत्तम (best) स्थान वह होगा जहाँ पर कि परिवहन लागत अर्थात् टन-मील पर न्यूनतम होगी।

वेबर ने कच्चे माल की दो किस्में बतायी—(i) सर्वव्यापक वस्तुएँ (ubiquities) ये वस्तुएँ सब जगह आसानी से प्राप्त होती हैं, उदाहरणार्थ, मिट्टी (clay), ईंटें, पानी, इत्यादि। (ii) स्थानीय कच्चा माल (localised raw materials), ये वस्तुएँ केवल विशेष स्थानों में ही

[1] वस्तु के १ टन वजन को १०० मील की दूरी तक भेजने की परिवहन लागत को वेबर ने 'टन-मील' कहा, उसे द्रव्य में व्यक्त नहीं किया।

पायी जाती हैं, उदाहरणार्थ, गन्ना, कच्चा लोहा (iron ore), रुई, कोयला, इत्यादि। चूंकि 'सर्वव्यापक वस्तुएँ' आसानी से सभी जगह प्राप्त होती हैं, इसलिए वे उद्योगों के स्थान निर्धारण में कोई विशेष प्रभाव नहीं डालतीं, केवल 'स्थानिक-वस्तुएँ' ही स्थान-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करती हैं।

वेबर 'स्थानीय वस्तुओं' को वजन-खोने (weight losing) के आधार पर दो किस्मों में बाँटते हैं (i) 'विशुद्ध वस्तुएँ' (*pure materials*), ऐसी वस्तुएँ उत्पादन प्रक्रिया (porductive process) में वजन नहीं खोती या उनका वजन बहुत ही कम घटता है, अर्थात् निर्मित वस्तु का वजन कच्चे माल के वजन के लगभग बराबर रहता है या उसमें बहुत थोड़ी कमी होती है, जैसे रुई या ऊन से सूती या ऊनी कपडे का निर्माण। (ii) वजन खोने वाले माल (*weight-losing materials*), ऐसी वस्तुएँ उत्पादन प्रक्रिया में बहुत अधिक वजन खोती हैं अर्थात् निर्मित वस्तु का वजन कच्चे माल की तुलना में बहुत कम हो जाता है। जैसे गन्ने से चीनी का बनाना, चीनी बनाने की प्रक्रिया में गन्ने का लगभग ८५% से ९०% तक वजन घट जाता है।

विशुद्ध वस्तुएँ वजन खोने वाली नहीं होती; इसलिए विशुद्ध वस्तुओं के सम्बन्ध में यह अमहत्त्वपूर्ण है कि फैक्ट्री कच्चे माल के स्रोत (sources of raw materials) के पास स्थापित हो या 'बाजार' (market) के पास क्योंकि प्रत्येक दशा में से जाने वाला वजन लगभग समान होगा। यदि कच्चा माल 'वजन खोने वाला' है तो उद्योग 'कच्चे माल के स्रोत' के पास स्थापित होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में परिवहन-लागत में बचत होगी।

उद्योग 'कच्चे माल के स्रोत' के पास स्थापित होगा अर्थात् 'उद्योग का स्थान-निर्धारण कच्चे माल के प्रति उन्मुख' (*material-oriented location*) होगा या 'बाजार' के पास स्थापित होगा अर्थात् उद्योग का स्थान-निर्धारण बाजार के प्रति उन्मुख' (*market-oriented location*) होगा, इस बात को जानने के लिए वेबर ने 'माल-निर्देशांक (*material index*) के विचार को प्रस्तुत किया।

$$\text{माल निर्देशांक (Material index)} = \frac{\text{स्थानिक वस्तु का वजन (weight of the localised material)}}{\text{निर्मित वस्तु का वजन (weight of the finished commodity)}}$$

यदि '*material index*' ऊँचो है तो उद्योग, कच्चे माल के स्रोत के पास स्थापित होगा, अर्थात् उद्योग '*material oriented* होगा, इसके विपरीत यदि '*material-index*' नीची है तो उद्योग बाजार के पास स्थापित होगा अर्थात् उद्योग *marked oriented*' होगा।

अभी तक हमने साधन-लागत (factor costs) को सब जगह समान मान रखा था और ऐसी दशा में एक उद्योग की स्थापना के लिए वह स्थान सर्वोत्तम होगा जहाँ पर 'परिवहन लागत' न्यूनतम है। अब हम साधन-लागत के समान होने की मान्यता को हटाते हैं। साधन-लागत के अन्तर्गत वेबर ने मुख्यतया 'श्रम-लागत' (labour cost) पर ध्यान दिया। उद्योग विशेष के लिए एक स्थान परिवहन-लागत की दृष्टि से सर्वोत्तम हो सकता है, परन्तु यह स्थान निर्धारण की दृष्टि से सबसे अच्छा नहीं होगा यदि वहाँ पर साधन-लागत अर्थात् श्रम-लागत बहुत अधिक है न्यूनतम परिवहन लागत की तुलना में। दूसरे शब्दों में, परिवहन लागत के अतिरिक्त सस्ते श्रम केन्द्र (cheaper labour centre) उद्योगों को अपनी ओर खींचते हैं। वेबर के अनुसार उद्योगों के स्थान-निर्धारण के सम्बन्ध में सस्ती श्रम-लागत की आकर्षक शक्ति निम्न दो टेक्नीकल बातों पर निर्भर करती है।

(i) 'श्रम-लागत निर्देशांक (labour cost index)

$$\text{Labour cost index} = \frac{\text{Labour cost}}{\text{Weight of the product}}$$

(ii) लोकेशनल वजन (Locational weight)—उत्पादन की सम्पूर्ण क्रिया म वस्तु में जिस वजन का यातायात (transportation) किया जाता है उसको 'लोकेशनल वजन' का नाम दिया गया। 'श्रम-लागत' और 'लोकेशनल वजन' के अनुपात को वेबर ने 'श्रम अंक' (labour coefficient) कहा,

$$\text{Labour coefficient} = \frac{\text{Labour cost}}{\text{Locational weight}}$$

अत वेबर के अनुसार उद्योग के स्थान निर्धारण के सम्बन्ध म श्रम-लागत की आकर्षन शक्ति निर्भर करती है 'labour cost index' तथा 'labour coefficient' पर।

II सहायक कारण 'समूहीकरण' तथा 'असमूहीकरण के तत्व' (Secondary Causes 'Agglomerating' and 'Deglomerating' factors)

वेबर ने उद्योगों के स्थान निर्धारण के कुछ 'सहायक कारण' भी बताये। मुख्य कारणों के परिणामस्वरूप जब उद्योग एक स्थान पर केन्द्रित (concentrate) हो जाता है तो उसको बाह्य बचतों (external economies) के रूप म अनेक लाभ प्राप्त होते है जिन्हें 'समूहीकरण' (agglomeration) कहा जाता है। जिन उद्योगों की 'कुल लागतों' म 'निर्माण-लागतों' (manufacturing costs) का अनुपात अधिक होता है, उन उद्योगों की एक स्थान पर 'समूहीकरण' की प्रवृत्ति बाह्य बचतों के परिणामस्वरूप अधिक होती है। 'असमूहीकरण' (deglomeration) की प्रवृत्ति 'समूहीकरण' की उल्टी है। एक स्थान पर उद्योगों के केन्द्रित हो जाने के कारण कई दशाओं मे 'स्थानीय करों' (local taxes), भूमि की कीमतों, इत्यादि मे बहुत वृद्धि हो जाती है और परिणामस्वरूप उत्पादन लागत बढ़ जाती है, ऐसी दशा मे उद्योग के 'विकेन्द्रीयकरण' (decentralisation) या 'असमूहीकरण' के कारण उत्पादन-लागत मे कमी आती है। 'समूहीकरण' तथा 'असमूहीकरण' की प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे के विपरीत दिशाओं मे कार्य करती है।

वेबर के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Weber's Theory of Location)

आलोचना का केन्द्र बिन्दु (focal point) यह है कि वेबर का सिद्धान्त 'आवश्यकता से अधिक सरल' (over-simplified) है और स्थान निर्धारण की जटिल शक्तियों (complex forces) पर उचित प्रकाश नही डालता, इस प्रकार यह अवास्तविक (unrealistic) है। मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं

(१) वेबर ने यातायात लागत म केवल दो बातो पर ही ध्यान दिया—वजन (weight) तथा दूरी (distance)। (अ) वास्तव म यातायात की लागत, इन दो बातो के अतिरिक्त, यातायात के साधनो की किस्म (जैसे—मोटर, रेल, हवाई-जहाज, जलयान), ले जाने वाली वस्तुओं का गुण (quality), क्षेत्र विशेष का स्वभाव (अर्थात् चढाव-उतार), इत्यादि बातो पर भी निर्भर करती है। वेबर ने इन तत्वों की उपेक्षा की। (ब) वेबर ने यातायात लागत का विवेचन 'टन-मील' अर्थात् 'वजन तथा दूरी' (weight and distance) के शब्दों मे किया जबकि उसका विवेचन 'मौद्रिक लागतों (monetary costs) के शब्दों मे होना चाहिए।

(२) वेबर ने स्थान निर्धारण के कारणों को दो भागों मे बाँटा—'मुख्य कारण' (Primary causes) अर्थात् यातायात-लागत तथा श्रम-लागत, और 'गौण कारण' (Secondary causes) अर्थात् 'समूहीकरण' तथा 'असमूहीकरण' के तत्व, एड्रीस प्रीडोल (Andrees Predohl) के अनुसार यह वर्गीकरण मनमाना (arbitrary) है। उदाहरणार्थ, मुख्य कारणो म, 'प्रबन्ध की लागतों (costs of management) या पूँजी लागतों (costs of capital) को शामिल क्यों नही किया जा सकता है?

(३) वेबर ने कच्चे माल की दो किस्मे बतायीं—'सब जगह पाया जाने वाला कच्चा माल' (ubiquities) तथा 'स्थानिक-कच्चा माल' (localised material)। यह वर्गीकरण भी उचित नहीं बताया जाता, क्योंकि व्यवहार म सभी प्रकार का कच्चा माल बहुत-से विशेष बिन्दुओं या स्थानों (fixed points or places) से ही प्राप्त होता है।

(४) डेनीसन (Dennison) के अनुसार इस सिद्धान्त मे टेक्नीकल बातों पर अत्यधिक जोर है अर्थात् यह 'टेक्नीकल अकों' (technical coefficients) के शब्दो मे बनाया गया है, जबकि मौद्रिक लागतो तथा कीमतो पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है।

(५) यह सिद्धान्त दी हुई दशाओ के अन्तर्गत ही लागू होता है तथा यह नही बताता कि परिवर्तनशील दशाओं में उद्योगो के स्थान-निर्धारण पर क्या प्रभाव होगा; सक्षेप मे, यह स्थान-निर्धारण की परिवर्तनशीलता (dynamics of location) पर ध्यान नहीं देता।

(६) औद्योगिक स्थान-निर्धारण अनार्थिक तत्वो (non-economic factors) से भी प्रभावित होता है। दूसरे शब्दों मे, वेबर का 'विशुद्ध सिद्धान्त' (pure theory) स्थान-निर्धारण पर ऐतिहासिक तथा सामाजिक (social) शक्तियों के प्रभावों की व्याख्या नही कर सकता।

निष्कर्ष (Conclusion)

वेबर के सिद्धान्त के अनेक दोष तथा सीमाओ के होते हुए भी इस सिद्धान्त को आज भी मान्यता प्राप्त है।

प्रश्न

१. उद्योगों का स्थानीयकरण क्या है? इसकी लाभ तथा हानियाँ प्रस्तुत कीजिए।
What is localisation of industries? Give its advantages and disadvantages.
(Alld, B Com, I, 1971)

२. उद्योगों के स्थानीयकरण का अर्थ बताइए। उद्योगो के स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए।
Define the localisation of industries Explain briefly the factors affecting localisation of industries

३. 'उद्योगों का स्थानीयकरण एक अमिश्रित वरदान नही है।' इस कथन की विवेचना कीजिए।
"Localisation of industries is not an unmixed blessing" Discuss
[सकेत—पहले स्थानीयकरण का अर्थ बताइए। स्थानीयकरण के लाभ के साथ इसके अनेक दोष या हानियाँ है। इसलिए यह एक 'अमिश्रित वरदान' नहीं है। स्थानीयकरण के लाभ तथा हानियो को बताइए।]

४. उद्योगों के स्थानीयकरण के कारणों की विवेचना कीजिए। ऐसे उद्योगो को कौन-से लाभ और हानियाँ होती हैं?
Discuss the causes of localisation of industries and the advantages and disadvantages obtained to such industries
(Jiwaji B A I, 1968)

५. उद्योगों के स्थानीयकरण की परिभाषा दीजिए। स्थानीयकरण के लाभ बताइए। इसकी हानियो को आप कैसे दूर कर सकते हैं?
Define location of industries What are its advantages? How the evils of location can be removed?
[सकेत—तीसरे भाग मे बताइए कि विकेन्द्रीयकरण द्वारा स्थानीयकरण के दोष दूर किये जा सकते हैं।]

६. उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण का अर्थ बताइए। आज के युग मे विकेन्द्रीयकरण की बढती हुई प्रवृत्ति क्यों पायी जाती है? विकेन्द्रीयकरण कहाँ तक स्थानीयकरण के दोषो को दूर कर सकता है?
Define decentralisation of industries Why is the increasing tendency toward decentralisation found in modern age? How far decentralisation can remove the evils of localisation?

७. औद्योगिक स्थान-निर्धारण के वेबर सिद्धान्त के प्रमुख लक्षणो का विवेचना कीजिए।
Discuss the main features of Weber's theory of industrial location *(Allahabad, 1970)*

उत्पादन—२
(Production)

उत्पादन का अर्थ तथा उत्पत्ति के साधन
[THE CONCEPT OF PRODUCTION AND FACTORS OF PRODUCTION]

उत्पादन का अर्थ
(MEANING OF PRODUCTION)

एडम स्मिथ तथा अन्य प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन को 'भौतिक वस्तुओं का सृजन' (creation of material goods) बताकर एक संकुचित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यह सर्व विदित वैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य पदार्थ (matter) को न तो बना सकता है और न नष्ट ही कर सकता है, वह केवल उसका रूप बदल सकता है, अतः प्राचीन अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी उत्पादन की परिभाषा दोषपूर्ण होने के कारण मान्य नहीं है।

कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पादन का अर्थ उपयोगिता का सृजन (creation of utility) बताते है। प्रो० मेहता 'उपयोगिता का सृजन' के स्थान पर 'उपयोगिता में वृद्धि' कहना अधिक पसन्द करते है।

कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात से सहमत नहीं है कि उत्पादन को 'उपयोगिता का सृजन' कहकर परिभाषित किया जाय। इनके अनुसार उत्पादन के लिए, 'उपयोगिता में वृद्धि' के साथ साथ 'विनिमय मूल्य' (price) का होना भी आवश्यक है। किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है परन्तु यदि उसका विनिमय मूल्य नहीं है तो उपयोगिता सृजन' या 'उपयोगिता-वृद्धि' के इस कार्य को उत्पादन नहीं कहा जायेगा।[1] प्रो० टोमस (Thomas) के अनुसार, उत्पादन की सर्वोत्तम परिभाषा मूल्यों का सृजन' (creation of values) है। फेयरचाइल्ड (Fairchild), केयरनक्रॉस (Cairncross), मेयर्स (Meyers), इत्यादि अन्य आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पादन को इसी प्रकार से परिभाषित करते है। अतः अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन का अर्थ केवल उपयोगिता का सृजन' या 'उपयोगिता में वृद्धि' नहीं है वरन 'मूल्यों का सृजन' (creation of values), या आर्थिक उपयोगिताओं का सृजन' (creation of economic utilities) है।

[1] प्रो० टोमस इस सन्दर्भ में एक उदाहरण देते है। एक टेनिस खिलाड़ी के सतत् प्रयत्नों के परिणामस्वरूप उसके स्वास्थ्य तथा खेलने की कला (skill) में वृद्धि हो सकती है और इस प्रकार उपयोगिता में वृद्धि होती है परन्तु उसके खेलने की कला ऐसी नहीं हुई कि उसको अपनी सेवाओं के लिए कीमत (price) मिल सके। जब वह एक व्यावसायिक खिलाड़ी (professional player) हो जाता है और उसकी सेवाओं की उसको कीमत मिलने लगती है तभी उसके टेनिस खेलने की क्रिया को उत्पादन कहेंगे, अन्यथा नहीं।

उत्पादन तथा उपभोग में अन्तर (Difference between Production and Consumption)

उपभोग वह क्रिया है जो उपयोगिता नष्ट करती है, जबकि उत्पादन वह क्रिया है जो उपयोगिता का सृजन करती है। वास्तव मे, उत्पादन तथा उपभोग की क्रियाओं को पृथक करना कठिन है। प्रत्येक कार्य उत्पादन तथा उपभोग दोनों है, अन्तर केवल हमारे दृष्टिकोण का है। उदाहरणार्थ, जब बढई एक कुर्सी बनाता है तो एक ओर तो वह लकडी की उपयोगिता म वृद्धि करके उत्पादन का कार्य करता है जबकि दूसरी ओर लकडी के लट्ठे की उपयोगिता को नष्ट करके उपभोग का कार्य करता है। इसी प्रकार जब एक व्यक्ति मक्खन का उपभोग करता है तब साथ ही साथ वह अपनी शक्ति मे वृद्धि करके उत्पादन का कार्य करता है। यद्यपि उपभोग तथा उत्पादन मे अन्तर है परन्तु वे एक ही क्रिया के दो पहलू हैं। प्रो० मेहता के अनुसार, आवश्यकता की प्रत्यक्ष सन्तुष्टि (direct satisfaction) उपभोग है और अप्रत्यक्ष सन्तुष्टि (indirect or *derived satisfaction*) *उत्पादन है। इस प्रकार स उपभोग तथा उत्पादन दोनों ही आवश्यक*ताओ की पूर्ति करते हैं।

उपयोगिता सृजन की रीतियाँ (Methods of the Creation of Utility)

(१) रूप परिवर्तन द्वारा उत्पादन (Change of Form)—जब किसी वस्तु या पदार्थ के रूप मे परिवर्तन करके उसकी उपयोगिता मे वृद्धि कर दी जाती है तब इसे 'रूप परिवर्तन द्वारा उत्पादन' कहते है। *उदाहरणार्थ, एक बढई लकडी से मेज, कुर्सी, पलग, इत्यादि बनाकर लकडी* के रूप मे परिवर्तन करके उत्पादन का कार्य करता है। इसी प्रकार दर्जी, कृषक, विभिन्न प्रकार के कारखाने, इत्यादि रूप परिवर्तन *द्वारा उत्पादन का काय करते हैं।*

(२) स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन (Change of Place)—जब किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने से उसकी उपयोगिता मे वृद्धि होती है, तो इसे 'स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन' कहते हैं। उदाहरणार्थ, जगलो से लकडी काटकर या खानों से कोयला इत्यादि निकालकर मोटर या रेल यातायात द्वारा शहरो मे लाने से वस्तुओ की उपयोगिता मे वृद्धि होती है। अत यातायात के विभिन्न साधन स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन का कार्य करते हैं।

(३) समय परिवर्तन द्वारा उत्पादन (Change of Time)—कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका स्टॉक या सचय करने स उनकी उपयोगिता म वृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ, व्यापारी लोग गेहूँ, चना, इत्यादि का फसल के समय स्टॉक करते हैं तथा कुछ महीनों बाद गैर फसल के *समय बेचते हैं क्योकि इस समय इन वस्तुओ की* **उपयोगिता अधिक होती है।** इसी प्रकार शराब तथा चावल जितने पुराने होंगे उतनी ही इनकी उपयोगिता अधिक होगी। विभिन्न वस्तुओ के *व्यापारी तथा स्टाकिस्ट, कोल्ड स्टोरेज के स्वामी, इत्यादि समय परिवर्तन द्वारा उत्पादन का कार्य* करत हैं।

(४) अधिकार परिवर्तन द्वारा उत्पादन (Change of Possession)—वस्तुओ के अधिकार परिवर्तन द्वारा भी उपयोगिता मे वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ, जब एक पुस्तक विक्रेता के *पास से अध्यापक या विद्यार्थी के पास चली जाती है* तो उसकी उपयोगिता बढ जाती है, विभिन्न प्रकार के व्यापारी तथा दुकानदार अधिकार परिवर्तन द्वारा उत्पादन का कार्य करते है।

(५) सेवा द्वारा उत्पादन (By performing service)—जब विभिन्न मनुष्यो द्वारा विभिन्न प्रकार की सेवाओ से उपयोगिता म वृद्धि होती है तब इसे 'सेवा द्वारा उत्पादन' कहते हैं। उदाहरणार्थ, अध्यापक डाक्टर, वकील, नौकर, इत्यादि सभी अपनी-अपनी सेवाओ द्वारा उपयोगिता मे वृद्धि करते हैं और इसलिए उत्पादको की श्रेणी म आते हैं।

(६) ज्ञान द्वारा उत्पादन (By increasing knowledge)—बहुत-सी वस्तुओं के सम्बन्ध मे ज्ञान उत्पन्न करके *या ज्ञान मे वृद्धि करके उनकी उपयोगिता मे* वृद्धि की जाती है, इसको 'ज्ञान द्वारा उत्पादन' कहते है। उदाहरणार्थ, जब विज्ञापन द्वारा किसी वस्तु, जैसे—पुस्तक, फाउण्टेनपेन,

रेडियो, साइकिल, इत्यादि के गुणो को बताया जाता है तो इन वस्तुओ की उपयोगिता उपभोक्ताओ के लिए बढ जाती है, और वे इन्हें खरीदने लगते हैं। व्यापारी, दुकानदार, उत्पादक, इत्यादि विभिन्न प्रकार के विज्ञापन द्वारा वस्तुओ की जानकारी कराकर उपयोगिता मे वृद्धि द्वारा उत्पादन का कार्य करते हैं।

उत्पादन का महत्त्व (Importance of Production)

व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनो ही दृष्टिकोणों से उत्पादन का महत्त्व है। इसका महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट होता है

(१) आवश्यकताओ की पूर्ति उत्पादन पर निर्भर है—एक व्यक्ति उत्पादन करके ही अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। व्यक्ति विशेष अपनी उत्पादित वस्तु या वस्तुओ या सेवाओ को बाजार म विनिमय करके धन या द्रव्य प्राप्त करता है और तब अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर पाता है। स्पष्ट है, समाज के व्यक्तियो की आवश्यकताओं की पूर्ति उनके द्वारा उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करती है।

(२) जीवन स्तर उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है—किसी व्यक्ति या समाज का जीवन-स्तर देश म उत्पादित वस्तुओ की मात्रा तथा प्रकार पर निर्भर करता है। यदि देश विशेष मे अधिक उत्पादन होता है, तो प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी और व्यक्तियो का जीवन-स्तर ऊँचा होगा, इसके विपरीत उत्पादन कम होने पर जीवन-स्तर नीचा होगा। भारतवासियो का जीवन-स्तर नीचा है क्योंकि देश मे उत्पादन की मात्रा कम है, जबकि अमरीका, इगलैण्ड तथा यूरोपीय देशो मे व्यक्तियो का जीवन स्तर ऊँचा है क्योंकि इन देशों मे विभिन्न प्रकार की वस्तुओ का उत्पादन प्रचुर मात्रा मे होता है।

(३) आर्थिक उन्नति उत्पादन पर निर्भर करती है—किसी देश मे विभिन्न प्रकार की वस्तुओ का जितना अधिक उत्पादन होगा, उतना ही अधिक अन्तर्देशीय तथा अन्तरराष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य होगा। स्पष्ट है, देश की आर्थिक उन्नति उत्पादन पर निर्भर करती है।

(४) राज्य की आय मे वृद्धि—किसी देश म विभिन्न प्रकार की वस्तुओ का जितना अधिक उत्पादन होगा, उतना ही अधिक सरकार को वस्तुओ पर लगाये गये करो से आय प्राप्त होगी। बढी हुई आय को सरकार देश के हित मे व्यय कर सकेगी।

उत्पादन के साधन
(FACTORS OF PRODUCTION)

उत्पादन के साधनो से अर्थ उन सेवाओ और वस्तुओ से है जिनका धन के उत्पादन मे प्रयोग होता है। किसी भी वस्तु का उत्पादन विभिन्न उत्पादन के साधनो के सहयोग से होता है। प्राय उत्पादन के पाँच साधन बताये जाते हैं—भूमि, श्रम, पूँजी, सगठन (या प्रबन्ध या व्यवस्था) तथा साहस।

(१) भूमि (Land)—अर्थशास्त्र मे भूमि का अर्थ केवल भूमि की सतह से ही नही लिया जाता बल्कि यह समस्त प्राकृतिक उपहारो को बताती है। अर्थशास्त्र मे भूमि का अर्थ भूमि की सतह तथा उन सब वस्तुओ और शक्तियो से होता है जिन्हें प्रकृति ने मानव को बिना मूल्य प्रदान किया है। अत भूमि की सतह, नदी, समुद्र, खनिज, पदार्थ, जगल, पहाड, धूप, इत्यादि सभी भूमि के अन्तर्गत आते है।

(२) श्रम (Labour)—अर्थशास्त्र मे श्रम का अर्थ मनुष्य के उस शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम से लिया जाता है जो धन उत्पादन के उद्देश्य से किया जाय। केवल मनोरजन की दृष्टि से किये गये परिश्रम को अर्थशास्त्र म श्रम नही कहा जायेगा।

(३) पूँजी (Capital)—पूँजी, भूमि को छोडकर, व्यक्तिगत तथा सामूहिक धन का वह भाग है जो और अधिक धन उत्पन्न करने के प्रयोग मे आता है। पूँजी के अन्तर्गत केवल नकद

द्रव्य ही नही आता वल्कि धन का वह भाग आता है जो कि और अधिक धन के उत्पादन मे सहयोग दे। उदाहरणार्थ औजार, यन्त्र, मशीन, बीज, कच्ची सामग्री, यातायात के साधन (जैसे—सड़कें, रेल, नहर, आदि), द्रव्य का केवल वह भाग जो अधिक धनोत्पादन मे मदद करे, य सब पूँजी के अन्तर्गत आता है।

(४) संगठन या प्रबन्ध या व्यवस्था (Organisation)—संगठन का अर्थ उस विशिष्ट श्रम (specialised labour) मे है जो उत्पादन के तीन साधनो (भूमि, श्रम तथा पूँजी) को एकत्र करता है उनम समन्वय स्थापित करता है तथा उनका निरीक्षण करता है। कुछ अर्थशास्त्री इसका पृथक साधन नही मानते है—कुछ इसको श्रम के अन्तर्गत रखना चाहते हैं तथा कुछ इसको साहस मे साथ रखते हैं। परन्तु आधुनिक युग मे इसके महत्व को देखकर अधिकांश अर्थशास्त्री इसे एक पृथक साधन मानते है।

(५) साहस (Enterprise)—साहस उत्पादन का वह साधन है जो उद्योग तथा व्यवसाय की जोखिम और अनिश्चितता को सहन करता है। किसी भी उद्योग को चलाने में बड़ा जोखिम (लाभ तथा हानि) होता है, जब तक इस जोखिम को उठाने वाला कोई साधन न हो तब तक उत्पादन का कार्य प्रारम्भ नही हो सकता।

उत्पादन के साधनों के सम्बन्ध मे मतभेद (Controversy over the Number of Factors of Production)

अर्थशास्त्री उत्पादन के साधनो की सख्या के सम्बन्ध मे एकमत नही हैं। इस सम्बन्ध मे, निम्न विचारधाराएं पायी जाती हैं

(१) कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार उत्पादन के केवल दो साधन हैं—भूमि तथा श्रम। इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार, पूंजी, सगठन तथा साहस का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नही है। सगठन तथा साहस श्रम के केवल विशिष्ट रूप ही हैं। श्रम तथा भूमि के पारस्परिक सहयोग द्वारा पूँजी उत्पन्न होती है तथा पूँजी पिछली बचत का परिणाम है। इस प्रकार इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार, पूंजी सगठन तथा साहस का कोई पृथक तथा स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और उत्पादन के केवल दो ही मौलिक साधन—भूमि तथा श्रम—है।

(२) अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार उत्पादन के साधन पाँच हैं। आज के युग मे बड़े पैमाने के उत्पादन म बहुत अधिक मात्रा म पूँजी का प्रयोग होता है, बिना पूँजी के बड़े-बड़े उद्योगो को नही चलाया जा सकता। इसलिए पूँजी को एक स्वतन्त्र उत्पादन का साधन मानना आवश्यक है इसी प्रकार आज की उत्पादन व्यवस्था में संगठन का बड़ा महत्त्व है। सगठन उत्पादन के अन्य साधनो को एकत्र करता है, उनमे समन्वय स्थापित करता है तथा उनका निरीक्षण करता है बिना सगठन के बड़े बड़े उद्योगो को सुचारु रूप से चलाना असम्भव है। अत सगठन को एक स्वतन्त्र उत्पादन का साधन मानना आवश्यक है। आज उत्पादन भविष्य की अनुमानित माँग पर किया जाता है, परिणामस्वरूप उत्पादन म बहुत जोखिम रहती है। जब तक इस जोखिम को सहने के लिए कोई तत्पर नही है तब तक उत्पादन का कार्य आरम्भ नही हो सकता, अत साहस को एक पृथक तथा स्वतन्त्र उत्पादन का साधन मानना आवश्यक है। इस प्रकार इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार, उत्पादन के साधन दो नही, पाँच हैं।

(३) प्रो० बेन्हम (Benham) के अनुसार उत्पादन के अनगिनत साधन हैं। इनके अनुसार, जो भी सेवा या वस्तु उत्पादन के कार्य म सहायता दे वही उत्पादन का साधन है। सभी भूमि एकसमान नही होती, किसी की उर्वराशक्ति कम है और किसी की अधिक, कुछ भूमि के टुकडो की स्थिति अधिक अच्छी है, कुछ की खराब, इत्यादि। इसलिए विभिन्न प्रकार की भूमियों को अलग अलग उत्पादन के साधन मानना चाहिए। इसी प्रकार, श्रम, पूंजी, सगठन तथा साहस की अनेक किस्म है, कुछ कम कुशल हैं तो कुछ अधिक। इनमे से प्रत्येक की किस्म को एक पृथक् तथा स्वतन्त्र साधन मानना चाहिए। इस प्रकार प्रो० बेन्हम के अनुसार, उत्पादन के साधन अनगिनत

हैं। परन्तु इस प्रकार का वर्गीकरण उचित नहीं है। अधिकांश अर्थशास्त्री इस मत से सहमत नहीं है।

(४) आस्ट्रियन अर्थशास्त्री वीजर (Austrian Economist Weiser) के अनुसार, उत्पादन के साधनों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) विशिष्ट साधन (Specific Factors) तथा अविशिष्ट साधन (Non Specific Factors)। विशिष्ट साधन वे हैं जो एक समय में केवल एक ही कार्य में प्रयोग किये जा सकते हैं, दूसरे शब्दों में, ये साधन एक समयावधि में अगतिशील (immobile) होते हैं अर्थात् एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित नहीं किये जा सकते। अविशिष्ट साधन वे हैं जो एक समय में कई वैकल्पिक कार्यों में प्रयोग किये जा सकते हैं, दूसरे शब्दों, ये साधन एक समयावधि में गतिशील (mobile) होते हैं अर्थात् एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित किये जा सकते हैं। इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखने की है कि 'विशिष्टता' या 'अविशिष्टता' (specificity or non-specificity) एक गुण (quality) है जो किसी भी उत्पादन के साधन के साथ जोड़ा जा सकता है। उत्पादन *का एक साधन आज विशिष्ट हो सकता है तथा कुछ समय बाद वह अविशिष्ट हो सकता है,* उदाहरणार्थ, यदि भूमि में गेहूँ का बीज डाल दिया गया है तो वह गेहूँ के प्रयोग के लिए विशिष्ट हो जाती है, परन्तु कुछ समय बाद जब गेहूँ की फसल कट जाती है तो वह भूमि का टुकड़ा स्वतन्त्र हो जाता है। दूसरे, यह वर्गीकरण केवल अल्पकालीन है। उत्पादन के साधनों के इस वर्गीकरण के आधार पर ही लगान का आधुनिक सिद्धान्त आधारित है।

उत्पादन के साधनों के सम्बन्ध में निष्कर्ष—उत्पादन के साधनों के वर्गीकरण के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि उत्पादन के साधन पाँच हैं। यद्यपि एक दृष्टि से उत्पादन के साधन को 'विशिष्ट' तथा 'अविशिष्ट' में बाँटना महत्त्वपूर्ण है। परन्तु यह वर्गीकरण केवल अल्पकाल में ही सही है, दीर्घकाल में सभी साधन अविशिष्ट हो जाते हैं। वास्तव में, 'विशिष्टता' या 'अविशिष्टता' तो केवल एक गुण है जो कि किसी भी साधन के साथ जोड़ा जा सकता है। उत्पादन के साधनों को पाँच वर्गों में बाँटना ही अधिक उचित तथा वैज्ञानिक है।

उत्पत्ति के साधनों का सापेक्षिक महत्त्व

एक प्रश्न यह उठता है कि उत्पत्ति के पाँचों साधनों में कौन-सा साधन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में, यह कहना कि अमुक साधन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, अत्यन्त कठिन है क्योंकि प्रत्येक साधन अपने स्थान पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

भूमि (अर्थात् नदियाँ, खनिज पदार्थ, जंगलात, इत्यादि प्राकृतिक उपहार) किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, जिस देश में प्राकृतिक उपहार जितनी प्रचुर मात्रा में होंगे, उस देश की उतनी ही अधिक उन्नति होने की सम्भावना होगी।

परन्तु किसी देश में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक साधनों का पाया जाना ही पर्याप्त नहीं है। इन प्राकृतिक साधनों के उपयोग के लिए श्रम (तथा पूंजी) अत्यन्त आवश्यक हैं। पर्याप्त तथा कुशल श्रम-शक्ति के बिना देश विशेष के प्राकृतिक साधनों का पूर्ण शोषण नहीं किया जा सकता है।

आज की औद्योगिक प्रणाली में पूँजी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज के बड़े पैमाने के उत्पादन में बड़ी मात्रा में पूँजी का प्रयोग होता है, विभिन्न प्रकार की मशीनों तथा औजारों द्वारा ही विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का बड़ी मात्रा में उत्पादन सम्भव हो सका है, छोटे पैमाने के उद्योगों में भी छोटी परन्तु कुशल और आधुनिकतम मशीनों व औजारों का प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

आज की औद्योगिक व्यवस्था इतनी जटिल हो गयी है कि उसको सुचारु रूप से चलाने के लिए कुशल प्रबन्धकों की अत्यन्त आवश्यकता है, अतः प्रबन्ध का महत्त्व स्पष्ट है

आधुनिक औद्योगिक प्रणाली में जोखिम का अंश बहुत बढ़ गया है, इस जोखिम को उठाने के लिए साहस अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी देश की औद्योगिक तथा आर्थिक उन्नति बिना योग्य तथा अनुभवी साहसियों के सम्भव नहीं है।

विभिन्न परिस्थितियों तथा आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में साधनों के महत्त्व में अन्तर हो सकता है। प्रारम्भिक अवस्था या पशुपालन अवस्था में भूमि का महत्त्व बहुत अधिक था क्योंकि मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह के लिए मुख्यतया प्राकृतिक वस्तुओं तथा शक्तियों पर निर्भर रहता था। आखेट युग में तीर, कमान, भालों के रूप में पूँजी का भी महत्त्व था क्योंकि इनका प्रयोग मनुष्य केवल रक्षा के लिए ही नहीं बल्कि जीवन-धारण के लिए भी करता था। समय के साथ-साथ मनुष्य का प्रकृति पर भी नियन्त्रण बढ़ने लगा, दस्तकारी अवस्था (Handicraft stage) में श्रम का महत्त्व अधिक बढ़ गया। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् औद्योगिक अवस्था में पूँजी का महत्त्व अधिक हो गया। उत्पादन प्रणाली में बढ़ती हुई जटिलता के साथ प्रबन्ध तथा साहस का भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली में उत्पत्ति के पाँचों साधन महत्त्वपूर्ण हैं, यह कहना कठिन है कि कोई एक या दो साधन अन्य साधनों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। हाँ, यह सम्भव है कि उत्पादन की किसी विशेष अवस्था या प्रणाली में एक या दो साधन अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करें।

उत्पादन की मात्रा को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(FACTORS AFFECTING THE VOLUME OF PRODUCTION)
या
उत्पादन कुशलता
(EFFICIENCY OF PRODUCTION)

उत्पादन की मात्रा विभिन्न प्रकार के तत्त्वों से प्रभावित होती है। उत्पादन कुशलता का अर्थ है कि एक निश्चित समय में उत्पादन की अधिक मात्रा तथा अच्छी किस्म की वस्तुएँ प्राप्त हों। उत्पादन की मात्रा तथा किस्म या उत्पादन कुशलता को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को सामान्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है I आन्तरिक तत्त्व, तथा II बाह्य तत्त्व।

I. आन्तरिक तत्त्व (Internal Factors)

इनके अन्तर्गत हम (i) उत्पादन के साधनों की कुशलता को, तथा (ii) उनके मिलने के अनुपात को शामिल करते हैं। यदि उद्योग विशेष में, लगाये जाने वाले उत्पादन के साधन कुशल हैं तो अधिक उत्पादन प्राप्त होगा। दूसरे यह भी आवश्यक है कि विभिन्न उत्पादन के साधनों के मिलान का अनुकूलतम अनुपात (optimum proportion) होना चाहिए तभी उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

II. बाह्य तत्त्व (External Factors)

(१) प्राकृतिक तत्त्व—किसी देश की उत्पादन शक्ति उस देश की जलवायु, भूमि की उर्वरा शक्ति, वर्षा, तूफान, बाढ़, इत्यादि प्राकृतिक तत्त्वों से प्रभावित होती है। यदि देश की भूमि की उर्वराशक्ति अच्छी है, नियमित रूप से उचित वर्षा होती रहती है, प्राकृतिक प्रकोप कम होते हैं, तो अधिक मात्रा में उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा।

(२) वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान की स्थिति—किसी देश में विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान की जितनी अधिक प्रगति होगी उतनी ही उत्पादन की अधिक मात्रा तथा अच्छी किस्म की वस्तुएँ प्राप्त होंगी। इसके लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों तथा प्रबन्धकों को तकनीकी शिक्षा की उचित तथा विस्तृत रूप में सुविधाएँ प्रदान की जायें।

(३) कच्चे माल की स्थिति—यदि उद्योगों को आवश्यक कच्चा माल उचित मात्रा में और नियमित रूप से तथा सस्ते मूल्य पर मिलता है तो उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

(४) पूंजी की स्थिति—उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि के लिए यह परम आवश्यक है कि पर्याप्त मात्रा में तथा सस्ती दर पर पूंजी की व्यवस्था हो। इसके लिए बैंकिंग, बीमा, इत्यादि की उचित तथा विस्तृत व्यवस्था होना आवश्यक है।

(५) परिवहन व संवादवहन की सुविधाएँ—यदि किसी देश में परिवहन तथा संवादवहन के साधन भली प्रकार से विकसित हैं तो उद्योगों तक कच्चा माल आसानी से पहुँच सकेगा, उत्पादित वस्तुओं को विभिन्न मण्डियों तक सुगमता तथा शीघ्रता से भेजा जा सकेगा, श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि होगी, इत्यादि। इन सब बातों के परिणामस्वरूप उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

(६) सरकार की नीति—यदि सरकार विभिन्न प्रकार के उद्योगों को प्रोत्साहित करती है, उन्हें आर्थिक सहायता देती है तथा ऐसी कर प्रणाली की व्यवस्था करती है जिससे उत्पादन को प्रोत्साहन मिले तो निश्चय ही उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

(७) अनुसन्धान की सुविधाएँ—यदि किसी देश में सरकार तथा व्यक्तिगत संस्थाएँ या उद्योगपति अनुसन्धान पर जोर देते हैं, उत्पादन से सम्बन्धित नयी रीतियों की खोज होती रहती है, लागत को कम करने के सम्बन्ध में अनुसन्धान होते रहते हैं, तो इन सबका परिणाम उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता की वृद्धि पर पड़ेगा।

(८) राजनीतिक स्थिरता तथा शान्ति एवं सुरक्षा—यह अत्यन्त आवश्यक है कि देश में राजनीतिक झगड़े न हों, शान्ति तथा सुरक्षा की उचित व्यवस्था हो तभी उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

क्या सारी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं ?
(DO PRODUCTION AND CONSUMPTION EXHAUST ALL ECONOMIC ACTIVITIES ?)

सामान्यतया अर्थशास्त्र को चार भागों में बाँटा जाता है—उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण। राजस्व को हम यहाँ पर छोड़ देते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत सरकार की वे क्रियाएँ आती हैं जो उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण को प्रभावित करती हैं और राज्य के लिए धन एकत्रित करने से सम्बन्धित होती हैं।

(१) यदि गहराई से देखा जाय तो यह पता चलेगा कि वितरण तथा विनिमय की क्रियाएँ वास्तव में उत्पादन के अन्तर्गत आ जाती हैं। वितरण का अर्थ है कि उत्पादित धन का विभिन्न उत्पादन के साधनों में वितरण कर दिया जाय, दूसरे शब्दों में, मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि वितरण की क्रिया 'स्थान उपयोगिता' (place utility) पैदा करती है और इस प्रकार उत्पादन के अन्तर्गत आ जाती है। प्रो० मेहता के अनुसार, "जंगल की कम उपयोगी लकड़ी को शहर ले जाने का अर्थ है स्थान उपयोगिता में वृद्धि। ठीक इसी प्रकार से वितरण की प्रक्रिया (process) व्यक्तिगत उत्पादन के साधनों के लिए वस्तुएँ अधिक उपयोगी बना देती है।"[1] स्पष्ट है कि वितरण का अर्थ स्थान उपयोगिता में वृद्धि करना है और इसलिए यह उत्पादन के अन्तर्गत आ जाता है।

(२) प्रो० मेहता स्पष्ट करते हैं कि विनिमय का अर्थ द्रव्य के बदले में किसी वस्तु का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण होना है। विनिमय की क्रिया तभी होगी जब दोनों व्यक्तियों को उपयोगिता का लाभ हो अर्थात् जब प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है कि उसके अधिकार में जो वस्तु है वह उस वस्तु की अपेक्षा, जो दूसरे के पास है, उसके लिए कम उपयोगी है। इस प्रकार विनिमय की क्रिया 'स्थान उपयोगिता' तथा 'अधिकार उपयोगिता' (possession utility) का सृजन करती है। इस प्रकार विनिमय की क्रियाएँ उत्पादन के अन्तर्गत आ जाती हैं।

[1] "The transportation of wood from the forest to a city, involves the additions of place utility to the comparatively less useful wood lying in the forest. In much the same way distribution involves the process of making things more useful to the individual factors of production."

(३) उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनुष्य की सभी आर्थिक क्रियाएँ या तो उत्पादन में या उपभोग में या दोनों में संयुक्त रूप से शामिल होती हैं और इस प्रकार सभी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं।

(४) प्रत्येक मनुष्य उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों होता है। इसलिए मनुष्य की प्रत्येक आर्थिक क्रिया या तो उत्पादन से या उपभोग से सम्बन्धित होनी चाहिए। इस दृष्टि से भी यह कहा जा सकता है कि सभी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं।

(५) वास्तव में वितरण तथा विनिमय की क्रियाएँ उपभोग के लिए साधन के रूप में हैं। *उत्पादन का अन्तिम उद्देश्य उपभोक्ताओं के लिए उनकी जरूरत की वस्तुओं की पूर्ति करना है और* यह वितरण तथा विनिमय के माध्यम से ही होती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

यदि गहराई से देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि मनुष्य की सभी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं।

प्रश्न

१ उत्पादन के स्वभाव तथा महत्त्व को समझाइए। उत्पादन को प्रभावित करने वाले तत्त्व क्या हैं ?

Explain the nature and significance of production What are the factors affecting production ?

२ 'उत्पादन उपयोगिताओं का सृजन है।" विवेचन कीजिए।

"Production is the creation of utilities Discuss.

३. उत्पादन क्या है ? उत्पादन के साधन कौन-कौन से हैं ? इन साधनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन कौन-सा है ?

What is production ? What are the factors of production ? Which of the factors is most important ?

[संकेत—तीसरे भाग के लिए देखिए 'उत्पत्ति के साधनों का सापेक्षिक महत्त्व' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

४. "केवल भूमि तथा श्रम ही अनिवार्य और मूल उत्पत्ति के साधन हैं।' विवेचना कीजिए।

"Land and labour are the only unavoidable and original factors of production" Discuss

[संकेत—सर्वप्रथम 'भूमि' तथा 'श्रम' के अर्थों को बताइए, इसके पश्चात् 'उत्पादन के साधनों के सम्बन्ध में मतभेद' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री को लिखिए।]

५ उत्पादन का आर्थिक अर्थ क्या है ? क्या उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत मनुष्य की सभी आर्थिक क्रियाएँ आ जाती हैं ?

What is the economic meaning of production ? Do production and consumption exhaust all economic activities of man ?

[संकेत—दूसरे भाग के लिए देखिए 'क्या सारी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं ?' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

2 भूमि
[LAND]

भूमि का अर्थ
(MEANING OF LAND)

(अ) साधारण बोलचाल में 'भूमि' का अर्थ केवल भूमि की ऊपरी सतह से लिया जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में 'भूमि' शब्द का अर्थ 'प्राकृतिक उपहारों' से लिया जाता है जो अधिक व्यापक है। मार्शल के अनुसार, "भूमि का अर्थ उन सब पदार्थों तथा शक्तियों से लिया जाता है जो प्रकृति मनुष्य की सहायता के लिए भूमि और पानी, हवा और प्रकाश तथा गर्मी के रूप में निःशुल्क प्रदान करती है।"[1]

(ब) मार्शल की परिभाषा के अनुसार, भूमि के अन्तर्गत प्रकृति द्वारा निःशुल्क प्रदान किये गये पदार्थ तथा शक्तियाँ आती हैं जो भूमि की सतह पर, सतह से नीचे तथा सतह से ऊपर पायी जाती हैं, जैसे

(i) भूमि की सतह, भूमि की उर्वरा शक्ति, सतह पर पाये जाने वाले जंगल, पहाड़, पशु-पक्षी, जड़ी-बूटियाँ, इत्यादि,

(ii) समुद्र, नदियाँ, झील, इत्यादि तथा इनके अन्दर पायी जाने वाली वस्तुएँ,

(iii) भूमि की सतह के नीचे पाये जाने वाले खनिज-पदार्थ तथा अन्य प्रकार की वस्तुएँ;

(iv) प्राकृतिक शक्तियाँ, जैसे, वर्षा, वायु, सूर्य की रोशनी, इत्यादि। कुछ अर्थशास्त्री जैसे प्रो० केयरनक्रास (Prof. Cairncross) वर्षा, सूर्य की रोशनी, इत्यादि को भूमि के अन्तर्गत शामिल नहीं करते क्योंकि इन पर किसी का स्वामित्व तथा नियन्त्रण नहीं होता।

भूमि के अर्थ तथा परिभाषा के सम्बन्ध में नया दृष्टिकोण
(A NEW APPROACH REGARDING THE MEANING AND DEFINITION OF LAND)

(1) आस्ट्रियन अर्थशास्त्री वीजर (Wieser) ने उत्पादन के साधनों का वर्गीकरण उनकी 'गतिशीलता' (mobility) के गुण के आधार पर किया। वीजर के अनुसार, उत्पादन के साधन दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—'विशिष्ट साधन' (specific factors) तथा 'अविशिष्ट साधन' (non-specific factors)। 'विशिष्ट साधन' वे हैं जो केवल एक प्रयोग में ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं, दूसरे प्रयोगों में नहीं लाये जा सकते अर्थात् अगतिशील हैं। 'अविशिष्ट साधन' वे है जिनको कई प्रयोगों में लाया जा सकता है, जो एक प्रयोग से दूसरे में जा सकते हैं अर्थात् जो गतिशील (mobile) हैं।

---

[1] "By Land is meant the material goods and the forces which Nature gives freely for man's aid, in land and water, in air and light and heat."

—Marshall, *Principles of Economics*, p 116.

(ii) वीजर के वर्गीकरण—विशिष्ट साधन तथा अविशिष्ट साधन—के आधार को लेकर प्रो० मेहता भूमि की एक नयी परिभाषा देते हैं जो क्लासीकल अर्थशास्त्रियों की परिभाषा से भिन्न है। प्रो० मेहता के अनुसार, "आधुनिक परिभाषा यह है कि भूमि एक विशिष्ट साधन है या किसी साधन मे विशिष्ट तत्त्व (specific element) को बताती है या किसी वस्तु के विशिष्टता पहलू (specificity aspect) को बताती है।"[2]

(iii) इस परिभाषा के अनुसार, भूमि एक गुण (quality) है जिसे कोई भी साधन अर्जित (acquire) कर सकता है। एक भूमि के टुकडे पर यदि केवल गेहूँ की फसल उगायी जाती है तो वह टुकडा गेहूँ के प्रयोग के लिए विशिष्ट है और भूमि के इस टुकड़े को 'भूमि' या 'भूमि तत्त्व' कहेंगे। यदि एक भूमि के टुकडे को कई प्रयोगो म लाया जा सकता है तो वह विशिष्ट नही है। माना गया भूमि का टुकडा वर्तमान प्रयोग म १०० रु० प्राप्त करता है जबकि दूसरे प्रयोग म उसको ७० रु० मिल सकते है, तो ७० रु० की सीमा तक यह जमीन का टुकडा दूसरे प्रयोग म गतिशील हो सकता है तथा (१००—७०)=३० रु० की सीमा तक यह वर्तमान प्रयोग के लिए 'विशिष्ट' है। अत इस टुकडे की आय म से ३० रु० 'भूमि तत्त्व' (land element या land aspect) है।

(iv) इसी प्रकार कोई भी अन्य साधन चाहे वह श्रम हो या पूँजी, 'भूमि-तत्त्व' रखता है। कोई भी साधन जिस सीमा तक दूसरे प्रयोग में माँगा जाता है उस सीमा तक अविशिष्ट (non-specific) है और जिस सीमा तक यह दूसरे प्रयोग मे नहीं माँगा जाता उस सीमा तक वह वर्तमान प्रयोग के लिए विशिष्ट है और विशिष्टता के इस गुण को ही हम 'भूमि' या 'भूमि-तत्त्व' या 'भूमि पहलू' कहते हैं।

(v) प्रो० मेहता के अनुसार, भूमि की इस नयी परिभाषा तथा क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की भूमि परिभाषा मे कोई विशेष अन्तर नहीं है। प्रो० मेहता के शब्दो म, "यह देखा जा सकता है कि भूमि की यह आधुनिक परिभाषा, पुरानी परिभाषा से भिन्न नही है। पुरानी परिभाषा बताती है कि भूमि एक निःशुल्क उपहार है आधुनिक परिभाषा बताती है कि इसका कोई दूसरा प्रयोग नहीं है। इसका अर्थ है कि वस्तु को एक ही प्रयोग मे, जिसमें इसको प्रयुक्त किया जा सकता है, इस्तेमाल करने म कोई त्याग नहीं करना पडता। इसका अर्थ है कि वह वस्तु निःशुल्क है, एक उपहार है।"[3]

(vi) वास्तव म, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने पूँजी से भूमि का अन्तर स्पष्ट करने के लिए भूमि की एक विशेषता सीमितता (fixity)—जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री विशिष्टता (specificity) कहते हैं—पर ही बल दिया था। आधुनिक अर्थशास्त्री इस विशिष्टता को ही 'भूमि' कहते है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने यह गलती की कि उन्होंने केवल भूमि को ही विशिष्ट माना जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि ही नहीं बल्कि कोई भी अन्य उत्पादन का साधन विशिष्ट हो सकता है और उसमें 'भूमि तत्त्व' हो सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की भूमि की परिभाषा तथा भूमि की नयी परिभाषा म सम्बन्ध की कडी है।

भूमि का उत्पादन में महत्त्व
(IMPORTACE OF LAND IN PRODUCTION)

(१) मानव जीवन के विकास के विभिन्न चरणों मे भूमि का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। आखेट युग (Hunting age), पशुपालन युग (Pastor l age), कृषि युग (Agricultural age) तथा औद्योगिक युग (Industrial age), इत्यादि म भूमि अर्थात् प्रकृति ने भोजन की व्यवस्था

[2] "The modern definition is that land is a specific factor or that it is the specific element in a factor or again that it is the specifici y aspect of a thing "

[3] "It will be seen that modern definition of land does not differ from the old definition. The old definition says that land is a free gift, the modern difinition says that it has no other use If there is no other use it simply means that there is no sacrifice involved in making the only use to which the thing can be put. And no sacrifice means that it is *free, it is a gift.*"
—*J. K. Mehta*

औद्योगीकरण के विकास, तथा मानव सभ्यता के विकास में बहुत सहयोग दिया है। वास्तव में, मनुष्य प्रकृति का ऋणी है।

(२) **भूमि किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि का आधार है**— (i) एक देश का आर्थिक विकास उस देश के प्राकृतिक उपहारों पर निर्भर करता है। अच्छी कृषि-योग्य भूमि, अनुकूल जलवायु, विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ, वन तथा उनसे प्राप्त होने वाले पदार्थ, फल, दूध, इत्यादि पर देश की समृद्धि निर्भर है। (ii) कृषि, कच्चे माल, खनिज पदार्थ, इत्यादि प्राथमिक उद्योगों तथा विभिन्न प्रकार के गौण उद्योगों के लिए भूमि अति आवश्यक है। (iii) जल, शक्ति, कोयला, पेट्रोल, इत्यादि शक्ति साधनों के प्रयोग से मशीनों तथा कारखानों का संचालन होता है।

स्पष्ट है कि जितनी अधिक मात्रा में विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक उपहार देश में पाये जायेंगे तथा उनका जितना अधिक शोषण किया जायेगा, उतना ही वह देश समृद्धशाली होगा। अमरीका, इंगलैण्ड, इत्यादि देश प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले प्राकृतिक साधनों का भलीभांति शोषण करके आज उन्नति के शिखर पर है। भारत में भी पर्याप्त मात्रा में प्रकृति के साधन हैं और वह भी इनका पूर्ण शोषण करके उन्नति के शिखर तक पहुंच सकता है।

(३) भूमि किसी भी देश के यातायात तथा संवादवहन के साधनों के विकास में सहायक होती है। यदि किसी देश में समतल भूमि है तो रेल, सड़क, तार, टेलीफोन, इत्यादि का सुगमता से अधिक विकास सम्भव होगा। इसके विपरीत, यदि देश का अधिकांश भाग पहाड़ी तथा ऊँचा-नीचा है तो इन साधनों के विकास में अधिक व्यय तथा कठिनाई होगी। अतः किसी देश की भूमि की रचना पर उसके यातायात तथा संवादवहन के साधनों का विकास निर्भर करता है।

(४) **लगान का आधुनिक सिद्धान्त 'भूमि' पर आधारित है।** यदि भूमि का अर्थ 'विशिष्टता के गुण' (Quality of specificity) से लिया जाय तो आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार कोई भी साधन 'भूमि-तत्व' (land element) अर्थात् *'विशिष्टता' के कारण लगान प्राप्त करता है।* एक साधन के पारितोषण (reward) में जितना 'भूमि तत्त्व' है उतना ही उसके पारितोषण में लगान का अंश होगा।

भूमि की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF LAND)

उत्पादन के साधन के रूप में भूमि की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

(१) **प्रकृति का उपहार** (Nature's gift)—मनुष्य ने भूमि को प्रकृति से निःशुल्क उपहार के रूप में प्राप्त किया है। भूमि को सुधारने में, उर्वराशक्ति बढ़ाने में, जंगल, इत्यादि साफ करके भूमि को काम के योग्य बनाने में मनुष्य को परिश्रम तथा पूंजी लगानी पड़ती है। परन्तु जलवायु, वर्षा, सूर्य की रोशनी, भूमि का क्षेत्रफल तथा भूमि की स्थिति में मनुष्य कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। इस दृष्टि से भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार है।

(२) **पूर्ति की सीमितता** (*Fixity of supply*)—प्रकृति का उपहार होने के कारण भूमि की पूर्ति सीमित (fixed) है, जो भूमि प्रकृति द्वारा दी गयी है उसको हम घटा-बढ़ा नहीं सकते। भूमि कटाव (soil erosion) या समुद्र कटाव (coastal erosion) तथा बाढ़ इत्यादि भूमि की सतह को थोड़ा कम कर सकते हैं या नदी या समुद्र के पानी को सुखाकर (जैसा हॉलैण्ड में किया गया है) भूमि की मात्रा को थोड़ा बढ़ाया जा सकता है। परन्तु इस प्रकार की कमी या वृद्धि बहुत कम होती है। यह प्रक्रिया बहुत ही धीमी तथा महत्त्वहीन है। वास्तव में, भूमि का क्षेत्रफल उतना ही रहता है जितना प्रकृति ने हमें प्रदान किया है और इस दृष्टि से भूमि सीमित है।

परन्तु भूमि की 'प्रभावोत्पादक पूर्ति' (effective supply) को बढ़ाया जा सकता है। इसका अर्थ है कि बिना भूमि के क्षेत्रफल को बढ़ाये अधिक श्रम तथा पूंजी का प्रयोग करके अर्थात् गहरी कृषि करके भूमि से उत्पादन बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है या दो-तीन-चार मंजिलों के मकान बनाकर, भूमि की पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है।

परन्तु क्षेत्रफल की दृष्टि से भूमि सीमित है तथा भूमि के लिए दिये हुए क्षेत्रफल से सम्बन्धित जलवायु, सूर्य की रोशनी, इत्यादि भी सीमित है, इन्हें घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। अतः इन दृष्टियों से भूमि की पूर्ति सीमित है।

प्रो० केअरनक्रॉस (Cairncross) के अनुसार, भूमि की सीमितता का एक परिणाम यह होता है कि भूमि के मालिक एकाधिकार की स्थिति में हो जाते हैं। जनसंख्या में वृद्धि के परिणाम-स्वरूप भूमि की माँग में वृद्धि होने पर भूमिपतियों को अधिक लगान प्राप्त होने लगता है। लगान में वृद्धि भूमिपतियों के प्रयास का परिणाम नहीं है, माँग की अपेक्षा पूर्ति सीमित रह जाने के कारण उन्हें 'बिना प्रयास आय' (windfall income) प्राप्त होती है। यही बात एकाधिकारी के सम्बन्ध में होती है, उसकी वस्तु की माँग बढ़ने पर उसे बिना प्रयास ही ऊँचे मूल्य तथा लाभ प्राप्त होते हैं। भूमि की पूर्ति को दीर्घकाल में भी नहीं बढ़ाया जा सकता है। माँग में वृद्धि होने पर दीर्घकाल में भी ऊँचे लगान प्राप्त होते रहेंगे।

(३) कोई उत्पादन व्यय नहीं (No cost of Production)—भूमि प्रकृति का उपहार है। इसको प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कोई श्रम नहीं करना पड़ता। दूसरे शब्दों में, भूमि का कोई 'पूर्ति मूल्य' (supply price) नहीं है, उसको प्रयोग में लाने के लिए मनुष्य को कोई मूल्य नहीं देना पड़ता, वह तो प्रकृति की ओर से पहले ही विद्यमान है। भूमि का मूल्य चाहे जितना कम हो जाय या चाहे जितना बढ़ जाये उसकी कुल पूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः भूमि की कोई लागत नहीं है।

यदि भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाने के लिए हम श्रम तथा पूँजी को लगाते हैं, तो निस्सन्देह यह मनुष्यकृत उर्वराशक्ति की लागत है, परन्तु प्राकृतिक उर्वराशक्ति (natural fertility) तथा किसी भूमि के टुकड़े की स्थिति तथा उससे सम्बन्धित जलवायु के लाभों की कोई लागत नहीं है।

इस दृष्टि से भूमि, श्रम तथा पूँजी से भिन्न है श्रम के पालन-पोषण, शिक्षा, इत्यादि पर व्यय करना पड़ता है। पूँजी का बचत द्वारा निर्माण किया जाता है और बचत का अर्थ त्याग और लागत है। किसी समय पर कितना श्रम तथा पूँजी होगी यह इस पर निर्भर करेगा कि उनके लिए कितना मूल्य दिया जाता है, अर्थात् इनका पूर्ति मूल्य होता है और इनकी पूर्ति प्रकृति पर निर्भर नहीं करती।

(४) विभिन्नता (Heterogeneity)—कोई भी भूमि के टुकड़े उर्वराशक्ति तथा स्थिति की दृष्टि से एकसमान नहीं होते। उनमें भिन्नता पायी जाती है। कुछ भूमि के टुकड़ों की उर्वरा-शक्ति इतनी अधिक होती है कि उन पर लागत से अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार की भूमियों को 'पूर्व-सीमान्त भूमियाँ' (intra-marginal land) कहते हैं। कुछ की उर्वरा-शक्ति इतनी कम होती है कि उन पर लागत से कम उपज प्राप्त होती है, इन्हें 'उप-सीमान्त भूमियाँ' (sub-marginal lands) कहते हैं। कुछ भूमि के टुकड़े ऐसे होते हैं जिनकी उपज ठीक लागत के बराबर होती है। इस प्रकार की भूमि को सीमान्त भूमि (marginal land) कहते हैं। सीमान्त (margin) कोई निश्चित रेखा या बिन्दु नहीं है यह भूमि की उर्वराशक्ति तथा स्थिति के अतिरिक्त उत्पादित वस्तु के मूल्य पर भी निर्भर करता है, सीमान्त परिस्थितियों के अनुसार आगे-पीछे घट-बढ़ सकता है।

भूमि की विभिन्नता का एक अर्थ यह है कि उसे विभिन्न प्रयोगों में इस्तेमाल किया जा सकता है, जैसे कृषि के लिए, डेयरी के लिए, मकान बनाने के लिए, इत्यादि। एक भूमि का टुकड़ा किस प्रयोग में प्रयुक्त किया जायेगा यह उसकी उपज (yield) पर निर्भर करेगा। परिस्थितियों के अनुसार, भूमि एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित की जा सकती है। इसी प्रकार से एक दूसरा 'सीमान्त' (margin) भी होता है जिसे हम 'हस्तान्तरण का सीमान्त' (margin of transference) कहते हैं, अर्थात् कुछ भूमियाँ एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरण की सीमा पर होती हैं।

ये दो प्रकार के सीमान्त (margin) इस बात पर बल देते हैं कि भूमियों में विभिन्नता होती है—उर्वराशक्ति, स्थिति या प्रयोग की दृष्टि से। वास्तव में, यह विशेषता केवल भूमि में ही नहीं पायी जाती बल्कि उत्पादन के अन्य साधनों (श्रम तथा पूँजी) में भी पायी जाती है।

(५) भूमि अविनाशी (Indestructible) है—भूमि को नष्ट नहीं किया जा सकता। भूमि के लगातार प्रयोग से उसकी उर्वराशक्ति कुछ कम हो सकती है, परन्तु भूमि के किसी टुकड़े से सम्बन्धित जलवायु, सूर्य की रोशनी, इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता, ये अविनाशी हैं। इस दृष्टि से भूमि को अविनाशी कहा जा सकता है। भूमि की उर्वराशक्ति की कमी को खाद इत्यादि द्वारा पुन प्राप्त किया जा सकता है।

(६) भूमि अगतिशील (Immobile) है—भूमि को (श्रम तथा पूंजी की भांति), भौतिक रूप से (physically) एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं ले जाया जा सकता। इस कारण ही भिन्न जगहों पर लगान भिन्न भिन्न पाये जाते हैं। यदि गतिशीलता का अर्थ विस्तृत दृष्टि से लिया जाये तो भूमि गतिशील (mobile) है क्योंकि भूमि को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(७) भूमि निष्क्रिय (Passive) साधन है—भूमि से उत्पादन प्राप्त करने के लिए श्रम तथा पूंजी को लगाना पड़ता है। भूमि स्वयं कुछ भी उत्पादन नहीं दे सकती है, इस दृष्टि से वह निष्क्रिय है। इसके विपरीत श्रम, संगठन तथा साहस उत्पादन के सक्रिय (active) साधन हैं।

(८) भूमि उत्पत्ति ह्रास नियम के अधीन है (Land is subject to the law of diminishing returns)—यदि दिये हुए एक भूमि के टुकड़े पर श्रम तथा पूंजी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है तो उत्पादन उसी अनुपात में नहीं होगा अर्थात् अतिरिक्त उत्पादन कम होता जायगा। रिकार्डो मार्शल, इत्यादि का विचार था कि कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है, जबकि शिल्प-निर्माण उद्योगों में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उद्योगों में भी परिस्थितियों के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

भूमि तथा पूंजी
(LAND AND CAPITAL)

(१) भूमि को, पूंजी से, निम्न विशेषताओं के आधार पर पृथक किया जाता है (i) भूमि प्रकृति का नि शुल्क उपहार है जबकि पूंजी मनुष्य के त्याग तथा परिश्रम का परिणाम है। (ii) भूमि की कोई लागत नहीं होती जबकि पूंजी की लागत होती है। (iii) प्रकृति द्वारा भूमि की पूर्ति निश्चित है, परन्तु पूंजी की पूर्ति परिवर्तनशील है। (iv) भूमि अविनाशी है जबकि पूंजी नष्ट हो सकती है। (v) भूमि अगतिशील है, जबकि पूंजी गतिशील है।

(२) यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो भूमि तथा पूंजी में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता है। प्रथम, भूमि को खेती या अन्य कामों के योग्य बनाने के लिए मनुष्य को श्रम तथा पूंजी लगानी पड़ती है। भूमि प्रकृति का नि शुल्क उपहार नहीं रह जाती है, वह भी पूंजी की भांति मनुष्यकृत है। दूसरे, भूमि को जब काम में लाने योग्य बनाने के लिए लागत लगानी पड़ती है तो पूंजी की भांति, भूमि की भी लागत हो जाती है। तीसरे, एक दृष्टि से भूमि की पूर्ति स्थिर (fixed) नहीं रहती, भूमि पर गहरी खेती करके उत्पादन को बहुत बढ़ाया जा सकता है, ४-५ मंजिले मकान बनाकर निवास के लिए अधिक जगह प्राप्त की जा सकती है। इसका अर्थ है कि भूमि की प्रभावोत्पादक पूर्ति (effective supply) को बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी एक प्रयोग के लिए भूमि की पूर्ति को, अन्य प्रयोगों से हटाकर, बढ़ाया जा सकता है। इन दृष्टियों से यह कहा जाता है कि भूमि की पूर्ति को, पूंजी की भांति, घटाया-बढ़ाया जा सकता है। चौथे, भूमि अविनाशी नहीं है, लगातार प्रयोग करने से उर्वराशक्ति नष्ट होती है। अत, पूंजी की भांति, भूमि को भी विनाशशील माना जाता है। पांचवें, भूमि भी पूंजी की भांति गतिशील है क्योंकि भूमि को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(३) उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आर्थिक दृष्टि से भूमि तथा पूंजी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इसलिए कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि को एक पृथक उत्पादन का साधन नहीं मानना चाहिए, वह तो पूंजी की भांति है। परन्तु आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से यह अच्छा होगा कि भूमि तथा पूंजी को पृथक रखा जाय क्योंकि दोनों में थोड़ा अन्तर अवश्य है और एक मुख्य

अन्तर यह है कि भूमि की पूर्ति बहुत ही धीमी गति से परिवर्तित होती है जबकि पूँजी की पूर्ति बहुत शीघ्रता से परिवर्तित होती है ।

भूमि की कार्यक्षमता
(EFFICIENCY OF LAND)

भूमि की कार्यक्षमता का अर्थ उसकी उत्पादकता (productivity) अर्थात् उत्पादन की शक्ति से लिया जाता है । भूमि की कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं

(१) **प्राकृतिक तत्त्व** (Natural factors)—भूमि के प्राकृतिक गुण, जैसे—उर्वराशक्ति, जलवायु, सूर्य की रोशनी, मिट्टी की बनावट, इत्यादि भूमि की कार्यक्षमता को आवश्यक रूप से प्रभावित करते हैं । जिस क्षेत्र में भूमि में उपर्युक्त प्राकृतिक गुण उचित तथा अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं वहाँ की भूमि की उत्पादकता अधिक होगी, उदाहरणार्थ, भारत में उत्तर प्रदेश के गंगा-जमुना क्षेत्र की भूमि का उत्पादकता, राजस्थान की पथरीली तथा रेतीली भूमि से, अधिक है ।

(२) **भूमि की स्थिति** (Situation of land)—शहरो, मण्डियो तथा रेलवे स्टेशनों के निकट की भूमियाँ अन्य बहुत दूर स्थित भूमियो की अपेक्षा, अधिक उत्पादक समझी जाती हैं क्योंकि इन भूमियो तक खाद बीज, इत्यादि आसानी से तथा कम लागत पर पहुचाये जा सकते हैं और इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओ को भी कम लागत पर आसानी से मण्डियो तथा बाजारो मे ले जाया जा सकता है ।

(३) **मानवीय तत्त्व** (Human factors)—मानव के विभिन्न प्रकार के प्रयत्नो द्वारा भूमि की उत्पादकता को बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है । इन मानव तत्त्वो का विवरण हम नीचे दे रहे है

(i) भूमि पर स्थायी सुधार—भूमि पर पूँजी लगाकर स्थायी सुधारो, जैसे पानी के वितरण तथा निकासी के लिए पक्की नालियाँ बनाना, खेत के चारो तरफ मेड बनाना, पास मे ट्यूब-वेल (Tube well) खुदवाना इत्यादि द्वारा भूमि की उर्वराशक्ति और उत्पादकता को बहुत बढ़ाया जा सकता है । (ii) **भूमि का उचित प्रयोग**—जो भूमि जिस कार्य के उपयुक्त है उसको उसी प्रयोग मे काम मे लाना ठीक है, जैसे यदि एक भूमि का टुकड़ा चावल के उत्पादन के लिए अधिक उपयुक्त है तो उस पर चावल ही उगाना चाहिए । इसी प्रकार शहर के मध्य स्थित भूमियो पर कृषि करने की अपेक्षा बिल्डिंग बनाना अधिक उपयुक्त है । इस प्रकार भूमि का उचित प्रयोग करके उसकी उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है । (iii) **संगठन योग्यता**—उत्पादन की कुशलता के लिए यह परम आवश्यक है कि भूमि को अन्य उत्पत्ति के साधनो के साथ अनुकूलतम अनुपात मे मिलाया जाये । इसके लिए एक योग्य संगठनकर्ता की आवश्यकता है । (iv) **भूमि का स्वामित्व**—यदि कृषक स्वय भूमि का मालिक है तो वह उसमे अधिक रुचि लेगा अधिक श्रम तथा पूँजी लगायेगा और इस प्रकार भूमि की उत्पादकता में वृद्धि करेगा ।

स्पष्ट है कि प्राकृतिक तत्त्व, स्थिति से सम्बन्धित तत्त्व और मानव तत्त्व भूमि की उत्पादकता को प्रभावित करते हैं ।

विस्तृत खेती तथा गहरी खेती
(EXTENSIVE CULTIVATION AND INTENSIVE CULTIVATION)

कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए मुख्य दो रीतियाँ हैं विस्तृत खेती तथा गहरी खेती ।

विस्तृत खेती (Extensive cultivation)—विस्तृत खेती मे कृषक उत्पादन को बढ़ाने के लिए श्रम तथा पूँजी की अपेक्षा भूमि का अधिक प्रयोग करता है । वह भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाता जाता है परन्तु श्रम तथा पूँजी उसी अनुपात मे नही बढ़ाये जाते हैं । विस्तृत खेती के लक्षण या विशेषताएँ इस प्रकार है : (अ) इस रीति का प्रयोग प्राय नये देशो मे या ऐसे देशो मे किया जाता है जहाँ पर जनसख्या कम तथा भूमि अधिक होती है । (ब) कृषि की जोत का औसत आकार प्राय: बड़ा होता है । (स) पूँजी तथा श्रम का कम मात्रा मे प्रयोग किया जाता है । (द) अधिक

मात्रा में भूमि की उपलब्धि होने के कारण भूमि का प्रयोग प्रायः पूरी सावधानी से नहीं किया जाता।

गहरी खेती (Intensive cultivation)—गहरी खेती का अर्थ है कि कृषक उत्पादन को बढ़ाने के लिए भूमि का क्षेत्रफल लगभग समान रखता है और श्रम तथा पूँजी का अधिक प्रयोग करता है। गहरी खेती के लक्षण या विशेषताएं इस प्रकार हैं: (अ) इस रीति का प्रयोग प्रायः उन देशों में किया जाता है जहाँ जनसंख्या अधिक तथा भूमि कम है। (ब) कृषि की जोत का औसत आकार प्रायः छोटा होता है। (स) श्रम तथा पूँजी का अधिक प्रयोग किया जाता है। (द) भूमि का प्रयोग वैज्ञानिक रीतियों के द्वारा बहुत सावधानी से किया जाता है। फसलों का हेर-फेर (rotation of crops), अच्छे बीज, रासायनिक खाद, नवीनतम औजारों, इत्यादि का प्रयोग किया जाता है तथा कृषि से सम्बन्धित अनुसन्धान पर बहुत ध्यान दिया जाता है।

विस्तृत तथा गहरी खेती के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है। विस्तृत खेती के अन्तर्गत जोत की इकाई बहुत बड़ी हो सकती है अर्थात् बड़े-बड़े फार्म हो सकते हैं परन्तु उन पर गहरी खेती की रीति, अधिक श्रम तथा पूँजी और वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग किया जा सकता है जैसा कि अमरीका, कनाडा, इत्यादि देशों में है। दूसरे शब्दों में, यह **आवश्यक नहीं कि गहरी खेती के साथ सदैव छोटे खेत या छोटे फार्म हों।** दूसरी ओर भारत में हम यह देखते हैं कि विस्तृत खेती की रीति का प्रयोग होता है जबकि खेतों का आकार छोटा है, हम गहरी खेती की रीति का अधिक प्रयोग नहीं करते अर्थात् आज भी हमारे देश में कृषि के पुराने तरीकों का प्रयोग अधिक होता है, और वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग बहुत कम। इसका अर्थ यह हुआ कि **यह आवश्यक नहीं है कि विस्तृत खेती की रीति के साथ सदैव बड़े फार्म हों।**

किसी देश में कौन-सी रीति का प्रयोग किया जाना चाहिए यह उस देश की परिस्थितियों, जैसे भूमि की मात्रा, पूँजी की उपलब्धि, भूमि पर जनसंख्या का दबाव, इत्यादि, पर निर्भर करेगा। भारत में भूमि की कमी है और जनसंख्या का दबाव बहुत है, इसलिए गहरी खेती अधिक उपयुक्त है। सामान्यतया हम परिस्थितियों के अनुसार विस्तृत तथा गहरी खेती दोनों का प्रयोग करते हैं।

प्रश्न

१ उत्पादन के साधनों में भूमि की क्या विशेषता है? भूमि अन्य साधनों से किस प्रकार भिन्न है?

What is special about land as a factor of production? How is it different from other factors of production? *(Alld. B. Com., 1972)*

२ भूमि की परिभाषा दीजिए, उसकी विशेषताएँ बताइए तथा कृषि-भूमि की समस्याएँ समझाइए।

Define 'Land', State its peculiarities and narrate problems of agricultural land

३ अर्थशास्त्र में उत्पादन का क्या अर्थ होता है? उत्पादन के साधन के रूप में भूमि की विशेषताएँ तथा महत्त्व बताइए।

What is meant by Production in Economics? State the peculiarities and importance of land as a factor of production *(Ravishanker, 1965)*

४ भूमि की परिभाषा दीजिए। क्या यह उत्पादन का एक साधन है? यह पूँजी से किस प्रकार भिन्न है?

Define land Is it a factor of production? How does it differ from capital?

[संकेत—देखिए 'भूमि के अर्थ तथा परिभाषा के सम्बन्ध में नया दृष्टिकोण' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री। तीसरे भाग के लिए देखिए 'भूमि तथा पूँजी' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

५. भूमि की एक उपयुक्त परिभाषा दीजिए तथा उन तत्त्वों की विवेचना कीजिए जिन पर भूमि की उत्पादकता निर्भर करती है।

Give a suitable definition of 'Land' and discuss the factors on which the productivity of land depends.

श्रम
[LABOUR]

श्रम की परिभाषा
(DEFINITION OF LABOUR)

अर्थशास्त्र मे श्रम का अर्थ उस शारीरिक तथा मानसिक प्रयत्न से लिया जाता है जो आर्थिक उद्देश्य से किया जाय। इस दृष्टि से मजदूर, प्रबन्धक, वकील, डॉक्टर, नौकर, इत्यादि सभी के प्रयत्न श्रम के अन्तर्गत आ जाते है।

प्रो० टोमस (Thomas) के अनुसार, "श्रम का अर्थ मानव के उस शारीरिक या मानसिक प्रयत्न से है जो प्रतिफल की आशा मे किया जाता है।"[1] मार्शल के अनुसार, "श्रम से हमारा अर्थ मनुष्य के उस मानसिक तथा शारीरिक प्रयास से है जो अशत या पूणतया, कार्य से प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाले आनन्द के अतिरिक्त, किसी लाभ की दृष्टि से किया जाये।"[2]

मार्शल या टोमस की परिभाषा से स्पष्ट है कि श्रम के लिए दो बातो का होना आवश्यक है: (i) श्रम के अन्तर्गत मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के प्रयत्न सम्मिलित किये जाते हैं—(ii) श्रम के अन्तर्गत केवल वे ही प्रयत्न आते हैं जिनका उद्देश्य आर्थिक होता है, केवल आनन्द के लिए किये गये श्रम को अर्थशास्त्र मे श्रम नही कहेगे।

श्रम का महत्त्व
(SIGNIFICANCE OF LABOUR)

श्रम उत्पादन का एक सक्रिय (active) तथा महत्त्वपूर्ण साधन है। एक देश मे विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा मे मौजूद हो सकते हैं, परन्तु वे बेकार होगे यदि श्रम द्वारा उनका भलीभाँति प्रयोग न किया जाये। यदि किसी देश मे उपयुक्त मात्रा मे निपुण श्रम शक्ति है तो वह देश विभिन्न क्षेत्रो मे उन्नति के शिखर पर पहुच सकेगा।

प्रो० केअरनक्रॉस (Cairncross) के अनुसार, समाज की दृष्टि से उत्पादन के साधनों मे श्रम एक बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। यदि भूमि या पूँजी का उचित प्रयोग नही होता तो केवल इन साधनो के मालिको को थोडी आय की हानि होगी, परन्तु यदि श्रम का उचित प्रयोग नही होता (अर्थात् वह बेरोजगार रहता है या अत्यधिक कार्य कराकर उसका शोषण किया जाता है) तो इससे मनुष्यों तथा औरतो मे हीनता (degradation) और निर्धनता फैलती है, तथा सामाजिक जीवन के स्वरूप मे गिरावट आती है।

श्रम के प्रकार
(KINDS OF LABOUR)

श्रम के तीन मुख्य प्रकार बताये हैं जो निम्न है

(१) उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम (Productive and unproductive labour)—(i) उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो मे मतभेद रहा है। फ्रांस मे

---

[1] "Labour connotes all human efforts, of body or of mind which is undertaken in the expectation of reward" —Thomas, *Elements of Economics* p 51

[2] "We may define labour as an exertion of mind or body undergone partly or wholly with a view to some good other than the pleasure derived directly from the work' —Marshall, *Principles of Economics*, p. 54.

'फिजियोक्रेट्स (Physiocrats) अर्थशास्त्री केवल कृषक के श्रम को (अर्थात् प्राथमिक व्यवसायों में काम करने वालों के श्रम को) ही उत्पादक मानते थे, अन्य सभी प्रकार के श्रम को वे अनुत्पादक समझते थे। एडम स्मिथ ने उत्पादक श्रम का कुछ विस्तृत दृष्टिकोण लिया। एडम स्मिथ ने श्रम के अन्तर्गत उन सभी प्रयत्नों को शामिल किया जिनके द्वारा भौतिक वस्तुओं का उत्पादन होता हो। इस दृष्टिकोण से अध्यापक, वकील, इत्यादि की सेवाओं को श्रम नहीं माना जा सकता क्योंकि ये कोई भौतिक वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते। मार्शल ने उत्पादक श्रम का और अधिक विस्तृत दृष्टिकोण लिया और उत्पादक श्रम को इस प्रकार परिभाषित किया, "यह अधिक अच्छा होगा कि सारे श्रम को उत्पादक समझा जाये केवल उस श्रम को छोड़कर जो कि अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहता है और इस प्रकार किसी भी प्रकार की उपयोगिता का निर्माण नहीं करता।"[1] सरल शब्दों में मार्शल के अनुसार, जो प्रयत्न उपयोगिता का सृजन करता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल होता है उसे 'उत्पादक श्रम' कहेंगे, इसके विपरीत दशा में श्रम अनुत्पादक होगा।

(ii) आधुनिक अर्थशास्त्री, मार्शल की भाँति उत्पादक श्रम का प्रयोग अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से करते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, कोई भी प्रयत्न जो उपयोगिता का सृजन करता है 'उत्पादक श्रम' कहा जायेगा तथा जो उपयोगिता का सृजन नहीं करता वह अनुत्पादक श्रम होगा। उपयोगिता का अर्थ है 'आवश्यकता पूर्ति की शक्ति' (want satisfying power)। अतः ब्रिग्स तथा जोरडन (Briggs and Jordan) के अनुसार, "वह सब श्रम जो आवश्यकता की पूर्ति करता है उत्पादक श्रम के अन्तर्गत आना चाहिए।" (All labour satisfying wants must be classified as productive)। प्रो० टोमस 'उपयोगिता सृजन' के स्थान पर 'मूल्य सृजन' (production of value) का प्रयोग अधिक अच्छा समझते हैं क्योंकि, उनके अनुसार, बहुत-सी वस्तुओं में बहुत अधिक उपयोगिता हो सकती है परन्तु उनमें मूल्य (value) का अभाव हो सकता है। अतः प्रो० टोमस के अनुसार, वे सभी श्रम जो 'मूल्य-सृजन', न कि 'उपयोगिता-सृजन', करते हैं उन्हें उत्पादक श्रम कहना चाहिए। इस प्रकार, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, विभिन्न प्रकार की भौतिक वस्तुओं का उत्पादन तथा विभिन्न प्रकार की सेवाएँ जिनके द्वारा व्यक्ति आय प्राप्त करता है—ये सब प्रयत्न उत्पादक श्रम के अन्तर्गत आते हैं।

(iii) यह सम्भव है कि किसी 'श्रम' का उद्देश्य 'मूल्य-सृजन' है परन्तु वह अपने उद्देश्य में असफल रहता है और ऐसे श्रम के परिणामस्वरूप प्राप्त वस्तु में कोई उपयोगिता या मूल्य नहीं होता। प्रश्न यह उठता है कि क्या ऐसा श्रम उत्पादक है या अनुत्पादक? प्रो० टोमस के अनुसार, यदि ऐसे श्रम के लिए प्रतिफल (reward) मिलता है तो वह 'उत्पादक श्रम' कहलायेगा अन्यथा 'अनुत्पादक श्रम' होगा। प्रो० टोमस इस सम्बन्ध में पनामा नहर के प्रारम्भिक निर्माण का उदाहरण देते हैं। पनामा नहर के प्रारम्भिक निर्माण में श्रमिकों को प्रतिफल या मजदूरी दी गयी। परन्तु श्रम का उद्देश्य असफल रहा क्योंकि पनामा नहर ठीक नहीं बन सकी और बाद में उसे दुबारा बनाना पड़ा। इस श्रम को 'उत्पादक श्रम' कहा जायेगा क्योंकि श्रमिकों को श्रम से आय तो प्राप्त हुई, यद्यपि उद्देश्य में सफलता नहीं हुई। इसी प्रकार यदि एक लेखक की पुस्तक प्रकाशित हो जाती है और उसको प्रकाशक से अपने श्रम का प्रतिफल मिल जाता है चाहे बाद में वह पुस्तक खराब सिद्ध हो, तो लेखक का यह श्रम उत्पादक होगा। यदि उसकी पुस्तक प्रकाशित नहीं होती तथा उसे कोई पुरस्कार नहीं मिलता तो ऐसा श्रम अनुत्पादक श्रम होगा।

(२) कुशल श्रम तथा अकुशल श्रम (Skilled and unskilled labour)—(i) 'कुशल श्रम' वह श्रम है जिसे करने के लिए विशेष प्रशिक्षण (training) तथा ज्ञान की आवश्यकता होती

---

[1] "It would be best to regard all labour as productive except that which failed to promote the aim toward which it was directed and so produced no utilities."

है। उदाहरणार्थ, अध्यापक, इन्जीनियर, डॉक्टर, मशीन-चालक, इत्यादि का श्रम 'कुशल श्रम' है। 'अकुशल श्रम' वह श्रम है जिसे करने के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण तथा ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरणार्थ, घरेलू नौकर, कुली, चपरासी, इत्यादि का श्रम 'अकुशल श्रम' है।

(ii) कुशल श्रमिकों की पूर्ति में व्यय तथा समय लगता है, परिणामस्वरूप इनकी पूर्ति माँग की अपेक्षा कम होती है, अत कुशल श्रमिकों को अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है। इसके विपरीत, अकुशल श्रमिकों की पूर्ति, माँग की अपेक्षा अधिक होती है, इसलिए इन्हें कम प्रतिफल दिया जाता है।

(३) मानसिक तथा शारीरिक श्रम (Mental and physical labour)—वह श्रम जिसमे शरीर की अपेक्षा, मस्तिष्क या बुद्धि का अधिक प्रयोग होता है, उसे 'मानसिक श्रम' कहते हैं। उदाहरणार्थ, अध्यापक, वकील, इन्जीनियर, इत्यादि का कार्य 'मानसिक श्रम' है। वह श्रम जिसमे मस्तिष्क या बुद्धि की अपेक्षा, शरीर का अधिक प्रयोग होता है, उसे 'शारीरिक श्रम' कहते हैं। उदाहरणार्थ, कुली, घरेलू नौकर, इत्यादि का श्रम 'शारीरिक श्रम' है। यह बात ध्यान रखने की है कि कोई भी श्रम न तो पूर्णतया मानसिक और न पूर्णतया शारीरिक होता है। प्रत्येक श्रम मे मानसिक तथा शारीरिक दोनो प्रकार के श्रम का प्रयोग होता है अन्तर केवल मात्रा या श्रेणी (degree) का है, कुछ श्रम मे मस्तिष्क की प्रधानता हो सकती है जबकि कुछ में शरीर की।

श्रम की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OR PECULIARITIES OF LABOUR)

श्रम उत्पादन का एक बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। उत्पादन के साधन के रूप मे श्रम की कुछ विशेषताएँ हैं जो कि इसको अन्य उत्पादन के साधनो से पृथक् करती हैं। श्रम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) श्रम एक सक्रिय (active) साधन है—भूमि तथा पूँजी निष्क्रिय साधन हैं, जबकि श्रम एक अत्यन्त सक्रिय साधन है। श्रम के बिना भूमि तथा पूँजी से कुछ भी उत्पादन नही किया जा सकता है। प्रबन्ध तथा साहस एक प्रकार से श्रम के विशिष्ट रूप हैं। वास्तव में, श्रम के बिना किसी प्रकार की उत्पादन क्रिया नही की जा सकती है।

(२) श्रम को श्रमिक से पृथक नहीं किया जा सकता—जब कोई श्रमिक अपने श्रम को बेचता है तो वह अपने आपको श्रम से पृथक् नही कर सकता, श्रम प्रदान करने के स्थान पर श्रमिक को स्वय उपस्थित रहना पडता है। इसलिए श्रमिक अपने श्रम को बेचने समय कई बातो को ध्यान मे रखता है, जैसे कार्य करने की जगह का वातावरण, कार्य का स्वभाव, मालिक की प्रकृति (temperament), इत्यादि। इन सब बातो को श्रमिक को ध्यान मे रखना पडता है क्योंकि यदि ये बातें उसके लिए अनुकूल हैं तो उसका जीवन सुखी रहेगा, अन्यथा नही। एक वस्तु-विक्रेता इसकी चिन्ता नही करता कि उसकी वस्तु कैसे वातावरण म बिकेगी, कहाँ बिकेगी, इत्यादि, क्योंकि विक्रेता अपने आपको वस्तु से पृथक् कर सकता है।

(३) श्रम नाशवान (perishable) है—इसका अर्थ है कि श्रमिक को अपने तथा अपने परिवार के पोषण के लिए कार्य करना पड़ेगा। यदि वह किसी दिन कार्य नही करता है तो या तो उस दिन का श्रम सदैव के लिए नष्ट हो जाता है या श्रमिक को दूसरे दिन दुगुना कार्य करना पड़ेगा। परन्तु एक या दो दिन से अधिक श्रमिक कार्य को स्थगित नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों मे, श्रम का सचय (stock) नही किया जा सकता, जबकि एक वस्तु-विक्रेता वस्तु का सचय पर्याप्त समय तक कर सकता है और अच्छी कीमत मिलने पर वस्तु को बेच सकता है।

(४) श्रम की सौदा करने की शक्ति (bargaining power) कमजोर होती है—श्रम नाशवान है, इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक की मालिको के साथ सौदा करने की शक्ति कमजोर रहती है। मालिक जो भी वेतन या मजदूरी देता है उस पर श्रमिक को कार्य करना पडता है क्योंकि वह बेरोजगार नही रह सकता। इसके अतिरिक्त श्रमिक अशिक्षित होते है तथा उनकी आर्थिक स्थिति मालिको की अपेक्षा, बहुत कमजोर रहती है, इन बातो के कारण भी श्रमिको की

सौदा करने की शक्ति कमजोर रहती है। परन्तु श्रमिक-संगठनों (labour unions) द्वारा श्रमिक अपनी सामूहिक सौदा करने की शक्ति में वृद्धि कर लेता है और उचित वेतन पाने में सफल हो जाता है।

(५) श्रम की पूर्ति मन्द गति से परिवर्तित होती है—श्रमिकों की पूर्ति धीरे-धीरे बढ़ती है क्योंकि पूर्ति नये बच्चों की जन्म-दर तथा लम्बे समय तक उनके पोषण और प्रशिक्षण इत्यादि पर निर्भर करती है। इसी प्रकार श्रमिकों की पूर्ति को शीघ्रता से कम नहीं किया जा सकता क्योंकि जन्म-दर को तुरन्त कम नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, श्रम की पूर्ति का उसकी माँग के साथ शीघ्रता से समायोजन (adjustment) नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, मन्दी के समय में श्रमिकों की माँग कम होती है परन्तु उनकी पूर्ति को शीघ्रता से कम नहीं किया जा सकता, परिणामस्वरूप श्रमिकों की मजदूरी की दर गिर जाती है। इसके विपरीत, व्यापार तथा उद्योग के विकास के समय में या युद्धकाल में श्रमिकों की माँग बहुत बढ़ जाती है परन्तु बढ़ी हुई माँग के अनुरूप श्रम की पूर्ति में शीघ्रता से वृद्धि नहीं की जा सकती, परिणामस्वरूप श्रमिकों के वेतन ऊँचे हो जाते हैं।

(६) श्रम की श्रेष्ठता (quality) श्रमिकों के माता-पिता के साधनों पर निर्भर करती है—यदि किसी श्रमिक के माता-पिता धनवान, चरित्रवान, योग्य तथा दूरदर्शी हैं तो वह गुणात्मक दृष्टि से, अन्य श्रमिकों की अपेक्षा, अधिक श्रेष्ठ होगा। इसके विपरीत दशाओं में श्रमिक योग्य तथा दक्ष नहीं होगा।

(७) श्रमिक अपना श्रम बेचता है न कि स्वयं को—यद्यपि श्रमिक तथा श्रम को पृथक नहीं किया जा सकता, परन्तु कार्य करने के लिए श्रमिक अपने श्रम को बेचता है, न कि स्वयं को। अपने शरीर, योग्यता, कुशलता, इत्यादि पर श्रमिक का अपना अधिकार होता है। प्राचीन समय में जिन जगहों पर दासता की प्रथा प्रचलित थी, वहाँ पर श्रमिक को, श्रम के साथ अपने आपको भी बेचना पड़ता था। परन्तु अब दासता की प्रथा समाप्त हो गयी है, इसलिए श्रमिक केवल अपने श्रम को ही बेचता है।

(८) श्रम एक साधन (means) तथा साध्य (end) दोनों है—श्रम की सहायता से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, इस दृष्टि से श्रम एक साधन है। परन्तु विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन इसलिए किया जाता है ताकि श्रमिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, इस दृष्टि से श्रम एक साध्य भी है। अतः 'श्रम एक साधन तथा साध्य दोनों है और उसका मूल्य (value) केवल श्रम के रूप में किये गये कार्य के मूल्य में ही निहित नहीं होता।'[1]

(९) श्रम का प्रतिफल श्रम की पूर्ति को सामान्य तरीके (normal way) से प्रभावित नहीं करता—सामान्यतः वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि उनकी पूर्ति में वृद्धि करती है। परन्तु श्रम के साथ सदैव ऐसा नहीं होता। एक सीमा के बाद यदि श्रमिकों के वेतन में वृद्धि की जाती है तो वे अधिक आराम (leisure) प्राप्त करना पसन्द करेंगे और कम घण्टे काम करेंगे, दूसरे शब्दों में, श्रमिकों की पूर्ति, उनके वेतन में वृद्धि के परिणामस्वरूप कम होगी। इसके विपरीत, एक सीमा के नीचे यदि श्रमिकों का वेतन कम कर दिया जाता है तो श्रमिक अपना तथा अपने परिवार का पोषण ठीक प्रकार से नहीं कर पायेंगे और अधिक घण्टे काम करेंगे, दूसरे शब्दों में, श्रमिकों की पूर्ति उनके वेतनों में कमी के परिणामस्वरूप बढ़ेगी। स्पष्ट है श्रम का प्रतिफल श्रम की पूर्ति को सामान्य तरीके से प्रभावित नहीं करता।

(१०) श्रम में पूँजी का विनियोग (investment) किया जाता है—श्रम को अधिक योग्य तथा कुशल बनाने के लिए, उनके अच्छे पोषण, शिक्षा तथा प्रशिक्षण, इत्यादि में पर्याप्त पूँजी का विनियोग किया जाता है। उद्योगों में पूँजी का विनियोग करके अधिक उत्पादन या आय प्राप्त की जाती है। इसी प्रकार कुशल, शिक्षित तथा योग्य श्रमिकों द्वारा अधिक उत्पादन किया जा सकता

[1] "But labour is both a means and an end and its value does not consist merely in the value of the work it does as labour."

है। अतः श्रम को मानवीय पूंजी (human capital) भी कहा जाता है। द्रव्य की वह मात्रा जो श्रमिकों में विनियोग कर दी जाती है सदैव के लिए उन्हीं में लगी रहेगी, इसको निकाला नहीं जा सकता है, जबकि वस्तुओं, मशीनों, भवनों, इत्यादि में लगाये गये द्रव्य को इन वस्तुओं को बेचकर एक सीमा तक निकाला जा सकता है। यद्यपि अधिक द्रव्य के प्रयोग से श्रम की कुशलता में वृद्धि के परिणामस्वरूप अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और इस प्रकार बढ़े हुए उत्पादन के रूप में द्रव्य को एक सीमा तक निकाला जा सकता है परन्तु यह क्रिया बहुत धीमी होती है तथा इसके लिए बहुत समय की आवश्यकता है।

(११) श्रम, वस्तु की भाँति, लगातार सेवा प्रदान नहीं कर सकता—बहुत-सी वस्तुओं का निर्माण हो जाने के पश्चात् उनसे लगातार तथा लम्बे समय तक सेवा प्राप्त की जा सकती है। परन्तु श्रम के सम्बन्ध में ऐसा नहीं होता क्योंकि श्रम की पूर्ति करने वाला मनुष्य तो जीव होता है। श्रमिकों को बीच-बीच में निश्चित समयों पर मनोरंजन, आराम, खाने-पीने, सोने, इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है।

(१२) श्रम गतिशील (mobile) है—श्रम एक मनुष्य है, उसमें जीव है। अतः वह पूंजी तथा वस्तुओं की अपेक्षा कम गतिशील होता है। उसको एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग या एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में लाया जा सकता है, यद्यपि व्यावहारिक जीवन में कुछ बातें पूर्ण गतिशीलता में बाधक होती हैं।

(१३) श्रम बुद्धि तथा निर्णय-शक्ति का प्रयोग करता है (*Labour exercises intelligence and judgment*)—श्रमिक मनुष्य होते हैं, इसलिए उनमें बुद्धि तथा तर्क और निर्णय शक्ति होती है। किसी भी कार्य या श्रम में बुद्धि तथा निर्णय शक्ति का प्रयोग करना श्रमिकों के लिए स्वाभाविक है। जिस कार्य में बुद्धि के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती, ऐसे कार्य को विशुद्ध यान्त्रिक कार्य (pure mechanical work) कहा जाता है और ऐसा कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है। 'स्नायु-शक्ति' (muscle-power) तथा मशीन एक-दूसरे से प्रत्यक्ष प्रतियोगिता में हैं और एक का दूसरे से प्रतिस्थापन किया जा सकता है। परन्तु मानव-मस्तिष्क के कार्य को किसी अन्य से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता।[5] अतः प्रो० केअरनक्रॉस (Cairncross) के अनुसार, श्रम की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता 'बुद्धि तथा निर्णय शक्ति का प्रयोग' है क्योंकि इसके आधार पर इसको अन्य उत्पादन के साधनों से पृथक् किया जा सकता है।

श्रम की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही श्रम के एक पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। वास्तव में श्रम की उपर्युक्त विशेषताओं में थोड़ी अतिशयोक्ति (exaggeration) प्रतीत होती है क्योंकि इनमें से अधिकांश विशेषताएँ अन्य उत्पादन के साधनों में भी पायी जाती हैं।

श्रम की विशेषताओं का आर्थिक महत्त्व
(IMPORTANCE OF PECULIARITIES OF LABOUR IN ECONOMIC THEORY)

श्रम की विशेषताओं का आर्थिक सिद्धान्त में महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट होता है :

(१) श्रम की माँग पर प्रभाव—एक फर्म श्रम की माँग उसकी उत्पादकता (productivity) के कारण करती है न कि उसकी प्रत्यक्ष उपयोगिता के कारण, जबकि किसी वस्तु की माँग उसकी प्रत्यक्ष उपयोगिता के कारण की जाती है। श्रम की माँग इसलिए की जाती है क्योंकि उसकी सहायता से किसी वस्तु का उत्पादन किया जाता है, अतः श्रम की माँग 'उत्पन्न माँग' (derived demand) होती है।

(२) श्रम की पूर्ति पर प्रभाव—श्रम एक जीव है, इसलिए उसकी पूर्ति में धीरे-धीरे परिवर्तन होता है, उसकी पूर्ति को शीघ्रता से घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता।

(३) श्रम की मजदूरी पर प्रभाव—(i) श्रम अत्यन्त नाशवान (perishable) तथा आर्थिक दृष्टि से दुर्बल होता है तथा उसकी सौदा करने की शक्ति कमजोर होती है। इन सब विशेषताओं का परिणाम यह होता है कि मालिक या उद्योगपति श्रमिकों का शोषण करते हैं और उनको

[5] "Muscle power and machinery are in direct competition with one another and the one can replace the other But the work of human mind cannot be replaced."

मजदूरी उनको उत्पादकता में बराबर नहीं देना चाहते हैं। परन्तु आज के युग में अपनी इन विशेषताओं से उत्पन्न कमजोरियों को दूर करने के लिए श्रमिक अपने आपको संगठित करके 'श्रम-संघ' बनाते हैं। इन 'श्रम-संघों' के कारण उनकी सौदा करने की शक्ति बढ़ जाती है और वे श्रम मालिकों से उचित मजदूरी तथा कभी-कभी ऊँची मजदूरी लेने में सफल हो जाते हैं।

(ii) श्रम की एक विशेषता यह है कि श्रमिकों की पूर्ति को शीघ्रता से घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता है। इस विशेषता के कारण, युद्धकाल में श्रमिकों की माँग बढ़ जाने पर उनकी मजदूरी बढ़ जाती है क्योंकि श्रमिकों की पूर्ति को शीघ्रता से बढ़ाया नहीं जा सकता। इसी प्रकार मन्दी के समय में श्रमिकों की माँग कम होने पर उनकी मजदूरी कम हो जाती है क्योंकि श्रमिकों की पूर्ति को शीघ्रता से घटाया नहीं जा सकता।

(iii) श्रम एक जीव है उसको एक निर्जीव वस्तु की भाँति नहीं समझा जा सकता। उसको अपने तथा अपने परिवार के पोषण के लिए उचित मजदूरी मिलनी चाहिए। इसलिए प्रत्येक देश की सरकार श्रमिकों के संरक्षण के लिए विभिन्न प्रकार के नियम बनाती है ताकि श्रमिकों का शोषण न हो सके और उन्हें उचित मजदूरी मिले।

(iv) कभी-कभी श्रमिक की कुशलता या गुण के द्वारा उसकी मजदूरी निर्धारित नहीं होती बल्कि संस्थापक तत्त्व (institutional factors) तथा सामाजिक रीति-रिवाज मजदूरी को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ, भारत जैसे अविकसित देश में, गाँवों में श्रमिकों की मजदूरी प्रायः वहाँ प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार निर्धारित होती है न कि प्रतियोगिता या इकरार (contract) द्वारा।

(४) श्रम के कार्य करने की दशाओं पर प्रभाव—(i) श्रम की एक विशेषता यह है कि श्रम को श्रमिकों से पृथक नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है कि श्रम को केवल एक निर्जीव वस्तु की भाँति चाहे जिस तरह काम करने को मजबूर नहीं किया जा सकता, न उससे लगातार लम्बे समय तक काम लिया जा सकता है। यह आवश्यक है कि उसके कार्य करने का वातावरण अच्छा हो, बीच-बीच में उसको आराम की सुविधाएँ दी जायँ, मनोरंजन इत्यादि की उचित व्यवस्था हो, इत्यादि। श्रम में मानवीय तत्त्व को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसलिए विभिन्न देशों की सरकारें श्रमिकों के कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के नियम बनाती हैं।

(ii) श्रम में मानवीय तत्त्व के कारण कभी-कभी श्रम की मजदूरी ऊँची हो जाने पर वह कम घण्टे काम करना पसन्द करता है ताकि उसे अधिक आराम मिल सके और एक स्वस्थ तथा सुखी जीवन व्यतीत कर सके।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रम की विशेषताएँ किस प्रकार से श्रम की माँग, श्रम की पूर्ति, कार्य करने के घण्टे, मजदूरी, सरकार की नीतियों, इत्यादि को प्रभावित करती हैं। आर्थिक सिद्धान्त (economic theory) में श्रम की विशेषताओं का महत्त्व स्पष्ट है। श्रम की विशेषताओं के कारण श्रम के एक अलग सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु श्रम का मूल्य (अर्थात् मजदूरी) निर्धारण में माँग तथा पूर्ति का सामान्य सिद्धान्त अवश्य लागू होता है।

क्या श्रम के साथ एक वस्तु की भाँति व्यवहार किया जा सकता है?
(CAN LABOUR BE TREATED AS A COMMODITY?)

क्लासिकल अर्थशास्त्री (Classical Economists) श्रम को एक वस्तु की भाँति समझते थे जिसको वस्तु की भाँति, बाजार में बेचा तथा खरीदा जा सकता है और उसका मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। परन्तु यह विचारधारा अनुचित है। श्रम को एक वस्तु की भाँति नहीं समझा जा सकता है, इसके कारण निम्नलिखित है

(१) वस्तु निर्जीव होती है जबकि श्रम जीव होता है। वस्तु को विक्रेता से अलग किया जा सकता है, इसलिए एक विक्रेता वस्तु को बेचने के बाद इस बात की चिन्ता नहीं करता कि उस वस्तु का क्या होता है, उसका उचित प्रयोग होता है या नहीं। परन्तु श्रम को श्रमिक से पृथक

नहीं किया जा सकता। जब श्रमिक अपने श्रम को बेचता है तो श्रमिक स्वयं के साथ उपस्थित रहता है, उसका सारा व्यक्तित्व, जीवन, कुशलता, परिवार की खुशी, इत्यादि सभी बातें उसके श्रम के साथ जुड़ी रहती हैं।

(२) **थोड़े समय मे ही वस्तुओं की पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है, परन्तु श्रम की पूर्ति को शीघ्रता से नहीं बढ़ाया जा सकता**, ऐसा करने मे वर्षों लगते हैं। इसी तरह से कुछ ही दिनो मे या कुछ ही महीनों मे कुछ वस्तुओ को दूसरी वस्तुओ मे प्रतिस्थापित किया जा सकता है। परन्तु **श्रमिकों को मशीनों या अन्य वस्तुओं से इतनी आसानी से तथा कम समय मे प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता।** श्रमिको के स्थान पर मशीनो का प्रयोग करने का अर्थ है कि श्रमिक बेकार हो जायेंगे, इसलिए साथ ही साथ इनके रोजगार की भी व्यवस्था करनी होगी।

(३) **वस्तुओ की भाँति श्रम एक निष्क्रिय (passive) वस्तु नहीं है।** वस्तु निर्जीव है, उसमे कोई भावनाएँ नहीं होती, श्रम जीव है और वह विभिन्न प्रकार की भावनाओ से प्रभावित होता है। श्रमिक श्रम बेचने तथा कार्य करने मे उन सब भावनाओ (feelings) से प्रेरित होता है जो उसके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने मे सहायक होती है।

(४) वस्तुओ मे बहुत अधिक गतिशीलता होती है, जबकि **श्रम बहुत कम गतिशील होता है।** श्रम की गतिशीलता मे सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक तत्त्व बाधक होते हैं।

(५) वस्तुओ को लम्बे समय तक सचय (store) किया जा सकता है, **परन्तु श्रम को हम कुछ दिनो के लिए भी सचय नहीं कर सकते**, यदि श्रमिक को कुछ दिनो तक कार्य नहीं मिलता तो उसको अपने तथा अपने परिवार का पोषण करना कठिन हो जायेगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रम को वस्तु की भाँति नहीं समझा जा सकता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रम का प्रतिफल या मजदूरी माँग तथा पूर्ति के सामान्य सिद्धान्त द्वारा निर्धारित नहीं होती। वास्तव मे, श्रम की विशेषताओ के कारण सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

श्रम की कार्यक्षमता
(EFFICIENCY OF LABOUR)

किसी देश का उत्पादन श्रमिको की सख्या तथा कार्य करने के घण्टो के अतिरिक्त कार्यक्षमता पर भी निर्भर करता है। किसी देश मे श्रमिक जितने अधिक कुशल होंगे उतना ही अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा।

श्रम की कार्यक्षमता का अर्थ

(i) **एक निश्चित समय मे तथा दी हुई परिस्थितियो मे एक श्रमिक की, मात्रा तथा किस्म दोनो की दृष्टि से, वस्तु के उत्पादन करने की शक्ति को श्रम की कार्यक्षमता कहते हैं। श्रम की** कार्यक्षमता एक तुलनात्मक शब्द है। यदि एक श्रमिक समान दशाओ मे दूसरे श्रमिक की अपेक्षा अधिक वस्तुएँ तथा अच्छी किस्म की वस्तुएँ उत्पन्न करता है तो वह, दूसरे की अपेक्षा, अधिक कुशल कहा जायेगा।

(ii) श्रम की कार्यक्षमता को प्राय मुद्रा मे मापा जाता है। इसको मापने के लिए हमें उत्पादन की मात्रा (quantity) तथा किस्म (quality) की तुलना श्रम की लागत (cost) के साथ करनी पड़ती है। वस्तु की मात्रा को मापना आसान है, श्रम की उत्तमता को ठीक-ठीक मापना कठिन है। ऐसी परिस्थिति मे कार्यक्षमता को केवल मोटे रूप में ही मापा जा सकता है। यदि लागत समान (constant) है तो कार्यक्षमता, उत्पादन के साथ प्रत्यक्ष (direct) रूप से परिवर्तित होती है अर्थात् अधिक उत्पादन का अर्थ है अधिक कार्यक्षमता तथा कम उत्पादन का अर्थ है कम कार्यक्षमता। यदि उत्पादन समान रहता है तो कार्यक्षमता, लागत से विपरीत दशा मे परिवर्तित होती है अर्थात् लागत अधिक होने पर कार्यक्षमता कम तथा लागत कम होने पर कार्यक्षमता अधिक होगी।

श्रम की कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors Affecting the Efficiency of Labour)

श्रमिकों की कार्यक्षमता अनेक तत्त्वों से प्रभावित होती है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन तत्त्वों को पाँच मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त कर सकते हैं—(१) श्रमिक के व्यक्तिगत गुण, (२) देश की परिस्थितियाँ, (३) कार्य करने की दशाएँ, (४) प्रबन्ध की योग्यता, तथा (५) कुछ अन्य बातें। इन शीर्षकों के अन्तर्गत विभिन्न तत्त्वों का विस्तृत अध्ययन नीचे दिया जा रहा है

(१) श्रमिक के व्यक्तिगत गुण—श्रमिकों के व्यक्तिगत गुणों का उनकी कार्यक्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रमुख गुण निम्न प्रकार हैं

(i) **जातीय तथा पैतृक विशेषताएँ** (Racial and hereditary characteristics)—एक व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है वह उस जाति के गुणों को जन्म से ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार स्वस्थ, योग्य तथा शिक्षित माता-पिता के बच्चे भी प्राय स्वस्थ, योग्य तथा शिक्षित होंगे।

भारत म वैश्य जाति के लोग प्राय व्यापार में दक्ष होते हैं। क्षत्रिय तथा सिक्ख अच्छे सैनिक सिद्ध होते हैं। भारत में अधिकांश श्रमिकों के माता-पिता स्वस्थ तथा शिक्षित नहीं होते। परिणामस्वरूप भारतीय श्रमिक की कार्यकुशलता कम है।

परन्तु समय, शिक्षा, परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ जातीय तथा पैतृक गुणों में परिवर्तन होते रहते हैं।

(ii) **नैतिक गुण**—चरित्र, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, इत्यादि नैतिक गुण कार्यक्षमता मे वृद्धि करते है, उनकी अनुपस्थिति में कार्यक्षमता घटती है।

भारतीय श्रमिकों मे शिक्षा की कमी तथा निर्धनता के कारण कर्तव्यनिष्ठा की कुछ कमी पायी जाती है। शिक्षा, उचित मजदूरी तथा श्रम-नीति द्वारा भारतीय श्रमिकों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।

(iii) **स्वास्थ्य तथा जीवन स्तर**—यदि श्रमिक स्वस्थ है तो उसकी कार्यक्षमता अधिक होगी। अच्छे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त तथा पौष्टिक भोजन, स्वच्छ तथा हवादार मकान और पर्याप्त मात्रा मे वस्त्र की उपलब्धि होनी चाहिए। यदि श्रमिकों को अच्छा वेतन मिलता है तो उनका जीवन-स्तर ऊँचा बना रहेगा।

अधिकांश भारतीय श्रमिकों को कम वेतन मिलता है, उनका जीवन-स्तर नीचा है, वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति भी भली प्रकार से नहीं कर पाते हैं; परिणामस्वरूप उनकी कार्यक्षमता कम होती है।

(iv) **सामान्य बुद्धि** (General intelligence)—श्रमिकों की सामान्य बुद्धि की मात्रा (degree) उनकी कार्यक्षमता पर गहरा प्रभाव डालती है। एक श्रमिक जो ठीक सोच सकता है, जिसके विचारों में स्पष्टता है, जो तेज गति से कार्य कर सकता है, जो ठीक निर्णय ले सकता है, तथा जिसकी स्मरण-शक्ति अच्छी है, दूसरे श्रमिक की अपेक्षा कुशल होगा। सामान्य बुद्धि के उपर्युक्त गुण प्राय ईश्वर की देन हैं। परन्तु शिक्षा इत्यादि के द्वारा वे अर्जित भी किये जा सकते हैं।

अन्य उन्नतशील देशों की अपेक्षा भारतीय श्रमिक की सामान्य बुद्धि का स्तर नीचा है क्योंकि वह निर्धन, अशिक्षित तथा भाग्यवादी है।

(v) **सामान्य, विशिष्ट तथा वाणिज्य शिक्षा** (General, technical and commercial education)—सामान्य शिक्षा से व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास होता है, वह विभिन्न प्रकार की समस्याओं तथा उत्पादन के नये तरीकों को सुगमता और शीघ्रता से समझ सकता है। आज के युग में नये आविष्कार होते रहते है, उत्पादन की रीतियाँ तेजी से बदलती रहती है, ऐसी स्थिति

मे सामान्य शिक्षा बहुत आवश्यक है ताकि नयी परिस्थितियो के साथ आसानी से समायोजन (adjustment) कर सकें। अत सामान्य शिक्षा अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिक की कार्यकुशलता को प्रभावित करती है।

वाणिज्य तथा टेक्नीकल शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से श्रमिक की कार्यक्षमता को प्रभावित करती है। टेक्नीकल शिक्षा श्रमिक को कार्य के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पहलुओ को समझने तथा कार्य को अधिक वैज्ञानिक रीति से करने मे मदद करती है। टेक्नीकल शिक्षा प्राप्त श्रमिको के निरीक्षण की बहुत कम आवश्यकता पडती है। इन सब बातो के परिणामस्वरूप समय, शक्ति, कच्चे माल, इत्यादि की बरबादी न्यूनतम हो जाती है। टेक्नीकल शिक्षा प्राप्त श्रमिक कार्य से सम्बन्धित मशीनो के विकास, सरलीकरण तथा आविष्कार मे भी मदद करते हैं।

भारत मे, श्रमिको के लिए सामान्य शिक्षा तथा वाणिज्य और टेक्नीकल शिक्षा की उचित एव पर्याप्त सुविधाएँ नही हैं, परिणामस्वरूप, भारतीय श्रमिको की कार्यक्षमता का स्तर नीचा है।

(२) **देश की परिस्थितियाँ**—किसी भी देश की प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ श्रमिको की कार्यक्षमता को प्रभावित करती हैं।

(i) **जलवायु**—प्राकृतिक परिस्थितियाँ, मुख्यत जलवायु, श्रमिको की कार्यक्षमता को प्रभावित करती है (क) गरम देशो के लोग गर्मी के कारण आलसी होते हैं और अधिक मेहनत नही कर पाते। इसके अतिरिक्त गरम देशो के लोगो की आवश्यकताएँ सरल तथा सीमित होती हैं जिन्हे वे थोडी मेहनत करके ही पूरी कर लेते हैं। (ख) ठण्डे देश के लोगो की कार्यक्षमता अधिक होती है, वे अधिक बलवान होते हैं, शरीर मे फुर्ती बनाये रखने के लिए उन्हे अधिक कार्य करना पडता है, उनकी आवश्यकताएँ भी अधिक होती हैं जिनको पूरा करने के लिए उन्हें अधिक मेहनत करनी पडती है। (ग) जिन देशों में भूमि अधिक उपजाऊ है तथा अन्य प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं वहाँ के लोग कम मेहनत से अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर लेते हैं।

भारत एक गरम देश है। अत यहाँ के श्रमिको की कार्यक्षमता अमरीका, इंगलैण्ड, इत्यादि ठण्डे देशो की अपेक्षा कम है। परन्तु कृत्रिम तरीको, जैसे—बिजली के पंखे, कूलर, खस की टट्टियो, इत्यादि से कार्य-स्थान का तापमान नीचा रखकर भारतीय श्रमिको की कार्यक्षमता को ऊँचे स्तर पर बनाये रखने के प्रयत्न किये जाते हैं। जापान, अफ्रीका, आदि के श्रमिक प्रतिकूल जलवायु होने पर भी बहुत परिश्रमी हैं। वास्तव मे, जलवायु का श्रमिकों की कार्यक्षमता पर अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पडता।

(ii) **सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ**—एक देश के श्रमिको की कार्यक्षमता देश मे प्रचलित सामाजिक रीति-रिवाजो तथा धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होती है। ये परिस्थितियाँ श्रमिको के उपयुक्त व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता मे बाधक हो सकती हैं और इस प्रकार श्रम की कार्यक्षमता का कम कर सकती हैं।

भारत म, जाति प्रथा तथा धार्मिक विचार श्रमिको की कार्यक्षमता को कम करते हैं। प्राय एक व्यक्ति जिस जाति म पैदा होता है या जिस धर्म को मानता है वह उसी जाति या धर्म के व्यवसाय को अपनाता है, अपनी योग्यता तथा रुचि के अनुसार वह व्यवसाय को चुनने मे पूर्ण स्वतन्त्र नही रह पाता। भारत मे धार्मिक प्रवृत्ति श्रमिको को भाग्यवादी बना देती है और भाग्य के भरोसे रहने के कारण उनकी कार्यक्षमता कम रहती है। परन्तु शिक्षा, आर्थिक विकास, इत्यादि के कारण इन बाधक तत्त्वो का प्रभाव कम होता जा रहा है।

(iii) **राजनीतिक परिस्थितियाँ**—यदि किसी देश म राजनीतिक स्थायित्व, सुरक्षा तथा शान्ति है, तो वहाँ के श्रमिको की कार्यक्षमता का स्तर ऊँचा होगा, इसके विपरीत परिस्थिति मे नीचा होगा। एक परतन्त्र देश के श्रमिको की कार्यक्षमता, स्वतन्त्र देश की अपेक्षा, कम होगी।

भारत म राजनीतिक स्थायित्व है जो श्रमिको की कार्यकुशलता के लिए अनुकूल है परन्तु भारत बहुत लम्बे समय तक परतन्त्र रहा है जिसके परिणामस्वरूप यहाँ के श्रमिकों की कार्यक्षमता का स्तर नीचा रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् से श्रमिको की कार्यक्षमता मे बराबर वृद्धि हो रही है।

सीमित है। इगलैण्ड तथा अन्य उन्नतशील देशो मे श्रमिक जन्म से मरण तक सभी प्रकार की अनिश्चितताओ से सुरक्षित रहता है। परिणामस्वरूप भारतीय श्रमिको की कायक्षमता, इगलैण्ड के श्रमिको की अपेक्षा, बहुत कम है।

(४) **प्रबन्ध की योग्यता (Capacity of organisation)**—श्रमिको की कायक्षमता प्रबन्धक की कुशलता तथा योग्यता पर निर्भर करती है। यदि प्रबन्धक योग्य व्यक्ति है तो वह श्रमिको के बीच उनकी रुचि तथा योग्यता के अनुसार कार्य वितरण करेगा, अन्य उत्पादन के साधनो के साथ श्रम को अनुकूलतम अनुपात म मिलायेगा तथा श्रमिको के विकास के लिए उचित सुविधाओ की व्यवस्था करेगा। इन सुविधाओ के परिणामस्वरूप श्रम की कायक्षमता म वृद्धि होगी। इसके विपरीत, एक अयोग्य तथा अकुशल प्रबन्धक श्रमिको का उचित सगठन तथा समन्वय नही कर पायगा और मिको की कार्यक्षमता मे कमी आ जायगी।

भारत म य॰ य कुशल तथा अनुभवी प्रबन्धको की कमी है जिसके कारण भारतीय श्रमिको की कार्यक्षमता अन्य उन्नतशील देशो की अपेक्षा कम है।

(५) **कुछ अन्य तत्त्व (Some other factors)**—श्रमिको की कायक्षमता को कुछ अन्य बातें भी प्रभावित करती है जो इस प्रकार हैं

(i) **श्रमिक सघों की शक्ति**—यदि मजदूरो के सगठन शक्तिशाली हैं तो व मालिको से उचित वेतन ले सकेंगे। श्रमिको की शिक्षा, प्रशिक्षण, मनोरजन, इत्यादि की व्यवस्था म अच्छा सहयोग दे सकेंगे। इन सब बातो के परिणामस्वरूप श्रमिको की कार्यक्षमता म वृद्धि होगी।

भारत मे श्रमिक सघ, कई कारणो से, शक्तिशाली नही हो पाये हैं, उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर है। अत भारतीय श्रमिको की कायक्षमता मे वृद्धि म श्रमिक सघो का कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नही रह जाता है।

(ii) **श्रमिको का प्रवासी होना (Migratory Character of Labour)**—यदि श्रमिक एक व्यवसाय मे जम कर कार्य नहीं करते हैं, बल्कि एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय म एक स्थान से दूसरे स्थान को बहुत जल्दी-जल्दी जाते रहते है तो वे एक व्यवसाय म निपुण नहीं हो पाते और उनकी कार्यक्षमता का स्तर नीचा रहता है।

भारत मे श्रमिको की प्रवासी प्रवृत्ति अभी भी समाप्त नहीं हो पायी है कुछ समय काम करने के पश्चात् वे अपने गाँव को वापस चले जाते हैं तथा कुछ समय गाँव मे रहकर फिर फैक्ट्रियों मे काम करने को आते हैं, परन्तु यह आवश्यक नही है कि उन्हे पहले उद्योग या व्यवसाय म काम मिल ही जाय। इसके अतिरिक्त, भारतीय श्रमिक प्राय अपने कार्य से अनुपस्थित रहते हैं। भारतीय श्रमिको की अनुपस्थिति तथा उनका प्रवासी होना उनकी कार्यक्षमता को कम करने वाले तत्त्व है।

(iii) **मालिको का सहानुभूति का दृष्टिकोण**—यदि मालिक श्रमिको के प्रति उदार रहते हैं, उनकी कठिनाइयो तथा समस्याओ को समझने का प्रयत्न करते है, श्रमिको को निर्जीव वस्तुओ की भाति नही समझते तथा श्रमिको मे मानवीय तत्त्व को उचित मान्यता देते हैं तो श्रमिको को मनोवैज्ञानिक सन्तोष मिलता है। श्रमिको तथा मालिको के अच्छे सम्बन्ध रहते हैं। इन बातो के कारण श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है।

भारत मे बहुत थोडे उद्योगपति एसे हैं जो श्रमिको के प्रति उदारता तथा सहानुभूति का दृष्टिकोण रखते हैं। अत श्रमिकों की कार्यक्षमता कम रहती है।

भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता मे वृद्धि के सुझाव
(SUGGESTIONS FOR IMPROVING THE EFFICIENCY OF INDIAN LABOUR)

प्राय यह कहा जाता है कि इगलैण्ड, अमरीका, इत्यादि उन्नतशील देशो की अपेक्षा भारतीय श्रमिको की कार्यक्षमता बहुत कम है। भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता के कम होने के अनेक कारण हैं। कम वेतन, जीवन-स्तर का नीचा होना, अच्छे स्वास्थ्य का न होना, सामान्य तथा टेक्नीकल शिक्षा की कमी, देश की गर्म जलवायु, कार्य करने की असन्तोषजनक परिस्थितियाँ,

कार्य करने की अच्छी मशीनों तथा औजारों की कमी, योग्य प्रबन्धकों की कमी, श्रम संघ आन्दोलन का अविकसित दशा में होना, श्रमिकों का प्रवासी होना, इत्यादि अनेक कारण भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता के निम्न स्तर के लिए उत्तरदायी हैं। वास्तव में, भारतीय श्रमिक अन्य किसी भी देश के श्रमिक से कम कुशल नहीं है, केवल विपरीत परिस्थितियों के कारण ही भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता का स्तर नीचा है।

भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं -

(१) सामान्य, वाणिज्य तथा टेक्नीकल शिक्षा की उचित व्यवस्था—यह परम आवश्यक है कि अधिक से अधिक श्रमिकों को सामान्य शिक्षा दी जाय। सन्तोषजनक बात यह है कि भारत सरकार ने प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य कर दी है। परन्तु इतना पर्याप्त नहीं है, श्रमिकों को उच्च सामान्य शिक्षा देने के लिए सरकार को हर प्रकार की आर्थिक सहायता देनी चाहिए।

श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा वाणिज्य और टेक्नीकल शिक्षा में सीधा सम्बन्ध है। टेक्नीकल शिक्षण संस्थाओं की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है तथा उनमें अधिक से अधिक श्रमिकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।

भारत सरकार ने 'श्रमिक शिक्षा का केन्द्रीय बोर्ड' (Central Board for Workers' Education) स्थापित किया जिसमें केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों, उत्पादकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि और विशेषज्ञ होते हैं। बोर्ड ने देश में अनेक 'प्रादेशिक श्रम शिक्षा केन्द्र' (Regional Workers' Education Centres) स्थापित कर दिये हैं।

(२) कार्य करने की अच्छी दशाएँ—श्रमिकों के कार्य करने के स्थान स्वच्छ तथा हवादार होने चाहिए, कार्य स्थान पर प्रकाश का ठीक प्रबन्ध होना चाहिए; साफ पानी तथा अच्छी कैन्टीनों (canteens) की व्यवस्था होनी चाहिए। भारत सरकार ने श्रमिकों के कार्य करने की दशाओं को सुधारने के लिए कारखाना अधिनियम बना रखा है, इस अधिनियम का बहुत कड़ाई के साथ पालन करना चाहिए।

(३) मकानों की उचित व्यवस्था—भारतीय श्रमिकों के लिए मकानों की व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। भारतीय श्रमिक जिन मकानों में रहते हैं वे गन्दी बस्तियों में होते हैं, उनमें धूप, प्रकाश तथा हवा का नाम भी नहीं होता तथा रहने की जगह बहुत कम होती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रमिकों के लिए खुली हुई जगहों पर स्वच्छ तथा हवादार मकानों की व्यवस्था की जाय। मकानों की उचित तथा पर्याप्त सुविधाएँ देने के लिए सरकार, उद्योगपतियों तथा श्रमिकों को मिलकर बराबर प्रयत्न करते रहने चाहिए। भारत सरकार ने विभिन्न प्रकार की मकान योजनाएँ चलायी हैं परन्तु आवश्यकताओं को देखते हुए वे बहुत कम हैं।

(४) उचित वेतन, स्वास्थ्य तथा जीवन-स्तर में सुधार—भारतीय श्रमिकों की मजदूरी प्रायः कम होती है, वे अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर पाते हैं और उनका जीवन-स्तर नीचा रहता है जो कार्यक्षमता को कम करता है। अतः यह बहुत आवश्यक है कि श्रमिकों को अच्छी मजदूरी दी जाय तथा बोनस इत्यादि की व्यवस्था की जाय। भारत सरकार इस ओर प्रयत्नशील है।

(५) अच्छी मशीनों तथा यन्त्रों की व्यवस्था—श्रमिकों को अधिक वेतन तब मिल सकेगा जबकि वे अधिक उत्पादन करें, अधिक उत्पादन के लिए आवश्यक है कि मालिकों द्वारा श्रमिकों को काम करने के लिए अच्छी मशीनों तथा कुशल यन्त्रों की व्यवस्था की जाय।

(६) गर्मी-सर्दी से बचाव—भारत एक गर्म देश है। गर्मियों में श्रमिकों की कार्यक्षमता बहुत गिर जाती है; अतः गर्मी के दिनों में नमीकरण, खस की टट्टियाँ, पंखों, इत्यादि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इसी प्रकार बहुत सर्दी से बचाव के लिए विभिन्न प्रकार के कृत्रिम साधनों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(७) श्रम कल्याण कार्य तथा सामाजिक सुरक्षा—भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के श्रम कल्याण कार्यों की अत्यन्त आवश्यकता है। केन्द्रीय सरकार, राज्य

सरकारो, मालिको तथा श्रमिक सघो द्वारा, खेल-कूद के मैदानो, वाचनालयो, सगीत तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो, इत्यादि की व्यवस्था की गयी है, परन्तु आवश्यक्ताओ को देखते हुए ये कम हैं। श्रम राजकीय बीमा अधिनियम, १६४८ (Employees' State Insurance Act, 1948) के अन्तर्गत श्रमिको को सामाजिक सुरक्षा देने की व्यवस्था है, परन्तु अभी इस नियम का क्षेत्र सीमित है तथा थोडे-से श्रमिको को ही इससे लाभ मिल पाता है। आशा है कि निकट भविष्य मे ये सुविधाएँ अधिक श्रमिको को दी जा सकेंगी।

(८) **श्रमिक सघो को मजबूत बनाना**—भारत मे श्रमिक सघ आन्दोलन अभी भी बहुत कमजोर है श्रमिक सघो की आर्थिक स्थिति खराब है, उन पर बाहरी राजनीतिक नेताओ का प्रभाव रहता है ऐसी स्थिति मे यह अत्यन्त आवश्यक है कि अधिक से अधिक श्रमिको को शिक्षा दी जाय ताकि श्रमिको म से ही नताओ का निर्माण किया जा सके। भारत मे रस्किन कॉलेज ऑफ आक्सफोर्ड (Ruskin College of Oxford) के नमूने पर श्रम कलिजो की स्थापना होनी चाहिए। कलकत्ता म एशियन ट्रेड यूनियन कालेज (Asian Trade Union College) की स्थापना करके इस दिशा म कदम उठाये गय हैं।

(९) **मालिकों का उदार दृष्टिकोण**—भारतीय श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि मालिको का श्रमिको के प्रति उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण हो। ऐसी स्थिति म श्रमिक अधिक सन्तुष्ट रहेंगे और दिल लगाकर कार्य करेंगे।

श्रम की गतिशीलता
(MOBILITY OF LABOUR)

श्रम की गतिशीलता का अर्थ

श्रमिको की गतिशीलता का अर्थ श्रमिक का एक स्थान से दूसरे स्थान, एक व्यवसाय या प्रयोग मे दूसरे व्यवसाय या प्रयोग म या कार्य के एक वर्ग (grade) से दूसरे वर्ग म जाने से लिया जाता है। प्रो० टोमस (Thomas) के अनुसार, **"श्रमिक की गतिशीलता का अर्थ एक प्रयोग से दूसरे मे जाने की योग्यता तथा तत्परता से लिया जाता है।"***

श्रम की गतिशीलता के प्रकार

श्रम की गतिशीलता निम्न प्रकार की होती है

(१) **भौगोलिक गतिशीलता** (Geographical mobility)—जब श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है तो इसे 'भौगोलिक गतिशीलता' या 'स्थान गतिशीलता' या 'प्रादेशिक गतिशीलता' कहते हैं। यदि श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थायी रूप से चला जाता है तो इसे 'स्थायी भौगोलिक गतिशीलता' कहते हैं। यदि श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान को केवल थोडे समय के लिए अर्थात् अस्थायी रूप से जाता है तो इसे 'अस्थायी भौगोलिक गतिशीलता' (temporary geographical mobility) कहते हैं।

(२) **व्यावसायिक गतिशीलता** (Occupational mobility)—यदि श्रमिक एक व्यवसाय या उद्योग से दूसरे व्यवसाय या उद्योग मे चला जाता है तो इसे 'व्यावसायिक गतिशीलता' कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक श्रमिक कपडा उद्योग को छोडकर जूट उद्योग म चला जाता है तो इसे व्यावसायिक गतिशीलता कहेंगे।

(३) **वर्गीय गतिशीलता** (Grade mobility)—प्रत्येक व्यवसाय या उद्योग मे श्रमिकों के लिए वेतन के आधार पर विभिन्न वर्ग (grade) होते हैं। यदि श्रमिक एक वर्ग से दूसरे वर्ग मे जाता है तो इसे 'वर्गीय गतिशीलता' कहते हैं। 'वर्गीय गतिशीलता' दो प्रकार की होती है—समवर्गीय या समस्तरीय गतिशीलता (horizontal mobility) तथा विभिन्नवर्गीय या शीर्ष गतिशीलता (vertical mobility)। यदि श्रमिक एक फर्म या व्यवसाय को छोडकर दूसरे फर्म या व्यवसाय मे उसी वर्ग या ग्रेड मे नौकरी करता है तो यह 'समस्तरीय गतिशीलता' कही जायेगी। जब

* "By the mobility of labour is meant its ability and willingness to move from one trade or occupation to another"

श्रमिक एक फर्म या व्यवसाय को छोडकर दूसरे फर्म या व्यवसाय मे पहले की अपेक्षा ऊँचे वर्ग मे या नीचे वर्ग मे नौकरी करता है तो यह 'शीर्ष गतिशीलता' कही जायेगी।

श्रम की गतिशीलता के कारण (Causes of the Mobility of Labour) अथवा श्रम की गतिशीलता को प्रोत्साहित करने वाले तत्त्व (Factors Encouraging the Mobility of Labour)

भौगोलिक, व्यावसायिक तथा वर्गीय गतिशीलता को प्रभावित करने वाले कई तत्त्व हैं, ये निम्नलिखित हैं

१ भौगोलिक गतिशीलता के कारण

(i) **आर्थिक कारण**—श्रमिक नौकरी की तलाश मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है। भारत मे गाँव से बहुत-से व्यक्ति शहरो मे नौकरी के लिए आते रहते है। (ii) **राजनीतिक कारण**—जब एक व्यक्ति के लिए एक स्थान पर राजनीतिक प्रगति के अवसर नही हैं तो वह दूसरे स्थान को जाना पसन्द करता है। (iii) **सामाजिक कारण**—यदि एक व्यक्ति एक स्थान पर अपनी जाति से निकाल दिया जाता है या जाति वालो से झगडा करता है, तो वह उस स्थान को छोडकर दूसरे स्थान को चला जाता है।

२. व्यावसायिक गतिशीलता के कारण

(i) **ऊँचा वेतन**—यदि एक श्रमिक को दूसरे व्यवसाय मे पहले की अपेक्षा अधिक वेतन मिल सकता है तो वह दूसरे व्यवसाय म चला जायेगा। (ii) **कार्य की सुरक्षा**—यदि एक श्रमिक को दूसरे व्यवसाय मे पहले की अपेक्षा नौकरी का स्थायित्व तथा सुरक्षा अधिक है तो वह दूसरे व्यवसाय मे जाना पसन्द करेगा। (iii) **कार्य की अच्छी दशाएँ**—यदि एक श्रमिक को दूसरे व्यवसाय मे पहले की अपेक्षा कार्य करने की अच्छी दशाएँ मिलती हैं तो वह दूसरे व्यवसाय मे चला जायेगा। (iv) **भविष्य मे उन्नति की आशा**—यह स्वाभाविक है कि श्रमिक को जिस व्यवसाय मे भविष्य मे उन्नति के अधिक अवसर प्राप्त होंगे वह उसी व्यवसाय मे जाकर कार्य करेगा।

३. वर्गीय गतिशीलता के कारण

(i) **योग्यता में वृद्धि**—जब एक श्रमिक शिक्षा, ट्रेनिंग तथा अनुभव द्वारा अपनी योग्यता मे वृद्धि कर लेता है तो उसे वर्तमान वर्ग (ग्रेड) से दूसरे ऊँचे वर्ग या ग्रेड मे नौकरी मिल जाती है। (ii) **अन्य वर्गों मे रोजगार के अधिक अवसर**—यदि किसी दूसरे ऊँचे वर्ग या ग्रेड मे नौकरी के कई रिक्त स्थान हैं तो श्रमिको को दूसरे ऊँचे वर्ग मे नौकरी मिलना आसान हो जाता है। (iii) यदि श्रमिक को एक व्यवसाय मे वर्तमान ग्रेड मे नौकरी से मालिक द्वारा हटा दिया जाता है तो यह हो सकता है कि उसे दूसरी जगह उसी व्यवसाय मे उसी ग्रेड मे नौकरी न मिले, तब उसे नीचे के ग्रेड मे नौकरी करनी पड़ेगी।

श्रम की गतिशीलता में बाधक तत्त्व (Factors Hindering the Mobility of Labour) अथवा श्रम की गतिशीलता कम होने के कारण (Factors Responsible for the Low Mobility of Labour)

श्रम अन्य उत्पादन के साधनो की अपेक्षा कम गतिशील होता है। श्रम की गतिशीलता विभिन्न प्रकार के तत्त्वों से प्रभावित होती है। श्रम की गतिशीलता निम्न बाधक तत्त्वो के कारण कम होती है

(१) **स्थानीय तथा पारिवारिक सम्बन्ध (Local and family ties)**—प्राय श्रमिकों को अपने स्थान पर तथा परिवार से स्नेह या जुडाव रहता है जिसके कारण वे दूसरे स्थान को नही जाना चाहते। भारतीय श्रमिको को विशेष रूप से अपने स्थान तथा परिवार से बहुत जुडाव तथा स्नेह रहता है जिसके कारण दूसरे स्थान पर अच्छा वेतन मिलने पर वे जाना पसन्द नही करते।

(२) क्षेत्रों मे विभिन्नता (Difference between regions)—प्राय एक देश के विभिन्न क्षेत्रो म बहुत अन्तर पाया जाता है, इस भिन्नता के कारण भी श्रमिक एक क्षेत्र या स्थान से दूसरे क्षेत्र या स्थान को नहीं जाते। भारत एक विशाल देश है, इसके विभिन्न क्षेत्रों मे खाने-पीने, रहन-सहन, भाषा, रीति-रिवाज, इत्यादि म बहुत भिन्नता पायी जाती है। ऐसी स्थिति मे भारतीय श्रमिक अपने स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को नही जाना चाहता।

(३) सामाजिक बाधाएँ (Social obstacles)—कुछ सामाजिक बातें तथा रीति रिवाज भी श्रम की गतिशीलता म बाधक होती हैं। भारत म जाति-प्रथा तथा संयुक्त परिवार प्रणाली श्रम की गतिशीलता म बहुत बाधक है। शिक्षा की प्रगति तथा आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप ये सामाजिक बन्धन अब भारत म ढीले होने जा रहे हैं।

(४) सामान्य शिक्षा की कमी तथा अज्ञानता (Lack of General Education and Ignorance)—भारत जैसे अविकसित देशो म श्रमिको म सामान्य शिक्षा की बहुत कमी होती है, उन्हें विभिन्न व्यवसायो तथा स्थानो की परिस्थितियो तथा उनम प्रचलित वेतनो इत्यादि के सम्बन्ध म पूरी जानकारी नही होती। अत निरक्षरता तथा अज्ञानता के कारण भारतीय श्रमिको की गतिशीलता निम्न होती है।

(५) टेक्नीकल कौशल की कमी (Want of Technical Skill)—कभी-कभी टेक्नीकल ज्ञान तथा कौशल की कमी के कारण भी श्रमिक एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे नही जा पाते। भारतीय श्रमिको का टेक्नीकल ज्ञान कम होता है, इसलिए वे एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे जाने से डरते हैं।

(६) यातायात व सवादवहन के साधनों का अपर्याप्त विकास (Inadequate Development of the Means of Transport and Communication)—यदि किसी देश मे यातायात तथा सवादवहन के साधन अविकसित हैं तो श्रमिको को एक स्थान से दूसरे स्थान म जाने मे बहुत कठिनाई होगी तथा उनको लागत भी अधिक पडेगी। भारत म यातायात तथा सवादवहन के साधनो का विकास अभी पूरी तरह से नहीं हो पाया है, इससे श्रमिको को अधिक कठिनाई तथा लागत का सामना करना पडता है और इस प्रकार उनकी गतिशीलता म बाधा पडती है।

(७) श्रमिकों की निर्धनता (Poverty of Labour)—जिस देश मे श्रमिको की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, वहाँ श्रमिको की गतिशीलता कम होगी क्योंकि वे आने-जाने के व्यय को सहन नहीं कर सकते। भारत म अधिकाश श्रमिक बहुत गरीब हैं। गरीबी के कारण वे दूसरे स्थान पर अच्छा वेतन मिलने पर भी जाने म डरते हैं।

(८) उच्चाकाक्षा की कमी (Lack of Ambition)—यदि श्रमिको म ऊँचा उठने की भावना प्रबल है ता जहा भी ऊँचे वेतन मिलेंगे या उन्नति की आशा होगी वहाँ जाने को वे तत्पर रहेंगे। भारत म अधिकाश श्रमिक बहुत गरीब हैं, उनका स्वास्थ्य अच्छा नही है, परिस्थितियो के कारण वे भाग्यवादी हो गये हैं और उनम कोई उच्चाकाक्षा नही रह गयी है। अत उनमे गतिशीलता कम पायी जाती है।

श्रमिक सघ
(TRADE UNION)

श्रमिक सघ का जन्म—श्रमिक सघ आन्दोलन पूँजीवादी बडे पैमाने के उत्पादन का परिणाम है। जब उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था तो मालिको तथा श्रमिको में बहुत निकट का सम्पर्क रहता था। परन्तु बड़े पैमाने के उत्पादन के परिणामस्वरूप हजारों तथा लाखों की सख्या म श्रमिक फैक्ट्रियों म काय करने लगे, मालिकों तथा श्रमिको के बीच कोई निकट सम्पर्क नही रह गया, श्रमिक अपना व्यक्तित्व खो बैठे तथा अपने आपको असहाय अनुभव करने लगे। दूसरी ओर पूँजीपतियो की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति मजबूत होती है, वे अधिक लाभ कमाने के प्रयत्न करते रहते हैं तथा श्रमिको का शोषण करते हैं। ऐसी स्थिति मे श्रमिकों को अपने आपको

पूंजीपतियों के शोषण से बचाने के लिए तथा अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए, श्रम-संगठन की आवश्यकता हुई। इस प्रकार अन्य देशों में श्रम-संघों का जन्म हुआ। भारत में भी पूंजीवादी बड़े पैमाने के उत्पादन के परिणामस्वरूप ही श्रमिक संघों का जन्म हुआ।

श्रमिक संघ की परिभाषा—श्रमिक-संघ श्रमिकों का ऐच्छिक संगठन होता है और इसका मुख्य उद्देश्य श्रमिकों के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाना होता है। सिडनी तथा वेब (Sydney and Webb) के अनुसार, "श्रमिक संघ, श्रमिकों का एक निरन्तर संगठन है जिसका उद्देश्य श्रमिकों के कार्य करने की उचित दशाओं को बनाये रखने या उनमें सुधार करने का होता है।"[1] वी० वी० गिरि (V V Giri) के अनुसार, "श्रमिक संघ श्रमिकों के ऐच्छिक संगठन होते हैं जो सामूहिक कार्य द्वारा श्रमिकों के हितों की वृद्धि तथा रक्षा के हेतु बनाये जाते हैं।"[2]

श्रमिक संघों की आवश्यकता तथा महत्त्व (Need and Importance of Trade Unions)—एक दृढ़ तथा स्वस्थ श्रमिक संघ आन्दोलन केवल श्रमिकों के लिए ही लाभदायक नहीं होता बल्कि इससे मालिकों तथा समस्त समाज को लाभ प्राप्त होता है। यह प्रजातन्त्र (democracy) की जड़ों को मजबूत करता है। इससे निम्नलिखित लाभ हैं :

(१) श्रमिकों को लाभ—श्रमिक संघ श्रमिकों की शोषण से रक्षा करते हैं, श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाते हैं तथा राजनीतिक क्षेत्र में श्रमिकों के प्रभाव को बढ़ाते हैं। (२) मालिकों को लाभ—दृढ़ श्रम संगठन मालिकों तथा श्रमिकों के बीच अच्छे तथा मधुर औद्योगिक सम्बन्ध बनाये रखने में मदद करते हैं, परिणामस्वरूप मालिकों के उत्पादन तथा लाभ में वृद्धि होती है। (३) समाज को लाभ—श्रमिक संघ अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाकर समाज में शान्ति रखते हैं और समाज को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की पूर्ति निरन्तर मिलती रहती है। एक सीमा तक दृढ़ तथा स्वस्थ श्रम संघ समाज में धन के असमान वितरण को कम करते हैं क्योंकि मजबूत श्रम संघों द्वारा ही श्रमिक मालिकों से अच्छा वेतन प्राप्त कर सकते हैं। (४) प्रजातन्त्र की जड़ों का मजबूत होना बेविन (Bevin) के अनुसार; श्रमिक संघों का मुख्य उद्देश्य सामान्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा समाज के अन्य सदस्यों के साथ ठीक सम्बन्ध बनाये रखने का होता है। क्या प्रजातन्त्र का भी यही मुख्य उद्देश्य नहीं होता है?"[3]

श्रमिक संघों के उद्देश्य तथा कार्य (Aims and Functions of the Trade Unions)—संघों का मुख्य उद्देश्य सामूहिक कार्य (collective action) द्वारा श्रमिकों के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर को उठाना होता है। श्रमिक संघों के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं :

(१) **संघर्ष या लड़ाई के कार्य** (Militant or Fighting Functions)—इसके अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए किये जाते हैं; जैसे मजदूरी की कटौती को रोकना तथा उनमें वृद्धि करना, कार्य के घण्टों में कमी करना, बोनस को प्राप्त करने के प्रयत्न, इत्यादि। इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रमिकों को मालिकों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है, इसलिए इन कार्यों को 'संघर्ष या लड़ाई के कार्य' कहते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रमिक विभिन्न तरीके अपना सकते हैं; जैसे आपसी विचार-विनिमय, सामूहिक सौदा या अन्त में हड़ताल करके।

(२) **कल्याणकारी कार्य** (Welfare Activities)—इसके अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो श्रमिकों के शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक उत्थान के लिए किये जाते हैं; जैसे—

---

[1] "Sydney and Webb have defined a Trade Union as "a continuous association of wage earners for the purpose of maintaining or improving the conditions of their working."

[2] "Trade unions are voluntary organisations of workers formed to promote and protect their interests by collective action."

[3] "The central idea of trade unions is the liberty of the ordinary man and the right relationship between fellowmen Is not this also the central idea of democracy?"

खेलो की व्यवस्था, पुस्तकालय, स्कूल, वृद्धावस्था की पेंशन, चिकित्सा की सुविधाओं, इत्यादि की व्यवस्था।

(३) प्रतिनिधि कार्य (Representative Functions)—मालिकों के साथ विभिन्न प्रकार की बातचीत मे श्रमिक सघ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुकदमो मे तथा राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय श्रम अधिवेशनो (conferences) मे भी श्रमिक सघ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रम नीति बनाने से सम्बन्धित सरकारी संस्थाओं में भी श्रमिक सघ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(४) राजनीतिक कार्य (Political Activities)—बहुत-से श्रम सघ सरकार बनाने के लिए चुनाव भी लडते हैं। इगलैण्ड का उदाहरण हमारे समक्ष है। परन्तु भारत मे श्रम संघ आन्दोलन का अभी इतना विकास नहीं हो पाया है कि वे चुनाव लड़ें। परन्तु भारत मे श्रम संघ विभिन्न राजनीतिक दलो के साथ मिलकर चुनावो को परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं और विधान सभाओं (legislative assemblies) मे कुछ स्थान (seats) प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

(५) विकासमान कार्य (Developmental Functions)—ये कार्य श्रमिक सघो के आधुनिक कार्य माने जाते हैं। अविकसित परन्तु विकासमान तथा नियोजित अर्थ-व्यवस्था (under-developed but developing and planned economy) मे श्रम सघ विकास कार्य मे सहयोग देकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। (i) श्रमिक सघ हड़तालो, धीमे कार्य करने के तरीको (go slow tactics), इत्यादि स दूर रहकर देश मे उत्पादन को अधिक बढा सकते है, (ii) यदि श्रमिक बढ़े हुए उत्पादन मे से ही मजदूरी मे वृद्धि प्राप्त करें तो वे मुद्रा स्फीति (inflation) को रोकने मे सहयोग दे सकते हैं, (iii) श्रमिक-सघो के प्रयत्न के फलस्वरूप श्रमिक अपने बोनस मे से एक भाग अल्प बचत योजनाओ मे लगाकर पूंजी निर्माण मे सहयोग दे सकते हैं। श्रमिक संघ के ये सब कार्य 'विकासमान कार्य' कहलाते हैं।

प्रश्न

१ श्रम की विशेषताएँ उसके पारितोषण को कैसे प्रभावित करती हैं ?
How do the Peculiarities of labour affect its remuneration ?

२. उत्पत्ति के साधनो मे श्रम की विशेषताओ का सावधानीपूर्वक विवेचन कीजिए। क्या श्रम के साथ वस्तु जैसा बर्ताव किया जा सकता है ?
Discuss carefully the various peculiarities of labour as an agent of production Can labour be treated as a commodity ?

[संकेत—दूसरे भाग के लिए देखिए 'क्या श्रम के साथ एक वस्तु की भाति व्यवहार किया जा सकता है ?' नामक शीर्षक के अन्तर्गत समस्त विषय-सामग्री।]

३ 'श्रम की कार्यकुशलता' से आपका क्या तात्पर्य है ? उसे प्रभावित करने वाले कारकों (factors) की विवेचना कीजिए।
What do you mean by efficiency of labour ? Discuss the factors affecting the same
(Raj Hyr Com, 1973, Luck, B Com, 1972)

४ हम उत्पादन के विभिन्न साधनों की कुशलता को किस प्रकार नापते हैं ? श्रम की कुशलता को कौन-से तत्त्व निर्धारित करते हैं ?
How do we measure the efficiency of various factors of production? What factors determine the efficiency of labour ?
(Sagar, B. Com, I, 1972)

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर मे बताइए कि एक निश्चित समय मे तथा दी हुई परिस्थितियो मे, किसी एक साधन की, मात्रा तथा किस्म दोनो की दृष्टि से, वस्तु के उत्पादन करने की शक्ति को उस साधन की कार्यक्षमता कहते हैं, इनके बाद बहुत संक्षेप मे श्रम की कार्यक्षमता का अर्थ बताइए, और उसको प्रभावित करने वाले तत्त्वो की विवेचना कीजिए।]

५ 'श्रम एक नाशवान वस्तु है'—समझाइए। श्रम की कार्यक्षमता किन बातों पर आधारित है? समझाइए।

'Labour is a perishable commodity' Discuss On what factors does the efficiency of labour depend ? Explain *(Agra, B Com, I 1968)*

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर में श्रम की विशेषता नं० ३ 'श्रम नाशवान है' को लिखिए।]

६ श्रम की कार्यक्षमता से आप क्या समझते हैं? भारत में श्रम की कार्यक्षमता में वृद्धि करने के सुझाव दीजिए।

What do you understand by efficiency of labour ? Suggest ways and means to improve the efficiency of labour in India

७ उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम में अन्तर बताइए। श्रम की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए आप किन उपायों की सिफारिश करेंगे?

Explain the difference between productive and unproductive labour What measures do you recommend to increase the efficiency of labour ?

८ 'श्रम की गतिशीलता' से आप क्या समझते हैं? श्रम की गतिशीलता को प्रोत्साहित करने वाले कारणों की विवेचना कीजिए।

What do you understand by the term Mobility of Labour Discuss the causes that encourage mobility of labour *(Vikram, B A I, 1964)*

९ श्रम संघ से आप क्या समझते हैं? उसके क्या कार्य हैं?

What is a trade union ? What are its functions ? *(Ravishanker, 1965)*

पूँजी
[CAPITAL]

पूंजी उत्पत्ति का एक साधन है। बड़े पैमाने की उत्पत्ति के लिए तो पूंजी एक बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। आज के युग मे बिना पूंजी के बड़े-बड़े उद्योगो को नही चलाया जा सकता।

पूंजी की परिभाषा
(DEFINITION OF CAPITAL)

साधारण बोलचाल मे पूंजी का अर्थ द्रव्य तथा धन-सम्पत्ति से लिया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र मे पूंजी का प्रयोग एक विशेष अर्थ मे किया जाता है। **सामान्यतया मनुष्य द्वारा उत्पादित धन का वह भाग जो अधिक धन के उत्पादन मे प्रयोग किया जाता है, पूंजी कहलाता है।** पूंजी की परिभाषा तथा अर्थ के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो मे मतभेद पाया जाता है। नीचे हम कुछ मुख्य परिभाषाओ का विश्लेषण करते हैं

बोम-बेवर्क (Bohm-Bawerk) के अनुसार पूंजी का अर्थ **'उत्पादित उत्पादन के साधनों'** (produced means of production) से लिया जाता है, इसका अर्थ है कि वे उत्पादन के साधन जो श्रम द्वारा उत्पादित किये गये है, जैसे—औजार, मशीन, बिल्डिंग, इत्यादि, पूंजी के अन्तर्गत आते हैं, भूमि तथा प्राकृतिक उपहार पूंजी मे शामिल नही किये जाते हैं, परन्तु बोम बेवर्क की परिभाषा पूर्ण नही है।[1]

चेपमेन (Chapman) के अनुसार, "पूंजी वह धन है जो आय प्रदान करता है या आय के उत्पादन मे सहायता करता है या जिसका इरादा इस प्रकार का होना है।"[2] **प्रो० टोमस** (Thomas) के अनुसार, "भूमि को छोडकर पूंजी व्यक्तिगत तथा सामूहिक धन का वह भाग है जो और अधिक धन के उत्पादन मे सहायक होता है।"[3]

---

[1] बोम-बेवर्क की परिभाषा के अनुसार उपभोग-वस्तुएँ (consumption goods), जो प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग की जाती है पूंजी के अन्तर्गत नही आती। इसके अन्तर्गत 'उत्पादक वस्तुएँ' (production goods) आती हैं जो और अधिक उत्पादन के लिए प्रयोग की जाती है। बोम बेवर्क की परिभाषा की दो मुख्य आलोचनाएँ की जाती हैं—(i) 'उपभोग वस्तुओ' तथा *'उत्पादक वस्तुओ' के बीच अन्तर स्पष्ट नही किया जा सकता है। एक वस्तु दोनो के अन्तर्गत* आ सकती है, जैसे एक डॉक्टर कार मे मरीज को देखने जाता है तो वह कार उत्पादक वस्तु होगी, यदि वह डॉक्टर कार मे घूमने जाता है तो वही कार 'उपभोग-वस्तु' हो जाती है। (ii) पूंजी के अन्तर्गत केवल मशीन तथा औजार ही शामिल नही होते, व्यापारी लोग इसके अन्तर्गत द्रव्य, बौण्ड (bonds) तथा सिक्यूरिटीज (securities) भी शामिल करते हैं।

[2] "Capital is wealth which yields an income or aids the production of an income or is intended to do so" —Chapman, *Outline of Political Economy* p 73.

[3] "Capital forms a part of that wealth of individuals and of communities other than land which is used to assist in the production of further wealth" —Thomas, *Elements of Economics*, p. 96.

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार पूँजी के निम्न महत्त्वपूर्ण गुण हुए

(i) पूँजी के विचार का सार है 'आय प्रदान करने वाली' (income yielding), वह 'आय उत्पादन करने वाली' (income creating) भी हो सकती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह आवश्यक रूप से आय-उत्पादन भी करे।[4]

(ii) पूँजी के अन्तर्गत केवल मनुष्यकृत धन सम्मिलित है, भूमि तथा प्राकृतिक उपहार नहीं।

(iii) पूँजी मे केवल वे ही वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं जो धन है, अर्थात् समस्त पूँजी धन होती है।

(iv) यद्यपि समस्त पूँजी धन होती है, परन्तु सारा धन पूँजी नहीं होता। धन का केवल वह भाग पूँजी होता है जो अधिक धन के उत्पादन में सहयोग देता है।

कुछ अन्तर
(SOME DISTINCTIONS)

पूँजी तथा आय (Capital and Income)—(i) पूँजी के स्वामित्व से एक निश्चित समय मे जो प्रतिफल (return) प्राप्त होता है, उसे आय कहा जाता है। यह बात भी ध्यान रखने की है कि आय पूँजी के स्वामित्व न होने पर भी प्राप्त की जा सकती है, जैसे गरीब व्यक्ति तथा नौकर-पेशे वाले व्यक्ति (professional men) अपनी सेवाओ द्वारा आय प्राप्त करते हैं। (ii) जिस प्रकार पूँजी से आय प्राप्त की जाती है उसी प्रकार आय को भी पूँजी मे परिवर्तित किया जा सकता है, आय का वह भाग जो बचा (save) कर उत्पादन कार्यों म लगाया जाता है, पूँजी हो जाता है। (iii) पूँजी एक स्टॉक (stock) है जबकि आय एक प्रवाह (flow) है। एक दिये हुए समय पर धन का जो स्टॉक होता है, वह पूँजी कहलाता है, तथा आय एक विशेष समय से सम्बन्धित 'लाभ का प्रवाह' (flow of benefit) है।

पूँजी तथा द्रव्य (Capital and Money)—सभी द्रव्य पूँजी नहीं होता, द्रव्य का वह भाग जो और अधिक उत्पादन म प्रयोग किया जाता है पूँजी होता है। इसी प्रकार सभी पूँजी द्रव्य नहीं होती, पूँजी का कुछ भाग बिल्डिंग, मशीनो, औजारो, इत्यादि के रूप म होता है।

पूँजी तथा धन (Capital and Wealth)—समस्त धन पूँजी नही होता। धन का केवल वह भाग जो और अधिक उत्पादन म प्रयोग होता है पूँजी होगा। इस बात को हम दूसरी तरह से देखें तो स्पष्ट होगा कि पूँजी का धन होना आवश्यक है। अत यह कहा जाता है कि समस्त पूँजी धन है परन्तु समस्त धन पूँजी नहो होता। बेन्हम तथा फिशर धन तथा पूँजी मे कोई अन्तर नही करते, इनके अनुसार समस्त धन पूँजी है, परन्तु यह विचार माननीय नही है।

पूँजी तथा पूँजीवाद (Capital and Capitalism)—*पूँजी वस्तुओ का स्टॉक, यन्त्र, मशीन,* इत्यादि हैं, जिनसे और अधिक उत्पादन किया जाता है। पूँजीवाद समाज की एक प्रणाली को बताता है जिससे वस्तुओ के स्टॉक, यन्त्र मशीन तथा उत्पादन के अन्य साधनो पर व्यक्तिगत लोगो (private persons) का स्वामित्व होता है जिनको वे अपने लाभ के लिए प्रयोग करते हैं। जिन देशो मे व्यक्तिगत स्वामित्व नहो होता वहाँ पर पूँजीवादी (capitalist) तो नहीं होता पर पूँजी अवश्य होती है। पूँजी उत्पादन मे सहायक होती है जबकि पूँजीवादी अपनी सम्पत्ति का उत्पादन में प्रयोग करके आय प्राप्त करता है।

---

[4] The essence of the concept of capital is that *it is income yielding if not also income creating*

उदाहरणार्थ, बौण्ड या सिक्यूरिटी एक व्यक्ति के लिए आय प्रदान करती है और इसलिए पूँजी है। परन्तु यह आवश्यक नही है कि बौण्ड आवश्यक रूप से आय-उत्पादन करने वाला (income-creating) भी हो। जब सरकार उत्पादक उद्दमो के लिए बाजार म बौण्ड बेचकर ऋण लेती है तो ये बौण्ड 'आय प्रदान करने वाले' (income-yielding) है और आय-उत्पादन करने वाले (income-creating) भी हैं।

पूंजी तथा भूमि—प्राय भूमि तथा पूंजी मे अन्तर किया जाता है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्री (जैसे, फिशर, बेन्हम आदि) भूमि तथा पूंजी मे कोई अन्तर नहीं करते। अत प्रश्न उठता है कि क्या भूमि पूंजी है ? इसके उत्तर को जानने के पहले भूमि तथा पूंजी मे अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। दोनो मे अन्तर इस प्रकार हैं (i) पूंजी मनुष्यकृत है जबकि भूमि प्रकृति की देन है। (ii) भूमि अविनाशी (indestructible) है जबकि पूंजी नश्वर (perishable) है। यद्यपि निरन्तर प्रयोग से भूमि की उर्वराशक्ति नष्ट होती है परन्तु खाद इत्यादि के प्रयोग से उसे पुन प्राप्त किया जा सकता है। (iii) पूंजी मे स्थान गतिशीलता तथा प्रयोग गतिशीलता दोनों होती हैं, जबकि भूमि मे केवल प्रयोग गतिशीलता (अर्थात् उसको एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित किया जा सकता है) होती है परन्तु स्थान गतिशीलता नहीं होती (अर्थात् भूमि को स्थिर होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान को उठाकर नही ले जाया जा सकता है।) (iv) पूंजी को प्राप्त करने के लिए समाज तथा व्यक्ति दोनो को कुछ न कुछ लागत देनी पडती है जबकि भूमि को प्राप्त करने के लिए समाज की दृष्टि से कोई लागत नही देनी पडती है यद्यपि एक व्यक्ति को भूमि प्राप्त करने के लिए कुछ न कुछ लागत देनी पड़ेगी। (v) पूंजी की पूर्ति को माँग के अनुसार घटाया या बढाया जा सकता है जबकि भूमि की पूर्ति स्थिर होती है और इसलिए उसमे माँग के अनुरूप परिवर्तन नहीं किये जा सकते हैं।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्री भूमि तथा पूंजी मे कोई अन्तर नही करते, वे भूमि को पूंजी मानते हैं, इस सम्बन्ध मे वे निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं (i) पूंजी की भाँति एक दृष्टि से भूमि भी मनुष्य-कृत है—मनुष्य ने बहुत सी बजर भूमि को कृषि तथा अन्य प्रयोगो के योग्य बनाया है। (ii) भूमि भी पूंजी की भाँति गतिशील है क्योंकि भूमि को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित किया जा सकता है। (iii) यद्यपि भूमि की कुल मात्रा स्थिर है, परन्तु वास्तविक दृष्टि से, पूंजी की भाँति, भूमि की पूर्ति को बढाया जा सकता है—भूमि में गहरी खेती करके उससे उत्पादित वस्तुओ की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है अर्थात् भूमि की प्रभावोत्पादक पूर्ति (effective supply) को बढाया जा सकता है। (iv) एक व्यक्ति या फर्म भूमि को पूंजी की भाँति ही मानती है। इन तर्कों के आधार पर कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार, भूमि तथा पूंजी में कोई आधारभूत अन्तर नही है।

यद्यपि पूंजी तथा भूमि मे कुछ बातों मे समानता है, परन्तु इन दोनो मे कुछ आधारभूत अन्तर भी हैं और इसलिए अधिकाश अर्थशास्त्री पूंजी तथा भूमि को पृथक साधन मानते हैं।

पूंजी का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF CAPITAL)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने पूंजी के कार्य तथा प्रयोग के अनुसार पूंजी का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया है। पूंजी का वर्गीकरण मुख्यत निम्न प्रकार से किया जा सकता है

(१) अचल पूंजी तथा चल पूंजी (Fixed Capital and Circulating Capital)—अचल पूंजी वह है जो टिकाऊ (durable) होती है और जिसका उत्पादन में बार-बार प्रयोग किया जा सकता है, उदाहरणार्थ, मशीन, औजार, बिल्डिंग, इत्यादि। इनको लगातार कई वर्षों तक उत्पादन कार्य मे प्रयुक्त किया जा सकता है। चल पूंजी वह है जिसकी समस्त उपयोगिता एक बार के प्रयोग म ही नष्ट हो जाती है; उदाहरणार्थ कच्चा माल। किसी वस्तु के उत्पादन मे कच्चे माल को एक बार ही प्रयोग मे लाया जा सकता है।

(२) एक-अर्थी पूंजी तथा बहु-अर्थी पूंजी (Sunk capital and floating capital)—एक-अर्थी पूंजी को विशिष्ट पूंजी (specialised capital) भी कहते हैं। एक-अर्थी पूंजी या विशिष्ट पूंजी वह पूंजी है जो एक ही कार्य के लिए प्रयोग मे लायी जा सकती है अर्थात् जो केवल एक कार्य के लिए विशिष्ट हो, उदाहरणार्थ, रेल की लाइन केवल रेल चलाने मे ही प्रयुक्त की जा सकती है, बर्फ बनाने की मशीन केवल बर्फ बनाने म ही प्रयोग की जा सकती है, इत्यादि। बहु-अर्थी पूंजी, जिसको अविशिष्ट पूंजी (non-specialised capital) भी कहते हैं, वह पूंजी है जिसको

एक से अधिक प्रयोगों में काम में लाया जा सकता है; उदाहरणार्थ, द्रव्य, बिजली, इत्यादि । इनको कई प्रयोगों में इस्तेमाल किया जा सकता है ।

(३) उत्पादक या पूंजीगत वस्तुएँ तथा उपभोग वस्तुएँ (Capital Goods and Consumption Goods)—कुछ अर्थशास्त्री पूंजी को उत्पादक वस्तुओं तथा उपभोग वस्तुओं में बांटते हैं । उत्पादक वस्तुएँ वे वस्तुएँ है जो प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में सहायता देती हैं; जैसे, मशीन, औजार, कच्चा माल, इत्यादि । उपभोक्ता वस्तुएँ वे हैं जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और इस प्रकार उपभोक्ताओं को सेवाएँ प्रदान करती है, जैसे, भोजन, वस्त्र, मकान, कार, रेडियो, इत्यादि । कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उपभोग वस्तुएँ पूंजी तब होंगी जबकि वे उत्पादकों के हाथ में हों क्योंकि ऐसी स्थिति में वे उत्पादन में सहायक होंगी; इसके विपरीत यदि उपभोग वस्तुएँ उपभोक्ताओं के हाथ में होंगी तो वे पूंजी नहीं होंगी क्योंकि ऐसी स्थिति में वे उत्पादन में सहायक नहीं होंगी । कुछ अर्थशास्त्री 'उत्पादकों के हाथ में उपभोग वस्तुएँ' तथा 'उपभोक्ताओं के हाथ में उपभोग वस्तुएँ' के बीच कोई अन्तर करना पसन्द नहीं करते और इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, सभी टिकाऊ उपभोग वस्तुएँ (durable consumption goods) जैसे, कार, रेडियो, मकान, इत्यादि पूंजी होती है ।

(४) भौतिक पूंजी तथा वैयक्तिक पूंजी (Material Capital and Personal Capital)—भौतिक पूंजी वह पूंजी है जो मूर्त तथा स्थूल रूप (concrete and tangible form) में उपस्थित होती है और जिसको एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित किया जा सकता है । वैयक्तिक पूंजी के अन्तर्गत किसी व्यक्ति के निजी गुण आते हैं जो उसकी कार्यक्षमता को प्रभावित करते हैं और जिनको एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है, जैसे वकील की बहस करने की योग्यता, एक अध्यापक के पढ़ाने की योग्यता, इत्यादि ।

(५) वेतन पूंजी तथा सहायक पूंजी (Remunerative Capital and Auxiliary Capital)—वेतन पूंजी वह पूंजी है जो उत्पादन में लगे हुए श्रमिकों की मजदूरी या वेतन के रूप में दी जाती है । सभी प्रकार की मौद्रिक मजदूरियाँ 'वेतन-पूंजी' के अन्तर्गत आती है । सहायक पूंजी वह पूंजी है जो श्रमिकों को और अधिक उत्पादन में सहायक होती है, जैसे मशीनें, औजार, यन्त्र, इत्यादि ।

(६) व्यक्तिगत पूंजी तथा सार्वजनिक पूंजी (Individual Capital and Public Capital)—व्यक्तिगत पूंजी वह पूंजी है जिस पर व्यक्ति का स्वामित्व होता है; उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति का किसी वस्तु के उत्पादन का कारखाना, एक किसान के निजी हल, बैल, इत्यादि । सार्वजनिक पूंजी वह पूंजी है जिस पर समस्त समाज अथवा सरकार का स्वामित्व होता है; जैसे, रेल, सड़कें, पुल, इत्यादि ।

(७) राष्ट्रीय पूंजी तथा अन्तरराष्ट्रीय पूंजी (National Capital and International Capital)—राष्ट्रीय पूंजी का अर्थ किसी राष्ट्र की सब प्रकार की पूंजी मिलाकर लिया जाता है । अन्तरराष्ट्रीय पूंजी वह है जिस पर किसी का अधिकार न होकर सभी देशों का अधिकार हो, विश्व बैंक की पूंजी इस प्रकार की पूंजी कही जा सकती है ।

(८) कार्यशील पूंजी (Working Capital)—कार्यशील पूंजी उस नकद द्रव्य को कहते हैं जोकि एक उत्पादक अपने व्यवसाय को चलाने के लिए प्रयोग करता है; इस पूंजी को प्रायः कच्चा माल खरीदने, श्रमिकों को मजदूरी देने, इत्यादि में प्रयोग किया जाता है ।

पूंजी के कार्य
(FUNCTIONS OF CAPITAL)

आधुनिक समाज में पूंजी के कार्य निम्नलिखित है .

(१) श्रम की उत्पादकता को बढ़ाना (To Increase the Productivity of Labour)—मशीनों, यन्त्रों, औजारों, इत्यादि की सहायता से श्रम को अधिक मात्रा में तथा अच्छी किस्म की

वस्तुओं का उत्पादन करने में सहायता मिलती है, इस प्रकार देश का कुल उत्पादन अर्थात् राष्ट्रीय आय बढ़ती है।

(२) जीवन निर्वाह के लिए व्यवस्था (The Provision of Subsistence)—प्रो॰ टोमस के अनुसार पूँजी, जब तक श्रमिक अपने प्रयत्नों के फल के लिए प्रतीक्षा करता है, श्रमिकों के लिए भोजन, वस्त्र, रहने के लिए मकान, इत्यादि के रूप में जीवन निर्वाह की व्यवस्था करती है। आज के युग में उत्पादन प्रक्रियाएँ जटिल, घुमावदार (round about) तथा लम्बी अवधि की होती हैं। अत द्रव्य के रूप में पूँजी द्वारा जीवन-निर्वाह की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण बात है।

(३) उत्पादन में निरन्तरता (Continuity in Production)—पूँजी की सहायता से उत्पादन की निरन्तरता (continuity) प्राप्त की जाती है। यदि उत्पादक को 'उत्पादन की दूसरी मात्रा' (second lot of production) के उत्पादन को प्रारम्भ करने के लिए उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक कि 'उत्पादन की पहली मात्रा' (first lot of production) को बेचकर उससे कीमत प्राप्त न हो जाये, तो उत्पादन प्रक्रिया (process) की निरन्तरता भंग हो जायगी। द्रव्य के रूप में पूँजी उत्पादन में निरन्तरता बनाये रखती है।

बिन्दु (points) (२) तथा (३) के परिणामस्वरूप उत्पादन तथा उपभोग साथ साथ चल सकते हैं अर्थात् पूँजी उत्पादन तथा उपभोग के बीच समकालीनता प्राप्त करती है (capital secures synchronization between production and consumption)।

(४) बिक्री के लिए व्यवस्था (Provision for Sale)—उत्पादक अपने माल को बेचने के लिए परिवहन तथा संवादवहन के साधनों की सहायता लेता है, तथा विज्ञापन इत्यादि पर व्यय करता है। इन सब पर वह द्रव्य पूँजी (money capital) को ही व्यय करता है।

(५) माल की व्यवस्था (Provision for Materials)—उत्पादन के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है, अर्द्ध निर्मित तथा निर्मित वस्तुएँ (semi-manufactured and manufactured articles) उद्योग के अन्य चरणों (stages) के लिए कच्चे माल की भाँति कार्य करती है। स्पष्ट है कि पूँजी माल की व्यवस्था करती है।

पूँजी की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF CAPITAL)

(१) पूँजी एक निष्क्रिय साधन है (Capital is a Passive Factor)—भूमि की भाँति पूँजी भी उत्पत्ति का एक निष्क्रिय साधन है। बिना श्रम के पूँजी बेकार रहेगी।

(२) पूँजी श्रम का परिणाम है (Capital is the Result of Labour)—श्रम द्वारा प्राकृतिक साधनों पर काम करने से पूँजी प्राप्त होती है, मशीनें, औजार, इत्यादि सब श्रम का परिणाम हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पूँजी 'पिछले श्रम की संचित वस्तु' (accumulated product of past labour) है।

(३) पूँजी बचत का परिणाम है (Capital is the Result of Saving)—मनुष्य समस्त धन को वर्तमान में उपभोग वस्तुओं पर व्यय न करके उसके एक भाग को बचाता है, इस बचे हुए धन की सहायता से पूँजीगत वस्तुओं (capital goods) का उत्पादन होता है। अत विक्सैल (Wicksel) के शब्दों में, पूँजी एक सामंजस्यपूर्ण बचाया गया श्रम तथा बचायी हुई भूमि है जो कि वर्षों में संचित होती है।"[4]

(४) पूँजी 'अस्थायी' है (Capital is Non-permanent')—प्रो॰ हायेक (Prof Hayek) के शब्दों में, पूँजी अस्थायी है अर्थात् उसको समय-समय पर पुनरुत्पादित (reproduce) तथा पुनरापूरित (replenish) करना पड़ता है।

[4] Capital is a single coherent mass of saved-up labour and saved up land, which is accumulated in the course of years"

(५) पूंजी मे उत्पादकता होती है (Capital possesses productivity)—श्रम पूँजी की सहायता से बहुत अधिक उत्पादन कर सकता है, अत पूँजी उत्पादक होती है। पूँजी की उत्पादकता के कारण ही उद्योगपति इसकी माँग करते हैं। यह विशेषता पूँजी के माँग पक्ष पर प्रकाश डालती है।

(६) पूंजी की पूर्ति मे सुगमता से परिवर्तन किया जा सकता है (Supply of capital can be easily changed)—भूमि की पूर्ति लगभग स्थिर होती है। श्रम की पूर्ति को भी शीघ्रता से नहीं बढाया जा सकता है। परन्तु पूँजी की पूर्ति को आसानी से घटाया-बढाया जा सकता है।

(७) पूंजी आय प्रदान करती है (Capital is income yielding)—लोग पूँजी एकत्रित करके भविष्य मे आय प्राप्त करने की आशा करते हैं। यह विशेषता पूँजी के पूर्ति पक्ष की व्याख्या करती है।

(८) पूंजी बहुत अधिक गतिशील होती है (Capital is highly mobile)—भूमि मे गतिशीलता नहीं होती क्योंकि वह स्थिर होती है। श्रम मे स्थान तथा व्यावसायिक गतिशीलता (*सामाजिक तथा अन्य कारणो के परिणामस्वरूप*) कम होती है। अन्य उत्पत्ति के साधनो की अपेक्षा पूँजी मे स्थान तथा व्यावसायिक गतिशीलता बहुत अधिक पायी जाती है।

पूंजी का महत्व
(IMPORTANCE OF CAPITAL)

सभ्यता तथा आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे उत्पादन के लिए किसी न किसी रूप मे पूँजी की सहायता लेनी पडी है। यद्यपि सभ्यता विकास के प्रारम्भिक चरणो मे उत्पादन मे पूँजी का पार्ट कम महत्त्वपूर्ण रहा, परन्तु वर्तमान युग मे पूँजी का महत्त्व बहुत बढ गया है। विभिन्न क्षेत्रो मे पूँजी का महत्त्व निम्न से स्पष्ट है

(१) पूंजी आधुनिक उत्पादन प्रणाली मे महत्त्वपूर्ण भाग लेती है (Capital plays a vital role in the modern productive system)—पूँजी की सहायता से उत्पादन को बहुत बढ़ाया जा सकता है (i) आज का औद्योगिक उत्पादन पूँजी पर निर्भर है। विभिन्न प्रकार की मशीनो, औजारो, यन्त्रों, इत्यादि की सहायता से औद्योगिक उत्पादन मे बहुत वृद्धि की गयी है। श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण के इस युग मे बडे पैमाने पर उत्पादन के लिए पूँजी अत्यन्त आवश्यक है। (ii) कृषि उत्पादन बढाने मे भी पूँजी बहुत महत्त्वपूर्ण है। छोटी-बडी सिंचाई की योजनाओ, ट्रैक्टर, इत्यादि सबके लिए पूँजी चाहिए और इसकी सहायता से संसार के सभी उन्नतशील देशो मे कृषि उत्पादन मे बहुत वृद्धि की गयी है। (iii) औद्योगिक तथा कृषि की वस्तुओ की बिक्री के लिए यातायात तथा संवादवहन के साधनो के रूप मे पूँजी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आज के बडे पैमाने के उत्पादन मे पूँजी की इतनी अधिक आवश्यकता पड़ती है कि वर्तमान युग को पूँजीवाद का युग कहा जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि साम्यवादी प्रणाली मे पूँजी का कोई महत्त्व नहीं है, साम्यवाद मे भी बडे पैमाने पर उत्पादन के लिए पूँजी की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि पूँजीवाद में।

(२) नियोजन तथा आर्थिक विकास के लिए पूंजी आधारभूत है (Capital is basic for planning and economic development)—अविकसित देशो मे नियोजित आर्थिक विकास (planned economic development) के लिए पूँजी अत्यन्त आवश्यक है। पर्याप्त पूँजी के बिना न तो देश की मानव शक्ति तथा प्राकृतिक साधनो का पूरा-पूरा प्रयोग किया जा सकता है, न औद्योगिक तथा कृषि की वस्तुओ के उत्पादन को बढाया जा सकता है और न ही यातायात तथा संवादवहन के साधनो को विकसित किया जा सकता है। अविकसित देशो मे पूँजी की कमी होती है, इसलिए इन देशो मे उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय कम होती है और लोगों का जीवन-स्तर

नीचा रहता है। इसके विपरीत, उन्नतशील देशो मे पूँजी की बाहुल्यता होती है, इसलिए इन देशो मे बहुत अधिक उत्पादन होता है और लोगो का जीवन-स्तर ऊँचा होता है। सक्षेप में, अविकसित देशो के तीव्र आर्थिक विकास तथा जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए नियोजन की आवश्यकता है और नियोजन के लिए पूँजी आधारभूत महत्त्व रखती है।

(३) राजनीतिक स्थायित्व तथा सैनिक शक्ति के लिए पूंजी आवश्यक है (Capital is essential for political stability and military strength)—बिना पर्याप्त पूँजी के एक देश मे राजनीतिक स्थायित्व का सदैव डर बना रहता है और पूँजी अभाव वाले देश की आवाज अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र मे भी नही सुनी जाती है। देश को सैनिक दृष्टि से मजबूत बनाने के लिए भी बहुत अधिक मात्रा मे पूँजी चाहिए।

सक्षेप मे, किसी भी देश की आर्थिक, राजनीतिक तथा सैनिक शक्ति बहुत बड़ी सीमा तक पूँजी पर निर्भर करती है।

5 साहस तथा संगठन
[ENTERPRISE AND ORGANISATION]

साहस
(ENTERPRISE)

साहस तथा साहसी का अर्थ (Meaning of Enterprise and Entrepreneur)

व्यवसाय की जोखिम या अनिश्चितता उठाने के कार्य को साहस (enterprise) तथा इस जोखिम के सहन करने वाले व्यक्ति को साहसी (*entrepreneur*) कहते हैं। *प्रत्येक व्यवसाय में* कुछ न कुछ जोखिम (risk) या अनिश्चितता (uncertainty) होती है। आज का उत्पादन भविष्य की माँग पर आधारित होता है। यदि एक उत्पादक का भविष्य की माँग का अनुमान ठीक सिद्ध होता है तो उसे लाभ होगा। इसके विपरीत, यदि उसका अनुमान गलत निकलता है तो उसे हानि होगी। इस प्रकार छोटा हो या बड़ा प्रत्येक व्यवसाय में लाभ-हानि के सम्बन्ध में कम या अधिक अनिश्चितता रहती है, स्पष्ट है कि जोखिम या अनिश्चितता को साहस और उसे सहन करने वाले को साहसी कहते हैं।

साहसी तथा प्रबन्धक में अन्तर (Difference between Entrepreneur and Organiser)

साहसी तथा प्रबन्धक (organiser) में मुख्य अन्तर इस प्रकार हैं (i) साहसी वह है जो व्यवसाय की जोखिम उठाये, जबकि प्रबन्धक या संगठनकर्ता वह है जो उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करके उनको अनुकूलतम (*optimum*) अनुपात में मिलाये। उदाहरणार्थ, मिश्रित पूँजी कम्पनी (joint stock company) में अंशधारी (shareholders) साहसी होते हैं क्योंकि वे जोखिम उठाते हैं, जबकि *व्यवस्थापक संगठन या प्रबन्ध करते हैं।* परन्तु कुछ उद्योगों, जैसे छोटे पैमाने के तथा कुटीर उद्योगों में एक ही व्यक्ति साहसी और संगठनकर्ता हो सकता है। (ii) साहसी का पुरस्कार 'लाभ' कहा जाता है जबकि प्रबन्धक या संगठनकर्ता का पुरस्कार 'वेतन' कहा जाता है।

साहसी तथा पूँजी में अन्तर (Difference between Entrepreneur and Capitalist)

साहसी तथा पूँजीपति में मुख्य अन्तर इस प्रकार है—साहसी व्यवसाय का स्वामी तथा जोखिम उठाने वाला होता है, जबकि पूँजीपति ऋणदाता होता है और साहसी से अपनी पूँजी पर ब्याज प्राप्त करता है। पूँजीपति का जोखिम उठाने से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कुछ दशाओं में यह सम्भव हो सकता है कि एक ही व्यक्ति साहसी भी हो और पूँजीपति भी। प्रायः छोटे तथा कुटीर उद्योगों में एक व्यक्ति साहसी भी होता है और पूँजीपति भी।

साहसी का महत्त्व (Importance of Entrepreneur)

आधुनिक युग में साहसी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—(i) छोटे या बड़े किसी भी व्यवसाय का प्रारम्भ बिना साहसी के नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यवसाय में कुछ न कुछ जोखिम अवश्य होती है और जब तक इस जोखिम को उठाने के लिए कोई व्यक्ति तत्पर नहीं होगा तब

तक व्यवसाय आरम्भ नहीं होगा। (ii) आधुनिक उत्पादन व्यवस्था में जोखिम का अंश बहुत बढ़ गया है। उत्पादन विधियाँ अत्यन्त जटिल हो गयी हैं, उनमें निरन्तर परिवर्तन होते हैं। उपभोक्ताओं की रुचि तथा फैशन बराबर बदलते रहते हैं। इन सब बातों के कारण वर्तमान काल में व्यवसायों में बहुत अधिक अनिश्चितता हो गयी है। ऐसी स्थिति में साहसी का महत्त्व आधुनिक काल में और अधिक बढ़ गया है। (iii) एक देश का आर्थिक विकास तथा उन्नति एक बड़ी सीमा तक कुशल एवं योग्य साहसियों पर निर्भर करती है। अमरीका, इंगलैण्ड इत्यादि देशों में अधिक मात्रा में कुशल साहसी उपलब्ध हैं, परिणामस्वरूप इन देशों में आर्थिक उन्नति का उच्च स्तर है। इसके विपरीत, भारत जैसे अविकसित देशों में कुशल तथा योग्य साहसी कम हैं, परिणामस्वरूप इन देशों में आर्थिक उन्नति का स्तर निम्न है।

साहसी के कार्य (Functions of Entrepreneur)

यद्यपि साहसी का मुख्य कार्य जोखिम उठाना है, परन्तु वह कुछ प्रशासनात्मक (administrative) या निर्णयात्मक (decision taking) कार्य भी करता है। अध्ययन की सुविधा के लिए साहसी के कार्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है (१) जोखिम उठाने का कार्य, (२) प्रशासनात्मक तथा निर्णयात्मक कार्य, तथा (३) वितरण सम्बन्धी कार्य।

(१) **जोखिम उठाने का कार्य (Risk-taking Functions)**—साहसी का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य जोखिम उठाने का कार्य है। आधुनिक उत्पादन भविष्य की माँग पर आधारित होता है, इसलिए प्रत्येक व्यवसाय में कम या अधिक अनिश्चितता या जोखिम होती है। इस जोखिम को साहसी ही उठाता है, अन्य साधन जोखिम उठाने में कोई भाग नहीं लेते। स्पष्ट है बिना साहसी के कोई व्यवसाय प्रारम्भ नहीं हो सकता। बीमा कम्पनियों ने साहसी के लिए कुछ प्रकार के जोखिमों को सरल कर दिया है।

(२) **प्रशासनात्मक तथा निर्णयात्मक कार्य (Administrative and Decision taking Functions)**—इस सम्बन्ध में मुख्य कार्य निम्न हैं

(i) साहसी सर्वप्रथम उद्योग के चुनाव के सम्बन्ध में निर्णय लेता है। विभिन्न उद्योगों के लाभ की सम्भावनाओं का अध्ययन करके वह उस उद्योग को चुनता है जिसमें उसे अधिकतम लाभ की सम्भावना प्रतीत होती है।

(ii) इसके पश्चात् साहसी यह निश्चित करता है कि उद्योग से सम्बन्धित किस प्रकार की वस्तु का उत्पादन करे।

(iii) साहसी का तीसरा कार्य यह निर्णय करना है कि उत्पादन की इकाई का आकार क्या रखा जाये, उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाय या छोटे पर। (iv) इसके पश्चात् साहसी यह निर्णय करता है कि उत्पादन किस स्थान पर किया जाय। उत्पादन के स्थान का निर्णय करते समय वह कई बातों को ध्यान में रखता है, जैसे शक्ति, कच्चा माल, श्रमिकों, इत्यादि की उपलब्धि, बाजार की निकटता, यातायात के साधनों तथा बैंकिंग की सुविधाएँ, इत्यादि। (v) साहसी कुछ ऐसे प्रशासनात्मक कार्य भी करता है जो संगठनकर्ता या प्रबन्ध के क्षेत्र में भी आते हैं, जैसे, (अ) साधनों को अनुकूलतम अनुपात में मिलाना। वह प्रतिस्थापन नियम की सहायता से महँगे तथा कम उत्पादक साधनों के स्थान पर सस्ते तथा अधिक उत्पादक साधनों का प्रयोग करने का प्रयत्न करता है। (ब) वह बिक्री, विज्ञापन, इत्यादि की व्यवस्था में संगठनकर्ता को सहयोग देता है। (स) प्रबन्धक के साथ-साथ वह व्यवसाय पर सामान्य नियन्त्रण भी रखता है तथा व्यवसाय के सम्बन्ध में सामान्य नीतियों को निर्धारित करता है।

(३) **वितरण सम्बन्धी कार्य (Distributive Functions)**—साहसी विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार वितरण करने का कार्य भी करता है।

एक अच्छे साहसी के गुण (Qualities of a good Entrepreneur)

एक अच्छे तथा सफल साहसी में निम्न गुणों का होना आवश्यक है

(१) एक अच्छे साहसी में दूरदर्शिता का गुण होना आवश्यक है तभी वह व्यवसाय से सम्बन्धित विषय की प्रवृत्तियों का अच्छा अनुमान लगा सकेगा। (२) व्यवसाय की दिन-प्रतिदिन

की जटिल समस्याओं को समझने के लिए यह आवश्यक है कि साहसी प्रखर बुद्धि वाला, योग्य तथा अच्छी प्रकार से शिक्षित हो। (३) साहसी में शीघ्र निर्णय लेने की योग्यता होनी चाहिए; निर्णयों में देर करने से व्यवसाय में भारी हानि की सम्भावना रहती है। (४) सफल साहसी के लिए आवश्यक है कि उसे व्यवसाय से सम्बन्धित बातों का विस्तृत ज्ञान हो, नवीनतम आविष्कारों तथा सुधारों की पूर्ण जानकारी हो तभी वह क्रय-विक्रय तथा अन्य बातों के सम्बन्ध में उचित तथा शीघ्र निर्णय ले सकेगा। (५) साहसी को मानवीय प्रकृति का अच्छा ज्ञान होना चाहिए तभी वह व्यवसाय के लिए योग्य तथा कुशल कार्यकर्ताओं को चुन सकेगा। (६) साहसी में आर्थिक कठिनाइयों का धैर्यपूर्वक सामना करने की योग्यता होनी चाहिए। (७) साहसी के लिए यह भी आवश्यक है कि वह ईमानदार तथा गम्भीर हो।

संगठक या प्रबन्धक
(ORGANISER)

संगठन तथा संगठनकर्ता का अर्थ (Meaning of Organisation and Organiser)

उत्पादन के विभिन्न साधनों को एकत्र करने तथा उनको अनुकूलतम अनुपात में मिलाने के कार्य को संगठन कहते हैं और जो व्यक्ति संगठन के कार्य को करता है उसे संगठनकर्ता कहते हैं।

संगठन तथा श्रम में अन्तर (Difference between Organisation and Labour)

यद्यपि संगठन एक विशेष प्रकार का श्रम है, परन्तु दोनों में अन्तर है—(i) संगठन का कार्य मुख्यतया मानसिक है जबकि श्रम का कार्य मुख्यतया शारीरिक है। (ii) संगठन का कार्य अत्यन्त कठिन है उसे समस्त व्यवसाय का नियन्त्रण तथा निरीक्षण करना पड़ता है, संगठनकर्ता के लिए उच्चकोटि की टेक्नीकल शिक्षा, अनुभव तथा योग्यता का होना आवश्यक है। इसके विपरीत, श्रम का कार्य सरल होता है, उसके लिए उच्चकोटि की शिक्षा तथा योग्यता की आवश्यकता नहीं है।

संगठन का महत्व (Importance of Organisation)

(१) आधुनिक युग में श्रम विभाजन, बड़े पैमाने के उत्पादन, इत्यादि के कारण उत्पादन प्रणाली अत्यन्त जटिल हो गयी है, अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि उत्पत्ति के साधनों को उचित अनुपात में मिलाया जाय तथा उनमें प्रभावपूर्ण सहकारिता स्थापित की जाय। इस कार्य को संगठनकर्ता ही कर सकता है। (२) उत्पादन कुशलता एक बड़ी सीमा तक संगठन या प्रबन्धक की योग्यता तथा कुशलता पर निर्भर करती है। (३) संगठन का महत्त्व पूँजीवाद, समाजवाद तथा मिश्रित अर्थ व्यवस्था सभी आर्थिक प्रणालियों में है।

संगठक के कार्य (Functions of the Organiser)

संगठक या प्रबन्धक के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं

(१) **उत्पादन योजना का निर्धारण**—संगठक समस्त उत्पादन कार्य के सम्बन्ध में योजना बनाता है। वह इस बात का निर्णय करता है कि किस वस्तु का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जायेगा। (२) **उत्पत्ति के साधनों की व्यवस्था**—(i) संगठक भूमि, पूँजी तथा श्रम को पर्याप्त मात्रा में जुटाता है। (ii) इन उत्पत्ति के साधनों का अनुकूलतम अनुपात में मिलाता है ताकि उत्पादन लागत निम्नतम रहे। (iii) वह कच्चे माल की उचित व्यवस्था करता है ताकि उसकी पूर्ति पर्याप्त मात्रा में तथा नियमित रूप से मिलती रहे। (iv) वह नवीनतम मशीनों तथा यन्त्रों का प्रयोग करने का प्रयत्न करता है ताकि लागत को निम्नतर रखकर प्रतियोगियों का सामना किया जा सके। (३) **श्रम सम्बन्धी समस्याएँ**—प्रबन्धक श्रमिकों को उनकी योग्यतानुसार कार्य देता है तथा उनके कार्य करने की दशाओं को उचित बनाये रखता है। एक कुशल उत्पादक श्रमिकों को सन्तुष्ट रखकर हड़तालों को होने से रोकता है। इस प्रकार श्रम की समस्त समस्याओं पर उचित ध्यान देकर एक कुशल संगठक औद्योगिक शान्ति को बनाये रखता है। (४) **विक्रय की व्यवस्था**—(i) संगठक एजेण्टों, व्यापारिक प्रतिनिधियों, थोक विक्रेताओं, इत्यादि को अनुकूलतम शर्तों पर नियुक्त करके उत्पादित माल के विक्रय की उचित व्यवस्था करता है।

(ii) वह लागत तथा बाजार की दशाओ को ध्यान मे रखकर वस्तु का मूल्य निर्धारित करता है। (iii) वह वस्तु को बिक्री को बढ़ाने के लिए उचित विज्ञापन तथा प्रचार व्यवस्था रखता है। (५) खोज व अनुसन्धान—एक कुशल सगठक उत्पादन रीतियो, लागतो, विक्रय व्यवस्था, इत्यादि से सम्बन्धित खोजो तथा अनुसन्धानो पर भी ध्यान देता है। (६) वह उत्पत्ति के साधनो के **पुरस्कार** के वितरण की व्यवस्था करता है।

सक्षेप म, सगठक का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, वह समस्त कार्य का निरीक्षण तथा प्रबन्ध करता है।

सगठक के आवश्यक गुण (Necessary Qualities of an Organiser)

सगठक की कार्यकुशलता पर ही उत्पादन कुशलता निर्भर करती है। एक कुशल सगठक के लिए निम्न आवश्यक गुण बताये जाते हैं

(१) वह दूरदर्शी होना चाहिए ताकि भविष्य की माँग तथा पूर्ति की दशाओ का उचित अनुमान लगा सके। (२) उसमे सगठन योग्यता होनी चाहिए ताकि वह उत्पत्ति के साधनो को अनुकूलतम अनुपात मे मिला सके। (३) उसे मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिए ताकि वह श्रमिको की समस्याओ को समझ सके और औद्योगिक शान्ति बनाये रख सके। (४) वह उच्च शिक्षा प्राप्त होना चाहिए तथा उसे व्यवसाय का तकनीकी ज्ञान तथा अनुभव होना चाहिए, तभी वह सगठन का कार्य कुशलतापूर्वक कर सकेगा। (५) वह ईमानदार होना चाहिए ताकि जनता मे उसके प्रति विश्वास हो। उसम आत्मविश्वास भी होना चाहिए तभी वह दृढतापूर्वक तथा धैर्य-पूर्वक कार्य कर सकेगा।

सगठक के उपर्युक्त गुणो के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उत्पत्ति के विभिन्न साधन भी कुशल हो। यदि ऐसा होगा तो अधिकतम उत्पादन-कुशलता प्राप्त की जा सकेगी।

प्रश्न

१. एक साहसी क मुख्य काय क्या हैं ? आधुनिक आर्थिक सगठन मे उसके महत्त्व को बताइए।
   What are the main functions of an entrepreneur ? Estimate its importance in the modern economic organisation (*Punjab, Com*, 1968 ; *Sagar*, 1968)

२ 'उद्योग के अधिकाश जोखिमो को साहसी ही झेलता है।' इस कथन को समझाइए तथा उद्योग के सगठन के सम्बन्ध मे साहसी के मुख्य कार्यों को बताइए।
   'It is the entrepreneur who bears most of the risks of industry" Examine this statement, bringing out the main functions of the entrepreneur in connection with the organisation of industry

३ सगठन का अर्थ बताइए। सगठन के कार्यों की विवेचना कीजिए। एक कुशल सगठक म कौन-से गुणो की आवश्यकता है ?
   Define Organisation Discuss the functions of an Organiser' What are the essential qualities of an 'Organiser' ?

४ (अ) सगठन की परिभाषा दीजिए तथा श्रम और सगठन के अन्तर को समझाइए।
   (ब) उत्पादन कार्य मे जोखिम क्यो निहित है ? जोखिम उठाने का कार्य कौन करता है ?
   (a) Define 'Organisation' and distinguish it from labour
   (b) Why is there 'risk' in production ? Who does the job of risk taking ?
   (*Jodhpur, Iyr. T. D C. Com*, 1967)

6

विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन

[SPECIALISATION AND DIVISION OF LABOUR]

आधुनिक समाज में विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। आधुनिक औद्योगीकरण तथा औद्योगिक दक्षता में विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। एक देश जितना अधिक उन्नतशील होगा उसमें विशिष्टीकरण की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। अतः विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता हो गयी है।

श्रम-विभाजन का अर्थ
(MEANING OF DIVISION OF LABOUR)

श्रम-विभाजन उत्पादन की वह प्रणाली है जिसके अन्तर्गत कार्य विशेष को कई विधियों (processes) या उप-विधियों (sub-processes) में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक विधि या उप विधि को विभिन्न व्यक्तियों के समूहों द्वारा पूरा किया जाता है।

'विशिष्टीकरण' (specialisation) तथा 'श्रम-विभाजन' (division of labour) में थोड़ा अन्तर होता है। विशिष्टीकरण का अर्थ है कि कार्य या कार्यों को एक निश्चित क्षेत्र तक ही सीमित रखा जाता है।[1] विशिष्टीकरण एक अधिक विस्तृत शब्द है, श्रम-विभाजन विशिष्टीकरण की केवल एक किस्म है। यदि 'श्रमिकों का विशिष्टीकरण' होता है तो इसे 'श्रम विभाजन' कहा जाता है। कुछ क्षेत्रों में कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं का ही उत्पादन हो सकता है, इसे 'क्षेत्रों का विशिष्टीकरण' (specialisation of regions or localities) कहा जाता है, संक्षेप में, इसे केवल 'स्थानीयकरण' (localisation) भी कहते हैं। इसी प्रकार आज के युग में 'पूँजी का विशिष्टीकरण' (specialisation of capital) भी होता है, बहुत-सी मशीनें या औजार ऐसे होते हैं जिनको केवल एक ही प्रकार के कार्य में प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार से विशिष्टीकरण एक अधिक उपयुक्त (suitable) शब्द है और अधिक विस्तृत है श्रम, क्षेत्रों, पूँजी, आदि का विशिष्टीकरण हो सकता है, केवल 'श्रम के विशिष्टीकरण' को ही 'श्रम-विभाजन' कहा जाता है।

श्रम-विभाजन के प्रकार
(KINDS OF DIVISION OF LABOUR)

श्रम विभाजन के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं :

(१) सरल श्रम विभाजन (Simple division of labour)—प्रो० टोमस के अनुसार जब कोई कार्य एक व्यक्ति के लिए बहुत बड़ा, कठिन अथवा भारी हो और उसे दो या दो से अधिक व्यक्ति एक ही प्रकार से काम करते हुए सम्पन्न करने में सहयोग करें तो इसे सरल श्रम-

---

[1] Specialisation means limiting the range of our activity or the limitation of activity within a particular field.

विभाजन कहा जाता है।"[1] उदाहरणार्थ, कई व्यक्तियो का एक बडे खेत को जोतना या फसल को काटना, या कई मजदूरो द्वारा किसी भारी बोझ को उठाना, इत्यादि सरल श्रम विभाजन के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ अर्थशास्त्रियो ने सरल श्रम-विभाजन को एक दूसरी प्रकार से परिभाषित किया है। इनके अनुसार, "जब किसी व्यवसाय का पूरा कार्य प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्राय एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाय तो इसे सरल श्रम-विभाजन कहा जाता है। उदाहरणार्थ, कृषि का सम्पूर्ण कार्य प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कृषक द्वारा करना, एक जुलाहे द्वारा कपडा बुनने के सारे कार्य करना इत्यादि सरल श्रम-विभाजन के अन्तर्गत आते हैं। दूसरे शब्दो मे, सम्पूर्ण समाज विभिन्न व्यवसायो मे बँट जाता है, इसे व्यावसायिक श्रम-विभाजन (occupational division of labour) भी कहते हैं।

(२) जटिल या विषम श्रम-विभाजन (Complex division of labour)—प्रो० टोमस' के अनुसार, श्रम-विभाजन को जटिल तब कहा जाता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह कोई ऐसा विशिष्ट कार्य (specialised function) करता है जो अन्तिम उत्पादन मे केवल सहायक मात्र होता है। उदाहरणार्थ, कपडा उद्योग मे रुई कातने का कार्य व्यक्तियों के एक समूह द्वारा किया जाता है और कपडा बुनने का कार्य व्यक्तियो के दूसरे समूह द्वारा, इसे जटिल श्रम विभाजन कहेंगे।

जटिल श्रम विभाजन के निम्नलिखित दो रूप होते हैं

(अ) पूर्ण विधि श्रम विभाजन (Division of labour into complete processes)—जब किसी उद्योग मे उत्पादन कार्य को कई विधियो मे बाँट दिया जाता है तथा प्रत्येक विधि पृथक-पृथक श्रम-समूह द्वारा पूरा करते हैं तथा एक श्रम समूह द्वारा उत्पन्न वस्तु दूसरे श्रम-समूह के लिए कच्ची सामग्री की भाँति कार्य करती है, तब इसे पूर्ण विधि श्रम विभाजन कहा जाता है। चूँकि इसके अन्तर्गत उत्पादन कार्य की विभिन्न विधियाँ अपने म पूर्ण होती हैं इसलिए इसे पूर्ण विधि श्रम विभाजन कहा जाता है। इस प्रणाली म, जैसा कि स्पष्ट है, विभिन्न श्रम-समूहो मे सहयोग की बहुत आवश्यकता है क्योंकि यदि किसी श्रम समूह का कार्य रुक जाता है तो समस्त उत्पादन कार्य मे बाधा पड जाती है। उदाहरणार्थ, कपडा उद्योग को विभिन्न विधियो, परन्तु पूर्ण-विधियो, मे बाँट दिया जाता है, जैसे रुई कातना, कपडा बुनना, इत्यादि।

(ब) अपूर्ण विधि श्रम विभाजन (Division of labour into incomplete processes)—'अपूर्ण श्रम-विभाजन के अन्तर्गत किसी उद्योग मे उत्पादन कार्य को पूर्ण विधियों को अनेक अपूर्ण उप विधियो मे बाँट दिया जाता है और प्रत्येक उप विधि विभिन्न विशिष्ट श्रम-समूहों द्वारा सम्पन्न की जाती है इसमे सामूहिक उत्पादन में सहायता तो मिलती है परन्तु विभिन्न श्रम-समूहों के अशदान का प्राय कोई स्वतन्त्र मूल्य नहीं होता। पूर्ण विधि श्रम विभाजन' के अन्तर्गत जो पूर्ण विधि थी वह अब एक पूर्ण उद्योग हो जाती है जिसमे अनेक उप-विधियाँ हो जाती हैं, उदाहरणार्थ, कातने की पूर्ण विधि, अब एक पृथक उद्योग हो जाती है जिसमे अनेक उप-विधियाँ होती है जो विशिष्ट श्रम समूहो द्वारा की जाती हैं।

(३) प्रादेशिक या भौगोलिक श्रम-विभाजन या उद्योगों का स्थानीयकरण (Territorial or geographical division of labour or localisation of industries) जब ससार के विभिन्न देशों तथा एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों मे विभिन्न प्रकार के उद्योग केन्द्रित हो जाते हैं तो इसे 'प्रादेशिक या भौगोलिक श्रम-विभाजन' कहते हैं। इसे उद्योगो का स्थानीयकरण भी कहा जाता है। ससार के विभिन्न देशो या एक देश के विभिन्न भागो म प्राय उन्ही उद्योगो को विकसित किया जाता है जिनके लिए प्राकृतिक परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं तथा अन्य सुविधाएँ

---

[1] 'Division of labour is described as *simple* when two or more men working in the same way co operate to perform a single task, too extensive, difficult or burdensome to be carried out effectively by one man alone" —S E Thomas *Elements of Economics* p 17

[2] 'The division (of labour) is described as *complex* when each man or group of men undertakes a specialised function which is contributory only to the final result"

—Thomas, *Elements of Economics*, p 87.

उपलब्ध होती है। उदाहरणार्थ, भारत मे बंगाल मे जूट उद्योग और बम्बई तथा अहमदाबाद क्षेत्र मे सूती कपड़ा उद्योग केन्द्रित है।

श्रम-विभाजन की आवश्यक दशाएँ
(CONDITIONS OR PRE-REQUISITES OF DIVISION OF LABOUR)

श्रम-विभाजन के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है

(१) **बड़े पैमाने का उत्पादन** (Large-scale production)—श्रम-विभाजन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन बड़े पैमाने पर हो। यदि उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है तो श्रम-विभाजन की सम्भावना बहुत कम रह जाती है।

(२) **श्रमिकों का अधिक संख्या मे होना** (Large number of workers)—श्रम विभाजन के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक अधिक संख्या मे हो तभी उत्पादन को अनेक विधियो या उप-विधियो मे बाँटकर विभिन्न श्रम-समूहो को दिया जा सकेगा। यदि श्रमिको की संख्या कम है तो सूक्ष्म श्रम-विभाजन सम्भव नही हो सकता है।

(३) **श्रमिकों मे सहयोग** (Co-operation among workers)—श्रम-विभाजन के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिको मे आपस मे सहयोग की भावना हो, यदि विभिन्न श्रम-समूहो में सहयोग नही है तो श्रम-विभाजन के अन्तर्गत कार्य पूर्ण नही हो पायेगा।

(४) **उत्पादन का लगातार होना** (Continuous production)—श्रम-विभाजन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन कार्य मे निरन्तरता (continuity) रहे क्योंकि यदि कार्य बीच-बीच मे बन्द हो जाता है तो श्रमिक खाली समय मे दूसरा कार्य खोजेगे। इस प्रकार श्रमिक एक ही कार्य मे विशिष्टीकरण प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

(५) **मुद्रा का प्रयोग** (Use of money)—वस्तु विनिमय प्रणाली (barter system) मे श्रम विभाजन की सम्भावना बहुत कम रहती है। श्रम-विभाजन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि मुद्रा विनिमय प्रणाली (money exchange system) हो। वर्तमान युग मे द्रव्य का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। इसलिए श्रम-विभाजन बहुत बड़े पैमाने पर पाया जाता है। प्राचीन समय मे द्रव्य का प्रयोग बहुत कम था या बिलकुल नही था (अर्थात् वस्तु विनिमय प्रणाली थी) इसलिए उस समय श्रम-विभाजन का क्षेत्र भी बहुत सीमित था।

(६) **विस्तृत बाजार** (Wide market)—श्रम-विभाजन के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि वस्तु या वस्तुओ का बाजार विस्तृत हो। यदि बाजार विस्तृत होगा तभी उत्पादन बड़े पैमाने पर होगा और श्रम-विभाजन सम्भव हो सकेगा। बाजार के विस्तृत होने के लिए कई बातो का होना आवश्यक है, जैसे परिवहन व सवादवहन के साधनो का पर्याप्त विकास, इत्यादि।

(७) **योग्य तथा साहसी प्रबन्धक** (Able entrepreneurs and efficient managers)—यह भी आवश्यक है कि साहसी तथा प्रबन्धक योग्य और दक्ष हो तभी श्रम-विभाजन की उचित व्यवस्था की जा सकेगी अन्यथा नही।

(८) **वातावरण का योगदान** (The role of environment)—उचित वातावरण सम्बन्धी तत्व श्रम-विभाजन को प्रोत्साहित करते है (i) एक ऐसा मुख्य तत्व है कि लोग परिवर्तनो को स्वीकार करने तथा उनके साथ समायोजन करने को तत्पर हो। यदि लोगो का ऐसा दृष्टिकोण नही है तो उत्पादन की नयी रीतियो के प्रयोग मे बहुत कठिनाई होगी तथा श्रम-विभाजन का क्षेत्र बहुत सीमित रह जायेगा। (ii) दूसरा तत्व है कि लोगो का जीवन दर्शन (philosophy of life) जो वर्तमान जीवन के लिए कार्य करने के हेतु प्रोत्साहन प्रदान करता हो। यदि लोग भाग्यवादी है तथा 'दूसरी दुनियाँ' (next world) की बात पर अधिक ध्यान देते हैं तो वे उत्पादन क्षेत्र मे, नयी रीतियो की खोज तथा आविष्कार पर कम ध्यान देंगे और इस प्रकार श्रम-विभाजन का क्षेत्र सीमित रह जायेगा।

श्रम-विभाजन के लाभ
(BENEFITS OF DIVISION OF LABOUR)

श्रम-विभाजन से श्रमिकों, मालिकों तथा समाज को कई लाभ हैं जो अग्रलिखित हैं।

(१) मानव साधन का अधिक अच्छा प्रयोग (More effective use of human resources)—प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव, योग्यता तथा रुचि (aptitude) भिन्न-भिन्न होती है। कुछ व्यक्ति शारीरिक कार्य अधिक अच्छी तरह से कर सकते हैं जबकि वे पढ़ाने के कार्य के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते। एक जूते बनाने में कई क्रियाएँ होती हैं, इसमें सरल क्रियाओं को कुछ व्यक्ति कर सकते हैं जबकि कठिन क्रियाओं को कुछ दूसरे व्यक्ति ठीक प्रकार से कर सकते हैं। श्रम विभाजन द्वारा प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वभाव, योग्यता तथा रुचि के अनुसार कार्य मिल जाता है और इस प्रकार मानव साधनों का अच्छा प्रयोग होता है। इससे उत्पादन बढ़ेगा।

(२) दक्षता में वृद्धि (Increase in efficiency)—श्रम-विभाजन के अन्तर्गत जब एक मनुष्य एक ही कार्य को बार-बार तथा लम्बे समय तक करता रहता है तो उसकी दक्षता में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है।

(३) कार्यों का सरल होना (Simplification of tasks)—श्रम-विभाजन के अन्तर्गत एक जटिल उत्पादन कार्य को कई सरल मार्गों या उप-विधियों में बाँट दिया जाता है। एक औसत श्रमिक इन सरल मार्गों या उप-विधियों को आसानी से तथा बहुत कम समय में सीख लेता है। इस प्रकार एक श्रमिक की प्रशिक्षण अवधि बहुत कम हो जाती है और एक श्रमिक बिना लम्बे समय के प्रशिक्षण के किसी भी कारखाने में कार्य प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त, कार्यों के सरल मार्गों में बँट जाने के कारण मानसिक या शारीरिक दृष्टि से असमर्थ व्यक्तियों (handicapped persons) को भी रोजगार मिल जाता है जिससे वे अपने सामाजिक जीवन को सुखी बना सकते हैं।

(४) समय की बचत (Saving of time)—श्रम-विभाजन में एक श्रमिक एक ही कार्य या उप-विधि में लगा रहता है तथा वह एक ही प्रकार के औजार से कार्य करता है या एक ही मशीन पर कार्य करता है। एक कार्य को छोड़कर दूसरे कार्य को प्रारम्भ करने तथा एक औजार को छोड़कर दूसरे औजार को उठाने इत्यादि में जो समय नष्ट होता है वह श्रम विभाजन के अन्तर्गत बच जाता है। इस प्रकार श्रम विभाजन में समय की बचत होती है, उत्पादन में निरन्तरता (continuity) बनी रहती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

(५) यन्त्रों या औजारों की बचत (Saving of tools)—यदि एक व्यक्ति एक से अधिक कार्य करता है तो यन्त्रों के एक सैट (set) से अधिक सैटों की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु श्रम-विभाजन में एक क्रिया को कई सरल क्रियाओं में बाँट देने से प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग यन्त्रों का प्रयोग करता है उसके लिए सभी प्रकार के यन्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अत श्रम विभाजन में औजारों का द्विगुणन (duplication) नहीं होता है, इस प्रकार औजारों की बचत हो जाती है।

(६) मशीनों का अधिक प्रयोग तथा उनका मितव्ययितापूर्ण प्रयोग (Greater use of machinery and its economical use)—श्रम-विभाजन में कार्य कई मार्गों या उपविधियों में बाँट दिया जाता है, जब प्रत्येक भाग या उप विधि का सरलीकरण हो जाता है तो उसको पूरा करने के लिए एक मशीन बना दी जाती है। इस प्रकार श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप मशीनों का अधिक प्रयोग होने लगता है।

श्रम-विभाजन के अन्तर्गत मशीनों का मितव्ययितापूर्ण प्रयोग होता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक ही मशीन पर कार्य करता है और वह मशीन बेकार नहीं रहती है (यदि एक व्यक्ति को कई कार्य करने पड़ते हैं तो उसे कई मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है ऐसा करने में कुछ समय के लिए एक मशीन बेकार पड़ी रहती है जबकि वह दूसरी मशीन पर कार्य करता है इस प्रकार मशीनों का मितव्ययिता से प्रयोग नहीं होता है।)

(७) श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि (Increase in the mobility of workers)—यह लाभ कार्य के अनेक सरल मार्गों में बँट जाने के परिणामस्वरूप होता है। बड़े-बड़े कारखानों में प्राय स्वचालित या अर्द्ध-स्वचालित मशीनों (automatic or semi-automatic machines) का प्रयोग होता है। इन सब मशीनों के चलाने के ढंग में पर्याप्त समानता पायी जाती है। अत श्रमिक एक कारखाने से निकलकर दूसरे कारखाने में आसानी से कार्य कर सकते हैं और इसलिए श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि हो जाती है।

(८) बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहन (Encouragement to large scale production)—अन्य बातों के अतिरिक्त (जैसे, बाजार का विस्तार होना), बड़े पैमाने का उत्पादन बिना श्रम विभाजन के सम्भव नहीं है। श्रम विभाजन के कारण ही अधिक मशीनों का प्रयोग होता है और उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि बड़े पैमाने का उत्पादन भी श्रम विभाजन को प्रोत्साहन देता है।

(६) अधिक आराम (More leisure)—श्रम विभाजन के अन्तर्गत मशीनों के प्रयोग से श्रमिक थोड़े समय में अधिक उत्पादन कर सकते हैं और इस प्रकार अधिक आय प्राप्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, श्रमिकों को कम घण्टे कार्य करना पड़ता है और इस प्रकार उन्हें मानसिक तथा शारीरिक मनोरंजन तथा आराम के लिए अधिक समय प्राप्त हो जाता है।

(१०) आविष्कारों को प्रोत्साहन (Encouragement to inventions)—श्रमिक एक ही प्रकार का कार्य करते-करते उससे सम्बन्धित सभी बातों—अच्छाइयों तथा कमजोरियों—को समझ लेते हैं। उस कार्य से सम्बन्धित कमजोरियों तथा कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से वे नयी मशीनों का आविष्कार करते हैं।

(११) रोजगार के अवसरों में वृद्धि (Increase in employment opportunities)—श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के उद्योगों की स्थापना होती है। इन उद्योगों में भारी, हल्के, सरल तथा जटिल सभी प्रकार के कार्य होते हैं जिनमें, पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों सभी को कार्य मिल जाता है। इस प्रकार रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है और बेरोजगारी कम होती है।

(१२) श्रमिकों के संगठन का होना (Formation of workers' union)—श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है, बड़े-बड़े कारखानों में सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं। ये श्रमिक आपस में संगठित होकर श्रम-संघ बनाते हैं ताकि वे मालिकों के शोषण से बच सकें और अपने कार्य करने की दशाओं को सुधार सकें तथा अपने हितों की रक्षा कर सकें।

(१३) श्रमिकों का सांस्कृतिक तथा मानसिक विकास (Cultural and mental development of workers)—श्रम विभाजन के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है, कारखानों में देश के विभिन्न भागों से श्रमिक आकर कार्य करते हैं। इन श्रमिकों के रीति रिवाज, रहन-सहन, इत्यादि में बहुत अन्तर होता है, ये श्रमिक एक दूसरे के सम्पर्क में आकर नयी-नयी बातें सीखते हैं। इस प्रकार उनका सांस्कृतिक तथा मानसिक विकास होता है।

(१४) उत्पादन में वृद्धि तथा ऊँचा जीवन स्तर (Increase in productivity and higher standard of living)—उपर्युक्त सब बातों का परिणाम यह होता है कि श्रमिकों तथा अन्य लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है।

श्रम-विभाजन की हानियाँ (Disadvantages of Division of Labour)

यद्यपि श्रम विभाजन बहुत लाभदायक है, परन्तु इसकी कुछ हानियाँ भी हैं। श्रम-विभाजन एक 'अमिश्रित वरदान' (unmixed blessing) नहीं है। इसकी मुख्य हानियाँ निम्नलिखित हैं :

(१) नीरसता तथा उचाटपन (Monotony and Boredom)—श्रम विभाजन के अन्तर्गत एक श्रमिक एक कार्य को ही दिन-प्रतिदिन करता रहता है। ऐसी स्थिति में श्रमिकों की रुचि कार्य में कम हो जाती है और वह नीरसता तथा उचाटपन का अनुभव करता है।

(२) मनुष्य के विकास पर बुरा प्रभाव (Adverse effect on human development)—एक ही कार्य को निरन्तर करते रहने से श्रमिक के मस्तिष्क के केवल कुछ गुणों (faculties) का विकास होता है, अन्य गुणों का नहीं। कार्य में विभिन्नता श्रमिक के मस्तिष्क का विकास करती है, उसके सोचने तथा निर्णय लेने की शक्ति और किसी काम के प्रारम्भ करने की शक्ति (initiative) को प्रोत्साहित करती है। परन्तु एक ही प्रकार के कार्य को दोहराते रहने

से श्रमिक का मस्तिष्क सकुचित हो जाता है और श्रमिक के व्यक्तित्व का उचित विकास नहीं होता।

(३) उत्तरदायित्व की भावना में कमी (Loss of the sense of responsibility)—श्रम-विभाजन के अन्तर्गत प्रत्येक सम्पूर्ण कार्य अनेक श्रमिकों के प्रयत्नों का परिणाम होता है। कोई भी एक श्रमिक या श्रमिकों का एक समूह एक कार्य को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक नहीं करता, वह सम्पूर्ण कार्य के केवल एक भाग को करता है। ऐसी स्थिति में यदि अन्तिम वस्तु (finished product) निम्नकोटि की निकलती है तो इसका उत्तरदायित्व किसी एक श्रमिक या श्रमिकों के एक समूह पर रखना असम्भव हो जाता है। अत श्रमिकों की उत्तरदायित्व की भावना में कमी आ जाती है।

(४) वर्गवाद को प्रोत्साहन (Encouragement to sectionalism)—श्रम विभाजन विभिन्न प्रकार के विशेषज्ञों (specialists) को जन्म देता है। विशेषज्ञों का प्रत्येक वर्ग अपनी दुनियाँ में रहता है तथा वह अन्य विशेषज्ञों से घनिष्ट सामाजिक सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न नहीं करता है। प्रत्येक वर्ग अपने हितों तथा स्वार्थों को बनाये रखने में अन्य वर्गों तथा समाज के हितों की चिन्ता नहीं करता है। इस प्रकार समाज को एकता के सूत्र में बाँधने वाले सम्बन्ध (bonds of unity) ढीले पड जाते हैं और वर्गवाद को प्रोत्साहन मिलता है।

(५) मशीन तथा कारखाना प्रणाली के सभी दोष (All the drawbacks of machines and factory system)—श्रम विभाजन के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर मशीनों द्वारा उत्पादन होता है इसलिए मशीनों तथा कारखाना प्रणाली के सभी दोष इसमें आ जाते हैं। मुख्य दोष इस प्रकार हैं

(अ) स्त्रियों तथा बच्चों का शोषण (Exploitation of women and children)—श्रम विभाजन में एक जटिल कार्य को कई सरल भागों में बाँट दिया जाता है इनकी सरलता के कारण इन्हें स्त्रियाँ तथा बच्चे भी कर सकते हैं। उद्योगपति मनुष्य के स्थान पर स्त्रियों तथा बच्चों को काम पर लगाते हैं और उन्हें कम मजदूरी देकर उनका शोषण करते हैं। छोटी आयु से ही बच्चे कारखाने में कार्य करने लगते हैं जिससे उनका शारीरिक विकास रुक जाता है।

(ब) दूषित तथा हानिकारक वातावरण (Unhealthy and harmful environment)—प्राय कारखानों के चारों ओर का वातावरण गन्दा, धूल मिट्टी वाला, धुएँदार तथा अस्वास्थ्यकर रहता है, मशीनों का बडा शोर-गुल रहता है और श्रमिकों को दुर्घटनाओं का सदैव डर रहता है। ऐसे वातावरण का श्रमिकों के मानसिक विकास तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त कारखानों के केन्द्रों में मजदूरों की अत्यधिक भीड़ (over-crowding) होने के कारण मकानों की कमी होती है, ऐसी स्थिति में मजदूर अपने परिवारों को प्राय गाँवों में छोड़ जाते हैं। इसका प्रभाव श्रमिकों के चरित्र पर बुरा पडता है और वे विभिन्न प्रकार की बुराइयों तथा बीमारियों के शिकार बन जाते हैं।

(स) श्रमिकों तथा मालिकों में संघर्ष (Conflict between workers and employers)—बड़े-बड़े कारखानों में सैकडों तथा हजारों की सख्या में श्रमिक कार्य करते हैं, परिणामस्वरूप मालिकों का श्रमिकों के साथ निकट का सम्बन्ध नहीं रह जाता है। दो वर्ग हो जाते हैं—एक मालिकों का वर्ग जिनके पास बडी आर्थिक शक्ति होती है और दूसरा श्रमिकों का वर्ग। श्रमिकों को अपने हितों की रक्षा के लिए निरन्तर मालिकों से संघर्ष करना पडता है। औद्योगिक हड़ताल तथा तालाबन्दियों से देश की शान्ति भग होती है।

(द) अति उत्पादन तथा मन्दी का डर (Over production and danger of depression)—बड़े पैमाने के उत्पादन में किसी वस्तु का उत्पादन केवल वर्तमान में माँग के अनुसार ही नहीं वरन् भविष्य की माँग के अनुसार किया जाता है। यदि वस्तु की माँग अनुमान से कम निकलती है तो उस वस्तु का उत्पादन अधिक हो जाता है और उद्योग विशेष में मन्दी आ जाती है जिसका प्रभाव देश के अन्य उद्योगों तथा अन्य क्षेत्रों में भी पडता है। परिणामस्वरूप देश में बेकारी तथा अशान्ति फैल जाती है।

(६) **बेरोजगारी का डर** (Danger of unemployment)—श्रम विभाजन में एक कार्य को कई सरल भागों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक श्रमिक एक भाग में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेता है। यदि उसका वर्तमान रोजगार छूट जाता है तो दूसरी जगह उसे समान कार्य आसानी से नहीं मिलता, इस प्रकार वह बेरोजगार हो जाता है।

(७) **पारस्परिक निर्भरता** (Interdependence)—श्रम-विभाजन व्यक्तियों, समुदायों तथा देशों को एक-दूसरे पर अत्यधिक निर्भर बना देता है। देश विशेष में उद्योगों में काम करने वाले अपने खाद्यान्न के लिए कृषकों पर निर्भर करते हैं, यदि किसी कारण कृषि उत्पादन बहुत कम होता है तो उद्योगों में काम करने वाले लोगों तथा कृषि क्षेत्र के बाहर अन्य लोगों को अपने खाने के लिए बड़ी कठिनाई उठानी पड़ेगी। इसी प्रकार कृषक यन्त्रों, कपड़ा इत्यादि वस्तुओं के लिए उद्योगों पर निर्भर करते हैं। इसी प्रकार एक देश दूसरे देश पर बहुत-सी वस्तुओं के लिए निर्भर करता है। इस पारस्परिक निर्भरता के कारण लोगों को कभी-कभी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(८) **श्रमिकों को स्वतन्त्रता में कमी** (Loss of freedom among workers)—श्रम-विभाजन के अन्तर्गत एक श्रमिक एक ही प्रकार के कार्य को करने के लिए प्रशिक्षित (trained) हो जाता है। यदि उसके वर्तमान व्यवसाय में स्थिति खराब हो जाती है तो वह आसानी से दूसरे व्यवसायों में नहीं जा सकता है। इस प्रकार उसकी स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है तथा उसकी गतिशीलता में कमी आ जाती है।

निष्कर्ष—श्रम विभाजन के उपर्युक्त दोषों में से अधिकांश दोषों या हानियों को कारखानों में कार्य करने की दशाओं में सुधार करके, सरकार की मौद्रिक तथा कर सम्बन्धी नीतियों, सामाजिक सुरक्षा तथा श्रम हितकारी कार्यों की उचित व्यवस्था द्वारा दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसके लाभ, दोषों से कहीं अधिक हैं।

श्रम-विभाजन के दोषों को कैसे दूर किया जाय?
(HOW TO REMOVE THE DISADVANTAGES OF DIVISION OF LABOUR ?)

श्रम विभाजन की कई हानियाँ हैं परन्तु इनमें से अधिकांश हानियों को दूर किया जा सकता है। इनको दूर करने के मुख्य उपाय निम्न हैं

(१) कार्य की नीरसता तथा उचाटपन (monotony and irksomeness) को कारखानों में कार्य करने की दशाओं को सुधार करके दूर किया जा सकता है। आज के युग में अधिकांश बड़े बड़े उद्योगों में श्रमिकों को बीच-बीच में आराम का समय (rest periods) दिया जाता है ताकि वे मानसिक व शारीरिक थकावट दूर करके कार्य को पुन ताजा दिमाग से कर सकें।

इसके अतिरिक्त मानसिक नीरसता को दूर करने के लिए श्रमिकों के कार्य में भी परिवर्तन कर सकते है, जब भी अवसर मिले तब मालिक श्रमिकों को एक प्रकार के कार्य से दूसरे प्रकार के कार्य में लगा सकते है।

(२) विकसित देशों में श्रमिकों के विकास पर बुरे प्रभाव को दूर किये जाने के प्रयत्न किये जा रहे है, विकसित देशों में श्रमिकों के प्रतिदिन के कार्य करने के घण्टों में कमी की जा रही है ताकि उनको आराम तथा मनोरंजन (leisure and recreation) के लिए अधिक समय मिल सके।

(३) श्रमिकों की बेरोजगारी के डर को भी एक सीमा तक दूर किया जा सकता है। यदि श्रमिकों को सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा दी जाय तो वे नये प्रकार के कार्यों को शीघ्रता से समझ सकते हैं। ऐसी स्थिति में वे अवसर पड़ने पर एक कार्य को छोड़कर दूसरा कार्य कर सकेंगे और उनकी बेरोजगारी का डर कम हो जायेगा।

(४) मशीनों तथा कारखाना प्रणाली के अधिकांश दोषों को सरकार, श्रमिकों के हित की रक्षा के लिए, विभिन्न प्रकार के कानूनों का निर्माण कर दूर करने का प्रयत्न करती है, जैसे

कारखाना अधिनियम, सामाजिक बीमा योजनाएँ, श्रम हितकारी कार्य, औद्योगिक झगड़ों से सम्बन्धित नियम, आदि।

इसी प्रकार आधुनिक सरकारें निरन्तर इस बात का ध्यान रखती हैं कि देश में व्यापार चक्रों को उपयुक्त मौद्रिक तथा कर सम्बन्धी नीतियों द्वारा दूर रखा जाय।

श्रम विभाजन के अधिकांश दोष एक सीमा तक दूर किये जा सकते हैं तथा दोषों की अपेक्षा इसके लाभ कहीं अधिक हैं। आज के युग में देशों की आर्थिक प्रगति के लिए श्रम-विभाजन अत्यन्त आवश्यक है।

श्रम विभाजन की सीमाएँ
(LIMITATIONS OF DIVISION OF LABOUR)

किसी भी उद्योग या व्यवसाय में किस सीमा तक श्रम विभाजन किया जा सकता है, यह निम्न तत्त्वों पर निर्भर करता है

(१) **बाजार का विस्तार** (Extent of market)—एडम स्मिथ का मत था कि श्रम-विभाजन बाजार के विस्तार द्वारा सीमित होता है। किसी वस्तु का बाजार जितना अधिक विस्तृत होगा अर्थात् जितनी अधिक उस वस्तु की माँग होगी उतना ही अधिक श्रम विभाजन किया जा सकेगा। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु का बाजार सकुचित है तो श्रम विभाजन नहीं हो सकेगा क्योंकि उस वस्तु की माँग बहुत कम होगी और उसे बड़े पैमाने पर उत्पादित नहीं किया जा सकेगा।[4]

यद्यपि यह ठीक है कि श्रम विभाजन किसी वस्तु के बाजार के विस्तार पर निर्भर करता है या उससे सीमित होता है। परन्तु एक **सीमा तक बाजार का विस्तार भी श्रम विभाजन पर निर्भर करता है।** उदाहरणार्थ, भारत जैसे विकासमान देश (developing country) में किसी वस्तु जैसे, स्कूटरों) की माँग हो सकती है परन्तु उसके उत्पादन की लागत अधिक होने के कारण लोग उसको खरीदने में असमर्थ रहते हैं और इस प्रकार उस वस्तु का बाजार सीमित रह जाता है। ऐसी स्थिति में यदि श्रम विभाजन द्वारा वस्तु (स्कूटरों) का उत्पादन बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है तो उत्पादन लागत कम होगी और लोग वस्तु को बहुत अधिक मात्रा में खरीदने लग जायेंगे अर्थात् वस्तु का बाजार विस्तृत हो जायगा। स्पष्ट है कि एक सीमा तक श्रम विभाजन भी बाजार के विस्तार को प्रभावित कर सकता है।

(२) **पूँजी संचय** (Capital accumulation)—श्रम विभाजन 'पूँजी की प्राप्यता' अर्थात् पूँजी संचय से भी सीमित होता है। अविकसित देशों में पूँजी की कमी होती है, इसलिए इन देशों में श्रम विभाजन तथा उत्पादन के बड़े पैमाने के सभी लाभों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत विकसित देशों में पूँजी संचय बहुत अधिक मात्रा में होता है इसलिए इन देशों में एक बहुत बड़ी सीमा तक श्रम विभाजन किया जाता है। तकनीकी प्रगति, विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन को प्रोत्साहित करती है, परन्तु तकनीकी प्रगति तथा खोजें (inventions) तब तक सम्भव नहीं हैं जब तक उन नयी खोजों को व्यावसायिक दृष्टि से लाभदायक बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में पूँजी न हो।

---

[4] यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की यह है कि **बाजार के विस्तार का अर्थ' बाजार के केवल भौगोलिक क्षेत्र** (geographical area) **से नहीं होता है।** यह सम्भव है कि किसी वस्तु का बाजार भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से बहुत बड़ा हो सकता है अर्थात् अन्तरराष्ट्रीय बाजार हो सकता है परन्तु उस वस्तु की माँग इतनी कम हो सकती है कि श्रम विभाजन नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत, बाजार का भौगोलिक क्षेत्र अपेक्षाकृत कम हो सकता है अर्थात् राष्ट्रीय बाजार हो सकता है परन्तु वस्तु की माँग बहुत अधिक होने से एक बड़ी सीमा तक श्रम विभाजन सम्भव हो जाता है। अतः **बाजार के विस्तार का अर्थ वस्तु की माँग की मात्रा से लिया जाता है न कि भौगोलिक क्षेत्र से।** किसी वस्तु के बाजार का विस्तार यातायात व संवादवहन के साधनों, जनसंख्या, लोगों की आय, इत्यादि पर निर्भर करता है।

(३) **व्यवसाय का स्वभाव** (Nature of business)—कुछ व्यवसाय या उत्पादन कार्य ऐसे होते है कि उनको उप विधियों या विभिन्न भागों म नही बाँटा जा सकता। अत ऐसे व्यवसायो मे श्रम-विभाजन का क्षेत्र सीमित रहता है, उदाहरणार्थ, कृषि कलात्मक चित्र का बनाना, इत्यादि।

(४) **तकनीकी तत्व** (Technical factors)—श्रम विभाजन तकनीकी तत्वो द्वारा सीमित होता है। किसी व्यवसाय या उद्योग म जितनी अधिक तकनीकी प्रगति होगी उतना ही अधिक श्रम-विभाजन उसम हो सकेगा क्योकि बिना तकनीकी प्रगति के उत्पादन कार्य को सरल उपविभागो म नही बाँटा जा सकता।

(५) **देश मे व्यापारिक सुविधाएँ** (Business facilities in a country)—एक देश मे जितनी अधिक व्यापारिक सुविधाएँ, जैसे बैंकिंग तथा बीमा की अच्छी सुविधाएँ, परिवहन तथा सवादवहन के साधनो का पर्याप्त विकास, प्रबन्धको का योग्य बनाने की प्रशिक्षण सुविधाएँ, इत्यादि होगी उतना ही श्रम विभाजन को प्रोत्साहन मिलेगा। इनके विपरीत दशाओ मे श्रम विभाजन सकुचित या सीमित रह जायगा।

प्रश्न

१. आप श्रम-विभाजन से क्या समझते हैं ? इसके लाभ, हानियाँ तथा सीमाएँ बताइए।

   Explain what do you understand by division of labour Discuss its advantages disadvantages and limitations (*Vikram B Com, I,* 1966)

२ श्रम विभाजन के मुख्य लक्षण बताइए ? श्रम विभाजन किस प्रकार उत्पादन करने की कुशलता म वृद्धि करता है ?

   Point out the main features of division of labour How does division of labour increase productive efficiency ? (*Agra, B Com, I,* 1967)

   [सकेत—दूसरे भाग मे श्रम विभाजन के लाभ बताइए क्योकि इसके सभी लाभ उत्पादन कुशलता मे वृद्धि को बताते हैं।]

३ श्रम विभाजन का अर्थ बताइए। क्या श्रम विभाजन एक 'अमिश्रित वरदान' (unmixed blessing) है ?

   Explain the meaning of Division of Labour Is Division of Labour an 'unmixed blessing' ?

   [सकेत—दूसरे भाग मे यह बताइए कि श्रम विभाजन एक 'अमिश्रित वरदान' नही है क्योकि इसके लाभो के साथ हानियाँ भी हैं अर्थात लाभ तथा हानियो का वर्णन कीजिए।]

7 मशीनों का प्रयोग
[USE OF MACHINERY]

इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् संसार में मशीनों का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। आज उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी प्रकार की मशीनों का प्रयोग होता है। आधुनिक युग में मशीनों का प्रयोग इतना बढ़ गया है कि इसे 'मशीन युग (Machine Age)' कहते हैं। मशीनों के प्रयोग से अनेक लाभ हैं। परन्तु इनकी कुछ हानियाँ भी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुल मिलाकर मशीनों के प्रयोग ने मनुष्य जीवन को अधिक सुखी तथा सम्पन्न बना दिया है।

मशीनों से लाभ

(I) उत्पादकों को लाभ, (II) श्रमिकों को लाभ, (III) उपभोक्ताओं तथा समाज को लाभ, (IV) सरकार को लाभ। नीचे हम चारों वर्गों के लाभों का विस्तृत रूप में विवेचन करते हैं।

I उत्पादकों को लाभ (Benefits to Producers)

(१) उत्पादन में वृद्धि, द्रुत गति तथा नियमितता (Increase in output, fast speed and regularity)—मशीनों की सहायता से नियमित रूप में तथा बहुत अधिक मात्रा में उत्पादन प्राप्त किया जाता है। एक मशीन कई श्रमिकों के बराबर कार्य करती है तथा उत्पादन की गति बहुत तेज होती है। उदाहरणार्थ, एक मशीन प्रति घण्टे ३,५०,००० हाथ की घड़ियाँ उत्पादित कर सकती है, एक सिगरेट का कारखाना प्रति मिनट २,५०,००० सिगरेट बना सकता है, एक आधुनिक छापने की मशीन एक घण्टे में १६ पृष्ठों के ८०,००० अखबारों को छापने, मोड़ने (folding) तथा गिनने (counting) की क्षमता रखती है।

(२) प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी (Reduction in per unit cost of production)—मशीनें केवल उत्पादन की ही वृद्धि नहीं करतीं वरन् वस्तु की प्रति इकाई लागत में भी कमी करती हैं। इसके मुख्य कारण हैं। (i) मशीनों के कारण विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन सम्भव हो सका है जिससे उत्पादन लागत में कमी होती है। (ii) मशीनों के प्रयोग से बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है जिससे उत्पादकों को आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं जिससे वस्तु की प्रति इकाई लागत घटती है।

(३) सुनिश्चितता तथा प्रमापीकरण (Precision and standardisation)—मशीनें बिलकुल एकरूप (exactly identical) वस्तुओं का बड़ी मात्रा में उत्पादित करती हैं। इस सुनिश्चितता (precision) के कारण प्रमापित वस्तुओं (standardised products) का उत्पादन होता है। मशीनों की मरम्मत बड़ी सुगमता से होती है क्योंकि किसी एक मशीन के विभिन्न भाग बिलकुल एकरूप होते हैं और इसलिए पुराने भागों को नए भागों से बदला जा सकता है।

(४) कोमल तथा सूक्ष्म कार्य सम्भव (Delicate and minute work possible)—मशीनें बहुत बारीक तथा सूक्ष्म कार्य कर सकती हैं। जिन सूक्ष्म तथा बारीक चीजों को नंगी आँख से नहीं देखा जा सकता उनका मशीनों की सहायता से निरीक्षण किया जा सकता है। हाथ की

बड़ी के बारीक से बारीक पुर्जों का बनाना मशीनों द्वारा ही सम्भव हो सका है। मशीनों की सहायता से एक इंच का एक हजारवाँ भाग तक नापा जा सकता है तथा ५०० ग्राम के वजन में १/२५०,०००,००० तक की भूल को ज्ञात किया जा सकता है।

(५) हाथ से अस्पर्शित वस्तुओं का उत्पादन (Production of commodities untouched by hand)—स्वास्थ्यिकीय (hygienic) दृष्टि से यह आवश्यक है कि बहुत-सी दवाइयों तथा अनेक खाने-पीने की वस्तुओं को बनाते समय हाथ से छुआ न जाय। मशीनों की सहायता से हाथ से अस्पर्शित वस्तुओं का उत्पादन सम्भव हो गया है।

II. श्रमिकों को लाभ (Benefits to Workers)

(१) भारी, थका देने वाले तथा कठिन कार्यों का सुगमतापूर्वक उत्पादन (Easy performance of heavy, exhausting and difficult work)—बहुत-से कार्य जो भारी, कठिन तथा थकाने वाले हैं, मशीनों की सहायता से श्रमिक बड़ी आसानी से कर लेते हैं। उदाहरणार्थ, भारी से भारी वजन को क्रेन (crane) की सहायता से जहाजों, रेलों, इत्यादि में लादा जा सकता है, बड़े-बड़े पुल, बाँध, इत्यादि को बनाते समय भारी-भारी वजनों को श्रमिक मशीनों की सहायता से ही उठाते तथा रखते हैं, पहाड़ों को काटकर सड़क बनाने में भी श्रमिक मशीनों का ही प्रयोग करते हैं।

(२) नीरस तथा गन्दे कार्यों से मुक्ति (Relief from monotonous and dirty or disagreeable work)—बहुत-से नीरस कार्यों, जैसे अखबारों को मोड़ना, मशीनों द्वारा किया जाने लगा है। इसी प्रकार बहुत-से गन्दे कार्य मशीनों द्वारा होने लगे हैं, जैसे मल-मूत्र की सफाई का कार्य फ्लश प्रणाली (flush system) द्वारा होने लगा है।

(३) श्रमिकों को अधिक अवकाश (More leisure for workers)—मशीनों की सहायता से थोड़े समय में बहुत अधिक कार्य किया जा सकता है। इसलिए श्रमिकों के कार्य करने के घण्टों में कमी हो गयी है। परिणामस्वरूप श्रमिक को अवकाश मिल जाता है जिसे वे अपने बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विकास (intellectual and cultural development) में लगा सकते हैं।

(४) श्रमिकों के मानसिक गुणों का विकास (Development of mental faculties of workers)—मशीनों को चलाने के लिए बुद्धि (intelligence), ध्यान, निर्णय तथा उत्तरदायित्व की आवश्यकता पड़ती है। अतः मशीनों को निरन्तर चलाने से श्रमिकों में उपयुक्त मानसिक गुणों का विकास होता है।

(५) श्रम की गतिशीलता में वृद्धि (Increase in the mobility of workers)—मशीनों के प्रयोग के कारण उद्योगों में उत्पादन की क्रियाएँ (processes) बहुत सरल हो गयी हैं। दूसरे, श्रमिकों का एक मशीन का अनुभव दूसरी मशीन की कार्यप्रणाली समझने में बहुत सहायक होता है अर्थात् वह दूसरी मशीनों पर भी सुगमतापूर्वक कार्य कर सकता है। उपर्युक्त दोनों कारणों के परिणामस्वरूप श्रमिक एक कारखाने या एक उद्योग से दूसरे कारखाने या उद्योग में आसानी से जा सकते हैं, अर्थात् उनकी गतिशीलता में वृद्धि होती है।

(६) अकुशल श्रमिकों का भी प्रयोग (Use of unskilled labourers)—मशीनों के प्रयोग से उत्पादन की बहुत-सी प्रक्रियाएँ इतनी सरल हो गयी हैं कि उन्हें एक सामान्य बुद्धि वाला अकुशल श्रमिक भी थोड़े समय में ही समझकर सुगमता से कर सकता है। इस प्रकार मशीनों के प्रयोग से अकुशल श्रमिकों को भी आसानी से कार्य मिल जाता है।

(७) रोजगार के अधिक अवसर (More opportunities for employment)—मशीनों के प्रयोग से एक देश का औद्योगीकरण तीव्र गति से होता है, विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धे खुलते हैं तथा विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्य होते हैं। इन सब बातों के कारण अधिक श्रमिक को रोजगार मिलता है।

(८) श्रमिकों की कुशलता तथा पारिश्रमिक में वृद्धि (Increase in the efficiency and wages of workers)—मशीन के प्रयोग के श्रमिकों की उत्पादन कुशलता बढ़ जाती है।

मशीनो की सहायता से एक निश्चित समय म अच्छा किस्म की अधिक मात्रा में वस्तु का उत्पादन किया जा सकता है। जब श्रमिको की उत्पादन कुशलता बढ़ जाती है तो उनकी मजदूरियाँ भी बढ जाती है।

III. उपभोक्ताओं तथा समाज को लाभ (Benefits to Consumers and Society)

(१) सस्ती प्रमापित तथा उत्तम वस्तुओ की प्राप्ति (Availability of cheap, standardized and quality commodities)—मशीनो के प्रयोग से बड़े पैमाने का उत्पादन होता है और बड़े उत्पादन के कारण उपभोक्ताओ को सस्ती, प्रमापित तथा उत्तम वस्तुएँ प्राप्त होती है।

(२) परिवर्तनशील तथा विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओ की पूर्ति (Satisfaction of changing and different kinds of wants)—सभ्यता के विकास तथा समय के साथ उपभोक्ताओ की आवश्यकताएँ बदलती रहती है। विभिन्न प्रकार की तथा शीघ्रता से बदलती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति विभिन्न प्रकार की मशीनो के द्वारा ही की जाती है।

(३) दूरी मे कमी (Distance are shortened)—मशीनो के प्रयोग के कारण ही यातायात तथा सचार के साधनो म बहुत विकास हुआ है। रेलो, जलयानो तथा वायुयानो द्वारा थोडे समय म ही देश विदेश म लोगो के बीच सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। रेडियो, टेलीफोन तथा टेलीविजन द्वारा क्षणो म ही समाचार देश विदेश के कोने-कोने से प्राप्त हो जाते है, इसलिए कहा जाता है कि ससार छोटा हो गया है। इससे अन्तरराष्ट्रीय व्यापार मे बहुत वृद्धि हुई है।

(४) मानव जीवन में नियमितता (Order and regularity in human life)—मशीनें नियमित रूप से निश्चितता (exactness) तथा अध्यवसाय (persistence) के साथ कार्य करती है। मशीनो के साथ कार्य करने से मनुष्य भी अपने जीवन मे नियमितता, निश्चितता तथा अध्यवसाय के पाठ (lessons) सीखता है।

(५) देश के प्राकृतिक साधनो का पूर्ण प्रयोग (Fuller use of the natural resources of a country)—मशीनो की सहायता से ही देश विशेष के प्राकृतिक साधनो जैसे—जल, खनिज पदार्थ, जगल, इत्यादि—का पूर्ण प्रयोग किया जा सकता है। इससे देश की राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है।

IV. सरकार को लाभ (Benefits to Government)

मशीनो के प्रयोग से उत्पादन मे बहुत वृद्धि होती है जिससे लोगो तथा राष्ट्र की आय मे भी वृद्धि होती है। अत (i) वस्तुओ के अधिक उत्पादन होने तथा अधिक माल बिकने से सरकार को उत्पादन-कर तथा बिक्री-कर के रूप म अधिक आय प्राप्त होती है, (ii) लोगो की आय बढ़ने से सरकार को अधिक आय-कर प्राप्त होता है। सरकार बढी हुई आय को देश के तीव्र तथा चहुँमुखी विकास के लिए प्रयोग करती है।

मशीनो से हानियाँ

मशीनो के अनेक लाभ हैं, परन्तु इनके प्रयोग से कुछ हानियाँ भी है। मुख्य हानियाँ निम्न प्रकार है

(१) औरतो तथा बच्चों का शोषण (Exploitation of women and children)—मशीनो तथा श्रम विभाजन के कारण कारखाना मे कार्य बहुत सरल हो जाता है। इसलिए स्त्री तथा बच्चे भी इन कार्यों को कर सकते है। स्त्री तथा बच्चे कम मजदूरी पर काम करने को तत्पर हो जाते है। उद्योगपति इनको कम वेतन देकर तथा अधिक काम लेकर इनका शोषण करते हैं। इसका स्त्रियों तथा बच्चो के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ध्यान रहे कि मशीन प्रत्यक्ष रूप स स्त्रियो तथा बच्चो के शोषण मे सहायक नहीं होती। इनके शोषण के दो मुख्य कारण है - प्रथम उद्योगपतियो का सकुचित दृष्टिकोण तथा दूसरे, श्रमिको

की गरीबी। प्रत्येक प्रगतिशील देश की सरकार कानूनों द्वारा स्त्रियों तथा बच्चों को शोषण से रक्षा देने का प्रयत्न करती है।

(२) श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा चरित्र पर बुरा प्रभाव (Injurious effect on workers' health and morals)—मशीनों के प्रयोग से उद्योगों का स्थानीयकरण हो जाता है और औद्योगिक केन्द्रों में भीड़-भाड़ (over-crowding) की समस्या गन्दी बस्तियों को जन्म देती है। कारखानों का शोर-गुल, धुएँ से दूषित वायु एवं गन्द तथा छोटे मकान में कई परिवारों का रहना, इत्यादि बातें समस्त वातावरण को दूषित तथा अस्वास्थ्यकर कर देती हैं जिससे श्रमिकों का शारीरिक तथा नैतिक पतन हो जाता है।

मशीनों के इन प्रत्यक्ष दोषों को उद्योगों का विकेन्द्रीकरण तथा श्रमिकों के लिए स्वच्छ तथा हवादार मकानों की व्यवस्था करके दूर किया जा सकता है।

(३) स्नायु संस्थान पर अधिक तनाव (Great strain on nervous system)—श्रमिकों को भयंकर गति (terrific speed) से कार्य करने वाली मशीनों की गड़गड़ाहट में निरन्तर अपने ध्यान को मशीन तथा कार्य पर केन्द्रित करना पड़ता है। इससे श्रमिकों के स्नायु संस्थान पर बहुत अधिक तनाव पड़ता है जो उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है।

इस दोष को एक बड़ी सीमा तक दूर किया जा सकता है, यदि श्रेष्ठ मशीनों का प्रयोग किया जाय, श्रमिकों को बीच-बीच में आराम (pause) दिया जाय तथा उनके लिए कैन्टीन में सस्ती दर पर स्वास्थ्यकर खाने-पीने की वस्तुओं की व्यवस्था हो।

(४) नीरसता (Monotony)—मशीनों द्वारा एक ही प्रकार का कार्य दिन-प्रति-दिन करते रहने से श्रमिकों के कार्य में नीरसता का अनुभव होने लगता है।

परन्तु इस सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि बिना मशीनों के प्रयोग के भी बहुत-से कार्य ऐसे होते हैं जो नीरस होते हैं जैसे प्रतिदिन दूध दुहना, हल चलाना (ploughing), इत्यादि। इसके अतिरिक्त कुछ कारखानों में कार्य, जिनमें अन्य लोगों का साथ (company) तथा बातचीत करने की सुविधा रहती है, आनन्ददायक होते हैं।

(५) शिल्पकारी तथा कुटीर उद्योगों का पतन (Decline of art and cottage industries)—मशीनों द्वारा वस्तु निर्माण में श्रमिकों को अपने भाव, निपुणता तथा व्यक्तित्व का परिचय देने का कोई अवसर नहीं मिलता। इससे कला का ह्रास होता है। इसके अतिरिक्त मशीन निर्मित सस्ती वस्तुओं के सामने कुटीर उद्योगों की अपेक्षाकृत महँगी वस्तुएँ नहीं टिक पाती हैं। परिणामस्वरूप बहुत-से कुटीर उद्योग बन्द हो जाते हैं और उनमें कार्य करने वाले शिल्पकार बेकार हो जाते हैं। ये शिल्पकार कारखानों में कार्य करने लगते हैं परन्तु एक शिल्पकार केवल मशीन-सेवक (machine tender) बनकर रह जाता है और उसकी कलात्मक रुचि (artistic aptitude) समाप्त हो जाती है।

सरकार द्वारा उचित तथा समन्वित (co ordinated) औद्योगिक नीति को कार्यान्वित करने से इस दोष को एक सीमा तक दूर किया जा सकता है।

(६) श्रमिक की स्वतन्त्रता तथा व्यक्तित्व का ह्रास (Loss of freedom and personality of workers)—मशीनों के साथ कार्य करने से श्रमिक की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है, उसका कोई व्यक्तित्व नहीं रह जाता है, उसका व्यक्तित्व गिरकर मशीन के स्तर पर पहुँच जाता है और उत्पादक उसके साथ निर्जीव मशीनों की भाँति व्यवहार करने लगते हैं।

इस दोष को सुदृढ़ श्रमिक संघ आन्दोलन, सरकारी कानूनों तथा उचित जनमत (enlightened public opinion) द्वारा दूर किया जा सकता है।

(७) औद्योगिक अशान्ति (Industrial unrest)—मशीनों तथा श्रम-विभाजन के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है जिसमें हजारों की संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र दो भागों में बँट जाता है—एक ओर थोड़े से पूँजीपति तथा उद्योगपति होते हैं जिनके हाथों में आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है तथा दूसरी ओर श्रमिक वर्ग होता है जो आर्थिक दृष्टि

से कमजोर होता है। इन दोनो वर्गों मे मनमुटाव रहता है जिसके कारण हड़तालें तथा तालेबन्दी होती है और औद्योगिक अशान्ति होती है।

परन्तु यह मशीनो का प्रत्यक्ष दोष नही है। यह दोष दूर किया जा सकता है यदि उद्योगपति श्रमिको के साथ उचित व्यवहार करें, श्रम सघो का अच्छा सगठन हो तथा सरकार उचित कानूनो का निर्माण करे।

(८) अति उत्पादन का डर (Danger of over-production)—मशीनो के प्रयोग के कारण उत्पादन बडे पैमाने पर होता है। कारखानो द्वारा अधिक माल उत्पादित करने से माँग की अपेक्षा पूर्ति बहुत हो जाती है परिणामस्वरूप वह बिक नही पाती। इस 'अति-उत्पादन' के कारण मन्दी फैल जाती है, बहुत-से कारखाने बन्द हो जाते है और बेरोजगारी फैल जाती है।

वास्तव मे, यह भी मशीनो का प्रत्यक्ष दोष नही है। अति-उत्पादन का कारण है उद्योग पतियों की भविष्य की माँग का अनुमान गलत हो जाना। इस दोष को एक सीमा तथा सरकार के नियन्त्रण तथा उसकी उचित प्रशुल्क नीतियो द्वारा दूर किया जा सकता है।

(९) मशीनों की विनाशक शक्ति (Destructive power of machines)—मशीन तथा विज्ञान ने एटम तथा हाइड्रोजन बमो को उत्पन्न कर मनुष्य के हाथ मे भीषण विनाशकारी शक्ति दे दी है। परन्तु इनमे मशीन तथा विज्ञान का कोई दोष नहीं है वरन् इनके प्रयोग का दोष है। मनुष्य ने अणु शक्ति (atomic power) का प्रयोग शान्ति कार्यों तथा देश की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने मे भी किया है।

(१०) मशीन तथा बेरोजगारी (Machine and unemployment)—मशीनो का एक बडा दोष बताया जाता है कि ये श्रमिको को बेरोजगार कर देती हैं। प्राय मशीनें श्रमिक-बचत (labour-saving) होती है और वे पहले की अपेक्षा बहुत कम श्रमिको से ही एक निश्चित कार्य करा लेती हैं। यही कारण है कि कारखानो मे नयी मशीनो की स्थापना का श्रमिक तीव्र विरोध करते हैं।

अर्थशास्त्रियो का मत है कि **अल्पकाल मे मशीनों का प्रयोग श्रमिकों को बेरोजगार कर देता है परन्तु दीर्घकाल मे श्रमिको की माँग बढ़ जाती है और न केवल रोजगार से हटाये गये सभी व्यक्तियों को रोजगार मिल जाता है वरन् कुल रोजगार के अवसरो मे भी वृद्धि हो जाती है।** दीर्घकाल मे मजदूरो की माँग मे वृद्धि तथा रोजगार के अवसरो मे वृद्धि निम्न प्रकार से होती है

(i) किसी उद्योग मे मशीनो के प्रयोग से लागत घट जाती है अर्थात् उद्योग विशेष की वस्तुएँ सस्ती पडती हैं और उनकी कीमत कम हो जाती है (अ) यदि उद्योग की वस्तुओ की माँग लोचदार है तो कीमत कम होने से इन वस्तुओ की माँग बढ़ेगी, उद्योग को बढाया जायेगा और कुछ रोजगार से हटे हुए श्रमिको को उसी उद्योग मे रोजगार मिल जायेगा (ब) यदि उद्योग विशेष की वस्तुओ की माँग बेलोचदार है तो उपभोक्ताओ के पास अन्य वस्तुओ पर व्यय करने के लिए अधिक द्रव्य बच रहेगा, अन्य वस्तुओ की माँग बढ़ेगी, उसका उत्पादन बढाया जायेगा और उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिको की आवश्यकता पडेगी तथा बहुत-से बेरोजगार श्रमिको को रोजगार मिल जायेगा।

(ii) मशीनो के प्रयोग से उन श्रमिको की, जो कि रोजगार मे लगे हुए हैं, उत्पादन कुशलता बढ़ेगी, उनकी मजदूरियाँ बढेगी, वे वस्तुओ को खरीदने मे अधिक व्यय करेंगे और बढी हुई माँग को पूरा करने के लिए वस्तुओ का अधिक उत्पादन होगा जिसके लिए अधिक श्रमिको की आवश्यकता पडेगी।

(iii) विभिन्न प्रकार की वस्तुओ की बढी हुई माँग को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की मशीन बनाने वाले उद्योग स्थापित होंगे, इन मशीन निर्माण उद्योगो मे कुछ श्रमिको को रोजगार मिलेगा। यदि मशीनो का निर्माण देश मे नही होता वरन् वे विदेशो से मँगायी जाती है तो श्रमिकों के रोजगार के अवसर मे वृद्धि नहीं होगी।

(iv) मशीनों के प्रयोग से देश का औद्योगीकरण तीव्र गति से होता है। इसके परिणाम-स्वरूप यातायात व सवादवहन के साधनों का विकास किया जायगा और इनके विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी।

स्पष्ट है—(अ) मशीनों के प्रयोग से अल्पकाल में जो श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं, दीर्घकाल में केवल उनको ही रोजगार नहीं मिलता वरन् रोजगार के कुल अवसरों में वृद्धि होती है। (ब) मशीनों के प्रयोग से अल्पकाल में जो बेरोजगारी उत्पन्न होती है—यह तकनीकी बेरोजगारी (technological unemployment) का एक रूप होती है—वह कुल बेरोजगारी का केवल एक छोटा सा भाग होती है। इसलिए बेरोजगारी की समस्या को मशीनों का प्रयोग बन्द कर देने से हल नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से तो देश का कुल उत्पादन तथा कुल राष्ट्रीय आय कम होगी और अन्त में कुल रोजगार में बहुत कमी हो जायेगी जिससे श्रमिकों की दशा पहले से अधिक खराब हो जायेगी।

निष्कर्ष—मशीनों के प्रयोग के अनेक लाभ तथा हानियाँ हैं। परन्तु इसकी हानियों को एक सीमा तक उचित प्रयत्नों द्वारा दूर या कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मशीनों के *लाभ, हानियों की अपेक्षा, कहीं अधिक है। मशीनों से उत्पादन में वृद्धि हुई है,* देशों की कुल राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है उपभोक्ताओं को विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ कम मूल्य पर प्राप्त हो सकी हैं तथा व्यक्तियों को अधिक अवकाश प्राप्त हुआ है। समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि मशीनों ने मानवीय कल्याण में बहुत वृद्धि की है।

प्रश्न

१ मशीनों के प्रयोग के आर्थिक प्रभावों की विवेचना कीजिए। क्या मशीनें बेरोजगारी उत्पन्न करती हैं?

Discuss the economic effects of the introduction of machinery Does machinery create unemployment? *(Meerut, B Com., 1970)*

[संकेत—प्रथम भाग में बहुत संक्षेप में मशीनों के लाभ तथा हानियाँ बताइए, हानियों के ६ point तक ही लिखिए। दूसरे भाग के उत्तर में हानियों के ponit no १० 'मशीन तथा बेरोजगारी' के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री को लिखिए।]

२ मशीनों के उपयोग का उत्पादन, रोजगार, मजदूरी, श्रमिकों के कल्याण और लाभों पर किस प्रकार प्रभाव हुआ है?

How has the use of machinery influenced production, employment, wages, workers' welfare and profits? *[Meerut, B Com., 1966, Raj. B Com., 1966]*

[संकेत—प्रश्न को चार भागों में बाँट दीजिए। प्रथम भाग में मशीनों के उत्पादन के क्षेत्र में लाभ बताइए, देखिए 'उत्पादकों को लाभ' नामक शीर्षक के अन्तर्गत ५ points, दूसरे भाग में मशीनों के प्रभाव को रोजगार पर स्पष्ट कीजिए, अर्थात् बताइए कि अल्पकाल में मशीनें बेरोजगारी उत्पन्न करती हैं परन्तु दीर्घकाल में बेरोजगारी नहीं रहती वरन् रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है देखिए पृष्ठ ५८ पर point no (१०) 'मशीन तथा बेरोज-गारी' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री, तीसरे भाग में यह बताइए कि मशीनों से श्रमिकों के लिए क्या लाभ तथा हानियाँ हुई हैं, देखिए पृष्ठ ५५ 'श्रमिकों को लाभ' नामक शीर्षक के अन्तर्गत ८ points तथा श्रमिकों को हानि के लिए देखिए पृष्ठ ५६-५७ पर points (१) से (७) तक, चौथे भाग में बताइए कि मशीनों द्वारा वस्तु की प्रति इकाई लागत कम होने से तथा वस्तु की अधिक मात्रा को उत्पादित करके बेचने से उत्पादकों के लाभों में वृद्धि हुई है।]

8 उद्योगों का विवेकीकरण
[RATIONALISATION OF INDUSTRIES]

प्रादुर्भाव (Origin)

विवेकीकरण[1] का अर्थ है कि उद्योग मे तकनीकी तथा प्रबन्धकीय सुधारो द्वारा लागत को कम करके उत्पादन कुशलता को बढाना। अधिकतम विस्तृत तथा सामान्य अर्थ मे विवेकीकरण का आशय है सभी मानवीय क्रियाओं को विवेक के आदेशो के अनुरूप लाना (bringing all human activities into conformity with the dictates of reason)। यदि इसे विस्तृत तथा सामान्य अर्थ की दृष्टि से देखें तो हम विवेकीकरण की प्रक्रिया का अस्तित्व मानव जाति के प्रारम्भ से ही मानवीय क्रियाओ के विभिन्न क्षेत्रो मे पायेंगे। परन्तु उद्योगो के क्षेत्र मे विवेकीकरण का जन्म प्रथम विश्वयुद्ध के ध्वंसकारी प्रभावो के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशो की लडखडाती तथा परास्त अर्थ-व्यवस्थाओ म हुआ। इन अर्थ-व्यवस्थाओ मे, विशेषतया जर्मनी म, यह बाधित (compelling) आवश्यकता थी कि औद्योगिक गिरावट (degeneration) को रोका जाय। कठोर आर्थिक परिस्थितियो के कारण जर्मनी को अपने उद्योगो का पुनर्गठन तथा आधुनीकरण करना पडा। जर्मनी के द्वारा अपने औद्योगिक पुनर्जन्म (rebirth) के लिए प्रयोग मे लायी गयी वैज्ञानिक रीतियो तथा प्रविधियो (techniques) को विवेकीकरण का नाम दिया गया है। वालटियर मेकिन (Walter Mackin) ने इसे 'नयी औद्योगिक क्रान्ति (New Industrial Revolution) का नाम दिया।

विवेकीकरण का अर्थ (Meaning of Rationalisation)

शब्द विवेकीकरण (rationalisation) विवेक (rational) शब्द से बना है जिसका अर्थ है किसी कार्य मे विवेक या तर्क या वैज्ञानिक निर्णय का प्रयोग करना।

उद्योगों के विवेकीकरण से अर्थ उद्योगों मे ऐसे तकनीकी (technical,) वित्तीय तथा प्रबन्धकीय सुधार करना है जिससे न्यूनतम लागत तथा प्रयत्न से अधिकतम उत्पादक-कुशलता (productive efficiency) प्राप्त हो। उत्पादन मे पाँच 'म' (five M's) योगदान देते हैं जिनके नाम हैं—मनुष्य (man), मशीन (machine), माल (material), मुद्रा (money) तथा मैनेजमेन्ट (management)। एक उद्योग का आदर्श विवेकीकरण वह है जो इन पाँचो पहलुओ मे सुधार करे। प्रत्येक की बर्बादी का निराकरण ही विवेकीकरण का सार है।

---

[1] विवेकीकरण के लिए हिन्दी के दो अन्य शब्द, अभिनवीकरण तथा युक्तिकरण, भी प्रयोग में लाये जाते हैं।

वास्तव मे, विवेकीकरण का क्षेत्रफल बहुत विस्तृत है और उसके सम्पूर्ण अर्थ को किसी एक कठोर परिभाषा (rigid definition) की चारों दीवारो के अन्दर भरा जाना कठिन है। इसी कारण विवेकीकरण की अनेक परिभाषाएँ पायी जाती हैं। उनमें से हम केवल एक परिभाषा को नीचे देते हैं।

अन्तरराष्ट्रीय श्रम सघ (International Labour Organisation) ने विवेकीकरण की परिभाषा संकुचित, व्यापक तथा अति व्यापक अर्थों मे दी है। परिभाषा निम्न है :

(i) "**सकुचित-अर्थ मे**, विवेकीकरण से आशय किसी उद्योग, शासन या अन्य सेवा में, चाहे वह सरकारी हो अथवा गैर-सरकारी, ऐसे सुधारो से है जिनके द्वारा परम्परागत तथा प्राचीन विधियो के स्थान पर नियमित तर्क या विवेक पर *आधारित विधियों का प्रयोग किया जाता है।* (ii) **व्यापक अर्थ मे**, विवेकीकरण एक ऐसा सुधार है जिसमे व्यावसायिक सस्थाओ के एक समूह को इकाई मान लिया जाता है तथा व्यवस्थित व सगठित तर्क पर अधारित सगठित क्रिया द्वारा अनियन्त्रित प्रतियोगिता से होने वाली बर्बादी तथा हानि को रोका जाता है। (iii) **अति व्यापक अर्थ मे**, विवेकीकरण एक ऐसा सुधार है जिसम विशाल *आर्थिक* एव सामाजिक समुदायो की सामाजिक क्रियाओ पर *व्यवस्थित तर्क* पर आधारित उपायो तथा विधियो का प्रयोग किया जाता है।"[१]

अन्तरराष्ट्रीय श्रम सघ की उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि विवेकीकरण सकुचित अर्थ म एक कारखाने पर लागू होता है, व्यापक अर्थ मे एक उद्योग पर तथा अति व्यापक अर्थ मे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू होता है।

विवेकीकरण के पहलू (Aspects of Rationalisation)

विवेकीकरण के अर्थ को भली-भाँति समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न पहलुओ को समझ लिया जाय, विवेकीकरण के मुख्य पहलू निम्न है

(१) **तकनीकी पहलू (Technological aspect)**—विवेकीकरण का एक मुख्य अग है तकनीकी कुशलता की अधिकतम करना। तकनीकी पहलू मे प्राय निम्न बातें सम्मिलित की जाती हैं :

(i) **प्रमापीकरण (Standardisation)**—विवेकीकरण मे विधियो तथा वस्तुओ का प्रमापीकरण किया जाता है। इससे पूंजी तथा कच्चे माल का अपव्यय कम हो जाता है और प्लाण्ट की उत्पादन क्षमता बढ़ती है।

(ii) **सरलीकरण (Simplification)**—उत्पादन विधियो को सरल किया जाता है, इससे अच्छा श्रम विभाजन होता है, श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ती है तथा लागत कम होती है।

(iii) **यन्त्रीकरण (Mechanisation)**—श्रेष्ठ प्रकार के यन्त्रो तथा मशीनो का प्रयोग करने से श्रमिको की उत्पादन-क्षमता बढ़ती है, लागत घटती है, उत्पादन तीव्र गति से होता है तथा एकरूप वस्तुएँ प्राप्त होती है।

(iv) **गहनता (Intensification)**—तकनीकी सुधार किय बिना यन्त्रो तथा श्रमिको की उत्पादन गति मे वृद्धि करना गहनता कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वर्तमान मशीनो तथा यन्त्रो का अधिकतम प्रयोग करने की दृष्टि से उन्हे तीव्र गति से चलाकर श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि की जाती है। इसमें नयी व श्रेष्ठ मशीनों का प्रयोग नही किया जाता, केवल पुरानी मशीनो की मरम्मत इत्यादि करके या उसमे थोड़ा सुधार करके ही काम चलाया जाता है, इससे श्रमिको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी विवेकीकरण की आड मे केवल गहनता को लागू किया जाता है।

---

[१] "(i) Rationalisation, *in the narrowest sense*, is any reform of an undertaking administration or other service, public or private tending to replace habitual antiquated practices by means or method based on systematic reasoning (ii) Rationalization, *in the wider sense* is a reform which takes a group of business undertaking as a unit and tends to reduce waste and loss due to unbriddled competition by concerted action based on systematic reasoning (iii) Rationalisation, *in the widest sense*, is a reform tending to use means and methods based on systematic reasoning to the collective activities of the large economic and social group"

(v) विशिष्टीकरण (Specialisation)—उद्योग विशेष की इकाइयाँ वस्तु के अलग-अलग भागों का निर्माण करने में विशिष्टता प्राप्त कर लेती हैं। इससे पूँजी तथा श्रम का अपव्यय नहीं होता और उत्पादक-कुशलता में वृद्धि होती है।

(vi) कार्यात्मकता (Functionalisation)—इसका अर्थ है उद्योग के आन्तरिक संगठन में वैज्ञानिक प्रबन्ध को कार्यात्मक रूप देना। कार्य करने की रीतियों को वैज्ञानिक ढंग से नियोजित किया जाता है, श्रमिकों का वैज्ञानिक ढंग से चुनाव किया जाता है तथा श्रमिकों को निश्चित कार्य के अनुसार निश्चित मजदूरी दी जाती है। निरीक्षण कार्य को कई विशिष्ट उपवर्गों (Sub-divisions) में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक उपवर्ग का एक कार्यात्मक निरीक्षक (functional boss) होता है जो उस उपवर्ग के लिए पूर्ण उत्तरदायी होता है।

(२) संगठनात्मक पहलू (Organisational aspect)—इस पहलू का अर्थ है उद्योग में गलाकाट प्रतियोगिता का निराकरण करना। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि निरर्थक (ineffective) प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप उद्योग की कमजोर इकाइयों का धीमी गति से स्वतः नाश हो जाय वरन् इसमें तो कमजोर इकाइयों को क्षमतावान इकाइयों के साथ मिला दिया जाता है और इस प्रकार बहुत-सी मृत लकड़ी (dead wood) काट दी जाती है। बालफोर कमेटी (Balfour Committee) के अनुसार "उन्नति की तीव्र गति बनाये रखने तथा अधिक कुशल शाखाओं के विकास के लिए मृत लकड़ी को काटने का कार्य आवश्यक हो सकता है।"[3] विवेकीकरण के संगठनात्मक पहलू का औद्योगिक संयोजन (Industrial Combination) एक महत्त्वपूर्ण भाग है।

(३) वित्तीय पहलू (Financial aspect)—विवेकीकरण के तकनीकी तथा संगठनात्मक पहलुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्त की व्यवस्था आवश्यक है। वित्तीय संगठन के अन्तर्गत उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में अनावश्यक व्ययों को कम करना तथा पूँजी की उचित व्यवस्था करना आता है। पूँजी को निम्नतम लागत पर प्राप्त की जाने की चेष्टा की जाती है। उद्योग अपने लाभों में से कोषों (funds) का सृजन करता है ताकि जहाँ तक सम्भव हो पर्याप्त वित्त उद्योग के निजी साधनों से ही प्राप्त हो सके।

(४) सामाजिक तथा मानवीय पहलू (Social and human aspect)—यह अत्यन्त आवश्यक है कि मानवीय तत्त्व पर उचित ध्यान दिया जाय अन्यथा विवेकीकरण अविवेकपूर्ण हो जायेगा। श्रमिकों के भरती करने, उचित मजदूरी देने, असन्तोष के कारणों को दूर करने, पदोन्नति की उचित व्यवस्था, कार्य करने की उचित तथा स्वस्थ दशाओं की व्यवस्था, इत्यादि में मानवीय तत्त्व को ध्यान में रखना तथा उसको उचित भावना देना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा विवेकीकरण अर्थहीन हो जायगा। मानवीय तत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि विवेकीकरण यान्त्रिक विज्ञान ही नहीं वरन् एक मानवीय कला भी है।[4]

विवेकीकरण के उद्देश्य (Objects of Rationalisation)

उद्योग के क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं, नयी-नयी रीतियों तथा मशीनों के आविष्कार होते रहते हैं। इन परिवर्तनशील स्थितियों में उद्योगों की उत्पादक कुशलता तथा उनकी प्रतिस्पर्द्धा शक्ति को बनाये रखने के लिए विवेकीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। विवेकीकरण की आवश्यकता इसके उद्देश्य से स्पष्ट होती है। विवेकीकरण के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं

जिससे प्राप्त हो। उत्प-

(१) प्रत्येक प्रकार ... राकरण (Elimination of every type of waste)—विवेकीकरण का मुख्य ... न (machine), ... र का आदर्श ... रीतियों तथा अप्रचलित (obsolete) मशीनों के स्थान पर वैज्ञानिक तथा नयी कुशल ... करण ही विवे- ... ोग करके अपव्यय को दूर करना है। विवेकीकरण दोषपूर्ण संगठन, अनियन्त्रित प्र... उत्पादन विधियों, उत्पत्ति के साधनों का

---

[3] "An operation of cutting out dead wood may be essential for the speedy restoration of prosperity and the assumption of the growth for the more efficient branches."

[4] "Rationalisation is not merely a mechanical science but also a human art."

दोषपूर्ण समन्वय, शक्ति, कच्चा माल, इत्यादि से सम्बन्धित सभी प्रकार के अपव्ययों को दूर करने का प्रयत्न करता है।

(२) प्रमापीकरण (Standardisation)—विवेकीकरण उत्पादन की किस्मों की विभिन्नता म कमी करता है (यदि उन किस्मों से कोई लाभ न हो) और उनका प्रमापीकरण करके उत्पादन कुशलता म वृद्धि करता है।

(३) उद्योग मे स्थित साधनों का अधिकतम प्रयोग (Maximum utilisation of the existing resources in an industry)—विवेकीकरण न केवल नयी रीतियों तथा नयी मशीनों का ही प्रयोग करता है वरन् उद्योग म स्थित मशीनों तथा साधनों का अधिकतम प्रयोग करने का प्रयत्न करता है।

(४) श्रम कुशलता मे वृद्धि (Increase in worker's efficiency)—विवेकीकरण का एक उद्देश्य न्यूनतम प्रयत्नों द्वारा अधिकतम श्रम कुशलता प्राप्त करना है।

(५) वैज्ञानिक वितरण व्यवस्था (Scientific distributive system)—विवेकीकरण अनावश्यक यातायात, भारी वित्तीय किरायों तथा अनावश्यक मध्यस्थों को हटाने का प्रयत्न करता है।

(६) उत्पादकों मे आय का अच्छा वितरण (Better distribution of income among producers)—विवेकीकरण उत्पादकों के विभिन्न वर्गों को ऊँची आय तथा उसका उचित और अच्छा वितरण प्राप्त करने म सहायक होता है।

(७) अधिक स्थायित्व (Great stability)—विवेकीकरण उद्योगों म कार्यकुशलता का एक उच्च स्तर बनाये रखता है और इस प्रकार उसको अच्छा स्थायित्व प्रदान करता है।

(८) उच्च जीवन-स्तर (High standard of living)—विवेकीकरण द्वारा उपभोक्ताओं को पर्याप्त मात्रा मे तथा आवश्यकताओं के अनुरूप सस्ती कीमतों पर वस्तुएँ प्राप्त होती है। इस प्रकार विवेकीकरण का एक मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं तथा समाज के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना भी है।

विवेकीकरण की विधियाँ (Methods of Rationalisation)

विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य सभी प्रकार के अपव्यय का निराकरण तथा लागत म कमी करके उत्पादन कुशलता को बढ़ाना है। इस दृष्टि से विवेकीकरण के अन्तर्गत निम्न रीतियों का प्रयोग किया जाता है

(१) आधुनीकरण या तकनीकी सुधार (Modernisation or technological improvement)—उद्योग म किसी तथा अप्रचलित (obsolete) मशीनों तथा यन्त्रों के स्थान पर नयी तथा आधुनिकतम मशीनों तथा यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार पुरानी रीतियों के स्थान पर नवीनतम तथा वैज्ञानिक रीतियाँ अपनायी जाती है।

(२) वित्तीय पुनर्संगठन (Financial reorganisation)—उचित रीतियों द्वारा उद्योग मे 'अति पूँजीकरण (over capitalisation) तथा 'न्यून पूँजीकरण (under capitalisation) के दोषों को दूर किया जाता है।

(३) वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific management)—इस पद्धति के जन्मदाता अमरीका निवासी एफ० डब्ल्यू० टेलर (F W Taylor) है। इसके अन्तर्गत न्यूनतम समय मे, कम-से-कम शारीरिक गति और न्यूनतम थकावट के साथ अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। दूसरे शब्दों मे इसम समय अध्ययन (time study), गति अध्ययन (motion study) तथा थकावट अध्ययन (fatigue study) शामिल होते है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रमुख तत्त्व इस प्रकार है (i) प्रत्येक कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ श्रमिक को चुना जाता है और तत्पश्चात् प्रशिक्षण द्वारा उसका पूर्ण विकास किया जाता है। (ii) प्रत्येक श्रमिक का कार्यक्रम इस प्रकार निश्चित किया जाता है कि अनावश्यक गति के कारण समय तथा

श्रम का कोई अपव्यय (waste) न हो। (iii) प्रबन्ध तथा श्रमिकों में कार्य को वैज्ञानिक ढग से बाँटा जाता है। (iv) प्रबन्ध तथा श्रम में अच्छा सहयोग प्राप्त किया जाता है।

इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध एक फर्म को इकाई मानकर उसका सर्वश्रेष्ठ सगठन करता है और श्रम उत्पादकता को बढाता है।

(४) एकीकरण तथा समन्वय (Integration and co-ordination)—एक उद्योग की क्षमता को एकीकरण तथा समन्वय द्वारा बहुत बढ़ाया जा सकता है, उद्योग की विभिन्न स्थानो पर स्थित अनेक कमजोर इकाइयों को एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत लाकर अर्थात् 'क्षैतिज एकीकरण' (horizonatal integration) द्वारा अकुशल फर्मों का निराकरण किया जाता है और उत्पादन श्रेष्ठ फर्मों म केन्द्रित कर दिया जाता है। दूसरे, एक उत्पादन इकाई में कच्चे माल से लेकर पक्के माल तक तैयार करने के सभी कार्य का एकीकरण करके, अर्थात् 'शीर्ष एकीकरण' (vertical integration) द्वारा कच्चे माल की लागतों तथा प्रबन्ध के खर्चों को कम किया जाता है।

(५) प्रमापीकरण (Standardisation)—वस्तुओं तथा प्रक्रियाओं का प्रमापीकरण किया जाता है। यह उत्पादन और तकनीक को सरल करता है तथा बिक्री को बढाता है।

(६) बिक्री प्रोत्साहन (Sales promotion)—विज्ञापन, प्रसार तथा बिक्री के अधिक अच्छे तरीकों का प्रयोग किया जाता है। निर्यात वस्तुओ की बिक्री बढ़ाने के लिए प्राय उद्योग विशेष की सब इकाइयाँ मिलकर कार्य करती हैं, इसमें व्यय में कमी भी होती है।

विवेकीकरण के लाभ
(ADVANTAGES OF RATIONALISATION)

विवेकीकरण के लाभों को हम निम्न चार मुख्य वर्गों (broad groups) में बाँट सकते हैं (I) उत्पादकों को लाभ, (II) श्रमिकों को लाभ, (III) उपभोक्ताओं को लाभ, (IV) समाज को लाभ। उपर्युक्त चारों वर्गों के लाभों की हम नीचे विस्तृत रूप से विवेचना करते हैं।

I उत्पादकों को लाभ (Benefits to Producers)

उत्पादकों को निम्न लाभ होते हैं

(१) उत्पादकता में वृद्धि तथा लागत में कमी (Higher productivity and reduction in cost)—विवेकीकरण के अन्तर्गत आधुनिकतम मशीनों तथा यन्त्रो, नवीनतम तथा सरल प्रक्रियाओं विशिष्टीकरण तथा प्रमापीकरण का प्रयोग किया जाता है। उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है जिससे आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। उपर्युक्त सब बातों के परिणामस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होती है और उत्पादन लागत में कमी होती है।

(२) प्रत्येक प्रकार के अपव्यय का निराकरण (Elimination of wastages of every kind)—विवेकीकरण दोषपूर्ण सगठन, अनियन्त्रित प्रतिस्पर्धा दोषपूर्ण उत्पादन-विधियों, उत्पत्ति के साधनों का दोषपूर्ण समन्वय शक्ति, कच्चा माल इत्यादि से सम्बन्धित सभी प्रकार के अपव्ययों को दूर करके उत्पादन लागत में कमी करता है।

(३) पूँजी का अच्छा प्रयोग (Better utilisation of capital)—विवेकीकरण में पूँजी की व्यवस्था उद्योग की आवश्यकतानुसार की जाती है अर्थात् इसमें अति-पूँजीकरण (over-capitalisation) तथा न्यून-पूँजीकरण (under-capitalisation) नहीं होता है। इस प्रकार पूँजी का अच्छा प्रयोग होता है।

(४) श्रम तथा प्रबन्ध में सहयोग (Co-operation between labour and management)—विवेकीकरण श्रमिकों की मजदूरियों तथा कार्य करने की दशाओं में सुधार करके श्रम तथा प्रबन्ध में सहयोग स्थापित करने के प्रयत्न करता है। सघर्ष के स्थान पर सहयोग की भावना को प्रोत्साहन मिलता है और औद्योगिक शान्ति स्थापित होती है।

(५) औद्योगिक अनुसन्धान को प्रोत्साहन (Promotion of industrial research)—विवेकीकरण के कारण उद्योग विशेष की इकाइयों को सामूहिक रूप म अधिक साधन तथा सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक अनुसन्धान को बहुत प्रोत्साहन मिलता है।

(६) उद्योग की प्रतियोगिता शक्ति में वृद्धि (Increase in the competitive power of industry)—नवीनतम मशीनों तथा प्रक्रियाओं के प्रयोग, प्रत्येक प्रकार के अपव्यय का निराकरण, आर्थिक साधनों मे वृद्धि इत्यादि के कारण उद्योग की विदेशी प्रतियोगिता का सामना करने की शक्ति बढ़ जाती है।

(७) उद्योग मे स्थायित्व (Stability in the industry)—उत्पादन, क्रय विक्रय, वित्त व्यवस्था प्रबन्ध इत्यादि सभी क्षेत्रों म वैज्ञानिक तथा नवीनतम रीतियों का प्रयोग करने से अति-उत्पादन तथा न्यून उत्पादन की सम्भावना नहीं रह जाती है। इस प्रकार विवेकीकरण व्यापारिक अस्थिरता (business fluctuations) के प्रति बीमा (insurance) का काम करता है।

II श्रमिकों को लाभ (Benefits to Workers)

(१) कार्यकुशलता मे वृद्धि (Increase in efficiency)—श्रमिकों की वैज्ञानिक रीति से चुनाव, कार्य करने के लिए नवीनतम मशीनों तथा यन्त्रों की व्यवस्था, कार्यों का उचित वितरण, कार्य करने की अच्छी दशाओं, इत्यादि द्वारा विवेकीकरण श्रमिकों की कार्यकुशलता मे वृद्धि करता है। (२) अधिक मजदूरियाँ तथा उच्च जीवन-स्तर (More wages and higher standard of living)—कार्यकुशलता म वृद्धि होने से श्रमिकों को अधिक मजदूरियाँ मिलती हैं और उनका जीवन स्तर ऊँचा होता है।

III उपभोक्ता को लाभ (Benefits to Consumers)

विवेकीकरण के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को श्रेष्ठ वस्तुएँ कम मूल्य पर प्राप्त हो जाती है और इससे उनके जीवन स्तर म वृद्धि होती है।

IV समाज को लाभ (Benefits to Society)

विवेकीकरण से समाज को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं (१) राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है। राष्ट्रीय आय म वृद्धि होने से समाज या देश की बचत करने की क्षमता मे वृद्धि होती है, अधिक बचत होने से देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से किया जा सकता है। (२) देश के साधनों का अधिकतम प्रयोग किया जाता है इससे भी समाज की आय म वृद्धि होती है। (३) समाज का जीवन स्तर ऊँचा उठ जाता है।

दोष, खतरे तथा कठिनाइयाँ
(DISADVANTAGES DANGERS AND DIFFICULTIES)

विवेकीकरण से उत्पादन के क्षेत्र मे, उपभोक्ता के लिए, श्रमिकों तथा मालिकों के लिए कुछ दोष तथा कठिनाइयाँ होती हैं। इनका विवरण नीचे दिया गया है

I उत्पादन के क्षेत्र मे (In the Field of Production)

विवेकीकरण के कारण उत्पादन के क्षेत्र मे निम्न दोष तथा खतरे होते हैं

(१) नेतृत्व तथा उपक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव (Adverse effect on leadership and enterprise)—विवेकीकरण मे प्राय एकीकरण होता है तथा उत्पादन का पैमाना बढ जाता है, विशाल संगठनों तथा ट्रस्टों (trusts) की स्थापना हो जाती है। इन विशाल संगठनों के समक्ष युवक व्यक्तियों (young persons) को स्वतन्त्र रूप मे व्यापार चलाने के अवसर नहीं मिलते हैं। योग्यतम युवकों को इन बड़े बड़े संगठनों मे केवल सामान्य कार्यकर्ताओं की भाँति ही कार्य करना पड़ता है। परिणामस्वरूप नये व्यक्तियों की योग्यताओं का उचित विकास नहीं होता। इस प्रकार नेतृत्व तथा उपक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और दीर्घकाल मे विवेकीकृत (rationalised) उद्योगों के लिए 'उद्योग के कप्तानों' (captains of industries) की पर्याप्त मात्रा मे पूर्ति एक समस्या बन सकती है।

(२) *अधिक तकनीकी सुधारों के लिए कम उत्साह* (Less encouragement for further technical improvement)—विवेकीकरण द्वारा जब किसी उद्योग को एक बार स्थायित्व प्राप्त हो जाता है तो वह और अधिक तकनीकी सुधारों के लिए कोई प्रवृत्ति या उत्साह नहीं दिखाता क्योंकि ऐसा करने म नयी मशीनो तथा नयी रीतियों का प्रयोग करना पड़ेगा जिससे वर्तमान व्यवस्था गड़बड़ (upset) होगी। वास्तव म, विवेकीकरण एक सतत प्रक्रिया (continuous process) है, *समयानुसार नवीनतम मशीनों तथा सुधरी हुई रीतियों* का प्रयोग किया जाना चाहिए। परन्तु व्यवहार म ऐसा नहीं हो पाता क्योंकि यह बहुत महँगा पड़ता है। इस प्रकार उद्योग विशेष मे एक स्थैतिक दृष्टिकोण (static approach) आ जाता है।

(३) **बड़े पैमाने की उत्पत्ति के दोष** (Defects of large-scale production)—विवेकीकरण म मशीनों का प्रयोग, श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण तथा बड़े पैमाने की उत्पत्ति के अनेक दोष पाये जाते हैं।

II **उपभोक्ताओं के लिए** (For Consumers)

विवेकीकरण एकाधिकारी प्रवृत्तियों को जन्म देता है। विवेकीकरण म प्राय उद्योग विशेष की विभिन्न इकाइयों म एकीकरण (integration) होता है जिससे कारटेल (cartels) तथा ट्रस्टों (trusts) की स्थापना हो जाती है। ये कारटेल तथा ट्रस्ट उत्पादन के बहुत बड़े भाग को नियंत्रित करते हैं। उपभोक्ताओं से ऊँचे मूल्य प्राप्त करते हैं और वस्तु की किस्म तक मे गिरावट कर देते हैं। इस प्रकार उपभोक्ता विवेकीकरण के लाभों से वंचित रह जाते हैं और उनका शोषण होता है।

III **श्रमिकों का दृष्टिकोण** (Attitude of Workers)

श्रमिक कई दोषों के कारण विवेकीकरण का विरोध करते हैं। श्रमिकों के लिए मुख्य हानियाँ, या श्रमिकों द्वारा विरोध करने के मुख्य कारण, निम्न हैं

(१) **गहनीकरण का साधनमात्र** (Device for the intensification of work)—यह कहा जाता है कि व्यवहार मे विवेकीकरण केवल गहनीकरण का रूप धारण कर लेता है। श्रमिकों के काय करने की अच्छी दशाओं, नवीनतम मशीनों, इत्यादि अन्य बातों का प्रयोग किये बिना ही उत्पादक गहनीकरण को लागू कर देते हैं जिससे श्रमिकों पर बहुत जोर तथा तनाव पड़ता है इससे श्रमिकों के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पड़ता है।

(२) **विवेकीकरण के लाभों से श्रमिक वंचित रह जाते हैं** (Workers are deprived *of the gains of rationalisation*)—*विवेकीकरण के परिणामस्वरूप उत्पादन म वृद्धि होती* है। परन्तु उत्पादक उसी अनुपात मे श्रमिकों की मजदूरियों मे वृद्धि नहीं करते। व्यवहार मे श्रमिकों को अधिक काय करना पड़ता है उनको अपेक्षाकृत मजदूरी कम मिलती है, उनके काय करने की दशाओं मे उचित मात्रा म सुधार नहीं किया जाता। इस प्रकार श्रमिक विवेकीकरण के लाभों से वंचित रह जाते हैं।

(३) *बेरोजगारी (Unemployment)—विवेकीकरण के परिणामस्वरूप श्रमिकों* मे बेरोजगारी फैलती है। श्रमिकों द्वारा विवेकीकरण के विरोध करने का यह एक मुख्य कारण है। विवेकीकरण रोजगार को इस प्रकार कम करता है (i) मशीनों के प्रयोग के परिणामस्वरूप अनावश्यक श्रमिकों की छँटनी कर दी जाती है। (ii) उत्पादन को माँग के अनुरूप बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता है अकुशल औद्योगिक इकाइयों को बन्द करके उत्पादन को केवल कुछ कुशल फर्मों मे केन्द्रित कर दिया जाता है। *इस प्रकार बहुत-से श्रमिक बेकार हो जाते है। यद्यपि* दीर्घकाल म विवेकीकरण बेरोजगारी को दूर करता है तथा रोजगार के कुल अवसरों मे वृद्धि करता है, परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि अल्पकाल मे थोड़ी बेरोजगारी अवश्य होती है। सरकार मालिकों तथा श्रमिकों के संयुक्त प्रयत्नों द्वारा इस अल्पकालीन तथा अस्थायी बेरोजगारी को भी नियन्त्रित किया जा सकता है।

दीर्घकाल मे विवेकीकरण निम्न प्रकार से रोजगार के नये अवसरो मे वृद्धि करता है (i) विवेकीकरण से उत्पादन लागत घटती है और वस्तु का मूल्य कम हो जाता है। (अ) यदि उद्योग की वस्तु की मांग लोचदार है तो मूल्य कम होने से इन वस्तुओं की मांग बढ़ेगी, उद्योग को बढाया जायेगा और कुछ छंटे हुए श्रमिको को उसी उद्योग म रोजगार मिल जायेगा। (ब) यदि उद्योग विशेष की वस्तुओ की मांग बेलोचदार है तो उपभोक्ताओ के पास अन्य वस्तुओ पर व्यय करने के लिए अधिक द्रव्य बच रहेगा अन्य वस्तुओ की मांग बढ़ेगी। उनका उत्पादन बढाया जायेगा तथा उत्पादन बढाने के लिए अधिक श्रमिको की आवश्यकता पड़ेगी। (ii) विवेकीकरण से रोजगार मे लगे हुए श्रमिको की उत्पादन कुशलता बढ़ेगी उनकी मजदूरियाँ बढ़ेंगी, वे वस्तुओ को खरीदने मे अधिक व्यय करेंगे और बढी हुई मांग को पूरा करने के लिए वस्तुओ का अधिक उत्पादन होगा जिससे अधिक श्रमिको को रोजगार मिल सकेगा। (iii) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की बढी हुई मांग को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की मशीनें बनाने वाले उद्योग स्थापित होंगे, इस मशीन निर्माण उद्योग म कुछ श्रमिको को रोजगार मिलेगा। यदि मशीनो का निर्माण देश मे नहीं होता बल्कि वे विदेशो से मँगायी जाती हैं तो श्रमिकों के रोजगार के अवसरो म वृद्धि नहीं होगी। (iv) विवेकीकरण तथा मशीनो के प्रयोग से देश का औद्योगीकरण तीव्र गति से होगा, इसके परिणामस्वरूप यातायात व सवादवहन के साधनो का विकास किया जायेगा और इनके विकास के लिए पर्याप्त मात्रा मे श्रमिको की आवश्यकता पड़ेगी।

विवेकीकरण से निस्सन्देह अल्पकाल मे बेरोजगारी या अस्थायी असमायोजन (temporary maladjustment) होता है। परन्तु रोजगार के दफ्तरो की उचित व्यवस्था, श्रमिकों के पुन प्रशिक्षण की पर्याप्त और अच्छी व्यवस्था बेरोजगारी बीमा, इत्यादि अनेक उपायो द्वारा अस्थायी बेरोजगारी को कुछ सीमा तक दूर किया जा सकता है।

IV उत्पादको या मालिको का दृष्टिकोण (Producers' or Employers' Attitude)

श्रमिक ही नही वरन् मालिक भी कुछ भयो (dangers) के कारण विवेकीकरण का विरोध करते हैं या वे इसके प्रति कोई उत्साह नही दिखाते। मालिको के मुख्य भय निम्न हैं

(१) **अधिक पूंजी तथा कम प्रतिफल** (Huge capital and low return)—मालिकों या उत्पादको के अनुसार, विवेकीकरण मे बहुत पूंजी लगती है जबकि उनको प्रतिफल (return) बहुत कम मिलता है। विवेकीकरण से व्यापार की अस्थिरताओं (fluctuations) को पूरी तरह से समाप्त नही किया जा सकता है इसलिए मालिकों को भारी हानि होने का भय भी बना रहता है।

(२) **बड़ी मात्रा में पूंजी की व्यवस्था की कठिनाई** (Difficulty in managing huge capital)—विवेकीकरण के लिए बहुत बडी मात्रा म धन एकत्रित करने म भी उत्पादको को बहुत कठिनाई होती है। इसके कारण उत्पादक विवेकीकरण को अपनाने मे हिचकिचाते हैं।

(३) **श्रमिको के उचित भाग के निर्धारण मे कठिनाई** (Difficulty in determining equitable share of workers)—विवेकीकरण के लाभ से अधिकांश भाग को मालिक लेना चाहते हैं। श्रमिको को बढे हुए उत्पादन मे से कितना हिस्सा दिया जाना चाहिए इस सम्बन्ध मे प्राय मालिको तथा श्रमिकों मे झगड़ा रहता है।

(४) **अधिक अनुसन्धानो का डर** (Threats of further researches)—एक बार उद्योग का विवेकीकरण करने के बाद भी उत्पादको को सदैव इस बात का डर रहता है कि भविष्य मे अधिक अनुसन्धानो के परिणामस्वरूप उनकी वर्तमान मशीनें तथा उत्पादन की रीतियाँ बेकार हो जायेंगी।

(५) **राष्ट्रीयकरण का डर** (Danger of nationalisation)—उत्पादको को यह भी डर रहता है कि उद्योग मे बहुत बडी मात्रा मे पूंजी लगाने तथा उसका विवेकीकरण करने के बाद कहीं सरकार एकाधिकारी प्रवृत्ति का बहाना लेकर, उसका राष्ट्रीयकरण न कर दे।

वास्तव में, उत्पादकों के उपर्युक्त भयों तथा कठिनाइयों को सरकार के प्रयत्नों तथा उचित नीतियों द्वारा दूर किया जा सकता है।

निष्कर्ष—विवेकीकरण के अनेक लाभ हैं, परन्तु इसके कुछ दोष, भय तथा कठिनाइयाँ भी हैं। यह आवश्यक है कि विवेकीकरण की योजना को कार्यान्वित करते समय उत्पादकों, श्रमिकों तथा उपभोक्ताओं, सभी के हितों का ध्यान रखा जाय जिससे जहाँ तक सम्भव हो, किसी भी वर्ग को कोई कठिनाई न हो या बहुत कम अस्थायी कठिनाइयों का सामना करना पड़े, दूसरे शब्दों में, 'बिना आंसुओं के विवेकीकरण' (rationalisation without tears) को अपनाया जा सके। इस दृष्टि से सरकार का योगदान महत्त्वपूर्ण है। उद्योगों के पुनर्संगठन की उचित योजनाओं को बनवाना, उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता देना, उचित कानूनों का निर्माण करना ताकि श्रमिक को अस्थायी बेरोजगारी की कठिनाइयों का सामना न करना पड़े तथा उपभोक्ताओं को एकाधिकारी या ऊँची कीमतें न देनी पड़ें, इत्यादि उपायों द्वारा सरकार (मालिकों तथा श्रमिकों के सहयोग से) बिना आंसुओं के विवेकीकरण को कार्यान्वित कर सकती है।

प्रश्न

१. उद्योगों के युक्तिसंगत-पुनर्संगठन (rationalisation) से आप क्या समझते हैं ? इसके गुण तथा दोष कौन-से हैं ?

What do you mean by Rationalisation of industries ? Explain its advantages and disadvantages (*Agra, B A. I*, 1967)

२. उद्योगों के विवेकीकरण का अर्थ बताइए। विवेकीकरण के विभिन्न पहलुओं की विवेचना कीजिए। क्या विवेकीकरण बेरोजगारी को जन्म देता है ?

Define Rationalisation Discuss the various aspects of 'rationalisation'. Does rationalisation creates unemployment ?

३. विवेकीकरण से आप क्या समझते हैं ? श्रमिकों तथा मालिकों द्वारा इसका विरोध क्यों किया जाता है ?

What do you understand by Rationalisation ? Why *workers and employers oppose* it ?

9 व्यावसायिक संगठन के प्रारूप
[FORMS OF BUSINESS ORGANISATION]

किसी व्यवसाय या उद्योग का स्वामित्व निजी हाथों में हो सकता है या सरकारी हाथों में। औद्योगिक तथा व्यावसायिक क्रियाओं में परिवर्तनों के साथ उद्योग-धन्धों के स्वामित्व में बहुत परिवर्तन हो गये है, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ व्यावसायिक संगठन के प्रारूपों (forms) को प्रभावित करती रहती हैं।

व्यावसायिक संगठन के मुख्य प्रारूप निम्नांकित हैं (१) एकाकी स्वामित्व (Sole or single proprietorship), (२) साझेदारी (Partnership), (३) संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ (Joint stock companies) (४) सहकारिता (Co oper tion), (५) सरकारी उपक्रम (Government enterprises)। व्यावसायिक संगठन के विभिन्न प्रारूपों का नीचे संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

एकाकी स्वामित्व
(SOLE OR SINGLE PROPRIETORSHIP)

प्राक्कथन (Introduction)

एकाकी स्वामित्व व्यावसायिक संगठन का सबसे प्राचीन रूप है। विनिमय-प्रणाली के प्रारम्भ के साथ ही इसका जन्म हो गया था। सभ्यता के विकास के साथ उत्पादन की रीतियों में परिवर्तन होने लगा, औद्योगिक क्रान्ति के बाद से उत्पादन प्रणाली अधिक जटिल हो गयी। परिणामस्वरूप व्यावसायिक संगठन के रूप में परिवर्तन हुआ—एकाकी व्यवसाय से साझेदारी, साझेदारी से संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली तथा संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली से विशिष्ट व्यावसायिक संगठनों का जन्म हुआ। इतना होने पर भी कुछ लाभों के कारण एकाकी व्यवसाय का अन्त नहीं हुआ और आज भी उसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

एकाकी स्वामित्व को अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जैसे—व्यक्तिगत उपक्रम (individual enterprise), एकल स्वामी (sole owner), व्यक्तिगत साहसी (individual entrepreneur), व्यक्तिगत व्यवस्थापक (individual organiser) तथा एकाकी व्यापारी (sole trader)।

एकाकी स्वामित्व का अर्थ (Meaning of Sole Proprietorship)

एकाकी स्वामित्व व्यवसाय का वह स्वरूप है जिसमें केवल एक ही व्यक्ति व्यवसाय का स्वामी होता है और वही व्यक्ति व्यवसाय के कार्य संचालन एवं लाभ-हानि के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है।

जेम्स स्टीफेन्सन (James Stephenson) ने एकाकी स्वामित्व को इस प्रकार परिभाषित किया है "एकाकी व्यापारी वह व्यक्ति है जो व्यवसाय को केवल स्वयं तथा अपने लिये ही करता है। इस प्रकार के व्यवसाय की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह व्यक्ति व्यवसाय को चलाने से सम्बन्धित सभी जोखिमों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। वह व्यवसाय को

पूंजी का न केवल मालिक ही होता है वरन् प्राय सगठनकर्ता तथा प्रबन्धक भी होता है, तथा सब लाभो को प्राप्त करने या हानियो को उठाने के लिए उत्तरदायी होता है।"[1]

एकाकी स्वामित्व की विशेषताएँ (Characteristics of Sole Proprietorship)

(१) व्यवसाय का स्वामित्व केवल एक ही व्यक्ति के हाथ मे होता है। (२) स्वामी स्वय ही व्यवसाय का प्रबन्धक होता है और उसके पूर्ण नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी होता है। लाभ-हानि के लिए भी वह पूर्णतया उत्तरदायी होता है। (३) एकाकी व्यवसाय का असीमित दायित्व (unlimited liability) होता है अर्थात् हानि या उधार की रकम को लोग व्यवसाय की सम्पत्ति से ही नही वरन् स्वामी की निजी सम्पत्ति से वसूल कर सकते है। (४) स्वामी प्राय उत्पत्ति के साधनो को स्वय ही प्रदान करता है। वह अपनी पूंजी लगाता है, आवश्यकता पडने पर दूसरो से उधार भी लेता है। इसी प्रकार प्राय वह अपनी भूमि का प्रयोग करता है, आवश्यकता पडने पर भूमि किराय पर भी लेता है। इसी प्रकार कुछ श्रमिको को भी लगा सकता है। (५) स्वामी को अपना व्यवसाय स्थापित करने के लिए वैधानिक उपचारो (legal formalities) की आवश्यकता बिलकुल ही नही या बहुत कम होती है। (६) पूंजी की सीमित मात्रा तथा प्रबन्ध की सीमितता के कारण एकाकी व्यवसाय का कार्य क्षेत्र सीमित रहता है। (७) एकाकी व्यवसाय को इच्छानुसार कभी भी प्रारम्भ या समाप्त किया जा सकता है।

एकाकी स्वामित्व के लाभ (*Advantages of Sole Proprietorship*)

(१) **स्थापना मे सुगमता**—एकाकी व्यवसाय को बहुत आसानी से स्थापित किया जा सकता है। उसके मुख्य कारण हैं (अ) इसकी स्थापना मे कोई वैधानिक उपचारो को पालन करने की आवश्यकता नही होती। (ब) यह छोटे पैमाने पर होता है, इसलिए इसे एक सामान्य बुद्धि वाला अशिक्षित व्यक्ति भी सुविधापूर्वक चला सकता है। (स) इसको किसी स्थान पर चलाया जा सकता है, यहाँ तक कि इसे घर के एक भाग मे स्थापित किया जा सकता है।

(२) **शीघ्र निर्णय**—एकाकी व्यवसाय मे एक व्यक्ति ही सम्पूर्ण व्यवसाय का मालिक होता है, समस्त कार्य-सचालन के लिए वही उत्तरदायी होता है और कार्य सम्बन्धी बातो मे उसे किसी की सलाह या आज्ञा पर निर्भर नही रहना पडता। अत मालिक परिस्थितियो के अनुसार व्यवसाय के हित मे शीघ्र निर्णय ले सकता है। इसस आत्मनिर्भरता की भावना को भी बल मिलता है।

(३) **अधिक रुचि तथा मितव्ययिता**—मालिक स्वय ही प्रबन्ध का कार्य करता है, इस प्रकार वह प्रबन्धक के वेतन को बचाकर लागत मे कमी करता है। दूसरे, चूंकि मालिक पर लाभ-हानि का पूर्ण उत्तरदायित्व होता है, इसलिए मालिक कार्य मे अधिक रुचि लेता है, वह कार्य के प्रत्येक भाग का अच्छी प्रकार निरीक्षण करता है। 'मालिक के आँख की बचत' (economy of master's eye) प्रत्येक प्रकार के अपव्यय को दूर करके उत्पादन-लागत मे कमी करती है।

(४) **ग्राहको से व्यक्तिगत सम्पर्क**—एकाकी व्यवसाय छोटे पैमाने पर होता है, इसलिए मालिक अपने ग्राहको के साथ अधिक निकट तथा व्यक्तिगत सम्पर्क रख सकता है। वह ग्राहकों की कठिनाइयो तथा रुचियो पर व्यक्तिगत ध्यान देकर उन्हे अधिक सन्तुष्ट रखता है। एकाकी व्यवसाय की सफलता तथा उसके जीवित रहने का यह एक मुख्य कारण है।

(५) **कर्मचारियो से मधुर सम्बन्ध**—एकाकी व्यवसाय छोटे पैमाने पर होता है, इसलिए मालिक कर्मचारियो के साथ अधिक निकट सम्पर्क स्थापित कर सकता है, उनके दुख-सुख मे

[1] "A sole trader is a person who carries on business exclusively by and for himself The leading feature of this kind of concern is that the individual assumes full responsibility for all the risk connected with the conduct of the business He is not only the owner of the capital of the undertaking but is usually the organiser and manager and takes all the profits or responsibility for losses."

सम्मिलित हो सकता है, उसकी कठिनाइयों को समझकर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता है। परिणामस्वरूप मालिक तथा कर्मचारियों में मधुर सम्बन्ध रहते हैं, हड़ताल तथा तालेबन्दी की सम्भावना नहीं रहती, सन्तुष्ट कर्मचारी अधिक उत्साह, लगन तथा रुचि से कार्य करते हैं जिससे एकाकी व्यवसाय को सफलता प्राप्त होती है।

(६) गोपनीयता—एकाकी व्यवसाय में एक व्यक्ति मालिक होता है और सम्पूर्ण व्यवसाय पर उसका नियन्त्रण होता है। इसलिए व्यवसाय की नीतियों कार्यविधियों तथा भेदों को गोपनीय रखना सरल होता है।

(७) उधार व साख—यदि मालिक की बाजार में अच्छी ख्याति है तो सुगमता से रुपया उधार मिल जाता है। असीमित उत्तरदायित्व के कारण लोग उधार दिये गये धन को मालिक की निजी सम्पत्ति से वसूल कर सकते हैं।

(८) व्यक्तिगत गुणों का विकास—एक व्यक्ति ही समस्त व्यवसाय के जोखिम को उठाता है तथा समस्त कार्य को संचालित करता है। इससे एकाकी व्यवसायों के मालिकों में सतर्कता पहलपन (initiative), जोखिम उठाने का साहस, आत्मविश्वास, इत्यादि व्यक्तिगत गुणों का विकास होता है।

(९) ऐच्छिक प्रारम्भ तथा अन्त—एकाकी व्यवसाय को मालिक किसी भी समय प्रारम्भ या समाप्त कर सकता है क्योंकि उसे किसी प्रकार की कानूनी अड़चनों का सामना नहीं करना पड़ता है।

(१०) सामाजिक महत्त्व—एकाकी व्यवसाय के अन्तर्गत समाज का प्रत्येक व्यक्ति (चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित) को अपनी योग्यता तथा इच्छा के अनुसार व्यवसाय करने का अवसर मिलता है, व्यक्तिगत गुणों का विकास होता है तथा धन के वितरण में समानता आती है। इस प्रकार एकाकी व्यवसाय समाज के लिए महत्त्वपूर्ण होता है।

एकाकी स्वामित्व के दोष (Disadvantages of Sole Proprietorship)

(१) असीमित दायित्व—असीमित दायित्व के कारण नुकसान या कर्ज को लोग मालिक की निजी सम्पत्ति से भी वसूल कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में मालिक प्राय असफलताओं की आशंका से सशंकित रहता है और साहसपूर्ण जोखिम (bold risks) नहीं उठा सकता है जो व्यवसाय के विकास के लिए आवश्यक है।

(२) सीमित वित्तीय साधन—एकाकी उपक्रमों के पास पूँजी या वित्तीय साधन सीमित होते हैं। (अ) वह व्यवसाय के विस्तार के लिए आवश्यक समस्त पूँजी को अपने पास से नहीं लगा सकता। (ब) उसको अधिक रुपया उधार मिलना कठिन होता है क्योंकि उसकी ख्याति का क्षेत्र सीमित होता है। (स) यदि उसे पर्याप्त मात्रा में पूँजी मिल भी जाती है तो ब्याज के बोझ से वह दबा रहता है और सशंकित रहता है। वित्तीय साधनों के सीमित रहने के कारण वह अपने व्यवसाय का विस्तार नहीं कर पाता और अधिक लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

(३) प्रबन्ध तथा नियन्त्रण की सीमाएँ—एक व्यक्तिगत स्वामी कितना ही कुशल हो, परन्तु उसकी प्रबन्ध क्षमता तथा निर्णय शक्ति सीमित रहती है। मालिक अधिक श्रमिकों की नियुक्ति कर सकता है तथा अपने व्यवसाय को बढ़ा सकता है, परन्तु वह अकेला उसका उचित नियन्त्रण नहीं कर सकता।

(४) गलत निर्णयों की आशंका—एक व्यक्तिगत स्वामी को निर्णय लेते समय अन्य लोगों के परामर्श की सुविधा सामान्य नहीं होती। वह शीघ्र निर्णय ले सकता है परन्तु उसके गलत होने की बहुत सम्भावना होती है। गलत निर्णय उसके व्यवसाय के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं।

(५) अनुपस्थिति में अकुशल प्रबन्ध—एकाकी व्यवसाय में एक ही व्यक्ति मालिक होता है और वह ही सम्पूर्ण व्यवसाय का प्रबन्धक होता है। उसके बीमार हो जाने या कार्यवश बाहर जाने पर उसकी अनुपस्थिति में व्यवसाय का भार कर्मचारियों पर पड़ता है और उनमें से कोई भी

व्यक्ति प्रायः इतना योग्य नहीं होता कि कार्य का उचित प्रबन्ध कर सके। ऐसी स्थिति में प्रबन्ध के बिगड़ने तथा हानि होने की बहुत सम्भावना रहती है।

(६) सीमित साख-योग्यता—एक व्यक्तिगत स्वामी के पास अपनी निजी सम्पत्ति तथा व्यवसाय की सम्पत्ति सीमित होती है, इसलिए उसकी साख-योग्यता (credit worthiness) भी सीमित होती है। दूसरे, एकाकी व्यवसाय की गोपनीयता (secrecy) उधार या साख प्राप्त करने की दृष्टि से अच्छी नहीं होती। एकाकी व्यवसाय की आर्थिक स्थिति का जब तक बाहरी लोगों को सही और पूरा ज्ञान नहीं होगा तब तक वे एकाकी व्यवसाय के मालिक को उदारता के साथ साख नहीं देंगे। आधुनिक संयुक्त-पूंजी कम्पनियाँ अपने लेखों तथा स्थितियों का पूरा विवरण जनता के लिए प्रकाशित करती हैं, इससे लोगों को कम्पनी की आर्थिक स्थिति का पता चलता है और वे अधिक रुपया उधार देने को तैयार होते हैं।

(७) कम प्रतिस्पर्द्धा-शक्ति—एकाकी व्यवसाय छोटे पैमाने पर होता है, उसके पास सीमित पूंजी होती है तथा वह श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण तथा बड़े पैमाने के उत्पादन की बचतों से वंचित रहता है। ऐसी स्थिति में बड़ी इकाइयों के समक्ष उसकी प्रतियोगिता की शक्ति बहुत कम होती है।

(८) अनिश्चित जीवन-काल—जब तक व्यक्तिगत स्वामी स्वस्थ, क्रियाशील तथा जीवित है, एकाकी व्यवसाय चलता रहता है। परन्तु स्वामी के अस्वस्थ हो जाने या मर जाने पर व्यवसाय की हालत बिगड़ जाती है और जब तक उसके उत्तराधिकारी व्यवसाय को ठीक प्रकार न सम्हालें तो वह बन्द हो सकता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उत्तराधिकारी उतने ही योग्य तथा कुशल हों। प्रो० एल० एच० हैने (L. H. Haney) के अनुसार, 'प्रायः उत्तराधिकारियों में आवश्यक गुणों का अभाव होता है और व्यवसाय दूसरी या तीसरी पीढ़ी में कमजोर हाथों में पड़ जाता है।'[1]

निष्कर्ष—एकाकी स्वामित्व के अनेक दोष होते हुए भी यह प्रणाली समाप्त नहीं हुई है और भविष्य में भी जीवित रहेगी। इसका कारण यह है कि कृषि तथा अनेक कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योग ऐसे हैं जिनमें कम पूंजी लगती है तथा इनका स्वभाव एकाकी स्वामित्व के लिए अधिक उपयुक्त है।

साझेदारी
(PARTNERSHIP)

प्राक्कथन (Introduction)

आधुनिक युग में किसी व्यवसाय को चलाने के लिए अधिक पूंजी, अधिक निरीक्षण तथा निपुणता एवं विशिष्टीकरण की आवश्यकता पड़ती है। इन सब दृष्टियों से एकाकी स्वामित्व अत्यन्त अपर्याप्त है। एकाकी स्वामित्व के दोषों तथा सीमाओं ने साझेदारी को जन्म दिया।

साझेदारी का अर्थ (Meaning of Partnership)

एक साझेदारी व्यवसाय वह है जिस पर व्यक्तियों के एक छोटे वर्ग का स्वामित्व होता है। साझेदारी में दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर किसी व्यवसाय को चलाने का इकरार करते हैं। साझेदार मिलकर पूंजी की व्यवस्था करते हैं, व्यवसाय का संगठन और प्रबन्ध करते हैं तथा उसके लाभ-हानि में भाग लेते हैं। किम्बाल एवं किम्बाल (Kimball and Kimball) के अनुसार, "एक साझेदारी या फर्म, जैसा कि इसे कहा जाता है, व्यक्तियों का एक समूह है जिन्होंने किसी उपक्रम को चलाने के लिए पूंजी या सेवाओं का संयुक्त रूप में प्रयुक्त किया है।"[2]

साझेदारी को नियमित तथा नियन्त्रित करने के लिए देश में अधिनियम बनाये जाते हैं और इन अधिनियमों में साझेदारी को परिभाषित किया जाता है। भारतीय साझेदारी

---

[1] "But only too often the heirs are lacking in the requisite qualifications and business falls into weak hands in the second and or third generations."

[2] "A partnership or firm as it is often called is then a group of men who have joined capital or services for the prosecuting of some enterprise."

अधिनियम, १६३२ (Indian Partnership Act, 1932) के अनुसार, "साझेदारी उन व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को कहते हैं जो एक व्यवसाय के लाभ को आपस में बाँटने के लिए सहमत हुए हों व्यवसाय सभी व्यक्तियों द्वारा, या सभी की ओर से उनमें से किसी एक व्यक्ति द्वारा, चलाया जाता है।"[4]

साझेदारी के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् देशों में पृथक्-पृथक् नियम हैं। भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार, साझेदारी फर्म में कम से कम २ तथा अधिक से अधिक २० साझेदार हो सकते हैं। बैंकिंग संस्थाओं में अधिकतम संख्या १० रखी गयी है।

साझेदारी की विशेषताएँ या लक्षण (Characteristics of Partnership)

विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद साझेदारी की निम्न मुख्य विशेषताएँ निकलती हैं

(१) दो या दो से अधिक व्यक्ति साझेदार होते हैं। प्रत्येक देश में वहाँ के साझेदारी अधिनियम के अन्तर्गत अधिकतम व्यक्तियों की संख्या निश्चित कर दी जाती है। (२) यह आवश्यक नहीं है कि सभी व्यक्ति पूँजी को प्रदान करें। कोई भी साझेदार ऐसा हो सकता है जो पूँजी को बिलकुल न लगाये वरन् केवल अपनी योग्यता (ability) को प्रदान करे अर्थात् व्यवसाय का कुशलता से प्रबन्ध करे। इसके विपरीत, कुछ ऐसे साझेदार भी हो सकते हैं जो केवल पूँजी प्रदान करते हैं और व्यवसाय में स्वयं कार्य नहीं करते, ऐसे साझेदारों को निष्क्रिय साझेदार' ('inactive' or 'sleeping' partners) कहते हैं। (३) पूँजी लगाने के हिस्सों, लाभ हानि के हिस्सों, इत्यादि के सम्बन्ध में साझेदारों में इकरार (contract) होता है। (४) साझेदारी का उद्देश्य किसी व्यवसाय को चलाना तथा उससे लाभ कमाने का होता है। जनकल्याण या परोपकार के लिए की गयी साझेदारी को साझेदारों का व्यवसाय नहीं कहा जायेगा। (५) व्यवसाय का सचालन तथा प्रबन्ध सभी साझेदारों द्वारा या सबकी ओर से उनमें से किसी एक द्वारा किया जा सकता है। (६) असीमित साझेदारी (unlimited partnership) हो सकती है जिसमें प्रत्येक साझेदार का 'असीमित दायित्व' होता है। 'सीमित साझेदारी' (limited partnership) भी हो सकती है जिसमें साझेदारों का सीमित दायित्व होता है।

साझेदारी के लाभ (Advantages of Partnership)

(१) स्थापना की सुगमता—साझेदारी व्यवस्था की स्थापना सुगमता से हो जाती है क्योंकि इसमें बहुत कम वैधानिक उपचारों (formalities) का पालन करना पड़ता है। एकाकी व्यवसाय की अपेक्षा इसकी स्थापना में कुछ अधिक कठिनाई हो सकती है क्योंकि इसमें साझेदारों का चुनाव करना पड़ता है, साझेदारों में व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न बातों के सम्बन्ध में अनुबन्ध (contract) होता है, इत्यादि। परन्तु ये कोई बड़ी कठिनाइयाँ नहीं हैं। संयुक्त पूँजी कम्पनियों की अपेक्षा साझेदारी की स्थापना बहुत सरल होती है।

(२) अधिक पूँजी—साझेदारी व्यवसाय में अधिक पूँजी एकत्रित की जा सकती है। इसके कारण हैं (अ) कई साझेदारों के होने से अधिक पूँजी प्राप्त होती है, (ब) साझेदारों के असीमित दायित्व के कारण बाजार से अधिक साख या उधार पूँजी प्राप्त हो सकती है।

(३) अधिक कुशल प्रबन्ध—साझेदारी व्यवसाय में प्रबन्ध अधिक कुशल होता है। इसके मुख्य कारण निम्न हैं (अ) साझेदारों की योग्यताओं के अनुसार श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण हो जाता है। (ब) साझेदार निकट सम्पर्क में रहते हैं, इसलिए वे आवश्यक विषयों पर शीघ्र निर्णय ले सकते हैं। (स) असीमित दायित्व के कारण प्रत्येक साझेदार कार्य में अधिक रुचि लेता है तथा उनके द्वारा अविवेकपूर्ण (rash) निर्णय लेने की सम्भावना नहीं रहती। वास्तव में, सब साझेदार सोच समझकर एक सन्तुलित निर्णय ले सकते हैं। (द) प्रबन्ध में मितव्ययिता प्राप्त होती

[4] Partnership is the relation between persons who have agreed to share the profits of a business carried on by all or any of them acting for all."

है क्योंकि प्रबन्धकों की नियुक्ति नहीं करनी पड़ती और इस प्रकार उनके वेतन की बचत होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक साझेदार अधिक रुचि तथा लगन के साथ कार्य करके प्रत्येक प्रकार के अपव्यय का निराकरण करता है।

(४) कर्मचारियों से मधुर सम्बन्ध—साझेदारी व्यवसाय में कर्मचारियों की संख्या सीमित होती है, इसलिए कर्मचारियों और साझेदारों में मधुर सम्बन्ध रहते हैं।

(५) ग्राहकों से निकट सम्पर्क—साझेदारी व्यवसाय में उत्पत्ति का पैमाना बहुत बड़ा नहीं होता है, इसलिए ग्राहकों के साथ भी निकट सम्पर्क रहता है जो व्यवसाय की सफलता के लिए हितकर होता है।

(६) गोपनीयता—साझेदारी व्यवसाय के बहीखातों का ज्ञान केवल साझेदारों तक ही सीमित रहता है। फर्म की नीतियों, कार्यविधियों तथा भेदों को तब तक गोपनीय रखा जा सकता है जब तक कि साझेदारों में आपस में फूट न पड़ जाय।

(७) प्रजातन्त्रीय आधार पर सचालन—सभी साझेदारों को व्यवसाय में समान रूप से हस्तक्षेप करने का अधिकार होता है। महत्त्वपूर्ण कार्यों को सभी साझेदारों की राय से किया जाता है। अत यह कहा जा सकता है कि साझेदारी फर्म का सचालन प्रजातन्त्रीय आधार पर होता है।

(८) बड़े पैमाने की कुछ बचतों की प्राप्ति—अधिक पूँजी की व्यवस्था के कारण साझेदारी फर्म के उत्पादन का पैमाना बड़ा किया जा सकता है और बड़े पैमाने के उत्पादन की कई बचतों को प्राप्त किया जा सकता है, जैसे विशिष्ट मशीनों तथा यन्त्रों का प्रयोग, थोक में खरीदने के कारण सस्ती कीमत पर श्रेष्ठ कच्चे माल की प्राप्ति, इत्यादि।

(९) सहकारिता को प्रोत्साहन—व्यवसाय की सफलता के लिए साझेदारों को प्रेम तथा सहयोग से काम करना पड़ता है, जिससे सहकारिता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

(१०) सम्बन्ध विच्छेद की स्वतन्त्रता—कोई भी साझेदार उचित समझने पर फर्म से अलग हो सकता है।

(११) लोच—व्यापार की स्थितियों में परिवर्तन हो जाने पर साझेदारी फर्म को उनके अनुकूल किया जा सकता है। इसका कारण है कि साझेदारी फर्म में लालफीताशाही (red-tapism) नहीं होती तथा साझेदार शीघ्र निर्णय ले सकते हैं।

साझेदारी के दोष (Disadvantages of Partnership)

(१) असीमित दायित्व—असीमित दायित्व के कारण साझेदारों को बहुत जोखिम रहती है, प्राय वे सतर्क रहते हैं और उनकी नीति असाहसपूर्ण (unenterprising) हो जाती है। वे उचित जोखिमों (risks) को भी नहीं उठा पाते हैं और इस प्रकार लाभ को बढ़ाने के अवसरों को खो देते हैं। इसके अतिरिक्त एक खराब साझेदार सबको बर्बाद कर सकता है।

(२) कुशलता में कमी—कई साझेदारों के कारण व्यवसाय की कुशलता में कमी आ जाती है। (अ) दिन-प्रतिदिन के कार्यों में प्रत्येक साझेदार से परामर्श किया जाता है जिससे *निर्णय लेने में विलम्ब होता है। (ब) जब साझेदारों में मतभेद रहता है तो कार्यकुशलता में* कमी आ जाती है। यह मतभेद कभी-कभी दुश्मनी का रूप धारण कर लेता है। ऐसी स्थिति में फर्म की गोपनीय बातें प्रतियोगियों को मालूम पड़ जाती हैं जिससे फर्म को हानि हो सकती है। (स) व्यवसाय का उत्तरदायित्व सभी साझेदारों में बँटा होता है। व्यवहार में प्रत्येक साझेदार अपने उत्तरदायित्व को दूसरे पर टालने का प्रयत्न करता है। बँटा हुआ उत्तरदायित्व कोई भी उत्तरदायित्व नहीं रह जाता है। प्रो० हैने (Haney) के अनुसार, साझेदारी व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष केन्द्रीय सचालन की कमी है।

(३) सीमित पूँजी—(अ) एकाकी व्यवस्था की अपेक्षा इसमें पूँजी अधिक होती है। परन्तु व्यवसाय के पर्याप्त विकास के लिए पूँजी सीमित रहती है क्योंकि साझेदारों के वित्तीय साधन सीमित होते हैं। *संयुक्त पूँजी कम्पनियों की अपेक्षा साझेदारी व्यवस्था में पूँजी बहुत कम रहती है।*

(ब) साझेदारी फर्म के लेखों (accounts) को प्रकाशित तथा अंकेक्षित (audit) करना आवश्यक नहीं होता है। इस गोपनीयता के कारण लोगों को फर्म की आर्थिक स्थिति का ज्ञान नहीं होता, वे उसके प्रति सन्देह की दृष्टि रखते हैं। परिणामस्वरूप साझेदारी व्यवस्था में पूंजी उधार कम मिल पाती है।

(४) अनिश्चित अस्तित्व—साझेदारी व्यवस्था में अस्थायी तत्व (element of unstability) अधिक रहता है। किसी साझेदार के पागल, मृत्यु या दिवालिया हो जाने पर साझेदारी को समाप्त करना पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त विपरीत अनुबन्ध (contract) न होने पर, कोई भी साझेदार नोटिस देकर साझेदारी समाप्त कर सकता है।

निष्कर्ष—साझेदारी व्यवसाय के लाभों तथा दोषों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह उस दशा में उपयुक्त है जबकि व्यवसाय का पैमाना बहुत बड़ा न हो और साझेदारों में पारस्परिक सहयोग तथा प्रेम हो। बड़े पैमाने के उत्पादन तथा आधुनिक व्यवसायों और उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरा करने में साझेदारी असमर्थ है। ऐसी स्थिति में साझेदारी का स्थान संयुक्त पूंजी कम्पनियाँ ले लेती हैं।

संयुक्त पूंजी कम्पनी प्रणाली
(JOINT STOCK COMPANY SYSTEM)

प्राक्कथन (Introduction)

आधुनिक उत्पादन प्रायः बड़े पैमाने पर किया जाता है। इसमें बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों द्वारा नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में व्यावसायिक संगठन को संयुक्त पूंजी कम्पनी वाले रूप का आश्रय लेना पड़ता है। तीव्र औद्योगिक विकास की दृष्टि से आधुनिक औद्योगिक ढाँचे में संयुक्त पूंजी कम्पनी प्रणाली एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

संयुक्त पूंजी कम्पनी का अर्थ (Meaning of Joint Stock Company)

संयुक्त पूंजी कम्पनी व्यक्तियों का एक ऐच्छिक संघ है जो लाभ कमाने के उद्देश्य से बनायी जाती है। इसकी पूंजी हस्तान्तरणीय अंशों (transferable shares) में विभाजित की जाती है। इसका दायित्व सीमित होता है तथा इसका रजिस्ट्रेशन या समामेलन (incorporation) कम्पनी अधिनियम के अनुसार होता है। प्रो० एल० एच० हैने (Prof. L. H. Haney) के अनुसार, "संयुक्त पूंजी कम्पनी लाभ कमाने के उद्देश्य से व्यक्तियों का एक ऐच्छिक संघ है जिसकी पूंजी हस्तान्तरणीय अंशों में विभाजित होती है और जिनका स्वामित्व ही सदस्यता की शर्त होती है।"[5]

संयुक्त पूंजी कम्पनी को कुछ देशों (जैसे अमरीका) में कॉरपोरेशन (*Corporation*) भी कहते हैं। कारपोरेशन या संयुक्त पूंजी कम्पनी कानून का 'उत्पाद' (creation) है, इसलिए इसे 'कृत्रिम व्यक्ति' (artificial person) या 'वैधानिक व्यक्ति' (legal person) भी कहते हैं। वैधानिक दृष्टि से संयुक्त पूंजी कम्पनी को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है "संयुक्त पूंजी कम्पनी कानून द्वारा निर्मित एक ऐसा कृत्रिम व्यक्ति है जिसका अस्तित्व पृथक् हो तथा जिसका निरन्तर उत्तराधिकार (perpetual succession) हो और जिसकी एक सार्वमुद्रा (common seal) हो।"[6]

संयुक्त पूंजी कम्पनी की विशेषताएँ (Characteristics of Joint Stock Company)

संयुक्त पूंजी कम्पनी के अर्थ को भली प्रकार से समझने के लिए उसकी विशेषताओं को समझना आवश्यक है। मुख्य विशेषताएँ अग्र हैं

---

[5] "A joint stock company is a voluntary association of individuals for profit having a capital divided into transferable shares the ownership of which is the condition of membership."

[6] "Joint Stock Company is an artificial person created by law having a separate entity with a perpetual succession and a common seal."

(१) लाभ के लिए ऐच्छिक संघ (Voluntary association for profit)—कम्पनी व्यक्तियों का ऐच्छिक संघ है जो लाभ कमाने के उद्देश्य से बनायी जाती है। प्राप्त लाभ को निश्चित नियमों के अनुसार अंशधारियों में वितरित कर दिया जाता है।

(२) वैधानिक व्यक्ति (Legal person)—कानून के द्वारा कम्पनी को अपना अस्तित्व प्राप्त होता है। एक व्यक्ति की भाँति कम्पनी क्रय विक्रय कर सकती है, दूसरों पर मुकदमा चला सकती है या दूसरे लोग कम्पनी पर मुकदमा चला सकते हैं, इसलिए कम्पनी को 'कानून द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति' (An artificial person created by law) या केवल 'वैधानिक व्यक्ति' (legal person) कहते हैं।

(३) पृथक् वैधानिक अस्तित्व (Separate legal existence)—कानून के परिणामस्वरूप कम्पनी का अस्तित्व उसके स्वामियों तथा सदस्यों से पृथक् होता है। इसके विपरीत एकाकी या साझेदारी व्यवसाय का अस्तित्व स्वामी या स्वामियों के अस्तित्व से जुड़ा रहता है, उससे पृथक् नहीं किया जा सकता। कम्पनी पर मुकदमा चलने पर या कम्पनी द्वारा दूसरों पर मुकदमा चलाने पर या कम्पनी द्वारा कोई अन्य कार्यवाही करने पर उसके सदस्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार कम्पनी का एक पृथक् वैधानिक अस्तित्व होता है, उसके सदस्य उससे पृथक् माने जाते हैं।

(४) सीमित दायित्व (Limited Liability)—कम्पनी में सदस्यों का दायित्व अंशों में लगायी गयी पूँजी तक ही सीमित रहता है। इस प्रकार सदस्यों का दायित्व सीमित होता है।

(५) हस्तान्तरणीय अंश (Transferable shares)—कम्पनी के अंश बड़ी सुगमता से एक सदस्य द्वारा दूसरे सदस्य या व्यक्ति को बेचे या हस्तान्तरित किये जा सकते हैं।

(६) निरन्तर उत्तराधिकार (Perpetual succession)—कुछ सदस्य कम्पनी को छोड़ सकते हैं, कुछ अन्य सदस्यों की मृत्यु हो सकती है तथा नये व्यक्ति कम्पनी के सदस्य बन सकते हैं। सदस्यों के इस निरन्तर आवागमन का कम्पनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसका अस्तित्व निरन्तर बना रहता है। इस प्रकार कम्पनी शाश्वत (*eternal*) होती है।

(७) सार्वमुद्रा (Common seal)—वैधानिक व्यक्ति होने के कारण कम्पनी एक सार्व-मुद्रा रखती है। इस सार्वमुद्रा पर कम्पनी का नाम अंकित होता है। यह कम्पनी के अधिकारयुक्त हस्ताक्षर (official signature) का कार्य करती है।

(८) प्रतिनिधि प्रबन्ध (Representative management)—कम्पनी का प्रबन्ध कुछ चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है, वे कम्पनी के संचालक कहे जाते हैं।

(९) कानून द्वारा अस्तित्व का अन्त (End of existence by law)—कम्पनी को अपना अस्तित्व कानून द्वारा प्राप्त होता है, इसलिए उसका स्वतः अन्त नहीं हो सकता। कम्पनी का अन्त या समापन (winding-up) भी कानून द्वारा वैधानिक रूप में किया जाता है।

संयुक्त पूँजी कम्पनी निर्माण (*Formation of Joint Stock Company*)

एक कम्पनी के निर्माण में कई अवस्थाएँ (stages) होती हैं। निर्माण की अवस्थाएँ निम्न हैं

(१) प्रवर्तन की अवस्था (Stage of promotion)—सर्वप्रथम एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के मस्तिष्क में किसी व्यवसाय को चलाने के लिए एक कम्पनी की स्थापना का विचार आता है। कम्पनी का वैधानिक अस्तित्व प्रदान कराने तथा उसके कार्य को प्रारम्भ कराने वाली क्रियाओं को प्रवर्तन (promotion) कहते हैं या जो व्यक्ति इन क्रियाओं को पूरा कराते हैं वे 'प्रवर्तक' (promoters) कहे जाते हैं। प्रवर्तक व्यवसाय की योजना बनाते हैं, उसका विस्तार-पूर्वक निरीक्षण करते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञों की मदद लेते हैं, विभिन्न साधनों को एकत्र करते हैं, व्यवसाय की वित्तीय योजना बनाते हैं अर्थात् सही-सही पूँजी का अनुमान लगाते हैं, बैंकों व व्यापारियों को निमन्त्रित करते हैं, अभिगोपकों (underwriters) तथा बैंकों से अनुबन्ध (contract) करते हैं।

(२) **समामेलन की अवस्था** (Stage of incorporation)—इसके अन्तर्गत कम्पनी के लिए वैधानिक अस्तित्व प्राप्त किया जाता है। कम्पनी के वैधानिक अस्तित्व के लिए 'समामेलन प्रमाण-पत्र' (certificate of incorporation) प्राप्त किया जाता है तथा इसके लिए आवश्यक कानूनी कार्यवाही करनी पडती है। वास्तव म, समामेलन प्रवर्तन का ही एक भाग है। 'समामेलन प्रमाण-पत्र' प्राप्त करने के लिए प्रलेख (documents) तैयार किये जाते हैं। मुख्य प्रलेख है (i) पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association), (ii) पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association), तथा (iii) प्रविवरण (Prospectus)। इनके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार कुछ अन्य प्रकार के प्रलेख भी तैयार किये जाते हैं।

पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) मे कम्पनी का नाम, मुख्य कार्यालय का स्थान, अश पूँजी, कम्पनी के उद्देश्य, इत्यादि का विवरण होता है। पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की दशा में कम के कम व्यक्तियो तथा प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी की दशा म कम से कम २ व्यक्तियो द्वारा पार्षद सीमानियमो पर हस्ताक्षर किये जाने चाहिए। पार्षद अन्तर्नियमो (Articles of Association) म कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध के सम्बन्ध मे बनाये गये नियमो का उल्लेख होता है। इस प्रलेख पर उन व्यक्तियो को हस्ताक्षर करने पडते हैं जिन्होंने पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर किये हैं। **सचालकों की एक सूची** (list of directors), जिसम सचालक के नाम, पते इत्यादि होते है, तैयार की जाती है। **एक प्रविवरण** (prospectus) तैयार किया जाता है, प्राइवेट कम्पनी की दशा म इसकी आवश्यकता नही पडती। इन सबके अतिरिक्त कुछ उद्योगो के लिए लाइसेन्स भी लेना पडता है। भारत मे 'उद्योग (विकास एव नियमन) अधिनियम, १९५१' के अन्तर्गत एक निर्धारित फार्म भरकर वाणिज्य एव उद्योग मन्त्रालय से लाइसेन्स लेना पडता है।

उपर्युक्त विभिन्न प्रलेखो या प्रपत्रो को रजिस्ट्रार के पास उचित स्टाम्प, नियत समामेलन फीस, इत्यादि के साथ भेज दिया जाता है। यदि रजिस्ट्रार उपयुक्त विवरण से सन्तुष्ट होता है तो वह उसका रजिस्ट्रेशन करता है और अपने हस्ताक्षर तथा अपने कार्यालय की सील के अन्तर्गत 'समामेलन का प्रमाण पत्र' (certificate of incorporation) दे देता है। इसके प्राप्त हो जाने से कम्पनी का वैधानिक अस्तित्व हो जाता है।

(३) **पूँजी प्राप्त करने की अवस्था** (Stage of arranging capital)—'समामेलन का प्रमाण-पत्र' प्राप्त करने के बाद कम्पनी के प्रवर्तक जनता मे शेयरो को बेचकर पूँजी प्राप्त करते हैं। शेयर मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है 'अधिमान शेयर' (Preference share), तथा 'सामान्य शेयर' (Ordinary share)। **अधिमान हिस्सेदारो** (Preference shareholders) को लाभाश सामान्य हिस्सेदारो की अपेक्षा पहले प्राप्त होता है। इनको लाभाश एक निश्चित दर पर दिया जाता है, यदि कम्पनी को अधिक लाभ प्राप्त होता है तो भी इनको लाभाश उसी निश्चित दर पर दिया जायेगा। प्राय अधिमान हिस्से सचयी (cumulative) होते हैं अर्थात् यदि किसी वर्ष कम्पनी को कम लाभ प्राप्त होता है और इसलिए अधिमान हिस्सेदारो को लाभाश निश्चित दर पर नही दिया जाता तो उस वर्ष का शेष लाभाश उन्हे दूसरे वर्ष दे दिया जायेगा। अधिमान हिस्सेदारो को एक दूसरा लाभ यह है कि कम्पनी के समापन (winding-up or liquidation) की अवस्था मे अधिमान हिस्सेदारो को सामान्य की अपेक्षा पहले पूँजी वापस की जायेगी। स्पष्ट है कि उपर्युक्त अधिमानो के कारण इनको 'अधिमान शेयर' कहते हैं। **सामान्य हिस्सेदारों** (Ordinary shareholders) को कम्पनी के लाभ के अनुसार लाभाश दिया जाता है, यदि कम्पनी को अधिक लाभ होता है तो उन्हें अधिक लाभाश मिलेगा। इसके विपरीत, यदि कम्पनी को हानि होती है तो उन्हें कोई लाभाश उस वर्ष मे नही मिलेगा। सामान्य हिस्सेदारो को कम्पनी के सचालको को चुनने और वार्षिक बैठकों मे विभिन्न निर्णय को लेने का अधिकार होता है। कम्पनी के समापन होने पर सबसे बाद मे सामान्य हिस्सेदारो को पूंजी वापस दी जाती है, पहले कर्जदारो, ऋणपत्रधारियो तथा अधिमान हिस्सेदारो को पूँजी वापस की जाती है।

कम्पनी पूंजी को केवल अंश (shares) द्वारा ही प्राप्त नहीं करती वरन् ऋणपत्रों (debentures) द्वारा भी प्राप्त करती है। ये ऋणपत्र दीर्घकालीन ऋण को बताते हैं, कम्पनी द्वारा इनका भुगतान १०-२० साल के बाद किया जाता है। ऋणपत्रधारियों को कम्पनी प्रति वर्ष एक निश्चित दर से ब्याज देती है चाहे कम्पनी को लाभ हो या लाभ न हो। स्पष्ट है कि ऋणपत्रधारी, अंशधारियों (shareholders) की भांति कम्पनी के स्वामी या सदस्य नहीं होते, उनका कम्पनी के प्रबन्ध तथा नीति में कोई हाथ नहीं होता, वे तो कम्पनी के केवल लेनदार (creditors) होते हैं।

कम्पनी की पूंजी को निम्न वर्गों में बांटा जाता है **अधिकृत या रजिस्टर्ड या अभिहित पूंजी** (Authorised or registered or nominal capital) अधिकतम पूंजी होती है जिसको कम्पनी एकत्रित करने के लिए अधिकृत होती है। **निर्गमित पूंजी** (issued capital) अंश पूंजी (share capital) का वह भाग है जिसकी पूर्ति के लिए जनता को आमन्त्रित किया जाता है। **अभिदत्त पूंजी** (subscribed capital) अंश पूंजी का वह भाग है जो वास्तव में जनता को बिक जाता है। **प्रदत्त पूंजी** (paid up capital) उस धन को बताती है जिसका अंशधारियों ने वास्तव में भुगतान कर दिया है। **याचित पूंजी** (called-up capital), प्रायः अंशधारियों से क्रय किये गये अंशों की समस्त पूंजी एक बार में नहीं ली जाती है, उसका कुछ भाग तुरन्त ले लिया जाता है और कुछ बाद के लिए छोड़ दिया जाता है। अंशधारियों से बाद में मांगी जाने वाली पूंजी को 'याचित पूंजी' कहते हैं।

(४) *व्यवसाय प्रारम्भ करने की अवस्था तथा प्रबन्ध* (Stage of starting business and management)—अन्त में, रजिस्ट्रार इस बात की पुष्टि करके कि सभी आवश्यक दशाओं की पूर्ति हो गयी है, 'व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र' (Certificate of Commencement of Business) निर्गमित कर देता है। इस प्रकार कम्पनी का व्यवसाय प्रारम्भ हो जाता है।

कम्पनी का प्रबन्ध लोकतान्त्रिक ढंग पर होता है। सैद्धान्तिक रूप से कम्पनी का स्वामित्व तथा प्रबन्ध अंशधारियों के हाथ में होता है। अंशधारी, वार्षिक सामान्य सभा में, स्वयं या अपने प्रतिनिधियों द्वारा वोट देकर अपने में से संचालकों की नियुक्ति करते हैं। ये संचालक कम्पनी के दिन प्रतिदिन के कार्यों को करते हैं। प्रति वर्ष सामान्य सभा में, कम्पनी से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण बातों, जैसे—आगामी वर्षों की नीति का निर्धारण, लेखों की स्वीकृति, आगामी वर्ष के लिए संचालकों का निर्धारण इत्यादि को निश्चित किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से कम्पनी का प्रबन्ध लोकतान्त्रिक नहीं रह जाता क्योंकि प्रायः अंशधारियों का एक छोटा-सा प्रभावशाली वर्ग सारी सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित करने में सफल होता है।

संयुक्त पूंजी कम्पनी तथा साझेदारी में तुलना (Comparison of Joint Stock Company and Partnership)

(१) साझेदारी फर्म में केवल थोड़े से ही व्यक्ति होते हैं जबकि संयुक्त पूंजी कम्पनी में सैकड़ों तथा हजारों व्यक्ति हिस्सेदार होते हैं।

(२) साझेदारी में असीमित दायित्व होता है जबकि संयुक्त पूंजी कम्पनी में दायित्व सीमित होता है अर्थात् कम्पनी के हिस्सेदारों का दायित्व उनके द्वारा खरीदे गये हिस्सों के मूल्य तक ही सीमित रहता है।

(३) संयुक्त पूंजी कम्पनी में स्वामित्व (ownership) तथा प्रबन्ध (control) में पृथक्कीकरण (separation) होता है अर्थात् कम्पनी का स्वामित्व तो अंशधारियों में निहित होता है परन्तु उसका वास्तविक प्रबन्ध संचालकों के बोर्ड द्वारा होता है। इसके विपरीत साझेदारी में स्वामित्व तथा प्रबन्ध साथ साथ रहते हैं, उनमें पृथक्कीकरण नहीं होता, व्यवसाय के स्वामी अर्थात् साझेदार स्वयं ही उसका प्रबन्ध तथा नियन्त्रण करते हैं।

(४) साझेदारी अस्थायी होती है, किसी भी एक साझेदार के अलग होने से साझेदारी फर्म टूट जाती है। इसके विपरीत संयुक्त पूंजी कम्पनी में एक या कुछ अंशधारियों के अलग हो

जाने से या कुछ नये अंशधारियों के प्रवेश करने से कम्पनी नहीं टूटती, वह निरन्तर कार्य करती रहती है। इसलिए यह कहा जाता है कि संयुक्त पूँजी कम्पनी शाश्वत (eternal) होती है।

संयुक्त पूँजी कम्पनी के लाभ (Advantages of Joint Stock Company)

संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली का आधुनिक औद्योगिक ढाँचे में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण है इसके लाभ। इसके मुख्य लाभ निम्न हैं

(१) अधिक मात्रा में पूंजी की प्राप्ति (Availability of capital in large amount)—संयुक्त पूँजी कम्पनी अन्य व्यावसायिक प्रारूपों की अपेक्षा, अपने व्यवसाय को सुचारु रूप से चलाने के लिए बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी एकत्रित कर सकती है। इसके मुख्य कारण हैं :

(i) पब्लिक कम्पनी में अंशधारियों की अधिकतम संख्या पर रोक नहीं होती है। हजारों की संख्या में अंशधारी हो सकते हैं। अधिक अंशधारियों के होने से पूँजी अधिक मात्रा में प्राप्त की जा सकेगी (ii) कम्पनी का दायित्व सीमित होता है इसलिए अधिक लोग अपनी पूँजी विनियोग करने को तत्पर रहते हैं। (iii) कम्पनी के अंश प्रत्येक जेब के अनुकूल होते हैं (Company's shares suit every pocket)। कम्पनी के अंश छोटी तथा बड़ी राशियों (denominations) के होते हैं। परिणामस्वरूप कम आय वाले तथा धनवान, सभी प्रकार के व्यक्ति अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार अंश को खरीद कर पूँजी प्रदान कर सकते हैं। (iv) इस प्रकार संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ यत्र तत्र बिखरी हुई जनता की अल्प बचतों को एकत्रित करती हैं और लोगों में बचत की आदत को प्रोत्साहित करती हैं। (v) कम्पनी के अंश सभी स्वभाव के व्यक्तियों के लिए अनुकूल होते हैं (Company's shares suit persons of all temperaments)। कम्पनी विभिन्न प्रकार के अंश बनाकर जोखिमों का श्रेणीकरण (gradation of risks) कर देती है जिससे कम और अधिक जोखिम उठाने वाले सभी स्वभाव के व्यक्ति अंशों को खरीद सकते हैं।[7] (vi) अंश हस्तांतरण (transferable) होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर शेयर बाजार में उनको बेचकर अंशधारी कभी भी नकद रुपया प्राप्त कर सकता है।

(२) बड़े पैमाने पर उत्पादन (Production on large scale)—अधिक पूंजी की प्राप्ति के कारण कम्पनी में प्राय बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है। परिणामस्वरूप आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त की जा सकती हैं, नवीनतम मशीनों और आधुनिकतम रीतियों का प्रयोग किया जाता है तथा विवेकीकरण को अपनाया जा सकता है। इन सब बातों के कारण उत्पादन लागत कम होती है और उत्पादित वस्तु कम कीमत पर उपभोक्ताओं को प्राप्त होती है।

(३) कुशल प्रबन्धक (Efficient management)—संयुक्त पूंजी कम्पनी प्रणाली में स्वामित्व (ownership) तथा प्रबन्ध (management) का पृथक्करण होता है। इसके कारण प्रबन्ध की कुशलता बढ़ती है। बहुत से धनवान व्यक्ति किसी व्यवसाय के स्वामी हो सकते हैं अर्थात् बड़ी मात्रा में धन लगा सकते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वे योग्य तथा कुशल प्रबन्धक भी हों, इसी प्रकार बहुत से व्यक्ति योग्य प्रबन्धक हो सकते हैं परन्तु उनके पास व्यवसाय चलाने के लिए धन नहीं होता। कम्पनी प्रणाली इन दोनों वर्गों को मिलाती है, अर्थात् पूंजी तथा व्यवसाय योग्यता का साथ कराती है (it brings capital and business ability together), और इस प्रकार प्रबन्धक को अधिक कुशल बनाती है। स्पष्ट है कम्पनी में योग्य, अनुभवी तथा ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों की सेवाओं को प्रयुक्त करके वैज्ञानिक प्रबन्ध के लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।

---

[7] उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति अधिक जोखिम उठा सकते हैं वे साधारण अंश (ordinary shares) खरीद सकते हैं क्योंकि इन पर कम्पनी के लाभ-हानि की स्थिति के अनुसार लाभांश की दर बदलती रहती है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति कम जोखिम को उठाना चाहते हैं वे अधिमान अंशों (preferential shares) को खरीद सकते हैं क्योंकि इन पर एक निश्चित दर से लाभांश मिलता रहता है। इसी प्रकार ऋणपत्रों (debentures) को खरीदने में भी बहुत कम जोखिम रहती है। कम्पनी को समाप्त करने पर ऋणपत्रधारियों तथा अधिमान-अंशधारियों को पहले रुपया वापस दिया जायेगा।

(४) लोकतान्त्रिक आधार पर सगठन (Organisation on democratic basis)—कम्पनी का सगठन तथा प्रबन्ध सदस्या अर्थात् अशधारियों के प्रतिनिधियो, जिन्हें टेक्नीकल रूप में (technically) सचालक (directors) कहते हैं, द्वारा होता है। कम्पनी के विधान के अन्तर्गत अशधारियों को सचालकों को नियुक्त करने या निकालने के पूरे अधिकार होते हैं। परन्तु व्यवहार मे प्राय सारी सत्ता थोड़े-से प्रभावशाली अशधारियो के हाथों मे केन्द्रित हो जाती है।

(५) औद्योगिक अनुसन्धान (Industrial research)—पूँजी की पर्याप्त मात्रा मे प्राप्ति तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण औद्योगिक अनुसन्धान को बहुत प्रोत्साहन मिलता है।

(६) नये जोखिमों को उठाना आसान (Easier to undertake new risks)—कम्पनी मे विनियोक्ताओ (investors) का दायित्व सीमित होता है, इसलिए साहसी नये जोखिमों को उठाने के लिए प्रोत्साहित होते हैं और इस प्रकार बहुत-से नये उद्योगो की स्थापना होती है।

(७) निरन्तर अस्तित्व (Perpetual existence)—कम्पनी का अस्तित्व, अन्य व्यावसायिक प्रारूपों की अपेक्षा, अधिक स्थायी होता है। कुछ अशधारी कम्पनी को छोड़ सकते हैं तथा कुछ नये अशधारी कम्पनी मे आ सकते हैं, परन्तु अशधारियों के आवागमन का कम्पनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह निरन्तर कार्य करती रहती है। स्थायी अस्तित्व के कारण कम्पनी दीर्घकालीन अनुबन्ध (contracts) कर सकती है तथा दीर्घकालीन योजनाओं को कार्यान्वित कर सकती है।

संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली के दोष (Disadvantages of Joint Stock Company)

(१) स्थापना कठिन (Difficult to float a company)—संयुक्त पूँजी कम्पनी की स्थापना के लिए कई वैधानिक उपचारों (formalities) का पालन तथा अनेक वैधानिक उलझनों का सामना करना पड़ता है। इसलिए साधारण व्यक्तियों के लिए कम्पनी की स्थापना कठिन होती है, जबकि एकाकी या साझेदारी व्यवसायों को एक अशिक्षित तथा साधारण व्यक्ति भी सुगमता से स्थापित कर सकता है।

(२) नियन्त्रण या प्रबन्ध का केन्द्रीयकरण (Concentration of control)—कम्पनी का सचालन तथा प्रबन्ध केवल नाम के लिए लोकतान्त्रिक होता है। व्यवहार मे नियन्त्रण तथा प्रबन्ध की सत्ता कुछ थोड़े-से प्रभावशाली अशधारियो के हाथों मे केन्द्रित हो जाती है। ऐसा होने के मुख्य कारण निम्न हैं

(i) अशधारी बहुत अधिक सख्या में होते हैं तथा वे देश में यत्र-तत्र बिखरे रहते हैं। ऐसी स्थिति मे वे एक होकर सचालकों तथा प्रबन्धकों की नियुक्ति को उचित दिशा मे प्रभावित नहीं कर पाते। (ii) अधिकांश अशधारी प्रबन्ध मे कोई रुचि नहीं लेते क्योंकि न उनके पास समय होता है और न योग्यता। वे तो केवल लाभाश प्राप्त करने मे रुचि रखते हैं। ऐसी स्थिति मे थोड़े-से व्यक्ति सचालन तथा प्रबन्ध अपने हाथो मे केन्द्रित करने में सफल हो जाते हैं। (iii) व्यवहार मे एक कम्पनी दूसरी कम्पनी पर तथा दूसरी कम्पनी तीसरी कम्पनी पर अधिकार प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार कुछ व्यक्तियो या सचालकों के हाथ मे कई कम्पनियाँ आ जाती हैं। इस प्रवृत्ति को 'स्तूपीकरण' (pyramiding) कहते हैं, इसके कारण थोड़े-से व्यक्तियों के हाथो मे आर्थिक सत्ता तथा प्रबन्ध हो जाता है। (iv) प्राय प्रबन्ध अभिकर्ता अपने प्रभाव के कारण सचालक मण्डल मे अधिकांश सचालक अपने ही व्यक्ति नियुक्त करा लेते हैं। ये प्रबन्ध अभिकर्ता सामान्य अशधारियो को अपने अधिकारों का उचित प्रयोग नहीं करने देते हैं।

(३) सचालकों द्वारा शोषण (Exploitation by directors)—आर्थिक शक्ति तथा प्रबन्ध का केन्द्रीयकरण हो जाने से सचालक विभिन्न प्रकार से विनियोक्ताओ का शोषण करते हैं। (i) अशधारियों के हितों का ध्यान न रखकर सचालक अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। वे अपने लिये अधिक वेतन, कमीशन तथा पुरस्कार (perquisites) निर्धारित कर लेते हैं। (ii) सचालक आर्थिक धोखेबाजियों (economic frauds) द्वारा भी विनियोक्ताओं का शोषण करते हैं। कभी-कभी वे कम्पनी की अवस्था बिगड़ने की गलत सूचना फैलाकर कम्पनी के अशो की कीमतें

गिरा देते हैं और बाद में अंशों को बड़ी मात्रा में स्वयं खरीद लेते हैं। इसी प्रकार की अन्य धोखेबाजियों से लोगों का शोषण किया जाता है।

(४) प्रबन्ध में ढिलाई (Laxity in management)—कम्पनी प्रणाली में कई कारणों से प्रबन्ध में ढिलाई आ जाती है जिससे उत्पादन कुशलता गिरती है। प्रबन्ध की कुशलता में कमी के मुख्य कारण निम्न हैं

(i) कम्पनी के संचालक तथा प्रबन्धक अपने स्वार्थ की पूर्ति में व्यस्त रहते हैं उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि सामान्य अंशधारियों को उचित लाभ मिले। इन दोनों वर्गों के हितों में प्राय संघर्ष रहता है। प्रबन्ध प्राय अपव्ययपूर्ण (wasteful) रहता है। (ii) कम्पनी का दायित्व सीमित रहता है तथा संचालक और प्रबन्धक दूसरे के रुपयों पर खेलते हैं। वे कभी-कभी अविवेकपूर्ण कार्य (rash enterprises) कर बैठते हैं जिससे कम्पनी अर्थात् अंशधारियों को बहुत हानि उठानी पड़ती है। (iii) कम्पनी प्रणाली में प्रबन्धकों को आवश्यक बातों को पहले संचालकों के समक्ष रखना पड़ता है और तब वे उन पर निर्णय ले पाते हैं। संचालकों की सभा निश्चित समयों पर ही होती है, इससे निर्णय में देरी होती है। परिणामस्वरूप प्रबन्ध में ढिलाई आती है और उत्पादन कुशलता में कमी। (iv) संचालकों तथा प्रबन्धकों का चुनाव योग्यता के आधार पर नहीं होता है। वे लोग प्राय दूसरी कम्पनियों के संचालकों तथा प्रबन्धकों के रिश्तेदार होते हैं या धनवान व्यक्ति होते हैं या प्रभावशाली डाक्टर तथा वकील होते हैं जिनको प्रबन्ध का कोई अनुभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्रबन्ध की कुशलता में कमी आती है।

(५) रुचि, पहलपन तथा उपक्रम में कमी (Loss of interest, initiative and enterprise)—कम्पनी प्रणाली में स्वामित्व तथा प्रबन्ध का पृथक्कीकरण हो जाता है। परिणामस्वरूप प्रबन्धकों में, जो स्वामी नहीं होते, कार्य में अधिक रुचि तथा लगन नहीं होती, वे नये और उचित जोखिमों को उठाकर कम्पनी के लाभ को बढ़ाने के प्रति लापरवाह या उदासीन रहते हैं, उन्हें अपने वेतन से मतलब रहता है। कम्पनी कार्य निश्चित नियमों (set rules) के अनुसार चलता है और कम्पनी स्थैतिक (static) हो जाती है। इस प्रकार लगन, पहलपन तथा उपक्रम में कमी आती है।

(६) गोपनीयता का अभाव (Loss of secrecy)—एकाकी व्यवसाय, साझेदारी या अन्य व्यावसायिक रूपों की अपेक्षा कम्पनी प्रणाली में गोपनीयता बहुत कम होती है। कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पब्लिक कम्पनी को अपने वार्षिक हिसाब किताब को प्रकाशित करना पड़ता है तथा प्रलेखों की प्रतियाँ रजिस्ट्रार के यहाँ भेजनी पड़ती है। इस प्रकार बहुत कम गोपनीयता रह जाती है और यह कमी भी व्यवसाय के लिए अधिक हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

(७) अंशों में सट्टेबाजी (Speculation in shares)—कम्पनियों के अंश हस्तान्तरणीय होते हैं और उनका क्रय विक्रय स्टाक एक्सचेंजों में होता है। संचालक कम्पनी के अंशों में प्राय सट्टे की दृष्टि से विनियोग करते है, इस सट्टेबाजी से कम्पनी को कभी-कभी बहुत हानि उठानी पड़ती है।

(८) बड़े पैमाने के उत्पादन के दोष (Defects of large scale production)—कम्पनी प्रणाली में उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। इसलिए बड़े पैमाने के लगभग सभी दोष पाये जाते हैं, जैसे श्रमिक कल्याण की उपेक्षा, श्रमिकों तथा प्रबन्धकों में संघर्ष, इत्यादि।

(९) एकाधिकार की ओर प्रवृत्ति (Tendency towards monopoly)—बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ मिलकर छोटे तथा मध्यम उत्पादकों को प्रतियोगिता द्वारा क्षेत्र से निकाल देती हैं। इस प्रकार एकाधिकार का भय सदा बना रहता है। एकाधिकार स्थापित हो जाने से ऊँचे मूल्यों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण होता है।

(१०) राजनीतिक भ्रष्टाचार (Political corruption)—कम्पनी प्रणाली में देश के राजनीतिक जीवन में भ्रष्टाचार फैलता है। कम्पनियों के संचालक राज्य अधिकारियों संसद सदस्यों तथा राजनीतिक दलों के उच्च नेताओं को रिश्वत देकर कानूनों तथा कार्यवाहियों को

अपने अनुकूल बनवाने का प्रयत्न करते हैं। वे राज्य अधिकारियों को बड़ी मात्रा में रिश्वत देकर राज्य की वाणिज्य सम्बन्धी नीतियों तथा बातों को मालूम करने का प्रयत्न करते हैं।

निष्कर्ष—वास्तव में, संयुक्त पूंजी कम्पनियों के लाभ उनकी हानियों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त अधिकांश दोषों का सरकार के उचित नियन्त्रण द्वारा एक बड़ी सीमा तक दूर किया जा सकता है। कम्पनी प्रणाली देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास को प्रेरित करती है। वास्तव में, आधुनिक युग में एक देश की औद्योगिक तथा आर्थिक उन्नति संयुक्त पूंजी कम्पनी प्रणाली के उचित विकास पर ही निर्भर करती है।

सहकारिता
(CO-OPERATION)

प्राक्कथन (Introduction)

विख्यात नोर्वेजियन नाटककार इबसेन (Norwegian dramatist Ibsen) ने व्यक्ति तथा समाज के बीच संघर्ष (conflict) को इन शब्दों में व्यक्त किया था "व्यक्तित्व को दबाइए तो आपका कोई जीवन नहीं है। व्यक्तित्व को पूर्ण स्वतन्त्रता दीजिए तो आपको अस्तव्यस्तता तथा युद्ध मिलेगा।"[8] सहकारिता इस संघर्ष का उत्तर है। यह व्यक्तित्व तथा सामाजिक सुरक्षा में पूर्ण सामंजस्य (synthesis) है। सहकारिता में ही मानवता को यह अनुभव होगा कि जनतन्त्र (democracy) तथा सुरक्षा (security) असंगत नहीं हैं वरन् वे मनुष्य के अस्तित्व रूपी सिक्के के प्रतिवर्ती पक्ष (reverse sides) हैं।[9]

सहकारिता का अर्थ (Meaning of Co-operation)

सहकारिता व्यवसाय या संगठन का वह रूप है जिसमें व्यक्ति ऐच्छिक रूप से सामान्य आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आपस में मिलकर कार्य करते हैं। कैलवर्ट (H Calvert) ने सहकारिता को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है "सहकारिता संगठन का एक रूप है जिसमें व्यक्ति मनुष्य की भांति ऐच्छिक रूप से बराबरी के आधार पर अपने आर्थिक हितों की वृद्धि के लिए मिलते हैं।"[10]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि सहकारिता की निम्न विशेषताएं (characteristics) हैं

(१) ऐच्छिक संगठन (Voluntary association)—सहकारिता संगठन में व्यक्तियों का मिलना (association) ऐच्छिक होता है, किसी प्रकार की अनिवार्यता नहीं होती। अपनी स्वेच्छा से व्यक्ति एक सहकारी समिति के सदस्य हो सकते हैं या उसकी सदस्यता छोड़ सकते हैं।

(२) यह मनुष्यों का संगठन (association of human beings as such) होता है न कि पूंजी का।

(३) समानता (Equality)—इसमें प्रत्येक व्यक्ति समानता के आधार पर मिलता है। 'एक व्यक्ति, एक वोट' के सिद्धान्त का पालन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इसका संगठन जनतन्त्र के आधार पर होता है।

(४) सहकारिता का उद्देश्य सदस्यों के सामान्य आर्थिक हित की वृद्धि (promotion of common economic interest) करना होता है।

(५) स्वयं सहायता (Self help)—आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति अकेले अपनी आर्थिक आवश्यकताओं (economic needs) की पूर्ति नहीं कर सकते हैं। इसलिए वे आपस में संगठित

---

[8] "Suppress individuality and you have no life Grant individuality and you have chaos and war"

[9] "Co-operation provides the answer to the above conflict It is a complete synthesis between individualism and social security *In co-operation humanity would discover* that democracy and security are not incompatible but are the reverse sides of the coin of man's existence

[10] Co operation is "a form of organisation where n persons voluntarily associate together as human beings on a basis of equality for the promotion of economic interests of themselves."

र पारस्परिक सहयोग द्वारा अपनी सहायता स्वयं करते हैं। मत. होरेस प्लन्केट (Horace Plunkett) का मत है कि "संगठन द्वारा सार्थक की गयी स्वयं-सहायता" ही सहकारिता है (Co-operation is 'self-help rendered effective by organisation")। सहकारिता न केवल आर्थिक हित की पूर्ति के साथ मनुष्य के चरित्र के गुणों, जैसे—ईमानदारी, सहयोग की भावना, पारस्परिक-सहायता, इत्यादि पर भी बहुत बल दिया जाता है।

सहकारी उपक्रम के मुख्य प्रकार (Main Kinds of Co-operative Enterprise)

सहकारी उपक्रम कई प्रकार के होते हैं। कमजोर (weak) तथा आवश्यकताग्रस्त (needy) व्यक्ति आपस में मिलकर किसी भी क्षेत्र में सहकारी समिति स्थापित कर सकते हैं। मुख्य सहकारी उपक्रम निम्न हैं

(१) उत्पादक सहकारिता (Producer's Co-operatives), (२) उपभोक्ता सहकारिता (Consumer's Co-operatives), (३) साख सहकारिता (Credit Co-operatives)। इन तीन मुख्य प्रकार के सहकारी उपक्रमों के अतिरिक्त किसी भी क्षेत्र में सहकारिता का प्रयोग किया जा सकता है, यातायात सहकारिता, गृह निर्माण सहकारिता, विक्रय सहकारिता, बीमा सहकारिता, इत्यादि। नीचे हम केवल तीन प्रमुख सहकारी संगठनों की संक्षेप में विवेचना करते हैं।

उत्पादक सहकारिता (Producer's Co-operatives)

इस प्रकार की सहकारिता में श्रमिक स्वयं व्यवसाय के मालिक होते हैं, या व्यवसाय के मालिक स्वयं अपना श्रम भी प्रदान करते हैं अर्थात् स्वयं श्रमिक भी होते हैं। श्रमिक मिलकर स्वयं पूँजी प्रदान करते हैं या आपस में अंशों को खरीद कर पूँजी एकत्रित करते हैं। इस प्रकार उत्पादकों की सहकारिता से पूँजीपति हटा दिया जाता है। श्रमिक स्वयं अपना प्रबन्ध करते हैं। व्यवसाय से प्राप्त लाभ को आपस में बाँट लिया जाता है। वास्तव में श्रमिक को दो प्रकार से धन प्राप्त होता है—एक तो श्रम के बदले में मजदूरी और दूसरे, लगायी गयी पूँजी पर लाभ।

यदि उत्पादकों की सहकारिता का आकार बड़ा है तो इसके प्रबन्ध का स्वरूप इस प्रकार होता है। सहकारी समिति के सब सदस्यों को सामूहिक रूप में सामान्य सभा (general body) कहते हैं। यह सामान्य सभा सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय लेती है और व्यवसाय की आर्थिक नीतियों को निर्धारित करती है। सामान्यतया यह साल भर में एक बार मिलती है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर एक से अधिक बार भी मिल सकती है। सदस्यों में से ही कार्यकारिणी समिति (executive committee) का निर्माण किया जाता है और इसमें से एक प्रबन्धक (manager) होता है। कार्यकारिणी समिति तथा प्रबन्धक सामान्य सभा द्वारा लिये गये निर्णयों तथा निर्धारित की गयी आर्थिक नीतियों के अनुसार कार्य करते हैं। इस प्रकार सहकारी समिति का संगठन *जनतान्त्रिक आधार पर होता है।*

इसमें सदस्यों का दायित्व सीमित हो सकता है या असीमित, असीमित दायित्व का मुख्य लाभ यह है कि इससे सदस्यों में सहयोग की भावना बढ़ती है और वे कार्य में अधिक रुचि लेते हैं। वास्तव में, असीमित दायित्व उस दशा में अधिक उपयुक्त होता है जबकि समिति छोटी हो और सदस्य एक-दूसरे को भलीभाँति जानते हों। सीमित दायित्व का लाभ यह है कि बहुत-से व्यक्ति सुगमता से समिति के सदस्य बन जाते हैं। स्पष्ट है, सीमित दायित्व बड़ी समितियों के लिए अच्छा रहता है क्योंकि अधिक संख्या होने के कारण सदस्य एक-दूसरे को अच्छी प्रकार से नहीं जानते हैं।

उत्पादक सहकारिता के लाभ (Advantages of Producer's Co-operatives)

(१) **वर्ग संघर्ष की समाप्ति**—इसमें श्रमिक स्वयं पूँजी प्रदान करते हैं और स्वयं ही व्यवसाय का संचालन तथा प्रबन्ध करते हैं, इसलिए वर्ग संघर्ष (*class struggle*) समाप्त हो जाता है। (२) **आत्मनिर्भरता**—सहकारिता में आत्मनिर्भरता पर अधिक बल दिया जाता है। शोषण का स्थान आत्मनिर्भरता ले लेती है। (३) **अपव्यय का निराकरण**—इसमें श्रमिक स्वयं मालिक

होते है, स्वय ही व्यवसाय का सचालन करते हैं, इसलिए वे अधिक रुचि और सहयोग से कार्य करके सभी प्रकार के अपव्ययो का निराकरण करने का प्रयत्न करते हैं। (४) प्रजातन्त्रात्मक प्रबन्ध—सदस्यो की सामान्य सभा कार्यकारिणी समिति का निर्माण करती है और इसम से एक व्यक्ति प्रबन्धक के रूप मे कार्य करता है। कार्यकारिणी समिति तथा प्रबन्धक सामान्य सदस्यों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार प्रबन्ध प्रजातन्त्रात्मक होता है। (५) शैक्षिक महत्त्व—इससे सदस्यो मे सहयोग, आत्मनिर्भरता तथा आत्मसम्मान की भावना का विकास होता है।

उत्पादक सहकारिता की हानियाँ (Disadvantages of Producer's Co-operatives)

(१) पूँजी में कमी—श्रमिको के आर्थिक साधन सीमित होते हैं, इसलिए अधिक सख्या में भी मिलने पर वे पर्याप्त पूँजी एकत्रित नही कर पाते। परिणामस्वरूप व्यवसाय में नयी विधियो तथा नयी मशीनो का प्रयोग नही हो पाता और व्यवसाय की प्रतियोगिता शक्ति दुर्बल रहती है। (२) प्रबन्ध की कुशलता में कमी—प्राय सहकारी समिति का प्रबन्ध कुशल नहीं होता। प्रथम, इस प्रणाली मे साहसी तथा योग्य प्रबन्धको का लोप हो जाता है। श्रमिक स्वय उतने योग्य प्रबन्धक सिद्ध नही होते और पूँजी की अपर्याप्तता के कारण वे अधिक कुशल तथा अनुभवी प्रबन्धको की सेवाओं से वचित रह जाते हैं। दूसरे, श्रमिक प्रबन्ध मे अधिक हस्तक्षेप करते हैं, इससे प्रशासन तथा प्रबन्ध मे ढिलाई आती है।

वास्तव मे, उपर्युक्त दोनों हानियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और इसलिए सहकारिता अधिकतर असफल रहती है।

उपभोग सहकारिता (Consumer's Co-operatives)

इस प्रणाली के अन्तर्गत स्थान विशेष के उपभोक्ता एकत्रित होकर 'उपभोक्ता सहकारी समिति' का निर्माण करते हैं। उपभोक्ता मिलकर पूँजी प्रदान करते हैं या छोटे छोटे अशो को खरीदकर पूँजी एकत्रित करते हैं। यह समिति सीधे थोक व्यापारियों या निर्माताओं से वस्तुएँ खरीद कर बाजार भाव पर उन्हे अपने सदस्यो को बेचती है। इस प्रकार मध्यस्थ का निराकरण हो जाने से उपभोक्ता मध्यस्थ के शोषण से बच जाते हैं। समिति (society) का लाभ सदस्यों मे बाँट दिया जाता है। लाभ बाँटने का आधार सदस्य द्वारा खरीदे गये माल का मूल्य होता है या उसके द्वारा लगायी गयी पूँजी की मात्रा।

इसका प्रबन्ध भी प्रजातन्त्रात्मक ढग पर होता है। सभी उपभोक्ता सदस्यों की सामान्य सभा 'कार्यकारिणी समिति' बनाती है जिसमे से एक व्यक्ति समिति के प्रबन्धक या मैनेजर की भाँति कार्य करता है। कार्यकारिणी तथा प्रबन्धक 'सामान्य सभा' के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

उपभोग सहकारिता के लाभ (Advantages of Consumer's Co-operatives)

(१) इस प्रणाली के अन्तर्गत शोषण करने वाले मध्यस्थ निकल जाते हैं। इससे उपभोक्ताओं को एक ओर तो उचित मूल्य पर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं तथा दूसरी ओर लाभ में से भी भाग मिलता है। (२) इसे सचालित करने के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं पडती। इसका प्रबन्धक वेतन प्राप्त करने वाला या अवैतनिक हो सकता है। (३) प्राय सदस्य सहकारी भण्डार से सामान खरीदते हैं। इसलिए इन्हें कम प्रतियोगिता करनी पडती है तथा विज्ञापन इत्यादि पर बहुत कम या बिलकुल ही व्यय नही करना पडता है। (४) उपभोग सहकारी समितियो को प्राय सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की आर्थिक तथा अनार्थिक सहायता प्राप्त हो जाती है।

उपभोग सहकारिता की हानियाँ (Disadvantages of Consumer's Co-operatives)

(१) जिन उपभोग सहकारी समितियो मे अवैतनिक (honorary) प्रबन्धक होते हैं उनका प्रबन्ध कुशल नही होता। अधिक वेतन न दे सकने के कारण वेतन प्राप्त प्रबन्धक भी प्राय योग्य व्यक्ति नही होते हैं। प्रबन्ध की अकुशलता के कारण समिति को हानि उठानी पडती है और उन्हें बन्द कर देने की स्थिति आ जाती है। (२) इन समितियो के पास पूँजी के साधन कम होते हैं।

इसलिए इनकी प्रतियोगिता शक्ति कम होती है और इनका बड़े-बड़े व्यक्तिगत भण्डारो के समक्ष टिकना कठिन हो जाता है।

उचित रीति तथा व्यवसाय के सिद्धान्तो के आधार पर चलने से उपभोग सहकारी समितियाँ बहुत अच्छी सफलता प्राप्त कर लेती हैं।

साख सहकारिता (Credit Co-operatives)

कुछ व्यक्ति साख की आवश्यकता की पूर्ति के लिए आपस मे मिलकर सहकारी साख समिति का निर्माण करते है। सभी सदस्य पूंजी में छोटे-छोटे अशों के रूप मे अपना भाग देते हैं और इस प्रकार समिति की पूंजी एकत्रित होती है। इस पूंजी मे से उचित ब्याज दर पर प्रतिभूतियो (securities) के आधार पर ऋण दिया जाता है। इन समितियो की स्थापना गांवो अथवा शहरो दोनो क्षेत्रो मे हो सकती है। ग्रामो मे इनको 'ग्रामीण साख समितियाँ' (rural credit societies) तथा शहरो मे 'शहरी सहकारी बैंक' (urban co-operative banks) कहा जाता है।

इनका उद्देश्य साहूकार जैसे शोषण करने वाले मध्यस्थो का निराकरण कर अपने सदस्यो को उचित ब्याज दर पर ऋण देना होता है। समिति के लाभ को पूंजी मे अनुपात मे सदस्यो म बांट दिया जाता है। इन समितियों का प्रबन्ध भी जनतन्त्रात्मक आधार पर होता है।

इन समितियो का मुख्य लाभ यह है कि सदस्यो को उचित ब्याज दर पर ऋण प्राप्त होता है तथा शोषण करने वाले मध्यस्थो (जैसे—साहूकार, गाँव का बनिया, इत्यादि) से छुटकारा मिल जाता है। इसके अतिरिक्त लोगो म बचत करने की भावना को प्रोत्साहन मिलता है, लोगो मे सहयोग तथा आत्मनिर्भरता की भावना जड पकडती है, इत्यादि। जब इन समितियों की व्यवस्था योग्य तथा ईमानदार प्रबन्धकों के हाथ मे नहीं होती तथा ऋण मे पक्षपातपूर्ण नीति अपनायी जाती है तो ये समितियाँ सफल नहीं हो पाती।

सरकारी उपक्रम
(STATE ENTERPRISES)

प्राक्कथन (Introduction)

अहस्तक्षेप की नीति (*laissez faire*) सदैव के लिए समाप्त हो चुकी है। आधुनिक युग मे सरकार का हस्तक्षेप 'कम या अधिक' जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे होने लगा है। समाजवाद तथा नियोजित अर्थ व्यवस्था म व्यापार तथा उद्योग म सरकार का केवल हस्तक्षेप ही नहीं होता वरन् सरकार स्वय अनेक आधारभूत और महत्त्वपूर्ण उद्योग स्थापित करती है। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे भी उद्योग के क्षेत्र मे सरकारी हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण ही नहीं होता वरन् सार्वजनिक हित की दृष्टि से कुछ आधारभूत तथा महत्त्वपूर्ण उद्योग सरकार स्वय चलाती है, जैसे—रेलवे, बिजली उत्पादन, तार व डाक विभाग, सडक, जल तथा वायु यातायात, इत्यादि। साम्यवादी देशो मे तो उत्पादन के सम्पूर्ण क्षेत्र मे सरकार का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है।

सरकारी उपक्रम का अर्थ (Meaning of State Enterprise)

सरकारी उपक्रम के अन्तर्गत वे व्यवसाय आते हैं जिनका स्वामित्व सरकार का होता है या जिनका स्वामित्व तथा प्रबन्ध दोनो सरकार के अधीन होता है।

सरकारी उपक्रम के अर्थ को पूरी प्रकार से समझने के लिए उसके संगठन के विभिन्न रूपो की जानकारी आवश्यक है। सरकारी उपक्रम के निम्न सगठनात्मक रूप हो सकते हैं

(१) उपक्रम का स्वामित्व तथा प्रबन्ध किसी सरकारी विभाग के अन्तर्गत हो सकता है जैसे भारत मे डाक व तार विभाग तथा रेलवे विभाग। इसका प्रमुख लाभ यह है कि इसमे सरकार सामान्य नीतियों पर ही नही वरन् प्रबन्ध की सूक्ष्म बातो पर भी प्रत्यक्ष नियन्त्रण रख सकती है। इसका मुख्य दोष यह है कि यह प्रणाली व्यवसाय या व्यापार की दृष्टि से उचित नहीं होती क्योंकि इसम उपक्रम का लेखा (accounts) पृथक नही होता वरन् सरकारी आय तथा लेखा के साथ मिश्रित रहता है।

(२) सरकारी उपक्रम एक सयुक्त पूंजी कम्पनी की भाँति हो सकता है, ऐसी स्थिति मे यह कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड होता है और कम्पनी के सब अशो का या अधिकाश अशों का स्वामित्व सरकार का होता है। भारत मे सिंदरी फर्टीलाइजर कम्पनी (Sindri Fertiliser Works) इसका एक उदाहरण है।

(३) सरकारी उपक्रम का वैधानिक निगम (Statutory Corporation) के द्वारा प्रबन्ध हो सकता है। वैधानिक निगम एक विशेष नियम के द्वारा बनाया जाता है। इसमें प्रारम्भिक पूंजी सरकार लगाती है या उधार देती है। निर्माण के बाद सब प्रबन्ध स्वय निगम करता है, अपना पृथक हिसाब किताब रखता है, सरकार केवल सामान्य सिद्धान्तो या नीतियों का निर्माण करती है तथा सरकार का अनावश्यक हस्तक्षेप नही रह जाता है। इस प्रकार के निगम अमरीका मे बहुत प्रचलित हैं। भारत मे इसके उदाहरण है दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation), रिजर्व बैंक, भारत का औद्योगिक वित्त निगम। परन्तु अमरीका के वैधानिक निगमो की अपेक्षा ये बहुत छोटे हैं तथा इन पर भारत सरकार का पूरा नियन्त्रण (control) है।

(४) सरकारी उपक्रम की अन्य विविध रीतियाँ या रूप हो सकते हैं; जैसे—(अ) उपक्रम पर सरकार का स्वामित्व हो परन्तु उसका प्रबन्ध एक लम्बे समय के लिए प्राइवेट एजेन्सी को दे दिया गया हो, (ब) उपक्रम का प्रबन्ध स्थानीय अधिकारियो (local authorities) द्वारा किया जाय; (स) सरकार तथा निजी व्यक्तियो का सयुक्त स्वामित्व तथा प्रबन्ध हो।

सरकारी उपक्रमो से लाभ (Advantages of State Enterprises)

(१) **पूंजी की पर्याप्त प्राप्ति (Adequate availability of capital)**—निजी उत्पादको की अपेक्षा सरकारी उपक्रम की साख सदैव अधिक होती है, इसलिए सुगमता से कम ब्याज दर पर पर्याप्त पूंजी प्राप्त हो जाती है।

(२) **प्रबन्ध में कुशलता (Efficiency in management)**—सरकारी नौकरी का एक बड़ा आकर्षण (glamour) होता है तथा समाज मे उसका बहुत आदर होता है। सरकारी नौकरी अधिक सुरक्षित (secure) होती है। इन सब बातो के परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत कम वेतन पर भी सरकारी उपक्रमो मे योग्य व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त हो सकती हैं जिससे प्रबन्ध की कुशलता मे वृद्धि होती है।

(३) **लोक-कल्याण तथा धन का समान वितरण (Public welfare and equitable distribution of wealth)**—सरकारी उपक्रमो में लाभ के साथ-साथ लोक-कल्याण पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। प्राप्त लाभ थोडे से व्यक्तिगत लोगों के हाथो मे केन्द्रित नही होने पाता वरन् सरकार को प्राप्त होता है। सरकार लाभ की प्राप्त राशि के एक भाग को उपक्रम के विकास पर लगा सकती है तथा शेष समाज के कल्याणकारी कार्यों पर व्यय करती है। इस प्रकार धन के वितरण मे समानता आती है।

(४) **आधुनिक रीतियों तथा नवीनतम मशीनों का प्रयोग (Use of latest methods and modern machines)**—सरकारी उपक्रमों को बहुत बडी मात्रा मे पूंजी प्राप्त हो सकती है अत उनमे आधुनिक रीतियो तथा नवीनतम मशीनो का प्रयोग करके उत्पादन कुशलता को बढ़ाया जा सकता है।

(५) **श्रमिकों को लाभ (Benefits to workers)**—सरकारी उपक्रमो म श्रमिको के कार्य करने की दशाएँ अच्छी होती हैं, उन्हे अच्छे वेतन दिये जाते हैं तथा व्यक्तिगत उपक्रमो की भाँति उनका शोषण नही होता।

(६) **कम लागत पर उत्तम सेवा (Better service at low cost)**—एक उपक्रम के साथ सरकार का नाम जुड जाने से जनता मे उपक्रम के प्रति बहुत विश्वास उत्पन्न हो जाता है। अत सरकारी उपक्रम को विज्ञापन तथा प्रसार पर कोई विशेष धन व्यय नही करना पड़ता है। इसके

अतिरिक्त सरकारी उपक्रम एकाधिकारी की भाँति होते है और उनके एकाधिकार के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। परन्तु सरकारी एकाधिकार, निजी एकाधिकार के असमान, जनता को कम कीमत पर उत्तम सेवा प्रदान करने का ध्येय रखते हैं।

(७) **बुनियादी औद्योगिक ढाँचे के लिए आवश्यक** (Necessary for industrial infra structure)—किसी देश, विशेषतया अल्पविकसित देश के तीव्र औद्योगिक विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोहा तथा इस्पात उद्योग, रासायनिक उद्योग, अन्य भारी उद्योग, बिजली, उत्पादन, बाँधो का निर्माण, सड़क तथा रेल यातायात इत्यादि का निर्माण तथा इनका विकास किया जाये। इन क्षेत्रो म सरकारी स्वामित्व तथा प्रबन्ध ही उपयुक्त होता है क्योंकि इनमे पूँजी तो बहुत लगती है और अपेक्षाकृत प्रतिफल कम मिलता है, इस कारण व्यक्तिगत उपक्रम इन क्षेत्रो म कार्य को तत्पर नही होता है। स्पष्ट है कि देश मे बुनियादी औद्योगिक ढाँचे के लिए सरकारी उपक्रम अत्यन्त आवश्यक है।

सरकारी उपक्रमों से हानियाँ (Disadvantages of State Enterprises)

(१) ***प्रबन्ध कुशलता का निम्न स्तर** (Low level of efficiency in management)*—सरकारी उपक्रमो मे व्यक्तिगत व्यवसायो की अपेक्षा, प्रबन्ध की कुशलता का स्तर प्राय निम्न रहता है। सरकारी उपक्रमो मे लालफीताशाही (redtapism) का साम्राज्य होता है, इनम कार्य पूर्व निश्चित ढग (procedure) से चलता है, फाइलें धीरे धीरे चलती है, निर्णय लेने म अत्यन्त देर लगती है। परिणामस्वरूप व्यवसाय की प्रबन्ध कुशलता निम्न रहती है।

(२) **पहलपन तथा उपक्रम की कमी** (Lack of initiative and enterprise)—सरकारी उपक्रमो के प्रबन्धको तथा उच्च अधिकारियो के वेतन मे वृद्धि, उन्नति (promotion) के अवसर, इत्यादि सब पूर्व निश्चित नियमो के अनुसार होते है। व्यक्तिगत उपक्रमो की भाँति इनमे प्रबन्धको तथा उच्च अधिकारियो की उन्नति उनकी कड़ी मेहनत तथा कुशलता के आधार पर नही होती। ऐसी स्थिति मे प्रबन्धको तथा अधिकारियो मे पहलपन तथा उपक्रम के लिए कोई उत्साह नही रह जाता।

(३) **श्रमिको की कार्यक्षमता का निम्न स्तर** (Low level of workers' efficiency)—सरकारी उपक्रमो के श्रमिकों की कार्य की दशाएँ सुरक्षित रहती हैं तथा वेतन-क्रम (pay scale) निश्चित रहता है। उसमे आराम से कार्य करने के दृष्टिकोण का विकास हो जाता है, वे कड़ी मेहनत नहीं करना चाहते। वे अपने अधिकारियो की आज्ञा का उल्लघन तक करने को तत्पर रहते है क्योकि वे जानते है कि उनका कुछ बिगाड़ा नही जा सकता। ऐसी स्थिति म श्रमिको की कार्यक्षमता का स्तर निम्न रहता है।

(४) **राजनीतिक भ्रष्टाचार** (Political corruption)—सरकारी उपक्रमो मे कर्मचारियो की नियुक्ति प्राय योग्यता (merit) के आधार पर नही होती वरन् राजनीतिक बातें (considerations) उनकी नियुक्ति तथा उन्नति को प्रभावित करती हैं। अधिकारियो की बदलियो (transfers) मे भी राजनीतिक प्रभाव कार्यशील रहता है।

(५) **विशालकाय सार्वजनिक एकाधिकार** (Gigantic public monopolies)—सरकारी उपक्रम बहुत बड़े होते है और कई दशाओ म तो वे विशाल एकाधिकार का रूप धारण कर लेते है। इनके सामने उपभोक्ता असहाय (helpless) रहता है। कई दशाओ मे सरकारी एकाधिकार तथा निजी एकाधिकार मे कोई अन्तर नही रह जाता है।

(६) **श्रमिको से राजनीतिक पक्षपात प्राप्ति के प्रयत्न** (Efforts to secure political favour from workers)—लोकतान्त्रिक देशो मे सरकार सरकारी उपक्रमो के श्रमिको के वोट

अपने पक्ष में प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। इसके बदले में कभी-कभी श्रमिक ऊँचे वेतन तथा कम घण्टे कार्य करने की मांग को पूरा कराने का प्रयत्न करते हैं। इससे उत्पादन घटता है तथा लागत बढ़ती है।

(७) हानि के कारण करदाताओं पर भार (Burden on common tax payers owing to loss)—सरकारी उपक्रमों में हानि होने पर सामान्य करदाताओं पर बोझ पड़ता है क्योंकि उस हानि की पूर्ति अधिक कर की प्राप्ति से पूरी की जाती है।

निष्कर्ष—सरकारी उपक्रमों के लाभों के साथ उनकी अनेक हानियाँ भी हैं। यदि सरकार के अधिकारी ईमानदार तथा कुशल हैं तो इनमें से अधिकांश हानियों को उचित नीतियों द्वारा एक सीमा तक दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त देश के बुनियादी औद्योगिक ढाँचे का निर्माण करने तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में, जिनमें सार्वजनिक हित अत्यन्त आवश्यक है, सरकारी उपक्रम उपयुक्त तथा आवश्यक होते हैं।

प्रश्न

१. 'एकाकी स्वामित्व' का अर्थ बताइए। इसकी विशेषताओं, गुणों तथा दोषों की विवेचना कीजिए।

Define 'sole or single proprietorship' Discuss its characteristics, merits and demerits

२. 'साझेदारी' का अर्थ समझाइए। इसकी विशेषताओं, गुणों तथा दोषों की विवेचना कीजिए।

Define Partnership' Discuss its characteristics merits and demerits

३. संयुक्त पूँजी कम्पनी की मुख्य विशेषताओं को बताइए। इसकी तुलना साझेदारी से कीजिए।

Indicate the main features of a Joint Stock Company Compare it with Partnership (*Raj, IIyr Arts*, 1969)

४. 'साझेदारी' की 'मिश्रित पूँजी कम्पनी' से तुलना कीजिए। एक फर्टिलाइजर खाद का बड़ा कारखाना संचालित करने के लिए आप इनमें किसे और क्यों उपयुक्त मानेंगे ?

Compare Partnership with Joint Stock Company' Which and why out of the two is more suitable for starting a large fertilizer factory ? (*Agra*, 1973)

[संकेत—दूसरे भाग के उत्तर में बताइए कि fertilizer का बड़ा कारखाना चलाने के लिए संयुक्त पूँजी कम्पनी अधिक उपयुक्त होगी, संयुक्त पूँजी कम्पनी के मुख्य लाभों को बताते हुए इसकी पुष्टि कीजिए।]

५. संयुक्त पूँजी कम्पनी की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ? इसके गुण-दोष बताइए।

What are the main features of a Joint Stock Company ? What are its merits and demerits ? (*Agra, B A I.*, 1969*d*)

६. संयुक्त पूँजी कम्पनी तथा सहकारी समिति के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए। उनके गुणों तथा दोषों की विवेचना कीजिए।

Distinguish between a Joint Stock Company and a Co-operative Society Discuss their merits and demerits (*Agra B Com, I* 1962, 1965 *S*)

७. सहकारिता की परिभाषा दीजिए तथा इसके मौलिक सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए।

Define 'co-operation' and discuss its fundamental principles (*Jodhpur*)

८. आप सरकारी उपक्रम से क्या समझते हैं ? इसके गुण तथा दोष बताइए।

What do you understand by state enterprises ? Discuss their merits and demerits.

९. निम्न में से आप कौन-से उपक्रम को सर्वोत्तम समझते हैं ? कारण सहित उत्तर दीजिए (अ) व्यक्तिगत, (ब) सरकारी, (स) सहकारी।

Which of the following types of enterprises do you consider the best ? Give reasons (a) Private (b) State (c) Co-operative (*Vikram, B A I*)

[संकेत—तीनों प्रकार के उपक्रम के गुणों तथा दोषों की संक्षेप में विवेचना कीजिए, इसके पश्चात् बताइए कि तीनों में से कोई भी पूर्ण नहीं है, प्रत्येक के अपने गुण तथा दोष हैं, यह कहना कठिन है कि इनमें से कौन-सा सर्वोत्तम है। सैद्धान्तिक दृष्टि से सहकारी उपक्रम बहुत उत्तम है पर व्यवहार में इसको चलाना कठिन होता है तथा प्राय यह छोटे पैमाने पर चलाया जाता है। कुछ दशाओं (जैसे सार्वजनिक सेवाओं) में सरकारी उपक्रम सर्वोत्तम होते हैं, इसी प्रकार कुछ दशाओं में व्यक्तिगत उपक्रम अच्छे होते हैं।]

10 एकाधिकार तथा औद्योगिक संयोगीकरण
[MONOPOLY AND INDUSTRIAL COMBINATION]

एकाधिकार का अर्थ
(MEANING OF MONOPOLY)

एकाधिकार वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर नियन्त्रण हो। विशुद्ध एकाधिकार (pure monopoly) में *प्रतियोगिता शून्य होती है।* **विशुद्ध एकाधिकार के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं का पूरा होना आवश्यक है—१ वस्तु का एक विक्रेता हो। २ वस्तु के कोई निकट स्थानापन्न (close substitutes) न हों। ३. उद्योग मे नये उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें (effective barriers) हों।**

व्यवहार मे *विशुद्ध एकाधिकार नहीं पाया जाता क्योंकि उपर्युक्त तीन दशाओं का पाया जाना अत्यन्त कठिन है।* किसी वस्तु का एक उत्पादक हो सकता है परन्तु प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई *स्थानापन्न अवश्य होता है।*[1] *व्यवहार मे एकाधिकार का अर्थ केवल एक उत्पादक से नही* होता वरन् उस एक उत्पादक या कुछ उत्पादको से होता है जो वस्तु की कुल पूर्ति के एक बड़े *भाग का उत्पादन करते हैं और इसलिए बाजार तथा बाजार की कीमत को प्रभावित कर सकते* हैं। **अत व्यवहार मे एकाधिकारी शक्ति का सार बाजार नियन्त्रण है** (*in practical world the essence of monopoly power is market control*)। दूसरे शब्दो मे, व्यवहार म विशुद्ध एकाधिकारी स्थिति नही पायी जाती वरन् श्रीमती जोन रॉबिन्सन (Mrs Joan Robinson) के शब्दो मे, **'अपूर्ण प्रतियोगिता'** (imperfect competition) की स्थिति, या प्रो० चेम्बरलिन (Prof Chamberlin) के शब्दो मे, **'एकाधिकारी प्रतियोगिता'** (monopolistic competition) **की स्थिति पायी जाती है।**[2]

एकाधिकार शक्ति के आधार
(FOUNDATIONS OF MONOPOLY POWER)

एक एकाधिकारी की शक्ति इस बात मे निहित है कि उसका अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण हो। प्रो० बेन्हम (Benham) के शब्दो मे, "एकाधिकार की सफलता की कुंजी उत्पादन के सकुचन मे है।"[3] एकाधिकार अपने उत्पादन का सकुचन या पूर्ति पर नियन्त्रण तब रख सकेगा, जब नये उत्पादको का उसके क्षेत्र मे प्रवेश न होने पाये अर्थात् उद्योग मे नये उत्पादको के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें (effective barriers) हो। दूसरे शब्दो मे, वे तत्त्व (factors) या परिस्थितियाँ (circumstances) जो नये उत्पादको के प्रवेश को रोकती हैं 'एकाधिकारी शक्ति के आधार' या 'एकाधिकार शक्ति के स्रोत' (sources of monopoly

[1] शायद नमक ऐसी वस्तु है जिसका कोई स्थानापन्न नही है।

[2] अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता के अर्थ के लिए पुस्तक के चतुर्थ भाग मे 'बाजार के रूप' नामक अध्याय को देखिए।

[3] "Thus the key of the success of a monopoly is restriction of output."

power) हैं। एकाधिकारी शक्ति के आधार अर्थात् नये उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटों के कारण निम्न हैं

(१) वस्तु विशेष का बाजार संकुचित या सीमित (narrow or limited) हो सकता है और यह एक फर्म से अधिक फर्मों के माल की खपत नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में नयी फर्मों के लिए उस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए कोई आकर्षण नहीं रह जाता।

(२) एक उत्पादक के पास ऐसी वस्तु हो सकती है जो उत्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक हो, जैसे उत्पादक के पास अधिकांश कच्चे माल की पूर्ति का स्वामित्व हो सकता है। ऐसी स्थिति में अर्थात् कच्चे माल की पूर्ति के अभाव में नयी फर्में उद्योग में प्रवेश नहीं कर पायेंगी। उदाहरणार्थ कनाडा के अन्तर्राष्ट्रीय निकिल कॉरपोरेशन (International Nickel Corporation of Canada) का संसार की निकिल की अधिकांश खानों पर स्वामित्व है। दूसरे, एक अध्यापक, डॉक्टर, वकील, एक्टर (actor) इत्यादि अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण अपने क्षेत्रों में एकाधिकारी की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं।

(३) कुछ उद्योगों में बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता पड़ती है जिससे नयी फर्में उसमें प्रवेश नहीं कर पाती हैं। उदाहरणार्थ, लोहा तथा इस्पात उद्योग, हवाई जहाज या जलयान उद्योग, इत्यादि में अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है और इसलिए इन उद्योगों में एकाधिकारी प्रवृत्ति देखी जाती है।

(४) यदि उद्योग विशेष में उत्पादक किसी विशेष रीति या तकनीकी का प्रयोग करता है, जिसका ज्ञान अन्य उत्पादकों को नहीं होता तो वह उत्पादक एकाधिकारी की स्थिति में रहता है।

(५) एक फर्म अपनी मूल्य नीति (Price Policy) को इस प्रकार निर्धारित कर सकती है जिससे कि अन्य फर्मों के लिए उसके क्षेत्र में प्रवेश करने का आकर्षण बहुत कम रह जाय।

(६) नयी रीतियों तथा अनुसन्धानों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार उत्पादकों को पेटेण्ट्स (patents) तथा ट्रेडमार्क (trademark) का अधिकार देकर कानूनी संरक्षण प्रदान करती है। कानूनी संरक्षण के कारण उस नयी रीति या ट्रेडमार्क का प्रयोग अन्य उत्पादक नहीं कर सकते हैं और इस प्रकार पेटेण्ट प्राप्त फर्म को लगभग एकाधिकारी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

एकाधिकारियों का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF MONOPOLIES)

एकाधिकारियों का कई प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है। एकाधिकार के विभिन्न रूपों या विभिन्न प्रकार के वर्गीकरण का विवरण नीचे दिया जाता है

I एक वर्गीकरण के अनुसार एकाधिकार के मुख्य रूप हैं प्राकृतिक (Natural), सामाजिक (Social), वैधानिक (Legal), अस्थायी (Temporary), तथा ऐच्छिक (Voluntary) एकाधिकार

(१) प्राकृतिक एकाधिकार (Natural monopoly)—प्राकृतिक एकाधिकार वे हैं जो प्राकृतिक कारणों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। जब प्रकृति एक देश को किसी वस्तु की बहुत अधिक मात्रा प्रदान करती है तो उस वस्तु के सम्बन्ध में उसका एकाधिकार स्थापित हो जाता है। उदाहरणार्थ, दक्षिणी अफ्रीका को हीरे की उत्पत्ति का एकाधिकार प्राप्त है विभाजन से पहले भारत में बंगाल को जूट के उत्पादन का एकाधिकार प्राप्त था, इत्यादि।

(२) सामाजिक या सार्वजनिक या आवश्यक एकाधिकार (Social or public or necessary monopolies)—ऐसे एकाधिकार का प्रायः सरकार निर्माण करती है ताकि प्रतियोगिता के अपव्ययों का निराकरण करके समाज को सस्ती दर पर कुछ आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति हो सके, जैसे—बिजली पानी, डाक-तार, रेल, इत्यादि क्षेत्रों में सरकार एकाधिकार स्थापित करती है। इनको सार्वजनिक उपयोगिता सेवाएँ (public Utility Services) भी कहा जाता है।

(३) कानूनी या वैधानिक एकाधिकार (Legal monopoly) जब एकाधिकार कानून द्वारा स्थापित किया जाता है तो इसे कानूनी या वैधानिक एकाधिकार कहते है; जैसे पेटेण्ट (patent) तथा कॉपीराइट (copyright) ।

(४) अस्थायी एकाधिकार (Temporary monopolies)—कभी-कभी सट्टा करने वाले किसी वस्तु की प्राप्य समस्त पूर्ति पर या उसके अधिकाश भाग पर अपना अधिकार करने मे सफल हो जाते हैं, जैसे कार्नर (corner) । परन्तु इस प्रकार की एकाधिकारी स्थिति केवल अल्पकालीन या अस्थायी होती है ।

(५) ऐच्छिक एकाधिकारी या एकाधिकारी सयोग (Voluntary monopolies or monopolist combination)—एक वस्तु के सभी उत्पादक या अधिकाश उत्पादक अपनी स्वेच्छा से मिलकर 'ऐच्छिक एकाधिकार' या 'एकाधिकारी सयोग' का निर्माण करते हैं। इसका उद्देश्य पारस्परिक प्रतियोगिता को समाप्त कर वस्तु की पूर्ति तथा मूल्य पर नियन्त्रण करके अधिकतम लाभ कमाना होता है । आधुनिक युग म प्राय व्यवसाय के सयोग (business combination) की रीति द्वारा ही एकाधिकार का निर्माण होता है ।

II एक दूसरे वर्गीकरण के अनुसार एकाधिकार के मुख्य दो रूप हैं (१) पूर्ण या विशुद्ध एकाधिकार (Perfect and Pure Monopoly), तथा (२) अपूर्ण एकाधिकार (Imperfect Monopoly)

(१) पूर्ण या विशुद्ध एकाधिकार (Perfect or pure monopoly)—विशुद्ध एकाधिकार म शून्य प्रतियोगिता होती है तथा एक फर्म या एक उत्पादक का वस्तु की सम्पूर्ण पूर्ति पर अधिकार होता है । इसम नये उत्पादकों के प्रवेश का भय नही होता है। विशुद्ध एकाधिकार का व्यावहारिक जीवन म पाया जाना अत्यन्त कठिन है ।

(२) अपूर्ण एकाधिकार (Imperfect monopoly)—इसम एक उत्पादक या कुछ उत्पादक वस्तु की समस्त पूर्ति या अधिकाश पूर्ति पर नियन्त्रण रख सकते हैं, परन्तु इसम नये उत्पादको के प्रवेश, सरकारी नियन्त्रण या नियमन तथा सगठित जनमत की प्रक्रिया (organised public reaction) का भय बना रहता है ।

III एक तीसरे वर्गीकरण के अनुसार एकाधिकार को साधारण एकाधिकार (Simple Monopoly) तथा विवेचनात्मक एकाधिकार (Discriminating Monopoly) मे बाँटा जाता है ।

(१) साधारण एकाधिकार (Simple monopoly)—एक साधारण एकाधिकार वह है जिसमे उपभोक्ताओ के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता और सभी को समान कीमत पर वस्तु बेची जाती है ।

(२) विवेचनात्मक एकाधिकार (Discriminating monopoly)—इसम एकाधिकारी अपने ग्राहकों के बीच भेदभाव करता है और वह विभिन्न ग्राहको से एक ही वस्तु की भिन्न कीमतें प्राप्त करता है । उदाहरणार्थ, एक बिजली सप्लाई कम्पनी पावर (power) के लिए कम दर पर बिजली देती है जबकि रोशनी, पखे, आदि के लिए ऊँची दर पर बिजली देती है ।

VI एक चौथे वर्गीकरण (स्थान के आधार पर) के अनुसार एकाधिकार के तीन रूप हो सकते हैं । (१) स्थानीय एकाधिकार, (२) राष्ट्रीय एकाधिकार, तथा (३) अन्तरराष्ट्रीय एकाधिकार

(१) स्थानीय एकाधिकार (Local monopoly)—जब एक एकाधिकार का क्षेत्र किसी छोटे स्थान तक सीमित रहता है तो इसे 'स्थानीय एकाधिकार' कहते हैं, जैसे शहर की बिजली सप्लाई कम्पनी ।

(२) राष्ट्रीय एकाधिकार (National monopoly)—जब एक एकाधिकार का क्षेत्र समस्त देश मे फैला होता है तो इसे 'राष्ट्रीय एकाधिकार' कहते ह, जैसे भारत म सरकार का रेलो का एकाधिकार ।

(३) अन्तरराष्ट्रीय एकाधिकार (International monopoly)—जब एक एकाधिकार का क्षेत्र समस्त संसार में फैला होता है तो इसे 'अन्तरराष्ट्रीय एकाधिकार' कहते हैं।

V एक पाँचवें वर्गीकरण (स्वामित्व के आधार पर) के अनुसार एकाधिकार के तीन रूप हो सकते हैं (१) व्यक्तिगत एकाधिकार, (२) सार्वजनिक या सरकारी एकाधिकार, तथा (३) अर्द्ध-सरकारी एकाधिकार

(१) व्यक्तिगत एकाधिकार (Private monopoly)—जब किसी एकाधिकार पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है तो इसे 'व्यक्तिगत एकाधिकार' कहते हैं। व्यक्तिगत एकाधिकारियों का उद्देश्य प्राय वस्तु की ऊँची कीमत रखकर अधिक लाभ अर्जित करना होता है।

(२) सार्वजनिक या सरकारी एकाधिकार (Public or State monopolies)—जब किसी एकाधिकार पर सरकार का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है तो इसे 'सार्वजनिक या सरकारी एकाधिकार' कहते हैं। सार्वजनिक एकाधिकार का उद्देश्य उचित मूल्य पर वस्तुओं का विक्रय कर समाज के कल्याण को बढ़ाना होता है।

(३) अर्द्ध-सरकारी एकाधिकार (Semi government or quasi public monopoly)—ऐसे एकाधिकारों में प्राय सरकार का स्वामित्व होता है और उसका प्रबन्ध व्यक्तिगत लोगों द्वारा किया जाता है, इस मिश्रण के कारण ही इन्हें 'अर्द्ध-सरकारी एकाधिकार' कहा जाता है।

एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग की ओर विकास के कारण या प्रेरणाएँ
(MOTIVES TO GROWTH TOWARDS MONOPOLY OR MONOPOLISTIC COMBINATIONS)

आधुनिक युग में प्राय व्यवसाय के संयोग (Business Combination) द्वारा ही एकाधिकार का निर्माण होता है। एक प्रकार की वस्तु के अधिकांश निर्माता मिलकर एकाधिकारी शक्ति अर्जित करते हैं। इस प्रकार के संयोग को 'एकाधिकारी संयोग' (Monopolistic combination) कहते है। प्रश्न यह उठता है कि बड़ी-बड़ी फर्में आपस में मिलकर क्यों एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग का निर्माण करना चाहती हैं? एकाधिकारी संयोग के पीछे क्या प्रेरणाएँ या प्रयोजन (motives) होते हैं? बड़ी-बड़ी फर्मों का एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग की ओर विकास के मुख्य कारण या प्रेरणाएँ निम्न हैं

(१) मितव्ययिता प्रयोजन (Economy motive)—बड़े पैमाने की बचतों को प्राप्त करने तथा लागत को कम करने के प्रयोजन से कई फर्में मिलकर 'एकाधिकारी संयोग' की स्थापना कर सकती हैं।

(२) अत्यधिक लाभ प्रयोजन (Excessive profit motive)—अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के प्रयोजन से कुछ फर्में मिलकर एकाधिकार या एकाधिकार संयोग स्थापित कर सकती हैं।

(३) प्रतियोगिता के जोखिमों को दूर करने का प्रयोजन (Motive for avoidance of risks of competition)—पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादकों को प्राय गलाकाट प्रतियोगिता (cut throat competition) का सामना करना पड़ता है जिससे सभी फर्मों को हानि उठानी पड़ती है और कुछ फर्में बन्द भी हो जाती हैं। अत प्रतियोगिता की जोखिमों से बचने के लिए फर्में एकाधिकारी संयोग का निर्माण करती हैं।

(४) आत्म-प्रतिरक्षा का प्रयोजन (Self-defence motive)—कभी-कभी एकाधिकारी संयोग की स्थापना प्रतिरक्षा में की जाती है। (अ) कभी-कभी देश के कुछ उत्पादक इसलिए मिल जाते हैं ताकि आक्रामक विदेशी प्रतियोगिता (aggressive foreign comp-tition) से अपनी रक्षा कर सकें। (ब) कच्चे माल तथा सेवाओं की पूर्तिकर्ताओं के एकाधिकारी संयोग का सामना करने के लिए भी कभी-कभी उत्पादक मिल जाते हैं। (स) नये प्रतियोगियों के प्रवेश को रोकने के लिए भी संयोग का निर्माण होता है।

(५) कानून द्वारा सार्वजनिक हित की प्राप्ति का प्रयोजन (Public interest motive through law)—कभी-कभी एकाधिकारी सयोगो की स्थापना कानून द्वारा की जाती है। उदाहरणार्थ, सार्वजनिक हित की दृष्टि से बिजली पूर्ति के लिए कानून द्वारा एकाधिकार स्थापित किया जाता है ताकि अनावश्यक प्रतियोगिता के अपव्यय को रोका जा सके।

(६) शक्ति तथा प्रतिष्ठा का प्रयोजन (Power and prestige motive)—एकाधिकारी सयोग के पीछे प्राय आर्थिक शक्ति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयोजन या प्रेरणा होती है। एक व्यवसाय लाभ प्राप्ति के साथ शक्ति प्राप्ति करने का भी साधन होता है। बड़े-बड़े एकाधिकारी व्यवसायो का स्वामित्व तथा नियन्त्रण एक व्यक्ति की गौरव (importance) की भावना के लिए आनन्ददायक (flattering) होता है, उसे बहुत अधिक श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों के ऊपर नियन्त्रण तथा नेतृत्व का अवसर मिलता है बड़े व्यवसाय के नियन्त्रण से उसे एक उद्दीपन (excitement) का अनुभव होता है और वह एक औद्योगिक साम्राज्य (industrial dynasty) की स्थापना करने की आशा से प्रेरित होता है। इस प्रकार एकाधिकारी सयोगो के पीछे आर्थिक शक्ति, प्रतिष्ठा तथा गौरव की प्रबल भावना भी रहती है।

(७) अन्य कारण (Other reasons)—(अ) कुछ उद्योगों मे बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है जिससे उसम नयी फर्में प्रवेश नहीं कर पाती हैं और वर्तमान फर्मों को सुगमता से एकाधिकारी स्थिति प्राप्त हो जाती है जैसे—लोहा-इस्पात उद्योग, जलयान तथा हवाई जहाज निर्माण उद्योग, इत्यादि। (ब) उद्योगो के स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप फर्मों के लिए आपस मे मिलकर एकाधिकारी सयोग की स्थापना करना सुगम हो जाता है।

एकाधिकार के आर्थिक परिणाम
(ECONOMIC CONSEQUENCES OF MONOPOLY)

एकाधिकार के कुछ लाभ है परन्तु इससे अनेक हानियाँ भी हैं। इन हानियो के कारण प्रत्येक देश म एकाधिकार को नियन्त्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय किये जाते हैं। पहले हम एकाधिकार के लाभो और उसके बाद उसकी हानियो का वर्णन करेंगे।

एकाधिकार के लाभ (Merits of Monopoly)

(१) बड़े पैमाने की उत्पत्ति की बचत (Economies of large scale production)—एकाधिकारी उत्पादन म बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है इसलिए इसके अन्तर्गत बड़े पैमाने की सभी बचत प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ, एकाधिकारी उत्पादन व्यवस्था का पुनर्संगठन कर सकता है सूक्ष्म विनिष्टीकरण नवीनतम मशीनों के प्रयोग इत्यादि से उत्पादन कुशलता बढ़ा सकता है। सक्षेप म उसे प्रबन्धनीय वाणिज्य सम्बन्धी जोखिम उठाने सम्बन्धी वित्तीय तकनीकी बचतें प्राप्त होती है।

(२) नीची विक्रय लागत (low selling costs)—एकाधिकारी के लिए विक्रय लागते भी बहुत कम होती हैं क्योंकि उसे प्रतियोगिता की अपेक्षा प्रचार तथा विज्ञान पर बहुत कम व्यय करना पड़ता है।

(३) आर्थिक सकट का सामना करने की अधिक सामर्थ्य (Better capacity to face economic crisis)—एकाधिकारी के पास आर्थिक साधन तथा सुरक्षित कोष (reserve funds) पर्याप्त मात्रा मे होते है परिणामस्वरूप आर्थिक सकटो का सामना करने की उसकी योग्यता अधिक होती है।

(४) अनुसन्धान को प्रोत्साहन (Encouragement to research)—एकाधिकारियो के पास बहुत बड़ी मात्रा मे आर्थिक साधन होते हैं इसलिए वे अनुसन्धान मे अधिक धन का प्रयोग कर सकते है और तकनीकी प्रगति म योगदान दे सकते हैं।

(५) सार्वजनिक उपयोगी सेवाएँ (public utility services)—सार्वजनिक हित की दृष्टि से कुछ कार्य या सेवाएँ ऐसी होती हैं जिनमे प्रतियोगिता हानिकारक होती है तथा एकाधिकार आवश्यक तथा हितकर होता है, जैसे—बिजली, पानी, गैस, रेल, इत्यादि।

एकाधिकार से हानियाँ (Demerits of Monopoly)

(१) उपभोक्ताओं का शोषण (Exploitation of consumers)—एकाधिकारी अपने क्षेत्र में एक ही उत्पादक होता है। (अ) इसलिए वह प्राय अपनी वस्तुओं की कीमत ऊँची रखता है, वस्तु की किस्म में भी गिरावट कर देता है, और इस प्रकार उपभोक्ताओं का शोषण करता है। (ब) वह कभी-कभी उपभोक्ताओं के बीच भेदभाव भी करता है तथा कुछ लोगों से वस्तु की कम कीमत तथा कुछ से अधिक कीमत लेता है। (स) एकाधिकारी का उत्पादन प्रतियोगिता की अपेक्षा कम होता है और इस प्रकार उपभोक्ताओं के लिए वस्तु की कुल पूर्ति कम होती है और उन्हें ऊँची कीमत देनी पड़ती है।

(२) श्रमिक का शोषण (Exploitation of workers)—एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला उत्पादक होता है, इसलिए उसकी सौदा करने की शक्ति बहुत होती है और वह श्रमिकों को कम मजदूरी पर कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता है। दूसरे, श्रमिकों की कुल माँग, प्रतियोगिता की अपेक्षा, बहुत कम होती है इसलिए भी श्रमिकों की मजदूरी कम होती है।

(३) तकनीकी प्रगति में रुकावट (Hinderance in the technical progress)—प्रतियोगिता के अभाव में एकाधिकारी पुरानी मशीनों से काम चलाता है, वह सुधरी हुई तथा नवीनतम मशीनों के प्रयोग की चिन्ता नहीं करता। इस प्रकार वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति में बाधा पड़ती है।

(४) नयी पूँजी तथा उपक्रम में बाधा (Obstacle to the new capital and enterprise)—नये उत्पादकों के लिए एकाधिकारी या बड़े संयोग के समक्ष उनके क्षेत्र में प्रवेश करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त एकाधिकारी उचित या अनुचित (fair or unfair) रीतियों द्वारा नये उत्पादकों को प्रवेश करने से रोकता है। इस प्रकार पूँजी निर्माण तथा उपक्रम में बाधा पड़ती है। उद्योगों में नये खून (new blood) के प्रवेश न कर सकने से औद्योगिक प्रगति रुकती है।

(५) अकुशलता की सम्भावना (Possibility of inefficiency)—एकाधिकार अपने क्षेत्र में अकेला होता है और जब उसे अपनी एकाधिकारी शक्ति की सुरक्षा के सम्बन्ध में विश्वास हो जाता है तो वह सुस्त हो जाता है। प्रतियोगिता के अभाव में उसमें मितव्ययिता को प्राप्त करने तथा कुशलता को बढ़ाने के लिए प्रेरणा नहीं रह जाती है।

(६) फर्मों के संयोग की बुराइयाँ (Evils of the combination of firms)—प्राय कई फर्मों के संयोग से एकाधिकारी स्थिति उत्पन्न होती है। (i) संयोग में प्रत्येक फर्म को उत्पादन का निश्चित कोटा (quota) दिया जाता है, इस प्रकार संयोग में फर्मों को अपनी पूर्ण क्षमता से कम काम करना पड़ता है और कुछ उत्पादक-साधन अप्रयुक्त (unutilised) रह जाते हैं। (ii) दूसरे कोटा प्रणाली के परिणामस्वरूप संयोग में कई अकुशल फर्में भी काम करती रहती हैं, और कुशल फर्में, अकुशल फर्मों को जीवित रखने के लिए, अपनी पूर्ण क्षमता से कम उत्पादन करती हैं। ऐसी स्थिति समाज के लिए अहितकर है।

(७) धन का असमान वितरण (Unequal distribution of wealth)—एकाधिकारी के आर्थिक साधन बहुत होते हैं, वे धनवान होते हैं तथा और अधिक धनवान होते जाते हैं। इस प्रकार कुछ एकाधिकारियों के हाथ में धन केन्द्रित हो जाता है और समाज में धन का वितरण असमान हो जाता है।

(८) राजनैतिक भ्रष्टाचार (Political corruption)—एकाधिकारी प्राय सरकारी अफसरों को रिश्वत या अन्य प्रलोभन देकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं—इससे राजनीतिक तथा सामाजिक भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है।

एकाधिकार का नियन्त्रण
(CONTROL OF MONOPOLY)

जहाँ एकाधिकार से लाभ हैं वहाँ इससे हानियाँ भी हैं। समाज के हित में एकाधिकारी प्रवृत्ति को नियन्त्रित करना आवश्यक है। एकाधिकार के नियन्त्रण की कई रीतियाँ हैं, परन्तु उनमे कोई रीति भी पूर्ण से सफल सिद्ध नही हुई है। नियन्त्रण की मुख्य रीतियाँ निम्न हैं :

(१) संयोग-विरोधी या एकाधिकार-विरोधी कानून (*Anti-combination or anti monopoly laws*)—ऐसे कानूनो के प्राय दो उद्देश्य होते हैं (अ) एकाधिकार को स्थापित होने से रोकना, तथा (ब) स्थापित हो जाने की दशा म समाप्त कर उसे छोटी-छोटी इकाइयो में विकेन्द्रित कर देना। इन दोनो उद्देश्यो की दृष्टि से अमरीका म एकाधिकार विरोधी कानून बनाये गये है, जैसे—शर्मन एण्टी ट्रस्ट ऐक्ट, १८९० (Sherman Anti-trust Act, 1890), क्लेटन ऐक्ट, १९१४ (Clayton Act, 1914) रोबिन्सन पैकमैन ऐक्ट, १९३६ (Robbinson-Packman Act, 1936), फेडरल ट्रेड एण्ड कॉमर्स ऐक्ट (Federal Trade and Commerce Act), इत्यादि। परन्तु इन कानूनो के होने पर भी अमरीका मे एकाधिकारी प्रवृत्ति रही है और आज भी है। भारत मे Monopoly and Restrictive Trade Practices Act, 1969 के अनुसार एकाधिकारी प्रवृत्तियो पर अकुश रखा जा रहा है।

इसी प्रकार इगलैण्ड मे भी एकाधिकारी प्रवृत्ति को रोकने के लिए नियम बनाये गये हैं। इंगलैण्ड मे १९४८ के एक्ट के अन्तर्गत एक 'मनोपलीज कमीशन' (*Monopolies Commission*) की स्थापना की गयी है जो एक-फर्म एकाधिकारी स्थिति (*single-firm monopoly*) की देखभाल करता है। इसी प्रकार रेस्ट्रिक्टिव प्रेक्टिसेज एक्ट, १९५६ (Restrictive Practices Act, 1956) फर्मों को मिलने से रोकता है अर्थात् व्यापारिक समझौतों को रोकने का प्रयत्न करता है।

परन्तु एकाधिकारी-विरोधी नियमो के होने पर भी एकाधिकारी प्रवृत्ति पनपती रहती है और ये नियम अधिक सफल नही हो पाते है। इसके कई कारण है। जब एक प्रकार का सयोग गैर-कानूनी घोषित कर दिया जाता है तो फर्में दूसरे प्रकार का सयोग बना लेती है। दूसरे, बड़ी-बड़ी फर्मो के बीच गुप्त समझौते हो जाते हैं और ऐसी एकाधिकारी स्थिति को कानून द्वारा निबटना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

(२) प्रतियोगिता को बनाये रखने के उपाय (*Measures for maintaining competition*)—एकाधिकारी प्राय अनुचित तथा गैर-कानूनी रीतियो (*unfair and illegal practices*) द्वारा नयी फर्मों के प्रवेश को रोकता है ताकि एकाधिकारी जड़ें मजबूत बनी रहे। इसलिए यदि ऐसी रीतियाँ अपनायी जायें जिनसे नयी फर्में एकाधिकारी के क्षेत्र म प्रवेश कर सकें तथा इस प्रकार प्रतियोगिता को बनाये रखा जा सके तो एकाधिकारी प्रवृत्तिया नही पनप पायेंगी। इस दृष्टि से निम्न उपाय किये जा सकते है (i) अनुचित रीतियो (unfair practices) पर नियन्त्रण किया जाये। कण्ठ-छेदी प्रतियोगिता (cut throat competition) द्वारा एकाधिकारी प्रतियोगियो का प्रवेश नही होने देते हैं, वे वस्तु की कीमत बहुत गिराकर प्रतियोगियो को भगा देते हैं और तत्पश्चात् पुन कीमतें ऊँची करके अपनी हानि का पूरा कर लेते है। प्रो० पीगू के अनुसार इस प्रकार की कुरीतियो (*malpractices*) पर कानून द्वारा नियन्त्रण आशिक सफलता ही प्राप्त कर पाता है। (ii) प्रो० मीड (*Prof Meade*) के अनुसार, *'कर तथा आर्थिक सहायता'* (Taxes and Subsidies) द्वारा प्रतियोगिता की स्थिति को बनाये रखा जा सकता है। एकाधिकारियो पर कर लगाकर उससे प्राप्त धन को नयी फर्मों को आर्थिक सहायता देकर नयी फर्मों के प्रवेश को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

(३) उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित रखने के उपाय (Measures for safeguarding the interests of the consumers)—इसके अन्तर्गत हम अग्र चार रीतियो का वर्णन करते हैं।

(i) सरकार एकाधिकारियों के लाभों तथा कीमतों को नियन्त्रित (controlling the profits and prices) कर सकती है ताकि उपभोक्ताओं का शोषण न हो सके। परन्तु व्यवहार में एक ऐसी कीमत को निर्धारित करना कठिन होता है जो उपभोक्ताओं तथा एकाधिकारी दोनों के लिए उचित (fair) हो। (ii) सरकार एकाधिकारी को वस्तु की उचित किस्म (reasonably good quality) को बनाये रखने के लिए बाध्य कर सकती है। परन्तु ऐसा करना भी इतना आसान नहीं है जैसा कि प्रतीत होता है। (iii) सरकार एकाधिकार की कार्यवाहियों को जनता के लिए प्रकाशित (publicity about monopolistic activities for the public) करके एकाधिकारी की अनुचित कार्यवाहियों के प्रति कड़े जनमत (strong public opinion) का निर्माण कर सकती है। (iv) एकाधिकारी के शोषण से बचने तथा अपनी सौदा करने की शक्ति बढ़ाने के लिए उपभोक्ता 'उपभोक्ता संघ' (Consumers Association) का निर्माण कर सकते हैं। परन्तु व्यवहार में उपभोक्ताओं का एक प्रभावपूर्ण संघ बनाना कठिन होता है।

(४) सरकारी स्वामित्व या राष्ट्रीयकरण (Public ownership or nationalisation)—एकाधिकारी नियन्त्रण का एक प्रभावपूर्ण तरीका एकाधिकारी व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण करना बताया जाता है। सरकार स्वयं उन व्यवसायों पर अपना स्वामित्व रखे तथा उन्हें चलाये जिनमें एकाधिकारी प्रवृत्तियों का डर हो। सरकार को सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं पर अपना स्वामित्व तथा नियन्त्रण रखना चाहिए। राष्ट्रीयकरण की नीति का प्रायः उन देशों में आसानी से पालन किया जा सकता है जहाँ पर सार्वजनिक क्षेत्र (public sector) हो, जैसे ब्रिटेन, भारत, इत्यादि। परन्तु राष्ट्रीयकरण के भी दोष हैं। प्रथम, सार्वजनिक एकाधिकारों (public monopolies) में प्रायः राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा प्रबन्ध की अकुशलता पायी जाती है। सार्वजनिक एकाधिकार 'सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं' (public utility services) में उचित रहते हैं या उन व्यवसायों में ठीक रहते हैं जिनमें सीधा-साधा कार्य (routine work) रहता है और वस्तु का बाजार सुरक्षित रहता है। दूसरे, यदि सरकार बहुत से क्षेत्रों में एकाधिकारी शक्ति प्राप्त कर लेती है तो इससे लोकतान्त्रिक व्यवस्था को भय हो सकता है।

विकास या विस्तार की रीतियाँ
(METHODS OF GROWTH)

एक फर्म अपने विस्तार या विकास के लिए दो रीतियों का प्रयोग कर सकती है। प्रथम, वह अपने प्लाण्ट (plant) का विस्तार कर सकती है। इस रीति द्वारा वह अपनी उत्पादन-क्षमता (capacity) में वृद्धि करती है, इसके परिणामस्वरूप उद्योग की उत्पादन-क्षमता में भी वृद्धि होती है। दूसरे, एक फर्म दूसरी फर्मों से मिलकर या संयोग (combination) द्वारा अपना विस्तार कर सकती है। इस नीति के अन्तर्गत उद्योग के स्वामित्व तथा नियन्त्रण के स्वरूप (pattern) में परिवर्तन होता है, उद्योग की उत्पादन क्षमता में परिवर्तन नहीं होता। दोनों रीतियों की अपनी-अपनी समस्याएँ तथा परिणाम हैं। इन दोनों रीतियों में दूसरी रीति अधिक जटिल है। इस रीति द्वारा फर्मों को एक सीमा तक एकाधिकारी शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस कारण प्रत्येक देश में संयोगीकरण (Combination) को रोकने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं तथा कानून बनाये जाते हैं।

संयोगीकरण द्वारा फर्मों के विस्तार की अनेक रीतियाँ हैं अर्थात् संयोगीकरण के अनेक रूप (forms) होते हैं। एक ओर यह अत्यन्त साधारण हो सकता है तथा इसका क्षेत्र सीमित हो सकता है, दूसरी ओर यह अधिक जटिल हो सकता है तथा इसका क्षेत्र विस्तृत हो सकता है। संयोगीकरण की मुख्य रीतियों तथा रूपों का विवरण नीचे दिया जाता है

(१) पारस्परिक सहमति अथवा सादा या अनौपचारिक समझौता (Mutual understanding or informal agreements)—ढीले या सादा रूप में फर्में 'पारस्परिक सहमति' अथवा 'अनौपचारिक समझौतों' द्वारा मिलकर आपसी प्रतियोगिता को समाप्त करती हैं। (i) सम्मिलित

इत्यादि द्वारा फर्में एक-दूसरे से सम्बन्धित हो सकती हैं। इन 'व्यक्तिगत सम्बन्धों' (personal links) के कारण फर्मों के उत्पादन, मजदूरी तथा कीमतों के सम्बन्ध में एकसी नीतियों (common policies) को अपनाया जा सकता है। (ii) इन 'व्यक्तिगत सम्बन्धों' के अतिरिक्त 'व्यावसायिक शिष्टाचार' (trade etiquetes) या पारस्परिक सहमति के कारण भी फर्में एकसी नीतियों (common policies) को अपनाती हैं। फर्में, 'पारस्परिक सहमति' या 'अनौपचारिक समझौतों' द्वारा यह भी निश्चित कर लेती हैं कि प्रत्येक फर्म विभिन्न बाजारों में वस्तु की कितनी मात्रा की पूर्ति करेगी तथा किस कीमत पर वस्तु को बेचेगी। ये समझौते केवल 'सज्जन व्यक्तियों के समझौतों' (gentlemen's agreements) की भाँति होते हैं।

इन 'पारस्परिक-सहमतियों' तथा 'अनौपचारिक समझौतों' में 'व्यावसायिक संघ' (Trade Associations) महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। ये संघ व्यापारियों को एक-दूसरे से अधिक निकट लाते हैं और 'जीओ तथा जीने दो' (Live and let live) की नीति का पालन करने के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करते हैं। ये संघ लागतों, कीमतों, उत्पादन, इत्यादि के सम्बन्ध में फर्मों को सूचना देकर उन्हें उत्पादन को सीमित करने तथा निश्चित कीमतों को बनाये रखने में सहयोग देते हैं, अर्थात् इन सूचनाओं के आधार पर उत्पादन तथा कीमतों के सम्बन्ध में फर्में सामान्य नीतियों (common policies) को अपना सकती हैं।

यद्यपि ये समझौते बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं होते, परन्तु एक सीमा तक ये समझौते गलाकाट प्रतियोगिता समाप्त कर विनियोजित पूँजी पर उचित लाभों को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं। इन समझौतों द्वारा अकुशल फर्मों तथा उत्पादन की अकुशल रीतियों का निराकरण (elimination) नहीं होता तथा तकनीकी सुधार नहीं हो पाते। कम उत्पादन कर तथा ऊँची कीमतें रखकर फर्में उपभोक्ताओं का शोषण करती हैं।

संकीर्ण अर्थ में इन समझौतों को 'संयोगीकरण' (Combination) नहीं कहा जा सकता। परन्तु ये समझौते 'नियन्त्रण के केन्द्रीयकरण' (Concentration of Control), जो कि 'संयोगीकरण' की मुख्य विशेषता है, के निकट ले जाते हैं।

(२) **औपचारिक समझौते (Formal agreements)**—कभी-कभी फर्में ढीले अथवा सादा या अनौपचारिक समझौते न करके अधिक कड़े तथा 'औपचारिक समझौते' करती हैं। इन 'औपचारिक समझौतों' के अन्तर्गत विभिन्न फर्में प्रायः बिक्री की कीमतों तथा वस्तु को बेचने के बाजारों के सम्बन्ध में समझौते करती हैं। औपचारिक समझौतों द्वारा फर्में बाजारों का बँटवारा (sharing of markets) कर लेती हैं। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण 'जहाजरानी सम्मेलन' (Shipping Conferences) या 'जहाजरानी रिंग' (Shipping Rings) है, इनमें जहाजरानी कम्पनियाँ विभिन्न जलमार्गों पर लिये जाने वाले भाड़ों के सम्बन्ध में ही समझौता नहीं करती वरन् प्रत्येक जहाजरानी कम्पनी का क्षेत्र तथा विभिन्न जलमार्गों पर चलने वाले जहाजों की संख्या निश्चित कर दी जाती है।

औपचारिक समझौतों के अन्तर्गत कभी-कभी कुल उत्पादन को सीमित किया जाता है और प्रत्येक फर्म को कुल उत्पादन का एक निश्चित कोटा (quota) दिया जाता है।

पूल (Pool) भी एक प्रकार का औपचारिक समझौता होता है। (i) इसके अन्तर्गत वस्तु की कीमत तथा लाभ-दर निश्चित कर दी जाती है और प्रत्येक उत्पादन का क्षेत्र या बाजार भी निश्चित कर दिया जाता है। (ii) एक कोष (fund) की स्थापना की जाती है जिसमें सदस्य-फर्में अपनी उत्पत्ति के अनुपात में या निश्चित योजना के अनुसार धनराशि जमा करती हैं। इस धनराशि को प्रत्येक सदस्य फर्म में एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार बाँटा जाता है। (iii) अन्य औपचारिक समझौतों की भाँति 'पूल' का उद्देश्य भी प्रतियोगिता को कम करना होता है। ये संयोग सुगमता से बनाये जा सकते हैं और सुगमता से तोड़े जा सकते हैं।

(३) **कार्नर (Corner)**—यह एक ढीला संयोग होता है जिसमें कुछ फर्में मिलकर वस्तु विशेष की पूर्ति पर इस प्रकार नियन्त्रण करती हैं कि उसका अधिक मूल्य प्राप्त कर सकें। परन्तु

आधुनिक युग में उन्नत यातायात व सन्देशवहन के साधनों के कारण इस प्रकार के प्रयत्न सफल नहीं हो पाते है, मूल्य के अधिक बढ़ जाने पर अन्य स्थानों से वस्तु मँगाकर वस्तु की पूर्ति कर ली जाती है।

(४) कारटेल (Cartel)—कारटेल जर्मनी मे अधिक प्रचलित रहे हैं। कारटेल समान व्यवसाय करने वाली स्वतन्त्र फर्मों का सगठन होता है जो कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति तथा पारस्परिक संरक्षण और लाभ की दृष्टि से बनाया जाता है। कारटल प्राय वस्तु की कीमत का नियन्त्रण तथा समस्त फर्मों की उत्पादित वस्तु के विक्रय का कार्य करता है। 'वे सघ जो न केवल कीमत निर्धारित करते हैं या न केवल कोटा का वितरण करते हैं, वरन् विक्रय के व्यवसाय को भी करते हैं, ऐसे सघो को कारटेल कहते हैं।'* एक कारटल अपने सदस्य के लिए विक्रय एजेंसी (selling agency) की भाँति काम करता है, प्राप्त आर्डरों (orders) को एक निश्चित स्वीकृत फार्मूला के अनुसार सदस्य फर्मों म बाँटता है।

परन्तु कारटेल फर्मों या कम्पनियों के आर्थिक प्रबन्ध मे कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। उत्पादन तथा विक्रय कार्य म पृथक्कीकरण (separation) हो जाता है, प्रत्येक फर्म अपना उत्पादन कार्य स्वतन्त्र रूप से अर्द्ध-प्रतियोगिता की दशाओ (semi competitive conditions) म करती हैं जबकि सब बिक्री एक एकाधिकारी एजेन्सी के माध्यम से होती है। एकाधिकारी विक्रय (monopoly sales) द्वारा प्राप्त लाभ या हानि को सदस्य फर्मों म उत्पादन मात्रा के अनुपात म बाँट दिया जाता है।

ट्रस्टों की भाँति कारटेल शक्तिशाली नहीं होते। ये अस्थायी सगठन होते हैं। जब अलग-अलग लाभ अर्जित करने के अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं तो सदस्य फर्में कारटल से पृथक हो जाती हैं। ट्रस्ट की भाँति कारटेल मे अति पूँजीकरण (over capitalisation) का भय नहीं होता।

(५) ट्रस्ट (Trusts)—कारटेल, अनौपचारिक तथा औपचारिक समझौते 'वास्तविक संयोगीकरण' (actual combination) नहीं कहे जा सकते। ये सगठन केवल अस्थायी होते हैं और कभी भी समाप्त किये जा सकते हैं, जबकि ट्रस्ट एक स्थायी तथा बहुत शक्तिशाली सगठन होता है। ट्रस्ट प्राय अमरीका मे पाये जाते हैं।

जब कई फर्में वैधानिक रूप से मिलकर एक नयी फर्म को जन्म देती हैं जो इतनी बड़ी तथा शक्तिशाली होती हैं कि एकाधिकार शक्ति अर्जित कर लेती हैं तो ऐसे संयोग या फर्म को ट्रस्ट कहा जाता है।

ट्रस्ट का निर्माण कई प्रकार से हो सकता है। (i) कई फर्मों का पूर्ण रूप से विलयन (merger) होकर, ऐसी स्थिति म मिलने वाली फर्में अपना स्वतन्त्र तथा वैधानिक अस्तित्व खो बैठती हैं और बिलकुल एक नयी फर्म का जन्म होता है। चूँकि फर्में पूर्ण रूप से विलय (merge) कर जाती हैं, इसलिए इसे विलियन (merger) भी कहते हैं। (ii) कई फर्मों का नियन्त्रण-अधिकार (controlling interest) एक फर्म को हस्तान्तरित होकर भी ट्रस्ट का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों म एक फर्म या कम्पनी अन्य कम्पनियो के अधिकांश अंशों को खरीदकर कई कम्पनियों का नियन्त्रण अधिकार प्राप्त कर सकती है, जो फर्म नियन्त्रण अधिकार प्राप्त कर लेती है उसे होल्डिंग कम्पनी (holding company) कहा जाता है तथा संयोग की अन्य कम्पनियो को 'सहायक कम्पनियाँ' (subsidiary companies) कहा जाता है। नियन्त्रण-अधिकारों के एकीकरण द्वारा निर्मित ट्रस्ट के अन्तर्गत सहायक कम्पनियाँ अपना पृथक वैधानिक अस्तित्व तथा कुछ सीमा तक स्वतन्त्रता को बनाये रख सकती हैं।

---

* Association which not only fix prices or allot quotas but also undertake the business of marketing are called cartels"

कारटेल तथा ट्रस्ट की तुलना
(Comparison of Cartels and Trusts)

कारटेल	ट्रस्ट
१. कारटेल का उद्देश्य एकाधिकारी शक्ति द्वारा ऊँची कीमतें प्राप्त कर लाभ को अधिकतम करना होता है।	१ ट्रस्ट का भी यही उद्देश्य होता है।
२ कारटेल म प्राय कुशलता का स्तर निम्न रहता है। कारटेल के अन्तर्गत संयोग म सम्मिलित होने वाली सभी इकाइयों का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है तथा अकुशल फर्में भी जीवित रहती हैं। उत्पादन कार्य अलग-अलग कम्पनियों के हाथ मे रहता है केवल वितरण कारटेल द्वारा होता है। इसके अन्तर्गत केवल विपणन सम्बन्धी बचतें (marketing economies) ही प्राप्त की जा सकती हैं। कारटेल उत्पादन का पुनर्संगठन कर कुशलता मे अधिक वृद्धि नही कर पाता है।	२ ट्रस्ट म कुशलता का स्तर प्राय ऊँचा रहता है। ट्रस्ट के अन्तर्गत संयोग मे सम्मिलित होने वाली कम्पनियों का प्राय पूर्ण विलयन (merger) हो जाता है; केवल 'होल्डिंग कम्पनी' (holding company) की दशा म कम्पनियों का पृथक-पृथक अस्तित्व रहता है। ट्रस्ट म उत्पादन तथा वितरण दोनों का कार्य एक नियन्त्रण (single control) में होता है। इसलिए ट्रस्ट अकुशल फर्मों को समाप्त कर सकता है, फर्मों की उत्पादन पद्धति मे एकता ला सकता है, नयी उत्पादन विधियों को अपना सकता है, कुछ इकाइयों मे विशिष्टीकरण की नीति अपना सकता है। इस प्रकार उत्पादन को अच्छी प्रकार से पुनर्संगठित करके अधिक कुशलता प्राप्त की जाती है। इस प्रकार एक ट्रस्ट, कारटेल की अपेक्षा, प्राय अधिक कुशल होता है। परन्तु इस कुशलता का नीची कीमतों के रूप म लाभ उपभोक्ताओं को नही मिलता, ट्रस्ट के लाभ मे वृद्धि हो जाती है।
३ कारटल मे फर्मों का संयोग अस्थायी होता है। मिलने वाली फर्मों का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और इसलिए वे कभी भी पृथक् हो सकती हैं।	३ ट्रस्ट मे फर्मों का संयोग प्राय स्थायी होता है। प्राय फर्मों का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह जाता है और इसलिए फर्मों के पृथक होने का प्रश्न ही नहीं रह जाता।
४ कारटेल में उद्योग की प्राय सभी फर्में सम्मिलित हो जाती हैं। इस दृष्टि से कारटेल अधिक एकाधिकारी शक्ति अर्जित कर लेता है। परन्तु कारटेल के अन्तर्गत बहुत अधिक स्वतन्त्र तथा बिखरी हुई फर्में होती हैं, इसलिए एकाधिकारी शक्ति का प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण ढग से नही हो पाता है।	४ ट्रस्ट में उद्योग की सभी फर्में प्राय सम्मिलित नहीं होतीं। इस दृष्टि से ट्रस्ट की एकाधिकारी शक्ति अपेक्षाकृत कम प्रतीत होती है। परन्तु ट्रस्ट के अन्तर्गत फर्मों का पूर्ण विलयन हो जाता है, एक प्रबन्ध (single control) होता है, इसलिए ट्रस्ट कारटेल की अपेक्षा, एकाधिकारी शक्ति का अधिक प्रभावपूर्ण तरीके से प्रयोग कर सकता है।

कारटेल	ट्रस्ट
५ कारटेल की स्थापना में अपेक्षाकृत कम खर्चा पड़ता है। एकाधिकारी विक्रय व्यवस्था के लिए फर्मों में समझौता होना आसान होता है और इसमे अधिक खर्चा नही पड़ता।	५ ट्रस्ट का निर्माण बहुत अधिक खर्चीला (expensive) होता है। कभी-कभी ट्रस्ट के सगठनकर्ताओं को उन प्रतियोगी फर्मों को, जो सयोग म शामिल होने की इच्छुक नहीं होतीं, बहुत ऊँची कीमतें देकर खरीदना पड़ जाता है। प्रतियोगिता को समाप्त करने के लिए कभी-कभी पुरानी मशीनो या प्रयोग करने वाली अकुशल फर्मों को खरीदने में भी बहुत अधिक कीमतें चुकानी पड़ती हैं।

विकास या विस्तार की दिशा
(DIRECTION OF GROWTH)

एक फर्म का विकास दो प्रकार से होता है (१) प्लाण्ट के विस्तार (plant extension) के द्वारा जिससे उत्पादन क्षमता म वृद्धि होती है, तथा (२) सयोगीकरण (combination) द्वारा। इस सम्बन्ध मे 'विकास की दिशा' (direction of growth) को भी समझ लेना आवश्यक है, चाहे फर्म का विकास 'प्लाण्ट के विस्तार' द्वारा हो या 'सयोगीकरण' द्वारा, सामान्यतया, विकास के परिणामस्वरूप फर्म की जगह (site) या फर्म के कार्य करने के क्षेत्र (scope of the operations) मे परिवर्तन होते है। इन परिवर्तनो को 'एकीकरण' (*integration*) या 'पृथक्कीकरण' (*disintegration*), 'विसरण' (*diffusion*) या 'एकत्रीकरण' (*concentration*) कहते हैं। 'एकीकरण का अर्थ' उन परिवर्तनो से है जिनसे नयी वस्तुओं तथा नयी उत्पादन विधि मे वृद्धि होती है।[5] जबकि 'पृथक्कीकरण का अर्थ' उन परिवर्तनो से है जिनके परिणामस्वरूप एक फर्म कम प्रकार की वस्तुएं बनाती है या उत्पादन विधियो मे कमी करती है।[6] जब फर्म देश के अन्य भागों मे कारखानो का निर्माण करने या खरीदने के लिए अधिक सख्या म स्थानो (sites) का प्रयोग करती है तो इसे 'विसरण' (diffusion) कहा जाता है।[7] इसके विपरीत जब एक फर्म, देश के अन्य भागो मे कुछ कारखानो (establishments) को बन्द करके एक कारखाने का विकास करती है तो इसे 'एकत्रीकरण' (*concentration*) कहते हैं।[8]

एकीकरण कई दिशाओं में हो सकता है। एक फर्म क्षैतिज रूप से (horizontally) विकसित हो सकती है अर्थात् वह ऐसी फर्मों के साथ मिल सकती है जो एक ही तरह की वस्तुएँ (similar products) बना रही हों। एक फर्म शीर्ष रूप से (vertically) विकसित हो सकती है अर्थात् वर्तमान निर्माण-विधियों से सम्बन्धित ही अन्य विधियो को ही अपनाया जा सकता है। एक फर्म पार्श्व (या तिरछे) रूप से (laterally) विकसित हो सकती है अर्थात् उत्पादित वस्तुओं की सूची मे या वस्तुओ की विविधता मे विस्तार कर सकती है। एक फर्म प्रादेशिक रूप से (*territorially*) विकसित हो सकती है अर्थात् एक बड़े क्षेत्र या प्रदेश (wider area) में अपने कार्य को फैला सकती है। 'एकीकरण' की इन विभिन्न विधियो का हम आगे थोड़े विस्तार से विवेचन करते हैं।

[5] The term 'integration' is applied to 'changes which add to new products and processes'"

[6] The term 'disintegration' applies to '*changes in the direction of few products and processes*'"

[7] "The use of a larger number of sites when the firm builds or buys factories in other parts of the country, is called *diffusion*"

[8] "The enlargement of one establishment accompanied by the closing down of establishments in other parts of the country is called 'concentration'."

(१) क्षैतिज एकीकरण (Horizontal Integration)

क्षैतिज एकीकरण म फर्म के द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा म वृद्धि होती है न कि उसकी किस्मो मे। क्षैतिज एकीकरण के अन्तर्गत वस्तु की किस्म या उत्पादन विधि मे परिवर्तन हुए बिना प्लाण्ट (plant) के विस्तार द्वारा वस्तु की उत्पत्ति मे वृद्धि होती है या इसके अन्तर्गत एकसी वस्तुओ का निर्माण करने वाली फर्मों का सयोग होता है।"[9] उदाहरणार्थ, एक चीनी फर्म नयी मशीनें इत्यादि लगाकर अपने प्लाण्ट का विस्तार करके चीनी उत्पादन को बढा सकती है या अन्य चीनी मिलो के साथ मिल सकती है और इस प्रकार चीनी उत्पादन को बढा सकती है।

जब एक फम किसी व्यवसाय विशेष म सफलता प्राप्त करती है तो यह स्वाभाविक है कि वह इसी व्यवसाय को और अधिक बढाय। यदि एक फर्म कीमत-कटौती या व्यवसाय की हानि से सुरक्षा चाहती है तो वह अपने व्यवसाय को अन्य फर्मों से मिलान का प्रयत्न करती है।

क्षैतिज एकीकरण से कई लाभ उत्पादकों को प्राप्त होते हैं (i) क्षैतिज एकीकरण के अन्तर्गत मिलने वाली फर्मों को बडे पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं। (ii) फर्मों को एकाधिकारी शक्ति प्राप्त होती है। (iii) क्षैतिज एकीकरण प्रभावशाली सिद्ध होता है क्योकि वह एकसी वस्तु बनाने वाली फर्मों का सगठन होता है। (iv) क्षैतिज एकीकरण सरल होता है और फर्में प्राय इसे अपनाती हैं।

(२) शीर्ष एकीकरण (Vertical Integration)

अर्थ (Meaning)—"शीर्ष एकीकरण उन उत्पादन विधियों के क्रम (sequence of processes) का मिलन (union) है जो पहले अलग-अलग फर्मों द्वारा सम्पन्न की जाती थीं।"[10]

तीन रूप (Three forms)—शीर्ष एकीकरण के तीन रूप हो सकते हैं (i) प्रथम, 'पीछे की ओर एकीकरण' (backward Integration) या 'आगे की ओर एकीकरण' (forward integration) हो सकता है। 'पीछे की ओर एकीकरण' का अर्थ है कि फर्म कच्चे माल की उत्पादन क्रिया (जो कि फम के पीछे की ओर कही जा सकती है) को भी सम्मिलित कर लेती है। (इसके विपरीत 'आगे की ओर एकीकरण' का अर्थ है कि फर्म अपनी उत्पादित वस्तु का क्रय करने वाली फर्मों के साथ मिलन (union) स्थापित करती है अर्थात् फर्म अपने बाजार (जो कि फर्म के आगे की ओर कहा जा सकता है) का एकीकरण करती है। उदाहरणार्थ, एक इस्पात फर्म उत्पादन की पिछली दशा (previous stage) को अपना सकती है, जैसे अग्नि भट्टियाँ (blast furnaces) बना सकती है खानो से कच्चे माल को निकालने की क्रिया स्वय ले सकती है, यह 'पीछे की ओर एकीकरण' हुआ, या फर्म अपनी रोलिंग मिलें (rolling mills) स्थापित कर सकती है अपने इस्पात का क्रय करने वाली फर्मों के साथ सयोग स्थापित कर सकती है, यह 'आगे की ओर एकीकरण हुआ। इस प्रकार के एकीकरण के उद्देश्य भिन्न होते हैं। 'आगे की ओर एकीकरण' का उद्देश्य सामान्यतया बाजार की वृद्धि करना होता है। मन्दी (depression) के समय मे 'आगे की ओर एकीकरण' अधिक लाभदायक होता है तथा तेजी (boom) के समय मे 'पीछे की ओर एकीकरण' अधिक हितकर रहता है। (ii) दूसरे मुख्य वस्तु को बनाने के लिए आवश्यक वस्तुओ तथा सेवाओ को बाहर से न खरीदकर फर्म उन्हें बना सकती है। उदाहरणार्थ, फर्म स्वय अपनी विद्युत-शक्ति का उत्पादन कर सकती है या मरम्मत के लिए अपनी वर्कशाप तथा अपने निजी डिजाइन या औजार बनाने की व्यवस्था कर सकती है। (iii) तीसरे, अपने माल के विक्रय की पूर्ण व्यवस्था फर्म स्वय करती है।

---

[9] "Horizontal integration "may take the form of an extension of plant and an accompanying increase in output without change of product or process, or alternatively, it may consist of the combination of firms making similar products"

[10] "Vertical integration is the union of sequence of processes formerely carried on by separate firms"

लाभ (Advantages)—शीर्ष एकीकरण के कई लाभ हैं (i) शीर्ष एकीकरण कच्चे माल की पूर्ति की अनिश्चितता या असफलता (failure) की जोखिम को दूर करता है। चूंकि कच्चे माल की पूर्ति के साधन स्वयं फर्म के स्वामित्व में होते हैं इसलिए पूर्ति निश्चित तथा नियमित रहती है। (ii) उत्पादन के विभिन्न चरण या विभिन्न कड़ियाँ एक ही स्वामित्व तथा नियन्त्रण में होती है, इससे उन्नत उत्पादन विधियों तथा आविष्कारों को अधिक प्रोत्साहन मिलता है। (iii) उत्पादन की एक 'एकीकृत नीति' (integrated policy of production) को अपनाया जा सकता है। उत्पादन के प्रत्येक चरण का पिछले तथा अगले चरणों के साथ उचित सम्बन्ध बनाये रखा जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन के विभिन्न चरणों में एक एकीकृत ताल-मेल (integrated relationship) बना रहता है। (iv) उत्पादन के विभिन्न चरणों का एक नियन्त्रण (single control) होने के कारण फर्म को 'सम्बन्धित विधि' (linked process) की बचतें प्राप्त होती हैं तथा उत्पादन की कुल योजना को अधिक विवेकपूर्ण तरीके से बनाया जा सकता है।

कठिनाइयाँ (Difficulties)—शीर्ष एकीकरण के अपनाने में कई कठिनाइयाँ होती हैं (i) उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं की तकनीक की पूरी जानकारी न होने के कारण फर्म शीर्ष एकीकरण को नहीं अपना पाती है। (ii) शीर्ष एकीकरण के लिए पूँजी बहुत बड़ी मात्रा में चाहिए जो कि आसानी से नहीं मिलती है। इन कठिनाइयों के कारण शीर्ष एकीकरण की ओर प्रवृत्ति, क्षैतिज एकीकरण की अपेक्षा, कम शक्तिशाली रहती है।

(३) पार्श्वीय एकीकरण (Lateral Integration)

"पार्श्वीय एकीकरण का अर्थ है अन्य वस्तुओं या अन्य किस्मों की वस्तुओं का उत्पादन।"[11] उदाहरणार्थ, जब रेलवे अपनी बस सर्विस, अपने होटल तथा जलपान गृह (refreshment rooms) इत्यादि की व्यवस्था करती है तो ये सेवाएँ पार्श्वीय एकीकरण के अन्तर्गत होंगी, इसके विपरीत, यदि रेलवे स्वयं अपना इन्जन बनाती है तो *यह क्रिया शीर्ष एकीकरण के अन्तर्गत* होगी।

पार्श्वीय एकीकरण के अन्तर्गत ग्राहकों को सहायक सेवाएँ या विभिन्न प्रकार की वस्तुएं देकर व्यापारिक सम्बन्धों का अधिकतम लाभ उठाया जाता है। केवल उन उद्योगों को छोड़कर जिनमें अत्यन्त प्रमापित वस्तुएं (highly standardised products) होती हैं, पार्श्वीय एकीकरण उतना ही प्रचलित [illegible] कि क्षैतिज एकीकरण।

प्रश्न

१. एकाधिकार की परिभाषा दीजिए। इसके आर्थिक परिणामों की विवेचना कीजिए।
   Define monopoly. Discuss its economic consequences

२. क्या एकाधिकारों का सदैव ही समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है ? अपने मत की पुष्टि करने के लिए उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।
   Do monopolies always have bad effects on society ? Give suitable examples to support your view point (*Meerut B Com*, 1968, *Raj, IIyr, Com*, 1968)

   [संकेत—सर्वप्रथम संक्षेप में एकाधिकार का अर्थ बताइए, तत्पश्चात् बताइए कि एकाधिकारों का सदैव ही समाज पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, उसके कुछ अच्छे प्रभाव भी हैं, दूसरे शब्दों में, एकाधिकार के लाभों तथा हानियों की विवेचना कीजिए।]

३. एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन के क्या दुष्परिणाम हैं ? क्या आप एकाधिकार के कुछ आर्थिक लाभ बता सकते हैं ? एकाधिकार पर नियन्त्रण कैसे किया जा सकता है ?
   What are evils of production under monopoly ? Can you indicate some economic advantages of monopoly How can monopolies be controlled ? (*Sagar*, 1967)

---

[11] "Lateral Integration is the turning out of additional products or styles of products."

४. एकाधिकार की परिभाषा दीजिए। एकाधिकारी शक्ति के आधार क्या हैं ? एकाधिकार के निर्माण के क्या उद्देश्य होते है ?
Define monopoly What are the foundations of monopoly power ? What are the *motives behind the formation of a monopoly ?*

५ उदाहरणो सहित समझाइए कि (अ) 'शीर्ष एकीकरण' तथा (ब) 'क्षैतिज एकीकरण' के क्या अर्थ हैं ?
Explain with illustrations what is meant by (a) vertical combination, and (b) horizontal combination *(Bihar, 1967 A)*

६ औद्योगिक सयोगीकरण या एकाधिकारी सयोगीकरण की ओर विकास के क्या प्रयोजन होते हैं ?
What are the motives to growth towards industrial combination or monopolistic combination ?

७ आप कारटेल तथा ट्रस्ट से क्या समझते हैं ? दोनो की तुलना कीजिए।
What do you understand by a cartel and a trust ? Compare the two

पूँजीवाद
[CAPITALISM]

प्राक्कथन (Introduction)

पूँजीवाद अत्यन्त प्राचीन आर्थिक प्रणाली है। अठारहवीं शताब्दी के मध्य इगलैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप पूँजीवाद का जन्म हुआ और उसके पश्चात् यह ससार के अन्य देशो मे फैल गया। यद्यपि समय-समय पर पूँजीवाद को भारी धक्के तथा झटके (heavy blows and jolts) लगे है, परन्तु इसमे परिवर्तन हुए और इसने परिस्थितियो के साथ समायोजन (adjustment) किया। आज पूँजीवाद विशुद्ध रूप (pure form) मे ससार के किसी भी देश मे नहीं पाया जाता। आज भी पूँजीवाद न केवल ससार के अधिकाश उन्नतिशील देशो में ही पाया जाता है वरन् वह ससार के सबसे अधिक धनवान तथा शक्तिशाली देश अमरीका मे सफलतापूर्वक तथा कुशलता से कार्य कर रहा है।

पूँजीवाद की परिभाषा (Definition of Capitalism)

पूँजीवादी प्रणाली मे उत्पत्ति के साधनो पर निजी व्यक्तियो का स्वामित्व होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति रख सकता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतियोगिता की स्थिति के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से अपने व्यवसाय को चुनने मे स्वतन्त्र होता है।

मुख्य विशेषताओ के आधार पर पूँजीवाद की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं। यहाँ पर हम केवल दो मुख्य परिभाषाओ को देते है। लूक्स तथा हूट्स (Loucks and Hoots) के अनुसार, "पूँजीवाद आर्थिक सगठन की ऐसी प्रणाली है जिसमे निजी सम्पत्ति पायी जाती है तथा मनुष्यकृत और प्राकृतिक पूँजी का प्रयोग निजी लाभ के लिए किया जाता है।"[1] इस परिभाषा मे पूँजीवाद की दो मुख्य विशेषताओ 'निजी सम्पत्ति' तथा 'लाभ' पर बल दिया गया है।

पूँजीवाद के आधुनिक रूप की दृष्टि से एक अच्छी परिभाषा डॉ० एम० राईट (D M Wright) ने दी है जो इस प्रकार है, "पूँजीवाद एक ऐसी प्रणाली है जिसमे, औसत तौर पर, आर्थिक जीवन का अधिकांश भाग तथा विशेषतया विशुद्ध नया विनियोग निजी (अर्थात् गैर-सरकारी) इकाइयों द्वारा, सक्रिय और पर्याप्त स्वतन्त्र प्रतियोगिता की दशाओ मे किया जाता है और ऐसा प्राय लाभ की प्रेरणा के अन्तर्गत किया जाता है।"[2]

---

1 "*Capitalism is a system of economic organization featured by the* private ownership and the use for private profit of man-made and nature made capital

2 "Capitalism is a system in which on average, much the greater portion of economic life and particulary of net new investment is carried on by private (*i e*, non-government) units under conditions of active and substantially free competition, and avowedly at least, under the incentive of a hope for profit."

वास्तव मे, पूंजीवाद के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए इसकी विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है।

पूंजीवाद की विशेषताएँ (Characteristics or Features of Capitalism)

पूजीवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं

(१) निजी सम्पत्ति का अधिकार (The right of private property)—पूंजीवाद के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति निजी सम्पत्ति रख सकता है। 'निजी सम्पत्ति का अधिकार' एक व्यापक शब्द है। इसके अन्तगत निम्न तीन बातें आती है—(अ) प्रत्येक व्यक्ति को निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार होता है, (ब) प्रत्येक व्यक्ति निजी सम्पत्ति के प्रयोग करने मे स्वन्त्रत होता है (freedom to use his property), तथा (स) मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति को उत्तराधिकारियो को देने का अधिकार (Right of inheritance) रखता है।

पूजीवाद के अन्तगत निजी सम्पति का अधिकार लोगों को अधिक मेहनत तथा उत्पादन करने की प्रेरणा देता है ताकि वे अधिक धन और सम्पति पर अधिकार प्राप्त कर सकें। उत्तराधिकार के अधिकार के कारण लोग अधिक बचत करते हैं, इससे देश म पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

उपर्युक्त लाभो के साथ निजी सम्पत्ति के अधिकार के कई दोष भी हैं। इससे धन के वितरण मे असमानता बढती है। दूसरे, इससे राजनीतिक भ्रष्टाचार बढता है क्योंकि धन तथा सम्पत्ति के बल पर चुनावो को प्रभावित किया जाता है।

निजी सम्पत्ति के अधिकार का यह अर्थ नही है कि सम्पत्ति-स्वामियो पर किसी प्रकार का भी प्रतिबन्ध या अकुश नही होता है, आधुनिक युग मे इस अधिकार पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध सरकार द्वारा लगाये जाते हैं। परन्तु सामान्यतया सम्पत्ति-स्वामियो को स्वतन्त्रता होती है।

(२) आर्थिक स्वतन्त्रता या स्वतन्त्र व्यवसाय का अधिकार (Economic liberty or the right of free enterprise)—पूंजीवाद के अन्तर्गत लोगों को आर्थिक स्वतन्त्रता होती है, इसका अर्थ है (अ) लोगो को व्यावसायिक स्वतन्त्रता (freedom of enterprise) होती है, वे अपनी इच्छानुसार सामान्यतया किसी भी व्यवसाय को करने में स्वतन्त्र होते हैं, (ब) लोगों को ठेका करने की स्वतन्त्रता (freedom of contract) होती है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ किसी भी प्रकार का आर्थिक ठेका करने मे स्वतन्त्र होता है, (स) प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का प्रयोग करने म भी स्वतन्त्र होता है, इसको हम 'निजी सम्पत्ति के अधिकार' के अन्तर्गत भी बता चुके हैं।

'व्यवसाय की स्वतन्त्रता' (freedom of enterprise) पूंजीवाद का एक मुख्य तत्त्व होता है, इसलिए पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था को कभी-कभी 'स्वतन्त्र व्यवसाय अर्थ-व्यवस्था' (free enterprise economy) के नाम से पुकारते हैं। आधुनिक युग मे व्यवसाय की स्वतन्त्रता पर सरकार द्वारा कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, परन्तु सामान्यतया लोगो को व्यवसाय की स्वतन्त्रता रहती है।

(३) उपभोक्ता का प्रभुत्व या उसकी सार्वभौमिकता (Consumer's sovereignty)—इसका अर्थ है कि प्रत्येक उपभोक्ता को चुनाव की स्वतन्त्रता होती है, वह किसी भी वस्तु को क्रय कर सकता है और अपनी आय को जिस प्रकार चाहे व्यय कर सकता है। दूसरे शब्दो मे, इसका अर्थ यह है कि उपभोक्ता समस्त उत्पादन को नियन्त्रित तथा नियमित करता है। उपभोक्ताओ का चुनाव मूल्य मे झलकता है, वे जिन वस्तुओ को चाहते हैं उनके लिए अच्छी कीमतें देते हैं, अच्छी कीमतो पर उत्पादको को अधिक लाभ मिलता है, और इसलिए उत्पादक उन्ही वस्तुओ का उत्पादन करते हैं जिन्हें उपभोक्ता माँगते हैं। इसलिए पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे उपभोक्ता को सम्राट (king) के समान माना जाता है। उत्पादन उपभोक्ताओ की पसन्द के

अनुसार हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि मूल्य यन्त्र (price mechanism) स्वतन्त्र (free) हो।

व्यवहार में उपभोक्ता का प्रभुत्व पूर्ण नहीं होता है। कुछ दशाओं (जैसे, मादक वस्तुओं के प्रयोग) में सरकार अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता के चुनाव को नियन्त्रित करती है। इसके अतिरिक्त उत्पादन पर केवल उपभोक्ता के चुनाव का ही नहीं वरन् अन्य बातों का भी प्रभाव पड़ता है, उपभोक्ता का चुनाव स्वयं विज्ञापन तथा प्रचार द्वारा प्रभावित होता है।

(४) लाभ-उद्देश्य (Profit motive)—लाभ-उद्देश्य पूँजीवाद की 'मुख्य संस्था' (key institution) या *'पूँजीवाद की सभी संस्थाओं का हृदय'* (*heart of all the institutions of capitalism*) कहा जाता है। प्रत्येक उत्पादक या व्यवसायी या साहसी केवल उस कार्य को करेगा जिसमें उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है, वह समाज के हित के उद्देश्य से नहीं वरन् अपने स्वार्थ-हेत तथा लाभ के उद्देश्य से प्रेरित होता है।

(५) मूल्य यन्त्र (Price mechanism)—पूँजीवाद प्रणाली का सचालन किसी केन्द्रीय त्ता या केन्द्रीय नियन्त्रण द्वारा नहीं होता, इसलिए यह कहा जाता है कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था समन्वय की कमी (lack of co-ordination) होती है। वास्तव मे, पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था म न्वय तथा नियन्त्रण (co-ordination and control) का कार्य 'मूल्य-यन्त्र' द्वारा होता है। किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन होगा, यह मूल्यों द्वारा ही निर्धारित होगा, । वस्तुओं के मूल्य ऊँचे होंगे, उत्पादक उनका अधिक मात्रा मे उत्पादन करेंगे क्योंकि अधिक प्राप्त होगा। इसके विपरीत, जिन वस्तुओं के मूल्य कम होंगे, उनका बहुत कम उत्पादन । जायेगा। (ii) उपभोग, बचत तथा विनियोग भी मूल्यों द्वारा प्रभावित होते हैं। लोग अपनी मे से कितना उपभोग करेंगे, कितना बचायेंगे तथा किस व्यवसाय मे विनियोग करेंगे, ये भी मूल्य-यन्त्र द्वारा ही सचालित होती हैं। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का सचालन समन्वय मूल्य-यन्त्र द्वारा ही होता है। इसलिए पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को कभी-कभी 'मूल्य शासन' (government by price) भी कहा जाता है। इसी बात को हम इस प्रकार भी है कि 'पूँजीवाद स्वयचालित प्रवृत्ति' (automatic character) रखता है क्योंकि इसमे जान-र (deliberately) कोई केन्द्रीय सत्ता द्वारा नियन्त्रण नहीं होता।

उपर्युक्त पाँच बातें पूँजीवादी प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ हैं। इन मुख्य विशेषताओं के ग़मस्वरूप कुछ अन्य सहायक विशेषताएँ (subsidiary characteristics) भी पूँजीवाद मे । जाती हैं। इनका वर्णन हम नीचे करते हैं।

(६) साहसी का महत्त्वपूर्ण भाग (Vital role of entrepreneur)—साहसी पूँजीवादी ादन प्रणाली की आत्मा (soul) होता है। साहसी उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करके कार्य चलाता है। लाभ हानि को जोखिम को साहसी ही झेलता है, बिना साहसी के कोई भी पादन कार्य सम्भव नहीं है। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे साहसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग ता है।

(७) प्रतियोगिता तथा सयोगीकरण सहगामी होते हैं (Competition and combination go together)—पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था प्रतियोगिता पर आधारित होती है, परन्तु इसके साथ ही साथ विभिन्न हितों म सहयोग तथा सयोगीकरण भी चलता है। क्रेता, विक्रेता उत्पादक तथा श्रम आपस में प्रतियोगिता करते हैं, परन्तु साथ साथ वे आपस मे मिलकर अपने हितों की रक्षा भी करते है। क्रेता मिलकर क्रेता-सघ, श्रमिक मिलकर श्रमिक-सघ तथा उत्पादक या मालिक मिलकर मालिक-सघ (employers' association) बनाते हैं ताकि वे अपने हितों की रक्षा कर सकें। प्रायः उत्पादक सघ अधिक शक्तिशाली होते हैं। इस प्रकार पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रतियोगिता तथा सघबन्दी सहगामी होते हैं।

(८) आर्थिक असमानताएँ (Economic inequalities)—थोड़े से उत्पादकों तथा पूँजी-

पतियो के हाथो मे अधिक धन तथा आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती हैं, जबकि बडी मात्रा मे कार्य करने वाले श्रमिक गरीब रह जाते हैं। इस प्रकार की असमानता उन्नति के अवसरो मे भी असमानता उत्पन्न करती है।

(६) समाज का विभाजीकरण या वर्ग-संघर्ष (Division of society or class conflict)—पूँजीवाद की एक विशेषता यह है कि समाज मुख्य रूप मे दो वर्गों म बाँटा जाता है—पूँजीपति तथा श्रमिक। पूँजीपतियो तथा श्रमिको के हितो मे अन्तर होता है और दोनो वर्गों मे निरन्तर संघर्ष समाज के लिए अहितकर होता है।

(१०) व्यवसाय का नियन्त्रण तथा जोखिम सहगामी होते हैं (Control of business and risk go together)—पूँजीवाद मे जो व्यक्ति व्यवसाय मे पूँजी लगाता है और उसका जोखिम उठाता है वही व्यक्ति व्यवसाय को ठीक प्रकार से चलाने के लिए प्राय उसका नियन्त्रण भी करता है। इस प्रकार पूँजीवाद मे व्यवसाय का नियन्त्रण तथा जोखिम प्राय साथ-साथ चलते है। इसको **'पूँजीवाद का सुनहरा नियम'** (Golden Rule of Capitalism) कहा गया है।

पूँजीवाद ससार के किसी भी देश मे विशुद्ध रूप मे नही पाया जाता है अर्थात् पूँजीवाद की पाँच आधारभूत विशेषताएँ—निजी सम्पत्ति, स्वतन्त्र व्यवसाय, उपभोक्ता की सार्वभौमिकता, लाभ-उद्देश्य तथा स्वतन्त्र मूल्य यन्त्र—पूरी प्रकार से सन्तुष्ट नही होती है। **प्रत्येक देश मे समाज के हित मे इन पाँचों मुख्य विशेषताओं पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। जब प्रतिबन्ध हल्के और कम होते हैं और जब उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं की स्वतन्त्रता बनाये रखने की सामान्य प्रवृत्ति होती है तो पूँजीवादी व्यवस्था रहती है।**

पूँजीवाद के गुण या पूँजीवाद की सफलताएँ (Merits of Capitalism or Achievements of Capitalism)

पूँजीवादी प्रणाली के गुण तथा सफलताएँ निम्न हैं

(१) कुशलता तथा अपव्यय का निराकरण (Efficiency and elimination of wastes)—व्यवसाय की स्वतन्त्रता के परिणामस्वरूप उत्पादको मे तीव्र प्रतियोगिता होती है। प्रतियोगिता की तीव्र तथा ठण्डी हवाओ मे केवल कुशल उत्पादक ही जीवित रह सकते हैं। प्रत्येक उत्पादक या साहसी इस बात का प्रयत्न करता है कि हर प्रकार के अपव्यय का निराकरण किया जाय, आधुनिकतम यन्त्रो का प्रयोग किया जाय और इस प्रकार लागत को न्यूनतम कर अधिक लाभ प्राप्त करने के साथ उत्पादन-कुशलता बढायी जाय। स्पष्ट है कि निम्न कुशलता वाले उत्पादक बाजार से निकल जाते हैं और केवल उच्च कुशलता वाले उत्पादक जीवित रहते हैं। परिणामस्वरूप लागतें निम्न स्तर पर रहती हैं।

(२) व्यक्तियों के गुणों मे उन्नति (Improvement in the quality of individuals)—प्रतियोगिता के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य मे पूरा प्रयत्न करता है। कडे प्रयत्न करने से मनुष्यो के गुणो मे उन्नति होती है। प्रतियोगिता तथा स्वतन्त्र व्यवसाय के परिणामस्वरूप ही १६वीं तथा २०वीं शताब्दियो मे विभिन्न क्षेत्रो मे बहुत प्रगति हुई है।

(३) स्वचालित कार्यकरण (Automatic working)—पूँजीवादी कीमत-लाभ-यन्त्र (price-profit mechanism) द्वारा स्वचालित रहता है। इसको चलाने, नियन्त्रित तथा नियमित करने के लिए समाजवाद की भाँति सरकारी अफसरो और अधिकारियो की आवश्यकता नही पडती है। जब कभी अर्थ-व्यवस्था मे असमायोजन (maladjustment) होताहै तो माँग-पूर्ति की शक्तियाँ, कीमत तथा लाभ यन्त्र उसे सही रास्ते पर ले आते हैं।

वास्तव मे स्वतचालिता (automaticity) व्यवहार मे उतनी नही पायी जाती है जैसा कि सिद्धान्त मे समझा जाता है।

(४) अधिक उत्पादन तथा पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन (Incentive to more production and capital formation)—पूँजीवाद के अन्तर्गत निजी सम्पत्ति का अधिकार लोगों को

मन्दी (depression) होती रहती है। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था में आर्थिक अस्थायित्व (economic unstability) रहती है। समाजवाद में केन्द्र में सामजस्य स्थापित करने वाली सत्ता के कारण व्यापार चक्र तथा आर्थिक अस्थायित्व की समस्या नहीं होती है।

आधुनिक काल में पूंजीवादी देशों में 'चक्रीय विरोध नीतियों' (anti-cyclical policies) का निर्माण किया गया है, परन्तु इनमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

(२) आर्थिक असमानताएं (Economic inequalities)—(अ) पूंजीवाद में निजी सम्पत्ति का अधिकार, उत्तराधिकार का अधिकार, स्वतन्त्र व्यवसाय तथा मूल्य यन्त्र आर्थिक असमानताओं को जन्म देते हैं। जो लोग अधिक धन एकत्रित कर लेते हैं उनके पास और अधिक धन एकत्रित होता जाता है। उत्तराधिकार के अधिकार के कारण धनी व्यक्तियों के पास अधिक सम्पत्ति इकट्ठी होती जाती है। इस प्रकार पूंजीवादी प्रणाली में धनी व्यक्ति अधिक धनी तथा गरीब व्यक्ति और अधिक गरीब होते जाते हैं अर्थात् आर्थिक असमानताएं बहुत बढ़ जाती हैं।

(ब) आर्थिक असमानताओं के कारण 'अवसरों की असमानताओं' (Inequalities of opportunities) का भी जन्म होता है। धनी व्यक्तियों के बच्चों को प्रारम्भ से ही उन्नति के अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं, जबकि निर्धन व्यक्तियों के बच्चों को इस प्रकार के अच्छे अवसर प्राप्त नहीं होते तथा उनके लिए निर्धनता के गर्त से निकलना कठिन हो जाता है।

(स) आर्थिक असमानताएं उत्पादन के ढांचे को बिगाड़ (distort) देती हैं। आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन से साधनों का हस्तान्तरण विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन में किया जाता है ताकि धनी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

(३) वर्ग संघर्ष (Class conflict)—पूंजीवाद में समाज दो वर्गों में बंट जाता है—'सम्पन्न' (haves) तथा 'असम्पन्न' (haves-not)। एक ओर पूंजीपति होते हैं जिनके पास आर्थिक शक्ति होती है और दूसरी ओर श्रमिक वर्ग होता है जो निर्धन तथा कमजोर होता है। इन दोनों वर्गों के हितों में अन्तर होता है, दोनों वर्गों में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है और औद्योगिक तथा सामाजिक अशान्ति बनी रहती है।

(४) क्षेत्रीय असमानताएं (Regional inequalities)—पूंजीवाद केवल आर्थिक असमानताओं को ही नहीं वरन् क्षेत्रीय या प्रादेशिक असमानताओं को भी जन्म देता है। पूंजीपति तथा उद्योगपति देश के केवल उन क्षेत्रों में ही उद्योगों को स्थापित करते हैं जहां उन्हें अधिक लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार के कुछ क्षेत्रों में बहुत अधिक उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण हो जाता है जबकि कुछ क्षेत्र बहुत पिछड़े रह जाते हैं। इस प्रकार देश का असन्तुलित औद्योगिक विकास (unbalanced industrial development) होता है। क्षेत्रीय असमानताएं राजनीतिक अस्थायित्व को जन्म देती है।

(५) बेरोजगार, असुरक्षा तथा शोषण (Unemployment, insecurity and exploitation)—पूंजीवाद में श्रमिकों को बेरोजगारी का भय सदैव बना रहता है। एक ओर तो व्यापार चक्रों के कारण 'चक्रीय बेरोजगारी' (Cyclical unemployment) की सम्भावना रहती है, दूसरी ओर श्रमिकों को रोजगार के लिए सदैव थोड़े से पूंजीपतियों पर निर्भर रहना पड़ता है। पूंजीपति कभी भी श्रमिकों को रोजगार से अलग कर सकते हैं। इस प्रकार श्रमिक सदैव असुरक्षा का अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त पूंजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं, वे श्रमिकों में प्रतियोगिता तथा उनकी निर्धनता का लाभ उठाकर उनको कम मजदूरी देते हैं। वे कम मजदूरी पर अधिक कार्य लेकर स्त्रियों तथा बच्चों का भी शोषण करते हैं। कारखानों में प्रायः श्रमिकों के कार्य करने की दशाएं भी अस्वस्थ तथा खराब रहती हैं।

आधुनिक युग में उन्नतशील पूंजीवादी देशों में विभिन्न प्रकार के कारखाना अधिनियमों का निर्माण कर श्रमिकों की कार्य दशाओं में सुधार किया गया है, तथा 'सामाजिक-सुरक्षा योजना' द्वारा श्रमिकों का विभिन्न प्रकार की असुरक्षाओं से मुक्त करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(६) अनार्जित आय तथा सामाजिक परजीविता (Unearned income and social parasitism)—पूँजीवादी प्रणाली में समाज के कुछ वर्ग बिना प्रयत्न किए हुए दूसरों के प्रयत्नों से प्राप्त सम्पत्ति पर जीवित रहते हैं। कुछ व्यक्तियों को अपने पूर्वजों से पर्याप्त मात्रा में धन-सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है, वे बिना अपना प्रयत्न किये ब्याज तथा किराया खाते हैं और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार इन व्यक्तियों को 'अनार्जित आय' प्राप्त होती है और वे 'सामाजिक परजीवी' (social parasites) की भाँति रहते हैं।

(७) उपभोक्ता की सार्वभौमिकता केवल कल्पित बात है (Consumers' sovereignty is a myth)—उपभोक्ताओं का प्रभुत्व केवल नाममात्र का ही होता है। उनका अपना स्वयं का चुनाव नहीं रह जाता बल्कि वे प्रचार तथा विज्ञापन से अपनी पसन्द में प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त वे एकाधिकारियों से शोषित होते हैं।

(८) कल्याण-उद्देश्य तथा अधिकतम सन्तुष्टि के सिद्धान्त की अनुपस्थिति (Absence of welfare motive and the principle of maximum satisfaction)—पूँजीवाद में प्रत्येक उत्पादक, व्यापारी तथा साहसी अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है और समाज के कल्याण पर कोई ध्यान नहीं देता। लाभ-उद्देश्य विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन करना है और जन-साधारण के लिए आवश्यक वस्तुओं की उपेक्षा करता है।

वास्तव में, पूँजीवाद के अधिकांश लाभ (benefits) धनी व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं, निर्धन व्यक्ति या तो उनसे वंचित रह जाते हैं या उन लाभों का बहुत थोड़ा भाग उन्हें मिल पाता है। इस प्रकार 'अधिकतम सन्तुष्टि का सिद्धान्त' केवल मिथ्यावाद है।

(९) एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ (Monopolistic tendencies)—लाभ का अधिकतम करने तथा प्रतियोगिता से बचने के लिए प्रायः बड़े-बड़े उत्पादक मिलकर औद्योगिक संघ तथा एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं और इस दृष्टि से प्रतियोगिता नाममात्र का रह जाती है।

(१०) स्वयचालिता भी एक मिथ्यावाद है (Automaticity is also a myth)—व्यवहार में पूँजीवाद का संचालन स्वतन्त्र मूल्य-यन्त्र तथा उपभोक्ताओं की सार्वभौमिकता द्वारा स्वयचालित नहीं होता, वरन् बड़े-बड़े उद्योगपति, औद्योगिक संघों तथा एकाधिकारियों द्वारा उनके हितों के अनुसार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को चलाया जाता है। इस प्रकार स्वयचालिता एक मिथ्यावाद रह जाता है।

(११) पूँजीवाद के अन्तर्गत युद्ध तथा साम्राज्यवाद (War and imperialism under capitalism)—इतिहास बताता है कि पूँजीवादी देशों ने विदेशी बाजारों पर नियन्त्रण करने तथा अपने उद्योगों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से युद्ध किये और अन्य देशों में साम्राज्यवाद स्थापित किया।

परन्तु अब इस प्रकार की स्थिति समाप्त होती जा रही है और धीरे-धीरे पुराने उपनिवेश स्वतन्त्र होते जा रहे हैं। इस समय तो चीन, जो एक साम्यवादी देश है, युद्ध की नीति अपना रहा है और अपने साम्राज्य को एशिया के देशों में स्थापित करना चाहता है।

(१२) प्रतियोगिता के अपव्यय (Wastes of competition)—प्रतियोगिता के परिणाम-स्वरूप फर्मों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में धन को प्रचार तथा विज्ञापन पर व्यय किया जाता है। बड़ी-बड़ी फर्में प्रतियोगी फर्मों को समाप्त करने में बड़ी मात्रा में धन का अपव्यय करती हैं। प्रतियोगिता के कारण ही कभी-कभी एक ही प्रकार की वस्तुओं का कई फर्मों द्वारा अनावश्यक उत्पादन किया जाता है। ये सब अपव्यय समाज के हित की दृष्टि से हानिकारक है।

निष्कर्ष (Conclusion)

पूँजीवाद की कमजोरियों तथा दोषों के कारण प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि पूँजीवाद का भविष्य क्या है? इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखनी है कि आज का पूँजीवाद १९वीं शताब्दी के पूँजीवाद से नितान्त भिन्न है। यह पूँजीवाद के विशुद्ध सिद्धान्त से मेल नहीं खाता। समय के अनुसार इसमें बहुत परिवर्तन हो चुके हैं। पूँजीवाद के आज भी जीवित

रहने का मुख्य कारण उसमे लोच (flexibility) का होना है। समय के साथ यह अपने आपको परिवर्तित करता रहा है और आज भी कर रहा है। अमरीका, इगलैण्ड तथा अन्य पूँजीवादी देशों मे राज्य का हस्तक्षेप बढ गया है और पूँजीवादी प्रणाली के अन्दर पर्याप्त सुधार किये जा रहे हैं। आज भी अमरीका, जो एक पूँजीवादी देश है, ससार का सबसे अधिक शक्तिशाली तथा धनवान देश है।

यह स्पष्ट है कि पूँजीवाद का अपने विशुद्ध रूप मे कोई भविष्य नहीं है। परन्तु अब पूँजीवादी प्रणाली म पर्याप्त सशोधन हो चुके हैं तथा हो रहे हैं। अधिकाश पूँजीवादी देशों मे ·

(१) आधारभूत उद्योगो (basic industries) का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है अथवा उन पर सरकार का पर्याप्त अकुश रहता है।

(२) स्वतन्त्र बाजार प्रणाली मे सरकार का हस्तक्षेप हो गया है तथा उसको सरकार द्वारा नियमित किया जाता है।

(३) आय तथा धन की असमानताओ को गहरी वर्द्धमान कर प्रणाली (steeply progressive taxation), मृत्यु-कर (estate duty), इत्यादि द्वारा दूर किया जा रहा है।

(४) एकाधिकारियो पर सरकार का कडा अकुश रहता है तथा इस बात के सतत् प्रयत्न किये जा रहे हैं कि भविष्य म एकाधिकारी स्थितिया को उत्पन्न न होने दिया जाय।

(५) प्रशुल्क तथा मौद्रिक नीतियो द्वारा, पर्याप्त एकत्रित आँकडो की पृष्ठभूमि मे, व्यापार चक्रो को रोकने के प्रयत्न किय जा रहे हैं।

(६) 'लाभ-हिस्सा योजना' (profit sharing scheme), 'बोनस योजना', 'प्रबन्ध मे श्रमिको की साझेदारी' (workers' participation in management), इत्यादि द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति श्रमिको के विरोध को कम किया जा रहा है। इस प्रकार समय के साथ पूँजीवादी प्रणाली के अन्दर बहुत सशोधन किये जा चुके हैं तथा किये जा रहे हैं। एक वाक्य मे यह कहा जा सकता है कि आज का पूँजीवाद लगभग मिश्रित-अर्थव्यवस्था (mixed economy) मे परिणित हो चुका है। इगलैण्ड तथा अमरीका मे, जो पूँजीवाद के गढ माने जाते हैं, वास्तव मे, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पायी जाती है। इस दृष्टि से पूँजीवाद के भविष्य को पूर्णतया अन्धकारमय कहना, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं, उचित नहीं प्रतीत होता। वास्तव मे, पूँजीवाद का भविष्य उसके सशोधित रूप (modified form) अर्थात् मिश्रित अर्थ-व्यवस्था तथा उसके प्रावैगिक व लोचपूर्ण स्वभाव (dynamic and flexible nature) मे निहित है।

प्रश्न

१ (अ) आप पूँजीवाद से क्या समझते हैं ?
(ब) सक्षेप म पूँजीवाद के गुण तथा दोषो की विवेचना कीजिए।
(a) What do you understand by Capitalism ?
(b) Discuss briefly the merits and demerits of Capitalism
(Agra, B A I, Suppl., 1975)

२. पूँजीवाद की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ? व्याख्या कीजिए।
What are the basic economic features of capitalism ? Explain

३. पूँजीवाद के गुणो तथा दोषो की विवेचना कीजिए।
Discuss the merits and demerits of capitalism

४. पूँजीवाद के क्या दोष हैं ? पूँजीवाद के ढाँचे के अन्तर्गत ही उनको किस प्रकार दूर किया जा सकता है ?
What are the drawbacks of capitalism ? How far can they be remedied within the framework of capitalism ?
(Agra, B A, 1969, Bihar, 1963)

[सकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग मे, पहले सक्षेप मे पूँजीवाद का अर्थ बताइए, तत्पश्चात उसके दोषो की विवेचना कीजिए। दूसरे भाग मे बताइए कि एक बडी सीमा तक पूँजीवाद के दोषों को

पूंजीवादी ढांचे के अन्तर्गत ही दूर किया जा सकता है और ऐसा विभिन्न पूंजीवादी देशों मे किया जा रहा है। पूंजीवादी देशों में, मुख्य उद्योगों पर सरकार का नियन्त्रण रहता है, धन की असमानताओं को दूर किया जा रहा है, एकाधिकारियों पर सरकार के बड़े अंकुश, उचित मौद्रिक तथा प्रशुल्क नीतियों, लाभ हिस्सा योजना, इत्यादि द्वारा पूंजीवाद के दोषों को दूर किया जा रहा है, इस सब विवरण के लिए देखिए पृष्ठ ८ पर 'निष्कर्ष' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

५ "पूंजीवाद के गर्भ में स्वयं अपने विनाश के बीज उपस्थित रहते हैं।" उपर्युक्त कथन की सावधानी के साथ विवेचना कीजिए।

"Capitalism carries in its womb the seed of its own destruction" Examine the above statement carefully

[संकेत—प्रश्न को तीन भागों में बांटिए। प्रथम भाग में पूंजीवाद की परिभाषा दीजिए। दूसरे भाग मे मार्क्स के इस कथन को कि 'पूंजीवाद के गर्भ मे स्वयं अपने विनाश के बीज रहते हैं' स्पष्ट कीजिए, इसके लिए मार्क्स की 'इतिहास की भौतिक धारणा' (materialistic conception of history) के अन्तर्गत विषय-सामग्री को लिखिए, देखिए अगला अध्याय पृष्ठ १८ पर दूसरा पैराग्राफ। तीसरे भाग मे बताइए कि मार्क्स की यह भविष्यवाणी गलत सिद्ध हुई, पूंजीवाद समाप्त नहीं हुआ और भविष्य में भी उसके समाप्त होने की सम्भावना नहीं है। इसके कारण बताइए अर्थात् स्पष्ट कीजिए कि पूंजीवाद मे लोच है। परिस्थितियों के साथ उसमें बहुत परिवर्तन हो चुके हैं, उसका वर्तमान रूप मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का हो गया है, पूंजीवाद के ढांचे के अन्तर्गत ही उसके दोषों को दूर करने के विभिन्न प्रकार के प्रयत्न हो रहे हैं, इस सब विवरण के लिए देखिए वर्तमान अध्याय के पृष्ठ ८ पर 'निष्कर्ष' नामक शीर्षक की सम्पूर्ण-विषय सामग्री।]

2 समाजवाद
[SOCIALISM]

समाजवाद (Socialism)

लुक्स (Loucks) का कथन है कि 'समाजवाद को बहुत सी वस्तुएँ कहा गया है और बहुत-सी वस्तुओं को समाजवाद कहा गया है।'[1] दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्रियों तथा राजनीतिशास्त्रियों द्वारा समाजवाद के विचार को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है और उनके विभिन्न अर्थ लगाये गये हैं। इसके अर्थ की विभिन्नता के कारण प्रो० जोड (Joad) ने कहा है, "समाजवाद एक ऐसी टोपी है जिसका रूप प्रत्येक व्यक्ति के पहनने के कारण बिगड़ गया है।"[2] इस बात को दूसरी प्रकार से भी व्यक्त किया जाता है "समाजवाद का अपना कोई रूप नहीं होता। यह एक ऐसी टोपी है जो प्रत्येक सिर पर ठीक बैठ जाती है।"[3] समाजवाद के अर्थ के सम्बन्ध में भ्रम (confusion) होने का एक प्रमुख कारण उसका बहु-पक्षीयरूप (many sided nature) है।

समाजवाद की परिभाषा और उसका अर्थ (Definition and Meaning of Socialism)

समाजवाद के अर्थ में भिन्नता के कारण इसकी अनेक परिभाषाएँ पायी जाती हैं। **प्रो० डिकिनसन** (Dickinson) के अनुसार, 'समाजवाद समाज का एक ऐसा आर्थिक संगठन है जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों पर समस्त समाज का स्वामित्व होता है तथा उनका संचालन एक सामान्य योजना के अनुसार ऐसी संस्थाओं द्वारा किया जाता है जो समस्त समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा समस्त समाज के प्रति उत्तरदायी होती हैं, समाज के सभी सदस्य समान अधिकारों के आधार पर ऐसे समाजीकृत आयोजित उत्पादन के लाभों के अधिकारी होते हैं।'[4]

[प्रो० डिकिनसन की परिभाषा में तीन मुख्य विशेषताओं पर बल दिया गया है—(१) समाज या सरकार का उत्पत्ति के साधनों पर स्वामित्व, (२) आर्थिक क्रियाओं को एक सामान्य योजना (planning) के अनुसार करना, तथा (३) राष्ट्रीय आय का व्यक्तियों में न्याययुक्त वितरण। इन विशेषताओं से यह बात भी निकलती है कि उत्पादन लाभ के उद्देश्य से नहीं वरन् सामाजिक कल्याण की दृष्टि से किया जाता है तथा श्रमिकों का शोषण नहीं होता।]

प्रो० लुक्स (Loucks) की परिभाषा भी एक अच्छी परिभाषा है जो इस प्रकार है, 'समाजवाद वह आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सभी प्रकार की प्रकृति दत्त तथा मनुष्य-कृत उत्पादक

---

[1] "Socialism has been called many things and many things have been called socialism."
[2] "Socialism in short is like a hat that has lost its shape because everybody wears it."
[3] "Socialism has no shape of own it is like a cap which fits every hat."
[4] "Socialism is an economic organisation of society in which the material means of production are owned by the whole community and operated by organs representative of and responsible to the community according to a general plan all members of the community being entitled to benefits from the results of such socialised planned production on the basis of equal rights." —*Dickinson*

वस्तुओं का, जो कि बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयोग की जाती हैं, स्वामित्व तथा प्रबन्ध व्यक्तियों के स्थान पर समस्त समाज में निहित करना होता है, जिससे बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय का इस प्रकार समान वितरण हो सके कि व्यक्ति की आर्थिक प्रेरणा या व्यवसाय तथा उपभोग सम्बन्धी चुनावों की स्वतन्त्रता में कोई विशेष हानि न हो।"[5]

[प्रो० लुक्स की परिभाषा भी समाजवाद की कुछ मुख्य विशेषताओं पर जोर देती है जो इस प्रकार हैं—(१) बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले सभी उत्पत्ति के साधनों पर समाज या सरकार का स्वामित्व होता है। इसका अर्थ यह है कि छोटे पैमाने पर उत्पादन लोग व्यक्तिगत रूप से कर सकते हैं अर्थात् सीमित रूप में निजी क्षेत्र (Private sector) का अस्तित्व रहता है, (२) बढ़ी हुई आय का न्याययुक्त वितरण, तथा (३) व्यक्तियों की आर्थिक प्रेरणा या व्यवसाय तथा उपभोग सम्बन्धी चुनाव की स्वतन्त्रता सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती।]

स्मरण रहे कि समाजवाद का अन्तर्भाग (hard core) या हृदय (heart) आर्थिक होता है। समाजवाद की केन्द्रीय बातें (central issues) आर्थिक होती हैं जिनका सम्बन्ध उत्पादन वस्तुओं के स्वामित्व अधिकार, इन वस्तुओं के बारे में निर्णय तथा उत्पादित वास्तविक आय के वितरण से होता है। इस केन्द्रीय अन्तर्भाग (central core) के चारों तरफ राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य बातों की परिधि (periphery) होती है। परन्तु इनको केन्द्रीय समस्या के साथ भ्रमित (confuse) नहीं करना चाहिए—केन्द्रीय समस्या है कि समाज किस प्रकार अपनी आर्थिक वस्तुओं का उत्पादन वितरण तथा उपभोग करना चाहता है।[6]

समाजवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Socialism)

(१) उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व (Government's ownership on factors of production)—समाजवाद की एक मुख्य विशेषता इसका अर्थ है उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर समाज या सरकार का स्वामित्व होता है। भूमि, खानों, यातायात व संवादवहन के साधनों, कारखानों, बैंकों, इत्यादि उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व तथा नियन्त्रण होता है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि समाजवाद के अन्तर्गत सभी वस्तुओं तथा साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है। प्रो० लुक्स (Prof Loucks) के अनुसार, केवल बड़े पैमाने पर उत्पादन में प्रयोग होने वाले साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है अर्थात् छोटे पैमाने पर सीमित मात्रा में उत्पादन व्यक्तिगत लोगों द्वारा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मकान, फर्नीचर, रेडियो तथा अन्य घरेलू वस्तुओं पर भी व्यक्तिगत स्वामित्व होता है।

(२) आर्थिक नियोजन (Economic planning)—समाजवादी अर्थव्यवस्था का संचालन एक निश्चित योजना के अनुसार एक केन्द्रीय संस्था द्वारा किया जाता है। नियोजन समाजवाद की एक मुख्य विशेषता मानी जाती है।

(३) सरकार द्वारा उत्पादन तथा वितरण (Government's control over production and distribution)—समाजवादी अर्थव्यवस्था में यह बात सरकार निश्चित करती है कि

---

[5] "Socialism refers to that movement which aims to vest in society as a whole rather than in individuals the ownership in management of all nature made and man made producer's goods used in large scale production to the end that an increased national income may be more equally distributed without materially destroying the individual's economic motivation or his freedom of occupational and consumption choice."
—Loucks *Comparative Economic Systems* Fifth edition p 188

[6] The hard core or heart of socialism is economic. The central issues of socialism are economic and are related to the property rights in producers goods decisions relative to these goods and the distribution of the real income produced. Around this central core there is a periphery of political social religious and other issues but they should not be confused with the central problem of how society wishes its product on distribution and consumption of economic goods to be organised.

किन वस्तुओं का उत्पादन किया जायेगा तथा उनका किस प्रकार वितरण किया जायेगा। यह कार्य केन्द्रीय नियोजन संस्था द्वारा किया जाता है।

(४) लाभ-उद्देश्य के स्थान पर समाज कल्याण का उद्देश्य (Social welfare in place of profit motive)—पूँजीवाद म उत्पादन लाभ-उद्देश्य से प्रेरित होता है, परन्तु समाजवाद मे वस्तुओ तथा सेवाओ का उत्पादन समस्त समाज के कल्याण की दृष्टि से किया जाता है।

(५) शोषण का निराकरण (*Elimination of exploitation*)—*समाजवादी अर्थव्यवस्था* मे उत्पत्ति के साधनो पर सरकार का स्वामित्व होता है, इसलिए समाज का दो वर्गों—पूँजीपति तथा श्रमिको—मे विभाजन नही होता। इसके अतिरिक्त उत्पादन समाज-कल्याण की दृष्टि से किया जाता है। इन परिस्थितियो म श्रमिको का शोषण नही होता।

(६) अनर्जित आय का अन्त (End of unearned income)—समाजवाद में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार परिश्रम करना पड़ता है, कोई भी व्यक्ति अनर्जित आय प्राप्त कर अपना जीवन निर्वाह नही कर सकता है।

(७) प्रतियोगिता की कमी (Lack of competition)—समाजवाद मे उत्पत्ति के साधनो पर सरकार का नियन्त्रण होता है, सरकार ही वस्तुओ के उत्पादन की मात्रा तथा प्रकार और उनकी कीमत निर्धारित करती है। ऐसी परिस्थितियो म प्रतियोगिता म बहुत कमी हो जाती है।

(८) आर्थिक असमानताओं मे कमी (*Reduction in economic inequalities*)—समाजवाद मे प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति के समान अवसर प्राप्त होते हैं और आर्थिक असमानताओ को एक बडी सीमा तक कम कर दिया जाता है।

समाजवाद के दोष (Defects of Socialism)

समाजवाद के विपक्ष मे अनेक तर्क दिये जाते हैं। ये तर्क समाजवाद के दोषो पर आधारित हैं। समाजवाद के मुख्य दोष इस प्रकार हैं

(१) कुशलता तथा उत्पादकता में कमी (Lack of efficiency and productivity)—समाजवाद मे कुशलता तथा उत्पादकता का स्तर निम्न रहता है। इसके मुख्य दो कारण बताये जाते हैं। *प्रथम, नौकरशाही के दोष* (*evils of bureaucracy*) *कुशलता तथा उत्पादकता म* कमी के लिए उत्तरदायी हैं। समाजवाद मे उद्योगों का प्रबन्ध तथा नियन्त्रण सरकारी अफसरो द्वारा किया जाता है। परन्तु सरकारी अफसर उतने कुशल नहीं होते जितने प्राइवेट प्रबन्धक तथा साहसी। इसके मुख्य कारण हैं (क) सरकारी अफसरो का उतना निजी स्वार्थ नही होता जितना प्राइवेट कार्यकर्ताओ का। (ख) सरकारी अफसरो की उन्नति प्राय उनकी श्रेष्ठता (seniority) पर निर्भर करती है न कि उनकी कुशलता पर। (ग) वे प्राय भ्रष्ट (corrupt) होते हैं तथा उनमे पहलपन (initiative) की कमी होती है। (घ) सरकारी कार्य म बहुत अधिक लालफीताशाही (red tapism) पायी जाती है, परिणामस्वरूप वे शीघ्र ही निर्णय नही ले पाते हैं जो सफल व्यापार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। (ङ) वे जन-आलोचना (public criticism) से बचना चाहते हैं, इसलिए जहाँ तक हो सकता है वे साहसपूर्ण जोखिम (bold risks) नहीं उठाते हैं और साधारण सफलता से सन्तुष्ट रहते हैं। उपर्युक्त सब बातो से समाजवाद मे प्राय कुशलता तथा उत्पादन का स्तर निम्न रहता है।

दूसरे, कुशलता तथा उत्पादकता मे कमी के कारण केवल नौकरशाही के दोष ही नही हैं बल्कि श्रमिकों के लिए अपर्याप्त प्रेरणाएं (inadequate incentives for workers) भी है। समाजवाद मे श्रमिको की आय मुख्य रूप से उनकी उत्पादक कुशलता पर नही बल्कि सरकार द्वारा बनाये गये वितरण के सिद्धान्त पर निर्भर करती है। इस प्रकार कुशल श्रमिको को कोई आर्थिक प्रेरणा नही रह जाती है।

(२) प्रबन्ध तथा प्रशासन की कठिनाइयाँ (Difficulties of management and administration)—समाजवादी अर्थव्यवस्था का संचालन लाभ मूल्य-यन्त्र (profit price

mechanism) द्वारा नहीं बल्कि एक केन्द्रीय नियोजन संस्था द्वारा होता है। इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन, उपभोग, वितरण, पूंजी का संचय, इत्यादि प्रत्येक बात का निर्णय केन्द्रीय नियोजन संस्था अर्थात् थोड़े-से सरकारी अफसरों को ही करना पड़ता है। इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था में थोड़े-से व्यक्तियों पर प्रबन्ध तथा प्रशासन का बोझ अत्यधिक हो जाता है जिससे अर्थव्यवस्था का संचालन कुशलता से नहीं होता। अतः कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए सामान्य व्यक्ति या अफसर नहीं बल्कि उपदेवता या देवदूत (Demigods or Archangels) चाहिए।

(३) उपभोक्ताओं में प्रभुता की कमी (Loss of consumer's sovereignty)—पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता की प्रभुता होती है, उनकी पसन्द तथा चुनाव के अनुसार ही वस्तुओं की मात्रा तथा उनके प्र(Wh)र्धारित होते हैं। समाजवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की प्रभुता बहुत कम हो जाती है। ... व्यवस्था में सरकार इस बात का निर्णय करती है कि किन किन वस्तुओं का और कितनी कितनी मात्रा में उत्पादन होगा। उपभोक्ता केवल उन वस्तुओं का ही उपभोग कर पाते हैं जिन्हें सरकार प्रदान करती है। अतः उपभोक्ताओं की प्रभुसत्ता बहुत कम हो जाती है।

(४) व्यक्तिगत पहलपन तथा प्रेरणा का अभाव (Loss of initiative and incentive)—पूंजीवाद में निजी सम्पत्ति का अधिकार तथा उपक्रम की स्वतन्त्रता व्यक्तियों को कड़ी मेहनत के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। समाजवाद में इन दोनों की अनुपस्थिति से कार्य की प्रेरणा में कमी होती है। इसी प्रकार समाजवादी व्यवस्था में आविष्कारों तथा खोजों के प्रति भी व्यक्तियों की इच्छा कुन्द (blunt) हो जाती है क्योंकि आविष्कारकों तथा खोजकर्ताओं को कोई निजी लाभ प्राप्त नहीं होता।

(५) साधनों का अविवेकपूर्ण वितरण (Irrational allocation of resources)—पूंजीवाद में उत्पत्ति के साधनों का विभिन्न प्रयोगों में उचित वितरण स्वतः ही मूल्य-यन्त्र द्वारा हो जाता है। समाज में जिन वस्तुओं की उपभोक्ता अधिक माँग करेंगे, उनकी कीमतें अपेक्षाकृत ऊँची होंगी, इन वस्तुओं के उत्पादन में उत्पादकों को अधिक लाभ होगा और इन प्रयोगों में साधन स्वतः ही वितरित हो जायेंगे। इस प्रकार पूंजीवाद के अन्तर्गत विभिन्न प्रयोगों में साधनों का विवेकपूर्ण वितरण स्वसंचालित मूल्य-यन्त्र (automatic price-mechanism) के द्वारा हो जाता है।

समाजवाद के साधनों के वितरण के लिए इस प्रकार का कोई स्वसंचालित यन्त्र नहीं पाया जाता है। माइसेस (Mises), हायेक (Hayek) तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार, समाजवादी अर्थव्यवस्था में साधनों के वितरण का आधार मनमाना (arbitrary) होता है। इस अर्थव्यवस्था में लागत-गणना (cost accounting) का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता है और इसके अभाव में साधनों का विवेकपूर्ण वितरण नहीं हो पाता है, सरकार केवल मनमाने ढंग से (arbitrarily) साधनों को वितरित कर देती है।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्री माइसेस, हायेक, इत्यादि के उपर्युक्त विचारों से सहमत नहीं हैं। लांगे (Lange), टेलर (Taylor), इत्यादि अर्थशास्त्रियों के अनुसार, समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी 'मूल्य प्रक्रिया' (pricing process) हो सकती है और 'भूल तथा जाँच की रीति' द्वारा साधनों का विवेकपूर्ण वितरण हो सकता है। पीगू के अनुसार, समाजवाद में केवल सैद्धान्तिक रूप से 'लागत-गणना' के आधार पर साधनों का वितरण हो सकता है, परन्तु व्यवहार में ऐसा होना कठिन है।

(६) स्वतन्त्रता का अभाव तथा संस्कृति की गतिहीनता (Loss of freedom and cultural stagnation)—समाजवाद एक नियोजित अर्थव्यवस्था होती है तथा राज्य के हाथों सारी आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है। व्यक्तियों की

हो जाती है। व्यक्तियों को अपनी योग्यतानुसार व्यवसाय के चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं रह जाती है। इसके अतिरिक्त समाजवाद में मनुष्य जीवन के सभी पहलुओं पर राज्य का नियन्त्रण रहने के परिणामस्वरूप संस्कृति (culture) के प्रवाह में गतिहीनता आ जाती है।

समाजवाद के गुण (Merits of Socialism)

यद्यपि समाजवाद के कुछ दोष हैं, परन्तु इसके महत्वपूर्ण गुण भी हैं। इन गुणों के आधार पर ही समाजवाद का समर्थन किया जाता है। समाजवाद के गुण इस प्रकार हैं :

(१) प्राकृतिक तथा आर्थिक साधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग (Maximum utilisation of natural and economic resources)—समाजवादी अर्थव्यवस्था साधारणतया एक नियोजित अर्थव्यवस्था होती है। एक केन्द्रीय नियोजन संस्था द्वारा देश के समस्त प्राकृतिक तथा आर्थिक साधनों का निर्धारित तथा सन्तुलित ढंग से प्रयोग किया जाता है। पूंजीवाद भी इन साधनों के सर्वोत्तम प्रयोग का दावा किया जाता है, परन्तु पूंजीवाद में इस प्रकार का प्रयोग लाभ-उद्देश्य तथा स्वहित (self-interest) पर निर्भर करता है। पूंजीवाद में हजारों-लाखों व्यवसायी तथा उद्योगपति लाभ-उद्देश्य से कार्य करते हैं जिनकी क्रियाओं में कोई उचित तालमेल नहीं रहता है, जिससे साधनों का अपव्यय होता है। इसके विपरीत, समाजवाद में साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग केन्द्रीय नियोजन संस्था द्वारा सामाजिक कल्याण के आधार पर किया जाता है।

चूंकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन लाभ-उद्देश्य से होता है इसलिए देश के पिछड़े भागों के विकास पर या उन उद्योगों पर, जिनमें कम लाभ की आशा होती है, कम ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार पूंजीवाद में देश के सभी क्षेत्रों में प्राकृतिक तथा आर्थिक साधनों का उचित प्रयोग नहीं हो पाता। इसके विपरीत, समाजवाद में देश के अधिकतम पिछड़े भागों पर तथा सामाजिक दृष्टि से आवश्यक सभी प्रकार के उद्योगों के विकास पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है जिससे साधनों का श्रेष्ठतर प्रयोग होता है।

(२) व्यापार चक्रों का निराकरण तथा आर्थिक स्थायित्व (Elimination of trade cycles and economic stability)—पूंजीवाद की एक बहुत बड़ी कमजोरी व्यापार चक्रों का होना है। समाजवाद में केन्द्रीय नियोजन संस्था देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन तथा मांग में समन्वय और तालमेल स्थापित करती है जिससे 'अति-उत्पादन' (over-production) या 'कम-उत्पादन' (under production) की सम्भावनाएं नहीं रहतीं और मन्दी तथा तेजी का चक्रीय घटन (occurrence) नहीं होता। इस प्रकार समाजवाद व्यापार चक्रों का निराकरण कर अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करता है।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक युग की पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों (monetary and fiscal policies) द्वारा व्यापार चक्रों के घटित होने को या उनके दुष्परिणामों को एक सीमा तक रोका जा सकता है। परन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र उत्पन्न ही नहीं होते।

(३) बेरोजगारी का निराकरण (Elimination of unemployment)—समाजवादी अर्थव्यवस्था में नियोजित अर्थव्यवस्था होती है तथा उत्पत्ति के साधनों और मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर सरकार का नियन्त्रण होता है, परिणामस्वरूप ऐसी अर्थव्यवस्था में सभी प्रकार के बेरोजगार का अन्त हो जाता है।

परन्तु समाजवाद में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अन्त हो जाता है या उसमें बहुत कमी हो जाती है, रोजगार की दशाओं का निर्धारण केन्द्रीय नियोजन संस्था द्वारा किया जाता है जिसे लोगों को स्वीकार करना पड़ता है। अतः पूंजीवाद के समर्थकों का यह मत है कि समाजवाद में बेरोजगारी का अन्त उसी प्रकार होता है जिस प्रकार जेल में बेरोजगारी नहीं रहती है।

(४) धन की असमानताओं में कमी (Reduction in inequalities of income)—समाजवाद में उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है और वह अर्थव्यवस्था का

सञ्चालन इस प्रकार करती है कि लोगों में धन की असमानताएँ न रहें। इसके विपरीत, पूँजीवाद में थोड़े-से लोगों के हाथों में धन केन्द्रित हो जाता है तथा अधिकांश लोग निर्धन रहते हैं। इसके अतिरिक्त, जनतन्त्रीय समाजवादी अर्थव्यवस्था में सरकार धनी लोगों पर अधिक कर लगाती है और इस प्रकार प्राप्त धन को जनसाधारण के कल्याण पर व्यय करके धन की असमानताओं को कम करती है। समाजवाद में सरकार का उद्देश्य होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति के समान अवसर प्राप्त हों।

पूँजीवाद के समर्थकों का मत है यह दावा कि 'समाजवाद असमानताओं को लगभग समाप्त कर देता' व्यवहार में गलत सिद्ध हो चुका है। व्यवहार में निश्चित रूप से अधिकांश समाजवादी देशों ने यह अनुभव किया है कि 'आय-अन्तर' (income differentials) उत्पादन में प्रेरणा के लिए आवश्यक है। यद्यपि समाजवाद में लाभ-उद्देश्य' की बुराई की जाती है, परन्तु 'आय-उद्देश्य' विस्तृत रूप में प्रयोग किया जाता है (While the profit motive is played down, the income-motive is widely used)। रूस जैसे साम्यवादी देश में भी वर्तमान प्रवृत्ति 'आय-अन्तरों' को बढ़ाने की प्रतीत होती है ताकि उत्पादन को अधिक बढ़ाने में प्रेरणा मिले।

(५) 'लाभ-उद्देश्य' के स्थान पर 'सामाजिक-कल्याण-उद्देश्य' ('Social welfare motive' in place of 'Profit-motive')—समाजवाद में उत्पादन लाभ-उद्देश्य तथा स्वहित से प्रेरित नहीं होता वरन् लोगों के कल्याण की दृष्टि से किया जाता है। समाजवाद में उन वस्तुओं का उत्पादन *किया जाता है जो जनसाधारण की आवश्यकताओं* (needs) के लिए *आवश्यक हैं*। समाजवाद में 'सामाजिक कल्याण उद्देश्य', न कि 'लाभ-उद्देश्य' यह निर्धारित करता है कि किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जायगा। इसके अतिरिक्त, समाजवाद में सरकार देश के सभी नागरिकों के लिए 'सामाजिक सुरक्षा' (social security) की बहुत अच्छी व्यवस्था करती है।

पूँजीवाद के समर्थकों का मत है कि उन्नतशील पूँजीवादी देशों (जैसे इंगलैण्ड) में भी व्यक्ति के लिए सामाजिक सुरक्षा की बहुत अच्छी व्यवस्था है और प्रत्येक व्यक्ति को 'जन्म से मरण तक' जीवन के विभिन्न प्रकार की जोखिमों को झेलने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ दी जाती हैं। इस प्रकार पूँजीवादी देशों में भी समाज के कल्याण पर ध्यान दिया जाता है।

(६) सामाजिक परजीविता का अन्त (End of social parasitism)—पूँजीवाद में बहुत-से व्यक्ति अनर्जित आय (unearned income) प्राप्त करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु समाजवाद में इस प्रकार के परजीवियों (parasites) के लिए कोई स्थान नहीं होता, प्रत्येक व्यक्ति परिश्रम करके आय प्राप्त करता है।

(७) वर्ग संघर्ष का निराकरण (Elimination of class struggle)—पूँजीवाद में उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत लोगों का स्वामित्व होता है, इसलिए समाज दो वर्गों—पूँजीपतियों तथा श्रमिक—में बँट जाता है। इन वर्गों में निरन्तर संघर्ष रहता है, हड़तालें तथा तालेबन्दियाँ होती हैं और उत्पादन में कमी होती है, परन्तु समाजवाद में उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है, इसलिए समाज के दो वर्गों में बँटने का प्रश्न ही नहीं उठता। समाजवाद में औद्योगिक अशान्ति नहीं होती और उत्पादन निर्बाध रूप से होता रहता है।

(८) समाजवाद के प्रति लगाये गये अधिकांश आरोप सही नहीं बताये जाते (*Most of the criticisms levelled against socialism are said to be incorrect*)—(क) सार्वजनिक प्रबन्ध (public management) सदैव तथा आवश्यक रूप से अकुशल नहीं होता। निजी क्षेत्र में कार्य करने वाले अधिकारी भी भ्रष्ट होते हैं तथा बड़ी-बड़ी संयुक्त पूँजी कम्पनियों में भी लालफीताशाही पायी जाती है। वास्तव में, समाजवाद के अन्तर्गत नौकरशाही के दोषों को बढ़ा-चढ़ाकर बताया जाता है। (ख) समाजवाद के अन्तर्गत कार्य करने की प्रेरणा पर विपरीत प्रभाव (adverse effect) नहीं पड़ता। समाजवाद में कार्य की प्रेरणा को आयों में अन्तर, विभिन्न प्रकार के सामाजिक सम्मानों तथा पदवियों तथा दण्डों द्वारा बनाये रखा जाता है।

(ग) पूंजीवाद मे उपभोक्ताओ को प्रभुता (sovereignty) एक मिथ्यावाद है, निर्धनता, एकाधिकारियो की उपस्थिति, इत्यादि के कारण उपभोक्ताओ का वास्तविक रूप मे कोई प्रभुत्व नहीं रह जाता। इसलिए यह कहना कि समाजवाद म उपभोक्ताओ की प्रभुता समाप्त ही हो जाती है, गलत प्रतीत होता है। (घ) लांगे (Lange) टेलर (Taylor), इत्यादि के अनुसार समाजवाद में साधनों का विवेकपूर्ण वितरण सम्भव है। समाजवाद मे साधनो का वितरण आवश्यकता तथा प्रयोग पर निर्भर करता है न कि लाभ-उद्देश्य पर। इस दृष्टि से समाजवाद मे साधनों का वितरण श्रेष्ठतर कहा जा सकता है। (ङ) लोकतान्त्रिक समाजवाद मे एक बड़ी सीमा तक व्यक्तियों को स्वतन्त्रता भी प्राप्त होती है।

(६) शुम्पीटर (Schumpeter) के अनुसार, निम्न विशेषता के कारण समाजवाद, पूंजीवाद से श्रेष्ठ है—(क) समाजवाद मे अधिक आर्थिक कुशलता प्राप्त की जा सकती है अर्थात् राजकीय प्रबन्ध (state management) के अन्तर्गत अधिक उत्पादन प्राप्त हो सकती है। (ख) समाजवाद मे व्यापार चक्रो का अभाव रहता है। (ग) समाजवाद मे एकाधिकारी आचरण (monopolistic practices) नहीं पाया जाता। (घ) कम असमानता के कारण अधिक कल्याण प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—वास्तव मे, पूंजीवाद और समाजवाद दोनों के अपने-अपने गुण तथा दोष हैं, कोई भी प्रणाली पूर्ण नही है। पूंजीवाद मे अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है तथा व्यक्तियो को अपने विकास के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। इसके विपरीत, समाजवाद मे धन का अधिक समान वितरण प्राप्त किया जाता है तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के स्थान पर सामूहिक विकास तथा कल्याण पर अधिक बल दिया जाता है। इसमे सन्देह नहीं कि यदि हम इन दोनो प्रणालियो का मिश्रण कर सकें तो ऐसी प्रणाली सर्वश्रेष्ठ होगी। वास्तव मे, आधुनिक युग मे इस प्रकार के मिश्रण के प्रयत्न किये जा रहे है। ब्रिटेन, अमरीका, इत्यादि पूंजीवादी देशो मे पूंजीवाद का रूप मिश्रित अर्थव्यवस्था (mixed economy) हो गया है, परन्तु इस मिश्रण (mixture) म पूंजीवाद का अनुपात (proportion) अधिक है। इसके विपरीत, भारत तथा अनेक विकासमान देश लोकतान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) को अपना रहे हैं जो पूंजीवाद तथा समाजवाद का ही मिश्रण है, परन्तु इस मिश्रण मे समाजवाद के अनुपात को अधिक रखने का उद्देश्य रहता है।

समाजवाद के रूप (Forms of Socialism)

समाजवाद के अनेक रूप हैं। मुख्य रूप मे समाजवाद को दो भागो मे बाँटा जा सकता है—(१) विकासवादी समाजवाद (Evolutionary Socialism), तथा (२) क्रान्तिवादी समाजवाद (Revolutionary Socialism)। इन दोनो का उद्देश्य लगभग एकसमान ही है, परन्तु उन्हें प्राप्त करने की रीतियो म अन्तर रहता है। दोनो म अन्तर इस प्रकार है—प्रथम, विकासवादी समाजवाद का उद्देश्य धीरे धीरे तथा शान्तिपूर्ण और वैधानिक रीतियो से समाजवाद की स्थापना करना होता है, जबकि क्रान्तिवादी समाजवाद मे समाजवाद की स्थापना के लिए हिंसक तथा क्रान्तिकारी रीतियो का प्रयोग किया जाता है। दूसरे, विकासवादी समाजवाद राज्य को समाप्त नही करना चाहता वरन् उसे अधिक सम्पन्न बनाना चाहता है, ताकि समाज के हितो को भली प्रकार स सुरक्षित रखा जा सके, इसके विपरीत, क्रान्तिकारी समाजवाद राज्य को भी शोषण का एक साधन मानता है और इसलिए राज्य को समाप्त करना चाहता है। रूस, चीन, इत्यादि साम्यवादी देशो का समाजवाद 'क्रान्तिकारी समाजवाद' है जबकि ब्रिटेन की लेबर पार्टी का समाजवाद 'विकासवादी समाजवाद' है। इन दोनो प्रकार के समाजवाद के रूपान्तर ही व्यवहार मे प्रचलित हैं

समाजवाद के मुख्य रूप निम्न हैं .

(१) मार्क्सवादी समाजवाद या वैज्ञानिक समाजवाद (Marxian socialism or Scien-

tific socialism)—वाले मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद को 'मार्क्सवादी समाजवाद'
केवल 'मार्क्सवाद' कहा जाता है। मार्क्स से पूर्व भी कुछ विद्वानों द्वारा समाजवाद के सम्बन्ध
विचार व्यक्त किये गये थे परन्तु मार्क्स ने ही सर्वप्रथम १८६७ में अपनी विख्यात पुस्तक '
कैपीटल (Dass Capital) में समाजवाद के सिद्धान्त को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करने
प्रयत्न किया। इसलिए मार्क्सवादी समाजवाद को 'वैज्ञानिक समाजवाद' (Scientific Socialis
भी कहा जाता है। इसके प्रतिपादन तथा विकास में मार्क्स ने ऐञ्जिल्स (Engels) का भी सह
लिया था। मार्क्स तथा एन्जिल्स के पश्चात् रूस में लेनिन (Lenin) तथा स्तालिन (St
ने भी इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

मार्क्सवादी समाजवाद के दो मुख्य अंग हैं—(१) 'मूल्य का श्रम सिद्धान्त' (Lab
Theory of Value) या 'अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त' (Theory of Surplus Value),
(२) 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' (Materialistic Interpretation of History)।

मार्क्स का मूल्य का श्रम सिद्धान्त बताता है कि किसी वस्तु का उत्पादन श्रमिकों
किया जाता है परन्तु उत्पादित वस्तु के मूल्य (value) की अपेक्षा श्रमिक को मजदूरी के रू
बहुत कम मिलता है। इस प्रकार वस्तु की लागत पर सारा आधिक्य या अतिरेक (surpl
पूँजीपतियों के पास रह जाता है। मार्क्स के अनुसार, यह मूल्य अतिरेक (surplus val
श्रमिकों को मिलना चाहिए क्योंकि यह श्रमिकों द्वारा ही उत्पन्न किया जाता है, परन्तु इस मा
'अतिरेक' को पूँजीपति हड़प जाते हैं और इस प्रकार वे श्रमिकों का शोषण करते हैं। इसलिए मा
ने पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ को 'लूट तथा शोषण' (robbery and exploitation) रा
मार्क्स ने बताया कि पूँजीपति मूल्य-अतिरेक को अपने पास रखने में 'निजी सम्पत्ति नीति
(institution of private property) के कारण सफल होता है। अतः मार्क्स जाता है
'निजी सम्पत्ति एक प्रकार की चोरी (theft) है और उसको बिलकुल समाप्त कर दे
दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति तथा उपभोग के साधनों पर समाज या सरकार का स्वामित्व
होना चाहिए। यही मार्क्स के समाजवाद का वैज्ञानिक आधार है। प है, वास्त

मार्क्स का दूसरा सिद्धान्त 'इतिहास की भौतिक धारणा या व्याख्या' (को सर्वसा
Conception or Interpretation of History) यह बताता है कि सभी ऐति तर्गत उत्पाद
के पीछे आर्थिक तत्त्व होते हैं। प्रत्येक देश में धनवान व्यक्ति (haves) निर्धन र है, काला
not) का शोषण करते हैं और इस प्रकार वर्ग-संघर्ष निरन्तर चलता रह। का उद्देश्य हो
देशों में झगड़े, युद्ध तथा राजनीतिक आन्दोलन आर्थिक कारणों के परिण निर्धारित करेगा
किसी देश का राजनीतिक संगठन भी आर्थिक संगठन पर आधारित प ही नागरिक द्वारा
देश के इतिहास का रेखा (record) उसके आर्थिक तत्त्वों तथा आ जरूरतों में बाँटा जायेंगे,
इस प्रकार मार्क्स ने 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' की। इस श्यकतानुसार मिलेगा (from
बताया कि पूँजीवाद अपने अन्दर ही अपने विनाश के बीज रखता his need)। साम्यवाद का
धनी होते जायेंगे परन्तु उनकी संख्या कम होती जायेगी क्योंकि
मछली को हड़प जाती है उसी प्रकार बड़े पूँजीपति छोटे पूँजी पर भी साम्यवादी यह विश्वा
से एकाधिकारी रह जायेंगे। इसके विपरीत श्रमिकों स्थापित किया जा सकता है। पूँजीवाद
बढ़ जायेगा कि श्रमिकों की अधिक संख्या पूँstages) बतायी जाती हैं (१) पूँजीवादी
प्रकार पूँजीवाद के अन्दर अप (२) श्रमिकों की तानाशाही (Dictatorship of Proleta
जाने पर 'वर्गविहीन समाज' (Socialist Society), तथा (४) साम्यवादी समाज (Comm
blooded socialism) क्षेत्रों में यह विश्वास किया जाता है कि राज्य 'मुरझा कर समाप्त' (w

मार्क्स का 'मूल्यऔर एक वर्गविहीन समाज की स्थापना हो जायेगी। साम्यवाद
की 'इतिहास की भौतिarchism) की भाँति एक अन्तिम उद्देश्य है 'राज्य का मुरझा कर
को मानते हैं कि किसी
वाणी कि पूँजीवाद र

प्रश्न

१. (अ) समाजवाद की मुख्य विशेषताओं को बताइए।
(ब) संक्षेप में समाजवाद के गुण तथा दोषों की विवेचना कीजिए।
(a) Explain the main features of Socialism
(b) Discuss briefly the merits and demerits of Socialism *(Agra, B A I, 1975)*

२ समाजवाद की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। क्या आप भारत के लिए समाजवादी अर्थव्यवस्था का अनुमोदन करेंगे ?
Explain the main features of socialism Would you recommend a socialist economy for India ? *(Agra B A I, 1969)*

[संकेत—प्रथम भाग में पहले समाजवाद की परिभाषा दीजिए और तत्पश्चात् उसकी मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए (समस्त विवरण संक्षिप्त होना चाहिए) दूसरे भाग में बताइए कि भारत जैसे अविकसित देश में लोकतान्त्रिक समाजवाद उपयुक्त होगा और इसके समर्थन में समाजवाद के गुणों को लिखिए (विवरण संक्षिप्त होना चाहिए)।]

३ समाजवाद के गुण तथा दोषों की विवेचना कीजिए। समाजवाद का कौन-सा रूप भारत के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है ?
Discuss the merits and demerits of socialism. Which form of socialism is most suited to Indian conditions ? *(Raj, B A, 1959)*

[संकेत—प्रथम भाग में, पहले संक्षेप में समाजवाद का अर्थ बताइए। दूसरे भाग में बताइए कि भारत का लोकतन्त्र में विश्वास है इसलिए यहाँ पर 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' सर्वोत्तम रहेगा जिसमें पूँजीवाद और समाजवाद के गुणों का समन्वय किया जाता है। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र की अपेक्षा, अधिक विस्तृत तथा प्रबल होता है। भारत सरकार ने लोकतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना का उद्देश्य अपनाया है। संक्षेप में लोकतान्त्रिक समाजवाद के दोषों और गुणों का विवेचन करते हुए भारत में उसके औचित्य को बताइए।]

४ पूँजीवाद तथा समाजवाद में अन्तर को स्पष्ट कीजिए। बताइए कि इनमें कौन-सी प्रणाली आप अधिक पसन्द करते हैं ?
Distinguish between capitalism and socialism and indicate giving reasons which of these you prefer *(Agra B A, 1968, Ravi, B A, 1955)*

[संकेत—प्रश्न को तीन भागों में बाँटिए। प्रथम भाग में पूँजीवाद तथा समाजवाद के अर्थों को स्पष्ट कीजिए। दूसरे भाग में बहुत ही संक्षेप में दोनों प्रणालियों के गुण तथा दोषों को बताइए। तीसरे भाग में बताइए कि दोनों प्रणालियों के गुण दोष हैं, कोई भी प्रणाली पूर्ण नहीं है। ऐसी स्थिति में 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' सबसे उत्तम रहेगा, इसके अन्तर्गत पूँजीवाद तथा समाजवाद के गुणों का समन्वय किया जाता है, निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों साथ साथ सहयोगपूर्ण वातावरण में कार्य करते हैं, परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र अधिक विस्तृत तथा प्रबल रखा जाता है।]

५ पूँजीवाद तथा समाजवाद के अन्तर बताइए। क्या आपके मत में पूँजीवाद के स्वभाव में परिवर्तन हो रहा है ?
Explain the difference between capitalism and socialism Do you think the character of capitalism has been undergoing a change ?

अथवा

पूँजीवाद तथा समाजवाद का अन्तर स्पष्ट कीजिए। आपके मत में पूँजीवाद का भविष्य क्या है ?
Distinguish between capitalism and socialism. What in your opinion is the future of capitalism ?

[संकेत—प्रश्न को दो भागों में बाँटिए। प्रथम भाग में पूँजीवाद तथा समाजवाद के अर्थों को उनकी परिभाषाओं तथा विशेषताओं सहित बताइए। दूसरे भाग में बताइए कि पूँजीवाद में परिवर्तन हो रहा है और पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है। अब पूँजीवाद का रूप लगभग मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का हो गया है। पूँजीवादी देश, पूँजीवाद के दोषों को दूर करने के लिए विभिन्न कदम उठा रहे हैं देखिए पिछले अध्याय में पृष्ठ ७ पर निष्कर्ष नामक शीर्षक की समस्त विषय सामग्री।]

६ पूँजीवाद की मुख्य आर्थिक विशेषताएँ क्या हैं ? किन दृष्टियों से समाजवाद पूँजीवाद से श्रेष्ठ है ?

What are the basic economic features of capitalism ? In what respects is socialism superior to it ? *(Meerut B A, 1972, Agra B A I, 1964)*

[संकेत—दूसरे भाग में, समाजवाद के गुणों को बताते हुए पूँजीवाद की अपेक्षा, उसकी श्रेष्ठता दिखाइए। अन्त में, निष्कर्ष दीजिए कि समाजवाद में भी दोष हैं, इसीलिए 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' या मिश्रित अर्थव्यवस्था' अधिक उपयुक्त है।]

७ पूँजीवाद की मुख्य विशेषताएँ क्या है ? समाजवाद उन्हें किस प्रकार बदलना चाहता है ?

What are the main features of capitalism ? How does socialism aim to change them ? *(Sagar, B Com, 1965, Agra, B A I, 1961)*

3 मिश्रित अर्थव्यवस्था
[MIXED ECONOMY]

पृष्ठभूमि (Background)

प्राचीन समय मे आर्थिक जीवन मे राज्य का हस्तक्षेप बुरा समझा जाता था, राज्य का कर्तव्य केवल न्याय, पुलिस तथा प्रतिरक्षा तक सीमित था। एडम स्मिथ का विचार था कि आर्थिक उन्नति के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता आधारभूत है। जे० बी० से (J B Say), रिकार्डो (Ricardo), मिल (Mill) इत्यादि प्राचीन अर्थशास्त्री स्वतन्त्र उपक्रम (free enterprise) तथा हस्तक्षेप नीति (*laissez faire*) के समर्थक थे। परन्तु कालान्तर म इस प्रणाली के दोष स्पष्ट दिखायी देने लगे। प्रथम महायुद्ध से हस्तक्षेप की नीति का ह्रास होने लगा। १९६२ मे ज० एम० केन्ज (J M Keynes) ने अपनी पुस्तक 'लेसे फेयर का अन्त' (End of *Laissez faire*) मे अहस्तक्षेप की नीति की कडी आलोचना की और 'राज्य के सामान्य निरीक्षण के अन्तर्गत उपक्रम' का समर्थन किया अर्थात् मिश्रित अर्थव्यवस्था के विचार को प्रस्तुत किया। १९२९ की महान मन्दी (Great Depression) ने स्वतन्त्र उपक्रम तथा अहस्तक्षेप की नीति के विरुद्ध भावना को ओर बल दिया।

गलाकाट प्रतियोगिता तथा आर्थिक उतार-चढ़ाव और व्यापार चक्रों के कारण एक देश के बाद दूसरे देश का स्वतन्त्र उपक्रम के प्रति विश्वास उठने लगा। आज प्रत्येक देश मे आर्थिक जीवन मे राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक समझा जाता है। परन्तु राजकीय हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण के अश मे देशो मे भिन्नता पायी जाती है। समाजवादी देशो मे एक बडी सीमा तक राज्य का हस्तक्षेप होना है, साम्यवादी देशो मे प्रत्येक क्षेत्र मे पूर्ण रूप से राज्य का नियन्त्रण होता है तथा पूँजीवादी देशो मे राज्य के हस्तक्षेप का अश सीमित होता है। पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनो प्रणालियो मे गुण भी हैं तथा दोष भी। आधुनिक युग मे ससार के अधिकाश देशो मे एक ऐसी प्रणाली का निर्माण हो रहा है जिसमे स्वतन्त्र उपक्रम तथा सरकारी नियन्त्रण के मिश्रण तथा सहअस्तित्व द्वारा पूँजीवाद तथा समाजवाद के दोषो को दूर कर उनके गुणो को बनाये रखा जा सके। ऐसी प्रणाली को मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ (Meaning of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमे निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का पर्याप्त मात्रा मे सह-अस्तित्व (co-existence) होता है, दोनो के कार्यकरण का क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है परन्तु निजी क्षेत्र की प्रमुखता रहती है। दोनो अपने-अपने क्षेत्र मे मिलकर इस प्रकार से कार्य करते हैं कि बिना शोषण के देश के सभी वर्गों के आर्थिक कल्याण मे वृद्धि हो तथा तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त हो सके।

प्रो० हेन्सन (Hansen) इसको 'द्विक अर्थव्यवस्था' (Dual Economy) तथा प्रो० लार्नर (Lerner) इसको 'नियन्त्रित अर्थव्यवस्था' (Controlled Economy) कहते हैं।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के अर्थ को भली प्रकार से समझने के लिए उसकी विशेषताओं (characteristics) को पूर्ण जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। मिश्रित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) इस प्रणाली में पूँजीवाद तथा समाजवाद का सहअस्तित्व होता है, दूसरे दोनों के गुणों का मिश्रण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का साथ-साथ अस्तित्व रहता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने की है कि निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सहअस्तित्व समाजवाद तथा पूँजीवाद दोनों में पाया जाता है। समाजवाद में सार्वजनिक क्षेत्र प्रबल तथा बहुत अधिक मात्रा में होता है और निजी क्षेत्र अत्यन्त सीमित मात्रा में होता है। इसके विपरीत, पूँजीवाद में निजी क्षेत्र प्रबल तथा बहुत अधिक मात्रा में होता है और सार्वजनिक क्षेत्र अत्यन्त सीमित मात्रा में होता है। परन्तु मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। अतः मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिभाषा में केवल 'निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सहअस्तित्व' कहना पर्याप्त नहीं है जब तक कि यह न कहा जाय कि 'दोनों क्षेत्रों का पर्याप्त मात्रा या अंश में सहअस्तित्व' होता है। परन्तु शब्द 'पर्याप्त मात्रा' किसी निश्चित मात्रा या अंश को नहीं बताता, इसलिए इसको निश्चितता देने के लिए दोनों क्षेत्रों का अलग-अलग क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों तथा व्यवसायों के प्रारम्भ तथा विकास के लिए सरकार उत्तरदायी होती है तथा इनका स्वामित्व और प्रबन्ध सरकार के हाथों में रहता है। इस क्षेत्र में प्रायः सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग, यातायात के साधन तथा आधारभूत उद्योग (जैसे—लोहा तथा इस्पात उद्योग, कोयला उद्योग, खनिज, तेल उद्योग, इत्यादि) रखे जाते हैं। इसके अन्तर्गत ऐसे उद्योग भी रहते हैं जिनमें पूँजी अधिक लगती है और प्रतिफल कम या देर से प्राप्त है, जैसे बड़े-बड़े बाँधों (dams) के निर्माण का।

निजी क्षेत्र में उद्योगों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध निजी उद्योगपतियों के हाथों में होता है, परन्तु उन्हें सरकारी व्यापारिक आर्थिक नीति के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है अर्थात् सरकार अप्रत्यक्ष रूप से अंकुश रखती है। इस क्षेत्र में प्रायः उपभोग वस्तुओं के उद्योग (Consumer's goods industries) सम्मिलित किये जाते हैं, जैसे—कपड़ा, चीनी, सीमेण्ट, कागज, औषधियाँ, बिजली का सामान, इत्यादि।

निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अतिरिक्त दो क्षेत्र और पाये जाते हैं और वे हैं—संयुक्त क्षेत्र (Joint sector) तथा सहकारी क्षेत्र (Co-operative sector)। संयुक्त क्षेत्र में वे उद्योग होते हैं जिनका सरकार तथा निजी उद्योगपति दोनों संयुक्त रूप में संचालन करते हैं, अंश-पूँजी सरकार तथा निजी उद्योगपतियों द्वारा प्रदत्त की जाती है, परन्तु अंश पूँजी में प्रायः सरकार का भाग अधिक होता है। संयुक्त क्षेत्र के कार्यक्रम द्वारा सरकार निजी उद्योगपतियों की कुशलता तथा अनुभव का प्रयोग देश के शीघ्र आर्थिक विकास के लिए करती है। सहकारी क्षेत्र में वे उद्योग आते हैं जो कि सहकारी समितियों द्वारा संचालित होते हैं। इस क्षेत्र में प्रायः छोटे पैमाने के उपभोक्ता-उद्योग रहते हैं, राज्य सहकारी क्षेत्र के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ देता है।

क्षेत्रों के विभाजन के सम्बन्ध में स्थैतिक दृष्टिकोण (static approach) नहीं रखा जाता है, परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। एक ही प्रकार का उद्योग निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों में हो सकता है, जैसे—लोहा तथा इस्पात उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, इत्यादि।

मिश्रित अर्थव्यवस्था की उपर्युक्त पहली विशेषता का सारांश इस प्रकार है

(अ) निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सहअस्तित्व होता है, दोनों क्षेत्र पर्याप्त मात्रा में होते हैं, प्रत्येक क्षेत्र का कार्यक्षेत्र मोटे रूप से निर्धारित कर दिया जाता है, परन्तु प्रमुख स्थान निजी क्षेत्र का होता है।

(ब) संयुक्त क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र भी होते हैं।

(स) क्षेत्रों के विभाजन के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक दृष्टि को नहीं अपनाया जाता है।

(२) इस प्रणाली के अन्तर्गत लाभ उद्देश्य तथा कीमत यन्त्र रहते हैं और ये ही साधनों के वितरण (allocation) को निर्धारित करते हैं। परन्तु लाभ उद्देश्य को पूर्ण स्वतन्त्रता से कार्य नहीं करने दिया जाता है। पूंजीवाद में लाभ-उद्देश्य प्रमुख भाग लेता है जबकि समाजवाद में उसे समाप्त कर दिया जाता है। परन्तु मिश्रित अर्थव्यवस्था में लाभ-उद्देश्य को उस सीमा तक कार्य करने दिया जाता है जब तक कि उससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है और आर्थिक विकास में सहयोग मिलता है।

(३) इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता रहती है परन्तु उसे सामाजिक हित की दृष्टि से सीमित किया जाता है।

(४) इसमें धन के अधिक समान वितरण की व्यवस्था की जाती है, आर्थिक असमानताओं को दूर करने के प्रयत्न किये जाते हैं। इस दृष्टि से एकाधिकारी शक्तियों तथा प्रवृत्तियों को नियन्त्रित किया जाता है।

(५) इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रायः आर्थिक नियोजन को अपनाया जाता है ताकि समस्त अर्थव्यवस्था का कार्यकरण सामाजिक कल्याण तथा तीव्र आर्थिक विकास की दृष्टि से हो सके। इंगलैण्ड, फ्रांस, इत्यादि देशों में मिश्रित अर्थव्यवस्था है और इसमें लोकतान्त्रिक नियोजन को अपनाया गया है। सेम्युलसन तथा अनेक प्रमुख अर्थशास्त्री अमरीका की अर्थव्यवस्था को मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते हैं। यद्यपि अमरीका में 'नियोजन' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वहाँ पर व्यवहार में सीमित मात्रा में नियोजन को अपनाया जाता है। भारत में भी मिश्रित अर्थव्यवस्था है यद्यपि हमारा दीर्घकालीन उद्देश्य लोकतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के लाभ (Advantages of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद तथा समाजवाद का एक सीमा तक मिश्रण होता है, इसलिए इस प्रणाली में हमें पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों से लाभ प्राप्त होते हैं। मुख्य लाभ इस प्रकार है :

(१) **निजी सम्पत्ति, लाभ-उद्देश्य तथा मूल्य-यन्त्र** (Private Property, profit-motive and price mechanism)— मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी सम्पत्ति तथा लाभ-उद्देश्य को स्थान दिया जाता है। ये दोनों मिलकर उत्पादकों तथा साहसियों को बड़ी मेहनत, कुशलता-वृद्धि तथा अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित करते हैं। साथ ही यह निजी सम्पत्ति तथा लाभ-उद्देश्य के शोषणात्मक पहलू (exploitative aspect) को राज्य नियन्त्रण द्वारा कम करता है।

इस प्रणाली में लाभ-उद्देश्य तथा मूल्य-यन्त्र दोनों मिलकर साधनों का कुशल वितरण करते हैं, साथ ही सरकार इन दोनों का सामाजिक कल्याण की दृष्टि से नियन्त्रण करती है।

(२) **पर्याप्त स्वतन्त्रता** (Adequate freedom)—इस प्रणाली में लोगों को पर्याप्त मात्रा में राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। (अ) उपभोक्ताओं को अपनी आय को व्यय करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता होती है, सरकार अपव्ययपूर्ण (wasteful व्यय को परोक्ष रूप से रोकने का प्रयत्न करती है। (ब) लोगों को अपना व्यवसाय चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है, यद्यपि सरकार परोक्ष रूप से देश के आर्थिक विकास की दृष्टि से कुछ व्यवसायों को अधिक प्रोत्साहित कर सकती है। इसमें व्यक्तियों को प्रारम्भन (initiative) की स्वतन्त्रता होती है।

(३) **नियोजन, साधनों का कुशल प्रयोग तथा तीव्र आर्थिक विकास** (Planning, efficient use of resources, and rapid economic development)—(अ) इस प्रणाली में नियोजन को अपनाया जाता है, देश का समस्त विकास नियोजित ढंग से किया जाता है। (ब) देश के समस्त साधनों का अच्छी प्रकार से सर्वेक्षण (survey) किया जाता है, उन्हें निजी, सार्वजनिक, संयुक्त, सहकारी क्षेत्रों में एक सुनिर्धारित योजना के अनुसार बाँटा जाता है और इस प्रकार साधनों का

कुशलतम प्रयोग करने का प्रयत्न किया जाता है। (स) नियोजन, साधनों के न्यूनतम प्रयोग तथा विभिन्न क्षेत्रों के पारस्परिक सहयोग के परिणामस्वरूप देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार होता है।

(४) **सामाजिक कल्याण तथा आर्थिक असमानताओं में कमी** (Social welfare and reduction of economic inequalities)—(अ) सरकार पूँजीवादी संस्थाओं का नियन्त्रित करके सामान्य जनता को शोषण से बचाती है। वह आर्थिक, औद्योगिक तथा वित्तीय नीतियों को सामाजिक कल्याण की दृष्टि से प्रतिपादित करती है। (ब) सरकार वर्द्धमान कर प्रणाली तथा अन्य रीतियों द्वारा धन के वितरण में अधिक समानता लाती है। (स) एकाधिकारी शक्तियों तथा प्रवृत्तियों को नियन्त्रित किया जाता है ताकि उपभोक्ता वर्ग शोषण से बच सके और धन के वितरण में अधिक असमानताएँ उत्पन्न न हों।

आलोचना या दोष (Criticism or Disadvantages)

मिश्रित अर्थव्यवस्था की निम्न आलोचनाएँ की जाती हैं

(१) **व्यवहार में मिश्रित अर्थव्यवस्था का कुशल कार्यकरण कठिन है** (Efficient operation of mixed economy is difficult in practice)—व्यवहार में निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र का साथ-साथ कार्य करना कठिन होता है। विभिन्न प्रकार के निर्णयों में कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं क्योंकि इसमें न तो पूँजीवाद की भाँति पूर्ण रूप से मूल्य-यन्त्र ही कार्य कर पाता है और न समाजवाद की भाँति व्यापक रूप से नियोजन ही किया जा सकता है। दोनों क्षेत्रों के बीच अच्छा सामंजस्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन होता है।

कुछ समाजवादियों के अनुसार, मिश्रित अर्थव्यवस्था 'शब्दों का विरोधाभास' (Contradiction in terms) है और इसके द्वारा पूँजीपति श्रमिकों को अस्थायी रूप से अपने पक्ष में करना चाहते हैं। इसके विपरीत, कुछ पूँजीपतियों के अनुसार, इस प्रणाली के अन्तर्गत पूँजीवाद के लाभों को प्राप्त करना कठिन है। शुम्पीटर के शब्दों में, मिश्रित अर्थव्यवस्था तो 'ऑक्सीजन के शिविर में पूँजीवाद' (Capitalism in the oxygen tent) है अर्थात् पूँजीवाद का सहअस्तित्व (Co-existence) अस्थायी रहता है और मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत स्थायी रूप से पूँजीवाद के लाभ प्राप्त नहीं किये जा सकते।

परन्तु उपर्युक्त आलोचना में अधिक शक्ति प्रतीत नहीं होती क्योंकि व्यवहार में मिश्रित अर्थव्यवस्था में नियोजन द्वारा निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में उचित समन्वय स्थापित किया जा सका है और समाजवाद तथा पूँजीवाद के लाभों को प्राप्त किया जा रहा है। यदि ऐसा नहीं होता तो आधुनिक प्रवृत्ति मिश्रित अर्थव्यवस्था की ओर नहीं होती।

(२) **अस्थिरता** (Instability)—कुछ आलोचकों का मत है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था स्थायी रूप धारण नहीं कर सकती। कालान्तर में या तो निजी क्षेत्र प्रबल होकर सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यन्त सीमित कर सकता है और इस प्रकार पुनः पूँजीवाद की स्थापना हो सकती है, या समाजवादी शक्तियाँ अधिक प्रबल होकर निजी क्षेत्र को अत्यधिक सीमित कर सकती है और इस प्रकार समाजवाद की स्थापना हो सकती है। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्थायी रूप ग्रहण करना अत्यन्त कठिन है।

(३) **लोकतन्त्र को डर** (Danger to democracy)—कुछ आलोचकों के अनुसार, मिश्रित अर्थव्यवस्था में सदैव यह डर बना रहता है कि धीरे-धीरे समाजवादी शक्तियाँ प्रबल हो सकती हैं। निजी क्षेत्र लगभग समाप्त हो सकता है और समस्त अर्थव्यवस्था पर राज्य का स्वामित्व तथा नियन्त्रण हो सकता है। ऐसी स्थिति में लोकतन्त्र समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था में लोकतन्त्र समाप्त होने का डर सदैव बना रहता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—मिश्रित अर्थव्यवस्था के अनेक लाभ हैं, परन्तु इसकी आलोचनाओं में सत्यता का कुछ अंश अवश्य है। नियोजन, उचित नीतियों तथा सतर्कता द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था की कठिनाइयों तथा डरों को दूर किया जा सकता है तथा निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में अच्छा सामंजस्य स्थापित हो सकता है, व्यवहार में ऐसा हो रहा है। स्वीडन, स्विट्जरलैण्ड, डेनमार्क, फ्रांस, इंगलैण्ड, अमरीका, इत्यादि देशों में मिश्रित अर्थव्यवस्था सफलता के साथ

कार्य कर रही है और इन देशो मे आर्थिक उन्नति का एक ऊँचा स्तर है। वर्तमान समय मे भारत मे भी मिश्रित अर्थव्यवस्था कार्य कर रही है, यद्यपि भारत का दीर्घकालीन उद्देश्य लोकतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना करना है जिसमे सार्वजनिक क्षेत्र अधिक प्रबल रखा जायेगा। अधिकांश अविकसित देश मिश्रित अर्थव्यवस्था को ही अपना रहे है ताकि पूँजीवाद और समाजवाद दोनो का लाभ उठाकर तीव्र गति से आर्थिक विकास कर सकें। वास्तव मे, आधुनिक प्रवृत्ति मिश्रित अर्थव्यवस्था की ओर है।

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था
(MIXED ECONOMY IN INDIA)

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने नियोजन तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया ताकि देश का तीव्र आर्थिक विकास किया जा सके और सामान्य लोगो के जीवन-स्तर मे वृद्धि हो सके। ६ अप्रैल, १९४८ को भारत सरकार की ओर से डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने 'औद्योगिक नीति' की घोषणा की। नीति के साथ ही भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। इस नीति के अनुसार, उद्योगो को चार श्रेणियो मे बाँटा गया। प्रथम श्रेणी मे राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उद्योगो को रखा गया, जैसे—प्रतिरक्षा सम्बन्धी शस्त्रों का निर्माण, अणु-शक्ति का उत्पादन तथा नियन्त्रण, रेलवे यातायात, इत्यादि। इस क्षेत्र के उद्योगो पर राज्य को पूर्ण एकाधिकार दिया गया। द्वितीय श्रेणी मे आधारभूत उद्योग सम्मिलित किये गये, जैसे—लोहा तथा इस्पात उद्योग, वायुयानो तथा जलयानो का निर्माण, कोयला, तार, टेलीफोन, उद्योग, इत्यादि। इस क्षेत्र के उद्योगो पर सरकार का नियन्त्रण रखा गया तथा सभी नये आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व और सचालन सरकार के लिए सुरक्षित किया गया। तृतीय श्रेणी मे उपभोग तथा आवश्यक वस्तुओं के उद्योग रखे गये, जैसे—सीमेण्ट, चीनी वस्त्र, नमक, कागज, इत्यादि। इस क्षेत्र के उद्योगो का स्वामित्व तथा सचालन निजी उद्योगपतियो को दिया गया, परन्तु इन पर सरकार का नियमन तथा नियन्त्रण रखा गया। चौथी श्रेणी मे शेष सभी उद्योग रखे गये जो निजी व्यक्तियो द्वारा सचालित होंगे और जिन पर सरकार का सामान्य नियन्त्रण होगा।

३० अप्रैल, १९५६ मे थोडे परिवर्तन के साथ औद्योगिक नीति का पुनर्निर्माण किया गया। इस नयी नीति के अनुसार, उद्योगो को तीन श्रेणियो मे बाँटा गया है। प्रथम श्रेणी मे शस्त्रो का निर्माण, अणु-शक्ति, लोहा तथा इस्पात उद्योग वायुयानो का निर्माण, कोयला, खनिज तेल, इत्यादि १७ उद्योग रखे गये। इस क्षेत्र के उद्योगो पर सरकार का पूर्ण एकाधिकार रखा गया। द्वितीय श्रेणी मे मशीन टूल एल्युमीनियम, खाद फेरोएलोयज, इत्यादि १२ उद्योग रखे गये। भविष्य मे इस क्षेत्र के उद्योगो का विकास मुख्य रूप से सरकार पर छोडा गया। परन्तु इस क्षेत्र के उद्योगो के विकास के लिए निजी तथा सार्वजनिक दोनो क्षेत्रो के सहयोग पर बल दिया गया। तृतीय श्रेणी मे शेष सभी उद्योगो को रखा गया जिनका प्रारम्भ तथा विकास निजी व्यक्तियो पर छोडा गया। नयी औद्योगिक नीति के सम्बन्ध मे यह ध्यान रखना चाहिए कि औद्योगिक विकास तथा नियन्त्रण अधिनियम, १९५१ (Industrial Development and Regulation Act, 1951) द्वारा सरकार निजी उद्योगो पर पर्याप्त मात्रा मे नियन्त्रण रखती है। इसके साथ-साथ सरकार ने निजी उद्योगो के विकास मे सहयोग देने की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की वित्तीय सस्थाएँ खोल रखी हैं।

इस प्रकार भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना की गयी है जिसमे निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र के पारस्परिक सहयोग पर बल दिया गया है। सहकारी क्षेत्र को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। यद्यपि वर्तमान समय मे भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था है, परन्तु भारत का दीर्घकालीन उद्देश्य 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' रखा गया है जिसमे कालान्तर मे सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक विस्तृत तथा प्रबल किया जायेगा।

प्रश्न

१ मिश्रित अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं? इसके गुण-दोषो की भारतीय दशाओ के सन्दर्भ मे विवेचना कीजिए।
What do you understand by 'mixed economy'? Discuss its merits and demerits with reference to Indian conditions
(Agra B A. 1970)

२. मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिभाषा दीजिए। उसकी विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
Define mixed 'economy'. Discuss its characteristics.

4 आर्थिक नियोजन
[ECONOMIC PLANNING]

पृष्ठभूमि
(BACKGROUND)

पाश्चात्य देशो में १६वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म 'निर्बाधावादी पूँजीवाद' (*Laissez faire Capitalism*) के दोषो को अनुभव किया जाने लगा। इन्हे दूर करने के लिए विद्वानो तथा विचारको ने राज्य हस्तक्षेप का समर्थन किया। राज्य हस्तक्षेप समर्थन को नियोजन के विचार की प्रारम्भिक दशा कहा जा सकता है।

प्रथम विश्वयुद्ध काल म जर्मनी ने युद्ध की क्रियाओ को सुचारु रूप से चलाने के लिए नियोजन या आयोजन को अपनाया। परन्तु आयोजन को स्थायी रूप से केवल युद्धकालीन परिस्थितियो में ही अपनाया गया।

१६२८ मे रूस ने आर्थिक आयोजन को स्थायी आधार पर स्वीकार किया और देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए प्रथम पचवर्षीय योजना बनायी। कालान्तर मे रूस म आर्थिक आयोजन की सफलता का अन्य देशो पर गहरा प्रभाव पडा।

१६३० मे पूँजीवादी देश 'महान मन्दी' (Great Depression) की पकड मे आये। म दी के परिणामस्वरूप पाश्चात्य देशो की आर्थिक व्यवस्थाएँ जर्जर हो गयी थी। पूँजीवाद के मुख्य दोष—व्यापार चक्र, बिना इच्छा के बेरोजगारी (involuntary unemployment), वर्ग सघर्ष, इत्यादि—स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगे। इनसे मुक्ति पाने के लिए राज्य हस्तक्षेप तथा आयोजन की आवश्यकता अनुभव हुई। इस समय रूस मे आयोजन की सफलता ने इस विचार को और बल प्रदान किया। केन्ज के लेखो ने राज्य हस्तक्षेप तथा आयोजन को प्रोत्साहन दिया। अमरीका म 'न्यू डील' (New Deal) तथा फ्रास मे 'ब्लम प्रयोग' (Blum Experiment) की नीतियो को अपनाया गया।

द्वितीय युद्ध मे सम्बन्धित देशो ने पुन आयोजन को अपनाया। युद्ध को कुशलता से चलाने के लिए सम्बन्धित देशो को अपने आर्थिक साधनो का नियोजित तथा विवेकपूर्ण ढग से प्रयोग करना आवश्यक था।

द्वितीय युद्ध के कारण यूरोपीय देशो की अर्थव्यवस्थाएँ ध्वस हो गयी थी, इनके पुनर्निर्माण के लिए अमरीका ने 'मार्शल प्लान' (Marshall Plan) बनाया। इस प्लान के अन्तर्गत आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए यूरोपीय देशो को पुनर्निर्माण की निश्चित योजनाएँ बनाना आवश्यक था। इस प्रकार आयोजन के विचार की जडें जम गयी।

अन्त मे, एशिया तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देश स्वतन्त्र हुए। इनमे से कई देशो ने तीव्र आर्थिक विकास के लिए आयोजन अपनाया।

स्पष्ट है कि प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियाँ, महान मन्दी, रूस मे आयोजन की सफलता, केन्ज के लेख, अमरीका मे न्यू डील (New Deal) तथा फ्रास मे ब्लम प्रयोग (Blum

Experiment), द्वितीय युद्ध मे ध्वसित यूरोप के देशो की अर्थव्यवस्थाओ मे पुनर्निर्माण के लिए मार्शल प्लान का कार्यान्वित होना पूँजीवाद के मुख्य दोषों से मुक्ति पाने, अविकसित देशो की तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकता, इत्यादि वे तत्व हैं जिन्होंने आयोजन के विचार को प्रोत्साहित किया।

आर्थिक आयोजन की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF ECONOMIC PLANNING)

आधुनिक युग मे आयोजन या नियोजन गहरी जडें जमा चुका है। परन्तु आयोजन के अर्थ, स्वभाव तथा क्षेत्र के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद है। विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने आयोजन को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। कुछ परिभाषाएँ नीचे दी गयी है।

हायेक (Hayek) के अनुसार, आर्थिक नियोजन का अर्थ है, "एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा उत्पादन क्रियाओ का निर्देशन।"[1]

डिकिनसन (Dickinson) के अनुसार, "प्रमुख आर्थिक निर्णय लेने की क्रिया आर्थिक आयोजन है, जिससे समस्त अर्थव्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारक सत्ता द्वारा विचारपूर्वक यह निर्णय लिया जाता है कि क्या और कितना उत्पादन किया जायेगा तथा उसका वितरण किस प्रकार किया जायेगा।"[2]

लीविस लोरविन (Lewis Lorwin) के अनुसार, योजनाबद्ध आर्थिक व्यवस्था "आर्थिक सगठन की एसी योजना है जिसमे व्यक्तिगत तथा पृथक् इकाइयो, उपक्रमो और उद्योगों को एक सम्पूर्ण प्रणाली की समन्वित इकाइयाँ माना जाता है और जिसका उद्देश्य एक निश्चित अवधि में समस्त उपलब्ध साधनो के प्रयोग द्वारा लोगो की आवश्यकताओं की पूर्ति करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना होता है।"[3]

श्रीमती बारबरा वूटन (Barbara Wootton) के अनुसार, "आयोजन का अर्थ है कि एक सार्वजनिक सत्ता द्वारा विचारपूर्वक तथा जानबूझकर आर्थिक प्राथमिकताओ के बीच चुनाव करना।"[4]

उपर्युक्त परिभाषाओ से स्पष्ट होता है कि आर्थिक आयोजन संगठन की ऐसी योजना है जिसमे (i) आर्थिक क्षेत्र मे राज्य-हस्तक्षेप (state-intervention) तथा राज्य सहभागिता (state-partnership) होती है, (ii) उद्देश्यो को विचारपूर्वक तथा जानबूझकर निश्चित किया जाता है, (iii) उद्देश्यों के बीच प्राथमिकताएँ (priorities) निर्धारित की जाती है, (iv) उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निश्चित समय निर्धारित किया जाता है, (v) एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता होती है जो कि देश के समस्त स्थित तथा सम्भावित साधनों का सर्वेक्षण करती है, योजना बनाती है तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागो मे समन्वय तथा एकीकरण स्थापित करती है।

आयोजन की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF PLANNING)

आर्थिक नियोजन का अर्थ अच्छी प्रकार से समझने के लिए उसकी विशेषताओ की पूर्ण जानकारी आवश्यक है। मुख्य परिभाषाओ के आधार पर आयोजन की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं।

---

[1] Economic Planning means, "the direction of productive activity by a central authority"
—Hayek, *Collectivist Economic Planning*

[2] "Economic planning is the making of major economic decisions—what and how much is to be produced and to whom it is to be allocated—by the conscious decisions of a determinate authority, on the basis of a comprehensive survey of the economic system as a whole"
—H D Dickinson, *Economics of Socialism*, p 14

[3] Planned economy is "a scheme of economic organisation in which individual and separate plants, enterprises and industries are treated as co-ordinate units of one single system for the purpose of utilising available resources to achieve the maximum satisfaction of the people's needs within a given time"
—Lewis Lorwin, Quoted by George Frederick in *Readings in Economic Planning*, p 153.

[4] "Planning may be defined as the conscious and deliberate choice of economic priorities by some authority."
—*Barbara Wootton*

(१) केन्द्रीय नियोजन सत्ता—आयोजन के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को स्वत संचालन के लिए नहीं छोड़ा जाता वरन् उसका संचालन और निर्देशन सरकार द्वारा होता है। आयोजन का समस्त कार्य सरकार एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता (Central Planning Authority) को सौंप देती है। (अ) केन्द्रीय आयोजन सत्ता देश के समस्त साधनों का सर्वेक्षण करती है। (ब) वह पूर्व-निश्चित उद्देश्यों तथा प्राप्य और सम्भावित साधनों के बीच समन्वय (co-ordination) स्थापित करती है। (स) सरकार योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक संगठन या एजन्सी की व्यवस्था करती है।

(२) पूर्व निश्चित उद्देश्य—आयोजन म विचारपूर्वक तथा जानबूझकर उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। प्राय उत्पादन-कुशलता म वृद्धि, रोजगार के अवसरों म वृद्धि, आर्थिक असमानताओं को दूर करना, देश के आर्थिक विकास की गति को तीव्र करना, इत्यादि उद्देश्य निश्चित किये जाते है।

(३) प्राथमिकताएँ—आयोजन के अन्तर्गत केन्द्रीय सत्ता उद्देश्यों के बीच प्राथमिकताएँ (priorities) निर्धारित करती है क्योंकि साधन सीमित होते हैं और उद्देश्य अनेक तथा प्रतियोगी होते है।

(४) समयावधि—उद्देश्यों को प्राय निर्धारित किये हुए निश्चित समय म पूर्ण करने के प्रयत्न किये जाते है।

(५) व्यापक क्षेत्र—विकासमान आयोजन (Developmental Planning) मे आयोजन का क्षेत्र व्यापक होना है अर्थात् समस्त अर्थव्यवस्था का आयोजन किया जाता है ताकि तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त किया जा सके। उन्नतशील देशों (advanced economies) म कभी कभी केवल खण्डों (sectors) के विकास के लिए ही आयोजन किया जाता है। संक्षेप मे, आयोजन मुख्यतया 'व्यापक दृष्टिकोण' (Macro Approach) रखता है, परन्तु आवश्यकतानुसार 'सूक्ष्म दृष्टिकोण' (Micro Approach) को भी अपनाया जाता है।

(६) संरचनात्मक (Structural) परिवर्तन—विकासमान आयोजन म अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों तथा अंगों का केवल समन्वय तथा एकीकरण ही नहीं किया जाता, वरन् इसके अन्तर्गत कुछ 'संरचनात्मक परिवर्तन' (structural changes) भी किये जाते है। केन्द्रीय आयोजन सत्ता अपना ध्यान केवल 'उपस्थित कड़ियों' (existing links) पर केन्द्रित नहीं करती वरन् वह 'पिछड़ी महत्वपूर्ण कड़ियों' (backward crucial links) का तोड़ती है और तत्पश्चात् अर्थव्यवस्था की विभिन्न कड़ियों का समन्वय तथा एकीकरण (co ordination and integration) करती है।

(७) दीर्घकालीन (Perspective) दृष्टिकोण—आयोजन एक निरन्तर तथा दीर्घकालीन प्रक्रिया (continuous and long term process) है। दीर्घकालीन आयोजन अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि तभी यह स्पष्ट होगा कि १५-२५ वर्ष बाद हम क्या प्राप्त करना चाहते है। अल्पकालीन योजनाओं का दीर्घकालीन आयोजन के साथ समन्वय करते रहना आवश्यक है। वास्तव मे दीर्घकालीन आयोजन ही आयोजन प्रक्रिया का सार है।[5]

(८) लोच—यह आवश्यक है कि योजना लोचपूर्ण (flexible) हो। सांख्यिकीय तकनीक (statistical techniques) कितने ही अच्छे क्यों न हों परन्तु फिर भी त्रुटि होने की सम्भावनाएँ रहती है। इसलिए आयोजन प्रक्रिया मे जो कुसमंजन (maladjustment) अनुभव हो, उसे सुधारना आवश्यक है। अत एक सीमा तक आयोजन लोचपूर्ण होता है और यह आयोजन की एक मुख्य विशेषता है।

---

[5] Indeed perspective planning is of the essence of the planning process

(९) *मूल्यांकन तन्त्र—आयोजन ठीक प्रकार से हो रहा है या नहीं,* उसको आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है या नहीं, इन सब बातों को जानने के लिए एक मूल्यांकन तन्त्र (evaluation machinery) की व्यवस्था होती है। यह मूल्यांकन तन्त्र आयोजन का सामान्य या विशिष्ट सर्वेक्षण करता है।

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF ECONOMIC PLANNING)

आयोजन के उद्देश्य सब देशों के लिए समान नहीं होते और वे एक ही देश के लिए सब समयों में एकसमान नहीं रहते हैं। वास्तव में किसी देश में आर्थिक आयोजन के उद्देश्य उस देश के आर्थिक विकास की दशा, राजनीतिक ढाँचे, सामाजिक-आर्थिक दशाओं, इत्यादि द्वारा प्रभावित होते हैं। परन्तु फिर भी कुछ सामान्य आर्थिक उद्देश्य (economic objectives) होते हैं। इन उद्देश्यों को हम निम्न तीन भागों में बाँट सकते हैं

(अ) आर्थिक उद्देश्य; (ब) सामाजिक उद्देश्य, तथा (स) राजनीतिक उद्देश्य।

(अ) आर्थिक उद्देश्य

(१) देश के समस्त साधनों का पूर्ण प्रयोग करके **राष्ट्रीय आय को अधिकतम** करना ताकि *लोगों का जीवन स्तर ऊँचा हो सके।*

(२) मूल्यों के उतार चढ़ाव को नियन्त्रित कर **आर्थिक जीवन में स्थिरता लाना।**

(३) बेरोजगारी आर्थिक असमानताओं को जन्म देती है, इससे मानव शक्ति का पूर्ण प्रयोग नहीं होता तथा सामाजिक असन्तुष्टि पनपती है, इसलिए आयोजन का एक मुख्य उद्देश्य ***पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करना है।***

(४) **कृषि** का विकास करना ताकि उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में कच्चे माल तथा व्यक्तियों को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न प्राप्त हो सकें।

(५) **तीव्र औद्योगिक विकास करना,** इसके परिणामस्वरूप अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे, देश के उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी तथा कृषि के विकास में सहायता मिलेगी। मुख्यतया कृषि पर निर्भर रहने वाली अर्थव्यवस्थाएँ पिछड़ी होती हैं, इनके विकास के लिए तीव्र औद्योगीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

(६) धन के अधिक न्याययुक्त वितरण द्वारा देश में **आर्थिक असमानताओं को दूर करना।** *इससे धनी तथा निर्धन व्यक्तियों के बीच खाई (gulf) कम होगी, लोगों के कल्याण में वृद्धि होगी* तथा आर्थिक और राजनीतिक स्थायित्व प्राप्त हो सकेगा।

(७) देश विशेष का **सन्तुलित आर्थिक विकास करना।** इसका अर्थ यह है कि यदि देश मुख्यतया कृषि पर निर्भर करता है तो तीव्र औद्योगिक विकास द्वारा कृषि पर अत्यधिक निर्भरता को समाप्त कर उसका सन्तुलित विकास किया जाय। इसके अतिरिक्त, यदि देश में कुछ क्षेत्र (regions) पिछड़े हुए हों तो उनका भी विकास किया जाय ताकि क्षेत्रीय असमानताएँ कम हो जायें।

(ब) सामाजिक उद्देश्य

(१) *सामाजिक सुरक्षा की अच्छी व्यवस्था।*

(२) सामाजिक समानता को प्राप्त करना।

(स) राजनीतिक उद्देश्य

(१) प्रतिरक्षा की दृष्टि से देश को शक्तिशाली बनाना।

(२) आवश्यकता पड़ने पर आक्रमण की दृष्टि से देश के साधनों का नियोजन तथा प्रयोग करना।

(३) शान्ति के लिए आधुनिक युग में इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि अन्तर-राष्ट्रीय स्तर पर सब उन्नतशील राष्ट्र मिलकर अविकसित देशों के विकास में सहयोग दें ताकि उन्नतशील देशों तथा अविकसित देशों के बीच खाई कम हो और शान्ति के लिए अधिक उपयुक्त वातावरण उत्पन्न हो।

आयोजन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बातें

आयोजन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिए

(१) प्राय एक देश एक समय में कई उद्देश्य अपनाता है। परन्तु इन उद्देश्यों का महत्व देश विशेष की आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। एक देश में एक समय में कुछ उद्देश्यों पर दूसरे देश की अपेक्षा अधिक बल दिया जायेगा।

(२) आयोजन के उद्देश्य केवल आर्थिक या राजनीतिक या सामाजिक ही नहीं होते वरन् वे प्राय मिश्रित होते हैं।

(३) अल्पकाल में कुछ उद्देश्य प्रतियोगी तथा परस्पर विरोधी (competitive and conflicting) होते हैं। उदाहरणार्थ, प्रारम्भ में अधिक उत्पादन तथा अधिक रोजगार में थोड़ा विरोध (conflict) होता है। यदि बड़े तथा भारी उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है तो अधिक उत्पादन प्राप्त होगा परन्तु लोगों को अपेक्षाकृत कम रोजगार मिलेगा क्योंकि इन उद्योगों में विवेकीकरण होगा और अधिक मशीनों का प्रयोग होगा। यदि कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है तो लोगों को अधिक रोजगार प्राप्त हो सकेगा परन्तु प्रति व्यक्ति आय और उत्पादन कम होगा। अत प्रारम्भिक अवस्था में इस प्रकार के परस्पर विरोधी उद्देश्यों के बीच समन्वय स्थापित करना पड़ता है। इस प्रकार प्रारम्भ में सामाजिक सेवाओं तथा औद्योगीकरण में थोड़ा विरोध रहता है। परन्तु दीर्घकाल में पर्याप्त आर्थिक विकास हो जाने के बाद इस प्रकार का विरोध नहीं रहता या बहुत कम हो जाता है।

(४) वास्तव में, उद्देश्य परस्पर सम्बन्धित तथा निर्भर (inter-linked and inter-dependent) होते हैं। अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक तथा सामाजिक समानता—ये सब उद्देश्य एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं और परस्पर निर्भर हैं।

नियोजित तथा अनियोजित अर्थव्यवस्थाएँ—एक तुलना
(PLANNED AND UNPLANNED ECONOMIES—A COMPARISON)

अनियोजित अर्थव्यवस्था का अर्थ

सामान्यतया एक अनियोजित अर्थव्यवस्था स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था या पूँजीवादी अर्थव्यवस्था होती है जिसमें आर्थिक मामलों में राज्य का हस्तक्षेप निम्नतम होता है (i) अनियोजित अर्थव्यवस्था में उत्पादन उपभोग, विनियम तथा वितरण की क्रियाएँ बाजार की स्वतन्त्र शक्तियों पर छोड़ दी जाती हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवसाय को चुनने में स्वतन्त्र होता है। दूसरे शब्दों में, किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन होगा, किन वस्तुओं का उपभोग किया जायेगा, इत्यादि निर्णय तथा विभिन्न क्षेत्रों में समन्वय किसी केन्द्रीय सत्ता द्वारा नहीं किया जाता है। समन्वय तथा निर्णय लेने के कार्य स्वचालित मूल्य-यन्त्र और लाभ-उद्देश्य द्वारा किये जाते हैं। (ii) इसमें समस्त अर्थव्यवस्था के लिए उद्देश्यों को विचारपूर्वक पूर्व निश्चित नहीं किया जाता, केवल व्यक्तिगत उत्पादक लाभ-उद्देश्य से अपने उत्पादन की योजना बनाते हैं। (iii) समाज की दृष्टि से उद्देश्यों के बीच कोई प्राथमिकताएँ निर्धारित नहीं की जाती। (iv) चूँकि समस्त समाज की दृष्टि से उद्देश्य निर्धारित नहीं किये जाते, इसलिए उनकी पूर्ति के लिए किसी समयावधि के निर्धारण का प्रश्न ही नहीं उठता।

नियोजित अर्थव्यवस्था का अर्थ

नियोजित अर्थव्यवस्था एसा आर्थिक सगठन है जिसमें (i) आर्थिक क्षेत्र में राज्य हस्तक्षेप तथा राज्य सहभागिता होती है। एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता देश के समस्त स्थित तथा सम्भावित

साधनो का सर्वेक्षण करती है, योजना बनाती है तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों मे समन्वय तथा एकीकरण स्थापित करती है। (ii) उद्देश्य को विचारपूर्वक तथा जानबूझकर निश्चित किया जाता है। (iii) उद्देश्यों में बीच प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती हैं। (iv) उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निश्चित समय निर्धारित किया जाता है।

नियोजित अर्थव्यवस्था के दोष (या अनियोजित अर्थव्यवस्था के गुण)

(१) स्वतन्त्रता का अभाव—नियोजित अर्थव्यवस्था मे शक्ति का केन्द्रीयकरण होता है, परिणामस्वरूप सभी प्रकार की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है।

(i) इसके अन्तर्गत व्यक्तियों को अपना व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता नहीं रहती है, वे केवल केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित व्यवसायो मे ही कार्य कर सकते हैं। इसके विपरीत, अनियोजित अर्थव्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम म प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता रहती है। परन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था मे व्यवसायों का निर्धारण करते समय व्यक्तियों की रुचियों तथा देश की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखा जाता है।

(ii) आयोजित अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता की प्रभुता या स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है, वह केवल उन वस्तुओं का प्रयोग कर सकता है जिनका उत्पादन सरकार चाहती है। सरकार प्रायः आवश्यक वस्तुओं का राशन करके उपभोग की मात्रा भी निर्धारित कर देती है। परन्तु ध्यान रहे कि अनियोजित अर्थव्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम म भी उपभोक्ता की प्रभुता वास्तविक नहीं है, उत्पादक विज्ञापन तथा प्रचार द्वारा उपभोक्ताओं के चुनाव को प्रभावित करते रहते हैं।

(iii) हायक (Hayek) के अनुसार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा आयोजन असगत (incompatible) है दोनो का सहअस्तित्व नहीं हो सकता। परन्तु बारबरा वूटन का मत है कि लोकतान्त्रिक नियोजित अर्थव्यवस्था म स्वतन्त्रता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, स्वतन्त्र उपक्रम में अत्यधिक प्रतियोगिता के दोषों को दूर करने के लिए आयोजन की आवश्यकता पड़ती है।

(२) भ्रष्टाचार तथा अकुशलता—नियोजित अर्थव्यवस्था मे प्रतियोगिता की कमी तथा केन्द्रीय नियन्त्रण और निर्देशन के परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार तथा अकुशलता पायी जाती है।

(i) प्रतियोगिता की कमी के कारण अधिकारियों मे शिथिलता रहती है जिससे उनकी कुशलता म कमी आ जाती है। आयोजित अर्थव्यवस्था म कार्यकरण म देर होती है क्योंकि प्रत्येक कार्य का निर्धारण केन्द्रीय सत्ता द्वारा होता है।

(ii) प्राय अधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं वरन् राजनीतिक विचारो पर की जाती है।

(iii) सामान्यतया सरकारी अधिकारी भ्रष्ट होते हैं परन्तु ध्यान रहे कि बड़ी-बड़ी निजी कम्पनियों मे भी भ्रष्टाचार पाया जाता है।

(iv) नियोजित अर्थव्यवस्था म अधिकारी कार्यकर्ताओं की बहुत अधिक संख्या मे आवश्यकता पड़ती है, परन्तु शिक्षित ईमानदार, कुशल तथा प्रशिक्षित कार्यकर्ता इतनी बड़ी सख्या म सुगमता स प्राप्त नहीं होते हैं।

(v) समस्त अर्थव्यवस्था के आयोजन का कार्य अत्यन्त जटिल तथा गुथा हुआ होता है जिसके लिए सामान्य व्यक्ति नहीं वरन् अर्द्ध-देवता (Demi gods) चाहिए, अत आयोजित अर्थव्यवस्था मे अकुशलता रहती है। इसके विपरीत, अनियोजित अर्थव्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम मे मूल्य-यन्त्र द्वारा सारा कार्य कुशलता क साथ स्वत होता है।

(vi) उपर्युक्त सब बातों के कारण कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री, रोबर्टसन (Robertson), हैरोड (Harrod), इत्यादि एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा समस्त उत्पादन तथा वितरण के निर्देशन के विरुद्ध हैं। वे बजट नीति, सामान्य वित्तीय तथा मौद्रिक नियन्त्रणो को ही पर्याप्त समझते हैं।

(३) साधनों का अविवेकपूर्ण वितरण—आयोजित अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता द्वारा साधनो के वितरण के लिए कोई वैज्ञानिक आधार नही होता, प्राय वितरण (allocation) अविवेकपूर्ण होता है। अनियोजित अर्थव्यवस्था में मूल्य-यन्त्र साधनो को विभिन्न प्रयोगों मे विवेकपूर्ण ढग से वितरित करता है। यह मूल्य-यन्त्र नियोजित अर्थव्यवस्था में अनुपस्थित होता है।

(४) श्रमिकों में प्रेरणा की कमी—नियोजित अर्थव्यवस्था मे श्रमिको के ग्रेड, कार्य दशाएँ, उन्नति के अवसर, इत्यादि एक निश्चित योजना के अनुसार पूर्व निर्धारित किये जाते हैं जिससे श्रमिको मे अधिक परिश्रम करने की प्रेरणा नही रह जाती है।

(५) ऊँची प्रशासन लागत—नियोजन के लिए अधिकारियो, लिपिको तथा अन्य कार्यकर्ताओ की पूरी फौज रखनी पडती है और इस प्रकार प्रशासन लागत (administrative cost) बहुत अधिक पडती है। अनियोजित अर्थव्यवस्था मे प्रशासन लागत ऊँची नही होती क्योंकि यह मूल्य-यन्त्र द्वारा स्वत कार्य करती है।

(६) शक्ति का केन्द्रीयकरण—कुल नियोजन में समस्त शक्ति थोडे-से व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। परिणामस्वरूप एक त्रुटि का प्रभाव समस्त अर्थव्यवस्था पर पडता है। इसके विपरीत, नियोजित अर्थव्यवस्था मे शक्ति के विकेन्द्रीयकरण के कारण एक त्रुटि का प्रभाव केवल थोडे से व्यक्तियों पर ही पडता है।

नियोजित अर्थव्यवस्था के गुण (या अनियोजित अर्थव्यवस्था के दोष)

रोबिन्स के शब्दों में, "आर्थिक नियोजन हमारे युग का रामबाण (panacea) है।"* नियोजन की आवश्यकता या उसके पक्ष मे तर्क मुख्यतया दो बातो पर निर्भर हैं। प्रथम, स्वतन्त्र उपक्रमो के दोषो को दूर करने के लिए नियोजन की आवश्यकता है। दूसरे, अविकसित देशों के तीव्र आर्थिक विकास के लिए नियोजन विशेष रूप से आवश्यक है। नियोजन के पक्ष मे तर्क या उसके गुण निम्नलिखित हैं :

(१) साधनों का अधिकतम प्रयोग—(अ) नियोजित अर्थव्यवस्था मे केन्द्रीय सत्ता देश के समस्त साधनो का सर्वेक्षण करती है और प्राथमिकता के आधार पर उनका अधिकतम प्रयोग करती है। इसके विपरीत, अनियोजित अर्थव्यवस्था मे न तो सम्पूर्ण साधनो का कोई वैज्ञानिक सर्वेक्षण ही होता है और न कोई प्राथमिकताएँ ही निर्धारित की जाती है। (ब) नियोजित अर्थव्यवस्था मे केन्द्रीय सत्ता द्वारा साधनो मे उचित समन्वय स्थापित किया जाता है तथा कर्मचारियों और यन्त्रो का द्विगुणन (duplication) नही होने पाता। (स) नियोजन प्रतियोगिता को कम करके अपव्यय (waste) को रोकता है। राज्य नियन्त्रण उचित (fair) प्रतियोगिता की व्यवस्था कर सकता है। बाजार यन्त्र के साथ विभिन्न मात्राओं मे नियोजन का मिश्रण करके उसके कार्यकरण को अधिक कुशल तथा उपयोगी बनाया जा सकता है।

(२) कल्याण उद्देश्य—(अ) अनियोजित अर्थव्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति लाभ-उद्देश्य तथा स्वहित से कार्य करता है और समाज के कल्याण का कोई ध्यान नही रखता। इसके विपरीत, नियोजित अर्थव्यवस्था मे केन्द्रीय सत्ता कल्याण-उद्देश्य (welfare motive) से कार्य करती है। (ब) नियोजित अर्थव्यवस्था मे इस बात को प्रोत्साहन नही मिलता कि समाज के कुछ वर्ग बिना श्रम किये अन्य लोगो के श्रम पर जीवित रहें अर्थात् इसके अन्तर्गत सामाजिक परजीविता (social parasitism) को समाप्त करने के प्रयत्न किये जाते हैं। (स) नियोजित अर्थव्यवस्था मे श्रमिको का शोषण नही होता और वे अपने श्रम का पूरा पारितोषण पाते हैं। (द) अनियोजित अर्थव्यवस्था मे अधिकतम लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से उत्पादक मिलकर ट्रस्ट, कारटेल, एकाधिकार, इत्यादि बनाकर वस्तुओं की कृत्रिम कमी (artificial shortage) करते हैं, तथा मूल्य ऊँचे करके

* "Economic planning is a grand panacea of our age" —Robbins

उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं। परन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं का शोषण नहीं होता क्योंकि वस्तुओं की कृत्रिम कमी नहीं की जा सकती है।

(३) साधनों का अनुकूलतम (optimum) वितरण—नियोजित अर्थव्यवस्था में आर्थिक शक्तियों को स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जाता। इसमें प्राथमिकताओं के आधार पर केन्द्रीय सत्ता साधनों का वितरण (allocation) करती है। इस प्रकार नियोजित अर्थव्यवस्था में साधनों का अधिक अच्छा वितरण होता है।

(४) आर्थिक असमानताओं में कमी—अनियोजित अर्थव्यवस्था में स्वचालित मूल्य-यन्त्र (automatic price-mechanism) के कारण धनी और अधिक धनी तथा निर्धन और अधिक निर्धन होते हैं। परन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय नियोजन सत्ता के कारण इस प्रकार की आर्थिक असमानताएँ नहीं होती वरन् इसके अन्तर्गत धन के अधिक समान वितरण का प्रयत्न किया जाता है।

(५) आर्थिक स्थायित्व—नियोजित अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता द्वारा उत्पादन का समन्वय किया जाता है जिससे अति-उत्पादन (over-production) तथा न्यून-उत्पादन (under-production) नहीं होता। इस प्रकार नियोजित अर्थव्यवस्था में व्यापार-चक्रों (trade-cycles) की बुराई से मुक्ति मिलती है।

(६) नये परिवर्तनों के साथ शीघ्र सामञ्जस्य—आधुनिक युग में औद्योगिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में निरन्तर परिवर्तन होते हैं। इन परिस्थितियों में विवेकीकरण (rationalisation) तथा अन्य प्रकार के संरचनात्मक (structural) परिवर्तनों को करना पड़ता है। नियोजित अर्थव्यवस्था में ही इन परिवर्तनों के साथ सुगमतापूर्वक तथा शीघ्रता से सामञ्जस्य (adjustment) हो सकता है।

(७) सामाजिक लागतों का निराकरण—अनियोजित अर्थव्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम में औद्योगिक बीमारियों, औद्योगिक दुर्घटनाओं, चक्रीय बेरोजगारी (cyclical unemployment), अत्यधिक भीड़-भाड़ (over-crowding), अस्वस्थ दशाओं के रूप में व्यक्तियों को 'सामाजिक लागतों' (social costs) का सामना करना पड़ता है। नियोजित अर्थव्यवस्था में इन 'सामाजिक लागतों' का निराकरण किया जा सकता है या उनमें बहुत कमी की जा सकती है।

(८) पूंजी निर्माण की ऊँची दर—नियोजित अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण तीव्र गति से किया जा सकता है। इसमें सार्वजनिक उद्योग से प्राप्त अतिरेक (surplus) व्यक्तिगत लोगों की जेबों में नहीं जाता वरन् सरकार को प्राप्त होता है जिससे वह पूँजीगत वस्तुओं का क्रय करती है। इस प्रकार पूँजी निर्माण अधिक तीव्र गति से होता है।

(९) अविकसित देशों के लिए नियोजन विशेष रूप में आवश्यक—(i) नियोजन के द्वारा अविकसित देशों में साधनों का अधिकतम प्रयोग सम्भव हो सकेगा। (ii) प्राथमिकता के आधार पर साधनों का अधिक अच्छा वितरण होगा। (iii) सिंचाई योजनाओं, यातायात के साधनों, विद्युतीकरण की योजनाओं, इत्यादि में निजी व्यक्ति पूंजी नहीं लगाना चाहते हैं। इन क्षेत्रों का नियोजित ढंग से सरकार पूँजी लगाकर विकास कर सकती है ताकि देश का आर्थिक विकास शीघ्रता से हो सके। (iv) इसी प्रकार सरकार लोहा तथा इस्पात उद्योग, भारी रसायन उद्योग तथा अन्य बुनियादी उद्योगों का विकास करके देश के लिए एक सुदृढ़ औद्योगिक ढाँचे का निर्माण कर सकती है। (v) नियोजन द्वारा ही विकसित देशों में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को रोका जा सकता है, आर्थिक असमानता को दूर किया जा सकता है तथा बाधक सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोणों को बदला जा सकता है। स्पष्ट है कि अविकसित देशों में तीव्र आर्थिक विकास के लिए नियोजन अत्यन्त आवश्यक है।

निष्कर्ष—वास्तव में आधुनिक युग में नियोजन के महत्त्व को स्वीकार किया जा चुका है— अब कोई भी देश 'अहस्तक्षेप की नीति, (*laissez faire*) में विश्वास नहीं करता। लीविस

(Lewis) के शब्दों में "अब हस्तक्षेप की नीति में विश्वास करने वाले नहीं हैं, यदि हैं तो वे पागलों की भांति हैं।"[1] अब इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि नियोजन किया जाय या न किया जाय, मतभेद इस बात पर है कि नियोजन का क्या रूप होना चाहिए। प्रो० लीविस (Lewis) के अनुसार, 'नियोजन पर विचार-विनिमय में केन्द्रीय बात यह नहीं है कि नियोजन होना चाहिए या नहीं वरन् यह है कि इसका कौन-सा रूप होना चाहिए।"[2]

नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक दशाएँ
(ESSENTIAL CONDITIONS FOR THE SUCCESS OF PLANNING)

(१) साधनों का उचित मूल्यांकन—योजना बनाने से पहले यह आवश्यक है कि देश के समस्त साधनों का सर्वेक्षण (survey) और उनका उचित मूल्यांकन (assessment) किया जाय। इसके लिए राष्ट्रीय आय, कच्चे माल, पूँजीगत वस्तुओं, इत्यादि के सम्बन्ध में सही आंकड़े एकत्रित किये जाने चाहिए।

(२) उद्देश्यों, लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण—(अ) देश की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नियोजन के उद्देश्यों (broad objectives) को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए। (ब) देश के साधनों तथा जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उत्पादन के लक्ष्यों (targets) का निर्धारण भी अत्यन्त आवश्यक है। (स) उद्देश्य ऐसे होने चाहिए जिन पर बड़ी मात्रा में एकमत (agreement) हो, तभी अत्यधिक साधनों को जुटाया जा सकेगा और देश की जनता योजना के लिए आवश्यक त्याग तथा प्रयत्न करने को तत्पर रहेगी। (द) किसी भी देश के साधन सीमित होते हैं तथा उद्देश्य अनेक और प्रतियोगी, अतः उद्देश्यों के बीच प्राथमिकताएँ (priorities) निर्धारित करना अत्यन्त आवश्यक है। उद्देश्यों में चुनाव तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण सावधानीपूर्वक होना चाहिए ताकि उनमें कोई असंगति (inconsistency) न हो।

(३) समयावधि का निर्धारण—योजना को कुशलता के साथ सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि उसको पूरा करने के लिए एक निश्चित समय निर्धारित कर दिया जाय।

(४) व्यापक योजना—सफलता के लिए यह आवश्यक है कि नियोजन के अन्तर्गत समस्त आर्थिक क्षेत्र को सम्मिलित किया जाय तथा नियोजन के विभिन्न भागों में उचित समन्वय रखा जाय।

(५) अच्छी वित्तीय प्रणाली—यह आवश्यक है कि लोगों की बचतों तथा वित्तीय साधनों को जुटाने के लिए अच्छी और विकसित वित्त प्रणाली हो।

(६) दीर्घकालीन दृष्टिकोण—नियोजन एक निरन्तर तथा दीर्घकालीन प्रक्रिया है। नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक है कि दीर्घकालीन दृष्टिकोण रखा जाय। यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि १५-२१ वर्ष बाद हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं। अल्पकालीन योजनाओं का दीर्घकालीन नियोजन के साथ समन्वय रखना आवश्यक है।

(७) प्रभावशाली तथा कुशल नियोजन सत्ता—नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्रीय नियोजन सत्ता प्रभावशाली तथा कुशल हो। (अ) जब केन्द्रीय नियोजन सत्ता प्रभावशाली होगी तभी अर्थव्यवस्था पर उचित नियन्त्रण रखना सम्भव हो सकेगा। (ब) नियोजन सत्ता या कमीशन का 'अर्द्ध-स्थायी स्वभाव' (semi-permanent character) होना चाहिए। अर्थात् इसके सदस्यों की नियुक्ति लम्बे समय के लिए होनी चाहिए तथा सदस्यों को क्रम-क्रम

---

[1] "There are no longer any believers in *laissez faire* except on the lunatic fringe."

[2] "The central issue in the discussion of planning is not whether there shall be planning but what form it shall take."

(rotation) से अवकाश प्राप्त (retire) करना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि नियोजन की नीतियों में एक सगति (consistency) बनी रहेगी। (ब) सदस्यों के तकनीकी ज्ञान का स्तर ऊँचा होना चाहिए तभी अच्छी योजनाओं का निर्माण हो सकेगा।

(८) कुशल परिपालन—नियोजन की सफलता के लिए अच्छी योजना के निर्माण के साथ-साथ यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसका कुशल परिपालन (implementation) हो। इसके लिए यह आवश्यक है—(i) राजनीतिक स्थायित्व (political stability) हो, तथा (ii) ईमानदार प्रशासन यन्त्र की व्यवस्था हो।

(९) लोच—यह आवश्यक है कि नियोजन में लोच (flexibility) हो अर्थात् एक सीमा तक आवश्यकतानुसार योजना म थोड़ा परिवर्तन किया जा सके ताकि यदि कोई कुसमजन (mal-adjustment) अनुभव हो तो वह दूर हो सके।

(१०) मूल्यांकन तन्त्र—नियोजन ठीक प्रकार से हो रहा है या नहीं यह जानने के लिए समय-समय पर उसका मूल्यांकन होना आवश्यक है। अत एक कुशल मूल्यांकन यन्त्र (efficient evaluation machinery) होना चाहिए।

(११) व्यक्तियों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन—नियोजन केवल एक विशुद्ध आर्थिक प्रक्रिया ही नहीं वरन् सामाजिक प्रक्रिया (social process) भी है। अत नियोजन की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यक्तियों के पुराने दृष्टिकोण मे परिवर्तन किया जाय अर्थात् सामाजिक तथा धार्मिक बाधाओं को दूर किया जाय। इसके लिए शिक्षा की बड़ी मात्रा में सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

(१२) जन सहयोग—नियोजन की सफलता के लिए अधिकतम जन सहयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जन सहयोग को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि योजना का निर्माण नीचे से (planning from below) किया जाय, योजना का उचित विज्ञापन तथा प्रसार किया जाय तथा योजना को कुशलतापूर्वक क्रियान्वित किया जाय ताकि लक्ष्यों की सफलता का अच्छा प्रभाव व्यक्तियों पर पड़े। प्रो० लीविस (Lewis) के शब्दों में, "जनता का उत्साह नियोजन के लिए एक चिकनाने वाला तेल (lubricating oil) तथा आर्थिक विकास का पेट्रोल होता है—यह एक ऐसा प्रावैगिक बल (dynamic force) है जो सब बातों को सम्भव करता है।"*

प्रश्न

१ आर्थिक नियोजन से आप क्या समझते हैं ? नियोजन के उद्देश्य क्या हैं ?
What do you understand by economic planning? What are the objectives of planning?
(Magadh, B A, 1968 A)

२ आर्थिक नियोजन क्या है ? एक नियोजित अर्थव्यवस्था के लिए आधारभूत तथा आवश्यक बातें क्या हैं ?
What is economic planning? What are the basis and essential requirements of a planned economy?

३ "Without economic planning there can be no economic development."—Discuss.
(Bhagalpur 1966 A)

[संकेत—सर्वप्रथम संक्षेप में नियोजन के अर्थ को बताइए। तत्पश्चात् नियोजित अर्थव्यवस्था के गुणों को बताते हुए स्पष्ट कीजिए कि किसी देश के आर्थिक विकास के लिए नियोजन अत्यन्त आवश्यक है।]

४ मूल्य व्यवस्था, नियोजित तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तरों को स्पष्टतया बताइए।

[संकेत—प्रश्न को तीन भागों में बाँटिए। प्रथम भाग में मूल्य व्यवस्था अर्थात् पूँजीवाद का अर्थ तथा उसकी विशेषताएँ बताइए। दूसरे भाग में नियोजित अर्थव्यवस्था अर्थात नियोजन का अर्थ तथा उसकी विशेषताएँ बताइए। तीसरे भाग में मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ तथा उसकी विशेषताएँ लिखिए।]

---

*"Popular enthusiasm is both the lubricating oil of planning and petrol of economic development—a dynamic force that almost makes all things possible." —*W. Arthur Lewis*

बाजार
(MARKET)

साधारण बोलचाल की भाषा में बाजार शब्द का प्रयोग उस स्थान अथवा बिल्डिंग से लिया जाता है जहाँ पर वस्तु, क्रेता तथा विक्रेता भौतिक रूप से (physically) उपस्थित होते है तथा क्रय-विक्रय का कार्य करते है। परन्तु आर्थिक दृष्टि से यह बाजार की एक आवश्यक विशेषता नही है। वस्तुओ का क्रय-विक्रय एजेण्टो या नमूनो द्वारा हो सकता है। वस्तु के खरीदने का आदेश (order) टेलीफोन, पत्र या तार द्वारा दिया जा सकता है। वस्तु का स्टॉक तथा उसकी डिलीवरी एक स्थान पर हो सकती है जबकि उसका सौदा दूसरे स्थान पर। इस प्रकार बाजार का सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से होना आवश्यक नही। क्रेता तथा विक्रेता एक बडे क्षेत्र या प्रदेश मे फैले हुए हो सकते हैं और कई दशाओ मे यह क्षेत्र पूरा ससार हो सकता है।

अर्थशास्त्र में बाजार का अर्थ
(MEANING OF MARKET IN ECONOMICS)

अर्थशास्त्र मे बाजार का सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से होना आवश्यक नही। आर्थिक दृष्टि से सामान्यतया बाजार का अर्थ उस समस्त क्षेत्र से लिया जाता है जिसमे क्रेता तथा विक्रेता फैले हुए हों और उनमे प्रतिस्पर्द्धात्मक सम्पर्क हो। बाजार शब्द की कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्न है

कूरनो (Cournot) के अनुसार,

> "अर्थशास्त्री बाजार शब्द का अर्थ किसी स्थान विशेष से नही लेते जहाँ पर कि वस्तुएँ खरीदी तथा बेची जाती है बल्कि इसका अर्थ उस समस्त क्षेत्र मे लेते है जिसमे क्रेताओ तथा विक्रेताओ के बीच इस प्रकार का स्वतन्त्र सम्पर्क होता है कि एक वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति सुगमता से तथा शीघ्रता से समान होने की पायी जाती है।"[1]

स्टोनियर तथा हेग (Stonier and Hague) के अनुसार,

> "अर्थशास्त्री बाजार का अर्थ एक ऐसे सगठन (organisation) से लेते हैं जिसमे कि किसी वस्तु के क्रेता या विक्रेता एक-दूसरे के निकट सम्पर्क मे रहते है।"[2]

---

1 "Economists understand by the term market not any particular market place in which things are bought and sold but the whole of any region in which b yers and selle s are in such free intercourse with one another that the price of the same goods tends to equa lity, easily and quickly" —*Cournot*

1 "... by a market economists mean any organisation whereby buyers and sellers of a good are kept in close touch with each other" —*Stonier and Hague*

केअरनक्रॉस (Cairncross) के अनुसार,

"बाजार का अर्थ क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच किसी साधन (factor) या वस्तु (product) के लेन-देन का जालसूत्र (a network of dealing) है।"[3]

इन परिभाषाओं में बाजार की निम्न विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

(१) एक वस्तु जिसका सौदा किया जाता है।

(२) क्रेताओं तथा विक्रेताओं का अस्तित्व (existence)। प्रो० मेहता[4] के अनुसार केवल एक क्रेता तथा विक्रेता के होने से भी बाजार कहा जायेगा।

(३) कूरनो के अनुसार यह एक 'क्षेत्र' है, स्टोनियर तथा हेग के अनुसार यह एक 'सगठन' है, प्रो० केअरनक्रॉस के शब्दों में यह 'लेन-देन का एक जालसूत्र' है।

(४) क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट का सम्पर्क होता है अर्थात् प्रतियोगिता होती है जिसके कारण वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति समान रहने की पायी जाती है।

उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि, सामान्यतया, बाजार शब्द के पीछे 'स्पर्द्धात्मक दशाओं' (competitive conditions) की मान्यता होती है।

बाजार का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF MARKET)

विभिन्न तत्त्वों के आधार पर बाजारों का वर्गीकरण किया जाता है और ये मुख्य आधार इस प्रकार हैं I. क्षेत्र के आधार पर, II कार्य के आधार पर, III प्रतियोगिता के आधार पर, तथा IV. समय के आधार पर।

I क्षेत्र के आधार पर (On the Basis of Area or Space)

(१) स्थानीय बाजार (Local market)—जब किसी वस्तु की माँग स्थानीय होती है अर्थात् उसके क्रेता तथा विक्रेता एक छोटे क्षेत्र या स्थान विशेष तक ही सीमित होते हैं तो उस वस्तु के बाजार को स्थानीय बाजार कहते हैं। शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं, जैसे साग-सब्जी, मछली, दूध इत्यादि के बाजार भी स्थानीय होते हैं। मूल्य की अपेक्षा भारी वस्तुओं, जैसे—ईंटों इत्यादि के बाजार भी स्थानीय होते हैं। (२) प्रादेशिक बाजार (Regional market)—जब किसी वस्तु की माँग एक बड़े क्षेत्र या प्रदेश तक सीमित होती है तो उस वस्तु के बाजार को प्रादेशिक बाजार कहा जाता है। उदाहरणार्थ, लाल की चूड़ियों का बाजार प्रादेशिक है क्योंकि इनकी माँग राजस्थान के प्रदेश तक सीमित है। (३) राष्ट्रीय बाजार (National market)—जब किसी वस्तु के क्रेता तथा विक्रेता समस्त देश में फैले होते हैं और उसकी देशव्यापी माँग होती है तो ऐसी वस्तु के बाजार को राष्ट्रीय बाजार कहते हैं। उदाहरणार्थ, धोतियों, साड़ियों तथा चूड़ियों का बाजार राष्ट्रीय है क्योंकि इनकी माँग पूरे देश में है। (४) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार (International market)—जब किसी वस्तु के क्रेता तथा विक्रेता संसार के विभिन्न देशों में फैले हों अर्थात् उसकी माँग विश्वव्यापी हो तो ऐसी वस्तु के बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहते हैं। उदाहरणार्थ, सोना, चाँदी इत्यादि का बाजार अन्तर्राष्ट्रीय बाजार है।

II. कार्य के आधार पर (On the Basis of Function)

(१) मिश्रित या सामान्य बाजार (Mixed or general market)—जब एक ही बाजार में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीदी या बेची जाती हैं तो ऐसे बाजार को मिश्रित या

---

[3] "The market in economics, is simply the network of dealings an any factor or product between buyers and sellers." —Cairncross

[4] प्रो० जे० के० मेहता के अनुसार, "बाजार एक स्थिति (state) को बताता है जिसमें कि एक वस्तु की माँग ऐसे स्थान पर होती है जहाँ उसे विक्रय के लिए प्रस्तुत किया जाय।" इस परिभाषा की मुख्य विशेषता यह है कि किसी वस्तु का केवल एक विक्रेता तथा क्रेता होने पर भी बाजार कहा जायेगा।

"The word market signifies a state in which a commodity has a demand at a place where it is offered for sale." —J. K. Mehta

सामान्य बाजार कहते हैं। प्राय शहरो मे एक ही बाजार मे उपभोक्ता विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीद सकते हैं, कुछ बड़े-बड़े शहरो मे एक ही स्टोर पर उपभोक्ताओं को सभी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं। (२) विशिष्ट बाजार (Specialised market)—जब केवल एक ही वस्तु का बाजार एक स्थान या एक छोटे क्षेत्र म केन्द्रित हो जाता है तो उसे विशिष्ट बाजार कहते हैं। प्राय बड़े शहरो मे विभिन्न वस्तुओ के बाजार विभिन्न स्थानो या क्षेत्रो मे केन्द्रित हो जाते हैं, जैसे—सुनारो का बाजार, कपड़े का बाजार, किताबो का बाजार, बर्तनो का बाजार, इत्यादि। (३) ग्रेडों द्वारा बिक्री (Marketing by grades)—कुछ वस्तुओ को विभिन्न प्रकारों को कई वर्गों या ग्रेडो म बाँट दिया जाता है। इन ग्रेडों के आधार पर ही वस्तु का क्रय विक्रय होता है। उदाहरणार्थ, बहुत-से देशो म गेहूँ को कई ग्रेडों मे बाँट दिया जाता है और ग्रेड को बताने से ही सौदा होता है, इसी प्रकार टीन की चद्दरो का क्रय-विक्रय ग्रेडो के आधार पर ही होता है। (४) नमूनों द्वारा बिक्री (Marketing by sampling)—बहुत सी वस्तुओ का क्रय विक्रय नमूनो द्वारा किया जाता है। ऊनी कपड़े की मिलें प्राय 'नमूने की किताबें' (Sample booklets) बनाती हैं और ऊनी कपड़ो का थोक क्रय विक्रय इन नमूनो के आधार पर होता है।

III प्रतियोगिता के आधार पर (On the Basis of Competition)

(१) पूर्ण बाजार (Perfect market)—जब किसी वस्तु के बाजार म पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है तो उसे 'पूर्ण बाजार' या 'पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार' (Perfectly competitive market) कहते है। पूर्ण बाजार मे निम्न दशाओं का पूरा होना आवश्यक है

(i) क्रेताओ तथा विक्रेताओ की बहुत अधिक सख्या होनी है।

(ii) क्रेताओ तथा विक्रेताओ को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है। सभी क्रेताओ तथा विक्रेताओ को इस बात की जानकारी रहती है कि बाजार के विभिन्न भागों मे क्या हो रहा है।

(iii) क्रेताओ तथा विक्रेताओ म आपस म कोई स्नेह (attachment) नही होता, यदि कोई स्नेह होता है तो वह कीमत से। यदि कोई विक्रेता कीमत गिराता है तो सभी क्रेता उसी से वस्तु खरीदेंगे।

(iv) वस्तु एकरूप (homogeneous) होती है, दूसरे शब्दो मे, 'वस्तु-विभेद' (Product-differentiation) नहीं होता।

(v) क्रेता तथा विक्रेता अत्यन्त निकट होते हैं जिसके कारण यातायात की लागतो को छोड़ा जा सकता है।

उपर्युक्त सब बातो का परिणाम यह है कि किसी वस्तु की कीमत 'पूर्ण बाजार' मे एक ही होगी।

(२) अपूर्ण बाजार (Imperfect market)—जब किसी वस्तु के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता नही होती तो इसे 'अपूर्ण बाजार' या 'अपूर्ण प्रतियोगिता का बाजार' (imperfectly competitive market) कहते है। अपूर्ण बाजार मे निम्न दशाएँ होती हैं

(i) विक्रेताओ तथा क्रेताओं की सख्या अपेक्षाकृत कम होती है।

(ii) क्रेताओ तथा विक्रेताओ को बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। उन्हें इस बात की पूरी जानकारी नहीं होती कि बाजार के विभिन्न भागो मे किन कीमतो पर वस्तु का क्रय-विक्रय हो रहा है। परिणामस्वरूप, एक वस्तु की कीमत मे भिन्नता रहती है।

(iii) वस्तु-विभेद (Product differentiation) रहता है। दूसरे शब्दो मे, वस्तु एकरूप नही होती, विभिन्न उत्पादको द्वारा उत्पादित एकसी वस्तु म भिन्नता रहती है। परिणामस्वरूप एक ही वस्तु की एक ही कीमत नही रहती।

IV समय के आधार पर (On the Basis of Time)

समय के आधार पर बाजार को निम्न चार वर्गों मे बाँटा जाता है

(१) अति अल्पकालीन बाजार या दैनिक बाजार (Very short period market or daily market)—अति अल्पकालीन बाजार वह है जिसमे कि वस्तु की पूर्ति गोदामो मे स्टाक

तक ही सीमित होती है अर्थात् वस्तु की पूर्ति लगभग स्थिर होती है; समय इतना कम होता है कि वस्तु की पूर्ति को घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में वस्तु के मूल्य के निर्धारण में मुख्य प्रभाव माँग-शक्ति का पड़ता है, माँग में वृद्धि या कमी के अनुसार ही मूल्य में वृद्धि या कमी होगी। इस काल के मूल्य को 'बाजार मूल्य' (market price) कहते हैं। सब्जी, मछली, इत्यादि शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं का बाजार 'अति अल्पकालीन बाजार' या 'दैनिक बाजार' होता है।

(२) अल्पकालीन बाजार (Short period market)—अल्पकालीन बाजार वह बाजार है जिसमें वस्तु की पूर्ति को केवल वर्तमान साधनों की सहायता से एक सीमा तक बढ़ाया जा सकता है, इसमें इतना समय नहीं होता कि उत्पादक अपने स्थिर यन्त्र या प्लाण्ट को बदल सकें। इस काल में पूर्ति को वर्तमान यन्त्रों की क्षमता (capacity) तक बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इस काल में उत्पादन स्थिर नहीं होता बल्कि उत्पादन क्षमता (productive capacity) स्थिर होती है।[5] इस प्रकार यद्यपि इसमें पूर्ति को वर्तमान साधनों की सहायता से एक सीमा तक बढ़ाया जा सकता है परन्तु उसे पूर्ण रूप से माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकता। इसलिए इस काल में मूल्य निर्धारण में पूर्ति की अपेक्षा माँग का प्रभाव अधिक पड़ता है, माँग में वृद्धि या कमी से मूल्य में वृद्धि या कमी होगी पर उतनी नहीं जितनी कि अति अल्पकालीन बाजार में होगी। इस बाजार के मूल्य को 'अल्पकालीन मूल्य' (short period price) या 'अल्पकालीन सामान्य मूल्य' (short period normal price) कहते हैं।

(३) दीर्घकालीन बाजार (Long period market)—दीर्घकालीन बाजार वह बाजार है जिसमें इतना लम्बा समय होता है कि पूर्ति को न केवल वर्तमान यन्त्रों तथा साधनों बल्कि नये यन्त्रों और साधनों की सहायता से पूर्ण रूप से बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इस बाजार में समय इतना पर्याप्त होता है कि उत्पादन-क्षमता म माँग के साथ पूरा-पूरा समायोजन (adjustment) किया जा सकता है, अर्थात् नये यन्त्रों तथा प्लाण्टों में वृद्धि या वर्तमान यन्त्रों तथा प्लाण्टों में कमी की जा सकती है।[6] अतः इस काल में पूर्ति को पूर्ण रूप से माँग के अनुरूप किया जा सकता है। इसमें वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग का प्रभाव प्रमुख नहीं रह जाता बल्कि पूर्ति का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस काल के मूल्य को 'दीर्घकालीन मूल्य' (long-period price) या 'सामान्य मूल्य' (normal price) कहते हैं।

(४) अति दीर्घकालीन बाजार (Very long period market or secular market)—अति दीर्घकालीन बाजार वह बाजार है जिसमें माँग तथा पूर्ति दोनों में बहुत अधिक (wide) परिवर्तन होते हैं। माँग पक्ष म जनसंख्या में वृद्धि तथा उपभोक्ताओं की रुचियों और फैशनों में परिवर्तन हो सकते हैं, इन दीर्घकालीन तत्त्वों में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप माँग में बहुत परिवर्तन हो सकता है। इसी प्रकार पूर्ति पक्ष में नयी खोजें हो सकती हैं, उत्पादन की तकनीक तथा रीतियों में विस्तृत परिवर्तन हो सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप लागत में बहुत कमी हो सकती है और इस लिए पूर्ति में विस्तृत परिवर्तन हो सकते हैं। इसमें इतना लम्बा समय होता है कि "किसी वस्तु की उत्पत्ति के साधनों को उत्पन्न करने वाले साधनों" में भी परिवर्तन किया जा सकता है।[7] इस प्रकार अति दीर्घकालीन बाजार में इतना लम्बा समय होता है कि माँग तथा पूर्ति दोनों में बहुत विस्तृत परिवर्तन होते रहते हैं और माँग तथा पूर्ति में समायोजन की प्रक्रिया (process) चलती रहती है। इस बाजार या काल के मूल्य को 'अति दीर्घकालीन मूल्य' (Very long period price or secular price) कहते हैं।

---

[5] "In the short period, it is the productive capacity and not the output which is constant."

[6] There is time enough to adjust productive capacity to demand, *i.e.*, to add new equipments and plants or to reduce the existing ones.

[7] "In this period there is enough time to change the factors of production of the factors of production of a commodity.

कुछ अन्य आधारों पर भी बाजार का वर्गीकरण किया जाता है। क्रय विक्रय की जाने वाली वस्तुओं के आधार पर बाजार को उपज विनिमय (Produce Exchanges), स्कन्ध विनिमय (Stock Exchanges), इत्यादि में बाँटा जा सकता है। कभी-कभी बाजार को वस्तु विशेष के लिए दिये जाने वाले मूल्य के औचित्य के आधार पर बाँटा जाता है। जब बाजार में किसी वस्तु का विक्रय सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही किया जाता है तो इसे 'उचित बाजार' (Fair Market) कहते हैं, और जब छिपे रूप से उससे अधिक मूल्य लिया जाता है तो इसे 'काला बाजार' (Black Market) कहते हैं।

बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(FACTORS AFFECTING THE EXTENT OF MARKET)

किसी वस्तु का बाजार संकीर्ण (narrow) या विस्तृत (wide) हो सकता है। आधुनिक युग में कई कारणों से वस्तुओं के बाजारों के विस्तृत होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। किसी वस्तु के बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को मोटे रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है I वस्तु की विशेषताएँ, तथा II देश का वातावरण तथा उसकी आन्तरिक दशाएँ।

I वस्तु की विशेषताएँ (Characteristics of the Commodity)

(१) व्यापक माँग (Wide demand)—यह स्वाभाविक है कि जिस वस्तु की माँग अधिक और व्यापक होगी उसका बाजार भी व्यापक होगा, इसके विपरीत जिस वस्तु की माँग कम होगी उसका बाजार संकीर्ण होगा। उदाहरणार्थ, गेहूँ सोना, चाँदी, इत्यादि की विश्वव्यापी माँग है इसलिए इन वस्तुओं का बाजार अत्यन्त विस्तृत होता है।

(२) वहनीयता (Portability)—कम भार तथा अधिक मूल्य वाली वस्तुओं का बाजार अत्यन्त विस्तृत होता है, इसके विपरीत गुण वाली वस्तुओं का बाजार संकीर्ण होता है। उदाहरणार्थ, सोना, चाँदी में कम भार तथा अधिक मूल्य होता है, इसलिए इसका बाजार बहुत विस्तृत होता है, इसके विपरीत ईंटों का भार बहुत अधिक तथा मूल्य कम होता है, इसलिए इनका बाजार बहुत सीमित होता है।

(३) टिकाऊपन (Durability)—जो वस्तुएँ टिकाऊ तथा शीघ्र नष्ट होने वाली नहीं होती उनका बाजार विस्तृत होता है, उदाहरणार्थ—कपड़ा, मशीनें, यन्त्र, सोना, चाँदी, इत्यादि टिकाऊ वस्तुओं का बाजार व्यापक होता है। इसके विपरीत नाशवान वस्तुओं, जैसे—सब्जी, फल, दूध, मछली, इत्यादि का बाजार संकीर्ण होता है। परन्तु आधुनिक युग में वैज्ञानिक आविष्कारों, तेज यातायात के साधनों तथा प्रशीतक व्यवस्था (refrigerative system) के कारण नाशवान वस्तुओं का बाजार भी विस्तृत हो गया है।

(४) नमूने या ग्रेड बनाने की उपयुक्तता (Suitability for sampling and grading)—जिन वस्तुओं के नमूने बनाये जा सकते हैं या जिनको ग्रेडों या वर्गों में बाँटा जा सकता है उनका बाजार विस्तृत होगा। उदाहरणार्थ, गेहूँ को कई ग्रेडों में विभाजित किया जा सकता है, परिणामस्वरूप, उसका क्रय विक्रय सुगमता से होता है और उसका बाजार विस्तृत होता है। इसी प्रकार ऊनी कपड़े का नमूनों द्वारा सुगमता से सौदा होता है और इसलिए इसका बाजार विस्तृत होता है। इसके विपरीत सब्जी, दूध मछली, इत्यादि में ये गुण नहीं होते, इसलिए इनके बाजार संकीर्ण होते हैं।

(५) पूर्ति की पर्याप्तता (Adequacy of supply)—जिस वस्तु की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है, तथा आवश्यकतानुसार बढ़ायी जा सकती है उसका बाजार विस्तृत होगा। यदि वस्तु विशेष की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं है तो उपभोक्ता उसके स्थान पर अन्य वस्तु का प्रयोग करने लग जायेंगे और इस प्रकार उसका बाजार सीमित हो जायेगा।

II. देश का वातावरण तथा उसकी आन्तरिक दशाएँ (Country's Environment and Internal conditions)

(१) विकसित यातायात व सन्देशवाहन के साधन (Developed means of transport and communications)—विकसित तथा कुशल यातायात के साधन वस्तुओं के बाजार को विस्तृत करते हैं क्योंकि उन्हें कम लागत पर शीघ्रता तथा सुगमता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया जा सकेगा। इसी प्रकार टेलीफोन, तार, इत्यादि सन्देशवाहन के साधन भी बाजार को विस्तृत करने में महत्वपूर्ण सहयोग देते हैं।

(२) श्रम विभाजन की मात्रा (Degree of division of labour)—जिस प्रकार बाजार का विस्तार श्रम-विभाजन को बढ़ाता है उसी प्रकार श्रम-विभाजन भी बाजार के विस्तार को बढ़ाता है। यदि श्रम विभाजन अधिक होगा तो वस्तुएं अधिक सस्ती होंगी और उनके बाजार का विस्तार होगा।

(३) दृढ़ मुद्रा तथा कुशल साख-व्यवस्था (Stable currency and efficient credit system)—यदि देश की मुद्रा दृढ़ है तथा पर्याप्त मात्रा में कुशल बैंकिंग सुविधाएँ प्राप्त हैं तो वस्तुओं का बाजार विस्तृत होगा। सुदृढ़ मुद्रा वस्तुओं के व्यापार को बढ़ायेगी, इसी प्रकार कुशल बैंकिंग प्रणाली के परिणामस्वरूप व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को साख की अच्छी सुविधाएँ प्राप्त होंगी और वस्तुओं का क्रय-विक्रय बड़ी मात्रा में हो सकेगा।

(४) विक्रय की नयी तथा वैज्ञानिक रीतियाँ (New and scientific methods of sales)—यदि वस्तुओं के विक्रय के लिए वैज्ञानिक तथा आधुनिक रीतियों, विज्ञापन, प्रदर्शनी, इत्यादि का प्रयोग किया जाता है तो बाजार का विस्तार होगा।

(५) सरकार की कर तथा व्यापार नीति (Goverment's tax and commercial policy)—यदि सरकार कुछ वस्तुओं के निर्यात पर भारी 'निर्यात कर' (export duties) लगाती है तो उनका निर्यात बहुत कम हो जावेगा या बन्द हो जावेगा और इस प्रकार उनका बाजार देश तक ही सीमित रह जायेगा। इसके विपरीत यदि सरकार कुछ वस्तुओं के निर्यात के लिए अधिक आर्थिक सहायता (subsidies) तथा अन्य प्रकार की प्रेरणाएँ (incentives) देती है तो उनका बाजार अन्तर्राष्ट्रीय हो जायेगा।

(६) शान्ति तथा सुरक्षा (Peace and security)—यह स्पष्ट है कि वस्तुओं के विस्तृत बाजार के लिए यह आवश्यक है कि देश-विदेश में शान्ति हो तथा व्यापार की सुरक्षित दशाएँ हों। संसार के विभिन्न देशों में भी शान्ति और सुरक्षा होनी चाहिए तभी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बड़ी मात्रा में हो सकेगा।

प्रश्न

१. 'बाजार' शब्द की परिभाषा दीजिए। आर्थिक बाजारों का विभिन्न दृष्टिकोणों से, उनकी विशेषताएँ दर्शाते हुए, वर्गीकरण कीजिए।

Define the term 'market'. Classify economic markets from various points of view bringing out clearly the characteristic features of different markets (*Sagar*, 1969)

२. बाजार शब्द की परिभाषा दीजिए। किसी वस्तु के बाजार के विस्तार को निर्धारित करने वाले तत्व कौनसे हैं ?

Define the term 'market'. What are the factors that determine the extent of market of a commodity? (*Vikram B Com*, 1976)

३. बाजार को परिभाषित कीजिए। 'पूर्ण बाजार' तथा 'अपूर्ण बाजार' में अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

Define 'market'. Explain the concept of a perfect market as distinguished from an imperfect market. (*Bhagalpur*, 1964, *Bihar*, 1964 *A*)

2

बाजार के रूप
[MARKET STRUCTURES]

II वेश का वातावरण तथा उसको रूप में करने वाले विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अधिक संख्या (Large nal conditions) ...ntly acting sellers and buyers)—(१) पूर्ण प्रतियोगिता म क्रेताओं

(१) विक्रेता संख्या बहुत अधिक होती है और वे छोटे (small) होते हैं। अत प्रत्येक and communicat पूर्ति का इतना थोड़ा भाग उत्पादित करता है कि उत्पादन म कमी या विस्तृत करता है व्यक्तिगत रूप से बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता। इसी प्रकार प्रत्येक र पहुँचाया पूर्ति का बहुत ही थोड़ा भाग खरीदता है और इसलिए अपने क्रय की मात्रा को कम या विस्तार करके वह व्यक्तिगत रूप से मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता।[2]

(ii) क्रेता तथा विक्रेता स्वतन्त्र रूप से (independently) कार्य करते हैं। विक्रेताओं म कोई समझौता (agreement) या गुप्त-सन्धि (collusion) नहीं होती और इस प्रकार वे व्यक्तिगत रूप से बाजार मूल्यो को प्रभावित नहीं कर सकते। इसी प्रकार क्रेता भी स्वतन्त्र रूप से कार्य करते है और उनम कोई समझौता या गुप्त सन्धि नहीं होती।

(२) एकरूप वस्तु (Homogeneous Product)

(i) वस्तु विशेष एकरूप होती है चाहे वह किसी भी फर्म द्वारा उत्पादित की जाय या किसी भी विक्रेता द्वारा बेची जाय। दूसरे शब्दो म, वस्तु का प्रमापीकरण (standardisation) होता है तथा वस्तु की इकाइयाँ, चाहे किसी भी फर्म द्वारा उत्पादित हो, एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती हैं। अत कोई भी उत्पादक या विक्रेता प्रचलित कीमत से ऊँची कीमत नहीं ले सकेगा क्योंकि यदि वह ऐसा करता है तो क्रेता वही वस्तु दूसरे उत्पादक या विक्रेताओ से कम कीमत पर खरीद लेगा।

(ii) केवल वस्तु का ही नहीं बल्कि विक्रेताओं का भी प्रमापीकरण होना चाहिए ताकि क्रेताओ द्वारा एक विक्रेता की अपेक्षा दूसरे को पसन्द करने का कोई कारण न मिले। विभिन्न विक्रेताओ के व्यक्तित्व (personality) म, उनकी ख्याति (reputation) म तथा उनके विक्रय स्थानो (localities) म कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए कि क्रेता एक विक्रेता की अपेक्षा दूसरे को पसन्द करें।

(iii) चूँकि फर्में प्रमापित वस्तु (standardised commodity) का उत्पादन करती हैं इसलिए 'गैर-कीमत प्रतियोगिता' (non price competition) के लिए कोई जगह नहीं होती।[3]

(३) फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश तथा बहिर्गमन (Free entry and exit of firms)—पूर्ण प्रतियोगिता म फर्मों को उद्योग म प्रवेश या उसम से बहिर्गमन (exit) की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इसके अभिप्राय अग्र है

---

[2] यद्यपि व्यक्तिगत रूप से कोई विक्रेता या उत्पादक अपने उत्पादन म वृद्धि या कमी करके वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, परन्तु ध्यान रहे कि एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry) मे समस्त उत्पादक एक समूह (group) के रूप मे बाजार मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि उद्योग विशेष मे ४,००० फर्में हैं और प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन को १०० इकाइयों से घटा देती है तो कुल उत्पादन ४,००० × १०० = ४,००,००० इकाइयों स घट जायेगा, परिणामस्वरूप बाजार मूल्य बढ़ जायेगा। अत एक व्यक्तिगत उत्पादक मूल्यो को प्रभावित नहीं कर सकता, परन्तु सब उत्पादक एक समूह के रूप म मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं। दूसरे शब्दो म, यद्यपि वस्तु का मूल्य एक फर्म के लिए निश्चित (fixed) रहता है, परन्तु कुल पूर्ति अर्थात् कुल उत्पादन मे परिवर्तनों के कारण मूल्य मे वृद्धि या कमी हो ... इसी प्रकार यद्यपि क्रेता व्यक्तित्व रूप से मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता परन्तु ... ताओ द्वारा वस्तु की कुल माँग मे वृद्धि या कमी के परिणामस्वरूप बाजार मूल्य ... परिवर्तन होगा।

[3] इसका अर्थ है कि वस्तु के ... अन्तर व विज्ञापन के आधार पर कोई प्रतियोगिता नहीं होती। विक्रेता विज्ञापन ... प्रसार द्वारा क्रेताओ के मस्तिष्क म कोई वस्तु विभेद (product differentiation) उत्पन्न नहीं कर सकते। दूसरे शब्दो से, विज्ञापन तथा प्रसार पर व्यय, जिन्हे विक्रय लागतें (selling costs) कहते है, की अनुपस्थिति होती है।

(i) यदि किसी फर्म या कुछ फर्मों की प्रवृत्ति उत्पत्ति के साधनों पर एकाधिकार शक्ति प्राप्त करके वस्तु की पूर्ति पर एकाधिकारी शक्ति अर्जित करने की है तो उद्योग में फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश के कारण ऐसा नहीं हो सकेगा।

(ii) इसके अतिरिक्त इस दशा का अर्थ है कि दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ (normal profit) ही होगा।[4]

(४) बाजार का पूर्ण ज्ञान (perfect knowledge of the market)—पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है, अर्थात् बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट सम्पर्क (close contact of buyers and sellers) होता है। पूर्ण ज्ञान के परिणामस्वरूप बाजार में वस्तु विशेष की एक ही कीमत प्रचलित रहेगी।

(५) क्रेताओं तथा विक्रेताओं में पूर्ण गतिशीलता (Perfect mobility amongst buyers and sellers) होनी चाहिए, उनके क्रय तथा विक्रय में किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिए।[5]

(६) उत्पत्ति के साधनों का पूर्णतया गतिशील होना (Perfect mobility of factors of production)—पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पत्ति के साधन एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में पूर्णतया गतिशील होते हैं। सरकार की ओर से या किसी अन्य प्रकार की रुकावट उनकी गतिशीलता में बाधक नहीं होनी है।

(७) समस्त उत्पादकों या फर्मों का बहुत समीप होना (All the producers are sufficiently close to each other)—पूर्ण प्रतियोगिता में यह भी मान लिया जाता है कि समस्त उत्पादक बहुत समीप हो जिससे कि कोई परिवहन लागतें न हों। परिणामस्वरूप, बाजार में वस्तु की कीमत एक ही होगी, उनमें परिवहन लागतों के कारण अन्तर नहीं होगा।[6]

पूर्ण प्रतियोगिता की सब दशाओं का सार है कि इसके अन्तर्गत वस्तु की कीमत एक ही होती है। टेक्नीकल शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) होती है, अर्थात् माँग रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है। कोई भी क्रेता या विक्रेता अपनी कार्यवाहियों से वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में,

---

[4] यदि फर्मों को अधिक लाभ (excess profit) प्राप्त हो रहा है अर्थात् कीमत अधिक है लागत से, तो लाभ के आकर्षण से नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी, पूर्ति बढ़ेगी, कीमत घटकर ठीक लागत के बराबर हो जायगी और फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। यदि कुछ फर्मों को हानि हो रही है तो वे उद्योग को छोड़ देंगी, पूर्ति घटेगी, कीमत बढ़कर ठीक लागत के बराबर हो जायेगी और फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। अतः फर्मों को दीर्घकाल में न लाभ होगा और न हानि बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

[5] दूसरे शब्दों में क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच किसी तरह का स्नेह (attachment) नहीं होना चाहिए, उन्हें केवल कीमत से ही स्नेह होना चाहिए क्योंकि केवल ऐसी स्थिति में क्रेताओं की प्रवृत्ति सबसे कम कीमत पर बेचने वाले विक्रेता से खरीदने की तथा विक्रेताओं की प्रवृत्ति सबसे अधिक कीमत पर खरीदने वाले क्रेता को बेचने की होगी। इस दशा के कारण भी वस्तु की एक ही कीमत रहेगी।

[6] मार्शल के अनुसार, वस्तु की कीमत में परिवहन लागतों के बराबर तक अन्तर हो सकता है और फिर भी बाजार पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार कहा जायेगा। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अधिक उपयुक्त बताया जाता है कि परिवहन लागतें न हों ताकि वस्तु की एक ही कीमत रहे।

"It is also convenient when discussing perfect competition to make the assumption that all producers work sufficiently close to each other, for there to be no transport costs."
—Stonier and Hague, *A Textbook of Economic Theory*, p. 126.

एक उत्पादक या फर्म की अपनी कोई मूल्य नीति नहीं होती, प्रत्येक फर्म 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price-taker) होती है, 'मूल्य निर्धारित करने वाली' (price-maker) नहीं, प्रत्येक फर्म मूल्य को दिया हुआ मानकर उसके अनुसार वस्तु के उत्पादन की मात्रा निर्धारित करती है, अर्थात् प्रत्येक फर्म 'मात्रा-समायोजित करने वाली' (quantity-adjuster) होती है।

विशुद्ध प्रतियोगिता या परमाणुवादी प्रतियोगिता (PURE COMPETITION OR ATOMISTIC COMPETITION)

प्रो० चेम्बरलिन (Chamberlin) 'पूर्ण प्रतियोगिता' (perfect competition) तथा 'विशुद्ध प्रतियोगिता' (pure competition) के बीच अन्तर करते हैं। कुछ अर्थशास्त्री 'विशुद्ध प्रतियोगिता' के लिए 'परमाणुवादी प्रतियोगिता' (atomistic competition) शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

प्रो० चेम्बरलिन के अनुसार

विशुद्ध प्रतियोगिता एकाधिकारी तत्त्वों से पूर्णतया स्वतन्त्र (unalloyed with monopoly elements) होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा यह अधिक सरल तथा कम विस्तृत विचार होता है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में केवल 'एकाधिकारी तत्त्व की अनुपस्थिति की पूर्णता' (perfection in the absence of monopoly) ही नहीं बल्कि अन्य कई प्रकार की पूर्णता भी पायी जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता में साधनों की पूर्ण प्रवाहिता (fluidity) या गतिशीलता (mobility) हो सकती है और इस दृष्टि से घर्षण (friction) की अनुपस्थिति हो सकती है। इसमें भविष्य के बारे में पूर्ण ज्ञान हो सकता है और परिणामस्वरूप अनिश्चितता की अनुपस्थिति हो सकती है। इसमें और भी पूर्णता हो सकती है जिसे कि अर्थशास्त्री अपनी समस्या के लिए सुविधाजनक तथा लाभदायक पाता है।[7] दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में पायी जाने वाली कई दशाएँ, जैसे—बाज़ार की पूर्ण जानकारी, उत्पत्ति के साधनों की पूर्ण गतिशीलता, इत्यादि विशुद्ध प्रतियोगिता में नहीं होती है।

विशुद्ध प्रतियोगिता के लिए केवल तीन दशाओं का होना आवश्यक है

(i) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अधिक संख्या होती है।

(ii) एकरूप वस्तु होनी है तथा वस्तु विभेद की पूर्ण अनुपस्थिति रहती है।

(iii) उद्योग में फर्मों का प्रवेश तथा उसमें से बहिर्गमन (exit) स्वतन्त्र होता है। ये तीनों दशाएँ पूर्ण प्रतियोगिता की प्रथम तीन दशाएँ हैं, पूर्ण प्रतियोगिता की अन्य दशाएँ विशुद्ध प्रतियोगिता में शामिल नहीं होती।

---

[7] In pure competition 'the adjective 'pure' being chosen deliberately to describe competition unalloyed with monopoly elements It is a much simpler and less inclusive concept than 'perfect' competition for the latter may be interpreted to involve perfection in many other respects than in the absence of monopoly It may imply, for instance, an absence of friction in the sense of an ideal fluidity or mobility of factors such that adjustments to changing conditions which actually involve time are accomplished instantaneously in theory It may imply perfect knowledge of the future and the consequent absence of uncertainty. It may involve such further 'perfection' as the particular theorist finds convenient and useful to his problem "

—Edward Chamberlin, *The Theory of Monopolistic Competition*, p 6.

[8] आंग्ल अर्थशास्त्री प्राय 'पूर्ण प्रतियोगिता' के शब्द का प्रयोग करते हैं परन्तु अमरीकन अर्थशास्त्री 'विशुद्ध प्रतियोगिता' के शब्द का प्रयोग करना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि इसमें पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा कम मान्यताएँ होती हैं।

यद्यपि विशुद्ध प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा, अधिक सरल है तथा कम विस्तृत (less inclusive) है, परन्तु दोनो मे कोई आधारभूत अन्तर नहीं है, अन्तर केवल मात्रा (degree) का है, दोनो मे आधारभूत बातें एक ही हैं

विशुद्ध प्रतियोगिता मे भी, पूर्ण प्रतियोगिता की भांति, प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता वस्तु की 'कीमत ग्रहण करने वाला' (price taker) होता है, 'कीमत निर्धारित करने वाला' (price-maker) नहीं।

प्रत्येक उत्पादक के लिए कीमत दी हुई होती है और तदनुसार वह उत्पादन की मात्रा समायोजित करता है। अत प्रत्येक उत्पादक 'मात्रा समायोजित करने वाला' (quantity-adjuster), होता है, उसकी अपनी कोई 'मूल्य नीति' (price policy) नहीं होती।

पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, विशुद्ध प्रतियोगिता मे भी एक व्यक्तिगत उत्पादक के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है, अर्थात् माँग रेखा पड़ी हुई रेखा (horizontal line) होती है।

पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता का औचित्य
(THE JUSTIFICATION OF PERFECT OR PURE COMPETITION)

विशुद्ध प्रतियोगिता या पूर्ण प्रतियोगिता की दशाएँ वास्तविक जीवन मे नही पायी जाती है (i) सभी वस्तुओ के सम्बन्ध मे क्रेताओ तथा विक्रेताओ की सख्या अधिक नही होती, व्यवहार मे कई वस्तुओ का उत्पादन केवल थोडे से उत्पादक करते हैं जो वस्तु के मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं। इसी प्रकार कुछ वस्तुओ के क्रेता अत्यन्त बडे तथा प्रभावशाली होते हैं। (ii) वास्तविक जीवन मे विभिन्न उत्पादको द्वारा उत्पादित वस्तु मिलती-जुलती (similar) होती है परन्तु एकरूप (exactly identical or homogeneous) नही होती। विज्ञापन तथा प्रसार द्वारा क्रेताओ के मस्तिष्क मे वस्तु विभेद (product differentiation) उत्पन्न किया जाता है। (iii) उद्योग विशेष मे फर्मों का प्रवेश स्वतन्त्र नही होता, उसमे कई प्रकार की बाधाएँ रहती है। (iv) यद्यपि यातायात तथा सवादवाहन के साधनो म पर्याप्त विकास हुआ है परन्तु फिर भी क्रेताओ तथा विक्रेताओ को बाजार का पूर्ण ज्ञान नही होता। (v) उत्पत्ति के साधनो मे पूर्ण गतिशीलता नही पायी जाती, इत्यादि। अत पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है।

यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जब विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है तथा वास्तविक जीवन मे नही पायी जाती तो हम इसका अध्ययन ही क्यो करते है ? क्या पूर्ण प्रतियोगिता एक मिथ्यावाद (myth) है ? पूर्ण प्रतियोगिता के अध्ययन का क्या औचित्य है ?

यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि उसका अध्ययन बेकार है। पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन निम्न बातो के कारण आवश्यक तथा उचित है.

(१) वास्तविक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

(i) वास्तविक जीवन मे 'अपूर्ण प्रतियोगिता' या 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopolistic competition) पायी जाती है, इसमे 'एकाधिकार' या 'प्रतियोगिता' दोनो के तत्त्वो का मिश्रण होता है। स्पष्ट है कि ऐसी वास्तविक स्थिति को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता को समझना आवश्यक है।

(ii) 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की वास्तविक स्थिति मे लगभग उन्ही आधारभूत विश्लेषणात्मक यन्त्रो (basic analytical tools) का प्रयोग किया जाता है जो कि पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रयुक्त होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के अध्ययन से प्राप्त अन्तर्दृष्टियो (in[illegible]ts) का प्रयोग वास्तविक जगत की स्थितियो को समझने के लिए आवश्यक है।

(२) व्यवहार मे प्रतियोगिता क्यो पूर्ण प्रतियोगिता से कम होती है इस बात को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन जरूरी है।

(i) प्रतियोगिता आर्थिक इकाइयों को बाध्य कर देती है कि समाज के लाभ के लिए कार्य करें। प्रतियोगिता वस्तुओं की कीमतों को कम करके उत्पादकों या व्यापारियों के लाभों को कम करती है। इसलिए वास्तविक जगत में व्यापारियों तथा उत्पादकों के लिए यह अधिक लाभदायक होता है कि वे जहाँ तक हो सके प्रतियोगिता से बचें या उसे हटायें। अतः पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन इस बात की व्याख्या करता है कि व्यवहार में प्रतियोगिता क्यों 'पूर्ण प्रतियोगिता' से कम होती है।

(ii) वास्तविक जगत में विभिन्न स्थितियों में प्रतियोगिता की कितनी कमी है अर्थात् उनमें कितनी अपूर्णता (imperfection) है, यह 'पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति' से तुलना करके ज्ञात किया जा सकता है। अतः स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था (free enterprise economy) के अन्तर्गत वास्तविक बाजारों के अध्ययन के लिए पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता एक आधार (base or benchmark) का कार्य करती है।

विशुद्ध एकाधिकार
(PURE MONOPOLY)

एकाधिकारी वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण हो। विशुद्ध एकाधिकार में प्रतियोगिता शून्य होती है। विशुद्ध एकाधिकार के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं का पूरा होना आवश्यक है।

(१) वस्तु का एक विक्रेता हो या उसका उत्पादन केवल एक फर्म द्वारा हो। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारी 'एक-फर्म उद्योग' (one firm industry) होता है।

(२) वस्तु के कोई निकट या अच्छे स्थानापन्न (close or good substitutes) न हों। दूसरे शब्दों में, वस्तु की माँग की आड़ी लोच (cross elasticity) शून्य होती है।

(३) उद्योग में नये उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें (effective barriers) हो।

> टेकनीकल शब्दों में, विशुद्ध एकाधिकार एक फर्म उद्योग होता है और इस फर्म की वस्तु तथा अर्थव्यवस्था में किसी भी अन्य वस्तु के बीच माँग की आड़ी लोच (cross-elasticity demand) शून्य होती है।[9]

एकाधिकारी के अर्थ या अभिप्राय को भलीभाँति समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है

(i) उपर्युक्त तीनों दशाओं के कारण एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है और इसलिए वह मूल्य को प्रभावित कर सकता है। इसके विपरीत विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी विक्रेता या उत्पादक वस्तु के बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता।

(ii) एकाधिकार के अन्तर्गत विज्ञापन तथा प्रसार की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि प्रतियोगी उत्पादक नहीं होते। यदि विज्ञापन किया जाता है तो यह केवल जनता से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए किया जाता है।

(iii) यद्यपि एक एकाधिकारी मिलती-जुलती तथा निकट रूप से सम्बन्धित वस्तुओं के प्रत्यक्ष प्रतियोगिता से पृथक रहता है, परन्तु उसे अप्रत्यक्ष प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है जो कभी-कभी बहुत तीव्र हो सकती है।[10] दूसरे शब्दों में, कुछ विशुद्ध एकाधिकारियों को 'सम्भावित प्रतियोगिता' (potential competition)

[9] In technical language, the pure monopoly is one firm industry where cross-elasticity of demand between the product of the monopoly firm and any other product in the economy is zero

[10] While a monopolist is isolated from *direct competition* with producers of identical or closely related commodities, he is nevertheless subject to *indirect competition* that is sometimes very keen'

का सामना करना पड़ सकता है, जिससे उसकी कीमत तथा उत्पादन नीतियों पर प्रभाव पड़ता है।

(iv) व्यवहार में विशुद्ध एकाधिकारी नहीं पाया जाता क्योंकि इसकी तीनों दशाओं का पूर्ण रूप से पाया जाना अत्यन्त कठिन है। किसी वस्तु का एक उत्पादक हो सकता है परन्तु प्रत्येक वस्तु का कोई-न-कोई स्थानापन्न अवश्य होता है और उस एक उत्पादक को अप्रत्यक्ष प्रतियोगिता का सामना सदैव करना पड़ता है। जिस प्रकार पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता एक सिरे (extreme) की स्थिति को बताता है, उसी प्रकार विशुद्ध एकाधिकार दूसरे सिरे की स्थिति को बताता है।

वास्तव में व्यावहारिक जगत में एकाधिकार का अर्थ केवल एक उत्पादक से नहीं होता बल्कि उस उत्पादक या कुछ उत्पादकों से होता है जो कि वस्तु की कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादित करते हैं और इसलिए बाजार तथा बाजार की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं। अतः **व्यवहार में एकाधिकार शक्ति का सार है बाजार नियन्त्रण है।**

अपूर्ण प्रतियोगिता
(IMPERFECT COMPETITION)

परम्परागत मूल्य सिद्धान्त ने दो सिरे की स्थितियों—एक ओर पूर्ण प्रतियोगिता तथा दूसरी ओर विशुद्ध एकाधिकार—पर ध्यान दिया। ये दोनों स्थितियाँ वास्तविक संसार में नहीं पायी जाती हैं। श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, वास्तविक जगत में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है, जबकि प्रो० चेम्बरलिन के अनुसार, 'एकाधिकारी प्रतियोगिता'।

अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ (Meaning of Imperfect Competition)

> **अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ है पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता में अपूर्णताओं की उपस्थिति। दूसरे शब्दों में, जब प्रतियोगिताओं की दशाओं में से किसी भी दशा का अभाव होता है तो अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।**[11]

यदि क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक नहीं है, या क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या तो अधिक है परन्तु वस्तु एकरूप नहीं है, अर्थात् उसमें विभिन्नता है, या क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं है, तो प्रत्येक दशा में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

टेक्नीकल शब्दों में,

> **अपूर्ण प्रतियोगिता तब होती है जबकि एक व्यक्तिगत फर्म की वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार नहीं होती।**[12] **अथवा प्रो० लानर (Lerner) के शब्दों में, अपूर्ण प्रतियोगिता तब पायी जाती है जबकि एक विक्रेता अपनी वस्तु के लिए एक गिरती हुई माँग रेखा का सामना करता है।**[13]

अपूर्ण प्रतियोगिता एक विस्तृत शब्द है और यह पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार के बीच समस्त क्षेत्र को बताता है, अर्थात् इसके अन्तर्गत 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopolistic competition), 'अल्पाधिकार' (oligopoly) तथा 'द्वयधिकार' (duopoly) को

---

[11] Imperfect competition implies imperfection in perfect or pure competition. *In other words* imperfect competition prevails when any of the conditions *of perfect competition* is absent

[12] Imperfect competition prevails when the demand *for the individual* firm's product is not perfectly elastic

[13] "Imperfect competition obtains when the seller is confronted with a falling demand curve for its product."

स्थितियाँ भी शामिल होती हैं। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति अपूर्ण प्रतियोगिता की कोई एक अकेली प्रतिनिधि स्थिति नहीं होती।"[14]

अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण (Causes of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता के उत्पन्न होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(१) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की कम संख्या (Small number of buyers and sellers)—क्रेताओं तथा विक्रेताओं की कम संख्या होने के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता हो सकती है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत क्रेता तथा विक्रेता अपने कार्यों से वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकेंगे।

(२) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अज्ञानता (Ignorance of sellers and buyers)—विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अज्ञानता के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक हो सकती है परन्तु यदि उन्हें बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं है अर्थात् उन्हें बाजार की कीमतों तथा मात्राओं की जानकारी नहीं है तो एक वस्तु की विभिन्न कीमतें होंगी और प्रतियोगिता अपूर्ण होगी।

(३) वस्तु की इकाइयों में वास्तविक व काल्पनिक अन्तर (Real or imaginary differences in the units of a commodity)—जब विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु या विभिन्न विक्रेताओं द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं में अन्तर होगा तो वस्तु की कई कीमतें होंगी और प्रतियोगिता अपूर्ण हो जायेगी। वस्तु की इकाइयों में अन्तर वास्तविक हो सकता है या काल्पनिक।

अन्तर के कारण निम्न हो सकते हैं (i) विभिन्न विक्रेताओं की वस्तु के गुण (material content) में वास्तविक अन्तर हो सकता है। (ii) कुछ विक्रेताओं का स्थान (location) दूसरों की अपेक्षा अच्छा हो सकता है। उदाहरणार्थ, धनवान व्यक्ति स्वच्छ तथा फैशनेबल स्थान पर स्थित विक्रेता की दुकान से वस्तु का खरीदना पसन्द करेंगे चाहे उन्हें कुछ ऊँची कीमत देनी पड़े। (iii) प्राय क्रेता वस्तु को उन विक्रेताओं से खरीदना पसन्द करेंगे जिनका व्यवहार अच्छा है चाहे उन्हें वस्तु के लिए कुछ ऊँची कीमत देनी पड़े। (iv) जो विक्रेता अपने ग्राहकों को साख की सुविधाएँ प्रदान करता है तो वह अधिक ग्राहक आकर्षित करेगा तथा अन्य विक्रेताओं की अपेक्षा उसी वस्तु की ऊँची कीमत प्राप्त कर सकेगा। (v) विज्ञापन तथा प्रसार द्वारा विक्रेता क्रेताओं के मस्तिष्क में यह धारणा उत्पन्न कर सकते हैं कि उनकी वस्तु अन्य विक्रेताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है (चाहे वह वास्तव में श्रेष्ठ हो या न हो) और इसलिए वस्तु की कीमत में भिन्नता हो जाती है।

---

[14] Thus there is no single representative case of imperfect competition as there is of perfect competition.

स्टोनियर तथा हेग के शब्दों में, "यद्यपि अपूर्ण प्रतियोगिता की आधारभूत प्रभेदक (distinguishing) विशेषता यह है कि औसत आगम रेखाएँ (average revenue curves) अपनी सम्पूर्ण लम्बाई तक नीचे की ओर गिरती हैं, परन्तु वे नीचे की ओर विभिन्न दरों से गिर सकती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की एक अकेली स्थिति से तुलना की जा सकने वाली अपूर्ण प्रतियोगिता की कोई एक अकेली स्थिति नहीं होती बल्कि उसके स्थान पर हमें ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं जहाँ पर कि फर्म की औसत आगम रेखा नीचे की ओर केवल बहुत धीमी गति से गिरती है और जहाँ पर प्रतियोगिता लगभग पूर्ण हो, तथा अन्य स्थितियों में रेखा का ढाल अत्यन्त गहरा (steep) हो सकता है तथा प्रतियोगिता अत्यन्त अपूर्ण हो सकती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की कोई एक अकेली स्थिति नहीं होती है, बल्कि यह एक सम्पूर्ण क्षेत्र या स्थितियों की एक शृंखला (series) होती है जो कि उत्तरोत्तर (progressively) अधिकाधिक अपूर्ण प्रतियोगिता को बताती है।"

ध्यान रहे कि यद्यपि श्रीमती जोन रोबिन्सन अपूर्ण प्रतियोगिता में 'वस्तु विभेद' (product differentiation) शब्द का प्रयोग नहीं करती हैं, परन्तु उपर्युक्त सब दशाएँ लगभग वही है जो कि प्रो० चेम्बरलिन वस्तु विभेद के लिए बताते हैं।

(४) क्रेताओं की सुस्ती अथवा अगतिशीलता (Inertia or immobility of buyers)—यह सम्भव है कि क्रेताओं को विभिन्न विक्रेताओं के द्वारा ली जाने वाली कीमतों का ज्ञान हो परन्तु केवल सुस्ती तथा लापरवाही के कारण वे कम कीमत पर बेचने वाले विक्रेताओं से वस्तु नहीं खरीदते। इस कारण वस्तु की कई कीमतें प्रचलित रह सकती हैं।

(५) ऊंचा यातायात व्यय (High transport cost)—यदि वस्तु को विभिन्न स्थानों पर लाने-ले जाने में ऊँची यातायात लागत पड़ती है तो विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में वस्तु की कीमत में अन्तर रहेगा और अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो जायेगी।

एकाधिकारी प्रतियोगिता
(MONOPOLISITIC COMPETITION)

'एकाधिकारी प्रतियोगिता' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म (leading type) है, अतः ढीले रूप में (loosely) अपूर्ण प्रतियोगिता तथा 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' प्रायः एक-दूसरे के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की परिभाषा (Definition of Monopolistic Competition)

प्रो० चेम्बरलिन ने एकाधिकारी प्रतियोगिता के विचार को प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि व्यावहारिक जीवन में न पूर्ण प्रतियोगिता और न विशुद्ध एकाधिकार पाया जाता है बल्कि इन दोनों के मध्य की स्थिति पायी जाती है।

> **एकाधिकारी प्रतियोगिता बाजार का वह रूप है जिसमें कि बहुत सी छोटी फर्में होती हैं और उनमें से प्रत्येक फर्म मिलती-जुलती (similar) वस्तुएँ बेचती है परन्तु वस्तुएँ एकरूप (homogeneous or exactly identical) नहीं होतीं, वस्तुओं में थोड़ी भिन्नता या भेद (differentiation) होता है।**

वस्तु विभेद (product differentiation) के कारण प्रत्येक विक्रेता एक सीमा तक वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है और इस प्रकार वह अपने क्षेत्र में एक छोटा-सा एकाधिकारी होता है, परन्तु इन एकाधिकारी विक्रेताओं में बड़ी तीव्र प्रतियोगिता भी होती है। अतः ऐसी स्थिति को प्रो० चेम्बरलिन ने 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' कहा क्योंकि इसमें **एकाधिकार तथा प्रतियोगिता दोनों की विशेषताओं का मिश्रण होता है।** एकाधिकारी प्रतियोगिता को 'समूह सन्तुलन' (group equilibrium) भी कहा जाता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Characteristics of Monopolistic Competition)

एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताएँ या दशाएँ निम्न हैं :

(१) **स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं की अधिक संख्या** (Large number of independently acting sellers)—(i) पूर्ण प्रतियोगिता की भांति एकाधिकारी प्रतियोगिता में भी विक्रेताओं या उत्पादकों की अधिक संख्या होती है, प्रत्येक विक्रेता या उत्पादक छोटा (small) होता है और कुल उत्पत्ति का बहुत थोड़ा भाग उत्पादित करता है।

(ii) उत्पादक या विक्रेताओं में प्रतियोगिता होती है वे स्वतन्त्र रूप से कार्य करते है, उनमें कोई समझौता (agreement) या गुप्त सन्धि (collusion) नहीं होती।

(२) **वस्तु विभेद या वस्तु भिन्नता** (Product differentiation or product heterogeneity)—पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु एकरूप या प्रमापित (standardised) होती है इसके विपरीत एकाधिकारी प्रतियोगिता में वस्तुएँ मिलती-जुलती (similar) होती हैं परन्तु एकरूप नहीं होतीं, उनमें थोड़ा भेद या भिन्नता रहती है। **वस्तु-विभेद या 'वस्तु-भिन्नता', एकाधिकारी प्रतियोगिता को एक आधारभूत प्रभेदक (distinguishing) विशेषता होती है,** यह विशेषता ही

इसे पूर्ण प्रतियोगिता से प्रभेदित (differentiate) करती है; यदि वस्तु-विभेद की दशा को निकाल दिया जाय तो हम लगभग विशुद्ध प्रतियोगिता या पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे पहुँच जायेंगे।

(ख) वस्तु-विभेद के अभिप्राय (implications) इस प्रकार हैं .

(i) वस्तु-विभेद के कारण 'एकाधिकारी तत्व' (monopoly element) उत्पन्न होता है। चूंकि वस्तु मे थोडी भिन्नता होती है इसलिए प्रत्येक उत्पादक एक छोटे एकाधिकारी की भाँति होता है और एक सीमा तक अपनी वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है।

(ii) यद्यपि वस्तु-विभेद होता है परन्तु वस्तुएँ मिलती-जुलती सी होती है। दूसरे शब्दो म वस्तुएँ एक-दूसरे की निकट स्थानापन्न (close substitutes) होती हैं (परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नही होती)। इसका अर्थ है कि उत्पादको म प्रतियोगिता होती है और एक उत्पादक के कीमत-उत्पादन निर्णय (price-output decision) दूसरे उत्पादक के कीमत-उत्पादन निर्णय को प्रभावित करते हैं।

दूसरे शब्दो म

एकाधिकारी प्रतियोगिता को कभी-कभी 'विभेदीकरण' (differentiation) तथा 'अधिक सख्या की स्थिति' कहा जाता है।"[15]

(ग) वस्तु विभेद निम्न कारणों से उत्पन्न हो सकता है

(i) वस्तु की भौतिक विशेषताओं (Physical characteristics) मे अन्तर के कारण, जैसे वस्तु के गुण, टिकाऊपन, पैकिंग, डिजायन, रग, इत्यादि मे अन्तर होने के कारण वस्तु विभेद उत्पन्न हो जाता है।

(ii) वस्तु को बेचने की दशाओ मे अन्तर के कारण; जैसे अच्छा विक्रय स्थान (locality), नम्र आचरण के साथ सेवा (courteous service), उधार की सुविधाएँ, बचन वाली सुन्दर लडकियाँ (charming sales girls), इत्यादि के कारण क्रेता एक विक्रेता से वस्तुएँ खरीदना पसन्द करेंगे अपेक्षाकृत दूसरे के। इस प्रकार विक्रय दशाओ म अन्तर के कारण वस्तु-विभेद उत्पन्न हो जाता है।

(iii) विज्ञापन तथा प्रसार के कारण, निरन्तर विज्ञापन तथा प्रसार की आधुनिक रीतियो द्वारा एक विक्रेता क्रेताओ मे इस बात का विश्वास उत्पन्न करता है कि उसकी वस्तु अन्य विक्रेताओ की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। इस प्रकार क्रेताओं के मस्तिष्क म वस्तु विभेद उत्पन्न किया जाता है। यह वस्तु-विभेद वास्तविक (real) हो सकता है अर्थात् वस्तु विशेष वास्तव म गुण म श्रेष्ठ हो सकती है, या वस्तु विभेद काल्पनिक (imaginary) हो सकता है अर्थात वस्तुओ के गुणो म वास्तविक अन्तर नही होता बल्कि केवल ट्रेड मार्क पैकिंग, डिजायन, रग, इत्यादि मे अन्तर करके विज्ञापन द्वारा क्रेताओ के मस्तिष्को मे यह धारणा दृढ कर दी जाती है कि वस्तु विशेष दूसरे की अपेक्षा श्रेष्ठ है। दूसरे शब्दो म, वस्तु विशेष के लिए चाहे क्रेताओं की पसन्द विवेकपूर्ण (rational) हो या अविवेकपूर्ण (irrational) दोनो दशाओ म वस्तु-विभेद उत्पन्न हो जाता है।

(३) फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश (Free entry of firms)

(i) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग मे पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति नयी फर्में स्वतन्त्र रूप से प्रवेश कर सकती हैं, परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना मे इनका प्रवेश कुछ कठिन

---

[15] Indeed, monopolistic competition is sometimes called *the case of differentiation and large numbers.*

होता है इसका कारण है वस्तु-विभेद का होना तथा अधिक वित्तीय बाधाओं (financial obstacles) का सामना करना। एक नयी फर्म को न केवल पर्याप्त पूंजी की ही आवश्यकता पड़ती है, बल्कि उसमें वर्तमान फर्मों के ग्राहकों को भी तोड़ सकने की क्षमता होनी चाहिए। इसका अर्थ है कि नयी फर्मों को अनुसन्धान तथा वस्तु-विकास (research and product development) पर पर्याप्त धन व्यय करना पड़ेगा ताकि उनकी वस्तु की विशेषताएँ बाजार में स्थित अन्य वस्तुओं से भिन्न हों। साथ ही अपनी नयी वस्तु के प्रति ग्राहकों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए उन्हें विज्ञापन तथा प्रसार पर पर्याप्त मात्रा में धन व्यय करना पड़ेगा।

(iii) चूंकि *एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्मों का प्रवेश स्वतन्त्र होता है,* इसलिए दीर्घकाल में एकाधिकारी प्रतियोगिता में भी, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति फर्मों को साधारणतया केवल 'सामान्य लाभ' (normal profit) ही प्राप्त होता है।[16]

(४) गैर-मूल्य प्रतियोगिता (Non-price competition)—एकाधिकारी प्रतियोगिता में वस्तुएँ प्रभेदित (differentiated) होती हैं, इसलिए फर्मों में तीव्र (vigorous) गैर-मूल्य प्रतियोगिता होती है। इसका अर्थ है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता में स्पर्द्धा केवल मूल्य पर ही आधारित नहीं होती बल्कि वस्तु के गुण (product's quality), वस्तु के विक्रय में सम्बन्धित दशाओं या सेवाओं, विज्ञापन, इत्यादि पर भी आधारित होती है, ऐसी स्पर्द्धा या प्रतियोगिता को 'गैर-मूल्य प्रतियोगिता' कहते हैं। ट्रेडमार्क तथा ब्राण्ड नामों पर अधिक बल दिया जाता है और इनके द्वारा विक्रेता क्रेताओं के मस्तिष्कों में यह बात जमाने का प्रयत्न करते हैं कि उनके ट्रेडमार्क या ब्राण्ड की वस्तु दूसरे विक्रेताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की आधारभूत प्रभेदक विशेषता (distinguishing feature) वस्तु-विभेद है जो कि इसको पूर्ण प्रतियोगिता से भेदित (differentiate) करती है। यद्यपि एकाधिकारी प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है, परन्तु जैसा कि एकाधिकारी प्रतियोगिता की दशाओं से स्पष्ट है, यह पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है। इसलिए यह कहा जाता है कि 'एकाधिकारी प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता का न्यूनतम अपूर्ण रूप है'।[17]

अल्पाधिकार
(OLIGOPOLY)

'अल्पाधिकार' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है। इसमें बाजार की वे सब स्थितियाँ शामिल होती हैं जो कि पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थितियों में उपयुक्त (fit) नहीं बैठती।

अल्पाधिकार का अर्थ (Meaning of Oligopoly)

अल्पाधिकार का अर्थ है थोड़े विक्रेताओं (few sellers) में प्रतियोगिता, अर्थात अल्पाधिकार उस समय उत्पन्न होता है जबकि केवल थोड़े-से विक्रेता होते हैं।

यह 'एकाधिकार' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' और 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' दोनों से भिन्न होता है—एकाधिकार में केवल एक विक्रेता होता है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रेताओं की अधिक संख्या होती है।[18]

---

[16] दीर्घकाल में यदि कुछ फर्मों को अधिक लाभ प्राप्त होता है, तो नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी और अधिक लाभ समाप्त हो जायेगा। यदि कुछ फर्मों को दीर्घकाल में नुकसान होता है तो वे उद्योग को छोड़ देंगी, और नुकसान समाप्त हो जायेगा। दूसरे शब्दों में, दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा, न अतिरिक्त लाभ होगा और न हानि।

[17] Monopolistic competition is said to be the 'least imperfect form of imperfect competition.'

इसके विपरीत चूंकि एकाधिकार पूर्ण प्रतियोगिता से बहुत दूर होता है और इसमें अपूर्णता अधिकतम होती है, इसलिए यह कहा जाता है कि एकाधिकार 'अपूर्ण प्रतियोगिता का अधिकतम अपूर्ण रूप' होता है (Monopoly is the most imperfect form of imperfect competition)।

[18] Oligopoly means competition among few sellers, that is it occurs when there are only a few sellers. It differs both from monopoly, where there is only *one* seller, and from perfect and monopolistic competition, where there are many.

अल्पाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Oligopoly)

अल्पाधिकार की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं -

(१) विक्रेताओं का थोड़ा होना (Fewness of sellers)—अल्पाधिकार की प्रमुख विशेषता है कि इसमे थोड़े-से विक्रेता होते हैं। थोड़े विक्रेताओं के होने के अभिप्राय इस प्रकार हैं

(i) थोड़े विक्रेता होने के कारण प्रत्येक विक्रेता कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादन करता है और पूर्ति के एक बड़े भाग पर नियन्त्रण (control) होने के कारण वह बाजार मे वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है।

(ii) अल्पाधिकार की एक मुख्य विशेषता विक्रेताओं की पारस्परिक निर्भरता (mutual interdependence) है। यह बात पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता मे नहीं पायी जाती है। चूंकि विक्रेता थोड़े होते हैं, इसलिए एक विक्रेता की क्रियाओ तथा नीतियो का प्रभाव दूसरे प्रतियोगी विक्रेताओ (rivals) की कीमत तथा उत्पादन नीति पर पड़ता है, इस प्रकार उनमे पारस्परिक निर्भरता होती है। दूसरे शब्दो मे,

> "अल्पाधिकार उस समय उपस्थित हो जाता है जब विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि एक की क्रियाओं का स्पष्ट तथा महत्त्वपूर्ण प्रभाव दूसरो पर पड़ता है। एक अल्पाधिकारी उद्योग की सभी फर्में एक ही नाव मे होती हैं। यदि एक फर्म नाव को हिलाती है तो दूसरी फर्में प्रभावित होंगी और प्रायः वे सम्बन्धित फर्म को पहचान लेंगी तथा वे उससे बदला ले सकती हैं।"[19]

(iii) चूंकि विक्रेताओ मे पारस्परिक निर्भरता होती है और एक अल्पाधिकारी प्रतियोगी विक्रेताओ के सम्भावित व्यवहार तथा प्रतिक्रियाओ के सम्बन्ध मे विभिन्न मान्यताओ को आधार मानकर चल सकता है, इसलिए अल्पाधिकारी बाजारों के सम्बन्ध मे साधारणीकरण (generalisation) करना अत्यधिक कठिन है, अल्पाधिकार का सिद्धान्त विशेष स्थितियों तथा व्यवहार-रूपों (special cases and behaviour patterns) का एकत्रीकरण (collection) होता है।[20]

(२) लगभग प्रमापित वस्तु या भेदित वस्तु (virtually standardised products or differentiated products)—अल्पाधिकारी लगभग एकरूप या प्रमापित वस्तुओ का उत्पादन कर सकते हैं, या भेदित वस्तु (differentiated product) का। इस आधार पर अल्पाधिकारी को दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है—'विशुद्ध अल्पाधिकारी' (pure oligopoly)[21] तथा 'भेदित अल्पाधिकारी' (differentiated oligopoly)। 'विशुद्ध अल्पाधिकार' मे विक्रेताओ की वस्तु एकरूप होती है। 'भेदित अल्पाधिकार' या 'वस्तु-विभेद के साथ अल्पाधिकार' (Oligopoly with product differentiation) में विक्रेताओ की वस्तु मिलती-जुलती (similar) होती है, परन्तु एकरूप नही, उसमे कुछ अन्तर या भिन्नता रहती है।

---

[19] "Indeed it can be said that oligopoly exists whenever the number of sellers is so few that the actions of one will have obvious and significant repercussions on the others The firms of an oligopolistic industry are all in the same boat If one rocks the boat, the others will be affected and in all probability will know the identity of the responsible firm and can retaliate"

[20] अल्पाधिकारी यह अनुभव करते है कि प्रतियोगिता द्वारा आक्रामक मूल्य-कमी (aggressive price-cutting) का कोई अच्छा परिणाम नहीं निकलता। अत यह अधिक अच्छा है कि शान्ति (peace) स्थापित की जाय। शान्ति स्थापित करके विभिन्न तरीको के आधार पर विभिन्न प्रकार के अल्पाधिकारी सगठनो का जन्म होता है।

[21] 'विशुद्ध अल्पाधिकार' (pure oligopoly) को 'एकरूप अल्पाधिकार' (homogeneous oligopoly) या 'अभेदित अल्पाधिकार' (undifferentiated oligopoly) या 'बिना वस्तु विभेद के अल्पाधिकार' (oligopoly without product differentiation) के अन्य नामो से भी पुकारा जाता है।

यह सुगमता से समझा जा सकता है कि 'वस्तु-विभेद के साथ अल्पाधिकार' (oligopoly with product differentiation) वास्तव में 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की ही एक विशेष स्थिति (special case) है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में यदि विक्रेताओं की संख्या बहुत कम हो जाती है तो अल्पाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(३) **एक अल्पाधिकारी फर्म का वस्तु के मूल्य पर नियन्त्रण 'पारस्परिक निर्भरता' के कारण** सीमित रहता है। यदि एक फर्म अपनी वस्तु की कीमत को घटाती है तो प्रतियोगी फर्मों के ग्राहक टूटकर इसकी ओर आकर्षित होंगे और इसकी बिक्री बढ़ेगी, बदले में प्रतियोगी फर्में (rivals) कीमतें घटा देंगी। परिणामस्वरूप, कीमत युद्ध (price-war) होगा और सभी फर्मों को हानि होगी। इसके विपरीत यदि एक अल्पाधिकारी अपनी कीमत बढ़ाता है तो प्रतियोगी फर्मों को अपनी वर्तमान कीमतों पर ही बिक्री तथा लाभ में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में, 'एक कीमत वृद्धि करने वाले अल्पाधिकारी को ऊँची कीमत के कारण स्वयं बाजार से निकलने का भय रहता है और इससे उसके प्रतियोगियों को लाभ होता है।'[18] उपर्युक्त कारणों से अल्पाधिकारी बाजार में फर्मों की यह प्रबल प्रवृत्ति रहती है कि कीमतों को बार-बार (frequently) न बदला जाय।

(४) **फर्मों का प्रवेश तथा बहिर्गमन कठिन** (Difficult entry and exit of firms)—अल्पाधिकारी उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश अत्यन्त कठिन होता है। अल्पाधिकारी फर्मों के पास आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति के अधिकांश भाग का स्वामित्व हो सकता है, इनकी वस्तुएँ पेटेण्ट द्वारा सुरक्षित हो सकती है, आरम्भ से ही नयी फर्म को स्थापित करने के लिए बड़ी मात्रा में विनियोग की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि अल्पाधिकार फर्मों की संख्या कम होती है और वे बहुत बड़ी होती है। उपर्युक्त बाधाओं के कारण अल्पाधिकारी उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश बहुत कठिन होता है, परन्तु एकाधिकार की भाँति असम्भव नहीं होता। इसी प्रकार फर्मों का उद्योग में से बाहर निकलना भी कठिन होता है।

(५) **विज्ञापन तथा बिक्री बढ़ाने की क्रियाएँ** (Advertisement and sales promotion activities)—अल्पाधिकारी उद्योग विज्ञापन तथा बिक्री बढ़ाने की क्रियाओं पर प्रायः बहुत धन व्यय करते हैं। परन्तु विज्ञापन की मात्रा तथा किस्म इस बात पर निर्भर करती है कि फर्में 'प्रमापित वस्तुएँ' या 'भेदित वस्तुएँ' उत्पन्न कर रही हैं। उन अल्पाधिकारियों द्वारा विज्ञापन प्रतियोगिता पर अधिक धन व्यय किया जाता है जो कि भेदित वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। वस्तु के विक्रय में वृद्धि के लिए वस्तु के गुण में सुधार के अतिरिक्त डिजाइन, अनुसन्धान, इत्यादि पर पर्याप्त धन व्यय किया जाता है।

द्वि-अल्पाधिकार या द्वयधिकार
(DUOPOLY)

द्वि-अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें दो विक्रेता होते हैं और दोनों एक ही वस्तु बेचते हैं। दोनों विक्रेताओं की वस्तु प्रायः एकरूप (identical or homogeneous) होती है, ऐसी स्थिति में दोनों की वस्तुओं की एक ही कीमत होगी। दोनों विक्रेताओं की वस्तुओं में बहुत थोड़ा अन्तर भी हो सकता है, ऐसी स्थिति में कीमत में थोड़ा अन्तर होगा। सामान्यतया द्वि-अल्पाधिकार में वस्तुएँ लगभग एकरूप होती हैं। जब दो विक्रेता एकरूप वस्तु बेचते हैं तो इसे 'विशुद्ध द्वि अल्पाधिकार' (pure duopoly) कहते हैं। विशुद्ध द्वि अल्पाधिकार, विशुद्ध एकाधिकार की भाँति, बहुत कम पाया जाता है, यद्यपि कभी-कभी दो विक्रेता एक बड़े समूह पर इस प्रकार प्रभुत्व (domination) रखते हैं कि लगभग द्वि-अल्पाधिकार की स्थिति उपस्थित हो जाती है।

---

[18] "That is, a price-boosting oligopolist runs the risk of 'pricing himself out of the market' to the benefit of his rivals."

अल्पाधिकार (oligopoly) मे थोडे विक्रेता होते हैं और जब इन थोडे विक्रेताओं की संख्या केवल दो होती है तो द्वि-अल्पाधिकार उत्पन्न हो जाता है। अत अल्पाधिकार की सरलतम स्थिति (simplest case) ही द्वि-अल्पाधिकार है।

अब हम द्वि-अल्पाधिकार में मूल्य पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में विचार करते हैं। अल्पाधिकारी की भाँति, द्वि-अल्पाधिकार म दोनों विक्रेताओं मे 'पारस्परिक निर्भरता' होती है। यदि एक विक्रेता कीमत को घटाता है तो दूसरा भी कीमत को घटायेगा, इस प्रकार कीमत-युद्ध छिड जायेगा जिससे किसी भी विक्रेता को लाभ नही होगा। इसके विपरीत, यदि एक विक्रेता कीमत को ऊँचा करता है तो उसके ग्राहक टूटकर दूसरे के पास चले जायेंगे। अत 'द्वि-अल्पाधिकार' में, अल्पाधिकार की भाँति, कीमत में स्थायित्व की प्रवृत्ति रहती है। परन्तु दोनों विक्रेताओं म समझौते की सम्भावना अधिक होती है, दोनो विक्रेता समझौता करके एक समूह के रूप मे कीमत घटा-बढा सकते हैं। समझौते द्वारा प्राय विक्रेता वस्तु की कीमत को ऊँचा रखते है, बाजार को आपस मे बाँट लेते हैं और अधिक लाभ प्राप्त करते हैं।

यदि द्वि-अल्पाधिकार के अन्तर्गत वस्तु म थोडा-सा अन्तर होता है तो प्रत्येक विक्रेता का अपना बाजार होता है, प्रत्येक अपने क्षेत्र म एक एकाधिकारी की भाँति होता है और वस्तु का मूल्य एकाधिकारी की भाँति निर्धारित करता है।

बाजार ढाँचों का सारांश
(SUMMARY OF MARKET STRUCTURES)

	प्रतियोगिता के प्रकार (Kinds of Competition)			
विशेषताएँ (Characteristics)	पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता (Perfect or pure competition)	एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopolistic competition)	अल्पाधिकार (Oligopoly) [नोट—द्वयधिकार (Duopoly) अल्पाधिकार की एक सरलीकृत स्थिति है, अत द्वयधिकार को पृथक नहीं दिखाया गया है।]	विशुद्ध एकाधिकार (Pure monopoly)
१. विक्रेताओं या उत्पादकों की संख्या	बहुत अधिक	अधिक	थोडे, परन्तु दो से कम नहीं	एक
२. वस्तु का प्रकार अर्थात् वस्तु-विभेद की मात्रा	प्रमापित या एकरूप	भेदित (differentiated)	प्रमापित या भेदित (standardised or differentiated)	सर्वथा भिन्न, कोई निकट स्थानापन्न नहीं
३ फर्म के लिए माँग रेखा	पूर्ण लोचदार अर्थात् पडी हुई रेखा (perfectly elastic, i e, horizontal line)	पूर्ण लोचदार से कम अर्थात् गिरती हुई रेखा	पूर्ण लोचदार से कम अर्थात् गिरती हुई रेखा (less than perfectly elastic, i e, falling curve)	पूर्ण लोचदार से कम अर्थात् गिरती हुई रेखा
४ जानकारी की पूर्ण प्राप्यता	हाँ	नही	नही	नहीं

५. मूल्य पर नियन्त्रण की मात्रा	बिलकुल नहीं	कुछ	पारस्परिक निर्भरता के परिणामस्वरूप सीमित नियन्त्रण, परन्तु समझौते की स्थिति में पर्याप्त नियन्त्रण	पर्याप्त या पूर्ण
६. फर्मों के प्रवेश तथा बहिर्गमन की सुगमता	बहुत आसान कोई बाधाएँ नहीं	आसान	कठिन, बहुत-सी महत्वपूर्ण बाधाएँ उपस्थित रहती हैं	प्रवेश पूर्णतया बन्द
७. गैर-कीमत प्रतियोगिता	कोई नहीं	विज्ञापन, ट्रेडमार्क, ब्राण्ड इत्यादि पर पर्याप्त बल	भेदित अल्पाधिकार के सम्बन्ध में पर्याप्त	केवल जनता से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए आवश्यक
उदाहरण	कृषि	फुटकर व्यापार टूथपेस्ट, जूते, पहनने के कपड़े	स्टील, कारें, कृषि औजार, इत्यादि	क्षेत्र विशेष में बिजली कम्पनी

क्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियाँ
(MARKET SITUATIONS ACCORDING TO BUYERS)

ऊपर हम विक्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियों का अध्ययन कर चुके हैं। इसी प्रकार क्रेताओं की दृष्टि से अर्थात् क्रेताओं की संख्या के आधार पर भी बाजार के रूप होते हैं।

जब क्रेताओं की संख्या पर्याप्त होती है तो ऐसी स्थिति को 'क्रेता एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopsonistic competition) कहते हैं।

जब क्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है तो बाजार की ऐसी स्थिति को 'पूर्ण प्रतियोगिता' (perfect competition) कहते हैं।

जब केवल एक क्रेता (तथा अनेक विक्रेता) होता है तो बाजार की ऐसी स्थिति को 'क्रेता एकाधिकार' (Monopsony) कहा जाता है। चूँकि क्रेता एक होता है, इसलिए वह मूल्य पर प्रभाव रखता है।

बाजार में जब क्रेताओं की संख्या कम, सीमित या थोड़ी होती है तो ऐसी स्थिति को 'क्रेता अल्पाधिकार' (oligopsony) कहा जाता है। चूँकि 'क्रेता-अल्पाधिकार' में क्रेताओं की संख्या कम होती है इसलिए उनमें समझौते की सम्भावना अधिक रहती है और समझौते द्वारा क्रेता बाजार मूल्य को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित कर सकते हैं।

जब केवल दो क्रेता होते हैं तो ऐसी स्थिति को 'द्वि-क्रेता अल्पाधिकार' (Duopsony) कहते हैं।

विक्रेताओं तथा क्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियों को संक्षेप में अग्र चार्ट में दिखाया गया है :

बाजार का विक्रेताओं (अर्थात् पूर्ति) का पक्ष [Sellers side (i e , supply side) of the market]	बाजार का क्रेताओं (अर्थात् माँग) का पक्ष [Buyers side (i e , demand side) of the market]
विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता (Pure or perfect competition)	विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता (pure or perfect competition)
एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopolistic competition)	क्रेता-एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopsonistic competition)
अल्पाधिकारी (Oligopoly)	क्रेता-अल्पाधिकार (Oligopsony)
द्वि-अल्पाधिकार (Duopoly)	द्विक्रेता अल्पाधिकार (Duopsony)
विशुद्ध एकाधिकार (Pure Monopoly)	क्रेता एकाधिकार (Monopsony)

पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता का तुलनात्मक अध्ययन
(A COMPARATIVE STUDY OF PERFECT AND IMPERFECT COMPETITION)

(१) पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है, परिणामस्वरूप प्रत्येक विक्रेता छोटा होता है और कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग उत्पादित करता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में सामान्यतया विक्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में तो विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है और प्रत्येक विक्रेता के पास कुल पूर्ति का थोड़ा भाग होता है, परन्तु अल्पाधिकार में विक्रेता थोड़े होते हैं और प्रत्येक विक्रेता कुल पूर्ति का बड़ा भाग उत्पादित करता है। द्वि-अल्पाधिकार में केवल दो विक्रेता होते हैं।

(२) पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु प्रमापित या एकरूप होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु सामान्यतया भिन्न होती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता, जोकि अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है, की आधारभूत प्रभेदक विशेषता (fundamental distinguishing characteristic) वस्तु-विभेद होती है। अल्पाधिकार में वस्तु एकरूप हो सकती है या भेदित (differentiated); पहली स्थिति को 'विशुद्ध अल्पाधिकार' तथा दूसरी को 'भेदित अल्पाधिकार' कहा जाता है।

(३) पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक विक्रेता 'कीमत मान लेने वाला' (price-taker) होता है, 'कीमत निर्धारित करने वाला' (price-maker) नहीं होता। कीमत को दिया हुआ मानकर प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन की मात्रा को समायोजित (adjust) करती है, इसलिए प्रत्येक फर्म 'मात्रा समायोजित करने वाली' (quantity adjuster) कही जाती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद होता है, इसलिए प्रत्येक विक्रेता अपने क्षेत्र में एक छोटे एकाधिकारी की भाँति होता है तथा एक सीमा तक वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। अल्पाधिकार (oligopoly) में विक्रेताओं में 'पारस्परिक निर्भरता' होती है जिसके कारण कीमत को प्रभावित करने की उनकी शक्ति सीमित हो जाती है परन्तु यदि उनमें समझौता (collusion) होता है तो वे पर्याप्त मात्रा में वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं।

(४) पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए माँग-रेखा या औसत आगम रेखा (Average Revenue Curve) पूर्णतया लोचदार होती है, अर्थात् पड़ी रेखा (horizontal line) होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता मे माँग-रेखा (अर्थात् AR-curve) 'पूर्ण लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) होती है, अर्थात् बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होनी है।

(५) पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योगो मे नयी फर्मों का प्रवेश या बहिर्गमन (entry and exit) बहुत आसान होता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तगत उद्योगो मे फर्मों का प्रवेश या बहिर्गमन आसान होता है, यद्यपि बहुत आसान नहीं। अल्पाधिकार मे फर्मों के प्रवेश मे अनेक महत्त्वपूर्ण बाधाएँ होती है और इसलिए प्रवेश कठिन होता है, परन्तु विशुद्ध एकाधिकार की भाँति, पूर्णतया असम्भव नही होता।

(६) पूर्ण प्रतियोगिता मे क्रेताओ तथा विक्रेताओ को बाजार का पूर्ण ज्ञान (perfect knowledge) होता है, जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में नहीं होता।

(७) पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पत्ति के साधनों को पूर्ण गतिशीलता (perfect mobility) होती है, परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता मे साधनों को पूर्ण गतिशीलता मे कई प्रकार की बाधाएँ रहती हैं।

(८) पूर्ण प्रतियोगिता मे गैर-कीमत प्रतियोगिता (non price competition) नहीं होती अर्थात् विज्ञापन तथा प्रसार इत्यादि के लिए धन व्यय नही किया जाता क्योकि वस्तु एकरूप या प्रमापित होती है। इसके विपरीत, अपूर्ण प्रतियोगिता मे वस्तु-विभेद पाया जाता है, इसलिए विज्ञापन तथा प्रसार इत्यादि पर विक्रेता बहुत अधिक धन व्यय करते हैं, इस प्रकार के व्यय या लागत को 'विक्रय लागतें' (selling costs) के नाम से पुकारा जाता है।

(९) पूर्ण प्रतियोगिता व्यावहारिक जीवन में नहीं पायी जाती, यह काल्पनिक है। इसके विपरीत अपूर्ण प्रतियोगिता व्यवहार मे पायी जाती है और यह वास्तविक है। यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका अध्ययन बेकार है, वास्तव मे, वास्तविक जगत के जटिल कार्यकरण को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन आवश्यक है।

प्रश्न

१. "तकनीकी शब्दो मे, पूर्ण प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है।" इस कथन के सन्दर्भ मे पूर्ण प्रतियोगिता के अभिप्रायों को पूर्णतया समझाइए।

"In technical words, under perfect competition the elasticity of demand for the product of an individual seller or producer is perfectly elastic" In the light of this statement explain fully the meaning and implications of perfect competition

२ "पूर्ण प्रतियोगिता एक भ्रम है।" क्या आप इससे सहमत है ? अपने उत्तर की पुष्टि मे तर्क दीजिए।

"Perfect competition is a myth" Do you agree ? Give reasons for your answer.

(*Udaipur*, 1967, *Sagar*, 1967)

अथवा

हम पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन क्यो करते हैं जबकि वह व्यावहारिक जीवन मे नही पायी जाती ?

Why do we study perfect competition when it is not found in real world ?

(*Kanpur, B A II* 1976)

[संकेत—इस अध्याय मे देखिए 'पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता का औचित्य' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री।]

३ पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओ को बताइए। इसका वास्तविक जीवन मे कहाँ तक अस्तित्व है ?

Describe the main features of 'perfect competition' How far does it exist in the real world ?

(*Panjab*, 1968)

[संकेत—दूसरे भाग के लिए देखिए इस अध्याय मे 'पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता का औचित्य' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री।]

४. उन तत्वों को बताइए जो कि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता के कार्यकरण मे बाधाएँ डालते हैं ?
Enumerate the factors which hinder the operation of free competition in a market
(Jodhpur, Agra)

[संकेत—सर्वप्रथम बहुत संक्षेप में पूर्ण प्रतियोगिता या पूर्ण बाजार के अर्थ तथा दशाओ को बताइए। इसके पश्चात् उन तत्वो को बताइए जोकि पूर्ण प्रतियोगिता के कार्यकरण मे बाधक हैं अर्थात् अपूर्ण प्रतियोगिता के कारणो को बताइए।]

५. एकाधिकारी प्रतियोगिता क्या है ? यह पूर्ण प्रतियोगिता से किस प्रकार भिन्न है ?
What is monopolistic competition ? How does it differ from perfect competition ?
(Sagar, 1969)

६ "एकाधिकारी प्रतियोगिता को कभी-कभी 'विभेदीकरण तथा अधिक सख्या की स्थिति' कहा जाता है।" विवेचन कीजिए।
"Monopolistic competition is sometimes called 'the case of differentiation and large number' Discuss

अथवा

"एकाधिकारी प्रतियोगिता म 'एकाधिकार' तथा 'प्रतियोगिता' दोनो की विशेषताओं का मिश्रण होता है।" स्पष्ट कीजिए।
"There is a mixture of the elements of 'monopoly' and 'competition' in monopolistic competition " Discuss

७. एकाधिकार तथा अल्पाधिकार म अन्तर बताइए। उपयुक्त उदाहरणो से अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए।
Point out the difference between monopoly' and 'oligopoly' Illustrate your answer by suitable examples
(Sagar, 1967)

८ पूर्ण, विशुद्ध, अपूर्ण तथा एकाधिकृत प्रतियोगिताओ के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। इसमे कौन-सा बाजार स्थिति का अधिक सही और वास्तविक विवरण है ?
Distinguish between perfect pure, imperfect and monopolistic competition Which of them is a more true description of the market situation ?
(Bihar, 1966 A)

६ "पूर्ण प्रतियोगिता कदाचित् ही पायी जाती है, और विशुद्ध एकाधिकार दुर्लभ होता है।" विवेचना कीजिए।
"While perfect competition is seldom found, pure monopoly is rare " Discuss.
(B H U, 1969)

[संकेत– प्रश्न को तीन भागो मे बाँटिए, प्रथम भाग मे पूर्ण प्रतियोगिता के अर्थ तथा उसकी दशाओ को बहुत संक्षेप मे बताते हुए स्पष्ट कीजिए कि पूर्ण प्रतियोगिता वास्तविक जीवन मे नहीं पायी जाती। दूसरे भाग मे एकाधिकार के अर्थ को बताते हुए स्पष्ट कीजिए कि पूर्ण **एकाधिकार की स्थिति भी** वास्तविक जीवन मे नही पायी जाती। तीसरे भाग मे बताइए कि वास्तविक जीवन मे 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की स्थिति पायी जाती है और तत्पश्चात् 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' के अर्थ और विशेषताओ को बहुत ही संक्षेप मे बताइए।]

3 बाजार मूल्य का सामान्य सिद्धान्त
[GENERAL TREORY OF MARKET PRICE]

१ प्रारम्भिक (Introduction)

पूर्ण प्रतियोगिता में किसी वस्तु का मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता है ? इस सम्बन्ध में प्राचीन अर्थशास्त्रियों में काफी मतभेद तथा विवाद था। मुख्यतया दो विचारधाराएँ प्रचलित थीं। एक विचार के समर्थक एडम स्मिथ, रिकार्डो इत्यादि थे, जिनके अनुसार, किसी वस्तु का मूल्य उसकी उत्पादन-लागत द्वारा निर्धारित होता है अर्थात् वस्तु के उत्पादन की जितनी लागत होगी उसका उतना ही मूल्य होगा। इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा के समर्थकों, वालरस (Walras), जेवन्स (Jevons) इत्यादि के अनुसार, किसी वस्तु का मूल्य उसकी उत्पादन लागत पर नहीं बल्कि उसकी उपयोगिता अर्थात् सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करता है।

प्रो० मार्शल ने इस मतभेद को समाप्त किया। उन्होंने बताया कि दोनों मत एक पक्षीय (one-sided) हैं। किसी वस्तु का मूल्य केवल उत्पादन लागत (अर्थात् पूर्ति) द्वारा या केवल उपयोगिता (अर्थात् माँग) द्वारा निर्धारित नहीं होता, बल्कि दोनों संयुक्त रूप से मूल्य को निर्धारित करते हैं। मार्शल के अनुसार "हम यह विवाद (dispute) कर सकते हैं कि कैंची का ऊपर का या नीचे का फलका (blade) कागज को काटता है जिस प्रकार कि मूल्य उपयोगिता से या उत्पादन लागत से निर्धारित होता है।"[1]

वास्तव में, कागज को काटने के लिए ऊपर का तथा नीचे का दोनों फलकें आवश्यक हैं, कोई भी एक फलका अकेले काटने का कार्य नहीं कर सकता। इसी प्रकार किसी वस्तु के मूल्य-निर्धारण में वस्तु की उपयोगिता (अर्थात् माँग) तथा वस्तु की उत्पादन लागत (अर्थात् पूर्ति) दोनों शक्तियाँ आवश्यक हैं, कोई भी शक्ति अकेले मूल्य को निश्चित नहीं कर सकती। यह सम्भव है कि कुछ दशाओं में उपयोगिता (या माँग) सक्रिय पार्ट (*active role*) अदा करे और उत्पादन-लागत (या पूर्ति) निष्क्रिय पार्ट (passive role), या लागत सक्रिय पार्ट तथा उपयोगिता निष्क्रिय पार्ट अदा करे, परन्तु मूल्य निर्धारण में माँग तथा पूर्ति दोनों का सहयोग आवश्यक है।

२. सन्तुलन मूल्य (Equilibrium Price)

वस्तु विशेष का मूल्य उस बिन्दु पर निश्चित होगा जहाँ पर कि उसकी माँग तथा पूर्ति दोनों बराबर हो जाती हैं। इस मूल्य को 'सन्तुलन मूल्य' (Equilibrium price) कहा जाता है,

[1] "We might as reasonably dispute whether it is the upper or the under blade of a pair of scissors that cuts a piece of a paper, as whether value is governed by utility or cost of production."

माँग तथा पूर्ति की ऐसी स्थिति में मात्राओं को 'सन्तुलन मात्राएँ' (equilibrium amounts) कहा जाता है, तथा बाजार सन्तुलन की स्थिति में कहा जाता है।

> 'सन्तुलन मूल्य' वह मूल्य है जिस पर कि वस्तु की मात्रा जो कि विक्रेता बेचने को इच्छुक है उस मात्रा के बराबर होती है जो कि क्रेता खरीदना चाहते हैं। यह वह मूल्य है जोकि बाजार को साफ (clear) कर देता है।[1]

किसी वस्तु का मूल्य माँग तथा पूर्ति दोनों शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। इसलिए 'माँग शक्ति' तथा 'पूर्ति शक्ति' दोनों के अर्थों को स्पष्टतया समझ लेना आवश्यक है।

३ माँग शक्ति (Demand Force)

किसी वस्तु की माँग क्रेताओं या उपभोक्ताओं द्वारा की जाती है। वस्तु में उपयोगिता होने के कारण एक क्रेता उसकी माँग करता है। एक क्रेता किसी वस्तु की कितनी मात्रा खरीदेगा यह उसकी सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करेगा, वह वस्तु के लिए सीमान्त उपयोगिता (अर्थात् अन्तिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता) से अधिक मूल्य नहीं देगा। इस प्रकार क्रेता के लिए वस्तु के मूल्य की अधिकतम सीमा सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होती है।

किसी वस्तु की माँग 'माँग के नियम' द्वारा नियन्त्रित होती है, अर्थात् ऊँची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा तथा नीची कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा माँगी जाती है। जिस कीमत पर वस्तु की एक निश्चित मात्रा को क्रेता खरीदने को तैयार होता है उसे 'माँग मूल्य' (Demand Price) कहते हैं। प्रत्येक क्रेता की 'माँग अनुसूची' (demand schedule) प्राप्त होती है जो कि बताती है कि विभिन्न कीमतों पर वह वस्तु की कितनी-कितनी मात्राएँ खरीदेगा, अर्थात् माँग अनुसूची माँग-मूल्यों को बताती है। बाजार में 'व्यक्तिगत माँग-अनुसूचियों' को जोड़ देने से 'बाजार की माँग-अनुसूची' (market demand schedule) प्राप्त हो जाती है जो यह बताती है कि विभिन्न कीमतों पर बाजार में वस्तु की कितनी कितनी मात्राएँ माँगी जाती हैं। यदि 'बाजार की माँग अनुसूची' को रेखा द्वारा व्यक्त कर दिया जाय तो हमें 'बाजार की माँग रेखा' (market demand curve) प्राप्त हो जाती है। बाजार माँग रेखा को चित्र सख्या १ में दिखाया गया है। बाजार माँग रेखा दो बातों को बताती है (i) माँग रेखा का प्रत्येक बिन्दु एक निश्चित कीमत पर वस्तु की खरीदी जाने वाली कुल मात्रा को बताता है, तथा (ii) माँग रेखा का प्रत्येक बिन्दु वस्तु की निश्चित मात्रा से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को भी बताता है। चित्र सख्या १ से स्पष्ट है

यदि मूल्य PQ है तो खरीदी जाने वाली कुल मात्रा OQ है तथा सीमान्त उपयोगिता PQ है। यदि मूल्य P_1Q_1 है तो खरीद की कुल मात्रा OQ_1 है तथा सीमान्त उपयोगिता P_1Q_1 है।
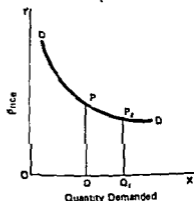
चित्र—१

४. पूर्ति शक्ति (Supply Force)

किसी वस्तु की पूर्ति उत्पादकों या विक्रेताओं द्वारा की जाती है। चूँकि किसी वस्तु के उत्पादन में कुछ-न-कुछ लागत आती है, इसलिए प्रत्येक उत्पादक या विक्रेता अपनी वस्तु का मूल्य

---

[1] The 'equilibrium price' is the price at which the quantity of a good which the sellers are willing to offer is equal to the quantity which the buyers want to purchase It is that price which clears the market.

कम से-कम सीमान्त लागत (अन्तिम इकाई के उत्पादन की लागत) के बराबर अवश्य लेगा, दीर्घकाल में यदि वस्तु का मूल्य सीमान्त लागत से कम है तो वह वस्तु का उत्पादन बन्द कर देगा। इस प्रकार पूर्ति-पक्ष की ओर से वस्तु के मूल्य की निचली सीमा सीमान्त लागत द्वारा निर्धारित होती है।

किसी वस्तु की पूर्ति 'पूर्ति के नियम' द्वारा नियन्त्रित होती है, अर्थात् ऊँची कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा तथा नीची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा बेची जायगी। जिस कीमत पर विक्रेता वस्तु की एक निश्चित मात्रा को बेचने को तत्पर होता है उसे 'पूर्ति-मूल्य' (supply price) कहा जाता है। प्रत्येक विक्रेता की एक 'पूर्ति अनुसूची (supply schedule) होती है जो कि बताती है कि विभिन्न मूल्यों पर वह वस्तु की कितनी कितनी मात्राएँ बेचेगा, अर्थात् 'पूर्ति-अनुसूची 'पूर्ति मूल्यों (supply price) को बताती है। बाजार में व्यक्तिगत पूर्ति-अनुसूचियों को जोड़ देने से बाजार की पूर्ति-अनुसूची' (market supply schedule) प्राप्त हो जाती है जोकि बताती है कि विभिन्न कीमतों पर कितनी मात्राएँ बेची जायेंगी। यदि 'बाजार की पूर्ति-अनुसूची' को रेखा द्वारा व्यक्त कर दिया जाये तो हम 'बाजार की पूर्ति रेखा' (market supply curve) प्राप्त हो जाती है। 'बाजार पूर्ति रेखा' चित्र संख्या २ में दर्शाई है। बाजार पूर्ति रेखा' दो बातों को बताती है (i) एक निश्चित कीमत पर पूर्ति की जाने वाली मात्रा तथा (ii) उस मात्रा के उत्पादन की सीमान्त लागत। चित्र संख्या २ से स्पष्ट है
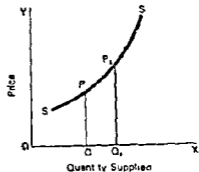
चित्र—२

यदि मूल्य PQ है तो विक्रय की कुल मात्रा OQ है तथा सीमान्त लागत PQ है।

यदि मूल्य P_1Q_1 है तो विक्रय की कुल मात्रा OQ_1 है तथा सीमान्त लागत P_1Q_1 है।

५ **मूल्य-निर्धारण—माँग तथा पूर्ति का बराबर होना** (Price Determination—Equation of Demand and Supply)

क्रेताओं की दृष्टि से मूल्य की अधिकतम सीमा सीमान्त उपयोगिता होती है, जबकि विक्रेताओं की दृष्टि से मूल्य की निम्नतम सीमा सीमान्त लागत होती है। मूल्य इन दोनों सीमाओं के भीतर निर्धारित होता है। प्रत्येक क्रेता इस बात का प्रयत्न करता है कि वह वस्तु का कम से कम मूल्य दे, इसके विपरीत प्रत्येक विक्रेता इस बात का प्रयत्न करता है कि वह वस्तु का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करे। इस प्रकार क्रेताओं तथा विक्रेताओं में सौदेबाजी (bargaining) तथा संघर्ष चलता रहता है, माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ विपरीत दशाओं में कार्य करती हैं। अन्त में, वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ पर कि वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा उसकी पूर्ति की जाने वाली मात्रा के ठीक बराबर हो जाती है। इसे 'सन्तुलन मूल्य' कहा जाता है। इस मूल्य पर बाजार साफ (clear) हो जाता है क्योंकि कोई अतिरिक्त माँग (excess demand) या अतिरिक्त पूर्ति (excess supply) नहीं रहती है।

६. *उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण*—अग्र तालिका विभिन्न मूल्यों पर गेहूँ की प्रति सप्ताह माँग तथा पूर्ति को बताती है तथा स्पष्ट करती है कि बाजार में गेहूँ का 'सन्तुलन मूल्य' कैसे निर्धारित होता है :

बाजार मे गेहूँ की पूर्ति और मांग तथा सन्तुलन मूल्य

गेहूँ की कुल पूर्ति प्रति सप्ताह (क्विटल मे)	मूल्य प्रति क्विटल	गेहूँ की कुल मांग प्रति सप्ताह (क्विटल मे)	विशेष विवरण ['अतिरिक्त पूर्ति' (excess supply) तथा 'अतिरिक्त मांग' (excess demand) का मूल्य पर प्रभाव तीरों द्वारा दिखाया गया है।]
१,०००	४० रु०	३००	↓ ८०० क्विटल 'अतिरिक्त पूर्ति' (excess supply)
८००	१३०	४००	↓ ४०० क्विटल 'अतिरिक्त 'पूर्ति'
५००	१२०	५००	'सन्तुलन मूल्य, तथा पूर्ति और मांग की सन्तुलन मात्राएं ↑ सन्तुलन मूल्य १२० रु० पर बाजार साफ हो जाता ↑ है, कोई अतिरिक्त पूर्ति या मांग नही रहती।
४००	१००	६००	↑ ५०० क्विटल 'अतिरिक्त मांग' (excess demand)
२००	६०	१,१००	↑ ६०० क्विटल 'अतिरिक्त मांग'

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बाजार मे सन्तुलन मूल्य १२० रुपये निश्चित होगा क्योंकि इस मूल्य पर मांग तथा पूर्ति दोनो ५०० क्विटल के बराबर हैं।

यदि मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से अधिक है अर्थात १४० रु० या १३० रु० है तो अतिरिक्त पूर्ति ८०० क्विटल या ४०० क्विटल होगी, यह 'अतिरिक्त पूर्ति' मूल्य को नीचे की ओर ढकेलेगी (जैसा कि तालिका मे ऊपर से नीचे की ओर जाते हुए तीर बताते हैं) और मूल्य घटकर सन्तुलन मूल्य १२० रु० के बराबर हो जायेगा। यदि मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से कम है अर्थात् ६० रु० या १०० रु० है तो ६०० क्विटल या ५०० क्विटल 'अतिरिक्त मांग' होगी जो कि मूल्य को ऊपर की ओर ढकेलेगी (जैसा कि तालिका मे नीचे से ऊपर की ओर जाते हुए तीर बताते हैं) और मूल्य बढकर सन्तुलन मूल्य १२० रु० के बराबर हो जायेगा। स्पष्ट है कि अस्थायी रूप से मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से कम या अधिक हो सकता है, परन्तु उसकी प्रवृत्ति सदैव 'सन्तुलन मूल्य' की ओर जाने की होगी।

७ रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagrammatic representation)—सन्तुलन मूल्य निर्धारण को चित्र सख्या ३ मे दिखाया गया है। चित्र मे DD रेखा बाजार की मांग तथा SS रेखा बाजार की पूर्ति को बताती है। वस्तु विशेष (यहां पर गेहूँ) का मूल्य उस बिन्दु पर निश्चित होगा जहां पर कि मांग तथा पूर्ति बराबर हैं। चित्र सख्या ३ मे DD तथा SS रेखाएँ 'E' बिन्दु पर काटती हैं, अत,

चित्र—३
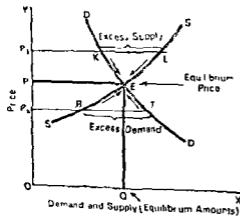
सन्तुलन मूल्य = EO अथवा PO
मांग = पूर्ति = OQ अथवा PE

माना कि बाजार मे सन्तुलन मूल्य OP नही है बल्कि OP_1 है तो इस मूल्य पर मांग तथा पूर्ति बराबर नहीं हैं। OP_1 मूल्य पर,

$$\text{पूर्ति} = P_1L$$
$$\text{मांग} = P_1K$$

अतिरिक्त पूर्ति
$$(\text{Excess Supply}) = P_1L - P_1K = KL$$

यह 'अतिरिक्त पूर्ति' (KL) मूल्य को घटायेगी और मूल्य घटकर E बिन्दु पर पहुंच जायेगा (जैसा

कि चित्र मे 'नीचे की सन्तुलन बिन्दु E की ओर जाते हुए तीरो' द्वारा दिखाया गया है), अर्थात् 'सन्तुलन मूल्य' EQ स्थापित हो जायेगा।

यदि बाजार मूल्य OP_2 है तो इस मूल्य पर

$$\text{मांग} = P_2T$$
$$\text{पूर्ति} = P_2R$$
$$\text{अतिरिक्त मांग (Excess Demand)} = P_2T - P_2R = RT$$

यह अतिरिक्त मांग (RT) मूल्य को बढायेगी और मूल्य बढकर 'E' बिन्दु पर पहुँच जायेगा (जैसा कि चित्र मे 'ऊपर की सन्तुलन बिन्दु E की ओर जाते हुए तीरो' द्वारा दिखाया गया है), अर्थात् 'सन्तुलन मूल्य' EQ स्थापित हो जायेगा।

८ मूल्य निर्धारण का सक्षिप्त विवरण (summing up) इस प्रकार किया जा सकता है

(१) किसी वस्तु का मूल्य मांग तथा पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित होता है। बाजार मे वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निश्चित होगा जहाँ पर कि मांग तथा पूर्ति बराबर हो जाती हैं। इस मूल्य को 'सन्तुलन मूल्य', मांग तथा पूर्ति की मात्राओं को 'सन्तुलन की मात्राएँ' तथा बाजार को 'सन्तुलन की स्थिति' मे कहा जाता है। 'सन्तुलन मूल्य' पर बाजार साफ (clear) हो जाता है क्योकि कोई अतिरिक्त मांग या अतिरिक्त पूर्ति नही रहती।

(२) यद्यपि किसी वस्तु का मूल्य उसकी मांग तथा पूर्ति की दशाओ द्वारा निश्चित होता है, परन्तु ध्यान रहे कि वस्तु का मूल्य भी वस्तु की मांग तथा पूर्ति को प्रभावित करता है। दूसरे शब्दो मे, मांग, पूर्ति तथा मूल्य तीनों परस्पर सम्बन्धित होते हैं।

(३) *मांग तथा पूर्ति की दशाओ मे परिवर्तन होने से 'सन्तुलन मूल्य' मे परिवर्तन हो जाता है*, एक सन्तुलन भग होकर दूसरा सन्तुलन स्थापित हो सकता है।

(४) व्यावहारिक जीवन मे प्रतियोगिता सीमित हो सकती है, इसलिए पूर्ण सन्तुलन प्राप्त नही होता, परन्तु जब भी प्रतियोगिता पर्याप्त रूप से प्रभावपूर्ण होती है तो बाजार-मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' के निकट होगा। **'सन्तुलन मूल्य' स्पर्द्धात्मक बाजार मे मांग तथा पूर्ति की शक्तियों का केन्द्र बिन्दु (focal point) होता है।**

मूल्य निर्धारण मे सीमान्त का महत्त्व
(IMPORTANCE OF MARGIN IN PRICE DETERMINATION)

१. सीमान्त उपयोगिता, न कि कुल उपयोगिता, कीमत को प्रभावित करती है

वस्तुओ के मूल्य निर्धारण मे सीमान्त का विचार एक महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए कितनी कीमत देगा यह बात उस वस्तु से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करेगी। वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है। एक उपभोक्ता वस्तु को तब तक खरीदता जायेगा जब तक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटकर उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर न हो जाय। वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई या एक कम इकाई की उपयोगिता (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता) **ही वस्तु की कीमत को प्रभावित करती है, न कि वस्तु की सभी इकाइयो की उपयोगिता (अर्थात् कुल उपयोगिता)।** एक उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदते समय उस वस्तु की समस्त इकाइयो की कुल उपयोगिता पर विशेष ध्यान नही देता, वह तो सीमान्त उपयोगिता पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है, प्रत्येक उपभोक्ता वस्तु को खरीदते समय यह सोचता है कि उसे कहाँ रुकना है, उसे वस्तु विशेष के सम्बन्ध मे खरीद की सीमा (margin) को निर्धारित करना होता है, अर्थात् सीमान्त उपयोगिता से अधिक कीमत वह नही देना चाहेगा। दूसरे शब्दो मे, **"कीमत के द्वारा, कुल उपयोगिता नहीं, बल्कि सीमान्त उपयोगिता मापी जाती है।"**[3]

[3] "It is marginal utility, and not total utility, that is measured by price."

२. सन्तुलन की स्थिति मे सब सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर होती हैं

कभी-कभी यह कहा जाता है कि उत्पादन-व्यय (cost of production), न कि सीमान्त उपयोगिता मूल्य का मुख्य निर्धारक है। इस सम्बन्ध में दो बातें ध्यान मे रखने की हैं। प्रथम, जैसा कि प्रो० जे० के० मेहता का कथन है कि हमे यह नहीं भूलना चाहिए *कि उत्पादन-व्यय स्वय* उत्पत्ति के साधनो की सीमान्त उपयोगिताओ (अर्थात् सीमान्त उत्पादकताओं) द्वारा निर्धारित होता है।[4] दूसरे, मूल्य निर्धारण की एक सीमा सीमान्त उपयोगिता तथा दूसरी सीमान्त उत्पादन-व्यय द्वारा निर्धारित होती है और मूल्य इन दोनो सीमाओं के बीच निर्धारित होता है। 'सन्तुलन-मूल्य पर दोनो सीमाएँ बराबर होती हैं' अर्थात मूल्य, सीमान्त उत्पादन-व्यय तथा सीमान्त उपयोगिता दोनों के बराबर होता है। अत सन्तुलन की स्थिति मे सब सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर होती हैं और मूल्य इन सीमान्त उपयोगिताओं के बराबर होता है।

३. सीमान्त प्रयोग तथा लागत एव मूल्य माँग और पूर्ति के द्वारा निर्धारित होते हैं

यह कहा जा चुका है कि किसी वस्तु की सीमान्त इकाई की उपयोगिता वस्तु के मूल्य को निर्धारित करती है। परन्तु कहने का यह ढग पूर्ण रूप से उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में मार्शल ने कहा है कि "सीमान्त प्रयोग (marginal uses) तथा लागत मूल्य को नियन्त्रित नहीं करते बल्कि वे, मूल्य के साथ माँग तथा पूर्ति के सामान्य सम्बन्धों द्वारा निर्धारित होते हैं।"[5] इसका अर्थ है कि सीमान्त (margins) कभी भी मूल्य के कारण (cause) नहीं होते; बल्कि सीमान्त, मूल्य के साथ, माँग तथा पूर्ति की शक्तियो की पारस्परिक क्रिया द्वारा, निर्धारित होते हैं। माँग तथा पूर्ति रेखाओं के मिलने के बिन्दु पर, माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ सीमान्त तथा मूल्य दोनो को निर्धारित करती हैं।

सीमान्त उपयोगिता तथा मूल्य के सम्बन्ध मे मार्शल के उपर्युक्त कथन को यहाँ पर हम और स्पष्ट करते हैं। सीमान्त एक स्थिर बिन्दु नही होता। यदि पूर्ति मे विस्तार होता है तो सीमान्त (margin) आगे बढ जायेगा क्योकि अब वस्तु कम आवश्यक प्रयोगो मे भी प्रयोग होने लगेगी। दूसरी ओर यदि पूर्ति मे सकुचन होता है तो सीमान्त पीछे हटता जायेगा क्योकि अब वस्तु का प्रयोग केवल अधिक आवश्यक प्रयोगो तक ही सीमित रहेगा। इसी प्रकार, यदि वस्तु की कीमत घटती है तो उसकी माँग बढ़ेगी, माँग बढने पर सीमान्त आगे बढ जायेगा; वस्तु की कीमत बढने पर उसकी माँग घटेगी, माँग घटने पर सीमान्त पीछे हट जायेगा। स्पष्ट है कि सीमान्त का निर्धारण माँग और पूर्ति की शक्तियो द्वारा होता है। मूल्य कुल माँग तथा कुल पूर्ति के सन्तुलन द्वारा निर्धारित होता है। अत. केवल सीमान्त इकाई की उपयोगिता मूल्य को नियन्त्रित नहीं करती, बल्कि 'अन्य इकाइयों की माँग + सीमान्त इकाई की माँग' मिलकर मूल्य को नियन्त्रित करती है। इस प्रकार कुल माँग तथा कुल पूर्ति सीमान्त तथा मूल्य को निर्धारित करते हैं। वास्तव में, सीमान्त वह बिन्दु है जिस पर, न कि जिसके द्वारा, मूल्य निर्धारित होता है।

४. निष्कर्ष

परन्तु उपर्युक्त विवरण का यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि सीमान्त इकाई का मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता (i) यदि सीमान्त इकाई नही है तो वस्तु की कुल पूर्ति मे उस सीमा तक कमी हो जायेगी और मूल्य मे अन्तर आ जायेगा। दूसरे शब्दो मे, सीमान्त इकाई, अन्य इकाइयो की भाँति, कुल पूर्ति का एक भाग है इसलिए यह मूल्य को उसी सीमा तक प्रभावित करती है। (ii) इसके अतिरिक्त सीमान्त का महत्त्व इस बात मे निहित है कि मूल्य मे परिवर्तन *उत्पन्न करने वाली शक्तियो का प्रभाव मुख्यतया सीमान्त पर ही अनुभव किया जाता है। अत*

[4] "Sometimes it is said that cost of production and not marginal utility is the chief determinant of value But those who uphold this theory overlook the fact that the cost of production itself is determined by marginal utilities of factors of production"

[5] "Marginal uses and costs do not govern value, but are governed together with value by the general relations of demand and supply"

—Marshall, *Principles of Economics*, pp. 339-40.

मार्शल का कथन है कि सीमान्त वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ पर मूल्य को प्रभावित करने वाली शक्तियों के प्रभाव को जानने के लिए हमें जाना पड़ता है।[6]

मूल्य का विरोधाभास—पानी तथा हीरों का उदाहरण
(THE PARADOX OF VALUE–EXAMPLE OF WATER AND DIAMONDS)

१. प्राक्कथन (Introduction)—जेवन्स (Jevons), मेन्जर (Manger) तथा वालरस (Walras) के द्वारा १८७० में आधुनिक उपयोगिता सिद्धान्त (Modern Utility Theory) का प्रतिपादन किया गया। प्राचीन अर्थशास्त्रियों को उपयोगिता-विचार (utility concept) द्वारा कीमतों की व्याख्या करने के सम्बन्ध में एक भ्रम था जोकि आधुनिक उपयोगिता सिद्धान्त ने दूर किया। यद्यपि बहुत सी वस्तुओं की कीमतें उपयोगिता की सापेक्षिक मात्राओं (relative degrees of utility) को बताती हैं, परन्तु प्राचीन अर्थशास्त्री इस बात से परेशान थे कि कुछ वस्तुओं के सम्बन्ध में उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि कीमतों की यह (अर्थात् उपयोगिता) व्याख्या लागू नहीं होती। उदाहरणार्थ, हीरा, पानी की अपेक्षा, मानव जीवन के लिए बहुत कम महत्वपूर्ण या उपयोगी होता है, परन्तु फिर भी हीरों की कीमत, पानी की अपेक्षा, बहुत अधिक होती है; दूसरे शब्दों में पानी की कीमत, हीरों की कीमत की अपेक्षा नगण्य (negligible) है। प्राचीन अर्थशास्त्री इस विरोधाभास को नहीं समझ पाये।

इस विरोधाभास (paradox) को 'आधुनिक उपयोगिता सिद्धान्त' द्वारा सुगमता से हल किया जा सकता है। इस समस्या या विरोधाभास का उत्तर इन शब्दों में है—"पानी की पूर्ति तथा माँग रेखाएँ इस प्रकार की होती हैं कि वे बहुत नीची कीमत पर काटती (intersect) हैं, जबकि हीरों की पूर्ति तथा माँग रेखाएँ ऐसी होती हैं कि वे ऊँची कीमत पर काटती हैं।"[7] यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि पानी की पूर्ति तथा माँग रेखाएँ क्यों बहुत नीची कीमत पर काटती हैं ?

इसके उत्तर को दो भागों—पूर्ति पक्ष तथा माँग पक्ष—में बाँटा जा सकता है।

२. पूर्ति पक्ष—हीरे बहुत सीमित (scarce) होते हैं, हीरों की अतिरिक्त इकाइयाँ (additional or extra units) को प्राप्त करने की लागत ऊँची होती है, इसलिए हीरों की कीमत ऊँची होती है; जबकि पानी की बहुलता (abundance) होती है और उसकी अतिरिक्त मात्रा को प्राप्त करने की लागत बहुत कम होती है, इसलिए पानी की कीमत नीची होती है।

३. *माँग पक्ष*—प्राचीन अर्थशास्त्रियों के भ्रम (confusion) का एक मुख्य कारण यह था कि वे 'कुल उपयोगिता' तथा 'सीमान्त उपयोगिता' को पृथक (separate) नहीं कर सके। वे इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं समझ सके कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी 'कुल उपयोगिता' द्वारा नहीं बल्कि 'सीमान्त उपयोगिता' (अर्थात् एक अतिरिक्त इकाई की उपयोगिता) द्वारा निर्धारित होता है। बाजार में पानी या हीरों का मूल्य इस बात पर निर्भर करेगा कि पानी की थोड़ी अतिरिक्त मात्रा से, या हीरों की कुछ अतिरिक्त इकाइयों से, कुल उपयोगिता में कितनी वृद्धि होती है, अर्थात् सीमान्त उपयोगिता मूल्य की निर्धारक होती है। चूँकि हीरे बहुत सीमित (scarce) होते हैं इसलिए उनकी सीमान्त उपयोगिता (अर्थात् हीरों की कुछ अतिरिक्त इकाइयों की उपयोगिता) अधिक होती है और उनका मूल्य ऊँचा होता है; इसके विपरीत पानी बहुतायत से पाया जाता है जिसके कारण उसकी सीमान्त उपयोगिता बहुत कम होती है और इसलिए उसका मूल्य भी बहुत कम होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि पानी की पूर्ति तथा माँग रेखाएँ बहुत नीची कीमत पर तथा हीरों की पूर्ति तथा माँग रेखाएँ बहुत ऊँची कीमत पर क्यों काटती हैं।

---

[6] "We must go to the margin to study the action of those forces which govern the value of the whole." —Marshall, *Principles of Economics*, pp. 339-340.

[7] "The supply and demand curves for water are such that they intersect at a very low price, while the supply and demand curves for diamonds are such that they intersect at a high price."

४. यदि परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं तो पानी की सीमान्त उपयोगिता हीरों की सीमान्त उपयोगिता से अधिक हो सकती है, और परिणामस्वरूप पानी की कीमत भी हीरों से कहीं ऊँची हो सकती है। उदाहरणार्थ, यदि एक रेगिस्तान मे, जहाँ पर पानी बहुत सीमित है, एक प्यासे हीरों के मालिक (owner) को पानी की थोड़ी मात्रा रखने वाले व्यक्ति से सौदा करना पड़ता है तो ऐसी परिस्थितियो मे, सामान्य परिस्थितियो की अपेक्षा, पानी की सीमान्त उपयोगिता बहुत अधिक होती है और उसकी कीमत हीरों से कहीं अधिक होगी।

सामान्य परिस्थितियों मे पानी की बहुतायत होती है तथा हीरे बहुत सीमित होते हैं। पानी की कुल उपयोगिता, हीरों की कुल उपयोगिता से अधिक हो सकती है, परन्तु पानी की बहुलता के कारण उसकी सीमान्त उपयोगिता बहुत कम होती है अपेक्षाकृत सीमित हीरों की सीमान्त उपयोगिता के। चूंकि मूल्य सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है, इसलिए अधिक सीमान्त उपयोगिता वाले हीरो की कीमत कम सीमान्त उपयोगिता वाले पानी की कीमत की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।

चित्र—४
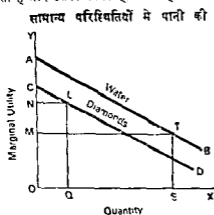
५. रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण—इस बात को चित्र संख्या ४ द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में AB तथा CD क्रमशः पानी तथा हीरो की सीमान्त उपयोगिता रेखाएँ हैं। चूंकि पानी बहुत अधिक मात्रा मे प्राप्य है इसलिए पानी की अधिक मात्रा OS की सीमान्त उपयोगिता TS या OM के बराबर है। इसके विपरीत हीरे बहुत सीमित होते हैं, इसलिए हीरो की सीमित मात्रा OQ की सीमान्त उपयोगिता LQ या ON के बराबर है जो कि पानी की सीमान्त उपयोगिता (TS) से बहुत अधिक है। यद्यपि पानी की मात्रा OS की कुल उपयोगिता OSTA कहीं अधिक है हीरो की मात्रा OQ की कुल उपयोगिता OQLC से। मूल्य सीमान्त उपयोगिता निर्धारित करता है न कि कुल उपयोगिता; चूंकि हीरो की सीमान्त उपयोगिता (LQ) पानी की सीमान्त उपयोगिता (TS) से कहीं अधिक है, इसलिए हीरो का मूल्य पानी से कहीं अधिक होता है।

प्रश्न

१. किसी वस्तु के मूल्य निर्धारण पर (अ) उपयोगिता, तथा (ब) उत्पादन-व्यय के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

Discuss the influence of (a) utility, and (b) cost of production on the price of a commodity

अथवा

"रिकार्डो तथा उसके अनुयायियों के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उत्पादन-लागत द्वारा निर्धारित होता है, जबकि जेवन्स तथा उसके मत को मानने वालों के अनुसार मूल्य सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है।" इनमे कौन-सा मत सही है।

"Ricardo and his followers maintained that value of a commodity was fixed by its cost of production, while Jevons and those who agree with him contested that value was fixed by its marginal utility" Which of these two views is correct?

अथवा

"हम यह विवाद कर सकते हैं कि कैंची का ऊपर का या नीचे का फलका (blade) कागज को काटता है जिस प्रकार कि मूल्य उपयोगिता से या उत्पादन-व्यय से नियन्त्रित होता है।" इस कथन की पूर्ण विवेचना कीजिए।

"We might as reasonably dispute whether it is the upper or the lower blade of a pair of scissors that cuts a piece of paper as whether value is governed by utility or cost of production." Discuss *(Rajasthan, 1968)*

अथवा

'सन्तुलन मूल्य' से आप क्या समझते हैं ? पूर्ण स्पर्द्धात्मक दशाओं में यह कैसे निर्धारित होता है ?

What is equilibrium price ? How is it determined under perfectly competitive conditions ? *(Bhagalpur, 1966 A, Agra, 1963)*

अथवा

पूर्ण रूप से व्याख्या कीजिए कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य का निर्धारण किस प्रकार होता है ?

Discuss fully how value is determined under perfect competition ? *(Agra, 1958, Udaipur, 1968)*

[संकेत—मार्शल से पहले कुछ अर्थशास्त्रियों, जैसे जेवन्स का मत था कि किसी वस्तु का मूल्य उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। जबकि कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों जैसे, रिकार्डो का मत था कि मूल्य उत्पादन-व्यय द्वारा निर्धारित होता है। मार्शल ने इस मतभेद को समाप्त किया और बताया कि वस्तु का मूल्य उपयोगिता (अर्थात् माँग) तथा उत्पादन-व्यय (अर्थात् पूर्ति) दोनों के द्वारा निर्धारित होता है। *सन्तुलन या साम्य मूल्य* की परिभाषा दीजिए। इसके पश्चात् मूल्य निर्धारण की पूरी विवेचना कीजिए अर्थात् माँग शक्ति तथा पूर्ति शक्ति की पूरी व्याख्या कीजिए तथा *सन्तुलन मूल्य के निर्धारण को उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए।*]

२. पूर्ण प्रतियोगिता के लिए किन-किन दशाओं की आवश्यकता है ? पूर्ण प्रतियोगिता में किसी वस्तु का मूल्य कैसे निर्धारित होता है ?

Explain the conditions of perfect competition. How is price of a commodity determined under perfect competition ? *(Meerut, 1968)*

३. 'हजारों शक्तियाँ मूल्य को प्रभावित करती हैं। परन्तु पूर्ण स्पर्द्धात्मक बाजार में वे ऐसा केवल माँग और पूर्ति के माध्यम से करती हैं।' समझाइए।

A thousand forces affect price But in a free competitive market they do only by acting through demand and suppl.' Explain *(Bihar 1966 A)*

[संकेत—किसी वस्तु का मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है, परन्तु *माँग को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व होते हैं, जैसे—धन का वितरण, उपभोक्ताओं की पसन्द, जनसंख्या, द्रव्य की मात्रा में* परिवर्तन, इत्यादि, इसी प्रकार पूर्ति को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व होते हैं, जैसे—उत्पादन के साधनों की कीमतें, टेक्नीकल ज्ञान, उत्पादकों की रुचि, प्राकृतिक तत्त्व, परिवहन व सवादवहन के साधन, कर नीति, इत्यादि। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि मूल्य को प्रभावित करने वाली हजारों शक्तियाँ होती हैं, परन्तु वे माँग और पूर्ति के माध्यम द्वारा कार्य करती है। मूल्य वहाँ पर निर्धारित होता है जहाँ पर माँग और पूर्ति बराबर हो जाती है। इस विषय-सामग्री को प्राक्कथन के रूप में लिखने के बाद 'सन्तुलन-मूल्य' निर्धारण की पूर्ण व्याख्या कीजिए, अर्थात् सन्तुलन मूल्य का अर्थ, माँग शक्ति, पूर्ति शक्ति, उदाहरण तथा रेखाचित्र इत्यादि दीजिए।]

४. "सीमान्त प्रयोग तथा लागत मूल्य को नियन्त्रित नहीं करते बल्कि वे, मूल्य के साथ, माँग तथा पूर्ति के सामान्य सम्बन्धों द्वारा निर्धारित होते हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

"Marginal uses and costs do not govern value but are governed together with value by the general relation of demand and supply." Discuss the statement *(Sagar, 1969)*

अथवा

'सीमान्त वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ पर मूल्यो को प्रभावित करने वाली शक्तियो के प्रभाव को जानने के लिए हम जाना पड़ता है। इस कथन को समझाइए।

We must go to the margin to study the action of those forces which govern the value of the commodity" Explain this statement.

अथवा

Value is governed at the margin and not by the margin" Comment (Bihar, 1963)

अथवा

"सीमान्त उपयोगिता न कि कुल उपयोगिता, किसी वस्तु के मूल्य को निर्धारित करती है।" इस कथन के सन्दर्भ में मूल्य निर्धारण में सीमान्त के विचार के महत्त्व को बताइए।

It is the marginal utility and not total utility which determines the price of a commodity In the light of this explain fully the significance of the concept of margin in price determination.

[संकेत—इन सब प्रश्नो के उत्तर मे किसी वस्तु के 'मूल्य निर्धारण में सीमान्त का महत्त्व' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री को लिखिए।]

५ "हीरा पानी की अपेक्षा मानव जीवन के लिए कम उपयोगी होता है फिर भी हीरो की कीमत पानी की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।' इस विरोधाभास को चित्र द्वारा विस्तार से समझाइए।

• Diamond is less useful for human life than water, even then its price is much more than water' Explain this paradox with the help of a diagram

(Agra B A I, 1976, 1971)

अथवा

"ऐसा क्यो है कि पानी, जोकि इतना लाभदायक है कि इसके बिना जीवित रहना असम्भव है, का बहुत नीचा मूल्य होता है, जबकि हीरो जो कि बिलकुल अनावश्यक है, का मूल्य बहुत ऊँचा होता है।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

• How is it that water which is so very useful that life is impossible without it has such a low price—while diamonds which are quite unnecessary have such a high price" Explain this statement

अथवा

'यह सिद्धान्त कि किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता, न कि कुल उपयोगिता, मूल्यो के अध्ययन के सम्बन्ध में आवश्यक है, 'मूल्यो के विरोधाभास' की व्याख्या करता है।" समझाइए।

"The principle that the marginal and not the total utility of a commodity is relevant in connection with the study of prices supplies us with the explanation of what is often called the paradox of value" Explain

अथवा

"पानी की पूर्ति तथा माँग रेखाएं इस प्रकार की होती है कि वे बहुत नीची कीमत पर *काटती हैं, जबकि हीरों की पूर्ति तथा माँग रेखाएँ ऐसी होती हैं कि वे ऊँची कीमत पर* काटती हैं।' व्याख्या कीजिए।

"The supply and demand curves for water are such that they intersect at a very low price while the supply and demand curves for diamonds are such that they intersect at a *high price*" Explain

[संकेत—'मूल्य का विरोधाभास—पानी तथा हीरो का उदाहरण' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री देखिए।]

4 मूल्य निर्धारण में समय-तत्व
[TIME FACTOR IN PRICE DETERMINATION]

मूल्य निर्धारण पर समय का प्रभाव
(INFLUENCE OF TIME ON PRICE DETERMINATION)

१. प्राक्कथन (Introduction)

मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि किसी वस्तु के मूल्य निर्धारण मे 'समय' का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। किसी वस्तु का मूल्य माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है, परन्तु इनका मूल्य पर सापेक्षिक प्रभाव (relative influence) विचाराधीन समय पर निर्भर करता है। यदि वस्तु विशेष की माँग म परिवर्तन (वृद्धि या कमी) हो जाती है तो पूर्ति को माँग के अनुरूप एकदम परिवर्तित नहीं किया जा सकता है, उत्पादन यन्त्र (productive equipment) को बदलने म कुछ समय लगेगा और इसलिए पूर्ति का माँग के साथ समायोजन (adjustment) करने में भी कुछ समय अवश्य लगेगा, स्पष्ट है समय का प्रभाव मूल्य निर्धारण पर पडेगा। सामान्यतया, समय जितना कम होगा मूल्य पर माँग का प्रभाव उतना ही अधिक होगा और पूर्ति का कम, इसके विपरीत समय जितना अधिक होगा मूल्य पर पूर्ति का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक होगा और माँग का कम।

मूल्य निर्धारण पर समय के प्रभाव के अध्ययन की दृष्टि से मार्शल ने समय को चार भागो मे बाटा—(i) अति अल्पकालीन समय, (ii) अल्पकाल, (iii) दीर्घकाल, तथा (iv) अति दीर्घकाल। आधुनिक अर्थशास्त्री इनमे से केवल प्रथम तीन को मान्यता देते है, चौथे समय अर्थात 'अति दीर्घकाल' का मूल्य निर्धारण की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नही समझा जाता है।

२. विभिन्न समय अवधियो का अन्तर 'घड़ी के समय' (Clock-time) पर नहीं बल्कि 'क्रियात्मक समय' (Operational time) पर आधारित होता है।

ध्यान रहे कि य समय अवधियाँ (time periods) कोई निश्चित समयो या अवधियों (जैसे १ हफ्ता, २ महीनो या ४ साल) को नही बताती। दूसरे शब्दो मे, इन विभिन्न समय-अवधियो का अन्तर (distinction) 'घड़ी के समय' (Clock time) या 'कलेण्डर समय' (Calendar time) पर आधारित नही होता बल्कि 'क्रियात्मक समय' (Operational time) पर आधारित है। 'क्रियात्मक समय' से अर्थ उस समय से है जो कि पूर्ति माँग की परिवर्तित दशाओ के साथ समायोजन (adjustment) करने मे लेती है। एक स्थिति में अल्पकाल दूसरी स्थिति के दीर्घकाल से अधिक हो सकता है।[1]

[1] उदाहरणार्थ, फलो की माँग बढ जाने पर नये बाग लगाये जायेंगे और पूर्ति को बढ़ाने का प्रयत्न किया जायेगा परन्तु इन नये बागो से ८-१० साल तक फलो की पूर्ति प्राप्त नही हो सकेगी अर्थात् फलो के सम्बन्ध मे ८-१० साल का समय अल्पकाल कहा जायेगा, क्योकि इस समयावधि मे फलों की पूर्ति लगभग स्थिर रहेगी या बहुत सीमित मात्रा म बढायी जा सकेगी। इसके विपरीत, कारो के उत्पादन को २ साल के अन्दर ही नये यन्त्रो को लगाकर बहुत बढाकर माँग के अनुरूप किया जा सकता है और इस प्रकार कारो के लिए २ साल का समय दीर्घकाल है।

३ अति अल्पकाल (Very Short Period)

'अति अल्पकाल' या 'तात्कालिक समय' (immediate period) वह अवधि है जिसमें कि कुल पूर्ति लगभग स्थिर रहती है। अति अल्पकाल ऐसी स्थिति को बताता है जिसमें कि वस्तुओं का पहले से उत्पादन हो जाता है और जिसमें समय इतना कम होता है कि वस्तु के उत्पादन को और अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इस काल में उत्पादन की दर को नहीं बदला जा सकता है।[2] ऐसी स्थिति में यदि वस्तु की माँग बढ़ती है तो गोदामों में पहले से रखे हुए स्टॉक में से निकालकर ही वस्तु की पूर्ति को बहुत सीमित मात्रा में बढ़ाया जा सकेगा। इसी प्रकार यदि वस्तु की माँग घटती है तो वस्तु की कुछ पूर्ति को वापस गोदामों में स्टॉक किया जा सकेगा। अतः यह कहा जाता है कि अति अल्पकाल वह अवधि है, जिसमें पूर्ति गोदामों में रखे हुए स्टॉक तक सीमित होती है।

चित्र—१
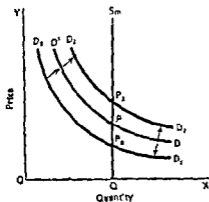
चूँकि अति अल्पकाल में पूर्ति लगभग स्थिर है इसलिए मूल्य मुख्यतया माँग द्वारा निर्धारित होता है। यदि माँग में वृद्धि हो जाती है तो मूल्य बढ़ जायगा, और यदि माँग में कमी हो जाती है तो मूल्य घट जायेगा। इस बात को चित्र संख्या १ में दिखाया गया है। चूँकि इस काल में पूर्ति स्थिर रहती है इसलिए चित्र संख्या १ में पूर्ति को खड़ी रेखा (vertical line) S_mQ द्वारा दिखाया गया है। माँग रेखा DD पूर्ति रेखा S_mQ को P बिन्दु पर काटती है, इसलिए मूल्य PQ होगा। यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य भी बढ़ जायेगा और वह P_1Q के बराबर होगा। यदि माँग घटकर D_2D_2 हो जाती है तो मूल्य भी घट जायेगा और वह P_2Q के बराबर होगा। अति अल्पकाल के मूल्य को मार्शल ने 'बाजार मूल्य' (market price) कहा। यह मूल्य माँग तथा पूर्ति के अस्थायी साम्य द्वारा निर्धारित होता है और दिन में माँग में परिवर्तन के अनुसार कई बार बदल सकता है।

४ अल्पकाल (Short Period)

अल्पकाल वह अवधि है जिसमें वस्तु की उत्पादित मात्रा को परिवर्तित किया जा सकता है, परन्तु स्थिर प्लाण्ट की क्षमता को नहीं।[3] इसमें स्थिर प्लाण्ट क्षमता के साथ परिवर्तनशील तत्वों (जैसे, कच्चा माल, मानव शक्ति इत्यादि) में परिवर्तन करके वस्तु की उत्पादित मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इस काल में वर्तमान प्लाण्ट क्षमता का अधिक गहराई के साथ (more intensively) प्रयोग करके वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जाता है परन्तु प्लाण्ट की क्षमता स्थिर रहती है उसके आकार को बढ़ाकर वस्तु के उत्पादन में वृद्धि नहीं की जा सकती है और नयी फर्में उद्योग में प्रवेश नहीं कर सकती हैं। चूँकि अल्पकाल में प्लाण्ट की क्षमता स्थिर रहती है, इसलिए इसे स्थिर प्लाण्ट समयावधि (fixed plant time period) भी कहा जाता है।

इस काल में भी मूल्य पर मुख्य प्रभाव माँग का ही पड़ता है क्योंकि पूर्ति को केवल वर्तमान प्लाण्टों का अधिक गहराई से प्रयोग करके सीमित मात्रा ही में बढ़ाया जा सकता है, उसे पूरी प्रकार से माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकता। यद्यपि इस काल में मूल्य पर माँग का

---

[2] The very short period refers to a situation in which the goods are already produced and in which the time interval is too short to produce any more. In other words, within this period the rate of production cannot be changed.

[3] The short period is one in which the amount of goods produced can be varied, but not the capacity of *fixed plant*.

प्रभाव ही प्रमुख रहता है परन्तु, अति अल्पकाल की अपेक्षा, इसमें पूर्ति का प्रभाव अधिक पड़ता है क्योंकि अति अल्पकाल में पूर्ति लगभग स्थिर रहती है जबकि अल्पकाल में उसे वर्तमान प्लाण्ट को अधिक गहराई से प्रयोग करके सीमित मात्रा में बढ़ाया जा सकता है। इस काल के मूल्य को 'अल्पकालीन मूल्य' (short period price) या अल्पकालीन सामान्य मूल्य' (short run normal price) कहा जाता है।

चित्र—२

अल्पकाल में मूल्य निर्धारण को चित्र संख्या २ द्वारा दिखाया गया है। चित्र में S_m अति अल्पकालीन पूर्ति रेखा अर्थात् बाजार पूर्ति रेखा (market supply curve) को बताती है, चूँकि अति अल्पकाल में पूर्ति रेखा लगभग स्थिर होती है इसलिए S, एक खड़ी रेखा (vertical line) है। S_m मूल माँग रेखा (original demand curve) DD को P बिन्दु पर काटती है इसलिए 'बाजार मूल्य' PQ होगा। चित्र २ में S_1 अल्पकालीन पूर्ति रेखा (short period supply curve) है, यह भी मूल माँग रेखा DD को P बिन्दु पर काटती है, इसलिए 'अल्पकालीन मूल्य' या 'अल्पकालीन सामान्य मूल्य' भी PQ हुआ। अध्ययन की सुविधा के लिए हम मान लेते हैं कि 'बाजार मूल्य' तथा 'अल्पकालीन मूल्य' दोनों PQ के बराबर है।

यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो अल्पकालीन मूल्य P_2Q_1 होगा जो कि पुराने बाजार मूल्य PQ से ऊँचा है। परन्तु अल्पकालीन मूल्य P_2Q_1 नये बाजार मूल्य P_1Q से नीचा है, इसका कारण है कि अल्पकाल में पूर्ति को थोड़ा बढ़ाया जा सकता है जबकि अति अल्पकाल में पूर्ति लगभग स्थिर रहती है। समय प्रभाव को चित्र में तीर द्वारा स्पष्ट किया गया है।

५. दीर्घकाल (Long Period)

दीर्घकाल वह अवधि है जिसमें कि किसी वस्तु की पूर्ति को वर्तमान प्लाण्ट की क्षमता को बढ़ाकर या उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार इस काल में वर्तमान प्लाण्ट की क्षमता को कम करके या उद्योग में कुछ फर्मों के बहिर्गमन (exit) द्वारा पूर्ति को घटाया जा सकता है। संक्षेप में, दीर्घकाल में इतना पर्याप्त समय होता है कि सभी साधन परिवर्तित किये जा सकते हैं।[4] चूँकि इस काल में प्लाण्ट की क्षमता को परिवर्तित (बढ़ाया या घटाया) जा सकता है, इसलिए दीर्घकाल को 'परिवर्तनशील प्लाण्ट समयावधि (Variable plant time period) भी कहा जाता है।

चित्र—३

इस प्रकार दीर्घकाल में पूर्ति को पूरी प्रकार से (fully) माँग की दशाओं के अनुरूप किया जा सकता है। इस काल में मूल्य पर माँग का प्रभाव मुख्य नहीं रह जाता, बल्कि पूर्ति का प्रभाव पूरा-पूरा पड़ता है। दीर्घकाल के मूल्य को दीर्घकालीन मूल्य (long period price) या 'दीर्घकालीन सामान्य

[4] In the long period time is long enough to enable all factors to be varied

मूल्य' (long period normal price) या केवल 'सामान्य मूल्य' (normal price) कहा जाता है।

चित्र संख्या ३ म DD मूल (original) माग रेखा है, S_m बाजार पूर्ति रेखा, S_s अल्पकालीन पूर्ति रेखा तथा S_L दीर्घकालीन पूर्ति रेखा (long period supply curve) है। दीर्घकालीन पूर्ति रेखा S_L अल्पकालीन पूर्ति रेखा S_s के नीचे है क्योंकि दीर्घकाल म लागतें अपेक्षाकृत नीची होती हैं।

माँग रेखा DD तथा दीर्घकालीन पूर्ति रेखा S_L एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटती है इसलिए PQ 'सामान्य मूल्य' होगा। S_m तथा S_s रेखाएँ भी DD को P बिन्दु पर काटती है अर्थात् PQ मूल्य 'बाजार मूल्य तथा अल्पकालीन मूल्य भी है। दूसरे शब्दों म, अध्ययन की सुविधा के लिए, हम यह मान लेते हैं कि प्रारम्भ म बाजार मूल्य अल्पकालीन मूल्य तथा दीर्घकालीन सामान्य मूल्य सब PQ के बराबर हैं। यदि माग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो 'दीर्घकालीन सामान्य मूल्य' (long period normal price) बढ़कर P_1Q_2 हो जायगा, यह नये अल्पकालीन मूल्य P_2Q_1 तथा नये बाजार मूल्य P_1Q से कम है। मागी जाने वाली तथा पूर्ति की जाने वाली दीर्घकालीन सन्तुलन मात्रा OQ_2 है जो कि अल्पकालीन मात्रा OQ_1 तथा अति अल्पकाल की मात्रा OQ से अधिक है। मार्शल के अनुसार, बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सदैव दीर्घकालीन सामान्य मूल्य की ओर जाने की रहती है। दीर्घकाल म समय प्रभाव को चित्र म तीर द्वारा स्पष्ट किया गया है।

६ अति दीर्घकाल (Very Long Period or Secular Period or the Historical Long Period)

उपर्युक्त तीनो क्रियात्मक समयावधियो (operational time periods) के अतिरिक्त मार्शल ने एक चौथी समयावधि, जिसे 'अति दीर्घकालीन' या 'चिरकाल' या 'ऐतिहासिक दीर्घकाल' कहते हैं, पर भी विचार किया।

अति दीर्घकाल अत्यन्त लम्बा समय होता है, इसमे माँग तथा पूर्ति दोनो पक्षो मे आधारभूत परिवर्तन होते हैं। इसम न केवल वे सब परिवर्तन होते हैं जोकि साधारण दीर्घकाल मे होते हैं, बल्कि इसमे सभी अन्तर्निहित आर्थिक तत्त्वो (underlying economic factors), जैसे माँग पक्ष की ओर, जनसंख्या का आकार लोगो की आदतें तथा स्वभाव इत्यादि तथा पूर्ति पक्ष की ओर, पूँजीगत वस्तुओ की लागतें, कच्चे माल की पूर्ति, उत्पादन की रीतियाँ, पूँजी की पूर्ति की सामान्य दशाओं, इत्यादि के बदलने के लिए समय होता है। इन विस्तृत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मूल्यो म परिवर्तनो को मार्शल ने 'मूल्यो मे चिरकालीन परिवर्तन' (secular change in value) कहा। वास्तव मे, अति दीर्घकाल एक ऐतिहासिक काल (historical period) है।

७. 'मूल्य निर्धारण मे समय-तत्त्व' के सम्बन्ध मे सामान्य निष्कर्ष (General Conclusions Regarding the 'Time-element in Price-determination')

(i) विभिन्न समयावधियो के बीच अन्तर 'घड़ी के समय' (clock time) या 'कैलेण्डर के समय' (calendar-time) पर नही बल्कि क्रियात्मक समय' (operational time) पर आधारित है। 'क्रियात्मक समय' वह समय है जो कि पूर्ति, माँग की दशाओं के अनुरूप (adjust) होने मे लेती है।

(ii) विभिन्न उद्योगो के लिए 'क्रियात्मक समय' भिन्न होता है। एक स्थिति मे अल्पकाल दूसरी स्थिति मे दीर्घकाल से लम्बा हो सकता है। वास्तव मे, इन अवधियो के बीच अन्तर केवल एक विश्लेषणात्मक अन्तर है।[1]

[1] A short run in one case may be longer than a long run in another The distinction between the different time periods is essentially an analytical one

(iii) समय कम होने पर मूल्य पर माँग का प्रभाव अधिक पड़ेगा और समय जितना अधिक होगा उतना ही पूर्ति का प्रभाव अधिक पड़ेगा। मार्शल के शब्दों में, 'साधारणतया, विचाराधीन अवधि जितनी कम होगी, मूल्य पर माँग के प्रभाव के प्रति दिया जाने वाला हमारा ध्यान भी उतना ही अधिक होगा, तथा समयावधि जितनी लम्बी होगी उतना ही अधिक उत्पादन-लागत का प्रभाव मूल्य पर पड़ेगा।'[6]

बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य
(MARKET PRICE AND NORMAL PRICE)

बाजार मूल्य का अर्थ (Meaning of Market Price)

बाजार मूल्य अति अल्पकालीन साम्य मूल्य (very short period equilibrium price) होता है। अति अल्पकाल वह समयावधि है जिसमें पूर्ति लगभग स्थिर रहती है या गोदामों में रखे हुए स्टॉक तक सीमित होती है। बाजार मूल्य किसी समय विशेष में बाजार में वास्तव में प्रचलित होता है। चूँकि अति अल्पकाल में पूर्ति लगभग स्थिर रहती है या गोदामों में रखे माल तक सीमित होती है, इसलिए बाजार मूल्य निर्धारण में मुख्य तथा सक्रिय प्रभाव (dominant and active influence) माँग का पड़ता है अर्थात् माँग के घटने-बढ़ने से मूल्य घटता-बढ़ता है, जबकि पूर्ति का प्रभाव केवल निष्क्रिय (passive) होता है। स्पर्द्धात्मक दशाओं में बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सदैव दीर्घकालीन साम्य मूल्य अर्थात् 'सामान्य मूल्य' की ओर जाने की होती है।

सामान्य मूल्य (Normal Price)

प्रायः 'दीर्घकालीन साम्य मूल्य' (long period equilibrium price) को 'सामान्य मूल्य' कहा जाता है। 'अल्पकालीन सामान्य मूल्य' (short-run normal price) से अन्तर करने के लिए इसे 'दीर्घकालीन सामान्य मूल्य' (long-run normal price) भी कहते हैं। दीर्घकाल वह अवधि है जिसमें कि वर्तमान प्लाण्ट की क्षमता को घटा-बढ़ाकर या नयी फर्मों के प्रवेश (entry) या बहिर्गमन (exit) द्वारा पूर्ति को पूरी प्रकार से बढ़ाकर या घटाकर माँग की दशाओं के अनुरूप किया जा सकता है।

'सामान्य मूल्य' वह मूल्य है जो कि सन्तुलन की स्थिति में विद्यमान होगा, यदि सब विघ्नकारक प्रभाव, जो कि स्थायी मूल्य-समायोजन में निरन्तर बाधा डालते रहते हैं, हटाये जा सकें।[7] चूँकि इस प्रावैगिक संसार (dynamic world) में विघ्नकारक प्रभाव निरन्तर कार्य करते रहते हैं तथा उन्हें हटाया नहीं जा सकता, इसलिए सामान्य मूल्य काल्पनिक (imaginary) या अमूर्त (abstract) है जो वास्तव में किसी समय विशेष में प्रचलित नहीं होता या प्राप्त नहीं किया जा सकता। जब तक कि इतना समय मिल पाये कि दीर्घकालीन साम्य अर्थात् सामान्य मूल्य स्थापित हो सके, उससे पहले ही प्रायः अन्तर्निहित (underlying) दशाओं में से कुछ में परिवर्तन हो जायेगा और पहला सम्भावित सामान्य मूल्य दूसरे सम्भावित सामान्य मूल्य की ओर गतिशील हो जायेगा। दीर्घकाल, कल की भाँति, कभी नहीं आता।[8] दूसरे शब्दों में, प्रावैगिक समाज में सामान्य मूल्य एक 'गतिशील लक्ष्य' (moving target) है जिसकी ओर बाजार मूल्य निरन्तर जाने की प्रवृत्ति रखता है परन्तु वास्तव में वहाँ कभी नहीं पहुँच सकता।[9]

---

[6] "Thus we may conclude that, *as a general rule* the shorter the period which we are considering the greater must be the share of our attention which is given to the influence of demand on value, and the longer the period, the more important will be the influence of cost of production on value." —Marshall *Principles of Economics*, p. 291.

[7] 'Normal price' is the price which would exist in a state of equilibrium if all the disturbing influences which are continually interfering with stable price adjustment could be removed.

[8] There will usually be a change in some of the conditions underlying the long period equilibrium before it has had time to come into being, and the first expected normal price would have shifted to another expected normal price. The long run, like tomorrow, never comes.

[9] In other words, in a dynamic society normal price is a 'moving target' towards which market price tends to approach but may never actually reach.

ध्यान रहे कि 'सामान्य मूल्य' बाजार मूल्यों का एक सांख्यिकीय औसत (statistical average) नहीं होता। बाजार मूल्य वर्तमान माँग तथा पूर्ति शक्तियों का अस्थायी साम्य होता है। सामान्य मूल्य अन्तिम (final) सन्तुलन होता है, जबकि माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ बिना किसी परिवर्तन के कार्य करती रहें।

यद्यपि सामान्य मूल्य में अमूर्तता (abstraction) होती है, परन्तु फिर भी उसमें इस दृष्टि से वास्तविकता (reality) होती है कि यह एक 'केन्द्र बिन्दु' (focal point) या 'आदर्श' (norm) की भाँति होता है जिसके चारों तरफ बाजार मूल्य वास्तव में घूमता रहता है।

बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य की तुलना
(COMPARISON OF MARKET PRICE AND NORMAL PRICE)

	बाजार मूल्य		सामान्य मूल्य
१	बाजार मूल्य अति अल्पकालीन मूल्य है।	१	सामान्य मूल्य दीर्घकालीन मूल्य है।
२	बाजार मूल्य किसी समय विशेष में वास्तव में प्रचलित होता है।	२	सामान्य मूल्य काल्पनिक या अमूर्त है जो कि वास्तव में किसी समय विशेष में प्रचलित नहीं होता। परन्तु सामान्य मूल्य में इस दृष्टि से वास्तविकता होती है कि यह 'केन्द्र बिन्दु' की भाँति होता है जिसके चारों तरफ बाजार मूल्य घूमता रहता है।
३	बाजार मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों का अस्थायी सन्तुलन (temporary equilibrium) होता है परिणामस्वरूप वह दिन में कई बार बदल सकता है।	३	सामान्य मूल्य 'अन्तिम सन्तुलन' (final equilibrium) होता है जबकि माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ बिना किसी परिवर्तन के (undisturbed) कार्य करती रहें। प्रावैगिक समाज में सामान्य मूल्य एक स्थिर बिन्दु नहीं होता, बल्कि यह एक 'गतिशील बिन्दु' (moving point) या 'गतिशील लक्ष्य' (moving target) होता है, जिसकी ओर बाजार मूल्य निरन्तर जाने की प्रवृत्ति रखता है परन्तु वास्तव में वहाँ पहुँच नहीं पाता।
४	बाजार मूल्य के निर्धारण में माँग का मुख्य तथा सक्रिय प्रभाव होता है जबकि पूर्ति का निष्क्रिय पार्ट (passive role) होता है क्योंकि पूर्ति लगभग स्थिर होती है।	४	सामान्य मूल्य के निर्धारण में माँग का प्रभाव मुख्य नहीं रह जाता। यहाँ पर पूर्ति का पार्ट निष्क्रिय न रहकर सक्रिय हो जाता है क्योंकि पूर्ति को पूरी प्रकार से परिवर्तित किया जा सकता है।
५.	सभी प्रकार की वस्तुओं का, चाहे वे निरुत्पादनीय वस्तुएँ (non reproducible goods) हों या पुनरुत्पादनीय वस्तुएँ (reproducible goods) हों बाजार मूल्य होता है।	५	सामान्य मूल्य केवल पुनरुत्पादनीय वस्तुओं का ही होता है। यदि वस्तु पुनरुत्पादनीय है तभी उसकी पूर्ति में पूरी प्रकार से परिवर्तन करके उसे माँग की दशाओं के अनुरूप किया जा सकेगा अन्यथा नहीं। यदि वस्तु निरुत्पादनीय है तो दीर्घकाल में उसकी पूर्ति में परिवर्तन नहीं किया जा सकता और इसलिए ऐसी वस्तु के सामान्य मूल्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बाजार मूल्य का निर्धारण (Determination of Market Price)

किसी वस्तु का बाजार मूल्य 'अति अल्पकाल' या 'बाजार समय' (market period) में

माँग तथा पूर्ति के साम्य द्वारा निर्धारित होता है। वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं—(अ) पुनरुत्पादनीय वस्तुएँ (reproducible commodities), अर्थात् जिन्हें दुबारा उत्पादित किया जा सके। पुनरुत्पादनीय वस्तुएं दो प्रकार की होती हैं (i) शीघ्र ही नष्ट होने वाली वस्तुएं (perishable commodities) तथा (ii) शीघ्र नष्ट न होने वाली वस्तुएँ या टिकाऊ वस्तुएँ (non-perishable commodities or durable commodities)। (ब) निरुत्पादनीय वस्तुएँ (non-reproducible goods) अर्थात् जिन्हें दुबारा उत्पादित नहीं किया जा सकता है, जैसे कलात्मक तस्वीरें पुरानी हस्तलिपियाँ (manuscripts), इत्यादि।

शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं तथा निरुत्पादनीय वस्तुओं का बाजार मूल्य निर्धारण—इन दोनों प्रकार की वस्तुओं का [illegible] कारण है कि इन दोनों की पूर्ति स्थिर रहती है। शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं जैसे हरी सब्जियाँ, मछली, दूध, इत्यादि को रोका नहीं जा सकता। इनकी पूर्ति जितनी बाजार में है वह सब उसी दिन बाजार में बिक जानी चाहिए अन्यथा दूसरे दिन वे खराब हो जायेगी। यहाँ पर यह मान लेते हैं कि प्रशीतन प्रक्रियाओं (process of refrigeration) का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। अतः शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं की पूर्ति स्थिर होती है। इसी प्रकार निरुत्पादनीय वस्तुओं (हस्तलिपियाँ, कलात्मक तस्वीरें, इत्यादि) की पूर्ति भी स्थिर होती है। स्पष्ट है कि निरुत्पादनीय वस्तुओं तथा शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं की पूर्ति रेखा एक खड़ी रेखा होगी, जैसा कि चित्र ४ में SKM रेखा द्वारा दिखाया गया है। इन वस्तुओं के बाजार मूल्य निर्धारण में पूर्ति या उत्पादन-लागत का प्रभाव निष्क्रिय (passive) होगा, मुख्य तथा सक्रिय प्रभाव

चित्र—४

माँग का पड़ेगा, जैसा कि चित्र संख्या ४ में दिखाया गया है। चित्र संख्या ४ में D_1D_1 माँग रेखा पूर्ति रेखा SKM को P_1 बिन्दु पर काटती है, अतः सन्तुलन मूल्य P_1M (या L_1) निर्धारित होगा और इस मूल्य पर बाजार की समस्त पूर्ति OM बिक जायेगी। यदि माँग बढ़कर D_2D_2 हो जाती है तो बाजार मूल्य बढ़कर P_2M (या L_2) हो जायगा और इस मूल्य पर बाजार की समस्त पूर्ति बिक जायेगी। यदि माँग घटकर D_3D_3 हो जाती है तो मूल्य घटकर P_3M (या L_3) हो जायेगा और इस मूल्य पर बाजार की समस्त पूर्ति बिक जायेगी।
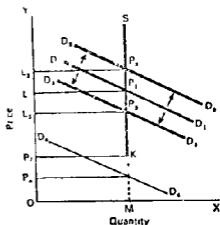
यदि माँग D_3D_3 से नीचे गिरती है तो मूल्य भी और नीचे गिरेगा। परन्तु यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखने की है कि एक निम्नतम कीमत (minimum price) होगी जिसके नीचे उत्पादक या विक्रेता अपनी वस्तु को नहीं बेचना चाहेगा। इस निम्नतम मूल्य को अर्थशास्त्री 'सुरक्षित मूल्य' (reserve price) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, सुरक्षित मूल्य वह निम्नतम मूल्य है जिस पर उत्पादक या विक्रेता अपनी वस्तु को स्वयं माँगने लगता है अर्थात् उसे बेचने से मना कर देता है।[10] चित्र संख्या ४ में विक्रेताओं के लिए 'सुरक्षित मूल्य' P_r है (जहाँ यह मान लेते हैं कि सभी विक्रेताओं के लिए सुरक्षित मूल्य एक ही है, जबकि ऐसा होना आवश्यक नहीं है)।

10 Reserve price is the minimum price below which a seller would demand his commodity himself *i.e.*, he would refuse to sell it

यदि माँग गिरकर D_4D_4 हो जाती है तो मूल्य P_3 होगा, परन्तु इस पर विक्रेता अपनी वस्तु नहीं बेचेंगे क्योंकि मूल्य 'सुरक्षित मूल्य' P_1 से कम है। सुरक्षित मूल्य से नीचे (अर्थात् K बिन्दु से नीचे) पूर्ति रेखा को 'टूटी लाइन' द्वारा दिखाया गया है जो कि यह बताती है कि (सुरक्षित मूल्य से नीचे) वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा शून्य होगी।

सुरक्षित मूल्य कई तथ्यों पर निर्भर करता है—(i) विक्रेता के लिए नकद रुपये की आवश्यकता की तीव्रता सुरक्षित मूल्य को प्रभावित करती है। यदि नकद रुपये की आवश्यकता अधिक है तो सुरक्षित मूल्य नीचा होगा, इसके विपरीत दशा में ऊँचा होगा। (ii) सुरक्षित मूल्य इस बात पर निर्भर करेगा कि विक्रेता भविष्य में मूल्य के बारे में क्या आशा रखता है। यदि भविष्य में मूल्य ऊँचे होने की आशा है तो उसका सुरक्षित मूल्य ऊँचा होगा, इसके विपरीत दशा में नीचा होगा। (iii) यह भविष्य की लागतों पर भी निर्भर करता है। यदि भविष्य में लागतों के बढ़ने की आशा है तो सुरक्षित मूल्य ऊँचा होगा, इसके विपरीत दशा में नीचा होगा। (iv) यह वस्तु के टिकाऊपन (durability) पर भी निर्भर करता है। वस्तु जितनी अधिक टिकाऊ होगी उतना ही अधिक सुरक्षित मूल्य होगा। शीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में सुरक्षित मूल्य बहुत नीचा होता है और कुछ दशाओं में यह शून्य हो जाता है।

शीघ्र नष्ट न होने वाली या टिकाऊ वस्तुओं का बाजार मूल्य निर्धारण—यदि वस्तु टिकाऊ है तो अति अल्पकाल में उसकी पूर्ति को थोड़ा परिवर्तित किया (अर्थात् बढ़ाया घटाया) जा सकता है, परन्तु पूर्ति के परिवर्तन की अधिकतम सीमा वस्तु के मौजूदा (existing) स्टॉक तक सीमित रहती है। टिकाऊ वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में भी मुख्य प्रभाव माँग का ही पड़ता है, पूर्ति या लागत का प्रभाव बहुत कम होता है। यदि वस्तु की माँग बढ़ जाती है तो विक्रेता गोदामों में से स्टॉक निकालकर थोड़ी पूर्ति बढ़ा सकेंगे परन्तु उसे माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकेगा; अतः माँग बढ़ने पर मूल्य भी बढ़ जायेगा। इसी प्रकार यदि माँग घटती है तो कुछ पूर्ति को बाजार से निकालकर गोदामों में स्टॉक कर दिया जायेगा, परन्तु उसे घटाकर पूर्णतया माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकेगा, अतः माँग घटने पर वस्तु का मूल्य भी घटेगा।
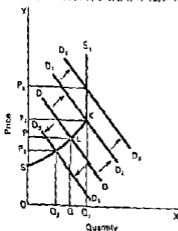
चित्र—५

यहाँ पर एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि विक्रेता एक निम्नतम मूल्य पर अर्थात् 'सुरक्षित मूल्य' के नीचे वस्तु को नहीं बेचेंगे, इसके विपरीत एक अधिकतम मूल्य मिलने पर वे अपने समस्त स्टॉक को बेच देंगे। इस निम्नतम मूल्य तथा अधिकतम मूल्य के बीच पूर्ति रेखा बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ती हुई होगी, और अधिकतम मूल्य के बिन्दु के बाद से पूर्ति रेखा खड़ी रेखा (vertical line) हो जायेगी, क्योंकि पूर्ति बाजार में स्थित कुल स्टॉक से अधिक नहीं हो सकती। ऐसी पूर्ति रेखा को चित्र संख्या ५ में SKS_1 रेखा द्वारा दिखाया गया है। चित्र में माँग रेखा DD पूर्ति रेखा SKS_1 को L बिन्दु पर काटती है, अतः सन्तुलन मूल्य LQ या PO निर्धारित होगा। इस मूल्य पर उत्पादक या विक्रेता कुल पूर्ति OQ_1 में से बाजार में OQ बेचेंगे तथा QQ_1 स्टॉक में रखेंगे। यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य OP_1 (या KQ_1) होगा और इस मूल्य पर पूरा स्टॉक OQ_1 बिक जायेगा। यदि माँग और बढ़कर D_2D_2 हो जाती है तो मूल्य बढ़कर OP_2 हो जायेगा और बेची जाने वाली मात्रा कुल स्टॉक OQ_1 के बराबर ही रहेगी क्योंकि उसे बढ़ाया नहीं जा सकता। यदि माँग घटकर D_3D_3 हो

आती है तो मूल्य घटकर OP_3 हो जायेगा और इस नीचे मूल्य पर स्टॉक OQ_1 में से केवल OQ_3 बचा जायगा तथा Q_3Q_1 स्टॉक में ही रोक लिया जायेगा। OS मूल्य या इससे नीचे मूल्य पर विक्रेता वस्तु को बिलकुल नहीं बेचेंगे। OS मूल्य निम्नतम मूल्य है अर्थात् सुरक्षित मूल्य है जिस पर या जिससे नीचे विक्रेता वस्तु को बेचने से मना कर देंगे।

सामान्य मूल्य का निर्धारण (Determination of Normal Price)

सामान्य मूल्य दीर्घकालीन मूल्य होता है। अतः यह माँग तथा पूर्ति के दीर्घकालीन साम्य (long period equilibrium) द्वारा निर्धारित होता है। दीर्घकाल में इतना समय होता है कि वर्तमान प्लाण्ट के आकार को बढ़ा-घटाकर तथा उद्योगों में नयी फर्मों के प्रवेश या उसमें से पुरानी फर्मों के बहिर्गमन द्वारा पूर्ति को बढ़ा-घटाकर पूरी प्रकार से माँग की दशाओं के अनुरूप किया जा सकता है।

चित्र संख्या ६ में DD दीर्घकालीन माँग रेखा तथा SS दीर्घकालीन पूर्ति रेखा है, ये दोनों P बिन्दु पर काटती हैं। अतः PQ 'दीर्घकालीन साम्य मूल्य' अर्थात् 'सामान्य मूल्य' हुआ और OQ माँग तथा पूर्ति की 'साम्य मात्राएँ' हुईं। बिन्दु P माँग रेखा DD पर है, इसलिए PQ सीमान्त उपयोगिता (marginal utility) को बताता है। चूँकि बिन्दु P पूर्ति रेखा SS पर भी है इसलिए PQ सीमान्त लागत (marginal cost) को भी बताता है। स्पष्ट है कि सामान्य मूल्य PQ, सीमान्त उपयोगिता तथा सीमान्त लागत दोनों के बराबर है। अतः 'सामान्य मूल्य' के लिए एक आवश्यक दशा है :

Y
D
S
P_1
L
P
M
P_3
S
D
O
Q_1
Q
Q_3
X
Price
Quantity

चित्र—६

मूल्य (Price)	=	सीमान्त लागत (Marginal Cost)	=	सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)

पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में तथा दीर्घकाल में वस्तु के मूल्य की प्रवृत्ति सामान्य मूल्य तक पहुँचने की होती है और वहाँ स्थिर (stable) रहने की होती है। यदि मूल्य P_1Q_1 है तो इसका अर्थ यह हुआ है कि यह मूल्य सीमान्त लागत MQ_1 से अधिक है। ऐसी स्थिति में विक्रेता वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उत्पादन करके अपने लाभ को बढ़ा सकेंगे। अतः वस्तु का उत्पादन OQ_1 से अधिक बढ़ जायेगा, उत्पादन (अर्थात् पूर्ति) के बढ़ने से मूल्य गिरेगा और वह गिरकर 'सामान्य मूल्य' PQ के बराबर हो जायेगा जैसा कि चित्र में बायें से दायें को तीर द्वारा दिखाया गया है। यदि मूल्य P_3Q_3 है तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह मूल्य सीमान्त लागत LQ_3 से कम है। ऐसी स्थिति में विक्रेता वस्तु के उत्पादन को कम करके अपने नुकसान को कम करेंगे। अतः वस्तु का उत्पादन OQ_3 से घटाया जायेगा, उत्पादन के घटने से मूल्य बढ़ेगा और यह बढ़कर 'सामान्य मूल्य' PQ के बराबर हो जायेगा, जैसा कि दायें से बायें को जाता हुआ तीर बताता है।

सामान्य मूल्य के लिए केवल यह ही आवश्यक नहीं है कि वह सीमान्त उपयोगिता तथा सीमान्त लागत के बराबर हो, बल्कि उसके लिए नीचे दी गयी एक दूसरी दशा भी आवश्यक है :

सामान्य मूल्य = औसत लागत (average cost) और इस दशा के परिणामस्वरूप उद्योग में प्रत्येक उत्पादक या फर्म को केवल सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त होता है।
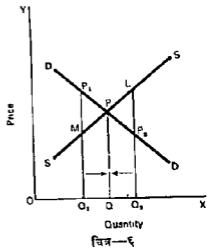
इस दूसरी दशा का कारण इस प्रकार है यदि सामान्य मूल्य औसत लागत से अधिक है, तो उत्पादकों को अधिक लाभ (excess profit) होगा। इस लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी, पूर्ति बढ़ेगी और मूल्य घटकर ठीक औसत लागत के बराबर हो जायेगा। यदि सामान्य मूल्य औसत लागत से कम है तो उत्पादकों को हानि होगी, हानि के कारण कुछ उत्पादक (या फर्में) उद्योग को छोड़ देंगी, पूर्ति कम होगी और मूल्य बढ़कर औसत लागत के बराबर हो जायेगा। इस प्रकार दीर्घकाल में मूल्य औसत लागत के बराबर होगा। औसत लागत में सामान्य लाभ[1] शामिल होता है और चूंकि दीर्घकाल में मूल्य औसत लागत के बराबर होता है तो इसका अर्थ हुआ कि उत्पादकों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में 'दीर्घकालीन मूल्य' अर्थात् 'सामान्य मूल्य' के लिए निम्न दो दशाओं का पूरा होना आवश्यक है

(i) मूल्य = सीमान्त लागत = सीमान्त उपयोगिता

(ii) मूल्य = औसत लागत

सामान्य मूल्य तथा उत्पत्ति के नियम (Normal Price and the Laws of Returns)

सामान्य मूल्य पर उत्पत्ति के नियमों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सामान्य मूल्य लागत के बराबर होता है अर्थात् लागत से प्रभावित होता है और लागत पर उत्पत्ति के नियमों का प्रभाव पड़ता है। नीचे हम तीनों उत्पत्ति के नियमों के अन्तर्गत सामान्य मूल्य के निर्धारण की विवेचना करते हैं।

सामान्य मूल्य 'उत्पत्ति ह्रास नियम' अर्थात् लागत वृद्धि नियम' के अन्तर्गत—चूंकि उत्पादन 'लागत वृद्धि नियम' के अन्तर्गत हो रहा है, इसलिए पूर्ति रेखा बायें से दायें को ऊपर की ओर चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र संख्या ७ में SS रेखा द्वारा दिखाया गया है। मांग रेखा DD पूर्ति रेखा को P बिन्दु पर काटती है, अतः PQ मूल्य निर्धारित होगा।
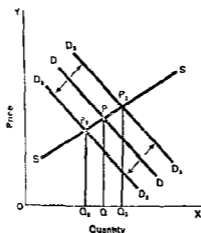
चित्र—७

[1] 'सामान्य लाभ' लाभ का वह निम्नतम स्तर है जिस पर उत्पादक उद्योग विशेष में कार्य करने को तत्पर रहते हैं। अर्थशास्त्र में 'सामान्य लाभ' लागत का अंग माना जाता है।

यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो पूर्ति बढ़ाई जायेगी जिससे लागत बढ़ेगी और परिणामस्वरूप मूल्य भी बढ़कर P_1Q_1 हो जायेगा। यदि माँग घटकर D_2D_2 हो जाती है तो पूर्ति घटायी जायेगी जिससे लागत घटेगी और परिणामस्वरूप मूल्य भी घटकर P_2Q_2 हो जायेगा।

सामान्य मूल्य उत्पत्ति वृद्धि नियम अर्थात् 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत—पूर्ति उत्पादन 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत हो रहा है इसलिए पूर्ति रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होगा जैसा कि चित्र संख्या ८ में SS रेखा द्वारा दिखाया गया है। माँग रेखा DD पूर्ति रेखा SS को P बिन्दु पर काटती है अतः मूल्य PQ निर्धारित हुआ।

चित्र—८

यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य बढ़ता नहीं बल्कि यह घटकर P_1Q_1 हो जाता है इसका कारण है लागत ह्रास नियम। माँग बढ़ने से पूर्ति बढ़ायी जायेगी, पूर्ति उत्पादन 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत हो रहा है इसलिए पूर्ति बढ़ने से लागत कम होती है और लागत कम होने से मूल्य घट जाता है। यदि माँग घटकर D_2D_2 हो जाती है तो मूल्य घटता नहीं है बल्कि बढ़कर P_2Q_2 हो जाता है। माँग घटने से पूर्ति घटायी जायगी, पूर्ति घटने से लागत बढ़ेगी (क्योंकि उत्पादन लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत हो रहा है) और लागत बढ़ने से मूल्य बढ़ जाता है।
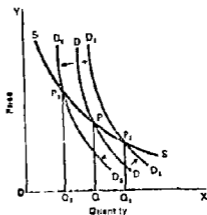
लागत ह्रास नियम (या उत्पत्ति वृद्धि नियम) के अन्तर्गत सामान्य मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में दो कठिनाइयाँ ध्यान रखने योग्य हैं:

(i) माँग रेखा तो बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है ही, परन्तु लागत ह्रास नियम के कारण पूर्ति रेखा भी बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है। ऐसी दशा में, सिद्धान्त रूप में, यह सम्भव है कि दोनों रेखाएँ दो या दो से अधिक बिन्दुओं पर काटें। अतः उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत यह सम्भव है कि एक से अधिक सन्तुलन बिन्दु हों।

(ii) ध्यान रहे कि मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में हम पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति को मानकर चले हैं। उत्पत्ति वृद्धि नियम (अर्थात् लागत ह्रास नियम) के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में एक मुख्य समस्या यह है कि क्या 'पूर्ण प्रतियोगिता' का 'बढ़ती हुई उत्पत्ति' (increasing returns) के साथ मेल खाता (compatible) है? अर्थात् क्या इन दोनों का सह-अस्तित्व (co-existence) हो सकता है? उत्पत्ति वृद्धि के अन्तर्गत फर्म अपने उत्पादन के पैमाने को लगातार बढ़ाकर बचत (economies) प्राप्त कर लागतों में बहुत कमी प्राप्त कर सकती है। लागतों में बहुत कमी होने के परिणामस्वरूप यह फर्म अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में नष्ट कर सकती है और ऐसी परिस्थिति में या तो एकाधिकार (monopoly) या अल्पाधिकार (oligopoly) की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति समाप्त हो जायेगी। अतः यह कहा जाता है कि 'बढ़ती हुई उत्पत्ति' (increasing returns) पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल नहीं खाती।

सामान्य मूल्य 'लागत स्थिरता नियम' अर्थात् 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' के अन्तर्गत—

चित्र—९

चूंकि उत्पादन 'लागत स्थिरता नियम' के अन्तर्गत हो रहा है, इसलिए पूर्ति रेखा एक पड़ी हुई रेखा होगी जैसा कि चित्र सख्या ९ मे SS_1 रेखा द्वारा दिखाया गया है। माँग रेखा DD पूर्ति रेखा SS_1 को P बिन्दु पर काटती है, अतः PQ मूल्य निर्धारित होगा।
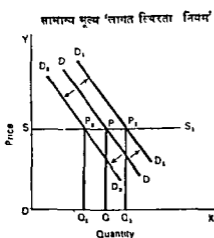
यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य बढ़ता नहीं बल्कि उतना ही ($P_1Q_1=PQ$) रहता है। माँग बढने पर पूर्ति बढ़ायी जाती है, परन्तु पूर्ति बढने पर लागत समान रहती है और चूंकि लागत समान रहती है इसलिए (माँग बढने पर भी) मूल्य समान रहता है। यदि माँग घटकर D_2D_2 हो जाती है तो मूल्य घटता नही बल्कि उतना ही ($P_2Q_2=PQ$) रहता है। माँग घटने पर पूर्ति घटायी जाती है, परन्तु पूर्ति घटने पर लागत समान रहती है और चूंकि लागत समान रहती है इसलिए (माँग घटने पर भी) मूल्य समान रहता है।

बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य मे सम्बन्ध
(RELATION BETWEEN MARKET PRICE AND NORMRL PRICE)

बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सदैव सामान्य मूल्य की ओर जाने की होती है। बाजार मूल्य सामान्य मूल्य के चारो तरफ चक्कर लगाता है, वह लम्बे समय तक सामान्य मूल्य से बहुत ऊँचा या नीचा नही रह सकता। सामान्य मूल्य लागत के बराबर होता है। आकस्मिक और अस्थायी कारणो के परिणामस्वरूप बाजार मूल्य मे, समुद्र मे लहरो की भाँति, उतार-चढाव आते रहते है, परन्तु इन उतार-चढाव के होने पर भी लहरो रूपी बाजार मूल्य बहुत समय तक ऊँचा या नीचा नही रह सकता, उसकी प्रवृत्ति सामान्य मूल्य रूपी समुद्र की जल-सतह की ओर जाने की रहती है।
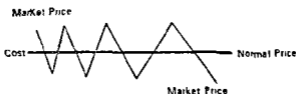
चित्र—१०

चित्र सख्या १० मे सामान्य मूल्य को एक पडी रेखा द्वारा दिखाया गया है, पडी रेखा के एक सिरे पर लागत को दिखाया है क्योंकि सामान्य मूल्य लागत के बराबर होता है। आकस्मिक तथा अस्थायी कारणों के परिणामस्वरूप यदि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य (तथा लागत) से ऊँचा है, तो इससे उत्पादको को लाभ होगा, समय पाकर लाभ से आकर्षित होकर उत्पादक अपने उत्पादन को बढायेंगे, पूर्ति बढ़ेगी, पूर्ति बढने से बाजार मूल्य गिरेगा और वह सामान्य मूल्य तथा लागत के बराबर हो जायेगा। यदि बाजार मूल्य कम है सामान्य मूल्य (तथा लागत) से तो इससे उत्पादकों को हानि होगी, हानि के कारण उत्पादक अपने उत्पादन को घटायेंगे, पूर्ति कम होगी

पूर्ति कम होने से समय पाकर बाजार मूल्य बढ़ेगा और सामान्य मूल्य तथा लागत के बराबर हो जायेगा। स्पष्ट है कि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य के चारों तरफ चक्कर लगाता रहता है और वह बहुत समय तक सामान्य मूल्य से अधिक ऊँचा या अधिक नीचा नहीं रह सकता, उसकी प्रवृत्ति सदैव सामान्य मूल्य की ओर आने की होती है।

प्रश्न

१ 'मूल्य निर्धारण' में समय के महत्त्व की व्याख्या कीजिए। अपने उत्तर को चित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

Discuss the importance of the element of time in the determination of value or price of a commodity Give diagrams to *illustrate your answer*
(Vikram, B Com., 1976, *Sagar,* 1969)

अथवा

"मूल्य निर्धारण की समस्या का मुख्यतया समय की दृष्टि से विवेचन करना चाहिए।" विवेचना कीजिए।

'The problem of pricing should be treated primarily from the point of view of time" Discuss *(Bihar,* 1965 A)

अथवा

'साधारण नियम के तौर पर, विचाराधीन काल जितना छोटा होगा, मूल्य पर पड़ने वाले माँग के प्रभाव पर हमे उतना ही अधिक ध्यान देना पड़ेगा, और यह काल जितना ही लम्बा होगा, मूल्य पर उतना ही अधिक प्रभाव उत्पादन लागत का होगा।"—मार्शल। कीमत निर्धारण म समय तत्त्व का महत्त्व दिखाते हुए उपर्युक्त कथन की विवेचना कीजिए।

As a general rule the shorter the period which we are considering the greater must be the share of our attention which is given to the influence of demand on value and the longer the period the more important will be the influence of cost of production on value" *(Marshall) Discuss the above statement showing the influence of t me element* in the determination of price *(Agra B A II,* 1976, *Sagar,* 1964)

अथवा

अल्पकाल म एक वस्तु का मूल्य अधिकतर माँग की परिस्थितियों द्वारा निश्चित होता है और दीर्घकाल मे अधिकतर पूर्ति की परिस्थितियो द्वारा।" इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा उदाहरण दीजिए।

'The price of a commodity tends largely to be governed by the conditions of demand in the short period and the conditions of supply in the long period" Discuss

[संकेत—इन सब प्रश्नो के उत्तर एक ही है। मार्शल ने अध्ययन की सुविधा के लिए समय को चार भागो म बाँटा—(i) अति अल्पकाल, (ii) अल्पकाल, (iii) दीर्घकाल, तथा (iv) अति दीर्घकाल। अति दीर्घकाल एक ऐतिहासिक काल है और मूल्य निर्धारण की दृष्टि से उसका विशेष महत्त्व नहीं है। तत्पश्चात् स्पष्ट कीजिए कि समय का यह विभाजन 'घडी के समय' (Clock-time) पर नही वल्कि 'क्रियात्मक समय' (Operational time) पर आधारित है। इसके पश्चात् अति अल्पकाल, अल्पकाल तथा दीर्घकाल म मूल्य निर्धारण पर समय के प्रभाव को रेखाचित्रो द्वारा स्पष्ट कीजिए। *अन्त मे, निष्कर्ष दीजिए कि जितना समय कम होगा* मूल्य पर माँग का प्रभाव उतना ही अधिक होगा, जितना समय अधिक होगा मूल्य पर पूर्ति का प्रभाव अधिक होगा।]

२ (अ) अति अल्पकाल, (ब) अल्पकाल, तथा (स) दीर्घकाल मे किसी वस्तु की माँग मे स्थायी वृद्धि का मूल्य पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

Indicate the effect of a permanent increase in demand for a commodity on its price in a (a) very short period, (b) short period, and (c) long period, *(Agra,* 1968, 1962)

[संकेत—मूल्य निर्धारण में 'समय के प्रभाव' की विवेचना कीजिए। दीर्घकाल में माँग में वृद्धि के कारण मूल्य पर प्रभाव की विवेचना उत्पत्ति के तीनों नियमों के अन्तर्गत भी अवश्य कीजिए, अर्थात् तीनों उत्पत्ति के नियमों के अंतर्गत सामान्य मूल्य (normal price) के निर्धारण को बताइए।]

३. बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य के भेद को स्पष्ट कीजिए। सामान्य मूल्य का निर्धारण कैसे होता है ?

Distinguish between market price and normal price. How is normal price determined? (Magadh 1968 A, Agra 1967, Indore, 1965)

४. बाजार मूल्य क्या है ? यह किस प्रकार निर्धारित होता है ? आप बाजार मूल्य को किस प्रकार सामान्य मूल्य से भेदित (distinguish) करते हैं ?

What is market price? How is it determined? How do you distinguish market price from normal price? (Bhagalpur, 1966 A)

५. एक दिन का बाजार और अल्पकालीन बाजार के भेद को स्पष्ट कीजिए। एक दिन के बाजार का मूल्य निर्धारण कैसे होता है ?

Distinguish between a market for a day and a short period market. How is price determined in a market for a day? (Sagar, 1968)

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर में 'अति अल्पकालीन बाजार' अर्थात् 'दैनिक बाजार' के अर्थ तथा 'अल्पकालीन बाजार' के अर्थ को बताइए। दूसरे भाग में एक दिन के बाजार के मूल्य निर्धारण के लिए 'अति अल्पकालीन बाजार मूल्य के निर्धारण' को चित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए।]

६. (अ) बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
(ब) सामान्य मूल्य पर उत्पत्ति के नियमों के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

(a) Distinguish between Market Price and Normal Price.
(b) Discuss the effects of the Laws of Returns on Normal Price. (Agra B. A. II, Suppl., 1976)

७. 'सामान्य मूल्य' की परिभाषा दीजिए। यह बाजार मूल्य से किस प्रकार से अन्तर रखता है ? बताइए कि सामान्य मूल्य किस प्रकार से (अ) बढ़ती हुई, (ब) घटती हुई, तथा (स) स्थिर लागतों के अन्तर्गत निर्धारित होता है ?

Define normal price. How does it differ from market price? Explain how normal price is determined under (a) increasing (b) decreasing and (c) constant costs. (Ravishankar 1965)

८. "किसी वस्तु का सामान्य मूल्य स्थायी रूप में उसके उत्पादन व्यय से अधिक या कम नहीं हो सकता है।" विवेचना कीजिए।

"The normal price of a commodity cannot be permanently either above or below its cost of production." (Bhagalpur 1966 A)

[संकेत—पहले 'सामान्य मूल्य के अर्थ' को बताइए, तत्पश्चात् सामान्य मूल्य निर्धारण को चित्र की सहायता से पूर्णरूप से समझाइए।]

९. "दीर्घकाल में एक वस्तु की कीमत उसकी उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होती है।" स्पष्ट कीजिए कि यह कथन इस सिद्धान्त से किस प्रकार मेल खाता है कि मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।

"The price of a commodity in the long run is determined by its cost of production." *Show how this statement is consistent with the theory that price is determined by the forces of demand and supply.* (Allahabad 1967)

[संकेत—किसी वस्तु का मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है, और दीर्घकाल में भी ऐसा ही होता है। परन्तु यह आवश्यक है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित

दीर्घकालीन मूल्य लागत (अर्थात् सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनों) के बराबर हो। यदि दीर्घकालीन मूल्य लागत के बराबर नहीं है, बल्कि उससे कम या अधिक है तो माँग तथा पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन होगा और माँग तथा पूर्ति का साम्य अर्थात् मूल्य वहाँ निर्धारित होगा जहाँ पर कि वह लागत के बराबर हो। उपर्युक्त विषय-सामग्री को प्राक्कथन के रूप में प्रश्न के उत्तर में पहले पैराग्राफ में लिखिए। तत्पश्चात् दूसरे पैराग्राफ में 'सामान्य मूल्य का निर्धारण' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री लिखिए।]

१० (अ) सामान्य मूल्य तथा बाजार मूल्य को परिभाषित कीजिए।
(ब) क्या आप इस विरोधाभास को समझा सकते हैं कि कभी-कभी एक वस्तु की सामान्य माँग (normal demand) में वृद्धि वस्तु की कीमत में कमी कर सकती है?

(a) Define Normal Price and Market Price
(b) Can you account for the paradox that sometimes a rise in normal damand for a commodity may lead to a fall in price? *(Punjab, 1966)*

[संकेत—दूसरे भाग में 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' अर्थात् 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत सामान्य मूल्य के निर्धारण को चित्र द्वारा स्पष्ट करते हुए बताइए कि माँग में वृद्धि से कीमत घटती है। देखिए 'सामान्य मूल्य उत्पत्ति वृद्धि नियम अर्थात् लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री चित्र न० ८ सहित।]

११. "माँग की वृद्धि से कीमतें बढ़ती हैं।"
"माँग की वृद्धि से कीमतें घटती हैं।" इन दोनों स्थितियों का स्पष्टीकरण कीजिए।

"Increase in demand increases the price"
"Increase in demand decreases the price" Clarify both these conditions *(Indore, 1966)*

[संकेत—सर्वप्रथम प्राक्कथन के रूप में लिखिए 'सामान्य मूल्य तथा उत्पत्ति के नियम' नामक शीर्षक के अन्तर्गत प्रथम पैराग्राफ। तत्पश्चात प्रथम भाग के उत्तर में 'उत्पत्ति ह्रास नियम' के अन्तर्गत सामान्य मूल्य के निर्धारण को चित्र की सहायता से स्पष्ट करते हुए बताइए कि माँग में वृद्धि से कीमत बढ़ती है, देखिए 'सामान्य मूल्य उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात् लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री, चित्र न० ७ सहित। दूसरे भाग में 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' के अन्तर्गत सामान्य मूल्य के निर्धारण को चित्र द्वारा स्पष्ट करते हुए बताइए कि माँग में वृद्धि से कीमतें घटती हैं, देखिए 'सामान्य मूल्य उत्पत्ति वृद्धि नियम अर्थात् लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री, चित्र न० ८ सहित।]

१२ सामान्य मूल्य तथा बाजार मूल्य के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। क्या यह कहना सत्य है कि सामान्य मूल्य वह मूल्य है जिसके चारों तरफ बाजार मूल्य चक्कर लगाता है?

Explain the difference between normal price and market price Is it true to say that normal price is that price round which the market price revolves? *(Agra, 1969, 1964, 1962)*

[संकेत—दूसरे भाग के उत्तर में चित्र की सहायता से व्याख्या करते हुए स्पष्ट कीजिए कि बाजार मूल्य, सामान्य मूल्य के चारों तरफ चक्कर लगाता है, और बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सदैव सामान्य मूल्य की ओर जाने की होती है, देखिए 'बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य में सम्बन्ध' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

१३. 'बाजार मूल्य सामान्य मूल्य के चारों तरफ ऊँचा-नीचा होता रहता है और वह सामान्य मूल्य की ओर जाने की प्रवृत्ति रखता है।' विवेचना कीजिए।
'Market price fluctuates round normal price and tends towards it.' Discuss.
(Bihar, 1965 A)

[संकेत—उत्तर को दो भागों में विभाजित कीजिए। प्रथम भाग में, बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य के अर्थों को बताइए तथा उनकी तुलना कीजिए। दूसरे भाग में, चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए कि बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सामान्य मूल्य की ओर रहती है और इसलिए बाजार मूल्य, सामान्य मूल्य के चारों ओर चक्कर काटता रहता है, देखिए 'बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य में सम्बन्ध' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

5 प्रतिनिधि फर्म, साम्य फर्म तथा अनुकूलतम फर्म

[REPRESENTATIVE FIRM, EQUILIBRIUM FIRM AND OPTIMUM FIRM]

प्रतिनिधि फर्म
(REPRESENTATIVE FIRM)

प्रतिनिधि फर्म की आवश्यकता तथा पृष्ठभूमि

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत वस्तु के दीर्घकालीन सामान्य मूल्य के निर्धारण से सम्बन्धित कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से मार्शल ने 'प्रतिनिधि फर्म' के विचार को प्रतिपादित किया।

मार्शल के अनुसार बढ़ते हुए प्रतिफल (increasing returns) के अन्तर्गत प्रतिस्पर्द्धात्मक दशाएँ उपस्थित रह सकती हैं, क्योंकि उद्योग के अन्दर सभी फर्मों का एकसाथ विकास सम्भव नहीं हो सकता।[1] अतः बढ़ते हुए प्रतिफल तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मार्शल ने यह माना कि उद्योग विशेष में फर्मों की एक बहुत बड़ी संख्या होगी, तथा उनमें से प्रत्येक विकास की विभिन्न स्थितियों में होंगी। इस सम्बन्ध में मार्शल ने एक वन के वृक्षों का उदाहरण दिया। एक वन में कुछ नये वृक्षों का विकास होता है, कुछ वृक्ष विकास की चरम सीमा पर पहुँच चुके होते हैं, तथा कुछ का ह्रास होता है। इसी प्रकार उद्योग विशेष में विभिन्न फर्मों का एक निश्चित जीवनचक्र (life-cycle) होता है। कुछ फर्में नयी होती हैं जो अपने जीवन के लिए संघर्ष करती हुई बढ़ती हैं, कुछ फर्में विकास की चरम सीमा पर पहुँचकर ह्रास की अवस्था में होती हैं।[2]

यदि फर्मों की एक बड़ी संख्या विद्यमान है और प्रत्येक के विकास की स्थिति भिन्न है तो एक कठिनाई यह उपस्थित होती है कि कौन-सी फर्म की लागत के द्वारा मूल्य निर्धारित होगा? क्या सबसे अधिक कुशल फर्म (अर्थात् जिसकी लागत न्यूनतम है) की औसत लागत द्वारा मूल्य

---

[1] वास्तव में 'बढ़ता हुआ प्रतिफल' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' मानने में मेल नहीं खाते, बढ़ते हुए प्रतिफल के क्रियाशील रहने से पूर्ण प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि बढ़ते हुए प्रतिफल के क्रियाशील होने पर किसी एक फर्म को, अपने विस्तार के साथ, बचतें प्राप्त होती हैं तथा उसकी उत्पादन लागत कम होती जाती है। यह विकासमान फर्म लागत में ह्रास के परिणामस्वरूप, अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में नहीं टिकने देती, धीरे-धीरे फर्मों की संख्या कम होती जाती है और अल्पाधिकार (Oligopoly) या एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार 'बढ़ता हुआ प्रतिफल' तथा 'प्रतिस्पर्द्धात्मक दशाएँ' साथ-साथ उपस्थित नहीं रह सकतीं परन्तु मार्शल ने यह माना कि इन दोनों का सहअस्तित्व हो सकता है।

[2] Marshall : Principles of Economics, p. 253

निर्धारित होगा या सबसे कम कुशल फर्म (अर्थात् जिसकी लागत अधिकतम है) की औसत लागत द्वारा ? सबसे कुशल फर्म की औसत लागत द्वारा मूल्य निर्धारित नहीं हो सकता क्योंकि इस फर्म की लागत न्यूनतम होगी जबकि अन्य कम कुशल फर्मों की लागत अधिक होगी और अन्य सभी फर्मों को हानि होगी जबकि दीर्घकाल में फर्मों को हानि या लाभ नहीं हो सकता है, उन्हें केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। इसी प्रकार मूल्य सबसे कम कुशल फर्म की औसत लागत के बराबर नहीं हो सकता क्योंकि इस फर्म की लागत सबसे अधिक होगी और अन्य अधिक कुशल फर्मों की लागत इससे कम होगी जिससे उन्हें लाभ होगा। परन्तु दीर्घकाल में फर्मों को लाभ नहीं हो सकता, वे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर सकती हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि दीर्घकाल में कौन-सी फर्म की लागत के बराबर मूल्य निर्धारित होगा ? इस कठिनाई को हल करने के लिए मार्शल ने बताया कि दीर्घकाल में मूल्य उस फर्म की लागत के द्वारा निर्धारित होगा जो कि सामान्यतया उद्योग में प्रचलित परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है और ऐसी फर्म को मार्शल ने 'प्रतिनिधि फर्म' कहा।

प्रतिनिधि फर्म की परिभाषा तथा उसके अभिप्राय

मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म की परिभाषा इस प्रकार दी है. "प्रतिनिधि फर्म एक ऐसी फर्म है जिसका काफी लम्बा जीवन रहा हो, जिसे पर्याप्त सफलता मिल चुकी है, जिसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता द्वारा किया जाता है तथा जिसे उत्पादन की कुल मात्रा के परिणामस्वरूप सामूहिक उत्पत्ति की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं, जबकि उत्पादित वस्तुओं की किस्म या श्रेणी, उनके विक्रय की दशाओं तथा आर्थिक वातावरण को ध्यान में रखा जाता है।"[3]

क्या प्रतिनिधि फर्म एक 'औसत फर्म' (average firm) होती है ? यह वर्तमान फर्मों की औसत फर्म नहीं होती। यह दीर्घकालीन औसत फर्म है जबकि वर्तमान प्रवृत्तियों का प्रभाव पूर्णतया कार्य कर चुका हो।[4] यह एक ऐसी विशेष प्रकार की दीर्घकालीन औसत फर्म है जिसको देखकर यह जाना जा सकता है कि कहाँ तक उद्योग विशेष को आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। मार्शल के शब्दों में, "यह एक ऐसी विशेष प्रकार की औसत फर्म है जिसको हमें यह मालूम करने के लिए देखना पड़ता है कि कहाँ तक बड़े पैमाने की आन्तरिक तथा बाह्य बचतें सामान्यतया उद्योग तथा देश में प्राप्त हो चुकी हैं।"[5] दूसरे शब्दों में, प्रतिनिधि फर्म दीर्घकाल में सम्पूर्ण उद्योग की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है।

एक या एक से अधिक फर्म प्रतिनिधि फर्म हो सकती है। मार्शल के अनुसार, इस प्रकार की फर्म वास्तविक जीवन में मौजूद हो सकती है। मार्शल के शब्दों में, "इस फर्म को आकस्मिक रूप से किसी एक फर्म या दो फर्मों को देखने से ज्ञात नहीं किया जा सकता, परन्तु एक विस्तृत निरीक्षण के पश्चात् स्पष्ट रूप से हम व्यक्तिगत या संयुक्त-पूँजी प्रबन्ध के अन्तर्गत, एक (या एक से अधिक) ऐसी फर्म का चुनाव कर सकते हैं जो कि हमारे सर्वोत्तम अनुमान के अनुसार इस विशेष प्रकार की औसत फर्म को बतायेगी।"[6]

---

[3] "... representative firm must be one which has had a fairly long life, and fair success, which is managed with normal ability, and which has normal access to the economies, external and internal, which belong to that aggregate volume of production account being taken of the class of goods produced, the condition of marketing them and the economic environment generally."
—Marshall, *Principles of Economics*, p 265.

[4] "It is a long period average firm under conditions when the present tendencies have worked out their effects in full."
—Marshall, *Principles of Economics*, p 262.

[5] "And a representative firm is that particular sort of average firm at which we need to look in order to see how far the economies *internal and external* of production on a large scale have extended generally in the industry and country *in question*."
—Marshall *Principles of Economics*, p 265

[6] "We cannot see this by looking at one or two firms taken at random, but we can see it fairly well by selecting, after a broad survey, a firm whether in private or joint stock management (or better still, more than one) that represents to the best of our judgment, this particular average."
—Marshall, *Principles of Economics*, p 265.

स्थैतिक दशा (Static or Stationary conditions) के अन्तर्गत उद्योग में प्रतिनिधि फर्म एक ही आकार की रहती है, न उसका विस्तार होता है और न संकुचन। मार्शल के शब्दों में, 'निस्सन्देह हम यह मान सकते हैं कि स्थिर स्थिति में व्यवसाय की प्रत्येक इकाई का आकार समान रहता है तथा उसके व्यापारिक सम्बन्ध समान रहते हैं। परन्तु हमें इस सीमा तक जाने की आवश्यकता नहीं है। यह मान लेना पर्याप्त होगा कि फर्मों का आकार बढ़ता है तथा कम होता है परन्तु प्रतिनिधि फर्म का आकार उसी भाँति सदैव लगभग समान रहता है जिस प्रकार कि एक तरुण वन के प्रतिनिधि वृक्ष का आकार समान रहता है।'[8]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक प्रतिनिधि फर्म की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

(i) यह दीर्घकालीन औसत फर्म होती है, परन्तु यह वर्तमान फर्मों की औसत फर्म नहीं होती। यह एक ऐसी औसत फर्म है जिसका अध्ययन करके हम यह जान सकते हैं कि उद्योग में बड़ी मात्रा की उत्पादन की आन्तरिक तथा बाह्य बचतें वहाँ तक उपलब्ध हो चुकी हैं।

(ii) यह न बहुत पुरानी होती है और न बहुत नयी।

(iii) इसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता वाले व्यक्ति द्वारा होता है।

(iv) स्थैतिक स्थिति में इसका न विस्तार होता है और न संकुचन।

(v) इसको न लाभ होता है और न हानि बल्कि सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

(vi) ऐसी फर्म एक या एक से अधिक हो सकती है।

प्रतिनिधि फर्म की आलोचना (Criticism of Representative Firm)

पीगू, श्राफा (Sraffa), श्रीमती रोबिन्सन, इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने प्रतिनिधि फर्म की कड़ी आलोचनाएँ की हैं, जिनमें मुख्य निम्न हैं :

(१) यह विचार अस्पष्ट (vague) है—रोबिन्स पूछते हैं—क्या यह फर्म एक 'प्रतिनिधि प्लाण्ट' (representative plant) है, या एक 'प्रतिनिधि तान्त्रिक उत्पादन इकाई' (representative technical production unit) या एक 'प्रतिनिधि व्यावसायिक संगठन' (representative business organisation) है ? प्रतिनिधि फर्म से कौनसा अर्थ लिया जाय, यह बात मार्शल ने पूर्णतया स्पष्ट नहीं की।

परन्तु रोबिन्स का कहना है कि कुल मिलाकर मार्शल के विवरण से ऐसा लगता है कि प्रतिनिधि फर्म से उनका अर्थ 'प्रतिनिधि व्यावसायिक संगठन या इकाई' से था। इस प्रकार प्रतिनिधि फर्म उद्योग विशेष की फर्मों के सभी पहलुओं का प्रतिनिधित्व करती है। इस स्थिति को मान लेने पर इस प्रथम आलोचना की कड़ाई (rigour) कम हो जाती है।

(२) यह विचार अवास्तविक (Unreal) है—यह फर्म अवास्तविक है क्योंकि व्यावहारिक जीवन में यह नहीं देखी जा सकती। रोबर्टसन का कथन है कि व्यापार डायरेक्टरी में किसी भी फर्म को प्रतिनिधि फर्म नहीं कहा जा सकता।[9] प्रतिनिधि फर्म के अवास्तविक होने के सम्बन्ध में काल्डोर का कथन है कि 'प्रतिनिधि फर्म मस्तिष्क का एक यन्त्र है, न कि वास्तविकता का विश्लेषण।'[10]

---

[7] यद्यपि स्थैतिक या स्थिर दशा में सभी प्रकार के परिवर्तन की अनुपस्थिति मानी जाती है अर्थात् व्यवसाय की सभी इकाइयों के आकार को स्थिर मानना चाहिए परन्तु मार्शल का कथन है कि ऐसा मान लेना आवश्यक नहीं है उनके अनुसार स्थैतिक दशा में कुछ फर्मों का संकुचन तथा विस्तार हो सकता है परन्तु प्रतिनिधि फर्म लगभग एक आकार की ही रहती है।

[8] 'Of course we must assume that in our stationary state every business remained always of the same size and with the same trade connections But we need not go so far as that, it will suffice to suppose that firms rise and fall but that the representative firm remains always of about the same size, as does the representative tree of virgin forest
—Marshall *Principles of Economics* p 305

[9] 'No firm in the business directory can be said to represent the representative firm
—Robertson

[10] 'Representative firm is a tool of mind rather than an analysis of concrete
—Kaldor

इस फर्म के अवास्तविक होने के सम्बन्ध मे एक बात और कही जाती है। स्थैतिक स्थिति मे प्रतिनिधि फर्म का न विकास होता है और न सकुचन। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि एक विशेष फर्म ही प्रतिनिधि बनी रहेगी जबकि ऐसा मानना अवास्तविक है।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियो ने उपर्युक्त आलोचना के विरुद्ध निम्न तर्क दिये हैं रोबर्टसन का कहना है कि यह आवश्यक नही है कि एक ही फर्म प्रतिनिधि फर्म बनी रहे। वे बताते हैं कि इस सम्बन्ध मे मार्शल द्वारा दिया गया वन तथा वृक्षो का उदाहरण महत्वपूर्ण है, एक ही वृक्ष वन का *सदैव प्रतिनिधित्व नही कर सकता।* इसी बात को रोबर्टसन दूसरे शब्दो मे व्यक्त करते हैं· "प्रतिनिधि फर्म किसी 'एक विशेष फर्म' को नही बताती बल्कि 'एक स्थिति' को बताती है जो कि विभिन्न समयो पर एक या एक से अधिक फर्मों द्वारा प्राप्त की जा सकती है। यह एक लहर के शीर्ष या चोटी (crest) पर *पानी की बूंदो की भाँति होती है। विभिन्न समयो पर पानी की* विभिन्न बूद चोटी की स्थिति को प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार जो फर्म आज प्रतिनिधि हो सकती है वह कल ऐसी नही रहती, कोई अन्य फर्म उसका स्थान ले लेती है।"[11]

(३) यह विचार अनावश्यक (Superfluous or unnecessary) है—रोबिन्स ने प्रतिनिधि फर्म के विचार को अनावश्यक बताया है। रोबिन्स के अनुसार, "प्रतिनिधि फर्म या प्रतिनिधि उत्पादक की मान्यता उसी प्रकार आवश्यक नही है जिस प्रकार कि भूमि के एक प्रतिनिधि टुकड़े, एक प्रतिनिधि मशीन या एक प्रतिनिधि श्रमिक को मानना आवश्यक नही है।"[12]

(४) 'स्पर्द्धात्मक दशाएँ' तथा 'बढ़ता हुआ प्रतिफल' असगत हैं (Competitive conditions and 'increasing returns' are incompatible)—प्रतिनिधि फर्म निम्न तीन मान्यताओ पर आधारित है (i) पूर्ण प्रतियोगिता की उपस्थिति, (ii) अनेक फर्मों की उपस्थिति, तथा (iii) बढ़ते हुए प्रतिफल का होना। परन्तु ये मान्यताएँ गलत है।

'स्पर्द्धात्मक दशाओ' तथा 'बढ़ते हुए प्रतिफल की प्रवृत्ति' का दीर्घकाल मे सहअस्तित्व नही हो सकता है। बढ़ते हुए प्रतिफल के क्रियाशील रहने से दीर्घकाल मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति समाप्त हो जाती है। बढ़ते हुए प्रतिफल के लागू होने से किसी फर्म को अपने विस्तार के साथ बचतें *प्राप्त होगी तथा उसकी उत्पादन लागत कम होती जायेगी। अत यह फर्म अन्य फर्मों को* प्रतियोगिता मे नही टिकने देगी, धीरे-धीरे फर्मों की सख्या कम होती जायेगी तथा अल्पाधिकार (oligopoly) या एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। ऐसी स्थिति म मूल्य अपूर्ण *प्रतियोगिता या एकाधिकार के अन्तर्गत निर्धारित होगा।* स्पष्ट है कि स्पर्द्धात्मक दशाएँ तथा बढता हुआ प्रतिफल दीर्घकाल म साथ साथ उपस्थित नही रह सकते; मार्शल की यह मान्यता गलत थी कि इन दोनो का सहअस्तित्व हो सकता है। स्पष्ट है कि यह आलोचना मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की जडो को काटती है।

निष्कर्ष—वास्तव मे, मूल्य सिद्धान्त मे प्रतिनिधि फर्म का कोई महत्त्व नही रह जाता है। दीर्घकाल मे बढ़ते हुए प्रतिफल तथा स्पर्द्धात्मक दशाओ का सहअस्तित्व नही हो सकता। यदि दीर्घकाल मे स्पर्द्धात्मक दशाएँ उपस्थित रहती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि 'बढ़ते हुए प्रतिफल की प्रवृत्ति' ने अपने आपको पूर्णतया समाप्त कर लिया होगा, और तब प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार की होगी जो कि निम्नतम लागत पर वस्तु का उत्पादन करेगी तथा मूल्य इस लागत के बराबर निर्धारित होगा।

---

[11] "The representative firm refers not to any particular firm but a position which may be occupied by one or more firms at different moments It is like water drops on the crest of a wave different drops of water occupy the 'crest' position at different moments Similarly, the firm that is representative today may cease to be so tomorrow, some other firm taking its place" —*Robertson*

[12] "There is no more need for us to assume a representative firm, or a *representative producer* than there is for us to assume representative price or land, a representative machine or a representative worker." —*Robbins*

साम्य या सन्तुलन फर्म[1]
(EQUILIBRIUM FIRM)

मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की आलोचना करते हुए पीगू ने उससे मिलता-जुलता अपना एक पृथक विचार प्रस्तुत किया। पीगू के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता तथा बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति में दीर्घकाल में मूल्य प्रतिनिधि फर्म की लागत द्वारा नहीं बल्कि 'साम्य फर्म' की लागत के द्वारा निर्धारित होता है। पीगू अपने साम्य फर्म के विचार को मार्शल की प्रतिनिधि फर्म के ऊपर सुधार समझते थे, जबकि वास्तव में ऐसा कहना कठिन है।

साम्य फर्म की परिभाषा तथा अर्थ

एक उद्योग साम्य या सन्तुलन की स्थिति में तब कहा जायेगा जबकि उसका कुल उत्पादन अपरिवर्तित रहता है, अर्थात् एक दिये हुए समय में वह एक निश्चित मात्रा का ही नियमित रूप में उत्पादन करता है।

पीगू के अनुसार, एक उद्योग साम्य की अवस्था में हो सकता है तो यह आवश्यक नहीं है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में भी साम्य की अवस्था में हो, कुछ फर्मों का विकास हो सकता है तथा कुछ का सकुचन, परन्तु विस्तार (अर्थात् उत्पादन में कुल वृद्धि) ठीक सकुचन (अर्थात् उत्पादन में कुल कमी) के बराबर हो सकता है, और इस प्रकार उद्योग का कुल उत्पादन समान रह सकता है। परन्तु उद्योग के साम्य की स्थिति में रहने पर एक फर्म ऐसी हो सकती है जो स्वय भी साम्य की स्थिति में हो अर्थात् जिसका न विकास हो रहा हो और न सकुचन, ऐसी फर्म को पीगू ने 'साम्य फर्म' कहा।

पीगू के शब्दों में साम्य फर्म की परिभाषा इस प्रकार है : "साम्य फर्म का अभिप्राय है कि जब समस्त उद्योग इस अर्थ में साम्य की स्थिति में हो कि वह नियमित रूप से y मात्रा का उत्पादन एक सामान्य पूर्ति मूल्य p के प्रत्युत्तर (response) में कर रहा हो, तो इस स्थिति में कोई एक ऐसी फर्म विद्यमान हो सकती है जो स्वय भी व्यक्तिगत रूप में एक नियमित मात्रा x के उत्पादन के साथ साम्य में हो।"

साम्य फर्म के अर्थ को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। माना सीमेण्ट उद्योग में ६ फर्में—E, F, G, H, I तथा J हैं। निम्न तालिका में इन फर्मों का १९४५ तथा १९४६ का सीमेण्ट उत्पादन दिखाया है :

फर्मों का नाम	सीमेण्ट उद्योग १९४५ का उत्पादन	१९४६ का उत्पादन (टनों में)
E	१००	२९०
F	२००	२५०
G	६००	७००
H	४००	४०० साम्य फर्म
I	२५०	१००
J	५५०	३६०
कुल उत्पादन	२,१००	२,१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सीमेण्ट उद्योग साम्य की स्थिति में है क्योंकि १९४५ तथा १९४६ दोनों वर्षों में कुल उत्पादन समान अर्थात् २,१०० टन के बराबर रहता है। E, F तथा G फर्मों का विकास हो रहा है और I तथा J फर्मों का सकुचन, परन्तु 'H' फर्म ऐसी है जिसका न विकास हो रहा है और न सकुचन (इसका उत्पादन ४०० टन के बराबर रहता है),

[1] "The equilibrium firm implies that there can exist some one firm, which, whenever the industry as a whole is in equilibrium, in the sense that it is producing a regular output y in response to a normal supply price p, will itself also individually be in equilibrium with a regular output Xr"

अत फर्म 'H' 'साम्य फर्म' है। E, F तथा G फर्मों के उत्पादन में वृद्धि I और J फर्मों के उत्पादन मे कमी के ठीक बराबर है परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पादन समान रहता है, अर्थात् उद्योग साम्य की स्थिति म रहता है।

पीगू के अनुसार मूल्य इस साम्य फर्म की (i) सीमान्त लागत (marginal cost) तथा (ii) औसत लागत (average cost) के बराबर होगा। (i) यदि मूल्य साम्य फर्म की सीमान्त लागत से कम होता है तो फर्म को नुकसान होगा और यह उद्योग म से निकल जायगी। यदि मूल्य साम्य फर्म की सीमान्त लागत से अधिक है तो इस फर्म को लाभ होगा, यह फर्म उत्पादन बढ़ायेगी और यह फर्म साम्य फर्म नही रह जायगी। (ii) दूसरे यदि मूल्य साम्य फर्म की 'औसत लागत' से कम है, तो हानि होगी और फर्म अपना सकुचन करेगी जिससे उद्योग के सन्तुलन म गड़बड़ हो जायगी। यदि मूल्य साम्य फर्म की औसत लागत से अधिक है तो लाभ होगा जिससे उद्योग म नयी फर्मों का प्रवेश होगा और इसलिए साम्य फर्म अपनी स्थिति स हट जायगी और दूसरी फर्म साम्य फर्म हो जायगी। अत मूल्य साम्य फर्म की सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनो के बराबर होगा।

साम्य फर्म की आलोचना (Criticism of the Equilibrium Firm)

साम्य फर्म की लगभग वे ही आलोचनाएँ हैं जो कि प्रतिनिधि फर्म की हैं। यद्यपि पीगू का कथन है कि साम्य फर्म प्रतिनिधि फर्म के ऊपर सुधार है, परन्तु वास्तव म ऐसा नहीं है। साम्य फर्म की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं

(१) साम्य फर्म का विचार अवास्तविक है तथा यह व्यवहार मे नहीं पायी जाती। उद्योग के साम्य की अवस्था म पीगू यह मानते हैं कि (साम्य फर्म को छोड़कर) कुछ फर्मों का विकास हो सकता है तथा कुछ का सकुचन, परन्तु उत्पादन म वृद्धि तथा सकुचन बराबर रहते हैं ताकि उद्योग का कुल उत्पादन समान रहता है, अर्थात् उद्योग साम्य की स्थिति म रहता है। परन्तु यह मान्यता अवास्तविक है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि उत्पादन मे जितना विस्तार हो ठीक उसके बराबर ही सकुचन भी हो।

(२) साम्य फर्म भी, प्रतिनिधि फर्म की भाँति, अनावश्यक बनाया जाती है।

(३) स्पर्द्धात्मक दशाएँ तथा बढ़ता हुआ प्रतिफल असगत (incompatible) है। साम्य फर्म का विचार भी, प्रतिनिधि फर्म की भाँति निम्न मान्यताओ पर आधारित है (i) पूर्ण प्रतियोगिता की उपस्थिति, (ii) अनेक फर्मों की उपस्थिति, तथा (iii) बढ़ते हुए प्रतिफल का होना। परन्तु य मान्यताएँ गलत हैं। स्पर्द्धात्मक दशाएँ तथा बढ़ते हुए प्रतिफल का दीर्घकाल मे सहअस्तित्व नहीं हो सकता है।

अनुकूलतम फर्म
(OPTIMUM FIRM)

आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने 'अनुकूलतम फर्म' के विचार को प्रस्तुत किया है। केवल 'अनुकूलतम' शब्द का अर्थ है "किसी वस्तु की सर्वोत्तम मात्रा या दशा, या वे दशाएँ जो कि सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करती हैं।"[11] यदि शब्द अनुकूलतम को जनसख्या के साथ जोड दिया जाता है तो इसका अर्थ है वह जनसख्या जो कि देश के प्राकृतिक साधनो तथा विकास की स्थिति को देखते हुए सर्वोत्तम हो। इसी प्रकार यदि 'अनुकूलतम' शब्द को फर्म के साथ जोड दिया जाये, तो 'अनुकूलतम फर्म' का अर्थ ऐसी व्यावसायिक इकाई से लिया जाता है जो कि किसी दिये हुए समय मे उद्योग विशेष की दशाओ के अनुसार सर्वोत्तम हो। दूसरे शब्दो म, अनुकूलतम फर्म उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को अनुकूलतम अनुपात म मिलाकर न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन करती है।

अनुकूलतम फर्म की परिभाषा तथा उसके अभिप्राय

प्रो० बाई (Bye) के शब्दो म अनुकूलतम फर्म "व्यावसायिक उपक्रम का वह सगठन है जो,

[11] The word optimum standing alone means 'the most favourable degree or condition of anything, the conditions that produce the best result.'

टेक्नोलोजी तथा वस्तु के बाजार की दी हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत, दीर्घकाल में न्यूनतम औसत लागत पर अपनी वस्तु को उत्पादित कर सके।"[15]

दूसरे शब्दों में, किसी उपक्रम के उस पैमाने को जिस पर उत्पत्ति के साधनों का अनुकूलतम अनुपात में मिलाने के परिणामस्वरूप औसत लागत न्यूनतम होती है, 'अनुकूलतम पैमाना' (optimum scale) कहते हैं तथा इस पैमाने पर कार्य करने वाली फर्म को 'अनुकूलतम फर्म' कहा है। संक्षेप में, निम्नतम न्यूनतम लागत संयोग' (lowest least cost combination) वाली फर्म को 'अनुकूलतम फर्म' कहा जाता है।

अनुकूलतम फर्म' को चित्र न० १ द्वारा दिखाया गया है।

चित्र—१

उपक्रम के विभिन्न पैमानों से सम्बन्धित विभिन्न 'न्यूनतम लागत-संयोग' होंगे। चित्र संख्या १ में उपक्रम के विभिन्न पैमानों से सम्बन्धित न्यूनतम-लागत-संयोग को औसत लागत रेखाओं (Average Cost Curves or AC-curves) के न्यूनतम बिन्दुओं को E, L तथा F द्वारा दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि उपक्रम का वह पैमाना जो कि AC_2 रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है, 'अनुकूलतम पैमाना' है और इस पैमाने पर कार्य करने वाली फर्म 'अनुकूलतम फर्म' है क्योंकि इसकी औसत लागत LM सबसे कम है, उत्पादन की 'अनुकूलतम मात्रा' OM है।
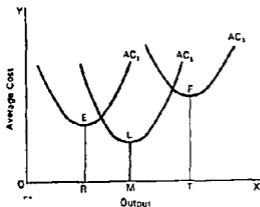
अनुकूलतम फर्म के अभिप्राय (implications) निम्न विवरण से स्पष्ट हैं :

(१) **स्पर्द्धात्मक दशा में अनुकूलतम फर्म न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन करती है।** दूसरे शब्दों में, अनुकूलतम फर्म वह फर्म है जिसे उत्पत्ति के पैमाने की बचतें पूर्णतया प्राप्त हो चुकी है (ताकि औसत लागत न्यूनतम हो जाती है) तथा पैमाने की अबचतों का प्रारम्भ नहीं हुआ है। (चित्र १ में AC_2 रेखा पर L बिन्दु इस स्थिति को बताता है।)

(२) **अनुकूलतम फर्म एक 'आर्थिक आदर्श'** (economic norm) **या उपक्रम का एक 'आदर्श पैमाना'** (ideal scale) **है जिसके सन्दर्भ में अन्य फर्मों को आँका जा सकता है।** स्पर्द्धात्मक दशाओं में प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। परन्तु कई कारणों से (जिनका वर्णन आगे किया गया है) सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त नहीं कर पाती है, उद्योग विशेष में कुछ फर्में अनुकूलतम आकार से छोटी होती हैं तथा कुछ बड़ी। यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने का प्रयत्न क्यों करती हैं ? स्पर्द्धात्मक उद्योग में उन फर्मों को, जो कि अनुकूलतम आकार से छोटी या बड़ी है, शीघ्र या देर से उद्योग से निकल जाने का भय बना रहेगा क्योंकि इन फर्मों में उत्पादन की औसत लागत अपेक्षाकृत अधिक होगी तथा उत्पादन कुशलता कम, इसके विपरीत, वे फर्में जो कि अनुकूलतम आकार के निकट होंगी, व्यवसाय या उद्योग में टिक सकेंगी। अतः दीर्घकाल में तथा उत्पादन-कला की दी हुई स्थिति के अन्तर्गत स्पर्द्धात्मक उद्योग में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की ओर जाने की प्रवृत्ति रखती है, यद्यपि किसी समय विशेष पर यह प्रवृत्ति पूर्णरूप से सफलता प्राप्त

[15] Optimum firm may be defined as "that organisation of business enterprise which in given circumstances of technology and the market for its product, can produce its goods at the lowest average unit cost in the long run" —*Prof. Eye*

नही कर पाती। अस्पर्द्धात्मक उद्योगो (non-competitive industries) मे, फर्मों को अनुकूलतम आकार की ओर ले जाने वाली शक्तियाँ स्पर्द्धात्मक उद्योगो की अपेक्षा, बहुत कम बलवान होती हैं।

(३) अनुकूलतम फर्म तथा पूर्ण प्रतियोगिता असगत (incompatible) नहीं हैं, उनका सहअस्तित्व होता है, तथा स्पर्द्धात्मक दशा में अनेक अनुकूलतम फर्में हो सकती हैं। उपक्रम के पैमाने को बढाय जाने से एक स्थिति ऐसी आती है जहाँ पर पैमाने की बचतें पूर्णतया प्राप्त हो जाती हैं और औसत लागत निम्नतम हो जाती है। इसके बाद यदि पैमाने को बढाया जाता है तो अबचतें प्राप्त होने लगती हैं और फर्म अनुकूलतम आकार की नही रह जाती। यदि पैमाने की प्रत्येक वृद्धि के साथ लागत घटती जाती तो फर्म विशेष अन्य फर्मों को प्रतियोगिता मे न टिकने देती तथा एकाधिकार की स्थिति प्राप्त कर लेती और इस प्रकार अनुकूलतम फर्म तथा प्रतियोगिता असगत हो जाते। चूँकि विकास के बाद के चरण (phase) मे अबचतें प्राप्त होने लगती हैं इसलिए अनेक फर्में अनुकूलतम आकार की होती हैं तथा अनुकूलतम फर्म और प्रतियोगिता सगत (compatible) होते हैं।

(४) आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार अनुकूलतम फर्म का 'जैविकीय दृष्टिकोण' (biological view) लेना चाहिए, न कि 'यान्त्रिक दृष्टिकोण' (mechanical view)। औद्योगिक वातावरण तथा बाजार की दशाओं से पृथक करके अनुकूलतम फर्म पर 'यान्त्रिक दृष्टिकोण' से विचार नही किया जा सकता क्योंकि फर्म अन्य फर्मों के ससर्ग (association) मे तथा अन्य फर्मों के साथ प्रतियोगिता मे होती हैं। जिस प्रकार से जीव (organisms) का विकास वशगत गुणों (hereditary endowment) पर वातावरण के कार्यकरण द्वारा प्रभावित होता है, उसी प्रकार फर्मों का विकास प्रबन्धकीय योग्यता, वित्तीय शक्ति, इत्यादि पर अवसरो के कार्यकरण द्वारा प्रभावित होता है। समन्वय तथा प्रगुणन (grafting and proliferation) द्वारा फर्मों का विकास होता है, न कि एकरूप इकाइयो के साथ उसी प्रकार की इकाइयों को यान्त्रिक ढग से जोड देने से।[16]

अत अनुकूलतम फर्म को पृथक न की जा सकने वाली बाजार की दशाओ की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ मे, जैविकीय दृष्टिकोण से, देखना चाहिए। उसकी लागतें केवल इस बात पर निर्भर नही करती कि वे किस प्रकार कार्य करती हैं (अर्थात् इस बात पर निर्भर नही करतीं कि फर्म के अन्दर क्या हो रहा है), बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसे क्या करना है, और यह निर्भर करता है औद्योगिक वातावरण पर। अनुकूलतम फर्म का आकार उद्योग के विशिष्ट सगठन पर, जिसमे कि उसे कार्य करना है, निर्भर करता है। यदि वातावरण परिवर्तित होता है तो अनुकूलतम भी परिवर्तित होता है, तथा स्वय फर्म का विकास वातावरण को बदलने के लिए पर्याप्त हो सकता है।[17]

अनुकूलतम फर्म, प्रतिनिधि फर्म तथा साम्य फर्म

अनुकूलतम फर्म मार्शल की प्रतिनिधि फर्म से भिन्न है : (1) मार्शल की प्रतिनिधि फर्म एक दीर्घकालीन औसत फर्म है जबकि अनुकूलतम फर्म न्यूनतम-लागत फर्म है जिसे स्पर्द्धात्मक दशाओ

---

[16] "But we cannot take a consistently mechanical view of the firm (*i e optimum firm*), abstracting from industrial environment and juggling with *different sizes of firm until* we find the optimum Firms exist in association and in competition with other *firms* They are linked organically with one another Their growth is conditioned by the play of opportunity on a given endowment of managerial ability financial *strength and so on*, just as the growth of organisms is conditioned by the play of environment on a given hereditary endowment. Firms grow by grafting and proliferation *rather than as homo*geneous units with which new units of the same kind are geared mechanically "

[17] "The optimum firm, therefore, must be looked at *biologically against a background of* market conditions from which we cannot abstract Its costs depend not simply on how it does things (that is, on what is happening inside the firm) but also *on what it has to* do, and what it has to do depends upon the industrial environment, the size of the optimum firm depends upon particular organisation of industry into which *it has to fit* If the environment changes, the optimum changes and the growth of the firm of itself may be sufficient to alter the environment."

में, दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म प्राप्त करने का प्रयास करती है। (ii) उद्योग के साम्य की अवस्था न होने पर केवल प्रतिनिधि फर्म ही साम्य अवस्था में होती है तथा अन्य फर्में साम्य में नहीं होतीं। इसके विपरीत अनुकूलतम फर्म का विचार बताता है कि उद्योग विशेष के साम्य की अवस्था में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की ही होंगी।

अनुकूलतम फर्म तीन बातों में साम्य फर्म से भिन्न है—(i) साम्य फर्म काल्पनिक है जो कि व्यवहार में नहीं पायी जाती यह केवल एक विश्लेषणात्मक यन्त्र (analytical tool) है। इसके विपरीत अनुकूलतम फर्म एक वास्तविक फर्म है, यह केवल विश्लेषणात्मक यन्त्र नहीं है यह अनुकूलतम आकार को बताती है जिसको वर्तमान दशाओं के अन्तर्गत, दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म प्राप्त करने का प्रयास करती है। (ii) उद्योग विशेष में केवल एक ही साम्य फर्म होती है, जबकि अनुकूलतम फर्में अनेक होती हैं तथा प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार की ओर जाने की प्रवृत्ति रखती है।

अनुकूलतम आकार कितना बड़ा होता है ? (अथवा अनुकूलतम आकार को प्रभावित करने वाले तत्त्व)

अनुकूलतम फर्म का आकार कितना बड़ा होगा यह उद्योग विशेष की दशाओं पर निर्भर करेगा। उद्योग की दी हुई दशाओं तथा दिए हुए वातावरण में कोई एक अनुकूलतम आकार होगा, परन्तु दशाओं और वातावरण के परिवर्तन के साथ अनुकूलतम आकार भी परिवर्तित हो जायेगा। इसके अतिरिक्त विभिन्न उद्योगों की परिस्थितियों के अनुसार उनमें अनुकूलतम फर्म का आकार भिन्न होगा। अनुकूलतम आकार निम्न बातों पर निर्भर करता है

(१) टेक्नोलॉजी (Technology)—उन सब उद्योगों में अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होगा जिनमें विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन की अधिक सम्भावना होती है जिनमें बड़ी तथा महँगी मशीनों का प्रयोग (जैसे, लोहा तथा इस्पात उद्योग में) होता है अवशिष्ट पदार्थ (bye product) का प्रयोग किया जाता है इत्यादि। इसके विपरीत दशाओं में अनुकूलतम फर्म का आकार छोटा होगा।

(२) प्रबन्ध (Management)—जिन उद्योगों में प्रबन्धकीय कुशलता का ऊँचा स्तर तथा प्रबन्धकीय विशिष्टीकरण बड़ी सीमा तक प्राप्त किया जा सकता उनमें अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होगा। इसके विपरीत, जिन उद्योगों में प्रबन्धकीय विशिष्टीकरण प्राप्त नहीं किया जा सकता उनमें अनुकूलतम आकार छोटा होगा। प्रबन्धकीय कुशलता तथा विशिष्टीकरण अनुकूलतम फर्म के आकार को निर्धारित करते हैं।

(३) विपणन के अवसर (Marketing opportunities)—जिन उद्योगों की वस्तुओं का बाजार विस्तृत होता है उनमें अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होगा। इसके विपरीत, यदि बाजार संकुचित है तो अनुकूलतम फर्म का आकार छोटा होगा। विपणन के अवसर फर्म के आकार को सीमित करते हैं।

(४) वित्तीय सुविधाएँ (Financial facilities)—जिन उद्योगों को जैसी वित्तीय सुविधाएँ प्राप्त हैं उनमें अनुकूलतम फर्म का आकार तदनुसार बड़ा होगा अथवा छोटा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है

(i) अनुकूलतम आकार कोई एक आकार नहीं होता, वरन् यह प्रत्येक उद्योग में भिन्न होता है। कुछ उद्योगों (जैसे, मोटर कारों तथा ट्रकों का उद्योग लोहा तथा इस्पात उद्योग सिगरेट उद्योग, इत्यादि) में अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होता है जबकि कुछ अन्य उद्योगों में अनुकूलतम फर्म का आकार बहुत छोटा होता है। हम यह नहीं कह सकते कि कोई एक विशेष आकार अनुकूलतम आकार होता है विभिन्न प्रकार के उत्पादनों में अनुकूलतम आकार भिन्न होता है।[11]

---

[11] We cannot say that some particular size is optimal; different sizes are optimal in different types of production

(ii) अनुकूलतम फर्म का आकार उद्योग विशेष के संगठन तथा वातावरण पर, जिसमें उसे कार्य करना है, निर्भर करता है। यदि औद्योगिक वातावरण परिवर्तित होता है तो अनुकूलतम का आकार भी परिवर्तित होता है, तथा स्वयं फर्म का विकास वातावरण को बदलने के लिए पर्याप्त हो सकता है।[11]

एक उद्योग के अन्तर्गत सभी फर्में अनुकूलतम आकार की क्यों नहीं होतीं ?

यद्यपि स्पर्द्धात्मक उद्योग में प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखती है, परन्तु व्यवहार में सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त नहीं कर पाती, फर्मों के आकारों में बहुत भिन्नता पायी जाती है। प्रश्न यह उठता है कि सभी फर्में अनुकूलतम पैमाने पर कार्य क्यों नहीं करती ? इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं

(१) यह आवश्यक नहीं है कि अनुकूलतम पैमाना सबसे लाभदायक हो (The optimum scale may not necessarily be the most profitable one)—अनुकूलतम फर्म उद्योग विशेष में न्यूनतम लागत के पैमाने को बताती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी दशाओं में वह अधिकतम लाभ का पैमाना भी हो। कई दशाओं में बाजार इतना बड़ा नहीं होता कि सभी फर्में अनुकूलतम पैमाने पर कार्य कर सकें। ऐसी स्थिति में फर्में बड़े प्लाण्ट का प्रयोग करके औसत लागत को न्यूनतम रखकर अनुकूलतम आकार को प्राप्त नहीं कर पायेंगी बल्कि वे छोटे प्लाण्ट का प्रयोग करेंगी (जिसकी औसत लागत अनुकूलतम आकार की अपेक्षा अधिक होगी) क्योंकि वस्तु का बाजार विस्तृत नहीं है और तभी अधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगी।

(२) उद्योग विशेष में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की दृष्टि से कुछ फर्में अनुकूलतम आकार से बड़ी हो सकती हैं (Some firms may be larger than optimum size in order to attain dominance in the industry)—कुछ फर्में उद्योग में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की दृष्टि से कहीं अधिक बड़ा आकार प्राप्त करती हैं। ऐसी फर्में अपने हित में क्रय तथा विक्रय की कीमतों को प्रभावित करके अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति का लाभ उठाती हैं। (उदाहरणार्थ, सिगरेट बनाने वाली बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण सिगरेट की कीमतों को प्राय लगभग स्थिर रख पाती हैं और तम्बाकू उत्पन्न करने वाले कृषकों को नीची कीमतें देती हैं।)

(३) औद्योगिक साम्राज्य का स्वप्न (Dream of an industrial empire)—अधिक लाभ प्राप्त करने के अतिरिक्त कुछ फर्में औद्योगिक साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखती हैं। अत बड़े होने तथा अधिक आदर प्राप्त करने की भावना से कुछ फर्में अनुकूलतम आकार से बड़े आकार को प्राप्त करती हैं।

परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि सरकार एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए कार्यवाही करती है और सरकार के इस डर से कुछ फर्में जितना बड़ा आकार चाहती हैं उतना बड़ा आकार प्राप्त नहीं कर पाती।

(४) नयी परिस्थितियाँ तथा तेज परिवर्तनशील आर्थिक प्रक्रिया (New conditions and fast changing economic process)—नयी टेक्नोलोजी, भविष्य में मजदूरी-दरें तथा मालों (materials) की कीमतों, प्राप्य बाजार के आकार, प्रबन्धकीय विशेषताओं, इत्यादि के सम्बन्ध में बहुत-सी फर्में उचित व सही निर्णय नहीं ले पाती हैं तथा वे नयी परिस्थितियों के साथ धीमी गति से समन्वय कर पाती हैं। ऐसी फर्में अनुकूलतम आकार से छोटी रह जाती हैं। यदि यह मान लिया जाये कि फर्में उचित व सही निर्णय ले सकती हैं, तो भी बहुत-सी फर्में अनुकूलतम

---

[11] For example if 'the growth of a firm reduces the competition to which it is exposed this may automatically ease the task of management industrial combination might create an environment favourable of the operation of larger units that could survive intense competition—'*favourable' in the sense of making* for lower costs, not just of making for higher profits. Many of the risks which keep the *optimum firm comparatively small* are themselves the product of competition''

आकार से छोटी रह जायेंगी क्योंकि ऐसी स्थितियाँ और नये बाजार उत्पन्न होते रहते हैं, तथा नये टेक्नीकल परिवर्तन तेजी से और निरन्तर होते रहते हैं; व्यवहार में इन तेज परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ फर्में शीघ्रता से समायोजन नहीं कर पातीं और वे अनुकूलतम आकार से छोटे आकार की रह जाती हैं।

प्रश्न

१. मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
Write a critical note on the concept of Marshall's 'Representative Firm'.
(Bhagalpur, 1965 A)

२. मार्शल के प्रतिनिधि फर्म के विचार की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए तथा पीगू की साम्य फर्म से उसका अन्तर बताइए।
Examine critically Marshall's concept of 'representative firm' and distinguish it from Pigou's 'equilibrium firm'

३. *अनुकूलतम फर्म के विचार की विवेचना कीजिए। उन तत्वों को बताइए जिन पर* अनुकूलतम फर्म का आकार निर्भर करता है।
Discuss the concept of an optimum firm. State the factors on which the optimum size of a firm depends.
(Ranchi, 1964 S)

४. *अनुकूलतम फर्म के विचार तथा उसके अभिप्रायों की पूर्ण विवेचना कीजिए। क्या एक* स्पर्द्धात्मक उद्योग में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की होती हैं? यदि नहीं, तो क्यों?
Explain fully the concept and implications of optimum firm. Are all the firms in a competitive industry of optimum size? If not, why?

6

लागत तथा आगम के विचार
[THE CONCEPTS OF COST AND REVENUE]

एक दी हुई कीमत पर कोई उत्पादक वस्तु विशेष का कितना उत्पादन करेगा यह बात उत्पादन लागत पर निर्भर करेगी। उत्पादन लागत प्राय तीन अर्थों मे प्रयुक्त की जाती है · (i) द्राव्यिक लागत, (ii) वास्तविक लागत, तथा (iii) अवसर लागत। नीचे इनमे से प्रत्येक के अर्थ तथा अभिप्रायो पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

द्राव्यिक लागत
(MONEY COST)

साधारणतया किसी वस्तु के उत्पादन म विभिन्न उत्पत्ति के साधनो के प्रयोग के लिए उत्पादक जो द्रव्य व्यय करता है उसे उत्पादक की 'द्राव्यिक लागत' कहते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह परिभाषा पूर्ण नहीं है। अर्थशास्त्रियो के अनुसार 'द्राव्यिक लागतों' मे निम्न तीन प्रकार की मदें (items) शामिल होती है

(१) स्पष्ट लागतें (Explicit costs)[1]—यह वे लागतें हैं जो कि एक उत्पादक स्पष्ट रूप से विभिन्न साधनो (inputs) को खरीदने म व्यय करता है। 'स्पष्ट लागतों' के अन्तर्गत निम्न प्रकार के व्यय शामिल होते है (i) उत्पादन लागतें (production costs)—कच्चे माल की लागत, श्रमिको की मजदूरियाँ, उधार ली गयी पूँजी का ब्याज, भूमि तथा बिल्डिंगो का किराया, मशीनो (अर्थात् स्थिर पूँजी) का घिसाई व्यय (depreciation charges), इत्यादि। (ii) विक्रय लागतें (selling costs)—विज्ञापन तथा प्रसार पर किया गया व्यय, (iii) अन्य लागतें (other costs)—सरकार तथा स्थानीय अधिकारियो को दिये गये कर, बीमा-व्यय, इत्यादि।

(२) अस्पष्ट लागतें या सन्निहित लागतें (Implicit costs)[2]—इनमे उन साधनो तथा सेवाओ का मूल्य शामिल होता है जिनका उत्पादक या साहसी प्रयोग करता है, पर प्रत्यक्ष रूप मे उनकी कीमतें नही चुकाता, अर्थात्, साहसी के स्वय के साधनों (self-owned resources) के बाजार दर पर पुरस्कारों को 'अस्पष्ट लागतें' कहते हैं।[3] यदि साहसी स्वय के साधनो को

---

[1] स्पष्ट लागतो को 'भुगतान की गयी लागतें' (paid-out costs) या 'व्यय लागतें (expenditure costs) या 'परिव्यय लागतें (outlay costs) भी कहते हैं।

[2] Implicit Cost को Non-expenditure Costs भी कहते हैं।

[3] यदि एक साहसी स्वय प्रबन्धक के रूप म कार्य करता है, कुछ अपनी पूँजी भी लगाता है, तथा कुछ अपनी भूमि भी देता है, तो बाजार दर पर इन सब साधनों के मालिक के रूप मे उसे पुरस्कार (अर्थात् वेतन, ब्याज तथा लगान) मिलने चाहिए और ये उत्पादन-लागत के अग होने चाहिए।

अपने व्यवसाय मे नहीं लगाता है तो वह उन्हें किसी दूसरे व्यवसाय मे लगाकर उनके मालिक के रूप मे बाजार दर पर पुरस्कार प्राप्त कर सकता है। अत अर्थशास्त्रियो के अनुसार व्यवसाय मे साहसी के स्वय के साधनो के (बाजार दर पर) पुरस्कारों को लागत का अग मानना चाहिए। व्यावहारिक जीवन म प्राय एकाउण्टैण्ट या उद्योगपति 'अस्पष्ट लागतों' को 'द्राव्यिक लागत' मे शामिल नही करते।

(३) सामान्य लाभ (Normal profit)—अर्थशास्त्री द्राव्यिक लागत मे 'सामान्य लाभ' भी शामिल करते हैं। किसी उद्योग मे साहसी के लिए 'सामान्य लाभ, लाभ का वह स्तर (level) है जो कि साहसी को उद्योग मे बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र है।"[4] यदि साहसी को उद्योग विशेष म दीर्घकाल म लाभ का न्यूनतम स्तर अर्थात् सामान्य लाभ प्राप्त नहीं होता तो साहसी उद्योग विशेष म कार्य नही करेगा और किसी दूसरे उद्योग मे चला जायेगा। इस प्रकार सामान्य लाभ साहसी को उद्योग विशेष मे बनाये रखने की लागत है और अर्थशास्त्री उसे द्राव्यिक लागत का अश मानते हैं।

स्पष्ट है कि व्यावहारिक जीवन मे 'एकाउण्टैण्ट की द्राव्यिक लागत' तथा 'अर्थशास्त्री की द्राव्यिक लागत' भिन्न हैं। एकाउण्टैण्ट द्राव्यिक लागत मे केवल 'स्पष्ट लागतें' ही शामिल करता है, जबकि अर्थशास्त्र मे द्राव्यिक लागत मे 'स्पष्ट लागतो' के अतिरिक्त 'अस्पष्ट लागतें' तथा 'सामान्य लाभ' भी शामिल किये जाते हैं।

वास्तविक लागत
(REAL COST)

वास्तविक लागत का अर्थ

क्लासीकल अर्थशास्त्रियो ने वास्तविक लागत का विचार प्रस्तुत किया। उनके अनुसार किसी वस्तु की कीमत अन्त मे उसकी वास्तविक लागत पर निर्भर करती है।

क्लासीकल अर्थशास्त्रियो के अनुसार 'वास्तविक लागत' का अर्थ उन सब कष्टो, प्रयत्नो (exertions) तथा त्याग से है जो किसी वस्तु के उत्पादन मे उठाने पड़ते हैं। श्रमिकों को परिश्रम के रूप मे कष्ट तथा त्याग उठाना पड़ता है, पूँजीपतियो को उपभोग-त्याग (abstinence) या 'प्रतीक्षा' (waiting) के रूप म कष्ट तथा त्याग उठाना पड़ता है क्योंकि पूँजी का सचय प्रयत्नो तथा 'उपभोग स्थगित करने' अर्थात् 'प्रतीक्षा' का परिणाम होता है। ये सब कष्ट तथा त्याग मिलकर वास्तविक लागत को बताते है। वास्तविक लागत को 'सामाजिक लागत' (Social cost) भी कहते है क्योंकि वस्तुओ के उत्पादन मे समाज को कष्ट तथा त्याग का सामना करना पड़ता है।

मार्शल द्वारा वास्तविक लागत की परिभाषा—"किसी वस्तु के निर्माण मे विभिन्न प्रकार के श्रमिकों को जो प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रयत्न करने पड़ते हैं तथा साथ ही वस्तु के उत्पादन म प्रयुक्त की जाने वाली पूंजी को बचाने मे जो प्रतीक्षा आवश्यक होती है, ये सब प्रयत्न तथा त्याग मिलकर वस्तु की वास्तविक लागत कहलाते हैं।"[5]

वास्तविक लागत के इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु की कीमत उस वस्तु के उत्पादन मे जो कुछ कष्ट तथा त्याग होता है उसके बराबर होगी। इस सिद्धान्त का अभिप्राय सरल शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है : वस्तु 'अ' के उत्पादन मे वस्तु 'ब' के उत्पादन की अपेक्षा तिगुना कष्ट तथा त्याग होता है तो वस्तु 'अ' की कीमत वस्तु 'ब' की कीमत की तिगुनी होगी।

---

4 "Normal profit, for an entrepreneur in any industry, is that level of profit which is just sufficient to induce him to stay in the industry"

5 "The exertions of all the different kinds of labour that are directly or indirectly involved in making it (i e a commodity) together with the abstinences or rather the waitings required for saving the capital used in making it, all these efforts and sacrifices together will be called the real cost of production of the commodity"

—Marshall, *Principles of Economics* p 282

वास्तविक लागत के विचार की कमजोरियाँ या आलोचना (Weaknesses or Criticism of the Concept of Real Cost)

(१) वास्तविक लागत कष्ट तथा त्याग पर आधारित है। (i) परन्तु 'कष्ट तथा त्याग' का विचार मनोवैज्ञानिक तथा व्यक्तिगत (psychological and subjective) है जिसको ठीक प्रकार से मापा नहीं जा सकता है। (ii) एक ही कार्य करने में विभिन्न व्यक्तियों के लिए कष्ट तथा त्याग भिन्न भिन्न हो सकता है। (iii) एक ही कार्य को करने में कुछ व्यक्ति कष्ट के स्थान पर आनन्द अनुभव कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक अध्यापक को पढ़ाने में कष्ट के स्थान पर आनन्द प्राप्त हो सकता है एक गायक को अपने गीत को गाने में अत्यन्त आनन्द मिल सकता है। ऐसी स्थिति में इन सबाओ का द्राव्यिक मूल्यांकन कैसे किया जाये ? (iv) वास्तव में, कार्य तथा परिश्रम करने की अपेक्षा बेकारी अधिक कष्टदायक होती है।

(२) वास्तविक लागत के विचार का अभिप्राय है कि किसी वस्तु या सेवा का मूल्य प्रत्यक्ष रूप से कष्ट तथा त्याग द्वारा निर्धारित होता है, परन्तु यह ठीक नहीं। व्यावहारिक जीवन में हम देखते हैं कि एक कुली या मजदूर का 'कष्ट तथा त्याग' बहुत अधिक होता है अपेक्षाकृत एक मैनेजर या फिल्म स्टार के परन्तु फिर भी कुली या मजदूर को अपेक्षाकृत बहुत कम द्राव्यिक पुरस्कार मिलता है।

उपर्युक्त कमजोरियों या कठिनाइयों के कारण आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने वास्तविक लागत के इस विचार को त्याग दिया। हेण्डरसन के अनुसार, **'वास्तविक लागत का सिद्धान्त हमें सन्देहात्मक विचार तथा अवास्तविकता के दलदल में डाल देता है।'**[6]

अवसर लागत
(OPPORTUNITY COST)

१. प्राक्कथन (Introductory)

कष्ट तथा त्याग पर आधारित क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के सन्देहात्मक (dubious) तथा दोषपूर्ण वास्तविक लागत के विचार को आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने छोड़ दिया। आधुनिक अर्थशास्त्र में वास्तविक लागत को 'अवसर लागत (opportunity cost) या 'त्याग किया गया विकल्प' (alternative foregone) या वैकल्पिक लागत' (alternative cost) या हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) के शब्दों में व्यक्त किया जाता है।

२ अवसर लागत का अर्थ (Meaning of Opportunity Cost)

(अ) **अवसर लागत वास्तविक लागत के रूप में** (Opportunity cost as real cost)

लगभग प्रत्येक साधन के कई सम्भावित प्रयोग होते हैं। चूँकि प्रत्येक साधन सीमित होता है इसलिए उसको सभी प्रयोगों में पूर्ण रूप से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। समाज की दृष्टि से एक साधन को किसी एक उद्देश्य के लिए [illegible] करने का अर्थ है कि उसको अन्य उद्देश्यों में प्रयोग करने के अवसर का त्याग करना पड़ेगा। **किसी वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत वह वस्तु है जिसका त्याग किया जाता है।**[7] इस दृष्टि से, किसी वस्तु की वास्तविक उत्पादन लागत का अर्थ उस वस्तु के उत्पादन में लगे प्रयत्नों कष्टों तथा त्यागों से नहीं होता बल्कि दूसरे सर्वश्रेष्ठ विकल्प के त्याग (next best alternative foregone) से होता है। दूसरे शब्दों में, वस्तु Y की एक इकाई की वास्तविक उत्पादन लागत, अर्थात् 'अवसर लागत', **वस्तु Z की त्यागी गयी मात्रा के बराबर है।**[8]

---

[6] The doctrine of real cost would lead us into a quagmire of unreality and dubious hypothesis'
—Handerson *Supply and Demand* p 164

[7] The real cost of production of a commodity is the commodity that is sacrificed

[8] The real cost of production that is opportunity cost, of one unit of Y is equal to the amount of Z that must be foregone

इसे 'अवसर लागत' या 'त्याग किया गया विकल्प' या 'वैकल्पिक लागत' इसलिए कहते हैं क्योंकि समाज की दृष्टि से एक वस्तु के उत्पादन का अर्थ है दूसरी वस्तु के उत्पादन के अवसरों या दूसरे विकल्पों (alternatives) का त्याग।

'वास्तविक लागत' के रूप में अवसर लागत के विचार को एक चित्र द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है। सुविधा के लिए हम निम्न मान्यताओं को लेकर चलते हैं—(i) अर्थव्यवस्था में एक दी हुई समयावधि में साधनों की कुल मात्रा स्थिर रहती है, (ii) अर्थव्यवस्था में केवल दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन हो रहा है, तथा (iii) पूर्ण प्रतियोगिता और पूर्ण रोजगार की स्थिति है। एक समयावधि में अर्थव्यवस्था में दो वस्तुओं X तथा Y के उत्पादन के विभिन्न सम्भावित संयोगों (combinations) को चित्र नं० १ में AB रेखा द्वारा दिखाया गया है।
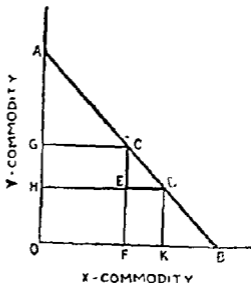
चित्र—१

AB रेखा पर C बिन्दु बताता है कि अर्थव्यवस्था में एक समयावधि में X वस्तु की OF मात्रा तथा Y वस्तु की OG मात्रा का उत्पादन होता है। इसी प्रकार से D बिन्दु बताता है कि अर्थव्यवस्था में X वस्तु की OK मात्रा तथा Y वस्तु की OH मात्रा का उत्पादन होता है। यदि अर्थव्यवस्था 'C' बिन्दु से 'D' बिन्दु पर आती है तो इसका अभिप्राय है कि X वस्तु की अतिरिक्त मात्रा ED या (FK) का उत्पादन करने के लिए अर्थव्यवस्था (या समाज) को Y वस्तु की CE (या GH) मात्रा के उत्पादन का त्याग, अथवा Y वस्तु की CE मात्रा को उत्पादन करने के 'अवसर' (opportunity) का त्याग, करना पड़ेगा। अतः X वस्तु की ED मात्रा की अवसर लागत दूसरी वस्तु Y की CE मात्रा है जिसके उत्पादन के अवसर का समाज को त्याग करना पड़ता है।

[AB रेखा को अर्थशास्त्री 'उत्पादन-सम्भावना रेखा' (Production Possibility Line) या 'परिवर्तन रेखा' (Transformation Line) कहते हैं क्योंकि इस रेखा पर एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाने पर वास्तव में एक वस्तु का दूसरे वस्तु में परिवर्तन (transformation) होता है। चित्र में जब हम 'C' बिन्दु से 'D' पर जाते हैं तो हम एक दी हुई समयावधि में Y वस्तु की CE मात्रा को X वस्तु की ED मात्रा में परिवर्तित (transform) करते हैं।]

(ब) द्रव्य के शब्दों में अवसर लागत (Opportunity cost in terms for money)

किसी वस्तु Y की उत्पादन लागत द्रव्य की वह मात्रा है जो कि उत्पत्ति के साधनों को दूसरे वैकल्पिक प्रयोगों से हटाकर Y के उत्पादन में लगाने के लिए आवश्यक है।* दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु के उत्पादन की द्राव्यिक लागत 'त्याग की गयी वैकल्पिक वस्तुओं' (displaced alternative products) का मूल्य है। द्रव्य के शब्दों में व्यक्त की गयी अवसर लागत निर्भर करती है—(i) वैकल्पिक वस्तुओं (alternative commodities) के बाजार मूल्यों पर तथा (ii) विभिन्न प्रयोगों में साधनों की भौतिक उत्पादकता (physical productivity) पर।

[अवसर लागत को 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) या 'हस्तान्तरण मूल्य' (transfer price) भी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति के साधनों को उद्योग विशेष में बनाये रखने के

* The cost of producing commodity Y is the amount of money necessary to get the factor of production needed away from alternative uses

लिए कम से कम इतना द्रव्य अवश्य मिलना चाहिए जितना कि उन्हें दूसरे वैकल्पिक प्रयोगो मिल सकता है, अन्यथा ये साधन दूसरे प्रयोगो मे हस्तान्तरित हो जायेंगे।]

अवसर लागत के अन्तर्गत 'अस्पष्ट लागतें' भी शामिल होती हैं जिन्हें व्यावहारिक को में एकाउण्टेण्ट या व्यापारी तथा उद्योगपति द्राव्यिक लागत निकालते समय शामिल नहीं करा अत 'द्रव्य मे व्यक्त अवसर लागत' के अन्तर्गत 'स्पष्ट लागतें' तथा 'अस्पष्ट लागतें' दे होती हैं।

प्रो० बेनहम ने अवसर लागत या हस्तान्तरण आय की परिभाषा इन शब्दों मे की 'द्रव्य की वह मात्रा जो कि कोई एक इकाई सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में प्राप्त कर सकती उसे हस्तान्तरित आय कहते हैं।"[10]

इस परिभाषा का अभिप्राय यह है कि यदि हम किसी उत्पत्ति के साधन को उर विशेष म बनाये रखना चाहते हैं तो उसे कम से कम द्रव्य की इतनी मात्रा अवश्य मिलनी चाि जो कि वह दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग मे प्राप्त कर सकता है। यदि ऐसा नहीं है तो पहले उद्योग म काम नहीं करेगा, बल्कि दूसरे उद्योग मे हस्तान्तरित हो जायेगा। इस दृष्टि श्रीमती जोन रोबिन्सन 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' को इन शब्दों म व्यक्त करती "वह मूल्य जो कि साधन की एक दी हुई इकाई को किसी उद्योग में बनाये रखने के f आवश्यक है, हस्तान्तरण आय या हस्तान्तरण मूल्य कहा जाता है।"[11]

३. अवसर लागत का महत्त्व (Significance)

अवसर लागत का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो मे से एक है। इसका मह निम्न से स्पष्ट होता है

(१) उत्पत्ति के साधनों के वितरण मे सहायक (Helpful in the allocation scarce resources)—सीमित साधनो को प्रतियोगी प्रयोगों मे मांगा जाता है। अवसर ला का सिद्धान्त बताता है कि एक प्रयोग में उत्पत्ति के साधनों को कम से कम इतना अवश्य मिल चाहिए जितना कि उन्हें वैकल्पिक प्रयोग म मिल सकता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के आ पर साधनो का विभिन्न प्रयोगो म वितरण (allocation) होता है। 'मूल्य प्रक्रिया' (pric process) या 'मूल्य-यन्त्र' (price-mechanism) का एक मुख्य कार्य सीमित साधनो का प्रतिय प्रयोगो मे वितरण करना है। इस कार्य मे अवसर लागत का सिद्धान्त सहायता करता इस प्रकार प्रो० बाई के शब्दो म, "अवसर लागत का सिद्धान्त मूल्य प्रणाली का केन्द्र बिन और अर्थशास्त्र के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों में से है।"[12]

(२) यह लागत मे परिवर्तन पर प्रकाश डालता है (It throws light on variation in the cost of production)—प्रो० बेनहम के अनुसार, "हस्तान्तरण आय विचार इस दृष्टि से लाभदायक है कि यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि एक उद्योग की लागत f सीमा तक अपने उत्पादन के साथ परिवर्तित हो सकती है। उदाहरणार्थ, उन विशेष श्रमिको र

---

[10] "The amount of money which any particular unit could earn in its best paid alterna use is sometimes called its transf r earning." —Benham, *Economics* p

इसी विचार को श्रीमती जोन रोबिन्सन इन शब्दो मे व्यक्त करती हैं एक उद्योग की ह से साधन की किसी एक इकाई की लागत उस पुरस्कार से निर्धारित होती है जो कि इकाई किसी अन्य उद्योग मे प्राप्त कर सकती है।"

"The cost of any unit of a factor from the point of view of one industry, is there determined by the reward which that unit can earn in some other industry"

—Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, p

[11] "The price which is necessary to retain a given unit of a factor in a certain industry be called its transfer earnings or transfer price." *Ibid.*, p

[12] "It (i e. opportunity cost) lies, indeed, at the very heart of the price system and is of the most important principles in economics." —*Prof*

अन्य साधनों की इकाइयों को, जो कि वर्तमान व्यवसाय में पर्याप्त ऊँची आय प्राप्त कर रही हैं आकर्षित करें यदि अल्पकाल में एक उद्योग को पर्याप्त रूप से बढ़ाया जा सकता है, तो इस उद्योग में कार्य करने के लिए साधनों को और अधिक देना होगा। इसका अर्थ है कि अल्पकाल में उद्योग में उत्पादन को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने से औसत तथा सीमान्त लागतें बहुत ऊँची होंगी क्योंकि इन साधनों की इकाइयों को तथा इसी प्रकार की पहले से कार्य कर रही इकाइयों को ऊँचे मूल्य देने पड़ेंगे।"

(३) लगान के निकालने में सहायक (Helpful in the calculation of rent)—लगान का आधुनिक सिद्धान्त बताता है कि लगान अवसर लागत के ऊपर अतिरेक (surplus) है। यदि किसी साधन (माना श्रम) का पुरस्कार ५० रु० है और उसकी अवसर लागत ४० रु० है तो उसके ५० रु० के पुरस्कार में लगान=(५०—४०)=१० रु०। अतः लगान को ज्ञात करने के लिए साधन की अवसर लागत की सहायता ली जाती है।

४ अवसर लागत की सीमाएँ या आलोचनाएँ (Limitations or Criticisms of Opportunity Cost)

अवसर लागत की मुख्य सीमाएँ निम्न हैं

(१) अवसर लागत का विचार 'विशिष्ट साधनों' (Specific factors) के सम्बन्ध में लागू नहीं होता। विशिष्ट साधन वह साधन है जो केवल एक प्रयोग में ही काम में लाया जा सकता हो। अतः विशिष्ट साधनों की अवसर लागत शून्य होती है क्योंकि उसको दूसरे प्रयोगों में काम में नहीं लाया जा सकता है। ऐसे विशिष्ट साधनों के प्रयोग के लिए जो पुरस्कार मिलता है वह लगान होता है [विशिष्ट साधनों को दिये गये पुरस्कार के लिए प्रो० हिक्सन 'बिना लागत व्यय' (non-cost outlay) शब्द का प्रयोग करते हैं।] व्यावहारिक जीवन में अधिकांश साधन आंशिक रूप से विशिष्ट होते हैं और आंशिक रूप से अविशिष्ट (non-specific) होते हैं। अतः अधिकांश साधनों के पुरस्कार में लगान तथा अवसर लागत दोनों होते हैं।

(२) अवसर लागत का सिद्धान्त यह मान लेता है कि उत्पत्ति के साधन किसी कार्य के लिए कोई विशेष रुचि या पसन्द (preference) नहीं रखते या उनमें गतिशीलता के लिए कोई सुस्ती (inertia) नहीं होगी, जबकि व्यवहार में ये मान्यताएँ गलत हैं। यदि एक श्रमिक किसी कार्य को विशेष रूप से पसन्द करता है तो उसकी दूसरे कार्य में 'हस्तान्तरण करने की लागत' उसकी वास्तविक 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण मूल्य' से अधिक होगी।

(३) अवसर लागत का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है, जबकि व्यावहारिक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है।

५ निष्कर्ष

इन सब सीमाओं के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि अवसर लागत का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है।

स्थिर (या पूरक) तथा परिवर्तनशील (या प्रमुख लागतें)
(FIXED OR SUPPLEMENTARY AND VARIABLE OR PRIME COSTS)

१ प्राक्कथन (Introduction)

कुल लागत को दो भागों में बाँटा जा सकता है (i) स्थिर या पूरक लागत, तथा (ii) परिवर्तनशील या प्रमुख लागत अर्थात् कुल लागत=स्थिर लागत+परिवर्तनशील लागत।

२. स्थिर या पूरक लागत का अर्थ (Meaning of Fixed Cost)

किसी व्यवसाय के कार्यकरण की स्थिर लागत वह लागत है जो कि स्थिर साधनों (fixed factors) को प्रयोग में लाने के लिए की जाती है। स्थिर साधन वे हैं जिनकी मात्रा बहुत शीघ्रता से परिवर्तित नहीं की जा सकती (जैसे फर्म की स्थिर पूँजी अर्थात् मशीन, यन्त्र, भूमि, बिल्डिंग, इत्यादि)। स्थिर लागत को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। स्थिर लागतें वे लागतें हैं जो कि अल्पकाल में उत्पादन में परिवर्तन होने पर परिवर्तित नहीं होतीं

बल्कि स्थिर रहती हैं। यदि उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि । कमी होती है तो ये लागतें स्थिर रहेंगी। यदि अस्थायी रूप से उत्पादन बन्द हो जाता है अर्थात् उत्पादन की मात्रा शून्य हो जाती है तो भी फर्म को इन लागतो को उठाना पड़ेगा। स्थिर लागतो के अन्तर्गत प्राय इन मदो को शामिल किया जाता है बिल्डिंग का किराया, स्थायी उच्च अफसरो के वेतन, दीर्घकालीन ऋणों पर ब्याज घिसाई व्यय, इत्यादि।

स्थिर लागतो को 'सामान्य लागतें' (general costs), पूरक लागतें (supplementary costs) या अप्रत्यक्ष लागतें' (indirect costs) भी कहते हैं क्योंकि फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा इन लागतो पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर नही करती। व्यापार की भाषा मे इनको 'ऊपर की लागतें' या 'उपरिव्यय' (overhead costs) कहा जाता है।

३ परिवर्तनशील या प्रमुख लागत का अर्थ (Meaning of Variable Cost)

किसी व्यवसाय के कार्यकरण की परिवर्तनशील लागतें वे लागतें हैं जो कि परिवर्तनशील साधनों (vari ble factors) को प्रयोग मे लाने के लिए की जाती हैं। परिवर्तनशील साधन वे हैं जिनकी मात्रा शीघ्रता से परिवर्तित की जा सकती है। परिवर्तनशील लागतों को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है परिवर्तनशील लागतें वे लागतें हैं जो कि उत्पादन में परिवर्तन होने के साथ परिवर्तित होती हैं। कच्चे माल की लागत, सामान्य श्रमिकों की मजदूरियाँ, इत्यादि परिवर्तनशील लागत के अन्तर्गत आती है। उत्पादन के बढ़ने या घटने से ये लागतें भी बढ़ेंगी या घटेंगी। यदि उत्पादन अस्थायी रूप से बन्द हो जाता है अर्थात् उत्पादन की मात्रा शून्य हो जाती है तो परिवर्तनशील लागतें भी समाप्त हो जाती हैं। परिवर्तनशील लागतें तभी होती हैं जबकि एक समय मे कुछ निश्चित उत्पादन होता है, परिवर्तनशील लागतो की मात्रा उत्पादन के स्तर पर निर्भर करती है।

परिवर्तनशील लागतो को 'प्रमुख लागत' (prime cost) या 'प्रत्यक्ष लागत' (direct cost) भी कहा जाता है क्योंकि फर्म की उत्पादित वस्तु की मात्रा प्रत्यक्ष रूप से इन लागतो पर निर्भर करती है।

४. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों का चित्र द्वारा निरूपण (Diagrammatic Representation)

चित्र—२
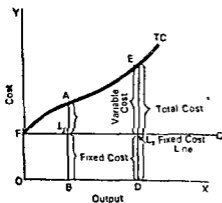
स्थिर लागत $=DL_2$ (स्थिर लागत समान हैं, $DL_2 = BL$), परिवर्तनशील लागत $=L_2E$, कुल लागत $=DL_2+L_2E=ED$।

चित्र न० २ मे स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतो को दिखाया गया है। स्थिर लागतो को पड़ी रेखा FC द्वारा दिखाया गया है क्योंकि उत्पादन मे परिवर्तन होने पर स्थिर लागत मे कोई परिवर्तन नही होता। TC कुल लागत रेखा है। स्थिर लागत रेखा FC तथा कुल लागत रेखा TC के बीच की जगह परिवर्तनशील लागत को बताती है। जब उत्पादन का स्तर OB है, तो स्थिर लागत BL_1 तथा परिवर्तनशील लागत $=L_1A$, कुल लागत $=BL_1+L_1A=AB$।

जब उत्पादन का स्तर बढ़कर OD हो जाता है तो परिवर्तनशील लागत तथा कुल लागत मे वृद्धि होगी।

[परिवर्तनशील लागत, 'कुल लागत तथा स्थिर लागत का अन्तर' होती है। अतः चित्र न० २ में परिवर्तनशील लागत को कुल लागत रेखा तथा स्थिर लागत रेखा के बीच की जगह द्वारा दिखाया गया है।] परन्तु परिवर्तनशील लागत को एक पृथक रेखा द्वारा भी दिखाया जा सकता है, यह चित्र न० ३ से स्पष्ट होता है।[13] चित्र न० ३ में FC रेखा स्थिर लागत रेखा है। VC रेखा परिवर्तनशील लागत रेखा है। VC रेखा मूल बिन्दु O से निकलती हुई दिखायी गयी है। इसका अर्थ है कि O बिन्दु पर उत्पादन शून्य है तो परिवर्तनशील लागत भी शून्य होगी। उत्पादन के बढ़ने के साथ परिवर्तनशील लागत भी बढ़ेगी जैसा कि VC रेखा बताती है। VC रेखा से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील

चित्र—३

लागत धीमी गति से बढ़ती है और बाद में तीव्र गति से। चूंकि कुल लागत स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत का योग होती है, इसलिए चित्र न० ३ में कुल लागत रेखा TC को इन दोनों रेखाओं के ऊपर दिखाया गया है। चूंकि बिन्दु O पर परिवर्तनशील लागत शून्य है, इसलिए इस बिन्दु के सन्दर्भ में कुल लागत बराबर होगी स्थिर लागत के, अर्थात् TC रेखा बिन्दु F से निकलती है। परिवर्तनशील लागत रेखा तथा कुल लागत रेखा के बीच अन्तर स्थिर लागत के बराबर बना रहेगा; अतः दोनों रेखाएँ समानान्तर होंगी।
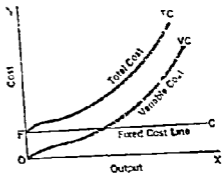
५. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के बीच अन्तर के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें (Some Important Points)

स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के अर्थ तथा अन्तर को भलीभाँति समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है :

(i) दोनों लागतें साथ-साथ रहती हैं, उत्पादन दोनों का सम्मिलित परिणाम है। (ii) स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के बीच अन्तर केवल अल्पकाल में ही लागू होता है। दीर्घकाल में फैक्टरी की बिल्डिंग, मशीनों, यन्त्रों, स्थायी कर्मचारियों, इत्यादि सब में परिवर्तन हो जायेगा, इनमें से कुछ भी स्थिर नहीं रहेगा। दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं। (iii) स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में अन्तर केवल मात्रा (degree) का है, न कि किस्म (kind) का। दूसरे शब्दों में, स्थिर लागतें एक समयावधि के सन्दर्भ में ही स्थिर होती हैं।[14]

६. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के अन्तर का मूल्य-सिद्धान्त में महत्त्व (Significance of the Distinction between Fixed and Variable Costs in the Theory of Value)

मूल्य सिद्धान्त में यह अन्तर निम्न प्रकार से महत्वपूर्ण (useful) है :

एक साहसी स्थिर तथा परिवर्तनशील लागत के बीच अन्तर का प्रयोग इस बात का निर्णय करने में करता है कि यदि उत्पादित वस्तु की कुल लागत उसकी कुल विक्रय-राशि (total

---

[13] विद्यार्थियों के लिए नोट—परीक्षा में चित्र न० २ तथा चित्र न० ३ में से किसी एक को देना ही पर्याप्त होगा।

[14] Fixed costs are only 'fixed' with reference to some period of time.
उदाहरणार्थ, यदि एक फर्म सभी श्रमिकों को ३ साल के ठेके (contract) पर नियुक्त करती है तो इन सामान्य श्रमिकों का वेतन स्थिर लागत के अन्तर्गत आयेगा क्योंकि इन तीन वर्षों में यदि कुछ समय के लिए उत्पादन बन्द भी हो जाता है तो भी फर्म को ठेके के अनुसार इन श्रमिकों को वेतन देना पड़ेगा। यदि ठेका नहीं होता तो उत्पादन बन्द होने पर इन श्रमिकों को नौकरी से हटाया जा सकता था और ऐसी स्थिति में उनका वेतन परिवर्तनशील लागत के अन्तर्गत आता है।

sale proceeds or total revenue) में से नहीं निकलती है (अर्थात उसको हानि होती है) तो वह अपने उत्पादन को जारी रखे या बन्द करे। दीर्घकाल में उत्पादक को अपनी वस्तु को बेचने से इतना धन या आगम (revenue) अवश्य मिल जाना चाहिए जिससे कि उसकी कुल लागत अर्थात् स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत दोनों निकल आयें, यदि दीर्घकाल में उसको हानि होती है तो वह उत्पादन बन्द कर देगा। परन्तु अल्पकाल मे, एक उत्पादक हानि होने पर भी अपने उत्पादन को चालू रख सकता है, यदि अपनी वस्तु को बेचकर कम से कम परिवर्तनशील लागतें निकाल लेता है, क्योंकि उसे यह आशा रहती है कि भविष्य म अच्छा समय आ सकता है और उसकी स्थिर लागत भी निकल सकती है। अल्पकाल मे वह स्थिर लागत के निकालने की चिन्ता नही करता क्योंकि मशीन, यन्त्र, बिल्डिंग, इत्यादि पर स्थिर पूँजी म उसका विनियोग हो चुका है उसे नहीं निकाला जा सकता जब तक कि उत्पादन को बिलकुल बन्द करके इनको किसी दूसरे को न बेच दिया जाये। अत अल्पकाल मे हानि होने पर एक उत्पादक उत्पादन जारी रख सकता है परन्तु हानि की एक सीमा होगी जिससे अधिक हानि होने पर वह अल्पकाल मे भी उत्पादन बन्द कर देगा, और यह सीमा औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost, i e, AVC) निर्धारित करती है। अल्पकाल मे हानि की अवस्था म भी उत्पादन जारी रखने के लिए वस्तु का मूल्य कम से कम औसत परिवर्तनशील लागत के बराबर अवश्य होना चाहिए, यदि मूल्य इससे कम है तो उत्पादन बन्द कर दिया जायगा, अत जिस बिन्दु पर मूल्य ठीक औसत परिवर्तनशील लागत के बराबर होता है उसे अर्थशास्त्री 'उत्पादन बन्द होने का बिन्दु' (Shut down Point) कहते हैं।

औसत लागतें या इकाई लागतें[15]
(AVERAGE COSTS OR UNIT COSTS)

उत्पादक अपनी वस्तु के उत्पादन की कुल लागत म रुचि रखते हैं, पर उनके लिए प्रति इकाई लागतें (अर्थात् इकाई लागतें) या औसत लागतें भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। वस्तुओं के प्रति इकाई मूल्यों की तुलना की दृष्टि से 'औसत लागत' विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। औसत लागतें तीन प्रकार की होती हैं 'औसत स्थिर लागत' (Average Fixed Cost, i e, AFC), 'औसत परिवर्तनशील लागत' (Average Variable Cost i e, AVC), तथा 'औसत कुल लागत' या 'औसत लागत' (Average Total Cost, i e, ATC or Average Cost, i e AC)। नीचे हम इन औसतो का विवेचन अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों दृष्टियों से करते हैं।

अल्पकाल मे औसत लागतें
(AVERAGE COSTS IN THE SHORT PERIOD)

औसत लागतो को आगे दी गयी तालिका (पृ० ७१) मे दिखाया गया है।

औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost, i e, AFC)

कुल स्थिर लागत (TFC) मे सम्बन्धित उत्पादन (corresponding output) का भाग देने से **औसत स्थिर लागत (AFC) प्राप्त** होती है।

$$\text{औसत स्थिर लागत (AFC)} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत (TFC)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$$

---

[15] विद्यार्थियों के लिए नोट—विभिन्न प्रकार की औसत लागतों तथा सीमान्त लागत के विचारों का (अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों मे) विस्तृत विवेचन किया गया है ताकि विभिन्न विश्वविद्यालयों (डिग्री) के पाठ्यक्रमो की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, परन्तु कुछ विश्वविद्यालयो मे इतने विस्तृत विवेचन की आवश्यकता नही है अत अध्यापको से निवेदन है कि वे अपने विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रमो के अनुसार जितनी विषय सामग्री आवश्यक है उतनी ही विद्यार्थियो को बतायें तथा शेष छोड दें।

कुल लागतें (Total Costs)				औसत लागतें (Average Costs)			
(१) कुल उत्पादन (Total Product)	(२) कुल स्थिर लागत (Total Fixed Cost)	(३) कुल परिवर्तनशील लागत (Total Variable Cost)	(४) कुल लागत (Total Cost) (२+३)	(५) औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost) (२)÷(१)	(६) औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost) (३)÷(१)	(७) औसत कुल लागत (Average Total Cost) (४)÷(१)	(८) सीमान्त लागत (Marginal Cost)
	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०
०	१००	०	१००	—	—	—	—
१	१००	९०	१९०	१००	९०	१९०	९०
२	१००	१७०	२७०	५०	८५	१३५	८०
३	१००	२४०	३४०	३३.३३	८०	११३.३३	७०
४	१००	३००	४००	२५	७५	१००	६०
५	१००	३७०	४७०	२०	७४	९४	७०
६	१००	४५०	५५०	१६.६७	७५	९१ ६७	८०
७	१००	५४०	६४०	१४.२९	७७.१४	९१.४३	९०
८	१००	६५०	७५०	१२.५०	८१.२३	९३.७५	११०
९	१००	७८०	८८०	११.११	८६.६७	९७ ७८	१३०
१०	१००	९३०	१,०३०	१०	९३	१०३	१५०

कुल स्थिर लागत तो अल्पकाल मे स्थिर रहती है, परन्तु औसत स्थिर लागत (AFC) स्थिर नही रहती बल्कि वह उत्पादन मे प्रत्येक वृद्धि के साथ घटती जाती है। इसका कारण है कि जैसे उत्पादन बढ़ता है वैसे कुल स्थिर लागत अधिक इकाइयों पर फैलती जाती है, परिणामस्वरूप औसत स्थिर लागत (AFC) गिरती जाती है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जब उत्पादन १ इकाई है तो 'कुल स्थिर लागत' तथा 'औसत स्थिर लागत' दोनो १०० रु० के बराबर हैं। जब उत्पादन दो इकाई हो जाता है तो औसत स्थिर लागत (AFC)=१००/२=५० रु० हो जाती है। जब उत्पादन ३ इकाई है, तो AFC घटकर १००/३ ३३.३३ रु० हो जाती है। इस प्रकार उत्पादन बढ़ने से स्थिर लागत अधिक इकाइयों पर फैलती जाती है, अर्थात् AFC गिरती जाती है। अत AFC रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र न० ४ मे दिखाया गया है। ध्यान रहे कि यद्यपि AFC रेखा, उत्पादन मे वृद्धि के साथ, गिरती जाती है, परन्तु यह शून्य नहीं होती, अर्थात् यह X-axis को काट नहीं सकती। दूसरे शब्दों में, AFC रेखा की शक्ल एक rectangular hyperbola की होती है जिसके दोनों सिरों को बढ़ाने पर वे Y-axis तथा X-axis को काटते नहीं हैं।
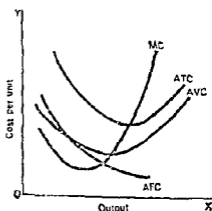
चित्र—४

औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost)

कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) में सम्बन्धित उत्पादन का भाग देने में औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) प्राप्त होती है। संक्षेप मे,

$$\text{औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$$

यदि उत्पादन की मात्रा थोड़ी या कम है, तो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC), उत्पादन म वृद्धि के साथ, प्रारम्भ मे गिरेगी। साधारणतया किसी फर्म को स्थापित करते समय उसके 'उत्पादन की सामान्य क्षमता' (normal capacity of production) का अनुमान लगा लिया जाता है और इसी दृष्टि से उसका सगठन किया जाता है। यदि फर्म का उत्पादन उसकी 'सामान्य उत्पादन क्षमता' (normal capacity of production) से कम है तो उत्पादन मे वृद्धि के साथ औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) गिरेगी, पर ऐसा क्यों होता है ? वास्तव में 'पूर्ण उत्पादन क्षमता' (full capacity production) से कम उत्पादन पर श्रम तथा अन्य उत्पादन के साधनो की पूर्ण उत्पादन शक्ति का प्रयोग नहीं हो पाता है। इसलिए जब उत्पादन मे वृद्धि होने लगती है, तो उत्पत्ति के साधनो को लगभग पूर्व मात्रा ही इस वृद्धि के लिए पर्याप्त होती है *क्योंकि साधनों की उत्पादन शक्ति का अब अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगता है*। परन्तु जब उत्पादन फर्म की 'पूर्ण उत्पादन क्षमता' तक पहुँच जाता है तब इसके बाद उत्पादन म और अधिक वृद्धि से औसत परिवर्तनशील लागत अपेक्षाकृत अधिक तेजी से बढ़ने लगती है। इसके कारण ये है पूर्ण *उत्पादन क्षमता से आगे उत्पादन बढ़ाने* मे फर्म को, *अल्पकाल* म, कम कुशल मजदूरो तथा मशीनो का प्रयोग करना पड़ेगा, इनकी अधिक माँग होने के कारण उनको कीमत भी अधिक देनी पड़ेगी वर्तमान उत्पत्ति के साधनो का अधिक गहराई से प्रयोग करना पड़ेगा अर्थात् श्रमिको *की कार्यक्षमता अतिकार्य (overstrain)* के कारण कम हो जायेगी, मशीनो पर कार्य का अधिक जोर (strain) पड़ने पर वे प्राय टूटेंगी तथा उनकी मरम्मत या नयी मशीनो के खरीदने से लागत बढ़ेगी। अत जब उत्पादन फर्म की 'पूर्ण उत्पादन शक्ति' से नीचा रहता है तो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) घटती है परन्तु इस बिन्दु के बाद से यह बढ़ने लगती है। दूसरे शब्दो मे, औसत परिवर्तनशील लागत रेखा (AVC-Curve) U-आकार की हो जाती है, जैसा कि चित्र न० ४ में दिखाया गया है।

औसत कुल लागत या औसत लागत (Average Total Cost or Average Cost)

कुल लागत (Total Cost) मे कुल उत्पादन का भाग देने से औसत कुल लागत (ATC) या औसत लागत (AC) प्राप्त होती है। संक्षेप म

$$\text{औसत कुल लागत (ATC or AC)} = \frac{\text{कुल लागत (TC)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$$

औसत कुल लागत रेखा (ATC Curve) भी U आकार की होती है। इसकी व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है। प्रथम, ATC के U-आकार की व्याख्या AFC तथा AVC रेखाओ की सहायता से की जा सकती है

चूँकि, $TC = TFC + TVC$ इसलिए $ATC \text{ (or } AC) = AFC + AVC$

दूसरे शब्दो मे, AFC-Curve तथा AVC Curve को जोड़ने से ATC Curve प्राप्त किया जा सकता है। चूँकि प्रारम्भ मे उत्पादन मे वृद्धि के साथ AFC तथा AVC दोनो रेखाएँ गिरती हैं, इसलिए प्रारम्भिक अवस्था मे ATC रेखा भी गिरेगी और एक बिन्दु पर निम्नतम हो जायगी जहाँ पर फर्म की उत्पादन-क्षमता का पूर्ण प्रयोग होने लगता है। इस बिन्दु के बाद उत्पादन बढ़ाने पर AFC तो गिरेगी परन्तु AVC रेखा ऊपर को चढ़ने लगती है, परन्तु AVC रेखा की ऊपर की ओर वृद्धि की गति AFC रेखा के नीचे गिरने की गति से अधिक होती है, ऐसी

स्थिति मे इन दोनो रेखाओ के योग का अर्थ है कि ATC रेखा ऊपर को चढने लगेगी। स्पष्ट है कि प्रारम्भ मे ATC नीचे गिरती है, एक निम्नतम बिन्दु पर पहुँचती है, और इसके बाद ऊपर को चढने लगती है, अर्थात् ATC रेखा U-आकार की होती है।

अभी तक हमने अल्पकालीन ATC (या AC) के U-आकार की साधारण व्याख्या AFC तथा AVC के शब्दो मे की है। परन्तु अब इस सम्बन्ध मे दूसरी प्रकार से अधिक विस्तृत तथा पर्याप्त व्याख्या देते हैं। उत्पादन के एक नीचे स्तर से यदि उत्पादन को बढाया जाय तो फर्मों को आन्तरिक बचतें अर्थात् श्रम बचतें (labour economies), बाजार बचतें (marketing economies), तथा प्रबन्धकीय बचतें प्राप्त होती हैं जिनके कारण प्रारम्भ मे औसत लागत (ATC) घटती है, अर्थात ATC या AC रेखा गिरती है। दूसरे शब्दो मे, अधिकाश उत्पादन के साधन उत्पादन के एक पर्याप्त विस्तृत स्तर पर अधिक कुशलता के साथ प्रयोग मे लाये जा सकते है, परन्तु उत्पादन के नीचे स्तर पर वे कम कुशलता के कार्य करते हैं क्योकि वे छोटे हिस्सो मे विभाजित नही किये जा सकते है—वे 'अविभाज्य' (indivisible) होते हैं। एक प्रबन्धक को काटकर दो हिस्से नही किये जा सकते तथा वर्तमान उत्पादन का आधा उत्पादन करने को नही कहा जा सकता। इसी प्रकार से जब एक प्लाण्ट का 'पूर्ण क्षमता' से कम प्रयोग किया जाता है तो उसका प्रयोग कुशलता के साथ नही किया जा सकता। टेकनीकल शब्दो मे, आन्तरिक बचतो का कारण है—'अविभाज्य उत्पत्ति के साधन' (indivisible factors of production) या सक्षेप मे, 'अविभाज्यताएँ' (indivisibilities)। इन अविभाज्यताओ के कारण ही प्रारम्भ मे ATC या AC रेखा गिरती है।[18]

उपर्युक्त विवरण मे यह स्पष्ट है कि एक निश्चित समय तक उत्पादन मे वृद्धि के साथ एक फर्म की 'अल्पकालीन औसत लागत रेखा' (AC) गिरेगी क्योकि 'अविभाज्य उत्पादन के साधनो' का भली प्रकार से प्रयोग होता है तथा अन्य आन्तरिक बचते प्राप्त की जा सकती हैं। परन्तु ATC (या AC) रेखा के गिरने की एक सीमा अवश्य होगी, उत्पादन का एक ऐसा स्तर अवश्य होगा जहाँ पर कि फर्म द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले उत्पादन के साधन पूर्ण कुशलता के साथ प्रयोग किये जा रहे हो तथा जहाँ पर ATC निम्नतम हो। ऐसी स्थिति उत्पादन के उस स्तर पर होगी जहाँ कि सब उत्पादन के साधन एक 'उचित' (right) या 'अनुकूलतम' (optimum) अनुपात मे प्रयोग किये जा रहे हो। ऐसे स्तर पर उत्पादन 'अनुकूलतम उत्पादन' (optimum output) कहा जाता है, क्योकि सभी उत्पादन के साधनो का अनुकूलतम प्रयोग (optimum use) किया जा रहा है, फर्म 'अनुकूलतम उत्पादन' उत्पन्न करेगी जबकि उसकी औसत लागत (AC) न्यूनतम (minimum) होगी।

जब 'अनुकूलतम उत्पादन' से अधिक उत्पादन किया जाता है तो औसत लागत (AC) बढेगी क्योकि अब 'अविभाज्य साधनो' का पूर्ण प्रयोग से भी अधिक प्रयोग किया जा रहा है। दूसरे शब्दो मे, उनका अन्य परिवर्तनशील साधनो के साथ गलत अनुपात मे प्रयोग किया जा रहा है। जिस प्रकार से औसत लागत (AC), 'अविभाज्य साधनो' के अच्छे प्रयोग से घटती है, उसी प्रकार से जब अविभाज्य साधनो का प्रयोग 'पूर्ण प्रयोग से अधिक' किया जाता है तो औसत लागत (AC) बढती है। [उदाहरणार्थ, जब उत्पादन अनुकूलतम को पार कर जाता है तो प्रबन्ध का क्षेत्र बढेगा तथा प्रबन्धकीय कुशलता गिरेगी। साहसी बहुत अधिक उत्पादन की उचित देखरेख करने मे असमर्थ रहेगा और प्रबन्धकीय समस्याएँ हाथ से बाहर निकल जायेंगी। प्रत्येक मशीन पर बहुत अधिक मजदूर होगे जो कि कुशलता की दृष्टि से उचित नही होगे। इन सब कारणो से 'अनुकूलतम उत्पादन' के बिन्दु के बाद से औसत लागत बढने लगती है।] स्पष्ट है कि उत्पादन

[18] 'अविभाज्यताओ' के सम्बन्ध मे केवल एक महत्वपूर्ण अपवाद है 'श्रम विभाजन' का। यह सत्य है कि उत्पादन मे वृद्धि के साथ 'श्रम-विभाजन' के कारण श्रम-कार्यकुशलता बढती है। अत. इस दृष्टि से यह कहना उचित नही होगा कि श्रम 'अविभाज्य' है।

मे वृद्धि के साथ प्रारम्भ मे AC रेखा गिरती है, एक निम्नतम बिन्दु पर पहुँच जाती है, तत्पश्चात् ऊपर को चढने लगती है। दूसरे शब्दो म, AC रेखा U आकार की होनी है, जैसा कि चित्र न० ४ मे दिखाया गया है।

ध्यान रहे कि AC रेखा के आकार का स्पष्ट सम्बन्ध 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' (Law of Variable Proportions) अर्थात् 'उत्पत्ति ह्रास नियम' से होता है। दूसरे शब्दो मे, AC रेखा प्रतिफल (returns) की तीनो स्थितियो—बढते, स्थिर तथा घटते हुए प्रतिफल—को बतानी है। प्रारम्भ म AC रेखा गिरती है अर्थात् 'लागत ह्रास नियम' (या उत्पत्ति वृद्धि नियम) लागू होता है AC रेखा के निम्नतम बिन्दु पर 'स्थिर लागत नियम' (या उत्पत्ति स्थिरता नियम) लागू होता है, तथा इस बिन्दु के बाद से 'लागत वृद्धि नियम' (या उत्पत्ति ह्रास नियम) लागू होता है।

सीमान्त लागत (Marginal Cost)

एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) के उत्पादन से कुल लागत मे जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं। दूसरे शब्दो म, एक अधिक इकाई के उत्पादन की अतिरिक्त लागत (additional cost) को सीमान्त लागत कहते हैं। माना किसी वस्तु की २ इकाइयो के उत्पादन की कुल लागत २७० रु० है, सीमान्त लागत (MC) को मालूम करने के लिए एक और इकाई अर्थात् तीसरी इकाई का उत्पादन किया जाता है, तीन इकाइयो की कुल लागत ३४० रु० है (देखिए तालिका पृष्ठ ७१ पर)। अत एक अतिरिक्त इकाई अर्थात् तीसरी इकाई की अतिरिक्त लागत (३४० रु०—२७० रु०)=७० रु० है। यह तीन इकाइयो की सीमान्त लागत हुई।

सीमान्त लागत को अल्पकाल मे कुल परिवर्तनशील लागत द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है। जब एक अतिरिक्त इकाई या अधिक इकाइयाँ उत्पादित की जाती हैं तो केवल परिवर्तनशील लागत मे ही परिवर्तन होगा, क्योकि अल्पकाल मे स्थिर लागतें तो स्थिर रहती हैं। अत हम 'कुल परिवर्तनशील लागत' (total variable cost) के शब्दों मे सीमान्त लागत को परिभाषित कर सकते है। अल्पकाल मे एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) मे जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं। [पृष्ठ ७१ पर दी गयी तालिका से स्पष्ट है कि यदि दो इकाइयो का उत्पादन किया जाता है तो TVC=१७० रु० और तीन इकाइयो की TVC=२४० रु०, इसलिए सीमान्त लागत (MC)=२४० रु०—१७० रु०=७० रु०। [कुल लागत (TC) की सहायता से भी सीमान्त लागत (MC) ७० रु० ही आती है।]

सीमान्त लागत रेखा (MC-Curve) भी U-आकार की होती है, जैसा कि चित्र न० ४ मे दिखाया गया है। MC-रेखा के U-आकार के होने की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। सीमान्त लागत (MC) कुल लागत (TC) या कुल परिवर्तनशील (TVC) मे परिवर्तन को बताती है। उत्पादन मे वृद्धि के साथ प्रारम्भ मे TC तथा TVC घटती दर से बढते हैं (देखिए पृष्ठ ६६ पर चित्र न० ३)। इसका अर्थ है कि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात् MC) पिछली इकाइयों की लागत की अपेक्षा कम होती जाती है अत प्रारम्भ मे MC गिरती है। जब TC तथा TVC की वृद्धि रुक जाती है तो इसका अर्थ है कि MC का कम होना रुक जाता है और वह न्यूनतम बिन्दु पर पहुँच जाती है। अन्त मे, TC तथा TVC बढती हुई दर से बढते हैं, अर्थात् प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की लागत (MC) पिछली इकाइयो की लागत से अधिक होती है, इसका अर्थ है कि MC बढती है। इस प्रकार MC रेखा प्रारम्भ मे गिरती है, न्यूनतम बिन्दु पर पहुँचती है और अन्त मे बढने लगती है, अर्थात् MC रेखा U-आकार की होती है।

MC-रेखा के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान मे रखनी चाहिए : (i) MC-रेखा AVC तथा ATC की अपेक्षा उत्पादन की कम मात्रा पर ही अपने निम्नतम बिन्दु पर पहुँच जाती है, तथा (ii) MC-रेखा AVC तथा ATC रेखाओ को नीचे से उनके निम्नतम बिन्दुओ पर काटती हुई

गुजरती है। [नं० (i) तथा (ii) के समझने के लिए देखिए चित्र नं० ४। [MC तथा ATC (व AVC) के सम्बन्ध की विस्तृत व्याख्या आगे की गयी है।]

सीमान्त लागत तथा औसत लागत में सम्बन्ध (Relation between Marginal Cost and Average Cost)

सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC) घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होती है; इनके सम्बन्ध को चित्र नं० ५ में दिखाया गया है। दोनों में सम्बन्ध इस प्रकार है :

(i) जब MC गिरती है तो MC कम होगी AC से। चित्र नं० ५ में AC रेखा A से B तक गिर रही है, अतः इस समस्त क्षेत्र में MC, AC से नीचे अर्थात् कम है। दूसरे शब्दों में, जब तक MC, AC से कम है, तब तक (उत्पादन में वृद्धि के साथ) AC गिरती जायेगी।

(ii) जब AC बढ़ती (rising) है तो MC भी बढ़ती है और यह AC से अधिक होती है। चित्र नं० ५ में AC रेखा B से C तक चढ़ रही है, अतः MC, AC के ऊपर (अर्थात् उससे अधिक) है। दूसरे शब्दों में, जब तक MC, AC से अधिक होगी, तब तक AC में वृद्धि होगी।

नोट—परन्तु उपर्युक्त सम्बन्धों के बारे में एक बात ध्यान रखने की है। जब औसत लागत (AC) बढ़ रही हो तो यह आवश्यक नहीं है कि MC भी सदैव जरूर बढ़ेगी। इसी प्रकार यदि AC गिर रही हो तो यह आवश्यक नहीं है कि MC भी सदैव जरूर गिरेगी। चित्र नं० ५ में OL_1 तथा OL_2 उत्पादन की मात्राओं के बीच (अर्थात् L_1L_2 उत्पादन मात्रा पर) AC गिर रही है, परन्तु MC गिरती नहीं बल्कि बढ़ रही है परन्तु MC बढ़ने पर भी AC से कम है।

चित्र—५

(iii) यदि AC स्थिर (constant) है, तो MC=AC तथा MC रेखा AC रेखा को नीचे से उसके निम्नतम बिन्दु (lowest point) पर काटेगी। चित्र नं० ५ में 'B' बिन्दु पर AC क्षणिक रूप से स्थिर (momentarily constant) है अर्थात् 'B' बिन्दु पर AC एक पड़ी रेखा (horizontal line) होगी, अतः इस बिन्दु पर MC=AC। चित्र से स्पष्ट है कि MC, AC को उसके निम्नतम बिन्दु B पर काटती है।
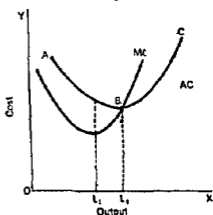
MC तथा AVC में भी उपर्युक्त तीनों सम्बन्ध पाये जाते हैं।

अब हम उपर्युक्त तीनों सम्बन्ध की व्याख्या करते हैं :

(i) पहले सम्बन्ध को लीजिए। पहला सम्बन्ध है कि जब MC, AC से कम है, तो AC गिरती है। MC का AC से कम होने का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के परिणाम-स्वरूप कुल लागत में जो वृद्धि होती है वह पिछली औसत लागत (previous average cost) से कम है। परन्तु जब कोई संख्या जो कि पहले या पिछले औसत से कम है, संख्याओं के एक समूह में जोड़ी जाती है और नया औसत निकाला जाता है, तो नया औसत पिछले औसत से कम होगा। इसी कारण जब MC, AC से कम होती है तो AC गिरती है।[17] [एक संख्यात्मक उदाहरण लीजिए।

[17] "When a number less than the old average is added to a group of figures and a new average calculated, the new average is less than the old average. For this reason, when MC is less than AC, AC must fall."

माना एक व्यक्ति क्रिकेट के तीन खेलो म से प्रत्येक मे १० रन बनाता है, तो तीन खेलो के रनो का औसत=(१०+१०+१०) /३=१० रन। यदि वह चौथे खेल मे ४ रन बनाता है, जो कि पिछले औसत मे कम है, तो अब नया औसत=(१०+१०+१०+४)/४=८.५ रन। स्पष्ट है कि नया औसत पिछले औसत से कम है। इसी प्रकार जब तक MC, AC से कम रहेगी तब तक AC गिरेगी।]

(ii) दूसरा सम्बन्ध है कि जब MC, AC से अधिक है, तो AC बढ़ेगी। MC का AC से अधिक होने का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के परिणामस्वरूप कुल लागत म जो वृद्धि होती है वह पिछली औसत लागत से अधिक है। परन्तु जब कोई संख्या जो कि पिछले औसत से अधिक है, संख्या के एक समूह म जोड़ी जाती है और नया औसत निकाला जाता है, तो नया औसत पिछले औसत से अधिक होगा। इसी कारण जब MC, AC से अधिक होती है, तो AC बढ़ती हुई होनी है।[18] (*उदाहरणार्थ, माना कि एक व्यक्ति के तीन खेलों के रनों का* औसत=(१०+१०+१०) /३=१० रन। यदि वह चौथे खेल म १८ रन बनाता है जो कि पिछले औसत से अधिक है, तो नया औसत=(१०+१०+१०+१८) /४=१२ रन। स्पष्ट है कि नया औसत पुराने औसत से अधिक है। इस प्रकार जब तक MC, AC से अधिक है, तब तक AC बढ़ती)।

(iii) जब MC=AC, तो इसका *अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के* परिणामस्वरूप कुल लागत मे जो वृद्धि होगी वह पिछली औसत लागत के बराबर होगी। ऐसी स्थिति म पुरानी औसत लागत तथा नयी औसत लागत समान होगी, अर्थात् ऐसी स्थिति मे AC रेखा एक पड़ी रेखा होगी और यही रेखा MC को भी व्यक्त करेगी क्योंकि MC=AC।
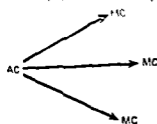
चित्र--६

औसत तथा सीमान्त लागत के सम्बन्ध को याद रखने के लिए एक *चित्र भी दिया जाता है। चित्र न० ६ म जब* MC, AC के ऊपर (अर्थात अधिक) है तो AC बढ़ेगी, क्योंकि MC, AC को ऊपर को अपनी ओर खींचती है। इसी प्रकार जब MC, AC के नीचे (अर्थात् कम) है तो AC गिरेगी, क्योंकि MC, AC को नीचे को अपनी ओर खींचती है। जब MC वही है जो कि AC, तो AC पहले के समान ही रहती है, क्योंकि MC, AC को *अपनी ओर सीधे (horizontally)* खींचती है। परन्तु इस सम्बन्ध मे यह नहीं भूलना चाहिए कि जब AC बढ़ रही हो या घट रही हो तो यह सदैव आवश्यक नहीं है कि MC भी बढ़े या घटे यद्यपि सामान्यतया ऐसा ही होता है।

(iv) तीसरे सम्बन्ध के बारे मे एक बात और है कि सीमान्त लागत (MC), AC को सदैव उसके निम्नतम बिन्दु पर काटती है। ऐसा क्यों होता है? इसको साधारण रूप से इस प्रकार *समझाया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि जब AC गिर रही है तो* MC, AC के नीचे रहती है। इसी प्रकार से जब AC बढ़ रही है तो MC, AC से अधिक होती है। अत उस क्षण पर जबकि AC गिरना बन्द कर देती है, परन्तु उसने अभी बढ़ना आरम्भ नहीं किया है, तो MC रेखा AC रेखा के निम्नतम बिन्दु से होकर गुजरती है, ताकि वह AC से ऊपर रह सके जबकि AC बढ़ना प्रारम्भ करे।[19]

---

[18] "When a number greater than the old avarage is added to a group of figures and a new average is calculated, the new average exceeds the old average *For this reason when MC* is greater than AC AC must be rising or increasing "

[19] "As we have seen when average cost is falling marginal cost is below average cost Similarly when average cost is rising marginal cost is greater than average cost So at the moment when average cost stops falling but has not yet begun to rise the marginal cost curve passes through the average cost curve (at its lowest point) in order to be above it when average cost starts to rise again "

सीमान्त लागत का महत्व

मूल्य सिद्धान्त (Price-theory) मे MC का विचार का आधारभूत महत्त्व है । सीमान्त आय (MR)[20] के साथ MC का विचार यह बताता है कि किस बिन्दु पर एक फर्म अपनी वस्तु का मूल्य तथा उत्पादन निश्चित करेगी । प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है । इस दृष्टि से फर्म अपनी वस्तु को उस बिन्दु तक उत्पादित करेगी जहाँ पर कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आय अर्थात् (MR), उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन लागत (अर्थात् MC) के बराबर हो जाये । यहाँ पर उसके लिए लाभ को अधिकतम करने की सारी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं । सक्षेप मे, प्रत्येक उत्पादक उस बिन्दु पर मूल्य तथा उत्पादन निश्चित करेगा जहाँ पर MR, MC के बराबर हो जाती है ।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार, MC का कोई व्यावहारिक महत्त्व नही होता क्योंकि व्यवहार मे व्यापारी तथा उद्योगपति इस विचार को नही जानते और न इसका प्रयोग करते हैं । इस विचारधारा के प्रवर्तक (propounders) आक्सफोर्ड के अर्थशास्त्री हाल तथा हिच (Hall and Hitch) हैं । इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार, व्यापारी तथा उद्योगपति मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करते समय सीमान्त लागत (MC) को नही बल्कि 'पूर्ण औसत लागत' (full average cost) को ध्यान मे रखते हैं, इस विचारधारा को 'पूर्ण लागत सिद्धान्त' (Full Cost Principle) के नाम से पुकारा जाता है । परन्तु इस सिद्धान्त का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है । अभी भी अधिकाश अर्थशास्त्री मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण मे सीमान्त लागत (MC) के विचार को ही मान्यता देते हैं ।

दीर्घकालीन लागतें
(LONG-RUN COSTS)

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा

दीर्घकालीन वह समय है जिसमे उत्पादन-यन्त्रो तथा उत्पादन के पैमाने को बदला जा सकता है । अत दीर्घकाल मे कोई स्थिर लागतें नही रहती, सब लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं । अत दीर्घकाल मे केवल कुल औसत लागत रेखा (ATC or AC Curve) तथा सीमान्त लागत रेखा (MC-Curve) ही रह जाती है ।

अल्पकाल मे स्थिर साधनो के समूह या स्थिर प्लाण्ट (fixed plant) के साथ परिवर्तनशील साधनो का अधिक प्रयोग करके उत्पादन को बढाया जा सकता है । अल्पकाल मे एक स्थिर प्लाण्ट से सम्बन्धित एक निश्चित उत्पादन के लिए एक अल्पकालीन औसत लागत रेखा (short run average cost curve अर्थात् SAC-Curve) होगी, इस प्रकार से प्रत्येक प्लाण्ट से सम्बन्धित उत्पादन के लिए भिन्न भिन्न अल्पकालीन औसत लागत रेखाएँ होगी । अल्पकालीन औसत लागत रेखाओ को SAC_1, SAC_2, SAC_3 द्वारा चित्र न० ७ मे दिखाया गया है । (सुविधा के लिए केवल तीन SAC रेखाएँ ही दिखायी गयी हैं, वास्तव मे उनकी सख्या बहुत अधिक होती है ।

अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं (SAC-Curves) को स्पर्श करती हुई यदि एक रेखा खींची जाये तो 'दीर्घकालीन औसत लागत रेखा' प्राप्त हो जाती है । चित्र न० ७ मे LAC

---

[20] सीमान्त आय (marginal revenue) के विचार की व्याख्या इसी अध्याय मे आगे की गयी है ।

रेखा दीर्घकालीन लागत रेखा है। दीर्घकालीन औसत लागत रेखा यह बताती है कि उत्पादन के पैमाने (scale of production) में परिवर्तन होने से औसत लागत किस प्रकार परिवर्तित होती है।

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC) के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए

(१) चूंकि दीर्घकालीन औसत रेखा (LAC) सब अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं (SAC-Curves) को ढंक लेती है (अर्थात् envelope कर लेती है) इसलिए इसको 'आवरण' (envelope) भी कहते हैं।

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC) केवल एक अल्पकालीन औसत लागत रेखा को छोड़कर अन्य सभी अल्पकालीन औसत रेखाओं (SAC-Curves) को उनके निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करती। चित्र नं० ७ में LAC रेखा केवल एक अल्पकालीन औसत रेखा SAC_2 को उसके निम्नतम बिन्दु P पर स्पर्श करती है।

चित्र—७

दीर्घकालीन औसत लागत रूपी आवरण पर प्रत्येक बिन्दु किसी न किसी अल्पकालीन औसत रेखा पर भी होता है।[1]
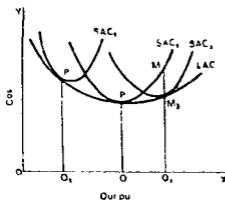
(२) दीर्घकालीन नीति निर्धारित करते समय एक फर्म भविष्य में सम्भावित व्यापार को ध्यान में रखते हुए कुशलतम प्लाण्ट का निर्माण करने की योजना (plan) बनाना चाहेगी। इस दृष्टि से दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC Curve) यह बताती है कि सर्वश्रेष्ठ सम्भावनाएँ क्या हैं। अतः इसको कभी-कभी 'योजना रेखा' (planning curve) भी कहते हैं।

(३) अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं की भाँति **दीर्घकालीन औसत लागत रेखाएँ भी U-आकार की होती हैं, परन्तु वे अपेक्षाकृत अधिक चपटी (flat) होती हैं।** जितना लम्बा समय होगा उतना ही औसत लागत रेखा का U-आकार कम गहरा (less pronounced) होगा अर्थात् अधिक चपटा होगा। दीर्घकालीन लागत रेखा (LAC) के अधिक चपटे (flat) होने का अर्थ है कि *लागत में वृद्धि या कमी की दर, अल्पकाल में लागतों की अपेक्षा कम होती है।*

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा का प्रारम्भिक भाग बड़े पैमाने की 'आन्तरिक बचतों' के कारण नीचे को गिरता है, एक बिन्दु (चित्र नं० ७ में P बिन्दु) पर वह न्यूनतम हो जाती है, तत्पश्चात् वह चढ़ने लगती है। ऊपर चढ़ने का कारण है बड़े पैमाने की 'आन्तरिक अबचतों' का प्राप्त होना।

---

[1] "Every point on an 'envelope' long-run cost curve is also a point on one of the short run cost curves which it envelopes."

(४) दीर्घकाल में सभी उत्पादन के साधन परिवर्तनशील होते हैं और फर्मों के लिए प्लाण्टों के आकारों को पूर्णतया समायोजित (adjust) करने का समय रहता है, इसलिए दीर्घकालीन औसत लागत रेखा विभिन्न मात्राओं (output) के उत्पादन की सम्भावित न्यूनतम औसत लागत को बताती है। [यह बात इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है। माना कि किसी समय एक उत्पादक लागत रेखा SAC_2 के अन्तर्गत OQ मात्रा का उत्पादन कर रहा है, [चित्र ७] उत्पादन को OQ से बढ़ाकर OQ_1 करना चाहता है। यदि वह उत्पादन के पुराने पैमाने (अर्थात् SAC_2) के अन्तर्गत ही उत्पादन करता है तो औसत लागत MQ_1 होगी। माना कि वह उत्पादन के पैमाने को बदल देता है और नयी अल्पकालीन लागत रेखा SAC_3 है। SAC_3 के अनुसार OQ_1 उत्पादन M_1Q_1 औसत लागत पर किया जा सकेगा जोकि MQ_1 से कम है। M_1 बिन्दु LAC पर भी है क्योंकि इस बिन्दु पर SAC_3 तथा LAC स्पर्श करते हैं स्पष्ट कि LAC रेखा OQ_1 उत्पादन की न्यूनतम लागत को बताती है। इस प्रकार दीर्घकालीन औसत लागत रेखा प्रत्येक सम्भावित उत्पादन की मात्रा के लिए न्यूनतम सम्भावित लागत (lowest possible cost) को बताती है।]
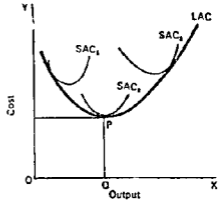
चित्र—८

(५) LAC के कुछ अन्य रूप (other forms) भी हो सकते हैं

(i) चित्र नं० ८ म LAC का आकार एक ऐसी फर्म को बताता है, जिसका 'अनुकूलतम आकार' (optimal size) छोटा है। दूसरे शब्दों में, फर्म को उत्पादन के थोड़े क्षेत्र (range) तक ही बचतें (economies) प्राप्त होती ह और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत (minimum long run average cost), जो कि चित्र मे P बिन्दु बताता है, शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है, उत्पादन की थोड़ी मात्रा के बाद ही औसत लागत बढ़ने लगती है। इसके उदाहरण हैं कृषि तथा भूमि से निकालने वाले व्यवसाय (extractive industries)।
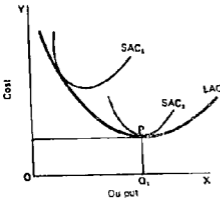
चित्र—९

(ii) चित्र नं० ९ मे LAC रेखा का आकार एक ऐसी फर्म को बताता है जिसका 'अनुकूलतम आकार' बड़ा है। दूसरे शब्दों मे, फर्म को उत्पादन के एक बड़े क्षेत्र (over a wide range of production) तक पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत, जो कि चित्र मे P बिन्दु बताता है, बहुत देर से प्राप्त होती है, उत्पादन की बहुत बड़ी मात्रा के बाद ही औसत लागत बढ़ना शुरू होती है।

(iii) LAC रेखा एक पड़ी हुई रेखा हो सकती है जैसा कि चित्र नं० १० मे दिखाया गया है। इसका अर्थ है कि उत्पादन 'लागत समता नियम' (Law of Constant Cost) के

अन्तर्गत हो रहा है। पड़ी हुई LAC रेखा का थोड़ा भिन्न रूप भी हो सकता है जैसा कि चित्र नं० ११ मे दिखाया है।
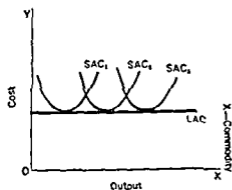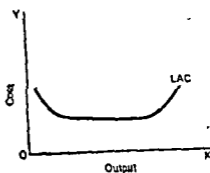
चित्र—१० चित्र—११

दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा दीर्घकालीन औसत लागत मे सम्बन्ध (*Relation between* Long-run Marginal Cost and Long-run Average Cost)

दीर्घकालीन सीमान्त लागत (Long-run Marginal Cost अर्थात् LMC) रेखा भी U-आकार की होती है। दीर्घकाल मे स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत का अन्तर समाप्त हो जाता है, सभी लागतें परिवर्तनशील होती हैं, कुल परिवर्तनशील लागत तथा कुल लागत एक ही हो जाती हैं। अतः दीर्घकाल मे सीमान्त लागत (MC) को परिवर्तनशील लागत (VC) के शब्दों मे व्यक्त या परिमापित नही किया जा सकता। दीर्घकाल में एक इकाई के उत्पादन से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) कहते हैं।
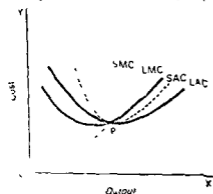
चित्र—१२

दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) तथा दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) मे बिलकुल वही सम्बन्ध होता है जो अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) तथा अल्पकालीन औसत लागत (SAC) मे होता है। चित्र न० १२ से स्पष्ट है कि जब LAC गिरती है तो LMC उससे कम होती है, LAC के न्यूनतम बिन्दु P पर LMC बराबर हो जाती है तथा इसके पश्चात् LAC बढ़ती है और LMC उससे अधिक रहती है। चित्र न० १२ मे SAC तथा SMC अल्पकालीन औसत लागत और अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखाएँ हैं। चित्र से स्पष्ट है कि P बिन्दु पर LAC=LMC=SAC=SMC।

आगम (या आय) का विचार
(THE CONCEPT OF REVENUE)

प्रत्येक उत्पादक या फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। चूंकि लाभ उत्पादन लागत तथा विक्रय राशि के अन्तर के बराबर होता है, इसलिए अधिकतम लाभ इस

बात पर निर्भर करेगा कि यथासम्भव लागत कम की जाय तथा बिक्री अधिक। यदि लागत दी हुई है तो लाभ बिक्री से प्राप्त कुल आय या आगम पर निर्भर करेगा, ;जितनी अधिक बिक्री होगी और जितना अधिक आय या आगम (revenue) प्राप्त होगा, उतना ही अधिक लाभ अर्जित किया जा सकेगा। अर्थशास्त्री 'आगम' (revenue) शब्द को प्राय तीन अर्थों म प्रयोग करते हैं, 'कुल आगम' (total revenue), 'औसत आगम' (average revenue) तथा 'सीमान्त आगम' (marginal revenue)।

कुल आगम, औसत आगम तथा सीमान्त आगम को निम्न तालिका मे व्यक्त किया गया है

उत्पादन की मात्रा (Output)	कुल आगम (Total Revenue) (रुपये मे)	औसत आगम (Average Revenue) (रुपये मे)	सीमान्त आगम (Marginal Revenue)
१	१०	१०	१०
२	१८	९	८
३	२४	८	६
४	२८	७	४
५	३०	६	२
६	३१	५'१६	१

कुल आगम (Total Revenue)

एक फर्म अपने उत्पादन की एक निश्चित मात्रा को बेचकर जो कुल धन-राशि (sale proceeds or receipts) प्राप्त करती है उसे कुल आगम (Total Revenue, *i e*, TR) कहते हैं। यदि फर्म ३ इकाइयों को बाजार मे बेचकर २४ रु० प्राप्त करती है (देखिए उक्त तालिका) तो २४ रु० कुल आगम (TR) होगा यदि वह ५ इकाइयों को बेचकर ३० रु० प्राप्त करती है तो ३० रु० कुल आगम होगा।

'कुल आगम' को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा को कीमत से गुणा करके कुल कीमत यानी कुल आगम (TR) प्राप्त किया जाता है। उदाहरणार्थ, वस्तु की ३ इकाइयाँ बेची जाती है और प्रति इकाई कीमत ८ रु० है तो कुल आगम $=३\times८=२४$ रु० है, अर्थात्

कुल आगम (Total Revenue) = वस्तु की मात्रा (Quantity) × कीमत (Price)।

औसत आगम (Average Revenue)

बिक्री से प्राप्त कुल आगम (TR) मे वस्तु की कुल बेची गयी मात्रा का भाग देने से 'औसत आगम' प्राप्त होता है। सक्षेप मे,

$$\text{औसत आगम (AR)} = \frac{\text{कुल आगम (TR)}}{\text{उत्पादन की मात्रा (Output)}}$$

उदाहरणार्थ, यदि ३ इकाइयों का कुल आगम (TR) २४ रु० है तो औसत आगम $(AR) = \frac{२४}{३} = ८$ रु०। वास्तव मे, यह ८ रु० एक इकाई की कीमत (price) हुई। अत 'औसत आगम' (AR) तथा वस्तु की 'कीमत' एक ही बात है। इस प्रकार औसत आगम (AR)

उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर वस्तु की कीमत बताता है। (उक्त तालिका से स्पष्ट है कि यदि उत्पादन का स्तर ३ इकाई है तो AR अर्थात् कीमत ८ रु० है, यदि उत्पादन का स्तर ५ इकाई है तो AR या कीमत ६ रु० है।)

औसत आगम रेखा (AR-curve) को मांग रेखा (Demand curve) भी कहा जाता है। मांग रेखा वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा तथा कीमत मे सम्बन्ध को बताती है। एक क्रेता
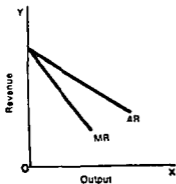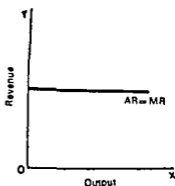
चित्र—१३ चित्र—१४

किसी वस्तु के लिए जो 'कीमत' देता है वह फर्म की दृष्टि से 'औसत आगम' (AR) है। AR रेखा यह बताती है कि फर्म की वस्तु की विभिन्न मात्राओं को बेचने से कितनी कीमत या औसत आगम मिलेगा, अत AR रेखा को मांग-रेखा कहा जाता है। कुछ अर्थशास्त्री AR-रेखा को मांग रेखा के स्थान पर 'विक्रय रेखा' (sales curve) कहना अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि यह विभिन्न कीमतो (या औसत आगमो) पर फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की बिक्री की मात्राओं को बताती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect competiton) मे, चाहे उसका कोई भी रूप हो, एकाधिकारी प्रतियोगिता, अल्पाधिकार या एकाधिकार हो, AR रेखा नीचे को गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र न० १३ मे दिखाया गया है। गिरती हुई AR-रेखा बताती है कि अपूर्ण प्रतियोगिता मे यदि एक फर्म अपनी वस्तु की अधिक इकाइयाँ बेचना चाहती है तो वह पहले की अपेक्षा कम कीमत पर बेच पायेगी, अर्थात् अधिक उत्पादन बेचने के लिए फर्म को अपनी वस्तु की कीमत कम करनी पड़ेगी।[2]

पूर्ण प्रतियोगिता (perfect competition) मे AR रेखा पडी रेखा (horizontal line) होती है जैसा कि चित्र न० १४ मे दिखाया गया है। पडी हुई AR रेखा का अर्थ है कि एक दी हुई कीमत पर फर्म अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा बेच सकती है, अधिक मात्रा बेचने के लिए उसे कीमत कम नहीं करनी पडती। (पूर्ण प्रतियोगिता मे वस्तु एकरूप होती है तथा क्रेताओं और विक्रेताओ की सख्या बहुत अधिक होती है, इसलिए कोई भी विक्रेता अपनी कार्यवाहियो से वस्तु की कीमत को प्रभावित नही कर सकता, वह कीमत को दिया हुआ मान लेता है और उस कीमत पर जितनी मात्रा बेचना चाहे, बेच सकता है।)

[2] इसका कारण अपूर्ण प्रतियोगिता के अर्थ मे ही निहित है। अपूर्ण प्रतियोगिता मे प्रत्येक फर्म या तो पूर्ति का एक बडा भाग उत्पादित करती है अथवा किसी विशेष प्रकार या ब्राण्ड की वस्तु उत्पादित करती है, ऐसी स्थिति मे यदि वह वस्तु की अधिक मात्रा बेचना चाहती है तो उसे कीमत कम करनी पडेगी अन्यथा वह वस्तु की अधिक मात्रा नहीं बेच पायेगी।

अध्याय ६ की परिशिष्ट
(APPENDIX TO CHAPTER 6)

सीमान्त आगम, औसत आगम तथा लोच*
(MARGINAL REVENUE, AVERAGE REVENUE AND ELASTICITY)

सीमान्त आगम तथा औसत आगम मे सम्बन्ध (Relation between Marginal Revenue and Average Revenue)

सीमान्त आगम (MR) तथा औसत आगम (AR) के सम्बन्ध के बारे म निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए

चित्र—१५

(i) जब तक औसत आगम रेखा (AR-curve) गिरती है तब तक सीमान्त आगम (MR) औसत आगम (AR) से कम होगी। MR रेखा परिस्थितियो के अनुसार, स्वय बढ़ती हुई (rising), गिरती हुई या पड़ी हुई (horizontal) हो सकती है परन्तु सामान्यतया वह भी गिरेगी।

(ii) जब AR तथा MR दोनो गिरती हुई सीधी रेखाएँ (falling straight lines) होती हैं तो AR-रेखा के किसी भी बिन्दु से Y-axis पर डाले गये लम्ब (perpendicular) को MR-रेखा उसके मध्य पर काटेगी। चित्र न० १५ मे लम्ब FE को MR रेखा उसके मध्य-बिन्दु B पर काटती है। [इस सम्बन्ध को गणित द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।]

(iii) जब AR-रखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave to the origin) होती है (जैसे कि चित्र म १६ मे दिखाया गया है), तो Y-axis पर खीचे गये, किसी भी लम्ब को MR-रेखा AR-रेखा की ओर आधी दूर से कम (less than half way to the AR curve) पर काटती है। चित्र न० १६ मे लम्ब FE को MR-रेखा B बिन्दु पर काटती है, B बिन्दु Y-axis से AR रेखा की ओर आधी दूरी से कम है।

चित्र—१६

चित्र—१७
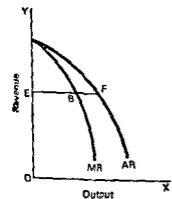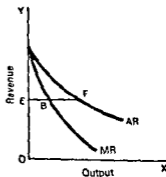
* विद्यार्थियों लिए नोट—विभिन्न विश्वविद्यालयों के (डिग्री) पाठ्यक्रमो के अनुसार परिशिष्ट की विषय-सामग्री को विद्यार्थियों द्वारा छोड़ा जा सकता है।

(iv) जब AR-रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex to the origin) होती है (जैसा कि चित्र न० १७ मे दिखाया गया है), तो Y-axis पर खीचे गये किसी भी लम्ब को MR-रेखा AR-रेखा की ओर आधी दूरी से अधिक (more than half way to the AR-curve) पर काटती है। चित्र न० १७ मे लम्ब FE को MR रेखा B बिन्दु पर काटती है, B बिन्दु Y-axis से AR रेखा की ओर आधी दूरी से अधिक है।

औसत आगम, सीमान्त आगम तथा मांग की लोच मे सम्बन्ध (Relation amongst Average Revenue, Marginal Revenue and Elasticity of Demand)

उत्पादन के किसी भी स्तर पर औसत आगम, सीमान्त आगम तथा मांग की लोच मे सम्बन्ध मालूम किया जा सकता है। यह सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है।

चित्र—१८

चित्र न० १८ मे DD मांग-वक्र या AR-वक्र है। इसके किसी बिन्दु F पर ST स्पर्श रेखा खीची गयी है। ST रेखा को भी मांग रेखा या AR-रेखा माना जाता है, तथा F बिन्दु पर DD तथा ST दोनों की मांग की लोच समान होगी। AR-रेखा से सम्बन्धित MR-रेखा SN है।
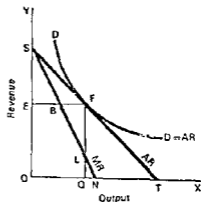
बिन्दु F पर (जो कि OQ मात्रा से सम्बन्धित है) मांग की लोच

$$e=\frac{\text{नीचे का भाग (lower sector)}}{\text{ऊपर का भाग (upper sector)}}$$

$$=\frac{FT}{FS}$$

$$=\frac{FQ}{SE}$$ [∵ △s ESF तथा QFT समकोणीय (equi-angular) हैं]

$$=\frac{FQ}{FL}$$ [∵ △s SEB तथा BFL सब तरह से समान हैं]

∴ SE=FL]

$$=\frac{FQ}{FQ-LQ}$$

$$=\frac{\text{Average Revenue}}{\text{Average Revenue}-\text{Marginal Revenue}}$$

अर्थात् $e=\dfrac{A}{A-M}$ जबकि A=Average Revenue
M=Marginal Revenue
e=Elasticity of Demand

या $eA-eM=A$

या $-eM=A-eA$

या $eM=eA-A$

या $M=\dfrac{eA-A}{e}$

यदि औसत लागत चढ

by examples and diagrams
are falling and more than
(*Punjab*, 1967)

या $$M = A \times \frac{e-1}{e}$$

ऊपर एक स्थान पर हम देखते हैं कि

$$eM = eA - A$$

या $$eA - A = eM$$

या $$A(e-1) = eM$$

या $$A = M \times \frac{e}{e-1}$$

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर तीन मुख्य समीकरण इस प्रकार हैं

1 $$e = \frac{A}{A-M}$$

2 $$M = A \times \frac{e-1}{e}$$

3 $$A = M \times \frac{e}{e-1}$$

उपयुक्त समीकरणों से स्पष्ट है कि e (माँग की लोच), M (सीमान्त आगम) तथा A (औसत आगम) में से कोई भी दो मूल्य (values) दिये हैं तो तीसरा मालूम किया जा सकता है।

प्रश्न

१. वास्तविक लागत तथा अवसर लागत में अन्तर बताइए तथा अवसर लागत के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
Distinguish between real cost and opportunity cost and explain the doctrine of opportunity cost. *(Raj, 1970; Gorakh, 1966, Agra, 1960)*

२. उत्पादन की लागतों का विश्लेषण करते हुए अवसर लागत के अर्थ तथा महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
Analyse the cost of production so as to bring out clearly the mear and significance of opportunity cost.

[संकेत—पहले द्राव्यिक लागत तथा वास्तविक लागत (क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार) की बहुत संक्षेप में विवेचना कीजिए, तत्पश्चात् अवसर लागत के अर्थ तथा महत्त्व और सीमाओं को बताइए।)

३. प्रमुख लागत तथा अनुपूरक लागत में अन्तर कीजिए। मूल्य के सिद्धान्त में इस अन्तर का क्या महत्त्व है?
Distinguish between prime and supplementary costs. What is the importance of this distinction in the theory of value? *(Raj, 1966; Agra, 1963)*

४. अल्पकाल तथा दीर्घकाल में औसत लागत वक्र के व्यवहार की विवेचना कीजिए। चित्रों की सहायता से इनके आकार में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए।
Discuss the behaviour of Average Cost Curve in the short period and long period. Explain with the help c diagrams the changes that occur in its shape *(Sagar, 1965)*

[संकेत—अल्पकाल में औसत लागत रेखा के व्यवहार के लिए ...िए 'औसत कुल लागत या औसत लागत' नामक शीर्षक की विषय- Outpu (पृष्ठ ७२ पर)। तत्पश्चात् दीर्घकालीन औसत लागत रेखा के लिए चित्र—१६ 'दीर्घकालीन औसत लागत रेखा' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण ...ग्री, चित्र न० ७, ८, ९, १० तथा ११ सहित।]

* विद्यार्थियों लिए नोट—
की विषय-सामग्री को विच

५ औसत और सीमान्त लागत रेखाओ के बीच रेखागणित सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
Elucidate the geometrical relationship between the Average and Marginal cost curves
(*Bihar* 1966 A)

६ उत्पादन की सीमान्त और औसत लागत का क्या अर्थ है ? बताइए कि मूल्य निर्धारण में उनका कैसे प्रयोग किया जाता है ?
What is meant by Marginal and Average Cost of Production ? Show how are they used in the determination of price ? (*Allahabad* 1966)

[सकेत—दूसरे भाग के उत्तर म बताइए कि सीमान्त लागत (MC), सीमान्त आगम (MR) के साथ मिलकर एक फर्म के साम्य की स्थिति को निर्धारित करती है। पूर्ण प्रतियोगिता, अपूर्ण प्रतियोगिता (या एकाधिकारी प्रतियोगिता) तथा एकाधिकार सभी स्थितियों में एक फर्म अपनी वस्तु का मूल्य व उत्पादन उस विन्दु पर निर्धारित करती है जहाँ पर कि MR=MC के होती है, चूंकि यह दशा सभी स्थितियों में लागू होती है इसलिए इसे एक फर्म के साम्य की सामान्य दशा कहते हैं। इस दशा के पूरे होने पर फर्म के लिए अपने लाभ को अधिकतम करने (या अपनी हानि को न्यूनतम करने) की सभी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती है अर्थात् फर्म साम्य की स्थिति में हो जाती है। उदाहरण के लिए, 'हम पूर्ण प्रतियोगिता' की स्थिति को लेकर चलते हैं। इतना लिखने के बाद MR=MC की दशा की पूर्ण व्याख्या कीजिए, इसके लिए देखिए अगला अध्याय अर्थात् अध्याय ७ में 'फर्म का साम्य—सीमान्त और औसत रेखाओ की रीति' नामक केन्द्रीय शीर्षक (central heading)) के अन्तर्गत step no 1—'फर्म के साम्य की सामान्य दशा MR=MC' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।

यद्यपि एक फर्म की वस्तु का मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण MR तथा MC रेखाओ द्वारा होता है, फर्म की लाभ तथा हानि की स्थिति को जानने के लिए हम औसत लागत (AC) को औसत आगम (AR) से तुलना करके ज्ञात करते हैं, चाहे पूर्ण प्रतियोगिता हो या अपूर्ण प्रतियोगिता (या एकाधिकारी प्रतियोगिता) या एकाधिकार। यदि AC कम है AR (अर्थात् Price) से तो फर्म को लाभ होगा, यदि AC=AR के है तो फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा, यदि AC अधिक है AR से तो फर्म को हानि होगी।। इन तीनो स्थितियों को हम उदाहरण के रूप में, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में 'एक फर्म के साम्य' की विवचना करके स्पष्ट कर सकते है। इतना लिखने के बाद अध्याय ७ में 'अल्पकाल में फर्म का साम्य' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री को सक्षेप मे लिखिए।]

७ औसत और सीमान्त लागतों के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए तथा एक फर्म के सन्तुलन-विश्लेषण मे इसके महत्व की विवेचना कीजिए।
Distinguish between average and marginal cost and discuss the significance of this distinction in the analysis of firm s equilibrium (*Punjab* 1965)

[सकेत—इसका उत्तर वही होगा जो कि प्रश्न न० ६ का है।]

८ औसत तथा सीमान्त लागतो के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए तथा उदाहरणों और चित्रों की सहायता से बताइए कि सीमान्त लागतें औसत लागतो से कम होंगी यदि औसत लागतें गिर रही हैं, तथा सीमान्त लागतें औसत लागतो से अधिक होंगी यदि औसत लागतें चढ रही हैं।
Distinguish between average and marginal costs and show by examples and diagrams that *marginal costs are less* than average costs if average cost are falling and more than average cost if average costs are rising (*Punjab*, 1967)

[संकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग में औसत लागत और सीमान्त लागत के अर्थों को बताइए। दूसरे भाग में औसत लागत और सीमान्त लागत के सम्बन्ध को बताइए, देखिए 'सीमान्त लागत तथा औसत लागत में सम्बन्ध' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

९. कारण सहित स्पष्ट कीजिए कि उद्योग के उत्पादन में वृद्धि के साथ सीमान्त लागत पहले गिरती है और तत्पश्चात् बढ़ती है।

Give reasons why Marginal Costs might, at first fall and then rise as the output in the industry expands (*Punjab*, 1966)

[संकेत—इसके उत्तर के लिए देखिए 'सीमान्त लागत' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री।]

१० तालिका अथवा वक्रों की सहायता से सीमान्त आगम, औसत आगम तथा कुल आगम के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्देश कीजिए

Show the relationship between marginal revenue, average revenue and total revenue with the help of either schedules or curves (*Sagar*, 1963)

११. (अ) क्या कारण है कि सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र को उसके निम्नतम बिन्दु पर काटता है?

(ब) फर्म की सम्स्थिति (equilibrium) की प्रत्येक दशा में—चाहे पूर्ण प्रतियोगिता हो अथवा अपूर्ण—सीमान्त आय और सीमान्त लागत बराबर होते हैं।

(a) Why does the marginal cost curve cuts the average cost curve at its lowest point?

(b) Why in all positions of equilibrium of firm, whether in perfect or imperfect competition, its marginal revenue is equal to marginal cost? (*Allahabad*, 1964)

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर में सीमान्त लागत और औसत लागत के सम्बन्ध को पढ़िए। दूसरे भाग के उत्तर के लिए देखिए अगला अध्याय अर्थात् अध्याय ७ में 'फर्म का साम्य—सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति' नामक केन्द्रीय शीर्षक (central heading) के अन्तर्गत step no 1 'फर्म के साम्य की सामान्य दशा MR=MC' के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री (चित्र न० २ सहित)।]

7

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म का साम्य

[EQUILIBRIUM OF A FIRM UNDER PERFECT COMPETITION]

१. पूर्ण प्रतियोगिता से अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF PERFECT COMPETITION)

पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं (conditions) के कारण एक उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की मांग रेखा पूर्णतया लोचदार होती है अर्थात् यह एक पड़ी हुई रेखा (horizontal line) होती है। दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price-taker) होती है, 'मूल्य-निर्धारक' (price maker) नहीं, वह दिए हुए मूल्य पर केवल 'उत्पादन की मात्रा का समायोजन करने वाली' (quantity adjuster) होती है, एक फर्म की अपनी कोई 'मूल्य-नीति' (price-policy) नहीं होती वह उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य को स्वीकार कर लेती है।

२ फर्म के साम्य का अर्थ
(MEANING OF EQUILIBRIUM OF A FIRM)

आधुनिक अर्थशास्त्री किसी वस्तु के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण को फर्म के साम्य[1] के शब्दों में व्यक्त करते हैं। इससे पहले कि हम फर्म के साम्य की दशाओं का अध्ययन करें, यह आवश्यक है कि 'फर्म के साम्य' का अभिप्राय को समझ लिया जाये। साम्य[2] का अर्थ है 'परिवर्तन की अनुपस्थिति' (absence of change)। इस प्रकार एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होता है, एक फर्म अपने उत्पादन में तब कोई परिवर्तन (वृद्धि या कमी) नहीं करेगी जबकि उसको अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। अत एक फर्म साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि उसके उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं हो अर्थात् साम्यावस्था में फर्म 'उत्पादन की वह मात्रा निश्चित करेगी जिस पर उसको 'अधिकतम लाभ' या 'अधिकतम शुद्ध आय' प्राप्त हो।

---

[1] किसी उद्योग का कुल उत्पादन उसमें कार्य करने वाली व्यक्तिगत फर्मों के उत्पादन पर निर्भर करता है। मार्शल तथा अन्य प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने व्यक्तिगत फर्मों के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण पर उचित ध्यान न देकर कुल उद्योग की मूल्य तथा उत्पादन नीति पर ही विशेष ध्यान दिया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री व्यक्तिगत फर्म की मूल्य तथा उत्पादन नीति पर भी ध्यान देते है और इस बात को वे 'फर्म के साम्य' के शब्दों में व्यक्त करते हैं।

[2] साम्य के विस्तृत अर्थ, उसके प्रकार एव महत्त्व, इत्यादि के पूर्ण विवरण के लिए पुस्तक के प्रथम भाग के अध्याय १० को देखिए।

३. दो रीतियाँ
(TWO APPROACHES)

अधिकतम लाभ प्राप्ति की स्थिति, अर्थात् एक फर्म के साम्य की स्थिति, को दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है

(१) कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति (Total revenue and total cost curves approach)—जहाँ पर कुल आगम तथा कुल लागत का अन्तर अधिकतम होगा वहाँ पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

(२) सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति (Marginal and Average Curves Approach) या सीमान्त विश्लेषण की रीति (Marginal Analysis Approach)।

[इन दोनों रीतियों द्वारा 'फर्म के साम्य' की विवेचना करते समय कुछ मान्यताएँ (assumptions) को मानकर चला जाता है, इन मान्यताओं को फुटनोट नं० ३ में दे दिया गया है।][3]

चित्र—१

४. फर्म का साम्य—कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति
(EQUILIBRIUM OF A FIRM—TOTAL REVENUE AND TOTAL COST CURVES APPROACH)
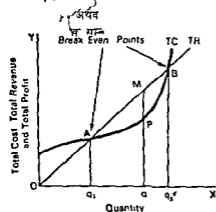
चित्र १ में q_1 तथा q_2 के बीच उत्पादन के किसी भी स्तर पर फर्म को धनात्मक लाभ (positive profit) प्राप्त होगा।[4] उत्पादन की मात्रा q पर TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी MP सबसे अधिक है जो कि अधिकतम लाभ को बताती है। अतः फर्म उत्पादन की मात्रा q पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि उत्पादन के इस स्तर पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। 'A' तथा 'B' बिन्दुओं को 'break-even points' कहा जाता है क्योंकि इन बिन्दुओं पर TR तथा TC बराबर (break-even) होते हैं और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

---

[3] (i) यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक फर्म या उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम द्राव्यिक लाभ को प्राप्त करना होता है। (ii) उत्पादन की दी हुई तकनीकी दशाओं के अन्तर्गत प्रत्येक साहसी, जहाँ तक सम्भव है, अपने उत्पादन की द्राव्यिक लागत को न्यूनतम रखेगा। (iii) सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि एक फर्म केवल एक ही वस्तु का उत्पादन करती है। (iv) हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की सभी इकाइयाँ एकसमान कुशल होती हैं, तथा प्रत्येक साहसी वर्तमान मूल्य पर किसी भी साधन की जितनी इकाइयाँ चाहे प्रयोग कर सकता है।

[4] उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर फर्म के लाभ को ज्ञात करने के लिए फर्म की 'कुल आगम रेखा' (TR curve) तथा कुल लागत रेखा (TC-curve) को एक चित्र में एक साथ खींचा जाता है। चित्र नं० १ में TR-रेखा 'कुल आगम रेखा' है तथा TC रेखा 'कुल लागत रेखा' है, उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर इन दोनों रेखाओं के बीच खड़ी दूरी (vertical distance) लाभ को बताती है। q_1 से कम उत्पादन पर फर्म को हानि होगी क्योंकि O से q_1 तक के क्षेत्र में TC-रेखा, TR-रेखा के ऊपर रहती है। यदि फर्म q_1 इकाइयों का उत्पादन करती है अर्थात् वह A बिन्दु पर है तो कुल लाभ शून्य होगा क्योंकि इस उत्पादन-स्तर पर TR=TC के, अर्थात् फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। यदि फर्म B बिन्दु पर है अर्थात् वह q_2 इकाइयों का उत्पादन करती है तो भी कुल लाभ शून्य होगा क्योंकि इस उत्पादन स्तर पर भी TR=TC; 'B' बिन्दु के बाद TC रेखा TR रेखा के ऊपर रहती है, इसलिए q_2 उत्पादन के बाद उत्पादन के सभी स्तरों पर फर्म को हानि होगी।

सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति अधिक अच्छी है।[5]

५. फर्म का साम्य—सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति
(EQUILIBRIUM OF A FIRM—MARGINAL AND AVERAGE CURVES APPROACH)

१. फर्म के साम्य की सामान्य दशा . MR=MC (and MC must be rising or MC must cut MR from below)

एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी जब उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं हो। फर्म अपने कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन तब नहीं करेगी जबकि उसे 'अधिकतम लाभ' प्राप्त हो रहा हो। फर्म को अधिकतम लाभ तब होगा जबकि MR=MC के हो। फर्म के साम्य की यह दशा बाजार की सभी स्थितियों में, चाहे पूर्ण प्रतियोगिता हो या एकाधिकार या
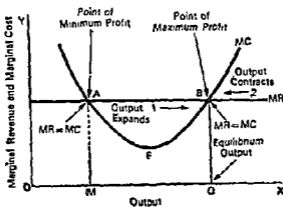
चित्र—२

अपूर्ण प्रतियोगिता, लागू होती है, इसलिए इस दशा को फर्म के साम्य की सामान्य दशा (general condition of equilibrium) कहते हैं।

माना कि MR अधिक है MC से जैसा कि चित्र नं० २ में बिन्दु A के आगे MR-रेखा ऊपर है MC रेखा के, तो फर्म अपने उत्पादन को बढ़ायेगी (जैसा कि चित्र में तीर नं० १ बताता है) क्योंकि इस दशा में फर्म अपने उत्पादन को बढ़ाकर अपने लाभ में वृद्धि कर सकेगी।[6] परन्तु जब फर्म बिन्दु B पर पहुँच जाती है तो वह उत्पादन को नहीं बढ़ायेगी क्योंकि यहाँ पर MR=MC के है; अर्थात् बिन्दु B पर लाभ को अधिकतम करने की सब सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती

---

[5] कुल आगम तथा कुल लागत की रीति भद्दी (cumbersome) है। इसके दो कारण हैं : (i) TR तथा TC के बीच में खड़ी दूरी को एक निगाह डालकर सदैव आसानी से ज्ञात नहीं किया जा सकता है। (ii) प्रथम निगाह में वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात करना असम्भव है, केवल कुल आगम (TR) को ही देखकर बताया जा सकता है। जैसे चित्र नं० १ में Oq उत्पादन पर कुल आगम Mq है, प्रति इकाई कीमत को ज्ञात करने के लिए कुल आगम Mq को उत्पादन की मात्रा Oq से भाग देकर ज्ञात करना पड़ेगा।

[6] जब MR, MC से अधिक होती है तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) अधिक होगा उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत (अर्थात् MC) से; स्पष्ट है कि फर्म को अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करके बेचने से लाभ होगा। दूसरे शब्दों में, जब तक MR अधिक रहती है MC से, तब तक फर्म अपने उत्पादन को बढ़ा कर लाभ में वृद्धि कर सकेगी।

है।[7] बिन्दु B 'अधिकतम लाभ का बिन्दु' (Point of Maximum Profit) है अर्थात् 'फर्म के साम्य की स्थिति' को बताता है और OQ 'उत्पादन की साम्य मात्रा' (equilibrium output) को बताता है। चित्र से स्पष्ट है कि अधिकतम लाभ के बिन्दु B (जहाँ पर MR=MC के है) पर MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है अथवा MC-रेखा बढ़ती हुई (rising) है।

[यदि MR कम है MC से जैसा कि चित्र न० २ में बिन्दु B के बाद में MR-रेखा MC-रेखा के नीचे है, तो फर्म अपने उत्पादन को घटायेगी[8] जैसा कि चित्र में तीर न० २ बताता है और वह उत्पादन को घटाकर हानि को कम करती जायेगी, उत्पादन का घटना (contraction) बिन्दु B पर समाप्त हो जायेगा क्योंकि बिन्दु B पर MR=MC के है और यहाँ पर अधिकतम लाभ प्राप्त होने से फर्म साम्य की स्थिति में आ जायेगी।]

चित्र न० २ में बिन्दु A पर भी MR=MC के है; परन्तु यह बिन्दु 'निम्नतम लाभ का बिन्दु' (P... ' Minimum Profit) है क्योंकि बिन्दु A पर MC-रेखा MR-रेखा को ऊपर से काटती है[9]

२ पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात् औसत आगम रेखा (AR-Curve) एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा AR=MR के होती है। उद्योग में वस्तु की कुल पूर्ति तथा उसकी कुल माँग द्वारा वस्तु का जो मूल्य निर्धारित होता है उसे प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है और इस प्रकार एक फर्म के लिए AR-रेखा पड़ी हुई रेखा होती है। पड़ी हुई AR रेखा का अर्थ है कि दिये हुए मूल्य पर एक फर्म अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा (कम या अधिक) बेच सकती है। यह चित्र न ३ में दिखाया गया है।

चित्र न० ३ से स्पष्ट है कि उद्योग की पूर्ति रेखा SS तथा माँग रेखा DD_1 है दोनों P_1 बिन्दु पर काटें, अत उद्योग की वस्तु का मूल्य P_1Q_1 निर्धारित होता है। फर्म इस मूल्य P_1Q_1 को दिया हुआ मान लेगी अर्थात् फर्म के लिए मूल्य रेखा (Price-line) या माँग रेखा (Demand curve) या औसत आगम रेखा (AR-curve) पड़ी हुई रेखा P_1L_1 होगी, इस कीमत P_1 को कम दिया मान लेगी और इसके अनुसार अपने उत्पादन को निश्चित करेगी, इस दी हुई कीमत पर वह उत्पादन की कितनी ही मात्रा q_1 या q_2 या q_3 बेच सकेगी। यदि उद्योग की वस्तु

---

[7] जब MR=MC के हो जाती है तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करके बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत (अर्थात् MC) के बराबर हो जाता है और ऐसी स्थिति में फर्म अपने उत्पादन को बढ़ाकर लाभ अधिकतम नहीं कर सकती, अत बिन्दु B पर जब MR=MC के हो जाती है तो फर्म के लिए लाभ को अधिकतम करने की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

[8] यदि MR कम है MC से, तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) कम है उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत (अर्थात् MC) से, स्पष्ट है कि फर्म को अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से हानि होगी; अत फर्म उत्पादन को घटाती जायेगी जब तक कि MR बराबर MC के न हो जावे।

[9] इसका अभिप्राय है कि यदि फर्म अपने उत्पादन को 'A' बिन्दु से आगे बढ़ाती है अर्थात् OM मात्रा से अधिक बढ़ाती है तो सीमान्त लागत (MC) घटती जाती है और E बिन्दु पर निम्नतम होकर बढ़ने लगती है, परन्तु बिन्दु 'A' से बिन्दु 'B' तक के क्षेत्र (range) में अर्थात् उत्पादन के M से Q तक के क्षेत्र में MR-रेखा MC-रेखा के ऊपर रहती है अर्थात् इस क्षेत्र में फर्म अपने उत्पादन को बढ़ाकर लाभ को अधिकतम कर सकती है; 'B' बिन्दु पर उसे 'अधिकतम लाभ' प्राप्त होगा तथा 'B' से आगे जाने पर उसे हानि होने लगेगी।

स्पष्ट है कि एक फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए अर्थात् फर्म के साम्य के लिए, MC-रेखा को MR-रेखा को ऊपर से नहीं बल्कि नीचे से काटना चाहिए। संक्षेप में, एक फर्म के साम्य के लिए :

MR=MC (and MC must cut MR from below or MC must be rising)

की कुल मांग कम हो जाती है तथा मांग रेखा गिरकर DD_2 हो जाती है तो अब नया मूल्य P_2Q_2 होगा; इस स्थिति में फर्म की AR-रेखा P_2L_2 हो जायेगी। मांग और कम हो जाने से उद्योग की मांग रेखा DD_3 हो जाती है और मूल्य गिरकर P_3Q_3 हो जाता है, अब फर्म की AR-रेखा P_3L_3 हो जायेगी।
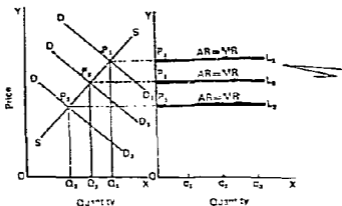
चित्र—३

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के लिए वस्तु की कीमत एक ही रहती है और दी हुई कीमत पर फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। अतः वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (MR) वही होगा जो कि वस्तु की कीमत (AR) है अर्थात् MR, AR के बराबर होगी।

३. पूर्ण प्रतियोगिता में AR (कीमत) MC के बराबर होती है। हम देख चुके हैं कि फर्म के साम्य के लिए MR=MC की दशा का होना आवश्यक है, तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में AR=MR के होती है। चूंकि AR=MR तथा MR=MC, इसलिए :

$$AR = MR = MC$$

या

$$AR\ (Price) = MC$$

स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR अर्थात् कीमत, सीमान्त लागत (MC) के बराबर होती है।

४. अल्पकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of a Firm in the Short-run)

अल्पकाल में इतना समय नहीं होता कि उत्पत्ति या पूर्ति को घटा-बढ़ाकर पूर्णतया मांग के अनुरूप किया जा सके; इसलिए अल्पकाल में एक फर्म को लाभ, या शून्य लाभ (अर्थात् सामान्य लाभ), या हानि हो सकती है। इन तीनों स्थितियों का विवरण नीचे दिया गया है।

लाभ की स्थिति : माना कि चित्र नं० ४ में एक फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' (जो कि उद्योग द्वारा निर्धारित होती है) की स्थिति TL है।[12] फर्म इस कीमत रेखा को दिया हुआ मान लेगी और वस्तु के उत्पादन की वह मात्रा निर्धारित करेगी जहाँ पर कि MR=MC के है। चित्र नं० ४ से स्पष्ट है कि बिन्दु 'P' पर MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है अर्थात् MC-

[12] पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म की कोई मूल्य-नीति नहीं होती, वह उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को दिया हुआ मान लेती है; अर्थात् फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' या 'मांग-रेखा' या 'AR-रेखा' या 'AR=MR रेखा' एक पड़ी हुई रेखा होती है (जैसा कि पहले हम चित्र नं० ३ में बता चुके हैं)।

रेखा चढ़ती हुई (rising) है, इसलिए बिन्दु 'P' अधिकतम लाभ का बिन्दु' (Point of Maximum Profit) होगा तथा फर्म के साम्य की स्थिति को बतायेगा।[11]

फर्म को कितना लाभ होगा इस बात को जानने के लिए हम AR (अर्थात् कीमत) तथा AC रेखाओं के बीच खड़ी दूरी को ज्ञात करते हैं। चित्र न० ४ में AR तथा AC रेखाओं के

चित्र—४
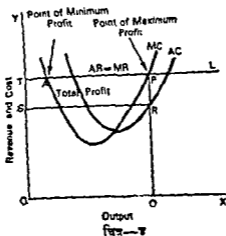
बीच खड़ी दूरी PR है जो कि प्रति इकाई लाभ को बताती है, कुल लाभ को ज्ञात करने के लिए PR को कुल उत्पादन OQ या SR से गुणा कर दिया जाता है, अर्थात् कुल लाभ $= PR \times SR =$ आयत (rectangle) SRPT का क्षेत्रफल (area)।

अत: जब फर्म की 'कीमत-रेखा या AR=MR रेखा' की स्थिति TL है तो—

कीमत (Price) = PQ

उत्पादन (Output) = OQ

कुल लाभ (Total Profit) = SRPT

शून्य या सामान्य लाभ की स्थिति—चित्र न० ५ में माना कि फर्म के लिए 'कीमत रेखा' की स्थिति (जो कि उद्योग द्वारा निर्धारित होती है) RT है। फर्म 'P' बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MR=MC के है तथा MC-रेखा MR रेखा को नीचे से काटती है। [...] स्थिति में फर्म को लाभ होगा या [...] इसको जानने के लिए हम AR [...] रेखाओं की तुलना करते हैं, चित्र [...] है कि AR-रेखा AC-रेखा को [...] बिन्दु पर स्पर्श करती है, अर्थात् [...] पर AR (कीमत) = AC के है, कीमत (AR) ठीक औसत लागत (AC) बराबर है, इसलिए फर्म को कोई भी रिक्त लाभ (excess profit) प्राप्त
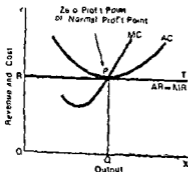
चित्र—५

[11] बिन्दु 'A' पर MC-रेखा MR-रेखा को ऊपर से काटती है या MC-रेखा [...] इसलिए बिन्दु 'A' 'न्यूनतम लाभ का बिन्दु' (Point of Minimum Prof[...] फर्म के साम्य की स्थिति को नहीं बतायेगा।

होता अर्थात् उसे शून्य लाभ या 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा।[11] अतः बिन्दु P को 'शून्य लाभ बिन्दु' या 'सामान्य लाभ बिन्दु' कहते हैं।

सक्षेप मे, जब फर्म के लिए 'कीमत रेखा या AR-रेखा' की स्थिति RT है, तो—

मूल्य (Price) = PQ

उत्पादन (Output) = OQ

फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' (या शून्य लाभ) प्राप्त होता है।

हानि की स्थिति . हानि को न्यूनतम करना (Minimisation of loss)—माना कि चित्र न० ६ मे फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' या 'AR=MR रेखा' की स्थिति TC है। फर्म P बिन्दु पर साम्य की स्थिति मे होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MR=MC के है तथा MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है। इस स्थिति मे फर्म को लाभ होगा या हानि इसको जानने के
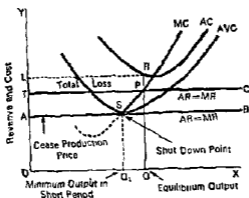
चित्र—६

लिए हम AR तथा AC रेखाओं की तुलना करते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि औसत लागत (AC) रेखा ऊपर है कीमत-रेखा TC के, इसलिए फर्म को हानि होगी; कुल हानि[13] = TPRL।

...ेप मे, यदि फर्म की कीमत रेखा की स्थिति TC है तो—

के अ... रहे कि अर्थशास्त्र मे औसत लागत (AC) के अन्तर्गत 'सामान्य लाभ' शामिल होता ...लाभ)...लिए जब कीमत (AR) औसत लागत (AC) के बराबर होती है तो इसका अर्थ है कि ... केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता है।

द्वारा ... 'सामान्य लाभ' का लाभ वह न्यूनतम स्तर है जो कि एक साहसी को व्यवसाय विशेष और ...में रखने के लिए आवश्यक है। दूसरे शब्दो मे, सामान्य लाभ व्यवसाय विशेष मे साहसी ... कार्य करते रहने की न्यूनतम लागत है और इसलिए अर्थशास्त्री 'सामान्य लाभ' को लागत ...अग मानते है, अर्थात् लागत मे शामिल करते हैं। 'सामान्य लाभ' के विस्तृत विवरण के [12] ... पुस्तक के खण्ड 'वितरण' के अध्याय ५ को देखिए।

को दिय... तथा कीमत-रेखा TC के बीच खड़ी दूरी RP प्रति इकाई हानि को बताती है; कुल या 'AR-... करने के लिए हम प्रति इकाई हानि RP को कुल उत्पादन OQ या TP से ...चुके हैं)। ... अर्थात् कुल हानि = RP × TP = TPRL।

मूल्य (Price) = PQ
उत्पादन (Output) = OQ
कुल हानि (Total Loss) = TPRL

परन्तु यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि क्या फर्म हानि होने पर भी उत्पादन को जारी रखेगी ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हम AVC-रेखा का सहारा लेते हैं। दीर्घकाल में एक उत्पादक वस्तु को उस कीमत पर बेचेगा जिस पर उसकी कुल लागत (अर्थात स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत) निकल आये, यदि कीमत कम है और दीर्घकाल म उसकी कुल लागत नहीं निकलती तो वह उत्पादन बन्द कर देगा। परन्तु अल्पकाल में यदि उत्पादन की लागत मे से केवल परिवर्तनशील लागत निकल आती है (और स्थिर लागत बिलकुल नहीं निकलती या आंशिक रूप से निकलती है) तो फर्म हानि की स्थिति म भी उत्पादन जारी रखेगी। चित्र न० ६ म यदि 'कीमत-रेखा' या 'AR-रेखा' की स्थिति AB हो जाती है तो वस्तु की कीमत (AR) ठीक AVC के बराबर होगी जैसा कि चित्र मे S' बिन्दु बताता है। इस बिन्दु के नीचे कीमत होने पर फर्म अल्पकाल में भी उत्पादन बन्द कर देगी (क्योंकि उसकी परिवर्तनशील लागत भी नहीं निकलेगी), इस बिन्दु 'S' को 'उत्पादन बन्द होने का बिन्दु' (Shut down Point) कहते हैं तथा कीमत OA या कीमत-रेखा AB 'उत्पादन बन्द होने की कीमत' (Cease production Price) को बताती है। OQ_1 'अल्पकाल में न्यूनतम उत्पादन मात्रा (Minimum Output in Short Period) को बताता है।

अल्पकाल में AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु S द्वारा बताए गए उत्पादन से कम, अर्थात् OQ_1 उत्पादन से कम) मात्रा की पूर्ति नहीं की जायगी। इसलिए अल्पकाल म एक फर्म की पूर्ति रेखा, MC रेखा का बढ़ता हुआ वह भाग होगा जो कि AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु (चित्र म 'S' बिन्दु) के ऊपर है, 'S' बिन्दु के नीचे MC-रेखा को टूटी रेखा द्वारा दिखाया गया है जिसका अर्थ है कि 'S' बिन्दु के नीचे वस्तु की कोई पूर्ति नहीं होगी।

५ दीर्घकाल मे फर्म का साम्य (*Equilibrium of a Firm in the Long Period*)

दीर्घकाल में इतना समय होता है कि वस्तु की पूर्ति को घटा बढ़ाकर पूर्णतया माँग के अनुरूप किया जा सकता है। अत दीर्घकाल मे एक फर्म को न लाभ होगा न हानि बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। यदि फर्म को दीर्घकाल में लाभ प्राप्त होता है अथात AR (कीमत) अधिक है AC से, तो लाभ से आकर्षित होकर अन्य फर्में उद्योग म प्रवेश करेंगी परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी और कीमत (AR) घटकर ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। यदि फर्म को हानि होती है अथात कीमत (AR) कम है औसत लागत (AC) से, तो इस हानि के कारण कई फर्में उद्योग को छोड़ देंगी परिणामस्वरूप पूर्ति कम होगी और कीमत (AR) बढ़कर ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि दीर्घकाल म एक फर्म को केवल 'सामान्य लाभ प्राप्त होगा, अर्थात् दीर्घकाल म AR = AC के होगी। इसके अतिरिक्त फर्म के साम्य के लिए MR = MC की दशा तो पूरी होनी ही चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दीर्घकाल मे एक फम के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा (double condition) पूरी होनी चाहिए

(i) MR = MC
(ii) AR = AC

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता मे AR = MR के भी होती है, इसलिए फम के दीघकालीन साम्य की उपर्युक्त दोहरी दशा को निम्न प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है

$$AR\ (Price) = MR = MC = AC$$

अर्थात्

Price = Marginal Cost = Average Cost

चूँकि दीर्घकाल में AR, MR, MC तथा AC सब बराबर होती है, इसीलिए कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए 'सब चीजें बराबर होती हैं' (everything is eqnal)।

फर्म के दीर्घकालीन साम्य को चित्र न० ७ द्वारा दिखाया गया है। LAC दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (Long run aver ge cost curve) है, तथा LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा (Long-run marginal cost curve) है। AR-रेखा LAC रेखा के न्यूनतम बिन्दु P पर स्पर्श-रेखा (tangent) है अर्थात् P बिन्दु पर AR=AC के है, तथा P बिन्दु पर MR=MC के भी है। स्पष्ट है कि बिन्दु 'P पर साम्य की दुहरी शर्त पूरी होती है, अत

मूल्य (Price) = PQ

उत्पादन की साम्य मात्रा (न्यूनतम लागत पर) (Equilibrium output at *minimum cost*) = OQ

फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

चित्र—७

बिन्दु P को 'शून्य लाभ बिन्दु' (Zero Profit Point) या 'सामान्य लाभ बिन्दु' (*Normal Profit Point*) *या 'ब्रेक-ईवन-बिन्दु'* (Break even Point) कहते हैं। कीमत OR या कीमत रेखा RT 'ब्रेक-ईवन-कीमत' (*Break-even Price*) को बताती है।[14]

चित्र से स्पष्ट है कि 'P' बिन्दु पर AC न्यूनतम है और कीमत (AR) इस न्यूनतम AC के बराबर है, दूसरे शब्दों में, दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साम्य की अवस्था में एक फर्म 'न्यूनतम-लागत फर्म' (least-cost-firm) होगी। ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR-रेखा (या Price line) पड़ी हुई (horizontal) रेखा होती है, इसलिए AC-रेखा के निम्नतम बिन्दु पर ही AR-रेखा स्पर्श रेखा (tangent) होगी, अर्थात् AR (Price) बराबर होगी न्यूनतम औसत लागत के। स्पष्ट है कि दीर्घकाल में एक फर्म 'न्यूनतम-लागत फर्म' होगी।

प्रश्न

१. 'पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म की अपनी कोई मूल्य-नीति नहीं होती, वह केवल एक मात्रा समायोजित करने वाली होती है।' इस कथन के सन्दर्भ में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन की विवेचना कीजिए।

'Under perfect competition a firm has no price policy of its own, it is simply a quantity-adjuster' In the light of this statement discuss the short run and long-run equilibrium of a firm under perfect competition (*Agra, B A. II, Suppl.,1976*)

[14] चूँकि 'P' बिन्दु पर 'शून्य लाभ' या 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता है, इसलिए इस बिन्दु को 'शून्य लाभ बिन्दु' (Zero Profit Point) या 'सामान्य लाभ बिन्दु' (Normal Profit Point) कहते हैं। चूँकि बिन्दु P पर AR तथा AC बराबर (break-even) हैं, इसलिए इस बिन्दु को 'Break-even Point' भी कहते हैं तथा कीमत OR या कीमत रेखा RT 'Break-even Price' को बताती है।

अथवा
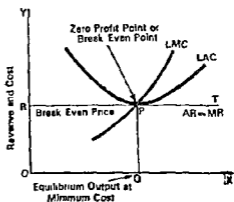
"पूर्ण स्पर्द्धा की दशा में फर्म की समस्या केवल उत्पादन की मात्रा निश्चित करना है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

"The problem before a firm, under conditions of perfect competition is to determine its output only." Discuss this statement. (*Allahabad 1965*)

[सकेत—पूर्ण प्रतियोगिताओं की दशाओं के कारण एक फर्म की अपनी कोई 'मूल्य नीति' नहीं होती, प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को दिया हुआ मान लेती है, अतः दी हुई कीमत पर प्रत्येक फर्म की समस्या केवल उत्पादन की मात्रा निश्चित करना होता है। इसके बाद अल्पकाल तथा दीर्घकाल में फर्म के साम्य की स्थितियों को चित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए, सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति का प्रयोग कीजिए।]

२. पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में एक फर्म के सन्तुलन को स्पष्ट कीजिए।

Explain the equilibrium of a firm under conditions of perfect competition. (*Kumaun, B. A. I, 1975; Sagar, 1966*)

[सकेत—फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की विवेचना चित्रों की सहायता से कीजिए।]

३. "पूर्ण स्पर्द्धात्मक सस्थिति में वस्तु की कीमत उत्पादन की सीमान्त लागत और औसत लागत के बराबर होती है।" चित्रों सहित व्याख्या कीजिए।

"In a perfectly competitive equilibrium the price of a commodity is equal to the marginal and average cost of production." Discuss with diagrams. (*Allahabad 1967; Bhagalpur, 1965 A*)

अथवा

"The normal price under free competition tends to equalize both the marginal cost and average cost of production." Discuss. (*Bihar, 1955 A*)

[संकेत—एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य की स्थिति का विवेचन कीजिए।]

४. औसत तथा सीमान्त लागतों के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए तथा समझाइए कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में किस प्रकार कीमत औसत तथा सीमान्त लागतों दोनों के बराबर होती है।

Distinguish between average and marginal costs, and explain how under perfect competition in the long run the price equals both average and marginal costs. (*Punjab, 1964*)

[सकेत—प्रथम भाग में औसत लागत और सीमान्त लागत के अर्थों को बताइए। दूसरे भाग में फर्म के दीर्घकालीन साम्य की विवेचना कीजिए।]

५. पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत सीमान्त लागत, औसत लागत तथा कीमत में सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।

Discuss the relation between marginal cost, average cost and price under conditions of perfect competition.

[सकेत—पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की चित्रों की सहायता से विवेचना कीजिए।]

६. "दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म न्यूनतम औसत लागत पर कार्य करती है और यह लागत कीमत के बराबर होती है।" विवेचना कीजिए।

"In the long-run each firm operates at the *minimum average cost* and this cost equals price." Comment.

[संकेत—पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य की स्थिति की पूर्ण विवेचना कीजिए।]

७ पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के साम्य की दशा की विवेचना कीजिए। यह एक न्यूनतम (least) लागत फर्म क्यों होगी?

Discuss the condition of equilibrium of a firm under perfect competition. Why will it be a least cost firm? *(Bihar, 1965 A)*

[संकेत—संक्षेप में चित्रों की सहायता से फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की विवेचना कीजिए। दूसरे भाग के उत्तर में स्पष्ट कीजिए कि दीर्घकाल में एक फर्म 'न्यूनतम लागत फर्म' होगी, देखिए इस अध्याय के अन्त में अन्तिम पैराग्राफ।]

8 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग का साम्य
[EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY UNDER PERFECT COMPETITION]

१. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग का अर्थ
(MEANING OF AN INDUSTRY UNDER PERFECT COMPETITION)

एक उद्योग ऐसी फर्मों का समूह या एकत्रीकरण है जो एक-रूप वस्तु उत्पादित करती है।[1] इसी बात को श्रीमती जोन रोबिन्सन इन शब्दों में व्यक्त करती हैं "एक उद्योग ऐसी फर्मों का समूह है जोकि केवल एक वस्तु का उत्पादन करता है।"[2] दूसरे शब्दों में, एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry) वह है जिसमें माँग की तुलना में, फर्में इतनी छोटी होती हैं कि उनमें से कोई भी अकेले अपने उत्पादन-स्तर में परिवर्तन करके कीमत पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकती, अर्थात् एक फर्म के लिए कीमत रेखा या माँग रेखा एक पड़ी हुई रेखा होगी।

२ एक उद्योग के साम्य का अर्थ
(THE CONCEPT OF EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

एक उद्योग के साम्य की सामान्य दशा (*general condition of equilibrium of an industry*) को प्रो० बोल्डिंग इन शब्दों में व्यक्त करते हैं "एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब कहा जाता है जबकि उसके विस्तार या सकुचन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।"[3] इसका अभिप्राय है कि एक उद्योग साम्य की दशा में तब होगा जबकि उसमें न्यूनतम लाभ प्राप्त करने वाली फर्म (least profitable firm), जिसे प्राय 'सीमान्त फर्म' (marginal firm) कहा जाता है, को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता है।[4]

---

[1] An industry is a group or c[illegible]tion of firms producing a homogeneous commodity

[2] 'An *Industry* is any group of firms producing a single commodity' —*Mrs Joan Robinson*

[3] "An industry is said to be in equilibrium when there is no tendency for it to expand or to contract.'
—*Boulding*

[4] यदि सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त होता है तो इसका अर्थ है कि उद्योग में प्रवेश करने वाली नयी फर्म को भी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त होगा। अत उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश होगा, उद्योग के कुल उत्पादन में वृद्धि होगी परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरेगी, वर्तमान फर्मों के लाभ कम होंगे, नयी फर्मों के प्रवेश का आकर्षण कम होता जायेगा और जैसे ही सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होने लगेगा वैसे ही उद्योग पुन साम्य की स्थिति में आ जायेगा। दूसरी ओर, यदि सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ से कम लाभ प्राप्त होता है, तो यह फर्म तथा इस स्थिति में अन्य फर्में उद्योग को छोड़
(क्रमश)

एक उद्योग के साम्य की सामान्य दशा को दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—**एक दी हुई कीमत पर एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (अर्थात् 'S') उसकी कुल माँग (अर्थात् 'D') के बराबर होता है।** संक्षेप में, एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि S=D के हो।

एक उद्योग के साम्य की सामान्य दशा के लिए मुख्य बात यह है कि उसके कुल उत्पादन (अर्थात् कुल पूर्ति) में कोई विस्तार या संकुचन नहीं होना चाहिए। यदि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल माँग उसकी कुल पूर्ति से अधिक है तो वस्तु की कुल पूर्ति के विस्तार या वृद्धि की प्रवृत्ति होगी। इसके विपरीत, यदि वस्तु की माँग उसकी पूर्ति की तुलना में कम है तो वस्तु की कुल पूर्ति में संकुचन या कमी की प्रवृत्ति होगी। अतः एक उद्योग के साम्य के लिए S=D के होनी चाहिए।[5]

३ एक उद्योग का अल्पकालीन साम्य
(SHORT-RUN EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

१ एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के अभिप्राय (Implications of Short run Equilibrium of an Industry)

(i) अल्पकाल में एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग का उत्पादन स्थिर रहता है, उसमें वृद्धि या कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। (ii) इसका अभिप्राय है कि यदि उद्योग में अल्पकाल में सभी फर्में साम्य की स्थिति में है (अर्थात् प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन को न घटाती और न बढ़ाती है बल्कि स्थिर रखती है) तो उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर (constant or steady) रहेगा और उद्योग साम्य की स्थिति में होगा। प्रत्येक फर्म के साम्य के लिए MR=MC दशा पूरी होनी चाहिए। अतः एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए यह **आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत, सभी फर्में अल्पकालीन साम्य की स्थिति में हों।** (iii) यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की है कि अल्पकाल में एक फर्म MR=MC की दशा को पूरा करते हुए साम्य की स्थिति में हो सकती है परन्तु उसे लाभ, या केवल सामान्य लाभ या हानि भी हो सकती है। दूसरे शब्दों में, **एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ बहुत अधिक लाभ या बहुत अधिक हानि का सह-अस्तित्व (co-existence) हो सकता है।**[6] (iv) एक उद्योग के लिए अल्पकालीन साम्य कीमत पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल माँग अर्थात् ('D') उसकी कुल पूर्ति अर्थात् ('S') के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए S=D को

देगी, परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पादन घटेगा, वस्तु की कीमत बढ़ेगी, उद्योग में शेष फर्मों के लाभ बढ़ेंगे फर्में उद्योग से निकलती जायेंगी जब तक कि सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त न होने लगे, और उद्योग पुनः साम्य की स्थिति में आ जायगा।

[5] **अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों कालों में से एक उद्योग के साम्य के लिए S=D की दशा पूरी होती है परन्तु दोनों कालों में S=D की दशा के अभिप्रायों (implications) में अन्तर होता है।** अल्पकाल में इतना अधिक समय नहीं होता कि उद्योग में स्थिर साधनों (fixed factors like machine, equipment etc) को परिवर्तित किया जा सके अर्थात् अल्पकाल में उत्पादन क्षमता (productive capacity) स्थिर होती है अथवा यह कहिए कि उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित नहीं किया जा सकता अर्थात् उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश (entry) तथा उसमें से पुरानी फर्मों का बहिर्गमन (exit) नहीं हो सकता, दूसरे शब्दों में उद्योग में फर्मों की संख्या स्थिर रहती है। अल्पकाल में तो केवल परिवर्तनशील साधनों (variable factors) में ही परिवर्तन करके उद्योग की पूर्ति को सीमित मात्रा में घटा-बढ़ाकर माँग के बराबर करके उद्योग का साम्य प्राप्त होता है। इसके विपरीत, दीर्घकाल में सभी साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है अर्थात् उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित करके अथवा यह कहिए कि नयी फर्मों के प्रवेश या पुरानी फर्मों के बहिर्गमन द्वारा पूर्ति को घटा-बढ़ाकर माँग के बराबर करके उद्योग के साम्य की स्थिति प्राप्त की जाती है।

[6] Widespread profits or widespread losses may co-exist with the short run equilibrium of an industry

दशा पूरी होनी चाहिए, परन्तु अल्पकालीन साम्य के लिए केवल 'परिवर्तनशील साधनों' (variable factors) को परिवर्तित करके पूर्ति (S) को माँग (D) के बराबर किया जाता है, क्योंकि अल्पकाल मे इतना समय नही होता है कि 'स्थिर साधनों' को परिवर्तित किया जा सके या उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित किया जा सके।

२. उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा का निर्माण (Construction of Short-run Industry Supply Curve)

एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (S) बराबर होनी चाहिए उसकी कुल माँग (D) के। उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की 'बाजार या उद्योग माँग रेखा' व्यक्तिगत उपभोक्ताओ की माँग रेखाओ का क्षैतिज योग (horizontal sum) होती है। माँग को ज्ञात करने के पश्चात् साम्य के निर्धारण के लिए उद्योग की पूर्ति रेखा का बनाना आवश्यक है। एक उद्योग की पूर्ति रेखा बताती है कि विभिन्न सम्भावित कीमतो पर सभी फर्में वस्तु की कितनी कितनी मात्राएँ बाजार मे बेचने को तत्पर हैं। स्पष्ट है कि मोटे रूप से (approximately) उद्योग की पूर्ति रेखा व्यक्तिगत फर्मों की पूर्ति रेखाओं का क्षैतिज योग है। अत एक उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा के निर्माण के लिए एक फर्म की पूर्ति रेखा को ज्ञात करना प्रथम कदम (first step) है।

एक फर्म की पूर्ति रेखा MC-रेखा का वह भाग है जो कि AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु के ऊपर होता है। *यह बात निम्न विवरण से स्पष्ट होती है।* एक फर्म की पूर्ति रेखा विभिन्न कीमतो पर वस्तु की पूर्ति प्रस्तुत की जाने वाली विभिन्न मात्राओं को बताती है। प्रतियोगिता म एक फर्म के साम्य के लिए 'MR (या AR अर्थात् कीमत)$=MC$' की दशा पूरी होनी चाहिए। चित्र न० १ मे यदि कीमत P_1 है (या कीमत-रेखा P_1T_1 है) तो फर्म 'S' बिन्दु पर साम्य की स्थिति मे होगी (क्योंकि S बिन्दु पर MR या $AR=MC$ के है) चूँकि 'S' बिन्दु पर AVC का निम्नतम बिन्दु है, इसलिए कीमत P_1 ठीक AVC के बराबर है। यदि कीमत P_1 से कम होती है अर्थात् कीमत AVC से कम होती है तो फर्म अल्पकाल मे भी उत्पादन को बन्द कर देती और पूर्ति शून्य हो जाती, बिन्दु 'S' उत्पादन के 'बन्द होने का बिन्दु' (shut-down point) है। P_1 कीमत पर फर्म OQ_1 मात्रा की पूर्ति करने को तत्पर है। यदि कीमत P_2 है (या कीमत रेखा P_2T_2 है) तो फर्म L बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी, अर्थात् P_2 कीमत पर फर्म OQ_2 मात्रा की पूर्ति करेगी। इसी प्रकार यदि कीमत P_3 है तो फर्म OQ_3 मात्रा की पूर्ति करेगी। स्पष्ट है कि चित्र नं० १ मे फर्म की MC-रेखा का SS_1 भाग जो कि AVC रेखा के निम्नतम बिन्दु S के ऊपर है, फर्म की पूर्ति रेखा को बताता है; क्योंकि SS_1 के विभिन्न बिन्दु यह बताते हैं कि विभिन्न कीमतों पर फर्म अपनी वस्तु को
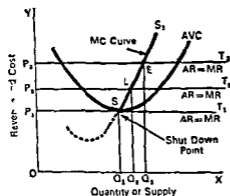
चित्र—१

कितनी-कितनी मात्रा की पूर्ति करने को तत्पर है। 'S' बिन्दु से नीचे पूर्ति शून्य होगी, इसलिए 'S' बिन्दु से नीचे MC-रेखा के भाग को टूटी-रेखा (dotted line) द्वारा दिखाया गया है।

एक फर्म की पूर्ति रेखा ज्ञात करने (और इस प्रकार सभी व्यक्तिगत फर्मों की पूर्ति रेखाओं को ज्ञात करने) के पश्चात् हम उद्योग की पूर्ति रेखा ज्ञात कर सकते हैं। सुविधा के लिए तथा उदाहरणार्थ माना कि उद्योग मे केवल २ फर्में 'A' तथा 'B' हैं। जब कीमत १ रु० है तो फर्म 'A' ४ इकाई तथा फर्म 'B' ८ इकाई बेचने को तत्पर है। अत १ रु० कीमत पर बाजार मे ... कुल पूर्ति$=(४+८)=$१२ इकाई। जब कीमत २ रु० है तो फर्म A ८ इकाई तथा

फर्म B १२ इकाई बचने को तत्पर है। अत २ रु० कीमत पर उद्योग की कुल पूर्ति = (८+१२) = २० इकाई। उपर्युक्त विवरण से उद्योग की पूर्ति रेखा (जो कि व्यक्तिगत फर्मों की पूर्तियों का क्षैतिज योग है) के दो बिन्दु प्राप्त होते हैं—१ रु० कीमत पर उद्योग १२ इकाइयाँ तथा २ रु० कीमत पर २० इकाइयाँ बेचने को तत्पर है, अत: उद्योग की पूर्ति रेखा खींची जा सकती है।
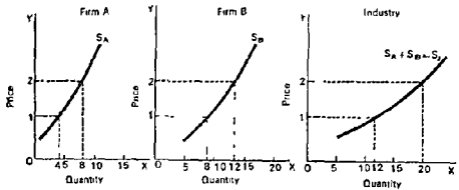
चित्र—२

चित्र न० २ म फर्म A की पूर्ति रेखा S_A तथा फर्म B की पूर्ति रेखा S_B है। उद्योग की पूर्ति रेखा (S_I) इन दोनों रेखाओं का क्षैतिज योग है, अर्थात् $S_I = S_A + S_B$। उद्योग की पूर्ति रेखा S_I को चित्र मे दायें सिरे पर दिखाया गया है।

३. अल्पकालीन साम्य (Short-run Equilibrium)

अल्पकाल में एक उद्योग के साम्य के लिए S = D की दशा पूरी होनी चाहिए। चित्र नं० ३ मे उद्योग की माँग रेखा DD तथा उसकी पूर्ति रेखा SS एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं। बिन्दु E उद्योग के अल्पकालीन साम्य को बताता है क्योंकि यहाँ पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति और उसकी माँग दोनों बराबर है (OQ के), उद्योग के वस्तु की साम्य कीमत (equilibrium price) P या EQ है तथा साम्य मात्रा (equilibrium quantity) OQ है।
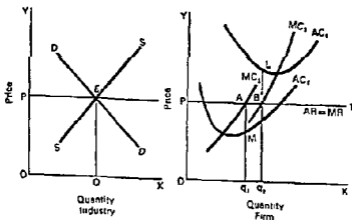
चित्र—३

चित्र न० ३ के दायें भाग मे उद्योग के अल्पकालीन साम्य के अन्तर्गत एक प्रतिनिधि फर्म (typical or representative firm) की स्थिति को दिखाया गया है। उद्योग के अन्तर्गत प्रत्येक

फर्म कीमत P को स्वीकार कर लेगी अर्थात् प्रत्येक फर्म के लिए 'कीमत रेखा' या 'माँग रेखा' या 'AR=MR रेखा' पड़ी हुई रेखा PT होगी। माना कि एक फर्म की लागत रेखाएँ AC_1 तथा MC_1 है, यह फर्म A बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MR=MC के है, यह फर्म Oq_1 मात्रा का उत्पादन करेगी, इसे प्रति इकाई लाभ AM के बराबर होगा। यदि फर्म की लागत रेखाएँ AC_2 तथा MC_2 हैं तो फर्म B बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि यहाँ पर MR=MC के है वह Oq_2 मात्रा का उत्पादन करेगी तथा उसे LB प्रति इकाई हानि होगी। *स्पष्ट है कि एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए प्रत्येक फर्म अल्पकालीन साम्य की स्थिति में होगी, परन्तु एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit) या 'हानि' का सह-अस्तित्व (co-existence) हो सकता है।*

४ एक उद्योग का दीर्घकालीन साम्य
(LONG RUN EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

१. *एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के अभिप्राय* (Implications of Long-run Equilibrium of an Industry)

(i) दीर्घकाल मे एक उद्योग साम्य की स्थिति मे तब होगा जबकि उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर रहता है, उसमे वृद्धि या कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। (ii) इसका अभिप्राय है कि यदि उद्योग म सभी फर्मे साम्य की स्थिति म हैं तो उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर (constant or steady) रहेगा तथा उद्योग साम्य की स्थिति म होगा। एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए दोहरी दशा (double condition) पूरी होनी चाहिए अर्थात् (क) MR=MC अथवा AR (Price)=MC (क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता म MR और AR बराबर होते हैं), (ख) AR=AC। प्रथम दशा का अर्थ है कि जब प्रत्येक फर्म के लिए MR (या AR अर्थात् कीमत) बराबर है MC के, तो प्रत्येक फर्म के उत्पादन म परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नही होगी। दूसरी दशा के पूरे होने का अर्थ है कि जब प्रत्येक फर्म के लिए AR (अर्थात् कीमत) बराबर है AC के, तो प्रत्येक फर्म *को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा, परिणामस्वरूप न तो नयी फर्मों की प्रवृत्ति उद्योग मे* प्रवेश करने की होगी और न पुरानी फर्मों की प्रवृत्ति उद्योग को छोड़कर जाने की होगी। दूसरे शब्दो मे, जब एक उद्योग दीर्घकालीन साम्य म है तो उसम फर्मों की सख्या म (अर्थात् उद्योग के आकार मे) कोई परिवर्तन *नहीं होगा।* इस प्रकार एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्मे दीर्घकालीन साम्य की स्थिति मे हों। (iii) एक उद्योग तथा फर्म के 'अल्पकालीन साम्य' के लिए MR=MC की दशा पूरी होनी आवश्यक है। एक उद्योग तथा फर्म के 'दीर्घकालीन साम्य' के लिए (अल्पकालीन साम्य की दशा MR=MC के पूरे होने के अतिरिक्त) AR=AC की दशा भी पूरी होनी चाहिए। अत उद्योग तथा व्यक्तिगत फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए यह आवश्यक है कि अल्पकालीन साम्य का भी साथ-साथ अस्तित्व हो।[1] इस प्रकार उद्योग का दीर्घकालीन साम्य एक अधिक विस्तृत तथा सामान्य विचार है और उसे 'पूर्ण साम्य' (full equilibrium) या 'अन्तिम साम्य' (final equilibrium) भी कहा जाता है। (iv) *एक उद्योग के लिए साम्य कीमत पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (अर्थात्* S) उसकी कुल माँग (अर्थात् D) के बराबर होती है। दूसरे शब्दो म, एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए S=D की दशा पूरी होनी चाहिए, परन्तु दीर्घकालीन साम्य के लिए उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित करके पूर्ति (S) को *'माँग (D) के बराबर किया जाता है,* क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।

दीर्घकाल म उद्योग म फर्मों के प्रवेश या बहिर्गमन (exit) के कारण उत्पादन लागत मे परिवर्तन होंगे। लागत म परिवर्तन या लागत सामायोजन (cost adjustments) इस बात पर निर्भर करेंगे कि उद्योग 'बढ़ती हुई लागतों' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है या 'स्थिर लागतों' या

[1] "Long run industry and individual firm equilibrium requires that short run equilibrium exists at the same time"

'घटती हुई लागतों' के अन्तर्गत। लागत की स्थिति के अनुसार ही उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा निर्धारित होगी।

२. स्थिर लागतों (Constant Costs) के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में स्थिर लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि उद्योग में फर्मों की संख्या में परिवर्तन के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत फर्मों की लागतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।[9] इसका अभिप्राय है कि स्थिर-लागत उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के कारण किसी भी उत्पत्ति के साधन की कीमत, अर्थात् फर्म की लागत, में वृद्धि नहीं होगी तथा उद्योगों में से फर्मों के छोड़ जाने से किसी भी उत्पत्ति के साधन की कीमत अर्थात् फर्म के लिए उसकी लागत में कोई कमी नहीं होगी।[9] ऐसी स्थिति केवल तब सम्भव है जबकि सम्पूर्ण उद्योग इतना छोटा है कि उसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों की माँग, उनकी कुल माँग की तुलना में, बहुत ही थोड़ी या नगण्य (negligible) है। मान लीजिए चित्र नं० ४ में उद्योग के वस्तु की माँग रेखा D_1D_1 तथा उसकी अल्पकालीन पूर्ति रेखा SS_1 एक-दूसरे को बिन्दु E पर काटते हैं, अर्थात् वस्तु की कीमत OP या PE है। माना कि बिन्दु E उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है। दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होना आवश्यक है अर्थात् कीमत (या AR) प्रत्येक फर्म की न्यूनतम औसत लागत (minimum AC) के बराबर होगी, दूसरे शब्दों में, उद्योग की दीर्घकालीन साम्य कीमत P (या OP) व्यक्तिगत (individual) फर्मों की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी, तथा उद्योग का 'साम्य उत्पादन' PE (या OQ) होगा। यह शुरू की स्थिति (starting position) है।

चित्र—४
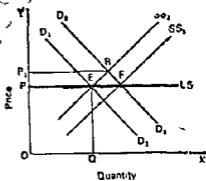
माना कि माँग में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप माँग रेखा दायें को खिसककर D_2D_2 की स्थिति में आ जाती है जहाँ पर कि उसके एक लम्बे समय तक रहने की आशा होती है। माँग में वृद्धि के कारण उद्योग का पहला साम्य भंग होकर नया साम्य स्थापित होगा, तथा अल्पकालीन और दीर्घकालीन समायोजन साथ-साथ शुरू हो जायेंगे।[10] अल्पकाल में उद्योग के नये साम्य की स्थिति R बिन्दु बताता है क्योंकि यह नयी माँग रेखा D_2D_2 तथा पुरानी पूर्ति रेखा SS_1 का कटाव का बिन्दु है। स्पष्ट है कि माँग में वृद्धि के कारण अल्पकाल में कीमत बढ़कर P_1 हो जाती है तथा फर्में केवल अपनी वर्तमान उत्पादन-क्षमता की सहायता से उत्पादन को बढ़ा पाती हैं और अल्पकाल में उत्पादन बढ़कर P_1R हो जाता है। उद्योग में पहले फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही थीं, परन्तु अब कीमत बढ़ जाने के कारण उन्हें अतिरिक्त लाभ (excess profits) प्राप्त होने लगते हैं। परन्तु अतिरिक्त लाभ केवल अल्पकाल में ही रह पाते हैं।

[8] 'An industry is said to operate under conditions of constant cost in the long run only if the costs of the individual firm are not affected by changes in the number of firms in the industry.'

[9] दीर्घकाल में जब नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग का विस्तार होता है तो उत्पत्ति के साधनों की माँग बढ़ेगी, माँग बढ़ने पर उत्पत्ति के साधनों की कीमत बढ़ सकती है अर्थात् फर्मों के लिए साधनों की लागत बढ़ सकती है। इसी प्रकार जब फर्मों के बहिर्गमन द्वारा उद्योग का सकुंचन होता है तो उत्पत्ति के साधनों की माँग कम होगी, परिणामस्वरूप उनकी कीमत अर्थात् लागत में कमी हो सकती है। परन्तु स्थिर-लागत उद्योग ऐसा उद्योग है जिसमें फर्मों की संख्या में वृद्धि या कमी होने पर साधनों की कीमतों में अर्थात् फर्मों की उत्पादन-लागतों में कोई वृद्धि या कमी नहीं होती।

[10] Short run and long-run adjustment will be set in motion simultaneously

दीर्घकाल में इन लाभों से आकर्षित होकर उद्योग मे नयी फर्में प्रवेश करने लगती है, परिणामस्वरूप पूर्ति बढती है और पूर्ति रेखा दायें को खिसकती जाती है और कीमत गिरती जाती है, तथा अतिरिक्त लाभ कम होते जाते हैं। उद्योग मे नयी फर्मों का प्रवेश तब बन्द हो जायगा जबकि अतिरिक्त लाभ बिलकुल समाप्त (squeezed out) हो जाते हैं (अर्थात् फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं) और इस प्रकार उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा (दायें को खिसक कर) SS_2 की स्थिति मे आ जाती है। ध्यान रहे कि उद्योग 'स्थिर लागतों' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है, इसलिए उद्योग मे नयी फर्मों के प्रवेश के कारण फर्मों की संख्या मे वृद्धि होने पर तथा उत्पत्ति के साधनों की माँग बढने पर भी फर्मों की उत्पादन-लागत नहीं बढ़ेगी, वह समान बनी रहेगी। अब उद्योग का नया दीर्घकालीन साम्य F बिन्दु पर होगा, वस्तु की कीमत अल्पकालीन कीमत P_1 से घटकर पहली कीमत P के बराबर हो जायेगी (क्योंकि लागत अर्थात् औसत लागत में कोई परिवर्तन नहीं होता है) और यह कीमत प्रत्येक फर्म की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी तभी प्रत्येक फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा अर्थात् प्रत्येक फर्म दीर्घकालीन साम्य में होगी। चूंकि उद्योग मे नयी फर्मों के प्रवेश के परिणामस्वरूप फर्मों की संख्या मे वृद्धि हुई है इसलिए उद्योग की पूर्ति पहले से बढकर PF हो जाती है। यदि हम उद्योग के दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओ E तथा F को मिला दें, तो हमे उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा (Long run Supply Curve) LS प्राप्त हो जाती है जो कि एक पडी रेखा होती है। संक्षेप मे, एक स्थिर लागत उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा एक पडी रेखा या पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) रेखा होती है।

३. बढती हुई लागतों (Increasing Costs) के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल मे बढती हुई लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि नय[illegible]र्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग के आकार तथा उत्पादन क्षमता मे विस्तार होने पर सभी व्यक्तिगत [illegible]ों की लागतो मे वृद्धि होती है।[11] इसका अभिप्राय है कि उद्योग के विस्तार तथा नयी फर्मों [illegible]वेश के कारण उत्पत्ति के साधनो की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जायेगा अर्थात् उनकी मां[illegible]ढ़ेगी। उत्पत्ति के साधनो की माँग बढने से उनकी कीमतो मे वृद्धि होगी अर्थात् उद्योग के अन्[illegible]त सभी फर्मों की उत्पादन लागत बढ जायगी। इसके विपरीत, यदि उद्योग के आकार का सकुच[illegible] होता है और फर्मों का बहिर्गमन होता है तो उत्पत्ति के साधनों की माँग कम हो जायेगी उनकी कीमतें गिरेंगी और इस प्रकार सभी फर्मों की लागतें घट जायेंगी।
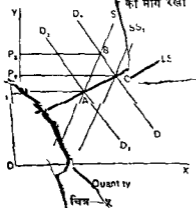
चित्र न० ५ मे उद्यो[illegible] की माँग रेखा D_1D_1 तथा उसकी अल्पकालीन पूर्ति रेखा SS_1 को बिन्दु A पर काटती है, अर्थात् वस्तु की कीमत P_1 (या OP_1) है। यह शुरू की स्थिति (starting position) है। सुविधा के लिए माना कि बिन्दु A उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य स्थिति को बताता है। उद्योग की साम्य कीमत P_1 (या OP_1) है तथा साम्य उत्पादन P_1A है। कीमत P_1 प्रत्येक फर्म की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी क्योंकि एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए यह आवश्यक है कि कीमत (या AR) = न्यूनतम औसत लागत (minimum AC) के।

चित्र—५

माना कि माँग मे वृद्धि होती है तथा नयी माँग रेखा की स्थिति D_2D_2 हो जाती है जहाँ

[11] An industry is said to operate under conditions of increasing cost in the long run if the costs of all the individual firms tend to increase as the industry expands in size and productive capacity by means of the entrance of new firms"

पर कि उसके एक लम्बे समय तक रहने की आशा रहती है। अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन समायोजन साथ साथ शुरू हो जायेंगे। नयी माँग रेखा D_2D_2 पुरानी पूर्ति रेखा SS_1 को B बिन्दु पर काटती है, अतः अल्पकाल में उद्योग का नया साम्य B बिन्दु पर होगा। स्पष्ट है कि माँग में वृद्धि के कारण अल्पकाल में कीमत बढ़कर P_3 हो जाती है तथा फर्में केवल अपनी वर्तमान उत्पादन क्षमता की सहायता से थोड़ा उत्पादन बढ़ा पाती है और अल्पकाल में उद्योग का उत्पादन बढ़कर P_3B हो जाता है। उद्योग में पहले फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही थी, परन्तु अब कीमत बढ़ जाने के कारण उन्हें 'अतिरिक्त लाभ' प्राप्त होने लगते है। परन्तु ये अतिरिक्त लाभ केवल अल्पकाल में ही रह पाते है। दीर्घकाल में इन लाभों से आकर्षित होकर उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करने लगती है, परिणामस्वरूप पूर्ति बढती है और पूर्ति रेखा दायें को खिसक जाती है तथा अतिरिक्त लाभ कम होते जाते है। अतिरिक्त लाभों की समाप्ति **दो-तरफा दबाव** (two-way squeeze) के कारण होती है—नयी फर्मों के प्रवेश के परिणामस्वरूप एक ओर तो उत्पत्ति के साधनों की कीमतें बढ़ती हैं और इस प्रकार फर्मों की उत्पादन लागत बढ़ती है, दूसरी ओर नयी फर्मों के प्रवेश के कारण वस्तु की पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत गिरती है। इन दोनों बातों के कारण कीमत तथा लागत में अन्तर (अर्थात् अतिरिक्त लाभ) कम होता जाता है। नयी फर्मों का प्रवेश होना (तथा पूर्ति रेखा का दायें को खिसकना अर्थात् पूर्ति का बढ़ना) तब बन्द हो जाता है जबकि 'दो-तरफा दबाव' के कारण अतिरिक्त लाभ बिलकुल समाप्त हो जाते हैं और प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होने लगते है तथा उद्योग पुनः दीर्घकालीन (तथा अल्पकालीन) साम्य की स्थिति में बिन्दु C पर आ जाता है (बिन्दु C नयी माँग रेखा D_2D_2 तथा नयी पूर्ति रेखा SS_2 का कटाव बिन्दु है)। अब उद्योग का नया दीर्घकालीन साम्य मूल्य P_2 होगा (जो कि प्रारम्भिक दीर्घकालीन साम्य मूल्य से अधिक है), तथा नया दीर्घकालीन उत्पादन P_2C होगा (जो कि पहले के साम्य उत्पादन P_1A से अधिक है)। दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओं A और C को मिला देने से (बढ़ती हुई लागतों के अन्तर्गत) उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS प्राप्त हो जाती है।

४ घटती हुई लागतों (Decreasing Costs) के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में घटती हुई लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग के आकार तथा उत्पादन क्षमता में विस्तार होने पर सभी व्यक्तिगत फर्मों की लागतों में कमी होती है।[13] इसका अभिप्राय है कि विस्तार तथा नयी फर्मों के प्रवेश के कारण उत्पत्ति के साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जायेगा, परन्तु 'घटती हुई लागतों' के अन्तर्गत साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग करने (अर्थात् उनकी अधिक माँग करने) पर भी साधनों की कीमत घटती है और इसलिए उद्योग में सभी फर्मों की उत्पादन लागत घटती है। व्यावहारिक जगत में सामान्यतया ऐसी स्थिति नहीं पायी जाती है। इस स्थिति का विवेचन केवल सैद्धान्तिक (theoretical) है।
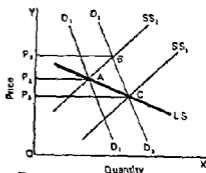
चित्र—६

चित्र नं० ६ में बिन्दु A प्रारम्भिक स्थिति (starting situation) को बताता है। बिन्दु A उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है, उद्योग का दीर्घकालीन साम्य मूल्य P_1 है और इस मूल्य पर प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है, तथा साम्य उत्पादन P_1A है। माना कि माँग बढ़कर D_2D_2

[13] "An industry is said to operate under conditions of decreasing cost in the long-run if the costs of all the individual firms tend to decrease as the industry expands in size and productive capacity by means of the entrance of new firms."

हो जाती है। अल्पकाल में उद्योग के नये साम्य की स्थिति बिन्दु B बतायेगा, कीमत बढ़कर P_2 हो जायेगी तथा उत्पादन बढ़कर P_2B हो जाता है। कीमत के बढ़ जाने से फर्मों को सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त होगा। दीर्घकाल में इस अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करेंगी, उत्पत्ति के साधनों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया जायेगा परन्तु सभी फर्मों के लिए कुछ उत्पत्ति के साधनों की लागत घटेगी (क्योंकि उत्पादन घटती हुई लागत के अन्तर्गत हो रहा है) और वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी अर्थात् पूर्ति रेखा SS_1 नीचे को खिसककर SS_2 की स्थिति में आ जायेगी। अब उद्योग पुन C बिन्दु पर दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में आ जाता है दीर्घकालीन साम्य की कीमत P_3 होगी (जो कि पहली दीर्घकालीन साम्य कीमत P_1 से कम है), साम्य उत्पादन P_3C होगा (जो कि पहले साम्य उत्पादन P_1A से अधिक है), तथा साम्य कीमत P_3 पर उद्योग में पुन सब फर्मों को सामान्य लाभ प्राप्त होगा। दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओं A तथा C को मिला देने से 'घटती हुई लागतों' के अन्तर्गत उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न

१ एक उद्योग के साम्य से आप क्या समझते हैं? पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की दशाओं की विवेचना कीजिए।

What do you understand by equilibrium of an industry? Discuss the conditions of short run and long run equilibrium of an industry under perfect competition

[संकेत—इस अध्याय की सम्पूर्ण विषय-सामग्री (चित्रों सहित) संक्षेप मे लिखिए।]

२ फर्म की साम्यावस्था तथा उद्योग की साम्यावस्था का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Distinguish between the equilibrium of a firm and the equilibrium of an industry (*Sagar*, 1964)

[संकेत—सर्वप्रथम फर्म के साम्य के अर्थ को स्पष्ट कीजिए, इसके लिए देखिए अध्याय ७ म 'फर्म के साम्य का अर्थ' नामक शीर्षक की सम्पूर्ण विषय-सामग्री तथा 'फर्म का साम्य—सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति' नामक केन्द्रीय शीर्षक (central heading) के अन्तर्गत point no १ फर्म के साम्य की सामान्य दशा 'MR=MC' की सम्पूर्ण विषय-सामग्री। इसके पश्चात् एक उद्योग के साम्य के अर्थ तथ अभिप्रायों को स्पष्ट कीजिए, इसके लिए देखिए इस अध्याय मे 'एक उद्योग के साम्य का अर्थ' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री, इसके पश्चात् 'एक उद्योग का अल्पकालीन साम्य' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत point no १ 'उद्योग के अल्पकालीन साम्य के अभिप्राय' की सम्पूर्ण विषय-सामग्री को लिखिए, और तत्पश्चात् 'एक उद्योग का दीर्घकालीन साम्य' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत *point no* १ 'एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के अभिप्राय' की सम्पूर्ण विषय-सामग्री लिखिए।]

३ 'एक फर्म के साम्य' तथा 'एक उद्योग के साम्य' के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग के साम्य की दशाओं की विवेचना कीजिए।

Differentiate between 'equilibrium of a firm' and 'equilibrium of an industry' and discuss the conditions of equilibrium of the industry under perfect competition. (*Punjab*, 1963)

४ पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत एक फर्म की लागत रेखा को निकालिए और उसको एक उद्योग की पूर्ति रेखा से सम्बद्ध कीजिए।

Deduce the cost curve of a firm and relate it to the supply curve of the industry under the conditions of perfect competition (*Bhagalpur*, 1966 A)

५ एक स्पर्द्धात्मक उद्योग की पूर्ति रेखा को खींचते समय आप कौन-सी लागतों को ध्यान में रखेंगे ? पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कार्य करने वाले एक उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा को उत्पत्ति के नियम किस प्रकार प्रभावित करते हैं ?

What cost would you take into account in drawing the supply curve of a competitive industry ? How do laws of returns affect the long period supply curve of an industry operating under conditions of perfect competition ? *(Punjab, 1964)*

६ "अल्पकाल में किसी उद्योग में 'पूर्ण साम्य' की स्थिति उपलब्ध करना बहुत ही कम सम्भावित बात है, तथा ऐसा केवल संयोगवश ही होता है।" समझाइए।

"The attainment of full equilibrium in an industry in the short run is a rare phenomenon, and this may happen only by accident" Explain *(Sagar, 1968)*

[संकेत—एक उद्योग में अल्पकालीन तथा दीर्घ,ruc र की विवेचना (चित्रों सहित) कीजिए, समस्त विषय सामग्री स्प,rr— ,लाइए।]

9 एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन
[PRICE AND OUTPUT UNDER MONOPOLY]

१. एकाधिकारी के अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF MONOPOLY)

एकाधिकारी के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है : (i) एकाधिकारी अपने क्षेत्र में एक ही उत्पादक होता है अर्थात् फर्म तथा उद्योग एक ही होते हैं। एकाधिकारी एक-फर्म-उद्योग (one-firm industry) है। (ii) एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती। (iii) एकाधिकारी के क्षेत्र में फर्मों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें होती हैं।

उपर्युक्त तीनों बातों के परिणामस्वरूप एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है, और वह पूर्ति को घटा-बढ़ाकर वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है, अर्थात् एकाधिकारी की अपनी मूल्य नीति (price policy) होती है।

२. एकाधिकारी का उद्देश्य
(OBJECT OR GOAL OF A MONOPOLIST)

किसी भी अन्य उत्पादक की भाँति एकाधिकारी का उद्देश्य अपने 'लाभ' या 'शुद्ध एकाधिकारी आगम' (net monopoly revenue) को अधिकतम करना होता है। अधिकतम लाभ का अर्थ 'प्रति इकाई लाभ' को अधिकतम करने से नहीं है, बल्कि 'कुल लाभ को अधिकतम' करने से होता है।[1] दूसरे शब्दों में, अधिकतम लाभ का अर्थ है 'प्रति इकाई लाभ × विक्रय की गयी मात्रा' (profit per unit × quantity sold) को अधिकतम करना।[2]

३. एकाधिकारी एक साथ कीमत तथा पूर्ति की मात्रा दोनों को निश्चित नहीं कर सकता
(A MONOPOLIST CANNOT FIX BOTH PRICE AND OUTPUT SIMULTANEOUSLY)

यद्यपि एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है, परन्तु माँग पर उसका कोई अंकुश नहीं होता है। इसलिए वह मूल्य तथा पूर्ति की मात्रा दोनों को एक साथ निश्चित नहीं कर सकता; एक समय पर इन दोनों में से वह किसी एक—कीमत को या पूर्ति की मात्रा को—ही निश्चित कर सकता है। यदि वह पूर्ति की मात्रा निश्चित करता है तो माँग की दशा के

---

[1] The monopolist seeks 'maximum total profit' not 'maximum unit profit'

[2] एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को नीचा रखकर प्रति इकाई कम लाभ प्राप्त कर सकता है, परन्तु वस्तु को अधिक मात्रा में बेचकर कुल लाभ को अधिकतम कर सकता है। इसके विपरीत, यह सम्भव है कि वस्तु की प्रति इकाई कीमत ऊँची हो और इस प्रकार प्रति इकाई लाभ अधिक हो, परन्तु ऐसी स्थिति में वस्तु की मात्रा बहुत कम बिक सकती है और परिणामस्वरूप कुल लाभ पहले की अपेक्षा कम हो सकता है। ये स्थितियाँ माँग की दशा अर्थात् माँग की लोच पर निर्भर करेंगी।

अनुसार उसे वस्तु की कीमत निर्धारित करनी पड़ेगी। इसके विपरीत, यदि वह कीमत निश्चित करता है तो इस निश्चित की गयी कीमत पर, माँग के अनुसार, उसे पूर्ति की *मात्रा निर्धारित करनी* पड़ेगी। प्राय एकाधिकारी कीमत को निश्चित करता है क्योंकि इस निश्चित की गयी कीमत पर वस्तु की जितनी माँग होगी उसके अनुसार वह सुगमता से वस्तु की पूर्ति की मात्रा निर्धारित कर लेता। अत पूर्ति की मात्रा तथा कीमत में से उसके लिए कीमत को निश्चित करना अधिक सुरक्षित रहता है और वह प्रायः कीमत ही निश्चित करता है।[3]

४. दो रीतियाँ
(TWO APPROACHES)

एकाधिकारी के साम्य के लिए अर्थात् एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन-निर्धारण के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जा सकता है

(i) **कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति** (*Total revenue and total cost curves approaches*)—इस रीति के अन्तर्गत जिस स्थान पर कुल आगम (TR) तथा कुल लागत (TC) के बीच खड़ी दूरी अधिकतम होगी वहाँ पर एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा अर्थात् वह साम्य की स्थिति में होगा।

(ii) **सीमान्त विश्लेषण रीति** (Marginal Analysis Approach) **अर्थात् सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति** (Marginal and Average Curves Approach)—इस रीति द्वारा एकाधिकारी साम्य की स्थिति म तब होगा जबकि सीमान्त आगम (MR)=सीमान्त लागत (MC) के। [एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन के निर्धारण मे कुछ मान्यताओं को लेकर चलते हैं, जानकारी के लिए इनको फुटनोट न० ४ म दिया गया है।[4]]

५. कुल आगम तथा लागत रेखाओं की रीति
(TOTAL REVENUE AND TOTAL COST CURVES APPROACH)

चित्र न० १ मे OM से कम या ON से अधिक उत्पादन करने से फर्म को ऋणात्मक लाभ (negative profit) अर्थात् हानि होगी क्योंकि इन दोनों स्थितियों मे TC-रेखा ऊपर है

चित्र—१

ly) इस गरण आगम बराबर
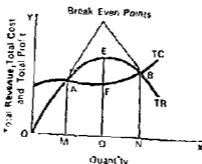
[3] इसके विपरीत, वह पूर्ति की मात्रा भी निश्चित कर सकता है और माँग की दशा से कीमत निर्धारित हो सकती है, परन्तु माँग की दशा अनिश्चित होती है तथा उस पर ए का कोई नियन्त्रण नहीं होता। यह सम्भव है कि माँग मे अधिक कमी होने पर उस की हुई कुल पूर्ति की मात्रा न बिके और उसे हानि उठानी पड़े।

[4] एकाधिकारी साम्य के पीछे मुख्य मान्यताएँ (i) एकाधिकारी भी, किसी की भाँति, अपने लाभ को अधिकतम करेगा। (ii) एकाधिकार मे उत्पादक एक यह मान लिया जाता है कि क्रेताओं या उपभोक्ताओं मे प्रतियोगिता है) से कम है। संख्या बहुत अधिक होती है, परिणामस्वरूप कोई भी क्रेता व्यक्तिगत रूप the behaviour of marginal cost the

TR-रेखा के। MN के बीच उसको धनात्मक लाभ (positive profit) होगा, फर्म OQ मात्रा उत्पादन करेगी क्योंकि इस मात्रा पर उसको अधिकतम लाभ जोकि EF है, प्राप्त होगा।[5] दूसरे शब्दों में, साम्य की अवस्था में, फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करेगी। बिन्दु 'A' तथा बिन्दु 'B' पर TR और TC बराबर (break-even) हैं अर्थात् इन बिन्दुओं पर एकाधिकारी को शून्य लाभ (या सामान्य लाभ) प्राप्त होता है इन बिन्दुओं को 'Break-even points' कहते हैं।

कुल आगम तथा कुल लागत की रीति भद्दी (cumbersome) है। इसके कारण हैं: (i) TR तथा TC के बीच अधिकतम खड़ी दूरी को एक निगाह में प्रायः ठीक प्रकार से ज्ञात करना कठिन हो जाता है तथा (ii) चित्र को देखकर प्रत्यक्ष रूप से वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात नहीं किया जा सकता है, कुल आगम (चित्र में EQ) में कुल उत्पादन (चित्र में OQ) का भाग देने पर ही प्रति इकाई कीमत मालूम हो सकती है।

दूसरी रीति अर्थात् 'सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति' अधिक अच्छी समझी जाती है।

६ सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति
(MARGINAL AND AVERAGE CURVES APPROACH)

१ एकाधिकारी के साम्य के लिए, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) का बराबर होना आवश्यक है। एकाधिकारी साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो रहा हो, उससे कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन तब नहीं होगा जबकि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो, अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा जबकि MR=MC के हो।

सीमान्त आगम (MR) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) में वृद्धि, तथा सीमान्त लागत (MC) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत (TC) में वृद्धि।

यदि (MC) अधिक है (MR) से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम में वृद्धि अधिक है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के, अर्थात् एकाधिकारी को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से लाभ होगा। इस प्रकार जब तक MR अधिक है MC से, तो एकाधिकारी अतिरिक्त उत्पादन करके अपने लाभ को बढ़ा सकेगा, परन्तु जब MR, MC के बराबर हो जायेगा तो अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम ठीक उस अतिरिक्त इकाई की लागत के बराबर होगा तथा एकाधिकारी के लिए अब उत्पादन को और बढ़ाकर लाभ को अधिकतम करने की सभी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। यदि MR कम है MC से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम में वृद्धि कम है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के, अर्थात एकाधिकारी को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से हानि होगी। **अतः एकाधिकारी उत्पादन को केवल उस मात्रा तक ही करेगा जहाँ पर कि अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम बराबर है उस इकाई की लागत के, अर्थात् जहाँ पर MR=MC के है।**

(A MONOP______

यद्यपि नहीं कर सकता, एक क्रेता की दृष्टि में वस्तु की कीमत दी हुई होती है। (iii) कोई अकुश नहता (या उपभोक्ता) विवेकपूर्ण (rational) होता है, वह वस्तु को अपने अधिमान के नहीं कर सकते (a scale of preferences) के आधार पर खरीदता है। इस प्रकार विभिन्न कीमतों को—ही निर्दि द्वारा माँगी जाने वाली मात्राओं का अनुमान लगाया जा सकता है, अर्थात् प्रत्येक ______माँग रेखा खींची जा सकती है, इन व्यक्तिगत माँग-रेखाओं को जोडकर (एकाधिकारी

[1] The monopकुल माँग ज्ञात की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारी अपनी वस्तु की कुल

[2] एक एकाधिकामान लगा सकता है।

सकता है, परन्तु विभिन्न स्तरों कर कुल आगम रेखा (TR) तथा कुल लागत रेखा (TC) की इसके विपरीत, यह सकतम लाभ की स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है, एकाधिकारी वस्तु की इकाई लाभ अधिक हो करेगा जहाँ पर कि TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी सबसे अधिक हो परिणामस्वरूप कुल ला ही उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

अर्थात् माँग की लोच पर

२. माँग पक्ष (Demand Side)—एकाधिकारी के लिए अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात् AR रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है तथा *सीमान्त आगम (MR) कम होती है कीमत (AR) से।*

नीचे को गिरती हुई AR-रेखा का अर्थ है कि एकाधिकारी को वस्तु की अधिक मात्रा बेचने के लिए कीमत घटानी पड़ेगी। चूंकि एकाधिकारी के पास ही वस्तु की कुल पूर्ति होती है, इसलिए वस्तु की पूर्ति की मात्रा घटाने बढ़ाने से उसकी कीमत प्रभावित होगी, वस्तु की अधिक मात्रा बेचने के लिए उसको कीमत घटानी पड़ेगी।

एकाधिकारी मे सीमान्त आगम (MR), कीमत (AR) से कम होता है। एकाधिकारी को वस्तु की बिक्री बढ़ाने के लिए कीमत कम करनी पड़ती है, इसके कारण सीमान्त आगम (MR) कम रहता है कीमत (अर्थात् AR) से। एकाधिकारी जब एक अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए कीमत घटाता है तो उसे कीमत की कटौती केवल अतिरिक्त इकाई पर नहीं बल्कि पिछली सब इकाइयों पर करनी पड़ती है, इसलिए अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) कम होता है कीमत (अर्थात् AR) से।[6]

एकाधिकारी को कीमत निश्चित करते समय माँग की लोच को भी ध्यान मे रखना पड़ता है। यदि उसकी माँग की लोच अधिक है तो वह वस्तु की कीमत अपेक्षाकृत कम रखकर बहुत अधिक मात्रा बेचेगा, ऐसा करने मे उसका प्रति इकाई लाभ कम होगा परन्तु कुल लाभ (अर्थात्, 'प्रति इकाई लाभ × बिक्री की गयी मात्रा') अधिकतम होगा। इसके विपरीत, यदि माँग बेलोचदार है तो वह वस्तु की ऊँची कीमत रख सकेगा क्योंकि ऐसा करने से उसकी माँग पर कोई विशेष कमी नहीं होगी और वह अपने लाभ को अधिकतम कर सकेगा।

इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रखने की बात है कि *"MR-रेखा माँग की लोच पर प्रकाश डालती है तथा MC रेखा लागत के व्यवहार को बताती है। MR तथा MC के बराबर करने मे* एकाधिकारी इन दोनो (अर्थात् माँग की लोच तथा लागत) पर ध्यान दे लेता है।[7]

---

[6] इस बात को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना एकाधिकारी १० इकाइयो को १ रुपया प्रति इकाई की दर से बेच सकता था, यदि वह १० इकाइयाँ न बेचकर ११ इकाइयाँ बेचता है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी, माना कि वह अब ९५ पैसे प्रति इकाई की दर से वस्तु को बेचता है अत

सीमान्त आगम (MR)

=११वी इकाई से प्राप्त आगम—पिछली १० इकाइयो पर ५ पैसे प्रति इकाई की दर से कीमत की कुल कटौती।

=९५ पैसे—५० पैसे=४५ पैसे

११वी अतिरिक्त इकाई को ९५ पैसे मे बेचा जाता है इसलिए प्रकट रूप से (apparently) ऐसा प्रतीत होता है कि ९५ पैसे ही सीमान्त आगम (MR) है, परन्तु यह MR नही है, इस ९५ पैसे मे से पिछली १० इकाइयो पर ५ पैसे प्रति इकाई की दर से कीमत मे कमी के कारण (९५—५०)—४५ पैसे सीमान्त आगम होगा।

एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) मे जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम (MR) कहते हैं, यदि इस मूल परिभाषा को ध्यान मे रखें तो भी MR ४५ पैसे के बराबर आयेगा, यह निम्न से स्पष्ट है

११ इकाइयो को बेचने से कुल आगम=११ × ९५ पैसे=१०·४५ रु०

१० इकाइयो (यदि १० इकाइयाँ बेची जातीं) के बेचने से कुल आगम =१० × १ रु० =१०·०० रु०

अत: ११वीं अतिरिक्त इकाई के बेचने से कुल आगम मे वृद्धि (अर्थात MR) =४५ पैसे

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि MR (जो कि ४५ पैसे है), AR (जोकि ९५ पैसे है) से कम है।

[7] "Elasticity of demand is reflected in the marginal revenue curve, and the behaviour of costs in the marginal cost curves In equalising marginal revenue and marginal cost the monopolist shall have taken account of both these factors."

३ पूर्ति पक्ष (Supply Side)—एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूरा या बहुत नियन्त्रण होता है। लागत रेखाओं की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। पूर्ण प्रतियोगिता की भांति, एकाधिकारी के अन्तर्गत अल्पकाल में स्थिर लागत (fixed cost) तथा परिवर्तनशील लागत (variable cost) दोनो होती है और दीर्घकाल में केवल परिवर्तनशील लागत ही होती है।

४ अल्पकाल मे एकाधिकारी का साम्य (Equilibrium of a monopolist in the short period)—एकाधिकारी वह मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करेगा जहाँ पर कि MR=MC के है। अल्पकाल मे एकाधिकारी को 'लाभ' या 'शून्य लाभ' (अर्थात् केवल 'सामान्य लाभ') प्राप्त हो सकता है तथा उसे 'हानि' हो सकती है। एकाधिकारी के सम्बन्ध में एक सामान्य धारणा है कि उसको हानि नहीं हो सकती है परन्तु यह एक गलत धारणा है।[1] एक एकाधिकारी चूंकि वह एक एकाधिकारी है, आवश्यक रूप से सदैव अधिक लाभ प्राप्त नहीं कर
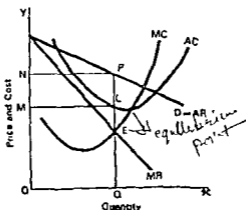
चित्र—२

सकता।[2] एकाधिकारी लाभ की मात्रा उसकी मांग तथा लागत की दशाओं पर निर्भर करती है। यदि अल्पकाल म उसकी वस्तु की मांग कमजोर है तो वस्तु की कीमत इतनी कम हो सकती है कि उसकी पूरी लागत न निकले तथा एकाधिकारी को हानि हो। परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि एक[illegible]धिकारी के लिए अल्पकाल म भी शून्य लाभ या हानि की सम्भावना अत्यन्त कम रहती है दीर्घकाल म उसे लाभ ही प्राप्त होता है। चित्रों की सहायता से लाभ शून्य लाभ तथा हानि की स्थितियों को दिखाया गया है।

चित्र न० २ मे एकाधिकारी के लाभ की स्थिति को दिखाय गया है। एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन वहाँ पर निश्चित करेगा जहाँ पर कि MR=MC के। चित्र न० २ से स्पष्ट है कि E बिन्दु पर MR=MC है। यदि E बिन्दु से होती हुई एक खड़ी रेखा खींची जाये जो कि कीमत रेखा अर्थात् AR रेखा को P बिन्दु पर तथा X axis को Q बिन्दु पर मिलती है, तो कीमत PQ होगी और एकाधिकारी OQ मात्रा उत्पादित करेगा। लाभ तथा हानि की स्थिति को ज्ञात करने के लिए AR तथा AC की तुलना की जाती है। चित्र से स्पष्ट है कि AR, AC से ऊपर है इसलिए इन दोनों के बीच की खड़ी दूरी PL प्रति इकाई लाभ को बताती है। कुल

[1] इस प्रकार की गलत धारणा का मुख्य कारण यह है कि व्यवहार म बहुत अधिक लाभ प्राप्त करने वाले एकाधिकारी हमारा ध्यान आकर्षित कर लेते हैं जबकि कम लाभ या शून्य लाभ वाले एकाधिकारियों की अवहेलना हो जाती है।

[2] But a monopolist, simply because he is a monopolist, does not necessarily earn always profits

कुछ दशाओं में एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को स्पर्द्धात्मक कीमत से नीचा रख सकता है (i) यदि AC तथा MC रखाएँ तेजी से नीचे गिर रही हैं, अर्थात् एकाधिकारी 'लागत ह्रास नियम' (अर्थात 'उत्पत्ति वृद्धि नियम') के अन्तर्गत उत्पादन कर रहा है, तो वह अपनी वस्तु की अपेक्षाकृत नीची कीमत रखकर लाभ को अधिकतम करेगा। (ii) यदि किसी क्षेत्र में उत्पत्ति के बड़े पैमाने की बचतों के परिणामस्वरूप एकाधिकारी स्थिति प्राप्त की जा सकती है, तो एकाधिकारी वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर करके अत्यन्त नीची प्रति इकाई लागत प्राप्त करेगा, परिणामस्वरूप स्पर्द्धात्मक दशाओं की अपेक्षा नीची कीमत रखेगा।

परन्तु कुल मिलाकर एकाधिकारी वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति स्पर्द्धात्मक कीमत से ऊँची रहने की होती है।

एकाधिकारी शक्ति की सीमाएँ[11]
(LIMITATIONS OF THE MONOPOLY POWER)

व्यवहार में विशुद्ध या पूर्ण एकाधिकारी नहीं पाया जाता। यद्यपि एकाधिकारी का पूर्ति तथा मूल्य पर एक बड़ी सीमा तक नियन्त्रण होता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यवहार में एकाधिकारी सदैव बहुत ऊँचा मूल्य रख सकता है। यद्यपि एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला होता है तथा पूर्ति पर उसका लगभग पूर्ण नियन्त्रण होता है परन्तु माँग पर उसका नियन्त्रण नहीं होता है। यदि उसकी वस्तु की माँग की लोच कम है तो वह ऊँची कीमत रखकर और कम मात्रा बेचकर अपने लाभ को अधिकतम करेगा। इसके विपरीत, यदि उसकी वस्तु की माँग अत्यधिक लोचदार है तो उसे कीमत नीची रखनी पड़ेगी और वस्तु की अधिक मात्रा बेचनी पड़ेगी।

निम्न तत्त्व एकाधिकारी शक्ति को सीमित करते हैं

(१) **सम्भावित प्रतियोगियों का भय** (Fear of potential rivals)—यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य ऊँचा रखकर बहुत अधिक लाभ अर्जित करता है तो इस लाभ से आकर्षित होकर कुछ शक्तिशाली प्रतियोगी उसके क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं और इस प्रकार उसका एकाधिकार समाप्त हो सकता है। ये प्रतियोगी देश के अन्दर से उत्पन्न हो सकते हैं या देश के बाहर से, अतः सम्भावित प्रतियोगियों के भय से एकाधिकारी अपने मूल्य को अधिक ऊँचा नहीं रख पाता है।

(२) **राज्य का हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण** (Government's intervention and control)—यदि एकाधिकारी मूल्य अधिक ऊँचा है तो सरकार सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए हस्तक्षेप कर सकती है और एकाधिकारी को उचित कीमत रखने को बाध्य कर सकती है। सरकार सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं (जैसे—बिजली, गैस, इत्यादि) को या तो स्वयं अपने स्वामित्व में रखती है या व्यक्तिगत एकाधिकारियों के लिए कीमत निर्धारित कर देती है। अतः सरकारी हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण के भय से एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत सदैव ऊँची नहीं रख पाता।

(३) **नयी स्थानापन्न वस्तुओं की सम्भावना** (Possibility of new close substitutes)—यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु की ऊँची कीमत रखकर अधिक लाभ प्राप्त कर रहा है, तो इस बात की सम्भावना रहती है कि एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु की खोज या आविष्कार हो जाये और उसके उत्पादन से एकाधिकारी को चोट पहुँचे।

(४) **जनमत** (Public opinion)—यदि एकाधिकारी ऊँची कीमत रखकर उपभोक्ताओं का शोषण करता है तो उपभोक्ता आपस में संगठित होकर 'उपभोक्ता संघ' बना सकते हैं तथा एकाधिकार के विरुद्ध एक कड़ा जनमत उत्पन्न हो सकता है। परिणामस्वरूप, सरकार हस्तक्षेप

---

[11] एकाधिकार के आधार या स्रोत, एकाधिकारियों का वर्गीकरण, एकाधिकार के आर्थिक परिणाम, एकाधिकार का नियन्त्रण, इत्यादि के लिए इस पुस्तक के प्रथम भाग में 'एकाधिकार तथा औद्योगिक संयोगीकरण' नामक अध्याय को देखिए।

करने को बाध्य हो जाती है और एकाधिकारी उद्योग का राष्ट्रीयकरण भी कर सकती है। अत कड़े जनमत के उत्पन्न हो जाने के डर से एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को अधिक ऊंचा रखने से डरता है।

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य और उत्पादन की तुलना
(COMPARISON OF PRICE AND OUTPUT UNDER PERFECT COMPETITION AND MONOPOLY)

१ पूर्ण प्रतियोगिता के लिए निम्न दशाओ का होना आवश्यक है (i) क्रेता तथा विक्रेताओ की बहुत अधिक सख्या, (ii) एकरूप वस्तु, (iii) उद्योग मे फर्मो का स्वतन्त्र प्रवेश, (iv) बाजार का पूर्ण ज्ञान, तथा (v) उत्पत्ति के साधनो मे पूर्ण गतिशीलता।

एकाधिकारी की दशाएँ निम्न हैं (i) एक उत्पादक होता है, (ii) एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नही होती; तथा (iii) एकाधिकारी क्षेत्र मे फर्मो के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें होती हैं।

२ एकाधिकारी तथा स्पर्द्धात्मक उत्पादक दोनो अपने लाभ को अधिकतम करते हैं। इस दृष्टि से दोनों अपने मूल्य तथा उत्पादन उस बिन्दु पर निर्धारित करते हैं जहाँ पर कि MR, MC के बराबर होगी। यदि MR, MC से अधिक है, तो इसका अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम मे वृद्धि उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत से अधिक है। दूसरे शब्दो मे, जब तक MR, MC से अधिक है, तब तक उत्पादन को बढ़ाकर लाभ को बढ़ाने की सम्भावना रहती है, और जब MR, MC के बराबर हो जाती है तो लाभ को अधिकतम करने की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। अत एकाधिकारी तथा स्पर्द्धात्मक उत्पादक दोनो ही लाभ अधिकतम करने का आधारभूत तथा सामान्य सिद्धान्त MR=MC का पालन करते हैं।

परन्तु फिर भी दोनो के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण मे अन्तर है। इसका कारण है एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओ के अन्तर का होना। एकाधिकार मे एक उत्पादक होता है तथा पूर्ण प्रतियोगिता मे अनेक उत्पादक होते हैं एव अन्य बातो मे भी अन्तर होता है। अत लाभ को अधिकतम करने का आधारभूत तथा सामान्य सिद्धान्त (MR=MC) दोनो स्थितियो मे भिन्न परिणामो को जन्म देता है।

३ पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म के लि[illegible] रेखा अर्थात् AR-रेखा पूर्णतया लोचदार होती है। सरल शब्दो मे, AR-रेखा एक पडी [illegible] होती है। पडी हुई AR-रेखा का अर्थ है कि फर्म की दी हुई कीमत पर वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। उद्योग मे वस्तु की कुल पूर्ति तथा कुल माँग की शक्तियो द्वारा जो कीमत निर्धारित हो जाती है उस प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है। एक फर्म व्यक्तिगत रूप से अपनी क्रियाओ से कीमत को प्रभावित नही कर सकती, वह दी हुई कीमत के अनुसार अपने उत्पादन को समायोजित करती है। अत यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price taker) होती है, 'मूल्य निर्धारक' (price-maker) नही होती, वह केवल 'मात्रा समायोजित करने वाली' (quantity-adjuster) होती है। दूसरे शब्दो मे, एक फर्म की कोई 'मूल्य नीति' नही होती। ध्यान रहे कि पूर्ण प्रतियोगिता मे यद्यपि एक फर्म के लिए माँग रेखा (या AR रेखा) पडी हुई [illegible] होती है [illegible] उद्योग के लिए माँग रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है। / कोई

एकाधिकारी के लिए अपनी वस्तु की माँग रेखा या AR-रे[illegible] नीचे को गिरती हु[illegible] होती है। इसका अर्थ है कि यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु की अधिक मात्रा को बेचना चाहता है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी। चूँकि एकाधिकारी अपने क्षेत्र मे अकेला उत्पादक होता है इसलिए [illegible] पूर्ति को घटाने या बढ़ाने से कीमत अवश्य प्रभावित होगी। दूसरे शब्दो मे, एकाधिकारी की अपनी 'मूल्य-नीति' होती है।

४. पूर्ण प्रतियोगिता मे सीमान्त आगम (MR) बराबर होता है औसत आगम (AR) के। दूसरे शब्दो मे सीमान्त आगम (MR) तथा मूल्य (*Price*) दोनो बराबर होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता

म वस्तु की कीमत (AR) दी हुई होती है, इसलिए एक फर्म उसी कीमत पर वस्तु की कितनी ही मात्रा बेच सकती है, अर्थात् वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (MR) वही होगा जो कि वस्तु की कीमत (AR) है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में MR, AR (price) के बराबर होती है, दोनो को एक ही पड़ी रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

एकाधिकारी में MR कम होती है AR (कीमत) से। यदि एकाधिकारी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचना चाहता है तो उसे कीमत (AR) घटानी पड़ेगी, परिणामस्वरूप सीमान्त आगम (MR), कीमत (AR) से कम होगा, इसलिए *MR रेखा को AR रेखा के नीचे गिरती* हुई रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

५. पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा सामान्यतया एकाधिकारी मूल्य ऊँचा तथा उत्पादन कम होता है। दूसरे शब्दों म, पूर्ण प्रतियोगिता मे मूल्य (AR)=सीमान्त लागत (MC) के, जबकि एकाधिकार म मूल्य (AR) अधिक होता है सीमान्त लागत (MC) से। इन दशाओ को निम्न विवरण से स्पष्ट किया जाता है

पूर्ण प्रतियोगिता मे AR=MR के और फर्म के साम्य की स्थिति में MR=MC के, इसलिए AR=MR=MC के हुआ। दूसरे शब्दो म, कीमत (AR)=MC के।

एकाधिकार म AR अधिक होती है MR से और एकाधिकारी के साम्य की स्थिति म MR=MC के होती है, इसलिए AR (कीमत) अधिक होगी सीमान्त लागत MC से।

उपर्युक्त विवरण को हम चित्र न० ८ द्वारा भी समझा सकते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए *कि MC-रेखाओ को जोडने से सम्पूर्ण उद्योग की पूर्ति रेखा (अर्थात् MC-रेखा) प्राप्त की जा सकती* है। चित्र नं० ८ मे पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सम्पूर्ण उद्योग की मांग रेखा (अर्थात् AR-रेखा) 'D=AR' *द्वारा व्यक्त की गयी है।*[13] *हम यह मान लेते हैं कि मांग तथा लागत की दशाओ मे* कोई अन्तर नही होता और यह स्पर्द्धात्मक उद्योग एकाधिकारी उद्योग हो जाता है, तो एकाधिकारी के लिए ये ही AR तथा MC रेखाएँ रहती हैं।

चित्र—८

हम देख चुके हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता मे AR=MR=MC के अर्थात् AR (कीमत) =MC के होती है, जबकि एकाधिकारी कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित करता है जहाँ पर MR =MC के होती है। चित्र न० ८ से स्पष्ट है कि स्पर्द्धात्मक उद्योग की मांग रेखा 'D=AR' उसकी पूर्ति रेखा 'MC=S' को P_C बिन्दु पर काटती है, अत: पूर्ण प्रतियोगिता मे मूल्य P_CQ निर्धारित होगा। एकाधिकारी के लिए K बिन्दु पर, MR=MC के, इसलिए एकाधिकारी मूल्य P_MT होगा। स्पष्ट है :
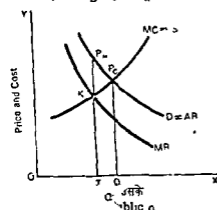
एकाधिकारी मूल्य P_MT अधिक है स्पर्द्धात्मक मूल्य P_CQ से, एकाधिकारी उत्पादन *OT कम है स्पर्द्धात्मक उत्पादन OQ से।*

(६) अन्त में एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं मे लाभ की स्थिति की तुलना करते हैं। अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी दोनो मे फर्म को

[13] ध्यान रहे कि हम एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry), न कि एक स्पर्द्धात्मक फर्म (competitive firm), की तुलना एकाधिकारी (या एकाधिकारी उद्योग) से कर रहे हैं। स्पर्द्धात्मक उद्योग के लिए मांग रेखा (या AR-रेखा या 'D=AR' रेखा) गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र मे दिखाया गया है।

लाभ शून्य लाभ (अर्थात् सामान्य लाभ) तथा हानि—तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं, परन्तु एकाधिकार म शून्य लाभ तथा हानि की प्रवृत्ति बहुत कम रहती है। दीर्घकाल मे स्पर्द्धात्मक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है जबकि एकाधिकारी उद्योग म फर्म को लाभ अर्थात् अतिरिक्त लाभ' (excess profit) प्राप्त होना प्राय निश्चित है।

विभेदकारी एकाधिकारी अथवा मूल्य विभेद
(DISCRIMINATING MONOPOLY OR PRICE DISCRIMINATION)

कई परिस्थितियों मे एक एकाधिकारी विभिन्न क्रेताओं को एक ही वस्तु विभिन्न मूल्यों पर बेचना सम्भव तथा लाभदायक पाता है।

मूल्य विभेद की परिभाषा (Definition of Price Discrimination)

श्रीमती जोन रोबिन्सन ने विभेदकारी एकाधिकार अथवा मूल्य विभेद की परिभाषा इस प्रकार दी है 'एक ही नियन्त्रण के अन्तर्गत उत्पादित एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं को विभिन्न कीमतों पर बेचने का कार्य मूल्य विभेद कहा जाता है।'[14]

मूल्य विभेद के लिए दशाएँ (Conditions for Price Discrimination)

पूर्ण प्रतियोगिता मे क्रेताओं के बीच विभेदीकरण (discrimination) सम्भव नहीं है, मूल्य विभेद तथा पूर्ण प्रतियोगिता असगत (Incompatible) है। पूर्ण प्रतियोगिता मे एकरूप वस्तु बेचने वाले विक्रेता बहुत अधिक सख्या मे होते है। ऐसी परिस्थितियों मे यदि एक विक्रेता किसी क्रेता या कुछ क्रेताओं से, अन्य क्रेताओं की अपेक्षा, अपनी वस्तु की अधिक कीमत लेता है तो वह क्रेता या वे कुल क्रेता, उस विक्रेता को छोड़कर अन्य विक्रेताओं से वही वस्तु खरीद सकेंगे। इस प्रकार विभेदीकरण तथा पूर्ण प्रतियोगिता का सहअस्तित्व नहीं हो सकता है। विभेदीकरण केवल अपूर्ण प्रतियोगिता मे ही सम्भव है, परन्तु यह भी ध्यान रखने की बात है कि अपूर्ण प्रतियोगिता मे भी सदैव मूल्य विभेद सम्भव नहीं होगा।

यहाँ पर हम एकाधिकार, जो कि अपूर्ण प्रतियोगिता का अधिकतम अपूर्ण रूप (most imperfect form of imperfect competition) है, के अन्तर्गत मूल्य विभेद की दशाओं का अध्ययन करेंगे।

मूल्य विभेद के सम्भव (possible) तथा लाभदायक (profitable) होने के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है। प्रथम दशा मूल्य विभेद 'सम्भव' होने को तथा दूसरी उसके 'लाभदायक' होने को बताती है।

१ बाजारों का पृथक्कीकरण (Separation of Markets)

यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिन बाजारों मे एकाधिकारी मूल्य विभेद अपनाता है वे बिलकुल पृथक रहें। यदि इन बाजारों म सम्पर्क (contact or communication) रहता है तो सस्ते बाजार मे य लोग एकाधिकारी-वस्तु को खरीदकर महँगे बाजार मे उसे बेचकर लाभ उठायेंगे और कुछ समय मे दोनों ही बाजारों मे वस्तु की कीमत मे अन्तर समाप्त हो जायगा तथा मूल्य विभेद टूट जायेगा। स्पष्ट है कि मूल्य विभेद के लिए आधारभूत दशा है कि एक उपभोक्ता द्वारा दूसरे उपभोक्ता को पुन बिक्री (resale) की कोई सम्भावना नहीं होनी चाहिए।[15]

"अत यदि मूल्य विभेद को सफल होना है तो एकाधिकारी बाजार के विभिन्न भागों मे क्रेताओं के बीच सम्पर्क बिलकुल असम्भव होना चाहिए या कम-से-कम अत्यन्त कठिन होना

[14] 'The act of selling the same article, produced under a single control at different prices to different buyers is known as *price discrimination*.'
—Mrs Joan Robinson *The Economics of Imperfect Competition* p 179

[15] The fundamental condition for price discrimination is that there should be no possibility of resale from one consumer to another

चाहिए। टेकनीकल भाषा मे, विभेदकारी एकाधिकारी के विभिन्न बाजारों मे कोई 'रिसन' या 'टपकन' (seepage) नहीं होनी चाहिए।"[16]

कई तत्वो या दशाओं के कारण एकाधिकारी विभिन्न बाजारो को पृथक रख सकता है, भिन्न बाजारों या बाजार के विभिन्न भागों को पृथक रखने वाले तत्व या कारण निम्न हैं -

(अ) उपभोक्ताओ की विशेषताओं के कारण (Owing to the peculiarities of consumers)—(i) मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि उपभोक्ता इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं कि बाजार के एक भाग म दूसरे भाग की अपेक्षा वस्तु का मूल्य कम है।

(ii) मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि बाजार के एक भाग म उपभोक्ताओ म यह अविवेकपूर्ण धारणा (irrational feeling) हो कि वे वस्तु की ऊँची कीमत इसलिए दे रहे हैं कि वस्तु अधिक अच्छी है।

(iii) मूल्य विभेद उस समय हो सकता है जबकि मूल्य मे अन्तर बहुत थोड़े हो और उपभोक्ता इन छोटे अन्तरो की कोई चिन्ता न करते हो।

(ब) वस्तु के स्वभाव के कारण (Owing to the nature of the commodity)—मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि वस्तु एक प्रत्यक्ष सेवा (direct service) हो, जैसे एक डाक्टर एक ही प्रकार की सेवा के लिए धनी व्यक्तियों से अधिक मूल्य (अर्थात् फीस) तथा निर्धनों से कम मूल्य ले सकता है। इस प्रकार की प्रत्यक्ष सेवाओ की पुनः विक्री सम्भव नहीं हो सकती, इसलिए मूल्य विभेद बना रहता है।

(स) दूरियो तथा सीमाओ की बाधाओ के कारण (Owing to distances and frontier barriers)—मूल्य विभेद तब सम्भव हो सकता है जबकि उपभोक्ता बहुत दूरी के कारण पृथक रहते है, या उपभोक्ताओ के बीच प्रशुल्क दीवारें (tariff walls) खडी कर दी गयी हों। यदि देश के बाजार (home market) मे विदेशो से वस्तु के आने पर ऊँचे प्रशुल्क लगे हो और ससार के अन्य देशो म एकाधिकारी वस्तु के प्रति कोई प्रशुल्क नहीं हो तो एकाधिकारी देश के सुरक्षित बाजार मे ऊँची कीमत तथा विश्व के अन्य देश या देशो मे अत्यन्त नीची कीमत रखकर दोनो बाजारो का लाभ उठायगा।

(द) कानूनी स्वीकृति के कारण (Owing to legal sanction)—कुछ दशाओ मे सरकार एकाधिकारी को वस्तु या सेवा की विभिन्न कीमतो के लेने की कानूनी स्वीकृति दे देती है, जैसे—एक बिजली कम्पनी रोशनी तथा पखों के लिए ऊँची दर तथा औद्योगिक प्रयोजनो के लिए नीची दर लेती है, क्योंकि उसे कानूनी स्वीकृति मिली होती है।

२. मांग की लोच मे अन्तर (Difference in the Elasticity of Demand)

यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु के विभिन्न बाजारो को पृथक रख सकता है तो मूल्य विभेद सम्भव (possible) होगा, परन्तु मूल्य विभेद के लाभदायक (profitable) होने के लिए यह आवश्यक है कि मांग-लोच विभिन्न बाजारो मे एकसमान न हो।[17] जिस बाजार म मांग की लोच कम है वहाँ एकाधिकारी ऊँची कीमत रखेगा और वस्तु की कम मात्रा बेचेगा। इसके विपरीत, जिस बाजार मे मांग की लोच अधिक है उसमे वह कीमत कम रखेगा और वस्तु की अधिक मात्रा बेचेगा। इस प्रकार विभेदकारी एकाधिकारी इन दोनो बाजारो मे मांग की लोच मे अन्तर का लाभ उठायेगा। यदि दोनो बाजारो मे मांग की लोच समान है तो कीमतो को भिन्न रखने में उसको कोई लाभ नहीं होगा।

---

[16] "So if price discrimination is to succeed, communication between buyers in different sectors of the monopolist's market must be impossible, or at any rate extremely difficult In technical language there must be no 'seepage' between the discriminating monopolist's different markets"

[17] "If it is possible for a monopolist to sell the same commodity in separate markets it will clearly be to his advantage to charge different prices in the different markets, provided that elasticities of demand in the separate markets are not equal."

—Mrs. Joan Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p. 181.

विभेदीकरण एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price under Discriminating Monopolist)

मूल्य विभेद का मुख्य उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, मूल्य विभेद के लिए दो दशाओं का होना आवश्यक है—(i) मूल्य विभेद तब सम्भव होगा जबकि विभिन्न बाजारों को या बाजार के विभिन्न भागों को पृथक रखा जा सके। (ii) मूल्य विभेद तब लाभदायक होगा जबकि विभिन्न बाजारों या बाजार के विभिन्न भागों में माँग की लोच में अन्तर हो अर्थात् कुछ बाजारों में माँग अत्यधिक लोचदार हो और कुछ में बेलोचदार।

विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य के लिए (अर्थात् मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण के लिए) निम्न दो दशाओं का पूरा होना आवश्यक है

(i) साम्य की सामान्य दशा, अर्थात् कुल उत्पादन का सीमान्त आगम (MR)=कुल उत्पादन की सीमान्त लागत (MC) है। यह दशा एकाधिकारी विभेदकारी तथा स्पर्द्धात्मक उत्पादक सभी के साम्य के लिए पूरी होना आवश्यक है इसलिए इस दशा को साम्य की सामान्य दशा कहते हैं।

(ii) प्रत्येक बाजार का सीमान्त आगम आपस में बराबर हो तथा प्रत्येक बाजार का सीमान्त आगम कुल उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर हो। यदि बाजार न० १ के सीमान्त आगम को MR_1 बाजार न० २ के सीमान्त आगम को MR_2 तथा कुल उत्पादन की सीमान्त लागत को MC द्वारा व्यक्त किया जाय, तो इस दशा को संक्षेप में इस प्रकार लिख सकते है

$$MR_1 = MR_2 = MC$$

यदि बाजार न० १ का सीमान्त आगम कम है जबकि बाजार न० २ का सीमान्त आगम अधिक है, तो ऐसी दशा में विभेदीकरण एकाधिकारी वस्तु की कुछ मात्रा को बाजार न० १ से हटाकर बाजार न० २ में बेचकर अपने लाभ को बढ़ा सकेगा, इस प्रकार का हस्तान्तरण (*transfer*) तब तक चलता रहेगा जब तक कि दोनों बाजारों के सीमान्त आगम बराबर न हो जायें। दूसरे शब्दों में, वह उन बाजारों में ऊँची कीमत लेगा जिनमें माँग बेलोचदार है और उन बाजारों में नीची कीमत लेगा जिनमें माँग लोचदार है। ऐसा करने में वह यह ध्यान रखेगा कि प्रत्येक बाजार में अन्तिम इकाई के बेचने से प्राप्त अतिरिक्त आगम (अर्थात् सीमान्त आगम) बराबर हो।

चित्र—६
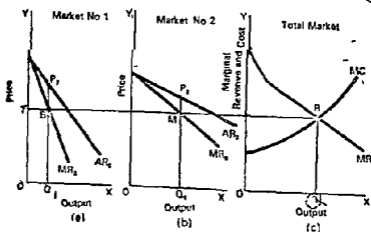
विभेदकारी एकाधिकारी के मूल्य निर्धारण को चित्र न० ६ द्वारा व्यक्त किया गया है।

चित्र न० ६ (a) म बाजार न० १ की औसत आगम तथा सीमान्त आगम रेखाएँ AR_1 तथा MR_1 है, इस बाजार म माँग की लोच कम है, चित्र न० ६ (b) मे बाजार न० २ की औसत आगम तथा सीमान्त आगम रेखाएँ AR_2 तथा MR_2 हैं, इस बाजार मे माँग की लोच अधिक है। MR_1 तथा MR_2 को जोडने से कुल सीमान्त आगम रेखा (total marginal revenue curve) MR प्राप्त हो जाती है जो कि चित्र न० ६ (c) मे दिखायी गयी है, चित्र न० ६ (c) म कुल उत्पादन की सीमान्त लागत रेखा MC है।

एकाधिकारी उत्पादन की कुल मात्रा वहाँ पर निर्धारित करेगा जहाँ पर कि कुल सीमान्त आगम और सीमान्त लागत बराबर हैं, चित्र न० ६ (c) मे R बिन्दु पर MR=MC है, इसलिए एकाधिकारी OQ के बराबर कुल उत्पादन[18] करेगा (यह विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य की पहली दशा है)। इस कुल उत्पादन को वह बाजार न० १ तथा बाजार न०२ मे इस प्रकार बाँटेगा कि प्रत्येक म सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर हो तथा दोनो बाजारो मे सीमान्त आगम आपस मे भी बराबर हो (यह विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य की दूसरी दशा है)। यदि बिन्दु R से एक पडी रेखा RT खीच दी जाये तो साम्य की दूसरी दशा पूरी हो जाती है। चित्र न० ६ (a) मे S बिन्दु पर $MR_1=SQ_1=MC$ के, चित्र न० ६ (b) मे बिन्दु 'M' पर $MR_2=MQ_2=MC$ के, यदि इन दोनो को एकसाथ देखे तो स्पष्ट है कि $MR_1=MR_2=MC$ के। चित्रो से स्पष्ट है।[19]

बाजार न० १ में,

$$\text{कीमत} = P_1Q_1$$

$$\text{बिक्री की मात्रा} = OQ$$

बाजार नं० २ मे,

$$\text{कीमत} = P_2Q$$

$$\text{बिक्री की मात्रा} = OQ_2$$

$$\text{कुल मात्रा} = OQ_1 + OQ_2$$

$$= OQ$$

चूँकि बाजार न० १ मे, बाजार न० २ की अपेक्षा, माँग की लोच कम है इसलिए बाजार न० १ मे मूल्य ऊँचा और बिक्री की मात्रा कम है।

राशिपतन
(DUMPING)

मूल्य विभेद का एक विशेष रूप ही 'राशिपतन' होता है। राशिपतन का अर्थ विदेशी बाजार मे वस्तु को बहुत नीची कीमत पर तथा देशी बाजार मे बहुत ऊँची कीमत पर बेचने के कार्य से लिया जाता है। राशिपतन के लिए यह आवश्यक दशा है कि देशी बाजार मे एकाधिकारी वस्तु की माँग बेलोच हो तथा विदेशी बाजार मे अधिक लोचदार हो। प्राय देशी बाजार मे एकाधिकारी वस्तु से मिलती-जुलती विदेशी वस्तुओ के आने पर रोक रहती है, इसलिए एकाधिकारी के लिए देशी बाजार सुरक्षित (protected) रहता है। विदेशी बाजार मे अपनी वस्तु की माँग को उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी एकाधिकारी अपनी वस्तु को औसत लागत से भी कम पर बेचता है तथा अपनी वस्तु से विदेशी बाजार को पाट देता है, अर्थात् अपनी वस्तु को बहुत बडी मात्रा मे डम्प (dump) कर देता है, इसलिए इसका नाम डम्पिग पड गया। वह विदेशी बाजार की हानि को सुरक्षित देशी बाजार मे बहुत ऊँची कीमत लेकर पूरा कर लेता है।

राशिपतन के प्रयोजन या उद्देश्य (Motives or Objects of Dumping)—राशिपतन के प्रमुख प्रयोजन या उद्देश्य निम्न हैं

(i) विदेशी बाजार में कड़ी प्रतियोगिता का सामना करने के लिए एकाधिकारी राशिपतन का सहारा ले सकता है। वह अपनी वस्तु की कीमत बहुत नीची रखकर विदेशी प्रतियोगियो को हतोत्साहित करता है और इस प्रकार अपनी वस्तु की माँग विदेशी बाजार मे उत्पन्न करता है।

[18] चित्र मे सुधार . Q_1 के स्थान पर Q पढ़िए तथा Q के स्थान पर Q_1 पढ़िए।

(ii) बढ़ते हुए प्रतिफल (increasing returns) का लाभ उठाने के लिए एकाधिकारी राशिपतन का प्रयोग कर सकता है। एकाधिकारी अपने उत्पादन के पैमाने को बढ़ाकर घटती हुई लागत (अर्थात् बढ़ते हुए प्रतिफल) को प्राप्त कर सकता है और बढ़ती हुई उत्पादन की मात्रा को विदेशी बाजार म बेच सकता है।

(iii) राशिपतन का प्रयोग अतिरिक्त उत्पादन (surplus production) को बेचने के लिए किया जाता है। माँग का गलत अनुमान लगाने के कारण वस्तु का उत्पादन बहुत अधिक हो सकता है। ऐसी दशा म उत्पादक अतिरिक्त उत्पादन को विदेशी बाजार में कम कीमत पर बेचेगा।

मूल्य विभेद का औचित्य
(JUSTIFICATION OF PRICE DISCRIMINATION)

प्राय एक प्रश्न उठाया जाता है—क्या मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस बात पर ध्यान देना होगा कि क्या मूल्य विभेद उपभोक्ताओं के लिए लाभदायक है या हानिकारक ?

प्रकट रूप से यह कहा जा सकता है कि मूल्य विभेद सामाजिक न्याय (social jutice) की दृष्टि से अच्छा नहीं है क्योंकि यह उपभोक्ताओं के बीच भेदभाव करता है। परन्तु ध्यान रहे कि कुछ परिस्थितियों म उपभोक्ताओं के बीच भेदभाव करने से अधिक अच्छा सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव मे इस प्रकार का सामान्य कथन पूर्णत सही नहीं है कि मूल्य विभेद सदैव सामाजिक हित के विरुद्ध होता है। मूल्य विभेद की प्रत्येक परिस्थिति को उसके गुणों के आधार पर आँकना पड़ेगा और तभी यह कहा जा सकेगा कि मूल्य विभेद न्याययुक्त है या नहीं।

वास्तव मे कई दशाओं मे मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है। ये दशाएँ निम्न हैं (i) सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं के सम्बन्ध म मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है। पोस्ट आफिस पोस्ट कार्ड की कीमत नीची रखता है क्योंकि निर्धन व्यक्ति इनका अधिक प्रयोग करते हैं। परन्तु पोस्ट आफिस मूल्य विभेद के कारण ही ऐसा कर सकता है, यह अपनी अन्य वस्तुओं पर ऊँची कीमत लेता है ताकि पोस्ट कार्ड की कीमत कम रख सके। इसी प्रकार रेलवे प्रथम श्रेणी के मुसाफिरों से बहुत अधिक किराया लेकर तृतीय या द्वितीय श्रेणी के किरायों को नीचा रखती है।

(ii) मूल्य विभेद तब उचित कहा जायेगा जबकि देश मे अतिरिक्त उत्पादन को विदेशों मे बेचना पड़ता है। अतिरिक्त उत्पादन को बचने के लिए विदेशों म वस्तु की कीमत नीची रखनी पड़ेगी तथा देश मे अपेक्षाकृत ऊँची कीमत लेनी पड़ेगी। यदि विदेशों मे अतिरिक्त उत्पादन नहीं बेचा जाता तो देश के नई साधनों का पूर्ण प्रयोग नहीं हो पायगा तथा उद्योग विशेष को बड़े पैमाने की बचतें भी पूर्णतया प्राप्त नहीं हो पायेंगी। अत स्पष्ट है कि यदि मूल्य विभेद के कारण देश के उत्पादन तथा उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है तो यह उचित है।

परन्तु कुछ दशाओं मे मूल्य विभेद समाज के लिए हानिकारक भी है (i) इसके कारण उत्पत्ति के साधनों का अधिक न्याययुक्त प्रयोगों म हस्तान्तरण नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी अविकसित देश मे एक विभेदकारी एकाधिकारी विलासिता की वस्तु का बड़ी मात्रा मे उत्पादन कर रहा है तो यह देश के हित म नहीं होगा। इस प्रकार मूल्य विभेद साधनों का अनुचित वितरण (maldistribution) कर सकता है। (ii) सिद्धान्त के आधार पर मूल्य विभेद उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि विभेदकारी एकाधिकारी अपने लाभों को अधिकतम करने के लिए देश मे वस्तु की कम मात्रा बेचता है तथा ऊँची कीमत लेता है।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य विभेद सभी दशाओं म उचित नहीं है। मूल्य विभेद की प्रत्येक परिस्थिति को उसके गुणों पर आँकना होगा और तभी मूल्य विभेद को उचित या अनुचित कहा जा सकेगा, कुछ परिस्थितियों जैसे—सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं मे, मूल्य विभेद उचित है।

प्रश्न

१ निम्नलिखित की विवेचना कीजिए

(अ) 'एकाधिकारी कीमत तथा पूर्ति की मात्रा दोनों को एक साथ निर्धारित नहीं कर सकता ।'

(ब) एकाधिकारी का अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन ।

Discuss the following

(a) A monopolist cannot fix both price and output simultaneously '

(b) The short run and long-run equilibrium of a monopolist (*Agra B A II, Suppl*, 1976)

अथवा

"एकाधिकारी एक साथ कीमत तथा पूर्ति की मात्रा दोनों को निश्चित नहीं कर सकता ।' इस कथन के सन्दर्भ में एकाधिकारी मूल्य निर्धारण की पूर्ण व्याख्या कीजिए ।

A monopolist cannot fix both price and output simultaneously ' In the light of this remark discuss the price determination under monopoly

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर के लिए देखिए पृष्ठ ११० पर । दूसरे भाग के उत्तर में 'सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति' (पृष्ठ ११२) के द्वारा एकाधिकारी के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन की विवेचना कीजिए ।]

२ 'एकाधिकारी विशुद्ध आगम' क्या है ? संक्षेप में बताइए कि एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य कैसे निर्धारित होता है ?

What is 'monopoly net revenue' ? *Explain briefly how value is determined under monopoly ?*

[संकेत—प्रश्न के प्रथम भाग में 'एकाधिकारी विशुद्ध आगम' के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट कीजिए—वस्तु की एक निश्चित मात्रा बेचने से प्राप्त कुल आगम में से लागत को निकाल देने के बाद जो बचता है उसे 'एकाधिकारी विशुद्ध आगम' कहते हैं, 'एकाधिकारी लाभ' को एकाधिकारी विशुद्ध आगम' के नाम से पुकारा जाता है । इसके पश्चात् 'एकाधिकारी विशुद्ध आगम' को अधिकतम करने के अभिप्राय को बताइए अर्थात् स्पष्ट कीजिए कि एकाधिकारी 'प्रति इकाई लाभ' को नहीं बल्कि 'कुल लाभ' को अधिकतम करता है । दूसरे भाग में 'सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति' द्वारा अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में एकाधिकारी मूल्य निर्धारण को चित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए ।]

३. "एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है ।" इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह उत्पत्ति के विभिन्न नियमों के लागू होने की स्थिति में किस प्रकार वस्तु का मूल्य निश्चित करता है ?

'The *prima facie* interest of the owner of a monopoly is to avail maximum total net revenue ' To achieve this object how he determines price under different Laws of Returns ? (*Agra B A I 1971*)

४ एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य कैसे निर्धारित होता है ? क्या यह सच है कि एकाधिकारी मूल्य सदैव स्पर्द्धात्मक मूल्य से ऊँचा होता है ?

How is price determined under monopoly ? Is monopoly price always higher than competitive price ? (*Kanpur, B A II*, 1976 , *Raj* , 1969 , *Meerut*, 1968)

५ एकाधिकार तथा प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के अन्तर को पूर्णतया स्पष्ट कीजिए।

Explain clearly the difference between the determination of value under monopoly and competition (*Ravishanker* 1966, *Agra* 1961)

अथवा

एकाधिकारी तथा स्पर्द्धात्मक उत्पादक दोनों अपने लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य रखते हैं। स्पष्ट कीजिए कि वे किस प्रकार से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं ?

Both the monopolist and the competitive product producer aim at maximising their net gain Show how they achieve their objectives (*Agra* 1967, *Sagar* 1966)

[संकेत—इन प्रश्नों का उत्तर एक ही है। देखिए 'पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन की तुलना' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

६ 'एकाधिकार की तुलना में प्रतियोगिता का वास्तविक तथा आधारभूत लाभ इस बात में निहित है कि प्रत्येक उत्पादक अपने लाभ को, उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करके न कि मूल्यों में वृद्धि करके प्राप्त करता है।" इस कथन की व्याख्या तथा विवेचना कीजिए।

The real and fundamental advantage of competition over monopoly lies in the fact that each producer gets his profit by increasing output rather than by raising prices.' Explain and discuss (*Delhi* 1967)

[संकेत—पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों के अन्तर्गत मूल्य की तुलना कीजिए।]

७ निम्नलिखित को समझाइए

(क) एकाधिकार में कीमत पूर्ण प्रतियोगिता की कीमत से सदा अधिक नहीं होती।

(ख) एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता दोनों परिस्थितियों के लिए कीमत निर्धारित करने का आधार सीमान्त उत्पादन व्यय तथा सीमान्त आगम की समता है।

Explain the following
(a) Monopoly price is not always higher than competitive price
(b) The equality of marginal cost and marginal revenue is the basis for the determination of price both under monopoly and prefect competition (*Agra* 1965)

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर में 'क्या एकाधिकारी कीमत सदैव स्पर्द्धात्मक कीमत से ऊँची होती है ?' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री लिखिए। दूसरे भाग के उत्तर में 'पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य और उत्पादन की तुलना' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री लिखिए।]

८ मूल्य विभेद की परिभाषा दीजिए। मूल्य विभेद कब सम्भव, लाभदायक तथा सामाजिक दृष्टि से वांछनीय होता है ?

Define price discrimination When is price discrimination possible profitable and *socially desirable ?* (*Agra*, 1968 *Ravishanker* 1965)

९ एकाधिकारी किन परिस्थितियों में मूल्य विवेचन कर सकता है ? विवेचनात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है ?

What conditions are necessary for a monopolist to carry on price discrimination ? How is price determined under discriminating monopoly ? (*Allahabad* 1964, *Udaipur*, 1967, *Gorakhpur* 1966)

१०. 'विभेदात्मक एकाधिकार' क्या है ? विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है ? क्या मूल्य विभेद सदैव हानिकारक होता है ?

What is Discriminating Monopoly' ? How is price determined under discriminating monopoly ? Is price discrimination always harmful ? (*Vikram, B Com II*, 1975)

११. भेदपूर्ण एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित किया जाता है ? मूल्य-विभेद कब सम्भव और वाछनीय है ?

How is price determined under discriminating monopoly ? When is price discrimination possible and desirable ? *(Kumaun, B A. I, 1975)*

१२. "एक विभेदकारी एकाधिकारी अपनी बिक्री को इस प्रकार समायोजित करता है कि किसी एक बाजार में उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त सीमान्त आगम सभी बाजारों के लिए एकसमान ही होगा।" व्याख्या कीजिए।

"A discriminating monopolist adjusts his sales in such a way that the marginal revenue obtained from selling an additional unit of output in any one market is the same for all the markets" Explain and illustrate *(B H. U, 1965)*

[संकेत—सर्वप्रथम 'विभेदकारी एकाधिकारी' की परिभाषा दीजिए और तत्पश्चात् 'विभेदकारी एकाधिकार' के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण को बताइए।]

10 एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन

[PRICE AND OUTPUT UNDER MONOPOLISTIC COMPETITION]

प्रो० चेम्बरलिन (Chamberlin) ने 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' तथा श्रीमती जोन रोबिन्सन ने 'अपूर्ण प्रतियोगिता' के विचार प्रस्तुत किय । दोनो मे थोडा अन्तर होते हुए भी कभी-कभी ढीले रूप मे (loosely) दोनो एक ही मान लिये जाते है ।

पूर्ण प्रतियोगिता की किसी भी दशा के अनुपस्थित होने से अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक सिरे की स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता तथा दूसरे सिरे की स्थिति पूर्ण एकाधिकार है, इन दोनो स्थितियो के बीच के समस्त क्षेत्र को आधुनिक अर्थशास्त्री अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं । 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है । परन्तु प्राय इन दोनो को एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किया जाता है, यद्यपि प्रो० चेम्बरलिन इन दोनो में अन्तर पर जोर देते है । दोनो को एक ही मान लेने के मुख्य कारण निम्न हैं—(i) यद्यपि एकाधिकृत प्रतियोगिता पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है, परन्तु वह अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मूल्य किस्म (leading type of imperfect competition) है, अत दोनो ढीले रूप मे एक ही मान लिये जाते हैं । (ii) यद्यपि श्रीमती जोन रोबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता मे 'वस्तु विभेद' (product differentiation) शब्द का प्रयोग नही किया है, परन्तु उनके द्वारा अपूर्ण प्रतियोगिता के बताये गये कारणों मे *लगभग वे सब बाते उपस्थित है जो कि प्रो० चेम्बरलिन 'वस्तु-विभेद' के लिए बताते हैं ।* उपर्युक्त कारणो के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्री कभी-कभी 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' तथा 'अपूर्ण प्रतियोगिता' को एक मान लेते है । इस प्रकार 'अपूर्ण प्रतियोगिता' तथा 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण मे कोई अन्तर नही होगा ।

१. एकाधिकृत प्रतियोगिता के अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF MONOPOLISTIC COMPETITION)

एकाधिकृत प्रतियोगिता मे—(i) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओ की 'अधिक' संख्या होती है । (ii) वस्तु विभेद (product differentiation) होता है । (iii) फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश होता है, परन्तु वस्तु-विभेद के कारण यह प्रवेश उतना सुगम नही होता जितना कि पूर्ण प्रतियोगिता मे होता है । (iv) गैर-मूल्य प्रतियोगिता (non price competition) भी होती है ।

वस्तु विभेद के कारण एक विक्रेता की वस्तु दूसरे के स्थान पर पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित नही की जा सकती । अत प्रत्येक उत्पादन एक सीमा तक एकाधिकारी तत्त्व (monopo, element) प्राप्त कर लेता है, अर्थात् प्रत्यक उत्पादक एक सीमा तक एक छोटा-सा

होता है, परन्तु इन एकाधिकारियों में कड़ी प्रतियोगिता होती है, अतः ऐसी स्थिति को 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' या 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' कहा जाता है।[1]

२. एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के साम्य का अर्थ
(MEANING OF EQUILIBRIUM OF A FIRM UNDER MONOPOLISTIC COMPETITION)

एक स्पर्द्धात्मक फर्म तथा एक एकाधिकारी की भाँति, 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' के अन्तर्गत भी एक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ या 'विशुद्ध आगम' (net revenue) को अधिकतम करना होता है। साम्य का अर्थ है परिवर्तन की अनुपस्थिति। एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो, उसके कुल उत्पादन में परिवर्तन तब नहीं होगा जबकि फर्म को अधिकतम लाभ हो रहा हो। दूसरे शब्दों में, एक फर्म अपनी वस्तु का वह मूल्य तथा उसकी वह मात्रा निर्धारित करेगी जहाँ पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

३. दो रीतियाँ
(TWO APPROACHES)

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'फर्म के साम्य' के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जा सकता है

(i) 'कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति' (Total revenue and total cost curves approach)। (ii) 'सीमान्त विश्लेषण रीति' (Marginal analysis approach) अर्थात् 'सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति' (Marginal and average curves approach)। आगे दोनों रीतियों का अलग-अलग विवेचन किया गया है।

४. कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति
(TOTAL REVENUE AND TOTAL COST CURVES APPROACH)
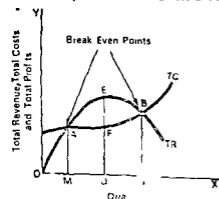
चित्र—१

चित्र नं १ में OM से कम या ON से अधिक उत्पादन करने में फर्म को हानि होगी क्योंकि इन दोनों स्थितियों में TC रेखा ऊपर है TR-रेखा के। M तथा N के बीच फर्म को लाभ होगा, OQ उत्पादन की मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा क्योंकि इस मात्रा पर TR तथा TC के बीच बड़ी दूरी EF अधिकतम है। बिन्दु 'A' तथा बिन्दु 'B' पर TR तथा TC बराबर हैं अर्थात् इन बिन्दुओं पर फर्म को शून्य लाभ (अर्थात् सामान्य लाभ) प्राप्त होता है।' इन बिन्दुओं को 'break even-points' कहते हैं।

---

[1] प्रायः अर्थशास्त्री एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'समूह' (group) शब्द का प्रयोग 'उद्योग' (Industry) के लिए करते हैं। प्रायः एकरूप वस्तु का उत्पादन करने वाली फर्म मिलकर एक उद्योग का निर्माण करती हैं। चूँकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में कोई भी दो फर्में एकरूप वस्तु नहीं बनातीं (उनमें अन्तर होता है यद्यपि वे मिलती जुलती होती हैं), इसलिए एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'उद्योग' के विचार का महत्त्व लगभग समाप्त हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में अर्थशास्त्री 'उद्योग' शब्द के स्थान पर 'समूह' शब्द का प्रयोग करते हैं क्योंकि

(क्रमशः)

'सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति' अधिक अच्छी समझी जाती है।[1]

५ सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति
(MARGINAL AND AVERAGE CURVES APPROACH)

१. एक स्पर्द्धात्मक फर्म तथा एक एकाधिकारी की भाँति, एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत भी एक फर्म के साम्य के लिए सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) का बराबर होना आवश्यक है। एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो रहा हो। उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन तब नहीं होगा जबकि उसका अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। उसको अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा जबकि MR=MC के हो।[2]

यदि MR अधिक है MC से तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम में वृद्धि अधिक है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के, अर्थात् फर्म को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से लाभ होगा। इस प्रकार जब तक MR अधिक है MC से, फर्म अतिरिक्त उत्पादन करके अपने लाभ को बढ़ा सकेगी परन्तु जब MR, MC के बराबर हो जायगी तो अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम ठीक उस अतिरिक्त इकाई की लागत के बराबर होगा तथा फर्म के लिए अब उत्पादन को और बढ़ाकर लाभ को अधिकतम करने की सभी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। यदि MR कम है MC से तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम में वृद्धि कम है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के, अर्थात् फर्म को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से हानि होगी। अतः फर्म वस्तु की मात्रा उस सीमा से अधिक उत्पादित नहीं करेगी जहाँ पर MR=MC के हो।

२. एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के लिए अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात् AR-रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (MR) औसत (AR) से कम होता है।

(i) नीचे को गिरती हुई माँग रेखा (अर्थात AR-रेखा) का अर्थ है कि यदि एकाधिकृत स्पर्द्धात्मक फर्म (monopolistically competitive firm) वस्तु की अधिक मात्रा बेचना चाहती है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी। गिरती हुई माँग रेखा के दो कारण हैं—प्रथम पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति वस्तु एकरूप नहीं होती, वे मिलती-जुलती तो होती हैं परन्तु उनमें कुछ अन्तर अवश्य होता है। दूसरे मिलती जुलती (similar) वस्तुओं को उत्पादित करने वाले 'समूह' में फर्मों की संख्या उतनी अधिक नहीं होती जितनी कि स्पर्द्धात्मक उद्योग में होती है।

पर्याप्त रूप से मिलती-जुलती वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्में 'एक समूह' में समझी जा सकती हैं, इसी भाँति दूसरी प्रकार की मिलती-जुलती वस्तुएँ दूसरे समूह में रखी जा सकती हैं। अतः यह ध्यान रखने की बात है कि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अर्थशास्त्री 'उद्योग' के स्थान पर 'समूह' शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

[1] कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति सही है। इसके कारण हैं (i) TR तथा TC के बीच अधिकतम सही दूरी को एक ही निगाह में प्रायः ठीक प्रकार से ज्ञात करना कठिन हो जाता है तथा (ii) चित्र को देखकर प्रत्यक्ष रूप से वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात नहीं किया जा सकता, कुल आगम (चित्र में EQ) में कुल उत्पादन (चित्र में OQ) का भाग देने पर ही प्रति इकाई कीमत मालूम की जा सकती है।

[2] सीमान्त आगम (MR) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) में वृद्धि तथा सीमान्त लागत (MC) का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत (TC) में वृद्धि।

(ii) चूँकि एक 'समूह' में एकसी वस्तु उत्पन्न करने वाली अनेक फर्में कार्य करती हैं, इसलिए किसी भी एक फर्म की वस्तु की माँग उसकी प्रतियोगी फर्मों की कीमत तथा उत्पादन पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में,

"एक फर्म की औसत आगम की शकल केवल उपभोक्ता की रुचियों तथा तरंगों से नहीं बल्कि प्रतियोगी उत्पादकों के मूल्य-उत्पादन निर्णयों द्वारा भी निर्धारित होती है।"[4]

(iii) सीमान्त लागत (MR) औसत आगम अर्थात् कीमत (AR or price) से कम होता है। इसका कारण यह है कि अतिरिक्त इकाइयों को बेचने के लिए फर्म को कीमत (AR) घटानी पड़ती है। दूसरे शब्दों में, अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए फर्म कीमत को केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नहीं घटाती बल्कि पिछली सब इकाइयों पर उसे कीमत घटानी पड़ती है, और इसलिए MR कम होती है AR से।[5]

३ माँग पक्ष का अध्ययन करने के पश्चात् हम अब लागत की दशाओं पर ध्यान देते हैं। लागत के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान रखने की हैं

(i) एकाधिकृत प्रतियोगिता में बहुत-सी प्रतियोगी फर्में एकसी वस्तुएँ उत्पादित करती हैं, इसलिए वे लगभग एक ही प्रकार के उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग करती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि फर्मों की लागत रेखाएँ एक-दूसरे से थोड़ी बहुत सम्बन्धित अवश्य होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, 'समूह' में फर्मों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधनों की माँग बढ़ेगी जिससे कुछ फर्मों के लिए इन उत्पत्ति के साधनों की कीमतें बढ़ जायेंगी और इस प्रकार उनकी लागत रेखाएँ प्रभावित होंगी।

परन्तु फिर भी विश्लेषण की सरलता के लिए हम यह मान लेते हैं कि एकाधिकृत स्पर्द्धात्मक फर्मों के एक समूह की सभी फर्मों की लागत रेखाएँ बिलकुल एकरूप होती है और ये रेखाएँ एक स्तर पर ही रहती हैं (अर्थात् लागतों में कोई वृद्धि या कमी नहीं होती) चाहे समूह के फर्मों की संख्या कुछ भी हो। दूसरे शब्दों में, हम यह मान लेते हैं कि एकाधिकृत समूह के लिए उत्पत्ति के साधन बिलकुल एकरूप होते हैं तथा उस समूह के लिए उनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है।[6]

(ii) हम यह भी मान लेते हैं कि एकाधिकृत स्पर्द्धात्मक समूह के फर्मों की संख्या में वृद्धि होने पर उत्पादन की कोई बाह्य बचतें या अबचतें नहीं होती। प्रो० चेम्बरलिन इस मान्यता को एक 'बहादुरी की मान्यता' कहते हैं। इस मान्यता को वे बाद में ढीला कर देते हैं।[7]

(iii) एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्में वस्तु की बिक्री को बढ़ाने के लिए केवल मूल्य में ही कमी नहीं करती बल्कि 'गैर मूल्य प्रतियोगिता (non price competition) को भी अपनाती हैं अर्थात् अपनी वस्तु की बिक्री को बढ़ाने के लिए, वे विज्ञापन, प्रचार, अच्छे विक्रयकर्ता (salesmen), इत्यादि पर बहुत बड़ी मात्रा में व्यय करती हैं। इस प्रकार के खर्चों को अर्थशास्त्री टक्नीकल भाषा में 'विक्रय लागतें' (selling costs) कहते हैं। ये विक्रय लागतें कुल उत्पादन लागतों (total production costs) की अंग होती हैं। दूसरे शब्दों में, विक्रय लागत सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC) की अंग होती हैं।

४ फर्म का अल्पकालीन साम्य (Short-run equilibrium of a firm)—अल्पकाल में फर्म के लिए लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं। यदि फर्म की वस्तु

---

[4] "The shape of the firm's average revenue curve will be determined not only by the tastes and whims of consumers, but also by the price-output decisions of rival producers"

[5] इस बात को ठीक उसी प्रकार उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है जो एकाधिकार के सम्बन्ध में (फुटनोट न० ६ में) दिया गया है।

[6] "In order to simplify the analysis however we shall assume that all firms in the same group of monopolistically competitive firms have indentical cost curves and that these curves remain at exactly the same level whatever the number of firms in the group In other words we assume that all factors of production are homogeneous and in perfectly elastic supply to the monopolistic group"

[7] "We also assume that there are no external economies or diseconomies of production when the number of firms in the group increases Professor Chamberlin makes this assumption—an heroic assumption as he calls it—though he later relaxes it"

की माँग प्रबल है और अन्य फर्मों द्वारा उत्पादित मिलती-जुलती वस्तुएँ उसकी अधिक निकट स्थानापन्न (close substitute) नहीं हैं तो फर्म ऊँची कीमत रखकर लाभ प्राप्त कर सकेगी, यदि माँग कमजोर है तो फर्म केवल सामान्य लाभ (या शून्य लाभ) ही प्राप्त कर सकती है यदि माँग बहुत कमजोर है तो फर्म को हानि उठाना पड़ सकती है। चूँकि अल्प काल में फर्म अपनी उत्पादन क्षमता को माँग के अनुरूप पूरी प्रकार से नहीं बदल पाती है इसलिए तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं। इन तीनों स्थितियों को चित्रों की सहायता से स्पष्ट किया गया है।
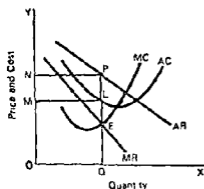
चित्र—२

चित्र—३

चित्र नं० २ लाभ की स्थिति बताता है। फर्म के साम्य के लिए MR=MC के होनी चाहिए। बिन्दु E पर MR तथा MC बराबर हैं, E बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा को खींचने से यह AR रेखा (अर्थात् कीमत रेखा) को P बिन्दु पर मिलती है। चूँकि AR (कीमत) AC के ऊपर है, इसलिए फर्म को PL प्रति इकाई लाभ होगा। अतः

मूल्य = PQ उत्पादन की मात्रा = OQ कुल लाभ = PLMN

चित्र नं० ३ में फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। E बिन्दु पर MR=MC के है। E बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा AR रेखा को P बिन्दु पर काटती है। P बिन्दु पर AR-रेखा AC-रेखा को स्पर्श करती हुई निकलती है, इसलिए P बिन्दु पर AR=AC के अर्थात् कीमत ठीक औसत लागत के बराबर है जिसका अर्थ है कि फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। अतः

मूल्य = PQ

उत्पादन की मात्रा = OQ

फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

चित्र नं० ४ हानि की स्थिति को बताता है। E बिन्दु पर MR=MC के है। E बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा AR-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है इसलिए कीमत PQ हुई। चूँकि AC-रेखा ऊपर है AR रेखा (अर्थात् कीमत) से, इसलिए फर्म को खड़ी दूरी PL के बराबर प्रति इकाई हानि होगी। कुल हानि PLMN के बराबर होगी। चूँकि कीमत PQ, AVC से अधिक है इसलिए अल्पकाल में हानि होने पर भी फर्म उत्पादन को जारी रखेगी।

चित्र—४

संक्षेप में,
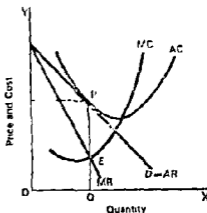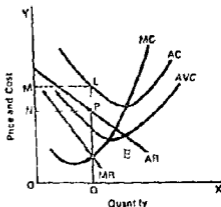
मूल्य = PQ उत्पादन की मात्रा = OQ कुल हानि = PLMN

५. दीर्घकालीन साम्य—'समूह साम्य' (*Long-run equilibrium—'Group equilibrium*) - दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। यदि अल्पकाल में 'समूह' की कुछ फर्मों को लाभ प्राप्त होता है तो दीर्घकाल में इस लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्में 'समूह (या उद्योग) में प्रवेश करेंगी और अतिरिक्त लाभ अर्जित करने वाली फर्मों की वस्तुओं के अधिक निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन बढ़ायेंगी। पुरानी फर्में (जिन्हें लाभ प्राप्त नहीं हो रहा था) भी ऐसा ही करेंगी। पुरानी तथा नयी फर्मों की इस स्पर्द्धा के कारण अतिरिक्त लाभ समाप्त हो जायगा और फर्मों को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

अतः पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, एकाधिकृत प्रतियोगिता में भी फर्म (या समूह) के दीर्घकालीन साम्य के लिए 'दोहरी दशा' (double condition) पूरी होनी चाहिए।

(i) MR=MC (ii) AR=AC

दूसरी दशा के पूरे होने का अर्थ है सामान्य लाभ का प्राप्त होना। चित्र नं० ५ में E बिन्दु पर MR=MC है, बिन्दु E से होती हुई खड़ी रेखा AR रेखा को P बिन्दु पर मिलती है, अतः कीमत PQ हुई। P बिन्दु पर AR रेखा LAC-रेखा (long run average cost curve) के लिए स्पर्श रेखा (tangent) है इसलिए इस बिन्दु पर AR=AC के हुई। स्पष्ट है कि यदि कीमत PQ है तब ही दोहरी दशा पूरी होगी। संक्षेप में,

मूल्य=PQ उत्पादन की मात्रा=OQ

फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

चित्र—५

उपर्युक्त दीर्घकालीन साम्य विश्लेषण के सम्बन्ध में निम्न बात ध्यान में रखनी चाहिए :

एकाधिकृत प्रतियोगिता में AR-रेखा गिरती हुई रेखा होती है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR-रेखा एक पड़ी हुई होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में पड़ी हुई AR-रेखा AC-रेखा को उसके निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श करती है। इसका अर्थ है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होता है और वह वस्तु की मात्रा को न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादित करती है। न्यूनतम औसत लागत पर वस्तु की उत्पादित मात्रा को टेकनीकल भाषा में हम 'अनुकूलतम मात्रा' (optimum output) कहते हैं। एकाधिकृत प्रतियोगिता में चूँकि AR रेखा एक गिरती हुई रेखा होती है इसलिए वह AC-रेखा को उसके न्यूनतम बिन्दु से पहले बायें को किसी बिन्दु पर स्पर्श करेगी, जैसा कि चित्र नं० ५ में AR-रेखा LAC-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है। इसका अर्थ यह हुआ कि एकाधिकृत प्रतियोगिता में दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म 'अनुकूलतम मात्रा' से कम मात्रा उत्पादित करती है और इस प्रकार प्रत्येक फर्म के पास 'अप्रयुक्त क्षमता' (unutilised capacity) या 'अतिरिक्त क्षमता' (excess capacity) रहती है।[8]

---

[8] एक बात और ध्यान रखने की है। अपने विश्लेषण में हम यह मानकर चले हैं कि एक 'समूह' की विभिन्न फर्मों की लागत की दशाएँ एकसमान (identical) हैं। इस मान्यता को प्रो० चेम्बरलिन ने बहादुरी की मान्यता (*heroic assumption*) कहा है। (अ) यदि इस मान्यता को ढीला कर दिया जाये तो एक समूह के अन्तर्गत फर्मों की लागतों में थोड़ा अन्तर होगा और दीर्घकाल में भी कुछ फर्मों को थोड़ा 'अतिरिक्त-लाभ' (small excess profit) प्राप्त हो सकता है। (ब) कुछ फर्में इस प्रकार का वस्तु विभेद प्राप्त कर सकती हैं कि दीर्घकाल में भी कुछ अन्य फर्में इस प्रकार की वस्तु की निकट स्थानापन्न न बना सकें, तो ऐसी स्थिति में दीर्घकाल में भी कुछ फर्मों को थोड़ा अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता रहेगा। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी कुल मिलाकर दीर्घकाल में 'सामान्य लाभ' प्राप्त होने की स्थिति (चित्र नं० ५) सही है और वास्तविकता (reality) का लगभग उचित चित्रण (reasonable portrayal) करती है।

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन की तुलना
(COMPARISON OF PRICE AND OUTPUT UNDER PERFECT COMPETITION AND MONOPOLISTIC COMPETITION)

१. एकाधिकृत प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म है परन्तु वह पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है।

पूर्ण प्रतियोगिता की कई मुख्य दशाएँ एकाधिकृत प्रतियोगिता में होती हैं। विशेषतया, *विक्रेताओं (या फर्मों) की अधिक संख्या, मूल्य प्रतियोगिता तथा फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश—ये दशाएँ पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता* दोनों में शामिल (common) हैं। दोनों का मुख्य अन्तर वस्तु-विभेद में निहित है। पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु एकरूप होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद होता है। वस्तुएँ मिलती-जुलती होती हैं, परन्तु *पूर्णतया* एकरूप नहीं होतीं, उनमें थोड़ा अन्तर अवश्य होता है। वस्तु विभेद के कारण ही एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म एक सीमा तक एकाधिकारी तत्त्व (monopoly element) अर्जित (acquire) कर लेती है। स्पष्ट है कि एकाधिकृत प्रतियोगिता की आधारभूत प्रभेदक विशेषता (fundamental distinguishing feature) 'वस्तु-विभेद' है। यदि इसमें से 'वस्तु विभेद' को निकाल दिया जाय और उसके स्थान पर *'वस्तु की एकरूपता' (homogeneity)* को रख दिया जाय तो हम लगभग पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में पहुँच जायेंगे। चूँकि एकाधिकृत प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म होते हुए भी पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है, इसलिए यह कहा जाता है कि 'एकाधिकृत-प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता का सबसे कम अपूर्ण रूप है।'[1]

२. एकाधिकृत प्रतियोगिता में माँग रेखा अर्थात् AR-रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR रेखा पड़ी हुई रेखा होती है।

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत गिरती हुई AR-रेखा का अर्थ है कि फर्म को वस्तु की *अधिक इकाइयाँ बेचने के लिए कीमत घटानी पड़ेगी, अर्थात् फर्म की अपनी 'मूल्य-नीति' होगी* है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पड़ी हुई AR-रेखा का अर्थ है कि फर्म दी हुई कीमत पर वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को दिया हुआ मान लेती है। वह 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price-taker) होती है, न कि 'मूल्य निर्धारक' (price maker)। उसकी अपनी कोई 'मूल्य नीति' नहीं होती, वह दी हुई कीमत पर केवल अपने उत्पादन की मात्रा को समायोजित करती है, इसलिए उसे *'मात्रा समायोजित करने वाली' (quantity adjuster)* कहा जाता है।

३. पूर्ण प्रतियोगिता में AR (कीमत) MR के बराबर होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में AR (कीमत) MR से अधिक होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए वस्तु की कीमत दी हुई होती है, इसलिए एक *अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR)* वही होगा जो वस्तु की कीमत (अर्थात् AR) है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR, MR के बराबर होती है।

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म यदि वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचना चाहती है तो उसे कीमत (AR) घटानी पड़ेगी, परिणामस्वरूप *सीमान्त आगम* (MR) *कम होगा* कीमत (AR) से, दूसरे शब्दों में, AR>MR।

४. पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत (AR) सीमान्त लागत (MC) के बराबर होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में कीमत (AR) सीमान्त लागत (MC) से अधिक होती है।

[1] "Monopolistic competition is the most imperfect form of imperfect competition."

पूर्ण प्रतियोगिता म फर्म के साम्य के लिए MR=MC के है, तथा पूर्ण प्रतियोगिता मे AR=MR के भी है इन दोनों को मिलाने से हमे यह सम्बन्ध प्राप्त होता है AR=MR=MC अर्थात् AR (कीमत)=MC (सीमान्त लागत) के।

एकाधिकृत प्रतियोगिता मे भी फर्म के साम्य के लिए MR=MC के, परन्तु एकाधिकृत प्रतियोगिता म AR>MR, और चूँकि MR=MC के, इसलिए AR>MC, अर्थात् कीमत (AR) अधिक है MC (सीमान्त लागत) म।

५ अल्पकाल म पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनो के अन्तर्गत एक फर्म क लिए लाभ सामान्य लाभ (या शून्य लाभ) तथा हानि तीनो दशाएँ सम्भव है।

६ दीर्घकाल मे पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनो के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। इसका कारण है कि दोनो स्थितियो में प्रतियोगिता तथा फर्मों क स्वतन्त्र प्रवेश होने की दशाएँ मौजूद होती है। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल मे उत्पादन न्यूनतम औसत लागत पर होता है, अर्थात् 'अनुकूलतम मात्रा' (optimum-output) का उत्पादन किया जाता है तथा कीमत कम होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता मे उत्पादन 'अनुकूलतम मात्रा' से कम होता है और कीमत अपेक्षाकृत ऊँची होती है।
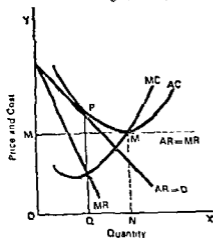
चित्र—६

उपर्युक्त कथन को हम चित्र न० ६ मे स्पष्ट कर सकते है। तुलनात्मक अध्ययन तथा सरलता के लिए यहाँ पर मान लिया गया है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनो के अन्तर्गत लागत तथा माँग दशाएँ समान है। चित्र न० ६ मे एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग रेखा 'AR=D' द्वारा दिखायी गयी है। यदि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होती तो माँग रेखा पड़ी रेखा होती, चित्र मे इसको टूटी रेखा (dotted line) 'AR=MR' द्वारा दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है : एकाधिकृत मूल्य PQ>स्पर्द्धात्मक मूल्य MN तथा एकाधिकृत मात्रा OQ<स्पर्द्धात्मक मात्रा ON।

प्रश्न

१. निम्नलिखित को समझाइए :

(अ) एकाधिकारी प्रतियोगिता 'एकाधिकार' तथा 'प्रतियोगिता' का मिश्रण होती है।

(ब) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म का अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन।

Explain the following :

(a) Monopolistic competition is a mixture of 'monopoly' and 'competition'
(b) Short run and long-run equilibrium of a firm under monopolistic competition

(Agra, B A I, 1976)

२. अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा मे एक फर्म के सन्तुलन को स्पष्ट कीजिए।

Explain the equilibrium of a firm under conditions of imperfect competition

(Sagar, 1967)

[सकेत—सर्वप्रथम बहुत सक्षेप मे अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ स्पष्ट कीजिए, इसके लिए देखिए 'अध्याय २ बाजार के रूप' इसके

पश्चात् बताइए कि प्रो० चेम्बरलिन ने 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' (Monopolistic competition) तथा श्रीमती जोन रोबिन्सन ने 'अपूर्ण प्रतियोगिता' के विचार प्रस्तुत किये हैं। दोनों में थोड़ा अन्तर है परन्तु ढीले रूप में (loosely) दोनों को प्राय एक मान लिया जाता है इसके पश्चात् एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण को बताइए।]

८ पूर्ण तथा अपूर्ण प्रतियोगिता का अन्तर बताइए। अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य-निर्धारण कैसे होता है ?

Distinguish between perfect and imperfect competition. How is price determined under imperfect competition ? *(Udaipur, 1968)*

[संकेत—दूसरे भाग के उत्तर में 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण को बताइए 'सीमान्त व औसत रेखाओं की रीति' का प्रयोग कीजिए।]

11 परस्पर सम्बन्धित कीमतें

(INTERDEPENDENT PRICES)

व्यक्तिगत वस्तुओं की कीमत-निर्धारक शक्तियों का अध्ययन करते समय अभी तक हमने यह मान लिया था कि किसी एक वस्तु की कीमत अन्य वस्तुओं की कीमतों से स्वतन्त्र (independent) होती है परन्तु यह मान्यता या धारणा पूर्णतया सही नहीं है। वास्तव में कीमतें एक संगठन या व्यवस्था (system) की भाँति हैं जिसमें प्रत्येक कीमत अन्य सभी कीमतों से, कम या अधिक मात्रा में, सम्बन्धित होती हैं।[1] अतः वैज्ञानिक दृष्टि से एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अन्य सभी वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन हो सकता है। परन्तु अधिकांश स्थितियों में अन्य वस्तुओं की कीमतों पर प्रभाव इतना कम होता है कि इस मान्यता में बहुत थोड़ी गलती होगी कि एक वस्तु की कीमत बिना अन्य वस्तुओं की कीमतों से प्रभावित हुए स्वतन्त्र रूप से परिवर्तित होती है। परन्तु कुछ स्थितियों में दो या दो से अधिक वस्तुओं की कीमतें इतनी घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होती हैं कि किसी एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन अन्य वस्तुओं की कीमतों पर महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभाव डालता है। इस अध्याय में इस प्रकार की निकट रूप में सम्बन्धित वस्तुओं के मूल्यों का अध्ययन किया गया है।

संयुक्त माँग
(JOINT DEMAND)

संयुक्त माँग का अर्थ

किसी आवश्यकता की पूर्ति या किसी वस्तु के उत्पादन के लिए जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ एक साथ माँगी जाती हैं तो उनकी माँग को 'संयुक्त माँग' कहा जाता है।

माँग के पारस्परिक सम्बन्ध मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं—प्रतिस्थापन (substitutive), तथा पूरक (complementary)। दो वस्तुएँ प्रतिस्थापनात्मक या स्थानापन्न (substitutes) होती हैं जबकि एक वस्तु की माँग में वृद्धि (या कमी) के परिणामस्वरूप दूसरी वस्तु की माँग में कमी (या वृद्धि) होती है। दूसरे शब्दों में, प्रतिस्थापनात्मक वस्तुओं में से एक वस्तु की माँग में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में विपरीत दिशा में परिवर्तन उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ, चाय तथा कॉफी, चीनी तथा गुड़ इत्यादि। यदि हम चीनी की अधिक माँग करते हैं तो गुड़ की माँग कम होगी।

दो वस्तुएँ पूरक होती हैं जबकि एक वस्तु की माँग में वृद्धि (या कमी) के परिणामस्वरूप दूसरी वस्तु की माँग में भी वृद्धि (या कमी) होती है। दूसरे शब्दों में, पूरक वस्तुओं में से एक वस्तु की माँग में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में उसी प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ, डबल रोटी तथा मक्खन, यदि डबल रोटी की माँग बढ़ती (या घटती) है तो मक्खन की माँग भी बढ़ेगी (या घटेगी)।

---

[1] The prices are like a system in which each is related to all the rest in greater or less degree

अत टेकनीकल शब्दों मे संयुक्त माँग को इस प्रकार परिभाषित करते है—जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ निकट रूप मे पूरक होती हैं तो उनकी माँग को संयुक्त माँग कहा जाता है।[2]

चूंकि पूरक वस्तुओं म से किसी एक वस्तु की माँग म परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग म उसी प्रकार का परिवर्तन करता है, इसलिए 'संयुक्त माँग' को कुछ अर्थशास्त्री निम्न प्रकार म भी परिभाषित करते है—जब दो या दो से अधिक वस्तुओ को एक साथ प्रयोग किया जाता है और जब एक वस्तु की माँग मे परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग मे निश्चित रूप से उसी प्रकार का परिवर्तन करता है तो ऐसी वस्तुओ की माँग को 'संयुक्त माँग' कहा जाता है।[3]

संयुक्त माँग प्राय निकाली हुई माँग या 'व्युत्पन्न माँग' (derived demand)[4] से सम्बन्धित होती है। किसी अन्तिम वस्तु (final commodity) के उत्पादन मे कई उत्पत्ति के साधनो की माँग एक साथ होती है इसलिए इनकी माँग 'संयुक्त माँग' हुई, परन्तु इन उत्पत्ति के साधनो की माँग 'व्युत्पन्न माँग' भी होती है, इसलिए ऐसी संयुक्त माँग को 'व्युत्पन्न संयुक्त माँग' (derived joint demand) कहते है।

परन्तु ध्यान रहे कि 'संयुक्त माँग' तथा 'व्युत्पन्न माँग' दोनो के अर्थ अलग-अलग हैं, दोनो के अर्थों के सम्बन्ध मे कोई भ्रम नही होना चाहिए। 'व्युत्पन्न माँग' इस बात से उत्पन्न होती है कि अन्तिम उपभोक्ताओ को उत्पादन की बाद की अवस्थाओं मे वस्तुओं की आवश्यकता पडती है। यह उत्पादन की उत्तरोत्तर या अनुगामी अवस्थाओ (successive stages) को बताती है। संयुक्त माँग इस बात को बताती है कि कई वस्तुएँ एक समय मे (simultaneously) किसी एक अवस्था मे माँगी जाती है या उपभोक्ता उनकी माँग स्वयं करता है। अत इन दोनो मे भेद अनुगमन (succession) तथा समसामयिकता (simultaneity) के अन्तर मे निहित है।"[5]

संयुक्त माँग के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Pricing under Joint Demand)

किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (अर्थात् माँग) तथा सीमान्त लागत (अर्थात् पूर्ति) द्वारा निर्धारित होता है। संयुक्त माँग की वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध मे एक मुख्य कठिनाई यह है कि प्रत्येक वस्तु की सीमान्त लागत पृथक पृथक होती है, परन्तु प्रत्येक की सीमान्त उपयोगिता अलग-अलग मालूम नही होती, एक उपभोक्ता तो 'वस्तुओ के संयोग की उपयोगिता' (utility of the combination of commodities) को ही जानता है, वस्तुओ की अलग-अलग सीमान्त उपयोगिता को नही।

उदाहरणार्थ, डबल रोटी तथा मक्खन की सीमान्त लागते अलग-अलग मालूम होती हैं जिनके आधार पर इनकी पूर्ति रेखाएँ खींची जा सकती हैं, तथा उपभोक्ताओ को 'डबल रोटी तथा मक्खन के संयोग' से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता भी मालूम होती है, परन्तु उपभोक्ता यह नही जानता कि उसे डबल रोटी से पृथक रूप मे तथा मक्खन से पृथक रूप मे कितनी सीमान्त

[2] When two or more goods are closely complementary, they are said to be under 'joint demand'

[3] When two or more products are used together, and when a change in the demand for one commodity definitely causes a similar change in the demand for the other, the products are said to be under 'joint demand'

[4] जब किसी वस्तु या उत्पत्ति के साधन की माँग अप्रत्यक्ष रूप मे अन्तिम तथा पूर्ण वस्तु (final and finished commodity) की प्रत्यक्ष माँग के कारण उत्पन्न होती है तो ऐसी माँग को 'व्युत्पन्न माँग' या 'उत्पन्न माँग' (derived demand) कहते हैं। उदाहरणार्थ, उपभोक्ताओ द्वारा मकानो की माँग 'प्रत्यक्ष माँग' (direct demand) होती है। परन्तु एक मकान के निर्माण के लिए श्रम, ईंट, चूना, सीमेण्ट इत्यादि साधनो की माँग 'उत्पन्न माँग' होती है, इन उत्पत्ति के साधनो की माँग अन्तिम वस्तु (मकान) की माँग के कारण उत्पन्न होती है, इसलिए इन उत्पत्ति के साधनो की माँग को 'उत्पन्न माँग' कहा जाता है।

[5] "Derived demand arises from the fact that goods at more or less remote stages of production are needed by the final consumers It refers to the successive stages of production Joint demand refers to the fact that several articles may be demanded simultaneously at any one stage, or by the consumer himself The distinction between the two, then, rests in the difference between succession and simultaneity"

उपयोगिता मिलती है, अर्थात् इन दोनों वस्तुओं की पृथक्-पृथक् माँग रेखाएँ नहीं खींची जा सकती।

यदि हम किसी तरह से संयुक्त माँग वाली प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को पृथक् रूप से मालूम कर सकें तो मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का प्रयोग करके प्रत्येक वस्तु का मूल्य निश्चित किया जा सकता है।

संयुक्त माँग वाली किसी भी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को पृथक् रूप से ज्ञात करने के लिए अर्थशास्त्री एक रीति का प्रयोग करते हैं जिसे 'सीमान्त विश्लेषण रीति' (Marginal Analysis Method) कहा जा सकता है। इस रीति में सर्वप्रथम हम संयुक्त माँग वाली वस्तुओं के एक संयोग को लेकर चलते हैं। इस संयोग से उपभोक्ता को एक निश्चित मात्रा में उपयोगिता प्राप्त होती है। अब इनमें से एक वस्तु की थोड़ी मात्रा (या १ इकाई) से बढ़ाते हैं, जबकि दूसरी वस्तु (या वस्तुओं) की मात्रा को स्थिर या सीमित रखते हैं, इस दूसरे संयोग की उपयोगिता में पहले संयोग की उपयोगिता को घटा दें तो परिवर्तनशील वस्तु की सीमान्त उपयोगिता ज्ञात हो जायगी। इस बात को संक्षेप में निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है

१ डबल रोटी + २ मक्खन = ३ रु० की उपयोगिता

१ डबल रोटी + ३ मक्खन = ४·२५ रु० की उपयोगिता

अतः मक्खन की एक अतिरिक्त

इकाई की उपयोगिता = १·२५ रु० के

उपर्युक्त उदाहरण में मक्खन की सीमान्त उपयोगिता १·२५ रु० के बराबर है। इसी प्रकार से हम डबल रोटी की सीमान्त उपयोगिता भी ज्ञात कर सकते हैं यदि मक्खन की मात्रा स्थिर रखें तथा डबल रोटी की मात्रा को एक इकाई से बढ़ायें।

इसी प्रकार से सीमान्त विश्लेषण की सहायता से उत्पत्ति के साधनों की संयुक्त माँग में किसी भी एक साधन की सीमान्त उपयोगिता अर्थात् सीमान्त उत्पादकता ज्ञात की जा सकती है, ध्यान रहे कि उत्पत्ति के साधनों के सम्बन्ध में हम सीमान्त उपयोगिता के स्थान पर सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) शब्द का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ

१० श्रम + ५० क्विंटल कच्चा माल + १,००० रु० पूँजी = २० क्विंटल
जिसका मूल्य है, २०० रु०

११ श्रम + ५० क्विंटल कच्चा माल + १,००० रु० पूँजी = २२ क्विंटल
जिसका मूल्य है, २२० रु०

अतः १ अतिरिक्त श्रम की सीमान्त उत्पादकता = २ क्विंटल
जिसका मूल्य है, २० रु०

स्पष्ट है कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता २० रु० के बराबर है। इसी प्रकार हम किसी एक साधन को परिवर्तनशील रखकर तथा अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता पृथक् रूप में ज्ञात कर सकते हैं।

इस प्रकार 'सीमान्त विश्लेषण रीति' की सहायता से संयुक्त माँग की वस्तुओं या उत्पत्ति के साधनों की पृथक्-पृथक् सीमान्त उपयोगिताएँ या सीमान्त उत्पादकताएँ ज्ञात हो जाती हैं (अर्थात् उनकी पृथक्-पृथक् माँग रेखाएँ खींची जा सकती हैं) तथा उनकी सीमान्त लागतें हमें ज्ञात होती ही हैं (अर्थात् उनकी पूर्ति रेखाएँ खींची जा सकती हैं)। अतः इन वस्तुओं या साधनों का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर सीमान्त उपयोगिता (या सीमान्त उत्पादकता) और सीमान्त लागत बराबर होती है।

यहाँ पर ध्यान रखने की बात है कि यदि संयुक्त माँग वाले साधनों के मिलने के अनुपात को टेकनीकल कारणों से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है तो ऐसी दशा में पृथक् रूप से साधनों की सीमान्त उपयोगिताएं अर्थात् सीमान्त उत्पादकताएँ ज्ञात नहीं की जा सकती।

अब हम यह देखेंगे कि माँग तथा पूर्ति में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप संयुक्त माँग वाली वस्तुओं की कीमत पर पृथक् रूप से क्या प्रभाव पड़ेगा (1) माँग में परिवर्तन दोनों वस्तुओं की कीमतों को एक ही दिशा में परिवर्तित करेगा, अर्थात् उपर्युक्त उदाहरण में माँग बढ़ने से डबल

रोटी तथा मक्खन दोनों की कीमतें बढ़ेंगी। (ii) यदि एक वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन होने से परिणामस्वरूप उसकी कीमत परिवर्तित होती है, तो दूसरी वस्तु की कीमत विपरीत दिशा में परिवर्तित होगी। उदाहरणार्थ, यदि गेहूँ की कमी के कारण डबल रोटी की पूर्ति कम हो जाती है और परिणामस्वरूप डबल रोटी की कीमत बढ़ जाती है तो डबल रोटी की माँग कम होगी, डबल रोटी की माँग कम होने से मक्खन की माँग भी कम होगी, परिणामस्वरूप मक्खन की कीमत कम हो जायेगी। स्पष्ट है कि डबल रोटी की पूर्ति में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप उसकी कीमत में परिवर्तन दूसरी वस्तु (मक्खन) की कीमत को विपरीत दिशा में परिवर्तित करता।

उत्पत्ति के साधनों की संयुक्त माँग या व्युत्पन्न संयुक्त माँग (derived joint demand) के सम्बन्ध में मार्शल ने एक विशेष स्थिति की विवेचना की है। यदि संयुक्त माँग वाले उत्पत्ति के साधनों में से एक साधन ऊँचा पारितोषण माँगता है, तो क्या वह साधन अपने उद्देश्य में सफल हो सकेगा?[*] मार्शल के अनुसार, वह साधन ऊँची कीमत प्राप्त करने में तब सफल हो सकेगा जबकि निम्न ४ दशाएँ पूरी हों

(i) वह साधन वस्तु विशेष के उत्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक होना चाहिए, उस साधन का अच्छा स्थानापन्न (substitute) कम कीमत (moderate price) पर प्राप्य नहीं होना चाहिए।

(ii) वह साधन अन्य साधनों के साथ जिस वस्तु को उत्पादित करता है, उस वस्तु की माँग बेलोचदार होनी चाहिए।

(iii) उस साधन का मूल्य (अर्थात् पारितोषण) कुल उत्पादन लागत का केवल एक छोटा भाग होना चाहिए।

(iv) सहयोग करने वाले अन्य साधनों को दबाया (या squeeze किया) जा सके, दूसरे शब्दों में, अन्य साधनों को कम पुरस्कार दिया जा सके। यदि साधन विशेष ऊँची कीमत प्राप्त करने की दृष्टि से, अपनी पूर्ति कम करता है तो अन्य सहयोग करने वाले साधनों की माँग बहुत कम हो जानी चाहिए ताकि उनको कम पुरस्कार दिया जा सके और इस प्रकार से जो बचत हो उसे साधन विशेष को ऊँची कीमत के रूप में दिया जा सके।

यदि एक उत्पत्ति का साधन उपर्युक्त चारों दशाओं को पूरा करता है तो वह ऊँची कीमत प्राप्त करने में सफल हो सकेगा।

संयुक्त पूर्ति या संयुक्त लागत
(JOINT SUPPLY OR JOINT COST)

संयुक्त पूर्ति का अर्थ

कई दशाओं में एक वस्तु के उत्पादन में साथ-साथ कुछ अन्य वस्तुएँ भी स्वतः (automatically) प्राप्त हो जाती हैं, यद्यपि इन वस्तुओं की माँग पृथक्-पृथक् होती है, परन्तु उनका उत्पादन एक साथ ही होता है, इसलिए ऐसी वस्तुओं की पूर्ति संयुक्त होती है।

संयुक्त पूर्ति को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ एक साथ ही, उत्पादन प्रक्रिया (process) में, स्वतः प्राप्त होती हैं तो ऐसी स्थिति को 'संयुक्त पूर्ति' या 'संयुक्त लागत' कहा जाता है। संयुक्त लागतों के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं को प्रायः संयुक्त वस्तुएँ (joint products) कहा जाता है।[1] संयुक्त पूर्ति के उदाहरण हैं—रुई तथा बिनौला, भेड़ से ऊन तथा गोश्त, पत्थर का कोयला तथा गैस इत्यादि।

ढीले रूप से, संयुक्त वस्तुओं के अन्तर्गत प्रायः 'उप उत्पादों' (by product) को भी शामिल कर लिया जाता है यद्यपि कड़े (strictly) रूप में ऐसा ठीक नहीं है। कड़े रूप में

---

* Marshall puts the question as follow, "Let us inquire what are the conditions under which a check in the supply of a thing that is wanted not for direct use, but as a factor of production of some commodity, may cause a great rise in its price." For this he lays down four conditions —See Marshall's *Principles of Economics*, pp 319-20

[1] When two or more products are automatically obtained at the same time in a single production process such a case is known as 'joint supply' or 'joint cost'. Articles produced under the conditions of joint cost are usually called as 'joint products'.

गेसोलीन, मिट्टी का तेल तथा चिकनाई वाले तेल वास्तव में सयुक्त वस्तुएँ नहीं हैं। पेट्रोलियम की सफाई (refining) करने मे सर्वप्रथम गेसोलीन उत्पादित होती है, परन्तु इस प्रक्रिया में मिट्टी का तेल तथा चिकनाई वाले तेल स्वत नहीं निकलते, बल्कि इनको प्राप्त करने के लिए और अधिक प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा करने मे विशेष लागतें (special costs) उठानी पड़ती हैं। चूँकि उप-उत्पाद की प्राप्ति करने में विशेष लागतें उठानी पड़ती हैं, इसलिए दीर्घकाल में इन उप-उत्पादों को बेचने से इतना आगम (revenue) अवश्य प्राप्त हो जाना चाहिए जिससे कि ये विशेष लागतें निकल आयें।

संयुक्त पूर्ति के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price Determination under Joint Supply)

सयुक्त वस्तुओं के उत्पादन की कुल लागत तो ज्ञात होती है, परन्तु उनकी लागतें अलग-अलग ज्ञात नहीं होतीं, सयुक्त वस्तुओं का उत्पादन एक साथ होता है, इसलिए उनकी लागतों को पृथक करना कठिन है। ऐसी परिस्थितियों में प्रश्न यह उठता है कि सयुक्त वस्तुओं की कीमतें किस प्रकार निर्धारित की जायें?

मूल्य निर्धारण के विश्लेषण की दृष्टि से सयुक्त वस्तुओं को प्राय दो वर्गों में बाँटा जाता है—(i) ऐसी सयुक्त वस्तुएँ जिनके अनुपातों को परिवर्तित किया जा सकता है, इसका एक उदाहरण प्राय ऊन तथा गोश्त का दिया जाता है, हम ऐसी भेड़ों को पाल (rear) सकते हैं जो या तो ऊन अधिक दें, या गोश्त अधिक दें, और इस प्रकार ऊन तथा गोश्त के अनुपात को परिवर्तित कर सकते हैं। एक दूसरा उदाहरण पत्थर का कोयला तथा गैस का है। (ii) ऐसी सयुक्त वस्तुएँ जिनके अनुपात स्थिर रहते हैं, इनके अनुपातों को मनुष्य अपने प्रयत्नों से परिवर्तित नहीं कर पाता है। एक अच्छा उदाहरण रुई तथा बिनौला का दिया जाता है, एक दी हुई कपास की फसल से किस अनुपात में रुई तथा बिनौला प्राप्त होगा, प्रकृति द्वारा यह अनुपात लगभग स्थिर रहता है।

नीचे हम दोनों वर्गों की सयुक्त वस्तुओं के मूल्य निर्धारण का विवेचन करते हैं

(i) उन सयुक्त वस्तुओं का मूल्य निर्धारण जिनका अनुपात परिवर्तित किया जा सकता है—ऐसी वस्तुओं की सीमान्त लागत को पृथक रूप से 'सीमान्त विश्लेषण रीति (Method of Marginal Analysis) द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। इस रीति के अन्तर्गत हम सीमान्त लागत को ज्ञात करने के लिए एक वस्तु की उत्पादित मात्रा स्थिर रखकर दूसरी वस्तु की मात्रा को एक इकाई से बढ़ाते हैं और इसके पश्चात् कुल लागत में अन्तर ज्ञात कर लेते हैं। हम विश्लेषण के लिए पत्थर का कोयला तथा गैस का उदाहरण लेते हैं।

माना कि,

८ इकाइयाँ पत्थर के कोयले की+१२ इकाइयाँ गैस की लागत=३०० रु०

प्रक्रिया (process) में थोड़ा परिवर्तन करने से,

८ इकाइयाँ पत्थर के कोयले की+१३ इकाइयाँ गैस की लागत=३२० रु०

अत १ इकाई गैस की लागत अर्थात् गैस की सीमान्त लागत=२० रु०

सीमान्त लागत ज्ञात होने के पश्चात् वस्तु का मूल्य निर्धारण सरल हो जाता है।

परिवर्तनशील अनुपातों की सयुक्त वस्तुओं के मूल्यों के सम्बन्ध में अल्पकाल में,

पूर्ण प्रतियोगिता में, कीमत=सीमान्त लागत (MC)

परन्तु दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण की समस्या हल नहीं होती क्योंकि यह सम्भव नहीं है कि वस्तुओं की औसत लागत को पृथक रूप से ज्ञात किया जा सके, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि दीर्घकाल में कीमत प्रत्येक वस्तु की औसत लागत (AC) के बराबर होगी।

(ii) उन सयुक्त वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण जिनका अनुपात परिवर्तित नहीं किया जा सकता—ऐसी सयुक्त वस्तुओं की सीमान्त लागत पृथक रूप से ज्ञात नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में सयुक्त वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए

(अ) दीर्घकाल में, सयुक्त वस्तुओं को बेचने से प्राप्त कुल आगम (total revenue) उनके उत्पादन की कुल लागत (total cost) के बराबर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक वस्तु की कीमत इस प्रकार होनी चाहिए कि सयुक्त वस्तुओं की कुल पूर्ति बेचने से इतना विक्रय धन (sale proceeds) प्राप्त हो जाये जिससे कि कुल लागत निकल आये।

(ब) संयुक्त वस्तुओं में से प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी माँग (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता) की सापेक्षिक शक्ति (strength) पर निर्भर करेगी। संयुक्त वस्तुओं में से जिस वस्तु की माँग अर्थात् सीमान्त उपयोगिता अधिक तीव्र होगी उसकी कीमत अधिक होगी।

उपर्युक्त बात को हम दूसरे शब्दों में भी व्यक्त करते हैं। प्रत्येक वस्तु की कीमत 'यातायात क्या सहन कर सकेगा' (What the traffic will bear) ? के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होगी अर्थात् इस बात से निर्धारित होगी कि वस्तु या सेवा बाजार से क्या प्राप्त कर सकती है। रेलवे अपनी सेवाओं की दरों को इसी सिद्धान्त द्वारा निर्धारित करती है, वे हल्की तथा मूल्यवान वस्तुओं के लिए भाड़े की दर अधिक रखती हैं क्योंकि ये वस्तुएँ ऊँची दरों को सहन कर सकती हैं।

(स) यह सम्भव हो सकता है संयुक्त वस्तुओं में से प्रत्येक वस्तु को बाजार में बेचने योग्य बनाने के लिए कुछ विशेष लागतें (special costs) या परिवर्तनशील लागतें (variable costs or prime costs) उठानी पड़ें। ऐसी दशा में वस्तु को बेचने से, अल्पकाल में, कम से कम ये विशेष लागतें या परिवर्तनशील लागतें, अवश्य निकल आनी चाहिए। इस दृष्टि से ये लागतें वस्तु की निचली सीमा को निर्धारित करती हैं।

अब हम माँग में परिवर्तनों के प्रभाव का अध्ययन करेंगे। माना कि दो संयुक्त वस्तुएँ हैं। अन्य बातों के समान रहते हुए, संयुक्त वस्तुओं में से एक वस्तु की माँग में परिवर्तन उस वस्तु की कीमत में उसी प्रकार का परिवर्तन करेगा, परन्तु दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन विपरीत दिशा में होगा। इस सामान्य सिद्धान्त को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। हम 'रुई तथा बिनौला' की संयुक्त वस्तुओं का उदाहरण लेते हैं। माना कि अल्पकाल में रुई की माँग में अधिक वृद्धि हो जाती है तो रुई की कीमत में उसी प्रकार का परिवर्तन होगा अर्थात् उसकी कीमत भी बढ़ेगी, रुई पर अधिक लाभ होने लगेगा, परिणामस्वरूप रुई का उत्पादन बढ़ेगा, परन्तु रुई के उत्पादन में वृद्धि के साथ बिनौले का उत्पादन भी बढ़ेगा अर्थात् बिनौले की पूर्ति बढ़ेगी जबकि उसकी माँग पहले के समान ही रहती है। ऐसी स्थिति में बिनौला की कीमत कम हो जायेगी। स्पष्ट है कि रुई की माँग में वृद्धि से रुई की कीमत में भी वृद्धि होती है परन्तु दूसरी वस्तु (बिनौले) की कीमत घटती है।

मिश्रित या प्रतिद्वन्द्वी माँग
(COMPOSITE OR RIVAL DEMAND)

मिश्रित या प्रतिद्वन्द्वी माँग का अर्थ

जब एक वस्तु दो या दो से अधिक प्रयोगों में माँगी जाती है, तो ऐसी माँग को मिश्रित माँग कहते हैं।[5] वस्तु की सीमितता के कारण विभिन्न प्रयोग वस्तु को अपनी ओर खीचने के लिए प्रतियोगिता करते हैं इसलिए ऐसी माँग को 'प्रतिद्वन्द्वी माँग' या 'प्रतियोगी माँग' भी कहते हैं। उदाहरणार्थ बिजली को रोशनी पंखे, उद्योगों को चलाने, इत्यादि कई प्रयोगों में माँगा जाता है इसलिए इसकी माँग मिश्रित माँग हुई। लगभग सभी कच्ची वस्तुओं (raw materials), जैसे— कोयला, चमड़ा, ऊन, लोहा, चाँदी, इत्यादि की मिश्रित माँग होती है। इसी प्रकार लगभग सभी उत्पत्ति के साधनों (जैसे श्रम, भूमि, पूँजी) की माँग मिश्रित माँग होती है।

मिश्रित माँग वाली वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं होती। विभिन्न प्रयोगों में वस्तु की माँगों को जोड़कर कुल माँग ज्ञात कर ली जाती है अर्थात् वस्तु की कुल माँग रेखा खींची जा सकती है। वस्तु की सीमान्त लागत अर्थात् पूर्ति रेखा ज्ञात रहती है। अतः वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ माँग तथा पूर्ति रेखाएँ काटती हैं।

मिश्रित अथवा प्रतिद्वन्द्वी पूर्ति
(COMPOSITE OR RIVAL SUPPLY)

जब किसी आवश्यकता की पूर्ति कई वस्तुओं द्वारा की जा सकती है तो ऐसी वस्तुएँ मिश्रित पूर्ति में कही जाती हैं। दूसरे शब्दों में, जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ एक-दूसरे की स्थानापन्न (substitutes) होती हैं तो वे मिश्रित पूर्ति में कही जाती हैं। मिश्रित पूर्ति, मिश्रित माँग की उल्टी होती है। मिश्रित माँग में एक वस्तु होती है जो कि दो या दो से अधिक उद्देश्यों

[5] When a commodity is demanded for two or more different uses the demand is said beto composite,

में प्रयोग की जाती है। मिश्रित पूर्ति में दो या दो से अधिक वस्तुएँ होती हैं जो कि एक उद्देश्य के लिए प्रयोग की जाती हैं।* मिश्रित पूर्ति वाली वस्तुएँ किसी एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए आपस में प्रतियोगिता करती हैं, इसलिए इनको प्रतियोगी वस्तुएँ (competitive goods) भी कहा जाता है, ये प्रतिद्वन्द्वी पूर्ति (rival supply) में होती हैं। उदाहरणार्थ, पीने की आवश्यकता को चाय कॉफी या कोको के द्वारा पूरा किया जा सकता है, अत. ये वस्तुएँ मिश्रित पूर्ति में हैं।

प्रतिस्थापन के सिद्धान्त (principle of substitution) के अनुसार प्रतियोगी वस्तुएँ उस बिन्दु तक प्रयोग की जायेंगी जहाँ पर सीमान्त उपयोगिता (marginal utilities) या सीमान्त वास्तविक उत्पादकताएँ (marginal net products) उनकी कीमतों के बराबर हों। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक की कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता या सीमान्त वास्तविक उत्पादकता के बराबर होगी। चूंकि प्रत्येक वस्तु की सीमान्त लागत ज्ञात होती है, इसलिए मिश्रित पूर्ति की वस्तुओं की कीमत उनकी सीमान्त लागत तथा सीमान्त उपयोगिता या सीमान्त वास्तविक उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है।

प्रश्न

१ 'सयुक्त माँग' तथा 'मिश्रित माँग' मे भेद बताइए। सयुक्त माँग की परिस्थितियों के अन्तर्गत मूल्य निधारण मे क्या कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं?
Distinguish between 'Joint Demand' and 'Composite Demand'. What are the difficulties of price determination under the conditions of Joint Demand? (*Sagar*, 1969)

२. आप संयुक्त माँग से क्या समझते हैं? संयुक्त माँग के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है? सयुक्त माँग के अन्तर्गत एक उत्पत्ति का साधन किन दशाओ मे ऊँची कीमत लेने मे सफल हो सकता है?
What do you understand by Joint Demand? How is value determined under Joint Demand? In what conditions a factor of production under Joint Demand can succeed incharging a high price?

[संकेत—तीसरे भाग के लिए, देखिए, पृष्ठ १४१ पर दूसरा पैराग्राफ तथा उसके आगे की विषय-सामग्री।]

३. आप सयुक्त माँग से क्या समझते हैं? क्या आप इस मत से सहमत हैं कि सयुक्त माँग की दशा के अन्तर्गत मूल्य अनिर्धारणीय होता है?
What do you mean by Joint Demand? Do you agree with the view that value is indeterminate in the case of Joint Demand (*Bihar*, 1965)

[संकेत—दूसरे भाग के उत्तर के लिए देखिए 'सयुक्त माँग के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री।]

४ 'सयुक्त माँग' से आप क्या समझते हैं? सयुक्त माँग की दशाओ के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण की कठिनाइयों को समझाइए।
What do you understand by Joint Demand? Explain the difficulties of price determination under conditions of Joint Demand (*Punjab* 1963)

५ सयुक्त पूर्ति तथा मिश्रित पूर्ति के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। सयुक्त पूर्ति की दशाओ के अन्तर्गत मूल्य कैसे निर्धारित होता है?
Distinguish between joint supply and composite supply How is value determined under conditions of joint supply? (*B H U*, 1966)

६ 'सयुक्त पूर्ति' तथा 'सयुक्त माँग' के बीच अन्तर बताइए। 'सयुक्त पूर्ति' के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है?
Distinguish between 'Joint supply' and 'Joint demand How is value determined under joint supply? (*Lucknow* 1961)

७. 'सग्रहीत माँग' (composite demand) तथा 'सग्रहीत पूर्ति' (composite supply) से आप क्या समझते हैं? इन परिस्थितियों मे मूल्य का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?
What do you understand by the terms Composite Demand' and 'Composite Supply'? Explain how value is determined in such cases? (*Jodhpur*, 1967)

---

* Composite supply is the opposite of composite demand In composite demand there is one product used for two or more purposes In composite supply there are two or more products used for one purpose

सट्टा
[SPECULATION]

सट्टे का विषय एक आकर्षक (fascinating) विषय है, यह माँग तथा पूर्ति के महत्त्वपूर्ण प्रयोगों को बताता है, परन्तु साथ ही यह एक जटिल विषय है।

सट्टे का अर्थ
(MEANING OF SPECULATION)

सट्टे के अन्तर्गत वर्तमान मे क्रय या विक्रय तथा इसके बाद, मूल्यो में परिवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ प्राप्त करने की आशा से, भविष्य मे विक्रय या क्रय किया जाता है।[1]

जब एक सटोरिया भविष्य मे किसी वस्तु, सिक्योरिटी (security) या शेयर के मूल्यों मे वृद्धि की आशा करता है तो वह उसको वर्तमान मे खरीदता है और भविष्य मे उसे बेचकर लाभ उठाता है। यदि उसका अनुमान है कि वस्तु विशेष का मूल्य भविष्य मे गिरेगा तो वर्तमान मे वस्तु को बेचेगा और भविष्य मे खरीदकर लाभ उठायेगा। सटोरियो के लाभ की मात्रा उनके सही अनुमान पर निर्भर करेगी, यदि उनके अनुमान गलत सिद्ध होते है तो उनको हानि होगी।

सगठित सट्टे का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष (aspect) यह है कि इसके अन्तर्गत भविष्य मे डिलीवरी (future delivery) के लिए पहले से ही किसी एक तय की हुई कीमत पर वस्तुओ का क्रय तथा विक्रय किया जाता है। इसलिए सट्टे को 'भविष्य मे व्यवसाय' (Futures Trading) या 'भविष्य मे लेन-देन' (Dealing in Future) कहते हैं,[2] या केवल 'फ्यूचर' (future) कहते हैं।

सट्टे के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझाने के लिए निम्न बातो को ध्यान मे रखना चाहिए:

(i) किसी वस्तु का सौदा वर्तमान मे किया जाता है और उसका निपटारा (settlement) भविष्य मे पहले से निर्धारित की हुई किसी तिथि पर होता है।

(ii) इस प्रकार का सौदा केवल लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से किया जाता है। चूंकि सट्टे के अन्तर्गत दो समयों के बीच मूल्य मे अन्तर होने के कारण लाभ प्राप्त होता है, इसलिए सट्टे को 'समयावधि मे लाभ' अर्थात् 'समयावधि में आरबिट्रेज' (arbitrage through time) भी कहा जाता है। इसलिए सटोरियो (speculators) को 'आरबिट्रेजर्स' (arbitragers) भी कहा जाता है।

[एक ही समय मे दो स्थानो मे किसी वस्तु के मूल्य मे अन्तर के परिणामस्वरूप जो लाभ होता है उसे अर्थशास्त्र मे टेक्नीकल भाषा मे आरबिट्रेज (arbitrage) कहा जाता है। इसके सम्बन्ध मे थोडा विस्तार से आगे बताया गया है।]

---

[1] 'Speculation is a purchase or sale in the present, followed by a sale or purchase in the future, in the expectation of making a profit from a price change in the mean time.'

[2] "An important aspect of organised speculation is the practice of buying and selling goods for future delivery at a price agreed upon some time in advance This is known as 'futures trading' or dealing in future."

(iii) एक सटोरिया प्राय वस्तुओं का भौतिक रूप से (physically) क्रय तथा विक्रय नहीं करता अर्थात वह वास्तविक वस्तुओं (actual commodities) का प्राय लेन देन नहीं करता है, वह केवल भविष्य के वायदों (future contracts) में लेन देन करता है। दूसरे शब्दों में, वह 'कागज के टुकड़ों' (bits of paper) का क्रय तथा विक्रय करता है। इन 'कागज के टुकड़ों' को 'वस्तु फ्यूचर्स' (commodity futures) कहा जाता है। ये 'वस्तु फ्यूचर्स' वे अनुबन्ध (contracts) होते हैं जिनका संगठित वस्तु बाजार में दलाल लेन देन करते हैं। इसलिए सट्टे को 'फ्यूचर में लेन देन' या 'फ्यूचर' भी कहते हैं।[3]

संक्षेप में, एक सटोरिया प्राय वस्तुओं को नहीं खरीदता, वह जोखिमों में लेन देन करता है और इसलिए वह 'व्यावसायिक जोखिम उठाने वाला' (professional risk taker) कहा जाता है। एक सटोरिया वस्तुओं का नहीं बल्कि जोखिमों का व्यवसायी होता है।[4]

सट्टा तथा आरबिट्रेज
(SPECULATION AND ARBITRAGE)

हम सट्टे को समयावधि में 'आरबिट्रेज' (arbitrage through time) कहते हैं, केवल 'आरबिट्रेज' (arbitrage) नहीं कहते क्योंकि आरबिट्रेज तथा सट्टा एक ही बात नहीं है। आरबिट्रेज तथा सट्टे में निम्न अन्तर है

(i) सट्टे के अन्तर्गत किसी वस्तु को एक समय में खरीदा जाता है और दूसरे समय में बेचा जाता है और इस प्रकार दो समयों के बीच मूल्यों में अन्तर से लाभ अर्जित किया जाता है।

आरबिट्रेज के अन्तर्गत एक ही वस्तु का एक ही समय में दो विभिन्न बाजारों में क्रय तथा विक्रय किया जाता है और इस प्रकार एक समय पर ही दो स्थानों के बीच मूल्यों में अन्तर से लाभ अर्जित किया जाता है।

(ii) सट्टा वस्तु की पूर्ति तथा कीमत को एक समयावधि (over a period of time) में स्थायी (stabilise) करने में सहायक होता है और इस प्रकार सट्टा समय उपयोगिता (time utility) उत्पन्न करता है।

आरबिट्रेज दो स्थानों पर (माँग के अनुसार) वस्तु की पूर्ति को स्थायी करता है और इस प्रकार स्थान उपयोगिता (place utility) को उत्पन्न करता है।

आरबिट्रेज तथा सट्टा दोनों के कार्य संगठित प्राड्यूस तथा स्टॉक एक्सचेन्जों (organised produce and stock exchanges) के द्वारा बहुत अधिक सुगम हो जाते हैं तथा इन एक्सचेन्जों के व्यापारी प्राय आरबिट्रेज तथा सट्टा दोनों प्रकार के लेन-देन करते हैं।

सट्टा तथा जुआ
(SPECULATION AND GAMBLING)

जुआ तथा सट्टा दोनों में अनिश्चितता तथा जोखिम (uncertainty and risk) के परिणामस्वरूप लाभ प्राप्त होता है, परन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। जुआ, अपने स्वभाव (nature) तथा सामाजिक परिणामों (social consequences) दोनों दृष्टियों से सट्टे से भिन्न होता है। दोनों में अन्तर निम्नलिखित हैं

(i) जुए में जोखिम जानबूझकर उत्पन्न की जाती है और यह जोखिम अनावश्यक (unnecessary) होती है क्योंकि इसका उत्पादन प्रक्रिया (productive process) से कोई सम्बन्ध नहीं होता। जुए में एक पक्ष को धन का लाभ होता है तथा दूसरे को धन की हानि, इससे समाज को कोई वास्तविक लाभ (net gain) नहीं होता। उदाहरणार्थ, जुआरी प्राय टेस्ट मैचों के सम्बन्ध में एक पक्ष की हार या जीत पर शर्त (bet) लगा सकते हैं, किसी दिन की वर्षा

[3] These bits of paper are called 'commodity futures' they are contracts that brokers deal with in organised commodity exchanges

[4] A speculator "is a dealer, not in goods but in risks."

की मात्रा पर दाव लगा सकते है, एक सड़क के किनारे पर बैठकर इस बात की शर्त लगा सकते हैं कि पहली कार बायीं ओर से गुजरेगी या दायीं ओर से, इत्यादि। इन सब उदाहरणों में उत्पादन प्रक्रिया की दृष्टि से कोई जोखिम नहीं है, इसमें जोखिम को जानबूझकर उत्पन्न किया जाता है, ताकि लाभ हानि हो सके।

इसके विपरीत, उचित सट्टे (genuine speculation) में एक सटोरिया आवश्यक तथा प्राकृतिक जोखिमों को उठाता है। उदाहरणार्थ, छः महीने या एक साल बाद रुई की कीमत बढ़ सकती है या कम सकती है, स्पष्ट है कि यहाँ पर जोखिम मौजूद है जिसको किसी को उठाना चाहिए ताकि रुई का उत्पादन ठीक रहे।

(ii) सामाजिक प्रभावों की दृष्टि से भी सट्टे तथा जुए में अन्तर है

(अ) सट्टा उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग देता है। सट्टे के द्वारा व्यावसायिक जोखिम का एक सामान्य उत्पादक से, जो कि उसको सहन करने की उचित क्षमता नहीं रखता, एक विशेषज्ञ को हस्तान्तरण सम्भव है जो कि अपनी विशिष्टता (specialisation) के कारण उसको सहन करने की अच्छी क्षमता रखता है। इस प्रकार, यदि सट्टा उचित समझदारी (intelligent understanding) पर आधारित है, तो वह व्यवसाय के चलन (conduct of business) को सुगम करता है तथा समस्त उद्योगों में अनिश्चितता को कम करता है। (परन्तु जब सट्टा उचित जानकारी पर आधारित नहीं होता और अनुचित रीति से किया जाता है तो वह जुए के समान ही हो जाता है।)

(ब) जुआ उत्पादक कार्य में कोई सहयोग नहीं देता। प्रथम, आसानी से धन को प्राप्त करने के लालच से जुआ बहुत-से व्यक्तियों को उत्पादक कार्यों से हटा देता है, और इस प्रकार सामाजिक आय (social income) को कम कर देता है। दूसरे, जुआ आयों की असमानताओं तथा अस्थायित्व (inequality and instability of incomes) को बढ़ावा देता है। जुए की मेज पर जो व्यक्ति एकसमान धन की मात्रा लेकर बैठते हैं तथा वे धन की मात्रा में बहुत अन्तर के साथ मेज को छोड़कर जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जुआ, अपने स्वभाव तथा सामाजिक परिणामों दोनों दृष्टियों से, सट्टे से अन्तर रखता है।

सट्टा बाजार के विकास के लिए दशाएँ
(CONDITIONS FOR GROWTH OF SPECULATIVE MARKET)

अथवा

सट्टे के लिए वस्तुओं की उपयुक्तता
(SUITABILITY OF COMMODITIES FOR SPECULATION)

सामान्यतया कोई भी वस्तु जिसके भविष्य में अनिश्चितता का तत्व हो सट्टे के लिए उपयुक्त हो सकती है, परन्तु इतना कहना पर्याप्त नहीं है। सट्टा बाजार के विकास के लिए या सट्टे हेतु वस्तुओं की उपयुक्तता के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है :

(१) वस्तु टिकाऊ (durable) होनी चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार उसका संचय किया जा सके। यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली (perishable) है, जैसे साग-सब्जी, दूध, इत्यादि तो वह सट्टे के लिए उपयुक्त नहीं होगी।

(२) वस्तु ऐसी होनी चाहिए जिसकी माँग विस्तृत तथा नियमित हो, अन्यथा सटोरिया उसको भविष्य में बेचने के सम्बन्ध में निश्चित (sure) नहीं हो सकता।

(३) वस्तु ऐसी होनी चाहिए जिसका प्रमापीकरण (standardisation) हो सके तथा जिसे सरलता से पहचाना (easily recognizable) जा सके। सोना, चाँदी, शेयर, गेहूँ, इत्यादि ऐसी वस्तुएँ हैं।

(४) वस्तु ऐसी होनी चाहिए जिसकी पर्याप्त पूर्ति सामान्यतया प्राप्य हो अन्यथा सटोरियों का उस वस्तु को भविष्य में प्राप्त करने में कठिनाई होगी। परन्तु वस्तु की पूर्ति नियमित

(regular) नहीं होनी चाहिए तभी अनिश्चितता का तत्त्व होगा और सट्टे के लिए वह वस्तु उपयुक्त होगी। प्राय कृषि की वस्तुएँ, जैसे—रुई, ऊन, गेहूँ, इत्यादि, इस गुण को पूरा करती हैं।

सट्टे के प्रकार
(KINDS OF SPECULATION)

सट्टा कई प्रकार का हो सकता है। प्राय सट्टे के दो मुख्य रूप होते हैं जो निम्नलिखित हैं

(१) 'उचित' या उत्पादक' अथवा 'सरल या 'स्पर्द्धात्मक' सट्टा ('Legitimate' or 'productive or 'competitive speculation)—जब निपुण तथा अनुभवी व्यापारियो द्वारा सोच-समझकर तथा उचित जानकारी के आधार पर वैज्ञानिक ढग से सट्टा किया जाता है तब इस उचित सट्टा कहा जाता है। 'उचित सट्टे' म अनुभवी व्यापारी या सटोरिये वस्तु की माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाली बातो का उचित ज्ञान प्राप्त करके वस्तु के मूल्यो का ठीक अनुमान लगाने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार लाभ प्राप्त करते हैं।

उचित सट्टे को प्रो० लार्नर (Prof Lerner) ने 'उत्पादक' या 'सरल' (Productive or Simple) सट्टा कहा है। वह व्यक्ति जो कि यह सोचता है कि बाजार मूल्य पर उसका अपना कोई प्रभाव नहीं होता और जो कि यह विश्वास रखता है कि मूल्य म वृद्धि या कमी उसके अपने कार्यों से स्वतन्त्र होकर होती है तथा जो व्यक्ति क्रय या विक्रय का प्रयास लाभ प्राप्त करने के लिए करता है, ऐसे व्यक्ति को सरल' या स्पर्द्धात्मक' सटोरिया कहते हैं। सरल या स्पर्द्धात्मक सटोरिया, यदि वह सफल होता है, सस्ता खरीदता है तथा महँगा बेचता है और इस प्रकार अपने लिए लाभ प्राप्त करता है। परन्तु वह अपने इन कार्यों से वस्तुओ को उन बिन्दुओ से, जहाँ पर वे सापेक्षिक रूप से बहुतायत म हैं हटाकर उन बिन्दुओ पर ले जाता है जहाँ पर कि व सापेक्षिक रूप स कम हैं और इस प्रकार वह समाज को एक महत्त्वपूर्ण सेवा प्रदान करता है।[5]

(२) 'अनुचित' या 'आक्रामक' या 'एकाधिकृत' सट्टा ('Illegitimate' or 'aggressive' or 'monopolistic' speculation)—जब सट्टा उन व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो कि वस्तु की माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियो से अनभिज्ञ होते हैं और फिर भी लाभ को प्राप्त करना चाहते हैं तो ऐसे सट्टे को अनुचित सट्टा' (Illegitimate speculation) कहा जाता है। जब किसी वस्तु का प्रमापीकरण हो जाता है तो उसम सट्टा करना सुगम होता है, और सट्टे के लाभ से आकर्षित होकर सामान्य तथा अनुभवहीन व्यक्ति सट्टे में अनाड़ी ढग से कार्य (dabble) करने लगते हैं और हानि उठाते हैं। ऐसे व्यक्ति अफवाहो से प्रभावित होते हैं, और डरते हुए कार्य करते हैं, वे अपनी वस्तुएँ उस समय बेचते हैं जबकि अनुभवी तथा कुशल विशेषज्ञ उनको अपने पास रोकते हैं और वे वस्तुओ को उस समय खरीदते हैं जबकि अनुभवी तथा कुशल सटोरिये उनको बेचते हैं। इस प्रकार इन अनाड़ी सटोरियो (dabblers in speculation) के कार्यों के कारण मूल्यो का उतार-चढाव (fluctuations) पहले की अपेक्षा और अधिक हो जाता है। वास्तव मे, इस प्रकार का अनुचित सट्टा जुए के समान ही हो जाता है।

अनुचित सट्टे का एक रूप 'आक्रामक सट्टा' (aggressive speculation) या 'एकाधिकृत सट्टा' (monopolistic speculation) होता है। 'आक्रामक सट्टा' थोडे-से धनवान तथा शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो कि आपस मे मिलकर एकाधिकृत सयोग (monopolistic combination) का निर्माण कर प्रतियोगिता को हटाने तथा बाजार के मूल्य पर अपना

[5] "A person who does not consider himself to have any influence on the market price but who believes that the price is going to rise or is going to fall independently of his own actions, and who buys or sells in an attempt to make profit is a simple or competitive speculator The simple or competitive speculator if he is successful, buys cheap and sells dear and thereby makes profit for himself But by his actions, he shifts goods from points where they are relatively plentiful to others where they are relatively scarce and thereby renders a great service to society "

नियन्त्रण करने का प्रयत्न करते है ताकि उनको अत्यधिक लाभ प्राप्त हो सके। ऐसे सटोरिये प्राय अनुचित रीतियो से बाजार के मूल्य को नियन्त्रित करते हैं। उदाहरणार्थ, वे प्रकट रूप से यह दिखाते है कि वस्तु की कीमत गिरने वाली है और इसलिए वस्तु को अधिक मात्रा मे बेचने का दिखावा करते है जबकि अप्रत्यक्ष रूप से उनके अन्य साथी वस्तु को खरीदते जाते है। इस प्रकार वे वस्तु की अधिकाश पूर्ति पर नियन्त्रण करके वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचते हैं और अधिक लाभ उठाते है।

आक्रामक सट्टा साधनो का अनुकूलतम वितरण नही करता। यह वस्तुओ के मूल्य के अन्तरो को कम (iron out) नही करता बल्कि उन अन्तरों को और अधिक बढा देता है।

सट्टे के आर्थिक कार्य
(ECONOMIC FUNCTIONS OF SPECULATION)

अथवा

सट्टे का आर्थिक महत्त्व
(ECONOMIC IMPORTANCE OF SPECULATION)

उचित जानकारी पर आधारित सट्टा महत्त्वपूर्ण आर्थिक कार्य करता है। सट्टे का आर्थिक महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट होता है

१. मूल्यो का स्थायित्व (Stabilisation of Prices)

सट्टा वस्तु की माँग तथा पूर्ति के अन्तर (gap) को कम करके मूल्यो मे स्थिरता लाता है।

(अ) पूर्व अनुमान लग सकने योग्य मूल्यों के उतार-चढ़ाव मे स्थिरता लाना (Stabilising foreseeable fluctuations in prices)—जब सटोरियो का यह अनुमान होता है कि वस्तु विशेष की पूर्ति भविष्य मे कम होगी और उसका मूल्य ऊँचा होगा तो लाभ अर्जित करने की दृष्टि से भविष्य मे वस्तु की डिलीवरी करने के लिए उसे वर्तमान मे खरीदेंगे; ऐसा करने से परिणामों की निम्न प्रक्रिया (process) होगी—(i) वस्तु की वर्तमान पूर्ति मे कमी, (ii) वर्तमान कीमत मे वृद्धि, (iii) वस्तु के स्टॉक मे वृद्धि, (iv) भविष्य की पूर्ति मे वृद्धि, तथा (v) भविष्य मे कीमत मे कमी। स्पष्ट है कि सट्टे की अनुपस्थिति मे वस्तु का मूल्य वर्तमान मे बहुत कम होता
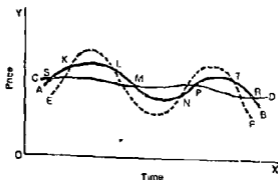
चित्र—१

तथा भविष्य मे बहुत ऊँचा। परन्तु सट्टे के कारण वस्तु का मूल्य वर्तमान मे उतना नीचा नही होगा जितना कि वह होता है और भविष्य मे मूल्य उतना ऊँचा नही होगा जितना कि वह होता; इस प्रकार सट्टा मूल्यो के उतार-चढाव मे स्थिरता लाता है। उचित सट्टे (sound speculation) द्वारा मूल्यों में स्थिरता लाने की स्थिति को चित्र न० १ में दिखाया गया है।

चित्र न० ९ म मोटी रेखा AB बिना सट्टे की कीमतों के रास्ते (course) को बताती है। कम मोटी रेखा CD उचित व सच्चा सट्टा (sound speculation) के परिणामस्वरूप कीमतों के रास्ते को बताती है। उचित सट्टे के अन्तर्गत सटोरिये बिन्दु S तथा P पर वस्तु को बेचेंगे (ताकि अधिक कीमत न बढ़ें) और बिन्दु M तथा बिन्दु R पर वस्तु को खरीदेंगे (ताकि कीमतें अधिक न घटें) और इस प्रकार कीमतों का उतार-चढ़ाव बहुत कम हो जायगा, सट्टे के कारण कीमतों का रास्ता कम मोटी रेखा CD बताती है जिसको देखने से स्पष्ट होता है कि मूल्यों में स्थिरता है अर्थात् उतार चढ़ाव बहुत कम है। यदि सट्टा अनुचित या गलत (perverse) है तो ऐसी स्थिति में कीमतों का रास्ता टूटी रेखा (dotted line) EF बताती है। गलत सट्टे के अन्तर्गत सटोरिये बिन्दु K तथा बिन्दु N पर खरीदना शुरू करेंगे (जिससे कीमतें और ऊँची जायेंगी) तथा व बिन्दु L और बिन्दु T पर बेचना शुरू करेंगे (जिससे कीमतें और अधिक गिरेंगी)। इस प्रकार गलत सट्टा कीमतों के उतार चढ़ाव को कम करने के स्थान पर और अधिक बढ़ा देता है।

(ब) मूल्यों के मौसमी उतार-चढ़ाव में स्थिरता लाना (Stabilising seasonal fluctuations of prices)—बहुत-सी वस्तुओं (जैसे गेहूँ, चावल, इत्यादि) की कीमतों में मौसमी परिवर्तन होते हैं। फसल के समय वस्तु विशेष की अधिक पूर्ति होने के कारण कीमत नीची रहती है तथा कुछ महीनों बाद (जब फसल का समय नहीं होता) उस वस्तु की पूर्ति कम और कीमत ऊँची हो जाती है। कुशल सटोरिये लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से वस्तु को फसल के समय सस्ती कीमत पर खरीदते हैं और कुछ महीनों बाद ऊँची कीमत पर बेचते है। ऐसा करने में वस्तु की निम्नतम तथा उच्चतम कीमत के बीच के अन्तर को कम करते हैं और इस प्रकार से मूल्यों के मौसमी उतार-चढ़ाव में कमी होती है।

२. जोखिम में कमी (Reduction or Spreading of Risk)

सट्टा उत्पादकों के जोखिम को कम करता है उत्पादक अपने जोखिम को सटोरियों के कन्धे पर डाल सकते हैं। सटोरिये अपने कन्धे पर जोखिम उठाने को तत्पर रहते हैं और इस प्रकार वे दूसरों को जोखिम से बचाने में सहायक होते हैं। उत्पादक **'दोहरे रक्षण की प्रक्रिया'** ***(Process of hedging)***, *द्वारा अपने आपको जोखिम से मुक्त करते है।* इसको निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है

माना कि एक तेल मिल का मालिक कच्चे माल (अर्थात् सरसों) के मूल्य में परिवर्तनों के जोखिम से बचना चाहता है। माना कि तेल का मालिक तेल निकालने के लिए २,००० क्विटल सरसों ५० रु० प्रति क्विटल की दर से एक दिन खरीदकर ३ महीने का स्टॉक करता है। इसके साथ ही वह उसी दिन सट्टे बाजार में ५० रु० क्विटल की दर से ३ महीने के वायदे से २००० क्विटल सरसों बेच भी देता है। इस दोहरे व्यापार द्वारा वह अपने आपको सरसों के मूल्य में परिवर्तन होने के कारण जोखिम से बचा लेता है। यदि तीन महीने बाद सरसों की कीमत घटकर ४५ रु० हो जाती है तो उसे अपने सरसों के स्टॉक पर ५ × २,००० = १०,००० रु० की हानि होगी; परन्तु सट्टे बाजार में बेची गयी २,००० क्विटल सरसों पर उसे १०,००० रु० का लाभ हो जायगा क्योंकि वह बाजार से ४५ रु० क्विटल की दर से सरसों खरीदकर सटोरिये को ५० रु० प्रति क्विटल की दर से देकर अपनी डिलीवरी को पूरा करेगा। इस प्रकार एक ओर जो हानि होती है वह दूसरी ओर लाभ से पूरी होती है। स्पष्ट है कि दोहरे रक्षण (hedging) द्वारा उत्पादक जोखिम को सटोरिये के कन्धे पर डाल देते हैं।

३. सट्टा पूँजी के विनियोग का मार्गदर्शन करता है (Speculation Guides the Investment of Capital)

सटोरिये अंशों, प्रतिभूतियों (securities) तथा अन्य वस्तुओं का बहुत सोच-समझकर तथा पर्याप्त जानकारी के आधार पर क्रय-विक्रय करते हैं। यदि स्टाक एक्सचेंज में किसी शेयर

की कीमत दृढ़ (steady) रहती है या दृढ़ रूप से (steadily) बढ़ती है तो इसका अर्थ है कि लोग इस शेयर को खरीदने में अपनी पूंजी का विनियोग सुरक्षित समझेंगे। इस प्रकार सट्टा पूंजी के विनियोग का मार्गदर्शन कर सकता है।

४ सट्टा साधनों के अधिक अच्छे वितरण में सहायक है (Speculation Leads to Better Allocation of Resources)

अनुभवी सटोरिये किसी वस्तु की माँग का पूर्व अनुमान लगा लेते हैं। यदि वे समझते हैं कि वस्तु की माँग भविष्य में बढ़ेगी तो वे उसे तुरन्त खरीदने लगते हैं। इससे वस्तु की कीमत बढ़ती है और उत्पादक वस्तु के उत्पादन को बढ़ाने लगते हैं। इस प्रकार सटोरियों के कार्यों से उत्पत्ति के साधनों का उन वस्तुओं के उत्पादन में हस्तान्तरण होता है जिनकी माँग अधिक होती है। इस प्रकार उत्पत्ति के साधनों का उचित वितरण (allocation) होता है।

सट्टे के दोष
(EVILS OF SPECULATION)

यदि सट्टा उचित है तथा पर्याप्त जानकारी पर आधारित है तो यह लाभदायक होगा, अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में, सट्टे से हानि निम्न दशाओं में होती है—(i) जब सट्टा भविष्य की कीमतों के सम्बन्ध में उचित जानकारी (intelligent understanding) पर आधारित नहीं होता, (ii) जब सटोरिये कुरीतियों (malpractices) का प्रयोग करते हैं तथा सट्टे का रूप आक्रामक (aggressive) हो जाता है, तथा (iii) जब सट्टा जुए का रूप धारण कर लेता है।

सट्टे के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं

(१) अनुचित सट्टा मूल्यों के उतार-चढ़ाव को बढ़ा देता है (Unsound speculation widens the price fluctuations)—अनुभवहीन सटोरिये जब वस्तु की कीमत बढ़ती है तब उसे खरीदते हैं तथा जब उसकी कीमत गिरती है तब उसे बेचते हैं। इस प्रकार वे मूल्यों के उतार-चढ़ाव (fluctuations) को और बढ़ा देते हैं। इसके दो परिणाम होते हैं (i) उत्पादकों के लिए जोखिम बढ़ जाता है, तथा (ii) *आयों में असमानता तथा अस्थायित्व (inequality and instability in income)* उत्पन्न हो जाता है।

(२) सटोरिये कभी-कभी कुरीतियों को अपनाते हैं (Speculators sometimes adopt malpractices)—कभी-कभी सटोरिये जानबूझकर कुरीतियाँ अपनाकर अत्यधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। कुछ शक्तिशाली सटोरिये कम्पनियों के डायरेक्टरों को घूस देकर अन्दर की वास्तविक स्थिति का ज्ञान कर लेते हैं और वे गलत अफवाह फैलाकर अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी कुछ शक्तिशाली सटोरिये आपस में मिल जाते हैं और अनुचित तरीकों द्वारा वे वस्तु की अधिकांश पूर्ति को 'कार्नर' (corner) करके अत्यधिक लाभ प्राप्त करते हैं।

(३) जुए की किस्म का सट्टा हानिकारक होता है (Speculation of the gambling type is harmful)—जब सट्टा जुए का रूप धारण कर लेता है तो ऐसी स्थिति में उत्पादकों का जोखिम बढ़ जाता है। बिना सोचे-समझे तथा केवल अवसर (chance) पर निर्भर करने वाले सटोरियों के कार्यों से कीमतों में उतार-चढ़ाव बढ़ जाता है। इससे उद्योगों में विनियोग कम होता है, विनियोग कम होने से बेरोजगारी बढ़ती है। स्टॉक एक्सचेंजों में जुए की हानि सट्टे के सम्बन्ध में लॉर्ड जे० एम० केंज (Lord J M Keynes) का कथन महत्त्वपूर्ण है

> 'उपक्रम की नियमित धारा पर बुलबुलों (bubbles) की भाँति सटोरिये हानि नहीं करते। परन्तु उस समय स्थिति गम्भीर हो जाती है जबकि उपक्रम सट्टे की भँवर (whirlpool) पर बुलबुला बन जाता है।'[6]

[6] Speculators may do no harm as bubbles on a steady stream of enterprise But the position is serious when enterprise becomes the bubble on a whirlpool of speculation"

सट्टे का नियमन तथा नियन्त्रण
(REGULATION AND CONTROL OF SPECULATION)

सट्टे के दोषों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि सट्टे को नियन्त्रित किया जाय। सट्टे को नियन्त्रित करने की निम्न रीतियाँ बतायी जाती हैं

(१) कानून द्वारा (By legislation)—अनुचित सट्टे को सरकार कानून द्वारा रोकने का प्रयत्न कर सकती है। अधिकांश देशों में सरकारों ने अनुचित सट्टे को रोकने के कानून बना रखे हैं। भारत में Forward Contracts Regulation Act of 1952 भविष्य के वायदों पर (स्टॉक एक्सचजो में उचित वायदो को छोड़कर) नियन्त्रण का अधिकार सरकार को देता है। परन्तु इस प्रकार के सट्टा-विरोधी नियमों (anti-speculation laws) के सम्बन्ध में निम्न कठिनाइयाँ रहती हैं (i) प्राय अनुचित तथा उचित सट्टे के बीच भेद करना कठिन हो जाता है और व्यवहार में अनुचित सट्टे को रोकने वाले नियम लाभकारी व उचित सट्टे को भी रोकते हैं जो कि ठीक नहीं है। (ii) प्राय इन नियमों में कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं या सटोरिये वकीलों की सहायता से नियमों में कुछ कमजोरियाँ (loopholes) को ज्ञात कर लेते हैं, इस प्रकार इन नियमों के रहते हुए भी अनुचित सट्टा होता रहता है। स्पष्ट है कि केवल कानून द्वारा अनुचित सट्टे को रोकना अपर्याप्त तथा कठिन है।

(२) स्टॉक एक्सचेंजों के नियमों द्वारा (By the rules and regulations framed by stock exchanges)—स्टॉक एक्सचेंजों के नियमों द्वारा सट्टे को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी प्रकार से नियमित किया जा सकता है—(i) स्टॉक एक्सचेंजों को अपने बनाये गय नियमों को प्रकाशित करना चाहिए। ऐसा करने के लिए सरकार स्टॉक एक्सचेंजों के प्रबन्धकों को बाध्य कर सकती है। (ii) नयी परिस्थितियों के अनुसार, नियमों को समय-समय पर बदलते रहना चाहिए तथा उनका उचित कड़ाई से पालन होना चाहिए।

(३) कड़े जनमत का निर्माण तथा व्यावसायिक नैतिकता (Formation of strong public opinion and sound business morality)—अनुचित सट्टे की बुराइयों को सरकार प्रकाशित कर सकती है ताकि अनुचित सट्टे के प्रति एक कड़ा जनमत बन सके जोकि अप्रत्यक्ष रूप से उसे नियन्त्रित कर सकता है। इसके अतिरिक्त, देश में एक अच्छी व्यावसायिक नैतिकता भी सट्टे की बुराइयों को एक बड़ी सीमा तक दूर कर सकती है। परन्तु व्यावहारिक जीवन में उपर्युक्त दोनों बातें सफल नहीं हो पाती हैं।

प्रश्न

१. आधुनिक आर्थिक संगठन में 'रचनात्मक सट्टे' के महत्त्व की व्याख्या कीजिए।
Discuss the part played by constructive speculation in modern economic organisation
(*Udaipur*, 1968)

[संकेत—सर्वप्रथम संक्षेप में सट्टे का अर्थ बताइए, इसके बाद सट्टे के आर्थिक कार्य को बताइए।]

२. 'वैज्ञानिक सट्टे' (scientific speculation) का क्या आधार होता है? इससे आर्थिक लाभ क्या होते हैं?
What is the basis of Scientific Speculation? What are its economic advantages?

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर में सट्टे के अर्थ को बताइए। दूसरे भाग में आर्थिक लाभों अर्थात् सट्टे के आर्थिक कार्यों को बताइए।]

1 वितरण के सिद्धान्त
[THEORIES OF DISTRIBUTION]

देश के कुल उत्पादन अर्थात् राष्ट्रीय आय के उत्पादन मे विभिन्न उत्पत्ति के साधन सहयोग देते हैं। प्रश्न यह उठता है कि प्रत्येक साधन को राष्ट्रीय आय में से कितना हिस्सा मिलेगा। दूसरे शब्दों मे, साधनो के पुरस्कार (reward or remuneration) अर्थात् उनकी कीमत किस प्रकार निर्धारित की जायेगी।

वितरण के एक पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता

सामान्यतया किसी साधन की कीमत उसी प्रकार निर्धारित होती है जिस प्रकार एक वस्तु की कीमत निर्धारित होती है। दूसरे शब्दो मे, किसी साधन की कीमत, वस्तु की कीमत की भाँति उसकी माँग तथा पूर्ति द्वारा निश्चित होती है।

परन्तु वस्तु-मूल्य-निर्धारण (commodity pricing) तथा साधन मूल्य निर्धारण (factor pricing) मे कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर भी हैं जिसके कारण साधन-मूल्य-निर्धारण के एक पृथक् सामान्य सिद्धान्त की आवश्यकता पडती है। दोनो मे मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं—(i) किसी वस्तु की माँग प्रत्यक्ष रूप से उसकी उपयोगिता के कारण की जाती है। इसके विपरीत, साधन की माँग अप्रत्यक्ष अर्थात् व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है, साधन की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है। (ii) किसी वस्तु की पूर्ति उसकी उत्पादन-लागत पर निर्भर करती है, परन्तु उत्पत्ति के साधनो की लागत का अर्थ अवसर लागत (opportunity cost) से लिया जाता है। एक साधन को किसी व्यवसाय मे प्रयोग करने के लिए कम-से-कम इतना द्रव्य अवश्य देना पडेगा जितना कि उसे दूसरे वैकल्पिक प्रयोग से मिल सकता है, द्रव्य की यह मात्रा व्यवसाय की दृष्टि से साधन की लागत हुई। (iii) कुछ साधनो, जैसे श्रम, के सम्बन्ध मे सामाजिक तथा मानवीय तत्त्वो को भी ध्यान मे रखना पडता है।

उपर्युक्त अन्तरो के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि साधन-मूल्य निर्धारण वास्तव मे वस्तु-मूल्य-निर्धारण का ही एक रूप है।

राष्ट्रीय आय के वितरण के सिद्धान्त

साधनो मे राष्ट्रीय आय के वितरण अर्थात् साधनो के मूल्य निर्धारण के प्राय तीन सिद्धान्त बताये जाते हैं—(i) वितरण का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory of Distribution), (ii) सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Distribution), तथा (iii) आधुनिक सिद्धान्त—वितरण का माँग तथा पूर्ति का सिद्धान्त (Modern Theory—Demand and Supply Theory of Distribution)।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(CLASSICAL THEORY)

वितरण का प्रतिष्ठित सिद्धान्त एडम स्मिथ, रिकार्डो, इत्यादि ने प्रतिपादित किया। इन

अर्थशास्त्रियों ने वितरण का कोई एक सामान्य सिद्धान्त नहीं दिया बल्कि भूमि के लगान, श्रम की मज़दूरी तथा पूंजी के ब्याज के अलग-अलग सिद्धान्त दिय।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय आय में से सर्वप्रथम भूमि का लगान दिया जाता है, तत्पश्चात् श्रमिकों को मजदूरी दी जाती है और अन्त में जो शेष बच रहता है वह साहसी को ब्याज या लाभ के रूप में प्राप्त हो जाता है।

रिकार्डो के अनुसार, लगान एक आधिक्य (surplus) है जो कि श्रेष्ठ भूमियों को सीमान्त भूमि के उत्पादन के ऊपर प्राप्त होता है। लगान देने के बाद राष्ट्रीय आय में से मजदूरों को हिस्सा दिया जाता है। मजदूरी का हिस्सा 'मजदूरी कोष' (wage fund) में से दिया जाता है, मजदूरी केवल श्रमिकों के जीवन निर्वाह के बराबर दी जाती है। लगान तथा मजदूरी देने के बाद अन्त में जो बच रहता है वह ब्याज या लाभ हो जाता है।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त दोषपूर्ण है, इसकी मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं—(i) यह साधनों के हिस्से अर्थात् उनकी कीमत के निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त (general theory) नहीं है, यह तो लगान तथा मजदूरी के निर्धारण के पृथक्-पृथक् सिद्धान्त देता है। (ii) यह सिद्धान्त 'वितरण के *कार्यात्मक सिद्धान्त*' (Functional Theory of Distribution) पर कोई ध्यान नहीं देता। दूसरे शब्दों में, पहले साधन विशेष की इकाइयों का पृथक् रूप से पुरस्कार ज्ञात किया जाना चाहिए और तत्पश्चात् सब इकाइयों का पुरस्कार जोड़कर उस साधन के कुल वर्ग (class of the factor as a whole) का पुरस्कार ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु यह सिद्धान्त पहले साधन के कुल वर्ग का कुल हिस्सा ज्ञात करता है और इसके पश्चात् उसे साधन की विभिन्न इकाइयों में बाँटता है, परन्तु यह तरीका उचित नहीं है।

उपर्युक्त दोषों के कारण प्रतिष्ठित सिद्धान्त को त्याग दिया गया।

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त[1]
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF DISTRIBUTION)

१. प्राक्कथन (Introduction)

सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त इस बात की सामान्य व्याख्या (general explanation) प्रदान करता है कि उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार (reward or remunerations) अर्थात् उनकी कीमत किस प्रकार निर्धारित होती है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन १९वीं शताब्दी के अन्त में जे० बी० क्लार्क (J. B Clark), विक्सटीड (Wicksteed) वालरस (Walras) इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने किया, तत्पश्चात् श्रीमती जोन रोबिन्सन (*Mrs. Joan Robinson*), हिक्स (*Hicks*), इत्यादि अर्थशास्त्रियों के हाथों इसका विकास हुआ।

२. सिद्धान्त का सामान्य कथन (General Statement of the Marginal Productivity Theory)

> **सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त बताता है कि एक साधन की कीमत उसकी 'उत्पादकता' (productivity) पर निर्भर करती है तथा यह 'सीमान्त उत्पादकता' (marginal productivity) द्वारा निर्धारित होती है।**

---

[1] विद्यार्थियों के लिए नोट—जिन विश्वविद्यालयों के डिग्री स्तर के पाठ्यक्रमों (syllabuses) में 'वितरण के सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त' का केवल प्रारम्भिक विवेचन (elementary treatment) ही है, वहाँ के विद्यार्थियों को सिद्धान्त का पूरा विवरण पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें केवल १. प्राक्कथन, २ सिद्धान्त का सामान्य कथन, ३ सिद्धान्त की मान्यताएँ तथा अन्त में सिद्धान्त की आलोचना (पृष्ठ १०)—ये कदम (steps) ही पढ़ने चाहिए, शेष बीच के सब कदम (steps) छोड़ देने चाहिए। जिन विश्वविद्यालयों के डिग्री के पाठ्यक्रमों में इस सिद्धान्त का उच्च विवेचन (advanced treatment) है वहाँ के विद्यार्थियों को सिद्धान्त का सम्पूर्ण विवरण पढ़ना चाहिए।

हम उपर्युक्त कथन के पहले भाग पर ध्यान देते हैं। यहाँ पर हम इस बात की विवेचना करेंगे कि साधनों की कीमत उनकी उत्पादकता पर क्यों निर्भर करती है। किसी वस्तु की माँग, प्रत्यक्ष रूप से, उसकी उपयोगिता के कारण की जाती है। इसके विपरीत, एक साधन की प्रत्यक्ष रूप से, वस्तुओं की भाँति, *कोई उपयोगिता नहीं होती, साधन की अप्रत्यक्ष उपयोगिता होती है* क्योंकि उसकी सहायता से वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, एक साधन की माँग 'व्युत्पन्न माँग' (derived demand) होती है, उसकी माँग इस बात पर निर्भर करती है कि वह क्या उत्पादन कर सकता है, अर्थात् साधनों की माँग उनकी 'उत्पादकता' पर निर्भर करती है। जिन साधनों की उत्पादकता अधिक होगी उनकी कीमत अधिक होगी तथा जिनकी उत्पादकता कम होगी उनकी कीमत कम होगी। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पादकता साधनों के मूल्य-निर्धारण में क्यों महत्त्वपूर्ण होती है।

अब हम सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के सामान्य कथन के दूसरे भाग पर ध्यान देते हैं। साधनों की कीमत उनकी 'उत्पादकता' पर निर्भर करती है, इस बात को अधिक निश्चित रूप से इस प्रकार कहा जाता है—**साधनों की कीमत 'सीमान्त उत्पादकता' द्वारा निर्धारित होती** है। यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि किसी साधन के मूल्य निर्धारण में हम 'सीमान्त उत्पादकता' (Marginal Productivity) को ही क्यों महत्त्वपूर्ण मानते हैं और 'औसत उत्पादकता' (Average Productivity) को क्यों नहीं। इसका कारण है कि साधनों के प्रयोग की दृष्टि से सीमान्त उत्पादकता ही एक उत्पादक या फर्म के अधिकतम लाभ की स्थिति बनाती या निर्धारित करती है। **जिस प्रकार से एक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए सीमान्त आगम (*MR*) तथा सीमान्त लागत (MC) को बराबर करती है, उसी प्रकार से एक फर्म लाभ को अधिकतम करने के लिए साधन की सीमान्त उत्पादकता (MP अर्थात् Marginal Productivity) तथा 'साधन की सीमान्त लागत' (MFC अर्थात् Marginal Factor Cost) को बराबर करती है।**[2] [यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि उत्पादक जो कीमत एक साधन के लिए देता है वह उत्पादक की दृष्टि से साधन की लागत (factor cost) है, तथा यह साधन की दृष्टि से पुरस्कार या आय (remuneration or income) है। अतः 'साधन की सीमान्त लागत' (Marginal *Factor Cost*) तथा *'साधन की सीमान्त आय' (Marginal Remuneration of the Factor)* एक ही बात है।]

इस सिद्धान्त की आगे विवेचना करने से पहले यह उचित होगा कि हम 'सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' की मान्यताओं को जानें।

3 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Marginal Productivity Theory)

इस सिद्धान्त की विवेचना करते समय प्रायः निम्न बातें अनुमानित की जाती हैं

(i) यह मान लिया जाता है कि साधन के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है, साधन के क्रेता तथा विक्रेता बहुत अधिक संख्या में होते हैं ताकि उनमें से कोई भी क्रेता या विक्रेता बड़ा या महत्त्वपूर्ण नहीं होता।

(ii) यह भी मान लेते हैं कि साधन द्वारा उत्पादित वस्तु के बाजार में भी पूर्ण प्रतियोगिता होती है।

(iii) यह मान लिया जाता है कि साधन की प्रत्येक इकाई एकरूप है, समान रूप से कुशल होती है तथा साधन की विभिन्न इकाइयाँ एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती हैं।

(iv) यह मान लेते हैं कि एक साधन परिवर्तनशील रहता है जबकि अन्य साधन स्थिर

---

[2] Just as a producer maximises his profits when he equates marginal revenue (MR) and marginal cost (MC) he also maximises *profits if he equates the marginal productivity* (MP) of each factor with its marginal cost, that is, with marginal factor cost (MFC)

रहते। [दूसरे शब्दो मे, एक परिवर्तनशील साधन (a single variable factor) की कीमत को ज्ञात किया जाता है।]

(v) *यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक उत्पादक या फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य रखती है।*

(vi) यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार (full employment) की स्थिति को मान लेता है।

(vii) यह मान लिया जाता है कि 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' (Law of Variable *Proportion or Law of Diminishing Returns) क्रियाशील रहता है।*

४ *सीमान्त उत्पादकता के अभिप्राय* (Implications of Marginal Productivity)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त म 'सीमान्त उत्पादकता' मुख्य शब्द (key word) है, इसलिए इसके अर्थ तथा अभिप्रायो (meaning and implications) को पूर्णतया समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

सीमान्त उत्पादकता की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है *"अन्य साधनो को स्थिर* रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पाद (total product) मे जो वृद्धि होती है, उसे उस साधन की सीमान्त उत्पादकता (arginal Productivity) कहते हैं।"

सीमान्त उत्पादकता को निम्न तीन प्रकार से व्यक्त किया जाता है

(i) सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity, *i e MPP*)

(ii) *सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity, i e, MRP)*

(iii) 'द्रव्य मे सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य' (Value of Marginal Physical Productivity in Terms of Money), इसे सक्षेप म 'सीमान्त उत्पाद'[1] का मूल्य' (Value of Marginal Product, *i e*, VMP), कहते हैं, कुछ अर्थशास्त्री इसे 'सीमान्त मूल्य उत्पाद' *(Marginal Value Product, i e, MVP)* कहते हैं।

इन तीनो विचारो का विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार है

(i) सीमान्त-भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity *i e*, MPP) जब सीमान्त उत्पादकता को वस्तु की भौतिक मात्रा (physical quantity) मे व्यक्त किया जाता है तो उसे 'सीमान्त भौतिक उत्पादकता' (*MPP*) कहते हैं। किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल भौतिक उत्पादन (total physical product) मे वृद्धि को उस साधन की 'सीमान्त भौतिक उत्पादकता' कहते हैं, जबकि अन्य साधन स्थिर रखे जाते हैं। *उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात्* परिवर्तनशील अनुपातो के नियम (Law of Variable Proportions) के कारण प्रारम्भ मे परिवर्तनशील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता बढती है, एक बिन्दु पर अधिकतम हो जाती है और तत्पश्चात् गिरने लगती है। दूसरे शब्दो मे, सीमान्त भौतिक उत्पादकता रेखा (MPP Curve) उल्टे U-आकार (Inverted U-shape) की होती है जैसा कि चित्र न० १ मे दिखाया गया है।
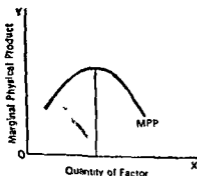
चित्र—१

[1] ध्यान रहे कि 'उत्पाद' *(product) तथा 'उत्पादकता' (productivity)* का प्राय एक ही अर्थ लिया जाता है, इसलिए इस अध्याय मे कही 'उत्पाद' (product) तथा कही 'उत्पादकता' (productivity) शब्द का प्रयोग मिलने से विद्यार्थियो को किसी प्रकार का भ्रम नही होना चाहिए, दोनो का एक ही अर्थ है।

(ii) सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity or MRP)—वास्तव मे, एक उत्पादक या फर्म के लिए सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) अधिक महत्त्वपूर्ण नही है, उसके लिए यह अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसे इस भौतिक उत्पादन (physical output) को बेचने से कितना द्रव्य या आगम (money or revenue) मिलता है। फर्म इस बात मे दिलचस्पी रखती है कि साधन की अतिरिक्त इकाइयो का प्रयोग करने से उसके कुल आगम मे कितनी वृद्धि होती है, दूसरे शब्दो मे, वह 'सीमान्त आगम उत्पादकता' मे दिलचस्पी रखती है। अन्य साधनो की मात्रा स्थिर रखने पर, परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल आगम मे जो वृद्धि होती है उसे उस साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) कहते हैं।[4]

सीमान्त आगम उत्पादकता को एक दूसरी प्रकार से भी व्यक्त कर सकते हैं। सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को सीमान्त आगम (MR) से गुणा करने पर सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) प्राप्त हो जाती है। सक्षेप मे,

$$MRP = MPP \times MR$$

(iii) सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (Value of Marginal Product, i.e., VMP) या सीमान्त मूल्य उत्पादकता (Marginal Value Product, i.e., MVP)—सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को वस्तु अर्थात् उत्पाद (product) की कीमत से गुणा करने से 'सीमान्त उत्पादकता का मूल्य' (VMP) प्राप्त होता है। सक्षेप मे,

$$VMP = MPP \times \text{Price (or AR)}$$

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता मे Price (AR) = MR

इसलिए $VMP = MPP \times MR$

$= MRP$

स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे VMP तथा MRP एक ही होते हैं।

MPP, MRP तथा VMP के विचारो को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है :

साधन की इकाइयाँ (Units of the Factor)	कुल भौतिक उत्पाद (Total Physical Product)	उत्पाद की कीमत (Price of the Product)	कुल आय (Total Revenue)	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP)	सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP=MPP×Price)
	१०० इकाइयां	५ रु०	१००×५ =५०० रु०	—	—	—
२१	१०४ इकाइयां	५ रु०	१०४×५ =५२० रु०	(१०४—१००) ४ इकाइयां	(५२० रु० —५०० रु०) =२० रु०	४ इकाइयां ×५ रु० =२० रु०

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता है, इसलिए वस्तु या उत्पाद (product) की अतिरिक्त इकाइयाँ (additional units) एक ही कीमत (अर्थात् ५ रु०) पर बिकेंगी, इस कारण पूर्ण प्रतियोगिता मे MRP=VMP, जैसा कि तालिका मे स्पष्ट है MRP तथा VMP दोनो २० रुपये के बराबर है।

यदि अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है तो फर्म वस्तु या उत्पाद की अतिरिक्त इकाइयो को एक ही कीमत पर नही बेच सकती, उसे कीमत घटानी पड़ेगी। माना कि अपूर्ण प्रतियोगिता की

[4] The increase in total revenue owing to the use of an additional unit of a variable factor is known as Marginal Revenue Product, when other factors are kept constant

स्थिति म फर्म अपनी वस्तु की १०० इकाइयां ५ रु० प्रति इकाई पर बच सकती है। माना कि १०४ इकाइयाँ बेचने के लिए उसे कीम्त ५ रु० से घटाकर ४ ६५ रु० करनी पडती है, ऐसी स्थिति (अथात् अपूर्ण प्रतियोगिता) म MRP तथा VMP एकसमान नहीं होंगे, यह बात निम्न तालिका से स्पष्ट होती है

साधन की इकाइयाँ (Units of the Factor)	कुल भौतिक उत्पाद (Total Physical Product)	उत्पाद की कीमत (Price of the Product)	कुल आगम (Total Revenue)	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP)	सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP=MPP×Price)
२०	१०० इकाइयाँ	५ रु०	१००×५ १५० रु०	—	—	—
२१	१०४ इकाइयाँ	४ ६५ रु०	(१०४×४·६५) =५१४ ८० रु०	(१०४—१००) ४ इकाइयाँ	(५१४ ८०रु० —५०० रु०) =१४ ८०रु०	(४× ४·६५ रु०) १६ ८० रु०

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि MRP=१४ ८० रु० और VMP=१६ ८० रु०, अत अपूर्ण प्रतियोगिता मे MRP कम होती है VMP से।

५ औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता के विचार (The Concepts of Average Gross Revenue Productivity, *i e*, AGRP and Average Net Revenue Productivity, *i e*, ANRP)

सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) के विचार के साथ हम 'औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता' (AGRP) तथा 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (ANRP) के विचारो को भी समझ लेना आवश्यक है।

$$\text{किसी साधन 'A' की औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता (AGRP)} = \frac{\text{कुल या पूर्ण आगम (Total or Gross Revenue)}}{\text{साधन की इकाइयाँ (Total Units of Factor)}}$$

परन्तु यहाँ पर यह बात ध्यान रखने की है कि किसी फर्म का उत्पादन केवल एक साधन का परिणाम नहीं होता बलिक फर्म का उत्पादन उस साधन को अन्य साधनो के साथ मिलाने से प्राप्त होता है। इस बात को ध्यान म रखने से यह स्पष्ट होगा कि किसी साधन 'A' (माना श्रम) की मात्रा बढाने से जो कुल या सम्पूर्ण आगम (Total or Gross Revenue) प्राप्त होता है उसम से कुछ आगम (some revenue) अन्य साधनो (जैसे भूमि, पूँजी, इत्यादि) के कारण होगा। अत इस 'कुल या सम्पूर्ण आगम' म से यदि हम अन्य साधनो के आगम के हिस्से को निकाल दें तो हमे केवल साधन 'A' के कारण प्राप्त 'कुल विशुद्ध आगम' (Total Net Revenue) प्राप्त हो जायेगा। इस 'कुल विशुद्ध आगम' म साधन 'A' की कुल इकाइयो से भाग देने पर उस साधन की 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (Average Net Revenue Productivity, *i e*, ANRP) प्राप्त हो जायेगी, सक्षेप मे,

साधन A' की औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP)

$$= \frac{\text{साधन 'A' के कारण कुल विशुद्ध आगम (Total Net Revenue Attributable to Factor A)}}{\text{साधन 'A' कुल की इकाइयाँ (Total Units of Factor A)}}$$

किसी साधन की विशुद्ध उत्पादकता (Net Productivity) का दो रीतियों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। प्रथम रीति के अन्तर्गत सरलता (elementary analysis) के लिए यह माना जा सकता है कि सहयोगी साधनों (co operating factors) की बहुत थोड़ी मात्रा प्रयोग की जा रही है, इस मान्यता के परिणामस्वरूप कुल या सम्पूर्ण आगम (gross revenue) मे इन सहयोगी साधनों का हिस्सा बहुत कम अर्थात् नगण्य (negligible) होगा। ऐसी स्थिति मे विचाराधीन परिवर्तनशील साधन के द्वारा ही कुल आगम मे वृद्धि होगी और इसलिए 'कुल या सम्पूर्ण उत्पादकता (gross product) तथा विशुद्ध उत्पादकता (net product) लगभग एक ही होगी। परन्तु यह रीति अवास्तविक (unrealistic) है। दूसरी रीति अधिक वास्तविक तथा सन्तोषजनक है। एक साधन की 'सम्पूर्ण उत्पादकता' (gross productivity) स से 'विशुद्ध उत्पादकता' (net productivity) ज्ञात की जा सकती है, यदि हम यह मान लें कि अन्य सहयोगी साधनों के पुरस्कार (rewards) पृथक् रूप से ज्ञात है। विचाराधीन साधन के प्रयोग के प्रत्येक स्तर पर हम फर्म के सम्पूर्ण आगम (gross revenue) मे से अन्य सहयोगी साधनों के पुरस्कारों (rewards) के बराबर द्रव्य की मात्रा घटाकर विचाराधीन साधन की 'कुल विशुद्ध आगम' (Tota Net Revenue) ज्ञात कर सकते है। इस जानकारी से हम सीमान्त तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (Marginal and Average Net Revenue Productivity) मालूम कर सकते हैं 'कुल विशुद्ध आगम' (Total Net Revenue) मे विचाराधीन साधन की इकाइयों का भाग देकर उससे 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (ANRP) को ज्ञात कर लिया जाता है।

सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) का आधार सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) होता है, इसलिए MRP रेखा का आकार भी उल्टे U आकार (Inverted U-shape) का होता है। MRP, AGRP तथा ANRP रेखाओं को चित्र न० २ मे दिखाया गया है।

MRP तथा ARP[5] मे सीमान्त तथा औसत का सामान्य सम्बन्ध (usual *relation*)[6] होता है, *MRP* रेखा AGRP तथा ANRP रेखाओं को उनके उच्चतम बिन्दुओं पर काटती है।

चित्र—२
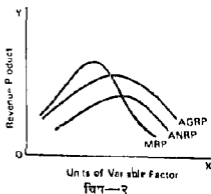
[यहाँ पर एक बात ध्यान मे रखने की है। चित्र न० २ मे 'सीमान्त विशुद्ध आगम

---

[5] किसी साधन के प्रयोग (employment or use) के स्तर पर ARP रेखा (अर्थात् AGRP या ANRP) यह बताती है कि साधन की प्रत्येक इकाई फर्म के लिए कितना औसत आगम (Average Revenue) को प्राप्त करती है।

[6] MRP तथा ARP मे सामान्य सम्बन्ध इस प्रकार होता है—(i) ARP (अर्थात् AGRP या ANRP) जब बढ़ती हुई होगी है तो MRP उससे अधिक होती है, (ii) ARP के उच्चतम बिन्दु पर ARP तथा MRP बराबर होंगे, तथा (iii) जब ARP गिरती हुई होगी तो MRP उससे कम होगी।

उत्पादकता' (Marginal Net Revenue Productivity, *i e*, MNRP) को नहीं दिखाया गया है। इसका कारण है कि हम यह मानकर चलते हैं कि केवल एक साधन ही परिवर्तनशील होता है तथा अन्य साधन स्थिर रख जाते हैं। एक ही परिवर्तनशील साधन (a single variable factor) की स्थिति में MRP तथा MNRP एक ही होती है।]

६ एक महत्त्वपूर्ण बात यह ध्यान में रखने की है कि एक साधन की MRP रेखा एक फर्म के लिए उस साधन की मांग रेखा होती है। यह स्पष्ट है क्योंकि किसी साधन की मांग उसकी सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) पर निर्भर करती है।

७ सीमान्त साधन-लागत या सीमान्त पुरस्कार (Marginal Factor Cost, *i e*, MFC or Marginal Remuneration) तथा औसत साधन-लागत या औसत पुरस्कार (Average Factor Cost *i e* AFC or Average Remuneration)

एक साधन को जो पुरस्कार (remuneration) प्राप्त होता है वह साधन के लिए आय है तथा फर्म के लिए लागत है। चूंकि साधन-बाजार (Factor market) में पूर्ण प्रतियोगिता है, इसलिए प्रत्येक फर्म साधन-बाजार में साधन की कुल मांग तथा कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित मूल्य पर साधन की जितनी इकाई चाहती है प्राप्त कर सकती है। दूसरे शब्दों में, फर्म के लिए साधन की औसत लागत (Average Factor Cost, *i e*, AFC) एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा फर्म के लिए साधन की औसत लागत (AFC)=साधन की सीमान्त लागत (MFC)। अत AFC तथा MFC दोनों को एक ही पड़ी रेखा द्वारा दिखाया जाता है जैसा कि चित्र न० ३ में दिखाया गया है। [ध्यान रहे कि AFC के लिए हम Average Remuneration तथा MFC के लिए Marginal Remuneration शब्दों का प्रयोग भी कर सकते हैं।]
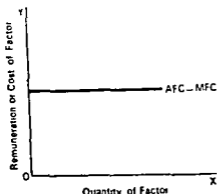
चित्र—३

८ साधन का मूल्य निर्धारण अथवा फर्म का साम्य (Factor Price Determination or Equilibrium of a Firm)

एक फर्म किसी साधन को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहां पर कि उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने से कुल आगम में वृद्धि अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) उस अतिरिक्त इकाई की लागत अर्थात् सीमान्त साधन लागत MFC (या सीमान्त पुरस्कार) के बराबर हो जाय। दूसरे शब्दों में, फर्म के साम्य के लिए निम्न दशा पूरी होनी आवश्यक है

MRP=MFC (or Marginal Remuneration of the Factor)[7]

यदि MRP>MFC, तो इसका अर्थ है कि साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से फर्म के लिए कुल आगम में वृद्धि अधिक होगी अपेक्षाकृत साधन की अतिरिक्त इकाई की लागत के। ऐसी स्थिति में फर्म साधन की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करके अपने लाभ को बढ़ा सकेगी। यदि MRP<MFC तो इसका अर्थ है कि साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से फर्म के लिए आगम में वृद्धि उस अतिरिक्त इकाई की लागत से कम है, इसलिए फर्म अतिरिक्त इकाइयों का उत्पादन नहीं करेगी क्योंकि उसे हानि होगी।

[7] वस्तु के मूल्य की दृष्टि से फर्म के साम्य के लिए MR=MC के होनी है। साधन के मूल्य की दृष्टि से MR के स्थान पर MRP तथा MC के स्थान पर MFC का प्रयोग करते हैं तथा फर्म के साम्य के लिए MRP=MFC की दशा होती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक फर्म किसी साधन की इकाई का प्रयोग उस सीमा तक करेगी जहां पर MRP=MFC के हो। दूसरे शब्दों में, 'सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' बताता है कि एक साधन की कीमत (Price or Remuneration) उसकी सीमान्त उत्पादकता अर्थात् 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (MRP) के बराबर निर्धारित होगी।

अल्पकाल मे फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग करने से लाभ या हानि हो सकती है। लाभ की स्थिति को चित्र न० ४ म दिखाया गया है। साधन की कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ पर MRP=MFC (or Marginal Remuneration)। चित्र न० ४ मे P बिन्दु पर MRP=MFC के है, इसलिए साधन की कीमत PQ होगी तथा साधन की OQ मात्रा प्रयोग मे लायी जायेगी। इस स्थिति म फर्म को लाभ होगा या हानि, इसके लिए ANRP तथा AFC की तुलना की जाती है, चित्र से स्पष्ट है कि फर्म को PLMN के बराबर लाभ प्राप्त होगा।

दीर्घकाल मे फर्मों को साधन की इकाइयो के प्रयोग से केवल सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त होगा अर्थात् AFC (or Average Remuneration) = ANRP के होगा। यदि AFC या Average Remuneration कम है ANRP से, तो फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग से लाभ प्राप्त होगा, इस लाभ से आकर्षित होकर उद्योग म नयी फर्में प्रवेश करेंगी, साधन की माँग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप साधन का Average Remuneration (अर्थात् AFC) बढ़कर ठीक ANRP के बराबर हो जायेगा। यदि Average Remuneration (अर्थात् AFC) अधिक है ANRP से, तो फर्म को साधनो की इकाइयो के प्रयोग से हानि होगी, इस हानि के कारण कुछ फर्में उद्योग का छोड देंगी, साधन की माँग घटेगी और परिणामस्वरूप Average Remuneration (अर्थात् AFC) घटकर ठीक ANRP के बराबर हो जायेगा। इस प्रकार दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों म, दीर्घकाल में फर्मों तथा उद्योग के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा (double condition) पूरी होनी चाहिए

चित्र—४

(i) MRP=MFC (or Marginal Remuneration)
(ii) ANRP=AFC (or Average Remuneration)
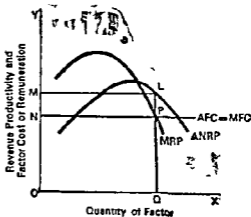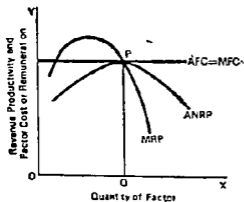
चित्र—५

चित्र न० ५ मे P बिन्दु पर उपर्युक्त दोनो शर्तें पूरी होती हैं, अतः साधन की कीमत=PQ के होगी तथा साधन की QQ मात्रा प्रयोग की जायेगी और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

६ 'सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' के अन्तर्गत प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (Principle of Substitution) महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (i) एक ही साधन की विभिन्न इकाइयो के बीच लागू होता है, तथा (ii) विभिन्न साधनों के बीच लागू होता है।

(i) पूर्ण प्रतियोगिता तथा पूर्ण गति-

शीलता की मान्यता के अन्तर्गत सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त बताता है कि सभी व्यवसायों (occupations) में एक साधन की विभिन्न इकाइयों की सीमान्त उत्पादकताएँ समान होती हैं। यदि ऐसा नहीं है तो साधन की इकाइयाँ कम सीमान्त उत्पादकता वाले व्यवसायों को छोड़कर अधिक सीमान्त उत्पादकता वाले व्यवसायों में चली जायेंगी, इस प्रकार हस्तान्तरण (transference) या प्रतिस्थापन तब तक जारी रहेगा जब तक कि प्रत्येक व्यवसाय में साधन की सीमान्त उत्पादकता बराबर न हो जाय।

(ii) विभिन्न साधनों के बीच एक फर्म सदैव ऊँची लागत वाले साधनों (high cost factors) के स्थान पर कम लागत वाले साधनों (low cost factors) का प्रतिस्थापन करती है ताकि वह न्यूनतम लागत संयोग (least cost combination) को प्राप्त कर सके। परन्तु इस प्रकार का प्रतिस्थापन उस सीमा तक होगा जहाँ पर एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत के अनुपात के बराबर हो जाता है। सुगमता से समझने के लिए इस बात को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है

$$\frac{\text{MP of Factor A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{MP of Factor B}}{\text{Price of B}} = \frac{\text{MP of Factor C}}{\text{Price of C}} = \ldots\ldots$$

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

(१) प्रत्येक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) के बराबर होती है।

(२) सभी व्यवसायों में एक साधन की विभिन्न इकाइयों की सीमान्त उत्पादकताएँ समान होती हैं।

(३) न्यूनतम लागत संयोग (least cost combination) प्राप्त करने के लिए फर्म विभिन्न साधनों के बीच प्रतिस्थापन तब तक करती है जब तक कि एक साधन की सीमान्त उत्पादकता और उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत के अनुपात के बराबर न हो जाय।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Marginal Productivity Theory)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की अनेक आलोचनाएँ की गयी हैं। इसकी आलोचना मुख्यतया इसकी मान्यताओं के प्रति है। मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं.

(१) किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात (isolate) करना अत्यन्त कठिन है। यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा

(i) किसी वस्तु का उत्पादन विभिन्न साधनों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है, अतः किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को पृथक् करके ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis) की सहायता से विचाराधीन साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है।

(ii) कुछ अर्थशास्त्रियों (जैसे हॉब्सन) के अनुसार, साधनों के मिलने का अनुपात टेकनीकल बातों के कारण स्थिर होता है और उसे बदला नहीं जा सकता, इसलिए सीमान्त विश्लेषण के द्वारा एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता है। परन्तु सभी दशाओं में साधनों के मिलने के अनुपात स्थिर नहीं होते तथा दीर्घकाल में प्रायः अनुपातों को बदला जा सकता है।

(iii) इस सिद्धान्त में यह मान लिया जाता है कि साधनों को छोटी मात्राओं (small quantities) में घटाया या बढ़ाया जा सकता है। परन्तु बड़े तथा अविभाज्य साधनों (big, lumpy or indivisible factors) के सम्बन्ध में ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में सीमान्त विश्लेषण और परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त असफल हो जाता है।

(२) यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है, अत इसे अवास्तविक तथा अव्यावहारिक कहा जा सकता है। परन्तु चैम्बरलिन (Chamberlin) ने अपूर्ण प्रतियोगिता की वास्तविक स्थिति में इसका प्रयोग किया है, अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन की कीमत 'सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) के बराबर होती है, न कि 'सीमान्त उत्पादकता के मूल्य' (VMP) के बराबर।

(३) प्रत्येक फर्म या साहसी द्वारा लाभ को अधिकतम करने की मान्यता पूर्णतया सही नहीं है, व्यवहार में एक फर्म अपनी वस्तु की उत्पादन-नीति निर्धारित करते समय लाभ के अतिरिक्त अन्य कई बातों से प्रभावित होती है।

(४) उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता (perfect mobility) की मान्यता गलत है, व्यावहारिक जीवन में साधनों की गतिशीलता में विभिन्न प्रकार की रुकावटें होती हैं, साधनों में गतिशीलता सीमित होती है परन्तु पूर्ण नहीं।

(५) सिद्धान्त की यह मान्यता गलत है कि एक साधन की सभी इकाइयाँ एकरूप (homogeneous) होती हैं। व्यवहार में साधनों की इकाइयाँ बिलकुल एकरूप नहीं होतीं, उनमें कम या अधिक अन्तर अवश्य होता है, वे एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं होतीं।

(६) पूर्ण रोजगार की मान्यता उचित नहीं है। पूर्ण रोजगार के कारण ही एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है, परन्तु व्यवहार में पूर्ण रोजगार की स्थिति एक सामान्य स्थिति (normal situation) नहीं होती है, प्रायः अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर से कम स्तर पर काम करती है और ऐसी स्थिति में कोई भी साधन (माना श्रम) इस बात की चिन्ता नहीं करेगा कि उसे पुरस्कार (remuneration) उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर मिलता है या नहीं।

(७) यह सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धांत के रूप में (as a general theory) अपर्याप्त है। मजदूरी का निर्धारण यद्यपि मुख्यतया श्रमिकों की उत्पादकता पर निर्भर करता है परन्तु वह श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति से भी प्रभावित होता है। ब्याज का निर्धारण आंशिक रूप से पूंजी की उत्पादकता पर तथा आंशिक रूप से तरलता पसन्दगी (liquidity preference) पर निर्भर करता है। इसी प्रकार लाभ का निर्धारण आंशिक रूप से साहसी की उत्पादकता पर तथा आंशिक रूप से समाज में प्रावैगिक परिवर्तनों (dynamic changes) पर निर्भर करता है। इसी प्रकार भूमि का लगान केवल भूमि की उत्पादकता पर ही नहीं बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि भूमि की कुल पूर्ति सीमित है। स्पष्ट है कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त सभी साधनों के मूल्य निर्धारण की उचित तथा पूर्ण व्याख्या नहीं कर पाता। अतः सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में अपर्याप्त है।

(८) यह सिद्धान्त धन के असमान वितरण का समर्थन करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार धनवान व्यक्तियों की आय इसलिए अधिक होती है क्योंकि वे अधिक उत्पादन करते हैं, जबकि निर्धन व्यक्तियों की आय इसलिए कम होती है क्योंकि वे कम उत्पादन करते हैं। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का सहारा लेकर धन के वर्तमान असमान वितरण का समर्थन किया जाता है। परन्तु इस प्रकार का तर्क गलत है और सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का कोई नैतिक औचित्य (moral justification) नहीं है।

(९) यदि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भुगतान किया जाय तो कुल उत्पादन (total product) समाप्त नहीं होगा, या तो कुछ बच रहेगा या कुछ कम पड़ेगा। ऐसा होने का कारण यह है कि कुल उत्पादन साधनों के सहयोग का परिणाम होता है, दूसरे शब्दों में, विभिन्न साधनों की सीमान्त उत्पादकताओं का योग कुल उत्पाद के बराबर नहीं होगा, इसे

'योग की समस्या (adding up Problem) कहा जाता है।[8] परन्तु यह आलोचना सही नहीं है क्योंकि गणित की सहायता से यूलर के प्रमेय' (Euler's Theorem) द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि विभिन्न साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भुगतान देने से कुल उत्पाद समाप्त (exhaust) हो जाता है।

(१०) फ्रीडमैन (*Friedman*), सेम्युलसन, इत्यादि अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह सिद्धान्त *अपूर्ण तथा एकपक्षीय है क्योंकि यह साधन की पूर्ति पर उचित ध्यान नहीं देता है।* यह सिद्धान्त साधन की पूर्ति को स्थिर मान लेता है और तब यह बताता है कि एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है। परन्तु साधन की कीमत निर्धारण में माँग तथा पूर्ति दोनों की दशाओं पर ध्यान देना चाहिए।[9]

वितरण का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF DISTRIBUTION)
अथवा
साधनों के मूल्य निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF FACTOR PRICING)

१ साधन-मूल्य निर्धारण वास्तव में वस्तु मूल्य निर्धारण का एक विस्तार मात्र ही है (Factor-pricing is only an Extension or Special Case of Commodity Pricing)

साधनों के मूल्य निर्धारण का 'सीमान्त उत्पादकता' का सिद्धान्त अपूर्ण है क्योंकि यह साधनों के केवल माँग पक्ष की ही व्याख्या करता है तथा पूर्ति पक्ष पर उचित ध्यान नहीं देता।

किसी साधन के मूल्य निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त माँग तथा पूर्ति का सिद्धान्त है। किसी साधन का मूल्य एक वस्तु के मूल्य की भाँति, उसकी माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। विभिन्न साधनों की माँग तथा पूर्ति की दशाओं में अन्तर होता है इसलिए प्रत्येक साधन के पुरस्कार (*अर्थात् मजदूरी लगान ब्याज तथा लाभ*) के सिद्धान्त के सम्बन्ध में भिन्नता होती है। परन्तु साधनों का मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।

यद्यपि साधन मूल्य निर्धारण (factor pricing) वस्तु-मूल्य निर्धारण (commodity pricing) की भाँति होता है, परन्तु दोनों में कुछ अन्तर भी हैं। मुख्य अन्तर इस प्रकार हैं—(i) वस्तु की माँग प्रत्यक्ष माँग (direct demand) होती है जबकि साधन की माँग '*व्युत्पन्न माँग*' (*derived demand*) *होती है अर्थात् साधन की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग* पर निर्भर करती है (ii) किसी वस्तु की पूर्ति उसकी द्राव्यिक लागत पर निर्भर करती है, परन्तु उत्पत्ति के साधनों की लागत का अर्थ है 'अवसर लागत' (opportunity cost), अर्थात् साधनों की पूर्ति 'अवसर लागत' पर निर्भर करती है। (iii) कुछ साधनों, जैसे श्रम, के सम्बन्ध में हम सामाजिक तथा मानवीय तत्वों को भी ध्यान में रखना पड़ता है।

उपर्युक्त अन्तरों के होते हुए भी इसमें सन्देह नहीं है कि साधन मूल्य निर्धारण (factor pricing) *वास्तव में वस्तु-मूल्य निर्धारण (commodity pricing) का ही एक विस्तार मात्र (extension)* है।

२ मान्यताएँ (Assumptions)

साधन की माँग पूर्ति तथा मूल्य निर्धारण का विवेचन करने से पहले 'साधन की माँग तथा पूर्ति सिद्धान्त' की मुख्य मान्यताओं को जान लेना ठीक होगा। मुख्य मान्यताएँ निम्न हैं

(i) पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मान ली जाती है।

---

[8] "The sum of the marginal productivities of the different factors of production will not be equal to total product This is the adding up problem' "

[9] " marginal productivity analysis does not provide a complete theory of the pricing of factors of production *It summarizes the forces underlying the demand factors of production*, but the prices of factors depend also on the conditions under which they are supplied "

(ii) उत्पत्ति ह्रास नियम या परिवर्तनशील अनुपातो का नियम (Law of Variable Proportions) क्रियाशील रहता है।
(iii) साधन की सभी इकाइयाँ एकरूप (homogeneous) होती हैं और इसलिए एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती हैं।
(iv) प्रत्येक साधन पूर्णतया विभाज्य (divissble) होता है।

साधन की मांग (Demand of a Factor)

किसी साधन की मांग उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पाद (total product) म जो वृद्धि होती है उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं। एक फर्म साधन विशेष को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहाँ पर कि 'साधन की उत्पादकता का मूल्य' (Value of the Marginal Productivity, *i. e.*, VMP) = 'साधन की सीमान्त लागत' (Marginal Factor Cost, *i e*, MFC) के हो। यदि VMP>MFC, तो फर्म को साधन की अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने म लाभ होगा क्योंकि अतिरिक्त इकाई की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (अर्थात् VMP) अधिक है साधन की उस अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात् MFC) से। अत जब तक VMP अधिक है MFC से, तब तक फर्म साधन की अतिरिक्त इकाइयो का प्रयोग करती जायगी और उस स्थान पर अतिरिक्त इकाइयो का प्रयोग बन्द कर देगी जहाँ पर VMP=MFC के हो जाती है। दूसरे शब्दो मे, एक फर्म किसी साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक पुरस्कार नहीं देगी। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता साधन की कीमत की उच्चतम सीमा है।

किसी साधन की मांग निम्न बातो से प्रभावित होती है

(i) साधन की मांग व्युत्पन्न मांग (derived demand) होती है, उसकी मांग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग पर निर्भर करती है, यदि वस्तु की मांग अधिक है तो साधन की मांग भी अधिक होगी।

(ii) यदि साधन की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि की जा सकती है तो उसकी मांग तथा कीमत बढ़ेगी। किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता को निम्न तीन प्रकार से बढ़ाया जा सकता है

(अ) साधन के गुण (quality) में वृद्धि करके उसकी सीमान्त उत्पादकता को बढाया जा सकता है, उदाहरणार्थ, श्रमिको को शिक्षा तथा प्रशिक्षण देकर उनकी सीमान्त उत्पादकता को बढाया जा सकता है।

(ब) किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता अन्य सहयोगी साधनो (co-operating factors) की मात्रा पर निर्भर करेगी, उदाहरणार्थ, श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता को बढाया जा सकता है यदि उनको अच्छे तथा नवीनतम यन्त्र और मशीनें दी जायें।

(स) तकनीकी प्रगति (technological progress) के परिणामस्वरूप साधनो की सीमान्त उत्पादकताएँ स्वाभाविक रूप से बढ जायेंगी।

(iii) अन्य साधनो की कीमत साधन विशेष की मांग को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, श्रमिको की मांग बढ़ जायेगी यदि मशीनो की कीमतें बहुत ऊंची हो जाती हैं क्योंकि ऐसी स्थिति मे महँगी मशीनो के स्थान पर श्रमिको का अधिक प्रयोग किया जायगा।

३ साधन की पूर्ति (Supply of the Factor)

किसी वस्तु की पूर्ति उसकी उत्पादन लागत पर निर्भर करती है। इसी प्रकार से किसी साधन की पूर्ति उसकी लागत पर निर्भर करती है, परन्तु साधन की लागत का अर्थ 'अवसर लागत' (opportunity cost) या 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) से होता है। 'अवसर लागत' द्रव्य की वह मात्रा है जो किसी साधन को दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग (next best paid

alternative) मे मिल सकता है। एक साधन को वर्तमान व्यवसाय में इतना अवश्य मिल जाना चाहिए जितना कि उसे दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग मे मिल सकता है अन्यथा वह वर्तमान व्यवसाय म काय नहीं करेगा और उसरे वैकल्पिक प्रयोग मे हस्तान्तरित (transfer) हो जायेगा। अत वर्तमान प्रयोग म एक साधन की लागत या पूर्ति मूल्य (supply price) उसकी अवसर लागत पर निर्भर करता है।

एक साधन की पूर्ति कई बातों से प्रभावित होती है। उदाहरणार्थ, श्रमिकों की पूर्ति केवल इसी बात पर निर्भर नहीं करती कि उनको अधिक पुरस्कार या पूर्ति मूल्य दिया जाय, बल्कि एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने म लागत, शिक्षा तथा प्रशिक्षण की लागत, कार्य तथा आराम (leisure) क बीच पसन्द (preference) की मात्रा, इत्यादि बातें श्रमिकों की पूर्ति को प्रभावित करती हैं।

४. साधन का मूल्य या पुरस्कार निर्धारण (Determination of Price or Remuneration of the Factor)

साधन का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर कि माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाती है। चित्र न० ६ म साधन का मूल्य EQ या P निर्धारित होगा क्योंकि इस मूल्य पर साधन की माँग तथा उसकी पूर्ति दोनों बराबर हैं। यदि साधन का मूल्य P_1 है तो साधन की माँग$=P_1K$ तथा उसकी पूर्ति$=P_1L$, अर्थात् साधन की $P_1L-P_1K=KL$ के बराबर अतिरिक्त पूर्ति (excess supply) है जो कि मूल्य को 'E' की ओर नीचे को ढकेलेगी जैसा कि चित्र म नीचे की ओर जाते हुए तीर बताते हैं। यदि साधन का मूल्य P_2 है तो साधन की माँग$=P_2T$ तथा उसकी पूर्ति$=P_2R$, अत साधन की $P_2T-P_2R=RT$ के बराबर अतिरिक्त माँग (excess demand) है जो कि साधन के मूल्य को 'E' की ओर ऊपर को ढकेलेगी जैसा कि चित्र मे ऊपर को जाते हुए तीर बताते हैं। स्पष्ट है कि साधन का साम्य मूल्य P या EQ ही होगा जहाँ पर कि उसकी माँग तथा पूर्ति दोनों बराबर हो जाती हैं।
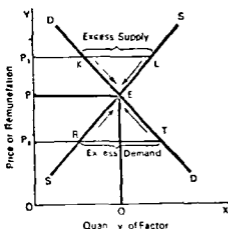
चित्र—६

प्रश्न

१ वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Critically examine the marginal productivity theory of distribution
(Kumaun, B A I, 1975, Vikram, B Com, 1976, Agra, 1972)

२. 'साधन-मूल्य निर्धारण वास्तव मे वस्तु-मूल्य निर्धारण की एक विशेष स्थिति है।' विवेचना कीजिए।
Factor pricing is only a special case of commodity pricing' Discuss
(Agra, B A II Suppl., 1976)

अथवा

उत्पादन के किसी साधन का मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है? समझाइए।
How is the price of a factor of production determined? Explain
(Kanpur, B A II, 1976)

वितरण के सिद्धान्त माप है।
नहिन

अथवा

"वितरण का सिद्धान्त मुख्यतया एक मूल्य का सिद्धान्त है।" विवेचना कीजिए तथा परीक्षा कीजिए कि कहाँ तक मूल्य का सिद्धान्त वितरण के सिद्धान्त म प्रयोग किया जा सकता है।
"The theory of distribution is essentially a theory of value." Discuss and examine how far the demand and supply analysis of the theory of value is applicable to the theory of distribution *(Magadh, 1962 A)*

अथवा

क्या साधन-कीमतें वस्तुओं की कीमतों से भिन्न रूप म निर्धारित होती हैं ? यदि ऐसा नहीं है, तो मूल्य-सिद्धान्त के अतिरिक्त वितरण के एक पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता क्यों है ?
Are factor prices determined differently from prices of commodities ? If not, why is it necessary to have a theory of distribution distinct from the theory of value ? *(Patna, 1967 A)*

अथवा

उत्पादन के उपादानों (factors of production) की कीमत पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किस प्रकार निर्धारित होती है ? समझाइए। साधनों (factors) के मूल्य निर्धारण तथा वस्तु के मूल्य निर्धारण में क्या अन्तर है ?
Explain how factor prices are determined under perfect competition What is the difference between factor pricing and product pricing ? *(Sagar, 1963)*

लगान
[RENT]

लगान की परिभाषा (Definition of Rent)

लगान भूमि के लिए भुगतान है। रिकार्डो के अनुसार, लगान भूमि की 'मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों' (*original and indestructible powers of the soil*) के प्रयोग के लिए भुगतान है। मार्शल के अनुसार समस्त समाज की दृष्टि से 'प्रकृति के निःशुल्क उपहारों से प्राप्त आय' (income derived from the free gifts of nature) को लगान कहते हैं। इस प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (classical economists) ने लगान का सम्बन्ध भूमि के साथ स्थापित किया।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि की 'सीमितता का गुण' अर्थात् 'भूमि तत्त्व' (land element) को प्रत्येक साधन प्राप्त कर सकता है और इसीलिए प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान एक साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिए न्यूनतम पूर्ति मूल्य (minimum supply price) अर्थात् अवसर लागत (opportunity cost) के ऊपर एक बचत (surplus) है। लगान की एक ऐसी परिभाषा श्रीमती जॉन रोबिन्सन ने इन शब्दों में दी है—'लगान के विचार का सार (essence) वह बचत है जो कि एक साधन की इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो कि साधन को अपने कार्य को करते रहने के लिए आवश्यक है।'[1]

कुल लगान (Gross Rent)

साधारण बोलचाल की भाषा में जब लगान शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उसका अभिप्राय अर्थशास्त्र के 'कुल लगान' (Gross Rent) से होता है। एक कृषक या किरायेदार जो लगान भूमिपति या मकान मालिक को देता है वह 'कुल लगान' होता है।

कुल लगान में निम्नलिखित तत्त्व शामिल होते हैं (i) केवल भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान अर्थात् 'आर्थिक लगान', (*ii*) उस धनराशि का ब्याज जो कि भूमि की उन्नति पर, अर्थात् भूमि के निकट कुएँ खुदवाने, झोपड़ी बनवाने खेत के चारों तरफ पक्की नालियाँ बनवाने, इत्यादि पर व्यय की गयी है (iii) भूमिपति की जोखिम (जो कि भूमि सुधार तथा उन्नति से सम्बन्धित होती है) का पुरस्कार, तथा (*iv*) भूमिपति की देखरेख (अर्थात् प्रबन्ध) का पुरस्कार।

आर्थिक लगान (Economic Rent)

आर्थिक लगान कुल लगान का एक अंश है। केवल भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को आर्थिक लगान कहते हैं। आर्थिक लगान में अन्य तत्त्व शामिल नहीं होते। रिकार्डो के अनुसार,

---

[1] "The essence of the conception of *rent* is the conception of a surplus earned by a particular part of a factor of production over and above the *minimum earnings necessary* to induce it to do its work."

—Mr John Robinson, *Economics of Imperfect Competition* p. 102

श्रेष्ठ भूमि की लागतों तथा सीमान्त भूमि की लागत का अन्तर ही आर्थिक लगान की माप है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार केवल भूमि ही नहीं बल्कि अन्य सभी साधन आर्थिक लगान प्राप्त कर सकते हैं। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आर्थिक लगान एक साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत है।

ठेके का लगान (Contract Rent)

ठेके का लगान वह लगान है जो भूमिपति और काश्तकार में पारस्परिक इकरार या ठेके द्वारा निर्धारित होता है। ऐसी स्थिति में ठेके का लगान आर्थिक लगान से अधिक, कम या उसके बराबर हो सकता है यह बात दोनों पक्षों की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करेगी। जब भूमि की पूर्ति कम तथा माँग बहुत अधिक होती है और काश्तकारों में भूमि के लिए बहुत अधिक प्रतियोगिता होती है तो भूमिपति काश्तकारों से बहुत लगान लेते हैं जिसे 'अत्यधिक लगान' (rack-renting) कहते हैं।

ठेके के लगान का निर्धारण भूमि की माँग तथा पूर्ति द्वारा होता है। यदि भूमि की माँग अधिक है अर्थात् काश्तकारों में भूमि के लिए अधिक प्रतियोगिता है और पूर्ति कम है तो ठेके का लगान ऊँचा होगा तथा वह आर्थिक लगान से अधिक होगा। इसके विपरीत यदि भूमि की पूर्ति अधिक है अर्थात् भूमिपतियों में भूमि को काश्तकारों को उठाने के लिए आपस में अधिक प्रतियोगिता है तथा भूमि की माँग कम है तो लगान नीचा निर्धारित होगा और आर्थिक लगान से कम होगा।

आर्थिक लगान तथा ठेके के लगान में अन्तर

दोनों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित है

(१) आर्थिक लगान का निर्धारण 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' (intra marginal lands) की लागत तथा सीमान्त भूमियों की लागत के अन्तर पर निर्भर करता है।

ठेके के लगान का निर्धारण भूमि की माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है।

(२) सीमान्त भूमि की लागत बढ़ जाने से अर्थात् जोत की सीमा' (margin of cultivation) के आगे को खिसक जाने से आर्थिक लगान बढ़ जायगा। इसके विपरीत सीमान्त भूमि की लागत घट जाने से अर्थात् जोत की सीमा के पीछे को खिसक जाने से आर्थिक लगान घट जायगा।

इसके विपरीत, ठेके का लगान भूमिपति तथा काश्तकार के बीच इकरार (contract) द्वारा तय होता है, इसलिए उसमें घट बढ़ नहीं होती जब तक कि दूसरा इकरार न किया जाय।

परन्तु ठेके का लगान आर्थिक लगान से कम या अधिक हो सकता है। प्रायः ठेके का लगान आर्थिक लगान से अधिक होता है और ऐसी स्थिति में कृषक का शोषण होता है।

(३) आर्थिक लगान श्रेष्ठ भूमियों तथा सीमान्त भूमियों की उपज पर निर्भर करता है, इसलिए यह पहले से निश्चय नहीं किया जा सकता है।

इसके विपरीत, ठेके का लगान इकरार द्वारा निश्चित होता है, इसलिए यह पूर्व-निश्चित किया जा सकता है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त
(RICARDIAN THEORY OF RENT)

१ प्राक्कथन (Introduction)

रिकार्डो (David Ricardo) से पहले फ्रांस में फिजियोक्रेट्स (Physiocrats) के नाम से जाने वाले अर्थशास्त्रियों ने लगान के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये, परन्तु डेविड रिकार्डो (१७७२-१८२३) प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने लगान सिद्धान्त का एक यथाक्रम तथा विस्तृत अध्ययन किया। रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित लगान के सिद्धान्त को 'लगान का प्रतिष्ठित सिद्धान्त' (Classical Theory of Rent) भी कहा जाता है।

रिकार्डो के अनुसार, केवल भूमि ही लगान प्राप्त कर सकती है, अन्य साधन नहीं। रिकार्डो ने लगान का सम्बन्ध भूमि के साथ स्थापित किया क्योंकि वे समझते थे कि भूमि में कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं जो अन्य साधनों में नहीं होतीं, और ये विशेषताएँ हैं—(i) भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार (free gift) है भूमि को अस्तित्व (existence) में लाने के लिए समाज को कोई लागत नहीं उठानी पड़ती, तथा (ii) भूमि सीमित होती है, समाज की दृष्टि से उसकी कुल मात्रा को घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता, अतः भूमि की एक मुख्य विशेषता है 'सीमितता' (limitedness) या 'स्थिरता' (fixity)।

२ लगान सिद्धान्त के सम्बन्ध में रिकार्डो का कथन (Ricardo's Statement about the Theory of Rent)

रिकार्डो ने अपने लगान-सिद्धान्त के सम्बन्ध में दो मुख्य बातें कहीं .

(i) रिकार्डो ने बताया कि ऊँचे लगान प्रकृति की उदारता (bounty) के कारण नहीं होते बल्कि उसकी कंजूसी या सीमितता (nigardliness) के कारण होते हैं।[1]

(ii) रिकार्डो ने लगान सिद्धान्त की दूसरी बात रिकार्डो द्वारा की गयी लगान की परिभाषा है, जो इस प्रकार है—"लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के स्वामी को भूमि की मूल तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।"[2]

रिकार्डो के अनुसार, भूमि के प्रत्येक टुकड़े को प्रकृति द्वारा कुछ उर्वरा शक्ति (fertility) प्राप्त होती है जो कि 'मूल तथा अविनाशी' होती है। परन्तु भूमि कुछ उर्वरा शक्ति अर्जित (acquire) भी कर सकती है। इस प्रकार एक भूमि के टुकड़े की उर्वरा शक्ति आंशिक रूप से अर्जित की हुई (acquired) तथा आंशिक रूप से 'मूल तथा अविनाशी' होती है। रिकार्डो की परिभाषा के अनुसार एक भूमि के टुकड़े से प्राप्त कुल उपज में जो भाग केवल 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है तथा भूमि के स्वामी को दिया जाता है, वह लगान होगा।

परन्तु यहाँ पर एक कठिनाई आती है कि यह कैसे निर्धारित किया जाय कि एक भूमि के टुकड़े से प्राप्त कुल उपज में से कितना भाग उसकी 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' के कारण है और कितना भाग 'अर्जित शक्ति' के कारण। इसके अतिरिक्त, यह कहना भी उचित नहीं है कि भूमि की 'मूल शक्ति' नष्ट नहीं होती है। वास्तव में, 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' का विचार अस्पष्ट (nebulous) है।

३ लगान एक भेदात्मक बचत है (Rent is a Differential Surplus)

रिकार्डो के अनुसार, लगान सापेक्षिक लाभ या भेदात्मक बचत (differential gain or surplus) है। सभी भूमियाँ एकसमान नहीं होती हैं, उनमें उर्वरता या स्थिति (fertility or situation) या दोनों की दृष्टि से अन्तर या भेद होता है। इस अन्तर या भेद के कारण श्रेष्ठ

---

[1] High rents are not a sign of the bounty of nature On the contrary, they are an indication of the negardliness of nature "

रिकार्डो का यह कथन फिजियोक्रेट्स (Physiocrats) के लगान सम्बन्धी विचार पर आक्रमण के रूप में था। भूमि की मात्रा सीमित होती है तथा उपजाऊ भूमि और भी सीमित होती है। अधिक उपजाऊ खेतों की मात्रा के सीमित होने के कारण मनुष्य को कम उपजाऊ खेतों पर खेती करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसके फलस्वरूप अधिक उपजाऊ खेतों पर एक प्रकार का आधिक्य प्राप्त होता है जिसे उन खेतों का लगान कह सकते हैं। इस प्रकार लगान प्रकृति की कृपणता तथा सीमितता के कारण उत्पन्न होता है, न कि उसकी उदारता के, कारण जैसा कि फिजियोक्रेट्स समझते थे।

फिजियोक्रेट्स के अनुसार लगान एक प्रकार का आधिक्य (surplus) है जो मनुष्य को प्रकृति की उदारता के कारण प्राप्त होता है। रिकार्डो भी लगान को एक प्रकार का आधिक्य मानते थे, परन्तु उनके अनुसार लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि प्रकृति की कृपणता या सीमितता के कारण प्राप्त होता है।

[2] 'Rent is that portion of the produce of earth which is paid to the landlord for the use of the original and indestructible powers of the soil

भूमियों को निम्न कोटि की भूमियों की तुलना में लाभ या बचत प्राप्त होती है, इसलिए इसे 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) कहा जाता है।

'भेदात्मक बचत' या 'लगान का अध्ययन' तीन भागों में किया जाता है :

(अ) विस्तृत खेती में अन्तर्गत 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' (Rent under extensive cultivation or Rent with extensive margin);

(ब) गहरी खेती के अन्तर्गत 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' (Rent under intensive cultivation or Rent with intensive margin),

(स) 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' भूमि की स्थितियों में अन्तर के कारण (Rent owing to the difference in situations of the plots of land)।

(अ) विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान—रिकार्डो ने एक नये देश का उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रारम्भ में देश में जनसंख्या कम होती है, उसकी खाद्यान्न की सम्पूर्ण आवश्यकता केवल सर्वश्रेष्ठ अर्थात् प्रथम श्रेणी की भूमियों पर खेती करने से पूरी हो जाती है। इस स्थिति में लगान उत्पन्न नहीं होता क्योंकि जनसंख्या की कमी तथा अधिक भूमि होने के कारण प्रथम श्रेणी की भूमि सुगमता से प्राप्त हो जाती है ताकि उसके प्रयोग के लिए कुछ देना नहीं पड़ता। जनसंख्या में वृद्धि और परिणामस्वरूप खाद्यान्नों की बढ़ती हुई माँग में वृद्धि के कारण निम्न कोटि की भूमियाँ, जैसे—द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी की भूमियाँ, प्रयोग में लायी जायेंगी। यहाँ मान लिया जाता है कि (i) सब भूमि के टुकड़ों का क्षेत्रफल समान है, (ii) भूमि के प्रत्येक टुकड़े पर श्रम तथा पूँजी की समान मात्राएँ लगायी जाती है। ऐसी स्थिति में, श्रेष्ठ भूमियों पर अधिक उपज प्राप्त होगी अपेक्षाकृत निम्न कोटि की भूमियों के, दूसरे शब्दों में श्रेष्ठ भूमियों की औसत लागत कम होगी अपेक्षाकृत निम्न कोटि की भूमियों के।

किसी समय विशेष पर जोती जाने वाली भूमियों में से सबसे निम्न कोटि की भूमि (inferior most land) को सीमान्त भूमि (marginal land) कहते हैं, तथा इससे श्रेष्ठ भूमियों को 'पूर्व-सीमान्त भूमियाँ' (intra marginal lands) कहते हैं। बाजार में वस्तु की कीमत सीमान्त भूमि की औसत लागत (जो कि सबसे अधिक लागत है) के बराबर होगी, यदि ऐसा नहीं होगा तो सीमान्त भूमि जोत से निकल जायेगी। पूर्व सीमान्त भूमियों के काश्तकारों (cultivators) के लिए औसत लागत कम होगी अपेक्षाकृत सीमान्त भूमि की औसत लागत से, परन्तु सभी काश्तकार बाजार में समान कीमत पर ही वस्तु को बेचेंगे। स्पष्ट है कि 'पूर्व सीमान्त भूमियों' को 'अतिरेक' या 'बचत' (surplus) प्राप्त होगी क्योंकि कीमत की अपेक्षा उनकी औसत लागत कम है। इस बचत को ही रिकार्डो ने लगान कहा। फैलनर (W Fellner) के शब्दों में, "पूर्व-सीमान्त भूमियों की लागत तथा कीमत में अन्तर रिकार्डो का लगान है।"[1] दूसरे शब्दों में, प्रत्येक पूर्व-सीमान्त भूमि द्वारा उत्पादित वस्तु को बेचने से प्राप्त कुल आगम (total revenue or receipts) में से उसकी कुल लागत को घटाने से उस पूर्व-सीमान्त भूमि पर लगान प्राप्त हो जायेगा। यहाँ पर लगान द्रव्य के शब्दों में (in terms of money) व्यक्त किया गया है।

लगान को उत्पत्ति के शब्दों में (in terms of produce) भी व्यक्त किया जाता है। श्रेष्ठ भूमियों की उत्पत्ति तथा सीमान्त भूमियों की उत्पत्ति का अन्तर लगान है। इससे स्पष्ट है कि रिकार्डो का लगान 'उत्पादक की बचत' (producer's surplus) है।

ध्यान रहे कि कीमत सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होती है, इसलिए सीमान्त भूमि को कोई बचत' अर्थात् 'लगान' प्राप्त नहीं होता है। अत: सीमान्त भूमि को 'लगान-रहित भूमि' (No rent land) भी कहा जाता है।

विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान का एक उदाहरण तथा चित्र द्वारा स्पष्टीकरण अग्र प्रकार है

---

[1] "The difference between price and cost of production of intra-marginal lands is the Ricardian rent."

भूमियो के ग्रेड	'A' की ग्रेड भूमि	'B' ग्रेड की भूमि	'C' ग्रेड की भूमि	'D' ग्रेड की भूमि अर्थात् सीमान्त भूमि
कुल उत्पादन (गेहूँ का)	४० क्विटल	३० क्विटल	२० क्विटल	१० क्विटल
लगान (उत्पत्ति के शब्दो म)	(४०—१०) =३० क्विटल	(३०—१०) =२० क्विटल	(२०—१०) =१० क्विटल	लगान रहित भूमि (No rent land)
कुल लागत (श्रम तथा पूंजी लगान की)	२०० रु०	२०० रु०	२०० रु०	२०० रु०
बाजार मूल्य (मूल्य सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होगा)	२० रु०	२० रु०	२० रु०	$\frac{२००}{१०}$=२० रु०
लगान (द्रव्य के शब्दो म)	(४०×२०) रु० —२०० रु० =६०० रु०	(३०×२०) रु० —२०० रु० =४०० रु०	(२०×२०) रु० —२०० रु० =२०० रु०	(१०×२०) रु० —२०० रु० =शून्य रु० लगान-रहित भूमि (No-rent land)

उदाहरण की उपर्युक्त तालिका को दो भागो मे बाँटा गया है। प्रथम भाग मे लगान को 'उत्पत्ति के शब्दो म' (rent in terms of produce) दिखाया गया है तथा दूसरे भाग मे लगान को 'द्रव्य के शब्दों म (rent in terms of money) दिखाया गया है।

उपर्युक्त उदाहरण के प्रथम भाग को अर्थात् उत्पत्ति के शब्दो म लगान' को चित्र न० १ मे दिखाया गया है। श्रेष्ठ भूमियो 'A', 'B' तथा 'C' को सीमान्त भूमि 'D' की तुलना मे 'भेदात्मक बचत' अर्थात् 'लगान' प्राप्त होता है जो कि चित्र मे रेखांकित भाग द्वारा दिखाया गया है।

चित्र—१

(ब) गहरी खेती के अन्तर्गत लगान—निम्न कोटि की भूमियो को जोतने अर्थात् भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाकर विस्तृत खेती करने के अतिरिक्त वर्तमान भूमि के टुकडो पर गहरी खेती करके भी खाद्यान्न की पूर्ति को बढा सकते हैं। किसी एक भूमि के टुकडो पर श्रम तथा पूंजी की अधिक 'मात्राओ' (doses) के लगाने से, उत्पत्ति ह्रास नियम के परिणामस्वरूप, घटनी हुई उपज प्राप्त होगी अर्थात् इन मात्राओ (doses) की सीमान्त उत्पादकता घटती जायेगी। यहाँ पर 'सीमान्त भूमि' (marginal land) के स्थान पर 'सीमान्त मात्रा' (marginal-dose) का प्रयोग किया जाता है। 'सीमान्त मात्रा' की लागत ठीक उसकी उत्पादकता के बराबर होगी और इस प्रकार इस सीमान्त मात्रा पर कोई 'बचत' या 'लगान' प्राप्त नही होगा। परन्तु इस सीमान्त मात्रा से पूर्व की मात्राओ की उत्पादकता अधिक होगी अपेक्षाकृत उनकी लागत के (ध्यान रहे कि यह मान लिया जाता है कि सीमान्त मात्रा तथा अन्य सभी मात्राओ की भी लागत समान होती है)। इस प्रकार 'पूर्व-सीमान्त मात्राओं' (intra-marginal doses) को बचत या लगान प्राप्त होगा। स्पष्ट है कि गहरी खेती मे भी 'सीमान्त मात्रा'

की तुलना मे पूर्व सीमान्त मात्राओ को लगान प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ पर भी लगान एक प्रकार की 'भेदात्मक बचत' (differential gain or surplus) है।

गहरी खेती के अन्तर्गत लगान को एक उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना कि श्रम तथा पूँजी की 'मात्रा' (dose) की लागत ४० रु० है। माना कि एक भूमि के टुकडे पर इस प्रकार की ४ मात्राएँ लगायी जाती हैं। उत्पत्ति ह्रास नियम के कारण इन मात्राओ से घटती हुई उत्पादकता प्राप्त होगी जैसा कि निम्न उदाहरण म दिखाया गया है

मात्राए (Doses)	प्रथम मात्रा	द्वितीय मात्रा	तृतीय मात्रा	चतुर्थ मात्रा
उत्पादन	१० किलो गेहूँ	८ किलो गेहूँ	६ किलो गेहूँ	२ किलो गेहूँ
लगान (उत्पत्ति के शब्दो मे) Rent (in terms of produce)	(१०—२) =८ किलो गेहूँ	(८—२) =६ किलो गेहूँ	(६—२) =४ किलो गेहूँ	लगान-रहित मात्रा (No-rent dose)
श्रम तथा पूँजी की एक 'मात्रा' की लागत	४० रु०	४० रु०	४० रु०	४० रु०
कीमत (सीमान्त मात्रा की) औसत लागत के बराबर होगी	२० रु०	२० रु०	२० रु०	$\frac{४०}{२}$=२० रु०
लगान (द्रव्य के शब्दो मे) Rent (in terms of money)	(१०×२०)रु० —४० रु० =१६० रु०	(८×२०) रु० —४० रु० =१२० रु०	(६×२०)रु० —४० रु० =८० रु०	(२×२०)रु० —४० रु० =शून्य रु० (No rent dose)

उपर्युक्त तालिका के दो भाग है। प्रथम भाग मे लगान को 'उत्पत्ति के शब्दो मे' (in terms of produce) तथा दूसरे भाग म लगान को 'द्रव्य के शब्दो मे' (in terms of money) दिखाया गया है। इसे चित्र न० २ द्वारा व्यक्त किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि चौथी मात्रा अर्थात् सीमान्त मात्रा से पूर्व की मात्राओ पर लगान प्राप्त होता है जिसे रेखांकित भाग से दिखाया गया है।
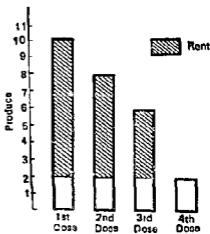
चित्र—२

(ख) स्थिति तथा लगान (Situation and Rent)—कुछ भूमिया मण्डी के निकट होगी। जो भूमिया मण्डी से दूर होगी उनकी उपज को मण्डी तक लाने मे अपेक्षाकृत अधिक यातायात लागत पड़ेगी। यदि यह मान लिया जाय कि सभी भूमियाँ एकसमान उपजाऊ हैं तो भी स्थिति की दृष्टि से मण्डी के निकट की भूमियाँ श्रेष्ठ होंगी अपेक्षाकृत मण्डी से दूर भूमियो के। किसी समय विशेष मे जोती जाने वाली भूमियो में जो भूमि मण्डी से सबसे अधिक दूरी पर है वह 'सीमान्त भूमि' (marginal land) कही जायेगी और अन्य भूमियाँ 'पूर्व-सीमान्त भूमियाँ (intra marginal lands) कही जायेंगी। मण्डी के निकट की भूमियो अर्थात् पूर्व सीमान्त भूमियो की यातायात लागत कम होगी अपेक्षाकृत सीमान्त भूमि के, स्पष्ट है कि पूर्व सीमान्त भूमियो को सीमान्त भूमि की तुलना मे 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) प्राप्त होगी अर्थात् वे लगान प्राप्त करेंगी।

४ लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता (Rent does not determine price)

कृषि की वस्तु की कीमत सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होती है तथा लगान इस लागत के ऊपर बचत (surplus) है, इसलिए लगान लागत में प्रवेश नहीं करता तथा मूल्य को प्रभावित नही करता, बल्कि वह स्वयं मूल्य द्वारा प्रभावित होता है।

५. लगान एक अनर्जित आय' (Unearned Income) है

एक भूमिपति को लगान केवल भूमि के स्वामित्व के कारण प्राप्त होता है, लगान उसके प्रयत्नों का परिणाम नहीं होता, लगान कीमत के लागत से अधिक होने के कारण प्राप्त होता है। इस प्रकार लगान भूमिपति के प्रयत्नों का फल नहीं होता और यह एक प्रकार की अर्जित आय होती है।

रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Recardian Theory of Rent)

रिकार्डो के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं

(१) रिकार्डो का यह कथन उचित नहीं है कि भूमि की शक्ति (अर्थात् उर्वरा शक्ति) मौलिक तथा अविनाशी होती है। प्रकृति भूमि को कुछ उर्वरा शक्ति प्रदान करती है, परन्तु श्रम तथा पूँजी के प्रयोग द्वारा भूमि एक बड़ी मात्रा म उर्वरा शक्ति अर्जित (acquire) भी करती है। प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे निश्चित किया जाय कि भूमि की उपज म से कितना भाग भूमि की मौलिक शक्ति के कारण है और कितना भाग उसकी अर्जित शक्ति के कारण। अतः भूमि की मौलिक शक्ति का विचार अनुचित तथा अस्पष्ट (nebulous) है।

दूसरे, आज के अणु शक्ति (atomic energy and nuclear physics) के युग मे भूमि की उर्वरा शक्ति को अविनाशी कहना गलत है। इसके अतिरिक्त लगातार खेती करने से, जलवायु म परिवर्तन तथा कृषि के तरीकों मे परिवर्तनों के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति में परिवर्तन होता रहता है। कृषि योग्य भूमियाँ धूल के गोलो (dust bowls) म तथा रेगिस्तान हरी भूमियो (green lands) मे परिवर्तित हो जाते हैं।

[रिकार्डो के समर्थकों का कहना है कि भूमि की उर्वरा शक्ति को छोड़कर अन्य शक्तियाँ जैसे किसी भूमि के टुकडे से सम्बन्धित सूर्य की रोशनी तथा पानी की मात्रा, अविनाशी होती है।]

(२) रिकार्डो द्वारा बताया गया भूमि के जोतने का क्रम सही नहीं है। केरी तथा रोशर (Carey and Rocher) के अनुसार, लोग पहले सबसे अधिक उपजाऊ भूमि, तत्पश्चात् उससे कम उपजाऊ भूमि, फिर उससे कम उपजाऊ भूमि, इत्यादि, क्रम मे भूमि को नहीं जोतते। वे सर्वप्रथम उन भूमियों को जोतते हैं जो सबसे अधिक सुविधाजनक होगी अर्थात् जो शहरों तथा मण्डियो के निकट होगी।

परन्तु यह आलोचना ठीक नहीं है। (i) वाकर (Walker) के अनुसार सर्वश्रेष्ठ भूमि (best land) से रिकार्डो का अर्थ ऐसी भूमि से था जो कि उर्वरता तथा स्थिति (fertility and situation) दोनों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हो। (ii) रिकार्डो के सिद्धान्त म भूमि को जोतने का क्रम महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि यह बात महत्त्व की है कि विभिन्न भूमियो की उपज (yield) मे अन्तर होता है।

(३) रिकार्डो का सिद्धान्त लगान उत्पन्न होने के कारण पर उचित प्रकाश नहीं डालता। ब्रिग्स तथा जोरडन (Briggs and Jordon) के अनुसार, रिकार्डो का सिद्धान्त केवल इस सामान्य सत्य को बताता है कि एक अधिक अच्छी वस्तु के लिए सदैव ऊँची कीमत प्राप्त होगी। इसी प्रकार एक अधिक उपजाऊ भूमि की कीमत कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा अधिक होगी क्योंकि दोनो भिन्न हैं। इस प्रकार रिकार्डो का सिद्धान्त केवल यह बताता है कि एक श्रेष्ठ भूमि का लगान निम्न कोटि की भूमि की अपेक्षा अधिक होगा, यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि लगान क्यो उत्पन्न होता है।[1]

(४) यह सिद्धान्त भी, अन्य क्लासीकल सिद्धान्तो की भाँति, पूर्ण प्रतियोगिता तथा दीर्घकाल की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।

(५) रिकार्डो के सिद्धान्त में सीमान्त भूमि अर्थात् लगान रहित भूमि (No-rent land) की मान्यता उचित नहीं है, व्यावहारिक जीवन म किसी देश म शायद ही कोई ऐसी भूमि हो जिस पर लगान न दिया जाता हो।

---

[1] Briggs and Jordon, *A Text Book of Economics* (Revised Mackness), p 287.

(६) रिकार्डो के सिद्धान्त की धारणा कि लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता, पूर्णतया सही नहीं है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार कुछ दशाओं में लगान लागत का अंग होता है और कीमत को प्रभावित करता है, जैसे एक व्यक्तिगत कृषक की दृष्टि से लगान, कृषक के लिए, लागत है और इसलिए वह कीमत को प्रभावित करता है। (लगान और कीमत के सम्बन्ध के पूर्ण विवरण के लिए इसी अध्याय में आगे देखिए।)

(७) रिकार्डो के सिद्धान्त की यह धारणा कि लगान केवल भूमि को ही प्राप्त हो सकता है, सही नहीं है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान 'अवसर लागत' (opportunity cost) के ऊपर बचत (surplus) है। इस दृष्टि से लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक उत्पत्ति का साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूंजी) लगान प्राप्त कर सकता है। अतः लगान के सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल भूमि के साथ स्थापित करना उचित नहीं है जैसा कि रिकार्डो ने किया।

निष्कर्ष

रिकार्डो के सिद्धान्त की उपर्युक्त अनेक आलोचनाओं के होते हुए भी यह सिद्धान्त बेकार नहीं है। इस सिद्धान्त की कई बातें ठीक हैं तथा आज भी अर्थशास्त्र में सिद्धान्त में इसका महत्त्व है। रिकार्डो ने एक मुख्य गलती यह की है कि उन्होंने केवल भूमि को ही सीमित समझा और इसलिए लगान का सम्बन्ध भूमि के साथ स्थापित कर उसका एक पृथक् सिद्धान्त बनाया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, 'सीमितता का गुण' (quality of fixity or specificity) केवल भूमि में नहीं बल्कि अन्य सभी साधनों में पाया जाता है। रिकार्डो के सिद्धान्त को आदर प्रदान करने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने 'सीमितता के गुण' के लिए 'भूमि पक्ष' या 'भूमि तत्त्व' (Land aspect or land element) शब्द का प्रयोग किया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने बताया कि प्रत्येक साधन में 'भूमि तत्त्व' होता है और इसलिए प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्रियों के हाथों में लगान-सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त बन गया।

आभास-लगान या अर्द्ध-लगान
(QUASI-RENT)

१. प्राक्कथन (Introduction)

मार्शल ने आभास-लगान के विचार को प्रस्तुत किया। मार्शल ने बताया कि मनुष्य द्वारा निर्मित मशीनों तथा अन्य यन्त्रों (Machine and other appliances made by man) की पूर्ति अल्पकाल में स्थिर या बेलोचदार होती है तथा दीर्घकाल में परिवर्तनशील या लोचदार। चूंकि इन पूंजीगत साधनों की पूर्ति, 'भूमि की भांति' दीर्घकाल में स्थिर नहीं होती है इसलिए इनकी आयों को लगान नहीं कहा जा सकता, परन्तु अल्पकाल में इन साधनों की पूर्ति स्थिर होती है, अतः अल्पकाल में इन साधनों की आय लगान की भांति होती है जिसे मार्शल ने 'आभास-लगान' कहा है।

अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री भी आभास लगान के विचार को प्रस्तुत करते हैं, परन्तु उनके द्वारा आभास लगान का बताया गया अर्थ मार्शल से बहुत भिन्न है। मार्शल तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियों दोनों के दृष्टिकोण का विवेचन हम नीचे करते हैं।

२. मार्शल का दृष्टिकोण (Marshall's View)

(१) पूंजीगत वस्तुओं, जिनकी पूर्ति अल्पकाल में बेलोचदार तथा दीर्घकाल में लोचदार होती है की अल्पकालीन आयों के लिए मार्शल ने 'आभास-लगान' का शब्द प्रयोग किया।* इसको दूसरे शब्दों में निम्न प्रकार भी व्यक्त किया जाता है :

> "मशीन (अर्थात् पूंजीगत वस्तुओं) की अल्पकालीन आय में से उसको चलाने की अल्पकालीन लागत को घटाने से जो बचत प्राप्त होती है उसे आभास लगान कहते हैं। आभास लगान यह बताता है कि मशीन की अल्पकालीन आय उसके चलाने

* "Marshall used the term quasi rent for the short run earnings of capital goods whose supply in the short period is inelastic and in the long run elastic."

की अल्पकालीन लागत से कितनी अधिक है, इस प्रकार आभास-लगान अल्पकालीन लागत के ऊपर एक प्रकार की अल्पकालीन बचत है।"[7]

उदाहरणार्थ माना कि अल्पकाल में किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग बढ़ जाती है, परिणामस्वरूप मशीन की मांग तथा कीमत में भी वृद्धि हो जायगी। यदि मशीन पहले १०० रु० लगान प्राप्त कर रही थी तो अब वह, माना, १३० रु० प्राप्त कर सकेगी, अतः अल्पकाल में ३० रु० की अतिरिक्त आय (surplus incom) प्राप्त होती है जिसे मार्शल ने 'आभास लगान' कहा।

इस प्रकार आभास लगान एक अस्थायी आय है जो कि साधन की पूर्ति में अस्थायी कमी के कारण उत्पन्न होती है और दीर्घकाल में समाप्त हो जाती है जैसे ही पूर्ति बढ़ी हुई मांग के साथ समायोजित (adjust) हो जाती है।[8]

३ आधुनिक मत (Modern View)

आधुनिक अर्थशास्त्री आभास लगान के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं, उनमें बहुत विभिन्नता पायी जाती है। इसलिए कुछ अर्थशास्त्री जैसे प्रो० लेफ्टविच आभास लगान शब्द का प्रयोग करना ही पसन्द नहीं करते हैं। प्रो० लेफ्टविच के शब्दों में, "आभास-लगान शब्द, जिसका श्रीगणेश एल्फ्रेड मार्शल ने किया था, आर्थिक साहित्य में इतने अस्पष्ट रूप से प्रयुक्त किया गया है कि हम पूर्ण रूप से इसका परित्याग ही करना चाहेंगे।" ऐसी दशा में नीचे हम आभास-लगान के सम्बन्ध में उस मत का विवेचन करेंगे जो अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा मान्य है।

(i) आधुनिक अर्थशास्त्री प्रायः परिवर्तनशील लागत (variable cost) के ऊपर अल्पकालीन बचत (short run surplus) को आभास लगान कहते हैं। एक आधुनिक अर्थशास्त्री के अनुसार आभास लगान की परिभाषा इस प्रकार है

"आभास-लगान कुल आगम (total revenue) तथा कुल परिवर्तनशील लागत (total variable cost) के बीच अन्तर है।"[9]

"दीर्घकाल में, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, आभास-लगान समाप्त हो जाते हैं क्योंकि सब लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं तथा कुल आगम और कुल परिवर्तनशील लागतें बराबर हो जाती हैं।"[10][11]

---

[7] The short run earnings of a machine minus the short-run cost of keeping it in running order is called the quasi rent. It shows by how much the short-run earning of the machine exceeds the short run cost of maintaining it, thus it is a kind of short-run surplus over short run cost."

[8] मार्शल ने आभास-लगान शब्द के प्रयोग में एकरूपता (consistency) नहीं रखती। उन्होंने आभास लगान को एक दूसरे अर्थ में भी प्रयोग किया। मार्शल के अनुसार मजदूरी तथा लाभ में भी आभास-लगान का अंश होता है। एक व्यक्ति की आय (अर्थात् मजदूरी या लाभ) में एक भाग प्रकृति द्वारा दी गयी योग्यता या गुणों के कारण प्राप्त होता है तथा दूसरा भाग प्रशिक्षण (training) में पूंजी का विनियोग कर अर्जित योग्यता या गुणों (acquired ability or quality) के कारण होता है। मार्शल के अनुसार, व्यक्ति की यह आय, जो कि अर्जित व्यक्तिगत गुणों (acquired personal qualities) के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है वह आभास लगान कही जा सकती है। मार्शल ने बताया कि लाभ में आभास-लगान का अंश, मजदूरी में आभास-लगान के अंश की अपेक्षा, अधिक होता है। परन्तु अर्जित गुणों के कारण प्राप्त आय (अर्थात् आभास लगान) को व्यक्ति की कुल आय या मजदूरी में से ठीक-ठीक कैसे ज्ञात किया जाय।

[9] Quasi rent is the difference between total revenue and total variable cost

[10] कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्तनशील लागत = कुल लागत। चूंकि दीर्घकाल में स्थिर लागतें समाप्त हो जाती हैं और सभी लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं इसलिए दीर्घकाल में 'कुल परिवर्तनशील लागत' या 'कुल लागत' एक ही बात है। पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में 'कुल आगम' (total revenue) तथा 'कुल परिवर्तनशील लागत' (total variable cost) बराबर हो जाती हैं इसका अर्थ है कि 'कुल आगम' तथा 'कुल लागत' (total cost) बराबर हो जाती हैं, 'कुल आगम' तथा 'कुल लागत' बराबर होने का अभिप्राय है कि केवल 'सामान्य लाभ' (normal profit) प्राप्त होता है।

[11] In the long run, in pure competition, quasi-rent must disappear, since, all costs are variable and total revenue and total variable costs are equal."

संक्षेप में, अल्पकाल में :

कुल आभास लगान = कुल आगम (Total Revenue or TR)—कुल परिवर्तनशील लागत (Total Variable Cost or TVC)

अथवा

आभास लगान प्रति इकाई उत्पादन पर (Quasi-rent per unit of Production) = औसत आगम (Average Revenue or AR)—औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost or AVC)

[विद्यार्थियों के लिए नोट : आभास-लगान के उपर्युक्त अर्थ को एक चित्र द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है जिसको कि इस अध्याय की परिशिष्ट (appendix) में दिया गया है। ऐसा इसलिए किया गया है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों तथा अध्ययनमान (standards) के अनुसार उसे विद्यार्थी पढ़ सकते हैं या छोड़ सकते हैं।]

४ निष्कर्ष (Conclusion)

(i) मार्शल का आभास-लगान का विचार रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का, भूमि के अतिरिक्त अन्य साधनों के लिए, विस्तार मात्र है।[12] पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति अल्पकाल में, भूमि की भाँति, स्थिर होती है, इसलिए उनकी अल्पकालीन आय को मार्शल ने आभास-लगान कहा। वास्तव में मार्शल का आभास-लगान का विचार रिकार्डो के 'लगान सिद्धान्त' तथा 'लगान के आधुनिक सिद्धान्त' के बीच एक कड़ी का कार्य करता है।

(ii) आधुनिक अर्थशास्त्री आभास लगान का अर्थ थोड़ा भिन्न लेते हैं। अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आभास-लगान कुल आगम तथा कुल परिवर्तनशील लागत के बीच अन्तर है जो कि अल्पकाल में रहता है और दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है।

दुर्लभता लगान
(SCARCITY RENT)

१ प्राक्कथन (Introduction)

रिकार्डो ने 'भूमि के भेदात्मक गुण' (differential quality) तथा 'भूमि की सीमितता' (scarcity of land) दोनों बातों का अपने सिद्धान्त में समावेश किया। परन्तु रिकार्डो ने इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट रूप से नहीं समझा, उन्हें इन दोनों के सम्बन्ध में भ्रम (confusion) था, रिकार्डो ने भूमि के 'भेदात्मक गुण' पर जोर दिया, न कि भूमि की सीमितता पर। रिकार्डो के अनुसार, लगान एक 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) है—यह श्रेष्ठ भूमियों के उत्पादन तथा निम्न कोटि की भूमियों के उत्पादन में अन्तर है।

२ दुर्लभता लगान का अर्थ तथा उसका निर्धारण (Meaning of Scarcity Rent and its Determination)

माल्थस (Malthus) तथा कुछ यूरोपीय अर्थशास्त्रियों ने लगान को एक 'दुर्लभता आय' (scarcity income) की दृष्टि से देखा।

दुर्लभता लगान को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—दुर्लभता लगान भूमि के प्रयोग के लिए दी गयी कीमत है जबकि भूमि की पूर्ति माँग की तुलना में सीमित होती है। दुर्लभता लगान का सिद्धान्त यह मान लेता है कि भूमि एकरूप तथा सीमित दोनों है। यदि भूमि बहुलता में (in abundance) या असीमित (unlimited) है (अर्थात् उसकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार है) तो भूमि के प्रयोग के लिए कोई कीमत देने की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा लगान शून्य होता है। माँग में बहुत वृद्धि होने से सब भूमि प्रयोग में आती है और भूमि माँग की तुलना में सीमित रह जाती है। भूमि की माँग बढ़ने पर भी इसकी पूर्ति को नहीं बढ़ाया जा सकता है अर्थात् उसकी पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार है और अब भूमि के प्रयोग के लिए कुछ कीमत अर्थात्

[1] 'Marshall's concept of quasi-rent is an extension of the Ricardian rent theory to inputs other than land.'

लगान देना पड़ेगा। किसी देश में सभी भूमियां के समान उपजाऊ होने की बात मान लेने पर भी लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि की कुल पूर्ति कुल माँग की अपेक्षा कम है और ऐसी स्थिति में भूमि के स्वामी को दुर्लभता लगान प्राप्त होगा।

दुर्लभता लगान के सिद्धान्त को स्टोनियर तथा हग (Stonier and Hague) के शब्दों में इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है— वह (अर्थात् दुर्लभता लगान) एकरूप भूमि की दुर्लभता या सीमितता के कारण उत्पन्न होता है। यह बात विशुद्ध दुर्लभता लगान की मुख्य विशेषता है। अन्य उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में वृद्धि, दीर्घकाल में प्रायः उनकी पूर्ति में वृद्धि करेगी, परन्तु लगान में वृद्धि भूमि की पूर्ति में वृद्धि नहीं कर सकती। अतः भूमि के प्रयोग के लिए ऊँची आयें दीर्घकाल में भी उपस्थित रह सकती हैं परन्तु अन्य साधनों के साथ ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि उनकी पूर्ति, बढ़ी हुई माँग के अनुसार, बढ़ जायेगी। भूमि की पूर्ति की स्थिरता वास्तव में एकरूप भूमि तथा उसके दुर्लभता लगान को अन्य उत्पत्ति के साधनों तथा उनकी कीमतों से भिन्न करती है। दुर्लभता लगान, हमारे मॉडल[15] तथा वास्तविक जगत दोनों में, मुख्यतया इस बात का परिणाम है कि भूमि की पूर्ति बेलोचदार है।[16]
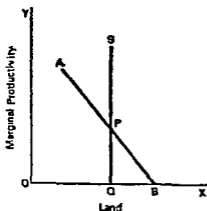
चित्र—३

दुर्लभता लगान के निर्धारण को चित्र नं ३ में दिखाया गया है। चित्र में AB रेखा भूमि की माँग रेखा है अर्थात् भूमि की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) को बताती है। यदि भूमि बहुतायत में है या असीमित मात्रा में है तो उसका उस सीमा तक प्रयोग किया जायगा जहाँ पर सीमान्त उत्पादकता शून्य हो जाती है, चित्र में ऐसी स्थिति बिन्दु B बताता है अर्थात् भूमि की केवल OB मात्रा प्रयोग की जायगी। यदि भूमि की मात्रा असीमित नहीं है अर्थात् वह सीमित है तथा भूमि की केवल OQ मात्रा प्राप्त है तो भूमि की पूर्ति रेखा खड़ी रेखा SQ होगी। AB तथा SQ दोनों P बिन्दु पर काटती हैं, अतः भूमि के प्रयोग के लिए PQ दुर्लभता लगान दिया जायगा और यह लगान भूमि की सीमान्त उत्पादकता के बराबर है (क्योंकि P बिन्दु AB रेखा पर भी है।)

३ भेदात्मक लगान की तुलना में दुर्लभता लगान की श्रेष्ठता (Superiority of Scarcity Rent over Differential Rent)

(१) रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार सीमान्त भूमि लगान रहित भूमि (no rent land) है। परन्तु दुर्लभता लगान सिद्धान्त के अनुसार सीमान्त भूमि भी लगान प्राप्त कर सकती है यदि सीमान्त भूमि की माँग, अथवा उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जाती है।

---

[15] हमारे मॉडल का अर्थ है कि दुर्लभता लगान के सैद्धान्तिक विवेचन में यह मान सकते हैं कि सभी भूमि एकरूप (अर्थात् समान रूप से उपजाऊ) है, परन्तु वास्तविक जगत में सभी भूमि एकरूप नहीं होती।

[16] It (i e scarcity rent) results from the scarcity of homogeneous land The essential feature of pure scarcity rent is this Whilst a rise in the prices of other factors of production will often cause an increase in their supply at any rate in the long run a rise in rent cannot increase the supply of land Higher earning can therefore persist for land even in the long run whereas with other factors this is not very likely to happen because supply will increase to meet the increase in demand. It is the fixity of its supply which distinguishes homogeneous land and its scarcity rent from other factors of production and their prices. Scarcity rent is essentially the result of the fact that, both in our model and in the real world land is in inflexible supply'

—Stonier and Hague, *A Text Book of Economic Theory*, p. 288.

(ii) रिकार्डो का सिद्धान्त 'भूमि की सीमितता' के स्थान पर 'भूमि के भेदात्मक गुण' पर अधिक बल देता है, रिकार्डो के अनुसार, 'लगान भेदात्मक बचत' है जो कि भूमियो की उवरता मे अन्तर के कारण प्राप्त होता है। परन्तु 'दुर्लभता लगान सिद्धान्त' के अनुसार, भूमि का लगान उसकी सीमितता के कारण होता है। परन्तु भूमि ही नहीं बल्कि अन्य साधन भी सीमित हो सकते है तथा लगान प्राप्त कर सकते है। यही बात आभास-लगान तथा लगान का आधुनिक सिद्धान्त बताता है। इस प्रकार 'दुर्लभता लगान सिद्धान्त' आधुनिक लगान सिद्धान्त के बहुत निकट है।

४. 'दुर्लभता लगान' तथा 'भेदात्मक लगान' मे अन्तर केवल दृष्टिकोण का है (Distinction between Scarcity Rent and Differential Rent is one of approach only)

एक भूमि द्वारा प्राप्त लगान को हम 'भेदात्मक लगान' तथा 'दुर्लभता लगान' दोनो दृष्टियो से देख सकते है। एक भूमि के लगान को 'भेदात्मक लगान' की दृष्टि से देखा जा सकता है यदि हम उस भूमि की उपज की तुलना निम्न कोटि की भूमियो या सीमान्त भूमि की उपज से करें। उसी भूमि के लगान को हम 'दुर्लभता लगान' की दृष्टि से देख सकते है यदि यह ध्यान मे रखें कि लगान इसलिए उत्पन्न होता है क्योकि उस प्रकार की भूमि की कुल पूर्ति, मांग की तुलना मे, सीमित है, उस प्रकार की भूमि के सीमित होने पर ही उससे निम्न कोटि की भूमि जोत में लायी जाती है। अत. सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि 'भेदात्मक लगान' एक प्रकार से 'दुर्लभता लगान' होता है क्योकि श्रेष्ठ भूमियो की कुल पूर्ति, उनकी माँग की तुलना मे, सीमित होती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'भेदात्मक लगान' तथा 'दुर्लभता लगान' के बीच अन्तर केवल दृष्टिकोण (approach) का ही है। अतः मार्शल ने कहा कि

> **"एक अर्थ मे सभी लगान दुर्लभता लगान हैं और सभी लगान भेदात्मक लगान हैं।"[15]**

लगान, आभास-लगान तथा ब्याज में अन्तर
(DIFFERENCE AMONGST RENT, QUASI-RENT AND INTEREST)

लगान, आभास-लगान तथा ब्याज मे अन्तर की विवेचना को हम दो भागो मे विभाजित करेगे—(अ) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो तथा मार्शल का दृष्टिकोण, तथा (ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियो का दृष्टिकोण।

(अ) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल का दृष्टिकोण (Classical Economist's and Marshall's View)

लगान भूमि को प्राप्त होता है, यह अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनो मे रहता है क्योकि भूमि की पूर्ति, प्रकृति का नि:शुल्क उपहार होने के कारण, सदैव स्थिर रहती है।

मार्शल ने लगान के विचार को थोडा विस्तृत करने का प्रयत्न किया उन्होने पूंजीगत वस्तुओ की अल्पकालीन आय के लिए आभास लगान शब्द का प्रयोग किया। मार्शल ने बताया कि पूँजीगत वस्तुओ, जैसे—मशीनो, यन्त्रो, इत्यादि, की पूर्ति अल्पकाल मे, भूमि की भाँति, स्थिर हो सकती है और इसलिए इनकी अल्पकालीन आयें 'लगान की भाँति' होती है अर्थात् 'आभास-लगान' होती हैं। [मार्शल ने आभास-लगान का एक-दूसरे अर्थ मे भी प्रयोग किया, उनके अनुसार मजदूरी तथा लाभ में भी आभास-लगान का अंश होता है।] दीर्घकाल में आभास-लगान समाप्त हो जाते हैं।

ब्याज स्वतन्त्र या चल पूंजी (free or floating capital) के लिए पुरस्कार है जबकि आभास-लगान स्थिर पूंजी (fixed capital) के लिए पुरस्कार है।

---

[15] Hence, Marshall observed : "In a sense all rents are scarcity rents and all rents are differential rents."

मार्शल ने लगान, आभास-लगान तथा ब्याज में अन्तर बताते हुए स्पष्ट किया कि इनमें अन्तर केवल मात्रा (degree) का है, यह अन्तर केवल एक 'समय-अवधि' (time span) अथवा 'समयावधि में लोच' (elasticity over time) की बात है। भूमि तथा पूँजी प्रायः मिश्रित रूप में पाये जाते हैं क्योंकि भूमि को प्रयोग में लाने के लिए कुछ न कुछ पूँजी का विनियोग अवश्य किया जाता है। भूमि की पूर्ति अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में लगभग पूर्णतया बेलोचदार (perfectly inelastic) होती है और इसलिए भूमि के लगान का अस्तित्व अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में रहता है। इसके विपरीत मनुष्यकृत पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति अल्पकाल में बेलोचदार तथा दीर्घकाल में लोचदार होती है, अर्थात् आभास लगान केवल अल्पकाल में रहता है तथा दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है। स्वतन्त्र पूँजी (free capital) तथा पूँजीगत वस्तुएँ या सम्पत्ति' (capital goods or capital assets) एक-दूसरे में परिवर्तित किये जा सकते हैं। स्वतन्त्र पूँजी स्थिर पूँजीगत सम्पत्ति (मशीन, बिल्डिंग, औजार इत्यादि) में परिवर्तित होती रहती है, तथा स्थिर पूँजी घिसाई-कोष (depreciation funds) के माध्यम से तथा अन्य रीतियों से स्वतन्त्र पूँजी में परिवर्तित होता रहती है।[14]

[इस प्रकार लगान, आभास लगान तथा ब्याज में अन्तर केवल मात्रा का है, वे सम्पत्ति (property) से प्राप्त आय के विभिन्न रूप हैं, अतः मार्शल का कथन है' इस प्रकार हमारा मुख्य सिद्धान्त है कि स्वतन्त्र पूँजी पर ब्याज तथा पूँजी के पुराने विनियोग पर आभास-लगान धीरे-धीरे एक-दूसरे में मिल जाते हैं यहां तक कि भूमि का लगान भी अपने में एक पृथक वस्तु नहीं है बल्कि यह बड़ी जाति (large genus) की एक मुख्य उपजाति (leading species) है।[15]]

(ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण (Modern Economists' View)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार भी स्वतन्त्र या चल पूँजी के लिए पुरस्कार ब्याज है। परन्तु लगान और आभास-लगान के सम्बन्ध में आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल के दृष्टिकोण से, भिन्न है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान केवल भूमि से ही सम्बन्धित नहीं होता बल्कि प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। लगान अवसर लागत से ऊपर वह अतिरेक (surplus) है, जिसका अस्तित्व अनिश्चित समय या लम्बे समय तक बना रहता है। आर्थिक लगान उन साधनों को प्राप्त होता है जिनकी पूर्ति लम्बे समय तक स्थिर या बेलोच रहता है।

आभास-लगान कुल आगम (total revenue) तथा कुल परिवर्तनशील लागत (total variable cost) के बीच अन्तर है जो कि केवल अल्पकाल में रहता है।

लगान का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF RENT)

१ प्राक्कथन (Introduction)

रिकार्डो तथा क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार केवल भूमि ही लगान प्राप्त कर सकती है। भूमि प्रकृति का उपहार है, इसलिए उसकी पूर्ति स्थिर या सीमित (fixed or limited) होती है। रिकार्डो के अनुसार, भूमि का यह गुण अन्य साधनों से भिन्न है, इसलिए उन्होंने लगान के एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता समझी। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, अन्य साधन (श्रम तथा पूँजी), भूमि की भाँति, स्थिरता या सीमितता के गुण (quality of fixity or limitedness)

[14] विद्यार्थियों के लिए नोट—विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों तथा अध्ययनमान के अनुसार इस विषय सामग्री को विद्यार्थी पढ़ सकते हैं या छोड़ सकते हैं।

"Thus our central doctrine is that interest on free capital and quasi-rent on an old investment of capital shade into one another gradually even the rent of land being not a thing by itself, but the leading species of a large genus."

—Marshall, *Principles of Economics*, p 350

[15] विद्यार्थियों के लिए नोट—विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों तथा अध्ययनमान के अनुसार इस विषय-सामग्री को विद्यार्थी पढ़ सकते हैं या छोड़ सकते हैं।

अर्थात् 'भूमि-तत्त्व' (land-element) अर्जित (acquire) कर सकते हैं, और इसलिए व भी लगान प्राप्त कर सकते है। अत आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, प्रत्येक साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूंजी या साहस) लगान प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त (general theory) है।

२ आधुनिक सिद्धान्त का आधार (Basis of Modern Theory)

आस्ट्रियन अर्थशास्त्री वॉन वीजर (Von Wiser) ने उत्पत्ति के साधनों को दो वर्गों मे बाँटा—(i) पूर्णतया विशिष्ट साधन (Perfectly Specific Factors), तथा पूर्णतया अविशिष्ट साधन (Perfectly Non specific Factors)। 'पूर्णतया विशिष्ट साधन' वे हैं जो कि केवल एक प्रयोग म ही प्रयुक्त (use) किये जा सकते हैं, अथवा जो पूर्णतया अगतिशील (perfectly immobile) हो, पूर्णतया अविशिष्ट साधन वे हैं जो कि कई प्रयोगो में प्रयुक्त किये जा सकते हैं, अथवा जो पूर्णतया गतिशील (perfectly mobile) हों। विशिष्टता (specificity) के सम्बन्ध म दो बातें ध्यान म रखने की हैं, (i) विशिष्टता एक गुण (quality) है जो किसी समय मे कोई भी साधन प्राप्त कर सकता है। जो साधन आज विशिष्ट है वह कल अविशिष्ट हो सकता है। (उदाहरणार्थ, यदि किसी भूमि के टुकडे म चने के बीज बो दिये जाते हैं तो वह टुकडा विशिष्ट होगा, चने की फसल कट जाने पर वह टुकडा अविशिष्ट हो जायेगा और उसको किसी भी प्रयोग मे प्रयुक्त किया जा सकेगा।) (ii) वास्तव म, कोई भी साधन न तो पूर्ण रूप से विशिष्ट होता है और न पूर्ण रूप से अविशिष्ट। एक साधन प्राय आशिक रूप से विशिष्ट और आशिक रूप मे अविशिष्ट होता है।

वीजर के उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों (श्रीमती जोन रोबिन्सन बोल्डिग, इत्यादि) न लगान के आधुनिक सिद्धान्त का निर्माण किया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान विशिष्टता के लिए भुगतान (payment) है या उसका परिणाम (result) है। आधुनिक अर्थशास्त्री 'विशिष्टता' (specificity) के लिए 'भूमि-तत्त्व' (land-element or land aspect) शब्द का भी प्रयोग करते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि एक साधन 'भूमि-तत्त्व' के कारण लगान प्राप्त करता है। चूंकि प्राय एक साधन आशिक रूप से विशिष्ट तथा आशिक रूप से अविशिष्ट होता है, इसलिए एक साधन के पुरस्कार (remuneration or income) मे उस सीमा तक लगान का अश होता है जिस सीमा तक साधन विशिष्ट होता है। यह बात आगे एक उदाहरण की सहायता से स्पष्ट की गयी है।

३. लगान की परिभाषा तथा व्याख्या (Definition of Rent and its Explanation)

श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, 'लगान के विचार का सार वह बचत (surplus) है जो कि एक साधन की इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो कि साधन को अपने कार्य को करते रहने के लिए आवश्यक है।"[19]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान एक बचत (surplus) है जो किसी भी साधन की इकाई को, उसकी न्यूनतम पूर्ति कीमत (minimum supply price) अर्थात् अवसर लागत (opportunity cost)[20] के ऊपर प्राप्त होती है।

---

[19] "The essence of the conception of rent is the conception of a surplus earned by a particular part of a factor of production over and above the minimum earnings necessary to induce it to do its work"

[20] किसी साधन की अवसर लागत वह आय है जो कि उसे दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग (next best paid alternative) म मिल सकती है। दूसरे शब्दों म किसी साधन की अवसर लागत साधन की वह न्यूनतम आय (minimum earnings) है जो कि उसे वर्तमान व्यवसाय म बनाये रखने के लिए आवश्यक है। ध्यान रहे अवसर लागत के लिए प्राय 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' या 'पूर्ति मूल्य' ('minimum supply price' or simply 'supply price') के शब्द का प्रयोग किया जाता है। अवसर लागत के पूर्ण विवरण के लिए इस पुस्तक के चतुर्थ खण्ड 'वस्तु-मूल्य निर्धारण' (Commodity Pricing) के अध्याय ६ को देखिए।

संक्षेप मे,

लगान (Rent)=वास्तविक आय (Actual earnings)—अवसर लागत (Opportunity cost)

उपर्युक्त सूत्र की सहायता से हम किसी साधन की इकाई की आय मे से लगान का अंश (element of rent) ज्ञात कर सकते हैं। इस बात को हम निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं :

एक मैनेजर की वर्तमान आय (Present earnings of a Manager)	अवसर लागत (Opportunity Cost)	लगान (अर्थात् अवसर लागत के ऊपर बचत) (Rent=Surplus over Opportunity Cost)
१,००० रु०	१,००० रु०	(१,०००—१,०००) रु०=० रु० स्थिति—१ (Case I)
	०'० रु०	(१,०००—० ०) रु०=१,००० रु० स्थिति—२ (Case II)
	७०० रु०	(१,०००—७००) रु०=३०० रु० स्थिति—३ (Case III)
	१,२०० रु०	? स्थिति—४ (Case IV)

स्थिति—१ (Case I) माना कि एक मैनेजर की वर्तमान आय १,००० रु० है। यदि वह वर्तमान व्यवसाय छोड़े तो दूसरे व्यवसाय म भी उसे १,००० रु० प्राप्त हो सकता है। दूसरे *शब्दों में, वह 'पूर्णतया अविशिष्ट' है अथवा वर्तमान व्यवसाय के लिए जरा भी विशिष्ट नहीं है।* ऐसी स्थिति म साधन (मैनेजर) को अवसर लागत के ऊपर कोई बचत अर्थात् लगान प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसकी वर्तमान आय तथा अवसर लागत बराबर है। दूसरे शब्दों मे, स्थिति—१ यह दिखाती है कि साधन (मैनेजर) 'पूर्णतया अविशिष्ट' (perfectly non-specific) है इसलिए उसे *कोई लगान प्राप्त नहीं होता है। यह एक सिरे (one extreme) की स्थिति है।*

स्थिति—२ (Case II)—एक दूसरी स्थिति ऐसी हो सकती कि यदि मैनेजर अपने वर्तमान रोजगार को छोड़कर किसी दूसरे व्यवसाय मे जाना चाहे तो उसे कोई रोजगार प्राप्त न हो अर्थात् साधन (मैनेजर) *वर्तमान व्यवसाय के लिए* 'पूर्णतया विशिष्ट' (perfectly specific) है। इसका अर्थ है कि साधन की अवसर लागत शून्य है। ऐसी स्थिति म उसकी समस्त वर्तमान आय अवसर लागत के ऊपर बचत अर्थात् लगान होगी। स्पष्ट है कि स्थिति—२ यह बात बताती है कि साधन 'पूर्णतया विशिष्ट' है और इसलिए उसकी समस्त आय लगान है। यह एक दूसरे सिरे (another extreme) की स्थिति है।

स्थिति—३ (Case III)—माना कि मैनेजर को दूसरे प्रयोग म ७०० रु० मिल सकते हैं तो ७०० रु० उसकी अवसर लागत हुई। ऐसी स्थिति मे उसको (१,०००—७००) रु०=३०० रु० के बराबर अवसर लागत के ऊपर बचत है और यह लगान है। स्थिति—३ बताती है कि साधन (मैनेजर) *आंशिक रूप से विशिष्ट है तथा आंशिक रूप से 'अविशिष्ट' है।*

साधन (अर्थात् मैनेजर) जिस सीमा तक दूसरे प्रयोग मे माँगा जाता है उस सीमा तक वह विशिष्ट नहीं है अर्थात् वह अविशिष्ट' (non-specific) है। उदाहरण म, मैनेजर ७०० रु० तक दूसरे प्रयोग मे माँगा जाता है इसलिए ७०० रु० *की सीमा तक* वह 'अविशिष्ट' है और (१,००० —७००)=३०० रु० की सीमा तक वह 'विशिष्ट' (specific) है और यह ३०० रु० ही लगान

है। इससे स्पष्ट होता है कि लगान 'विशिष्टता' (specificity) के लिए भुगतान (payment) है या विशिष्टता का परिणाम (result) है।

स्थिति—४ (Case IV)—माना कि मैनेजर को दूसरे व्यवसाय में १,२०० रु० मिल सकते है, तो १,२०० रु० उसकी अवसर लागत कही जायेगी। अत

लगान = वास्तविक आय — अवसर लागत
= १,००० रु० — १,२०० रु०
= —२०० रु०

परन्तु लगान एक बचत है इसलिए यह ऋणात्मक (negative) नहीं हो सकता, अत यहाँ लगान —२०० रु० नहीं होगा। ऐसी दशा में साधन का लगान क्या होगा ? ऐसी स्थिति में हम यह मान लेते हैं कि चूँकि साधन को दूसरे प्रयोग में अधिक मिल सकता है इसलिए यह वर्तमान प्रयोग को छोड़कर फौरन दूसरे प्रयोग में चला जायेगा। अब इस दूसरे प्रयोग में मिलने वाले १,२०० रु० उसकी वर्तमान आय हो जायेगी तथा पहले प्रयोग की १,००० रु० की आय उसकी अवसर लागत हो जायेगी, इसलिए (१,२०० — १,०००) = २०० रु० उसका लगान होगा।

४ लगान के उत्पन्न होने के कारण

हम देख चुके हैं कि लगान 'विशिष्टता' (specificity) का परिणाम है या 'विशिष्टता' के कारण उत्पन्न होता है, जो साधन 'पूर्णतया अविशिष्ट' होते हैं उन्हें कोई लगान प्राप्त नहीं होता। इसी बात को हम दूसरे प्रकार से व्यक्त कर सकते है। लगान तब उत्पन्न होता है जबकि एक साधन दुर्लभ (scarce) या सीमित होता है। एक साधन को लगान तब प्राप्त होगा जबकि उसकी पूर्ति सीमित (limited) हो अर्थात बेलोचदार (inelastic) हो या जब उसकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) हो। किसी साधन की पूर्ति 'बेलोचदार' है अर्थात् 'पूर्णतया लोचदार से कम' है, इसका अर्थ है कि वह साधन 'विशिष्ट' है अर्थात् उसमें 'विशिष्टता का अंश' (element of specificity) है। अत लगान 'विशिष्टता का परिणाम' है या लगान साधन की 'बेलोच पूर्ति का परिणाम' है—ये दोनों एक ही बातें है।

'पूर्णतया लोचदार पूर्ति' (perfectly elastic supply) के साधन को कोई लगान प्राप्त नहीं होगा। एक साधन की पूर्णतया लोचदार पूर्ति है, इसका अर्थ है कि एक विशेष कीमत पर साधन की कितनी ही इकाइयाँ (any number of units) प्राप्त हो सकेंगी। इस विशेष कीमत से नीची कीमत पर साधन की किसी भी इकाई की पूर्ति की पूर्ण अनुपस्थिति (complete absence) होगी। एक साधन पूर्णतया लोचदार' (perfectly elastic) है, इसका अर्थ है कि वह साधन 'पूर्णतया अविशिष्ट' (perfectly non specific) है। 'साधन की पूर्णतया लोचदार पूर्ति' (perfectly elastic supply of a factor) तथा 'पूर्णतया अविशिष्ट साधन' (perfectly non-specific factor) दोनों एक ही बात हैं। अत ऐसे साधनों की पूर्ति रेखा एक पड़ी रेखा (horizontal line) होगी जैसा कि चित्र नं० ४ में LS रेखा बताती है। ऐसे साधनों को कोई लगान प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में साधन को दी गयी समस्त कीमत 'अवसर
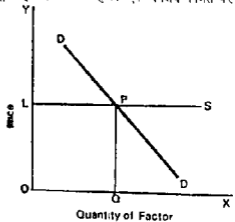
चित्र—४

लागत' या 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) है, क्योंकि जो भी कीमत साधन को वास्तव मे दी जाती है वह इसलिए देनी पड़ती है ताकि साधन दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित (transfer) होने से रोका जा सके। स्पष्ट है कि ऐसे साधनो की समस्त आय, 'हस्तान्तरण आय' अर्थात् 'अवसर लागत' होती है और इसलिए ऐसे साधनो को अवसर लागत के ऊपर कोई बचत नही होती और उन्हें कोई लगान प्राप्त नही होता। चित्र न० ४ मे साधन की कुल कीमत $= PQ \times OQ = OQPL$, साधन की यह कुल कीमत (अर्थात् कुल आय) अवसर लागत है और उसे कोई लगान प्राप्त नही होता।

चित्र—५
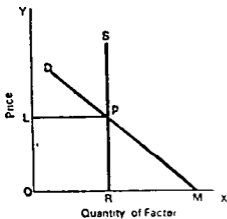
अब दूसरे सिरे (other extreme) की स्थिति को लीजिए। ऐसे साधन को लीजिए जो कि पूर्णतया बेलोचदार (perfectly inelastic) है अर्थात् 'पूर्णतया विशिष्ट' (perfectly specific) है। ऐसे साधनो की पूर्ति स्थिर होती है तथा वे एक ही प्रयोग मे प्रयुक्त किये जा सकते हैं। ऐसे साधनो की पूर्ति-रेखा X-axis पर खड़ी रेखा होती है जैसा कि चित्र न० ५ मे SR-रेखा है। चित्र मे DM माँग रेखा है। साधन की प्रति इकाई कीमत PR होगी। ऐसे साधन की अवसर लागत शून्य होगी क्योंकि साधन को PR से नीची कीमत देने पर वह दूसरे व्यवसाय मे नही जायेगा, साधन की कुल कीमत $= PR \times OR = ORPL$, साधन की यह कुल कीमत (अर्थात् कुल आय) लगान होगी।

यदि साधन (माना श्रम) की पूर्ति पूर्णतया लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) है, (अर्थात् साधन आंशिक रूप से विशिष्ट है तथा आंशिक रूप से अविशिष्ट है) तो साधन की समस्त कीमत या आय मे से एक भाग लगान होगा। 'पूर्णतया लोचदार से कम पूर्ति वाले साधन की पूर्ति रेखा बायें से दाँए का चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र न० ६ मे ES रखा है साधन के लिए माँग रेखा DD है। अत साधन की साम्य कीमत (equilibrium price) अर्थात् साधन की OQ मात्रा प्रयोग मे लायी जायेगी। साधन की कुल आय PQ होगी और इस कीमत पर साधन की OQ मात्रा प्रयोग मे लायी जायेगी। साधन की कुल आय या कुल कीमत $= OQ \times PQ = OQPW$।

चित्र ६ से स्पष्ट है कि OE से कम या OE कीमत पर साधन की कोई भी इकाई कार्य करने को तत्पर नही होगी। साधन की OR मात्रा को प्रयोग मे लाने के लिए P_1 (या RA) न्यूनतम कीमत अवश्य देनी होगी अन्यथा साधन की OR मात्रा उद्योग विशेष मे कार्य नही करेगी, दूसरे शब्दो मे, साधन की OR मात्रा की 'हस्तान्तरण आय या अवसर लागत P_1 (या RA) है। यदि कीमत P_1 से बढ़कर P_2 हो जाती है तो साधन की RS अतिरिक्त इकाइयाँ (additional units) उद्योग मे कार्य करने को तत्पर हो जायेंगी। यदि साधन की कीमत P_2 से बढ़कर P_3 कर दी जाती है तो अब साधन की ST अतिरिक्त इकाइयाँ उद्योग मे कार्य करने को आकर्षित होगी। दूसरे शब्दो मे, पूर्ति रेखा के विभिन्न बिन्दु साधन की विभिन्न मात्राओं के
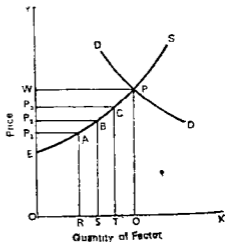
चित्र—६

४. लगान तथा मूल्य

रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता। वस्तु का मूल्य सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होता है और सीमान्त भूमि पर कोई लगान प्राप्त नहीं होता, स्पष्ट है कि लगान लागत का अंग नहीं होता और इसलिए मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि स्वयं मूल्य से प्रभावित होता है।

परन्तु आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार रिकार्डो का मत सही नहीं है। कई दशाओं में लगान लागत का अंग होता है और मूल्य को प्रभावित करता है, जैसे एक उत्पादक या कृषक के लिए समस्त लगान लागत है और इसलिए लगान मूल्य को प्रभावित करता है।

लगान तथा मूल्य
(RENT AND PRICE)

लगान मूल्य को प्रभावित करता है या मूल्य लगान को प्रभावित करता है, अर्थात् लगान तथा मूल्य में क्या सम्बन्ध है? इस सम्बन्ध में दो मत हैं—(अ) रिकार्डो का मत, तथा (ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण। इन दोनों मतों का विवेचन निम्न प्रकार है

(अ) रिकार्डो का मत (Ricardo's View)

रिकार्डो का मत उनके इस वाक्य में निहित (embodied) है—**"अनाज का मूल्य इसलिए ऊँचा नहीं होता कि लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिए दिया जाता है क्योंकि अनाज का मूल्य ऊँचा होता है।"**[21] इस वाक्य का अर्थ है (i) लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता, तथा (ii) मूल्य लगान को प्रभावित करता है।

लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता रिकार्डो के अनुसार, कीमत सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होती है, इसलिए सीमान्त भूमि को कोई 'बचत' या लगान प्राप्त नहीं होता और वह लगान-रहित भूमि होती है। स्पष्ट है कि लगान लागत म प्रवेश नहीं करता और इसलिए वह मूल्य को प्रभावित नहीं करता।

कीमत लगान को प्रभावित करती है . लगान श्रेष्ठ भूमियों तथा सीमान्त भूमि की लागत का अन्तर है। चूंकि कीमत* सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होती है इसलिए यह कहा जा सकता है कि कृषि उपज की कीमत तथा श्रेष्ठ भूमियों की लागत में अन्तर लगान है। यदि कृषि उपज की मांग बढ़ती है तो नयी निम्न कोटि की भूमि जोत में आयेगी और पहले वाली सीमान्त भूमि अब पूर्व-सीमान्त भूमि (intra marginal land) हो जायेगी और इसे भी अब लगान प्राप्त होने लगेगा। नयी सीमान्त भूमि की लागत पहली सीमान्त भूमि की अपेक्षा अधिक होगी, अब मूल्य नयी सीमान्त भूमि की ऊँची लागत के बराबर होगा अर्थात् मूल्य बढ़ जायेगा। मूल्य बढ़ जाने से श्रेष्ठ भूमियों की लागतों में तथा मूल्य में अन्तर बढ़ जायेगा अर्थात् लगान बढ़ जायेगा। स्पष्ट है कि मूल्य बढ़ने से लगान बढ़ जाता है क्योंकि कृषि की सीमा (margin of cultivation) आगे को खिसकती है। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत घटती है तो कृषि की सीमा पीछे को खिसकती है अर्थात् सीमान्त भूमि की लागत तथा श्रेष्ठ भूमियों की लागतों में अन्तर कम होता है, अर्थात् लगान कम हो जाता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रिकार्डो के अनुसार लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता बल्कि कीमत लगान को प्रभावित करती है, कीमत के बढ़ने-घटने से लगान बढ़ता-घटता है।

(ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत (View of Modern Economists)

आधुनिक अर्थशास्त्री मूल्य तथा लगान के सम्बन्ध पर रिकार्डो के मत से सहमत नहीं हैं; उनके अनुसार, रिकार्डो का यह विचार उचित नहीं है कि लगान सदैव मूल्य को प्रभावित नहीं करता।

---

[21] "Corn is not high because rent is paid, but rent is paid because corn is high."

लगान मूल्य को प्रभावित करता है या नहीं यह इस पर निर्भर करेगा कि हम लगान को अर्थव्यवस्था के किस भाग की दृष्टि से देखते हैं—एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से या एक उद्योग की दृष्टि से या समस्त समाज (अर्थात् समस्त अर्थव्यवस्था) की दृष्टि से। इन तीनो स्थितियो मे लगान तथा मूल्य के सम्बन्ध की विवेचना निम्न प्रकार है

(i) **सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से** (From the point of view of the society as a whole)—आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार, रिकार्डो का यह विचार कि लगान मूल्य को प्रभावित नही करता, तब उचित कहा जा सकता है जबकि भूमि को सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से देखा जाय। सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से भूमि प्रकृति का उपहार है, उसकी कुल पूर्ति स्थिर है, उसकी हस्तान्तरण आय अर्थात् अवसर लागत (transfer earning or opportunity cost) शून्य होती है क्योकि समाज की दृष्टि से भूमि को प्रयोग मे या अस्तित्व (existence) मे लाने के लिए कोई न्यूनतम पूर्ति मूल्य (अन्य साधनो की भांति) नही देना पडता। अत सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से भूमि की समस्त आय एक बचत (surplus) है अर्थात् लगान है और इसलिए वह लागत मे प्रवेश नही करती और मूल्य को प्रभावित नही करती।

(ii) **एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से** (From the point of view of an individual producer)—एक व्यक्तिगत उत्पादक एक कृषक (cultivator) हो सकता है या एक फर्म। एक उत्पादक जो कीमत भूमि, श्रम, पूंजी, इत्यादि साधनो को अपने व्यवसाय मे प्रयोग मे लाने के लिए देता है (और इस कीमत मे लगान का अश होता है जोकि साधन अपनी सीमितता (scarcity) के कारण प्राप्त करते है) वह कीमत इसके लिए लागत है जिसे वह वस्तु की कीमत मे से निकालना चाहेगा। यदि उत्पादक साधनो को बाजार मूल्य नहीं देता, जिनमे कि इन साधनों का लगान शामिल होता है, तो इसको इन साधनो की सेवाएँ प्राप्त नही हो पायेंगी क्योकि वे साधन दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरण (transfer) हो जायेंगे। अत एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से लगान लागत का अश होता है और मूल्य को प्रभावित करता है।[22]

[परन्तु यहां पर यह ध्यान रखने की बात है कि उत्पादक या फर्म को प्रयोग मे लाये जाने वाले सभी साधनो की लागत के ऊपर कोई अतिरिक्त लाभ (excess profit) प्राप्त होता है तो वह लाभ फर्म के स्वय के लिए लगान है। इस प्रकार के अतिरिक्त लाभ (अर्थात् फर्म को प्राप्य लगान) फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओ के मूल्यो को निर्धारित नही करते, बल्कि वे इन मूल्यो के परिणाम होते हैं।][23]

(iii) **एक उद्योग की दृष्टि से** (From the point of view of an industry)—भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को लगान कहा जा सकता है। भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को हम दो भागो मे बांट सकते हैं—(i) हस्तान्तरण आय अर्थात् अवसर लागत, तथा (ii) अवसर लागत के ऊपर आधिक्य (surplus)। उत्पादको को भूमि को उद्योग मे बनाये रखने के लिए एक न्यूनतम कीमत (अर्थात् अवसर लागत) देनी पडेगी नही तो वह भूमि दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित हो जायेगी, अर्थात् उद्योग के लिए भूमि की अवसर लागत या हस्तान्तरण आय लागत का अग होगी, परन्तु अवसर लागत के ऊपर आधिक्य या बचत (जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री लगान कहते

---

[22] For the individual firm the part of the price which it has to pay for land, labour capital or entrepreneurship which represents the economic rent accruing to these factors because of their relative scarcity is indeed part of the firm's cost of production Unless it pays the market price, which includes the economic rent of these factors, the firm will not be able to acquire the factor services which it must have in order to operate Since these economic rents are part of the individual firm's costs of production, they also help to determine the prices of the products produced by the firm

[23] It should be noted, however that any excess profit earned by the firm over and above the cost of all the factors of production which it uses is an economic rent to the firm itself. Such excess profits do not help determine the prices at which the firm sells its products, but instead, they result from these prices

है) लागत का अंग नहीं होगी। स्पष्ट है कि एक उद्योग की दृष्टि से भूमि के लिए दिये गये कुल भुगतान में से वह भाग जो कि अवसर लागत या हस्तान्तरण आय है लागत का अंग है और मूल्य को प्रभावित करता है, परन्तु वह भाग जोकि अवसर लागत के ऊपर आधिक्य है लागत का अंग नहीं होता और इसलिए मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि स्वयं मूल्य से प्रभावित होता है।[24] दूसरे शब्दों में, एक उद्योग की दृष्टि से भूमि की आय (अर्थात् लगान) आंशिक रूप से 'मूल्य निर्धारक' (partly price determining) तथा आंशिक रूप से मूल्य द्वारा निर्धारित (partly price determined) होती है।

मजदूरी, ब्याज तथा लाभ में लगान तत्त्व
(RENT ELEMENT IN WAGES, INTEREST AND PROFIT)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के हाथ में लगान सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त (general theory) बन जाता है। दूसरे शब्दों में लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नहीं होता बल्कि उत्पत्ति के अन्य साधन भी लगान अर्जित कर सकते हैं। एक साधन को वर्तमान प्रयोग में बनाये रखने के लिए एक न्यूनतम भुगतान देना होगा जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री साधन का 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' (minimum supply price) या उसकी अवसर लागत (opportunity cost) कहते हैं। इस 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' या 'अवसर लागत' के ऊपर आधिक्य (surplus or excess) लगान होता है और इस दृष्टि से प्रत्येक साधन की आय में लगान तत्त्व को ज्ञात किया जा सकता है।

१ मजदूरी में लगान तत्त्व

किसी देश (जैसे अमरीका) में श्रमिकों की अपेक्षाकृत कमी मजदूरी को उस दर से पर्याप्त ऊँची दर देती है जिस पर कि श्रमिक अब भी कार्य करने को तत्पर होंगे, दूसरे शब्दों में, श्रमिकों को उनके 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' अर्थात् अवसर लागत (minimum supply price, *i e*, opportunity cost) से अधिक प्राप्त होता है और उनकी मजदूरी में यह आधिक्य (surplus) ही लगान है। इसका कारण है कि श्रमिकों की पूर्ति बेलोचदार (inelastic) है अथवा श्रमिकों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार नहीं है।

प्रबन्ध सम्बन्धी श्रम (managerial labour) या उच्च कोटि के कुशल श्रमिकों के वेतन या मजदूरी में भी लगान तत्त्व होता है। एक कुशल मैनेजर को वर्तमान व्यवसाय में ५,००० रु० प्रतिमाह मिलते हैं जबकि किसी दूसरे व्यवसाय में उसको ४,००० रु० प्राप्त हो सकते हैं, इस वर्तमान व्यवसाय से उसे अपनी अवसर लागत के ऊपर १,००० रु० अधिक प्राप्त होते हैं और यह आधिक्य उसके वर्तमान वेतन ५,००० रु० में लगान तत्त्व है। इसी प्रकार एक कुशल हॉकी (Hockey) के खिलाड़ी को हॉकी खेलने से ३,००० रु० प्रति माह प्राप्त होते हैं जबकि किसी दूसरे कार्य में उसको केवल १,००० रु० मिल सकते हैं अतः २,००० रु० का आधिक्य इस खिलाड़ी की मजदूरी में लगान तत्त्व है। अतः सेम्युलसन (Samuelson) के शब्दों में, 'असाधारण कुशल' व्यक्तियों की ऊँची आयों में से अधिकांश को शुद्ध आर्थिक लगान कहा जा सकता है।'[25]

२. ब्याज में लगान तत्त्व

बचतकर्ता जोकि अपनी बचतों को प्रत्यक्ष रूप में या बैंकिंग प्रणाली द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से ऋण या उधार देते हैं वे एक ब्याज की दर प्राप्त करते हैं जो कि अधिकांश रूप से बचतों की कमी की सूचक होती है। ब्याज का वह आधिक्य, जोकि उस ब्याज दर से अधिक है जिस पर

---

[24] माना एक उद्योग में एक भूमि के टुकड़े को १०० रु० का भुगतान मिलता है तथा भूमि की अवसर लागत ७० रुपये है। भूमि की कुल आय १०० रुपये में से ७० रुपये लागत का अंश है जो कि मूल्य को प्रभावित करता है, तथा शेष (१००−७०)=३० रुपये अवसर लागत के ऊपर आधिक्य या बचत है जो कि मूल्य को प्रभावित नहीं करता।

[25] "Most of the high earnings of outstanding individuals can probably be classified as pure economic rent."

एवं बचतकर्ता अपनी बचत को उधार देने के लिए ठीक तत्पर होता है, वास्तव में आर्थिक लगान है। यह इस कारण उत्पन्न होता है क्योंकि बचतों की पूर्ति ब्याज दर के उत्तर (response) में अपेक्षाकृत बेलोचदार होती है।[36]

सरल शब्दों में, एक न्यूनतम ब्याज दर (माना ८%) पर एक बचतकर्ता अपनी बचत को उधार देने को तत्पर है, परन्तु बाजार में यदि उसे इस न्यूनतम ब्याज दर से अधिक ब्याज दर (माना १०%) प्राप्त होती है तो ब्याज दर का आधिक्य (अर्थात् २%) लगान तत्त्व होगा।

२ लाभ में लगान तत्त्व

कुछ साहसियों की संगठन तथा सौदा करने की योग्यता (organising and bargaining ability) अन्य साहसियों से बहुत अधिक होती है और परिणामस्वरूप ये अधिक योग्य साहसी, अन्य साहसियों की तुलना में, 'अधिक अतिरिक्त लाभ' (excess profit) प्राप्त करते हैं जो कि लगान कहा जा सकता है। कभी-कभी इसे 'योग्यता का लगान' (rent of ability) भी कहा जाता है।

लगान के आधुनिक सिद्धान्त की दृष्टि से लाभ में लगान के तत्त्व को इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। सामान्य लाभ के ऊपर आधिक्य (excess) को 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit) कहते हैं। अतिरिक्त लाभ का कुछ भाग सामान्यीकृत रूप में (in the generalized sense) लगान को बताता है। अतिरिक्त लाभ का कुछ भाग जो कि नयी वस्तुओं के श्रीगणेश या उत्पादन की नयी रीतियों के प्रयोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है अथवा जो कि अन्य साधनों की सेवाओं को उनके वास्तविक मूल्य (true worth) से कम भुगतानों पर प्राप्त कर सकने की साहसी की योग्यता के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है उस भुगतान को बताता है जो कि साहसी के कार्य के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है (अर्थात् लाभ को बताता है।) इस मात्रा से अधिक लाभ आर्थिक लगान है जो कि साधन-साहसी अपेक्षाकृत सीमितता या कमी के कारण प्राप्त करता है।[37]

लगान तथा लाभ
(RENT AND PROFIT)

लाभ अनिश्चितता झेलन (uncertainty bearing) का पुरस्कार है। विस्तृत रूप में लाभ कुल आगम (या औसत आगम) तथा कुल लागत (या औसत लागत) में अन्तर है, इस अन्तर का स्रोत (source) कुछ भी हो सकता है। यदि लाभ ऋणात्मक है तो हम उन्हे हानि कहते हैं। किसी समय पर एक फर्म के लाभों में विभिन्न बातें शामिल हो सकती हैं, जैसे—आभास-लगान, आकस्मिक उच्चावचनों (random fluctuations) के कारण आगमों (revenues) तथा लागतों (costs) में अन्तर, एकाधिकारी लाभ तथा साधनों से हटाये हुए लगान। एक पर्याप्त लम्बे समय के अन्तर्गत इनमें से बहुत-सी बातें एक-दूसरे को नष्ट कर देती हैं या उनमें स्वयं अपने आप संशोधन (corrections) हो जाते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लाभ एक विस्तृत शब्द है और लगान उसका एक अंग हो सकता है।

---

[36] "Savers who lend their savings to others either directly or through the banking system will receive a rate of interest which reflects in part the scarcity of savings. An interest return in excess of the rate which would have just induced a saver to lend his savings is in effect an economic rent. It results because the supply of savings is relatively inelastic with respect to the interest rate."

[37] "Part of what is called *excess profits—profits in excess of a normal return on invested* capital—represent economic rent in the generalized sense of the term. Some of the excess profits which result from the introduction of new products or of new techniques of production or which result from the entrepreneur's ability to acquire the services of other factors of production for payment which are less than the true worth of these factors to the firm, represent a payment which is necessary to call forth the existing level of entrepreneurial activity. Profits in excess of this amount are an economic rent which the entrepreneurial factor of production is able to earn by virtue of its relative scarcity."

लाभ तथा लगान मे मुख्य अन्तर इस प्रकार हैं :

(१) लाभ अनिश्चितता झेलने (uncertainty bearing) का पुरस्कार है जबकि लगान किसी साधन की सीमितता (scarcity or shortage) का परिणाम है अर्थात् लगान तब उत्पन्न होता है जबकि साधन की पूर्ति 'बेलोचदार' (inelastic) है या 'पूर्ण लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) है। दूसरे शब्दों म, लाभ तथा लगान मे एक आधारभूत भेद उनके 'उत्पन्न होने के कारण या स्रोत मे अन्तर मे निहित है। शुद्ध लाभ (pure profit) एक उत्पत्ति के साधन की सीमितता या कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न नही होगा, जबकि आर्थिक लगान सीमितता के कारण उत्पन्न होता है। लाभ अनिश्चितता झेलने के कारण उत्पन्न होता है।[22]

(२) लाभ म लगान तत्त्व हो सकता है। सामान्य लाभ के ऊपर आधिक्य (excess) को 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit) या लाभ' (profit) कहते हैं। अतिरिक्त लाभ का कुछ भाग सामान्यीकृत रूप मे (in the generalized sense) लगान को बताता है। अतिरिक्त लाभ का कुछ भाग जो कि नयी वस्तुओ के श्रीगणेश या उत्पादन की नयी रीतियो के प्रयोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है अथवा जो कि अन्य साधनो की सेवाओ को उनके वास्तविक मूल्य (real worth) से कम भुगतानो पर प्राप्त कर सकने की साहसी की योग्यता के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है उस भुगतान को बताता है जो कि साहसी के कार्य के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है (अर्थात् लाभ को बताता है।) इस मात्रा से अधिक लाभ आर्थिक लगान है जो कि साधन-साहसी अपेक्षाकृत सीमितता या कमी के कारण प्राप्त करता है।[23]

(३) लाभ तथा लगान म कुछ सामान्य अन्तर (general difference) भी हैं : (i) लाभ ऋणात्मक (negative) भी हो सकते हैं और ऋणात्मक लाभो को हानि कहा जाता है, जबकि लगान ऋणात्मक नही हो सकते है। (ii) लगान (तथा अन्य पुरस्कारो) की तुलना म लाभ मे उतार चढाव (fluctuations) अधिक होते है। तेजी (boom) मे लाभ, लगान (तथा अन्य पुरस्कारो) की अपेक्षा अधिक तेजी से बढते हैं तथा मन्दी (depression) मे बहुत तेजी से गिरते हैं। (iii) लाभ एक बची हुई आय (residual income) होती है जबकि लगान (तथा अन्य पुरस्कार) अनुबन्धीय तथा निश्चित भुगतान (contractual and certain payments) होते हैं। लाभ की मात्रा इस पर निर्भर करती है कि भविष्य म उत्पादित वस्तु की बिक्री कैसी है।

क्या लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि के सभी टुकडे एकसमान उपजाऊ हैं तथा स्थिति की दृष्टि से भी एकसमान अच्छे हैं ?

(WILL THE RENT ARISE IF ALL THE PLOTS OF LAND ARE EQUALLY FERTILE AND EQUALLY FAVOURABLY SITUATED ?)

लगान उत्पादन की लागत के ऊपर बचत है। रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार लगान सीमान्त भूमि (marginal land), अथवा श्रम तथा पूँजी की सीमान्त मात्रा (marginal dose), की लागत के ऊपर बचत है, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय (opportunity cost or transfer earning) के ऊपर बचत है। यदि भूमि के सभी टुकडे एकसमान उपजाऊ है तथा स्थिति की दृष्टि से सभी एकसमान अच्छे हैं तो भी लगान उत्पन्न होगा जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है

(1) गहरी खेती के अन्तर्गत उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील होने के परिणामस्वरूप लगान उत्पन्न होगा। भूमि से उत्पादित वस्तु का मूल्य श्रम तथा पूँजी की 'सीमान्त मात्रा'

---

[22] The fundamental difference between profit and rent lies in the difference between the cause or source of their emergence A pure profit will not arise from the shortage or scarcity of a factor of production while an economic rent does Profit emerges as a result of uncertainty bearing

[23] इस विषय-सामग्री को पृष्ठ ३७ पर पहले दे चुके है, केवल विद्यार्थियो की सुविधा के लिए दुबारा 'लाभ तथा लगान मे अन्तर' बताने के सन्दर्भ मे दे दिया गया है।

(marginal dose) की लागत के बराबर होगा। परन्तु उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशील होने के कारण श्रम तथा पूंजी की पहले की मात्राएं अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त मात्राएं' (intra-marginal doses) सीमान्त मात्रा से अधिक उत्पादन देती हैं। इस प्रकार भूमिपति को 'पूर्व-सीमान्त मात्राओं' पर, 'सीमान्त मात्रा' की तुलना मे, बचत प्राप्त होती है जो कि लगान है।

(ii) 'दुर्लभता लगान' (scarcity rent) उत्पन्न हो सकता है। भूमि के सभी टुकडो के समान उपजाऊ तथा स्थिति की दृष्टि से एकसमान अच्छे होने पर भी लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि की कुल पूर्ति उसकी माँग की तुलना मे सीमित है।

(iii) भूमि अनेक प्रयोगो मे लायी जा सकती है। माना, यदि एक भूमि के टुकड़े पर चने का उत्पादन किया जा सकता है तो उस भूमि के टुकड़े की 'अवसर लागत' (या हस्तान्तरण आय) के ऊपर कोई 'आधिक्य' (surplus) अर्थात् लगान प्राप्त नही होता। माना कि भूमिपति उस टुकडे पर गेहूँ का उत्पादन करता है, उस टुकडे की अवसर लागत पर उसे २० रु० का आधिक्य प्राप्त होता है जो कि लगान है। स्पष्ट है कि भूमिपति उस भूमि के टुकडे को गेहूँ के उत्पादन मे लगायेगा। यदि एक काश्तकार (cultivator) उस भूमि के टुकडे पर चने का उत्पादन करना चाहता है तो उसे, चाहे भूमि की उर्वरता (fertility) या स्थिति कुछ भी हो, भूमिपति को 'अवसर लागत + २० रु०' अवश्य देना होगा नही तो यह भूमि दूसरे प्रयोग (अर्थात् गेहूँ के उत्पादन) मे हस्तान्तरित हो जायेगी, २० रु० का आधिक्य भूमिपति के लिए लगान है। स्पष्ट है कि लगान 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' पर आधारित है और यह भूमि के एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे 'हस्तान्तरण की सीमा' (margin of transference) पर उत्पन्न होता है।

आर्थिक उन्नति तथा लगान
(ECONOMIC PROGRESS AND RENT)

एक भूमि के टुकडे का लगान इस भूमि की उत्पादन-लागत तथा सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत का अन्तर होता है। आर्थिक उन्नति खेती के सीमान्त (margin of cultivation) को प्रभावित करके लगान को प्रभावित करती है। विभिन्न क्षेत्रो मे आर्थिक उन्नति लगान को निम्न प्रकार से प्रभावित करती है

(१) कृषि मे उन्नति—कृषि मे उन्नति का अर्थ है कि कृषि-क्षेत्रो में नयी उत्पादन-रीतियो, नवीनतम यन्त्रो और मशीनो, उन्नत बीज, खाद, इत्यादि का प्रयोग करके उत्पादकता को बढाना।

(i) यदि कृषि उन्नति सभी भूमियो को समान रूप से प्रभावित करती है तो सभी भूमियो की उत्पादकता मे वृद्धि होगी। यदि कृषि उपज की माँग समान रहती है तो मूल्य गिरेगा (क्योंकि उत्पत्ति अधिक होगी), परिणामस्वरूप जो भूमियाँ जोत की सीमा पर थी वे जोत से बाहर निकल जायेंगी तथा जो भूमियाँ कृषि उन्नति से पहले 'पूर्व सीमान्त भूमियाँ' (intra marginal lands) थी वे सीमान्त भूमियाँ हो जायेंगी। इन सबके परिणामस्वरूप श्रेष्ठ भूमियो तथा सीमान्त भूमियो की लागत मे अन्तर कम हो जायेगा और इसलिए लगान कम हो जायेगा। दूसरे शब्दो मे, भूमि का सीमान्त पीछे को खिसक जाता है और इसलिए लगान कम हो जाता है।

(ii) यदि कृषि-उन्नति केवल श्रेष्ठ भूमियो को प्रभावित करती है तो केवल इन भूमियो की उत्पादकता बढेगी। परिणामस्वरूप श्रेष्ठ भूमियो की उत्पादकता तथा सीमान्त भूमियो की उत्पादकता में अन्तर बढ जायेगा अर्थात् लगान बढ जायेगा।

(iii) यदि कृषि उन्नति केवल निम्न कोटि की भूमियो को प्रभावित करती है तो इन भूमियो की उत्पादकता बढेगी। परिणामस्वरूप श्रेष्ठ भूमियो की उत्पादकता तथा सीमान्त भूमियो की उत्पादकता मे अन्तर कम हो जायेगा अर्थात् लगान कम हो जायेगा।

(२) यातायात मे सुधार—(i) यातायात मे सुधार के कारण वह लगान कम हो जायेगा जो कि भूमियो को उनकी स्थितियो मे अन्तर होने के कारण प्राप्त होता है।

(ii) यदि यातायात मे सुधार के कारण देश विशेष मे कृषि उपज का आयात बढ जाता है तो पूर्ति मे वृद्धि के कारण देश मे कृषि उपज का मूल्य घट जायेगा, मूल्य घट जाने से खेती की

सीमा पीछे को खिसक जायेगी (अर्थात् पूर्व सीमान्त भूमियाँ, अब सीमान्त भूमियाँ हो जायेंगी) और इसलिए आयात करने वाले देश में लगान कम हो जायगा।

(iii) यातायात में सुधार के कारण जिस देश से कृषि-उपज का निर्यात होगा उस देश में उसका मूल्य बढ़ जायेगा मूल्य बढ़ने से खेती की सीमा आगे को खिसक जायेगी (अर्थात् जो भूमियाँ सीमान्त भूमियाँ थी वे अब पूर्व-सीमान्त भूमियाँ हो जायेंगी तथा नयी भूमियाँ सीमान्त भूमिया बन जायेंगी) और परिणामस्वरूप निर्यात करने वाले देश में लगान बढ़ जायेगा।

(३) जीवन-स्तर में वृद्धि—आर्थिक विकास के कारण देश में आय का स्तर ऊँचा होगा, आय में वृद्धि के कारण खाद्यान्न तथा अन्य कृषि उपज की कुल माँग में वृद्धि होगी, मूल्य बढ़ेंगे, खेती की सीमा आगे को खिसकेगी तथा लगान में वृद्धि होगी।

जनसंख्या में वृद्धि—जनसंख्या में वृद्धि के कारण कृषि उपज की माँग बढ़ेगी, माँग में वृद्धि के कारण वर्तमान भूमियों पर अधिक गहराई से खेती की जायेगी तथा निम्न कोटि की नयी भूमियाँ भी जोत में लायी जायेंगी अर्थात् खेती की सीमा आगे को खिसकेगी और इसलिए लगान में वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त जनसंख्या में वृद्धि के कारण शहरों का विकास होगा और अकृषि कार्यों (non-agricultural uses) में भूमि का प्रयोग किया जायेगा, इससे कृषि के लिए भूमि की कमी पड़ेगी तथा भूमि के लगान बढ़ेंगे।

अध्याय २ की परिशिष्ट (APPENDIX TO CHAPTER 2)

आभास-लगान के आधुनिक दृष्टिकोण का चित्र द्वारा निरूपण

(DIAGRAMMATICAL REPRESENTATION OF THE MODERN VERSION OF QUASI-RENT)

आभास-लगान को चित्र ७ द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र में SRAC (Short-run average cost) अल्पकालीन औसत लागत रेखा है SRAVC (*short-run average* variable cost) अल्पकालीन औसत परिवर्तनशील लागत रेखा है, तथा SRMC (short-run marginal cost) अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखा है उद्योग विशेष में कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है, माना कि वह P_1 है। उद्योग में प्रत्येक फर्म इस मूल्य P_1 को दिया हुआ मान लेगी अर्थात् फर्म के लिए कीमत रेखा (या AR-रेखा) P_1M होगी। इस दशा में फर्म OB मात्रा का उत्पादन करेगी क्योंकि इस मात्रा पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, इसका कारण है कि बिन्दु A पर लाभ को अधिकतम करने की दशा MR=MC पूरी हो रही है।

[नोट—चित्र में सुधार, चित्र में बिन्दु A रह गया है, जहाँ पर SRMC तथा P_1M रेखाएँ काटती हैं वहाँ पर बिन्दु A है।]

जब कीमत P_1 (या AB) है तो—

प्रति इकाई आभास लगान (Quasi-rent per unit)

$=$औसत आगम (AR)—औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)

$= AB - BK$

$= AK$

कुल आभास लगान (Total Quasi-rent)[30]

$=$प्रति इकाई आभास-लगान $\times$ कुल उत्पादन

$= AK \times OB$

$= AK \times LK$ ($OB = LK$)

$= AKLP_1$
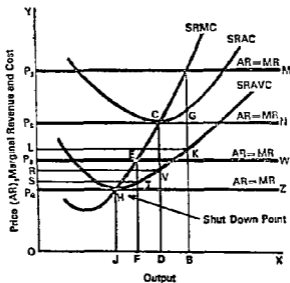
चित्र—७

चित्र से स्पष्ट है कि प्रति इकाई आभास लगान AK के दो भाग हैं : स्थिर लागत[31] (प्रति इकाई) GK तथा लाभ (प्रति इकाई) AG, दूसरे शब्दों में, **यहाँ पर आभास लगान स्थिर लागत से अधिक है।**

---

[30] कुल आभास-लगान को इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं :

कुल आभास-लगान$=$कुल आगम (Total Revenue)

—कुल परिवर्तनशील लागत (Total variable cost)

$= OBAP_1 - OBKL$

$= AKLP_1$

[31] ध्यान रहे कि $AC = AFC + AVC$ or $AC - AVC = AFC$

अत AC तथा AVC का अन्तर AFC होता है, चित्र से स्पष्ट है कि OB उत्पादन पर AC तथा AVC के बीच अन्तर खड़ी दूरी GK औसत स्थिर लागत अथवा स्थिर लागत प्रति इकाई (AFC) को बताती है।

यदि कीमत P_2 (या CD) है तो,

प्रति इकाई आभास-लगान = औसत आगम (AR) — औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)

= CD — VD

= VC

कुल आभास-लगान = VC × RV

RVCP₂

चित्र से स्पष्ट है कि इस स्थिति मे प्रति इकाई आभास-लगान VC तथा प्रति इकाई स्थिर लागत (अर्थात् औसत स्थिर लागत) दोनो बराबर हैं, दूसरे शब्दो मे, यहाँ पर आभास-लगान स्थिर लागत के बराबर है।

यदि कीमत P_3 है तो,

प्रति इकाई आभास-लगान ET

कुल आभास लगान = ET × ST

= STEP₃

चित्र से स्पष्ट है कि इस स्थिति मे प्रति इकाई आभास लगान ET कम है 'SRAC तथा SRAVC के बीच खडी दूरी से' अर्थात् ET कम है औसत स्थिर लागत (AFC) से, इस प्रकार यहाँ पर आभास-लगान स्थिर लागत से कम है।

यदि मूल्य (अर्थात् AR) औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम है अर्थात् चित्र मे मूल्य P_4 (या HJ) से कम है तो फर्म अल्पकाल मे उत्पादन बन्द कर देगी। परिणामस्वरूप बिन्दु H 'बन्द होने का बिन्दु (shut-down point) कहा जाता है और इस मान्यता के आधार पर यह ध्यान देने वाली बात है कि आभास लगान कभी ऋणात्मक (negative) नही हो सकते,[३३] कम से कम वे शून्य (zero) हो सकते हैं जैसा कि चित्र मे बिन्दु H पर है क्योकि इस बिन्दु पर AR तथा AVC बराबर हैं।

अत हम सामान्यीकरण (generalization) कर सकते हैं कि आभास लगान स्थिर लागत से अधिक, कम या उसके बराबर हो सकता है। जब आभास-लगान स्थिर लागत से अधिक होता है तो फर्म लाभ प्राप्त करती है। यदि आभास-लगान स्थिर लागत से कम होता है तो फर्म को हानि होती है। यदि आभास-लगान स्थिर लागत के बराबर होता है तो फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है अर्थात् फर्म को 'विनियोग पर सामान्य प्रतिफल (normal return on investment) प्राप्त होता है।

प्रश्न

१ आर्थिक लगान, ठेका लगान तथा अत्यधिक लगान को समझाइए। क्या भूमि के अतिरिक्त अन्य दूसरे घटको (factors) को भी लगान प्राप्त होता है।
Explain economic rent contract rent and rack renting Do other factors, besides, land, also enjoy rent? *(Raj, 1969, 1968)*

---

[३३] प्रो० फ्लक्स (Flux) के अनुसार, अल्पकाल मे सम्पत्ति (property) से प्राप्त समस्त आय आभास-लगान नही होती बल्कि आभास लगान तो केवल सामान्य प्रतिफल (normal return) अर्थात् सामान्य लाभ के ऊपर अतिरेक (surplus) होता है। यदि आय सामान्य प्रतिफल से कम है तो प्रो० फ्लक्स इसे 'ऋणात्मक आभास लगान' (negative-quasi rent) कहते हैं। परन्तु प्रो० फ्लक्स के विचार आधुनिक अर्थशास्त्रियो को मान्य नही है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूंजीगत वस्तु या किसी साधन की समस्त अल्पकालीन आय जो कि कुल परिवर्तनशील आय के ऊपर अतिरेक है आभास लगान है चाहे वह 'सामान्य प्रतिफल' से अधिक है या कम। इसके अतिरिक्त आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार आभास लगान कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकते क्योकि यदि कीमत (अर्थात् AR) औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम होती है तो फर्म अल्पकाल मे भी उत्पादन को बन्द कर देगी।

२. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।
Examine critically the Ricardian Theory of Rent
(*Agra, Bhagalpur*, 1966 ; *Punjab*, 1967 ; *Sagar*, 1969)

अथवा

"लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो स्वामी को भूमि की मौलिक तथा अक्षय शक्तियों के प्रयोग के बदले में दिया जाता है।" टीका कीजिए।
"Rent is that part of the produce of the earth which is paid to th landlord for the original and indestructible powers of the soil" Comment.
(*Vik. B. Com., II*, 1976)

अथवा

"लगान भूमि की मूल तथा अविनाशी शक्तियों के लिए भुगतान है।" विवेचना कीजिए।
"*Rent is paid for* the original and indestructible power of the soil." Discuss.
(*Indore*, 1966)

३. "एक अर्थ में सभी लगान दुर्लभता लगान हैं और सभी लगान भेदात्मक लगान हैं।" विवेचना कीजिए।
"In a sense all rents are scarcity rents and all rents differential rents" Discuss.

४. लगान के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Examine critically the modern theory of rent.
(*Kumaun, B. A. I*, 1975 ; *Gorakhpur*, 1967 , *Bhagalpur*, 1966)

अथवा

"लगान विशिष्टता का पारितोषण होता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
"Rent is a reward for specificity." Critically examine this statement (*Raj*, 1968)

अथवा

"लगान भूमि के लिए भुगतान नहीं है बल्कि वह साधनों में 'भूमि-तत्त्व' के लिए भुगतान है।" विवेचना कीजिए।
"Rent is not a payment for land but for the 'land-element' in factor." Discuss
(*Agra, B. A. II*, 1976)

अथवा

"लगान एक बचत या अतिरेक (surplus return) है जो कि एक उत्पत्ति का साधन एक उद्योग में अपनी अवसर लागत के ऊपर प्राप्त करता है।" स्पष्ट कीजिए।
"Rent is a surplus return which an agent of production earns in a particular industry over and above its opportunity cost." Elucidate.

अथवा

"लगान तब उत्पन्न होता है जबकि किसी साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार से कम होती है। विवेचना कीजिए।
"Rent arises when the supply of a factor of production is less than perfectly elastic." Discuss

[संकेत—'लगान के आधुनिक सिद्धान्त' की संक्षेप में पूर्ण व्याख्या कीजिए।]

५ (अ) रिकार्डो द्वारा दी गयी लगान की परिभाषा की तुलना में आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी लगान की परिभाषा किस प्रकार भिन्न है?

(ब) लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार समझाइए कि मजदूरी, ब्याज तथा लाभ में लगान-तत्त्व होता है।

(a) How does the definition of rent given by modern economists differ from that given by Ricardo

(b) According to modern theory of rent show that wages, interest and profit contain rent element.
(*Agra, B. A. II, Suppl.*, 1976)

६. लगान का आधुनिक सिद्धान्त बताइए तथा विवेचना कीजिए कि क्या मजदूरी, ब्याज व लाभ में भी कोई लगान तत्त्व समाविष्ट है।
State the modern theory of rent and discuss whether there is any 'rent element' in wages, interest and profits.
(*Jodhpur*, 1967, *Alld.*, 1968)

७. लगान के आधुनिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। रिकार्डो के लगान सिद्धान्त से यह किस प्रकार भिन्न है ?
Discuss the modern theory of rent. How does it differ from the Ricardian theory of rent ? *(Udaipur, 1968)*

८ क्या लगान का आधुनिक सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्त के उपर सुधार है ? विवेचना कीजिए।
Is the modern theory of rent an improvement on the Ricardian Theory ? Discuss

९ "लगान मूल्य को निर्धारित नहीं करता वरन् मूल्य द्वारा निर्धारित होता है।" विवेचना कीजिए।
"Rent does not determine price but is determined by price " Comment *(Tej, 1968)*

अथवा

"लगान मूल्य द्वारा निर्धारित होता है न कि मूल्य निर्धारक होता है।"
"Rent is price determined and not price determining " Discuss *(Bihar, 1966 A)*

अथवा

"अनाज का मूल्य इसलिए ऊँचा नहीं होता है क्योंकि लगान ऊँचा है, बल्कि ऊँचे लगान इसलिए दिये जाते हैं क्योंकि अनाज का मूल्य ऊँचा होता है।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
"Price of corn is not high because rent is high, but rent is high because corn is high" Critically examine this statement *(Garwal, B Com. II, 1976)*

१०. आभास लगान के विचार की व्याख्या तथा विवेचना कीजिए।
Exaplain and discuss the concept of quasi-rent. *(Punjab)*

११. आभास लगान क्या है ? यह आर्थिक लगान तथा ब्याज से किस प्रकार भिन्न होता है ?
What is quasi-rent ? How does it differ from economic rent and interest ?

१२ भाटक (rent) तथा लाभ में क्या अन्तर है ? किस प्रकार प्रत्येक आमदनी में भाटक का कुछ अंश विद्यमान रहता है ?
What is the difference between rent and profit ? How is some element of rent present in every income ? *(Gorakhpur, 1966)*

अथवा

'लगान तथा लाभ' दोनों एक से लगते हैं क्योंकि दोनों ही अतिरेक (surplus) हैं लेकिन उनमें अन्तर है क्योंकि सब आयों (incomes) में लगान हो सकता है पर लाभ नहीं। विवेचना कीजिए।
'Rent and Profits are alike because both are surplus, but they differ because there might be rent in all incomes but not profits.' Discuss. *(Kanpur, B A II, 1976)*

१३. "भूमि का लगान बड़ी जाति (large genus) की एक उपजाति (species) है।" समझाइए।
"The rent of land is a species of a large genus" Explain. *(Bihar, 1964)*

[संकेत—'आभास-लगान', 'लगान' तथा 'ब्याज' में अन्तर के सम्बन्ध में पहले मार्शल के दृष्टिकोण को बताइए और बाद में आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण को भी बताइए।]

१४. आभास-लगान के विचार की व्याख्या कीजिए। अपने उत्तर को एक उचित चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए।
Explain the concept of quasi-rent. Illustrate your answer with a suitable diagram *(Bihar)*

[संकेत—चित्र के लिए इस अध्याय की परिशिष्ट (Appendix) देखिए।]

१५. विवेचना कीजिए कि लगान किस प्रकार निम्न बातों से प्रभावित होता है :
(अ) यातायात व संवादवहन के साधनों में विकास, (ब) जनसंख्या में वृद्धि, (स) उत्पादन की रीतियों में सुधार, एवं (द) सामान्य आर्थिक प्रगति।
Discuss how rent is affected by the following :
(a) Development in the means of transport and communications, (b) Increase in population, (c) Improvement in the methods of production, and (d) General economic progress. *(Kanpur, B A II, 1976, Agra, 1972)*

3 ब्याज
[INTEREST]

ब्याज का अर्थ तथा स्वभाव
(MEANING AND NATURE OF INTEREST)

ब्याज की परिभाषा (Definition of Interest)

ब्याज पूँजी या ऋण (loan) या ऋण-योग्य कोषो (loanable fund) के प्रयोग के लिए पुरस्कार है। इसी को अर्थशास्त्रियो ने विभिन्न शब्दो मे व्यक्त किया है। मार्शल के अनुसार, 'ब्याज किसी बाजार मे पूंजी के प्रयोग की कीमत है।' मेयर्स (Meyers) के अनुसार, "ब्याज वह कीमत है जो कि ऋण-योग्य कोषो के प्रयोग के लिए दी जाती है।' कींज (Keynes) ब्याज को विशुद्ध मौद्रिक बात मानते है और ब्याज को तरलता के त्याग का पुरस्कार (reward for parting with liquidity) कहते है। उपर्युक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि ब्याज द्रव्य या पूंजी से सम्बन्धित है।

शुद्ध ब्याज तथा कुल ब्याज (Net Interest and Gross Interest)

अर्थशास्त्री 'शुद्ध ब्याज' और 'कुल ब्याज' मे अन्तर करते है। 'शुद्ध ब्याज' वह है जो कि केवल पूंजी के प्रयोग के लिए दिया जाता है।

एक ऋणी (borrower) द्वारा पूंजी या ऋण के प्रयोग के लिए ऋणदाता (lender) को जो भुगतान दिया जाता है उसे 'कुल ब्याज' कहते है। 'शुद्ध ब्याज' कुल ब्याज का एक अग है। 'कुल ब्याज' के निम्न अग (constituents) होते हैं

(i) शुद्ध ब्याज (Net interest)—केवल पूँजी या ऋण के लिए पुरस्कार ही शुद्ध ब्याज है।

(ii) जोखिम के लिए भुगतान या पुरस्कार (Payment or reward for risk)—एक ऋणदाता को ऋण देने मे कुछ जोखिम उठानी पडती है, उसे इन जोखिमो के लिए भुगतान मिलना चाहिए। जोखिम दो प्रकार की होती है—(अ) व्यावसायिक जोखिम (trade risk), जब ऋणदाता एक व्यापारी को ऋण देता है तो उसे इस बात की जोखिम रहती है कि उसको मूलधन तथा ब्याज प्राप्त होगा या नही, व्यापारी को हानि होने पर ऋणदाता केवल ब्याज ही नही बल्कि अपने मूलधन को भी खो सकता। है (ब) व्यक्तिगत जोखिम (personal risk), यदि ऋण लेने वाला व्यक्ति बेईमान हो जाता है तो ऋणदाता को ब्याज, मूलधन या दोनो के न मिलने की जोखिम रहती है।

अत एक ऋणदाता को उपर्युक्त जोखिम के लिए भुगतान या पुरस्कार मिलना चाहिए।

(iii) असुविधाओ के लिए भुगतान (Payment for inconvenience)—ऋणदाता को ऋण देने से कुछ असुविधाओ को भी उठाना पडता है। यह सम्भव है कि आवश्यकता के समय ऋणदाता को अपना ऋण वापस न हो, इससे उसको असुविधा होगी और अत्यधिक आवश्यकता की दशा मे उसे स्वय दूसरो से उधार लेना पडेगा। इस प्रकार की असुविधाओ के लिए ऋणदाता पुरस्कार चाहेगा।

(iv) प्रबन्ध के लिए भुगतान (Payment for management)— ऋणदाता को ऋणों के लेन-देन के सम्बन्ध में प्रबन्ध पर कुछ व्यय करना पड़ता है, जैसे— प्रत्येक ऋणी का हिसाब-किताब रखना, ऋण-वसूली के लिए तकाजा करना, ऋण समय पर न मिलने पर कानूनी कार्यवाही करना, इत्यादि। इन प्रबन्ध कार्यों के लिए ऋणदाता को भुगतान मिलना चाहिए।

ब्याज के स्वभाव के सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने की है—किसी भी अन्य साधन के पुरस्कार (reward or earning) की भाँति, ब्याज एक कीमत तथा आय का साधन दोनों है। ब्याज पूँजी या ऋण या ऋण-योग्य कोषों के प्रयोग की कीमत है। मनुष्य पूँजी का विनियोग आय प्राप्त करने के लिए करता है और यह आय ही ब्याज है।

ब्याज निर्धारण के सिद्धान्त
(THEORIES OF INTEREST DETEMINATION)

ब्याज का निर्धारण किस प्रकार होता है? इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद रहा है और इसलिए ब्याज निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त हैं। कुछ सिद्धान्त ब्याज निर्धारण में वास्तविक तत्त्वों (real factors) पर जोर देते हैं, और कुछ सिद्धान्त मौद्रिक तत्त्वों (monetary factors) पर बल देते हैं।

ब्याज निर्धारण के सिद्धान्त ये हैं—(i) ब्याज का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त, *(ii) ब्याज का प्रतीक्षा या त्याग का सिद्धान्त, (iii) एजियो या आस्ट्रियन ब्याज का सिद्धान्त,* (iv) फिशर का समय पसन्दगी सिद्धान्त, (v) ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त, (vi) ब्याज का नया क्लासीकल सिद्धान्त या उधार देय कोषों का सिद्धान्त, तथा (vii) कीन्स का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त।

ब्याज के उपर्युक्त सिद्धान्तों में से अन्तिम दो सिद्धान्त अर्थात् नया क्लासीकल सिद्धान्त (जो कि क्लासीकल सिद्धान्त का सुधरा हुआ रूप है) तथा तरलता पसन्दगी सिद्धान्त मुख्य है, अतः इन सिद्धान्तों की हम विस्तृत विवेचना करेंगे तथा अन्य सिद्धान्तों को संक्षेप में बतायेंगे। वास्तव में, *ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त 'क्लासीकल सिद्धान्त' तथा 'तरलता पसन्दगी सिद्धान्त' दोनों का* समन्वय या मिश्रण (synthesis) है, [इसको इस अध्याय की परिशिष्ट में दे दिया गया है।]

ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF INTEREST)

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज पूँजी की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होता है। उत्पादक या साहसी पूँजी की माँग करते हैं क्योंकि पूँजी में उत्पादकता होती है अर्थात् पूँजी की सहायता से वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

पूँजी पर, अन्य साधनों की भाँति, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। पूँजी की अधिक इकाइयों के प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता घट जाती है। दीर्घकाल में ब्याज की दर की *प्रवृत्ति पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की होती है।* यदि ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से अधिक है, तो पूँजी की कम मात्रा का प्रयोग किया जायेगा, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ेगी और बढ़कर वह ब्याज की दर के बराबर हो जायेगी। यदि ब्याज की दर [पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से कम है, तो पूँजी की अधिक माँग की जायेगी, पूँजी के अधिक प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरेगी और अन्त में ब्याज की दर के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि दीर्घकाल में ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है।

आलोचना—इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं

(१) ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त एकपक्षीय (one sided) है क्योंकि यह केवल पूँजी की माँग पर विचार करता है और पूँजी की पूर्ति की उपेक्षा (ignore) करता है। ब्याज के निर्धारण में पूँजी की माँग तथा पूर्ति दोनों का प्रभाव होता है।

(२) इस सिद्धान्त में माँग पक्ष की विवेचना भी अधूरी है। इस सिद्धान्त के अनुसार, पूँजी

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार पूंजी के निम्न महत्त्वपूर्ण गुण हुए

(i) पूंजी के विचार का सार है 'आय प्रदान करने वाली' (income yielding), वह 'आय उत्पादन करने वाली' (income creating) भी हो सकती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह आवश्यक रूप से आय-उत्पादन भी करे।[1]

(ii) पूंजी के अन्तर्गत केवल मनुष्यकृत धन सम्मिलित है, भूमि तथा प्राकृतिक उपहार नहीं।

(iii) पूंजी मे केवल वे ही वस्तुएं सम्मिलित होती हैं जो धन है, अर्थात् समस्त पूंजी धन होती है।

(iv) यद्यपि समस्त पूंजी धन होती है, परन्तु सारा धन पूंजी नहीं होता। धन का केवल वह भाग पूंजी होता है जो अधिक धन के उत्पादन मे सहयोग देता है।

कुछ अन्तर
(SOME DISTINCTIONS)

पूंजी तथा आय (Capital and Income)—(i) पूंजी के स्वामित्व से एक निश्चित समय मे जो प्रतिफल (return) प्राप्त होता है, उसे आय कहा जाता है। यह बात भी ध्यान रखने की है कि आय पूंजी के स्वामित्व न होने पर भी प्राप्त की जा सकती है, जैसे गरीब व्यक्ति तथा नौकर-पेशे वाले व्यक्ति (professional men) अपनी सेवाओ द्वारा आय प्राप्त करते हैं। (ii) जिस प्रकार पूंजी से आय प्राप्त की जाती है उसी प्रकार आय को भी पूंजी मे परिवर्तित किया जा सकता है, आय का वह भाग जो बचा (save) कर उत्पादन कार्यों म लगाया जाता है, पूंजी हो जाता है। (iii) पूंजी एक स्टॉक (stock) है जबकि आय एक प्रवाह (flow) है। एक दिये हुए समय पर धन का जो स्टॉक होता है, वह पूंजी कहलाता है, तथा आय एक विशेष समय से सम्बन्धित 'लाभ का प्रवाह' (flow of benefit) है।

पूंजी तथा द्रव्य (Capital and Money)—सभी द्रव्य पूंजी नहीं होता, द्रव्य का वह भाग जो और अधिक उत्पादन म प्रयोग किया जाता है पूंजी होती है। इसी प्रकार सभी पूंजी द्रव्य नहीं होती, पूंजी का कुछ भाग बिल्डिंग, मशीनो, औजारो, इत्यादि के रूप म होता है।

पूंजी तथा धन (Capital and Wealth)—समस्त धन पूंजी नहीं होता। धन का केवल वह भाग जो और अधिक उत्पादन म प्रयोग होता है पूंजी होगा। इस बात को हम दूसरी तरह से देखें तो स्पष्ट होगा कि पूंजी का धन होना आवश्यक है। अत यह कहा जाता है कि समस्त पूंजी धन है परन्तु समस्त धन पूंजी नहीं होता। बेन्हम तथा फिशर धन तथा पूंजी में कोई अन्तर नहीं करते, इनके अनुसार समस्त धन पूंजी है, परन्तु यह विचार माननीय नहीं है।

पूंजी तथा पूंजीवाद (Capital and Capitalism)—पूंजी वस्तुओ का स्टॉक, यन्त्र, मशीन, इत्यादि है, जिनसे और अधिक उत्पादन किया जाता है। पूंजीवाद समाज की एक प्रणाली को बताता है जिससे वस्तुओ के स्टॉक, यन्त्र मशीन तथा उत्पादन के अन्य साधनो पर व्यक्तिगत लोगो (private persons) का स्वामित्व होता है जिनको वे अपने लाभ के लिए प्रयोग करते हैं। जिन देशो मे व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होता वहां पर पूंजीवादी (capitalist) तो नहीं होता पर पूंजी अवश्य होती है। पूंजी उत्पादन मे सहायक होती है जबकि पूंजीवादी अपनी सम्पत्ति का उत्पादन मे प्रयोग करके आय प्राप्त करता है।

---

[1] The essence of the concept of capital is that it is income yielding if not also income creating

उदाहरणार्थ, बौण्ड या सिक्यूरिटी एक व्यक्ति के लिए आय प्रदान करती है और इसलिए पूंजी है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि बौण्ड आवश्यक रूप से आय-उत्पादन करने वाला (income-creating) भी हो। जब सरकार उत्पादक उद्देश्यो के लिए बाजार म बौण्ड बेचकर ऋण लेती है तो ये बौण्ड 'आय प्रदान करने वाले' (income-yielding) हैं और आय-उत्पादन करने वाले (income-creating) भी हैं।

technical superiority

श्रेष्ठता (technical superiority) प्राप्त होती है। इसका कारण इस प्रकार है। पूंजी उत्पादन की चक्करदार रीतियों (Round about methods) के प्रयोग को सम्भव बनाती है, परिणामस्वरूप भविष्य में वस्तुओं का अधिक उत्पादन होगा और उपयोगिता ह्रास नियम के कारण उनकी उपयोगिता कम हो जायेगी। इस प्रकार वर्तमान वस्तुएँ, भविष्य की वस्तुओं की अपेक्षा में, अधिक उपयोगी हैं।

आलोचना—इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचना है कि यह एकपक्षीय है क्योंकि यह केवल पूंजी की पूर्ति पर ही ध्यान देता है।

फिशर का समय-पसन्दगी ब्याज सिद्धान्त
(FISHER'S TIME-PREFERENCE THEORY OF INTEREST)

फिशर का समय पसन्दगी ब्याज सिद्धान्त बाम बावर्क के एजियो सिद्धान्त (Agio Theory) पर ही आधारित है, फिशर ने समय पसन्दगी पर बल दिया। फिशर तथा बाम बावर्क के सिद्धान्तों में मुख्य अन्तर इस प्रकार है बाम बावर्क ने भविष्य की वस्तुओं की तुलना में वर्तमान वस्तुओं की तकनीकी श्रेष्ठता पर अधिक बल दिया, परन्तु फिशर इसे स्वीकार नहीं करते हैं, फिशर के अनुसार यह कहना कि लोग वर्तमान आनन्द या सन्तुष्टि (present enjoyment or satisfaction) को भविष्य के आनन्द या सन्तुष्टि की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं पर्याप्त है, यदि लोग बचत करते हैं तो उन्हें वर्तमान आनन्द या सन्तुष्टि का त्याग करना पड़ेगा जो भविष्य की अपेक्षा अधिक होगा, ऐसा करने के लिए उन्हें कुछ पुरस्कार या ब्याज चाहिए। अत ब्याज समय-पसन्दगी (time preference) की क्षतिपूर्ति (compensation) है, लोगों की जितनी वर्तमान सन्तुष्टि के लिए समय पसन्दगी अधिक होगी उतनी ही ब्याज की दर ऊँची होगी, यदि वर्तमान सन्तुष्टि के लिए समय पसन्दगी कम है तो ब्याज की दर कम होगी।

फिशर के अनुसार लोग अपनी आय को वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय करने के लिए आतुर (impatient) रहते हैं। यह आतुरता अर्थात् समय पसन्दगी निम्न तत्वों पर निर्भर करती है

(i) आय का आकार (Size of income)—निर्धन व्यक्ति आय कम होने के कारण वर्तमान सन्तुष्टि को, भविष्य की सन्तुष्टि की अपेक्षा, अधिक महत्त्व देंगे अर्थात् निर्धन व्यक्तियों की समय पसन्दगी अधिक होगी अपेक्षाकृत धनी व्यक्तियों के।

(ii) आय का समयावधि में वितरण (Distribution of income over time)—वर्तमान तथा भविष्य के बीच आय वितरण पर भी समय-पसन्दगी निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में तीन दशाएँ सम्भव हैं—(अ) यदि किसी व्यक्ति की आय जीवन भर एकसमान रहती है तो समय पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता की मात्रा व्यक्ति के स्वभाव तथा आय के आकार पर निर्भर करेगी। (ब) यदि भविष्य में व्यक्ति की आय उसकी उम्र के साथ घटती है तो उसकी समय पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता कम होगी। (स) यदि भविष्य में व्यक्ति की आय उसकी उम्र के साथ बढ़ती है तो उसकी समय पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता अधिक होगी।

(iii) भविष्य में आय प्राप्ति या आय प्रयोग की निश्चितता (Certainty about the receipt of income or the use of income in future)—यदि व्यक्ति को भविष्य में अपनी आय प्राप्ति अर्थात् अपनी आय के प्रयोग के सम्बन्ध में निश्चितता है तो उसकी समय पसन्दगी अधिक होगी।

(iv) व्यक्तियों का स्वभाव (Nature of individual)—एक दूरदर्शी व्यक्ति भविष्य पर उचित ध्यान देगा और इसलिए उसकी समय पसन्दगी कम होगी, इसके विपरीत जो व्यक्ति अदूरदर्शी है तथा भविष्य के बारे में लापरवाह है उसके लिए समय पसन्दगी अधिक होगी।

आलोचना—फिशर के समय-पसन्दगी सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ अग्रलिखित हैं :

(i) यह सिद्धान्त दो मान्यताओ पर आधारित है जोकि उचित नहीं है। प्रथम, फिशर ने वर्तमान तथा भविष्य के बीच द्रव्य की क्रय शक्ति को समान मान लिया, परन्तु वास्तविक जगत मे दो समय के बीच द्रव्य की क्रय शक्ति स्थिर नहीं रहती, प्राय उसमे परिवर्तन हो जाता है। दूसरे, इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी अवास्तविक है कि बचत करने वाले व्यक्तियों की निजी परिस्थितियाँ तथा उनके स्वभाव वर्तमान तथा भविष्य के बीच समान रहते हैं।

(ii) यह सिद्धान्त एकपक्षीय (one-sided) है क्योंकि यह केवल पूंजी के पूर्ति पक्ष पर ध्यान देता है और मांग पक्ष को छोड़ देता है।

ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त
(CLASSICAL THEORY OF INTEREST)

मार्शल, पीगू, वालरस (Walras) नाइट (Knight) इत्यादि अर्थशास्त्री ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त के प्रतिपादक (propounders) हैं। यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि ब्याज के निर्धारण मे द्रव्य कोई प्रत्यक्ष भूमिका अदा नही करता है। यह सिद्धान्त ब्याज के निर्धारण मे 'उत्पादकता' (productivity) तथा 'मितव्ययिता' (thrift) जैसे वास्तविक तत्वों पर जोर देता है, इसलिए इस सिद्धान्त को 'ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त' (Real Theory of Interest) भी कहते हैं।

'पूंजीगत वस्तुओं के विनियोग के लिए बचतों की मांग' (Demand for saving to invest in capital goods) तथा 'बचतों की पूर्ति' (supply of savings) द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है। दूसरे शब्दो मे, 'पूंजी की मांग तथा 'पूंजी की पूर्ति' द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है, जहाँ पर मांग तथा पूर्ति बराबर हो जाती है वहां पर ब्याज की दर निश्चित हो जाती है।

पूंजी की मांग (Demand of Capital)

उत्पादक वर्ग द्वारा पूंजी की मांग की जाती है। दूसरे शब्दो मे, वे बचतो की मांग इसलिए करते है कि जिससे कि पूंजीगत वस्तुएं खरीद सके। पूंजीगत वस्तुओ की मांग इसलिए की जाती है क्योंकि उनसे उपभोग वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है, अर्थात् पूंजी की मांग उसकी उत्पादकता के कारण की जाती है। परिवर्तनशील अनुपातो के नियम (Law of Variable Proportions, i e, Law of Diminishing Returns) के क्रियाशील होने के कारण, किसी अन्य साधन की भांति, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) घटती जाती है यदि उसकी अधिक इकाइयो का प्रयोग किया जाता है। अन्य साधनो की तुलना मे, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध मे एक जटिलता (complexity) होती है। एक पूंजीगत वस्तु कई वर्षों तक प्रयोग मे लायी जाती है। इसलिए एक उत्पादक या साहसी को पंजीगत वस्तु को चालू रखने की लागत (maintenance cost) को निकालकर उसकी 'अनुमानित वास्तविक उत्पादकता' (expected net productivity) को ध्यान मे रखना पड़ता है।
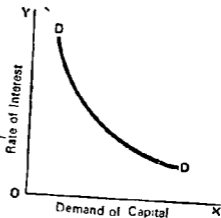
चित्र—१

पूंजी की अधिक इकाइयो के प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरती जाती है। पूंजीगत वस्तुओ के खरीदने के लिए उत्पादक बचतों की मांग करता है, बचतो के प्रयोग के लिए उसे कुछ न कुछ पुरस्कार अर्थात् ब्याज देना पड़ेगा। इसलिए एक उत्पादक पूंजी को उस बिन्दु तक प्रयोग करेगा जहाँ पर उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरकर ठीक ब्याज की दर के बराबर हो जाती है।

यदि ब्याज की दर नीची है तो पूंजी की अधिक मात्रा माँगी जायेगी; इसके विपरीत ब्याज की ऊँची दर होने पर उत्पादक पूँजी की कम मात्रा माँगेंगे। स्पष्ट है कि पूँजी की माँग तथा ब्याज की दर में उलटा सम्बन्ध होता है, और इसलिए पूँजी की माँग-रेखा बायें से दायें को नीचे को गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र न० १ में DD-रेखा बताती है।

यहाँ पर एक बात और ध्यान रखने की है। यदि बचतों की माँग पूँजीगत वस्तुओं में विनियोग के लिए की जाती है, इसलिए 'पूँजी की माँग-रेखा' को 'विनियोजन-माँग रेखा' (Investment Demand Curve) भी कहते हैं।

पूँजी की पूर्ति (Supply of Capital)

पूँजी की पूर्ति समाज में बचत पर निर्भर करती है अर्थात् व्यक्तियों, फर्मों तथा सरकार की बचतों पर निर्भर करती है। बचतें त्याग या प्रतीक्षा का परिणाम हैं। जब लोग अपनी वर्तमान आय में से बचत करते हैं तो उन्हें वर्तमान उपभोग को कम करना पड़ता है और इस प्रकार वे त्याग करते हैं तथा वे भविष्य में अपनी बचतों के आनन्द के लिए प्रतीक्षा करते हैं। परन्तु लोग वर्तमान उपभोग को अधिक पसन्द करते हैं अपेक्षाकृत भविष्य के, इसलिए, सामान्यतया, वे तब तक बचत नहीं करेंगे जब तक कि उन्हें 'त्याग तथा प्रतीक्षा' के लिए कुछ पुरस्कार न दिया जाय, यह पुरस्कार ही ब्याज है। अतः ब्याज प्रतीक्षा के लिए दिया जाता है।

सामान्यतया, यदि ब्याज की दर ऊँची है तो लोग अधिक बचत करेंगे, इसके विपरीत यदि ब्याज की दर नीची है तो वे कम बचत करेंगे। दूसरे शब्दों में, ब्याज की दर तथा बचतों में सीधा सम्बन्ध होता है, और इसलिए पूँजी की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र न० २ में SS-रेखा दिखाती है।

चित्र—२

ध्यान रहे कि 'पूँजी की पूर्ति रेखा' को 'बचत की पूर्ति रेखा' (Savings Supply Curve) भी कहते हैं क्योंकि यह विभिन्न ब्याज की दरों पर बचत की मात्राओं को बताती है।

ब्याज निर्धारण—माँग तथा पूर्ति का बराबर होना (Determination of Interest—Equation of Demand and Supply)

ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ पर कि पूँजी की माँग तथा पूँजी की पूर्ति बराबर हो जाती है, जैसा कि चित्र न० ३ में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि ब्याज की दर PQ निर्धारित होगी।

चित्र—३
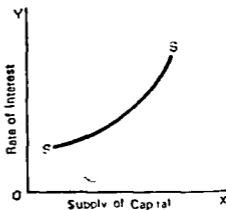
सन्तुलन ब्याज की दर PQ (equilibrium rate of interest PQ) के सम्बन्ध में निम्न दो बातें ध्यान में रखने की हैं :

(i) पूँजी की माँग रेखा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को भी बताती है, इसलिए ब्याज PQ पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के। अतः, ध्यान रहे कि सन्तुलन ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कम है ब्याज की दर से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि उत्पादक पूँजी की माँग कम करेंगे (अपेक्षाकृत उसकी पूर्ति के), परिणामस्वरूप ब्याज की दर
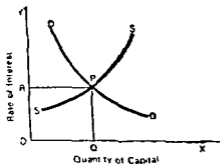
गिरेगी और गिरकर ठीक पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। यदि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक है ब्याज की दर से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि उत्पादक पूंजी की माँग अधिक करेंगे (अपेक्षाकृत उसकी पूर्ति के), परिणामस्वरूप ब्याज की दर बढ़ेगी और बढ़कर ठीक पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि सन्तुलन की स्थिति मे ब्याज की दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है।

(ii) पूंजी की माँग रेखा 'बचतो के विनियोग' को बताती है तथा पूंजी की पूर्ति रेखा 'बचतो की पूर्ति' को बताती है, इसलिए सन्तुलन ब्याज की दर (PQ) पर 'बचतो का विनियोग' तथा 'बचतो की पूर्ति' दोनो बराबर होगे। यदि किसी समय पर 'विनियोग' तथा 'बचतो' मे असन्तुलन (disequilibrium) है (अर्थात वे बराबर नहीं है) तो ब्याज की दर मे परिवर्तन होगा तथा ब्याज की दर 'विनियोग' और 'बचतो' मे बराबरी स्थापित कर देगी।

ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Classical Theory of Interest)

इस सिद्धान्त की आलोचनाएँ निम्न हैं

(१) यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।[1]

परन्तु अर्थव्यवस्था मे सदैव पूर्ण रोजगार होने की मान्यता गलत है, प्राय कुछ साधन बेरोजगार रहते हैं। ऐसी स्थिति म पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन को बढ़ाने के लिए इन बेरोजगार साधनो का प्रयोग किया जा सकता है तथा उपभोग वस्तुओ के उत्पादन मे से साधनो को हटाने की आवश्यकता नही पड़ेगी। इस प्रकार लोगो को भविष्य मे उपभोग वस्तुओ के प्रयोग के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पडेगी। स्पष्ट है कि ब्याज को प्रतीक्षा के लिए पुरस्कार कहना पूर्णतया सही नही है।

(२) पूंजी की पूर्ति मे निम्न तीन बातें शामिल होनी चाहिए :

(i) वर्तमान आयो मे से बचत,

(ii) *पिछली बचतें जब उनका विसग्रह किया जाय (Past savings when dishoarded)*

(iii) बैंक साख (Bank credit) जो कि पूंजी की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण भाग होती है।

ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त केवल प्रथम प्रकार की बचतो अर्थात् केवल वर्तमान आयों मे से ही बचतों को पूंजी की पूर्ति के अन्तर्गत रखता है जो कि उचित नहीं है, अन्य दोनो बातों को पूंजी की पूर्ति के अन्तर्गत शामिल करना अत्यन्त आवश्यक है।

(३) क्लासीकल *अर्थशास्त्रियो ने आय के स्तर (level of income)* को स्थिर मान लिया जो कि सही नहीं है, इसका कारण यह था कि वे पूर्ण रोजगार की मान्यता को लेकर चले।

यह सिद्धान्त, आय के स्तर को स्थिर मानते हुए, यह बताता है कि बचत ब्याज की दर पर निर्भर करती है और ब्याज की दर मे परिवर्तन द्वारा ही 'बचत' तथा 'विनियोग' मे बराबरी (equality) स्थापित की जाती है।

परन्तु *उपर्युक्त धारणा सही नही है।* केंज (Keynes) के अनुसार, बचत ब्याज की दर पर नहीं बल्कि आय के स्तर पर निर्भर करती है (यदि लोगो की आय अधिक होगी तो वे अधिक बचत कर सकेंगे अन्यथा नही) और आय के स्तर मे परिवर्तनो द्वारा 'बचत' तथा 'विनियोग' मे बराबरी स्थापित की जाती है।

[1] इसका अभिप्राय यह हुआ कि अर्थव्यवस्था मे सभी साधनो को रोजगार प्राप्त है, और यदि किसी पूंजीगत वस्तु के उत्पादन मे वृद्धि की जाती है तो उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन मे से कुछ साधन हटाने पड़ेंगे जिससे उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन मे कमी हो जायेगी, परिणामस्वरूप लोगो को वस्तुओ के उपभोग के लिए भविष्य मे प्रतीक्षा करनी पडेगी। इस प्रकार लोग तभी बचत करेंगे जबकि उन्हें प्रतीक्षा के लिए कुछ पुरस्कार अर्थात् ब्याज दिया जाय।

(४) यह सिद्धान्त आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा (ignore) करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, ऊँची ब्याज की दर पर लोग अधिक बचत करेंगे, परन्तु यह सदैव सही नहीं होगा। यह बात स्पष्ट हो जायेगी यदि हम आय पर विनियोग के प्रभाव को ध्यान में रखें जो कि नीचे दिया गया है

High Rate of Interest ——→Less Investment——→ Less Employment and Less Income ——→Less Saving
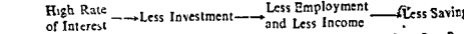
उपर्युक्त तर्क से स्पष्ट है कि ऊँची ब्याज दर पर समाज कम बचत करता है, न कि अधिक बचत जैसा कि क्लासीकल सोचते थे।

(५) इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर अनिर्धारणीय (indeterminate) है। इस सिद्धान्त की यह एक महत्त्वपूर्ण आलोचना है जो कि केंज (Keynes) द्वारा की गयी है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर पूँजी की माँग तथा पूँजी की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। परन्तु 'पूँजी की पूर्ति' अर्थात् 'बचतों की पूर्ति' निर्धारित नहीं की जा सकती है और इसलिए ब्याज की दर भी निर्धारित नहीं की जा सकती है। यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा :

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर 'बचतों' पर निर्भर करती है, अर्थात् ब्याज की दर को ज्ञात करने के लिए बचत की मात्रा ज्ञात होनी चाहिए। परन्तु बचतों को ज्ञात करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए, क्योंकि ब्याज की दर, विनियोग तथा आय के स्तर को प्रभावित करके, बचतों को प्रभावित करती है। (उदाहरणार्थ, यदि ब्याज की दर कम है, तो पूँजी का अधिक विनियोग होगा, अधिक विनियोग से कुल आय बढ़ेगी और कुल आय में वृद्धि से कुल बचत बढ़ेगी।)

अतः ब्याज को ज्ञात करने के लिए हमे बचतें मालूम होनी चाहिए और बचतें मालूम करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए, स्पष्ट है कि स्थिति अनिर्धारणीय (indeterminate) हो जाती है, अर्थात् यह सिद्धान्त हमें केवल एक 'वृत्ताकार तर्क' (circular reasoning) में डाल देता है। नीचे एक चित्र द्वारा 'वृत्ताकार तर्क' को व्यक्त किया गया है :

Savings——————→Rate of Interest
↑ ↓
Level of Income←———Investment
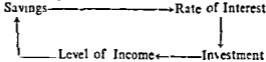
ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
(LIQUIDITY PREFERENCE THEORY OF INTEREST)

प्राक्कथन (Introduction)—उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज उधार देय कोषों की कीमत (price of loanable funds) है, परन्तु केंज (Keynes) के अनुसार ब्याज 'नकदी की कीमत' (price of cash) या 'तरलता के परित्याग का पुरस्कार' (reward for parting with liquidity) है। केंज के शब्दों में, "ब्याज वह कीमत है जो कि धन को नकद रूप में रखने की इच्छा तथा प्राप्य नकदी की मात्रा में बराबरी स्थापित करती है।"[1]

केंज के अनुसार, ब्याज द्रव्य की माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रकार ब्याज एक मौद्रिक बात (monetary phenomenon) है। अतः केंज अपने ब्याज के सिद्धान्त को 'ब्याज का मौद्रिक सिद्धान्त' (Monetary Theory of Interest) कहना पसन्द करते हैं; परन्तु केंज का ब्याज का सिद्धान्त 'तरलता पसन्दगी सिद्धान्त' (Liquidity Preference Theory) के नाम से विख्यात है। द्रव्य की माँग का अर्थ है कि लोग द्रव्य को नकद रूप में अर्थात् तरल रूप में रखने को माँगते हैं तथा द्रव्य की पूर्ति से अर्थ है किसी समय पर प्राप्य द्रव्य की मात्रा। जिस बिन्दु पर द्रव्य की माँग तथा द्रव्य की पूर्ति बराबर हो जाती है वहाँ पर ब्याज निर्धारित हो जाती है।

[1] "It is the 'price' which equilibrates the desire to hold wealth in the form of cash with the available quantity of cash."

द्रव्य की माँग—तरलता पसन्दगी (Demand for Money—Liquidity Preference)

कैंज के अनुसार, द्रव्य की माँग का अर्थ है द्रव्य को नकद रूप में अर्थात् तरल रूप में रखने की माँग, वह द्रव्य की माँग को 'तरलता पसन्दगी' कहता है।

एक व्यक्ति अपनी आय के सम्बन्ध में दो मुख्य निर्णय लेता है। प्रथम, वह यह निर्णय लेता है कि अपनी आय में से कितना व्यय करे और कितना बचाये। दूसरा, निर्णय वह लेता है कि बचत को किस रूप में रखे—बचत का कितना भाग ब्याज प्राप्त करने की दृष्टि से बॉण्डों (Bonds or Securities) में लगाये या बैंकों के बचत खाता (Savings Bank Account) में जमा करे, तथा बचत का कितना भाग नकद या तरल रूप में रखे, वह द्रव्य को नकद या तरल रूप में अपने पास रख सकता है या बैंकों में 'चालू खातों' (Current Accounts) में जमा कर सकता है जिसमें कि उसे कोई ब्याज नहीं मिलता और उसमें से वह अपने द्रव्य को जब चाहे तब निकाल सकता है।

"कैंज के अनुसार कुछ कारणों से (जिनका वर्णन नीचे किया गया है) लोग द्रव्य को नकद या तरल रूप में रखना चाहते हैं। वे द्रव्य के लिए तरलता पसन्दगी का तभी परित्याग करेंगे जबकि उन्हें कुछ पुरस्कार (अर्थात् ब्याज) मिलेगा। अतः ब्याज तरलता के परित्याग के लिए पुरस्कार (reward for parting with liquidity) है। बैंकों के लिए तरलता दृढ़ता (strength) का प्रतीक होती है, उनके पास जितना द्रव्य नकद रूप में होगा उतनी ही उनकी स्थिति दृढ़ होगी। इसलिए बैंक भी अपनी तरलता के परित्याग के लिए पुरस्कार अर्थात् ब्याज चाहेंगे। स्पष्ट है कि चाहे व्यक्ति हो या बैंक—ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है।

कैंज के अनुसार लोग द्रव्य को नकद या तरल रूप में रखने की माँग निम्न उद्देश्यों (या कारणों से) करते हैं

१. कार्य सम्पादन उद्देश्य (The Transaction Motive)

लोगों को आय एक निश्चित अवधि में मिलती है परन्तु भुगतान करने की आवश्यकता निरन्तर पड़ती रहती है, इसलिए नकद द्रव्य (cash) की कुछ मात्रा की सदैव आवश्यकता रहती है ताकि लोग अपने लेन देन को पूरा कर सकें।

कार्य-सम्पादन उद्देश्य को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है—(i) उपभोक्ताओं की दृष्टि से, तब इसे 'आय-उद्देश्य' कहते हैं, तथा (ii) साहसी या व्यापारियों की दृष्टि से, तब इसे 'व्यावसायिक उद्देश्य' कहते हैं।

(i) आय उद्देश्य (The Income Motive)—उपभोक्ताओं को आय एक निश्चित समय (सप्ताह या महीना) में मिलती है, परन्तु उन्हें व्यय प्रतिदिन करना होता है। अतः उपभोक्ता दिन प्रतिदिन के कार्य-सम्पादन के लिए कुछ द्रव्य नकद रूप में रखते हैं। कार्य, सम्पादन के उद्देश्य के लिए एक उपभोक्ता द्रव्य की कितनी मात्रा नकद रूप में रखेगा यह बात उसकी आय के आकार (size of income) तथा आय प्राप्ति की समयावधि (time interval of income receipts) पर निर्भर करेगी। इस प्रकार उपभोक्ताओं द्वारा कार्य सम्पादन हेतु द्रव्य को नकद रूप में रखने के उद्देश्य को 'आय उद्देश्य' कहा जाता है।

(ii) व्यवसाय उद्देश्य (The Business Motive)—साहसी या उत्पादक भी द्रव्य की कुछ मात्रा को नकद रूप में रखते हैं ताकि वे कच्चे माल, यातायात लागत, मजदूरियों तथा वेतनों और अन्य चालू खर्चों का भुगतान कर सकें। अतः साहसियों या उत्पादकों द्वारा द्रव्य को नकद रूप में रखने के उद्देश्य को 'व्यावसायिक उद्देश्य' कहा जाता है। स्पष्ट है कि व्यावसायिक उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा, व्यापारी, उत्पादक या फर्म के 'समस्त क्रय-विक्रय' (turnover) पर निर्भर करेगी।

अतः 'आय उद्देश्य' तथा 'व्यावसायिक उद्देश्य' दोनों मिलकर 'कार्य सम्पादन उद्देश्य' का निर्माण करते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कार्य-सम्पादन उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की

मात्रा (i) व्यक्तियों की आयों (incomes of individuals) पर, तथा (ii) व्यवसाय के समस्त क्रय-विक्रय पर निर्भर करती है। कार्य-सम्पादन हेतु द्रव्य की नकद मात्रा, सामान्यतया, ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।

२. दूरदर्शिता या सतर्कता उद्देश्य (The Precautionary Motive)

लोग संकटकालीन दिनों (rainy days) के लिए द्रव्य की कुछ मात्रा नकद रूप में रखते हैं। दूसरे शब्दों में, बेरोजगारी, बीमारी, दुर्घटनाओं तथा अन्य आकस्मिक व अनिश्चित घटनाओं का सामना करने के लिए व्यक्ति द्रव्य की कुछ मात्रा नकद रूप में रखते हैं। इस उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा व्यक्तियों के स्वभाव तथा उनके रहने की दशाओं पर निर्भर करेगी। परन्तु इस उद्देश्य के लिए द्रव्य की नकद मात्रा मुख्यतया व्यक्तियों की आय के स्तर पर निर्भर करती है, सामान्यतया धनवान व्यक्ति, निर्धन व्यक्तियों की अपेक्षा, अधिक द्रव्य रख सकेंगे। इस उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा, सामान्यतया, ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।

३. सट्टा उद्देश्य (The Speculative Motive)

लोग सट्टा द्वारा लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से भी कुछ नकद द्रव्य रखते हैं। सट्टे का अर्थ यहाँ पर ब्याज की दर में अनिश्चितता के कारण लाभ उठाने से है। यदि कुछ व्यक्ति ब्याज की वर्तमान दर को नीचा समझते हैं तो वे द्रव्य की अधिक मात्रा नकद रूप में रखने को माँगेंगे ताकि भविष्य में ब्याज की दर ऊँची होने पर द्रव्य को ब्याज पर उधार देकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। इसके विपरीत, जो व्यक्ति ब्याज की वर्तमान दर को ऊँचा समझते हैं वे द्रव्य की कम मात्रा नकद रूप में रखेंगे क्योंकि वे भविष्य में ब्याज की दर कम होने की आशा करते हैं।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि 'ब्याज की दर' तथा 'सट्टा उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा' में उल्टा सम्बन्ध (inverse relation) होता है।

कार्य-सम्पादन उद्देश्य (transaction motive), दूरदर्शिता उद्देश्य (precautionary motive) तथा सट्टा उद्देश्य (speculative motive) तीनों मिलकर द्रव्य की कुल माँग को बताते हैं। यदि कार्य-सम्पादन उद्देश्य तथा दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की माँग की मात्रा को L_1 द्वारा, सट्टा उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की माँग को L_2 द्वारा तथा नकद द्रव्य की कुल माँग को L द्वारा व्यक्त किया जाय, तो नकद द्रव्य की कुल माँग (L) को निम्न प्रकार से लिख सकते हैं -

$$L = L_1 + L_2$$

ध्यान रहे कि L_1 आय के स्तर पर निर्भर करता है तथा L_2 ब्याज की दर पर। दूसरे शब्दों में, सट्टे के उद्देश्य की सन्तुष्टि के लिए नकद द्रव्य की माँग ब्याज की दर में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती है, ब्याज निर्धारण के लिए केन्ज ने द्रव्य की इस माँग पर विशेष बल दिया।

अब हम द्रव्य की माँग रेखा अर्थात् तरलता-पसन्दगी-रेखा (Liquidity Preference Curve) के आकार के सम्बन्ध में विवेचन करते हैं। तरलता-पसन्दगी रेखा (LP-curve) के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो बातें ध्यान रखने की हैं -

(i) द्रव्य की माँग-रेखा अर्थात् LP-रेखा ब्याज की विभिन्न दरों पर नकद द्रव्य की माँगी जाने वाली मात्राओं को बताती है, और चूँकि 'ब्याज की दर' तथा 'सट्टा उद्देश्य' के लिए नकद द्रव्य की माँग में उल्टा सम्बन्ध होता है, इसलिए LP रेखा नीचे की ओर गिरती हुई होनी है, अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) होता है, जैसा कि चित्र न० ४ से स्पष्ट है।

चूंकि L_1 ब्याज दर पर निर्भर नहीं करता इसलिए L_1 माग, LP-रेखा के ढाल (slope) को प्रभावित नहीं करता। L_1 तो आय के स्तर पर निर्भर करता है, यदि आय में वृद्धि होती है तो L_1 में वृद्धि होगी अर्थात् लोग 'कार्य सम्पादन उद्देश्य तथा 'दूरदर्शिता उद्देश्य' के लिए नकद द्रव्य की अधिक माग करेंगे, इसका अर्थ यह हुआ कि *LP-रेखा दायें (right) को खिसक जायेगी,* जैसा कि चित्र नं० ५ में LP-रेखा दायें को खिसककर LP_1 की स्थिति में आ जाती है।
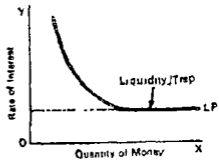
चित्र—४

(ii) यदि ब्याज की दर बहुत नीची हो जाती है तो लोग यह सोचते हैं कि द्रव्य का उधार देने में जो जोखिम (risk) रहती है उसकी तुलना में ब्याज की दर बहुत कम है, इसलिए वे अपने समस्त द्रव्य को नकद या तरल रूप में रखना पसन्द करेंगे तथा उसमें से कुछ भी ब्याज पर उधार नहीं देंगे। इसलिए LP-रेखा का अन्तिम भाग अर्थात् उसकी 'पूंछ' (tail) X-axis के समान्तर (parallel) होती है जैसा कि चित्र नं० ४ से स्पष्ट है। LP-रेखा के 'पूंछ' की X-axis के समान्तर होने की प्रवृत्ति बताती है कि ब्याज की एक न्यूनतम दर (चित्र नं० ४ में r ब्याज की दर) पर लोग अपने समस्त द्रव्य को तरल रूप में रखेंगे तथा बिलकुल उधार नहीं देंगे अर्थात् 'उधारबन्दी' (credit deadlock) हो जायगी, ऐसी स्थिति को कैंज ने तरलता जाल (liquidity trap) कहा। संक्षेप में, LP-रेखा की पूंछ जो कि X-axis के समान्तर है, तरलता जाल को बताती है।

द्रव्य की पूर्ति (Supply of Money)

सिक्के, पत्र-मुद्रा तथा बैंक-साख मिलकर द्रव्य की कुल पूर्ति का निर्माण करते हैं चूंकि मौद्रिक अधिकारी (monetary authority) द्रव्य की कुल पूर्ति (जिसे प्रायः 'M' द्वारा व्यक्त करते हैं) निर्धारित करता है इसलिए किसी समय विशेष में द्रव्य की कुल पूर्ति (M) लगभग स्थिर होती है। अतः द्रव्य की पूर्ति रेखा एक खड़ी रेखा (Vertical line) होती है जैसा कि चित्र नं० ५ में X-axis पर बिन्दु M से होती हुई खड़ी रेखा बताती है।

चित्र—५

ब्याज निर्धारण (Determination of Interest)

ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहां पर द्रव्य की मांग रेखा अर्थात् LP रेखा तथा द्रव्य की पूर्ति-रेखा एक दूसरे को काटती है। चित्र नं० ५ में ब्याज निर्धारण स्पष्ट होता है। माना कि द्रव्य की कुल पूर्ति OM है, M से होती हुई खड़ी पूर्ति रेखा LP-रेखा को P बिन्दु पर काटती है। अतः ब्याज की दर PM होगी और इस ब्याज की दर पर 'नकद द्रव्य की मांग' तथा 'नकद द्रव्य की पूर्ति' दोनों OM के बराबर होगी।
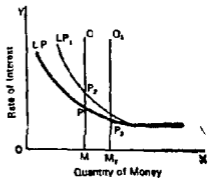
यदि द्रव्य की पूर्ति बढ़कर OM_1 हो जाती है तो ब्याज की दर घटकर M_1P_3 हो जायेगी। यदि आय में वृद्धि के कारण द्रव्य की मांग बढ़ जाती है अर्थात LP रेखा दायें को खिसककर LP_1 की स्थिति में आ जाती है, और द्रव्य की पूर्ति पहले के समान अर्थात् OM के बराबर ही रहती है, तो ब्याज की दर बढ़कर P_2M हो जायगी।

तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचना
(CRITICISM OF THE LIQUIDITY PREFERENCE THEORY)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं

(१) कैंज का सिद्धान्त द्रव्य की माँग व अन्तर्गत पूंजी की उत्पादकता (productivity of capital) पर ध्यान नहीं देता जो कि उचित नहीं है। द्रव्य की माँग केवल द्रव्य को नकद रूप में रखने के लिए ही नहीं की जाती बल्कि उत्पादक द्रव्य की माँग पूंजीगत वस्तुओं में विनियोग करने के लिए भी करते हैं क्योंकि पूंजी में उत्पादकता होती है। अतः माँग पक्ष पर पूंजी की उत्पादकता पर विचार न करना उचित नहीं है।

(२) यह सिद्धान्त मौद्रिक तत्त्वों पर अत्यधिक ध्यान देता है और वास्तविक तत्त्वों जैसे उत्पादकता तथा मितव्ययिता इत्यादि को छोड़ देता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज द्रव्य की माँग तथा द्रव्य की पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है और इस प्रकार ब्याज एक मौद्रिक घटना है। परन्तु यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि वास्तविक तत्त्व कौन से हैं जो कि द्रव्य की माँग तथा पूर्ति के पीछे हैं।

(३) यह सिद्धान्त एकपक्षीय तथा अपर्याप्त है क्योंकि यह ब्याज निर्धारण में केवल तरलता-पसन्दगी (या माँग पक्ष) पर ही बल देता है। हिक्स ने बताया कि कैंज द्रव्य की पूर्ति को एक स्वतन्त्र परिवर्तनशील तत्त्व (independent variable factor) मान लेते हैं, किसी समय पर द्रव्य की पूर्ति मौद्रिक अधिकारी द्वारा निर्धारित होती है, इस प्रकार द्रव्य की पूर्ति बाहरी शक्ति द्वारा निश्चित होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि द्रव्य की पूर्ति रेखा का खींचना बेकार है, परिणामस्वरूप ब्याज का निर्धारण कैसे हो, इसकी व्याख्या नहीं हो सकती।*

(४) यह सिद्धान्त केवल अल्पकाल में ब्याज निर्धारण को बताता है अर्थात् यह केवल 'तात्कालिक फोटोग्राफिक चित्र' (instantaneous photographic picture) प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त ब्याज निर्धारण की दीर्घकालीन शक्तियों पर प्रकाश नहीं डालता अर्थात् यह 'सिनेमा सम्बन्धी चित्र' (cinematographic picture) को प्रस्तुत नहीं करता।

(५) कैंज के सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण तथा गम्भीर आलोचना यह है कि इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर अनिर्धारणीय (indeterminate) है। यह आलोचना जो कि कैंज ने क्लासीकल तथा उधार-देय कोष सिद्धान्त के सम्बन्ध में की थी यह स्वयं कैंज के सिद्धान्त पर लागू होती है। कैंज के सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर को ज्ञात करने के लिए हमें सट्टा उद्देश्य की सन्तुष्टि के लिए द्रव्य की पूर्ति मालूम होनी चाहिए, परन्तु सट्टा उद्देश्य की सन्तुष्टि के लिए द्रव्य की पूर्ति मालूम करने के लिए हमें पहले से ब्याज की दर ज्ञात होनी चाहिए, स्पष्ट है कि स्थिति अनिर्धारणीय हो जाती है तथा ब्याज का निर्धारण नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धान्त 'वृत्ताकार तर्क' (circular reasoning) में फँस जाता है।

ब्याज का उधार-देय कोष सिद्धान्त
(THE LOANABLE FUNDS THEORY OF INTEREST)

अथवा

ब्याज का नया क्लासीकल सिद्धान्त
(NEW CLASSICAL THEORY OF INTEREST)

प्राक्कथन (Introduction)

अर्थशास्त्री 'ब्याज के उधार-देय कोष सिद्धान्त' के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से एकमत नहीं हैं। उनके दृष्टिकोणों में थोड़ा अन्तर पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, 'ब्याज के उधार-देय कोष सिद्धान्त'

* "Hicks exposed the basic weakness of the theory He stated that instead of using the two limbs of the scissor viz demand as opposed to supply Keynes makes the supply of only an independent variable externally determined This means that the drawing of the supply curve is superfluous Consequently, there is nothing left to indicate what determines the rate of interest."

के विभिन्न रूप (different variants) हैं। यहाँ पर इन विभिन्न रूपों में से एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक रूप (version) दिया गया है।[4] इस रूप के अन्तर्गत कैंज के तरलता-पसन्दगी (liquidity preference) का विचार भी शामिल है।[5]

ब्याज के उधार-देय कोष सिद्धान्त के निर्माता गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal), बन्ट हेनसन (Bent Hansen), बर्टिल ओहलिन (Bertil Ohlin), ऐरिक लिण्डल (Eric Lindahl), इत्यादि स्वीडन के अर्थशास्त्री हैं। इंगलैण्ड में इस सिद्धान्त के विकास में प्रो० रावर्टसन (Robertson) का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

'उधार-देय कोष सिद्धान्त' ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त के ऊपर कई दृष्टियों से सुधार है, अतः इस सिद्धान्त को 'ब्याज का नया क्लासीकल सिद्धान्त' (new classical theory of interest) भी कहते हैं। यह सिद्धान्त ब्याज के निर्धारण में मौद्रिक तथा अमौद्रिक तत्त्वों (monetary and non-monetary factors) दोनों पर ध्यान देता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज उधार-देय कोषों (loanable funds) के लिए दिया जाता है। 'उधार-देय कोष' के लिए ओहलिन 'साख (credit) शब्द का तथा हेबरलर (Haberler) 'विनियोग-योग्य कोष (investible funds) शब्द का प्रयोग करते हैं। ध्यान रहे कि 'उधार देय कोष' उन सब द्रव्य को बताते हैं जिसकी साख-बाजार (credit-market) में पूर्ति तथा माँग की जाती है। 'उधार-देय कोष' तथा 'बचत' में अन्तर है। बचत का एक भाग संग्रहित (hoard) किया जा सकता है और इस सीमा तक साख बाजार में 'द्रव्य कोषों' (money loans or loanable funds) की पूर्ति कम हो जायगी, इसी प्रकार भूतकालीन बचतों (past savings) को जब असंग्रह (dishoard) किया जाता है तो साख बाजार में 'द्रव्य कोषों' (money loans) की पूर्ति बढ़ जाती है। स्पष्ट है कि 'उधार-देय कोष' तथा 'बचत' में थोड़ा अन्तर है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ पर कि उधार देय कोषों की माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाती है।

उधार देय कोषों की माँग (Demand of Loanable Funds)

उधार देय कोषों की माँग चार स्रोतों से की जाती है—(i) उत्पादकों या व्यापारियों द्वारा, (ii) उपभोक्ताओं या परिवारों (consumers or households) द्वारा, (iii) सरकार द्वारा, तथा (iv) संचय (hoarding) के लिए।

(i) **उत्पादकों तथा व्यापारियों द्वारा माँग**—उधार देय कोषों की एक बहुत बड़ी मात्रा में माँग उत्पादकों तथा व्यापारियों द्वारा होती है। उत्पादक अपने पूँजीगत यन्त्र को बढ़ाने के लिए और नयी तथा श्रेष्ठ पूँजीगत वस्तुओं को खरीदने के लिए द्रव्य-ऋणों (money loans) की माँग करते हैं। पूँजीगत यन्त्र या पूँजीगत वस्तुएँ उत्पादक होती हैं, इसलिए उनमें से प्रत्येक की सीमान्त

---

[4] पाठकों के लिए नोट—चूँकि सिद्धान्त के इस रूप में कैंज के तरलता-पसन्दगी के विचारों को भी शामिल किया गया है, इसलिए अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री 'उधार-देय कोष सिद्धान्त' को कैंज के 'ब्याज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त' के बाद देना पसन्द करते हैं। प्राय पुस्तकों में 'उधार-देय कोष सिद्धान्त' को पहले और कैंज के 'तरलता पसन्दगी सिद्धान्त' को बाद में देते हैं। परन्तु जब उधार-देय कोष सिद्धान्त के आधुनिक रूप में कैंज के तरलता-पसन्दगी के विचार को शामिल कर लिया गया है तो उधार देय कोष सिद्धान्त को कैंज के सिद्धान्त के बाद देना ही अधिक उचित समझा जाता है जैसा कि अब अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री कहते हैं। अतः पुस्तक में इन दोनों सिद्धान्तों के क्रम (order) के सम्बन्ध में विद्यार्थियों को कोई भ्रम (confusion) नहीं होना चाहिए।

[5] यह बात आगे 'उधार-देय कोषों की माँग' के शीर्षक के अन्तर्गत point (iv) (पृष्ठ ५८) के अध्ययन से तथा 'उधार-देय कोष की पूर्ति' शीर्षक के अन्तर्गत (point) (iii) (पृष्ठ ५९) के अध्ययन से स्पष्ट होगी।

उत्पादकता रेखा (marginal productivity curve) खींची जा सकती है। चूंकि उत्पादक या व्यापारी उधार-देय कोषों को पूंजीगत वस्तुओं को खरीदने में लगाते हैं इसलिए उधार-देय कोषों की व्यावसायिक माँग पूंजी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है।

अन्य साधनों की तुलना में, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध में एक जटिलता (complexity) होती है। एक पूंजीगत वस्तु कई वर्षों तक प्रयोग में लायी जाती है। इसलिए एक उत्पादक या साहसी पंजीगत वस्तु की उत्पादकता में से उसको चालू रखने की लागत (maintenance and operating cost) को निकालकर 'अनुमानित वास्तविक उत्पादकता या प्रतिफल' (expected net productivity or returns) पर ध्यान केन्द्रित करता है। उत्पादक इस 'अनुमानित वास्तविक प्रतिफल (expected net returns) को पूंजीगत वस्तु की लागत के प्रतिशत के रूप में व्यक्त करता है और इसकी ब्याज की दर से तुलना करता है। स्पष्ट है कि एक उत्पादक उधार देय कोषों की उस सीमा तक माँग करेगा जहाँ पर कि पूंजीगत वस्तुओं से 'अनुमानित वास्तविक प्रतिफल ब्याज की दर के बराबर हो जाता है।

यदि ब्याज की दर नीची है तो व्यापारी या उत्पादक पूंजीगत वस्तुओं में विनियोग के लिए उधार-देय कोषों की अधिक माँग करेंगे, इसके विपरीत ब्याज की दर ऊँची होने पर वे उधार-देय कोषों की कम माँग करेंगे। इस प्रकार उधार देय कोषों की व्यावसायिक माँग तथा ब्याज की दर में उल्टा (inverse) सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, यदि इस सम्बन्ध को एक रेखा द्वारा दिखायें तो उधार देय कोषों की व्यवसाय के लिए माँग रेखा नीचे को गिरती हुई होगी अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) होगा।

(ii) उपभोक्ताओं द्वारा माँग—जब उपभोक्ता अपनी वर्तमान आय तथा साधनों से अधिक उपभोग-वस्तुओं पर व्यय करना चाहते हैं तो वे उधार-देय कोषों की माँग करते हैं। उपभोक्ता उधार देय कोषों की माँग प्रायः टिकाऊ उपभोग वस्तुओं (durable consumer's goods) जैसे रेडियो, टलीविजन सेट, स्कूटर, इत्यादि को खरीदने के लिए करते हैं।

स्पष्ट है कि ब्याज की दर ऊँची होने पर उपभोक्ता उधार-देय कोषों की माँग कम करेंगे तथा ब्याज की दर कम होने पर वे उनकी माँग अधिक करेंगे। इस प्रकार उधार देय कोषों के लिए उपभोक्ताओं की माँग तथा ब्याज की दर में उल्टा सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, उधार देय कोषों की उपभोक्ताओं के लिए माँग रेखा नीचे गिरती हुई होगी अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल होगा।

(iii) सरकार द्वारा माँग—कई दशाओं में सरकार भी बड़ी मात्रा में उधार लेती है। युद्ध तथा आपातकालीन समयों में तथा विभिन्न प्रकार के विकासमान कार्यों (developmental activities) के लिए सरकार उधार-देय कोषों की माँग करती है।

यदि ब्याज की दर ऊँची है तो उधार देय-कोषों की लागत ऊँची होगी और इसलिए सरकार उनकी माँग कम करेगी, इसके विपरीत, यदि ब्याज की दर नीची है तो सरकार उधार देय कोषों की माँग अधिक करेगी। यद्यपि कुछ दशाओं में, जैसे युद्ध के लिए द्रव्य-ऋण, सरकार द्वारा उधार लेने में ब्याज की दर के ऊँचे या नीचे होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु सामान्यतया, यह कहा जा सकता है कि ब्याज की दर तथा सरकार की उधार देय कोषों की माँग में उल्टा सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, सरकार के लिए उधार-देय कोषों की माँग रेखा का ढाल ऋणात्मक होगा।

(iv) संग्रह या संचय (hoarding) के लिए माँग—उधार-देय कोषों की माँग उन व्यक्तियों द्वारा भी की जाती है जो कि द्रव्य को नकद या तरल रूप (cash or liquid form) में अर्थात् 'निष्क्रिय-नकद कोषों' (idle cash balances) के रूप में रखना चाहते हैं। यहाँ पर कींज के तरलता पसन्दगी का विचार शामिल हो जाता है। यदि ब्याज की दर कम है तो लोग उधार देय कोषों को तरल रूप में रखने के लिए अधिक माँग करेंगे ताकि उन्हें भविष्य में ऊँची ब्याज दर

पर उठा सकें, इसके विपरीत यदि ब्याज की दर ऊँची है तो लोग उधार देय कोषो को तरल रूप मे रखने के लिए कम माँग करेंगे। स्पष्ट है कि ब्याज की दर तथा उधार देय कोषो की सचय के लिए माँग मे उल्टा सम्बन्ध है।

चित्र—६

[यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि सचय को पूर्ति की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। जिस सीमा तक उधार देय कोषो की माँग सचय के लिए की जाती है उस सीमा तक उसकी पूर्ति कम हो जाती है तथा यदि उधार देय कोषो की माँग सचय के लिए बहुत कम है तो उनकी पूर्ति अधिक होगी या जब सचय किया हुआ द्रव्य विसचय (dishoard) कर दिया जाता है तो उधार देय कोषो की पूर्ति बढ़ जाती है। अत 'सचय' अर्थात् 'विसचय' को पूर्ति पक्ष म शामिल किया जाता है।]
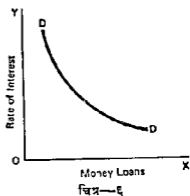
व्यापारियो तथा उत्पादको, उपभोक्ताओ और सरकार द्वारा उधार-देय कोषो की माँग, तथा द्रव्य को तरल रूप म सग्रहित करने की माँग—इन सबको जोडकर उधार-देय कोषो की माँग ज्ञात होती है। चूँकि इनमे से प्रत्येक की माँग रेखा नीचे को गिरती हुई होती है, इसलिए उधार देय कोषो की 'कुल माँग रेखा' नीचे को गिरती हुई होगी अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) होगा जैसा कि चित्र न० ६ म DD रेखा द्वारा दिखाया गया है।

उधार-देय कोषो की पूर्ति (Supply of Loanable Funds)

उधार देय कोषो की पूर्ति निम्न स्रोतो से होती है

(i) बचतें—उधार देय कोषो की पूर्ति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन 'बचतें' हैं, ये बचतें व्यक्तियो तथा व्यापारियो द्वारा की जाती हैं।

(अ) व्यक्ति अपनी वर्तमान आयो से बचत (savings out of the current income) करते हैं। परन्तु रोबर्टसन के अनुसार लोग अपनी वर्तमान आय मे से बचत नही करते बल्कि 'इस्तेमाल-योग्य आय मे से बचत (savings out of the disposable income) करते हैं; पिछले समय की आय वर्तमान म इस्तेमाल योग्य (disposable income) हो जाती है जिसमे से बचत होती है क्योकि वर्तमान मे किये गये प्रयत्नो की आय वर्तमान मे ही प्राप्त नही होती बल्कि यह कुछ समय बाद या भविष्य मे प्राप्त होती है।

यदि ब्याज की दर ऊँची है, तो सामान्यतया, व्यक्ति अधिक बचत करेंगे और ब्याज की दर नीची होने पर वे कम बचत करेंगे। दूसरे शब्दो मे, व्यक्तियो की बचत तथा ब्याज की दर मे सीधा सम्बन्ध होता है अर्थात् व्यक्तियो की बचत की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी।

(ब) व्यक्तियो की भाँति व्यावसायिक फर्में भी बचत करती हैं। अच्छे समयो म फर्मों की आय बहुत अधिक होती है जबकि वे इसमे से बहुत कम लाभाश के रूप मे भुगतान करती है, इस प्रकार वे बचतें एकत्रित करती है। यदि ब्याज की दर ऊँची होगी तो फर्में अधिक बचत करेंगी ताकि उन्हे बाजार से ऊँची दर पर कम उधार लेना पडे, ब्याज की दर कम होने पर वे कम बचत कर सकती है क्योकि नीची ब्याज दर पर बाजार से उधार ले सकती है। स्पष्ट है कि व्यावसायिक बचतो तथा ब्याज की दर मे सीधा सम्बन्ध है, अर्थात् व्यावसायिक बचतो की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी।

सैद्धान्तिक रूप मे ये व्यावसायिक बचते उधार देय कोष की पूर्ति का एक भाग होती हैं। परन्तु व्यवहार मे ये बचतें स्वय फर्मों द्वारा ही विनियोग के लिए माँगी जाती है और इसलिए ये बचतें (पूर्ति पक्ष या माँग पक्ष किसी भी ओर से) प्राय बाजार मे प्रवेश नही करती।

(ii) बैंक साख (Bank Credit)—उधार देय कोषो की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन व्यावसायिक बैंको द्वारा साख का निर्माण या सरकार द्वारा केवल नोटो को छाप देना है।

(iii) पिछली बचतो का विसचय (Dishoarding of past savings)—पिछली संचय

की हुई प्राप्तियां बचतों का जब व्यक्ति विसंचय करते हैं तो उधार-देय कोषों की पूर्ति बढ़ जाती है। ब्याज की दर ऊँची हो जाने पर लोग पिछली बचतों का विसंचय करके उधार देय कोषों की पूर्ति में वृद्धि कर देंगे (ब्याज की दर नीची होने पर वे कुछ द्रव्य का संचय कर सकते हैं और इस सीमा तक उधार-देय कोषों की पूर्ति में कमी हो सकती है।)

(iv) अविनियोग (Disinvestment)—संरचनात्मक परिवर्तनों (structural changes) या अधिक हानि के कारण वर्तमान मशीनों एवं यन्त्रों का घिसना दिया जाता है, परन्तु घिसाई व्यय (depreciation charges) के रूप में कोई कोष इकट्ठा नहीं किया जाता और इस प्रकार उन मशीनों तथा यन्त्रों का प्रतिस्थापन सम्भव नहीं होता तो इसे अविनियोग कहते हैं। इस प्रकार यह विनियोग का उल्टा होता है।

अविनियोग के परिणामस्वरूप फर्म की उत्पादित वस्तु की बेचने से प्राप्त आगम (revenue) में से जो भाग घिसाई कोष (depreciation fund) में जाता (अर्थात् पुरानी तथा घिसी हुई मशीनों और यन्त्रों का नयी मशीनों और यन्त्रों से प्रतिस्थापित करने में जाता), वह साख बाजार (credit market) में जाता है तथा उधार देय कोषों की पूर्ति में वृद्धि करता है। यदि ब्याज की दर ऊँची है तो यह सम्भव है कि वर्तमान पूँजी का कुछ भाग इस ऊँची ब्याज दर के बराबर सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue productivity) न दे सके। ऐसी स्थिति में फर्म पूँजी के कुछ भाग का बिना प्रतिस्थापित (replacement) किये घिस जाने देगी और इस प्रकार घिसाई कोषों में जाने वाला द्रव्य बाजार में जायेगा तथा उधार देय कोषों की पूर्ति बढ़ायेगा। अतः ब्याज की ऊँची दर पर अविनियोग अधिक होगा तथा नीची दर पर अविनियोग कम होगा। दूसरे शब्दों में, 'अविनियोग' तथा 'ब्याज की दर' में सीधा सम्बन्ध होता है, अर्थात् 'अविनियोग' के परिणामस्वरूप उधार देय कोषों की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी।

चित्र—७
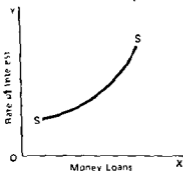
बचत, बैंक साख, विसंचय तथा अविनियोग—इन सब स्रोतों से उधार देय कोषों की पूर्तियों को जोड़ने से 'कुल पूर्ति रेखा' प्राप्त हो जायेगी। चूँकि विभिन्न स्रोतों (sources) से प्राप्त उधार-देय कोषों की पूर्ति तथा ब्याज की दर में सीधा सम्बन्ध होता है इसलिए उधार-देय कोषों की कुल पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र न० ७ में SS द्वारा दिखाया गया है।

ब्याज निर्धारण (Determination of Interest)

ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर कि 'उधार देय कोषों' (loanable funds) या 'द्रव्य-ऋणों' (money loans) की कुल माँग तथा उनकी कुल पूर्ति दोनों बराबर हो जाती हैं। चित्र न० ८ से स्पष्ट है कि ब्याज की दर PQ होगी क्योंकि इस पर उधार देय कोषों की कुल माँग तथा पूर्ति दोनों OQ के बराबर हैं।

यदि उधार देय कोषों की माँग तथा उनकी पूर्ति में किसी समय पर असन्तुलन (disequilibrium) है तो ब्याज की दर में परिवर्तन होगा और इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग तथा पूर्ति दोनों में बराबरी स्थापित हो जायगी। दूसरे शब्दों में, ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति, इस सिद्धान्त में ब्याज की दर पूँजी के विनियोग (investment) तथा बचतों (savings) में बराबरी (equality) स्थापित करती है।

चित्र—८

उधार-देय कोष सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Loanable Funds Theory)

उधार-देय कोष सिद्धान्त, कई दृष्टियों से, क्लासीकल सिद्धान्त पर सुधार है। यह सिद्धान्त पूर्ति पक्ष में केवल बचतों को ही नहीं बल्कि विसंचय (dishoarding), बैंक साख तथा अविनियोग (disinvestment) को भी शामिल करता है। इसी प्रकार माँग पक्ष में यह सिद्धान्त केवल व्यापारियों या उत्पादकों की माँग को ही नहीं बल्कि उपभोक्ताओं तथा सरकार द्वारा माँग और द्रव्य की संचय (hoard) करने की माँग को शामिल करता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त क्लासीकल सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक विस्तृत (*comprehensive*) है।

परन्तु इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ वे ही हैं जो कि क्लासीकल सिद्धान्त की हैं। उधार-देय कोष सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं

(१) यह सिद्धान्त भी क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति, 'आय के स्तर' को स्थिर मान लेता है जो कि ठीक नहीं है।

यह सिद्धान्त, आय के स्तर को स्थिर मानते हुए यह बताता है कि बचत ब्याज की दर पर निर्भर करती है और ब्याज की दर में परिवर्तनों द्वारा ही 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी (equality) स्थापित होती है।

परन्तु उपर्युक्त धारणा सही नहीं है। कीन्ज (Keynes) के अनुसार, **"बचत ब्याज की दर पर नहीं बल्कि आय के स्तर पर निर्भर करती है और आय के स्तर में परिवर्तनों द्वारा 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी स्थापित होती है।**

(२) यह सिद्धान्त भी क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति आय पर विनियोग (Investment) के प्रभाव की उपेक्षा (ignore) करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ऊँची ब्याज की दर पर लोग अधिक बचत करेंगे, परन्तु यह सदैव सही नहीं होता। यह बात स्पष्ट हो जायेगी यदि हम आय पर विनियोग के प्रभाव को ध्यान में रखें जो कि नीचे दिखाया गया है।

High Rate of Interest——————→Less Investment——————→Less Employment and less Income——Less Saving

उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि ऊँची ब्याज की दर पर समाज कम बचत कर पाता है, न कि अधिक बचत, जैसा कि यह सिद्धान्त *बताता है।*

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार भी, क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति, ब्याज की दर अनिर्धारणीय (indeterminate) है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर उधार देय कोषों की माँग तथा उनकी पूर्ति के अनुसार निर्धारित होती है। उधार देय कोषों की पूर्ति में बचत, बैंक साख तथा *विसंचय शामिल होते हैं* इनमें बचत का भाग आय के स्तर पर निर्भर करता है। अतः ब्याज की दर मालूम करने के लिए हमें बचतों को मालूम करना चाहिए, परन्तु बचतों को ज्ञात करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए क्योंकि ब्याज की दर, विनियोग तथा आय के स्तर को प्रभावित करके, बचत को प्रभावित करती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **ब्याज की दर ज्ञात करने के लिए हमें बचतें मालूम होनी चाहिए और बचतें मालूम करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए, अतः स्थिति अनिर्धारणीय हो जाती है, अर्थात् ब्याज का निर्धारण नहीं हो सकता है।** दूसरे शब्दों में, यह सिद्धान्त हमें वृत्ताकार तर्क (circular reasoning) में डाल देता है, यह बात निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट हो जायगी।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उधार-देय कोष सिद्धान्त पूर्ण नहीं है। इस सिद्धान्त द्वारा ब्याज अनिर्धारणीय है। केंज के सिद्धान्त द्वारा भी ब्याज निर्धारित नहीं की जा सकती।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों, हिक्स (Hicks), हेन्सन (Hensen), इत्यादि के अनुसार ब्याज का एक उचित निर्धारणीय सिद्धान्त (determinate theory) बनाया जा सकता है यदि केंज तथा क्लासीकल सिद्धान्त का समन्वय (synthesis) कर दिया जाय। क्लासीकल सिद्धान्त तथा केंज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त के समन्वय करने से हमें चार तत्त्व प्राप्त होते हैं—(१) विनियोग माँग रेखा (investment demand curve), (२) बचत रेखा (saving curve), (३) तरलता पसन्दगी रेखा (liquidity preference curve), तथा (४) द्रव्य की मात्रा (quantity of money)। अतः 'ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त' के अनुसार ब्याज उपर्युक्त चारों तत्त्वों अर्थात् विनियोग, बचत, तरलता-पसन्दगी तथा द्रव्य की मात्रा द्वारा निर्धारित होती है।[*]

[नोट ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना के लिए इस अध्याय के अन्त में परिशिष्ट (Appendix) देखिए।]

क्या ब्याज की दर ऋणात्मक या शून्य हो सकती है ?
(CAN THERE BE A NEGATIVE OR ZERO RATE OF INTEREST ?)

सैद्धान्तिक दृष्टि से कुछ दशाओं में ब्याज की दर के ऋणात्मक (negative) या शून्य (zero) होने की सम्भावना हो सकती है, परन्तु वास्तविक जीवन में दोनों में से कोई भी बात नहीं हो सकती है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से 'ब्याज की ऋणात्मक दर' केवल ऐसे समाज में सम्भव हो सकती है जिसमें कानून तथा व्यवस्था (law and order) की अनुपस्थिति होती है। ऐसे समाज में यदि लोग बचत करते हैं तो वे उनकी रक्षा के लिए उसे किसी शक्तिशाली व्यक्ति के पास रखेंगे, अपनी बचतों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें शक्तिशाली व्यक्ति को कुछ भुगतान देना पड़ेगा और इस भुगतान को ब्याज की ऋणात्मक दर कहा जाता है। परन्तु व्यवहार में ब्याज की ऋणात्मक दर नहीं होती।

सैद्धान्तिक दृष्टि से निम्न दो दशाओं में 'शून्य ब्याज दर' होने की केवल 'सम्भावना' हो सकती है

(i) जब किसी समाज की कुल आय उपभोग पर व्यय कर दी जाती है और कोई बचत तथा विनियोग नहीं होता। यह स्थिति केवल अत्यन्त प्राचीन समय में हो सकती है, परन्तु आज के युग में इस प्रकार की पिछड़ी तथा प्राचीन अर्थव्यवस्था या समाज नहीं पायी जा सकती।

(ii) जब किसी समाज या अर्थव्यवस्था में पूँजी की मात्रा इतनी अधिक हो कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य हो, जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य होगी तो ब्याज की दर भी शून्य होगी। यद्यपि उन्नतशील अर्थव्यवस्थाओं (advanced economies) में बड़ी मात्रा में पूँजी सचय (capital accumulation) होता है और पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कम होती है, परन्तु यह शून्य नहीं हो सकती और इसलिए ब्याज की दर भी शून्य नहीं हो सकती।

प्रत्येक देश या अर्थव्यवस्था में कुछ प्रावैगिक तत्त्व (dynamic factors) सदैव कार्य करते रहते हैं जिनके कारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य नहीं हो सकती और इसलिए ब्याज की दर शून्य नहीं हो सकती। ये प्रावैगिक या परिवर्तनशील तत्त्व हैं—(i) जनसंख्या में वृद्धि, (ii) युद्ध तथा भूचाल (earthquakes) जैसे प्राकृतिक प्रकोपों के कारण पूँजीगत वस्तुएँ नष्ट होती रहती हैं, तथा (iii) नयी खोजें व आविष्कार होते रहते हैं।

---

[*] पाठकों के लिए नोट—ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का पृथक तथा पूरा विवेचन यहाँ पर नहीं किया गया है क्योंकि यह डिग्री स्तर की दृष्टि से कुछ कड़ा है, उसे परिशिष्ट में दे दिया गया है। एक बात और ध्यान रखने की है कि बहुत-सी हिन्दी की पुस्तकों में ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त को 'पूँजी की माँग तथा पूर्ति सिद्धान्त' कहा गया है जो कि ठीक नहीं है।

स्पष्ट है कि यद्यपि ब्याज की दर में कमी आ सकती है परन्तु वह शून्य कभी नहीं हो सकती।

ब्याज की दरों में भिन्नता
(DIFFERENCES IN THE RATES OF INTEREST)

प्रायः एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के साथ, एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में तथा एक स्थान से दूसरे स्थान में ब्याज की दरों में भिन्नता पायी जाती है। ब्याज (यहाँ पर ब्याज का अर्थ 'कुल ब्याज' से है) में भिन्नता के कारण निम्न हैं:

(१) जोखिम में अन्तर—एक अच्छे साख वाले व्यापारी या व्यक्ति से पूँजीपति कम ब्याज लेगा, क्योंकि जोखिम का अंश बहुत कम है। इसके विपरीत, मजदूरों को या कम साख वाले व्यक्ति को पूँजी उधार देने में अधिक जोखिम होती है, इसलिए इनका पूँजीपति ऊँची ब्याज दर पर पूँजी उधार देगा।

(२) असुविधा में अन्तर—एक धनी तथा ईमानदार व्यक्ति को पूँजी उधार देने में पूँजीपति को बहुत कम असुविधा होती है क्योंकि उसका अपना ऋण बिना किसी कठिनाई के ठीक समय पर वापस मिल जाता है, अतः इनसे ब्याज की दर कम ली जाती है। इसके विपरीत, एक निर्धन व्यक्ति के साथ अधिक असुविधा होती है, पूँजीपति को कई बार तकाजा करना पड़ता है, उसका ऋण समय पर वापस नहीं मिल पाता तथा वह थोड़ी थोड़ी किस्तों में प्राप्त होता है, इस कारण ही मजदूरों, छोटे किसानों, व्यापारियों, इत्यादि को ऊँची ब्याज दर पर ऋण मिलता है।

(३) प्रबन्ध व्यय में अन्तर—छोटे कारीगर, छोटे किसान तथा छोटे व्यापारियों को ऋण देने में पूँजीपति को ऋण-प्रबन्ध पर अधिक व्यय करना पड़ता है क्योंकि ऐसे लोग थोड़ी मात्रा में ऋण लेते हैं और उन्हें किस्तों में चुकाते हैं। अतः पूँजीपति ऐसे लोगों को अधिक ब्याज की दर पर ऋण देता है।

(४) ऋण की अवधि में अन्तर—लम्बी अवधि के ऋणों पर ब्याज अधिक लिया जाता है क्योंकि ऐसे ऋणों के साथ अनिश्चितता तथा जोखिम अधिक होती है, इसके विपरीत, अल्पकालीन ऋणों पर ब्याज की दर कम होती है।

(५) ऋण की जमानत (security) में अन्तर—यदि ऋण उचित तथा पर्याप्त जमानत पर दिया जाता है तो ब्याज की दर कम ली जायेगी, इसके विपरीत दशाओं में ऋण ऊँची ब्याज पर दिया जायेगा।

(६) ऋण के उद्देश्य में भिन्नता—अनुत्पादक कार्यों (प्रीतिभोज, विवाह, इत्यादि) के लिए ऋण ऊँची ब्याज दर पर दिया जाता है क्योंकि इनमें जोखिम अधिक होता है। इसके विपरीत, उत्पादक कार्यों के लिए नीची ब्याज दर पर ऋण प्राप्त हो जाता है।

(७) पूँजी की गतिशीलता में भिन्नता—उन्नतशील देशों में पूँजी की गतिशीलता अधिक होती है, इसलिए विभिन्न स्थानों में ब्याज की दरों में बहुत कम अन्तर होता है। इसके विपरीत, पिछड़े हुए देशों में पूँजी की गतिशीलता कम होती है और परिणामस्वरूप विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में ब्याज की दर में बहुत भिन्नता रहती है।

(८) पूँजी की उत्पादकता—जिन व्यवसायों में पूँजी का प्रयोग करके अधिक उत्पत्ति तथा लाभ प्राप्त किया जा सकता है तो ऐसे व्यवसायों को चलाने के लिए एक व्यक्ति या साहसी ऊँची ब्याज दर देने को तैयार होगा। इसके विपरीत दशाओं में ब्याज की दर कम होगी।

(९) बैंकिंग सुविधाओं का अभाव—जिन देशों या जिन स्थानों में बैंकिंग सुविधाएँ अपर्याप्त हैं वहाँ ब्याज की दर ऊँची होती है, अच्छी बैंकिंग सुविधाओं वाले देशों में ब्याज की दर कम रहती है।

(१०) आर्थिक विकास के स्तरों में अन्तर—आर्थिक दृष्टि से उन्नतशील देशों में लोगों की आय अधिक होती है, परिणामस्वरूप अधिक बचत होती है और पूँजी की पर्याप्त पूर्ति होती है, इसलिए ब्याज की दर कम होती है। पिछड़े हुए देशों में परिस्थितियाँ उल्टी होती हैं और उनमें ब्याज की दर ऊँची होती है।

आर्थिक प्रगति तथा ब्याज दर
(ECONOMIC PROGRESS AND RATE OF INTEREST)

आर्थिक प्रगति का अर्थ है कि देश विशेष म उद्योगो, कृषि, व्यापार, यातायात व सवादवहन, इत्यादि सभी क्षेत्रो का विकास होता है। इन सब क्षेत्रों मे विकास के परिणामस्वरूप पूँजी की पूर्ति मे वृद्धि होगी।

परन्तु आर्थिक प्रगति के कारण पूँजी की पूर्ति भी बढ़ती है। आर्थिक प्रगति के परिणामस्वरूप देश की कुल आय बढ़ेगी, लोग अधिक बचत कर सकेंगे, बैंकिंग सुविधाएँ बढ़ेंगी और पूँजी की पूर्ति मे वृद्धि होगी।

प्राय पूँजी की पूर्ति, पूँजी की माँग की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ती है और इसलिए ब्याज की दर कम होती है। अत आर्थिक प्रगति के कारण सामान्यतया ब्याज की दर गिरती है।

स्वाभाविक ब्याज दर तथा बाजार ब्याज दर
(NATURAL RATE OF INTEREST AND MARKET RATE OF INTEREST)

१. पृष्ठभूमि (Background)

१६०१ म स्वीडिश अर्थशास्त्री विक्सैल (Swedish Economist Wicksell) ने 'स्वाभाविक ब्याज दर (natural rate of interest) के विचार को प्रस्तुत किया। इसको 'सामान्य' या 'वास्तविक ब्याज (normal or 'real rate of interest) भी कहते हैं।

प्राचीन क्लासीकल सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर बचतो की माँग तथा बचतो की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। जहाँ बचतो की माँग तथा बचतो की पूर्ति बराबर हो जाती है अर्थात् उनम सन्तुलन स्थापित हो जाता है, वहाँ ब्याज की दर निर्धारित हो जायेगी, इस ब्याज दर को क्लासीकल अर्थशास्त्रियो ने 'सन्तुलन बाजार दर' (equilibrium rate of interest) कहा, विकसैल न इसके लिए 'स्वाभाविक ब्याज दर' का प्रयोग किया। क्लासीकल अर्थशास्त्रियो के अनुसार 'सन्तुलन ब्याज दर' तथा 'बाजार ब्याज दर' दोनो सदैव बराबर होंगे। यदि बाजार ब्याज दर अधिक है सन्तुलन ब्याज दर से, तो बचतो की पूर्ति उनकी माँग की तुलना मे अधिक हो जायेगी, परिणामस्वरूप बाजार दर गिरेगी और गिरकर सन्तुलन ब्याज दर के बराबर हो जायेगी। यदि बाजार ब्याज दर कम है सन्तुलन ब्याज दर से, तो बचतो की पूर्ति उनकी माँग की तुलना मे कम होगी, परिणामस्वरूप बाजार ब्याज दर बढ़ेगी और बढ़कर ठीक 'सन्तुलन ब्याज दर' के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार प्राचीन क्लासीकल सिद्धान्त के अनुसार 'बाजार ब्याज दर सदैव 'सन्तुलन ब्याज दर' के बराबर होगी, दूसरे शब्दो म, इस सिद्धान्त के अनुसार 'बाजार ब्याज दर' 'सन्तुलन ब्याज दर मे पृथक नही हो सकती है। इस धारणा का मुख्य कारण यह था कि क्लासीकल अर्थशास्त्री यह समझते थे कि केवल बचतें ही 'उधार देय कोष' (loanable funds) की सम्पूर्ण पूर्ति का निर्माण करती हैं, और 'साख' (credit) अथवा बैंको द्वारा निर्मित द्रव्य, (created money by banks) अर्थात् 'द्रव्य की पूर्ति' बाजार ब्याज दर तथा वस्तुओ की कीमतो पर कोई प्रभाव नही डालती। परन्तु यह विचारधारा उचित नही थी जैसा कि विकसैल ने बताया, 'बैंको द्वारा निर्मित साख' द्रव्य की पूर्ति मे वृद्धि या कमी करके 'बाजार ब्याज दर' को प्रभावित करती है।

विकसैल ने 'स्वाभाविक' या 'सामान्य या 'वास्तविक' (natural or normal or real) ब्याज दर तथा 'बाजार ब्याज दर' के बीच अन्तर स्पष्ट किया और इस अन्तर को बताने मे विक्सैल का मुख्य ध्येय यह था कि वे द्रव्य की पूर्ति मे परिवर्तनो का ब्याज दर तथा कीमतो पर प्रभाव को बताना चाहते थे। दूसरे शब्दो मे, द्रव्य की पूर्ति (जिसमे बैंको द्वारा निर्मित द्रव्य महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है) मे परिवर्तनो का प्रभाव ब्याज दर पर पड़ता है, यह बात विकसैल ने 'ब्याज की स्वाभाविक दर' के विचार को प्रस्तुत करके स्पष्ट की।

२. 'स्वाभाविक ब्याज दर' की परिभाषा तथा व्याख्या (Definition of the Natural Rate of Interest and its Explanation)

विक्सैल ने स्वाभाविक ब्याज दर को कई प्रकार से परिभाषित किया जो कि निम्न हैं—(i) स्वाभाविक ब्याज दर वह दर है जिस पर पूंजी की माँग (अर्थात् बचतों की माँग) तथा बचतों की पूर्ति बराबर होती है, अथवा स्वाभाविक ब्याज दर बचतों की माँग तथा पूर्ति में बराबरी या सन्तुलन स्थापित करती है। (ii) यह वह ब्याज दर है जो कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity of capital) या पूँजी की प्रत्याशित प्राप्ति (expected yield of capital) के बराबर होती है। (iii) यह वह ब्याज दर है जो कि वस्तुओं के मूल्यों (अर्थात् मूल्य स्तर) के प्रति तटस्थ (neutral) होती है अर्थात् यह वस्तुओं के मूल्यों (या मूल्य स्तर) को न घटाती है और न बढ़ाती है (यदि ब्याज दर 'स्वाभाविक या सामान्य दर' से ऊँची या नीची है तो मूल्य स्तर को प्रभावित करेगी)। (iv) अमूर्त रूप में (abstractly) यह वह ब्याज की दर है जोकि माँग तथा पूर्ति द्वारा स्थापित होगी जबकि द्रव्य का कोई प्रयोग नहीं किया जाता है और उधार लेने देने का समस्त कार्य वास्तविक पूँजीगत वस्तुओं के रूप में किया जाता है।

विक्सैल ने बताया कि स्वाभाविक दर स्थिर या अपरिवर्तनशील नहीं होती। यह उत्पादन की कुशलता, स्थिर (fixed) तथा तरल (liquid) पूंजी की प्राप्य मात्रा, श्रम तथा भूमि की पूर्ति पर निर्भर करती है, संक्षेप में, यह उन हजारों बातों पर निर्भर करती है जो कि एक समाज की वर्तमान आर्थिक स्थिति को निर्धारित करती हैं, और इनके साथ यह निरन्तर परिवर्तित अर्थात् ऊँची-नीची होती रहती है।

अब 'स्वाभाविक ब्याज दर' तथा 'मौद्रिक ब्याज दर' (money rate of interest) या 'बाजार ब्याज दर' में सम्बन्ध की विवेचना करते हैं। विक्सैल ने बताया कि स्वाभाविक ब्याज दर तथा बाजार दर का सदैव बराबर होना आवश्यक नहीं है। क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार स्वाभाविक ब्याज दर (अर्थात् सन्तुलन ब्याज दर) तथा बाजार दर बराबर होती है, यदि इनमें कोई अन्तर है तो आकस्मिक (accidental or casual) है। परन्तु विक्सैल के अनुसार इनमें अन्तर (divergence) आकस्मिक नहीं होता बल्कि बैंकों की उधार देने की क्रियाओं के परिणामस्वरूप होता है, बैंक साख का निर्माण कर द्रव्य या उधार-देय कोषों की कुल पूर्ति में वृद्धि करते हैं और परिणामस्वरूप बाजार ब्याज दर स्वाभाविक ब्याज दर से कम हो जाती है। इसके विपरीत, साख का संकुचन करके बैंक उधार-देय कोषों की कुल पूर्ति में कमी करते हैं और परिणामस्वरूप बाजार दर स्वाभाविक ब्याज दर से ऊँची हो जाती है।

परन्तु विक्सैल ने यह भी बताया कि यदि सन्तुलन स्थापित होता है तो बाजार तथा स्वाभाविक (या सामान्य) ब्याज की दरें बराबर होंगी।[1] उन्होंने इस कथन का समर्थन इस प्रकार किया। यदि किसी कारण बैंक स्वाभाविक दर से पर्याप्त नीची ब्याज दर पर ऋण (loan) उधार देते हैं तो साहसियों के लिए लाभों के अच्छे अवसर रहेंगे और विनियोग (या द्रव्य की पूर्ति) में वृद्धि होगी। इसमें संदेह नहीं कि बैंकों को स्वाभाविक दर मालूम नहीं होगी क्योंकि इसको नापने योग्य मात्रा (measurable magnitude) के रूप में परिभाषित नहीं किया गया है। पूर्ण रोजगार तथा स्थिर उपभोग की मान्यताओं के आधार पर बढ़ा हुआ विनियोग (या द्रव्य) कीमतों में वृद्धि उसी अनुपात में करेगा जिसमें कि द्रव्य की पूर्ति में वृद्धि हुई, और बढ़ते हुए विनियोग तथा बढ़ती हुई कीमतों का प्रगतिशील उत्थान उस समय तक जारी रहेगा जब तक कि बैंकों के अतिरिक्त रिजर्व समाप्त नहीं हो जाते तथा बाजार ब्याज दर बढ़कर सामान्य या

[1] "Wicksell argued that the market and the normal or natural rate of interest would have to be equal for equilibrium to exist."

स्वाभाविक दर के बराबर नहीं हो जाती।[7] यदि बैंक स्वाभाविक ब्याज दर से ऊँची दर पर द्रव्य उधार देते हैं तो ऊपर दिये गये तर्क का क्रम उल्टा हो जायेगा और पुनः बाजार ब्याज दर स्वाभाविक दर के बराबर हो जायेगी।

इस प्रकार, विकसैल के अनुसार, सन्तुलन की स्थिति में स्वाभाविक या सामान्य दर और बाजार दर बराबर होगी तथा असन्तुलन की स्थिति में बराबर नहीं होगी।[8]

३ निष्कर्ष

विकसैल का स्वाभाविक ब्याज का सिद्धान्त इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह ब्याज दर पर साख निर्माण के प्रभाव पर जोर देता है।[9] विकसैल का सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि ब्याज की कोई व्याख्या अमौद्रिक शब्दों (non-monetary terms) में नहीं की जा सकती, मौद्रिक बातें बाजार ब्याज दर पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। दूसरे शब्दों में, अब ब्याज के सभी सिद्धान्त इस बात पर ध्यान देते हैं कि द्रव्य की पूर्ति और माँग ब्याज की दर को थोड़ा-बहुत अवश्य प्रभावित करती है।

वास्तविक तथा मौद्रिक ब्याज दर
(ACTUAL OR REAL' AND 'NOMINAL OR MONEY' RATES OF INTEREST)

१. प्राक्कथन (Introduction)—ऊपर हम विकसैल के अनुसार स्वाभाविक ब्याज दर (जिसे सामान्य या वास्तविक ब्याज भी कहते हैं) तथा बाजार ब्याज दर में अन्तर तथा इनमें सम्बन्ध की विवेचना कर चुके हैं।

परन्तु अर्थशास्त्र में ब्याज की वास्तविक तथा मौद्रिक दरों के शब्दों का प्रयोग एक-दूसरे अर्थ में किया जाता है जिसका विवेचन नीचे किया गया है।

२ अर्थ (Meaning)—*एक व्यक्ति किसी वस्तु को खरीदते समय या रुपये उधार लेते* समय ब्याज की एक निश्चित मौद्रिक दर (माना कि ६%) देता है परन्तु वास्तव में उसे ब्याज दर कहीं अधिक पड सकती है। दूसरे शब्दों में, उधार देने वाले व्यक्ति के लिए 'वास्तविक प्राप्ति' (real yield) मौद्रिक ब्याज दर से कहीं अधिक हो सकती है, यह 'वास्तविक प्राप्ति' ही 'वास्तविक ब्याज दर' है।

३ व्याख्या (Explanation)—माना कि एक बैंक की मौद्रिक ब्याज दर ६ है। आप बैंक जाते हैं और उससे १,२०० रु० इस दर पर सालभर के लिए उधार चाहते हैं और आप बैंक को सालभर बाद (१,२००, रु०+७२ रु० ब्याज) कुल १,२७२ रु० देने को तत्पर हैं। *परन्तु बैंक आपके सामने एक दूसरा विकल्प (alternative) रखती है। बैंक कहती है कि आप उसे* प्रतिमाह १०० रु० मूलधन+प्रतिमाह ६ रु० ब्याज[11] अर्थात् प्रतिमाह १०६ रु० देकर १२ महीने में ऋण चुका दें। यदि आप इसे मान लेते हैं तो प्रकट रूप से (apparently) मौद्रिक ब्याज दर ६% प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में आपके लिए 'वास्तविक ब्याज दर' (actual or real rate

---

[7] "In support of his argument, he noted that if for any reason banks made loans at rates *materially lower* than the natural rate, opportunities of profits for entrepreneurs would exist and investment would increase Bankers, of course would not know the natural rate since it is not defined as a measurable magnitude Assuming full employment with consumption constant, the increased investment would produce a rise in price proportional to the increase in money supply, and a spiral of increasing investment and rising prices would continue until the excess reserves of the banks were exhausted and the market rate of interest was raised to the level of normal or natural rate"

[8] "Thus, according to Wicksell, in equilibrium the natural or normal rate and the market rate are equal but in disequilibrium they are unequal"

[9] "Wicksell's theory is important because it emphasizes the effect of credit creation upon the interest rate, thereby introducing an additional variable into the analysis"

[10] "Contemporary interest theories all take account of the fact that supply of and demand for money have something to do with the interest rate"

[11] ६% की ब्याज से १,२०० रु० पर साल भर अर्थात् १२ महीने की ब्याज ७२ रु० हुई और १ महीने की ब्याज ७२/१२=६ रु० पडी।

of interest) ११% के लगभग पड़ती है। यह बात इस विवरण से स्पष्ट होगी। पहले महीने में आप पूरे १,२०० रु० का प्रयोग करते हैं, परन्तु दूसरे महीने के आरम्भ में आप १०० रु० मूलधन + ६ रु० ब्याज का देते हैं अर्थात् दूसरे महीने में आप १,२०० रु० — १०० रु० = १,१०० रु० का ही प्रयोग करते हैं, तीसरे महीने में आप १,१०० रु० — १,०० रु० = १,००० रु० का प्रयोग कर पाते हैं, इत्यादि। इस प्रकार १२ महीने में आप (१,२०० + १,१०० + १,००० + ९०० + ८०० + ७०० + ६०० + ५०० + ४०० + ३०० + २०० + १०० रु० = ७,८०० रु०) का प्रयोग करते हैं अर्थात् प्रति महीने $\frac{७८००}{१२}$ = ६५० रु० का औसत प्रयोग करते हैं (न कि कुल १,२०० रु० का) और ६% प्रति वर्ष की दर से 'प्रति महीने ६,०० ब्याज' के हिसाब से साल भर में ७२ रु० ब्याज दे देते हैं। दूसरे शब्दों में, आप साल भर में वास्तव में ६५० रु० का प्रयोग करते हैं और उस पर साल भर का कुल ब्याज ७२ रु० देते हैं, अतः आपकी वास्तविक ब्याज दर $\frac{७२}{६५०} \times १००$ = ११.०७% या ११% पड़ती है। स्पष्ट है कि यद्यपि बैंक की मौद्रिक ब्याज दर (money or nominal rate of interest) ६% है परन्तु आपकी 'वास्तविक ब्याज दर' ११% पड़ी।

इसी प्रकार जब आप किसी टिकाऊ उपभोग वस्तु (durable consumer goods), जैसे— रेडियो, सिलाई मशीन, इत्यादि को 'किस्त-क्रय-योजना' (instalment-purchase-plan) के अन्तर्गत खरीदते हैं तो आपकी वास्तविक ब्याज दर कहीं अधिक पड़ती है अपेक्षाकृत 'मौद्रिक ब्याज दर' के।

ब्याज का औचित्य
(JUSTIFICATION OF INTEREST)
अथवा
ब्याज क्यों दिया जाता है ?
(WHY IS INTEREST PAID)

१. प्राक्कथन (Introduction)

प्राचीन समय में ब्याज को प्रायः अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता था। मध्ययुगीन धर्मशास्त्रियों (medieval theologists) ने ब्याज लेने की क्रिया को 'ब्याजखोरी' (usury) की संज्ञा देकर बुराई की। प्राचीन समय में पूँजी के लाभदायक प्रयोग के अवसर बहुत कम थे, और प्रायः ऋण धनवान व्यक्तियों द्वारा उपभोग हेतु निर्धन व्यक्ति को दिये जाते थे। इसलिए ब्याज की बुराई की जाती थी।

मार्क्स (Marx) के अनुसार उत्पादन में प्रयुक्त श्रम की मात्रा द्वारा मूल्य निर्धारित होता है, इसलिए समस्त मूल्य श्रमिकों को प्राप्त होना चाहिए, परन्तु पूँजीवाद के अन्तर्गत उत्पादक श्रमिकों को केवल भरण-पोषण मात्र देकर समस्त आधिक्य स्वयं हड़प जाते हैं। अतः मार्क्स के अनुसार ब्याज एक 'डाका' (robbery) है और इस प्रकार मार्क्स के अनुसार समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज का कोई स्थान नहीं है।

परन्तु आधुनिक युग में ब्याज का भुगतान बुरा नहीं समझा जाता है। पूँजी उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है और यह उत्पादन में सहायक है, दूसरे शब्दों में, पूँजी में उत्पादकता है और साधन के रूप में पूँजी को उसकी उत्पादकता का पुरस्कार या कीमत मिलनी चाहिए, इसके अतिरिक्त पूँजी के स्वामी के लिए ब्याज आय के समान भी है। दूसरे शब्दों में, किसी भी अन्य उत्पत्ति के साधन की आय (earnings) की भाँति ब्याज एक कीमत तथा आय का एक स्रोत (source) होता है।[11]

अब हम नीचे पहले (अ) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (या स्वतन्त्र उद्यम) के अन्तर्गत ब्याज के औचित्य का—दो रूपों में, 'ब्याज कीमत के रूप में' (interest as a price) तथा 'ब्याज आय के स्रोत के रूप में' (interest as a source of income) विवेचन करेंगे, तत्पश्चात् (ब) समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज का विवेचन करेंगे।

---

[11] "Like the earnings of any other factor of production, interest is both a price and a source of income."

२ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (या स्वतन्त्र उपक्रम के अन्तर्गत ब्याज (Interest under Capitalist Economy or Free Enterprise Economy)

(अ) ब्याज कीमत के रूप में (Interest as a Price)

कीमत के रूप मे ब्याज अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्यों (social functions) का सम्पादन करती है जिनके कारण ब्याज का भुगतान होता है या ब्याज को उचित बताया जाता है। मुख्य सामाजिक काय निम्न हैं

(i) ब्याज बचत करने के लिए आवश्यक है (Interest is necessary for savings)—लोग बचत करने के लिए प्रोत्साहित हों इसके लिए ब्याज देना आवश्यक है। हम समय-पसन्दगी (time preference) के लिए या तरलता-पसन्दगी (liquidity preference) के त्याग के लिए ब्याज देना होगा।

परन्तु उपर्युक्त तर्क बहुत प्रभावपूर्ण नहीं है। इसके कारण हैं—(१) यह कहना कठिन है कि ब्याज दर निश्चित रूप से व्यक्तिगत बचतो को बहुत अधिक प्रभावित करती है या नहीं। (२) इसके अतिरिक्त कम्पनियों द्वारा बचत (corporate saving) की जाती है अर्थात् संस्थाओं (institutions) द्वारा बचतें की जाती हैं और ये बचतें व्यक्तिगत निर्णयों पर निर्भर नहीं करतीं। (३) अविकसित तथा विकासमान देशो म टैक्स द्वारा प्राप्त आय मे से सरकार एक भाग बचा सकती है और इस बचत को पूंजी निर्माण में लगा सकती है।

(ii) ब्याज पूंजीगत वस्तुओं की माँग को उचित सीमाओं तक नियन्त्रित करती है (Interest restraints the demand for capital goods within the limits of feasibility)—यदि हम ब्याज तथा बचतो की पूर्ति के सम्बन्ध के वाद-विवाद (controversy) को छोड़ दें और यह मान लें कि किसी भी प्रकार बचतो की पूर्ति की मात्रा निर्धारित हो जाती है तो यह देखना है कि बचतें क्या करती हैं। बचत का अर्थ है कि जब आय उपभोग वस्तुओं पर व्यय नहीं की जाती और बचतो (अर्थात द्रव्य की पूर्ति) का पूंजीगत वस्तुओं मे विनियोग कर और अधिक उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार बचत साधनों को स्वतन्त्र (liberate) करती है। साधन जो कि (उपभोक्ताओं के लिए) प्रत्यक्ष बिक्री हेतु उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करते उनको बचत के माध्यम द्वारा पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन में प्रयुक्त करना सम्भव होता है। प्रकट रूप से जो केवल द्रव्य की पूर्ति दिखायी देती है वह वास्तव मे साधनों की पूर्ति है, पूंजीगत वस्तुओं की पूर्ति का अकुर है।[13]

यदि इन साधनों (अर्थात् पूंजीगत वस्तुओं या बचतों) को निःशुल्क प्राप्त किया जा सकता तो इनकी माँग असीमित होती, परन्तु पूंजीगत वस्तुओ की सम्भावित (potential) पूर्ति असीमित नहीं होती। अत ब्याज का मुख्य कार्य उचित सीमाओं के अन्तर्गत पूंजीगत वस्तुओं की माँग को नियन्त्रित करना है। इस नियन्त्रण के अभाव में पूंजीगत वस्तुओं की माँगी जाने वाली मात्रा प्राप्य साधनों से बहुत अधिक होगी और इससे अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक भार पड़ेगा।[14]

(iii) ब्याज का राशनिंग या वितरण कार्य (Rationing or allocating function of interest)—वस्तुओं की कीमतें साधनों के वितरण या राशनिंग का कार्य करती हैं। ब्याज दर भी उधार-देय कोषों की कीमत (price of loanable funds) होने के कारण द्रव्य-पूंजी के वितरण का कार्य करती है और इसलिए वास्तविक पूंजी को विभिन्न फर्मों और विनियोग-परियोजनाओं (investment projects) मे बांटती है। ब्याज की दर प्राप्य उधार देय कोषों की पूर्ति को उन

---

[13] 'Saving *liberates resources* which would otherwise have been producing for direct sale to consumers and makes them available for production of capital goods. What seems to be just a supply of money is really a supply of resources, of capital goods in embryo

[14] 'So one major function of interest is to restrain the demand for capital goods within the limit of feas b l ty W thout the r stra nt the quant ty of capital goods demanded would greatly exceed the resources available and wou'd overstrain the economy "

विनियोग-परियोजनाओ मे वितरित करती है जिनमे प्रतिफल की दर या सम्भावित लाभ दर (rate of return or expected profitability) इतनी ऊँची है जिससे से प्रचलित ब्याज दर का भुगतान किया जा सके। जिन परियोजनाओ (projects) म प्रतिफल या लाभ की दर अथवा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (माना कि १०%) अधिक है ब्याज दर (माना कि ६%) से (या वह कम-से-कम ब्याज दर के बराबर है), उसमे पूँजी का विनियोग होगा और उन्हें कार्यान्वित किया जायेगा। इसके विपरीत जिन परियोजनाओ मे पूँजी की सम्भावित सीमान्त आगम उत्पादकता ब्याज की दर से कम है उनमे पूँजी का विनियोग नही होगा और उन्हें कार्यान्वित नही किया जायेगा। **इस प्रकार ब्याज दर द्रव्य और अन्त मे वास्तविक पूँजी को उन उद्योगों में वितरित करती है जिनमे कि वे सर्वाधिक उत्पादक और इसलिए सर्वाधिक लाभदायक होती है।**[15]

परन्तु यह ध्यान रहे कि ब्याज के वितरण कार्य की कुछ सीमाएँ भी हैं अर्थात् ब्याज दर सर्वाधिक उत्पादक प्रयोगों मे पूँजी के राशनिंग का काम पूर्णता के साथ नही करती है—(i) अनेक फर्में अपनी पूँजी विस्तार की आवश्यकताओ को स्वय के आन्तरिक वित्तीय साधनो द्वारा पूरा कर लेती हैं और इस प्रकार इन फर्मो मे ब्याज दर द्वारा पूँजी के वितरण कार्य का प्रश्न नहीं उठता। (ii) बडी अल्पाधिकारी फर्में (oligopolistic firms) अपनी वस्तु की कीमतो को ऊँचा करने की अधिक अच्छी योग्यता रखती है और परिणामस्वरूप वे ब्याज-लागतो (interest costs) को उपभोक्ताओ के कन्धो पर डालने की अधिक अच्छी स्थिति मे होती है अपेक्षाकृत प्रतियोगी फर्मों के। (iii) बडी औद्योगिक फर्में केवल आकार तथा आदर के कारण ही नीची ब्याज दर पर सुगमता से द्रव्य प्राप्त कर सकती है और छोटी फर्मों या कम विख्यात फर्मों, जिनमे प्रत्याशित (expected) लाभ की दर अपेक्षाकृत अधिक ऊँची हो सकती है, को अधिक ऊँची दर पर तथा कठिनाई के साथ द्रव्य प्राप्त होता है और परिणामस्वरूप एसी फर्मों का जन्म या विस्तार नही हो पाता।

(ब) ब्याज आय के रूप मे (Interest as an Income)

आय के रूप मे ब्याज को उचित ठहराना आसान नही है। समाज मे प्राय व्यक्तियो का एक वर्ग ऐसा होता है जो कोई उपयोगी कार्य (socially useful work) करके आय प्राप्त नही करता बल्कि ब्याज की आय खाते हैं। ऐसी दशा मे ब्याज को उचित ठहराना कठिन है क्योंकि—(i) ब्याज खाने वाले व्यक्ति निकम्मे (idlers) हो जाते है और उनका रचनात्मक श्रम (creative labour) समाज को प्राप्त नही होता, तथा (ii) ब्याज की ऐसी आय असमानताओ को बढ़ाती है।

परन्तु यहाँ पर एक बात यह ध्यान मे रखने की है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे 'ब्याज को आय के रूप मे' पूर्णतया समाप्त करना कठिन है क्योंकि ऐसा करने मे व्यक्ति बचत नही करगे या बहुत कम बचत करेंगे और देश मे पूँजी निर्माण नही होगा। अत पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे 'ब्याज को आय के रूप मे' पूर्णतया समाप्त नही किया जा सकता, 'ब्याज से आय' को केवल नियन्त्रित (regulate) ही किया जा सकता है।

३ समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज (Interest under Socialism)

मार्क्स के अनुसार केवल श्रम ही उत्पादक होता है, उन्होंने पूँजी की उत्पादकता को मान्यता नहीं दी और इसलिए ब्याज के औचित्य को भी मान्यता नही दी। परन्तु यह विचारधारा उचित नहीं है, समाजवादी देशो मे यद्यपि ब्याज शब्द का प्रयोग नही होता परन्तु ब्याज का विचार पोर दरवाजे (back-door) से प्रवेश करता है, समाजवाद मे भी अप्रत्यक्ष रूप से ब्याज विभिन्न उद्योगों मे पूँजी के राशनिंग या वितरण का कार्य करती है।

---

[15] Thus, the interest rate rations or allocates money and ultimately real capital to those projects or industries in which it will be most productive and, therefore, most profitable.

(i) समाजवादी अर्थव्यवस्था में एक केन्द्रीय योजना बोर्ड (Central Planning Board) होता है जो कि समस्त अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करता है। एक केन्द्रीय योजना बोर्ड के लिए प्राय यह अत्यन्त कठिन होता है कि वह पूंजी के वितरण के सम्बन्ध में सभी निर्णय ले सके। अत केन्द्रीय बोर्ड आर्थिक नीति की सामान्य बातों (broad matters of economic policy) पर निर्णय लेता है और सूक्ष्म निर्णय लेने के कार्य (detailed decision-taking) को, जो प्राय महत्वपूर्ण होता है, विकेन्द्रित (decentralize) कर देता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की भांति, (अ) पूंजी की पूर्ति सीमित होती है जिसे सरकार विभिन्न उद्योगों में या प्रयोगों में लगाना चाहती है, तथा (ब) विभिन्न उद्योगों की उत्पादकता एकसमान नहीं होती। इन दोनों कारणों के परिणामस्वरूप समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी केन्द्रित योजना बोर्ड या विकेन्द्रित निर्णायकों के लिए कोई-न-कोई आदर्श (norm) या गाइड (guide) होनी चाहिए जिससे कि वे यह जान सकें कि किन प्रयोगों में पूंजी का विनियोग अधिक उत्पादक होगा और किन में कम उत्पादक। सीमित पूंजी से अधिकतम प्रतिफल प्राप्त करने की दृष्टि से विभिन्न विनियोग-परियोजनाओं (investment projects) के बीच चुनाव (screening) करने के लिए समाजवादी सरकार को गाइड के रूप में एक 'आदर्श-स्तर' (standard) निर्धारित करना पड़ता है और विकेन्द्रित-निर्णायक (decentralized decision takers) पूंजी का विनियोग उन उद्योगों में नहीं करते जिनमें कि प्रतिफल की दर' (rate of return) कम हो 'निर्धारित आदर्श-स्तर' (fixed standard rate) से। वास्तव में, यह 'आदर्श स्तर' ही ब्याज दर है, यद्यपि समाजवादी अर्थव्यवस्था में इसे ब्याज के नाम से नहीं पुकारा जाता है। इस प्रकार समाजवाद में ब्याज दर हिसाब रखने के उद्देश्य (accounting or book keeping purpose) के लिए आवश्यक है।[1] स्पष्ट है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज दर चोर-दरवाजे से प्रवेश करती है और पूंजी के वितरण या राशनिंग के महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन करती है। दूसरे शब्दों में, पूंजी की उत्पादकता को अप्रत्यक्ष रूप से मान्यता दी जाती है, अथवा यह कहिए कि ब्याज दर निर्धारण का एक पक्ष है 'घुमावदार' या 'पूंजीवादी' ('round-about' or 'capitalist') तरीकों की उत्पादकता।

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज-दर 'चोर-दरवाजे' से एक दूसरी प्रकार से भी प्रवेश करती है। समाजवादी सरकार देश की कुल श्रम-शक्ति (labour force) में से एक भाग 'उपभोग-वस्तुओं' के उत्पादन में तथा दूसरा भाग 'उत्पादक-वस्तुओं या पूंजीगत वस्तुओं' (producers goods or capital goods) के उत्पादन में प्रयुक्त करती है। उत्पादक वस्तुओं की सहायता से भविष्य में उपभोग वस्तुओं का अधिक उत्पादन सम्भव होगा और भविष्य में श्रमिकों का जीवन स्तर ऊंचा उठेगा परन्तु वर्तमान में जो श्रमिक 'उत्पादक वस्तुओं' का उत्पादन कर रहे हैं उनका भरण-पोषण (उपभोग वस्तुओं की पूर्ति द्वारा) अन्य श्रमिकों को करना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोग वस्तुओं में से एक हिस्सा उत्पादक वस्तु के उत्पादन में लगे हुए श्रमिकों को देना पड़ेगा, दूसरे शब्दों के अन्य श्रमिकों के उपभोग वस्तुओं के हिस्सों में से एकसमान प्रतिशत दर (equal percentage rate) की कटौती करनी होगी और यह कटौती (reduction) एक प्रकार से ब्याज की दर की भांति ही है। अत श्रमिकों को प्रतीक्षा करनी पड़ती है और भविष्य में उनको अधिक आयें प्राप्त हो सकें इसके लिए उन्हें अपनी आयों में अस्थायी कटौती सहन करनी पड़ती है। यह अस्थायी कटौती और कुछ नहीं है बल्कि ब्याज है।[2] दूसरे शब्दों में, समाजवादी

---

[1] According to Samuelson, Social engineers (*i e*, economists) in Soviet Union need some form of interest rate for making efficient investment calculation, as a result, about a dozen different accounting methods are in vogue there for introducing a thinly disguised interest rate concept into Soviet planning procedures (But of course, no one necessarily receives interest income from them)

[2] "That is labourers must wait and in order that they may enjoy greater incomes in the future, they suffer a temporary reduction of their incomes This temporary reduction is nothing but the rate of interest"

अर्थव्यवस्था में ब्याज निर्धारण का दूसरा पक्ष 'उपभोग स्थगन' ('abstinence' or 'postponing consumption for future') या मितव्ययता (thrift) है, परन्तु यह उपभोग-स्थगन ऊपर से योजना समिति के दबाव द्वारा लागू (enforce) किया जाता है, व्यक्तियों की स्वेच्छा पर नहीं छोड़ा जाता।

समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज की स्थिति के उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण को प्रो० बेनहम (Benham) के शब्दों में संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—"इस प्रकार समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज की दर हिसाब लगाने के लिए प्रयुक्त की जाती है, यद्यपि किसी व्यक्ति द्वारा न ब्याज का भुगतान किया जाता है और न उसे प्राप्त किया जाता है। एक ओर ब्याज की दर उत्पादन के 'घुमावदार' या 'पूँजीवादी' तरीकों की उत्पादकता द्वारा तथा दूसरी ओर 'उपभोग स्थगन' या 'मितव्ययता' द्वारा निर्धारित होगी। परन्तु उपभोग-स्थगन' या 'मितव्ययता' ऊपर से योजना समिति के दबाव द्वारा लागू किया जाता है, व्यक्तिगत बचतकर्ताओं के निर्णयों पर नहीं छोड़ा जाता। बचत तथा विनियोग एक ही बात को देखने के दो विभिन्न तरीके होंगे—अर्थात् वर्तमान आवश्यकताओं के स्थान पर भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनों का प्रयोग।"[18]

४. निष्कर्ष (Conclusion)

(i) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज का कीमत के रूप में पूर्ण औचित्य है, परन्तु ब्याज का केवल आय के रूप में उचित ठहराना कठिन है।

(ii) पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों में ब्याज दर का अस्तित्व होता है परन्तु समाजवाद में ब्याज दर की उपस्थिति अप्रत्यक्ष (indirect) होती है। ब्याज की दृष्टि से पूँजीवाद तथा समाजवाद में भेद ब्याज की उपस्थिति में अन्तर के कारण नहीं होता है (क्योंकि ब्याज दर तो दोनों अर्थव्यवस्थाओं में उपस्थित होती है), बल्कि दोनों में भेद इसलिए होता है कि—(अ) पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में व्यक्तियों का एक वर्ग ऐसा होता है जो कि अपनी निजी पूँजी (privately owned capital) की पूर्ति के बदले ब्याज का भुगतान प्राप्त करता है जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज प्राप्त करने वाले निजी व्यक्तियों का ऐसा वर्ग उपस्थित नहीं होता, (ब) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विभिन्न परियोजनाओं (projects) का मूल्यांकन बाजार कीमतों (market prices), जिनमें से ब्याज एक है, पर किया जाता है; जबकि समाजवाद में उनका मूल्यांकन सरकार-निर्धारित-कीमतों (state administered prices), जिनमें से ब्याज अर्थात् एक 'आदर्श स्तर' standard rate) भी एक है, पर किया जाता है।

(iii) पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों में 'ब्याज' या 'ब्याज-गणना' (interest calculation) के आधारभूत कार्य अपरिवर्तित रहते हैं और इसलिए दोनों में ब्याज का औचित्य है। "पूँजी प्रयोग करने वाली अर्थव्यवस्था में ब्याज गणना एक आवश्यक पार्ट अदा करती है। हम 'पूँजीवादी अर्थव्यवस्था' के स्थान पर 'पूँजी प्रयोग करने वाली अर्थव्यवस्था' का प्रयोग क्यों करते हैं? इसका कारण है कि ब्याज के कार्यात्मक औचित्य (functional justification) का सम्बन्ध इस बात से नहीं होता कि पूँजी का स्वामी कौन है, ब्याज कौन प्राप्त करता है अथवा ब्याज का भुगतान वास्तव में होता है या नहीं। समस्त पूँजी पर सरकार का स्वामित्व होने पर भी ब्याज समान आर्थिक कार्यों का सम्पादन करता है।"[19]

---

[18] "Thus under socialism a rate of interest would be used for purposes of calculation, although no body paid or received interest. The rate would be determined by the productivity of 'roundabout' or 'capitalistic' method of production on the one hand, and by abstinence or thrift on the other hand. But the abstinence or thrift would be enforced from above by the planning committee instead of being left to the decisions of individual savers. Saving and investment would be merely two different ways of looking at the same thing—namely, the use of resources to provide for future, instead of for current wants."

—Benham *Economics* p. 297

[19] "Interest calculations play a necessary role in a capital-using economy. Why do we say 'capital using' rather than 'capitalistic'? Because the functional justification of interest has nothing to do with who owns the capital, who receives the interest or even whether interest payments are made at all. Interest serves the same economic functions even if all capital is publicly owned."

अध्याय ३ की परिशिष्ट (APPENDIX TO CHAPTER 3)

ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (MODERN THEORY OF INTEREST)

ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF INTEREST)

अथवा

ब्याज का नया-कॅंजियन सिद्धान्त
(NEO-KEYNESIAN THEORY OF INTEREST)

१. प्राक्कथन (Introduction)

ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त ने ब्याज के निर्धारण मे वास्तविक तत्त्वो (real factors)—वास्तविक बचत (या किफायत) [real savings (or thrift)] तथा वास्तविक विनियोग (या उत्पादकता) [real investment (or productivity)] पर ध्यान दिया। यह सिद्धान्त अनिर्धारणीय (indeterminate) है, अर्थात् इसके द्वारा ब्याज का निर्धारण नहीं हो सकता है। 'उधार-देय कोष सिद्धान्त' ने वास्तविक तत्त्वो तथा मौद्रिक (monetary) तत्त्वों दोनों पर ध्यान दिया। परन्तु यह सिद्धान्त 'वास्तविक तत्त्वों' तथा 'मौद्रिक तत्त्वों' को उचित तथा वैज्ञानिक ढग से समन्वित (integrate) नही कर सका; और यह सिद्धान्त भी 'अनिर्धारणीय' है। कॅंज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त ने केवल मौद्रिक तत्त्वो पर ध्यान दिया और यह सिद्धान्त भी अनिर्धारणीय है।

हिक्स तथा हेनसन (Hicks and Hansen) ने ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का निर्माण किया। ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त एक निर्धारणीय सिद्धान्त है, अर्थात् इसके द्वारा ब्याज का निर्धारण किया जा सकता है। वास्तव मे आधुनिक सिद्धान्त 'क्लासीकल सिद्धान्त' तथा 'तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त' दोनो का एक 'व्यापक दृष्टि से समन्वित रूप' (comprehensively integrated form) है। क्लासीकल सिद्धान्त से दो वास्तविक तत्त्व—बचत तथा विनियोग—मिलते हैं, तथा कॅंज के सिद्धान्त से दो मौद्रिक तत्त्व—नकद द्रव्य की मांग (या तरलता-पसन्दगी) तथा नकद द्रव्य की पूर्ति—प्राप्त होते हैं। दोनो सिद्धान्तो के समन्वय से चार तत्त्व—बचत, विनियोग, तरलता-पसन्दगी तथा द्रव्य की मात्रा—प्राप्त होते है, इन चार तत्त्वो के अतिरिक्त एक और तत्त्व 'आय' (income) को शामिल किया जाता है, इस प्रकार 'ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त' के अनुसार उपर्युक्त पाँच तत्त्व ब्याज को निर्धारित करते है।

क्लासीकल सिद्धान्त मे ब्याज के लिए बचत तथा विनियोग का सन्तुलन होता है, इसकी सहायता से 'IS-रेखा' (IS-Curve, that is, Investment and Saving Curve) प्राप्त किया जाता है, यह IS-रेखा 'वास्तविक क्षेत्र' (real sector) मे सन्तुलन को बताती है। कॅंज के सिद्धान्त के अनुसार ब्याज-निर्धारण के लिए 'तरलता-पसन्दगी' तथा 'द्रव्य की मात्रा' मे सन्तुलन होता है; इसकी सहायता से LM-रेखा [LM-Curve, *i. e.*, Liquidity Preference and Money (or Quantity of Money) Curve] प्राप्त होता है, यह रेखा 'मौद्रिक-क्षेत्र' (monetary sector) मे सन्तुलन को बताती है। IS-रेखा तथा LM-रेखा के कटाव बिन्दु पर ब्याज का निर्धारण होगा; इस बिन्दु पर चारों तत्त्व, अर्थात् बचत, विनियोग, तरलता-पसन्दगी और द्रव्य की मात्रा, आय के एक ही स्तर पर, बराबर होगे।

अब हम इस बात की विवेचना करेंगे कि IS-रेखा तथा LM-रेखा को कैसे निकाला (या derive किया) जाता है।

२. IS-रेखा का निकालना (Derivation of IS-Curve)

बचत आय के स्तर पर निर्भर करती है, इसलिए आय के विभिन्न स्तरों पर बचत भिन्न-भिन्न होगी। माना कि Y_1, Y_2, Y_3, Y_4 तथा Y_5 आय के बढ़ते हुए विभिन्न स्तरों को बताते हैं। चित्र ६ (a) में आय के इन स्तरों से सम्बन्धित 'बचत-रेखाएँ' (saving-curves) S_1Y_1, S_2Y_2, S_3Y_3, S_4Y_4 तथा S_5Y_5 हैं। चित्र ६ (a) में रेखा II 'विनियोग रेखा' (investment curve) है। आय में वृद्धि होने से बचतें अधिक होंगी, इसलिए बचत रेखाएँ S_1Y_1, S_2Y_2, इत्यादि दायें को खिसकती जाती हैं।

(a) (b)
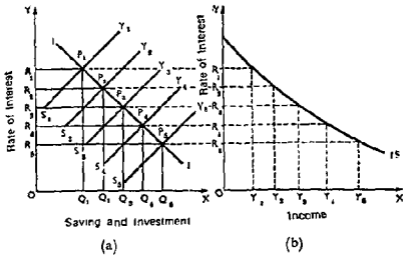
चित्र—६

S_1Y_1 तथा II बिन्दु P_1 पर काटती है, और ब्याज की दर P_1Q_1 अथवा R_1 होगी; दूसरे शब्दों में, आय के स्तर Y_1 पर बचत तथा विनियोग में सन्तुलन स्थापित होगा ब्याज दर R_1 पर, इस ब्याज दर पर बचत तथा विनियोग दोनों OQ_1 के बराबर है। अब आय बढ़कर Y_2 हो जाती है तो ब्याज की दर R_2 (या P_2Q_2) होगी और इस ब्याज की दर पर बचत तथा विनियोग सन्तुलन में या बराबर होंगे, दोनों OQ_2 के बराबर हैं। इसी प्रकार आय के स्तर Y_3, Y_4 तथा Y_5 पर ब्याज की दर क्रमश (respectively) R_3, R_4 तथा R_5 होगी, तथा इन ब्याज की दरों पर बचत तथा विनियोग में सन्तुलन होगा अर्थात् वे बराबर होंगे।

यदि विभिन्न आय के स्तरों तथा उनसे सम्बन्धित ब्याज की दरों, जिन पर बचत व विनियोग बराबर होते हैं, के सम्बन्ध को एक रेखा द्वारा बतायें, तो हमें IS-रेखा प्राप्त हो जाती है; जैसा कि चित्र ६ (b) में दिखाया गया है। दूसरे शब्दों में, IS-रेखा ब्याज की दरों तथा आय के स्तरों के सम्बन्ध को बताती है और इस रेखा का प्रत्येक बिन्दु बचत तथा विनियोग के बराबर (या सन्तुलन में) होने को बताता है। IS-रेखा विभिन्न आय के स्तरों पर दी हुई बचत-रेखाओं के एक परिवार (a family of given saving-curves at different levels of income) तथा 'विनियोग-रेखा' के आधार पर निकाली जाती है; इन रेखाओं में परिवर्तन होने पर IS-रेखा की स्थिति में भी परिवर्तन हो जायेगा।

IS-रेखा का ढाल ऋणात्मक (negative) होता है, अर्थात् वह नीचे को गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र ६ (b) में दिखाया गया है। इसका कारण है कि IS-रेखा 'ब्याज' तथा 'आय के स्तर' के बीच उल्टे सम्बन्ध (inverse relation) को बताती है; अर्थात् जैसे-जैसे आय का स्तर बढ़ता जाता है (अर्थात् Y_1, Y_2, Y_3 इत्यादि होता जाता है) वैसे-वैसे ब्याज की दर घटती जाती है

(अर्थात् R_1, R_2, R_3 इत्यादि होती जाती है) इस प्रकार 'आय के स्तर' और 'ब्याज की दर' मे उल्टा सम्बन्ध होना है जो कि चित्र ६ क (a) तथा (b) दोनों से स्पष्ट है। दूसरे शब्दो मे, ऊँची आय के स्तरो पर अधिक बचतें होंगी (अर्थात् पूँजी की पूर्ति अधिक होगी) और इसलिए ब्याज की दर नीची होगी। स्पष्ट है कि आय के स्तर' तथा ब्याज की दर' म उल्टा सम्बन्ध होगा।

३. LM-रेखा का निकालना (Derivation of LM-Curve)

चित्र १० (a) तरलता-पसन्दगी रेखाओं का एक परिवार (a family of liquidity preference curves) दिया गया है। बढ़ती हुई आय के स्तरो Y_1, Y_2, Y_3, Y_4 तथा Y_5 पर तरलता-पसन्दगी रेखाएं क्रमशः (respectively) L_1Y_1, L_2Y_2, L_3Y_3, L_4Y_4 तथा L_5Y_5 हैं। आय मे वृद्धि के साथ तरलता-पसन्दगी मे वृद्धि होगी, इसलिए तरलता-पसन्दगी रेखाएँ बायें को ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं। माना कि नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा (OQ) दी हुई है।
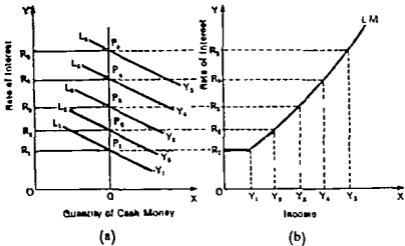
चित्र—१०

चित्र १० (a) म आय के स्तर Y_1 पर ब्याज की दर P_1Q या R_1 होगी और इस ब्याज-दर पर 'नकद द्रव्य की मांग' (अर्थात् तरलता-पसन्दगी) तथा 'नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा' बराबर होगी (दोनो OQ के बराबर होगी), अर्थात् दोनो सन्तुलन मे होगी। इसी प्रकार Y_2 आय के स्तर पर ब्याज की दर R_2 होगी और इस ब्याज-दर पर भी 'नकद द्रव्य की मांग' (demand for cash or liquid money) तथा 'द्रव्य की वास्तविक मात्रा' दोनो सन्तुलन मे होगी अर्थात् दोनो OQ के बराबर होगी। इसी प्रकार Y_3, Y_4 तथा Y_5 आय के स्तरो पर ब्याज की दरें क्रमशः R_3, R_4 तथा R_5 होगी और इन ब्याज की दरो पर नकद द्रव्य की मांग' तथा 'नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा' दोनो सन्तुलन में होगी।

यदि विभिन्न आय के स्तरो तथा उनसे सम्बन्धित ब्याज की दरो, जिन पर 'नकद द्रव्य की मांग' और 'नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा या पूर्ति' बराबर होती है, के सम्बन्ध को एक रेखा द्वारा बताये तो हमे LM-रेखा प्राप्त हो जाती है, जैसा कि १० (b) मे दिखाया गया है। दूसरे शब्दो म, LM-रेखा 'आय के स्तरो' तथा 'ब्याज की दरो' के सम्बन्ध को बताती है और इस रेखा पर प्रत्येक बिन्दु 'नकद द्रव्य की मांग या तरलता-पसन्दगी' और 'नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा' के बराबर (या सन्तुलन मे) होने को बताता है। LM-रेखा विभिन्न आय के स्तरो पर दी हुई तरलता-पसन्दगी रेखाओ के परिवार' तथा 'दी हुई नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा' के आधार पर निकाली जाती है, इनमे परिवर्तन होने पर LM-रेखा की स्थिति [चित्र १० (b)] मे भी परिवर्तन हो जायेगा।

LM-रेखा का ढाल धनात्मक (positive) है, अर्थात् वह ऊपर को बढ़ती हुई होती है जैसा कि चित्र १० (b) में दिखाया गया है। इसका कारण है कि LM-रेखा 'ब्याज' तथा 'आय के स्तर' के बीच सीधे सम्बन्ध (direct relation) को बताती है, अर्थात् जैसे-जैसे आय का स्तर बढ़ता जाता है (अर्थात् Y_1, Y_2, Y_3, इत्यादि होता जाता है) वैसे-वैसे ब्याज की दर भी बढ़ती जाती है (अर्थात् R_1, R_2, R_3, इत्यादि होती जाती है), इस प्रकार 'आय के स्तर' तथा 'ब्याज की दर' में सीधा सम्बन्ध होता है, जोकि चित्र १० के (a) तथा (b) दोनों में स्पष्ट है। दूसरे शब्दों में, ऊँची आय के स्तरों पर नकद द्रव्य की माँग (अर्थात् तरलता-पसन्दगी) अधिक होगी और इसलिए (जबकि नकद द्रव्य की 'वास्तविक मात्रा' दी हुई है), ब्याज की दर ऊँची होगी, स्पष्ट है कि 'आय के स्तर' तथा 'ब्याज की दर' में सीधा सम्बन्ध होगा।

४. ब्याज का निर्धारण (Determination of Rate of Interest)

IS-रेखा तथा LM-रेखा का कटाव बिन्दु ब्याज की दर को निर्धारित करता है, जैसा कि चित्र ११ में दिखाया गया है। चित्र में दोनों रेखाएँ बिन्दु P पर काटती हैं, अतः ब्याज की दर PY या R पर निर्धारित होगी। सन्तुलन ब्याज की दर R पर एक ही आय के स्तर Y पर एक ओर तो वास्तविक क्षेत्र (real sector) में 'बचत तथा विनियोग' बराबर होंगे, और, दूसरी ओर, मौद्रिक क्षेत्र (monetary sector) में 'नकद द्रव्य की माँगी जाने वाली मात्रा, तथा 'नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा' बराबर होंगी। दूसरे शब्दों में, सन्तुलन ब्याज की दर R पर, एक ही आय के स्तर Y पर चारों तत्त्व—बचत, विनियोग, तरलता पसन्दगी तथा द्रव्य—की
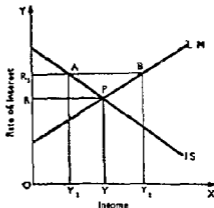
चित्र—११

मात्रा—बराबर हैं, ब्याज की दर R के अतिरिक्त किसी अन्य ब्याज की दर पर ऐसा नहीं होगा। माना (चित्र ११ में) ब्याज की दर R_1 है तो वह सन्तुलन ब्याज की दर नहीं होगी क्योंकि इस ब्याज की दर पर चारों तत्त्व एक ही आय के स्तर पर एक साथ बराबर नहीं होंगे। R_1 पर या तो आय के स्तर Y_1 पर, विनियोग तथा बचत बराबर होंगे (जैसा कि बिन्दु A बताता है); अथवा आय के स्तर Y_2 पर तरलता-पसन्दगी तथा द्रव्य की मात्रा बराबर होंगे (जैसा कि बिन्दु B बताता है), परन्तु चारों तत्त्व एक साथ एक ही आय के स्तर पर बराबर नहीं होंगे। स्पष्ट है कि केवल ब्याज की दर R ही सन्तुलन दर होगी क्योंकि इस ब्याज की दर पर, एक ही आय के स्तर पर, चारों तत्त्व, अर्थात् बचत, विनियोग, तरलता-पसन्दगी और द्रव्य की मात्रा बराबर हैं।

प्रश्न

१. ब्याज का क्या अर्थ है ? ब्याज किस प्रकार निर्धारित होता है ?

What is interest ? How is interest determined ?

[संकेत—प्रश्न के दूसरे भाग के उत्तर में ब्याज निर्धारण के लिए 'ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त' (Loanable Funds Theory of Interest) का संक्षेप में पूर्ण विवेचन कीजिए, इस सिद्धान्त के 'निष्कर्ष' के अन्तर्गत आधुनिक मत को भी शामिल किया हुआ है; अथवा परिशिष्ट में दिये गये आधुनिक सिद्धान्त को लिखिए।]

२. "ब्याज शुद्ध प्रतीक्षा का पुरस्कार है। यह एक निश्चित समय में पूँजी के प्रयोग की कीमत है और इसलिए ब्याज की दर पूँजी की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।" बताइए कि ब्याज की दर कैसे निर्धारित होती है ?

"Interest is the reward for pure waiting It is the price for the use of capital for a given period and as such is determined by the demand for and supply of capital." Discuss.

(Agra, 1967)

अथवा

"ब्याज प्रतीक्षा का पुरस्कार है। विवेचना कीजिए।

"Interest is the reward for waiting" Discuss (*Allahabad*, 1967)

[संकेत—ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त की पूर्ण व्याख्या, आलोचना सहित, कीजिए।]

३ ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Explain critically the liquidity preference theory of interest

(*Kumaun, B A I*, 1975, *Garwal B Com II*, 1976, *Bihar*, 1976)

अथवा

'ब्याज तरलता के परित्याग का पुरस्कार है, तथा वह द्रव्य की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।' विवेचना कीजिए।

"Interest is the reward paid for parting with liquidity, and it is determined by the demand of money and supply of money" Discuss (*Agra, B A I*, 1976)

अथवा

इस मत की आलोचना कीजिए कि ब्याज द्रव्य की पूर्ति तथा मांग द्वारा निर्धारित होती है।

Discuss the view that interest is determined by the supply of and demand for money

(*Bihar*, 1969)

अथवा

"ब्याज की दर द्रव्य की कीमत है और द्रव्य की पूर्ति तथा मांग द्वारा निर्धारित होती है।" विवेचना कीजिए।

"The rate of interest is the price of money and is determined by the supply of money and the demand for it" Discuss.

अथवा

"ब्याज एक मौद्रिक बात है।" इस सन्दर्भ मे ब्याज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

"Interest is a monetary phenomenon." Discuss in this connection the liquidity preference theory of interest

४. ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त की पूर्ण व्याख्या कीजिए।

Explain fully the Loanable Funds Theory of Interest

अथवा

'ब्याज उधार देय कोषो के प्रयोग की कीमत है, तथा यह उधार देय कोषो की मांग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।' विवेचना कीजिए।

Interest is the price which is paid for the use of loanable funds, and it is determined by the demand and supply of loanable funds' Discuss (*Agra, B A I, Suppl*, 1976)

५ (अ) 'ब्याज प्रतीक्षा का पुरस्कार है।'

(ब) 'ब्याज तरलता-पसन्दगी की कीमत है।'

इन दोनो मे आप कौन-सा कथन ठीक समझते हैं और क्यो ?

(a) 'Interest is the reward for waiting."
(b) "Interest is the price for liquidity preference"
Which of the two statements do you regard as correct and why ? (*Punjab*, 1966)

[संकेत—प्रथम भाग मे, संक्षेप मे क्लासीकल सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। दूसरे भाग मे, ब्याज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त की संक्षेप मे आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। अन्त मे, निष्कर्ष मे बताइए कि दोनो सिद्धान्त अपूर्ण या अनिर्धारणीय हैं। ब्याज का एक निर्धारणीय सिद्धान्त इन दोनो सिद्धान्तो के समन्वय (synthesis) द्वारा प्राप्त होता है जैसा कि Hicks तथा Hansen बताते हैं। Hicks तथा Hansen के अनुसार ब्याज, बचत, विनियोग, तरलता पसन्दगी तथा द्रव्य की मात्रा—इन चार तत्त्वो द्वारा निर्धारित होती है।]

६. क्या ब्याज तरलता समर्पण का पुरस्कार है या बचत के त्याग का पुरस्कार ? स्पष्टतया व्याख्या कीजिए।

Is interest a reward for parting with liquidity preference or a reward for sacrifice of savings Explain fully *(Gorakhpur, 1967)*

७ ब्याज क्यों चुकाना पड़ता है ? ब्याज की वास्तविक दर मौद्रिक दर तथा स्वाभाविक दर में अन्तर बताइए।

Why interest be paid ? Distinguish between real rate, money rate and natural rate of interest *(Sagar, 1968 S)*

८ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत ब्याज के सामाजिक कार्यों की विवेचना कीजिए।

Discuss the social functions of interest under a capitalist economy ?

६ ब्याज क्यों दिया जाता है ? क्या समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज का कोई स्थान होता है ?

Why is interest paid ? Is there a place for interest under a socialist economy ?

१० ब्याज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। क्या ब्याज की दर कभी शून्य हो सकती है ?

Examine critically the liquidity preference theory of interest Will the rate of interest ever fall to zero ? *(Patna 1967 S, Bihar, 1967 A)*

परिशिष्ट पर प्रश्न

१ ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

Discuss the modern theory of interest.

4 मजदूरी
[WAGES]

मजदूरी का अर्थ
(MEANING OF WAGES)

श्रम (labour) के प्रयोग के लिए दी गयी कीमत (price) मजदूरी कहलाती है।[1]

उपर्युक्त परिभाषा को समझने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

(अ) अर्थशास्त्र में 'श्रम' शब्द का अर्थ शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के श्रम से लिया जाता है। अत मजदूरी मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार के श्रम के लिए कीमत है।

(ब) अर्थशास्त्री 'श्रम' शब्द का बहुत विस्तृत अर्थ लेते हैं और मजदूरी का अर्थ निम्न वर्गों के श्रम के लिए भुगतान है

(i) संकीर्ण अर्थ में श्रमिक, अर्थात् कारखानों तथा फैक्ट्रियों में कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के श्रमिक (blue-collar workers) क्लर्क (white-collar workers), इत्यादि।

(ii) फर्मों तथा फैक्ट्रियों के मैनेजर, उच्च अधिकारी सरकारी अफसर, इत्यादि। साधारण बोलचाल की भाषा में इनके श्रम के पुरस्कार को वेतन कहा जाता है परन्तु आर्थिक दृष्टि से यह भी मजदूरी है और वेतन तथा मजदूरी में कोई भी अन्तर नहीं किया जाता।

(iii) व्यावसायिक लोग (professional people)—वकील, अध्यापक, डाक्टर, इत्यादि के श्रम के पुरस्कार भी मजदूरी के अन्तर्गत आते हैं।

(iv) छोटे व्यापारी (small businessmen) बहुत छोटे खुदरा व्यापारी (very small retailers), नाई (barbers), मरम्मत करने वाले विभिन्न प्रकार के मिस्त्री, इत्यादि, ये लोग अपने व्यवसायों को चलाने में श्रम के रूप में सेवाएँ प्रदान करते हैं और इनकी सेवाओं के पुरस्कार को अर्थशास्त्री प्राय मजदूरी के अन्तर्गत रखते हैं।

(स) बोनस, रायल्टी (Royalties), कमीशन (Commission), इत्यादि, इन सबको भी अर्थशास्त्री मजदूरी के अन्तर्गत मानते हैं।

स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में 'श्रम की कीमत' अर्थात् 'मजदूरी' का अर्थ विस्तृत है।

नकद मजदूरी तथा असल मजदूरी
(MONEY OR NOMINAL WAGES AND REAL WAGES)

नकद मजदूरी तथा असल मजदूरी का अर्थ (Meaning of Money and Real Wages)

अर्थशास्त्री नकद मजदूरी तथा असल मजदूरी में भेद करते हैं। नकद मजदूरी वह है जो कि श्रम के लिए एक निश्चित समय (प्रति घण्टा, प्रति दिन, प्रति हफ्ता, प्रति माह, इत्यादि) में द्रव्य के रूप में दी जाती है। परन्तु नकद मजदूरी से किसी श्रमिक की वास्तविक स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं होता, इसके लिए असल या वास्तविक मजदूरी की जानकारी आवश्यक है।

---

[1] Wages are the price paid for the use of labour.

वास्तविक मजदूरी वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा को बताती है जो कि एक व्यक्ति अपनी नकद या द्राव्यिक मजदूरी से प्राप्त कर सकता है, दूसरे शब्दों में वास्तविक मजदूरी द्राव्यिक मजदूरी की 'क्रय शक्ति' (purchasing power) होती है[1] वास्तविक मजदूरी में नकद मजदूरी के अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ तथा सुविधाएँ भी शामिल होती हैं, जैसे व्यक्ति को नि:शुल्क डाक्टरी सहायता, सस्ता मकान बोनस इत्यादि।

एक व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी उसकी द्राव्यिक मजदूरी तथा खरीदी जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों पर निर्भर करती है। ध्यान रहे कि द्राव्यिक मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी आवश्यक रूप से एक दिशा में नहीं चलती। उदाहरणार्थ यह सम्भव है कि द्राव्यिक मजदूरी बढ़े और इसके साथ साथ वास्तविक मजदूरी घटे यदि वस्तुओं की कीमतें, द्राव्यिक मजदूरी (money wages) में वृद्धि की अपेक्षा, तेजी से बढ़ती है।

वास्तविक मजदूरी को निर्धारित करने वाले तत्त्व (Factors Determining Real Wages)

एक व्यक्ति की सही आर्थिक स्थिति का ज्ञान उसकी द्राव्यिक मजदूरी से नहीं बल्कि वास्तविक मजदूरी से होता है। विभिन्न व्यवसायों में वास्तविक मजदूरी भिन्न भिन्न होती है। वास्तविक मजदूरी निम्न तत्त्वों से प्रभावित होती है

(१) **द्रव्य की क्रय शक्ति** (Purchasing power of the money)—एक व्यक्ति अपनी एक निश्चित द्राव्यिक आय से अधिक वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सकता है यदि उनकी कीमतें कम हैं। एक छोटे शहर में बहुत बड़े शहर (जैसे कलकत्ता, बम्बई, इत्यादि) की अपेक्षा प्राय वस्तुएँ और सेवाएँ सस्ती होती हैं। यदि एक छोटे शहर में एक व्यक्ति या मजदूर को प्रति माह २०० रुपये द्राव्यिक मजदूरी मिलती है तो उसकी [illegible]विक मजदूरी उतने ही रुपये पाने वाले बड़े शहर के मजदूर की अपेक्षा अधिक होगी। कारण स्पष्ट है कि छोटे शहर में मुद्रा की क्रय शक्ति अधिक होती है अपेक्षाकृत बड़े शहर के।

(२) **अतिरिक्त आय** (Extra earnings)—किसी व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करने के लिए हम अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाली आय को भी ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरणार्थ,

(i) एक अध्यापक की वास्तविक आय उसके नकद वेतन से अधिक हो सकती है यदि वह पुस्तकें तथा लेख लिखकर रॉयल्टी प्राप्त करता है।

(ii) एक फैक्ट्री में कार्य करने वाले मजदूर की वास्तविक मजदूरी नकद मजदूरी से अधिक होगी यदि उसके आश्रितो (स्त्री तथा बच्चो) को स्थान विशेष पर घरेलू नौकरो के रूप में कार्य या अन्य प्रकार का कार्य आसानी से मिल जाता है।

(३) **अतिरिक्त सुविधाएं** (Extra facilities)—यदि किसी व्यवसाय में एक व्यक्ति को अपनी नकद मजदूरी के अतिरिक्त कुछ अन्य सुविधाएँ, जैसे नि:शुल्क डाक्टरी सहायता (free medical aid), नि:शुल्क या सस्ते किराए पर मकान की सुविधा, स्कूल में बच्चों की फीस माफ की सुविधा, इत्यादि प्राप्त हैं तो उस व्यक्ति की असल मजदूरी अधिक होगी।

(४) **कार्य का स्वभाव** (Nature of employment)—(i) कुछ कार्य कठिन, अरुचिकर तथा जोखिमपूर्ण होते हैं, जैसे कोयला की खानों में मजदूरों का कार्य, रेलवे ड्राइवर का कार्य, लोहा जलाने की भट्टी के मजदूर (blast furnace worker) का कार्य इत्यादि। इस प्रकार के कार्यों में नकद मजदूरी ऊँची होने पर भी वास्तविक मजदूरी कम होगी। इसके विपरीत, कुछ कार्य साफ, रुचिकर तथा आदरपूर्ण होते हैं (जैसे एक अध्यापक का कार्य)। इस प्रकार के कार्यों में नकद मजदूरी की अपेक्षा वास्तविक मजदूरी अधिक होगी।

[1] Real wages indicate the quantity of goods and services which one can obtain with his money wages in other words real wages are the 'purchasing power' of money wages

(ii) कार्य करने की दशाओं जैसे कार्य करने के घण्टों, छुट्टियों, इत्यादि पर भी वास्तविक मजदूरी निर्भर करती है। यदि दो व्यक्ति दो व्यवसायों में समान नकद मजदूरी पाते हैं और प्रथम व्यवसाय में प्रतिदिन ५ घण्टे कार्य करना पड़ता है तथा साल में पर्याप्त छुट्टियाँ मिलती हैं, जबकि दूसरे व्यवसाय में ८ घण्टे कार्य करना पड़ता है और साल भर में कम छुट्टियाँ मिलती हैं, तो प्रथम व्यवसाय की वास्तविक मजदूरी अधिक होगी अपेक्षाकृत दूसरे के।

(iii) वास्तविक मजदूरी कार्य की नियमितता (regularity of employment) या कार्य की अवधि (period of employment) पर भी निर्भर करती है। यदि एक व्यक्ति को साल भर में नियमित रूप से कार्य मिलता है और उसे प्रति माह २०० रुपये नकद मजदूरी मिलती है, जबकि एक दूसरे व्यक्ति को साल भर में केवल ४ महीने कार्य मिलता है, तथा उसे प्रति माह ३०० रुपये नकद मजदूरी मिलती है, तो दूसरे व्यक्ति की नकद मजदूरी ऊँची होने पर भी उसकी वास्तविक मजदूरी कम होगी अपेक्षाकृत पहले व्यक्ति के।

(५) व्यावसायिक व्यय (Trade or job expenses)—कुछ व्यवसायों में व्यक्तियों को अपनी कार्यकुशलता का एक अच्छा स्तर बनाये रखने के लिए कुछ व्यय करने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, एक प्रोफेसर को अपने विषय से सम्बन्धित नवीनतम पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, इत्यादि पर पर्याप्त व्यय करना पड़ता है तभी वह विषय में सम्बन्धित विकास की आधुनिक प्रवृत्तियों से जानकारी रख सकता है। अतः एक प्रोफेसर की वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करने के लिए पुस्तकों पर व्यय को घटाना आवश्यक है।

(६) बिना भुगतान के अतिरिक्त कार्य (Extra work without payment)—यदि किसी व्यक्ति को कार्य के नियमित घण्टों के अतिरिक्त और अधिक कार्य करना पड़ता है परन्तु उसके लिए कोई भुगतान नहीं मिलता, तो उस व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी कम हो जायेगी। उदाहरणार्थ, एक सरकारी दफ्तर में कार्य करने वाले चपरासी को दफ्तर में ८-१० घण्टे कार्य करने के अतिरिक्त १-२ घण्टे सरकारी अफसर के घर पर भी कार्य करना पड़ता है जिसके लिए प्रायः उसे कोई भुगतान नहीं मिलता, इस प्रकार उसकी वास्तविक मजदूरी कम हो जाती है।

(७) ट्रेनिंग का समय तथा व्यय (Training period and expenses)—कुछ व्यवसायों में कार्य करने के लिए लम्बे समय तक ट्रेनिंग लेनी पड़ती है और पर्याप्त धन व्यय करना पड़ता है, जैसे डॉक्टर, इन्जीनियर, इत्यादि का व्यवसाय। अतः वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करते समय ट्रेनिंग की अवधि तक उसके व्यय को ध्यान में रखना पड़ता है।

(८) भविष्य में उन्नति की आशा (Good future prospects)—यदि किसी व्यवसाय में व्यक्तियों के लिए भविष्य में पद-उन्नति (promotion) के अच्छे अवसर रहते हैं, तो ऐसे व्यवसायों में आरम्भ में नकद मजदूरी के कम होने पर भी वास्तविक मजदूरी अधिक होगी।

मजदूरी के भुगतान की रीतियाँ
(METHODS OF WAGE PAYMENT)

श्रमिकों को मजदूरी कई ढंग से दी जाती है। मजदूरी के भुगतान की मुख्य रीतियाँ हैं—(१) समयानुसार मजदूरी (Time Wages), तथा (२) कार्यानुसार मजदूरी (Piece Wages)। प्रत्येक रीति का विस्तृत रूप से नीचे विवेचन किया गया है।

समयानुसार मजदूरी (Time Wages)

जब मजदूरी कार्य करने के समय के आधार पर दी जाती है तो उसे 'समयानुसार मजदूरी' (time wages) कहते हैं। यह समय, साधारणतया एक घण्टा, एक दिन, एक सप्ताह या एक माह होता है। इस रीति में एकसमान कार्य के लिए प्रत्येक मजदूर को समान मजदूरी मिलती है चाहे कोई मजदूर अपेक्षाकृत कम काम करे या अधिक। इस रीति के अन्तर्गत मजदूर द्वारा किये गये कार्य का मजदूरी से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है, परन्तु मालिक (employer) चाहे तो कार्य का एक न्यूनतम माप (minimum standard) तय कर सकता है।

समयानुसार मजदूरी के गुण (Merits of Time Wages)

संसार में समयानुसार मजदूरी अधिक प्रचलित है। इसके मुख्य गुण निम्न हैं :

(१) इस रीति के अन्तर्गत **श्रमिकों के रोजगार में स्थायित्व रहता है।** यदि मालिक ५-१० दिन को किसी कारणवश कार्य बन्द कर देता है तो भी श्रमिक का रोजगार बना रहता है, कार्य प्रारम्भ होते ही वह पुनः काम पर लग जाता है और उसका रोजगार सुरक्षित रहता है। श्रमिक की बीमारी की दशा में भी उसका रोजगार बना रहता है और प्रायः उसको मजदूरी मिलती है।

(२) इस रीति के अन्तर्गत **श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।** चूँकि मजदूरी एक निश्चित समय तक कार्य करने पर मिलती है, इसलिए मजदूर को अधिक उत्पादन करने के लिए बहुत तेजी से कार्य करने का लालच नहीं रहता। वह सुविधानुसार औसत दर्जे की तेजी से कार्य करता है, परिणामस्वरूप उसे अधिक औद्योगिक थकान नहीं होती और उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

(३) **जब कार्य बारीक हो, अधिक सतर्कता और व्यक्तिगत ध्यान (more care and individual attention) चाहता हो, या नाजुक मशीन (delicate machine) का प्रयोग किया जा रहा हो,** तो समयानुसार मजदूरी अधिक उपयुक्त होती है क्योंकि ऐसी स्थितियों में जल्दबाजी से कार्य बिगड़ जाता है।

(४) **जब किसी कार्य का प्रमापीकरण (standardisation) नहीं होता और इसलिए उसे ठीक प्रकार से नहीं मापा जा सकता** (जैसे—डाक्टर, अध्यापक, मैनेजर, इत्यादि के कार्य) तो ऐसी दशा में समयानुसार मजदूरी अधिक उपयुक्त रहती है।

(५) समयानुसार मजदूरी के अन्तर्गत समय की कोई पाबन्दी नहीं होती है, इसलिए **कार्य सावधानी से किया जाता है,** कार्य करने की एक उचित गति (speed) रखी जा सकती है **जिससे मशीनों तथा औजारों की टूट-फूट कम होती है तथा माल की बर्बादी (waste) नहीं होती है।**

(६) यह रीति **कार्य में नियमितता तथा निश्चितता** लाती है। मालिक को बार-बार नये मजदूरों की खोज नहीं करनी पड़ती है, तथा मजदूर भी प्रायः अपने रोजगार के बारे में निश्चित रहते हैं। इस प्रकार कार्य नियमितता के साथ चलता रहता है।

समयानुसार मजदूरी के दोष (Demerits of Time Wages)

समयानुसार मजदूरी के कुछ दोष भी हैं जो इस प्रकार है

(१) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिकों को **कार्य के अनुसार मजदूरी नहीं मिलती।** प्रत्येक मजदूर को निश्चित समय कार्य करने पर समान मजदूरी मिलती है चाहे वह कम काम करे या अधिक। प्रायः श्रमिक अधिक कुशलता के साथ कार्य नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि उन्हें एक पूर्व निश्चित मजदूरी मिलेगी। परिणामस्वरूप इस रीति के अन्तर्गत **कार्यकुशलता (efficiency) को प्रोत्साहन नहीं मिलता।**

(२) इस रीति के कारण प्रायः श्रमिक **अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं और सुस्ती से कार्य करते हैं।** श्रमिक यह जानते हैं कि एक निश्चित समय के पश्चात् उन्हें एक पूर्व निर्धारित वेतन अवश्य मिल जायेगा, परिणामस्वरूप वे आराम तथा सुस्ती से कार्य करते हैं और अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं।

कुशल श्रमिकों के ऊपर इस रीति का बुरा प्रभाव पड़ता है। **कुशल श्रमिकों को कोई** द्राव्यिक प्रेरणा नहीं मिलती है, इसलिए वे आराम पसन्द हो जाते हैं और उनकी **कार्यक्षमता में** धीरे-धीरे कमी होती जाती है।

(३) **उद्योगपतियों या मालिकों को प्रायः कम काम के लिए अधिक मजदूरी या वेतन देना**

पड़ता है, इसका कारण स्पष्ट है कि श्रमिक प्राय सुस्ती और आराम के साथ कार्य करते हैं और इस प्रकार उनके द्वारा कम उत्पादन किया जाता है।

(४) इस रीति के अन्तर्गत मालिक को पर्याप्त मात्रा मे निरीक्षण व्यय करना पड़ता है। श्रमिकों से ठीक मात्रा म काम लेने के लिए उद्योगपति को कई निरीक्षक (Supervisors) रखने पड़ते हैं, इस निरीक्षण-व्यय के कारण वस्तु की उत्पादन-लागत बढ़ती है।

(५) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिकों तथा मालिकों मे प्राय अच्छे सम्बन्ध नहीं रहते हैं। इसका कारण है कि श्रमिक अपनी मजदूरी बढ़ाने की माँग करते रहते हैं और मालिकों की यह शिकायत बनी रहती है कि श्रमिक कम काम करते हैं। इस प्रकार आशकाएँ तथा प्रति-आशकाएँ दोनो के बीच मनमुटाव को जन्म देती है।

समयानुसार मजदूरी की रीति के गुण तथा दोषों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि इस रीति का प्रयोग निम्न स्थितियो म अधिक उपयुक्त है :

(i) उन स्थितियो म जिनम कि कार्य को ठीक प्रकार स मापा नहीं जा सकता, जैसे—डाक्टर, अध्यापक मैनेजर, सुपरवाइजर, फोरमैन स्टोर-कीपर, इत्यादि के कार्य।

(ii) उन स्थितियो म जहाँ पर कि उत्पादित वस्तु या कार्य की किस्म पर अधिक बल दिया जाता है।

(iii) उन स्थितियो म जिनम कि उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाता है क्योंकि यहाँ पर मालिक उचित नियन्त्रण रख सकता है।

(iv) उन स्थितियो म जिनम कि नाजुक मशीनो तथा औजारो का प्रयोग किया जाता है।

(v) उन स्थितियो म जिनम कि श्रमिक काम सीखने के रूप मे (as apprentice) कार्य करते हैं।

कार्यानुसार मजदूरी (Piece Wages)

जब एक श्रमिक को मजदूरी उसके द्वारा किये गये कार्य की मात्रा तथा उत्तमता के आधार पर दी जाती है, तो उसे 'कार्यानुसार मजदूरी' कहते हैं। इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक द्वारा किये गये कार्य की मात्रा तथा मजदूरी मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

कार्यानुसार मजदूरी के गुण (Merits of Piece Wages)

इस रीति के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं :

(१) इस रीति के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को मजदूरी उसकी योग्यता तथा कार्यक्षमता के अनुसार मिलती है। इसके निम्न अच्छे परिणाम होते हैं—(i) यह रीति श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है क्योंकि प्रत्येक श्रमिक अपने उत्पादन को बढ़ाकर अधिक से अधिक मजदूरी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। (ii) श्रमिकों की कार्यक्षमता म वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन म वृद्धि होती है। (iii) उत्पादन व्यय कम होता है क्योंकि अधिक मजदूरी प्राप्त करने की दृष्टि से प्रत्येक श्रमिक मन लगाकर काम करता है, कम स कम समय म अधिकतम उत्पादन करने का प्रयत्न करता है तथा मालिक को उसके कार्य निरीक्षण के लिए सुपरवाइजर (Supervisors) इत्यादि पर बहुत ही कम या ना के बराबर व्यय करना पड़ता है।

(२) यह रीति न्यायपूर्ण है क्योंकि श्रमिकों को अपने प्रयत्नों का पूरा पुरस्कार प्राप्त हो जाता है तथा मालिकों को उतनी ही मजदूरी देनी होती है जितना कि श्रमिक उत्पादन करते हैं।

(३) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक प्राय यन्त्रों तथा औजारों का सावधानी से प्रयोग करते हैं क्योंकि उनके खराब हो जाने या टूटने से वे कम उत्पादन कर सकेंगे और उनकी मजदूरी कम होगी।

(४) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं, उन्हे अधिक मजदूरी प्राप्त होती है, परिणामस्वरूप श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है। इसी प्रकार उपभोक्ताओं को भी लाभ होता है क्योंकि उन्हे वस्तुओं की अधिक मात्रा अपेक्षाकृत कम कीमत पर प्राप्त होती है।

कार्यानुसार मजदूरी के दोष (Demerits of Piece Wages)

इस रीति के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं

(१) इस रीति के कारण वस्तुओं के गुण में गिरावट आती है क्योंकि अधिक उत्पादन (तथा अधिक मजदूरी प्राप्त करने) के लालच में प्राय श्रमिक वस्तु के गुण की उपेक्षा करते हैं।

(२) अधिक मजदूरी प्राप्त करने की दृष्टि से प्राय श्रमिक अपनी शक्ति से बाहर कार्य करते हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है, वे कम आयु में ही वृद्ध दिखायी देने लगते है तथा कुछ वर्षों में ही उनकी कार्यकुशलता कम हो जाती है।

(३) इस रीति का प्रयोग उन कार्यों के लिए उचित नहीं है जिनमें उत्पत्ति को ठीक प्रकार से मापा नहीं जा सकता। इसी प्रकार यह रीति बारीक तथा कलात्मक कार्यों के लिए भी उपयुक्त नहीं है।

(४) इस रीति के कारण द्वेष भावनाओं (jealousies) को प्रोत्साहन मिलता है। जो श्रमिक कम मजदूरी प्राप्त कर पाते हैं वे अधिक मजदूरी प्राप्त करने वाले कुशल श्रमिक के प्रति जलन तथा ईर्ष्या भाव रखने लगते हैं, परिणामस्वरूप श्रमिकों के संगठन तथा सौदा करने की सामूहिक शक्ति में कमी हो जाती है।

इतना ही नहीं मालिक भी उन श्रमिको के प्रति ईर्ष्या करने लगते हैं जो कि अधिक मजदूरी प्राप्त करते हैं और मालिक कम मजदूरी देने का प्रयत्न करने लगते हैं, इससे श्रमिकों तथा मालिकों में मन-मुटाव बढ़ता है।

(५) बीमारी, दुर्घटना, इत्यादि आकस्मिक घटनाओं के दिनों में श्रमिकों को मजदूरी प्राप्त नहीं होती। इसके अतिरिक्त श्रमिकों को प्राय यह भय बना रहता है कि उनकी नौकरी किसी भी समय छूट सकती है, इस प्रकार इस रीति में रोजगार का स्थायित्व नहीं रहता है।

यह कहना कठिन है कि समयानुसार मजदूरी तथा कार्यानुसार मजदूरी में कौन-सी मजदूरी श्रेष्ठ है, दोनों के अपने गुण दोष हैं और कोई भी रीति पूर्ण नहीं है। प्रत्येक रीति का प्रयोग परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है।

मजदूरी के सिद्धान्त
(THEORIES OF WAGES)

मजदूरी किस प्रकार निर्धारित होती है? इस सम्बन्ध में समय-समय पर प्रचलित परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये। मजदूरी के सभी प्राचीन सिद्धान्त दोषपूर्ण हैं और वे अब मान्य नहीं हैं। नीचे हम इन विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से आधुनिक सिद्धान्त की पृष्ठभूमि की जानकारी के लिए करते हैं।

मजदूरी कोष सिद्धान्त
(THE WAGE FUND THEORY)

इस सिद्धान्त के निर्माण के सम्बन्ध में प्रारम्भ में कई क्लासीकल अर्थशास्त्रियों का हाथ रहा परन्तु जे० एस० मिल (J S Mill) ने इस सिद्धान्त को अन्तिम (final) रूप दिया, इसलिए 'मजदूरी कोष सिद्धान्त' के निर्माता मिल ही माने जाते हैं। इस सिद्धान्त की आलोचना के परिणामस्वरूप बाद में मिल ने इस सिद्धान्त का त्याग दिया।

मिल के अनुसार, श्रमिकों की मजदूरी 'जनसंख्या तथा पूंजी के अनुपात' (proportion between population and capital)[3] पर निर्भर करती है। जनसंख्या का अर्थ 'श्रमिकों की जनसंख्या' अर्थात् श्रमिकों की पूर्ति से है। देश में उपलब्ध पूंजी का एक भाग या कोष (fund) मजदूरी के भुगतान के लिए रख दिया जाता है। यदि पूंजी का यह कोष अर्थात् 'मजदूरी कोष'

[3] Lifted from Briggs and Jordon, *A Text Book of Economics* p 310

(wages fund) अधिक है तो श्रमिकों की माँग अधिक होगी तथा उसके कम होने पर मजदूरों की माँग कम होगी, दूसरे शब्दों में, श्रमिकों की माँग देश में उपलब्ध पूँजी अर्थात् मजदूरी-कोष पर निर्भर करती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि मजदूरी दो बातों पर निर्भर करती है—(i) मजदूरी कोष (Wages fund) पूँजीपति अपनी चल पूँजी (circulating capital) का एक भाग मजदूरी के भुगतान के लिए अलग रख देते हैं जिसे 'मजदूरी कोष' कहा जाता है। इस कोष का निर्माण पिछली बचतों के आधार पर होता है तथा समय विशेष में यह लगभग स्थिर रहता है। यह कोष मजदूरों की माँग निर्धारित करता है। यदि यह कोष अधिक है तो श्रमिकों की माँग अधिक है और इस कोष के कम होने पर श्रमिकों की माँग भी कम होगी। (ii) श्रमिकों की पूर्ति: समय विशेष में, मजदूरी कोष लगभग स्थिर या निश्चित रहता है, इसलिए श्रमिकों की संख्या अधिक होने पर उनकी मजदूरी की सामान्य दर (general wage rate) कम होगी तथा उनकी संख्या कम होने पर मजदूरी की दर ऊँची होगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है

$$\text{मजदूरी की सामान्य दर (The general wage rate)} = \frac{\text{मजदूरी कोष (Wages fund)}}{\text{श्रमिकों की संख्या (Number of workers)}}$$

उपर्युक्त सूत्र से स्पष्ट है कि मजदूरी की सामान्य दर को दो प्रकार से बढ़ाया जा सकता है—मजदूरी कोष में वृद्धि करके या मजदूरों की संख्या में कमी करके। मजदूरी कोष पिछली बचतों द्वारा निर्मित होता है और यह समय विशेष में स्थिर रहता है, इसलिए मजदूरी की सामान्य दर केवल मजदूरों की संख्या में कमी होने पर ही बढ़ सकती है, अतः मजदूरी की दर में वृद्धि के लिए श्रमिकों को अपनी जनसंख्या कम करनी चाहिए। इस प्रकार मजदूरी की सामान्य दर में वृद्धि प्राप्त करने के लिए श्रमिक संघों (Trade Unions) के प्रयत्न बेकार हैं। यदि किसी उद्योग विशेष में श्रमिकों की मजदूरी की दर में वृद्धि होती है तो इसका अर्थ है कि दूसरे उद्योगों में मजदूरी की दर कम होगी क्योंकि मजदूरी-कोष तो सीमित या स्थिर है।

मजदूरी-कोष सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं:

(१) **यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि 'मजदूरी कोष' कैसे उत्पन्न होता है या कोष की मात्रा कैसे निर्धारित की जाती है।** यह तो केवल एक 'स्पष्ट तत्त्व' (self-evident fact) को बताता है कि मजदूरी कोष में मजदूरों की संख्या का भाग देने से मजदूरी की सामान्य दर प्राप्त होती है।

(२) **यह सिद्धान्त श्रमिकों की कार्यक्षमता (efficiency) पर कोई ध्यान नहीं देता:** (i) यह आवश्यक नहीं है कि मजदूरी कोष एक समयावधि में स्थिर रहे, यदि मजदूरों की कार्यक्षमता अधिक है तो वे अधिक उत्पादन करेंगे, उन्हें अधिक मजदूरी दी जायेगी तथा मजदूरी कोष अधिक होगा। (ii) श्रमिकों की कार्यक्षमता में भिन्नता होने के कारण उनकी मजदूरी में भिन्नता होती है। 'मजदूरी कोष सिद्धान्त' सभी मजदूरों को एकसमान मान लेता है, उनकी कार्यक्षमता के अन्तर पर कोई ध्यान नहीं देता और इस प्रकार **श्रमिकों की मजदूरी में अन्तर की व्याख्या नहीं करता।**

(३) **मजदूरी की सामान्य दर पूँजी की प्राप्य कुल मात्रा पर अनिवार्य रूप से निर्भर नहीं करती जैसा** कि मजदूरी कोष सिद्धान्त मान लेता है। व्यवहार में प्रायः यह देखा गया है कि नये देशों में जिनमें कि पूँजी कम होती है, मजदूरी ऊँची होती है अपेक्षाकृत पुराने देशों के जिनमें पूँजी अधिक होती है।

(४) इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी मे वृद्धि पूंजीपतियो के लाभ को कम कर देती है (तथा मजदूरी में कमी लाभ को बढा देती है)। वास्तव मे, बढते हुए प्रतिफल (law of increasing returns) के कारण तथा ऊँची मजदूरी के परिणामस्वरूप श्रमिको की उच्च कार्यक्षमता के कारण कुल उत्पादन मे इतनी वृद्धि हो सकती है कि जिससे मजदूरी तथा लाभ दोनो मे वृद्धि हो।

(५) श्रमिको की मांग मजदूरी कोष द्वारा निर्धारित नहीं होती जैसा कि मजदूरी कोष सिद्धान्त मान लेता है। श्रमिको की मांग तो श्रमिको द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग पर निर्भर करती है न कि मजदूरी कोष पर।

(६) सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी बढ़ने पर लाभ कम होगा, परिणामस्वरूप पूंजी उद्योग से बाहर जाने लगेगी और श्रमिको की मांग कम हो जायेगी। इसका कारण है कि पूंजी इतनी गतिशील (mobile) नही होती जितनी कि मजदूरी कोष सिद्धान्त के निर्माता समझते थे, इसी प्रकार लाभ के थोडा कम होने से साहसी श्रमिको की मांग मे एकदम कमी नही कर देते हैं।

(७) सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी मे वृद्धि के परिणामस्वरूप सदैव श्रमिको की जनसख्या मे वृद्धि होगी। ऐतिहासिक तथ्य यह बताते हैं कि कई देशो मे मजदूरी मे वृद्धि, अर्थात् जीवन-स्तर मे वृद्धि, के कारण जनसख्या मे कमी हुई, वृद्धि नही।

मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त
(THE SUBSISTENCE THEORY OF WAGES)

१८वी शताब्दी मे फ्रास के फीज्योक्रेट्स सम्प्रदाय (physiocrats school) के अर्थशास्त्रियो ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। जर्मनी के अर्थशास्त्री लेसेल (Lassalle) ने इस सिद्धान्त को मान्यता दी तथा इसे 'मजदूरी का लौह सिद्धान्त' (Iron Law of Wages) या 'मजदूरी का ब्रेजन नियम' (Brazen Law of Wages) का नाम दिया। यह सिद्धान्त माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त पर आधारित है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी की दर द्रव्य की उस मात्रा के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है जो कि श्रमिको के जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त है। यदि किसी समय मे मजदूरी जीवन-निर्वाह से अधिक है, तो श्रमिको की जनसख्या मे वृद्धि होगी, श्रमिको मे रोजगार के लिए प्रतियोगिता बढेगी और मजदूरी घटकर ठीक जीवन निर्वाह के स्तर पर आ जायेगी। यदि मजदूरी जीवन निर्वाह से कम है, तो बहुत से श्रमिक शादी नही कर पायेंगे, श्रमिको की जनसख्या मे कमी होगी, श्रमिको की पूर्ति, माग की अपेक्षा, कम होने से मजदूरी बढेगी और बढकर ठीक जीवन-निर्वाह के स्तर पर आ जायेगी। इस प्रकार मजदूरी की प्रवृत्ति जीवन निर्वाह के स्तर के बराबर होने की रहती है।

मजदूरी के जीवन निर्वाह सिद्धान्त की आलोचना

सिद्धान्त की मुख्य आलोचानाएँ निम्न है

(१) जीवन निर्वाह के स्तर को ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक श्रमिक की आवश्यकताएँ, परिवार के सदस्यो की सख्या, इत्यादि भिन्न होती है।

(२) यह सिद्धान्त एक पक्षीय (one sided) है, यह केवल श्रमिको की पूर्ति की दशाओ की व्याख्या करता है और श्रमिको की मांग की उपेक्षा (ignore) करता है। श्रमिको की मांग उनकी उत्पादकता के कारण होती है, इसलिए मजदूरी का सम्बन्ध उत्पादकता से होना चाहिए परन्तु यह सिद्धान्त इस बात की उपेक्षा करता है।

(३) यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता है कि विभिन्न व्यवसायो मे मजदूरी की दर क्यो भिन्न होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार सभी श्रमिको की मजदूरी एकसमान होगी क्योंकि सभी के जीवन निर्वाह का स्तर लगभग समान होगा, परन्तु इस प्रकार की धारणा उचित नही है।

equitable and just

(४) यह सिद्धान्त न्यायसंगत तथा उचित (equitable and just) नहीं है। श्रमिकों को मजदूरी केवल जीवन-निर्वाह के बराबर दी जाये यह बात उचित तथा न्यायसंगत नहीं है। श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए ऊँची मजदूरी आवश्यक है।

(५) यह सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण में श्रम संघों के प्रभाव की उपेक्षा करता है।

(६) इस सिद्धान्त की यह मान्यता गलत है कि मजदूरी जीवन निर्वाह से अधिक होने पर श्रमिकों की जनसंख्या में वृद्धि होगी। श्रमिकों की मजदूरी ऊँची होने से उनका जीवन-स्तर ऊँचा होगा और ऊँचे जीवन-स्तर बनाये रखने के लिए प्राय श्रमिक कम सन्तान चाहते हैं।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त
(THE STANDARD OF LIVING THEORY OF WAGES)

यह सिद्धान्त 'जीवन निर्वाह सिद्धान्त' का सुधरा हुआ रूप है। १९वीं शताब्दी के अन्त में 'जीवन निवाह' शब्द का त्याग कर दिया गया तथा उसके स्थान पर अधिक उपयुक्त शब्द 'जीवन-स्तर' का प्रयोग किया गया।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त बताता है कि श्रमिकों को मजदूरी केवल जीवन-निर्वाह योग्य ही नहीं होनी चाहिए बल्कि मजदूरी इतनी होनी चाहिए जो श्रमिकों के उस जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए पर्याप्त हो जिसके वे आदी हो चुके हैं। जीवन-स्तर के अन्तर्गत वे सब अनिवार्य, आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुएँ आ जाती हैं जिनके श्रमिक आदी हो जाते हैं।

यदि मजदूरी जीवन-स्तर से कम है तो बहुत-से श्रमिक शादी करने में असमर्थ होंगे और उनकी सख्या कम होगी, श्रमिकों की पूर्ति कम होने से उनकी मजदूरी बढ़कर ठीक जीवन-स्तर के बराबर हो जायेगी। यदि मजदूरी जीवन-स्तर से अधिक है तो श्रमिकों की पूर्ति बढ़ेगी और मजदूरी घटकर जीवन-स्तर के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी की प्रवृत्ति जीवन-स्तर के बराबर होने की होती है।

मजदूरी के जीवन-स्तर सिद्धान्त की आलोचना

यह सिद्धान्त भी अपूर्ण है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं:

(१) यह सिद्धान्त एकपक्षीय है क्योंकि यह श्रमिकों के केवल पूर्ति पक्ष की व्याख्या करता है। मजदूरी केवल श्रमिकों के जीवन-स्तर (अर्थात् पूर्ति) द्वारा ही नहीं बल्कि उनकी उत्पादकता (अर्थात् माँग) द्वारा भी प्रभावित होती है।

(२) यह कहना कठिन है कि मजदूरी प्रत्यक्ष रूप से जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होती है। वास्तव में, मजदूरी जीवन-स्तर को प्रभावित करती है तथा जीवन-स्तर (श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढ़ाकर) मजदूरी को प्रभावित करता है, दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त एक प्रकार से वृत्ताकार तर्क (circular reasoning) में फँस जाता है।

(३) यह कहना भी पूर्णतया सही नहीं है कि श्रमिक एक प्रकार के जीवन-स्तर के आदी हो जाते हैं, जीवन स्तर एक परिवर्तनशील तत्त्व है जो समय के साथ बदलता है। यह सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं करता है कि जीवन-स्तर परिवर्तनशील है तथा उसमे वृद्धि होने से मजदूरी मे वृद्धि होती है।

मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त
(THE RESIDUAL CLAIMANT THEORY OF WAGES)

अमरीका के अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वाकर के अनुसार श्रमिक उद्योग के अवशेष उत्पाद (residual product) का अधिकारी होता है। उद्योग के कुल उत्पादन में से लगान, ब्याज तथा लाभ को निकाल देने के पश्चात जो अवशेष बचता है वह मजदूरी होती है। लगान, ब्याज तथा लाभ का निर्धारण कुछ निश्चित नियमों द्वारा होता है परन्तु मजदूरी के निर्धारण का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है, कुल उत्पादन में से लगान, ब्याज तथा लाभ घटा देने के बाद जो बचता है वह मजदूरी होती है। संक्षेप में,

मजदूरी = (कुल उत्पादन) − (लगान + ब्याज + लाभ)

इस सिद्धान्त के अनुसार यदि श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं तो उनका अवशेष हिस्सा (residual share) अधिक होगा। दूसरे शब्दों में, इस सिद्धान्त की एक मुख्य बात यह है कि वह श्रमिकों की कार्यक्षमता अर्थात् उत्पादकता का सम्बन्ध मजदूरी के साथ स्थापित करता है, जबकि अन्य प्रारम्भिक सिद्धान्तों ने ऐसा नहीं किया। इस प्रकार यह सिद्धान्त मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आधार हो जाता है।

मजदूरी के अवशेष अधिकारी सिद्धान्त की आलोचना

(१) यह सिद्धान्त **एकपक्षीय** (one sided) है क्योंकि यह केवल श्रमिकों की उत्पादकता अर्थात् उनकी मांग पर ध्यान देता है और श्रमिकों की पूर्ति की उपेक्षा (ignore) करता है।

(२) यह सिद्धान्त **मजदूरी पर श्रम-संघों के प्रभाव** की उपेक्षा करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी अवशेष उत्पाद (residual product) है, इसलिए श्रमिक संघ उसे प्रभावित नहीं कर सकते। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है।

(३) जब लगान, ब्याज तथा लाभ का निर्धारण सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त या माँग तथा पूर्ति सिद्धान्त द्वारा समझाया जा सकता है तो मजदूरी के निर्धारण में यह सिद्धान्त क्यों नहीं अपनाया जा सकता है।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF WAGES)

वितरण का एक सामान्य सिद्धान्त 'सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' है, जब इस सिद्धान्त का प्रयोग उत्पत्ति के साधन श्रम के पुरस्कार 'मजदूरी' के निर्धारण में किया जाता है तो इसे 'मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' कहते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है। श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे 'सीमान्त उत्पादकता' (marginal productivity) कहते हैं तथा पूर्ण प्रतियोगिता में इस सीमान्त उत्पादकता के मूल्य को 'सीमान्त उत्पादकता का मूल्य' (Value of Marginal Productivity, *i e*, V. M. P) कहते हैं।[4] value of marginal pro

[पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम उत्पादकता अर्थात् MRP तथा सीमान्त उत्पादकता का मूल्य अर्थात् VMP दोनों एक ही होते हैं।[5]]

श्रम की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता के कारण की जाती है, श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग (derived demand) कही जाती है क्योंकि इसकी माँग इसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है। अन्य सहयोगी साधनों (co-operating factors) की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब एक उद्योगपति श्रम की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करता जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) के कारण उसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। उद्योगपति श्रम को उस बिन्दु तक प्रयोग करेगा जहाँ पर कि श्रम की एक अतिरिक्त इकाई की उत्पादकता (अर्थात् सीमान्त उत्पादकता) का मूल्य उनके लिए दी जाने वाली मजदूरी के बराबर हो जाता है।

यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक है तो उद्योगपतियों को हानि होगी और वे श्रमिकों की माँग कम कर देंगे। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उद्योगपतियों

---

[4] सीमान्त उत्पादकता (MP) के विचार तथा उसके विभिन्न अभिप्रायों—VMP, MRP, इत्यादि—का विस्तृत विवरण हम इस पुस्तक के पंचम भाग 'वितरण' के प्रथम अध्याय 'वितरण के सिद्धान्त' में कर चुके हैं।

[5] देखिए इस पुस्तक के पंचम भाग 'वितरण' के प्रथम अध्याय को।

को लाभ होगा और वे श्रमिकों की अधिक माँग करेंगे। अन सन्तुलन की स्थिति में एक उद्योगपति उस बिन्दु तक श्रमिकों का प्रयोग करेगा जहाँ पर श्रमिकों की मजदूरी ठीक उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जाती है।

यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता, श्रमिकों म पूर्ण गतिशीलता, श्रम की प्रत्येक इकाई का समान होना, इत्यादि अनेक मान्यताओं पर आधारित है।

मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

(१) यह सिद्धान्त अधूरा तथा एकपक्षीय (incomplete and one-sided) है क्योंकि यह केवल श्रमिकों की माँग (अर्थात् सीमान्त उत्पादकता) की व्याख्या करता है तथा उनके पूर्ति पक्ष के बारे मे कुछ नहीं बताता।

(२) *श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात (isolate) करना अत्यन्त कठिन है।* यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा

(i) किसी वस्तु का उत्पादन विभिन्न साधनों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है *अत श्रम की सीमान्त उत्पादकता का पृथक् करके ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है।* परन्तु मोटे रूप मे सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis) की सहायता स श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है।

(ii) कुछ अर्थशास्त्रियो (जैसे हाब्सन) के अनुसार साधनों के मिलने का अनुपात टेक्नीकल बातों के कारण स्थिर होता है और उसे बदला नहीं जा सकता, इसलिए सीमान्त विश्लेषण द्वारा श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नही किया जा सकता। परन्तु सभी दशाओं मे साधनों के मिलने के अनुपात स्थिर नहीं होते तथा दीर्घकाल मे प्राय अनुपातो को बदला जा सकता है।

(३) यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है, अत इसे अवास्तविक तथा अव्यावहारिक कहा जा सकता है। परन्तु कई आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने अपूर्ण प्रतियोगिता की वास्तविक स्थिति मे इस सिद्धान्त का प्रयोग किया है। [अपूर्ण प्रतियोगिता म श्रम की मजदूरी 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (marginal revenue productivity) के बराबर होती है, न कि 'सीमान्त उत्पादकता के मूल्य' (value of marginal productivity) के बराबर।]

(४) श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता की मान्यता गलत है, व्यावहारिक जीवन मे श्रमिकों की गतिशीलता म विभिन्न प्रकार की रुकावटें होती हैं।

(५) सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि श्रमिकों की सभी इकाइयाँ एकरूप (homogeneous) होती हैं, *व्यवहार म ऐसा नहीं होता है।*

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त एक स्थैतिक दृष्टिकोण (static approach) रखता है जबकि वास्तविक ससार प्रावैगिक (dynamic) है। यद्यपि यह सिद्धान्त अधूरा तथा एकपक्षीय है, परन्तु यह मजदूरी निर्धारण के महत्त्वपूर्ण तत्त्व अर्थात् श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता को प्रकाश म लाता है।

मजदूरी का बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त

(THE DISCOUNTED MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF WAGES)

प्रो० टाउसिग (Taussig) इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। टाउसिग के अनुसार मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कुछ कम होती है। मालिकों या उद्योगपतियों द्वारा मजदूरी वस्तु के विक्रय होने से पहले अर्थात् अग्रिम रूप (advance) मे दी जाती है, अत वे अग्रिम दी हुई धनराशि पर *वर्तमान ब्याज की दर स बट्टा (Discount)* काट लेते हैं। इस प्रकार मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर नहीं होती बल्कि उससे कुछ कम होती है क्योंकि इसम से कुछ बट्टा काट लिया जाता है दूसरे शब्दों में, मजदूरी 'बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता' (Discounted Marginal Productivity) के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है।

मजदूरी के बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं इस प्रकार हैं

(१) उद्योगपति उत्पत्ति के अन्य साधनो को भी बिक्री से पहले उनका पुरस्कार देता है तो लगान, ब्याज, इत्यादि पर बट्टा क्यो नही काटा जाता ? केवल मजदूरी मे ही से बट्टा क्यो काटा जाता है।

(२) मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की सभी आलोचनाएं इस सिद्धान्त पर भी लागू होती हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण आधुनिक सिद्धान्त
(WAGE DETERMINATION UNDER PERFECT COMPETITION MODERN THEORY)

मजदूरी श्रम की सेवाओ की कीमत है। अत आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार मजदूरी श्रम की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। यद्यपि मजदूरी, एक वस्तु के मूल्य की भाँति माँग तथा पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित होती है, परन्तु फिर भी मजदूरी के अलग सिद्धान्त की आवश्यकता इसलिए है कि श्रम की कुछ विशेषताएं होती हैं। मजदूरी का निर्धारण मूल्य के सामान्य सिद्धान्त (general theory of value) का ही एक विशिष्ट रूप (special case) है।

एक उद्योग मे मजदूरी उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ पर श्रमिको की कुल माँग रेखा तथा उनकी कुल पूर्ति रेखा काटती है।

श्रमिक की माँग (Demand of Labour)

श्रमिको की माँग किसी वस्तु के उत्पादन के लिए उत्पादको तथा साहसियो द्वारा की जाती है। उत्पादक श्रम की माँग करते समय श्रम की सीमान्त उत्पादकता के द्राव्यिक मूल्य (money value of marginal productivity) पर ध्यान देते हैं। श्रम की अधिक इकाइयो का प्रयोग करने से उत्पत्ति ह्रास नियम के परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादकता घटती जायेगी। उद्योग मे प्रत्येक उत्पादक श्रमिको को उस सीमा तक प्रयोग करेगा जहाँ पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य उसको दी जाने वाली मजदूरी के बराबर हो, उत्पादक श्रम की सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी नही देगा। अत श्रम की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त उत्पादकता का द्राव्यिक मूल्य श्रम की माग की अधिकतम सीमा है।

श्रम की माँग के सम्बन्ध मे निम्न बातें और ध्यान मे रखने की हैं

(i) श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है, अर्थात श्रम की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग के कारण उत्पन्न होती है। वस्तु की माँग अधिक या कम होने पर श्रमिक की माँग भी अधिक या कम होगी। इस प्रकार श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है जो कि उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है।

(ii) श्रम की माँग अन्य सहयोगी साधनों (co-operating factors) की कीमतो पर भी निर्भर करती है। यदि अन्य साधनो की कीमतें बहुत ऊँची हैं तो उनका प्रयोग कम होगा और श्रमिको की माँग अधिक होगी।

(iii) श्रमिकों की माँग टेकनीकल दशाओ पर भी निर्भर करती है। किसी वस्तु के उत्पादन मे श्रम का किसी अन्य साधन के साथ मिलने का अनुपात स्थिर (fixed) हो सकता है या परिवर्तनशील (variable), इसके अनुसार श्रम की माँग कम या अधिक हो सकती है।

श्रमिकों की माँग तालिका या माँग रेखा मजदूरी की विभिन्न दरों पर माँगी जाने वाली श्रमिकों की मात्रा बताती है। सामान्यतया यदि मजदूरी दर अधिक है तो श्रमिकों की माँग कम होगी तथा मजदूरी कम होने पर श्रमिकों की माँग अधिक होगी। दूसरे शब्दों में, मजदूरी तथा श्रम की माँग में उल्टा सम्बन्ध (inverse relation) होता है और इसलिए श्रम की माँग रेखा बायें से दायें नीचे को गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र न० १ में दिखाया गया है।

चित्र—१

श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)

एक उद्योग के लिए श्रम की पूर्ति का अर्थ है (i) एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की संख्या जो कि विभिन्न मजदूरी की दरों पर अपनी सेवाओं को अर्पित (offer) करने को तत्पर है तथा (ii) कार्य करने के घण्टे जो कि प्रत्येक श्रमिक मजदूरी की विभिन्न दरों पर देने को तत्पर है। सामान्यतया, श्रमिकों की पूर्ति तथा मजदूरी की दर में सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है, अर्थात् ऊँची मजदूरी पर अधिक श्रमिक तथा कम मजदूरी पर कम श्रमिक कार्य करने को तत्पर होते हैं।

एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की पूर्ति की निचली सीमा (lower limit) श्रमिकों के जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होती है, यदि मजदूरी उनके जीवन-स्तर की लागत से कम है तो श्रमिक कार्य करने के लिए अपनी पूर्ति नहीं करेंगे। अत मजदूरी कम से कम श्रमिकों के जीवन-स्तर के बराबर होनी चाहिए, इस प्रकार जीवन-स्तर मजदूरी की निचली सीमा निर्धारित करता है।

श्रमिकों की पूर्ति आर्थिक तथा अनार्थिक तत्त्वों (economic and non-economic factors) दोनों पर निर्भर करती है। श्रमिकों की पूर्ति निम्न बातों से प्रभावित होती है :

(अ) पहले हम अनार्थिक तत्त्वों को लेते हैं (i) सुस्ती (inertia), वर्तमान रोजगार तथा वातावरण से स्नेह (attachment), सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के कारण अगतिशीलता, इत्यादि के कारण यह सम्भव है कि श्रमिक ऊँची मजदूरी मिलने पर भी दूसरे रोजगार में न जायें। (ii) जनसंख्या के आकार (size) तथा आयु वितरण (age distribution) पर भी श्रमिक की पूर्ति निर्भर करती है।

(ब) अब हम आर्थिक कारणों पर विचार करते हैं। सामान्यतया, अधिक मजदूरी मिलने पर अधिक श्रमिक अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करने को तत्पर होंगे तथा नीची मजदूरी मिलने पर श्रमिकों की पूर्ति कम होगी। एक उद्योग श्रमिकों की आवश्यकतानुसार पूर्ति तब प्राप्त कर सकेगा जबकि वह श्रमिकों को ऊँची मजदूरी दे क्योंकि तभी श्रमिक दूसरे उद्योगों से इस उद्योग में हस्तान्तरित (shift or transfer) हो सकेंगे, दूसरे शब्दों में, एक उद्योग के लिए श्रमिकों की पूर्ति 'व्यावसायिक स्थानान्तरण' (occupational shift) पर निर्भर करती है। 'व्यावसायिक स्थानान्तरण' अर्थात् एक उद्योग के लिए श्रमिकों की पूर्ति निम्न तत्त्वों पर निर्भर करती है

(i) अन्य उद्योगों में मजदूरी की दर, यदि अन्य उद्योगों में, उद्योग विशेष की अपेक्षा, ऊँची मजदूरी है तो श्रमिक अन्य उद्योगों में जाने लगेंगे और उद्योग विशेष में श्रमिकों की पूर्ति कम होने लगेगी।

(ii) कुछ अन्य तत्त्वों, जैसे श्रमिकों में स्थानान्तरण के लिए सुस्ती (inertia), व्यवसाय में नौकरी की सुरक्षा (security of job), व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित आदर, बोनस तथा पेंशन की व्यवस्था, इत्यादि तत्त्व भी 'व्यावसायिक स्थानान्तरण' को प्रभावित करते हैं।

(स) श्रमिकों की पूर्ति को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्त्व है 'कार्य आराम अनुपात' (Work leisure ratio)। मजदूरी मे परिवर्तन दो प्रकार के प्रभावों को जन्म देता है—(i) 'प्रतिस्थापन प्रभाव' (Substitution effect) मजदूरी में वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक कार्य करेंगे अर्थात् वे 'आराम' (leisure) के स्थान पर 'कार्य' (work) का प्रतिस्थापन करेंगे, यह 'मजदूरी मे वृद्धि के कारण प्रतिस्थापन प्रभाव' (Substitution effect of increase in wages) हुआ। ध्यान रहे कि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' सदैव धनात्मक (positive) होता है अर्थात् मजदूरी मे वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक कार्य करेंगे। (ii) 'आय प्रभाव' (Income effect) मजदूरी म वृद्धि के कारण श्रमिकों की आय बढ़ती है, आय में वृद्धि के कारण वे अधिक आराम (more leisure) चाहते हैं। यह मजदूरी वृद्धि के कारण आय प्रभाव (income effect of increase in wages) हुआ। ध्यान रहे कि 'आय प्रभाव' ऋणात्मक (negative) होता है अर्थात् मजदूरी मे वृद्धि अधिक आराम करने को प्रोत्साहित करती है न कि अधिक कार्य को।

चूंकि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' धनात्मक होता है और 'आय प्रभाव' ऋणात्मक होता है इसलिए श्रम की वास्तविक पूर्ति (net supply) पर मजदूरी के परिवर्तन का सही प्रभाव जानना कठिन है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि मजदूरी मे वृद्धि के कारण श्रमिकों की पूर्ति मे वृद्धि होगी या श्रमिक अधिक घण्टे कार्य करने को तत्पर होंगे, परन्तु मजदूरी में बहुत वृद्धि हो जाने पर एक सीमा के बाद यह सम्भव है कि 'आय प्रभाव' के कारण श्रमिक कम घण्टे कार्य करें (अर्थात् उनकी पूर्ति कम हो) और अधिक आराम चाहें। ऐसी स्थिति मे श्रमिकों की पूर्ति रेखा प्रारम्भ में तो चढ़ती हुई होगी परन्तु एक सीमा के बाद यह बायें को पीछे की ओर झुकती हुई (backward sloping) हो सकती है जैसा कि चित्र न० २ मे SS-रेखा बताती है।

चित्र—२

मजदूरी का निर्धारण (Wage Determination)

एक उद्योग के लिए मजदूरी वहां पर निर्धारित होगी जहां पर श्रमिक की मांग तथा उनकी पूर्ति बराबर हो। चित्र न० ३ मे मजदूरी PQ या OW निर्धारित होगी क्योंकि इस मजदूरी की दर पर श्रमिकों की मांग तथा पूर्ति दोनो OQ के बराबर हैं। माना कि मजदूरी की दर OW नही है बल्कि OW_1 है इस मजदूरी की दर (wage rate) पर श्रमिकों की मांग तथा पूर्ति बराबर नही है। OW_1 मजदूरी की दर पर

श्रमिकों की पूर्ति $= W_1L$

श्रमिकों की मांग $= W_1M$

श्रमिकों की अतिरिक्त पूर्ति (excess of labour) या बेरोजगारी (unemployment)

$= W_1L - W_1M = ML$

श्रमिकों की यह अतिरिक्त पूर्ति (ML) मजदूरी की दर को घटायेगी और मजदूरी घटकर P बिन्दु पर पहुंच जायेगी (जैसा कि चित्र में नीचे को सन्तुलन बिन्दु P की ओर जाते हुए

चित्र—३

तीरो द्वारा दिखाया गया है) अर्थात् 'सन्तुलन मजदूरी दर' (equilibrium wage rate) PQ या OW स्थापित हो जायगी।

यदि मजदूरी की दर OW_2 है तो भी श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति बराबर नहीं है। OW_2 मजदूरी दर पर,

श्रमिकों की माँग $= W_2R$
श्रमिकों की पूर्ति $= W_2T$

श्रमिकों की अतिरिक्त माँग (excess demand) अर्थात् श्रमिकों की कमी (labour scarcity) $=$ TR

चूँकि श्रमिकों की माँग अधिक है और पूर्ति कम है इसलिए श्रमिकों की कमी (TR) मजदूरी दर को बढ़ायेगी और मजदूरी बढ़कर विन्दु P पर पहुँच जायेगी (जैसा कि चित्र में ऊपर को सन्तुलन विन्दु P की ओर जाते हुए तीरों द्वारा दिखाया गया है) अर्थात् 'सन्तुलन मजदूरी दर' PQ (या WO) स्थापित हो जायगी।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि मजदूरी की यह दर निर्धारित होगी जहाँ पर श्रमिकों की माँग तथा उनकी पूर्ति बराबर हो जाती है।

मजदूरी की दर के निर्धारण के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

(i) मजदूरी की दर के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखने की यह है कि सन्तुलन की स्थिति में मजदूरी सदैव सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से अधिक है तो उत्पादक श्रमिकों की कम माँग करेंगे तथा श्रमिक अपनी अधिक पूर्ति करने को तत्पर होंगे। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उत्पादक श्रमिकों की अधिक माँग करेंगे जबकि श्रमिक अपनी पूर्ति कम करेंगे। इस प्रकार जब तक मजदूरी की दर सीमान्त उत्पादकता के बराबर नहीं होगी तब तक श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति में परिवर्तन होते रहेंगे और मजदूरी की कोई स्थायी सन्तुलन दर स्थापित नहीं होगी। स्पष्ट है कि 'सन्तुलन मजदूरी दर' (*equilibrium wage rate*) के लिए मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होनी चाहिए।

व्यावहारिक जीवन में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम या अधिक हो सकती है परन्तु उसकी प्रवृत्ति सदैव सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की होती है।

(ii) हमने यह मान लिया है कि सभी श्रमिक एकसमान कुशल हैं और इसलिए बाजार में मजदूरी की एक दर है। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता, श्रमिकों की कुशलता में अन्तर होता है। ऐसी स्थिति में लगभग एकसमान कुशल श्रमिकों के एक वर्ग के लिए मजदूरी की एक दर होगी। अतः कुशलता की दृष्टि से श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न मजदूरी की दरें होंगी, परन्तु मजदूरी निर्धारण के माँग तथा पूर्ति के मूल सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं होगा। प्रत्येक मजदूरी की दर उस प्रकार के श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होगी और सन्तुलन की स्थिति में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी।

एक व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण

१ फर्म की दृष्टि से श्रमिकों के प्रयोग (employment) तथा मजदूरी-निर्धारण से सम्बन्धित विवेचना करने के पहले मान्यताओं को स्पष्ट रूप में जान लेना आवश्यक है। हम निम्न मान्यताओं (assumptions) को लेकर चलते हैं

(अ) श्रम-बाजार (labour market) में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। इसके अभिप्राय (*implications*) निम्न हैं :

(i) उत्पादकों या फर्मों तथा श्रमिकों की बहुत अधिक संख्या होती है। फर्मों की अधिक संख्या होने के कारण प्रत्येक फर्म छोटी होती है और श्रमिकों की कुल पूर्ति का एक बहुत थोड़ा भाग प्रयुक्त करती है।

(ii) कोई एकाधिकारी तत्त्व (monopoly elements) नहीं होते। इसका अर्थ है कि फर्में या उत्पादक स्वतन्त्र रूप में (*independently*) कार्य करते हैं, उनमें किसी प्रकार का

समझौता नहीं होता तथा उनके कोई संघ (employers' associations) नहीं होते। इसी प्रकार श्रमिकों के कोई संघ (workers' unions) नहीं होते।

(iii) विभिन्न फर्मों तथा उद्योगों के लिए श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता (perfect mobility) होती है।

(iv) सब श्रमिक एकसमान कुशल होते हैं और इसलिए मजदूरी की एक दर (a single wage rate) होती है।

(ब) श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु के बाजार (commodity market) में भी पूर्ण प्रतियोगिता मान ली जाती है।

२. एक फर्म या उत्पादक के लिए मजदूरी दी हुई होती है। उद्योग में श्रमिकों की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा मजदूरी निर्धारित होती है और इस मजदूरी-दर को प्रत्येक फर्म स्वीकार कर लेती है। श्रम-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा प्रत्येक फर्म श्रमिकों की कुल पूर्ति की एक बहुत थोड़ी मात्रा प्रयोग करती है और इसलिए एक फर्म मजदूरी की दर को अपनी कार्यवाहियों से प्रभावित नहीं कर सकती। दूसरे शब्दों में, एक फर्म के लिए 'मजदूरी रेखा' (wage-line) एक 'पड़ी हुई रेखा' (horizontal) होती है जैसा कि चित्र नं० ४ (b) में दिखाया गया है।
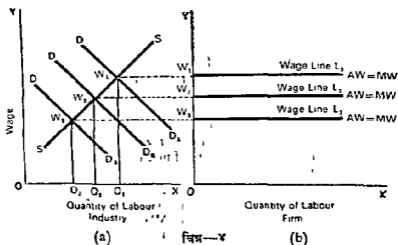
(a) चित्र—४ (b)

चित्र नं० ४ (a) में, माना कि उद्योग में श्रमिकों की कुल माँग रेखा DD_1 तथा कुल पूर्ति रेखा SS है, दोनों एक-दूसरे को W_1 बिन्दु पर काटती हैं। अतः उद्योग में मजदूरी की दर W_1Q_1 निर्धारित होगी; एक फर्म इस मजदूरी को दिया हुआ मान लेगी अर्थात् फर्म के लिए 'मजदूरी रेखा' (wage line) W_1L_1 होगी जैसा कि चित्र ४ (b) में दिखाया गया है। यदि उद्योग में माँग घटकर DD_2 हो जाती है तो फर्म के लिए 'मजदूरी-रेखा' W_2L_2 हो जायेगी। यदि उद्योग में माँग और घट जाती है और माँग रेखा DD_3 हो जाती है तो फर्म के लिए 'मजदूरी-रेखा' W_3L_3 हो जायेगी।

एक फर्म के लिए पड़ी हुई 'मजदूरी-रेखा' का अर्थ है कि एक दी हुई मजदूरी दर पर फर्म जितने श्रमिक चाहे प्राप्त कर सकती है, अर्थात् एक दी हुई मजदूरी पर फर्म के लिए श्रमिकों की पूर्ति असीमित मात्रा में प्राप्त होती है, अतः एक फर्म के लिए श्रमिकों की 'पूर्ति रेखा' (या मजदूरी रेखा) पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) होती है।

उपर्युक्त विवरण का एक अभिप्राय यह है कि एक फर्म को एक अतिरिक्त श्रम (an additional labour) को कार्य पर लगाने के लिए जो मजदूरी अर्थात् 'सीमान्त मजदूरी' (Marginal Wage, *i.e.*, MW) देनी पड़ेगी वह औसत मजदूरी (Average Wage, *i.e.*, AW) के

बराबर ही होगी। दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक फर्म के लिए औसत मजदूरी (AW)=सीमान्त मजदूरी (MW)।

स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म के लिए मजदूरी-रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा उसे 'AW=MW' द्वारा व्यक्त करते हैं, जैसा कि चित्र न० ४ (b) में दिखाया गया है।

[ध्यान रहे कि औसत मजदूरी (AW) श्रमिकों को प्रयोग में लाने के लिए फर्म की दृष्टि से औसत लागत (Average cost of employing workers to the firm) है तथा श्रमिकों की सीमान्त मजदूरी (MW) फर्म के लिए एक अतिरिक्त श्रम को प्रयोग मे लाने के लिए सीमान्त लागत (Marginal cost of an additional worker for the firm) है।

३ एक फर्म के लिए मजदूरी-रेखा पड़ी हुई रेखा होती है अर्थात् एक फर्म के लिए मजदूरी-दर दी हुई होती है। फर्म दी हुई मजदूरी दर पर श्रमिकों की वह संख्या प्रयुक्त (employ) करेगी जहाँ पर कि श्रमिकों की सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Reveune Product, *i e*, MRP)[6] बराबर हो श्रमिकों की सीमान्त मजदूरी (Marginal Wage *i e* MW) के। दूसरे शब्दों म, श्रमिकों के प्रयोग (employ) करने की दृष्टि से फर्म सन्तुलन की स्थिति मे तब होगी जबकि MRP=MW।

यदि MRP>MW, तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त श्रम के प्रयोग करने से कुल आगम म वृद्धि अधिक है उस श्रमिक की मजदूरी से। अत फर्म को लाभ होगा और वह अतिरिक्त श्रमिकों (additional workers) को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहाँ पर कि MRP=MW। यदि MRP<MW, तो फर्म को श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से हानि होगी। अत एक फर्म श्रमिकों को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहाँ पर कि MRP=MW, श्रमिको के प्रयोग करने की दृष्टि से यह फर्म के साम्य की दशा है।[7]

४. अल्पकाल (short period) में श्रमिकों के प्रयोग की दृष्टि से एक फर्म के लिए लाभ सामान्य लाभ या हानि तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं। इन तीनों स्थितियों को चित्र ५, ६, ७, मे दिखाया गया है।[8]

---

[6] अन्य साधनो के स्थिर रखने पर, श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल आगम (total revenue) मे जो वृद्धि होती है उसे श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) कहते हैं। MRP के विचार के पूर्ण वितरण के लिए इस पुस्तक के पाँचवें भाग 'वितरण' का अध्याय १ को देखिए।

[7] पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म दिये हुए मूल्य पर वस्तु का उत्पादन उस सीमा तक करती है जहाँ पर कि MR=MC के हो। प्रयुक्त किये जाने वाले श्रमिकों की मात्रा की दृष्टि से हम MR के स्थान पर MRP तथा MC के स्थान पर MW लेते हैं। इस प्रकार दी हुई मजदूरी दर पर एक फर्म श्रमिको की वह मात्रा प्रयोग मे लाती है जहाँ पर कि MRP=MW के है।

[8] इन चित्रों को समझने के लिए दो बातो को ध्यान मे रखना चाहिए—(i) श्रमिको की कितनी मात्रा प्रयोग मे लायी जायेगी, इस बात को जानने के लिए हम MRP तथा MW रेखाओं पर ध्यान देते हैं अर्थात् एक फर्म श्रमिको की वह मात्रा प्रयोग मे लायेगी जहाँ पर कि MRP=MW के हो। (ii) श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से एक फर्म के लाभ तथा हानि की स्थिति को ज्ञात करने के लिए हम ARP (Average Revenue Productivity) अर्थात् औसत आगम उत्पादकता तथा AW (Average Wage) अर्थात् औसत मजदूरी रेखाओं पर ध्यान देते हैं। (ARP के विचार को पूर्णतया समझने के लिए इस पुस्तक के पाँचवें भाग 'वितरण' के अध्याय १ को देखिए।) ARP तथा AW का अन्तर लाभ तथा हानि की स्थिति को बताता है। यदि ARP>AW, तो फर्म को लाभ होगा, यदि ARP=AW, तो फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा, तथा यदि ARP<AW, तो फर्म को हानि होगी। (वस्तु के उत्पादन की दृष्टि से फर्म के लाभ-हानि की स्थिति को ज्ञात करने के लिए हम AR तथा AC पर ध्यान देते है। यदि AR<AC, तो फर्म को लाभ होगा, यदि AR=AC, तो फर्म को सामान्य लाभ होगा, तथा यदि AR<AC, तो फर्म को हानि होगी। श्रमिको के प्रयोग की दृष्टि से हम AR के स्थान पर ARP तथा AC के स्थान पर AW का प्रयोग करते हैं।)]

चित्र न० ५ म मजदूरी की दर बिन्दु 'W' पर निर्धारित होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MRP=MW के है। चूंकि ARP, मजदूरी रेखा (wage line) के ऊपर है, इसलिए फर्म को श्रमिकों के प्रयोग करने से लाभ होगा, ARP तथा AW के बीच खड़ी दूरी WS प्रति श्रमिक के प्रयोग करने से लाभ बताती है फर्म के लिए कुल लाभ को ज्ञात करने के लिए हम प्रति श्रमिक लाभ WS को प्रयुक्त किये जाने वाले श्रमिकों की कुल संख्या OQ से गुणा करते हैं अर्थात् कुल लाभ आयत (rectangle) WSRT का क्षेत्रफल (area) बताता है। अत

चित्र न० ५ म,
मजदूरी की दर=WQ
प्रयुक्त की गयी (employed)
श्रमिकों की मात्रा=OQ
फर्म को कुल लाभ=WSRT
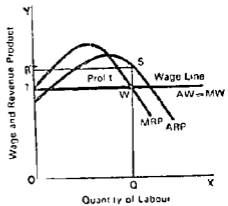
चित्र—५
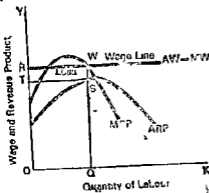
चित्र—६

चित्र—७

चित्र न० ६ म,
मजदूरी की दर=WQ
प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा=OQ
फर्म को कुल हानि=WSTR
चित्र न० ७ म,
मजदूरी की दर=WQ
प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा=OQ
फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा क्योंकि W बिन्दु पर ARP=AW के है।
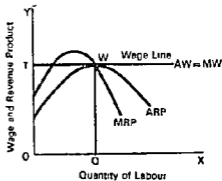
५ श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से दीर्घकाल मे (in the long period) फर्म को केवल सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त होगा, उसको अतिरिक्त लाभ (excess profit) या हानि नहीं हो सकती। सामान्य लाभ प्राप्त होने का अभिप्राय है कि ARP=AW के।

यदि फर्म को अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है अर्थात् ARP>AW, तो अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्में उद्योग म प्रवेश करेंगी, इसके परिणामस्वरूप—(1) श्रमिकों की मांग

बढ़ेगी और इसलिए उनकी मजदूरी (AW) बढ़ेगी, तथा (ii) वस्तु का उत्पादन बढ़ेगा, उसकी कीमत घटेगी, कीमत घटने से ARP कम होगी। इन दोनों बातों का परिणाम होगा कि ARP =AW के होगी और इस प्रकार फर्म को दीर्घकाल में अतिरिक्त लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। यदि फर्म को हानि प्राप्त होती है अर्थात् ARP<AW तो हानि प्राप्त करने वाली फर्में उद्योग को छोड़ देंगी, इसके परिणामस्वरूप—(i) श्रमिकों की मांग घटेगी और इसलिए उनकी मजदूरी (AW) घटेगी, और (ii) वस्तु का उत्पादन घटेगा, उसकी कीमत बढ़ेगी, कीमत बढ़ने से ARP बढ़ेगी। इन दोनों बातों का परिणाम यह होगा कि ARP=AW के हो जायेगी और फर्म को हानि नहीं होगी। स्पष्ट है कि श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से एक फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।
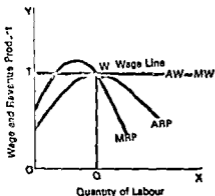
चित्र—८

श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा पूरी होनी चाहिए।

(i) MRP=MW

(ii) ARP=AW

चित्र नं० ८ में बिन्दु 'W' पर दोनों दशाएँ पूरी हो रही हैं, अतः दीर्घकाल में मजदूरी की दर=WQ प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा=OQ, फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण
(WAGE DETERMINATION UNDER IMPERFECT COMPETITION)

१. व्यवहार में श्रम बाजार (labour market) में प्रायः पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है। इसका अर्थ है कि व्यवहार में श्रम-बाजार में स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले उत्पादक नहीं होते, उत्पादक बहुत बड़ी संख्या में तथा छोटे (small) नहीं होते, कुछ उत्पादक बड़े होते हैं या एक उत्पादक बहुत बड़ा हो सकता है या कुछ बड़े उत्पादक संगठित होकर अपने संघ (associations) बना सकते हैं। इसी प्रकार से श्रमिक भी संगठित होते हैं और वे अपने संघ (unions) बना लेते हैं। श्रम-बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की कई स्थितियाँ हो सकती हैं। परन्तु सुविधा के लिए हम अपूर्ण बाजार में दो स्थितियाँ मान लेते हैं—(i) श्रम बाजार में एक उत्पादक या कुछ उत्पादक बहुत प्रभावशाली होते हैं और मजदूरी दर को महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित कर सकते हैं, या बड़े उत्पादक मिलकर संघ बना लेते हैं और इस प्रकार श्रम की सेवाओं का क्रय करने की दृष्टि से वे एक बड़े उत्पादक की भाँति होते हैं, दूसरे शब्दों में, अपूर्ण श्रम-बाजार में क्रेता-एकाधिकार (monopsony) की स्थिति है। (ii) श्रम बाजार में श्रमिक भी श्रम-संघों (labour unions) में संगठित होते हैं और वे अपनी पूर्ति का एकाधिकारी की भाँति नियन्त्रण (monopolistic control) करते हैं। अतः वास्तविक जगत में श्रम-बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों के संघों तथा श्रमिकों के संघों के बीच सौदा (bargaining) द्वारा निर्धारित होता है।

२. चूंकि श्रम-बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए 'औसत मजदूरी रेखा' (average wage line i e, AW line or simply 'wage line') ऊपर को चढ़ती हुई (upsloping) होती है, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति पड़ी हुई रेखा नहीं होती, तथा 'सीमान्त मजदूरी रेखा' (marginal

wage line, *i e*, MW-line,) भी ऊपर को चढ़ती हुई होगी और वह 'औसत मजदूरी रेखा' (AW-line) के ऊपर होगी। अपूर्ण प्रतियोगिता मे, पूर्ण प्रतियोगिता का भाँति, AW तथा MW बराबर नही होती। ऊपर को चढ़ती हुई MW-line का अर्थ है कि यदि उत्पादक अतिरिक्त (additional) श्रमिको को प्रयुक्त (employ) करना चाहता है तो उसे अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी।

पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति अपूर्ण प्रतियोगिता मे उत्पादक या फर्म के लिए श्रमिको की माँग-रेखा 'सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा' (marginal revenue product curve, *i e* MRP-curve) होती है।

३ चित्र न० ६ मे अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को बताया गया है। उत्पादक श्रमिकों की वह मात्रा प्रयोग करेगा जहाँ पर कि MRP=MW के है चित्र से स्पष्ट है कि यह स्थिति 'E' बिन्दु पर है। 'E' से X-axis पर लम्ब (perpendicular) AW line को W' बिन्दु पर काटता है। अत

मजदूरी की दर=WQ, श्रमिको की प्रयुक्त (employed) मात्रा OQ

चित्र से स्पष्ट है कि औसत मजदूरी (average wage) WQ कम है सीमान्त आगम उत्पादकता' (marginal revenue productivity) EQ से। इसका अर्थ है कि श्रमिको का शोषण (exploitation) हो रहा है (ध्यान रहे कि जब AW कम होती है MRP से तो अर्थशास्त्री इसे श्रमिको का शोषण कहते हैं) चित्र से स्पष्ट है कि श्रमिको का शोषण = EQ—WQ=EW
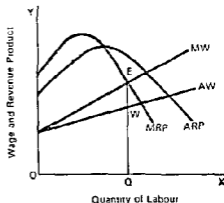
चित्र ६

श्रम-संघ तथा मजदूरी
(TRADE UNIONS AND WAGES)

क्या श्रम-संघ मजदूरी मे वृद्धि कर सकते हैं? इस सम्बन्ध मे एक विचारधारा यह है कि श्रम-संघ मजदूरी मे वृद्धि नहीं कर सकते। यह तर्क 'मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' पर आधारित है।[१] यदि श्रम संघ की कार्यवाहियो द्वारा मजदूरी मे, सीमान्त उत्पादकता से अधिक, वृद्धि प्राप्त कर ली जाती है तो इसके दो परिणाम हो सकते हैं—(i) उत्पादको का लाभ कम हो जायेगा, या (ii) वस्तु की कीमत बढ़ानी पड़ेगी। यदि ऊँची मजदूरी के कारण उत्पादको का लाभ कम हो जाता है तो वे वस्तु का बहुत कम उत्पादन करेंगे या उत्पादन बन्द कर देंगे, परिणामस्वरूप श्रमिको मे बेरोजगारी फैल जायेगी। यदि वस्तु की कीमत ऊँची करके ऊँची मजदूरी प्राप्त की जाती है तो वस्तु की कुल माँग मे कमी हो जायेगी, उत्पादन घटेगा और परिणामस्वरूप श्रमिक बेरोजगार हो जायँगे। इस प्रकार यह कहा जाता है कि श्रम-संघ अपनी कार्यवाहियो से मजदूरी मे वृद्धि नही कर सकते।

परन्तु उपर्युक्त विचारधारा उचित नहीं है क्योंकि मजदूरी की सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त (जिस पर यह तर्क आधारित है) एकपक्षीय है, यह केवल श्रमिको की माँग पर ध्यान देता है और उनके पूर्ति-पक्ष की उपेक्षा करता है। वास्तव मे, श्रम-संघ श्रमिको की माग तथा पूर्ति दोनो को प्रभावित करके एक सीमा तक मजदूरी मे वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

---

[१] श्रम-संघ की परिभाषा, इनकी आवश्यकता, उनके कार्य, इत्यादि के लिए इस पुस्तक के प्रथम भाग मे 'श्रम' के अध्याय को देखिए।

श्रम-संघ निम्न परिस्थितियों में मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं।

(१) अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत श्रमिकों को अपनी सीमान्त उत्पादकता का पूरा मूल्य (Full value of their marginal productivity) नहीं मिलता। अत ऐसी परिस्थितियों मे श्रम-संघ सीमान्त उत्पादकता के पूर्ण मूल्य के बराबर मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं।

(२) श्रम संघ श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि करके मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं। *श्रम-संघ श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता म वृद्धि दो प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं :* (i) श्रम संघ श्रमिकों की सामूहिक शक्ति के कारण कई दशाओं में उत्पादकों को इस बात के लिए बाध्य कर सकते हैं कि वे श्रमिकों को कार्य करने लिए अच्छे तथा नवीनतम यन्त्र प्रदान करें, उनको उचित मजदूरी दें तथा उनके कार्य करने की दशाओं को अच्छा करें। इन सब बातों के कारण श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि *होगी और परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी में वृद्धि* होगी। (ii) श्रम-संघ कल्याणकारी कार्यों (welfare activities) में अधिक रुचि लेकर श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता म वृद्धि कर सकते हैं और इस प्रकार उनकी मजदूरी में वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

(३) श्रम संघ श्रमिकों के एक विशेष वर्ग के लिए मजदूरी में वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा वे निम्न दशाओं में कर सकते है—(i) श्रमिकों के विशेष वर्ग द्वारा उत्पादित वस्तु ऐसी हो जिसकी *माँग बेलोचदार हो, ऐसी स्थिति म मजदूरी म वृद्धि के कारण वस्तु की कीमत मे वृद्धि होने से वस्तु की माँग म कोई विशेष कमी नहीं होगी।* (ii) *श्रमिकों के विशेष वर्ग की* माँग बेलोचदार हो, अर्थात् उनके बिना उत्पादन कार्य सम्भव न हो और ऐसी स्थिति में श्रम संघ मजदूरी म वृद्धि करा सकते हैं। (iii) दूसरी बात का अभिप्राय (implication) यह हुआ कि *उत्पादक किसी दूसरे वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी कम करेंगे। अत एक वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी* दूसरे वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी की कटौती के आधार पर प्राप्त की जा सकती है। (iv) जब विशेष प्रकार के श्रमिकों की मजदूरी का बिल उत्पादक के कुल मजदूरी बिल का एक बहुत थोड़ा भाग है तो उत्पादक को विशेष प्रकार के श्रमिकों के वर्ग को ऊँची मजदूरी देने म कोई कठिनाई नहीं *होगी।*

परन्तु श्रम-संघ श्रमिकों की मजदूरी असीमित मात्रा तक नहीं बढ़ा सकते हैं। **श्रम संघों की सौदा करने की शक्ति (bargaining power) या मजदूरी मे वृद्धि कराने की शक्ति की सीमाएं (limitations) होती हैं।** मुख्य सीमाएँ *निम्नलिखित हैं*

(१) **श्रम-संघ की सौदा करने की शक्ति 'श्रमिकों के प्रतिस्थापन की लोच'** (elasticity of substitution of labour) **पर निर्भर करती है।** उत्पादन तकनीकी मे ऐसे परिवर्तन किये जा सकते हैं जिसमे कि मशीनों का प्रयोग अधिक हो और *श्रमिकों का प्रयोग कम, दूसरे शब्दों मे, एक सीमा तक श्रमिकों को मशीन द्वारा प्रतिस्थापित* (substitute) किया जा सकता है। श्रमिकों *का प्रतिस्थापन केवल पूँजी (capital, i e, machines, tools etc)* द्वारा ही नहीं होता बल्कि 'श्रमिकों का प्रतिस्थापन श्रमिकों द्वारा' (substitution of labour by labour) भी होता है। जिस सीमा तक असंघीय श्रमिक (non un on workers) जिन्हें 'blacklegs' *कहा जाता है, प्राप्त हो सकते हैं उस सीमा तक श्रम संघों का प्रभाव कम हो जाता है,* उद्योगपति, दूसरे क्षेत्रों से भी श्रमिकों का आयात (import) कर सकते हैं। श्रमिकों के प्रतिस्थापन की लोच जितनी अधिक होगी उतनी ही श्रम संघों की सौदा करने की शक्ति कमजोर पड़ेगी और उन्हे मजदूरी मे वृद्धि कराने मे कम सफलता प्राप्त होगी।

(२) **श्रम संघों को सौदा करने की शक्ति 'अन्य साधनों की पूर्ति की लोच'** (elasticity of supply of alternative factors) पर निर्भर करती है। श्रमिकों को अन्य साधनों से किस सीमा तक प्रतिस्थापित किया जा सकता है यह केवल उत्पादन मे तकनीकी परिवर्तनों (technical

मजदूरी में अन्तर
(WAGE DIFFERENTIALS)

व्यावहारिक जीवन में मजदूरी में अन्तर पाया जाता है: (अ) यह अन्तर विभिन्न व्यवसायों में कार्य करने वाले श्रमिकों में होता है, तथा (ब) एक ही व्यवसाय में कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी में अन्तर पाया जाता है।

यहाँ पर हम उन कारणों का अध्ययन करते हैं जो कि मजदूरी में अन्तरों को उत्पन्न करते हैं। मजदूरी में अन्तरों का उत्पन्न करने वाले कारणों को आधुनिक अर्थशास्त्री निम्न सामान्य वर्गों (broad categories) में बाँटते हैं।

विभिन्न व्यवसाय में मजदूरी में अन्तर के कारण:
- १ श्रम-बाजार में 'अप्रतियोगी समूह' (Non-competing Groups in the Labour Market)
- २ 'समकारी अन्तर' (Equalizing Differences)

एक ही व्यवसाय में मजदूरी में अन्तर के कारण:
- ३. 'असमकारी अन्तर' (Non equalizing Differences), इनको दो भागों में बाँटा जाता है—(अ) बाजार अपूर्णताएँ (Market Imperfections), तथा (ब) श्रम के गुणों में अन्तर (Differences in Labour Quality)

नीचे हम उपर्युक्त कारणों का विस्तृत विवरण देते हैं।

१. श्रम बाजार में अप्रतियोगी समूह (Non-competing Groups in the Labour Market)

श्रमिक एकरूप नहीं होते, उनमें मानसिक तथा शारीरिक गुणों एवं शिक्षा तथा प्रशिक्षण (training) की दृष्टि से अन्तर होता है। अतः श्रमिकों को विभिन्न वर्गों या समूहों (जैसे अकुशल तथा अर्द्धकुशल श्रमिकों का वर्ग, डाक्टरों का वर्ग, अध्यापकों का वर्ग, इत्यादि) में बाँटा जा सकता है। एक वर्ग या समूह के अन्दर श्रमिकों में प्रतियोगिता होती है परन्तु विभिन्न वर्गों या समूहों (जैसे डॉक्टर तथा अध्यापक, अकुशल तथा कुशल श्रमिकों) में आपस में प्रतियोगिता नहीं होती, अतः इन वर्गों या समूहों को 'अप्रतियोगी समूह' (non-competing groups) कहते हैं।

उदाहरणार्थ, डाक्टरों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण में लम्बा समय लगता है तथा अधिक व्यय होता है जिसे थोड़े व्यक्ति ही कर सकते हैं, परिणामस्वरूप डॉक्टरों की पूर्ति कम होगी और उनका वेतन और मजदूरी अधिक होगी। इसके विपरीत, दूसरे वर्ग अकुशल श्रमिकों को लीजिए; अकुशल श्रमिकों में प्रशिक्षण लागत लगभग नहीं के बराबर होगी, परिणामस्वरूप उनकी पूर्ति बहुत अधिक होगी और उनकी मजदूरी बहुत कम होगी। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक 'अप्रतियोगी समूह' में श्रमिकों की मजदूरी उनकी माँग तथा पूर्ति की दशाओं के अनुसार निर्धारित होगी और इन 'अप्रतियोगी समूहों' की मजदूरियों में अन्तर होगा।

'अप्रतियोगी समूह के अन्दर अप्रतियोगी समूह' (Non-competing groups within non-competing groups) भी होते हैं। उदाहरणार्थ, डॉक्टरों के अप्रतियोगी समूह के अन्दर दिमाग के सर्जन (brain surgeons) का 'अप्रतियोगी समूह' होता है, दिमाग के सर्जन बहुत कम डॉक्टर हो पाते हैं और इन 'दिमाग के सर्जनों' को समूह के अन्य डॉक्टरों की तुलना में बहुत अधिक वेतन या मजदूरी प्राप्त होती है।

परन्तु उपर्युक्त विवरण से यह अर्थ नहीं निकाल लेना चाहिए कि विभिन्न समूहों में बिलकुल भी प्रतियोगिता नहीं होती है। उदाहरणार्थ, कड़े प्रयत्नों द्वारा एक समयावधि में अकुशल श्रमिक कुशल श्रमिक हो सकते हैं और इस प्रकार 'अकुशल श्रमिकों' तथा 'कुशल श्रमिकों' के अप्रतियोगी समूहों में थोड़ी प्रतियोगिता हो सकती है। दूसरे शब्दों में, मुख्य बात यह है कि विभिन्न वर्ग एक दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं, परन्तु वे शत-प्रतिशत एकसमान नहीं होते हैं। वे एक दूसरे के लिए पूर्ण नहीं बल्कि आंशिक स्थानापन्न होते हैं।[11]

---

[11] "The essential point, then, is thus: The different categories compete with each other; yet they are not 100 percent identical. *They are partial rather than perfect substitutes for each other.*"

अब एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि श्रमिकों के विभिन्न 'अप्रतियोगी समूह' क्यों होते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं; जैसे—(i) व्यक्तियों या श्रमिकों के प्राकृतिक गुणों (natural endowments) में अन्तर होता है। किसी कार्य में दक्षता प्राप्त करने के लिए लम्बे प्रशिक्षण तथा मानसिक जागरूकता (alertness) की आवश्यकता होती है और इसके लिए सभी व्यक्तियों में योग्यता, महत्त्वाकांक्षा (ambition) तथा धैर्य (patience) नहीं होता। (ii) वातावरण में अन्तर होता है। सभी व्यक्तियों के लिए घर का वातावरण, अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध, तथा शिक्षा के अवसर समान नहीं होते।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है—(i) श्रमिकों में 'अप्रतियोगी समूह' होते है और इन 'अप्रतियोगी समूहों' की मजदूरियों में अन्तर होता हैं, इतना ही नहीं बल्कि 'अप्रतियोगी समूह के अन्तर्गत अप्रतियोगी समूहों' (non-competing groups within non-competing groups) की मजदूरियों में भी अन्तर होते है। (ii) 'अप्रतियोगी समूह' का विचार उन विभिन्न कार्यों या व्यवसायों में मजदूरी के अन्तर की व्याख्या में सहायक है जिनके लिए योग्य श्रमिकों की एक सीमित संख्या प्राप्त होती है।[12]

२ 'समकारी अन्तर' (Equalizing Differences)

यदि एक विशिष्ट 'अप्रतियोगी समूह' में श्रमिकों का एक समूह ऐसा है जो कि समान दक्षता रखता है तथा अनेक विभिन्न कार्यों को करने की समान रूप से योग्यता रखता है तो यह आशा की जा सकती है कि इनमें से प्रत्येक कार्य के लिए उसकी मजदूरी दर एकसमान होगी। परन्तु ऐसा नहीं होता।[13] यहाँ पर हमें दूसरे प्रकार के अन्तर मिलते हैं जिन्हें 'समकारी अन्तर' कहा जाता है।

कुछ कार्य या व्यवसाय अमौद्रिक लाभों (non-monetary benefits) के कारण अधिक आकर्षक (attractive) होते है, परन्तु कुछ अन्य कार्य कम आकर्षक या कम आनन्ददायक (less pleasant) होते हैं क्योंकि इनमे अमौद्रिक लाभ नहीं या बहुत कम होते हैं अथवा इनमें जोखिम होती है या स्वास्थ्य पर बहुत जोर पड़ता है। कम आनन्ददायक कार्यों में श्रमिकों की आवश्यक पूर्ति तभी प्राप्त होगी जबकि उनको अमौद्रिक लाभों की क्षतिपूर्ति (compensation) के रूप में, अन्य कार्यों या व्यवसायों की तुलना में, अधिक मजदूरी दी जावे। मजदूरी के ऐसे अन्तरों को 'समकारी अन्तर' कहते हैं।

संक्षेप में, 'समकारी' अन्तरों को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—"असुखदता (unpleasantness) की दृष्टि से कार्यों में अन्तर हो सकता है, अत व्यक्तियों को कम आकर्षक कार्यों में प्रलोभित करने के लिए मजदूरियों को ऊँचा उठाना होगा। इस प्रकार के मजदूरी के अन्तर जो कि कार्यों के अमौद्रिक अन्तरों की क्षतिपूर्ति का काम करते हैं 'समकारी अन्तर' कहे जाते हैं।"[14]

अमौद्रिक तत्त्व जो कि विभिन्न कार्यों या व्यवसायों में मजदूरी में अन्तर उत्पन्न करते हैं निम्नलिखित हैं

(i) **कार्य का स्थायित्व तथा उसकी नियमितता** (Permanence and regularity of job)—जिन व्यवसायों में श्रमिकों का कार्य अस्थायी तथा अनियमित (temporary and irregular) होता है उनमें मजदूरी स्थायी तथा नियमित कार्य वाले व्यवसायों की अपेक्षा अधिक

---

[12] The concept of non competing groups helps in explaining wage differentials between different jobs or occupations for which limited number of workers are qualified

[13] "If a group of workers in a particular non-competing group are equally capable of performing several different jobs one might expect that the wage rate would be identical for each of these jobs But this is not the case."

[14] 'Jobs may differ in their unpleasantness, hence wages may have to be raised to coax people into less attractive jobs Such wage differentials that simply serve to compensate *for the non-money differences among jobs* are called "equalizing differences".'

होती है। इसका कारण है कि अस्थायी कार्य वाले व्यवसायों के श्रमिक बीच-बीच में बेरोजगार हो जाते हैं और खाली समय में अपने भरण-पोषण का व्यय निकालने के लिए वे अपेक्षाकृत ऊँची मजदूरी पर काम करेंगे।

(ii) व्यवसाय का जोखिम (Risks of the occupation)—जिन व्यवसायों में जीवन का खतरा बना रहता है उनमें श्रमिकों को ऊँची मजदूरी दी जाती है अन्यथा ऐसे व्यवसाय में आवश्यकतानुसार श्रमिकों की पूर्ति प्राप्त नहीं होगी। इसी कारण खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों सैनिकों इत्यादि को अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी दी जाती है।

(iii) कार्य का दायित्व एवं उसकी विश्वसनीयता (Responsibility and reliability of the job)—कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनमें उत्तरदायित्व तथा विश्वास की आवश्यकता होती है जैसे बैंक के मैनेजर का कार्य, मिल के मैनेजर का कार्य इत्यादि। इन कार्यों में व्यक्तियों को ऊँची मजदूरी दी जाती है।

(iv) कार्य अवधि (Working period)—जिन कार्यों में प्रतिदिन कम घण्टे कार्य करना होता है तथा साल भर में छुट्टियाँ भी अधिक होती हैं उनमें श्रमिकों को अपेक्षाकृत कम मजदूरी मिलती है। इसके विपरीत दशाओं में अधिक मजदूरी मिलती है।

(v) स्थान विशेष पर मूल्य स्तर (Price level at a particular place)—कुछ बड़े-बड़े शहरों में वस्तुओं की कीमतें ऊँची होती हैं तथा रहन-सहन की लागत अधिक होती है। ऐसी जगहों में श्रमिकों की मजदूरी ऊँची होती है।

(vi) अन्य सुविधाएँ (Other facilities)—कुछ व्यवसायों में श्रमिकों को नकद मजदूरी के अतिरिक्त कई अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, जैसे छोटे बड़े बच्चों की निःशुल्क शिक्षा, निःशुल्क डाक्टरी सहायता सस्ते किराये पर मकान की सुविधा, इत्यादि। ऐसे व्यवसायों में श्रमिकों की मजदूरी कम होती है।

(vii) भविष्य में उन्नति की आशा (Future prospects)—जिन व्यवसायों में श्रमिकों के लिए भविष्य में उन्नति के अच्छे अवसर होते हैं उनमें प्रारम्भ में मजदूरी कम हो सकती है।

३ 'असमकारी अन्तर' (Non-equalizing Differences)

यदि श्रमिक एकरूप (homogeneous) हैं तो भी अमौद्रिक तत्त्वों के कारण उनकी मजदूरियों में अन्तर होगा जिन्हें 'समकारी अन्तर' कहा जाता है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं। परन्तु वास्तविक जगत में सब श्रमिक एकरूप नहीं होते और इसलिए उनकी मजदूरियों में सभी प्रकार के अन्तरों की व्याख्या 'समकारी अन्तरों' द्वारा नहीं की जा सकती है।

एक ही व्यवसाय या एकसमान कार्यों (identical jobs) में लगे हुए श्रमिकों की मजदूरियों में अन्तरों की व्याख्या 'असमकारी अन्तरों' द्वारा की जाती है। असमकारी अन्तरों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(अ) बाजार की अपूर्णताएँ, तथा (ब) श्रम के गुणों में अन्तर।

(अ) बाजार की अपूर्णताएँ (Market imperfections)—विभिन्न प्रकार की अगतिशीलताएँ, एकाधिकारी तत्त्व तथा सरकारी हस्तक्षेप बाजार की अपूर्णताओं को जन्म देती हैं। इन विभिन्न प्रकार की अपूर्णताओं के कारण एक ही व्यवसाय या एक ही प्रकार के कार्य में लगे हुए श्रमिकों की मजदूरी में अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं। बाजार अपूर्णताएँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं।

(i) किसी व्यवसाय (occupation) में सुदृढ़ श्रम संघ की उपस्थिति अथवा श्रमिकों में एकाधिकार की स्थिति, या सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के कारण मजदूरी अपेक्षाकृत ऊँची हो सकती है।

(ii) भौगोलिक अगतिशीलताएँ (Geographical immobilities)—कई दशाओं में श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी व्यवसाय में ऊँची मजदूरी होने पर भी जाना पसन्द नहीं करते, और इस प्रकार एक ही व्यवसाय में दो स्थानों या क्षेत्रों में मजदूरी में अन्तर बना रहता है।

श्रमिको की 'भौगोलिक अगतिशीलताओं' के कई कारण हो सकते हैं, जैसे—(अ) प्राय श्रमिक अपने मित्रो, सम्बन्धियों को छोड़ने के लिए, अपने बच्चों को दूसरे स्थान में प्रवेश की कठिनाई तथा पढाने की असुविधा तथा नये स्थान पर नये व्यक्तियो और नयी परिस्थितियो के साथ समायोजन (adjustment) की कठिनाइयो तथा असुविधाओ को उठाने के लिए अनिच्छुक (reluctant) होते है और परिणामस्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी व्यवसाय या उसी प्रकार के कार्य मे ऊंची मजदूरी होने पर भी जाने को तत्पर नही होते। (ब) एक स्थान पर एक व्यवसाय मे कई वर्षों तक कार्य करते रहने से जो पुराने श्रमिक अधिक ज्येष्ठ (senior) हो जाते है तथा पेन्शन या अन्य प्रकार के लाभो के अधिकारी होते हैं वे दूसरे स्थान मे उसी प्रकार के व्यवसाय मे जाना पसन्द नही करेंगे क्योकि वहां पर उनकी ज्येष्ठता (seniority), अन्य लाभो के अधिकार, इत्यादि प्रभावित हो सकते हैं। इन पुराने श्रमिको मे भौगोलिक गतिशीलता बहुत कम होती है। (स) कभी कभी दूसरे स्थानो मे कार्य के अवसरो तथा मजदूरी म अन्तरो के सम्बन्ध मे श्रमिक अनभिज्ञ (ignorant) हो सकते हैं और इसलिए उनकी भौगोलिक गतिशीलता बहुत कम हो सकती है।

(iii) **कृत्रिम सस्थात्मक अगतिशीलताएं** (Artificial institutional immobilities)—कुछ सस्थाओ द्वारा श्रमिको या व्यक्तियो की गतिशीलता पर कृत्रिम रुकावटें या बन्धन लगा दिये जाते है जो कि भौगोलिक अगतिशीलता को और बल प्रदान करते हैं। उन्नतशील देशो (advanced countries) मे प्राय श्रम सघ अधिक दृढ और प्रभावशाली होते है। एक श्रमिक को व्यवसाय विशेष म रोजगार प्राप्त करने के लिए तत्सम्बन्धित श्रम सघ का सदस्य बनना पडता है अर्थात् 'सघ कार्ड' (Union Card) प्राप्त करना पडता है। ऊँची मजदूरी प्राप्त करने की दृष्टि से कई श्रम-सघ अपने सदस्यो की सख्या सीमित रखना चाहते हैं। ऐसी परिस्थिति मे यदि कुछ श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर व्यवसाय विशेष मे कार्य प्राप्त करना चाहते हैं तो वहां का तत्सम्बन्धित श्रम सघ उनको 'सघ-कार्ड' नही देना चाहता और इसलिए उनको रोजगार प्राप्त नही होता, परिणामस्वरूप उनकी गतिशीलता मे बाधा पडती है। अध्यापन के व्यवसाय (teaching profession) तथा अन्य व्यवसायो मे भी व्यक्तियो की पूर्ति को सीमित रखने के उद्देश्य से कृत्रिम बाधाएँ (restrictions) हो सकती हैं।

(iv) **सामाजिक अगतिशीलताएँ** (Sociological immobilities)—प्राय जाति, वश (race), इत्यादि के कारण व्यवसायो मे रोजगार प्राप्त करने मे कुछ श्रमिको को कठिनाई होती है और उन्हे अन्य व्यक्तियो की तुलना मे, एक ही प्रकार के कार्य के लिए कम मजदूरी या वेतन दिया जाता है। उदाहरणार्थ, कई देशो मे नीग्रो (Negroes), यहूदी (Jews) तथा अन्य अल्पसख्यक वर्ग (minority group) के लोगो को एकसमान काय मे कम मजदूरी पर रोजगार मिल पाता है। अधिकाश देशो मे (जिनमे भारत भी एक है) विभिन्न प्रकार की सामाजिक अगतिशीलताओ को कम करने के लिए कानून बनाये गये है, परन्तु फिर भी व्यवसाय मे ये अगतिशीलताएँ बनी रहती हैं।

(ब) **श्रमिकों के गुणो मे अन्तर** (Differences in labour quality)—बाजार की अपूर्णताओ अथवा प्रतियोगिता मे अपूर्णताओ की अनुपस्थिति होने पर भी श्रमिको की मजदूरियो मे अन्तर होगा। इसका कारण है श्रमिको को योग्यताओ मे अन्तर होता है, परिणामस्वरूप एक ही व्यवसाय मे श्रमिको की मजदूरियो मे अन्तर रहता है।

महिला श्रमिको की मजदूरी की दर कम क्यो होती है ?
(WHY ARE WOMEN S WAGES LOW ?)

प्राय महिला श्रमिकों को पुरुष श्रमिको की तुलना मे एक ही व्यवसाय मे कम मजदूरी मिलती है। इसके कारण अग्रलिखित है

(१) पुरुषों की तुलना में महिला श्रमिकों की शारीरिक शक्ति कम होती है और इसलिए कई व्यवसायों में वे अपेक्षाकृत कम उत्पादन करती हैं और उन्हें कम मजदूरी मिलती है।

(२) महिलाएँ प्रायः विवाह होने के समय तक ही कार्य करना चाहती हैं, अतः पुरुषों की अपेक्षा कम मजदूरी पर कार्य करने को तत्पर रहती हैं।

(३) प्रायः महिलाओं की आय 'पूरक आय' (supplementary income) की भाँति होती है, वे अपने पतियों, भाइयों इत्यादि की आय में सहारा लगाती हैं, इसलिए कम मजदूरी पर कार्य कर लेती हैं।

(४) महिला श्रमिकों के संगठन (unions) प्रायः नहीं होते हैं, परिणामस्वरूप उनकी सौदा करने की शक्ति कम होती है और उन्हें कम मजदूरी मिलती है।

परन्तु अब परिस्थितियाँ बदल रही हैं। आज का नारा 'समान कार्य के लिए समान मजदूरी' है। अब अनेक देशों में महिलाओं तथा पुरुषों को समान कार्य के लिए समान मजदूरी मिलती है। भारत ऐसे देशों में से एक है।

न्यूनतम मजदूरी
(MINIMUM WAGES)

प्राक्कथन (Introduction)

पूँजीवादी देशों में प्रायः मालिक या सेवायोजक (employers) मजदूरों का शोषण करते हैं। वे मजदूरों से अधिक काम लेकर कम से कम मजदूरी देने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि प्रायः मजदूरों की सौदा करने की शक्ति (bargaining power) कमजोर होती है। परिणामस्वरूप, मालिकों तथा श्रमिकों में संघर्ष चलता रहता है, हड़तालें तथा तालेबन्दियाँ (lock-outs) होती रहती हैं। ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न न होने देने तथा मजदूरों को मालिकों के शोषण से बचाने के लिए एक तरीका सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण बताया जाता है। अब लगभग सभी औद्योगिक उन्नतशील देशों में न्यूनतम मजदूरी के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है तथा मान्यता दी जाती है।

न्यूनतम मजदूरी का अर्थ (The Concept of Minimum Wages)

न्यूनतम मजदूरी का अर्थ उस न्यूनतम पारितोषण (remuneration) से नहीं लिया जाता जो कि श्रमिक-जीवन के केवल भरण-पोषण मात्र (bare sustenance of life) के लिए ही हो अथवा जो श्रमिकों को केवल जीवित मात्र रख सके। न्यूनतम मजदूरी वह न्यूनतम पारितोषण होता है जो कि श्रमिकों को एक न्यूनतम जीवन-स्तर बनाये रखने के लिए आवश्यक हो, जो श्रमिकों को उन सामान्य आरामों (comforts) को प्रदान कर सकें जिनसे उनमें अच्छी आदतों का विकास हो, आत्मसम्मान की भावना बनी रहे तथा वे एक आदरयुक्त नागरिक की स्थिति में रह सकें।

भारत सरकार की 'उचित मजदूरी कमेटी' (Fair Wages Committee) ने न्यूनतम मजदूरी की एक अच्छी परिभाषा दी है जो कि इस प्रकार है "न्यूनतम मजदूरी को श्रमिक-जीवन के केवल भरण-पोषण मात्र की व्यवस्था ही नहीं बल्कि श्रमिकों की कार्यक्षमता को बनाये रखने की व्यवस्था करनी चाहिए। इस उद्देश्य से न्यूनतम मजदूरी को थोड़ी शिक्षा, चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा अन्य सुविधाओं की पूर्ति करनी चाहिए।"[15]

न्यूनतम मजदूरी के सम्बन्ध में निम्न दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए

(1) ध्यान रहे कि न्यूनतम मजदूरी की कोई एक दर सदैव निश्चित नहीं रहती। रहन सहन की लागत में परिवर्तन होने से न्यूनतम मजदूरी की दर में भी परिवर्तन किया जाता है।

---

[15] "... minimum wages must provide not merely for the bare sustenance of life but the preservation of the efficiency of the worker For this purpose the minimum wages must also provide for some measure of education, medical requirements and amenities

यदि रहन-सहन की लागत मे वृद्धि (वस्तुओ की कीमतो म वृद्धि के परिणामस्वरूप) हो जाती है तो न्यूनतम मजदूरी की दर म वृद्धि की जायेगी।

(ii) न्यूनतम मजदूरी किसी उद्योग विशेष या कुछ उद्योगो के लिए निर्धारित की जा सकती है, अथवा देश के सभी उद्योगो के लिए एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (National minimum wage) निर्धारित की जा सकती है। दोनो दशाओ मे परिणाम भिन्न होंगे।

न्यूनतम मजदूरी का उद्देश्य (Object of Minimum Wages)

"न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (law) का उद्देश्य मजदूरी का सामान्य रूप से नियन्त्रण या निर्धारण करना नही होता बल्कि उसका उद्देश्य किसी भी श्रमिक को उस मजदूरी से नीचे प्रयोग मे लेने से रोकना है जो कि एक न्यूनतम जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है।"[16]

दूसरे शब्दो म न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य निम्न है

(i) श्रमिको म शोषण को रोकना तथा उन उद्योगो म मजदूरी बढवाना जिसमे वे अत्यन्त नीची है।

(ii) श्रमिको की न्यूनतम आवश्यकताओ तथा सुविधाओ (amenities) की पूर्ति करके न्यूनतम मजदूरी श्रमिको को सन्तुष्ट रखकर उद्योग म शान्ति को प्रोत्साहित करती है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (laws) या तो उन मजदूरी दर को निश्चित रूप से बता देते है जो कि न्यूनतम समझी जानी चाहिए, अथवा वे न्यूनतम मजदूरी दर का निर्धारण एक प्रावधिक कमीशन (administrative commission) पर छोड देते हैं। बाद की योजना सर्वोत्तम है क्योकि परिवर्तनशील आर्थिक दशाएँ, जैसे—मूल्य स्तर मे परिवर्तन, न्यूनतम मजदूरी दर मे बार-बार परिवर्तन करना आवश्यक कर देती हैं, यदि न्यूनतम रहन सहन की लागतो को शामिल करने के उद्देश्य की पूर्ति होनी है।[17]

न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के आर्थिक प्रभाव (Economic Consequences of Fixing a Minimum Wage)

न्यूनतम मजदूरी के दो रूप होते है (i) न्यूनतम मजदूरी किसी विशेष उद्योग या कुछ उद्योगो के लिए निश्चित की जा सकती है अथवा (ii) देश के सभी उद्योगो के लिए एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (national minimum wage) निर्धारित कर दी जाती है। इन दोनो रूपो के अलग-अलग आर्थिक परिणाम होंगे। नीचे हम दोनो रूपो के आर्थिक परिणामो का अलग-अलग विस्तृत विवरण देंगे।

(I) एक विशेष उद्योग या कुछ उद्योगों मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के प्रभाव

उद्योग विशेष या कुछ उद्योगो म परिणाम समान होगे चाहे न्यूनतम मजदूरी सरकार द्वारा लागू (enforce) की जाती है अथवा प्रभावपूर्ण तरीके से उसे श्रमसंघ द्वारा बनाये रखा जाता है।[18] न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के अच्छे तथा बुरे दोनो प्रकार के प्रभाव हो सकते हैं।

हानिकारक परिणाम या दोष (Harmful effects or demerits)—मुख्य हानिकारक परिणाम निम्न हैं

(१) बेरोजगारी (Unemployment)—प्राय न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से कुछ

---

[16] 'The purpose of a minimum wage law is not to control or determine wages in general but to prohibit the employment of anyone at a wage below an amount necessary to maintain a minimum standard of living "

[17] "These laws either state definitely the wages considered to be minimum, or they leave the determination of the wages to an administrative commission The later plan is by far the best because changing economic conditions such as variations in the price level, make it necessary to vary the wage rate frequently if the intent of the law, to just cover minimum living costs, is to be carried out '

[18] "The results are the same whether the minimum wages is enforced by the state or maintained effectively by a trade union "

ऊँची निर्धारित की जाती है। यदि न्यूनतम मजदूरी अधिक ऊँची निर्धारित की जाती है तो इस प्रकार की सम्भावना होगी कि उद्योग विशेष में बेरोजगारी फैले। बेरोजगारी की सम्भावनाएँ निम्न प्रकार से हो सकती है

(i) मजदूरी ऊँची होने से लागत बढ़ेगी और वस्तु की कीमत बढ़ेगी। यदि वस्तु की माँग अधिक लोचदार (highly elastic) है तो वस्तु की माँग कम हो जायगी और उत्पादक बढ़ी हुई लागत के बोझ को (ऊँची कीमत के रूप में) उपभोक्ताओं पर नहीं डाल सकेगा। वस्तु की माँग कम होने पर उत्पादक पहले की अपेक्षा कम श्रमिकों को प्रयुक्त करेंगे, और इस प्रकार उद्योग में बेरोजगारी उत्पन्न होगी। इन बेरोजगार श्रमिकों में से कुछ या सबको पहले से भी कम मजदूरी पर शायद उन उद्योगों में रोजगार मिल जाये जिनमें न्यूनतम मजदूरी लागू नहीं की गयी है। बेरोजगार होने या बहुत कम मजदूरी पर अन्य उद्योगों में काम करना, दोनों ही अवस्थाओं में श्रमिकों की हानि होती।

बेरोजगारी की स्थिति को हम चित्र न० १० द्वारा भी बता सकते हैं। यदि वस्तु की माँग अधिक लोचदार है तो उसको उत्पादित करने वाले श्रमिकों की माँग भी लोचदार होगी। चित्र न० १० में DD रेखा श्रमिकों की लोचदार माँग को बताती है। ऐसी स्थिति में न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण अधिक बेरोजगारी को उत्पन्न करेगा। चित्र में श्रमिक की पूर्ति रेखा SS है जो कि माँग रेखा DD को P बिन्दु पर काटती है। अतः स्पर्द्धात्मक मजदूरी (competitive wage) W_c होगी जिस पर Q_w श्रमिक रोजगार में होंगे। मान लिया कि न्यूनतम मजदूरी W निर्धारित कर दी जाती है तो रोजगार Q_w से घटकर Q_m हो जाता है, अर्थात् $Q_m Q_w$ के बराबर श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं और जैसा कि चित्र से स्पष्ट है यह बेरोजगारी अधिक है।
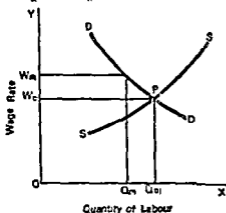
चित्र—१०

(ii) एक सम्भावना यह है कि ऊँची मजदूरी के कारण लागत में वृद्धि के परिणामस्वरूप सेवायोजक (employers) अधिक 'श्रम-बचत मशीनों' (labour saving machinery) का प्रयोग करें। ऐसी स्थिति में बहुत श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे।

(iii) 'ऊँची न्यूनतम मजदूरी', सम्बन्धित उद्योग या उद्योगों में, लाभों को कम करेगी। कुछ कम कुशल उत्पादक हानि के कारण दिवालिये हो जायेंगे और कार्य बन्द कर देंगे। इन उद्योगों में नयी पूँजी का विनियोग नहीं किया जायेगा जब तक कि इनमें उत्पादन की कमी वस्तुओं की कीमतों को इतना ऊँचा नहीं कर देती कि इनमें भी, अन्य उद्योगों की भाँति, लाभ के अच्छे अवसर हो सकें। स्पष्ट है कि उत्पादन में कमी के कारण इन उद्योगों में बहुत से श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे।

(२) श्रमिकों का उद्योगों में पुनर्वितरण (Redistribution of labour between occupation)—इस बात की सम्भावना हो सकती है कि न्यूनतम मजदूरी इतनी ऊँची हो कि वह वर्तमान उद्योग में लगे हुए कम कुशल श्रमिकों की तुलना में अन्य उद्योगों से अधिक कुशल श्रमिकों को आकर्षित कर सके। यदि ऐसा है तो सेवायोजक वर्तमान श्रमिकों को अन्य उद्योगों के श्रमिकों से प्रतिस्थापित (replace) करेंगे और ऐसी परिस्थिति में श्रमिकों का विभिन्न व्यवसायों में केवल पुनर्वितरण ही होगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का उद्योग विशेष में सम्भावित परिणाम रोजगार को कम करना है अर्थात् बेरोजगारी उत्पन्न करना है। परन्तु इस प्रभाव को पूर्ण रूप से प्रकट होने में कुछ समय लगेगा। स्थिर प्लाण्ट का प्रयोग करने वाले साहसी या

सेवायोजक उस प्लाण्ट को कार्य मे लेते रहेंगे और लगभग पहले के समान ही श्रमिकों को रोजगार देते रहेंगे, परन्तु अब उन्हे पहले की अपेक्षा कम लाभ या प्रतिफल (return) प्राप्त होगा। परन्तु जब प्लाण्ट घिस जायेगा तो उसे पुन प्रतिस्थापित (replace) नहीं किया जायेगा अथवा उसे दूसरे रूप मे प्रतिस्थापित किया जायेगा जिसम कि कम श्रमिकों का प्रयोग हो। इस प्रकार मजदूरी मे वृद्धि होने के पर्याप्त समय बाद श्रमिकों का नौकरी से हटाया जाना सामान्यतया सेवायोजकों (employers) की अकुशलता या श्रम-बचत तरीकों का परिणाम समझा जा सकता है, न्यूनतम मजदूरी का परिणाम नहीं।[19]

लाभदायक परिणाम अथवा गुण (Beneficial Effects or Merits)

उपर्युक्त विवरण से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों मे न्यूनतम मजदूरी को लागू करने से सदैव हानिकारक परिणाम ही होते है। यह प्रयोग निम्न प्रकार से लाभदायक भी हो सकता है

(१) कुछ दशाओं में बेरोजगारी उत्पन्न नहीं होगी—(i) यदि न्यूनतम मजदूरी स्थिर तथा विशिष्ट प्लाण्ट (fixed and specialized plant) प्रयोग करने वाले उद्योग म लागू की जाती है तो ऐसी दशा मे उत्पादन की रीतियों को आसानी तथा शीघ्रता से परिवर्तित नही किया जा सकता है। अत ऐसे उद्योगों मे मजदूरी मे वृद्धि के कारण सेवायोजकों का लाभ कुछ कम हो जायेगा; परन्तु श्रमिकों के रोजगार मे कोई विशेष कमी नही होगी।[20]

दूसरे शब्दों म, यदि न्यूनतम मजदूरी लागू किये जाने वाले उद्योगों में अधिक लाभ प्राप्त हो रहे हैं तो न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देने से केवल अधिक लाभ घटकर सामान्य स्तर पर आ जायेंगे और श्रमिकों के रोजगार मे घटने की सम्भावना बहुत कम होगी।

(ii) यदि वस्तु की माँग अधिक बेलोचदार है तो उत्पादक ऊँची मजदूरी की लागत के बोझ को एक सीमा तक ऊँची कीमतों के रूप मे उपभोक्ताओं पर डाल सकेंगे। ऐसी स्थिति मे उद्योग विशेष मे श्रमिकों की बेरोजगारी बहुत कम होगी।

इस स्थिति को एक चित्र द्वारा भी दिखा सकते है। यदि वस्तु की माँग बेलोचदार है तो उसको उत्पादित करने वाले श्रमिकों की माँग भी बेलोचदार होगी। चित्र न० ११ मे DD-रेखा श्रमिकों की बेलोचदार माँग बताती है। श्रमिकों की पूर्ति रेखा SS है, दोनों P बिन्दु पर काटती है, अत. स्पर्द्धात्मक मजदूरी W_c होगी जिस पर Q_c श्रमिक रोजगार मे होंगे। माना कि न्यूनतम मजदूरी W_m निर्धारित कर दी जाती है, तो अब Q_m श्रमिक रोजगार मे होंगे, दूसरे शब्दों मे, Q_mQ_c के बराबर बहुत कम बेरोजगारी उत्पन्न होती है।

चित्र—११

---
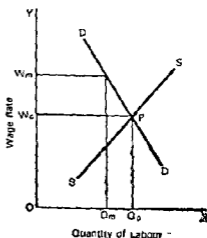
[19] "Thus the probable effect of the minimum wages will be to diminish employment in that occupation. But this effect may take some time to show itself Entrepreneurs with fixed plant may continue to work it, employing nearly as many workers as before, although, they now get a smaller return from it, but when plant wears out it may not be replaced, or it may be replaced in a different form requiring less labour. Thus, dismissals taking place at a considerable interval after wages have been raised may be generally believed to be due to the inefficiency of employers or to labour-saving devices and not to the minimum wages."

[20] "The exitsence of fixed and specialized plant may mean that methods of production cannot readily be changed, so that it may be possible to 'squeeze' profit for the benefit of wages without thereby causing much unemployment."

(iii) यदि मजदूरी कुल उत्पादन-लागत का बहुत थोड़ा अंश है तो सेवायोजक वस्तु की कीमत में थोड़ी वृद्धि करके अपनी क्षति-पूर्ति कर लेगा और श्रमिकों के रोजगार में कोई विशेष कमी नहीं होगी।

(iv) यदि न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से कम है तो स्पष्ट है कि श्रमिकों की माँग बढ़ेगी और रोजगार बढ़ेगा तथा समय के साथ प्रतियोगी मजदूरी में वृद्धि की सम्भावना भी हो सकती है।

(२) श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि—न्यूनतम मजदूरी के कारण मजदूरी वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि हो सकती है क्योंकि अब श्रमिक अधिक पौष्टिक वस्तुओं तथा कार्यक्षमता के लिए आवश्यक वस्तुओं (necessaries for efficiency) का प्रयोग कर सकेंगे तथा कुछ तीव्र मौद्रिक-चिन्ताओं से मुक्त हो सकेंगे। कार्यक्षमता में वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रमिक अधिक उत्पादन कर सकेंगे और उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत गिरेगी परन्तु प्रति इकाई उत्पादन की श्रम-लागत घटेगी, परिणामस्वरूप अन्य साधनों की तुलना में श्रमिकों की माँग बढ़ेगी। परन्तु व्यवहार में इस बात का प्रमाण कम मिलता है कि मजदूरी में वृद्धि वास्तव में श्रमिकों की कार्यक्षमता में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि करती है।

(३) श्रमिकों के शोषण पर नियन्त्रण—यदि उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में श्रमिकों का शोषण हो रहा है तो ऐसे उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी लागू होने से श्रमिकों का शोषण रुकेगा और श्रमिकों को लाभ होगा क्योंकि श्रमिकों की मजदूरी, बिना विशेष बेरोजगारी के, बढ़ जायेगी।

(४) धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को धन के हस्तान्तरण का एक यन्त्र—यदि देश में 'बेरोजगारी लाभ फण्ड' (*unemployment benefit fund*) की व्यवस्था है तो श्रमिकों की कोई हानि नहीं होगी। उद्योग विशेष में न्यूनतम मजदूरी लागू होने में यदि कुछ श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं तो उन्हें सरकार से उनकी पुरानी मजदूरी के बराबर 'फण्ड' में से आर्थिक सहायता प्राप्त होगी। धनी व्यक्तियों पर लगाए गए टैक्सों से प्राप्त धन में से 'बेरोजगारी लाभ फण्ड' का निर्माण होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि न्यूनतम मजदूरी धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को धन हस्तान्तरण का एक यन्त्र (instrument) की भाँति कार्य करती है।

(II) देश के सभी उद्योगों के लिए एक 'राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी' (National Minimum Wages) निर्धारण के प्रभाव

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के अधिक बुरे प्रभाव पड़ेंगे विशेषतया जबकि न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से ज्यादा ऊँची है। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के भी हानिकारक तथा अच्छे दोनों प्रकार के परिणाम होंगे। पहले हम हानिकारक परिणामों की, तत्पश्चात् अच्छे परिणामों की, विवेचना करेंगे।

हानिकारक परिणाम (Harmful Effects)

मुख्य हानिकारक परिणाम निम्नलिखित हैं

(१) अधिक बेरोजगारी (Greater unemployment)—(i) कोई भी श्रमिक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी से कम पर कार्य नहीं कर सकता है, इसलिए श्रमिकों का पुनर्वितरण (redistribution) नहीं हो सकेगा, एक उद्योग से नौकरी से हटाये गये मजदूरों को दूसरे उद्योगों में कम मजदूरी पर रोजगार प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार से श्रमिक स्थायी रूप से बेरोजगार हो जायेंगे जब तक कि वे अपनी कार्यकुशलता को न बढ़ायें या जब तक कि देश में अनेक नये उद्योगों या फर्मों की स्थापना न हो।

(ii) ऊँची मजदूरी की लागत को ऊँची कीमतों के रूप में उपभोक्ताओं पर हस्तान्तरित (transfer) नहीं किया जा सकता क्योंकि ऊँची कीमतों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी दर को और ऊँचा करना पड़ेगा ताकि वास्तविक मजदूरी (real wages) पहले के समान रह सके। इस प्रकार जब ऊँची मजदूरी की लागत को उपभोक्ताओं के ऊपर नहीं डाला जा सकता तो वस्तुओं

का उत्पादन कम होगा, श्रमिकों की माँग कम होगी तथा जो श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे वे बेरोजगार बने रहेंगे।

(iii) ऊँची मजदूरी की लागत के कारण सेवायोजकों के लाभ कम होंगे। उत्पादन की दूसरी रीतियों (जैसे श्रम बचत मशीनों) का प्रयोग करके वे लाभों में कमी को पूरा नहीं कर पायेंगे क्योंकि सभी उद्योगों में श्रम बचत मशीनों की अधिक माँग होगी और परिणामस्वरूप इनकी कीमतें भी बढ़ जायेंगी। लाभों में कमी के कारण अधिकांश उद्योगों में उत्पादन कम होगा, श्रमिकों की माँग कम होगी और बेरोजगारी उत्पन्न होगी।

(iv) लाभों में कमी के कारण बचत कम होगी, पूँजी का संचय तथा विनियोग कम होगा; नये उद्योगों तथा उपक्रमों के स्थापित होने की सम्भावनाएँ कम होंगी और श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसरों में कमी होगी।

(v) बेरोजगारों के भरण-पोषण की व्यवस्था सार्वजनिक फण्डों (public funds) में से करनी पड़ेगी परिणामस्वरूप अधिक टैक्स लगाये जायेंगे, उद्योग तथा उपक्रम पर और अधिक भार पड़ेगा और उनका सकुचन होगा तथा नये उद्योगों का स्थापित होना कम होता जायेगा, अधिक बेरोजगारी फैलेगी और देश गरीबी की ओर अग्रसर होगा क्योंकि पूँजी के संचय तथा नये उपक्रमों के खुलने में कमी के कारण देश अपनी पिछली बचतों पर निर्भर करेगा।

(२) सेवायोजक निर्धारित न्यूनतम मजदूरी को प्राय अधिकतम मजदूरी मानने लगते हैं अर्थात् वे कुशल श्रमिकों को भी न्यूनतम मजदूरी से अधिक नहीं देना चाहते हैं, परिणामस्वरूप श्रमिकों की कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(३) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी को व्यवहार में लागू करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं (i) प्राय कुछ श्रमिक मालिकों से मिल जाते हैं और बेरोजगार रहने की अपेक्षा न्यूनतम मजदूरी से कम पर काम करने लगते हैं। (ii) एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के स्तर को निर्धारित करना भी कठिन होता है। (iii) इसके अतिरिक्त आदमियों के लिए न्यूनतम मजदूरी तथा औरतों के लिए न्यूनतम मजदूरी के सम्बन्ध को निर्धारित करना भी कठिन होता है। (iv) एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण मजदूरी-प्रणाली (wage system) को बेलोचदार तथा कठोर (inelastic and rigid) बना देता है।

लाभ अथवा गुण (Benefits or Merits)

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के अच्छे परिणाम भी होते हैं। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी का समर्थन निम्न लाभों के कारण किया जाता है

(१) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी अधिनियम श्रमिकों को, जिनकी सौदा करने की शक्ति प्राय कमजोर होती है, बेईमान सेवायोजकों के शोषण से बचायेगा।

(२) यह श्रमिकों को एक उचित जीवन-स्तर बनाये रखने में सहायक होगी। यह सम्भव है कि श्रमिक बढ़ी हुई मजदूरी से अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि करें, परिणामस्वरूप उत्पादन बढ़ेगा तथा श्रमिकों में बेरोजगारी उत्पन्न नहीं होगी।

(३) इसके परिणामस्वरूप निम्न स्तर के श्रमिकों की उच्च वर्ग के श्रमिकों के साथ प्रतियोगिता समाप्त हो जायेगी और इस प्रकार प्रतियोगिता के कारण मजदूरी में गिरावट की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है।[11]

(४) उन अकुशल उत्पादकों को अपने कार्य समाप्त कर देने होंगे जो कि श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी देने की क्षमता नहीं रखते। दूसरे शब्दों में, उत्पादकों को कुशल उत्पादन रीतियों तथा आधुनिक यन्त्रों (equipments) को अपनाना होगा ताकि वे इतनी आय प्राप्त कर सकें जिससे कि वे श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी दे सकें। इस प्रकार उद्योगों की उत्पादकता बढ़ेगी और औद्योगिक प्रबन्ध का स्तर ऊँचा उठेगा।

---

[11] "The competition of the lower strata of workers with the upper grades is eliminated, thus tending to prevent the depressing of wages."

(५) निम्न स्तरों वाले प्रतियोगी सेवायोजकों की 'अपविक्रय की कार्यवाही' (underselling) से ऊँचे स्तर वाले सेवायोजकों की रक्षा हो सकेगी।"[११]

निष्कर्ष—उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी तथा राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के हानिकारक तथा लाभदायक दोनों ही प्रकार के परिणाम होते हैं। न्यूनतम मजदूरी अधिनियमों को लागू करने में व्यावहारिक तथा प्रशासनात्मक कठिनाई उपस्थित होती है। यदि मजदूरी दर न्यूनतम सम्भव स्तर (*lowest minimum* possible level) पर निर्धारित की जाती है तो हानिकारक प्रभाव तथा कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं।

"समग्र रूप में कहा जा सकता है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियमों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, यदि वे बुद्धिमानी के साथ बनाये जाते हैं और उनको सोचपूर्ण ढग से लागू किया जाता है ताकि वे भौगोलिक अन्तरों तथा विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रख सकें, परन्तु वे नीची मजदूरियों के लिए पूर्ण उपचार (cure-all) नहीं हो सकते।"[१२]

प्रश्न

१ द्राव्यिक मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी में अन्तर कीजिए। वास्तविक मजदूरी को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए।

Distinguish between nominal and real wages. *Discuss the factors which affect real wages of a labourer?* (*Agra, B A I, Suppl*, 1976, *Raj*, 1969)

२ मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

Explain the modern theory of wages. (*Sagar Ravi, Alld*)

अथवा

मजदूरी के माँग तथा पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

Explain clearly the Demand and Supply Theory of Wages. (*Ravi*, 1965)

३ मजदूरी कैसे निर्धारित होती है? वास्तविक तथा द्राव्यिक मजदूरी में क्या अन्तर है?

How are wages determined? What is the difference between the real and nominal wages? (*Bhagalpur*, 1966 *A*)

४ मजदूरी निर्धारण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Critically examine the marginal productivity theory for determination of wages (*Bhagalpur*, 1967, *Punjab*, 1967, *Alld.*, 1966)

अथवा

"मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण की अपर्याप्त व्याख्या करता है क्योंकि न तो सीमान्त भौतिक उत्पादकता (marginal physical productivity) और न सीमान्त मूल्य उत्पादकता (marginal value productivity) मजदूरी निर्धारण का आधार हो सकती है।" व्याख्या कीजिए।

"The marginal productivity theory of wages offers an unsatisfactory explanation for the determination of wages as neither marginal physical productivity nor marginal value productivity can serve as the basis for determining wages" Discuss. (*Bihar*, 1964)

५ "पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, एक श्रमिक को मजदूरी उसकी सीमान्त उत्पादकता से अधिक नहीं दी जा सकती।" व्याख्या कीजिए।

"Under perfect competition a worker cannot be paid a wage higher than its marginal productivity" Explain. (*Bhagalpur*, 1965 *A*)

---

[११] "Employers with high standards are protected against underselling by competitors with low standards."

[१२] "All in all there is a place for minimum wage laws, provided they are wisely framed and flexibly administered to allow for geographical differences and exceptional circumstances, but they cannot be regarded as a cure-all for low wages."

६ मजदूरी किस प्रकार निर्धारित होती है ? श्रम सघ मजदूरी की दर को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं ।
How are wages determined ? How do trade unions influence the rate of wages ?
(*Raj*, 1968)

७ 'समय मजदूरी' तथा 'कार्य मजदूरी' के बीच अन्तर कीजिए । इनके गुणो तथा दोषो की विवेचना कीजिए ।
Distinguish between time wages and piece wages Discuss their merits and demerits

८. आप इस बात को कैसे समझायेंगे कि विभिन्न व्यवसायो मे श्रमिक बहुत अधिक भिन्न मजदूरी की दरें प्राप्त करते हैं ।
How do you explain the fact that labourers in different occupations earn strikingly different rates of wages ?
(*Bihar*)

९. मजदूरी म अन्तरो के निम्न कारणो को समझाइए :
(अ) श्रम बाजार म 'अप्रतियोगी समूह', (ब) 'समकारी अन्तर', (स) 'असमकारी अन्तर' ।
Explain the following reasons for wage differentials
(a) Non-competing Groups in the Labour Market (b) Equalizing Differences
(c) Non equalizing Differences
(*Agra, B A I* 1976)

१० न्यूनतम मजदूरी को परिभाषित कीजिए । उसके उद्देश्य क्या हैं ? एक 'राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी' के निर्धारण के प्रभावो की विवेचना कीजिए ।
Define minimum wages What are its objectives ? Discuss the consequences of fixing a national minimum wage'

११ न्यूनतम मजदूरी नीची मजदूरियो के लिए पूर्ण-उपचार नही हो सकती ।' विवेचना कीजिए ।
Minimum wages cannot be regarded as a cure all for low wages ' Discuss

१२. निम्नलिखित को समझाइए
(अ) "एक उत्पादक 'नीची द्राव्यिक मजदूरी' पर नही बल्कि 'नीची मजदूरी-लागत' पर अपनी आँख रखता है । (ब) 'समकारी अन्तर' ।
Explain the following
(a) A produc r keeps his eye not on 'low money wages but on low wage-costs'
(b) Equalizing Differences '

१३ मजदूरी किस प्रकार निर्धारित होती है ? क्या मजदूरी म लगान का अश हो सकता है ?
How are wages determined ? Can there be an element of rent in wages ?
(*Meerut* 1968)

लाभ
[PROFIT]

लाभ का स्वभाव तथा उसकी परिभाषा
(NATURE AND DEFINITION OF PROFIT)

राष्ट्रीय आय का वह भाग जो वितरण की प्रक्रिया (process) में साहसियों को प्राप्त होता है लाभ कहा जाता है।[1] लाभ स्वभाव मे अवशेष (residual in nature) होता है अर्थात् अन्य सभी साधनो के पुरस्कार (rewards) देने के बाद साहसी (या उद्योगपति या व्यवसायी या मालिक) को जो शेष बचता है वह लाभ है।

अर्थशास्त्री लाभ को दो अर्थों में प्रयोग करते हैं—(i) आर्थिक या विशुद्ध लाभ (economic or pure profit) तथा (ii) कुल लाभ (gross profit)। साधारण बोलचाल की भाषा मे लाभ का अर्थ अर्थशास्त्रियो के कुल लाभ मे होता है।

लाभ की परिभाषा (Definition of Profit)

अर्थशास्त्र मे लाभ का अर्थ आर्थिक लाभ या विशुद्ध लाभ मे होता है। लाभ साहसी के कार्यों अर्थात् जोखिमो तथा अनिश्चितताओं को झेलने तथा नव प्रवर्तन (innovations)[2] के लिए पुरस्कार है। यहाँ एक बात और ध्यान रखने की है कि लाभ प्रावैगिक परिवर्तन (dynamic changes) के कारण उत्पन्न होता है, पूर्ण प्रतियोगिता म प्रत्येक उत्पादन को पूर्ण जानकारी होती है, कोई अनिश्चितता नहीं रहती, तथा दीर्घकाल में लाभ प्राप्त नहीं होता (केवल समान्य लाभ प्राप्त होता है), अत लाभ के लिए बाजार-ढाँचे (market structure) म अपूर्णताओं (imperfections) का होना आवश्यक है।

अत प्रो॰ हैनरी ग्रेसन (Henry Grayson) लाभ को इस प्रकार परिभाषित करते हैं

१ नव-प्रवर्तन के लिए पुरस्कार।

२. जोखिमों तथा अनिश्चिताओं को स्वीकार करने का पुरस्कार।

३ बाजार-ढाँचे मे अपूणताओं का परिणाम।

स्पष्ट है कि कोई भी दशा या तीनों दशाओं का कोई भी मिश्रण आर्थिक लाभ को उत्पन्न कर सकता है।[3]

---

[1] The share of national income that goes to entrepreneurs in the process of distribution is known as profit

[2] नव-प्रवर्तन शब्द का प्रयोग शुम्पीटर (Schumpeter) ने किया है जिसका अर्थ है कि साहसी किसी 'नवीन लागत-बचत रीति' (new cost-saving method) को ज्ञात कर सकता है या किसी नवीन वस्तु (new product) का उत्पादन कर सकता है। इन सबके कारण साहसी को लाभ प्राप्त होता है।

[3] Profit may be considered
1. A reward for making innovations
2 A reward for accepting risks and uncertainties
3. A result of imperfections in the market structure
Evidently, any one or any combination of the three conditions can give rise to economic profit.

अन्य साधनों की कीमत की भाँति, साहसी की कीमत (अर्थात् सामान्य लाभ) साहसी की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

२ साहसी की माँग (Demand of Entrepreneurship)

माँग पक्ष पर हम सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रयोग करते हैं। फर्मों द्वारा साहसी की माँग उसकी उत्पादकता के कारण की जाती है परन्तु अन्य साधनों की तुलना में साहसी की सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue product) के ज्ञात करने में एक कठिनाई है। एक फर्म साधन श्रम के सम्बन्ध में एक श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करके कुल आगम में वृद्धि को मालूम करके सीमान्त आगम उत्पादकता को ज्ञात कर लेती है, परन्तु वह साहसी की सीमान्त उत्पादकता इस प्रकार ज्ञात नहीं कर सकती क्योंकि एक फर्म एक साहसी का प्रयोग कर सकती है, एक से अधिक का नहीं। परन्तु इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है यदि हम साहसी की सीमान्त उत्पादकता को एक उद्योग के सन्दर्भ में देखें।

एक उद्योग में प्रयुक्त किये जाने वाले साहसियों की संख्या फर्मों की संख्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती है, उद्योग विशेष में जितनी फर्में होंगी उतने ही साहसी होंगे। यह मान लेना उचित (reasonable) होगा कि उद्योग में फर्मों की संख्या में वृद्धि के साथ प्रत्येक फर्म का लाभ घटेगा (क्योंकि उद्योगों में वस्तु के उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरेगी)। इसका अभिप्राय है कि साहसियों की अधिक संख्या प्रयुक्त होने से उनकी सीमान्त उत्पादकता गिरेगी अर्थात् साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा (MPP curve) दायें को नीचे की ओर गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र न० १ में दिखाया गया है। सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था (economy as a whole) के लिए भी साहसियों की माँग ज्ञात की जा सकती है। सभी उद्योगों से सम्बन्धित साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता रेखाओं को जोड़ देने से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए साहस (entrepreneurship) की माँग ज्ञात हो जायेगी।
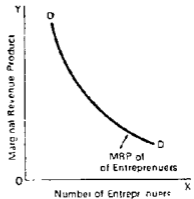
चित्र—१

३. साहसी की पूर्ति (Supply of Entrepreneurship)
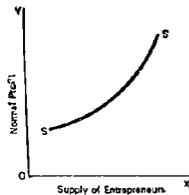
सामान्य लाभ साहसी की पूर्ति मूल्य (supply price) है, सामान्य लाभ वह न्यूनतम पूर्ति मूल्य है जो कि समाज (अर्थात् सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था) को अनिश्चितता झलने की पूर्ति (supply of uncertainty bearing) को बनाये रखने के लिए देना पड़ेगा।[1] यदि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में लाभ दर ऊँची होगी तो साहसियों की पूर्ति अधिक होगी, लाभ-दर नीची होगी तो साहसियों की पूर्ति कम होगी। इस प्रकार लाभ दर तथा साहसियों की पूर्ति में सीधा सम्बन्ध होगा और इसलिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से साहसियों की पूर्ति रेखा ऊपर को ओर चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र न० २ में दिखाया गया है।

Y
S
Normal Profit
S
O
X
Supply of Entrepreneurs

चित्र—२

[1] "Profit exclusive of any rent element—*i e*, what is termed normal profit—is the supply price of entrepreneurship the price which society must pay to maintain the supply of uncertainty bearing"

४. सामान्य लाभ निर्धारण (Determination of Normal Profit)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (economy as a whole) की दृष्टि से साहसी का मूल्य अर्थात् सामान्य लाभ उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ साहसियों की माँग रेखा तथा पूर्ति रेखा एक दूसरे को काटती है। चित्र नं० ३ में DD तथा SS रेखाएँ R बिन्दु पर काटती है, अत: सामान्य लाभ RQ (या PO) निर्धारित होगा और साहसियों की माँग तथा पूर्ति दोनों OQ के बराबर होगी। सामान्य लाभ को L रेखा द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक उद्योग इस सामान्य लाभ के स्तर को स्वीकार करेगा।

चित्र—३
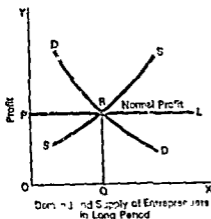
पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग उस सामान्य लाभ को दिया हुआ मान लेगा जो कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में साहसियों की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक उद्योग चित्र नं० ३ की PL सामान्य लाभ रेखा को दिया हुआ मान लेगा, इसका अभिप्राय है कि एक उद्योग के लिए सामान्य लाभ रेखा (या साहसियों की पूर्ति रेखा) एक पड़ी हुई रेखा होगी और इस दिए हुए सामान्य लाभ तथा साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता के अनुसार उद्योग विशेष में साहसियों की संख्या निर्धारित होगी। चित्र नं० ४ में सामान्य लाभ रेखा PL तथा साहसी की MRP रेखा एक दूसरे को T बिन्दु पर काटती है, अत: उद्योग विशेष में प्रयुक्त किये जाने वाले साहसियों की संख्या OM होगी। दूसरे शब्दों में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जब साहसी सामान्य लाभ प्राप्त करते हैं। यदि उद्योग में

चित्र—४

साहसियों की संख्या OM से कम है, माना कि OB है, तो इसका अभिप्राय है कि इस उद्योग में साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता AB है अर्थात् उन्हें AB लाभ प्राप्त हो रहा है जो कि सामान्य लाभ से अधिक है, इस अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर साहसियों की संख्या बढ़ेगी (जैसा कि चित्र नं० ४ में B से M की ओर जाता हुआ तीर बताता है) और बढ़कर वह OM के बराबर हो जायेगी जहाँ पर साहसी की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) तथा सामान्य लाभ बराबर हैं। इसी प्रकार यदि साहसियों की संख्या OM से अधिक है माना कि ON है तो इसका अभिप्राय है कि इस उद्योग में साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) बराबर है, KN के, अर्थात् उनको KN लाभ प्राप्त हो रहा है जो कि सामान्य लाभ से कम है, परिणामस्वरूप कुछ साहसी इस उद्योग को छोड़ देंगे, उनकी संख्या कम होकर (जैसा कि चित्र में N से M की ओर जाता हुआ तीर बताता है) OM के बराबर हो जायगी जहाँ पर साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) तथा सामान्य लाभ बराबर हैं। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग साम्य की स्थिति में तभी होगा जबकि सभी साहसियों (अर्थात् फर्मों) को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक उद्योग, अर्थात् जब उद्योग विशेष में साहसियों या फर्मों के प्रवेश के प्रति रुकावटें अथवा बाधाएँ हैं तब ऐसे उद्योग के लिए साहसियों की पूर्ति रेखा (अर्थात् सामान्य लाभ रेखा) पड़ी हुई रेखा न होकर ऊपर को चढ़ती हुई रेखा होगी जैसा कि चित्र न० ५ में ES रेखा है।[16] चित्र न० ५ में साहसियों की माँग रेखा DD तथा पूर्ति रेखा ES एक-दूसरे को R बिन्दु पर काटती है, अत प्रत्येक साहसी को RQ (या PO) के बराबर पुरस्कार या लाभ प्राप्त होगा तथा प्रयुक्त किये जाने वाले कुल साहसियों की संख्या OQ होगी। OQ साहसियों को प्राप्त होने वाला कुल लाभ $OQ \times RQ = OQRP$ तथा कुल सामान्य लाभ $= OQRE$। स्पष्ट है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग विशेष में साहसियों को सामान्य लाभ से अधिक लाभ (अर्थात् एक प्रकार से लगान) प्राप्त हो रहा है अर्थात्
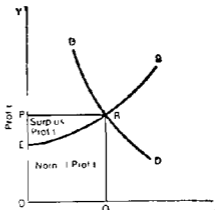
चित्र—५

अतिरिक्त लाभ (excess profit) = कुल लाभ — सामान्य लाभ

$$= OQRP - OQRE$$

$$= ERP$$

५. लाभ निर्धारण के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें (Some Important Points Regarding Profit Determination)

सामान्य लाभ निर्धारण के उपर्युक्त विवेचन के सम्बन्ध में आगे लिखी गयी महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है

---

[16] ऊपर को चढ़ती हुई साहसियों की पूर्ति रेखा ES का अभिप्राय है कि अधिक साहसियों को प्रयुक्त करने के लिए ऊँचे पुरस्कार अर्थात् ऊँचे सामान्य लाभ देने पड़ेंगे। पूर्ति रेखा ES साहसियों के 'पूर्ति मूल्यों' (अर्थात् 'सामान्य लाभ' के विभिन्न स्तरों) को बताती है जिन पर कि साहसियों की विभिन्न संख्या उद्योग विशेष में कार्य करने को तत्पर है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग यदि साहसियों की OA संख्या (चित्र न० ६) प्रयुक्त करना चाहता है तो उसे प्रत्येक साहसी को कम से कम DA के बराबर सामान्य लाभ या पूर्ति-मूल्य अवश्य देना होगा नहीं तो उद्योग को साहसियों की यह संख्या प्राप्त नहीं होगी। इसी प्रकार उद्योग यदि साहसियों की OB संख्या या OC संख्या या OQ संख्या प्रयुक्त करना चाहता है तो उसे क्रमश कम से कम BK या CR या QP के बराबर पूर्ति मूल्य या सामान्य लाभ अवश्य देना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, ES रेखा सामान्य लाभ के विभिन्न स्तरों को बताती है तथा साहसियों की OQ संख्या का कुल सामान्य लाभ (या 'कुल पूर्ति मूल्य' या 'कुल अवसर लागत') SE रेखा के नीचे का क्षेत्रफल OQPE के बराबर होगा।
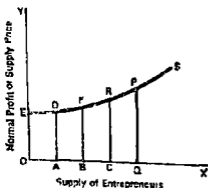
चित्र—६

(i) उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हम यह मान लेते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी साहसियों के लिए सामान्य लाभ का स्तर एक है और इस प्रकार सभी साहसी समान आय प्राप्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, यह मान लिया जाता है कि सभी साहसी एकरूप (homogeneous) हैं अर्थात् समान योग्यता रखते हैं। स्पष्ट है कि यह मान्यता अवास्तविक है।

अतः व्यवहार में दीर्घकाल में भी कुछ साहसी ऐसे होंगे जो सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त करेंगे, इस अतिरिक्त लाभ को 'योग्यता का लगान' (rent of ability) कहा जा सकता है।

(ii) उपर्युक्त विवेचन में एक छिपी हुई मान्यता (implicit assumption) यह है कि सभी उद्योगों में अनिश्चितता की समान मात्रा (same degree of uncertainty) मान ली जाती है। परन्तु यह मान्यता भी अवास्तविक है क्योंकि व्यवहार में कुछ उद्योगों में अनिश्चितता की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है और इसलिए ऐसे उद्योगों में सामान्य लाभ का स्तर, अन्य उद्योगों की तुलना में, अधिक होगा। दूसरे शब्दों में, लाभ का एक स्तर जो कि एक साहसी के लिए सामान्य है वह दूसरे के लिए सामान्य से कम तथा तीसरे के लिए सामान्य से अधिक हो सकता है।[6]

परन्तु फिर भी सामान्य लाभ का विचार लाभदायक है क्योंकि "सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए सामान्य लाभ के स्तर का समायोजन (adjustment) करके हम व्यक्तिगत उद्योगों में अनिश्चितता की विभिन्न मात्राओं की जानकारी कर सकते हैं।"[7]

(iii) यदि अर्थव्यवस्था पूर्णतया स्थिर (perfectly static) है, अर्थात् जनसंख्या, व्यक्तियों की रुचियों (tastes), टेक्नोलोजी तथा आयों में कोई परिवर्तन नहीं होता तो कोई अनिश्चितता नहीं होगी और इसलिए कोई सामान्य लाभ या लाभ नहीं होंगे साहसी का 'सामान्य लाभ' वास्तव में केवल 'प्रबन्ध की मजदूरी' (wages of management) होगी।

क्या लाभ समान हो सकते हैं?
(CAN PROFIT TEND TO EQUALITY ?)

अन्य साधनों के पुरस्कारों की भाँति लाभ की एक सामान्य दर (general rate) असम्भव है

(i) *अधिक जोखिम तथा अनिश्चितता वाले उद्योगों में लाभ अधिक होगा* अपेक्षाकृत कम जोखिम वाले और साधारण उद्योगों में। इस प्रकार अल्पकाल में विभिन्न उद्योगों में लाभ की समान *दर होने की कोई प्रवृत्ति नहीं होगी।*

(ii) अल्पकाल में एक ही उद्योग में साहसियों की व्यावसायिक योग्यताओं के अनुसार विभिन्न फर्मों में भी लाभ की दरें भिन्न होंगी।

(iii) सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में विभिन्न उद्योगों में लाभ की एक सामान्य दर हो सकती है। यदि ऐसा नहीं है और लाभ की दरों में अन्तर है, तो साहसी (अर्थात् व्यावसायिक योग्यता) *कम लाभ वाले उद्योगों से अधिक लाभ वाले उद्योगों में जायेंगे जब* तक सभी उद्योगों में लाभ दर समान न हो जाये। इस प्रकार दीर्घकाल में, सैद्धान्तिक दृष्टि से, *विभिन्न उद्योगों में लाभ की एकसमान दर होने की प्रवृत्ति कही जा सकती है।*

परन्तु दीर्घकाल में *विभिन्न उद्योगों में लाभ के समान होने की प्रवृत्ति केवल सैद्धान्तिक तथा* काल्पनिक है। वास्तविक संसार प्रावैगिक है जिसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं जो विभिन्न उद्योगों तथा फर्मों में वस्तुओं की कीमतों तथा लागतों में अन्तर उत्पन्न करते रहते हैं और इस प्रकार विभिन्न उद्योगों में लाभ की दरों में भिन्नता बनी रहती है। स्पष्ट है कि वास्तविक संसार *में लाभ के समान होने की प्रवृत्ति नहीं हो सकती।*

---

[6] "A level of profit which is normal *for one entrepreneur may be less than normal for* another and more than normal for a third."

[7] Yet the concept of normal profit is useful because "by making an adjustment to the level of normal profit for the economy as a whole, we can take account of the varying degrees of uncertainty in individual industries."

प्रश्न

१. निम्नलिखित को समझाइए
   (अ) सामान्य लाभ तथा अतिरिक्त लाभ।
   (ब) प्रति वर्ष लाभ तथा क्रय-राशि पर लाभ।
   (स) एकाधिकारी लाभ तथा आकस्मिक लाभ।

Explain the following
(a) Normal profit and Surplus Profit
(b) Annual Profits and Profits on the Turnover
(c) Monopoly Profits and Windfall Profits (*Agra*, 1968)

२ सामान्य लाभ तथा अतिरिक्त लाभ मे अन्तर बताइए। क्या साहसी का पुरस्कार उत्पादन लागत मे प्रवेश करता है ?

Distinguish between normal profit and surplus profit Does the remuneration of the entrepreneur enter the cost of production ? (*Agra, Bihar*)

३ सामान्य लाभ की परिभाषा दीजिए तथा समझाइए कि यह सामान्य उत्पादन लागत मे क्यों सम्मिलित किया जाता है ?

Define normal profit and explain why it is included in the normal cost of production (*Sagar*, 1966)

[संकेत—देखिए 'सामान्य लाभ' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

४ लाभ की प्रकृति का विवेचन कीजिए। क्या यह योग्यता का लगान कहा जा सकता है ?

Discuss the nature of profit Can it be called the Rent of Ability ? (*Agra*, 1968)

५. लाभ लगान की भाँति होते हैं और मूल्य मे प्रवेश नहीं करते। क्या आप इससे सहमत हैं ? कारण दीजिए।

Profits are like rent and do not enter price Do you agree ? Give reasons (*Bihar*, 1966 *A* ; *Bhagalpur*, 1966)

[संकेत—पहले 'लाभ के लगान सिद्धान्त' की आलोचना सहित व्याख्या कीजिए। तत्पश्चात् बताइए कि 'अतिरिक्त लाभ या असामान्य लाभ' लागत का अग नही होता और इसलिए मूल्य को प्रभावित नही करता, अतिरिक्त लाभ के अर्थ को बताइए। परन्तु 'सामान्य लाभ' लागत का अग होता है और इसलिए मूल्य को प्रभावित करता है, 'सामान्य लाभ' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री दीजिए।]

६ विवेचन कीजिए कि "लाभ अनिश्चितता सहन करने के लिए भुगतान है।"

Profit is a payment for uncertainty bearing' Discuss (*Agra, B A II*, 1976)

अथवा

क्या आप इस बात से सहमत है कि लाभ साहसी द्वारा बीमा-अयोग्य जोखिमो तथा अनिश्चितताओं को सहन करने के लिए पुरस्कार है ? आप के अपने मत के अनुसार लाभ की उचित व्याख्या क्या है ?

७. 'विशुद्ध लाभ केवल जोखिम सहन करने के लिए पुरस्कार होते हैं।' क्या आप इससे सहमत हैं ? कारण दीजिए।

'Pure profits are only the remuneration for risk taking'. Do you agree ? Give reasons (*Jodhpur*, 1967

८ लाभ अतिरेक (surplus) है अथवा किसी उत्पत्ति के साधन का पारिश्रमिक ? नाईट के लाभ-निर्धारण सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

Is profit a surplus or a payment to a factor of production ? Discuss Knight's theory of profit (*Alld*, 1965)

[संकेत—प्रथम भाग में पहले बताइए कि 'लाभ' साहसी का पारिश्रमिक है और तत्पश्चात् 'सामान्य लाभ' तथा 'अतिरिक्त लाभ' या 'असामान्य लाभ' के विचारों को बताइए। दूसरे भाग में नाईट के लाभ सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।]

९. लाभ क्यों उत्पन्न होते हैं? स्थिर तथा प्रावैगिक दशाओं के अन्तर्गत लाभ के विचार की विवेचना कीजिए।
Why do profits arise? Discuss the concept of profit under static and dynamic conditions. *(Sagar, 1963)*

१०. लाभ के स्वभाव की विवेचना कीजिए। क्या स्थिर अवस्था में लाभ हो सकता है?
Discuss the nature of profit. Can there be a profit in a stationary state? *(Bihar, 1965 A)*

११. 'लगान' तथा लाभ में अन्तर कीजिए। बताइए कि लाभ कैसे निर्धारित होता है?
Distinguish between rent and profit. Show how profit is determined? *(Gorakh., 1968, Alld., 1966)*

१२. लाभ क्या है? लाभ निर्धारण के माँग तथा पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
What is profit? Discuss the Demand and Supply Theory of Profit. *(Agra, 1969)*

१३. 'सामान्य तथा 'विशुद्ध' लाभ में अन्तर स्पष्ट कीजिए और बताइए कि विशुद्ध लाभ कैसे निर्धारित होते हैं?
Distinguish between 'Normal' and 'Pure' profits and show how pure profits are determined? *(Alld., 1967)*

१४. *"समाज का कोई भी रूप हो—चाहे पूँजीवाद, समाजवाद या साम्यवाद—लाभ एक* आवश्यक तथा महत्वपूर्ण कार्य करता है।" विवेचना कीजिए।
"Whatever the form of society—capitalist, socialist or communist—profit performs a very essential and useful function." Discuss. *(Ravi., 1965)*

6 आय की असमानता
[INEQUALITY OF INCOME]

आय की असमानता का विचार (The Concept of the Inequality of Income)

आर्थिक असमानता (economic inequality) दो प्रकार की होती है, 'आय की असमानता' (inequality of income) तथा धन की असमानता (inequality of wealth)। ये दोनों असमानताएँ एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था (free enterprise economy) में धन तथा सम्पत्ति के वितरण की असमानताएँ बहुत अधिक होती हैं जबकि व्यक्तिगत सेवाओं के बदले में प्राप्त पुरस्कारों में असमानताएँ अर्थात् आयों में असमानताएँ उतनी अधिक नहीं होतीं। परन्तु धन तथा सम्पत्ति की असमानताएँ लोगों की आयों की असमानताओं को बहुत बढ़ा देती हैं।

आयों की असमानता समाज की दृष्टि से अच्छी नहीं होती और इसलिए लोगों की आयों में समानता लाने के लिए विभिन्न प्रकार की रीतियों को अपनाने के प्रयत्न किये जाते हैं। परन्तु आय की समानता का अर्थ यह नहीं होता कि समाज के सभी सदस्यों की 'आयों में पूर्ण समानता (perfect equality of incomes) होनी चाहिए अर्थात् सब लोगों की 'आय में गणितात्मक समानता' (arithmetical equality of income) होनी चाहिए। लोगों की आयों में पूर्ण समानता या 'गणितात्मक समानता' न तो सम्भव ही है और न वाञ्छनीय ही है। समाज की दृष्टि से आयों में अधिक असमानताएँ हानिकारक होती हैं, परन्तु व्यक्तियों की योग्यताओं में अन्तर के कारण तथा कुशल और अधिक उत्पादन के लिए प्रेरणा (incentive) के रूप में आयों में कुछ असमानताएँ आवश्यक हैं। अतः 'आय की असमानता' का अर्थ 'पूर्ण समानता' या 'गणितात्मक समानता' से नहीं होता बल्कि 'अत्यधिक असमानताओं में कमी' से होता है।

जिस प्रकार 'मूल्य में स्थायित्व' (stabilisation of prices) का अर्थ मूल्यों के किसी एक स्थिर स्तर (fixed level) से नहीं बल्कि 'मूल्यों के अत्यधिक उतार चढ़ाव (fluctuations) में कमी' करने से होता है, उसी प्रकार 'आय की समानता' का अर्थ, 'आय के एकसमान स्तर' से नहीं बल्कि 'आय की अत्यधिक असमानताओं में कमी' से होता है।

आय में असमानता के कारण
(CAUSES OF INCOME INEQUALITY)

विभिन्न प्रकार के तत्त्व आय की असमानताओं को जन्म देते हैं तथा उन्हें बनाये रखते हैं। वास्तव में, आय की असमानता के कारणों को निम्न तीन मोटे वर्गों में बाँटा जा सकता है

(अ) आय की असमानता को उत्पन्न करने वाले तत्त्व।

(ब) आय की असमानता को बढ़ाने वाला तत्त्व अर्थात् 'व्यक्तिगत सम्पत्ति (Private property) के स्वामित्व का अधिकार।'

(स) आय की असमानताओं को स्थायी बनाने (perpetuation) में सहायक तत्त्व अर्थात् 'उत्तराधिकार (inheritance) का अधिकार।'

(अ) आय की असमानताओं को उत्पन्न करने वाले तत्व

(i) जन्मजात योग्यताओं (inherent capabilities) में अन्तर—प्रकृति ने सभी व्यक्तियों को एकसमान योग्य नहीं बनाया है जन्म से ही व्यक्तियों में शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से अन्तर होता है। प्रायः अधिक योग्य व्यक्ति अच्छी नौकरियों तथा व्यवसायों में प्रवेश करके अधिक आय प्राप्त कर सकने में सफल होते हैं जबकि कम योग्य व्यक्ति प्रायः कम आय प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार व्यक्तियों के जन्मजात गुणों में अन्तर आयों में अन्तर को जन्म देते हैं।

(ii) प्रशिक्षण, शिक्षा तथा अवसरों (opportunities) में अन्तर—प्रत्येक व्यक्ति के मानसिक तथा शारीरिक दृष्टि में एकसमान होने की अवास्तविक मान्यता को भी मान लिया जाय तब भी व्यक्तियों में आय की असमानता रहेगी। इसका मुख्य कारण है कि सभी व्यक्तियों को शिक्षा तथा प्रशिक्षण की समान सुविधाएँ तथा अवसर प्राप्त नहीं होते। शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है जो कि प्रत्येक व्यक्ति व्यय नहीं कर सकता। प्रायः शिक्षित तथा प्रशिक्षित व्यक्ति अधिक आय प्राप्त करने में सफल होते हैं। स्पष्ट है कि प्रशिक्षण, शिक्षा तथा अवसरों में अन्तर 'आय की असमानता' को जन्म देते हैं।

(iii) बाजार-शक्ति को स्वार्थसिद्धि के हेतु प्रयोग करने की योग्यता (Ability to manipulate the market power)—कुछ लोग बाजार-शक्ति को अपने स्वार्थ साधन के लिए चालाकी से प्रयोग करने की योग्यता रखते हैं। कुछ संघ तथा व्यावसायिक समूह (some unions and professional groups) इस प्रकार की नीति अपनाते हैं जिससे कि उनकी उत्पादक सेवाओं की पूर्ति सीमित रहे और परिणामस्वरूप वे (अन्य लोगों की अपेक्षा) अधिक आय प्राप्त कर सकें। ये वर्ग नये सदस्यों को लेने से मना कर सकते हैं, या प्रवेश की बहुत ऊँची फीस निर्धारित कर सकते हैं, प्रशिक्षण की समयावधि लम्बी कर सकते हैं, इत्यादि, द्वारा बाजार-शक्ति का अपने पक्ष में प्रयोग करके अपने सदस्यों के लिए ऊँची आय प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार से जब कोई उत्पादक या कुछ उत्पादक एकाधिकारी तत्त्व अर्जित कर लेते हैं तो वे अधिक लाभ या आय प्राप्त करते हैं।

(iv) विपत्तियों का असमान वितरण (Unequal distribution of misfortunes)—विभिन्न प्रकार की आर्थिक विपत्तियाँ, जैसे लम्बी बीमारी, दुर्घटनाएँ, परिवार के कमाने वाले व्यक्ति (bread winner) की असामयिक मृत्यु इत्यादि के कारण कुछ व्यक्ति गरीब रहते हैं। इन विपत्तियों का वितरण असमान रहता है इसलिए व्यक्तियों की आयों में अन्तर होता है।

(v) केवल भाग्य या अवसर (Just luck or chance)—जीवन में केवल भाग्य या अवसर का तत्त्व भी आयों में भिन्नता उत्पन्न कर देता है। किसी व्यक्ति को भाग्यवश कोयले की खान का पता लग सकता है गढ़ा हुआ धन मिल सकता है, उसके पास स्टॉक में रखी हुई वस्तु की कीमत यकायक बहुत बढ़ सकती है। एक व्यक्ति अपने धनी मालिक की पुत्री को प्रभावित कर सकता है और उससे विवाह करके मालदार हो सकता है। व्यक्तिगत सम्पर्क या राजनीतिक प्रभाव भी कुछ व्यक्तियों की आयों में वृद्धि करा सकते हैं।

(ब) आय की असमानता को बढ़ाने वाला तत्व अर्थात् 'व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार' (The Right to Own Private Property)

आय प्राप्त करने की योग्यता में अन्तर, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा अवसरों में अन्तर, भाग्य इत्यादि के कारण आय की असमानताएँ उत्पन्न होती हैं। परन्तु पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में निजी सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार आयों की असमानता को बढ़ाता है। लोग कई रीतियों द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। प्रथम, अधिक वेतन प्राप्त करने वाले व्यक्ति अपनी बचतों से सम्पत्ति खरीद सकते हैं। दूसरे, लोग भूमि, वस्तुओं तथा सिक्यूरिटीज इत्यादि में सफलतापूर्वक सट्टा करके बड़ी मात्रा में सम्पत्ति एकत्रित कर सकते हैं। व्यक्तियों के पास जितनी अधिक सम्पत्ति होगी वे उतने ही मालदार होंगे। वास्तव में, आय की उच्चतम सीढ़ी पर सम्पत्ति वाले व्यक्ति होते हैं। सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार लोगों की आयों में अन्तर को बहुत बढ़ा देता है। समाजवादी देशों में सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार बहुत सीमित होता है। इसलिए वहाँ व्यक्तियों की आयों में असमानताएँ बहुत कम होती हैं।

(स) आय की असमानता को स्थायी बनाने मे सहायक तत्त्व अर्थात् 'उत्तराधिकार का अधिकार' (Right to Inheritance)

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था म उत्तराधिकार का अधिकार आय की असमानताओ को जारी (continue) रखता है। मृत्यु के बाद एक व्यक्ति का धन तथा सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियो को मिलती है, इस प्रकार स आय की असमानताएँ एक पीढी (generation) म दूसरी पीढी को हस्तान्तरित (transfer) होती रहती है। दूसर शब्दो म 'उत्तराधिकार की संस्था' (Institution of Inheritance) आय की असमानताओ को स्थायी बनाने म सहायक होती है।

आय की असमानता के हानिकारक प्रभाव
(HARMFUL EFFECTS OF INEQUALITY OF INCOME)

अथवा

आय की असमानता के विपक्ष मे तर्क
(ARGUMENTS AGAINST INEQUALITY OF INCOME)

आय की असमानता के विपक्ष म अनेक तर्क दिये जाते है। ये तर्क, वास्तव मे, आय की असमानता के बुरे परिणामो पर आधारित है। आय की असमानता निम्न हानिकारक परिणामो को जन्म देती है

(१) सामाजिक अन्याय (Social Injustice)

(i) नैतिक दृष्टि से आय मे अधिक असमानताएं उचित नही कही जा सकती। आर्थिक सीढी (economic ladder) के एक सिरे पर थोडे परन्तु अत्यन्त धनवान व्यक्ति होते है और दूसरे सिरे पर बहुत अधिक परन्तु अत्यन्त निर्धन व्यक्ति होते हैं। निर्धन व्यक्ति तो अपनी आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति भी ठीक प्रकार से नही कर पाते है जबकि थोडे से अत्यन्त धनवान व्यक्ति आराम तथा विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते ह, सम्पत्ति की आयो (property incomes) पर निर्भर करने वाले धनवान व्यक्ति बिना प्रयास किये ही विलासिता का जीवन व्यतीत करते है। इस प्रकार की स्थिति सामाजिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण है। इसके अतिरिक्त देश म अत्यन्त गरीबो के क्षेत्रो (pockets of extreme poverty) की उपस्थिति समाज के लिए लज्जाजनक (social disgrace) है।

(ii) जब नागरिक अदालत के समक्ष आते है तो आय की असमानता उनके प्रति व्यवहार (treatment) की दृष्टि से अनुचित अन्तर (unjust differences) उत्पन्न कर देती है। सिद्धान्त मे तो प्रजातन्त्र (democracy) मे सभी नागरिक कानून के अन्तर्गत समान होते है। परन्तु अच्छे वकीलो की सेवाओ को प्राप्त करने के लिए द्रव्य की आवश्यकता पडती है, अत व्यवहार मे एक धनी व्यक्ति अच्छे वकीलो की सेवाओ को प्राप्त कर सकता है और उसके लिए अपराध से छूटने की अधिक सम्भावनाएँ रहती है अपेक्षाकृत एकसमान परिस्थितियो म निर्धन व्यक्ति के। यह आय की असमानता से उत्पन्न सामाजिक अन्याय का ही रूप है।

(२) असमान अवसर तथा सामाजिक स्तरीकरण (Unequal Opportunities and Social Stratification)

आय की असमानता धनवानो तथा निर्धनो के बीच अवसर के असमान वितरण को जन्म देती है। धनी व्यक्ति अधिक धन व्यय करके अपने बच्चो को अच्छी शिक्षा तथा प्रशिक्षण दे सकते है, परिणामस्वरूप उनके बच्चो के लिए अच्छे तथा ऊँचे वेतन वाले रोजगारो मे प्रवेश सुगम हो जाता है। इसके विपरीत, निर्धन व्यक्ति अपने बच्चो के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था नही कर पाते और प्राय उनके बच्चो को अच्छे रोजगार नहीं मिलते है, तथा इस प्रकार से निर्धनता बनी रहती है। आय की असमानता अवसरो की असमानता को जन्म देती है और अवसरों की असमानता समाज को विभिन्न स्तरो या पर्तों (levels or layers) मे, जैसे अत्यन्त निर्धन, धनी, अत्यन्त धनी व्यक्तियो म, बाँट देती है। इस प्रकार आय की असमानता सामाजिक स्तरीकरण (social stratification) को जन्म देती है।

(३) असन्तुष्टि (Discontent)

आय की अधिक असमानताएँ धनी और निर्धनों के बीच खाई (gulf) उत्पन्न करती हैं, बहुसंख्यक निर्धनों में असन्तुष्टि उत्पन्न होता है। यह असन्तुष्टि आन्दोलकों (agitators) के लिए बारूद (ammunition) का काम करती है। हड़तालों तथा सामाजिक उथल-पुथल (social disorders) का एक मुख्य कारण असन्तुष्टि है जो कि आय की असमानता के कारण उत्पन्न होती है। आय की अधिक असमानताएँ अर्थात् गरीबी, साम्यवाद तथा अन्य क्रान्तिकारी आन्दोलनों के लिए उर्वरा भूमि (fertile land) की भाँति कार्य करती हैं।

(४) कल्याण या 'विशुद्ध मानसिक आय' में कमी (Loss in Welfare or in Net Psychic Income)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के क्रियाशील होने के कारण अत्यन्त धनी व्यक्तियों को एक सीमा के बाद बढ़ती हुई आय से घटती हुई उपयोगिता प्राप्त होती है, दूसरे शब्दों में, अपनी आवश्यक तथा आरामदायक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के बाद धनवान व्यक्ति अपनी आय में वृद्धि को विलासिता तथा अनावश्यक वस्तुओं (luxuries and frivolous commodities) पर अर्थात् कम उपयोगी वस्तुओं पर व्यय करते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि राष्ट्रीय आय को इस प्रकार से बाँटा जा सकता है कि जिससे अत्यन्त धनवान व्यक्तियों की आयों में कमी हो तथा अत्यन्त गरीब व्यक्तियों की आय में वृद्धि हो तो निर्धन व्यक्तियों की सन्तुष्टि या उनके कल्याण में वृद्धि बहुत अधिक होगी अपेक्षाकृत अत्यन्त धनी व्यक्तियों के कल्याण में कमी के। इस प्रकार समाज में कुल आर्थिक कल्याण या कुल वास्तविक सन्तुष्टि या विशुद्ध मानसिक आय (net psychic income) बढ़ेगा। दूसरे शब्दों में आय की असमान वितरण कल्याण अथवा 'विशुद्ध मानसिक आय' में कमी करता है।

(५) साधनों का अनुचित वितरण तथा सामाजिक क्षय (Misallocation of Resources and Social Waste)

आय की असमानता के कारण थोड़े से व्यक्तियों के पास अधिक धन होता है, इन धनी व्यक्तियों की क्रय-शक्ति (purchasing power) बहुत होती है और इनकी क्रय शक्ति ही समाज की प्रभावोत्पादक माँग (effective demand) का निर्धारित करती है। इसका अर्थ है कि उत्पादक *आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन अधिक करेंगे क्योंकि इनकी माँग अधिक* होगी जबकि कम आय वाले व्यक्तियों या निर्धन व्यक्तियों की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन कम होगा। दूसरे शब्दों में उत्पत्ति के साधन अधिक आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन से हटकर कम आवश्यक, विलासिता तथा अनुपयोगी (*frivolous*) वस्तुओं के उत्पादन में हस्तान्तरित हो जायेंगे। इस प्रकार आय की असमानता के कारण 'साधनों का अनुचित वितरण' होता है।

आय की असमानता के कारण साधनों का अनुचित वितरण होता है और आवश्यक तथा लाभदायक (useful) वस्तुओं के स्थान पर अनावश्यक तथा विलासिता की वस्तुओं का अधिक *उत्पादन होता है, इस प्रकार सामाजिक दृष्टि से आर्थिक साधनों का क्षय या बर्बादी (waste) होती* है। संक्षेप में,

Inequality of Income ——————→ Misallocation of Resources ——————→ Social Waste
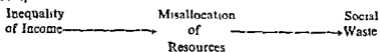
(६) उत्पादन शक्ति में कमी (Loss in Productive Power)

आयों की असमानता के कारण आर्थिक सीढ़ी के नीचे के सिरे पर अल्प पोषित (under-nourished), अभावपूर्ण ढंग से वस्त्र धारित (poorly clothed) तथा खराब मकानों में रहने वाले (improperly housed) निर्धन व्यक्तियों की उत्पादन-कुशलता बहुत कम होती है। निर्धनता के कारण बीमारी, शक्ति ह्रास (dissipation), व्यसन, (vice) तथा अपराध (crime) पनपते हैं, परिणामस्वरूप उत्पादन-शक्ति की और हानि होती है। आर्थिक सीढ़ी के ऊँचे सिरे पर अत्यन्त धनी व्यक्तियों की अतिरिक्त आय (surplus income) एक *बड़ी सीमा तक निष्क्रियता* (idleness), शक्ति-ह्रास (dissipation), खिन्नता (unhappiness) तथा चरित्रहीनता

(demoralization) के लिए उत्तरदायी है। धनी व्यक्तियों की सम्पत्ति उनके सम्बन्धों को एक पीढ़ी (generation) से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती जाती है परिणामस्वरूप उनके बच्चे प्रायः बिना कुछ किए अत्यधिक आराम की जिन्दगी व्यतीत करते हैं जिससे चरित्र तथा उत्पादन-शक्ति में गिरावट आती है।

स्पष्ट है कि आय की असमानताएं आर्थिक सीढ़ी के दोनों सिरों पर उत्पादन शक्ति में कमी करती हैं।

(७) बेरोजगारी तथा असुरक्षा (Unemployment and Insecurity)

आय की अधिक असमानता बेरोजगारी को जन्म देती है और परिणामस्वरूप सामान्य व्यक्तियों के लिए असुरक्षा उत्पन्न होती है। लार्ड केन्ज (J M Keynes) के अनुसार आयों में वृद्धि के साथ बचत की प्रवृत्ति विनियोग से अधिक होने की होती है दूसरे शब्दों में, उन्नतशील तथा विकसित दशा में अधिक बचत (over saving) तथा न्यून विनियोग (under investment) की प्रवृत्ति होती है। आयों की असमानता इस प्रवृत्ति को बढ़ाती है क्योंकि बचतों का अधिकांश भाग अत्यन्त धनवान व्यक्तियों की अतिरिक्त आयों (surplus incomes) से ही प्राप्त होता है। 'अधिक बचत तथा 'न्यून विनियोग का परिणाम होगा कि लोग कम व्यय करेंगे अर्थात् प्रभावोत्पादक मांग कम होगी, वस्तुओं का उत्पादन कम होगा और बेरोजगारी होगी। प्रो० बाल्डिंग (Boulding) ने यहां तक कहा है कि "केवल एक धनी समाज ही समाजवादी (equalitarian) होने की क्षमता रखता है। एक धनी समाज को आवश्यक रूप से समाजवादी होना चाहिए, नहीं तो उसकी धन-दौलत बेरोजगारी उत्पन्न करेगी।[1]

['अधिक-बचत तथा 'न्यून उपभोग (under-consumption) के लिए कान्ज ने एक उपाय आय की असमानताओं को कम करने का बताया इसके परिणामस्वरूप निर्धन व्यक्तियों की आय अधिक होगी 'अधिक बचत समाप्त होगी, निर्धन व्यक्ति अधिक धन व्यय करेंगे, कुल प्रभावोत्पादक मांग (effective demand) बढ़ेगी, वस्तुओं का उत्पादन बढ़ेगा और इस प्रकार बेरोजगारी समाप्त होगी।]

(८) आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण, राजनीतिक तथा सामाजिक असमानताएँ (Concentration of Economic Power, Political and Social Inequality)

आय की असमानता के कारण थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है, इसके कारण राजनीतिक तथा सामाजिक असमानताएं भी उत्पन्न होती हैं। प्रजातन्त्र में धनी व्यक्ति तथा निर्धन व्यक्ति दोनों को वोट देने का समान अधिकार होता है। इस प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टि से राजनीति में दोनों का समान प्रभाव होता है, परन्तु व्यवहार में एक धनी व्यक्ति, अपने धन के कारण, बहुत अधिक वोटों को प्रभावित कर सकता है। इसी प्रकार समाज में धनी व्यक्तियों की अधिक प्रतिष्ठा होती है। इस प्रकार आय की असमानताएं राजनीतिक तथा सामाजिक असमानताओं को जन्म देती है।

आय की असमानता के पक्ष में तर्क
(ARGUMENTS FOR INCOME INEQUALITY)

आय की असमानता के कुछ सामाजिक लाभ (social advantages) भी बताये जाते हैं। प्रायः आय की असमानता के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं

(१) उत्पादन कुशलता के लिए प्रेरणा (Incentive to Productive Efficiency)

आय की असमानता कार्य, उत्पादन तथा नव प्रवर्तन (innovation) के लिए प्रेरणा का कार्य करती है। अधिक आय प्राप्त करने की आशा ही व्यक्तियों को भरपूर प्रयत्न करने को प्रोत्साहित करती है। पुनः अधिक धन तथा आय प्राप्त करने की आशा ही साहसियों को बड़े जोखिम उठाने को प्रेरित (induce) करती है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि मानवीय समाज इस प्रकार से संगठित किया जा सकता है कि लोग बिना आय-उद्देश्य (income motive) के भी अपनी पूर्ण शक्ति से उत्पादन कार्य

[1] Boulding goes so far as to say, Only a rich society can afford to be equalitarian A rich society must be equalitarian or it will spill its riches in unemployment'

अधिकतम उत्पादन करने के लिए कोई प्रेरणा नहीं रह जाती क्योंकि उनको केवल अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति भर के लिए ही आय प्राप्त होगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाजवाद या साम्यवाद की स्थापना आय की असमानता की समस्या का कोई बहुत सन्तोषजनक हल नहीं है।

(II) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उदार उपाय
(MODERATE MEASURES UNDER CAPITALIST ECONOMY)

आर्थिक असमानता की समस्या को हल करने के लिए उपायों को बताते समय हमें केवल आय की असमानता के सामाजिक दोषों (social disadvantages) को ही नहीं बल्कि उसके सामाजिक लाभों (social advantages) को भी ध्यान म रखना चाहिए। आय की कुछ असमानताएँ—(i) उत्पादन कुशलता को प्रेरित (induce) करती हैं, (ii) व्यक्तिगत बचतों और पूंजी की वृद्धि में सहायक होती हैं, तथा (iii) *अर्थव्यवस्था की लोचशीलता (flexibility) और प्रगतिशील स्वभाव (progressive character) म योगदान देती है। अतः आयो की असमानताओं* को पूर्णतया समाप्त कर देना समस्या का कोई सन्तोषजनक हल नहीं होगा। **इस प्रकार वास्तविक समस्या आयों की असमानता को पूर्णतया समाप्त करना नहीं है बल्कि उनको उस न्यूनतम स्तर तक कम करना है जो कि समाज सहन कर सकता है।***

[प्रजातन्त्रात्मक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (democratic capitalist society) के अन्तर्गत *आय की असमानताओं को कम करने के लिये कार्यक्रम (programme) में एक महत्वपूर्ण कठिनाई* का सामना करना पड़ता है और वह है व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं (personal liberties) में कमी। एक प्रजातन्त्रात्मक समाज म व्यक्ति आय तथा व्यवसाय के चुनाव में स्वतन्त्र होते हैं, परिणामस्वरूप कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की तुलना म आगे निकल सकते हैं और अधिक धन प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु धन उसके स्वामी को शक्ति प्रदान करता है और जिनके पास शक्ति है वे कम या अधिक मात्रा में दूसरे के भाग्यों (destinies) को नियन्त्रित (control) करते हैं। यह बात उन लोगों की स्वतन्त्रता को सीमित करती है, जो कि नियन्त्रित होते हैं। अतः यह विरोधाभास (paradox) है कि स्वतन्त्रता असमानता को उत्पन्न करती है, तथा असमानता के कारण थोड़े-से व्यक्ति बहुत-से व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को कम कर देते हैं। इस कठिनाई या दुविधा (dilemma) से बचने के लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसा कार्यक्रम निर्धारित किया जाय जो कि प्रत्येक को अधिकतम मात्रा में स्वतन्त्रता की आज्ञा दे जब तक कि वह स्वतन्त्रता सामाजिक कल्याण के लिए प्रयोग की जाती है। परन्तु साथ ही कार्यक्रम ऐसा भी होना चाहिए जो कि धन के परिणामस्वरूप शक्ति में इतनी अधिक वृद्धि को सीमित करे जो कि कुछ भाग्यशाली व्यक्तियों को ऐसी स्थिति में रख सकती है कि वे अन्य सभी को आदेश दें। शक्तिशाली व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को दबाना चाहिए ताकि कमजोर व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की रक्षा की जा सके।]

आय की असमानता की समस्या को हल करने के लिए **'द्वि-दिशा आक्रमण'** (two-pronged attack) की आवश्यकता है।

(अ) अत्यधिक सम्पत्ति और आयों म कमी करना तथा ऐसी दशाओं को उत्पन्न करना कि थोड़े-से लोगों के पास अधिक सम्पत्ति एकत्रित न हो पाये, तथा

(ब) निम्नतम आयों (lowest incomes) म वृद्धि करना।

आक्रमण की इन दो रीतियों का नीचे विस्तृत विवरण दिया गया है।

(अ) अत्यधिक सम्पत्ति तथा आयों में कमी करके आय की असमानता को कम करना (To Reduce the Inequality of Incomes by Levelling down Excessively Large Wealth and Incomes)

इस सम्बन्ध में निम्न उपाय (measures) बताये जाते हैं

(१) **अनर्जित आयों** (unearned incomes) **पर ऊँचे टैक्स** लगाकर विशाल आयों को कम किया जा सकता है। (i) भूमियों के मूल्यों में वृद्धि होने से अनेक भूमिपति केवल भूमि पर अपने स्वामित्व के कारण ही विशाल आय प्राप्त करते हैं, इस प्रकार की आय तथा लगान को प्राप्त करने में उन्हें कोई प्रयत्न नहीं करने पड़ते। अतः इस प्रकार अर्जित लगानों (unearned

* Thus, the real problem is not to eradicate the inequality of incomes completely, but to reduce them to the minimum level which the society can bear

rents) पर सरकार को ऊँचे टैक्स लगाने चाहिए। (ii) इसी प्रकार अनार्जित व्यावसायिक लाभों (unearned business profits) पर भी सरकार को ऊँचे टैक्स या अतिरिक्त टैक्स (excess profit tax) लगाने चाहिए। एकाधिकारी लाभों में अनार्जित आय का एक बड़ा अंश होता है। अत सरकार को एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए प्रभावपूर्ण उपायों को अपनाना चाहिए। (iii) मूल्य में स्थिरता लाने के प्रयत्न करने चाहिए जिससे कि अत्यधिक लाभ (या हानि) न हो सके। (iv) अनुचित सट्टे तथा मिलावट इत्यादि अनुचित रीतियों द्वारा प्राप्त अधिक लाभों पर रोक लगानी चाहिए। इसलिए व्यावसायिक नैतिकता (business morality) को ऊँचा उठाने के लिए उचित प्रयत्न करने चाहिए तथा सरकार कानून बनाकर भी ऐसी कार्यवाहियों पर नियन्त्रण रख सकती है।

(२) धन सम्पत्ति के उत्तराधिकार (inheritance) पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इसके लिए उत्तराधिकार कर (inheritance tax) लगाना चाहिए ताकि—(i) इस कर द्वारा किसी व्यक्ति की मृत्यु पर सम्पत्ति का एक बड़ा भाग सरकार ले सके और थोड़ा भाग उत्तराधिकारियों को मिले, (ii) पीढ़ी दर पीढ़ी आय की असमानताओं का हस्तान्तरण न हो सके, (iii) बिना प्रयास आय प्राप्त करने वाला परजीवी वर्ग (parasitic class) न पनप पाये अर्थात् उत्तराधिकारियों के चरित्रों में गिरावट न होने पाये।

यदि उत्तराधिकारी टैक्स को असमानता को ठीक करने के प्रोग्राम के एक अंग के रूप में प्रयोग किया जाता है तो वह अधिक वर्द्धमान (steeply progressive) होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, टैक्स की दर तेजी के साथ बढ़नी चाहिए ताकि छोटी सम्पत्तियों (estates) से अपेक्षाकृत एक थोड़ा प्रतिशत तथा बड़ी सम्पत्तियों से एक ऊँचा प्रतिशत लिया जाय, अन्यथा बड़ी सम्पत्तियों को तोड़ने में इसका बहुत कम प्रभाव होगा। टैक्स की दरें वसीयत द्वारा दी गयी सम्पत्ति की मात्रा तथा उत्तराधिकारियों के सम्बन्धों की दूरी दोनों के साथ बढ़नी चाहिए।[1]

उत्तराधिकारी टैक्स तीन प्रकार से आय की असमानता को दूर करता है—(i) विशाल आयों में कमी होती है, (ii) निर्धन व्यक्तियों पर टैक्स भार कम पड़ता है क्योंकि धनी व्यक्तियों को ऊँचे टैक्स देने पड़ते हैं तथा (iii) टैक्स द्वारा प्राप्त आय में वृद्धि को सरकार निर्धन व्यक्तियों के लिए उपयोगी वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय कर सकती है।

उत्तराधिकारी टैक्स के विपक्ष में एक महत्त्वपूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि यह लोगों के अधिक उत्पादन करने तथा अधिक आय प्राप्त करने की प्रेरणा को कुण्ठित (blunt) करता है (क्योंकि अपने बच्चों के जीवन को सुखी बनाने तथा उनके लिए सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्रदान करने की इच्छा तथा अधिकार ही व्यक्तियों को अधिक मेहनत और उत्पादन के लिए प्रेरित करता है)। परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखने की बात है कि उत्तराधिकारी टैक्स का उद्देश्य उत्तराधिकारी के अधिकार को बिलकुल समाप्त करना या उसको बहुत अधिक सीमित करना नहीं होता, ऐसा केवल तब ही किया जायेगा जबकि किसी देश का उद्देश्य समाजवाद या साम्यवाद स्थापित करना है।

(३) आय-कर का लगाना अत्यन्त आवश्यक है ताकि वेतनों में अधिक अन्तर के कारण उत्पन्न आय की असमानताओं को कम किया जा सके, जबकि उत्तराधिकारी कर तो विशेष रूप से सम्पत्तियों में अन्तर के कारण उत्पन्न आय की असमानताओं को कम करता है। आय-कर की दर भी वर्द्धमान (progressive) होनी चाहिए ताकि अधिक आय वाले वर्ग को अधिक टैक्स देना पड़े और कम आय वाले वर्ग को कम टैक्स, एक निश्चित सीमा तक आयों को करों से मुक्त रखना चाहिए।

परन्तु आय-कर के सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखने की है—"आयों पर कर लगाना आय की असमानताओं के कारणों का नहीं बल्कि लक्षणों (symptoms) का इलाज करना है। कुछ अन्य उपायों की तुलना में यह कम आधारभूत सुधार है ..... । हमारा प्रयत्न विशाल आयों को उत्पन्न होने से रोकने का न कि उनको पूर्णतया नष्ट (confiscation) करने का होना चाहिए।"[2]

---

[1] "The rates should increase both with the size of the bequest and with distance of relationship of the heirs."

[2] "The taxation of incomes however, is treating the symptoms of inequality, and not the causes. It is a less fundamental reform than some of the other measures. We should endeavour to accomplish the prevention, rather than the confiscation, of large incomes."

(ब) निम्नतम आयों में वृद्धि करना (To Reduce the Inequality of Incomes by Levelling up the Lowest Incomes)

विशाल आयों में कमी करने के साथ-साथ यह अत्यन्त आवश्यक है कि निर्धन व्यक्तियों की आयों में वृद्धि की जाय। इसके लिए निम्न उपाय किये जाने चाहिए

(१) मजदूरी में वृद्धि (Raising of wages)—कम आयों का एक कारण कम मजदूरियाँ हैं, अतः मजदूरियों में वृद्धि करनी चाहिए। मजदूरियों में वृद्धि के निम्न उपाय अपनाये जा सकते हैं (i) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पारित करके सरकार मजदूरी की एक न्यूनतम सीमा से नीचे नहीं गिरने देती है, (ii) श्रम-संघ भी एक सीमा तक मजदूरी को बढ़ा सकते हैं।

(२) शिक्षा तथा प्रशिक्षण के प्रभाव (Influence of education and training)—(i) मजदूरों तथा अन्य निम्न आय वाले व्यक्तियों के बच्चों के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। अधिक-से-अधिक बच्चे शिक्षा ग्रहण कर सकें इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क दी जाय तथा उच्च शिक्षा के लिए सरकार अधिकतम वजीफे (scholarships) की व्यवस्था करे ताकि शिक्षा के फैलाव में वित्तीय कठिनाइयाँ न रहें। सामान्य शिक्षा के साथ निम्न आय वालों के लिए टेक्नीकल ट्रेनिंग की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा तथा टेक्नीकल ट्रेनिंग के अधिक फैलाव (diffusion) के कारण अवसरों की असमानताओं में कमी होगी, आर्थिक सीढ़ी पर चढ़ना सुगम होगा, व्यक्तियों की आयों में वृद्धि होगी।

(३) जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण—निम्न आय वाले व्यक्तियों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि (विशेषतया अविकसित देशों में) होती है जिससे कि आय का स्तर निम्न बना रहता है। अतः निम्न आयों में वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि निम्न आय वर्ग में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने तथा उसको एक अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए विस्तृत तथा प्रभावपूर्ण कार्यक्रम अपनाया जाये।

(४) सामाजिक सुधार (Social security)—बेरोजगारी, बीमारी, बुढ़ापा, दुर्घटना, इत्यादि मुसीबतों (misfortunes) के कारण भी निम्न आय वर्ग के व्यक्तियों में गरीबी बनी रहती है। अतः इनका सामना करने के लिए एक अच्छी तथा विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे निर्धन व्यक्तियों की आयों में वृद्धि होगी।

(५) सामाजिक सुधार (Social reforms)—मजदूरों तथा अन्य निम्न वर्ग के लोगों की आयों में सामाजिक सुधार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वृद्धि करते हैं। शहरों में गन्दी बस्तियों (slums) को समाप्त करके उनके रहने की उचित व्यवस्था करना, अच्छे स्वास्थ्य के लिए उचित चिकित्सा की व्यवस्था के साथ-साथ लोगों में सफाई (cleanliness) की आदतों को प्रोत्साहित करना, इत्यादि बातें मानसिक तथा शारीरिक दोनों दृष्टियों से निम्न आय वर्ग के व्यक्तियों को गुणात्मक दृष्टि से ऊँचा उठायेंगी और परिणामस्वरूप उन्हें अच्छे रोजगार प्राप्त हो सकेंगे।

इस प्रकार आय की असमानता की समस्या को हल करने के लिए दो दिशाओं से आक्रमण करना होगा (i) अधिक आयों को कम करना, तथा (ii) न्यून आयों को बढ़ाना। दूसरे शब्दों में ऐसी दशाओं को उत्पन्न करना है जिससे कि असमानता की प्रवृत्तियाँ पनप न पायें।

प्रश्न

१ आधुनिक समाज में आयों की असमानता की समस्या का विश्लेषण कीजिए तथा सुधार के उपाय बताइए।
Analyse the problem of Inequality of income in modern society and suggest remedies. *(Sagar)*

२ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानता के क्या कारण होते हैं? पूँजीवादी के अन्तर्गत आर्थिक असमानता की समस्या को कैसे हल किया जा सकता है?
What are the causes of economic inequality in a capitalist society? How can the problem of economic inequality be solved under capitalism?

३. धन तथा आय की असमानता के क्या हानिकारक परिणाम होते हैं? इन असमानताओं को कम करने के उपायों की विवेचना कीजिए।

४. "एक पीढ़ी में आय की असमानता केवल स्वयं में ही बुराई नहीं है बल्कि वह दूसरी पीढ़ी में भी असमानता का कारण होती है।" विवेचना कीजिए।

कुल लाभ (Gross Profit)

एक उत्पादक या फर्म को कुल आगम[1] (total revenue) में से क्रय किये गये (purchased or hired) उत्पत्ति के साधनों (अर्थात् श्रम, पूंजी, भूमि तथा प्रबन्ध) के पुरस्कारों तथा घिसाई व्यय (depreciation cost) को निकाल देने के बाद जो शेष बचता है उसे 'कुल लाभ' कहा जाता है। [अर्थशास्त्रियों के इस 'कुल लाभ' को साधारण बोलचाल में 'लाभ' या 'व्यावसायिक लाभ' या 'एकाउण्टेण्ट का लाभ' (accountant's profit) भी कहते हैं। चूंकि यह अवशिष्ट राशि (residual amount) होती है इसलिए इसे 'एकाउण्टेण्ट का अवशेष' (accountant's residual) भी कहते हैं।]

कुल लाभ की उपर्युक्त परिभाषा के सम्बन्ध में 'क्रय किये गये उत्पत्ति के साधन' एक महत्त्वपूर्ण शब्द है। जब साहसी 'श्रम', 'पूंजी', 'भूमि' तथा 'प्रबन्ध' के साधनों का क्रय करता है और उनके लिए स्पष्ट रूप से पुरस्कार देता है जो कि साहसी के लिए लागत हैं, तो इनको 'स्पष्ट लागतें' (explicit costs) कहते हैं, चूंकि साहसी ये पुरस्कार (अर्थात् लागतें) साधनों को उनके साथ अनुबन्ध (contract) के अनुसार देता है इसलिए 'इन्हें अनुबन्ध सम्बन्धी लागतें' (contractual costs) भी कहा जाता है। यदि साहसी बाहर से उत्पत्ति के साधनों को नहीं खरीदता है बल्कि स्वयं अपने साधन जैसे अपनी पूंजी, अपनी भूमि, तथा देखभाल, निर्देशन और प्रबन्ध के रूप में अपना श्रम देता है, तो वास्तव में साहसी को बाजार दर पर अपने इन साधनों के पुरस्कार मिलने चाहिए और ये उनकी उत्पादन लागत के अंग होने चाहिए क्योंकि वह अपने साधनों को अन्य व्यवसाय में लगाकर उनसे पुरस्कार प्राप्त कर सकता था। साहसी को अपने व्यवसाय में लगाये गये अपने साधनों के लिए जो पुरस्कार मिलना चाहिए उन्हें अर्थशास्त्री 'अस्पष्ट लागतें' (implicit costs) या 'अध्यारोपित लागतें' (imputed costs) कहते हैं।

'स्पष्ट लागतों' तथा 'अस्पष्ट लागतों' के विचारों को ध्यान में रखने से 'कुल लाभ' तथा 'आर्थिक लाभ' के अर्थों को सुगमता से समझा जा सकता है। कुल आगम में से केवल 'स्पष्ट लागतों' को निकाल देने से जो बचता है उसे 'कुल लाभ' कहा जाता है। कुल आगम में से 'स्पष्ट लागतों' तथा 'अस्पष्ट लागतों' दोनों को निकाल देने से जो बचता है उसे 'आर्थिक लाभ' या 'विशुद्ध लाभ' कहते हैं। संक्षेप में,

कुल लाभ = कुल आगम — स्पष्ट लागतें

तथा, आर्थिक लाभ = कुल आगम — स्पष्ट लागतें — अस्पष्ट लागतें

'कुल आगम — स्पष्ट लागतें' के स्थान पर 'कुल लाभ' लिखा जा सकता है;

इसलिए, आर्थिक लाभ = कुल लाभ — अस्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ धनात्मक (positive) भी हो सकता है तथा ऋणात्मक (negative) भी। आर्थिक लाभ धनात्मक होता है जबकि 'कुल आगम' 'कुल स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों' से अधिक होता है, आर्थिक लाभ ऋणात्मक होता है जबकि 'कुल आगम', 'कुल स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों' से कम होता है। लाभ ही एक ऐसा साधन-पुरस्कार (factor income) है जो ऋणात्मक हो सकता है।

कुल लाभ के अंग (Constituents of gross profit) निम्नलिखित हैं :

(१) आर्थिक लाभ (Economic profit), इसका अर्थ है—(i) नव-प्रवर्तन के लिए पुरस्कार, नयी उत्पादन रीति, नयी वस्तु या वस्तु-विभिन्नता (product-differentiation) इत्यादि

---

[1] अपनी वस्तु को बेचने से जो कुल विक्रय राशि (sale proceeds) उत्पादक को मिलती है उसे 'कुल आगम' कहते हैं।

के कारण लाभ, (ii) जोखिमों तथा अनिश्चितताओं के उठाने का पुरस्कार, (iii) साहसी के अपने उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार[5] अर्थात् 'अस्पष्ट लागतें'।

(२) स्पष्ट लागतें (Explicit costs) अर्थात् उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार, घिसाई व्यय, बीमा व्यय, इत्यादि।

(३) 'एकाधिकारी लाभ' (Monopoly profit), जब कोई उत्पादक अपने क्षेत्र में अकेला उत्पादक है तथा अपनी वस्तु की पूर्ति पर उसका नियन्त्रण है तो वह अतिरिक्त आय (extra income) प्राप्त करता है और यह एकाधिकारी लाभ 'कुल लाभ' का अंग होता है।

(४) अप्रत्याशित आय (Windfall income), युद्ध, फैशन में परिवर्तन, इत्यादि के कारण एकाएक कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप जो लाभ प्राप्त होते हैं उन्हें 'अप्रत्याशित लाभ' कहा जाता है और ये 'कुल लाभ' के अंग होते हैं परन्तु 'अप्रत्याशित लाभ' अस्थायी तथा बहुत थोड़े समय के लिए होते हैं।

लाभ की प्रभेदक विशेषताएं (Distinguishing Features of Profit)

लाभ अन्य साधनों की आयों से निम्न बातों में भिन्न है

(१) लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है जबकि मजदूरी, लगान या ब्याज कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकती। ऋणात्मक लाभ का अर्थ है हानि।

(२) लाभ में अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक उतार-चढ़ाव (fluctuations) होते हैं तेजी या मन्दी (prosperity and depression) के समयों में मजदूरी, लगान या ब्याज में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होते हैं। वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ में बहुत उतार-चढ़ाव होते हैं।

(३) लाभ के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि लाभ, अन्य साधनों की आयों की भांति 'अनुबन्ध की आय' (contractual income) नहीं होते जो कि पहले से निर्धारित की गयी हो, लाभ तो एक 'अनिश्चित अवशिष्ट' (uncertain residual) है जो भूमि, श्रम तथा पूंजी की अनुबन्ध सम्बन्धी आय देने के बाद बचता है।

लाभ के सिद्धान्त
(THEORIES OF PROFIT)

लाभ किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा उसका किस प्रकार उत्पन्न या निर्धारण होता है इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। अर्थशास्त्रियों द्वारा लाभ के अनेक सिद्धान्त दिये गये हैं। नीचे हम लाभ के मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना करते हैं।

१ लाभ का लगान सिद्धान्त
(RENT THEORY OF PROFIT)

लाभ के लगान सिद्धान्त का पूर्ण विकास अमरीका के अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने किया। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ योग्यता का लगान (rent of ability) है। योग्य साहसी कम योग्य साहसियों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त करते हैं।

यह सिद्धान्त रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की भांति है। रिकार्डो के अनुसार भूमियाँ विभिन्न श्रेणियों की होती हैं, समय विशेष में जोती जाने वाली भूमियों में सबसे निम्न कोटि की भूमि (अर्थात् जिसकी उत्पादन लागत सबसे अधिक होती है) सीमान्त भूमि कही जाती है। बाजार में मूल्य इस सीमान्त भूमि की लागत के बराबर निर्धारित होता है और इसे कोई लगान प्राप्त नहीं होता। श्रेष्ठ भूमियों अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' (intra-marginal lands) की लागत कम

[5] साहसी के अपने व्यवसाय में अपनी पूंजी पर ब्याज को अर्थशास्त्री 'अस्पष्ट ब्याज' (implicit interest) या 'अध्यारोपित ब्याज' (imputed interest) कहते हैं। इसी प्रकार साहसी की अपनी भूमि के लगान को 'अस्पष्ट लगान' या 'अध्यारोपित लगान' कहते हैं। जब साहसी स्वयं अपने व्यवसाय की देखभाल तथा निर्देशन (management and direction) करता है तो इसे 'प्रबन्ध की मजदूरी' (wages of management) कहते हैं।

होती है और इससे सीमान्त भूमि की लागत की तुलना में बचत या लगान प्राप्त होती है। इसी प्रकार 'लाभ के लगान सिद्धान्त' के अनुसार साहसियों की योग्यताओं में अन्तर होता है, श्रेष्ठ साहसियों को सीमान्त साहसी की तुलना में बचत अर्थात् लाभ प्राप्त होता है। सीमान्त साहसी वह साहसी है जो कि अपनी वस्तु को बाजार में बेचकर केवल अपनी लागत (इस लागत में साहसी के अपने साधनों की लागत भी आ जाती है) का ही निकाल पाता है और उसे कोई लाभ नहीं मिलता। श्रेष्ठ साहसी अर्थात् 'पूर्व सीमान्त साहसी' (intra marginal entrepreneurs) कम लागत पर वस्तु उत्पादित करते हैं और कीमत तथा लागत के अन्तर के कारण लाभ प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ साहसियों के लाभ की मात्रा उनकी योग्यता की मात्रा पर निर्भर करती है। इस प्रकार लाभ, लगान की भाँति, एक भेदात्मक बचत (differential surplus) है।

चूँकि लाभ एक बचत है इसलिए लगान की भाँति वह मूल्य को निर्धारित नहीं करता बल्कि मूल्य द्वारा निर्धारित होता है। यदि वस्तु का मूल्य अधिक होगा तो लाभ अधिक होगा तथा मूल्य कम होने पर लाभ कम होगा।

परन्तु लाभ तथा लगान में एक मुख्य भेद भी है। लगान एक स्थायी आय है क्योंकि भूमि की पूर्ति, प्रकृति का उपहार होने के कारण अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में स्थिर होती है और लगान दीर्घकाल में भी रहता है। परन्तु साहसियों की पूर्ति दीर्घकाल में बढ़ायी जा सकती है। दीर्घकाल में साहसियों की पूर्ति बढ़ने से उत्पादन बढ़ेगा, कीमत गिरेगी तथा लाभ कम होंगे। इस प्रकार विशुद्ध लाभ कम होते जायेंगे और शून्य हो जायेंगे। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में साहसी केवल अपने निरीक्षण की मजदूरी (wages of supervision) तथा अपने साधनों के पुरस्कार प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में भी वे लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

लाभ के लगान सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं

(१) यह सिद्धान्त लाभ के निर्धारण में जोखिम तथा अनिश्चितता (risk and uncertainty) के तत्वों की उपेक्षा करता है। लाभ योग्यता का लगान नहीं बल्कि जोखिम तथा अनिश्चितता का प्रतिफल होता है।

वर्तमान संयुक्त पूंजी कम्पनी संगठन के अन्तर्गत लाभ के वितरण की रीति से यह स्पष्ट है कि लाभ योग्यता का लगान नहीं होता। उन अंशधारियों (shareholders) को अधिक लाभ मिलेगा जिन्होंने अधिक पूंजी लगाकर अधिक अंश (shares) खरीदे हैं चाहे वे अधिक योग्य हों या कम योग्य। इस प्रकार लाभ का सम्बन्ध अंशधारियों व साहसियों की योग्यता से नहीं होता है।

(२) यह सिद्धान्त लाभ के कारण पर उचित प्रकाश नहीं डालता, यह केवल सामान्य तथ्य को बताता है कि अधिक योग्य साहसी कम योग्य साहसियों की तुलना में अधिक आय या लाभ प्राप्त करते हैं।

(३) इस सिद्धान्त की यह धारणा उचित नहीं है कि लाभ कीमत को प्रभावित नहीं करता। सामान्य लाभ लागत का अंश होता है और कीमत को प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में, 'लाभ का लगान सिद्धान्त' 'सामान्य लाभ' तथा 'लाभ' में अन्तर नहीं करता।

(४) यह सिद्धान्त लगान तथा लाभ में बहुत अधिक समानता स्थापित करता है जो कि उचित नहीं है क्योंकि -

(i) लगान एक निश्चित तथा प्रत्याशित (expected) आय है जबकि लाभ एक अनिश्चित तथा अप्रत्याशित (unexpected) आय है। लागत के ऊपर बचत जब निश्चित तथा ज्ञात होती है तो वह लगान है और जब लागत के ऊपर बचत अनिश्चित तथा अज्ञात होती है तो वह लाभ है।

(ii) लगान सदैव धनात्मक (positive) होता है, अधिक से अधिक वह शून्य (zero) हो

सकता है, इसके विपरीत लाभ धनात्मक तथा ऋणात्मक (negative) दोनों हो सकता है। ऋणात्मक लाभ का अर्थ है हानि।

(iii) लाभ प्रावैगिक अर्थव्यवस्था (dynamic economy) में ही उत्पन्न होता है, वह स्थिर (static) अवस्था में नहीं होता क्योंकि स्थिर अर्थव्यवस्था में कोई अनिश्चितता नहीं होती। इसके विपरीत लगान स्थिर तथा प्रावैगिक दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं में पाया जाता है।

२. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
(WAGE THEORY OF PROFIT)

टाउसिग (Taussig) तथा डेवनपोर्ट (Devenport) इस सिद्धान्त के मुख्य समर्थक हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ मजदूरी का ही एक रूप (form) है। लाभ केवल संयोग (chance) के कारण नहीं होता है। लाभ तथा निरन्तर सफलता के लिए कुछ विशेष गुणों, जैसे संगठन की कुशलता और योग्यता जोखिमों का सामना करने की निपुणता (shrewdness), इत्यादि की आवश्यकता है, लाभ इन गुणों का पुरस्कार है अर्थात् लाभ इन गुणों की मजदूरी है।

लाभ के 'मजदूरी के विशिष्ट रूप' होने के कारण इस प्रकार हैं—(i) साहसी का कार्य श्रम का ही रूप है वह शारीरिक श्रम न होकर 'मानसिक श्रम' है तथा एक विशिष्ट प्रकार का श्रम है जिसके लिए मानसिक कुशलता तथा योग्यता के गुणों की आवश्यकता है। डाक्टर, वकील, अध्यापक, इत्यादि अपने मानसिक गुणों के कारण आय प्राप्त करते हैं जिसे मजदूरी (या वेतन) कहा जाता है। साहसी की आय भी उसके मानसिक गुणों का परिणाम है और इसलिए उसकी आय अर्थात् लाभ को भी मजदूरी कहना चाहिए। (ii) प्राय वेतन प्राप्त करने वाले मैनेजर, निरीक्षक इत्यादि स्वतन्त्र व्यवसायी या साहसी (independent businessmen or entrepreneurs) में परिवर्तित हो जाते हैं तथा कभी-कभी स्वतन्त्र व्यवसायी या साहसी ऊँचे वेतन प्राप्त करने वाले मैनेजरों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार इन लोगों के श्रम में कोई अन्तर नहीं है, और साहसी के श्रम का पुरस्कार अर्थात् लाभ मजदूरी का ही एक रूप है।

लाभ के मजदूरी सिद्धान्त की आलोचना

यद्यपि यह सिद्धान्त लाभ के स्वभाव तथा लाभ के औचित्य (justification) पर प्रकाश डालता है परन्तु यह दोषपूर्ण है। इस सिद्धान्त का मुख्य दोष यह है कि यह लाभ तथा मजदूरी के वास्तविक अन्तर पर ध्यान नहीं देता।

लाभ तथा मजदूरी में निम्न मुख्य अन्तर हैं जिनकी 'लाभ का मजदूरी सिद्धान्त' उपेक्षा करता है

(१) साहसी का मुख्य कार्य जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को झेलना होता है, जबकि मजदूरी तथा वेतन प्राप्त करने वालों को किसी खतरे का सामना नहीं करना पड़ता, केवल साधारण खतरों (जैसे नौकरी छूट जाने का डर) का सामना करना पड़ता है। साहसी के खतरे, संख्या तथा तीव्रता दोनों में, बहुत अधिक होते हैं।

(२) लाभ में संयोग का तत्व (chance element) अधिक होता है जबकि मजदूरी में वास्तविक प्रयत्नों की आय का भाग अधिक होता है।

(३) लाभ प्राय अपूर्ण प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप बढ़ता है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी की प्रवृत्ति कम होने की होती है और वह श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता से कम होती है।

स्पष्ट है कि लाभ तथा मजदूरी को पृथक रखना उचित और वैज्ञानिक है।

३. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ साहसी की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue productivity) के द्वारा निर्धारित होता है। साहसी अर्थात् साहसी की योग्यता उत्पत्ति का एक साधन है, इसलिए अन्य उत्पत्ति के साधनों की भाँति, उसकी

कीमत अर्थात् लाभ उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करेगा। जिन उद्योगों में साहसी की पूर्ति कम है और इसलिए उनकी उत्पादकता अधिक है तो वहाँ साहसी की कीमत अर्थात् लाभ अधिक होगा। जिन उद्योगों में साहसी की पूर्ति अधिक है और इसलिए उनकी सीमान्त उत्पादकता कम है तो वहाँ लाभ कम होगा।

लाभ के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

(१) साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता :

(i) एक फर्म या एक उपक्रम में एक ही साहसी हो सकता है और इसलिए साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता।

(ii) एक उद्योग में एक अतिरिक्त साहसी के प्रयोग से उद्योग के कुल उत्पादन में वृद्धि मालूम करके सैद्धान्तिक दृष्टि से, साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि—प्रथम, सब साहसी कुशल नहीं होते, तथा दूसरे, एक साहसी की वृद्धि (या कमी) से उद्योग के कुल उत्पादन में वृद्धि (या कमी) साहसी की सीमान्त उत्पादकता का सही माप नहीं है। अतः एक उद्योग में भी साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं किया जा सकता।

(iii) यह सिद्धान्त एकाधिकारी लाभ की व्याख्या नहीं कर सकता क्योंकि एकाधिकार एक उत्पादक होता है और इसलिए उत्पादक की संख्या में एक इकाई से वृद्धि या कमी करके सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता।

(२) यह सिद्धान्त अप्रत्याशित लाभों (windfall profits) की व्याख्या नहीं कर सकता क्योंकि इस प्रकार के लाभ केवल संयोग (chance) पर निर्भर करते हैं और उनका साहसी की सीमान्त उत्पादकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

४ लाभ का समाजवादी सिद्धान्त
(THE SOCIALIST THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक कार्ल मार्क्स (Karl Marx) हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसमें लगाये गये श्रम द्वारा निर्धारित होता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिकों द्वारा कुल उत्पादन का एक बहुत थोड़ा भाग श्रमिकों को उनके पुरस्कार के रूप में दिया जाता है और उसका अधिकांश भाग, जिसको कार्ल मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य (surplus value) कहा, को पूँजीपति लाभ के रूप में स्वयं हड़प जाता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ प्राप्त होने का मुख्य कारण श्रमिकों का शोषण है अर्थात् साहसी द्वारा श्रमिकों के पुरस्कार का अपहरण है। मार्क्स ने इसे कानूनी डाका (legalised robbery) कहा है। मार्क्स ने लाभ को समाप्त करने का सुझाव दिया क्योंकि इसके कारण श्रमिकों का शोषण होता है।

आलोचना

(१) लाभ श्रमिकों के शोषण का परिणाम नहीं होता। लाभ साहसी की योग्यता पर निर्भर करता है, लाभ साहसी के जोखिमों तथा अनिश्चितताओं के उठाने की योग्यता का प्रतिफल है।

(२) वस्तु के मूल्य का एकमात्र कारण श्रम नहीं होता है। उत्पत्ति के अन्य साधन (पूँजी, प्रबन्ध, साहसी, इत्यादि) भी वस्तु के उत्पादन में महत्त्वपूर्ण सहयोग देते हैं। साहसी की सेवाओं की उपेक्षा करना उचित नहीं है। लाभ को 'कानूनी डाका' कहना सर्वथा अनुचित है।

(३) समाजवादी देश भी लाभ को पूर्णतया समाप्त नहीं कर पाये हैं। समाजवादी देशों में लाभ प्राप्त करने वाले निजी उत्पादक नहीं होते और इसलिए उनके द्वारा लाभ प्राप्त करने का प्रश्न नहीं उठता, परन्तु सरकार लाभ प्राप्त करती है।

५ लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त
(DYNAMIC THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जे० बी० क्लार्क (J B Clark) हैं। क्लार्क के अनुसार मूल्य तथा लागत में अन्तर है। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ परिवर्तनों का परिणाम है

यह केवल प्रावैगिक अर्थव्यवस्था (dynamic economy) में उत्पन्न होता है, स्थिर अर्थव्यवस्था (static economy) में नहीं।

क्लार्क के अनुसार, प्रावैगिक अर्थव्यवस्था वह है जिसमें निम्न पाँच प्रकार के आधारभूत परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं—(i) जनसंख्या में परिवर्तन, (ii) पूंजी की मात्रा में परिवर्तन, (iii) उपभोक्ताओं की रुचियों *अधिमानों तथा आवश्यकताओं में परिवर्तन,* (iv) *उत्पादन की* रीतियों में सुधार, तथा (v) औद्योगिक इकाइयों (Industrial establishment) के रूपों में परिवर्तन होते रहते हैं जिससे कि अकुशल उत्पादक हट जाते हैं और कुशल उत्पादक जीवित रहते हैं।

प्रावैगिक समाज में ये आधारभूत परिवर्तन मूल्य तथा कीमत में अन्तर उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार लाभ उत्पन्न हो जाता है। अतः लाभ प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में ही सम्भव है।

एक स्थिर अर्थव्यवस्था में लाभ सम्भव नहीं होता। स्थिर अर्थव्यवस्था वह है जिसमें उपयुक्त पाँचों प्रकार के आधारभूत परिवर्तनों की पूर्ण अनुपस्थिति होती है। परिवर्तनों की पूर्ण अनुपस्थिति में आर्थिक भविष्य स्पष्ट दिखायी देने वाला (foreseeable) होता है और आर्थिक *अनिश्चितताएँ नहीं होतीं, परिणामस्वरूप, कीमत तथा लागत में कोई अन्तर नहीं रहता* और इसलिए कोई लाभ नहीं होता। यदि पूर्ण प्रतियोगिता तथा स्थिर अवस्था की प्रारम्भिक स्थिति में *कुल लाभ (या नुकसान) होता भी है तो वह नयी फर्मों के प्रवेश (या बहिर्गमन) से दीर्घकाल में* समाप्त हो जाता है। स्थिर अर्थव्यवस्था में साहसी का कार्य केवल सामान्य निरीक्षण या प्रबन्ध (routine supervision or management) का ही रह जाता है। अतः स्थिर अर्थव्यवस्था में साहसी को केवल 'प्रबन्ध की मजदूरी' तथा अपने उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार ही प्राप्त हो पाता है, कोई लाभ नहीं।

अतः इस सिद्धान्त के अनुसार स्थिर अर्थव्यवस्था में कोई लाभ प्राप्त नहीं होता, लाभ परिवर्तनों का परिणाम है और वह केवल प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में ही सम्भव है।

आलोचना

(१) प्रो० नाइट (Knight) के अनुसार सभी प्रकार के प्रावैगिक परिवर्तन लाभ को उत्पन्न नहीं करते। कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनको पहले से जाना जा सकता है और उनका बीमा कराया जा सकता है इस प्रकार ऐसे परिवर्तनों के वित्तीय परिणामों को लागत में शामिल कर लिया जाता है। इस प्रकार के परिवर्तन लाभ को जन्म नहीं देते हैं। दूसरी प्रकार के परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनको पहले से जाना नहीं जा सकता और वे *अनिश्चित होते हैं तथा लाभ को उत्पन्न* करते हैं। इस प्रकार लाभ केवल अनिश्चित प्रावैगिक परिवर्तनों (uncertain dynamic changes) के परिणाम होते हैं न कि सभी प्रकार के परिवर्तनों के परिणाम।

(२) वास्तविक अर्थव्यवस्था सदैव प्रावैगिक है, लाभ प्रावैगिक परिवर्तन के परिणाम है, इस कथन का अभिप्राय हुआ कि वास्तविक अर्थव्यवस्था में लाभ पहले से ही मौजूद रहते हैं, ऐसा नहीं होता।

(३) यह सिद्धान्त इस बात पर भी ध्यान नहीं देता कि लाभ साहसी के 'जोखिम उठाने की योग्यता का पुरस्कार है।

लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त
(INNOVATION THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक शुम्पीटर (Schumpeter) है। यह सिद्धान्त क्लार्क के 'लाभ के प्रावैगिक सिद्धान्त' से मिलता जुलता है। क्लार्क की भाँति शुम्पीटर भी प्रावैगिक या गत्यात्मक परिवर्तनों (dynamic changes) को लाभ का कारण मानते हैं। परन्तु वह क्लार्क के पाँच आधारभूत परिवर्तनों के स्थान पर लाभ की व्याख्या आविष्कारों या नव प्रवर्तनों के शब्दों में करते हैं।

क्लार्क के 'उत्पादन की रीतियों में सुधार के विचार' की तुलना में शुम्पीटर का 'नव-प्रवर्तन का विचार' या 'उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन का विचार' (the concept of changes

in the productive process) अधिक व्यापक है। किसी भी नयी मशीन का प्रयोग, वस्तु की किस्म में परिवर्तन, कच्चे माल के नये स्रोतों का प्रयोग, वस्तु के नये बाजार में विक्रय, वस्तु के वितरण तथा विक्रय की नयी रीतियाँ, इत्यादि नव-परिवर्तन के विभिन्न रूप हो सकते हैं। 'उत्पादन-प्रक्रिया' में ये विभिन्न प्रकार के परिवर्तन अर्थात् 'नव प्रवर्तन' लागत को कम करते हैं तथा कीमत और लागत में अन्तर उत्पन्न करके लाभ उत्पन्न करते हैं।

शुम्पीटर के अनुसार लाभ नव-प्रवर्तन के कारण तथा परिणाम दोनों हैं। नव-प्रवर्तन के कारण कीमत तथा लागत में अन्तर उत्पन्न होता है और इस प्रकार लाभ उत्पन्न होता है, परन्तु लाभ को प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होकर ही साहसी नव-प्रवर्तन को प्रयोग में लाता है, अतः लाभ नव-प्रवर्तन को प्रभावित करता है। इस प्रकार नव-प्रवर्तन तथा लाभ एक-दूसरे को प्रभावित करते है, अर्थात् लाभ नव-प्रवर्तन के कारण तथा परिणाम दोनों हैं।

लाभ नव-प्रवर्तन द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा अनुकरण द्वारा लुप्त होते हैं (Profits are caused by innovation and disappear by imitation)। जब कोई साहसी किसी सफल नव-प्रवर्तन को प्रयोग में लाता है तो उसे लाभ प्राप्त होता है। इस लाभ से आकर्षित होकर अन्य साहसी उस नव-प्रवर्तन का अनुकरण (imitation) करते हैं और धीरे-धीरे लाभ लुप्त या समाप्त हो जाते हैं क्योंकि कुछ समय बाद नव-प्रवर्तन में कोई नवीनता नहीं रह जाती है। इस लिए यह कहा जाता है कि लाभ नव-प्रवर्तन द्वारा उत्पन्न होते हैं और अनुकरण द्वारा लुप्त होते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में एक बात यह ध्यान रखने की है कि जब तक प्रतियोगी उत्पादक एक सुधरी रीति का अनुकरण तथा प्रयोग करते हैं तब तक एक कुशल साहसी किसी दूसरे नव-प्रवर्तन का प्रयोग करने में सफल हो जाता है। इस प्रकार गतिशील तथा प्रगतिशील (dynamic and progressive) अर्थव्यवस्था में **'नव-प्रवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ'** (innovational profits) **सदैव रहते हैं क्योंकि पुराने नव-प्रवर्तकों (old innovators) के स्थान पर नवीन नव-प्रवर्तकों का प्रतिस्थापन होता रहता है।**

नव-प्रवर्तन के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान रखने की है। लाभ उसको प्राप्त नहीं होते जो कि किसी नव-प्रवर्तन के विचार को प्रस्तुत करता है या जो उसके लिए वित्तीय सहायता देता है *बल्कि लाभ उनको प्राप्त होते हैं जो कि नव-प्रवर्तन को प्रयोग करते हैं।*

शुम्पीटर के अनुसार लाभ जोखिम-उठाने (risk bearing) का पुरस्कार नहीं है, लाभ तो नव प्रवर्तन का परिणाम है। परन्तु यदि गहराई से देखा जाय तो **नव-प्रवर्तन जोखिम उठाने का ही एक विशिष्ट रूप है।** लाभ कमाने के उद्देश्यों से नव प्रवर्तनों के प्रयोग अनिश्चितता को उसी प्रकार से उत्पन्न करते हैं जिस प्रकार कि आर्थिक वातावरण में वे परिवर्तन अनिश्चितता उत्पन्न करते हैं जिस पर कि व्यक्तिगत उपक्रम का कोई नियन्त्रण नहीं होता। अतः एक अर्थ में, लाभों के स्रोत (source) के रूप में, नव प्रवर्तन जोखिम उठाने का ही एक विशिष्ट रूप है।[6]

आलोचना

इस सिद्धान्त की लगभग वे ही आलोचनाएँ की जाती हैं जो कि क्लार्क के लाभ के प्रावैगिक सिद्धान्त की हैं। नव-प्रवर्तन सिद्धान्त की मुख्य आलोचना है कि यह लाभ निर्धारण में जोखिम तथा अनिश्चितता की उपेक्षा करता है।

लाभ का जोखिम सिद्धान्त
(THE RISK THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हॉले (Hawely) हैं। इस सिद्धान्त का पूर्ण विवरण हॉले ने अपनी पुस्तक 'Enterprise and Productive Process' (1907) में दिया है। मार्शल ने इस सिद्धान्त को अपना समर्थन प्रदान किया।

---

6 "Innovations purposely undertaken by entrepreneurs entail uncertainty, just as do those changes in the economic environment over which an individual enterprise has no control. In a sense, then innovation as a source of profits is merely a special case of riskbearing."

इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है। आधुनिक युग में एक उत्पादक या साहसी भविष्य की मांग के आधार पर अपनी वस्तु का उत्पादन करता है। यदि मांग, लागत, कीमत, इत्यादि के अनुमान ठीक निकलते हैं तो साहसी को लाभ होता है अन्यथा हानि। इस प्रकार किसी वस्तु के उत्पादन में जोखिम होती है। कोई भी साहसी उत्पादन का कार्य नहीं करेगा जब तक कि उसे जोखिम को उठाने के लिए कुछ पुरस्कार की आशा न हो। अत जोखिम उठाना साहसी का एक विशिष्ट कार्य (special function) है और लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है।

जोखिम व्यवसायों मे साहसियों के प्रवेश म रुकावट पैदा करता है। इस प्रकार जोखिम पूर्ण व्यवसायो मे साहसियो की पूर्ति कम या सीमित रहती है और जो जोखिम उठाने हैं और जीवित रहते हैं व साहसी अतिरिक्त लाभ अर्जित करते हैं क्योंकि साहसियों की पूर्ति सीमित रहती है।

विभिन्न उद्योगो मे जोखिम की मात्रा में अन्तर होता है, इसलिए साहसियो के लाभो मे भी अन्तर होता है। जिन व्यवसायो मे अधिक जोखिम होता है उनमे लाभ की मात्रा अधिक होगी और जिनमे जोखिम कम होता है उनमे लाभ कम होगा। एक उद्योग मे विभिन्न साहसी जोखिम की विभिन्न मात्रा उठाते हैं और इसीलिए उनके लाभो मे अन्तर होता है।

आलोचना

(१) यद्यपि लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है, परन्तु लाभ केवल जोखिम उठाने का ही पुरस्कार नही है। नव प्रवर्तन, साहसी के प्रबन्ध की श्रेष्ठ योग्यता, एकाधिकारी स्थिति, इत्यादि भी लाभ को उत्पन्न करते हैं।

कुछ व्यक्ति मनोवैज्ञानिक कारणों (psychological factors) से अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करना चाहते हैं चाहे उन्हे कम आय प्राप्त हो, वे किसी के अधीन रहकर कार्य नही करना चाहते। ऐसे व्यक्तियो या साहसियों के लिए जोखिम उठाने की बात द्वितीय स्थान रखती है, दूसरे शब्दों मे, ऐसे व्यक्तियो के लाभ को जोखिम उठाने के शब्दो मे व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार लाभ केवल जोखिम उठाने का ही पुरस्कार नहीं है।

(२) कार्वर (Carver) के अनुसार लाभ जोखिम उठाने के कारण उत्पन्न नही होते बल्कि वे इसलिए उत्पन्न होते हैं क्योंकि श्रेष्ठ साहसी जोखिम को कम कर सकते हैं। अत विरोधाभास-पूर्ण तरीके से (paradoxically) यह कहा जा सकता है कि व्यवसायी लाभ इसलिए प्राप्त नही करते कि वे जोखिम उठाते हैं बल्कि वे लाभ इसलिए प्राप्त करते हैं कि वे कुछ जोखिम को नही उठाते हैं।[7]

(३) प्रो० नाईट के अनुसार सभी प्रकार के जोखिम लाभो को उत्पन्न नही करते। कुछ जोखिमो (जैसे आग, चोरी, दुर्घटना, बाढ, इत्यादि) का अनुमान लगाया जा सकता है और उनका बीमा कराके उनको दूर किया जा सकता है। इसके विपरीत, कुछ जोखिम (जैसे मांग तथा लागत की दशाओ मे सम्बन्धित जोखिम) ऐसे होते हैं जिनका अनुमान नही लगाया जा सकता और इसलिए उनका बीमा नही कराया जा सकता, अर्थात् कुछ जोखिम अनिश्चित होते हैं। प्रो० नाईट के अनुसार, लाभ 'अनिश्चित जोखिमो' या 'अनिश्चितताओ' का पुरस्कार है।

लाभ का अनिश्चितता उठाने का सिद्धान्त
(UNCERTAINTY-BEARING THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक प्रो० नाईट हैं। उन्होने अपनी पुस्तक 'Risk, Uncertainty and Profit' मे इस सिद्धान्त की पूर्ण विवेचना की है।

---

[7] 'Profit arise not because risks are borne, but because the superior entrepreneurs are able to reduce risks. Hence paradoxically it may be said that businessmen get profit not because of the risk they bear but because of the risk they do not bear."

इस सिद्धान्त के अनुसार, लाभ 'बीमा-अयोग्य जोखिमों' (uninsurable risks) अर्थात् 'अनिश्चितताओं' (uncertainties) को उठाने का पुरस्कार है तथा लाभ की मात्रा अनिश्चितता उठाने की मात्रा पर निर्भर करती है।

प्रो० नाइट 'जोखिम' तथा 'अनिश्चितता' (uncertainties) में भेद करते हैं। सभी प्रकार के जोखिम अनिश्चितताएँ उत्पन्न नहीं करते। इस भेद को अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्होंने बताया कि एक व्यवसाय में जोखिम दो प्रकार के होते हैं—(i) बीमा-योग्य जोखिम (insurable risks), तथा (ii) बीमा-अयोग्य जोखिम (uninsurable risks)। नीचे हम इन दोनों प्रकार के जोखिमों का विस्तृत विवरण देते हैं।

बीमा-योग्य जोखिम वे जोखिम हैं जिनका अनुमान लगाया जा सकता है और जिनकी सांख्यिकी गणना की जा सकती है और इसलिए उनका बीमा कराया जा सकता है। उदाहरणार्थ, आग, दुर्घटना, चोरी, डकैती, इत्यादि ऐसे जोखिम हैं जिनका बीमा कराया जा सकता है। इस प्रकार के जोखिम वास्तव में कोई अनिश्चितता उत्पन्न नहीं करते क्योंकि साहसी इनका बीमा कराके निश्चिन्त हो जाता है। अतः 'बीमा-योग्य जोखिम' लाभ को उत्पन्न नहीं करते।

बीमा-अयोग्य जोखिम वे जोखिम हैं जिनका अनुमान नहीं लगाया जा सकता तथा जिनकी सांख्यिकी गणना नहीं की जा सकती, और इसलिए उनका बीमा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के जोखिम अनिश्चितताएँ उत्पन्न करते हैं; इसलिए 'बीमा-अयोग्य जोखिमों' को 'अनिश्चितताएं' भी कहा जाता है। बीमा-अयोग्य जोखिमें निम्न प्रकार की हो सकती हैं. (i) व्यक्तियों की रुचि, फैशन, इत्यादि में परिवर्तन होने से माँग की दशाओं में परिवर्तन हो सकता है। (ii) लागत में बचत करने वाली किसी नयी मशीन का आविष्कार हो सकता है, तथा इसी प्रकार की अन्य टेक्नीकल जोखिमें हो सकती हैं; (iii) व्यापारिक चक्र (business cycle), तेजी-मन्दी (prosperity and depression) के समयों में लाभ-हानि की अधिक सम्भावनाएँ रहती है, (iv) सरकार की नीति में परिवर्तन, टैक्स तथा राजकोषीय (fiscal) नीतियों में परिवर्तन होने से लाभ-हानि की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

इस प्रकार की बीमा-अयोग्य जोखिमें अनिश्चितताओं को जन्म देती है। बिना इन अनिश्चितताओं को सहन किये कोई उत्पादन कार्य प्रारम्भ नहीं हो सकता। अतः साहसी का मुख्य कार्य अनिश्चितताओं को उठाना है, और 'अनिश्चितता उठाने' (uncertainty-bearing) का पुरस्कार ही लाभ है। लाभ की मात्रा अनिश्चितता की मात्रा पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, लाभ केवल परिवर्तन होने से ही उत्पन्न नहीं होता, बल्कि लाभ तब उत्पन्न होता है जबकि परिवर्तन अप्रत्याशित (unexpected) तथा अनिश्चित हो।

आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित है :

(१) 'अनिश्चितता-उठाना' ही साहसी का केवल एकमात्र कार्य नहीं है, साहसी के अन्य महत्वपूर्ण कार्य; जैसे—कुशलतापूर्वक संयोजन (co-ordination) तथा संगठन का कार्य, नव-प्रवर्तन का कार्य भी है। अतः लाभ को केवल अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार मान लेना पूर्णतया सही नहीं है।

(२) केवल अनिश्चितता का तत्व ही लाभ को उत्पन्न नहीं करता। दूसरे शब्दों में, 'अनिश्चितता-उठाना' अन्य तत्वों में से केवल एक तत्व है जो कि साहसियों की पूर्ति को सीमित करके लाभ को उत्पन्न करता है। अन्य तत्व, जैसे अवसरों की अज्ञानता, पूँजी की कमी, इत्यादि भी लाभ को उत्पन्न करते है।

दूसरे शब्दों में, प्रतियोगिता की अपूर्णताएँ (imperfections of competition) भी लाभ को उत्पन्न करती है, केवल अनिश्चितताएँ ही लाभ को जन्म नहीं देती। इसका एक उदाहरण एकाधिकारी लाभ है।

(३) यह सिद्धान्त 'अनिश्चितता उठाने' के तत्त्व को एक पृथक उत्पत्ति का साधन मान लेता है जो कि उचित नहीं है, यह तो साहसी के कार्यों की केवल एक विशेषता बताता है।

निष्कर्ष

यद्यपि नाईट के 'अनिश्चितता-उठाने के सिद्धान्त' की आलोचनाएँ हैं तथा यह सिद्धान्त पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं है परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि यह सिद्धान्त लाभ के अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा 'अधिक पूर्ण (more perfect) है या 'सबसे कम असन्तोषजनक' (least unsatisfactory) है।

लाभ का औचित्य
(JUSTIFICATION OF PROFIT)

समाजवादियों तथा कुछ अन्य समाज-सुधारकों द्वारा एक लम्बे समय से लाभ को सामाजिक दृष्टि से अवाञ्छनीय (undesirable) बताया गया है। मार्क्स के अनुसार कुल उत्पादन का मूल्य श्रम का परिणाम है और इसलिए वह सब श्रमिकों को मिलना चाहिए। परन्तु पूँजीपति या उत्पादक कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग श्रमिकों को देते हैं और 'अतिरिक्त मूल्य' लाभ के रूप में स्वयं हड़प जाते हैं। अतः मार्क्स ने लाभ को 'कानूनी डाका' कहा।

यद्यपि उपर्युक्त विचार सही नहीं है और एक सिरे (extreme) के हैं, परन्तु इससे सन्देह नहीं कि कुछ दशाओं में लाभ को उचित नहीं कहा जा सकता। ये दशाएँ निम्नलिखित हैं—(i) जब साहसी श्रमिकों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम देकर अपने लाभ को बढ़ाता है, (ii) जब उत्पादक विभिन्न प्रकार की बेईमानी की रीतियों से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं, (iii) जब व्यवसायी स्टॉक-एक्सचेंज में *अनुचित रीतियों से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं*, (iv) एकाधिकारी लाभ, इत्यादि। परन्तु ये दशाएँ प्रायः लोगों के निम्न व्यावसायिक चरित्र (low business morality) के परिणाम हैं। प्रतियोगिता को बढ़ाकर तथा लोगों के चरित्र में सुधार करके इन दोषों को दूर किया जा सकता है।

व्यक्तिगत लाभों को अनुचित ठहराने में महत्त्वपूर्ण बात यह कही जाती है कि लाभ समाज के साधनों से प्राप्त होते हैं और इसलिए समाज अर्थात् सरकार को मिलने चाहिए लाभ किसी भी एक वर्ग को केवल इसलिए प्राप्त नहीं होना चाहिए कि वे सम्पत्ति के स्वामी हैं।[1]

परन्तु इस प्रकार का तर्क केवल एक सीमा तक ही उचित है। यह ध्यान रखने की बात है कि केवल सम्पत्ति का स्वामित्व ही लाभों को जन्म नहीं देता, बल्कि लाभ तो साहसी की योग्यता, जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को झेलने की योग्यता, नव-प्रवर्तन की योग्यता, कुशल संगठन की योग्यता—के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार लाभ एक विशिष्ट प्रकार के श्रम का पुरस्कार है न कि सम्पत्ति के स्वामित्व का प्रतिफल (return)।[2]

मेहनत द्वारा प्राप्त हुआ लाभ उचित है। एक स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था (free enterprise economy) में लाभ महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्य करता है और इन कार्यों के कारण वह वाञ्छनीय (*desirable*) है।

लाभ के सामाजिक कार्य (social functions) निम्न हैं

(१) *लाभ का प्रावैगिक कार्य (dynamic function)* नव-प्रवर्तन तथा विनियोग को प्रोत्साहित करता है। लाभ अर्थात् लाभ की आशा फर्मों को नव-प्रवर्तन के लिए प्रेरित करती है।

---

[1] It might be argued that 'profit is created by the means of society's resources, none of the fruits of production thus secured should be expropriated by any one class by virtue of the historical accident of ownership '

[2] To a point such arguments are valid, but remember that entrepreneurial ability, not property ownership, gives rise to economic profit. Entrepreneurial ability is not a historical accident in the sense as property ownership Rather, it is an endowed ability or skill just as the *skill of* a musician or artist, profit is a return to a particular type of labour—not a return to property ownership

नव-प्रवर्तन विनियोग को उत्तेजित करते हैं, परिणामस्वरूप कुल उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है। इस प्रकार लाभ नव-प्रवर्तन तथा विनियोग को उत्तेजित करके आर्थिक विकास में सहयोग देते हैं।

(२) लाभ साधनों के वितरण (allocation of resources) का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। जिन वस्तुओं की उपभोक्ता अधिक माँग करते हैं उनकी कीमतें ऊँची होंगी और ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में उत्पादकों को लाभ होगा तथा उत्पत्ति के साधनों का अधिक प्रयोग होगा। हानि वाले प्रयोगों से साधन हटकर लाभ वाले प्रयोगों में हस्तान्तरित होंगे। जिस सीमा तक अर्थव्यवस्था स्पर्द्धात्मक होगी *उस सीमा तक साधनों का यह हस्तान्तरण सामाजिक दृष्टि से वाछनीय होगा।* दूसरे शब्दों में, लाभ का उदय होना साधनों के पुनर्वितरण के लिए संकेत (signal) है तथा लाभ को प्राप्त करना साहसियों के लिए पुनर्वितरण का पूरा करने की प्रेरणा है। लाभ 'संकेत तथा प्रेरणा यन्त्र' (signal-incentive mechanism) का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, और 'संकेत तथा प्रेरणा यन्त्र' स्वयं *कीमत-व्यवस्था (price system) का आधार है।*[19]

(३) समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी लाभ विनियोग, उत्पादन तथा रोजगार को प्रोत्साहित करके महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। समाजवाद सामान्यतया लाभ को समाप्त नहीं करता, वह तो केवल निजी व्यक्तियों द्वारा लाभ के स्वामित्व को समाप्त करता है, समाजवादी रूस में सरकार कर्मचारियों के वेतनों में अन्तर रखकर तथा सफल मैनेजरों के साथ लाभ में भागीदारी (profit sharing) करके उत्पादन को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार समाजवादी देशों में लाभ का रूप बदल जाता है परन्तु लाभ के महत्त्वपूर्ण कार्य बने रहते हैं।

स्पष्ट है कि समाज का कोई भी रूप हो—चाहे पूँजीवाद, समाजवाद या साम्यवाद—लाभ एक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य करता है और इसलिए उसका औचित्य (justification) है।

'लाभ' शब्द के विभिन्न प्रयोग
(DIFFERENT USES OF THE TERM PROFIT)

लाभ अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार है। परन्तु लाभ शब्द के विभिन्न प्रयोग किये जाते हैं। लाभ के अर्थ तथा अभिप्रायों को अच्छी तरह से समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न प्रयोगों की उचित जानकारी हो। इसके विभिन्न प्रयोग निम्नलिखित है (१) व्यावसायिक लाभ तथा आर्थिक लाभ, (२) पूंजी के फेर पर लाभ, (३) सामान्य लाभ, (४) अतिरिक्त या असामान्य लाभ, (५) एकाधिकारी लाभ, (६) आकस्मिक लाभ, (७) लाभ तथा लाभो।

अब हम ऊपर दिये गये लाभ शब्द के विभिन्न प्रयोगों का विवेचन करते हैं।

१ व्यावसायिक लाभ तथा आर्थिक लाभ
(BUSINESS PROFIT AND ECONOMIC PROFIT)

एक व्यापार के लिए लाभ कुल लागत के ऊपर आधिक्य है, अर्थात् लाभ कुल आगम तथा कुल लागत में अन्तर है। परन्तु एक व्यापारी या उत्पादक या एकाउण्टेण्ट लागत में केवल 'स्पष्ट लागतों' (explicit costs) को शामिल करता है। दूसरे शब्दों में, कुल आगम में से स्पष्ट लागतों को घटा देने के बाद जो बचता है वह व्यावसायिक लाभ है, इसे अर्थशास्त्री 'कुल लाभ' (gross profit) कहते हैं। 'स्पष्ट लागतें' वे हैं जो कि एक व्यापारी या उत्पादक स्पष्ट रूप से विभिन्न साधनों की सेवाओं को खरीदने में करता है, जैसे श्रमिकों की मजदूरियाँ, उधार ली गयी पूंजी का ब्याज, कच्चे माल की लागत, भूमि तथा बिल्डिंगों का किराया, मशीनों (अर्थात् स्थिर पूंजी) का घिसाई व्यय, विज्ञापन पर व्यय, इत्यादि।

अर्थशास्त्री के लिए भी लाभ, कुल आगम तथा कुल लागत में अन्तर है, परन्तु अर्थशास्त्री लागत का अर्थ 'अवसर लागत' से लेते हैं अर्थात् वे लागत के अन्तर्गत 'स्पष्ट लागतों' के अतिरिक्त

[19] The appearance of profit is a signal to reallocate resources and the capturing of profit is an incentive for entrepreneurs to accomplish the reallocation. Profit is an important part of the signal-incentive-mechanism, which in itself is the backbone of the price system.

पुरानी फर्मों को उद्योग से निकल जाने की कोई प्रवृत्ति नहीं होती है।"[13] सामान्य लाभ को एक और प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग 'साम्य' या 'पूर्ण साम्य' (equilibrium or full equilibrium) दशा में तब होता है जबकि उसके अन्तर्गत फर्मों की संख्या में कोई परिवर्तन (कमी या वृद्धि) न हो, ऐसा तब होगा जबकि फर्मों को न हानि हो और न लाभ बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा हो क्योंकि तभी न तो नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी और न उसमें से बाहर जायेंगी। अतः, सामान्य लाभ वह लाभ है जो कि फर्मों को तब प्राप्त होता है जबकि उद्योग पूर्ण साम्य की स्थिति में हो।"[13]

(ii) एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखने की यह है कि सामान्य लाभ लागत का अंग होता है अर्थात् औसत लागत में शामिल होता है। इसका कारण है कि भूमि, श्रम तथा पूंजी की भांति साहसी (अर्थात साहसी की योग्यता) एक सीमित या दुर्लभ साधन (scarce resource) है और इसलिए उसकी भी एक कीमत होती है। अतः एक साहसी किसी उद्योग में तभी कार्य करेगा जबकि (अन्य साधनों की भांति) उसको उसकी न्यूनतम कीमत अर्थात् 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' (minimum supply price) प्राप्त हो सके, यदि ऐसा नहीं है तो वह इस उद्योग में नहीं रहेगा। साहसी का यह 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य ही सामान्य लाभ है अर्थात 'सामान्य लाभ' साहसी की 'हस्तान्तरण आय' या 'अवसर लागत' है और इस प्रकार लागत का एक अंग है।[14]

(iii) साहसी को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए सामान्य लाभ अनिश्चितता उठाने का एक न्यूनतम पुरस्कार (irreducible minimum reward) है। सामान्य लाभ तो साहसी को उद्योग में बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र (just sufficient) होना है ताकि साहसी देखभाल तथा प्रबन्ध (supervision and organisation) का सामान्य कार्य (routine work) करता रहे। इसलिए यह कहा जाता है कि सामान्य लाभ मजदूरी की भांति होता है या उसे 'प्रबन्ध की मजदूरी' कहा जा सकता है।[15] सामान्य लाभ के रूप में साहसी स्वयं अपने आप को संगठन या प्रबन्ध की मजदूरी देता है।

(iv) सामान्य लाभ का स्तर भिन्न भिन्न उद्योगों के लिए भिन्न-भिन्न होता है। जिन उद्योगों में प्रारम्भिक विनियोग (initial investment) बहुत अधिक होता है या जिन उद्योगों में खतरा रहता है या जो उद्योग आदरणीय नहीं समझे जाते, ऐसे उद्योगों में सामान्य लाभ का स्तर अन्य उद्योगों की अपेक्षा ऊंचा होगा।

४. अतिरिक्त लाभ या असामान्य लाभ
(EXCESS OR ABNORMAL OR SUPERNORMAL PROFIT)

(i) जब एक साहसी की आय सामान्य लाभ से अधिक होती है तो उसे 'अतिरिक्त लाभ' या 'असामान्य लाभ' (excess or supernormal profit) कहते हैं।

(ii) अतिरिक्त लाभ, सामान्य लाभ की भांति, साहसी को किसी उद्योग में कार्य करने तथा उसमें बने रहने के लिए आवश्यक नहीं होता। दूसरे शब्दों में, अतिरिक्त लाभ, सामान्य लाभ की भांति लागत का अंग नहीं होता।

(iii) जब 'विशुद्ध लाभ' (pure profit) या 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit)[16] शून्य

---

[13] "Normal profit is that level of profit at which there is no tendency for new firms to enter the trade, or for old firms to disappear out of it"
—Mrs Joan Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p 92

[13] Cf "An industry is said to be in full equilibrium when there is no tendency for the number of firms to alter The profits by the firms in it are than normal"
—Mrs Joan Robinson, *op. cit*, p 93

[14] Like land labour and capital, entrepreneur (*i e*, entrepreneurial ability) is a scarce resource and therefore it has a price tag on it Hence, an entrepreneur will work in an industry only when he gets his minimum price or minimum supply price, otherwise he will not stay in this industry In other words, this *minimum supply price of an entrepreneur is* the normal profit and is a part of cost

[15] Marshall's 'normal profits' virtually correspond to Clarkian 'wages of management'

[16] What Marshall would call 'abnormal profits' is designated by Clark as 'pure profit'

होता है तो इसका अभिप्राय है कि साहसी को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है। दूसरे शब्दों में, 'शून्य विशुद्ध लाभ' ('zero pure profit' or simply 'zero profit') तथा 'सामान्य लाभ' (normal profit) एक ही बात है।

(iv) सामान्य लाभ कभी ऋणात्मक नहीं हो सकता जबकि अतिरिक्त लाभ ऋणात्मक हो सकता है अर्थात् हानि को 'ऋणात्मक लाभ' कहा जाता है।

५ एकाधिकारी लाभ
(MONOPOLY PROFIT)

जब लाभ एकाधिकारी स्थिति के कारण प्राप्त होते हैं तो उन्हें **'एकाधिकारी लाभ'** कहा जाता है। एक वस्तु को उत्पादित करने वाली कुछ बड़ी फर्में आपस में समझौता करके नयी फर्मों के प्रवेश को रोक सकती हैं और एकाधिकारी स्थिति प्राप्त कर सकती हैं, पेटेण्ट, कापीराइट, कच्चे माल की अधिकांश पूर्ति पर अधिकार, इत्यादि एकाधिकार के कारण हो सकते हैं। एक एकाधिकारी नयी फर्मों के प्रवेश को रोकने की योग्यता रखता है, परिणामस्वरूप वह अपने उत्पादन को सकुचित करके ऊँची कीमत रखता है और दीर्घकाल में असामान्य या अतिरिक्त लाभ प्राप्त करता है। चूंकि ये अतिरिक्त लाभ, लगान की भाँति सीमितता के कारण प्राप्त होते हैं और दीर्घकाल में भी रहते हैं इसलिए एकाधिकारी लाभ लगान के अधिक निकट होते हैं और उन्हें एकाधिकारी लगान (Monopoly Rent) भी कहा जाता है।

अब हम लाभ के स्रोत (source) के रूप में **'अनिश्चितता'** (Uncertainty) तथा **'एकाधिकार'** के बीच सम्बन्ध तथा अन्तर (distinction) की विवेचना करते हैं—(i) एक साहसी एकाधिकार शक्ति प्राप्त करके अनिश्चितता को कम कर सकता है अथवा उसके प्रभावों को अपने स्वार्थ के लिए काम में ला सकता है। एक स्पर्द्धात्मक (competitive) फर्म बाजार की अनियमितताओं (vagaries) के प्रति अरक्षित रहती है, जबकि एक एकाधिकारी बाजार को एक सीमा तक नियन्त्रित कर सकता है और इस प्रकार महत्त्वपूर्ण तरीके से अनिश्चितता के कुप्रभावों को समाप्त कर सकता है *या उन्हें न्यूनतम कर सकता है।*[17] (ii) इसके अतिरिक्त *नव प्रवर्तन* (innovation) एकाधिकारी का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है, नयी तकनीकों के लागू करने या नयी वस्तुओं के उत्पादन करने से उत्पन्न *अल्पकालीन अनिश्चितता, एकाधिकारी शक्ति को अर्जित करने* की दृष्टि, से एक साहसी द्वारा उठायी जा सकती है। (iii) 'अनिश्चितता' तथा 'एकाधिकार' से उत्पन्न लाभों में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर भी है, और यह अन्तर लाभ के इन दोनों स्रोतों (sources) की सामाजिक वाञ्छनीयता (social desirability) में सम्बन्धित है। प्रावैगिक (dynamic) तथा अनिश्चित आर्थिक वातावरण में निहित जोखिमों को उठाना तथा नव प्रवर्तनों को ग्रहण करना सामाजिक दृष्टि से वाञ्छनीय कार्य है। इसके विपरीत, एकाधिकारी लाभों की सामाजिक वाञ्छनीयता अत्यधिक सन्देहात्मक है। एकाधिकारी लाभ, स्पर्द्धात्मक कीमतों के ऊपर, उत्पादन संकुचन (restriction) तथा साधनों के जानबूझकर अनुचित वितरण (contrived misallocation) पर आधारित है। संक्षेप में, 'जानबूझकर उत्पन्न की गयी कमी' (contrived scarcities) के कारण *'एकाधिकारी लाभ' सामाजिक दृष्टि से अवाञ्छनीय हैं, जबकि 'नव प्रवर्तन'* के कारण 'एकाधिकारी लाभ' वाञ्छनीय कहे जा सकते हैं।

---

[17] An entrepreneur can reduce uncertainty, or at least manipulate its effect by achieving *monopoly power The competitive firm is unalterably exposed* to the vagaries of the market the monopolist however, can control the market to a degree and thereby offset or *minimize potentially* adverse effects of uncertainty ''

[18] Bearing the risk inherent in a dynamic and uncertain economic environment and the undertaking of innovations are socially desirable functions The social desirability of monopoly profit on the other hand is subject to very great doubt *Monopoly profits* typically are founded upon output restriction above competitive prices and a contrived misallocation of resources '

९ आकस्मिक लाभ
(WINDFALL PROFIT)

१ परिभाषा (Definition)—आकस्मिक घटना, अवसर या भाग्य (accident, chance or luck) के कारण यकायक अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो जाते है जिन्हे 'आकस्मिक लाभ' कहा जाता है।

आकस्मिक लाभ की एक अच्छी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—'**एकाधिकार के अतिरिक्त कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जो कि आकस्मिक (accidental) तथा अल्पकाल के लिए होती हैं और ये द्रव्य अर्जित करने की दृष्टि से फर्मों को अनुकूल स्थिति मे रख देती हैं। ऐसी स्थितियों से उत्पन्न अतिरिक्त प्रतिफलों को 'आकस्मिक लाभ' कहा जा सकता है।**'[19]

२. व्याख्या (Explanation)—उदाहरणार्थ, यकायक युद्ध छिड़ जाने से किसी वस्तु की कमी के कारण उसकी कीमत बढ़ जाती है और ऐसी स्थिति म उन व्यापारियों को, जिनके पास उस वस्तु के स्टाक हैं, बहुत अधिक लाभ प्राप्त होते हैं जिन्हें आकस्मिक लाभ कहा जाता है। भाग्यवश यदि किसी व्यक्ति को एक लॉटरी (lottery) का एक लाख का प्रथम पुरस्कार मिल जाता है तो यह 'आकस्मिक लाभ' होगा।

अब हम दो और परन्तु महत्वपूर्ण, उदाहरण देते हैं। माना कि दो फर्में 'A' तथा 'B' एक प्रकार की वस्तु का उत्पादन कर रही हैं। माना फर्म A मे श्रमिकों की आकस्मिक हड़ताल हो जाती है जो कि लगभग १ महीने चलती है। परिणामस्वरूप फर्म B को एक महीने की अल्पावधि मे 'आकस्मिक लाभ प्राप्त होंगे क्योंकि वह अब अपनी वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचकर अथवा पहले की कीमत पर ही बहुत अधिक मात्रा मे बेचकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगी। यहाँ पर आकस्मिक घटना (अर्थात् हड़ताल) एक फर्म (अर्थात् फर्म B) के लिए आकस्मिक लाभ उत्पन्न करती है तथा दूसरी फर्म (अर्थात् फर्म A) के लिए हानि।

दूसरा उदाहरण लीजिए जिसमे भाग्य, अवसर या एक आकस्मिक घटना एक ही फर्म के लिए *'अनिश्चितता' तथा 'एकमात्र लाभकारी स्थिति'* दोनों का मिश्रण (mixture) उत्पन्न कर सकती है। यकायक युद्ध छिड़ जाने के कारण किसी वस्तु विशेष की मांग बहुत बढ़ सकती है तो इस वस्तु को उत्पादित करने वाली फर्म को (वस्तु की ऊँची कीमत के परिणामस्वरूप) अत्यधिक लाभ *अर्थात् 'आकस्मिक लाभ' प्राप्त होंगे। वस्तु की अधिक माँग तथा ऊँची कीमत के कारण* फर्म का लागत-ढांचा (cost structure) ऊँचा हो सकता है जिसके कारण फर्म के लिए अनिश्चितता भी उत्पन्न होगी क्योंकि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद वस्तु की माँग तथा कीमत गिर *सकती है और शान्ति काल (peace time) म ऊँचे लागत-ढांचे को बनाये रखना कठिन होगा* और फर्म को हानि हो सकती है। स्पष्ट है कि युद्ध की आकस्मिक घटना से एक ही फर्म के लिए 'अनुकूल स्थिति' (favoured position) तथा 'अनिश्चितता' (uncertainty) दोनो का मिश्रण उत्पन्न होता है।

३ निष्कर्ष (Conclusion)—(i) अनेक आकस्मिक घटनाओ के कारण अनिश्चितता उसी प्रकार उत्पन्न हो सकती है जिस प्रकार कि प्रावैगिक (dynamic) परिवर्तनों के कारण। कुछ दशाओ मे भाग्य अवसर या आकस्मिक घटना एक ही फर्म को 'अनिश्चितता' तथा 'एकमात्र लाभकारी स्थिति (exclusively favourable position) का मिश्रण प्रदान करता है। कुछ अन्य दशाओ मे यह कुछ फर्मों के लिए आकस्मिक लाभ उत्पन्न करती है और कुछ अन्य फर्मों के लिए केवल हानि। *आकस्मिक लाभ का सार (essence) इस परिस्थिति मे निहित है कि* अनुकूल स्थिति (favoured position) फर्मों के प्रवेश से समाप्त नही होती तथा आकस्मिक हानियाँ फर्मों के तात्कालिक बहिर्गमन (exit) से नही रुक पाती हैं। वास्तव मे पूर्ति की बेलोचता (inflexibility) *आकस्मिक लाभो के कारण की व्याख्या करती है।*[20]

---

[19] "In addition to monopoly there is a large family of circumstances accidental and short lived which place some firms in a favourable spot to make money The extra returns resulting may be *called windfall profits*

[20] The essence of windfall profit dwells in the circumstances that the favoured position is not removed by the instantaneous entry of new firms and accidental losses are not arrested by the immediate exit of firms It is the inflexibility of supply that accounts for windfall profit

(ii) परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि विस्तृत अर्थ में सीमित प्रवेश या बहिर्गमन अर्थात् पूर्ति की बेलोचताएँ लाभ के उत्पन्न होने की सभी स्थितियों से सम्बन्धित होती हैं अर्थात् *अनिश्चितता की स्थितियों से उत्पन्न लाभ का सम्बन्ध पूर्ति की बेलोचता से होता है,* अनिश्चितता चाहे नव प्रवर्तन के कारण हो या अन्य परिवर्तनों के कारण, 'अनुकूल स्थिति' की दशाओं में उत्पन्न लाभ भी पूर्ति की बेलोचता से सम्बन्ध रखता है, अनुकूल स्थिति चाहे एकाधिकार के कारण हो अथवा आकस्मिक घटना के कारण।[31]

७ 'लाभ' तथा 'लाभों'
(PROFIT AND PROFITS)

कुछ अर्थशास्त्री (जैसे Ryan तथा Machlup) 'लाभ' (profit) तथा 'लाभों' (poofits) में भेद करते हैं तथा उन्हें कार्यात्मक दृष्टि से (operationally) परिभाषित करते हैं।

"लाभ से हमारा अर्थ उस विशुद्ध आगम से है जो कि एक फर्म भविष्य में एक समयावधि के अन्तर्गत प्राप्त करने की आशा करती है, लाभों से हमारा अर्थ उस विशुद्ध आगम से है, जो कि एक फर्म एक निश्चित अवधि के समाप्त होने के बाद प्राप्त करने में सफल होती है।[32]

यदि एक फर्म की उत्पादन तथा बिक्री योजनाएँ भविष्य में सही सिद्ध होती हैं तो एक निश्चित समय समाप्त होने पर उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, *एक निश्चित अवधि में 'लाभ' तथा 'लाभों' में तुलना इस बात की माप है कि किस सीमा तक एक* फर्म ने अपनी योजनाओं में गलती की है, यदि आर्थिक वातावरण समयावधि में अपेक्षाकृत स्थायी है तो *हम यह आशा करेंगे कि 'लाभ' तथा 'लाभों' में अन्तर बहुत कम होगा और समाप्त हो* जायेगा।[33]

सामान्य लाभ का निर्धारण
(DETERMINATION OF NORMAL PROFIT)

१. प्राक्कथन (Introduction)

वास्तविक जगत गत्यात्मक (dynamic) है, उसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते परिणामस्वरूप अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में उससे अनिश्चितता बनी रहती है। इ अनिश्चितता को उठाने की दृष्टि से व्यक्तियों अर्थात् साहसियों को प्रेरित (induce) करने के लि एक न्यूनतम पुरस्कार (अर्थात् लाभ) का होना आवश्यक है। यह न्यूनतम पुरस्कार या लाभ की न्यूनतम दर 'सामान्य लाभ' कही जाती है। सामान्य लाभ शुद्ध लाभ (pure profit) का अंश है जिसको प्राप्त करने की साहसी आशा करते हैं, यह 'अनिश्चितता झेलने का कम न हो सकने योग्य न्यूनतम पुरस्कार है' जो कि एक समयावधि में साहसियों को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए आवश्यक है।[34] यदि साहसियों को उद्योग विशेष में यह न्यूनतम पुरस्कार नहीं मिलता है तो वे इस उद्योग में काम नहीं करेंगे बल्कि दूसरे उद्योग में चले जायेंगे, दूसरे शब्दों में, सामान्य लाभ साहसी की 'हस्तान्तरण आय' या 'अवसर लागत' है। अल्पकाल में साहसियों को सामान्य लाभ से अधिक लाभ (surplus profit) प्राप्त हो सकता है अर्थात् लाभ में लगान का अंश हो सकता है, परन्तु दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत यह 'अतिरिक्त लाभ' या 'लगान का अंश' समाप्त हो जायेगा और केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

---

[31] But it may be kept in mind that "in a broad sense restricted entry and exit *or inflexibilities of supply seem to be associated with profit in all cases* in which they appear—in case of *uncertainty*, whether fostered by innovation or other changes, and in case of a *favo[urable] position*, whether created by monopoly or accident"

[32] "By *profit*, we mean the net revenue that a firm expects to earn during a period of time that lies ahead ; by *profits* we mean the net revenue which a firm has actually succeeded in earning during a period that has ended"

[33] "A comparison between profit and profits in a particular period, then, provides a measure of the extent to which the firm erred in the estimates on which its plans were based, if the economic environment is relatively stable over time we would expect the *differences* between profit and profits to dwindle and disappear"

[34] "Normal profit is that part of 'pure profit' which is expected by entrepreneurs It is an irreducible minimum reward for uncertainty-bearing which *entrepreneurs* will require over a period of time to induce them to stay in a particular industry"

राष्ट्रीय आय
[NATIONAL INCOME]

राष्ट्रीय आय का विचार अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण विचारों में से एक है। अर्थशास्त्र की अधिकांश समस्याओं के लिए राष्ट्रीय आय के विचार का समझना तथा उसको प्रभावित करने वाले तत्त्वों की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

राष्ट्रीय आय का विचार कोई नया विचार नहीं है। इस सम्बन्ध में सबसे पहला कार्य ऐडम स्मिथ की पुस्तक '*Wealth of Nations*' है। परन्तु उस समय यह विचार अस्पष्ट था तथा इसको ठीक प्रकार से परिभाषित नहीं किया गया था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इस विचार के उचित तथा वैज्ञानिक विवेचन के प्रयत्न किये गये हैं। आज राष्ट्रीय आय का विचार अर्थशास्त्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

राष्ट्रीय आय का अर्थ
(MEANING OF NATIONAL INCOME)

'राष्ट्रीय आय' के अर्थ के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। 'राष्ट्रीय आय' के अर्थ को बताने के लिए प्राय मार्शल, पीगू तथा फिशर की परिभाषाओं की विवेचना की जाती है। इन तीनों परिभाषाओं की विवेचना करने से पहले आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार राष्ट्रीय आय के अर्थ को समझ लेना अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अब 'राष्ट्रीय आय' शब्द का प्रयोग आधुनिक दृष्टिकोण से ही किया जाता है।

आधुनिक दृष्टिकोण

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार राष्ट्रीय आय के अर्थ को समझने के लिए दो विचारों (concepts) को समझ लेना आवश्यक है, 'कुल राष्ट्रीय उत्पादन' (Gross National Product, *i e*, GNP) तथा 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन' (Net National Product, *i e*, NNP)।

किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के कुल द्राव्यिक मूल्य (बाजार कीमतों पर), को 'कुल राष्ट्रीय उत्पादन' (GNP) कहते हैं।[1]

[ध्यान रहे कि कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में अप्रत्यक्ष कर (indirect taxes) भी शामिल होंगे, दूसरे शब्दों में, GNP में अप्रत्यक्ष कर भी शामिल रहते हैं।]

उत्पादन प्रक्रिया में देश के पूँजीगत-यन्त्र (capital equipment) धीरे-धीरे घिसते रहते हैं तथा कुछ मशीनें और यन्त्र अप्रचलित (obsolete) हो जाती हैं। इसलिए कुल राष्ट्रीय उत्पादन (GNP) का कुछ भाग घिसे तथा अप्रचलित यन्त्रों को प्रतिस्थापित (replace) करने में लग जाता है। 'कुल राष्ट्रीय आय' में से घिसाई व्यय (depreciation charges)[2] को निकाल देने से 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन' (Net National Product, *i e*, NNP) प्राप्त होती है। संक्षेप में,

$$NNP = GNP - \text{Depreciation Charges}$$

[1] Gross National Product (*i e*, GNP) is the total money value (at market prices) of all final goods and services produced in a country in one year

[2] 'घिसाई व्यय' को आधुनिक अर्थशास्त्री 'पूँजी उपभोग भत्ता' (capital consumption allowance) भी कहते हैं।

प्राय आधुनिक अर्थशास्त्री 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन' (NNP) को ही 'राष्ट्रीय आय' कहते हैं। परन्तु कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री 'राष्ट्रीय आय' को 'संकुचित अर्थ में' परिभाषित करना अधिक पसन्द करते हैं। 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन' (NNP) में से अप्रत्यक्ष करों' को निकाल देने पर जो बचता है उसे, संकुचित अर्थ में, राष्ट्रीय आय कहा जाता है।[4]

उपर्युक्त विवरण में स्पष्ट है कि आधुनिक अर्थशास्त्री 'राष्ट्रीय आय' को विस्तृत तथा संकुचित दो अर्थों में परिभाषित करते हैं। संक्षेप में,

National Income (in the broader sense)

= GNP — Depreciation Charges

= NNP

National Income (in the narrower sense)

= GNP — Depreciation Charges — Indirect Taxes

= NNP — Indirect Taxes

राष्ट्रीय आय की कुछ प्रारम्भिक परिभाषाएं

अब हम मार्शल पीगू तथा फिशर की परिभाषाओं की विवेचना करेंगे।

मार्शल की परिभाषा—राष्ट्रीय लाभांश या राष्ट्रीय आय को मार्शल ने इस प्रकार परिभाषित किया है किसी देश का श्रम व पूंजी उसके प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रतिवर्ष भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओं तथा सभी प्रकार की सेवाओं का एक निश्चित विशुद्ध योग (certain net aggregate) उत्पन्न करते हैं। यह किसी देश की वास्तविक विशुद्ध वार्षिक आय या आगम है, या राष्ट्रीय लाभांश।'[5]

मार्शल के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए (i) राष्ट्रीय आय की गणना प्राय वार्षिक आधार पर की जाती है। (ii) कुल उत्पत्ति में से मशीनों की टूट-फूट तथा घिसाई का व्यय निकाल देना चाहिए। (iii) विदेशी विनियोगों से प्राप्त विशुद्ध आय इसमें जोड़ देनी चाहिए। (iv) व्यक्तियों की वे सेवाएँ जो कि परिवार के सदस्यों तथा मित्रों को बिना मूल्य प्रदान की जाती हैं और अपनी निजी सम्पत्ति से या सार्वजनिक सम्पत्ति से लाभ इत्यादि को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं करना चाहिए।[6]

मार्शल की परिभाषा की आलोचना—सैद्धान्तिक दृष्टि से मार्शल की परिभाषा सन्तोषजनक प्रतीत होती है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसमें कठिनाइयाँ प्रतीत होती हैं (i) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल उत्पादन की सांख्यिकी माप (statistical measure) अत्यन्त कठिन है। इस कठिनाई को एक बहुत बड़ी सीमा तक सभी वस्तुओं और सेवाओं के द्राव्यिक मूल्यों (money values) को ज्ञात करके तथा उनका योग करके दूर किया जा सकता है।

---

[3] ध्यान रहे कि 'प्रत्यक्ष कर' (direct taxes) शामिल रहते हैं, केवल अप्रत्यक्ष कर' ही निकाले जाते हैं।

[4] 'In the narrow sense national income is simply NNP with all indirect taxes taken out.' This view is taken by the U. S. Department of Commerce and many American economists.

[5] 'The labour and capital of the country acting on its natural resources produce annually a certain net aggregate of commodities material and immaterial including services of all kinds. This is the true net annual income or revenue of the country or the national dividend.'
—Marshall, *Principles of Economics* p. 434

[6] 'The limiting word 'net' is needed to provide for the using up of raw and half finished commodities and for the wearing out and depreciation of plant which is involved in production all such wastes must of course be deducted from the gross produce before the true net income can be found. And net income due on account of foreign investments must be added.'
—*Ibid.*, p. 434

निर्माण (further manufacturing or processing) के लिए या पुनः बिक्री के लिए खरीदा जाता है।

अन्तिम वस्तुओं के मूल्य में सभी मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य शामिल हो जाता है।[19] मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्यों को जोड़ लेने से 'दोहरी गणना' (double counting) हो जायगी और GNP का मूल्य बढ़ा हुआ (exaggerated) दिखायी देगा। स्पष्ट है कि 'दोहरी गणना' से बचने के लिए GNP में केवल अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों को ही शामिल किया जाता है।

(iv) यह केवल वर्तमान वर्ष (current year) के उत्पादन को ही शामिल करता है। इस कथन के निम्न अभिप्राय (implications) हैं—(क) GNP एक प्रवाह (flow) है, यह समय की प्रति इकाई में उत्पादन की मात्रा है, परम्परा (convention) के अनुसार GNP को हम वार्षिक प्रवाहों (annual flows) के शब्दों में मापते हैं।[20] (ख) यदि वर्तमान वर्ष का कुछ उत्पादन बिना बिके रह जाता है तो उसे वर्तमान वर्ष में स्टाक (current year's inventory or stock) में शामिल करके GNP में उसकी गणना की जाती है। (ग) इसके अन्तर्गत पुरानी वस्तुओं की बिक्री (second-hand sales) को शामिल नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ, पिछले वर्षों में उत्पादित वस्तुओं की वर्तमान वर्ष में बिक्री को GNP में शामिल नहीं किया जायेगा, क्योंकि ऐसी बिक्री वर्तमान वर्ष के उत्पादन को नहीं बताती है। इसी प्रकार यदि एक व्यक्ति वर्तमान वर्ष में उत्पादित एक नयी कार को खरीदता है और एक महीने बाद किसी दूसरे को बेच देता है, तो इस प्रकार की बिक्री भी GNP में शामिल नहीं की जायेगी क्योंकि जब नयी कार खरीदी गयी थी तभी उसको GNP में शामिल कर लिया गया था, परन्तु उसी कार को, जो एक महीने में पुरानी (second-hand) हो जाती है, दुबारा बेचने से कोई नया उत्पादन नहीं होता है और इस प्रकार की पुरानी वस्तुओं की पुनः बिक्री (second hand resales) को GNP में शामिल करने से दुबारा गणना (double counting) हो जायेगी और GNP का अंक अनावश्यक रूप से बढ़ (exaggerate हो) जायेगा। (घ) विशुद्ध मौद्रिक लेन-देन (purely financial transactions) भी GNP में शामिल नहीं किये जाते हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप में वर्तमान उत्पादन को नहीं बताते हैं। उदाहरणार्थ, मुसीबतों (जैसे बाढ़, अकाल, इत्यादि) के समयों में सरकार द्वारा सहायता के लिए दिये गये भुगतान (relief payments), इस प्रकार के भुगतान किसी भी प्रकार के वर्तमान उत्पादन के बदले में नहीं दिये जाते हैं।

२ विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (Net National Product, that is, NNP)

प्रत्येक वर्ष की पूंजी के एक भाग का मूल्यह्रास (depreciation) हो जाता है या एक भाग घिसाव या टूट-फूट अथवा अप्रचलन (obsolescence) के कारण खो दिया जाता है या समाप्त हो जाता है। अतः GNP का कुछ हिस्सा प्रति वर्ष मूल्य ह्रास द्वारा खोयी हुई पूंजी के प्रतिस्थापन (replacement) के लिए प्रयोग में लाया जाना जरूरी है ताकि देश की उत्पादन-क्षमता को बनाये रखा जा सके।

---

[19] कोट एक अन्तिम वस्तु है तथा कपड़ा एक मध्यवर्ती वस्तु है जिसके द्वारा कोट का निर्माण हुआ है, अतः मध्यवर्ती वस्तु कपड़े का मूल्य अन्तिम वस्तु कोट के मूल्य में शामिल हो जाता है; दोनों वस्तुओं के मूल्यों को अलग-अलग जोड़ने से double counting हो जायेगा।

[20] "GNP is a flow; it is an amount of production per unit of time. By convention, we measure GNP in terms of annual flows."

यदि हम कुल राष्ट्रीय उत्पाद' (*Gross National Product*) में से मूल्य ह्रास घटा दें तो हमें समस्त अर्थव्यवस्था के प्रयोग के लिए 'विशुद्ध उत्पाद' (net product) प्राप्त हो जायेगा, इस माप (measure) को 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद' (*Net National Product, that is, NNP*) कहा जाता है। इस प्रकार मूल्यह्रास के लिए समायोजित GNP ही NNP है। (GNP adjusted for depreciation is NNP)।

संक्षेप में, NNP को इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

NNP=GNP—Depreciation

NNP वह विशुद्ध उत्पादन है जिसका मूल्यांकन बाजार कीमतों पर किया जाता है, इसलिए NNP को कभी-कभी *'बाजार कीमतों पर राष्ट्रीय आय'* (National Income at Market Prices) भी कहा जाता है।

वार्षिक मूल्यह्रास की सही गणना करना बहुत कठिन है और चूंकि विभिन्न फर्में मूल्यह्रास की गणना करने के भिन्न-भिन्न तरीके प्रयोग करती हैं इसलिए, GNP की तुलना में, NNP कम निश्चित या कम सही (less accurate) होता है।

परन्तु इस कठिनाई के होने पर भी NNP एक बहुत महत्त्वपूर्ण विचार है—(क) किसी एक वर्ष के लिए NNP वस्तुओं व सेवाओं के उस प्रवाह (flow) को बताती है जिसका उपभोग, बिना अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को हानि पहुँचाये, किया जा सकता है। दीर्घकालीन समयों के लिए उत्पादन के वर्द्धन (growth) को मापने के लिए अथवा विभिन्न देशों के उत्पादन की तुलना करने के लिए NNP एक अधिक उचित विचार है अपेक्षाकृत GNP के।

३. राष्ट्रीय आय (National Income, that is, NI)

कुछ दशाओं में हम वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा (output) को उत्पादित करने वाले साधनों (भूमि, श्रम और साहस) की अर्जित आयों (earned incomes) में दिलचस्पी रखते हैं। NNP में अप्रत्यक्ष कर शामिल रहते हैं और इन अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त धनराशि वर्तमान उत्पादन में प्रत्यक्ष रूप से कोई योगदान (contribution) नहीं देती हैं।[11] दूसरे शब्दों में, अप्रत्यक्ष करों की राशि साधनों को आय के रूप में नहीं दी जाती है। अतः अर्थव्यवस्था में मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ के रूप में समस्त साधनों की कुल आयों को मालूम करने के लिए NNP में से अप्रत्यक्ष *करों को घटा दिया जाता है; इस प्रकार से जो माप (measure) प्राप्त होता है उसे 'राष्ट्रीय आय'* (National Income, *i.e.*, NI) कहते हैं, या कभी-कभी इसे 'साधन लागत पर राष्ट्रीय आय' (National Income at Factor Cost) भी कहते हैं।[12]

NNP से NI को निकालने में व्यवहार में सामान्यतया अप्रत्यक्ष करों की धनराशि को NNP में से घटा दिया जाता है; संक्षेप में,

NI=NNP—Indirect Taxes

परन्तु कुछ अर्थशास्त्री NI को प्राप्त करने के लिए, अप्रत्यक्ष करों के अतिरिक्त NNP में 'सरकारी अनुदानों' (government subsidies) का भी समायोजन (adjustment) करना अधिक पसन्द करते हैं।

'अनुदान दिये गये उद्योग' (subsidized industry) की वस्तु की बाजार कीमत में सरकार द्वारा प्रदत्त (given) अनुदान शामिल नहीं होता। सरकार एक फर्म को अनुदान के रूप में

---

[11] We should remember that government does not contribute directly to production in return for the indirect tax revenue which it receives, government is not considered to be a factor of production

[12] "National Income, since it excludes indirect business taxes measure net output and income, valued at the cost of production, where profits are considered a cost of production."

को देती है उसे फर्में (कीमत में शामिल करके) उपभोक्ता से वसूल नहीं करती हैं। परन्तु एक फर्म प्रयोग में लाये जाने वाले साधनों को उस अनुदान का भुगतान कर देती है। NNP में अनुदान को शामिल नहीं किया जाता है क्योंकि यह बाजार मूल्य का एक अंग नहीं होता है, परन्तु अनुदान राष्ट्रीय आय का एक अंग होता है। इसलिए, NI को प्राप्त करने लिए (NNP में से अप्रत्यक्ष करों के घटाने के साथ-साथ), अनुदान को NNP में जोड़ दिया जाता है।[1] संक्षेप में,

NI NNP — Indirect Taxes + Government Subsidy

राष्ट्रीय आय (NI) का विचार महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह राष्ट्रीय उत्पादन में से साधनों के हिस्सो पर प्रकाश डालता है।

४. वैयक्तिक आय (Personal Income)

वैयक्तिक आय वह आय जो कि व्यक्तियों या परिवारों को एक वर्ष में, वास्तव में, प्राप्त होती है। वैयक्तिक आय को राष्ट्रीय आय (NI) से निकाला जाता है।

राष्ट्रीय आय (NI) साधनों या व्यक्तियों या परिवारों की आयों का माप है, परन्तु वह उनकी वास्तविक द्राव्यिक आयों (actual money incomes) को नहीं बताता है। इसके कारण हैं—

(i) अर्जित (earned) आय का कुछ भाग साधनों, व्यक्तियों या परिवारों को द्राव्यिक आय के रूप में, वास्तव में, प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार के मद (items) हैं— सामाजिक सुरक्षा अंशदान (social security contributions) जो कि श्रमिक अपनी मजदूरियों में से देते हैं और उस सीमा तक उनकी वास्तविक द्राव्यिक आय कम हो जाती है, कॉरपोरेट आय-कर (corporate income-tax) जो कि कॉरपोरेशन अपने लाभों में से देते है, अवितरित कॉरपोरेट लाभ (undistributed corporate profits) जो कि अंश-धारिकों (shareholders) को नहीं बाँट जाते हैं। अतः व्यक्तियों या परिवारों की वास्तविक आयों को मालूम करते समय उपर्युक्त मदों को NI में से घटा देना चाहिए।

(ii) कुछ व्यक्तियों या परिवारों को ऐसी द्राव्यिक आयें (money incomes) मिलती है जो कि वे बिना अपने साधनों या अपनी सेवाओं की पूर्ति किये हुए प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के मद हैं—सहायता भुगतान (relief payments), बेरोजगारी की क्षतिपूर्ति (unemployment compensation), वृद्धावस्था की पेन्शन, इत्यादि। इन भुगतानों को सामूहिक रूप में 'हस्तान्तरण भुगतान' (transfer payments) कहते हैं। अतः व्यक्तियों की वास्तविक आयों को ज्ञात करते समय इन मदों को जोड़ दिया जाता है। अब वैयक्तिक आय (PI) को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं : PI = NI — (Social security contributions + Corporate income taxes + Undistributed corporate profits) + (Transfer payments like relief payments, unemployment compensation, old age pensions, etc)

५. व्यय-योग्य आय (Disposable Inco e, that is, DI)

परिवारों या व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली समस्त वास्तविक आय या 'वैयक्तिक आय' (PI) क्रय शक्ति (purchasing power) नहीं है, अर्थात् समस्त वैयक्तिक आय व्यय-योग्य (disposable) नहीं है, उसमें से कुछ हिस्सा व्यक्तियों को टैक्सों (जैसे आय-कर, मोटर गाड़ी टैक्स,

---

[1] "The market value of the product of a subsidized industry does not incorporate the subsidy, what are the government give to the fi m the firm does not have to obtain from the consumer But the subsidy is paid out by the firm to the factors which it employs The subsidy is not included in the NNP b cause it is not a component of the market price, but the subsidy is a component of the national income The subsidy is therefore added to the NNP (along with the subtraction of indirect taxes from NNP) to get NI"

इत्यादि के रूप म देनना पड़ता है। अपनी 'वैयक्तिक आय' (PI) मे इन टैक्सो को देने के बाद परिवारों के पास जो बच रहता है वह 'व्यय योग्य आय' (DI) है। अत

DI=PI—Personal Direct Taxes

स्पष्ट है कि DI केवल 'टैक्स के-बाद वैयक्तिक आय' (after tax personal income) है जिसके एक बड़े भाग को वैयक्तिक उपभोग पर व्यय करने के लिए तथा कुछ भाग बचाने (या न व्यय करने के लिए) एक व्यक्ति स्वतन्त्र होता है। अत: DI को हम दूसरे प्रकार से भी व्यक्त कर सकते है जिसे नीचे दिया गया है

DI=वैयक्तिक उपभोग (Personal Consumption)+वैयक्तिक बचत (Personal Saving)

वास्तव म PI तथा DI के बीच अन्तर वैयक्तिक करो के द्राव्यिक भार (money burden) को बताता है, और इस प्रकार DI का विचार उपयोगी है।

वास्तव मे सामाजिक लेखाकन के पाचो भाग एक अर्थव्यवस्था मे कार्यकरण (performance) की विस्तृत जानकारी प्रदान करते है।

सामाजिक लेखांकन का महत्त्व
(SIGNIFICANCE OF SOCIAL ACCOUNTING)

राष्ट्रीय आय लेखाकन एक देश की अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति को बताता है तथा देश के आर्थिक स्वास्थ्य को सुधारने या अधिक अच्छा करने के लिए विश्लेषण का एक ढाँचा प्रदान करता है।[24] इस कथन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय लेखाकन या सामाजिक लेखाकन के महत्त्व को दो वर्गों म बाटा जा सकता है—(क) आर्थिक क्रियाओ का अभिसूचक (index), तथा (ख) आर्थिक नीति और नियोजन का यन्त्र (instrument)।

(क) आर्थिक क्रियाओं का अभिसूचक (An Index of Economic Activities)

(i) सामाजिक लेखाकन किसी समय विशेष पर अर्थव्यवस्था मे उत्पादन के स्तर को मापता है तथा उस उत्पादन स्तर के कारणो पर प्रकाश डालता है।

(ii) विभिन्न समयावधियों के बीच सामाजिक लेखाकन की तुलना करके अर्थव्यवस्था की गति के दीर्घकालीन पथ (long term course) को ज्ञात किया जा सकता है, अर्थव्यवस्था की प्रगति या अवनति सामाजिक लेखो (social accounts) म दिखायी देता है।

सक्षेप म, सामाजिक लेखाकन एक अर्थव्यवस्था मे मुख्य परिवर्तनो का एक विस्तृत सारांश प्रदान करता है। यह बताता है कि अर्थव्यवस्था मे कहाँ सन्तुलन है या कहाँ सन्तुलन की कमी है, तथा किसी भी मुख्य या बड़े असन्तुलन के कारणो को स्पष्ट करता है।[25]

(ख) आर्थिक नीति तथा नियोजन का यन्त्र (Instrument of Economic Policy and Planning)

भूतकाल का एक विवेकपूर्ण तथा समन्वित चित्र भविष्य मे उचित व सही निर्णयो के लिए अत्यन्त सहायक होता है। सामाजिक लेख (social accounts) इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि क्या हो चुका है तथा क्या हो रहा है, और इस प्रकार से भविष्य मे उचित आर्थिक नीति तथा नियोजन के महत्त्वपूर्ण यन्त्र का काय करत हैं। यहाँ तक कि सरकार का बजट, जो कि सरकारी नीति का केन्द्रबिन्दु (pivot) समझा जाता है, वह भी अब उन्नत देशो मे सामाजिक लेखाकन के साथ समायोजित (fit) किया जाता है।

सामाजिक लेखाकन या राष्ट्रीय आय लेखाकन राष्ट्र की आर्थिक नाड़ी पर ध्यान रखता

---

[24] National Income Accounting mirrors the current state of the economy of a nation and provides a framework of analysis to better its economic health

[25] Social Accounting provides a comprehensive summary of the main changes in progress in the economy It indicates where there is balance or lack of balance and provides evidence as to the sources of any major disequilibrium.

है तथा देश के आर्थिक स्वास्थ्य को अच्छा करने की दृष्टि से विवेकपूर्ण आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायता करता है।"[1]

प्रश्न

१ राष्ट्रीय आय अथवा राष्ट्रीय लाभांश किसे कहते हैं ? इस सन्दर्भ मे मार्शल, पीगू तथा फिशर के विचारो की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

What is national income or national dividend? In this connection discuss critically the views of Marshall Pigou and Fisher *(Garwal, B Com II 1976)*

२ राष्ट्रीय आय की परिभाषा दीजिए और उसे नापने की विधियों को समझाइए।

Define National Income id discuss the methods of measuring it *(Kanpur B.A II, 1976)*

३ राष्ट्रीय आय को परिभाषित कीजिए। इसको मापने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?

Define National Income What difficulties are faced while measuring it?

४. राष्ट्रीय आय का आकार तथा वितरण का ढग किस प्रकार आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है ?

Discuss how the changes in the size and pattern of distribution of National Income affect Economic Welfare

परिशिष्ट पर प्रश्न

१ आप राष्ट्रीय आय लेखांकन से क्या समझते हैं ? उनके विभिन्न अंगो की व्याख्या कीजिए।

What do you understand by 'national income accounting'? Explain its various components

२ 'सामाजिक लेखांकन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो से सम्बन्धित आंकड़ों का विवरण ही नही देता बल्कि उनके पारस्परिक सम्बन्धो को बताते हुए विश्लेषण के लिए एक ढांचा प्रदान करता है।' इस कथन के सन्दर्भ मे सामाजिक लेखांकन के अर्थ और उसके महत्त्व की विवेचना कीजिए।

'Social Accounting not only describes the figures of the various sectors of the entire economy but also indicates their mutual relationship and provides a framework for analysis' In the context of this remark discuss the meaning and significance of Social Accounting

---

[1] Social Accounting or National Income Accounting keeps a finger on the pulse of the nation and helps in fabricating national economic policies for the betterment of its economic health